GYANODAYA AFR SEP 1962 GKU

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

077989

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

077989

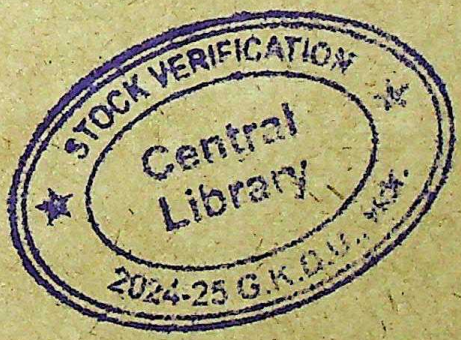

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

- सम्पादकीय
  - १. यह विशेषांक : **सम्पादक** ४
- संस्मरण
  - १. महीयसी महादेवी : होली जिनका जन्म-दिन है : **गंगाप्रसाद पांडेय** ७
- उपन्यास-अंश
  - १. केवल इतवार को नहीं : **उषा प्रियम्वदा** ११
- स्वगत-कथन : एक पात्र
  - १. गुलाब के फूल : ज़िन्दगी के काँटे : **रजनी पनिकर** १७
- चित्रकला
  - १. कलाकार के कैन्वस पर नारी : **डॉ० कुमारी शैल** २४
- स्वगत-कथन : अनेक पात्र
  - १. आकृतियाँ : **अमृता भारती** ३३
- ध्वनि-रूपक
  - १. आत्मा की पुकार : **चन्द्रलेखा गुप्ता** ८४
- पत्र-कथा
  - १. स्नेह का तार : **इन्दिरा 'नूपुर'** १०३
- संगीत-रूपक
  - १. सरस्वती की साधिका : शेख रँगरेजिन : **सुमित्राकुमारी सिन्हा** १२९

077989

STOCK VERIFICATION
Central Library
2024-25
LAKHAU

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● एकालाप

१. माँ, अधिकार और बलिदान : **बसन्तप्रभा १११**

● यात्रा-विवरण

१. एक गाँव की यात्रा : **कान्ति द्विवेदी १२३**

● भाव-कथा

१. महानता और महानता : **रमा बनर्जी १४२**

● लेख

१. ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैनन : **हर्षनन्दिनी भाटिया ६९**

● डायरी

१. अजन्मे की डायरी : **कंचनलता सब्बरवाल ७९**
२. नये कोण से : **शुभा वर्मा ९७**

● हास्य-व्यंग्य

१. चूहे : **प्रेमलता वर्मा ७३**
२. मैंने खुदकुशी करली : **वीरा १३६**

● कहानी

१. रहिमन धागा प्रेम का : **मीरा महादेवन २८**
२. मनौती : **शिवानी ४०**
३. एक अकेली तस्वीर : **ममता अग्रवाल ४५**
४. टूटते किनारे और फूटी हुई दरगाह : **शशिप्रभा शास्त्री ५०**
५. सुबह का भूला : **जया नागर ५७**
६. चुप के दायरे में : **मणिका मोहिनी ६३**
७. मरीचिकाएँ : **मोहिनी ओबराय ८९**
८. मन नहीं लगता : **मनमोहिनी ११७**
९. शहीद की माँ : **विजय चौहान १४४**

● मैं और मेरा लेखन : आत्म-कथन १५३

१. मैं भी कैसी लेखिका हूँ : **कौशल्या अश्क १५४**
२. मेरी कहानी : मेरी ज़बानी : **विद्यावती कोकिल १५७**
३. कुछ पुराने और नये खत : **चन्द्रा औलक १५९**
४. मेरी पहली कविता : **अमृता प्रीतम १६५**

● नवोदित लेखिकाएँ : परिचर्चा १६७

■ **इन्दु जैन १६९** ■ **पद्मा सुधि १७१** ■ **विमला राजेन्द्र १७५**
■ **मीरा मानिकवाला १७९** ■ **कुमारी राधा १८३**
■ **शोभा डोगरा १८७** ■ **विमल वेद १८९**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- सागर पार की लेखिकाएँ : १९३
  1. एक भारतीय लेखिका के अमरीका में अनुभव : सोमा वीरा १९४
  2. फ्रांस की फ्रैंक्वॉय साँगाँ : रजनी पनिकर १९७
  3. इंगलैण्ड की डोरोथी वर्ड्सवर्थ : तृप्ता कपूर १९९
  4. इटली की ग्रेज़िया देलेदा : अनीता २०१
  5. जापान की तकाको नम्बा : राजकमल चौधरी २०३
  6. अमरीका की एलेन ग्लासगो : परेश २०७
- नवोदित हिन्दी कवियित्रियाँ २११
  - रमा सिंह २१२ ■ ज्योत्स्ना मिलन २१३ ■ अनामिका २१४
  - निर्मला वर्मा २१५ ■ रमा गोयल २१६ ■ विमला झँवर २१७
  - मोहिनी बिरदी २१८ ■ तृप्ता कपूर २१९
- अन्तर-भारतीय कवियित्रियाँ २२१
  1. असमिया : प्रवीणा शइकिया २२२
  2. उड़िया : कुमारी तुलसी दास २२३
  3. गुजराती : दिनमणि शाह २२४
  4. मराठी : सरिता पदकी २२५
  5. कश्मीरी : ललिता मिरचन्दानी २२७
  6. कन्नड़ : सी० रत्ना शर्मा २२९
  7. तेलुगु : नायनि कृष्ण कुमारी २३१
- एक रंगमञ्चीय काल्पनिक इण्टरव्यू
  1. हिन्दी की चार नवोदित कथा-लेखिकाओं से : शरद देवड़ा २३३

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन : शरद देवड़ा

संचालक

भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

कार्यालय

१८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१

एकमात्र वितरक : बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विशेषांक

प्रिय पाठक,

जब पहले-पहल मन में यह परिकल्पना उठी कि एक 'नवोदित लेखिकाएँ अंक' निकाला जाए तब हम बहुत अधिक आश्वस्त नहीं थे कि कितनी लेखिकाएँ अच्छे स्तर की सामग्री दे सकेंगी। हिन्दी में लेखिकाओं की संख्या कम है, जो लिखती भी हैं वे छिप-छिप कर, लिख भी लीं तो प्रकाशनार्थ भेजने में वे स्वभावतः झिझकती हैं; फिर यहाँ तो साथ में परिचय और छाया-चित्र भी आवश्यक थे।

यह हुई पृष्ठभूमि की बात!

x x x x

हमारा विश्वास है कि इस समय जो विशेषांक आपके हाथों में है, वह आपकी अब तक की बहुत-सी धारणाओं को ग़लत साबित कर देगा :

- **'कि हिन्दी में अच्छी लेखिकाओं का अभाव है!' वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है—इसका प्रमाण प्रस्तुत विशेषांक में प्रकाशित लेखिकाएँ हैं (ये लेखिकाएँ केवल संख्या की दृष्टि से ही नहीं, गुणात्मक**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्धियों की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं); बल्कि हमें खेद है कि पृष्ठ-संख्या की सीमा के कारण और कुछ रचनाओं के देर से उपलब्ध होने के कारण हम बहुत चाहते हुए भी अन्य बहुत-सी रचनाएँ इसमें शामिल नहीं कर सके हैं। वस्तुतः इस विशेषांक का पूरा रूप तभी स्पष्ट होगा जब आप इसे 'परिशिष्टांक' के साथ मिला कर देखेंगे। अगला अंक परिशिष्टांक होगा।

- 'कि लेखिकाओं के विषय का क्षेत्र अक्सर बहुत सीमित होता है, और वे केवल 'परिवार' और 'प्रेम' के ही विषयों पर लिखना पसन्द करती हैं।' वस्तुस्थिति यह है कि आज हमारी लेखिकाएँ भी समाज और जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रविष्ट हो रही हैं और तदनुरूप उनके विषयों का क्षेत्र भी वैविध्य और विस्तार पाता जा रहा है। बल्कि एक शुभ लक्षण यह भी है कि हिन्दी में केवल हिन्दी-भाषी लेखिकाएँ ही नहीं लिख रही हैं, बल्कि अहिन्दी-भाषी लेखिकाएँ भी लिख रही हैं, और इस तरह हमारी हिन्दी का साहित्य वस्तुतः भारतीय नारी का समर्थ प्रतिनिधित्व करने की ओर अग्रसर है।

- 'कि वे केवल परम्परागत शिल्प में ही लिखना पसन्द करती हैं।' विधाओं की जो विविधता यहाँ प्रस्तुत है, और परिशिष्टांक में प्रकाश्य है, वह आपकी इस धारणा को भी ग़लत साबित कर देगी। कहानी, एकालाप, रूपक, एकांकी, यात्रा-वर्णन, रिपोर्ताज और डायरी जैसी विधाओं में ही नहीं, हमारी लेखिकाएँ टेलिविज़न जैसी नवीनतम लेखन-विधा में भी सिद्धहस्त हैं इसकी पुष्टि हमारा परिशिष्टांक करेगा।

- 'कि वे प्रकाशनार्थ रचनाएँ भेजने में झिझकती हैं।' अगर अब तक आपकी यह धारणा सही भी थी तो आप स्वयं लेखिकाओं के अनुभव उनसे ही सुनिये (नवोदित लेखिकाएँ : परिचर्चा के अन्तर्गत), कि इसके लिए उत्तरदायी कौन है ?

x x x x

इस विशेषांक की जो खामियाँ हैं वे भी हमसे छिपी हुई नहीं हैं, लेकिन उसके लिए बहुत कुछ हमारी सीमाएँ ही ज़िम्मेदार हैं। उदाहरणार्थ, 'अन्तर-भारतीय कवियित्रियाँ' और 'सागर पार की लेखिकाएँ' में हम केवल आंशिक सामग्री ही दे पाये हैं; शेष आप परिशिष्टांक में पायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो-एक बातें और भी हैं जिनके सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है :

- विशेषांक की बहुसंख्यक नवोदित लेखिकाओं के बगल में कुछ अपेक्षाकृत प्रतिष्ठित और प्रौढ़ लेखिकाओं का प्रकाशन ! लेकिन यह अकारण नहीं है। एक ओर जहाँ यह सिद्ध करेगा कि 'नवोदित' की सीमा-रेखा आयु द्वारा निर्धारित नहीं की जा सकती, बल्कि इसका मापदण्ड तो रचना में प्राण-प्रतिष्ठा करने वाली सृजन की जीवन्त प्रेरणा है, वहाँ दूसरी ओर नवोदित लेखिकाएँ स्वयं अपनी शक्तियों को तुलनात्मक दृष्टि से नाप-तोल सकेंगी, और तीसरी ओर आप हिन्दी की तीन पीढ़ियों के विकास-पथ को देख सकेंगे।
- लेखिकाओं के इस घनीभूत वर्ग में चार लेखकों की उपस्थिति ! लेकिन उपस्थिति कहना शायद उतना सही नहीं होगा, क्योंकि इन चारों रचनाओं में भी उपस्थित तो दरअसल लेखिकाएँ ही हैं,—लेखक तो महज़ नेपथ्य में उनकी ही पात्रता का परिचय दे रहे हैं।
- 'नवोदित हिन्दी कवयित्रियाँ' खण्ड में आपको अपनी कुछ परिचित कवयित्रियों के नाम नहीं दिखाई देंगे, बल्कि कुछ नाम नये हैं, कदाचित् नितान्त नये, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति की क्षमता ऐसी है कि उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। ये बानगी क्या आपको भावी पीढ़ी के प्रति आश्वस्त नहीं करतीं ?

x x x x

वस्तुतः अंक की परिकल्पना में हमारा मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि हम हिन्दी की लेखिकाओं को पहली बार एक ऐसा मंच दें, जिसे वे अपना समझें, और जिस पर आसीन होकर वे अपनी लेखन, प्रकाशन और परिवेश सम्बन्धी समस्याओं पर बातचीत कर सकें, —कुछ इस तरह कि उसके आलोक में भावी पीढ़ी की लेखिकाएँ भी अपनी मंज़िल का अनुमान और वहाँ तक पहुँचने के मार्ग का दिशा-संकेत पा सकें। अपने इस उद्देश्य में हम कहाँ तक सफल हुए हैं, यह तो हमें आप ही बताएँगे।

ज्ञानोदय-परिवार की ओर से होली की शुभ-कामनाओं सहित—

विनम्र,
सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

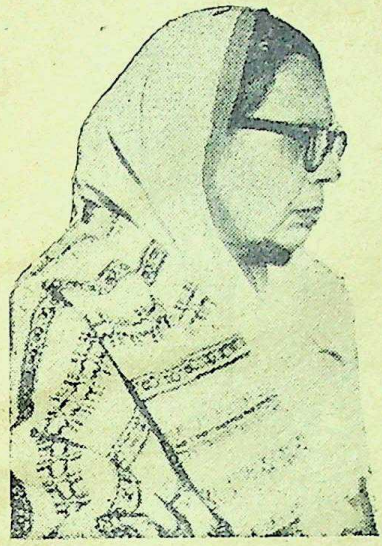

गंगाप्रसाद पाण्डेय

हिन्दी की शीर्षस्थ सम्मानित लेखिका महीयसी महादेवी वर्मा हिन्दी-पाठकों के लिए परिचय की अपेक्षा नहीं रखतीं। उनका कृतित्व हिन्दी की अनेक लेखिकाओं के लिए पिछली तीन दशाब्दियों से प्रेरणा का अजस्र स्रोत रहा है। यह एक संयोग ही है कि होली पर उनका जन्म-दिन पड़ता है, और होली पर ही हमारा यह 'नवोदित लेखिकाएँ अंक' प्रकाशित हो रहा है। अस्तु, इस विशिष्ट अवसर पर हम उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए, उनके एक निकट बन्धु, प्रशंसक तथा हिन्दी के जाने-माने लेखक गंगाप्रसाद पाण्डेय का एक संस्मरण यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं।

महीयसी महादेवी

होली जिनका जन्म-दिन है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● महादेवी जी के काव्य से मेरा सर्वप्रथम परिचय किशोरावस्था की उस स्थिति में हुआ, जब काव्य के अर्थ-भाव तथा सौन्दर्य से अधिक महत्त्व उसके सफल पाठ का होता है। पुरस्कार में प्राप्त 'नीहार' को मैंने तोते की तरह रट डाला, पर समझा कुछ नहीं, यह सत्य है।

शिक्षा-क्रम के साथ संस्कार और रुचि के अनुकूल काव्यात्मक भाव-विस्तार भी होता रहा और धीरे-धीरे उन कविताओं की पकड़ के साथ स्वयं कुछ लिखने की प्रेरणा भी जगी, तो यह स्वाभाविक ही था। क्रिश्चियन कालेज, प्रयाग में पहुँच कर पाठ्य-क्रम, साहित्यिक-गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों के सम्मिलित प्रभाव से छायावादी कवियों के काव्य का व्यवस्थित परिचय मिला। निराला, पंत के दर्शन भी हुए, पर महादेवी जी कहीं नहीं दिखीं। उनके दर्शनों की अभिलाषा तीव्र से तीव्रतर होती रही। कविवर बच्चन और समालोचक शान्तिप्रिय के निकट आने का सौभाग्य मिला और यदा-कदा उनसे मिलना-जुलना भी होता रहा। इसी बीच 'भारत' 'देशदूत' और 'सरस्वती' में मेरी कुछ तुकबन्दियों को स्थान भी मिल गया।

'चाँद' में, जिसका सम्पादन उन दिनों महादेवी जी कर रही थीं, एक कविता भेजी और वह सम्पादकीय सुधार से सँभल कर ऐसे सुन्दर रूप में प्रकाशित हुई कि हृदय गद्‌गद् हो उठा। इस स्वार्थ-सिद्धि से उनके प्रति आदर और श्रद्धा का भाव और अधिक बढ़ गया, तो आश्चर्य नहीं। उनके काव्य के अध्ययन और उनके दर्शन की आकांक्षा के आधार पर उनके विषय में सोचते-सुनते

यह शरमीली अंग्रेज़ लेखिका

घर के एक कोने में छोटी-सी मेज़ के निकट बैठी, वह दुबली-पतली चुस्त लड़की, घर के काम-काज से फ़ुर्सत मिलने पर, न जाने क्या-क्या लिखती-पढ़ती रहती। यदि कोई अतिथि आ जाता तो झट से किसी कढ़ाई-सिलाई के कपड़े द्वारा अपने कागज छुपा देती। यह थी जेन आस्टिन, अंग्रेजी साहित्य की उपन्यास-लेखिका, किशोरावस्था में।

जेन आस्टिन का जन्म सन् १७७५ ई. में बेसिन्गस्टोक के निकट एक गाँव में हुआ था। इनके पिता पादरी थे। आठ भाई बहनों में इनका स्थान सातवाँ था।

सिलाई-कढ़ाई के फ्रेम, धागे व कपड़ों में अपनी रचनाएँ छिपाए, बिना किसी का ध्यान आकर्षित किए जेन आस्टिन लिखती रहीं। १७९२ और १७९८ के बीच इनकी मेज़ पर चार उपन्यासों के पूर्ण हस्तलेख तैयार थे। कहाँ, कैसे व कब ये उपन्यास लिखे गए कोई नहीं जानता। कहा जाता है कि घर के शोरोगुल, अतिथियों की रेलपेल व पारिवारिक धन्धों के बीच में ही शायद, अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना की रंगीन, किन्तु अनगढ़ रेखाओं से मानस-पट में उनका एक चित्र अनायास ही बन गया, जो कुछ इस प्रकार का था---

हिम-सा स्वच्छ उज्ज्वल दुकूल, जिसमें शृंगारिकता तो नहीं, पर सुरुचि की सम्पन्नता अनिवार्य है। कुछ खोजती-सी अन्तर्हित सौन्दर्य का पथ देखती आकुल सजल आँखें, जो अपनी जिज्ञासा में निर्निमेष होकर भी दृष्टि से दिव्य उन्मेष का संचार करने में समर्थ हैं। अधरों में अरुणोदय की स्फूर्ति का उपमान मंद हास, जो अपने और दर्शक के बीच का अन्तर अपनी निर्मल स्निग्धता से भर कर सबको आत्मीयता की निकट स्थिति देने में सहज ही सफल है। व्यक्तिगत सीमित ऐश्वर्य-राग को छोड़ कर असीमित महानता से आवेष्ठित उद्दीप्त प्रसन्न मुखमंडल, जिसमें प्राणीमात्र के प्रति महामैत्री तथा महाकरुणा के आलोक की फुहारें छूटती रहती हैं। सब मिला कर एक ऐसा व्यक्तित्व जो प्रात की तरह मधुर, रात की तरह करुण, और बरसात की तरह सजल है। एक ऐसा चित्र, जिसे देख कर अपरिचित भी कह उठे, 'लगता है इसे पहले कभी और भी देखा है।'

बड़ी व्याकुल प्रतीक्षा के उपरान्त वह शुभ दिन भी आया जब मैंने देवी-जी के प्रत्यक्ष प्रथम दर्शन किए। अपने

मेज़ पर बैठी ये उपन्यास लिखती रही थीं।

जेन ने अपना पहला उपन्यास 'प्राईड एण्ड प्रिज्यूडिस' १७९७ में लिखा, पर प्रकाशकों द्वारा वापसी डाक से लौटा दिया गया। दूसरे उपन्यास 'नारथेन्जर ऐबे' का हस्तलेख इनको बहुत कम क़ीमत पर एक प्रकाशक को बेच देना पड़ा। परन्तु उपन्यास नहीं छपा और पन्द्रह वर्ष बाद जेन आस्टिन ने ही अपना उपन्यास वापिस खरीद लिया।

निराश हो, कुछ वर्षों के लिए जेन आस्टिन ने लिखना छोड़ दिया, परन्तु इनका आन्तरिक कलाकार हतोत्साह नहीं हुआ। इन्होंने अपने उपन्यासों का दोबारा निरीक्षण किया। १८११ में इनका उपन्यास 'सेन्स एण्ड सेन्सिबिलिटी' छपा जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। इसके बाद 'प्राईड एण्ड प्रिज्यूडिस,' 'मैन्सफील्ड पार्क' और 'ऐमा' छपे। 'परसूएशन' व 'नारथेन्जर ऐबे' इनकी मृत्यु के बाद ही छप सके। इनके किसी भी उपन्यास पर इनका नाम नहीं छपा था, क्योंकि उन दिनों इंगलैंड में, लड़कियाँ बहुत ही कम साहित्य क्षेत्र में उतरती थीं। इनके परिवार से परे बहुत कम लोग जानते थे कि यह लम्बी, पतली, शर्बती आँखों व सजीले नयन-नक्श वाली लड़की ही इन उपन्यासों की लेखिका है।

जेन आस्टिन ने जीवन भर ब्याह नहीं किया। वे बहुत ही कम अपने घर से बाहर निकलतीं। घर के काम-काज में इनकी बहुत रुचि थी। पत्र लिखना, सिलाई-कढ़ाई व घर को सजाना इनके प्रिय काम थे।

जेन आस्टिन को अपने जीवन काल में वह ख्याति प्राप्त नहीं हुई, जो इनका अधिकार थी, परन्तु इनकी अकाल मृत्यु के पश्चात इनके उपन्यासों की कीमत पहचानी गई व आज इनका नाम अंग्रेजी साहित्य के प्रमुख उपन्यासकारों में गिना जाता है।

---मोहिनी विरदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाए चित्र से उनका निकटतम साम-ञ्जस्य पाकर जिस आश्चर्य और पुलक का स्फुरण हुआ, वह केवल अनुभव-गम्य है। हलके गुलाबी जाड़े की वह सन्ध्या, आज भी उतनी ही जीवन्त और प्रेरणाप्रद बनी हुई है। एक एलगिन रोड, प्रयाग के स्वच्छ टीनी विशाल फाटक को पार कर बगीचे के लता-कुंज-कुसुमों के बीच से अपेक्षाकृत छोटी बँगलिया के द्वार पर पहुँचते ही ऐसा लगा, हम किसी मंदिर के द्वार पर खड़े हैं। धूपबत्ती की मंद-मंद सुगंध, दिव्य वातावरण, द्वार के ठीक सामने कक्ष में प्रतिष्ठित मुरलीधर की मनोरम मूर्ति। प्रवेश कर देखा कि सारा कक्ष सरस्वती, बुद्ध, ईसा और महात्मा गाँधी की कलात्मक मूर्तियों से महिमान्वित हैं। पूर्व दिशा की दीवाल बुद्ध के महाप्रयाण वाले दृश्य से चित्रित है। बीच कक्ष में एक शीशा जड़ित चौखुटी संगमरमर की चौकी पर रंगीन सुन्दर पुष्पदान फूलों से सुसज्जित रखा था। चारों कोनों में तिपाईनुमा ऊँचे-छोटे मेजों पर काठ, रबर और मिट्टी के तरह-तरह के, खिलौने सजाए गए थे, जिनमें हाथी, घोड़े ऊँटों, मछलियों, चिड़ियों, तथा छोटे-छोटे शंख-घोंघों के साथ खिलौने के रूप के हार-मोनियम, तबला और सितार भी थे, पर बेलन-चकला, और कड़ाही की शोभा तो अद्भुत थी! फर्श काली-सफेद टाइलों से जड़ी थी। ऊपर की सफेद दुधिया छत के बीच हलकी नीलाभ रोशनी देने वाला बल्ब लटक रहा था। उस प्रसाधन के उपयुक्त दो कुर्सियाँ और एक सोफा। सर्वांशतः मनोज्ञ रमणीयता का पावन प्रतीक!

बैठते ही एक बैरगिया रंग के बालों की चादर ओढ़े एक बिल्ली आकर म्याऊँ-म्याऊँ करने लगी, जैसे हमारा स्वागत कर रही हो। 'मुनू-मुनू' सुनते ही निर्भीकता पूर्वक पास आकर पैरों से सट गई और मैं उस पर हाथ फेरने लगा। कुछ देर बाद सफेद बड़े-बड़े बालों वाला एक कुत्ता भी आता दिखा। दोनों के जन्मजात विरोध-भाव की आशंका से मैं सटपटाया कि बिल्ली झपट कर उसे काटने लगी। चकित होकर मैं प्राचीन ऋषि-आश्रमों का स्मरण करने लगा और वे दोनों अत्यंत स्नेह-भाव से खेलते-कूदते रहे।

इतने में एक परमशिष्ट वृद्धा ने आकर अभिवादन किया और अबोला लौट गई। कुछ ही क्षणों बाद शुभ्रवसना, प्रसन्नवदना देवी जी पधारीं। 'कहुँ निषंग कहुँ धनुतीरा' की स्थिति में हम दोनों उठे और चरणस्पर्श किया। 'कहिए, कहिए' के साथ वे एक कुर्सी में समासीन हो गईं। साथी शान्ति-प्रिय जी ने मेरा परिचय देते हुए कहा--'ये 'चाँद' के लेखक भी तो हैं, आपको नाम स्मरण होगा?' उत्तर में देवी जी ने हँसना शुरू किया तो बड़ी देर तक हँसती ही रहीं, जैसे हँसी का अबाध निर्झर फूट पड़ा हो। मैं हँसी का कारण खोजने में व्यस्त, स्वभावतः कुछ हतप्रभ और साथी एकदम मौन। हँसी रुकी तो लगा मानो एक संगीत-लहरी सहसा थम गई। सम्भवतः मेरी असमंजस की रेखाओं से अवगत होकर ही वे आश्वासन के स्वरों में बोलीं--'चाँद में न जाने कितने लेखक हैं, सब के नाम कहाँ तक स्मरण रहें' और फिर वही हँसी, हँसी, बस हँसी। फिर कहा--'नाम स्मरण न होने पर भी बेचारा अपरि-

(शेषांश पृष्ठ २५७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषा प्रियम्वदा

आत्म-परिचय

• प्रयाग विश्वविद्यालय, अंग्रेज़ी विभाग में प्राध्यापिका। आजकल इण्डियाना यूनिवर्सिटी, यू० एस० ए० में आधुनिक अमेरिकी साहित्य पर शोध-कार्य।

प्रकाशन :

• ज़िन्दगी और गुलाब के फूल (कहानी-संग्रह)

• पचपन खम्भे : लाल दीवारें (उपन्यास)

केवल इतवार को नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिम और जूडी की उस पार्टी में लोरा अकेले ही आई थी। उसके साथ फ़िल को न देख सभी को आश्चर्य हुआ, पर उससे सीधा प्रश्न करने का साहस किसी को न हुआ। लोरा गहरे नारंगी रंग की स्कर्ट पहने थी, और उसके कन्ट्रास्ट में काला स्वेटर। उसके कानों में लम्बे बुन्दे थे जो कि उसके सिर के हर झटके पर थरथराने लगते थे।

मुझे पार्टी में पहुँचने में कुछ देर हो गयी थी। मेरे साथ राज और उसकी अमरीकन गर्ल फ्रेन्ड बार्बी भी थी। उस रात मैं एक वियेनीज़ छात्र के साथ ओपेरा गयी थी, और ओपेरा के बाद विलफ्रिद को सहसा टिम और जूडी की पार्टी याद आ गयी। रास्ते में रुक कर राज और विलफ्रिद ने बीयर खरीदी।

पिछले दो दिन से लगातार वर्षा हो रही थी और बूंदें गिरते ही जम जाती थीं। कैम्पस के काले, नग्न वृक्ष अब श्वेत बर्फ़ से ढके हुए थे और मकानों की छतों से कभी-कभी बर्फ़ फिसल कर सड़क पर आ गिरती थी। सड़क पर कीचड़ थी और कार से उतर कर टिम के अपार्टमेन्ट तक पहुँचने में ही मेरी साड़ी छींटों से भर गयी। टिम के लिविंग रूम में काफ़ी लोग थे, उसकी पार्टियाँ सदा ही विदेशी छात्रों का विचित्र-सी सम्मिश्रण होती थीं। उस समय रेकार्ड प्लेयर पर 'नेवर ऑन सन्डे' का ग्रीक गीत बज रहा था, और फ्रान्स्वा और सेब्रा उस पर नाच रहे थे। टिम ने मेरा और बार्बी का कोट ले लिया और जूडी मुस्कराती हुई मुझ से हाल-चाल पूछने लगी। कमरे पर दोबारा दृष्टि डालने पर व्यक्तियों के समूह में कुछ परिचित चेहरे दिखायी दिये। गिलिस और उसकी आर्टिस्ट मित्र मेरिलिन, आधी चाइनीज़ और आधी अमेरिकन युवती मेलिंग अपने स्वीडिश मित्र के साथ जमाल से वार्तालाप में उलझी हुई थी। लोरा ने अपने सिर को एक झटका दिया और उच्च स्वर में कहा: 'देवयानी, हनी, तुम इतने दिनों से कहाँ छिपी हुई थी?"

मैं जाकर लोरा की कुर्सी की बाँह पर बैठ गयी।

"आजकल युजीन ओनील पढ़ने में व्यस्त हूँ लोरा, तुम कैसी हो?"

लोरा हँसी, "जस्ट फ़ाइन!"

एक पत्र-व्यवहार

उन्नीसवीं शताब्दी की सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ कवियित्री एलिजाबेथ बैरेट ब्राउनिङ्ग को पत्र लिखने का बड़ा चाव था। कभी-कभी तो वे एक-एक दिन में सोलह-सोलह पत्र लिखा करती थीं, और अपने पत्रों में अपने हृदय के रहस्य उद्घाटित करती थीं। उस समय अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ उनका पत्र-व्यवहार होता था। सच तो यह है कि कवि रॉबर्ट ब्राउनिंग के साथ परिचय, प्रेम और परिणय का प्रारम्भ पत्रों से ही हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह बुन्दे..." मैंने बुन्दों की लड़ियाँ छूते हुए कहा।

"ईजिप्ट के हैं। हबीब की ओर से क्रिसमस् उपहार।" लोरा ने कहा।

"और फ़िलिप का क्या हाल है? उसका लेखन-कार्य कैसा चल रहा है?" मैंने हल्के से पूछा।

लोरा ने सिर को एक झटका दिया और कहा, "पिछले माह फ़िल ने सात 'रिजेक्शन स्लिप्स' इकट्ठी कीं। उसकी सारी कहानियाँ वापस लौट आईं।"

"सम डे..." मैंने बात आधी छोड़ दी।

"सम डे!" लोरा की हँसी में विद्रूप था। टिम ने आकर मुझे आरेन्ज जूस का ग्लास दिया और कहा, "देवयानी, यह बड़ा अन्याय है, जैसे-जैसे रात बीतेगी हम लोगों का नशा बढ़ेगा और तुम 'सोबर' रहोगी।"

"क्या मालूम टिम, शायद तुमलोगों को देख कर ही मुझे नशा आ जाये," मैंने कहा। फ्रान्स्वा और सेब्रा के अतिरिक्त कई और जोड़े नाचने लगे थे। राज कमरे के एक कोने में बार्बी से सटा हुआ बैठा था और विलफ्रिद, जमाल और मेलिंग के वार्तालाप में सम्मिलित हो गया था।

कमरे में शोर बढ़ता जा रहा था। लोरा ग्रेप फ्रूट जूस में रम मिला कर पी रही थी। सड़क के किनारे वृक्षों पर रोशनी चमक रही थी। बाहर एक ठंडा सफ़ेद अयथार्थ-सा संसार बिखरा हुआ था और शनिवार की रात की एक बोहीमियन पार्टी अन्दर चल रही थी।

गिलिस ने आकर लोरा से नाचने को कहा, और मैं कुछ क्षण अकेली रह गयी। मेरी दाहिनी ओर तीन युवक राजनीति पर उच्च स्वर में बहस कर रहे थे। जमाल ने अपनी बात आधी छोड़ कर, फ्रेंच छात्र से पूछा: "और अल्जीरिया?"

"अल्जीरिया की बात दूसरी है," जमाल ने पूरी बात सुनने से पहले ही उसकी ओर पीठ कर ली और मेलिंग की बाँह छूने लगा।

"मेरा नाम डेविड है।" मेरे पास एक अपरिचित आकर बैठ गया था।

"क्या आप चार पंक्तियों में अपना परिचय दे सकेंगी?" मैं कुछ कह सकूँ इससे पहले ही डेविड ने अपनी बात जारी रक्खी, "मुझे हिन्दू धर्म में एक बात समझ में नहीं आती। शिवा, जो कि 'गौड औफ़ डेस्ट्रक्शन' है,

१० जनवरी १९४५ को रॉबर्ट ब्राउनिंग का एक पत्र एलिजाबेथ को मिला:

"मैं आपकी कविताओं को अपने सम्पूर्ण हृदय से चाहता हूँ, प्रिय मिस बैरेट, मैं इन पुस्तकों को अपने सम्पूर्ण हृदय से प्रेम करता हूँ—और मैं आप से भी प्रेम करता हूँ।"

एकान्त-प्रिय, संकोचशीला कवियित्री ने उत्तर दिया: "सहानुभूति मुझे प्यारी है—बहुत प्यारी, फिर एक कवि की सहानुभूति और एक ऐसे कवि की सहानुभूति तो मेरे लिए सहानुभूति का सार-तत्व ही है।"

और तभी से दोनों में अन्तरंगता का आरम्भ हो गया जिसका शुभ परिणाम परिणय में हुआ।

—शुभा वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी पूजा क्यों की जाती है ?"

मेरी आँखों के आगे सहसा ही तितलियाँ उड़ने लगीं।

"टिम ?" मैंने डूबती-सी आवाज़ में कहा, "तुमने इस आरेन्ज जूस में क्या मिला दिया है ?"

"थोड़ी-सी वोदका", टिम ने उत्तर दिया।

मैं डेविड से क्षमा माँग कर किचेन में चली गयी। खाने की मेज़ पर तरह-तरह की बोतलें, बियर कैन्स, चीज़ के टुकड़े, आलू के चिप्स रखे हुए थे, और मेज़ के एक कोने पर उदास-सा एक युवक बैठा था।

"आई वान्ट टु किक दिस डैम म्यूज़िक," उसने अपनी साथिन से कहा।

"ओ नो, आइ लव इट," उसकी साथिन कमर हिला कर गीत के साथ गाने लगी

"फ़ौर यू कैन किस मी औन अ मन्डे,
औन मन्डे, औन मन्डे, एण्ड इट इज़ वेरी गुड"

"डिस्गस्टिंग !" युवक ने कहा, "इस ग्रीक लोक-गीत को जिस तरह पापुलराइज़ किया गया है, उससे मुझे नफ़रत होती है। तुम्हें म्यूज़िक से प्रेम है तो चाइकोव्स्की की सिक्स्थ सिम्फ़नी को सुनो—द पैथेटिक। तुम सोमवार की शाम को क्यों नहीं आती ? हमारा आर्केस्ट्रा इसे प्रेज़ेन्ट कर रहा है।"

"एन्ड यू कैन किस मी औन अ वेन्सडे
एन्ड थर्सडे, फ्राइड एन्ड सैटरडे इज़ बेस्ट
बट नेवर, नेवर औन ए सन्डे,
फ़ौर दैट इज़ माई डे औफ़ रेस्ट"

युवती ने आगे गाया। युवक के चेहरे पर झुँझलाहट थी, पर तभी टिम ने आकर रिकार्ड बदल दिया और सहसा ही 'मून खिर' का संगीत कमरे में तैर गया।

जार्ज इलियट

जो पुरुष-नाम से लिखती थीं !

जार्ज इलियट का नाम मेरी एन इवान्स था ? उनका बाल्यकाल अत्यन्त कष्टपूर्ण रहा।

नारी की वर्गीय असमानता से पैदा होने वाली छोटी-बड़ी कठिनाइयों को इलियट ने शैशव में ही, मन-

नाचते हुए जोड़े थम गये। और मेज़ पर बैठे युवक ने अपनी साथिन के गले में बाँहें डाल दीं। लोरा किचेन में आयी, वह भी अभी-अभी रोके गये गीत को गुनगुना रही थी :

"कम एनी डे, एन्ड यू बि माइ गेस्ट,
एनी डे यू से, बट माई डे औफ़ रेस्ट..."

"हनी," उसने मुझसे कहा, "तुमने आरेन्ज जूस क्यों फेंक दिया ?"

"टिम ने उसमें वोदका मिला दी थी," मैंने कहा। टिम अपने लिये बीयर की कैन खोल रहा था। "देवयानी, तुम ज़िन्दगी में कुछ नहीं कर सकती। छुईमुई बनी रहोगी। जियो, जब तक जी सको।"

"कार की पिछली सीट पर... हा, हा," गिलिस हँसा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपी डायरी में सहेज लिया था। बढ़ती आयु के साथ-साथ, उनकी मन-रूपी डायरी में इस प्रकार के विवरणों की संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ती गई। फिर, यहां-वहां डायरी के लिखित स्थल, दुर्भाग्य-दुर्योग की अगणित चोटों से परिपूरित होने लगे।

जीवन के ऐसे ऊबड़-खाबड़ ने आखिर उन्हें चालीस वर्ष की आयु में एक सफल लेखिका बना दिया। पर मेरी एन ईवान्स के नाम से रचना प्रकाशित करने का उनका उत्साह, तब, समाप्त हो चुका था। अन्ततः उनकी पहली रचना "आदम बेद" १८५९ में छपी, और उसके बाद वे जार्ज इलियट के नाम से प्रसिद्धि पा गईं।

—अनीता

"आह, ज़िन्दगी!" लोरा ने एक लम्बी आह भरी, पर दूसरे ही क्षण उसने मुस्करा कर कहा, "गिलिस, हनी, फ़िक्स मी अ ड्रिंक।"

"बरबन?" गिलिस ने पूछा।

"न, ना, रम और फ्रूट जूस।"

"तुम्हें, देवयानी?" गिलिस ने पूछा।

"सिर्फ़ फ्रूट जूस!" मैंने कहा। गिलिस की आर्टिस्ट फ्रेण्ड मेरिलिन भी किचेन में आ गयी। गिलिस ने झुक कर उसके कान की लबों को चूम लिया। "मैं तुम्हारे लिये मौडेल ढूंढ़ रहा हूँ, मेरिलिन!"

"हाँ लोरा, तुम हमलोगों के लिए पोज़ क्यों नहीं देतीं? तुम बहुत अच्छी मौडेल बनोगी, इन द न्यूड!" मेरिलिन ने कहा।

"सम डे!" लोरा ने कहा।

मेरिलिन हम लोगों को एक पेण्टर के बारे में बताने लगी, जो कि अपनी न्यूड मोडेल पर आयल कलर्स से पेन्ट करता था। कुछ लोग हँसे, कुछ मुस्कराये, और किचेन में एक क्षण को सन्नाटा छा गया। लिविंग रूम से आता संगीत, वार्तालाप और हँसी...लोरा की आँखों में बेहद उदासी घिर आयी। टिम बीयर लेकर चला गया और गिलिस और मेरिलिन किचेन में थोड़ी-सी जगह में ही नाचने लगे। विलफ्रिड ने आकर लोरा से नाचने को कहा, और उनके साथ में भी लिविंग रूम में आ गयी। कोने में तीनों छात्र अभी भी खड़े हुए बहस कर रहे थे, और उनकी आड़ में बैठे हुए राज ने बार्बी के कन्धे पर अपना सिर टिका दिया था। वह उससे पंजाबी में कुछ कहने की चेष्टा कर रहा था, और बार्बी मुस्कराती हुई उसके बालों को सहला रही थी। चीन के दो छात्र सोफ़े पर चुपचाप बैठे थे, उनके बीच में आलू के चिप्स से भरा हुआ पात्र रखा था और वे दोनों दीवार को ताकते हुए चिप्स खा रहे थे। मैं भी उनके पास जाकर बैठ गयी, उन्होंने चिप्स मेरी ओर सरका दिए और मैं एक टुकड़ा हाथ में लेकर कुतरने लगी।

नाचते हुए जोड़े धीरे-धीरे कम हो गए, और अब केवल लोरा और फ्रान्स्वा ही नाच रहे थे—अमरीकन टीन एजर्स का नया क्रेज़, ट्विस्ट। लोरा का शरीर अत्यन्त लचकदार था और उसके बुन्दे रह-रह कर झिलमिला रहे थे।

चैन चैन पो ने अपने साथी से पूछा, "क्या इस नाच को 'चा-चा-चा' कहते हैं?"

"नहीं, ग़ौर से देखो, दाहिने पैर का मूवमेण्ट है जैसे सिगरेट बुझाया जा रहा है, और दोनों हाथ, जैसे तौलिये से पीठ पोंछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हों।"

"यह लड़की कौन है ?"

"लोरा ! म्यूज़िक की छात्रा, बड़ी ब्रिलियेण्ट। जमाइकैन नीग्रेस। साल भर से एक अमेरिकन के साथ रह रही है। ही ट्राइज़ टु राइट।"

चैन चैन पो मुझे देख कर मुस्कराया। नाच समाप्त हो गया। दो-तीन व्यक्तियों ने तालियाँ बजायीं।

लोरा आकर मेरे पास खड़ी हो गयी। उसने हाथ बढ़ा कर कहा, "देवयानी, ज़रा बाहर चलोगी ? बन्द कमरे में मेरा दम घुट रहा है।"

मैं उसके साथ बाहर पोर्च में आ गयी।

"सब कुछ कितना सुन्दर है !" मैंने कहा। सितम्बर में जब मैं अमेरिका आयी थी, तब यह सारे मेपल के वृक्ष नारंगी, पीली पत्तियों से ढके हुए थे। वह दिन अब कितना दूर लगता है। इस समय सारा संसार काँच का-सा, एक झटके से टूट कर बिखर जाने वाला-सा प्रतीत हो रहा था। मैंने यही लोरा से कहा।

"देवी, मैं बहुत दुखी हूँ। फ़िल का अजीब हाल है। मुझे सन्देह है कि वह आजकल किसी और लड़की से प्रेम करने लगा है।"

"लोरा, फ़िल को तुमसे प्रेम है ?" मैंने कहा।

"मैं इस संसार से नफ़रत करती हूँ, नफ़रत करती हूँ इस श्वेतवर्ण वाली सारी सभ्यता से। मैं फ़िल से भी नफ़रत करती हूँ ; वह इतना कमज़ोर क्यों है ? यदि वह मुझसे प्रेम करता है तो फिर मुझसे विवाह क्यों नहीं कर लेता ?" लोरा ने मुट्ठियाँ कस कर भींच लीं।

"लोरा !"

"मुझे कोई नहीं समझता। सिर्फ़ तुम समझती हो देवयानी, क्योंकि तुम इस श्वेतवर्ण वाली सभ्यता का अंग नहीं हो। क्या हैं यह लोग ? खोखले, ऊपरी, सतही... प्यार, प्यार, प्यार... मैं थक गई हूँ सुनते-सुनते, और क्या है इनका प्यार--" लोरा चुप हो गयी। पार्टी में आये अतिथियों की कारों पर बर्फ़ की परतें जमती जा रही थीं। मेरी हथेलियाँ ठंडी होने लगीं। काँच के बन्द दरवाज़े से अन्दर का थोड़ा-सा टुकड़ा दिखाई दे रहा था। अमरीकन पिता और चाइनीज़ माता की पुत्री मेलिंग-- जमाल ने उसकी कमर में बाँह डाल दी थी, और मेलिंग का स्वीडिश मित्र पियानो के सहारे खड़ा हुआ बीयर पी रहा था। दरवाज़ा खोल कर डेविड बाहर आ गया।

"हलो, ब्यूटिफ़ुल !" उसने पास आते हुए कहा, "क्या आपने 'लॉ डोल्या विटा' नाम की फ़िल्म देखी ? आपकी जैलीफ़िश और मौन्स्टर के प्रतीक पर क्या राय है ?"

लोरा ने धीरे से आँखें पोंछ लीं। अन्दर फिर 'नेवर आन सन्डे' का संगीत बजने लगा।

'यू कैन किस मी औन अ मन्डे, औन मन्डे, औन मन्डे...'

लोरा मुस्करायी और हम कमरे में जाने के लिए वापस मुड़ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजनी पनिकर

आत्म-परिचय

नाम : रजनी पनिकर ; जन्म-स्थान : लाहौर (पाकिस्तान) ; शिक्षा : हिन्दी एम्० ए० ; जन्म-तिथि : ११ सितम्बर १९२४।

रचनाएँ :—

१. पानी की दीवार	(१९५४)	उपन्यास
२. मोम के मोती	(१९५५)	,,
३. प्यासे बादल	(१९५६)	,,
४. काली लड़की	(१९५७)	,,
५. जाड़े की धूप	(१९५८)	,,
६. एक लड़की, दो रूप	(१९६०)	,,
७. सिगरेट के टुकड़े	(१९५६)	कहानी-संग्रह

इनमें से तीन उपन्यासों पर उत्तर प्रदेश-सरकार से पुरस्कार मिल चुका है, जिनके नाम हैं :—प्यासे बादल, काली लड़की, और जाड़े की धूप।

कहानी और उपन्यास पढ़ने में बहुत रुचि है। पहाड़ों पर यात्रा पसन्द है। विदेशी-साहित्य में, कविता में, बड़ी दिलचस्पी है। इस समय आकाशवाणी, दिल्ली-केन्द्र में कार्य करती हूँ। डायरी लिखने का भी बड़ा शौक़ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●●इतवार की सुबह। ज़िन्दगी के टाइम-टेबुल का एक खाली पीरियड, जिसमें चाहे तो अपनी भूलों पर लाल-निशान लगा कर उनका विश्लेषण कर लीजिए, नहीं तो गुदगुदाने वाले क्षणों को एक बार दोहरा लीजिए। इस वक़्त समय के सदुपयोग के सभी नुस्खे बेकार-से लगते हैं। इच्छा तो होती है, इन क्षणों में ज़िन्दगी फैल जाए...खूब फैल जाए। वह मेरी तरह सिमट कर रजाई में दुबकी बैठी न रह जाए। मैं कुछ इसी तरह दुबकी बैठी रही हूँ कि जिस तरह आँख-मिचौनी के खेल में बच्चे मुख छिपा कर घर के किसी कोने में दुबके रहते हैं।

आठ बजते-बजते सूर्य की किरणों ने कमरे में घुसने का एक निष्फल-सा प्रयास किया। शीशों से टकरा कर किरणें बाल्कनी में मेरे सपनों की तरह बिखर गयीं। मैंने उसी तरह आँखें मूँद लीं जिस तरह प्रायः वास्तविकता को देख कर मूँद लिया करती हूँ। वास्तविकता और सपनों में कितना द्वेष है! शायद हमारे समाज के द्वेष से बढ़ कर है, जो वह पढ़ी-लिखी, स्वावलम्बी लड़कियों से करता है। बात आपको बेढंगी लग सकती है, पर सच है। घर में बैठी स्त्रियाँ तो काम करने वाली महिलाओं से द्वेष करें तो उचित है, परन्तु जब पुरुष भी करें तो बड़ा बेतुका-सा लगता है।

पड़ोस के विश्नोई साहब जब मुझे मोटर पर बैठते देखते हैं तो एक कुटिल एवं व्यंग्यात्मक मुस्कान उनके मुख पर खेल जाती है, मानो कह रहे हों--हम सब कुछ समझते हैं, हम सब जानते हैं कि तुम ऑफ़िस नहीं जा रही हो। मोटर है--जहाँ भी इच्छा हो चली जाओ। मानो सुबह-सुबह मेरे प्रेमियों को भी कोई काम नहीं, वह भी केवल इस बात की बाट देखा करते हैं कि जल्द से जल्द उनके पास पहुँचूं। वाह री कल्पना!

यह हाल तो तब है, जब मैं खालिस अपनी मोटर पर चढ़ती हूँ। जब दो-तीन वर्ष पूर्व, मेरे पास मोटर नहीं थी, तो मैं नित्य नयी बात सुनती थी। तब तरह-तरह की बोलियों का शिकार हुआ करती थी। अरे! आजकल तो 'चेवरलेट' छोड़ने आती है। किसी बड़े सेठ को फाँस रक्खा है। भई मोटर में रेडियो भी लगा है। कोई दूसरा साथी बीच में बात काट कर कहता--नहीं रेडियो नहीं 'ट्रांजिस्टर' है भई। अब यह विलायत जाएँगी। आखिर जिनके पास 'ट्रांजिस्टर' है, वह विदेश भी तो जाते होंगे, आदि आदि...।

मैंने इन लोगों की बातों की कभी परवाह नहीं की। इनकी परवाह करूँ तो छुट्टी के दिन बिल्कुल घुट कर मर जाऊँ। इनकी इच्छा तो यही रहती है कि घर की बाल्कनी में खड़ी ही रहा करूँ। ये लोग सुबह अखबार पढ़ते, नाई से हजामत बनवाते, कोई फिल्मी बेसुरा गीत अलापते मुझे निहार लिया करें। पत्नियों को जब एक लम्बी "डा-र-लिं-ग" का सम्बोधन दिया करें, उस समय भी मैं सामने ही दिख जाया करूँ। इस ताक-झाँक के खेल में मेरी मुस्कराहट उनकी स्फूर्ति बढ़ा दे। छीः क्या ही छोटा तरीक़ा है रोमान्स करने का!

मुझे इनसे शिकायत है, इनको मुझसे लाखों शिकायतें हैं। जैसे मैं अकेली हूँ... इधर-उधर घूम-फिर कर, सिनेमा देख कर, अपना वक्त काटने के बजाय मुझे अच्छी पड़ोसिन होने के नाते इनके बच्चों को पढ़ा देना चाहिये। मेरे पास मोटर है, मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी पत्नियों को कभी-कभी 'शापिंग' करवा देना चाहिये। मेरी रुचि की अक्सर तारीफ़ होती रहती है। क्योंकि जो साड़ी मैं आज पहनती हूँ, कुछ ही दिनों में मुहल्ले की किसी अन्य महिला के शरीर पर शोभा दे रही होती है। जो परदे मैं लगाती हूँ, वही किसी और की खिड़की में भी दिखलाई देने लगते हैं।

हमारा मुहल्ला सरकारी कर्मचारियों के लिए बना है; परन्तु इसकी गन्दगी के हाल कुछ न पूछिये। घरों के दरवाज़े न जाने कैसे पुराने और जीर्ण-शीर्ण होते गए हैं। उन पर जगह-जगह बच्चों ने रंगीन चाक से कुत्ते-बिल्लियों की आकृतियाँ बना दी हैं। कभी-कभी किसी बच्चे का बाप, बिल्ली की आकृति के नीचे मेरा नाम लिख जाता है।

मैं उस घर में जाकर शिकायत नहीं कर पाती। यही नहीं, इस बदतमीजी के लिए भी कुछ नहीं कह पाती हूँ। सब पी जाती हूँ—मान-अपमान, ठीक उसी तरह जैसे क्लोरिन मिला पानी पीती हूँ। यह पानी मैं अपने मिट्टी के मटके से पी लेना अच्छा समझती हूँ, बनिस्बत इसके कि विश्नोई साहब का लड़का तपती दोपहर में आकर कहे—'आंटी, यह दो बोतल पानी फ्रिज में 'स्पेयर' (फालतू) था—पापा ने भिजवाया है।'

जी, आजकल के लड़कों को इससे कुछ सीखना चाहिये। वह जब भी प्रेमिका से मिलने जाते हैं, मित्रों से दस रुपये उधार माँग कर ले जाते हैं। दोनों बैठ कर सिनेमा देखते हैं। कुछ मुलाकातें होटल की कैबिन में होती हैं। प्रेमी साहब कॉफ़ी का आर्डर देकर दिल ही दिल में पैसों का हिसाब करने लगते हैं। अगली मुलाकात सिनेमा हाल के बाक्स में या लोधी गार्डेन्स के किसी झाड़ के नीचे होती है। दोनों एक दूसरे की ओर बढ़ते हैं।

अगली मुलाकात में हिरोइन प्रेमी के सब शिकवे दूर कर देती है और फिर वह किसी खुफ़िया लेडी डाक्टर के अस्पताल के चक्कर लगाते नज़र आते हैं।

मैं तो अपनी बात कर रही थी। पड़ोसिन होने के कर्त्तव्य नहीं निभा पाती तो लोग मुझे आवारा न कहें तो क्या कहें। उन्हें हर क्षण मुझसे ईर्ष्या होती है। मुझे नहीं होती। मुझे उनके बच्चों को देख कर भी ईर्ष्या नहीं होती। उनके भोले मुख देख कर, मेरे मन के कोने में सोयी माँ जाग उठती है। वह आँखों से छलक-छलक पड़ती है। वह बच्चे सीखे-सिखलाए-से कहते हैं—'आंटी, टॉफी। आंटी आइसक्रीम'। मैं 'सब्लाइम' से 'रिडिकुलस' पर आ जाती हूँ। मुझे ख्याल आता है, भैया ने भी तो लिखा है कि विनोद की फ़ीस भेज दिया करूँ। अब मंजु भी कालेज जाने लगी है, उनके लिए सबकी फ़ीस देना कठिन हो जाता है। मैं अकेली हूँ...इतनी सारी तनख्वाह का क्या करती हूँ? अपनी बढ़ती ज़रूरतों में दूसरे का पैसा हमेशा ज्यादा नज़र आता है।

भैया का पत्र भी अप्रयोजन कभी नहीं आता। मुझे माचिस की तीलियाँ अप्रयोजन जला कर देखने में बड़ा आनन्द आता है। मैं जब अपने ही इर्द-गिर्द कई चक्कर काट लेती हूँ, तो थक कर दियासलाई ही जलाने बैठ जाती हूँ। आधी से ज्यादा माचिस फुँक जाती है तो रामकली आकर कहती है, 'बीबी! यह बेकार का नुकसान क्यों कर रही हो, जाओ कहीं घूम-फिर आओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अर्थशास्त्र की पंडिता है, नहीं तो आर्थिक रूप से ऐसा असंतुलित सुझाव कैसे देती। इकन्नी की माचिस फुँकवाना ठीक नहीं समझती, चाहे पेट्रोल कितना भी फुँक जाये।

शायद मेरी उदास, सूनी और वीरान साँझों में सिवाय उसके कोई मेरा साथी नहीं होता। बाहर भटकने के बाद जब मैं घर लौटती हूँ, तो संभव है कहीं उल्लास की दो-चार रेखाएँ मेरे मुख पर आ जाती हों। रामकली बड़ी बातूनी है, वह पड़ोस की सब खबरें मुझे सुनाती रहती है...उसे इस बात की अपेक्षा नहीं कि मैं सुन रही हूँ या नहीं। वह बोलती चली जाती है। इधर की, उधर की। मैं उसकी बुद्धि की दाद देती हूँ कि उसे कैसे पता रहता है कि किस घर में क्या हो रहा है। फिर पता लग भी जाये, तो हमें उसे दोहराना नहीं चाहिये। वह भी शायद यह सब इसलिए करती है कि अकेले में उसका मन ऊब जाता है।

अभी-अभी रामकली चाय दे गयी है। मेरा मन नहीं हो रहा कि उठ कर पीयूँ।

मेरी बाँयी ओर वाली मेज़ पर रक्खे फूलदान के बासी फूलों को रामकली साफ कर रही है। पीली पत्तियाँ चुन-चुन कर बाहर फेंक रही है। क्या जीवन में भी हम इस तरह पीली पत्तियाँ चुन-चुन कर बाहर फेंक सकते हैं? शायद नहीं। जीवन में पीली पत्तियों को मुस्कराहटों के फूलों के नीचे छिपा लेना पड़ता है।

मेरी जरा-सी कमाई भी घर वालों को ढेर-सी लगती है। जब मैं बीमार पड़ती हूँ तो बीमारी जैसी भी हो, वह कभी नहीं पूछते कि मुझे भी रुपये-पैसे की आवश्यकता हो सकती है। वह तो कोरी सहानुभूति से भी मुझे उसी तरह वंचित कर देते हैं, मानो उसमें भी उनका मूल्य लगता हो। जाने दूसरों को लेकर मानव-स्वभाव इतना कृपण क्यों है?

आज इतवार की खुशनुमा सुबह में, मैं मानव-स्वभाव की कमजोरियों की सूची बनाने के बजाय अच्छाइयों के बारे में सोचूँगी।

ऑफ़िस में काम करते मुझे एक अरसा हो गया। मेरे साथी कहते हैं, मेरे व्यक्तित्व पर सुरुचि और सौष्ठव से भरी गंभीरता की एक छाप है।

मानो यह गंभीरता उनकी चुहलबाज़ी करने के अवसर में एक दुर्गम दीवार हो।

> **यदि हम इस संसार को एक दूसरे के लिए कम कठिन करने का प्रयास न कर सकें तो फिर हम किसलिये जियें? यदि अपने को विश्वास का पात्र बना सकने में**

उनकी कामना-भरी आँखें बार-बार मुझे फाइल देखते, चिट्ठियाँ डिक्टेट करवाते, मेरा पीछा करती रहती हैं। वह जब कोई कहकहा ऊँचे स्वर में लगाते हैं, तो भी मेरी ओर देख लेते हैं, मानो वह कहकहा स्वभावतया ही न लगाया गया हो, केवल मुझे अपनी उपस्थिति का आभास देने के लिए ही लगाया गया हो।

ऑफ़िस के इन साथियों की निगाहों की मैं परवाह नहीं करती। सच कहूँ, तो मुझे उससे हल्का-सा सकून मिलता है कि वह मेरे, यानी शोभा के व्यक्तित्व के प्रति उदासीन नहीं हैं।

अरे! व्यक्तित्व के प्रति सजगता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे शानो का ख़्याल आया। लड़के जैसे सड़क पर लड़कियाँ घूरने जाते हैं, उसी तरह वह लड़के घूरने जाया करती है। कोई खूबसूरत लड़का सड़क पर देख कर वह ऊँचे स्वर से अपनी साथिन को कह देती है—'अरे देखा! यह लड़का कित्ता खूबसूरत है!' शानो की निगाह खूबसूरत लड़कों पर कुछ इस तरह टिक जाती है, जिस तरह, मेरी निगाह गुलाब के खूबसूरत फूलों को जहाँ-तहाँ देख कर टिक जाती है। मैं तरह-तरह के गुलाब के फूलों के गमले घर में रखती हूँ। 'हार्टी-कल्चर' के एक विशेषज्ञ हैं श्री आप्टे। उन्हें कभी-कभी फ़ोन करके मैं गुलाबों के

> असफल रहें तो फिर अन्य किस सफलता के हेतु हम यह अनमोल जीवन व्यर्थ कर डालें?
>
> —जार्ज इलियट
> (संकलन : अर्चिता)

बारे में बातचीत कर लेती हूँ। वह बड़े उत्साहपूर्ण स्वर में, मुझे किसी नयी गुलाब की कली का विस्तार पूर्ण हाल बतला देते हैं। बात कुछ इस लहज़े में करते हैं, मानो गुलाब की कली की नहीं, किसी लड़की की बात कर रहे हों। दूसरे दिन वह पीले या सफ़ेद गुलाब का गमला मोटर में रखवा कर मेरे लिए ले आते हैं। सबेरे आठ बजे ही जब घण्टी बजती है तो मैं समझ जाती हूँ कि आप्टे साहब आ गये हैं।

मैं भी फूलों-सी खूबसूरत मुस्कान से उनका स्वागत करती हूँ। फिर वह पौध विशेष की वंशावली बयान करने लगते हैं, तो मैं केवल उनके मुख पर स्वामिभक्ति की रेखायें देखती रहती हूँ। उनकी आँखों में उस समय वही भाव होता है जो मेरे भूरे रंग के 'स्पैनियल' की आँखों में होता है, जब वह मेरी ओर देखता रहता है। आप्टे साहब की वह भक्ति-भावना मेरे लिये होती है या उस गुलाब के पौधे के लिए, मैं नहीं जानती।

एक और महोदय मेरी खुशामद में लगे रहते हैं।..सभ्य शब्दों में कहूँ तो वह मेरे मित्र हैं...मेजर सोनवलकर। उन्होंने अभी तक विवाह नहीं किया। वह जब तब फ़ोन करके कहते रहते हैं...'मिसेज पुरी...आप वायलिन कब सुन रही हैं?'

077989

मैं वायलिन की बात भूल कर अपना श्रीमती होना याद करने लगती हूँ। जी हाँ...मैं मिसेज पुरी हूँ। फिर भी एकाकी हूँ। मैं इकाई नहीं एक संस्था हूँ, जिसे कार्यशील-महिला का नाम दिया गया है। मैं अपने जैसी कई अभागिनों का प्रतिनिधित्व करती हूँ। हमारी आयु का कोई महत्त्व नहीं। उसे प्रायः लोग देखी-अनदेखी कर देते हैं। मेरा भी एक बार विवाह हुआ था, वैसे नहीं जैसे दूसरों का होता है। ज़रा दूसरी तरह हुआ था।

वह कहानी, दुर्भाग्य से जिसकी मैं खल-नायिका हूँ, मेरे हृदय का नासूर बन कर रह गयी है। इस घाव का कोई इलाज नहीं। यह घाव हर समय रिसता रहता है। लहू की बूंदें मेरे हृदय से चुपचाप बिना आवाज़ टपकती रहती हैं और आँखों से चू पड़ती हैं। बहुत वर्ष पहले विभाजन की विभीषिका ने मेरे पिता को ग्रस लिया था। घर में बड़े भैया और मैं ही उस आयु को पहुँच पाए थे, जब कुछ समझा-बूझा जा सकता है। मैं केवल मैट्रिक पास थी और भैया आई० ए०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे छोटे दो भाई और दो बहनें और थीं।

दुःखों की कहानी उबा देने वाली होती है। फिर मेरा जीवन तो काँटों से भरा रहा, जिन्हें मैं मुस्कराहटों के फूलों से छिपाने का निष्फल प्रयास करती रही। तथ्य को बड़े कम समय के लिए छुपाया जा सकता है।

विभाजन के तुरन्त बाद मुझे तो दिल्ली में नौकरी मिल गयी। भैया ने एक दूकान खोल ली। छः वर्ष मैं निरन्तर परिश्रम करती रही। एक बहन का विवाह भी किया। एक भाई को पढ़ा-लिखा कर नौकरी पर लगवाया। आजकल वह ओवर-सियर है।

उन दिनों की याद करती हूँ...तो लगता है, वह कोई सपना था। मैं शिक्षा-ग्रहण करती और साथ-साथ सरकारी काम भी करती। घर पर आती तो भाई-बहनों की दृष्टि मुझे बिछुनी-सी लगती। दिन भर की थकान दूर हो जाती। मेरा हृदय उनके लिए स्नेह से भर जाता। मेरे भीतर काम करने का उत्साह दूना हो जाता। मैंने बी० ए० पास कर लिया था।

मैं अच्छी नौकरी भी पा गयी।

चिन्ताओं के बोझ से जर्जर मेरी माँ को मेरे विवाह की चिन्ता लगी रहती थी। वह बार-बार कहतीं...'शोभा का क्या होगा! बेचारी सारी ज़िन्दगी नौकरी करती रहेगी? इसका घर नहीं बनेगा? मेरी शोभा ज़िन्दगी की सब खुशियों से वंचित रहेगी?'

मैं एक बार खुशियों से झोली भर कर भी उस बूढ़े ढूँठ की तरह हूँ जिस पर कभी फल-फूल नहीं आते। कभी बहार नहीं आती। जो उपवन के खिले फूलों में एक कलंक-सा है।

ज़िन्दगी की ऊबड़-खाबड़ राह पर चलते-चलते पहले तो मेरे पाँव घायल थे, अब हृदय भी घायल हो गया है। मैं जानती हूँ कि मैं ज़िन्दगी की रौशनियाँ बहुत पीछे छोड़ आयी हूँ, फिर भी जाने क्यों मैं अन्धेरे से प्यार नहीं कर पाती। मैं जानती हूँ कि मुझे चलते ही जाना है, थकन से चाहे मेरा अंग-अंग दुखता रहे, फिर भी मुझे चलते ही जाना है, ज़िन्दगी की गति से कदम मिला कर चलना है।

यह न समझिये कि मेरे जीवन में कभी प्रकाश आया ही न था। आज से छः वर्ष पहले मेरा हृदय जगमगा उठा था। प्रकाश से मेरी आँखें चकाचौंध हो उठी थीं। प्रकाश पुरी से मैंने विवाह किया था। वह ऑफ़िस में मेरे साथ ही काम करता था। हमारे बीच भी अटूट प्रेम के झूठे वायदे हुए थे, जिस तरह अन्य प्रेमी-प्रेमिकाओं में होते हैं। हमलोगों ने भी तारों की छाँव में सैर की थी और रेस्तराँ में गरम काँफ़ी के घूँटों से अपनी सर्द साँसों को गर्म किया था। विवाह के बाद मैंने कोशिश की, और मुझे एक अच्छी नौकरी दूसरे ऑफ़िस में मिल गयी। वहाँ तरक्की के अवसर अधिक थे। घर में रानी, मेरी सबसे छोटी बहन रह गयी थी। उसे भी मैं अपने साथ ले आयी थी। वह इण्टर में पढ़ रही थी।

मैं उस बात को जुबान पर लाऊँ तो लोगों की हँसी का शिकार बनूँ। खुशी मेरे जीवन में इन्द्र-धनुष की तरह कुछ क्षणों के लिए आयी थी। प्रकाश और मैं चार महीने ही पति-पत्नी बन कर रह पाए होंगे कि वह मुझसे अधिक रानी की पढ़ाई-लिखाई में दिलचस्पी लेने लगा।

मैं ऑफ़िस की एक परीक्षा की तैयारी कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी। काम के बाद सीधी एक प्राइवेट कॉलेज में पढ़ने चली जाती। घर आती तो प्रकाश और रानी के खिले हुए चेहरों पर काले बादलों की छाया घिर आती। कहकहे इस तरह बन्द हो जाते, मानो चलती गाड़ी में किसी ने ब्रेक लगा दी हो। दोनों आँखों ही आँखों में बातें करते। मेरी उनकी ओर पीठ भी होती तो मुझे एहसास होता कि दोनों मुझ पर हँस रहे हैं।

मैंने अपने लुटते प्यार को समेटना चाहा। रानी को माँ के पास भिजवाना चाहा। प्रकाश ने साफ़-साफ़ कह दिया कि रानी जाएगी, तो वह भी चला जाएगा। वे दोनों विवाह करना चाहते थे।

मैं मौन रही। मेरे मन को इतनी बड़ी चोट कभी नहीं लगी थी। मैंने कोई सुख-सुविधा न देखी थी। ज़िन्दगी भर कर्त्तव्य निभाते-निभाते मेरी कमर टूट चुकी थी। अब जब दिल पर इतना बड़ा प्रहार हुआ तो मेरी आत्मा चीत्कार उठी। चारों ओर अन्धेरा छा गया, जैसे मैं जीवित न रह सकूँगी। मेरी साँस घुट जाएगी। हृदय-गति बन्द हो जाएगी। मेरी अपनी बहन ने, जिसे मैंने रातों जाग कर पढ़ाया था, अपने श्रम और प्यार से बड़ा किया था, उसी ने मेरा घर उजाड़ दिया, मेरा सुहाग छीन लिया। मैं...पत्थर की प्रतिमा-सी जड़ हो गई थी। ...उस दिन से मानवता पर से मेरा विश्वास उठ गया।...अब मेरी माँ भी कभी-कभी मेरे पास आकर रहती हैं तो मैं उन पर भी विश्वास नहीं कर पाती।

मैं मिसेज शोभा पुरी दुनिया की नज़रों में बड़ी ही सुखी हूँ। लगभग आठ सौ रुपया पाती हूँ। एक फ्लैट है...मोटर है। अकेली हूँ। एक नौकरानी है। पर क्या कभी किसी ने यह भी जानने की कोशिश की है कि मेरा भी एक दिल है। उसमें नारी-सुलभ हसरतें भरी पड़ी हैं। उनका ख़ून होता है। मैं पचास रुपये की साड़ी पहन कर, बारह हज़ार की मोटर पर चढ़ कर अपने टूटे दिल की घुटन को, अरमानों की सिसकियों को ज़िन्दगी के बहाव में छोड़ देती हूँ। ऑफ़िस में अपने स्टैनो के टाइप-राइटर की टिक-टिक और टेलीफ़ोन की लगातार बजती हुई घंटी में भूल जाती हूँ कि मैं जीवन में बिल्कुल अकेली हूँ। मैं यह भी भूल जाती हूँ कि प्रकाश पुरी ने मुझे छोड़ दिया है। मेरी नारी को ठुकरा दिया है। मेरे मन के अन्धेरे को आलोकित करने के लिए, मेरे कार्य-क्षेत्र में मिलने वाली सफलताओं के चिराग जला करते हैं। सोचती हूँ आधी कट गयी है और शेष भी नकली मुस्कराहटों में, सोनव-लकर की वायलिन की ध्वनि में और आप्टे साहब के गुलाबों के सहारे कट जाएगी। खूब याद आया, मेरी बाल्कनी में तो चार गुलाब आज खिल गए होंगे...कल तक तो उनकी केवल कलियाँ थीं। चारों ही पीले हैं। शायद...मेरी आहों का असर है। ●

मुक्तक

मुझको हर दृग का आँसू कविता दिखता है,
सब मूक निगाहें मुझे कहानी कहती हैं,
गमगीन उदासी की बगिया के आसपास,
कुछ गद्य-गीत की घास पनपती रहती है।

सावित्री डागा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

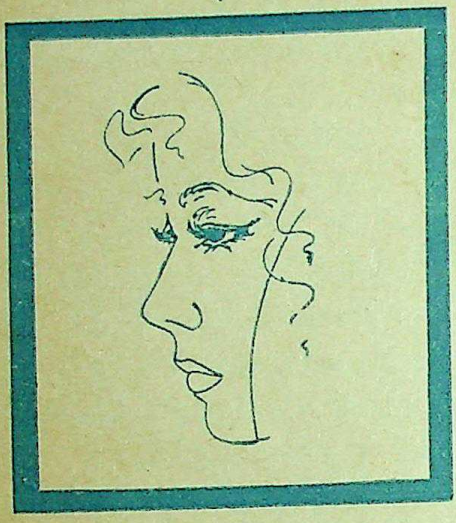

कलाकार की तूलिका से अंकित
लेखिका शैल का
रेखाचित्र

लेखिका : डॉ० कुमारी शैल

● लखपती पिता की पुत्री, एस० टी० कॉलिज बम्बई में दर्शनशास्त्र की प्राध्यापिका। बहुत कुछ लिखा है। अधिकांश विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुआ है। चित्रकला में विशेष रुचि है।

कलाकार लक्ष्मीचन्द्र

● प्रारम्भ में दर्जनों सफल कहानियों के लेखक, परन्तु आज उससे भी कहीं अधिक, एक चित्रकार। मद्रास, दिल्ली, कलकत्ता आदि स्थानों पर आयोजित अखिल-भारतीय कला-प्रदर्शिनियों में पुरस्कृत। यही नहीं, लन्दन आर्ट-गैलरी में आयोजित चित्र-प्रदर्शिनी का, वहाँ के कलाकारों, कला-समीक्षकों और कला-प्रेमियों ने भी स्वागत किया है।

कलाकार के कैन्वस पर नारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लन्दन आर्टगैलरी में
आयोजित चित्र-प्रदर्शनी पर
कला-समीक्षकों की प्रतिक्रियाएँ।

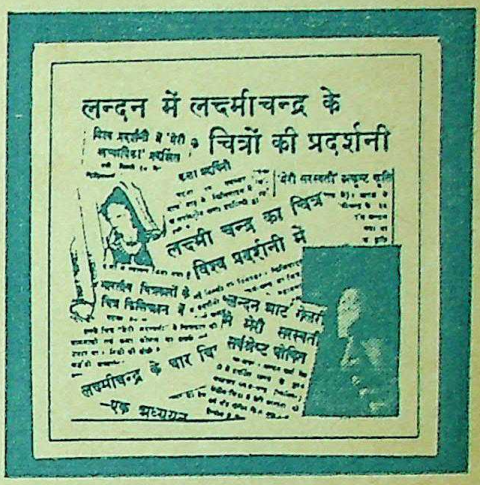

● ● नारी के बारे में, मैं बताऊँगा और सब कुछ बताऊँगा, परन्तु उस दिन, जब अपने पैर क़ब्र में लटका लूँगा और जैसे ही अन्तिम वाक्य समाप्त करूँगा, कफ़न की चादर ओढ़ कर सिर छिपा लूँगा।...

● ● बताऊँ, मैंने एक छोटी लड़की से शादी क्यों की—सिर्फ़ इसलिए कि अगर बुरायी ही साथ बाँधनी है तो क्यों न छोटी से छोटी हो।

● ● हे ईश्वर! तूने इस नारी जैसे अभिशाप को इस दुनिया में क्यों आने दिया?

● ● एक दिन मैं अपनी खिड़की के पास खड़ा था। सामने के मकान से एक नव-तरुणी ने मुस्कुराते हुए पूछा—"महाशय, आप कुछ चाहते हैं?" मैंने कहा, "हाँ, मैं ईंट और चूना चाहता हूँ, ताकि इस खिड़की को बन्द कर सकूँ...।"

ये विचार कलाकार लक्ष्मीचन्द्र के हैं, जो आज से कुछ वर्ष पूर्व लखनऊ की एक सांस्कृतिक-समिति के अखिल-भारतीय-सम्मेलन में व्यक्त किये गये थे। लक्ष्मीचन्द्र, जो उस समय सिर्फ़ एक तरुण कहानीकार था, परन्तु आज जिसने भारत के युवक कलाकारों में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

इसके एक वर्ष बाद ही मुझे पत्र-पत्रिकाओं में उनके द्वारा बनाये हुए चित्र देखने को मिले। उनमें सभी नारी से सम्बन्धित थे, परन्तु इस बार विचारों में बड़ा अन्तर था। उनके चित्रों की एक-एक रेखा से यह प्रति-ध्वनित होता था—'नारी प्रकृति की सबसे प्यारी देन है; उसकी अन्तिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

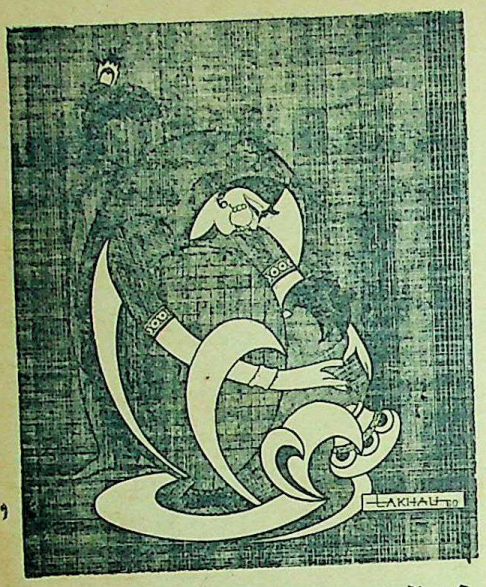

मातृत्व

कलाकृति,—संगीत का आधार और कला की प्रेरिका।' आख़िर यह सब क्यों? ज़रूर इस परिवर्तन में किसी नारी की कोमल भावना का ही हाथ रहा होगा।

लक्ष्मीचन्द्र ने 'नारी का जन्म' नामक चित्र में स्पष्ट किया है कि—ईश्वर ने पुष्पों का सौंदर्य, पक्षियों का संगीत, मेघ का हठीलापन, उषा की लालिमा और सन्ध्या का वर्ण, इन सबके समन्वय से एक प्रतिमा का निर्माण किया। किसी घायल हिरणी की करुणा के अभाव में प्रतिमा अधूरी थी।

परन्तु उसकी नवीन रचना इतनी आकर्षक बन गयी कि स्वयं ईश्वर भी न समझ सका, और यह थी—नारी।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उनके विचारों में 'स्त्री' और 'नारी' दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं।

उनके एक चित्र से नारी के तीन रूप स्पष्ट हैं। वह सुकन्या होकर व्यक्ति के सत्यम् को प्रकट करती है; नारी होकर उसके सुन्दरम् को और माँ होकर उसके शिवं को आकार देती है।

नारी अनन्त-यौवना प्रेयसी-मूर्ति को मानव-मन के चितेरों ने अपनी-अपनी कल्पनाशक्ति और अभिरुचि के अनुसार अपने-अपने माध्यमों से असंख्य रूप-रंगों में व्यक्त किया है, लेकिन कल्पना-लोक से धरती पर आते ही अकुंठित, असंदिग्ध, अपार विस्मय-विमुग्धता का यह अनिर्वचनीय मोददायी भाव तिरोहित हो जाता है और हताश मानव कह उठता है—'नारी धोखा है, उसके लिए

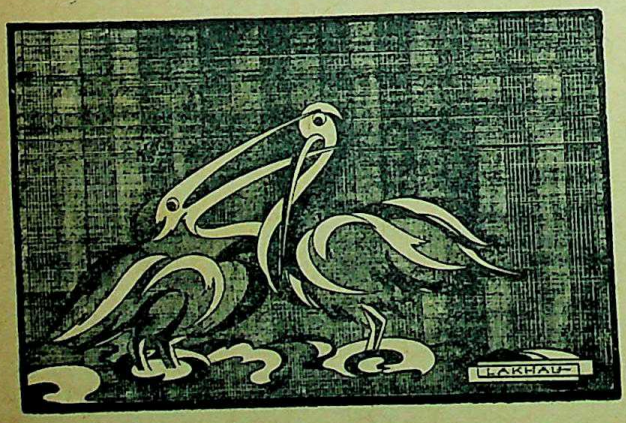

अभिसारिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम, वासना का रोमाण्टिक-सा नाम है।' जब कि लक्ष्मीचन्द्र का मत है--'पुरुष बाह्य आकर्षण का प्रेमी है। नारी अन्तर की प्रेमिका। वह जिसे चाहती है उसे आत्म-समर्पण कर देती है। परन्तु पुरुष जिससे प्रेम करता है, उस पर अधिकार माँगता है।'

नारी की तरह जीवन भर, धीरे-धीरे तिल-तिल कर जलना उसके स्वभाव के विरुद्ध है। वह एक बार में सब कुछ दान कर सकता है, परन्तु उस सब कुछ को धीरे-धीरे जन्म भर तक देते रहना उसके लिए कठिन है।

सबसे बड़ी बात है कि लक्ष्मीचन्द्र की नारी वादा नहीं करती, फिर भी पुरुष के लिए अपना सब कुछ निछावर कर देती है। पुरुष बहुत वायदे करते हैं और समय आने पर मुकर जाते हैं।

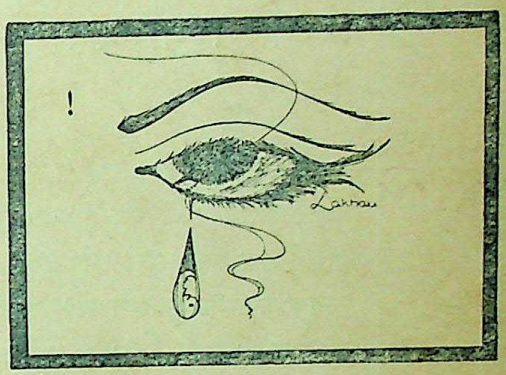

नारी का आँसू

वन-वन घूमते मानव को उसने गृहस्थ बना दिया। उसमें दूसरों के लिए परिश्रम करने की प्रवृत्ति पैदा की। मातृत्व में उसके स्त्रीत्व की परिणति है। माँ के रूप में वह समाज को सन्तति का दान कर, उसके जीवन-स्रोत को अक्षुण्ण रखती है।

भारतीय-नारी के बारे में बताते हुए उसने लिखा है--'दुर्गा की शक्ति, पार्वती की तपस्या और सीता की प्रीति जिसके हृत्तल में हिलोरें लेती है; सावित्री की प्रतीति ही नहीं, दमयन्ती का धीरज जिसमें हैं, वही तो भारतीय नारी है जिसके पास शकुन्तला-सी दुर्द्धर्ष सहिष्णुता है।

कौन-सी ऊँचाई, जहाँ वह चढ़ नहीं सकती? कौन-सा स्थान, जहाँ वह पहुँच नहीं सकती? हज़ारों अपराध करो, वह क्षमा कर देगी। निराशा और दुख दोनों मिलकर भी जिसके अगाध स्नेह को मिटा नहीं सकते....'

चित्रकार का तो कहना है, "मुझे पृथ्वी से अलग पैर रखने को जगह दे दो, मैं दुनिया बदल दूँगा, और वह जगह है--नारी का सरल हृदय।"

सत्य की विध्वंसक शक्ति

●यदि सत्य को तुम धरती में दबा दोगे तो वह अन्दर ही अन्दर बढ़ता रहेगा और अपने में ऐसी विध्वंसक शक्तियाँ एकत्रित कर लेगा कि एक दिन वह कठोर धरातल के बाहर फूट पड़ेगा और तब वह अपने मार्ग के बाधक तत्त्वों को बिल्कुल मिटा देगा। --डोरोथी; (संकलन: सुनीता गुप्ता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीरा महादेवन

• आत्म-परिचय

• आत्म-परिचय में मैं यही कह सकती हूँ कि कहानियाँ लिखने का शौक़ बहुत पुराना है किन्तु विवाह से पूर्व एक दो ही प्रकाशित हो सकीं। इसके अतिरिक्त एक साल तक बम्बई में मैंने एक साप्ताहिक चलाया। तत्पश्चात् अनुवाद तथा फुटकर लेखन करती रही; किन्तु ठोस लेखन विवाह के पश्चात् ही कर सकी। इसका कारण यही है कि जो प्रोत्साहन तथा सुविधाएँ मुझे विवाह के बाद मिलीं वे उससे पहले मिल न सकीं। अब तक मेरे दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। पहला 'सो क्या जाने पीर पराई' तथा दूसरा 'अपना घर'। यहाँ आपको अपनी धारणा बदलनी पड़ेगी कि छात्र-जीवन में ही लेखिकाएँ लिख पाती हैं। बहनों को जब तक घर में प्रोत्साहन और सुविधाएँ नहीं मिलतीं, तब तक वे लिख नहीं पातीं।

• शिक्षा भी मेरी इण्टर तक ही हुई है, क्योंकि डिग्री के लिए न विवाह से पहले सम्मति मिली न बाद में। किन्तु अध्ययन मेरा आज भी बहुत तगड़ा है। लिखने के लिए एक या डेढ़ घंटे से अधिक नहीं मिलता, लेकिन पढ़ने के लिए मेरे पास समय तथा सामग्री दोनों काफी रहते हैं। मैं हिन्दी, अंग्रेज़ी तथा मराठी बराबर पढ़ती रहती हूँ। मराठी मेरी मातृभाषा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● बोरीबन्दर की घड़ी में छः बज कर पाँच मिनट होते ही थाना की फास्ट गाड़ी चल पड़ी। ज़नाना डिब्बे में सरला, कृष्णा को अपने दफ्तर के बारे में बता रही थी। सरला को नया-नया ही काम मिला था और वह भी सख़्त दौड़-धूप के पश्चात् नसीब हुआ था। वह बड़ी तन्मय होकर अपने दफ्तर के अन्य कर्मचारियों के बारे में बता रही थी और कृष्णा भी बड़े प्यार से उसकी बातें सुन रही थी। कृष्णा, सरला से बड़ी थी। सरला बीस से अधिक की नहीं थी। कृष्णा अच्छी नौकरी पर लगी हुई थी तथा वेतन भी अच्छा ले रही थी। स्वभाव भी दोनों सहेलियों के भिन्न थे। सरला प्रत्येक व्यक्ति से मिलजुल कर बातें करने वालों में से थी। इसके विपरीत कृष्णा सोच-समझ कर अपनी सहेलियाँ चुनती। सरला को वह नौ-दस की गाड़ी में हर रोज़ देखा करती। उसके चेहरे की उदासी ने उसे कब का अपना लिया था। बेकार सरला, नौकरी की चिन्ता से झुलस चुकी थी। अन्य लड़कियों को दफ्तर जाते देख उसकी आँखें मानो भर आना चाहती थीं। एक कोने में बैठी वह अपने चारों ओर भाव-रहित आँखों से देखा करती। कभी किसी के साथ बात करने की उसकी हिम्मत ही न पड़ती। उन उदास तथा भाव-रहित आँखों ने मानो कृष्णा को न्योता दिया। वह उसके साथ बातचीत करने लगी। दोनों नियमित रूप से मिलने लगीं। उसके बाद दोपहर का भोजन भी उनका साथ-साथ होने लगा। सरला के काम की चिन्ता अब कृष्णा को भी सताने लगी। वह उसके लिए काम ढूंढ़ने लगी। इससे सरला की निराशा कुछ कम हो गयी। एक दिन दोनों सहेलियाँ जब बोरीबन्दर पहुँचीं तब कृष्णा ने सरला से पूछा, "तुमने नियोजनालय में नाम लिखवाया है ?"

"कई बार सोचा कि नाम लिखा दूं पर अभी तक गयी ही नहीं।"

"तो चलो आज ही चलते हैं।"

सरला उसके साथ चल पड़ी। फिर उसने पूछा, "तुम मेरे साथ रुकोगी न वहाँ पर ?"

"अधिक देर तक तो रुकना सम्भव नहीं है। पर थोड़ी देर अवश्य तुम्हारा साथ दूंगी।"

नारी : केवल उपमाएँ, रंग और ज्योति

●सागर पर फैले इसी आकाश की अनन्त नीलिमा में, मेरे अंग-अंग विकसित होंगे और मैं...मुग्ध ताकती रह जाऊँगी। कितना दुख देगा यह अपना विकास! कोई नहीं जानेगा और मैं अपनी सुन्दरता में जलती हुई एक दिन इसी आकाश में लीन हो जाऊँगी। कोई नहीं जानेगा कि मैं उन्हें कितना स्नेह देती थी...अपनी उन आँखों को, जो मुग्ध थीं इस नीलिमा का विस्तार देख कर।...तब मैं तुझे बुलाऊँगी, मेरी प्रिय सखी! और तू मेरा वर्णन करेगी। उपमाएँ, रंग और ज्योति... मेरे अंग-प्रत्यंग!...संसार में कवि जन्म लेंगे और मैं उन्हें कुछ नहीं दूंगी—केवल उपमाएँ, रंग और ज्योति। नारी कुछ नहीं देती; बस उपमाएँ, रंग और ज्योति। शेष वह साथ लिए चली जाती है। —सफ़ो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरला चुप हो गयी। वह आजकल कहीं अकेली जा नहीं सकती थी। कृष्णा के साथ जो उत्साह उसमें रहता, वह अकेले में कभी भी न रहता। आज भी वह चाहती थी कि कृष्णा उसके साथ ही जाय।

कृष्णा ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर पूछा, "क्या सोचने लग गयी ?"

सरला का गला रुँध गया था। वह कोई उत्तर दे न सकी।

कृष्णा ने धीरे से उसका कन्धा दबा दिया और सरला की चुप्पी की दीवार आँसुओं से घुल गयी। बोरीबन्दर के स्टेशन पर ही वह कृष्णा का हाथ, हाथ में लेकर रोने लगी। कृष्णा पहले तो कुछ घबड़ायी। फिर उसे समझाने लगी। कृष्णा ने इधर-उधर देखा कहीं भीड़ इकट्ठी न हो जाए। पर ऐसी बात नहीं हुई। बोरीबन्दर की भीड़ अपने ही ढंग की है। उसके पास किसी को देखने भर का समय नहीं होता। कुछ भागते हुए अपनी गाड़ी में चढ़ जाते हैं। और कुछ गाड़ी से उतर कर भागते हुए स्टेशन से बाहर चले जाते हैं। जिनके पास देखने का समय है, वे केवल सुन्दर चीज़ों को ही देखते हैं जिनकी वहाँ कोई कमी नहीं। यही कारण था कि सरला ने आँसू बहाए, कृष्णा ने उन्हें पोंछा किन्तु किसी को कानों-कान खबर तक न हुई।

"सरला, तू पागल तो नहीं हो गयी ? मुझसे कह देती तो मैं ना नहीं करती।"

"पर कृष्णा, कितने दिन तक तू मेरे साथ इस तरह चक्कर काटेगी ?"

"चुप—" कृष्णा ने प्यार से सरला का कन्धा सहलाया। सरला ने उसकी ओर देखा और दोनों हँसने लगीं। सरला अपना दुख भूल गयी। और उसका हाथ, हाथ में लिए चलने लगी।

किन्तु आज की बात कुछ और थी। नियोजनालय में नाम लिखाने के बाद ही सरला को काम मिल गया था। अब दोनों सहेलियाँ खुश थीं। सरला भी अब खिल उठी थी। कृष्णा उसके लिए सब कुछ थी। वह उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो गयी थी। बेकारी के उन तीन महीनों में उसने, उसके लिए क्या नहीं किया था ? उसके प्यार ने उसे कितनी सान्त्वना दी थी। उसकी उदासी, कृष्णा का हाथ, हाथ में आते ही भाग जाया करती थी। उसने भूल कर भी दूसरी लड़कियों की ओर देखा नहीं था। देखने का समय ही नहीं था उसके पास। सवेरे-शाम कृष्णा के साथ ही जाना-आना। दोपहर में साथ भोजन करना। शनिवार को भेल खाने जाना। उसके बाद सिनेमा देखने जाना। केवल रात-भर के लिए ही दोनों सहेलियाँ अलग हो पातीं। तब भी शायद सपनों में एक दूसरी के गले में बाँहें डाल कर स्वप्नलोक की सैर करती होंगी,

एमिली डिकिन्सन :

●प्रसिद्ध अमेरिकी कवियित्री एमिली डिकिन्सन के बारे में आज भी जितना कुछ मालूम हो सका है वह बहुत थोड़ा लगता है। एक फूल-सा कोमल मन, लज्जाशीला, शान्त और अन्दर की ओर ताकती हुई नारी का चित्र—यही है उसकी कविताएँ...या उसकी आकृति, जो शब्द-शब्द के भीतर से चुपचाप झाँकती है। एमिली ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह नहीं सकते।

दिन बीत रहे थे। सरला को काम करते तीन महीने हो चुके। एक दिन कृष्णा ने कहा, "सरला! अब अगर तुम्हारे पास पैसे हैं तो मेरे रुपये लौटा दो।"

"तुम्हारे रुपए? मुझे तो याद नहीं। मैंने कब लिए थे, कृष्णा?"

: फूल-सा कोमल मन

अपने जीवन-पर्यन्त अपनी कविताओं का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं करवाया। १८८६ में उसकी मृत्यु के बाद, उसकी कविताओं की पाण्डुलिपियाँ उसकी बहन लेविनियाँ के हाथ लगीं, जिसकी प्रार्थना पर 'मॉबेल टॉड' ने उसकी कविताओं का प्रथम संग्रह सन् १८९० में प्रकाशित किया। लेकिन फिर भी उसकी रचनाएँ, पत्र और डायरियाँ १९२९ तक चन्दन के एक बक्स में बन्द रहीं। खोलने पर एमिली का एक नया चेहरा दिखा... और शान्त, और अन्तरमुखी, और लीन। उसमें ऐसे पत्र जो कभी नहीं छोड़े गये थे, ऐसे रेखाचित्र जिनमें किसी का नाम नहीं था, और ऐसी कविताएँ जिनमें एक पूरा अनखोजा जहान था।

"तुम्हें याद नहीं?" कृष्णा ने कुछ तीखे स्वर में पूछा।

"तुम्हारी कसम, मुझे याद नहीं। सच, कब लिए थे? कितने रुपए लिए थे मैंने?"

"कोई बात नहीं, जब तुम्हें याद ही नहीं तो जाने दो।"

"जाने क्यों दो? पहले बताओ कितने रुपए लिए थे मैंने?"

कृष्णा चुप रही। उसका चेहरा कुछ कठोर हुआ। सरला डर गयी। वह वैसे भी उससे डरती थी; किन्तु आज तो कृष्णा सचमुच ही नाराज़ हो गयी थी। उसने उसका हाथ पकड़ लिया। किन्तु आज कृष्णा का हाथ ठंडा था। उसमें वह गरमी नहीं थी जो उसे मिला करती थी। इन्हीं हाथों को अपने हाथ लेते ही वह अपना सारा दुख भूल जाया करती थी। किन्तु आज वह हाथ शिथिल-सा निष्प्राण-सा उसके हाथ में पड़ा था। कृष्णा ने अपना हाथ छुड़ा लिया और कुछ मुस्करा दी। सरला को लगा इस मुस्कुराहट से तो कृष्णा उसे एक तमाचा मार देती। उसने फिर एक बार हिम्मत की, "किसन, बता दे न प्लीज़!"

"सरला, कह दिया न मैंने, कि जब तुम्हें याद ही नहीं तो छोड़ दो उस विषय को वहीं पर! अब अगर पूछा तो मैं तुमसे कभी बोलूँगी ही नहीं।" कृष्णा अपने स्वर से अपना रोष छिपा न सकी।

सरला सहमी-सी चुप हो गयी। कृष्णा की डाँट सुन कर उसकी आँखें भर आयीं। उसने अपना मुँह फेर लिया। वह खिड़की से बाहर देखने लगी। कृष्णा ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह जान कर अनजान बन गयी। जिस सरला के आँसू, कृष्णा ने आज तक पोंछे थे उसी ने आज उसे रुला दिया। और एक बार भी समझाया नहीं। यही बात सरला को चुभ रही थी।

दादर स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही कृष्णा उठ गयी। सरला ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। कृष्णा ने भी कुछ कहना आवश्यक समझा, "मैं बताना भूल गयी थी सरला!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे कुछ ख़रीद करनी है यहाँ से।"

"मैं भी चलती हूँ।"

"न...न..रहने दो, मैं अकेली ही जाऊँगी।"

सरला का हृदय उसकी उन रुक्ष बातों से थर्रा उठा। कृष्णा जल्दी से उतर गयी और गाड़ी चल पड़ी। सरला मुँह बना कर बैठी रही। वह बार-बार अपने मन से यही पूछ रही थी कि कब उसने कृष्णा से पैसे लिए थे? कितने लिए होंगे? क्यों कृष्णा इतनी नाराज़ हो गयी? क्या इस छोटी-सी बात से उनका नाता समाप्त हो जायगा? आगे सरला सोच ही न सकी। बिना सवेरे के नौ-दस के तथा शाम के छः-पाँच के तथा बिना कृष्णा के तो वह कुछ भी नहीं है। उसका जीवन इन्हीं तीनों के सहारे सुखमय है। यह नहीं हो सकता। कल कृष्णा शान्त हो जायगी। फिर एक बार दोनों गले में बाहें डाल कर घूमने लगेंगी। एक साथ भोजन करेंगी। भेल खाने जायेंगी। नियमित रूप से अपनी इस छः-पाँच से लौटा करेंगी। इस विचार मात्र से सरला की उदासी उड़ गयी। वह गाड़ी की गति सुनने लगी और उसी के लय में गुनगुनाने लगी।

किन्तु सरला का अनुमान ग़लत निकला। कृष्णा अब उसे न सवेरे की नौ-दस की फास्ट में मिलती और ना ही शाम की छः-पाँच की फास्ट में। यहाँ तक कि वह अपने दफ्तर से भी खाने की छुट्टी से कुछ पहले ही निकल जाती। कई दिनों तक वे फ़ोर्ट में लुका-छिपी का खेल खेलती रहीं। सरला अपना काम सँभाल कर उसे ढूंढ़ रही थी। कृष्णा अपनी धूर्तता से उसे टाल रही थी। पागलों की तरह सरला उसे फ़ोर्ट के कोने-कोने में खोज रही थी और उतनी ही निराश भी होती जा रही थी। अकेले ही शाम की छः-पाँच की फास्ट में बैठी रहती। यही लगता कि अब भी वह आ सकती है। अपने आप ही वह आ जायेगी। बड़ी मुश्किल से वह अपने आँसू रोक लेती। आँख मूँद कर किसन के चेहरे को सामने लाने का प्रयत्न करती पर वह भी याद न आता। इससे वह और भी परेशान हो जाती। शनिवार आते ही उसका मन छटपटाने लगता। जिस शनिवार की प्रतीक्षा वह बड़ी उमंग से किया करती, वही उसे किसी भयंकर स्वप्न की तरह भयभीत कर देता। उस दिन वह काम भी ठीक तरह से न कर पाती। बार-बार कृष्णा की आवाज़ कानों में गूंजने लगती। कई बार सोचती कि दफ्तर से छुट्टी लेकर उसके पास चली जाय पर उसकी हिम्मत ही न पड़ती। कृष्णा को छुट्टी लेना पसन्द नहीं था। एक प्रश्न निरंतर ही उसे बेचैन किया करता—क्या कृष्णा भी इसी तरह परेशान होगी? क्या वह भी शनिवार के दिन बेचैन हो उठती होगी? क्या वह भूल कर भी छः-पाँच की फास्ट में आने की सोचती न होगी? कौन-सी चीज़ है जो उसे रोक लेती है? वह तो साक्षात दुर्गा ही है। सरला जानती है कि वह स्वयं कमज़ोर है। कृष्णा जितनी इच्छा-शक्ति उसमें नहीं है और उसे इसका ज़रा भी दुख नहीं। वह अपने आप को अधिक स्वाभाविक समझती है। मानव को कमज़ोर ही होना चाहिये। कितनी छोटी-सी बात पर कृष्णा ने सारा रामायण खड़ा कर दिया। और एक सरला है कि अभी तक उसे याद ही नहीं आ रहा है

(शेषांश पृष्ठ १४८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृता भारती

• आत्म-परिचय

१९५८ में संस्कृत में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से एम० ए० किया था। भवभूति के नाटकों पर इसी यूनिवर्सिटी से पी० एच० डी० की डिग्री मिली है। अभी तक अध्ययन में व्यस्त रहने के कारण लेखन की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सकी। अब लगभग एक वर्ष से कविताएँ एवं ललित लेख लिखने लगी हूँ। इतने अल्प समय में ही कविता, जीवन में, धर्म की भाँति स्वाभाविक और अविभाज्य प्रतीत होने लगी है। दृश्यों और भावों की तीव्रतम अनुभूति और अभिव्यक्ति जीवन का परम आनन्द लगता है। अधिकतर समय अध्ययन और लेखन में बिता सकूँ--यही उत्कट अभिलाषा है; और शौक़ भी।

आकृतियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंजरी ●

मैं सोलह बरस की हो गई हूँ। लोग मुझे बहुत सुन्दर कहते हैं। पर, मैंने अपने को कभी देखना नहीं चाहा। घर में देखने के लिए एक धुँधला-सा दर्पण है। उसमें तस्वीर भी धुँधली ही दिखाई पड़ती है। मुझे पाँच मिनट में अपने बाल सँवारने होते हैं ताकि पिता जी की निगाह न पड़ जाए। उतनी देर में माँग ठीक करते समय मैं शीशे में अपना चेहरा देख लेती हूँ। रात में, मैं बहुत देर से सोती हूँ। शाम का खाना बनाना रहता है। बच्चों को दूध वगैरह देते-देते दस तो बज ही जाते हैं। फिर मुझे दो घंटा पढ़ना ज़रूरी है। अच्छे नम्बर न लाने पर पढ़ाई छूटने का डर है--स्कॉलरशिप बन्द हो जाने का डर है। बारह बजे सोने के बाद मुझ से बहुत जल्दी नहीं उठा जाता। सुबह का काम जीजी देखती है। जिज्जी में गजब की सहन शक्ति है। पाँच साल पहले उसका स्वास्थ्य बड़ा सुन्दर था। पर अब सारे शरीर पर काली झाँई पड़ गई है। वह अपनी बात खुद ही कहेगी। आज मैं अपनी बात कहना चाहती हूँ। सुनने वाले हमेशा नहीं मिलते, और मैं ही कब रोज़-रोज़ कहती हूँ। आज न जाने क्यों, जी का बाँध टूट गया।

पिताजी बहुत ही क्रोधी प्रकृति के हैं। उनमें स्वाभिमान छू भी नहीं गया। उनमें अपनी बुद्धि ज़रा-सी भी नहीं है। कहना गुनाह होगा पर वे एक मूढ़ जानवर की तरह हैं, जिसके लम्बे सींग हों और वह जब चाहे, जिस पर प्रहार कर दे। माँ ऐसी नहीं थीं पर वह अब पिताजी से भी अधिक भीषण हो गई हैं। उसकी भीषणता सब नहीं देख सकते। उसने जीजी को और मुझे कभी सुख नहीं दिया। उसके इशारे के बिना घर में कुछ भी नहीं हो सकता। वह अपने बच्चों की ही शत्रु बन गई है। पर तब भी हमारी संख्या बढ़ती जा रही है, क्योंकि पिताजी को लड़कों का शौक है। पर इत्तफ़ाक से उनके एक ही बेटा है और हम पाँच बहनें हैं। मैं और जिज्जी बड़े हो गए हैं तो सब कुछ महसूस करते हैं। बाकी सब छोटे हैं। उनसे अभी दोनों खुश हैं क्योंकि वे कहने पर स्कूल नहीं जाते और छुट्टी की खुशी में घर का खूब काम करते हैं। हमें कभी भी घर का सम्बोधन सुनने को नहीं मिला और कभी कोई प्यार से पुकारता भी है तो उसमें स्वार्थ की गन्ध होती है। मेरे लिए तो मेरी बड़ी बहन भी है जो मेरे भविष्य का ख्याल रखती है, पर उसके लिए कोई नहीं।....मैं कभी-कभी कुछ कविताएँ लिख लेती हूँ। सब कहते हैं उनमें भावों की गहराई है। मेरी पंक्तियों में दुख की छाप ही क्यों रहती है? मैं अब अधिक कुछ नहीं कहूँगी। कहने से फ़ायदा क्या? मेरा दुख तो फिर भी कम है। जिज्जी तो कितना सहती है।....रात ज्यादा हो गई है और कल बॉयलोजी का प्रेक्टिकल है। डिसेक्शन के लिए मुझे बहुत-सी चीज़ें मँगानी होती हैं पर फ्रॉग और कॉक्रोच तो काफ़ी संख्या में घर में ही मिल जाते हैं।.... मैं चाहती हूँ शाम को सब जल्दी-जल्दी खा-पी लें, दूध पी लें तो पढ़ने के लिए कुछ अधिक समय मिल जाया करे, पर ऐसा नहीं होता।....घर में दो ही कमरे हैं। कमरे क्या हैं, कोठरियाँ हैं। एक में माँ लेटी रहती है नन्हीं बच्ची के साथ। कभी कोई विज़िटर आता है तो माँ मुँह पर रजाई डाल लेती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या हल्का-सा घूँघट काढ़ कर बैठ जाती है। मैंने माँ को घूँघट डालते कभी नहीं देखा था किन्तु, अब वे दो एक व्यक्तियों से पर्दा करने लगी हैं। मुझे माँ का घूँघट इतना अस्वाभाविक क्यों लगता है? मेरा और जिज्जी का कोई विज़िटर नहीं। कभी कोई सहेली आ जाती है तो उसके सामने शान्ति का ढोंग रचना पड़ता है।....हमारे घर में एक ख़ास समय के लिए एक व्यक्ति विशेष सम्माननीय हो जाता है। हमें भी उसके साथ अदब बरतना पड़ता है कि अचानक माँ और पिताजी में लड़ाई हो जाती है। हम लोगों को बाँट दिया जाता है। घर टूट जाता है। फिर कुछ महीनों बाद माँ किसी ख़ास स्थान पर पिताजी को बुलाती है। पिताजी चले जाते हैं।....लौटनेपर माँ हमसे कहती है: 'कौन पुरुष ऐसा सह सकता है! तुम्हारे पिता जी बहुत अच्छे हैं।' हम देखते हैं दोनों में अच्छी दोस्ती हो गई है और एक साल बाद हमारी एक बहन बढ़ जाती है।....लेकिन यह सब सोचने के लिए मेरी उम्र अभी बहुत कम है। मैं ज़रूरत से ज्यादा समझदार हो गई हूँ। लड़कियाँ कहती हैं, मैं कविता-सी सुन्दर हूँ, कविता-सा मेरा मन है। और मैं कविताएँ लिखती भी हूँ। मुझे यह सब नहीं सोचना चाहिए और कल इम्तहान है--बायलॉजी का प्रेक्टिकल। सुबह जल्दी उठना भी है। उफ़, बदन दर्द से अकड़ने लगता है।

प्रीति ●

सुना है, माँ की शादी के एक साल बाद ही मेरा जन्म हो गया था। माँ की एक सहेली ने मुझे मख़मल के कपड़ों से भरी अटैची दी थी। उन कपड़ों की मुझे याद नहीं। अब तो मेरे पास तीन धोतियाँ हैं, जिन्हें पहन कर मैं यूनिवर्सिटी जाती हूँ और नृत्य के स्कूल जाती हूँ। कपड़ों के अभाव को मैं अभाव नहीं मानती, पर प्यार का अभाव कितना खल जाता है--वह भी जिन्दा माँ बाप के प्यार का अभाव। मैंने जब से होश सम्भाला, मुझे याद नहीं, मैं दो घंटे के लिए भी चैन से बैठ सकी हूँ। दिन भर काम करती हूँ। रात में या तो सोती हूँ या नवजात शिशु को चुप कराती हूँ। मेरे बहन-भाई समझते हैं कि जिज्जी के बिना उन्हें रोटी नहीं मिलेगी; जिज्जी के बिना वे सड़कों पर घूमते रहेंगे। मैं सुबह बहुत जल्दी उठ जाती हूँ ताकि ग्यारह बजे तक सब काम करके जा सकूँ। जाने के लिए मुझे बीस नये पैसे बस का खर्च मिलता है। मैं रात में आठ बजे तक लौटती हूँ। यूनिवर्सिटी के बाद मुझे डांस-स्कूल जाना रहता है। पहले ये लोग मुझे नृत्य सिखाने के पक्ष में नहीं थे, किन्तु मैंने बहुत परिश्रम किया और शिक्षक ने अश्वासन दिया कि नृत्य के बराबर रुपया और किसी क्षेत्र में नहीं मिलता तो ये लोग सहमत हो गए हैं।....पहले मैं थकती नहीं थी, अब बहुत थक जाती हूँ। गुरुजी कहते हैं मुझे हैवी डायट लेनी चाहिये; पैरों पर मालिश करनी चाहिये। ये दोनों ही असंभव हैं।....एक साल सीखने के बाद मैं स्टेज पर आने लगी थी। उससे कुछ रुपये मिल जाते थे। वैसे मैं नहीं चाहती थी कि शिक्षा समाप्त होने से पहले मैं स्टेज पर आऊँ, पर मनचाहा कहाँ हो पाता है! अब मुझे दो घंटे नृत्य सिखाना पड़ता है। मेरा गला दुखने लगता है; मेरे पैर पत्थर हो जाते हैं पर मैं नाचती हूँ।....घर जाती हूँ तो उठने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हिम्मत नहीं रहती है। मंजरी का तैयार किया खाना खाती हूँ; पर सोना मेरे लिए अपराध है, दिन भर बाहर रहना।गुनाह। पिताजी ने मुझे सदा ही बहुत डाँटा है। वे कहते हैं जब तक मैं उनका एक भी दाना खाऊँगी, मुझे उनकी गुलामी करनी पड़ेगी।.. मैंने सुना है, मेरी माँ भावुक है लेकिन वह हम लोगों के प्रति ज़रा भी भावुकता नहीं बरतती। उसे हमारा काम कम नज़र आता है। मेरी उम्र बाईस वर्ष है; पिताजी मुझ पर हाथ उठा देते हैं, पर माँ नहीं बोलती।....यूनिवर्सिटी में अच्छे कपड़े पहन कर जाना पड़ता है। मैं अपनी धुली साड़ियों को प्रेस करवा लेती हूँ। पिताजी को बुरा लगता है।... मुझे लगता है मैं समय से पहले बूढ़ी हो गई हूँ। मेरा नहाना दो मिनट में हो जाता है, मैं कुल पाँच मिनट में तैयार हो जाती हूँ पर पिताजी को यह शिकायत है कि मैं सिंगारपट्टी करती हूँ। ये लोग मेरी शादी का नाम नहीं लेते। मैं भी इस बारे में नहीं सोचती। मैं सौ पचास की नौकरी करके अलग भी रह सकती हूँ, पर मुझे अपने भाई-बहनों का ख्याल आता है। माँ कभी खाना नहीं बनाती। बरसों हो गए हैं, मैं नहीं जानती कि माँ अपने बच्चों को कैसे खाना खिलाती हैं। मुझे मंजरी का ख्याल आता है। उसकी बचपन की ख्वाहिश है डॉक्टर बनने की।....मैं अगले साल से सर्विस करूँगी तो उसे मेडिकल में जरूर भेजूँगी। मंजरी से छोटी तीन बहनें और हैं—एक भाई। मेरी एक बहन और थी। वह भी मंजरी-सी सुन्दर थी। उसे इन्होंने पहाड़ पर पलने भेज दिया था। जब वह लौटी तो माँ उसे प्यार नहीं दे सकीं क्योंकि उसमें कुछ गन्दी आदतें आ गई थीं। उसे बड़े-बड़े कष्ट दिए गए। उसे हम लोग कभी याद नहीं करते। उसका नाम लेने से माँ बहुत क्रुद्ध होती हैं। उसे इन्होंने किसी संस्था में दे दिया था। अब वह ग्यारह बरस की हो गई होगी। कहाँ होगी वह। किनके यहाँ पलती होगी? उन दिनों धन के नशे में हम सब की बुद्धि ख़राब हो गई थी। अपनी उस बहन को मैंने भी प्यार नहीं किया। पता नहीं क्या हो गया था मुझे!

मेरी माँ में झूठ की मात्रा बहुत बढ़ गई है। वह बीमार बनने की बड़ा सुन्दर एक्टिंग करती है। मैंने उसका बहुत साथ दिया; उसकी बहुत सेवा की, पर अब मैं उसकी बहानेबाज़ियों से तंग आ चुकी हूँ। अब मेरे मन में माँ और पिताजी के लिए ज़रा भी प्रेम या आदर नहीं रह गया है। मुझे लगता है मैं भी एक्टिंग करने लगी हूँ—रसोई में बैठ कर मैं रोती हूँ। अपने माँ-बाप की प्रकृति और बुद्धि को कोसती हूँ और उनके सामने जाने पर बड़े आदर और बड़ी परवाह से उनके नाश्ते-खाने की बात करती हूँ।.... अच्छा, अब मैं कुछ नहीं कहूँगी; थोड़ा-सा पढ़ूँगी। माँ, पिताजी ने कहा है: 'फ़र्स्टक्लास आना चाहिए, हमने तुम्हें पूरी सुविधाएँ दी हैं।' लेकिन अब पढ़ूँगी नहीं, सोऊँगी। पर सोऊँगी भी कैसे! नन्ही मुन्नी जाग गई है। अच्छा अब सोऊँगी नहीं तो सोचूँगी भी कुछ नहीं।

कुन्ता ●

मैं जब पन्द्रह बरस की थी तभी मेरी शादी हो गई थी। मैं बहुत मासूम और खूबसूरत थी। माता-पिता की पहली सन्तान होने के कारण मेरा बहुत प्यार था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचपन से ही मैंने बड़े स्वप्न देखे थे--मैंने सदा ऊँची ही बातें सोची थीं। मैं माँ के काम में हाथ बँटाती थी--छोटे भाई-बहनों को बहलाती थी। पहले मेरी शादी एक दूसरे व्यक्ति से तय की गई थी। वह बहुत धनवान था--बहुत सुसंस्कृत भी। पर उसके रिश्तेदारों ने मेरे घर वालों को बहका दिया था--उस पर बहुत से लांछन लगा कर उसे मेरे अयोग्य साबित कर दिया गया था और मेरी शादी दूर के एक गाँव में हो गई थी। मेरी शादी के सात माह बाद ही उसकी मृत्यु हो गई थी। उन दिनों की एक भी घटना मुझे नहीं भूलती। लोग कहते हैं वह शराब बहुत पीने लगा था--इसलिए मर गया--पर मैं जानती हूँ, मेरे परिवार के लोग जानते हैं कि वह अपनी स्वाभाविक मौत नहीं मरा। उसे उसके रिश्तेदारों ने डॉक्टर से मिल कर मरवा दिया था ताकि वे सारी सम्पत्ति के स्वामी हो सकें। ..तभी से मेरी ज़िन्दगी में विष घुल गया था। उन दिनों मैं बहुत ही कमसिन और नासमझ थी, इसलिए मैंने उन सब बातों पर अधिक ध्यान नहीं दिया था पर जीवन में आए दुखों ने उन खुरेचों को ज़ख्मों में बदल दिया है।

मैं जिस घर में गई थी वहाँ के नियम बड़े रूखे और कटु थे। मैं स्नेह के सागर में से निकल कर गई थी। वहाँ के चट्टानी मौन में भावना और कल्पना की सारी लहरें चूर-चूर हो गईं। उस घर में चक्की पीसने के बाद ही भोजन मिलता था। मैं हतप्रभ-सी उन कटुताओं को सहती थी और आँसू के घूँट पीकर पेट भरती थी। विवाह के बाद मेरे प्रति ही नहीं, मेरे पति के प्रति भी सास-ससुर का बर्ताव निर्मम हो चला था। पति का स्नेह मुझे मिले, यह उन्हें असह्य था। वे हम दोनों से बेइन्तहा रुष्ट हो गए थे। और एक दिन हमें घर छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा था।....मेरे पति का स्नेह भी विचित्र है--उससे मानसिक परितोष जरा भी नहीं मिलता। स्नेह में भी कितनी असंस्कृत-भाषा वे बोलते हैं! मैं मन ही मन बेहद खीझ जाती हूँ। स्वभाव भी बड़ा विचित्र है उनका। जब तक मैं खुशामदी वातावरण रखती हूँ तब तक तो घर में शान्ति रहती है, नहीं तो कोहराम मच जाता है। मैंने स्वभाव की इस भीषणता को बहुत सहा है, पर अब मैं नहीं सहना चाहती। संघर्ष करते-करते मैं थक गई हूँ। मैं इन्हें खुश रखना चाहती हूँ और ये खुश रहते भी हैं, पर स्वभावगत आक्रोश बच्चों पर निकालते हैं। मैं इस आक्रोश में बाधा नहीं डालती। मैं क्यों बाधा डालूँ। बच्चे इनके भी तो हैं।... मेरे मन में कहीं कुछ प्रतिहिंसा भी आगई है। मेरे बच्चे पढ़ें, यह मेरी इच्छा जरूर थी पर मैं इनकी पढ़ाई में कहीं कोई सहयोग नहीं देती। मेरी कितनी इच्छा थी पढ़ने की लेकिन मैं नहीं पढ़ सकी। मुझे किसी ने नहीं पढ़ाया। जो कुछ भी मैं चाहती रही हूँ, मुझे उसका अंश भी नहीं मिला। मेरा जीवन इतना व्यर्थ क्यों हो गया? मैंने शादी के बाद बहुत से प्लान बनाए, पर शायद मुझ में लगन की कमी थी, इसलिए कुछ भी नहीं हो सका। दुख में मनुष्य और भी प्रखर हो सकता है, पर मैं बुझती चली गई।

मैं अपने पति के बारे में कुछ भी नहीं कहना चाहती। प्रकृति की इतनी कुरूपता, जुबान की इतनी तेज़ी मैंने कहीं नहीं देखी। पर जिस वातावरण में ये पले थे, जिन रीति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिवाजों में इनका जन्म हुआ था--उनके अनुरूप ही कोई साथी इन्हें भी मिल जाता तो घर-द्वार भी न छूटता और न तो इस क़दर अभाग्यमय जीवन ही इनका बीतता। कितना वैषम्य रहा है हम दोनों के साथ में! हम दोनों ने एक दूसरे को झेला है, सहा है पर फिर भी क्या एकरूपता आई? हम बार-बार जुड़े हैं, बार-बार टूटे हैं।

जब प्रीति तीन साल की थी तब एक व्यक्ति और मेरे जीवन में आया था। वह भी विवाहित था। उसकी शान-शौक़त मेरे मन के अनुरूप थी। उसने भरे परिवार के सामने मुझे अपना लेने की बात कही थी। पर पति के प्रति सहज स्नेह और नैतिकता की भावना ने मुझे आगे बढ़ने से रोक दिया था। यदि उस समय मैं वह अनैतिक काम कर लेती तो मेरा सारा जीवन नैतिक बन जाता। किन्तु उस एक नैतिकता ने मुझे घोर अनैतिकता की ओर ढकेल दिया।....मुझे अपने घर में कभी मानसिक तृप्ति नहीं मिली। मेरे कवित्वमय संस्कार मुझे उन व्यक्तियों के प्रति आकर्षित करते हैं जिन्हें साहित्य और कला में रुचि है और मैं बहक-बहक जाती हूँ। कई बार मन में प्रश्न आया है कि यदि एकमात्र साहित्यिकता या किसी की बातचीत का लहजा ही मुझे आकर्षित करता है तो मैं महिलाओं की ओर क्यों नहीं झुकती? तब शायद और कुछ भी है जो मैं इन पराये आदमियों की ओर बढ़ती हूँ। इनके साथ घूमने में, बातचीत करने में मुझे बेहद सुख मिलता है। मैं अपने बच्चों को, अपने पति को धोखा देती हूँ कि ये लोग हमारे परिवार के लिए बहुत सहायक हैं। मेरी बात में प्रभाव बहुत ज्यादा है। एकबारगी तो सभी प्रभावित हो जाते हैं। मेरा स्वास्थ्य काफ़ी खराब हो गया है; उसे मैं और भी खराब दिखा कर सबकी सहानुभूति बटोरना चाहती हूँ।....मुझ में यदि स्वाभिमान होता तो मैं सूखी रोटी खाकर भी प्रसन्न रह सकती थी। पर, प्रतिदिन की अशान्ति और कलह ने मुझ से सब छीन लिया है।.... मेरे अन्दर कितनी बुराइयाँ आ गई हैं।.... क्या मैं तेइस बरस पहले की कुन्ता नहीं हो सकती? ये तेईस बरस....उफ़...याद करने से भी जी डरता है...और अभी तो न जाने कितने बरस शेष हैं!

आरती ●

मैं आज मंजरी के घर गई थी। अवसर जाती रहती हूँ। घर क्या है कबूतर-खाना है! नीम के पेड़ की छाया में दो कमरों का मकान है। बाहर एक बरामदा और एक आँगन है। आँगन में आधा कुआँ भीतर है और आधा दीवार के पार्टीशन से बाहर कर दिया गया है। कुएँ के पास एक गज की जगह में रसोई बनाई गई है। उस रसोई में प्रायः मैंने मंजरी या प्रीति को ही देखा है। कभी-कभी वे दोनों मेरे सामने अपना दुख प्रगट कर देती हैं। आज जब मैं गई थी तो मंजरी चूल्हे के सामने बैठी आँखों से पानी पोंछ रही थी। धुएँ से नहीं जन्मा था यह पानी। मंजरी को आज उसके पिताजी ने बहुत डाँटा था। कारण कमरे में उसकी किताबें अस्त-व्यस्त थीं; कपड़े भी यथास्थान नहीं थे और कमरा दो दिन से नहीं झाड़ा गया था। मंजरी ने बताया कि आजकल उसे फ़ुरसत नहीं मिलती--इम्तहान भी चल रहे हैं। दूसरे वह या जिज्जी, जिस दिन घर साफ़ करते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन पिताजी यह कहकर व्यंग करते हैं कि क्या उनके दामाद घर आने वाले हैं। मुझे उसकी इस बात पर हँसी आ गई थी और मैंने उसे समझा दिया था।

मंजरी और प्रीति के हृदय में माँ-बाप का विरोध बहुत गहरे पैठ गया है--मैं उन्हें शान्त करती रहती हूँ।....कुन्ता दी भी अपनी व्यथा मुझे सुनाती रहती हैं। मैं दोनों पक्ष की बात सुनती हूँ, पर निर्णय नहीं कर पाती। फिर भी मेरा पक्षपात बच्चों की तरफ़ रहता है, क्योंकि माँ बच्चों के लिए बहुत सहती हैं। कुन्ता दी सिर्फ़ जन्म देने का गौरव वहन करती हैं। मुझे उनका रंगढंग ज़रा भी पसन्द नहीं आता। मुझे शिष्टाचार हर व्यक्ति में अच्छा लगता है, भले ही वह कितने भी निकट का क्यों न हो। उनके मेहमानों में शिष्टाचार की कमी रहती है।....आजकल मंजरी के माता-पिता के एक विशिष्ट मेहमान हैं। वे प्रायः ब्लैक सूट में रहते हैं। उनके कन्धों पर ब्लैक ओवरकोट पड़ा रहता है। सुनहली फ्रेम का चश्मा, घड़ी, नगों से जड़ी अँगूठी और चमचमाते शू में वे बहुत चमकने का प्रयास करते हैं। मुझे पता है कि उनकी लड़की के पास केवल दो स्कर्ट हैं जिन्हें पहन कर वह स्कूल जाती है। मुझे पता है उनके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं। इसलिए इन कीमती कपड़ों में वे मुझे कार्टून से अधिक नहीं लगते।....वे प्रायः अँग्रेजी में बातें करते हैं, क्योंकि कुन्ता दी और उनके हस्बैंड अँग्रेजी बोलने वाले को अँग्रेजी साहित्य का ज्ञानी भी समझ लेते हैं--समझ लेते हैं कि यह व्यक्ति बहुत ही शानदार है, बहुत हेल्पफ़ुल है।

कुन्ता दी इनकी साहित्यिक अभिरुचि की बड़ी तारीफ़ करती हैं। मुझे इनके साहित्यिक और सज्जन होने की जानकारी तभी हो गई थी जब इन्होंने पहली मुलाकात में मुझ से कविता और गीत सुनाने की अशिष्ट ज़िद्द की थी और हर काम के करने में 'सिट टुगैदर' की बात की थी।.... कुन्ता दी इनसे घूँघट करती हैं। मुझे इनके पर्दे में बहुत ही बेपर्दगी नज़र आती है क्योंकि इनके आते ही उनकी निगाहों के भाव बदल जाते हैं, वाणी में रस घुल जाता है और वे कभी-कभी 'अमिया, तुम चुप क्यों हो गईं' या ऐसी ही कोई कहानी उन्हें पढ़ कर सुनाने लगती हैं।....और मुझे कुन्ता दी के हस्बैंड पर तरस आने लगता है जो प्रायः घर के कामों में व्यस्त रहते हैं। अभ्यागत के लिए अपने बच्चों से चायपानी को कहते रहते हैं या पान लगाने का आदेश देते हैं और जब मंजरी पूछती है, 'माँ, खाना भिजवा दूँ' तो वह कह देते हैं--'भाईसाहब बैठे हैं, माँ उनके सामने खाना कैसे खाएगी?' मुझे उनकी बुद्धि पर तरस आता है। कुन्ता दी पर भी मेरी दया दो मिनट के लिए ठहरती है, क्योंकि मैं जानती हूँ, उन्हें जीवन में बहुत दुख मिला है। बच्चों, उनकी माँ और बाप को मिला कर मैं एक त्रिकोण बनाती हूँ। मेरी दया, मेरा स्नेह, मेरा रोष, मेरी नफ़रत इन रेखाओं पर फिसलती रहती है। पर्दे के पीछे से आकृतियाँ झाँकती रहती हैं, बोलती रहती हैं। मैं देखती हूँ, मैं सुनती हूँ पर निर्णय नहीं कर पाती--कुछ भी निर्णय नहीं कर पाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवानी

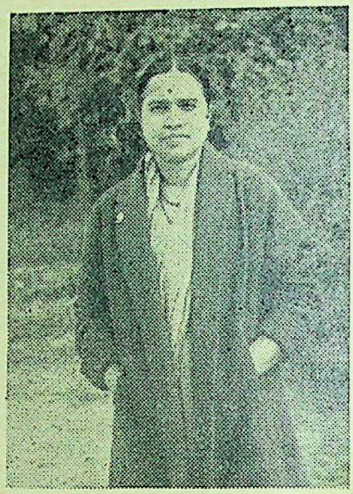

• आत्म-परिचय

जन्म : सौराष्ट्र के राजकोट नगर में, १७ अक्टूबर १९२३ ।

शिक्षा : १९३५ से १९४३ तक शांतिनिकेतन में, कलकत्ता विश्वविद्यालय से विशेष सम्मान सहित बी० ए० की परीक्षा पास की ।

प्रेरणा : गुरुवर हजारी प्रसाद द्विवेदी ही मूल प्रेरणा के स्रोत थे ; उन्हीं ने एक बार पत्र में लिखा था--'ईश्वर ने तुम्हें मौलिक लिखने की शक्ति दी है, उसी का उपयोग करो ।' उन्हीं के आशीर्वाद से थोड़ा-बहुत लिख सकी हूँ ।

म नौ ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमती को दिल का दौरा पड़ने के बाद, शरीर की समस्त शक्ति ही जैसे किसी छिद्र से बह गई थी। उसे बार-बार लगता था कि अब उसकी जर्जर काया का पंछी कभी भी, बंधन तोड़ कर उड़ भागेगा। मरने से पूर्व क्या वह अपने बिखरे परिवार को एक बार देख नहीं सकेगी? उसकी मनौती कभी झूठी नहीं रही थी। शायद इसलिए कि उसके सन्तोषी चित्त ने मनौतियाँ मनाई ही कम थीं। जिस कामना से उसका निष्पाप चित्त उद्वेलित हो उठता, वह ईश्वर स्वयं ही फलीभूत कर देता। अब के भी ऐसा ही हुआ। उसकी बीमारी का समाचार पाकर दोनों बेटियाँ, पानी से निकली मछली-सी तड़प उठीं। जननी की जोड़ भला फिर मिलती है? माँ है तो मायका भी है, यही सोच कर दोनों बेटियाँ अपने पतियों के सिर हो गईं और उसके तीनों बेटों और दो बेटियों के परिवार ने उसके बड़े पुत्र देवेश के आँगन में शादी-ब्याह की-सी रौनक जुटा दी। बारामदा मोटे पतले होल्डौल, बेंत की गोल लंबोतरी टोकरियों और नाश्तादानों से घिर गया। अमरूद, संतरों और केलों की खुशबू से, राजमती के इंजीनियर पुत्र देवेश के बँगले की दिशायें महक उठीं। राजमती अपने बड़े पुत्र के साथ ही रहती थी। मँझला राजेश, बँगलोर में कैप्टन था। उसने कुछ वर्ष पूर्व एक मद्रासी युवती से विवाह कर लिया था। उसके विवाह की सूचना पाकर, राजमती ने तीन दिन तक पानी भी नहीं पिया था और उसे स्पष्ट लिख दिया था कि कुल मर्यादा का गला घोंट कर लाई बहू, कभी भी उसके गृह में प्रवेश नहीं पा सकेगी। किन्तु जब राजेश, चार वर्ष पश्चात् पत्नी पुत्र सहित आ गया, तो राजमती मन ही मन प्रसन्न ही हो उठी। भैंस को क्या कभी अपने सींग भारी होते हैं? छोटे पुत्र दिनेश ने आई. ए. एस. में आते ही अपने एक बंगाली मित्र की बहन से विवाह कर लिया था। बड़ी सुन्दरी सुचित्रा सेन भी, पति के साथ सास की बीमारी के बहाने पहली बार ससुराल आ धमकी। राजमती की बड़ी लड़की भग्गो, घर की बड़ी बहू थी, इसी से पिछले सात वर्षों से मायके नहीं आ पाई थी। कभी उसकी भैंस ब्या जाती और कभी वह स्वयं भारी पैरों रहती। छोटी लड़की लाजो के पति स्कूलों के सब-डिप्टी थे; उन्हें अपनी पत्नी की मायके की यात्रा पसन्द नहीं थी। वह मायके से लौट कर, भाई के वैभव के बखान से ही उनका दिमाग़ चाटती रहती और सब-डिप्टी का रौब फिर पत्नी पर कुछ जम नहीं पाता। बहुत वर्षों बाद दोनों बहनें मिलीं और ख़ूब गले मिल कर रोईं। बड़ी भग्गो के साथ उसका पुत्र सरूप भी आ गया था। सरूप गाँव की चटशाला में पढ़ता था और उसकी सर्वथा मौलिक गालियों का कोण, राजमती की बड़ी बहू मीना का सरदर्द बन गया। राजमती की मनौती तो पूरी हो गई थी किन्तु बेचारी मीना की जान पर आ बनी थी। मँझली देवरानी राज्यम को दाल में खट्टा पसंद था; सो मीना को पाव भर इमली नित्य मँगानी पड़ती थी। उधर छोटी देवरानी सुचित्रा सेन रेडियो में गाती थी; इसी से उसके गले का भी विशेष ध्यान रखना पड़ता था। उसे दाल में खट्टा चरपरा, ज़रा भी नहीं रुचता था। हिलसा और रोहू मछली भी मँगानी ही पड़ती। सुचित्रा पूरी मछली का डोंगा ले, मेज़ के एक कोने पर जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठती और मीना को लगता कि सुचित्रा को मछली, छोटे लल्ला से भी अधिक प्रिय है। भग्गो बीबी को पूजा में पूरे तीन घंटे लगते थे; फिर वे अम्मा जी के पास जा बैठतीं; लज्जो बीबी भी आ बैठतीं और दोनों बहनें, धीमे गले से तीनों भाभियों के गले पर छुरियाँ चलातीं। दो जुड़वाँ बेटों के चीख़ते थूथनों में, अपने दो-दो पीन पयोधर ठूँस कर, छोटी इशारा करती कि बड़ी भाभी आ रही हैं और मीना को देखते ही, नट की फुर्ती से माँ-बेटी, प्रसंग बदल देतीं——

'अम्मा, बादल है'——बड़ी ननद कहती।

'पानी बरसेगा मुआ और क्या'——छोटी टहुकती और मन ही मन लहू का घूँट पीकर मीना, सास को दवा पिला कर चली जाती। मीना के और भी कई काम बढ़ गये थे; मुहल्ले-टोले में चोरी-डकैती की वारदातें देख कर जैसे आराम-तलब कोतवाल भी चौकन्ना होकर गश्त लगाने को मज़बूर हो जाता है, ननदों और देवरानियों के आने के बाद मीना को चौकन्नी होकर भंडार का गश्त लगाना पड़ता। चाबी का गुच्छा उसे पति और पुत्र के समान प्रिय हो उठा। खिचड़ी बनी और डाल दिया अम्मा जी ने पाव पाव भर घी पोते-पोतियों और बेटियों की थाली में। 'आप का न बापरो' मीना झुँझलाती और कभी जान-बूझ कर ही चाबी का गुच्छा छिपा देती। दोनों देवरों ने तो अन्तर्जातीय विवाह कर मातृऋण से छुट्टी पा ली थी, सब भार बेचारी मीना पर ही आ गिरा था। राजमती के पति भोलानाथ, गणित के अध्यापक थे; रेखागणित के साध्यों की भाँति ही उन्होंने तीनों पुत्रों के जीवन को सुलझा कर रख दिया था। चौदह वर्ष की होते ही दोनों पुत्रियों को ब्याह कर ठिकाने लगा गये थे। अब बंद गले के दामी कोटों में, सीना तान कर चलते तीनों बेटों को राजमती देखती तो उसकी आँखें भर आतीं। ये वे ही बेटे हैं जिन्हें उसने सरल ग्राम की पावन माटी में खिला-पिला कर बड़ा किया है। जाड़े आते और एक गबरुन का पूरा थान लाकर पटक देते भोलानाथ, 'ले सिल दे मुदों को दो-दो पाजामे और कमीज़ें' वे कहते और अपनी जर्जर मशीन लेकर राजमती उन्हें टेढ़ी-मेढ़ी बखिया से, ऊँचे-नीचे कुर्ते पाजामे सिल देती। आज उन्हीं बेटों के बैल-से कन्धों पर तीन-तीन सौ के सूट सजे हैं। पिता के कठोर शासन की अग्नि में तप कर, राजमती के तीनों पुत्रों का व्यक्तित्व खरे सोने-सा ही निकल आया था। भोला-नाथ का स्वभाव अत्यन्त उग्र था। उनके यौवनकाल में भी प्रणय जैसे निरर्थक विषय के लिए कभी स्थान नहीं रहा। उनके प्रत्येक वाक्य का आरम्भ और अन्त गर्जना से ही होता। राजमती को कई बार उन्होंने दाल में नमक कम या अधिक हो जाने पर, चोटी खींच कर आँगन में पटक दिया था पर ढोल पर मढ़े चमड़े की भाँति वह जितना ही खिचती - पिटती, उतनी ही निखर आती। आज राजमती, तीनों बहुओं को, बेटों के साथ सिर उघाड़े कार में घूमते देखती तो उसका कलेजा कसमसा उठता। काश कभी भोलानाथ ने उसके जीवन में भी ऐसी रसवृष्टि की होती। बड़ी बहू की प्रसव-वेदना के समय, स्वयं देवेश ही उसे एक ओर ढकेल कर लेबर-रूम में घुस गया तो राजमती कट कर रह गई थी। 'हाय हाय, उघड़ी-उघाड़ी बहू को भला कहीं ऐसे समय देखा जाता है, और वह भी माँ के सामने!' पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी बूढ़ी आँखों ने बहुत-कुछ देख लिया था, बढ़ती उम्र ने उसे मजबूरियों से समझौता करना सिखा दिया था। ज़माने के साथ-साथ उसके तीनों बेटे पराये हो गये थे। उनकी बोलचाल, उठक-बैठक, खानपान सब में नये सिक्कों की सी मुहर लग गई थी। चाहने पर भी वे अब उसके गाँव की धूल के बेटे नहीं बन सकते थे। उनके बच्चों को वह, कड़वा तेल चुपड़ कर धूप में नहीं लिटा सकती थी, उनकी गोल गोल आँखों में वह अंजन नहीं आँज सकती थी, उनके गोरे मुखड़ों पर काला डिठौना लगा कर चूम नहीं सकती थी। अपने बेटों की रंगीन दुनियाँ का वह एक भूला-बिसरा सपना मात्र थी। इधर नाती-पोतों, बेटे-बेटियों की रौनक में वह सब कड़वाहट भूल-सी गई थी। कितनी मूर्खा है उसकीप ड़ौसिन मौंधी बाई! सिविल सर्जन पुत्र के सात बच्चों और उच्च शिक्षिता पुत्रवधू के निर्मम व्यवहार से ऊब कर भारतदर्शन पार्टी के साथ तीरथ करने चली गई थी। पगली मौंधी! जिस द्वार पर बालकों की किलकिलाहट की सर्वतीर्थमयी गंगा बहती हो, वह अन्य तीरथ क्यों करे?

एक माह से भी अधिक बीत चुका था, बच्चों के स्कूल बन्द थे, इसी से राजमती का कुनबा अपनी पूरी रौनक पर था। बर्तनों का ढेर मलती महरी भी बड़बड़ाने लगी थी, 'बहू जी, चार कड़ाही तो राख ही निबट गई फिर भी मरे आधे बर्त्तन पड़े हैं; अब तो पन्द्रह से कम नहीं लूँगी।' महरी क्या धोबी-नाई सब की बन आई थी। खोमचे वाला आता तो मीना सहम जाती और कभी पिक्चर का प्रोग्राम बनता तो बेचारी की कमर ही टूट जाती। अब वह कभी-कभी झुँझलाने भी लगी थी। एक दिन राजमती धूप में बैठ कर रामायण पढ़ रही थी कि टन टन टनाक कर बड़ी ज़ोर से काँच के बर्त्तन टूटने की आवाज़ आई। बच्चे नाश्ता कर रहे थे, कुछ तोड़ न डाला हो। वह हड़बड़ा कर, खाने के कमरेकी ओर गई और देखा: खाने के कमरे में लाल सूर्ख चेहरा किये मीना खड़ी थी, ज़मीन पर पूरा टी सेट बिखरा पड़ा था। राजमती की दोनों पुत्रियों और तीनों पुत्रों की संतान मंडली में, खाने की मेज़ पर घोर गृहयुद्ध छिड़ गया था। भग्गो के सुपुत्र, सरूप ने मौका देख कर मेज पर बिछा प्लास्टिक का पूरा मेजपोश खींच लिया। मीना ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी—'हद है जंगलियों की, कभी काँच के सेट में चाय पी होती तो अदब क़ायदे भी जानते।' उसकी आँखों में झुँझलाहट के आँसू छलक आये थे। भग्गो ज़बान की तेज़ थी, उससे भी नहीं रहा गया, धमाधम सरूप को वहीं पर कूटने लगी—'और कहेगा, 'मामाजीके यहाँ जायेंगे' ले जा मामा जी के घर, ले, चल मामी जी के पास।' कंठ फाड़ कर चीखने में बारह वर्ष के सरूप ने विशेष योग्यता हासिल की थी। वह चीख-चीख़ कर रोने लगा। राजमती ने भाग कर उसे अपने आँचल की ओट में छिपा लिया।

भागमती चीखे जा रही थी—'हम कोई खुद तो आई नहीं, भैया ने लिखा इसी से आ गईं। मायका तो हमारा बाप ही के साथ उठ गया। धेले भर का प्याला क्या टूटा कि आसमान टूट पड़ा।'

'धेले का नहीं, बत्तीस रुपये का था; अभी बिल भी नहीं चुकाया' मीना ने अश्रुसिक्त कंठ से कहा—'और कल इन्हीं सरूप ने नई मिरजापुरी क़ालीन में स्याही गिरा दी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागमती गँवई गाँव की बहू थी; कलह के क्षेत्र में उसके अग्निगर्भा व्यक्तित्व ने कभी मुँहकी नहीं खाई थी, 'आय हाय, तुम्हारी बिट्टो तो दूध की धुली है, हम अपनी आँखों से देखी हैं अम्मा, इनकी लल्ली रोशनाई गिरा कर भाग गई थीं'--उसने दुगुने वेग से स्वर का वाण खींचा। इसी बीच देवेश झुंझला कर ऑफ़िस के कमरे से निकल आया, 'Why can't you keep quiet. मिनी, क्या मुसाफ़िरखाना बना दिया है घर को ?' सूखी डेरी को इतनी ही चिनगारी बहुत थी। शाम तक पूरा घर भकभक कर उठा। राजमती अपनी धुँधली आँखों से अपने परिचित परिवार को ईर्ष्या, द्वेष और कलह से फुंकते देखती रही। बचपन में कितना लड़ते-भिड़ते थे और उसकी एक साधारण घुड़की भी उन्हें सहमा देती थी, आज वह स्वयं विवश होकर उन्हीं की घुड़की से सहम कर रह गई थी। वह चुपचाप आकर अपनी खटिया पर लेट गई, दोनों बहनें उठ कर माँ की खटिया के पास बैठ गईं। मीना के कमरे में दोनों देवरानियाँ बैठ कर स्वेटर बुनने लगीं; पूरी मोर्चाबन्दी थी; देवेश ने एक बार माँ के कमरे में झाँक कर देखा और एक बार मीना के। शत्रुपक्ष ने तलवारें खींच लीं थीं। अब बीच-बचाव करना, स्वयं अपनी जान देना था। तीनों भाई लॉन में क्रिकेट खेलने लगे। बच्चों की भीड़ अभी बड़े-बूढ़ों की कूटनीति से अछूती थी। सब राजमती को घेर कर, कहानी सुनने के लिए मचलने लगे। इतने ही में मीना ने धमक लगाई, 'रौनी, सीता, चलो होम-वर्क करने।' रौनी, सीता कातर दृष्टि से दादी की ओर देख कर उठ गये।

सुचित्रा सेन दिन रात रेडियो में रवीन्द्र-संगीत गाती थी इसी से संगीत का माधुर्य कंठ में भी सिच गया था; मीठे गले से उसने भी पुत्र को खींच लिया, 'राजू, ऐशो बाबा, माँ के विरक्त कोरो ना।' राज्यम ने अपनी दक्षिणी आँखों को नचा-नचा कर न जाने क्या मूक आदेश दिया कि बेबी भी उठ गई। 'देख रही हो ना अम्मा!' भागमती ने रुँआसे स्वर में कहा, 'हमारे बच्चों के हाथ-पैरों में क्या कालिख लगी है जो इनके अंग्रेज बच्चे मैले हो जायेंगे ?'

लाजमती सिर से पैर तक जली-भुनी बैठी थी। 'कालिख लगे इनके दुश्मनों के, जीजी'--उसने तिलमिला कर कहा, 'हमारे बाप का घर है, हम खूब आयेंगी और इन ससुरी मद्रासी बंगाली चोट्टियों से जरा भी नहीं दबेंगी।' राजमती चुपचाप पड़ी रही, गृह-कलह ने उसकी आत्मा को अवश कर दिया। जब आधी रात को सारा घर नींद में डूब गया तो वह अपनी काँपती टाँगों से लड़खड़ाती ठाकुरजी के कमरे तक गई और दोनों आँखें मूंद कर उसने माथा टेक दिया--'हे दीनबन्धु! एक दिन मैंने ही तुमसे कहा था कि मेरा पूरा परिवार जुटा दो, हे अशरण के शरण! आज मैं ही मनौती मनाती हूँ कि अब सब अपने अपने घर लौट जायें और सुखी बने रहें, यह कलह नहीं देखा जाता।' प्रभु ने उसकी पुकार सुन ही ली, परिवार बना ही रहा किंतु उसे स्वयं जाना पड़ा।

महरी सुबह बर्त्तन मलने आई तो देखा: माता जी औंधे मुँह ठाकुर जी के सिंहासन के पास निर्जीव पड़ी हैं।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममता अग्रवाल

आत्म-परिचय

●आत्म-परिचय दे लेने योग्य अभी कुछ किया नहीं है। जन्म सभी लेते हैं, इसी नियमानुसार २ नवम्बर १९४० को माता-पिता के संक्षिप्त परिवार में सम्मिलित हो गई थी।

●लेखन में प्रयास प्रारम्भ किया था कविता से, फिर लगा जैसे मेरे कथ्य को अधिक सक्षम माध्यम की आवश्यकता है; गद्य की ओर मुड़ी हूँ।

●वातावरण के अनुकूल स्वयं को बहुत कम ढाल पाती हूँ। दिल्ली विश्व-विद्यालय में एम. ए. अंग्रेजी में अध्ययन कर रही हूँ। वहाँ की घनघोर चहल-पहल और अपने मन के एकान्त में अच्छा-खासा द्वन्द्व रहता है।

●सूनेपन से बेहद लगाव है, उससे निकलना नहीं चाहती। नये अंग्रेजी व हिन्दी साहित्य दोनों में रुचि है।

एक अकेली तस्वीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुँह, बड़े होंगे तो हों ! कोई इस तरह सबके सामने डाँटा जाता है । जगह, समय कुछ देखते नहीं, बस कह दिया जो मुँह में आया ।

तनिया को बेहद गुस्सा आ रहा था । उसे पापा से हमेशा की यह शिकायत थी । वे उसे अभी भी चार साल की बच्ची समझते हैं जो जब चाहा चाँटा मारा और पुचकार लिया । दुकान के सारे सेल्समैन कैसे देखने लगे थे उसे ; और वे ग्राहक-दम्पति भी, जो लट्ठा खरीद रहे थे ।

वह साड़ी ले भी लेती, पर क्या मन से पहन पाती ? माना, ग़लती उसकी भी है, पर यह ग़लती नहीं उसकी कमज़ोरी है, जिसे पापा अच्छी तरह जानते हैं । शो केस में लटकी चारखाने की हैंडलूम साड़ी देख वह ही मचली थी; "पापा ऽऽ यह साड़ी....।" दूकान में उसका एक ही पीस था । पापा ने अपने सामने नपवाई, क़ीमत पूछी और आदत से विपरीत बिना एक भी पैसा कम किए दाम चुका दिए । सेल्समैन तह जमा कर लिफ़ाफ़े में डालने लगा तो तनि पापा के कान में डरते-डरते फुसफुसाई, "पापा, यह हम पर खिल जाएगी ?" पापा बोले, "तनु, बेकार की बात नहीं करते; पकड़ो पैकिट !" तनि बिखर गई, "क्या करेंगे लेकर इसे ! कलर-स्कीम भी खास नहीं है और 'चैक्स' का डिज़ाइन अब तो पुराना होने आया । रहने दो !" पापा ने डाँटा, "डोन्ट बी फुलिश, ले चुकी हो तुम इसे ।" "पापा चाहे कुछ भी हो जाए, हम तो पहनेंगे नहीं इसे । ले लो तुम !" पापा बेहद चिढ़ गए "तनिया !" उत्तर में तनिया की आँखों में आँसू छलक आए; उन्हें न छुपाने का प्रयत्न किए, पोंछती हुई वह बाहर चल दी ।

पापा दुकानदार से खूब-खूब माफ़ी माँग तनिया पर झल्ला पड़े--"बेअक्ल लड़की है, खरीदने का शऊर नहीं तो घुसती क्यों है दुकान में ? बेवकूफ़, मेरी पोज़ीशन, कितनी गिराती है इस तरह ! पैसे लौटवाने में भिखारी तो मैं बना । बाइस साल की है, कोई बच्चा तो नहीं !"

सारे रास्ते पापा इस बाइस साल की सुबकती लड़की पर झींकते, खीझते आए । और अब उनका क्या है, मूड ठीक करने क्लब चले गए हैं, रात-बिरात कभी भी लौटेंगे । पूरे लम्बे-चौड़े घर में तनिया अकेली है । नाम को आया छोड़ जाते हैं जो सात बजे से खर्राटे भर सोती है । एक, दो, तीन...पाँच, पाँचों कमरे बिल्कुल सूने हैं, कहीं जीवन का कोई चिह्न है नहीं । सोफ़ा-सेट, डाइनिंग टेबिल, पलंग, किताबें, इन सब से कभी घर आबाद हुआ है !

अकेलापन व्यथा की कथा का एक नया परिच्छेद खोल देता है । तनिया कितनी ऊब गई थी, अपने इस सूने-सूने घर से ! हर कमरा जैसे काटने दौड़ता था । उसे याद आया--उन्हीं उदासी भरे दिनों में उसने नीचे वाले घर में जाना शुरू किया था । कितना मन लगता था कभी-कभी, स्नेह भाभी के बच्चों भरे परिवार में ! पापा के ऑफिस जाते ही वह पहुँचती--"भाभी ।" भाभी रसोई से कहतीं--"बैठ तनि मैं अभी आई ।" बेसिर पैर की गप्पों में कैसे समय गुज़र जाता था । कभी भाभी काम में लगी रहती तब भी वह बैठी रहती । बच्चों का शोर-शराबा ही देखना भला-सा लगता । भाभी थाली में मटर भर, बच्चों के बीच रख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातीं; दस मिनट में सारी मटरें चुक जातीं। कभी दूध बिल्ली पी जाती, भाभी झट चुन्नू को तीन आने और गिलास देकर दौड़ा देतीं। उस घर में जैसे जीवन हमेशा उत्ताल तरंगें भरता रहता। मदन भाई-साहब जब लौट कर आते तब तो विद्युत गति भर जाती सब में। कहीं भाभी कमीज़ पकड़ा रही हैं, कहीं हाथ धुला रही हैं, कहीं चाय थमा रही हैं। एक बच्चा जूते लाकर रखता, दूसरा मफ़लर ढूँढ़ कर लाता। वह भाभी से कहती, "भाभी, तुम्हारे दिन और रात तो जैसे फिसलते हैं....।" और भाभी शरमा जातीं "हाँ हाँ, तेरी हो जाएगी न जब, तब पूछूँगी...."

वही समय तो था जब तनि ने हौले-हौले, किन्हीं झीने-झीने तारों से सपने बुनने शुरू किए थे। वह बार-बार एक ही कहानी को फिर-फिर दुहराती, "उसका घर होगा, अपना घर। जहाँ वह होगी, वे होंगे।" जैसे सब कुछ यों ही होना था, ऐसे ही घर में पापा ने उसका रिश्ता तय कर दिया।

तनि दिन रात बस स्वप्निल-स्वप्निल घूमती : इंजीनियर की तो ड्यूटी भी खास नहीं होती। दोपहर में वे आ जाया करेंगे, साथ लंच खाएँगे, शाम को घूमने जाया करेंगे। यों छोटी-छोटी जगहों में ट्रांसफ़र बहुत होता है, पर अच्छा है....ज़्यादा एकान्त मिलेगा।

और तनिया ने दिन के हर पहर, रात की हर घड़ी जैसे यह सपना देख-देख अपनी इंद्रियों को कंठस्थ करा दिया।....जनवरी में विवाह हो जाना था....।

फिर अचानक उसके स्वभावानुसार उसमें एकदम शैथिल्य भर गया। यही तो मुश्किल रही तनिया के साथ। जब उसे जो मिलना होता और जैसे ही उसे भान होता 'यह सुख मेरा है', उसके मन से उस सब का सारा महत्व जैसे समाप्त हो जाता। पा लेने की स्थिति ही उसे प्राप्ति से वितृष्णा दिला जाती। तनिया को लगा : "कौन-सा सूनापन भर लेगी वह यों! एक अजनबी कौन उसे इतना प्रभावित कर लेगा! उसके इस सारे विस्तृत व्यक्तित्व को अपनी बाहों में कौन ऐसे बाँध लेगा कि फिर कभी उसे कोई प्यास न सताए! अगर उसके बाद भी असंतोष ही उसकी पूँजी रही!" आस-पास के परिवारों पर दृष्टि डाली तो तनिया का संशय बोला, "तुम्हें क्या पता, इनकी खिलखिलाहटों के पीछे कितने सुबकते सपने हैं! हृदय से कौन किसका कितना है!" परायी इच्छाओं के कटघरे में वह बन्द होना चाहेगी?

तनिया ने पापा से कहा, "पापा, हम सोचते हैं, शादी वगैरह हमें सूट नहीं करेगी।" पापा हँस दिए : "हाँ-हाँ शादी न हुई काले बुन्दे हो गए, तुम्हें सूट नहीं करेंगे।" तनिया गम्भीर हो गई : "सच कह रहे हैं पापा, आप कलकत्ते मना लिख दीजिए।"

"लाड़ लड़वा रही है बिटिया! अरे वह ज़माने लद गए जब तुम्हें मनाते थे। पता है तनि, अब हमें चाय बनानी आ गई है, टोस्ट भी बिना जलाए सेंक लेते हैं। फिर बताओ तुम्हें यहाँ क्यों बनाए रखें? अपने ठौर-ठिकाने बैठो, छुट्टी पाकर हम भी तीर्थ-वीर्थ करें।" पापा मज़ाक को फैलाते रहे। तनिया भन्ना उठी, "मुझे पता है आपका तीर्थ! अब आधी रात तक क्लब से लौट भी आते हो, तब वह भी नहीं रहेगा। ऐसे आपको बिगड़ने नहीं दूँगी, क्या समझा है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस मना लिख दो उन्हें। हमें नहीं जाना आपको छोड़ कर।"

कलकत्ते वालों ने बेहद बुरा माना था। खुसफुस कहना भी शुरू कर दिया था अब : 'अजी पढ़ी-लिखी लड़की है, पड़ गई होगी किसी चक्कर में, मना कर दिया। बड़ी तेज़ होती हैं ये आजकल की लड़कियाँ!' पापा ने ज्यादा दुख नहीं मनाया, बेटी को हृदय से लगाए रखने का उन्हें कम मोह न था।

इस सब के बाद जैसे तनिया बहुत सहज हो गई। जीवन जिस तरह अब तक था, वैसे ही चल पड़ा। वैसे ही पापा के देर से लौटने पर रूठना, स्नेह भाभी के पास बैठना, साँझ को सितार का रियाज़ करना और रात दस बजे तक अपने कमरे में नीला बल्ब जला कर सो जाना। जीने की इस व्यवस्था में कोई नूतन प्राप्ति नहीं थी, इसलिए इसमें वितृष्णा का भय नहीं था। यह तो जैसे उसकी चर्या थी। इसके प्रति कोई शैथिल्य नहीं था मन में, उत्साह भी नहीं। स्वयं पर बिताने को बहुत समय था, स्वयं के बारे में सोचने को खूब-सा अवकाश था, स्वयं को महत्व देने की अनेकों सुविधाएँ थीं। तनिया अपने आप में बड़ी सन्तुष्ट थी।

मकर संक्रान्ति आने वाली थी। तनिया स्नेह-भाभी से लड्डू बनाने का तरीका पूछने गयी तो देखा, भाभी जूते साफ़ कर रही थी, "यह काम भी शुरू कर दिया भाभी।" हाथ पल्ले से पोंछ कर भाभी उठीं, "अरे तनि, आज इतने नाराज़ होकर गए हैं। जूते साफ़ नहीं थे सो उन्हें चप्पल पहननी पड़ी। तू कैसे आई इतनी जल्दी?"

तनि को लगा वह भाभी की अपेक्षा कितनी सुखी है! विवाह कर लेती तो उसे भी जीवन में यही मिलता : 'कमीज़ के काज, मोजों की मरम्मत, झाड़ू बुहारी, जूतों की पॉलिश।' उससे निभता यह सब! भाभी की ज़िन्दगी में अब शेष भी क्या रहा है? उन्माद का आवेग तो कब का उतर चुका। चुन्नू, किकी और रुनु के आगमन के बाद तो अब आँ-आँ, ऊँ-ऊँ के सिवा और हो भी क्या सकता है। इस सब से वह दूर रही, यह उसने ठीक ही किया। उत्साह के नाद के बाद अब की मरघटी उदासी वह तो नहीं सह सकती थी।

विचारों को सँभाल कर बोली, "कुछ नहीं, लड्डू बनाना पूछना था। तुम काम करो, मैं फिर आ जाऊँगी।"

"बैठ, बता दूँगी अभी, झाड़ू और लगा लूँ इस कमरे की।"

"भाभी", जैसे तनिया की उलझन उससे कहलवा रही थी, "सच बताना, ऐसे.... इस तरह तुम खुश हो अपने में?"

स्नेह-भाभी ने आश्चर्य किया, "अपने में क्यों? खुशी तो सबके साथ बाँटी जाती है। मैं तो इनमें, बच्चों में, घर में खुश ही खुश हूँ।"

"न भाभी, झूठ मैं सुनूँगी नहीं। अपने मन के अन्तर्तम कोने में तुम संतुष्ट हो जीवन के इस दौर से...जब...जब सब चुक गया है—पीने वाले का उत्साह और पिलाने वाले का आग्रह? तुम्हें खीझ नहीं होती इस बोध से कि तुम्हारी कामनाएँ अब ऐसी हो गई हैं जैसे ताक़ पर रखे धूल भरे ग्रन्थ; भूले भटके जिनके अस्तित्व का आभास तो कभी रहा हो, पर अनुसरण का अभ्यास न हो।"

"तुम्हारा यह दर्शन तो मेरी समझ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता नहीं। इतना जानती हूँ, यह जो तुम ख़ामख्वाह आठों पहर सोचती रहती हो न, यह तुम्हें कोई सही राह नहीं ले जा रहा है तनि! हम कोई बवंडर नहीं हैं जो चलें, थमें और चुक जाएँ। मेरे आसपास जीवन की जो गति है, वह तो एक सी चलती रहने वाली हवा है, जिसका वेग-अवेग पता न चले, पर वह अनिवार्य है।"

तनिया ने सहानुभूति की हल्की-सी मुस्कराहट से पूछा, "तुम्हारे ब्याह को कितने साल हो गए भाभी?"

"यह तो मुझे याद नहीं। उन्हें भी शायद ही याद हो। अगर तारीख़ पूछो तब तो निश्चित ही मैं न बता सकूँ। हम तो पुराने चल्ला के हैं तनिय! ये ब्याह की वर्षगाँठें मनाना हमें आता नहीं। न मैं इसे ज़रूरी समझती हूँ। यह कोई सशरीर चीज़ नहीं है जिसका आज अब जन्म हुआ है और कल मरण होगा। तुम तो सम्बन्ध के प्रारम्भ की एक घड़ी मानती हो और अन्त की भी। सम्बन्धों ने कभी कोई कल, परसों नहीं जाना, आज भी नहीं। वे तो बस हैं और उनका होना ही स्वयं में सत्य है।"

तनिया बैठी एकटक भाभी के इस नये रूप को तक रही थी, या शायद मन ही मन कुछ तौल रही थी। रोशनदान से छन कर आती धूप उन पर पड़ी तो सिर में कुछ चमक आयी। तनि ने गौर से देखा: "अरे भाभी सफ़ेद बाल!"

भाभी उठती हुई बोलीं, "एक नहीं, काफ़ी हैं भई। किसी दिन अपने भैया के देखना, सिर में चाँदी बिछ गई है: क्या है तनि, आधी से ज़्यादा तो गुज़र गई, बाकी बची भी बस यों ही गुज़र जाएगी। हमारी तो तस्वीरें भी साथ-साथ धुँधली होंगी।"

आँखों तक आती सूर्य की किरण के साथ-साथ तनिया को जैसे कुछ बिंध गया। आत्म-साक्षात्कार के दर्पण के आगे उस क्षण उसे लगा उसकी मणि झूठी है। प्राप्ति के बाद की वितृष्णा से पलायन करते-करते आज वह इतनी दूर आ गई है कि अब उसके साथ-साथ धुँधली होकर मिट जाने के लिए कोई तस्वीर ही नहीं है। ● ● ●

इंगलैण्ड जैसा तो कत्तई नहीं

अंग्रेज़ लेखिका एन्जेला थरकेल अपने सोलहवें उपन्यास 'द ओल्ड बैंक हाउस' के प्रकाशन के सिलसिले में अमरीका पहुँची। अमरीका वे बहुत कम जाती थीं, इसलिये एक पत्रकार ने उनसे प्रश्न कर दिया: "श्रीमती थरकेल, अमरीका आपको कैसा लगा?"

श्रीमती थरकेल ने फौरन जवाब दिया: "बिल्कुल अमरीका जैसा। इंगलैण्ड जैसा तो कत्तई नहीं है।"

—शुभा वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

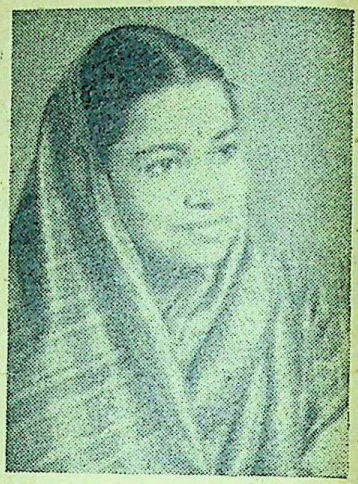

शशिप्रभा शास्त्री

• आत्म-परिचय

•मेरी शिक्षा-दीक्षा का क्षेत्र अधिकतर दिल्ली यूनिवर्सिटी रहा। वहीं से मैंने संस्कृत तथा हिन्दी में एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। बचपन से ही साहित्य में मेरी अभिरुचि थी। संगीत में भी मेरी रुचि पर्याप्त है। वातावरण एवं प्रोत्साहन का अभाव तथा कुछ सामाजिक बन्धनों की जकड़ के कारण अपने अध्ययन के दिनों में मैं कुछ नहीं लिख पायी। विवाहोपरान्त मैंने सन् छप्पन से लिखना प्रारम्भ किया। मेरी प्रथम कहानी 'इला' सन् '५६ में ही 'सरिता' में प्रकाशित हुई थी। अब तक मैं लगभग सौ से ऊपर कहानियाँ लिख चुकी हूँ। कुछ एकांकी भी लिखे हैं। एक छोटी-सी सामाजिक समस्या से सम्बन्धित एक उपन्यास "वीरान रास्ते और झरना" भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है।

•आजकल देहरादून अवस्थित महादेवी कॉलेज में हिन्दी विभागाध्यक्षा के पद पर हूँ। मेरे पति डॉ० धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री, स्थानीय डी० ए० वी० कॉलेज में ही संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं। उनका निर्देशन तथा प्रोत्साहन मुझे अपनी दिशा की ओर बढ़ने में बहुत सहायक रहा है।

टूटते किनारे और फूटी हुई दरगाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रतिमा ! सच बताओ, कभी तुम्हारी इच्छा नहीं होती कि तुम्हारा एक नन्हा-सा घर हो, एक प्यारा-सा वर हो, हँसते खिल-खिलाते बच्चे हों....नहीं, नहीं, बच्चे नहीं, एक सुन्दर गुलाब-सा बेटा हो, एक जूही की कली-सी बिटिया हो ? आजकल तो इस परिवार-नियोजन ने ही नाकों दम कर रखा है...." मुस्करा कर अपनी बात को यों ठीक करती हुई, सामने कुर्सी पर बैठी भारी-भरकम श्रीमती दीक्षित ने कहा ।

श्रीमती दीक्षित प्राध्यापिकाओं के लिए कालेज में प्रिंसिपल हैं और घर पर एक सखी । आज प्रतिमा घूमती हुई उनके क्वार्टर में आ पहुँची तो इधर-उधर की अनेक बातों के बाद वे फिर अपना वही घिसा-पिटा प्रश्न ले बैठीं ।

"नहीं, सच कहती हूँ मेरी इच्छा कभी नहीं होती । मेरा कभी जी नहीं करता कि मेरा एक नन्हा-सा घर हो....मेरा दिल किसी बात को नहीं करता ।" प्रतिमा ने इस बार खीज भरा उत्तर दिया और उठ खड़ी हुई ।

"अच्छा, उस दिन मुझे याद कर लेना जिस दिन नारी की यह चाह तुम्हारे सीने में सिर उठाये, तुम्हें बेबस बना दे । मैं कहती हूँ अभी कोई उम्र नहीं बीती है । मेरी बात मानो मिस प्रतिमा...." एक बड़ी-बूढ़ी की तरह श्रीमती दीक्षित ने फिर सलाह दी, पर प्रतिमा के मुँह में एक ही स्वर था—

"मेरे सीने में यह घिनौनी चाह कभी सिर नहीं उठायेगी, कभी नहीं उठायेगी; मैं आप को विश्वास दिलाती हूँ ।" एक कड़वा दम्भ-भरा उत्तर देकर प्रतिमा अपने क्वार्टर में लौट आयी ।

उसका चित्त आज बेहद अशान्त था । श्रीमती दीक्षित के सामने वह अपने मन का राज़, अपने जीवन की सबसे बड़ी छलना क्यों नहीं रख पाती ? यदि वह एक बार साहस करके सब कुछ कह दे, तो श्रीमती दीक्षित उसे बार-बार यों न कुरेदें; पर फिर वही भय कि सब कुछ सुन कर वे क्या कहेंगी ? हलक़ से निकली खलक में फैली, तिल का ताड़ बन जायेगा । हो सकता है वह अपनी नौकरी से भी हाथ धो बैठे.... सोचते-सोचते प्रतिमा बेचैन हो उठी । चाय का एक गरम कप पीने का, गुलमुले बिस्तर में लेट कर किसी पुस्तक के पृष्ठों में खो जाने का, कहीं घूम-फिर आने का,—किसी के लिए भी तो आज उसका मन नहीं हो रहा था । रह-रह कर श्रीमती दीक्षित के चलते समय कहे हुए शब्द ही सीने में अड़-अड़ रहे थे—

जिस दिन वह चाह, तुम्हारे सीने में सिर उठाये, तुम्हें बेबस बना दे...." और घर की सीढ़ियों पर चढ़ती हुई, प्रतिमा छत पर आ खड़ी हुई । मुक्त आसमान के नीचे बैठ कर रो लेने से न जाने कैसी शान्ति मिलती थी ।

श्रीमती दीक्षित को क्या मालूम कि उनकी प्रतिमा ने प्रेम प्यार के जितने परिच्छेद पढ़े हैं, उतने शायद किसी ने देखे भी न होंगे और आज फिर ज़िन्दगी के बिछड़े क्षणों की स्मृतियाँ उसकी आँखों के आगे आकर खड़ी हो गयीं ।....

⊙ ⊙ ⊙

यूक्लिप्टस के लम्ब तडंग पेड़ों की कतार, एक चौड़ी सड़क और एक सूनी शाम । वह कालेज से लौट रही थी कि सहपाठी जितेन्द्र ने उसे राह में ही रोक लिया था और बड़े भावुक स्वर में बोला था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रतिमा, मुझे कब तक यों ही लावारिस बनाये रखोगी ?" प्रतिमा की आँखों में जितेन्द्र की स्मार्ट मुद्रायें बसी ज़रूर थीं, किन्तु जितेन्द्र के अन्तर में भी उसके लिए कहीं कोई अंकुर जम चुका है, यह उसने उसी क्षण जाना, जब जितेन्द्र उस शाम इतना बड़ा साहस अचानक कर बैठा। किन्तु साहस का जवाब साहस से देते हुए प्रतिमा ने अकस्मात उत्तर दिया था—

"जितेन्द्र जी, प्रेम की परिणति मिलन के द्वार पर होती है। क्या वह मिलन सम्भव है ? यदि नहीं तो व्यर्थ की भाग-दौड़ से क्या ?" कह कर आज पहली बार प्रतिमा ने जितेन्द्र के सामने पलकें उठाईं तो जितेन्द्र को लगा, बदलियों की रेशमी झालर में दो सुनहरी मछलियाँ मचल उठी हों; एक आह भर कर बोला—

"मैं उसी के लिए प्रार्थी हूँ....मैं उन व्यक्तियों में नहीं हूँ जो...."

"ठीक है, पर आप जानते हैं, मैं किस परिवार की हूँ। मेरे वर्तमान ठाठ-बाट से आप किसी भ्रम में न रहें, इसलिये मैं पहले ही अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहती हूँ। मैं राय साहब के एक मुसलमान मुंशी की लड़की हूँ, जिसकी माँ उसको जन्म देते ही ग़ायब हो गई थी और जिसको राय साहब की पत्नी ने रुई के फाहों से दूध पिला कर पाला था। उनके चले जाने के बाद राय साहब की विधवा बेटी, अपनी दीदी की छत्रछाया में ही मैं पली हूँ, बढ़ी हूँ। दीदी ने सब कुछ मेरी मर्ज़ी पर छोड़ दिया है, पर मैं नहीं चाहती मैं कोई ऐसा काम करूँ, जो दीदी के माथे पर कलंक का कारण बने। आपका निर्णय दीदी को सुना देने की सामर्थ्य मुझ में है।"

सुन कर जितेन्द्र दो क्षण निरुत्तर खड़ा रहा था। फिर दबी ज़बान से उसने कहा था—

"तो आप जन्म से मुसलमान हैं ?"

"जी हाँ, मेरे पिता मुसलमान थे। मेरी माँ कोई कश्मीरी युवती थीं। वैसे मैं हिन्दू घराने और हिन्दू वातावरण में पली हूँ। कोई नहीं कह सकता कि मुसलमानी परिवार की कोई छाप भी मेरे ऊपर कहीं है।"

"वह तो देख ही रहा हूँ, तभी तो....मैंने तो कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि...." झेंप को मिटाने के लिए जितेन्द्र इस बार खिलखिला कर हँस पड़ा, फिर बोला—

"आपका नाम, काश ! गुलेनार हुआ होता।"

"वह आप रख लीजियेगा।" न जाने कहाँ से इतना सारा साहस सामने खड़ी प्रतिमा में भर गया था कि सदा की संकोची तरुणी एकदम इतनी मुखर हो उठी थी।

"आप ठीक कह रही हैं। विश्वास रखना, सब कुछ ऐसा ही होगा। मेरे पिता पक्के आर्यसमाजी हैं, अपनी माँ का मैं लड़ैता बेटा हूँ, मेरी बहनें मुझ पर बलिहार जाती हैं, मेरी पसन्द को कोई नहीं ठुकरायेगा।" और सुन कर प्रतिमा का तार-तार झनझना उठा था। एक गुदगुदाहट, स्फूर्ति की एक गहरी चमक, उल्लास की एक हल्की महक इस क़दर मन में बस गयी थी कि घर जाते ही दीदी ने पूछा था—

"प्रतिमा, आज बड़ी खुश नज़र आ रही है।"

"सच दीदी, आज मैं खुश हूँ। किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विश्वास के सागर ने मुझे चारों ओर से जो बाँध लिया है।" प्रतिमा के जन्म की कहानी दीदी के लिए सिर-दर्द जो बन गयी थी। कई बार दीदी ने प्रयत्न किया था कि वह बिन बताये ही प्रतिमा को किसी के मत्थे मढ़ दे, पर रत्ती-भर-सी बात बिना पैरों के ही चल कर दीदी से पहले हर जगह पहुँच जाती थी और हर द्वार प्रतिमा के लिए बन्द मिलता था। आज एक युवक ने प्रतिमा को विश्वास दिया है, जान कर दीदी प्रसन्न हो गयीं; पर अपनी पूजा की रेशमी धोती को चुन्नटों में बाँध कर खूँटी पर लटकाते हुए, उन्होंने फिर प्रश्न किया था——

"कहीं वह सागर भी उथला तो नहीं है ?"

"वह मैंने नहीं देखा; बस इतना जाना है कि सागर की ज़ंज़ीरें मज़बूत हैं, इसलिये डूबने का डर नहीं है।"

"सच !" दीदी की आँखें आह्लाद में खुल कर बड़ी-बड़ी हो गयी थीं और सन्तोष की रेखाएँ खूब गहरी होकर गालों के चारों ओर खिच चुकी थीं।

पर सागर स्वयं डूब गया था। विश्वास की ज़ंज़ीरें, काँच के कँगूरों की तरह, खनन-खनन कर टूट गयी थीं। पूरे वर्ष भर वायदों की बाहों में घेरे रख कर परीक्षा-परिणाम निकलने की आखिरी शाम को जितेन्द्र ने उन्हीं माँ-बाप के ऊपर ढाल कर नाता तोड़ लिया था, जिनके प्यार और सिद्धान्तों की बल्लियाँ लगा कर, उसने प्रतिमा को डूबते कगारों पर रोके रखा था।

⊙ ⊙ ⊙

अँधेरे के साये घने होते जा रहे थे और हवा बहुत सर्द थी। प्रतिमा परेशान हो छत से उतर कर कमरे में पहुँच, बिना कुछ खाये-पिये, बिस्तर पर जा लेटी, पर विचारों की नाव उसे अब भी खे रही थी। कमरे में आकर उसने प्रकाश के लिए स्विच को नहीं टटोला था। किन्तु स्मृति के कोने में वह चमकीली दोपहर इतनी तीव्रता से चमक उठी थी कि आज के इस अन्धकार में भी उसकी आँखें चौंधिया गयी थीं——जब उसके जीवन का मधुर प्रभात था। वह छत पर कपड़े फैलाने जाती, अपने घटाओं जैसे बाल सुखाने जाती और विजयकृष्ण अपने छत की मुँडेर पर कोहनी टेके उसकी प्रतीक्षा में आँखें बिछाये खड़ा रहता। प्रेम-प्यार की दुनियाँ, प्रतिमा के लिए तब बिल्कुल नयी थी। विजय उसको घूर कर देखता और वह अपनी पलकें नीचे झुका लेती। उसके हृदय में छिपे सोते को सोते-सोते ही जगा दिया। दीदी ने सब कुछ समझ लिया था। विजय तब बी० ए० में था, प्रतिमा इन्टर में।

"राधा कृष्ण की जोड़ी अच्छी रहेगी, वह अपने कर्त्तव्य-भार से इतनी जल्दी मुक्त हो जायेगी।" सोच कर दीदी ने विजय की माँ से संकेत किया था। विजय की माँ ने छूटते ही पूछा था——

"दान दहेज की बात करो बीबी, लड़की तो सामने है ही।" प्रतिमा के जन्म के सम्बन्ध में तब कोई नहीं जानता था।

"दान दहेज, तुम तो जानती ही हो चाची; मेरे पिता रायसाहब थे ज़रूर, पर खिताबी ही रह गये थे अब तो वह।... हाँ यकीन रखना, अपनी सामर्थ्य से ऊपर ही करके रहूँगी।"

माँ ने नाक-भौं सिकोड़ कर तभी अपनी अस्वीकृति की घोषणा कर दी थी, पर भोली प्रतिमा, विजय के इस घोषणापत्र को ही सीने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लगाये बैठी रही थी कि विजय उसके बिना नहीं जियेगा, उसके लिए मर मिटेगा, अपने परिवार वालों को मिटा देगा। यदि स्थिति ऐसी आयी तो वह शहंशाह जहाँगीर की नूरजहाँ की तरह उसे शेर-अफ़गन से भी छीन लायेगा।

विजय के साहस के सामने उसकी माँ की इन्कारी प्रतिमा को बेमानी लगी थी। विजय के दो वर्ष के लिए विदेश चले जाने पर भी वह विजय के साहस की कमन्द से ही लटकी बैठी रही, किन्तु भारत की शस्य-श्यामला धरती पर क़दम रखते ही माता-पिता के दिल-दिमाग़ को संतुलित बनाये रखने की आड़ ले एक बेहद मालदार बाप की बेहद बदसूरत बेटी से प्रतिमा की आँखों के सामने ही विवाह रचा कर विजय ने अपने अनुपम साहस का परिचय दिया था। इसके पश्चात् तो प्रतिमा के जन्म के सम्बन्ध में भी बेतुकी चर्चायें चारों ओर फैल गयी थीं।

और तब प्रतिमा एकदम चुप, कि अब फिर कभी कुछ नहीं होगा। कि तभी... नरेश...

नरेश ने प्रतिमा के बारे में सब कुछ बिना बताये ही जान लिया था और जान कर वह स्वयं उसकी दीदी के पास पहुँचा था। बड़े आदर से दीदी के चरणों में झुक कर उसने बड़ी सधी हुई स्पष्ट आवाज़ में कहना शुरू किया था—

"दीदी जी, मैं प्रतिमा के ऑफ़िस में ही काम करता हूँ।" प्रतिमा को याद आया एम० ए० करने के बाद कोई ढंग की अन्य नौकरी न मिलने की स्थिति में उसने एक ऑफ़िस में काम करना शुरू किया था। "आपकी मर्ज़ी के बिना मैं कोई काम नहीं करना चाहता। मैंने सुना है प्रतिमा की आप प्राणाधार हैं, पूज्य हैं, तो मेरी उनसे बढ़ कर हैं। अपनी प्रतिमा का दायित्व आप मुझे सौंपना उचित समझें तो...."

दीदी की आँखों में आँसू डबडबा आये थे। वह रुँधे कण्ठ से बोली थीं—

"प्रतिमा मेरी बेटी की तरह है। इससे ज़्यादा मैं उसके लिए क्या कहूँगी कि वह ज़िन्दगी भर कभी दुखी न हो। मेरे प्यार के थाले से हट कर, मेरी यह अनमोल बेल एक ऐसे थाले में जम जाये, जहाँ से यह कभी न उखड़े; पर...."

"पर क्या दीदी जी, मैं कोई दिखावा नहीं चाहता। दान दहेज से भी मुझे नफ़रत है, किसी के जन्म, जात से मुझे कुछ नहीं लेना-देना। शास्त्रों ने कहा है, मणि घूरे पर से भी उठा ली जाती है तो मेरे लिए तो आपकी यह बहन मणि तुल्य ही है, इसे मैं अपने हृदय से लगा कर रखूँगा। अधिक कह कर मैं शालीनता के घेरे से बाहर नहीं आना चाहता।"

और उस दिन दीदी ने ठाकुरजी की आरती घंटे भर उतारी थी। अगले दिन ही कथा बैठायी थी और नरेश की इच्छानुसार तीसरी शाम ही शादी रचा दी थी। इस विवाह में न कढ़ाई चढ़ी थी, न मेहमान आये थे, न बाजे-गाजे बजे थे। मन का सच्चा मीत मिल जाने पर प्रतिमा को इन चीज़ों की दरकार भी कहाँ रह गयी थी!

ससुराल पहुँच कर जिस पलंग के दर्शन प्रतिमा ने किये थे, उस पर पहले से ही एक रुग्णा लेटी थी, जिसकी बग़ल में एक नन्हीं-सी बच्ची अँगूठा चूसती पड़ी थी।

प्रतिमा ने प्रश्नात्मक मुद्रा से देखा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरेश ने अच्छी तरह समझा दिया था--

"तुम्हें इससे कोई मतलब नहीं। तुम्हें मैं राज करवाने लाया हूँ। तुम्हारा राज, मेरी तिजारत। अभी परसों मैं तुम्हें बम्बई ले चलूँगा--नगरियों की महानगरी बम्बई, जिसकी चकाचौंध देखने के लिए मैं तुम्हें कोठे पर बैठा दूँगा--वैभवशाली कोठा, जहाँ हज़ारों तुम्हें सिजदा देने आयेंगे, तुम्हारे क़दमों में बिछ-बिछ जायेंगे। तब तुम्हें अपनी क़ीमत मालूम होगी। ऑफ़िस में पहले दिन देखते ही मैंने समझ लिया था कि यह एक ऐसा फूल है, जो खन्दक में पड़ा सड़ रहा है; जिसे अपने को पहचानने का मौक़ा नहीं मिला है। मैं तुम्हें, तुम्हारी क़ीमत दिखाऊँगा, तुम्हें उस दरगाह के माफ़िक बना दूँगा, जिस पर सिजदा देने के लिए हज़ारों व्यक्ति खिचे चले आयेंगे।"

तब उसके बाद? वह याद करना नहीं चाहती।

◎ ◎ ◎

प्रतिमा ने घड़ी की ओर देखा--अँधेरे में रेडियम की चमचमाती नन्हीं-सी सुई, तीन के अंक को छू लेने के लिए मचल रही थी। हवा के एक सर्द झोंके ने खिड़की से आकर सवेरा होने का सन्देशा सुना दिया।

आज पूरी रात उसकी आँखें गलती रही थीं, पर वेदना का पहाड़ फिर भी अटल था। एक अननुभूत बेचैनी ने उसे चारों ओर से बाँध लिया था और उससे छूटने के लिए वह परेशान हो उठी थी। करवट लेकर उसने निश्चय किया कि ऐसे काम नहीं चलेगा--आज सवेरे ही श्रीमती दीक्षित के पास जाकर वह अपनी ज़िन्दगी का कच्चा चिट्ठा ज़रूर सुना देगी, कम से कम वे तो उसे फिर यों न कुरेदेंगी। जिन्होंने उसे एक दिन आश्रय दिया था, बिना कुछ पूछे-ताछे उसकी एप्लीकेशन को तुरन्त मंजूर कर लिया था--अपनी ज़िन्दगी के बारे में वह उनसे राई रत्ती नहीं छिपायेगी। वह उन्हें बता देगी कि उसके लिए अब ज़िन्दगी में कोई चाह नहीं रह गयी है। उसके वे सब किनारे सदा-सदा के लिए टूट चुके हैं, जिन्होंने सिर उठा-उठा कर एक दिन उसे थामे रहने का भरोसा दिया था। समाज और परिवार की गली-सड़ी परम्परा रूपी दुनालियों ने उनको एक-एक कर उड़ा फेंका है। आज वह एक फूटी हुई दरगाह है, जिस पर कोई सिजदा देने नहीं आयेगा जिसको किसी के सिजदे की अब परवाह भी नहीं रह गयी है। क्यों करती हैं तब वे उससे उस चाह की बातें, जो उसके सीने में कभी सिर नहीं उठा सकतीं। प्रतिमा बिलख उठी।

◎ ◎ ◎

मुँह धोकर सवेरे जब वह श्रीमती दीक्षित के पास पहुँची, तो यह देख कर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि श्रीमती दीक्षित के ड्राइंग रूम में वही नरेश बैठा है, जिसने उसे आखिरी बार प्रेम के सब्ज़-बाग़ दिखाये थे, जिसने उसकी ज़िन्दगी को ज़िन्दगी के एक ऐसे आखिरी मोड़ पर ले जाकर खड़ा कर दिया था कि वहाँ से भाग कर यदि वह इस मन्दिर में शरण न ले लेती तो उसकी धज्जी तक न बचती। पाँच वर्ष के लम्बे काल ने नरेश के व्यक्तित्व में बहुत थोड़ा अन्तर डाला था। उसकी बग़ल में ही एक नन्हीं लड़की बैठी थी--यही कोई पाँच-छः साल की--जूही की कली की तरह सफ़ेद, बर्फ़ की तरह चुपचाप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमा के हृदय की धड़कनें बहुत-बहुत तेज़ हो गयी थीं। जिस राज़ को बताने के लिए वह स्वयं दौड़ कर आयी थी, वह राज़ खुद खुला बैठा था--प्रतिमा को देखते ही श्रीमती दीक्षित चीखीं....

"अरे तुम इस समय अच्छी आ पहुँचीं, देखो तो सही यह एक पागल सुबह से आकर बैठा हुआ है, कह रहा है--

'बीबी जी, तुम्हारा नाम सुन कर आया हूँ। इस लड़की को दाख़िल कर लो।' न जाने किस मूर्ख ने इसे मेरा नाम बतला दिया है। मैं समझा रही हूँ यह कालेज है, छोटी बच्ची के पढ़ाने की व्यवस्था यहाँ नहीं है, पर...."

"बहन जी, इस बच्ची का इस दुनियाँ में कोई नहीं है। इसकी माँ आग लगा कर मर चुकी है। मैं बड़ा भारी व्यापार करता था वह फ़ेल हो गया है; पुलिस मेरे पीछे है। इस बच्ची की जान बचाने को मैं इधर-उधर फिर रहा हूँ।" श्रीमती दीक्षित के अधूरे वाक्य को जोड़ता हुआ नरेश कह बैठा। प्रतिमा की ओर देखने की मानो उसे इस समय सुध-बुध ही न थी।

"अरे भई, इस बच्ची को तुम किसी अनाथालय में भरती करा दो। कहो तो मैं करवा दूँ। है तो बड़ी प्यारी, पर इसे कौन अपने पास रख सकता है! बड़ा भारी साहस चाहिए इसके लिए।" श्रीमती दीक्षित ने बड़ी गंभीरता से कहा।

प्रतिमा का दिल अब भी धड़धड़ा रहा था। कहीं यह उजड़ा हुआ नरेश उसकी ओर नज़र न उठा दे; पर नरेश ने नज़र न उठायी। बच्ची की उँगली पकड़ कर वह दरवाज़े की ओर बढ़ चला कि तभी प्रतिमा ने ज़ोर से कहा--

"मिसेज़ दीक्षित, इस बच्ची को मैं रख लूँगी, आप ले लीजिये।"

"तुम इतना बड़ा साहस करोगी, क्यों? तुम्हें मालूम नहीं यह आदमी कैसा है, यह लड़की इसकी है या किसी की चुरा कर लाया है। कितना रिस्की है, जानती हो? करोगी इतना साहस? मैं कुछ ज़िम्मेदारी नहीं लेती।" श्रीमती दीक्षित बोलते-बोलते हकला गयीं।

"आप इसे ले लीजिये। मैं सब बातें फिर बताऊँगी।" नरेश ने इस बार दृष्टि उठायी तो वह ठोकर खाकर गिर पड़ा, फिर उठ कर बच्ची की उँगली छोड़ लड़खड़ाते क़दमों से सिर झुकाये बाहर निकल गया। बच्ची चीख कर रो उठी तो प्रतिमा ने खींच कर छाती से लगा लिया--

"बताओ भई, मामला क्या है?" श्रीमती दीक्षित ने मुस्करा कर पूछा। प्रतिमा ने बच्ची को भींचते हुए कहा--

"नारी की उसी चाह ने आज मेरे सीने में सिर उठाया है, मुझे बेबस बना दिया है, जिसकी ओर आपने कल संकेत किया था।" और फिर श्रीमती दीक्षित की जाली की आलमारी में से बिस्कुट उठा कर बच्ची के मुँह में छुलाती हुई, वह मुस्कराती ही रही। इस क्षण वह कैसे कहती कि यह नारी की वह चाह नहीं है, पुरुष के दम्भ को चूर करने की वह आह है, जो एक फटी हुई दरगाह के सीने में से अचानक फूट उठी है।

■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जया नागर

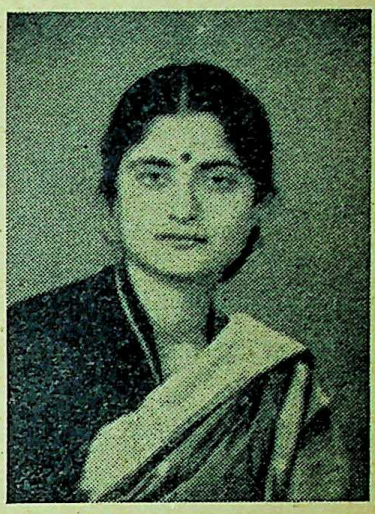

• आत्म-परिचय

गुजराती, किन्तु अब उत्तर प्रदेश में स्थानान्तरित। दिल्ली में रह कर इन्द्रप्रस्थ कॉलिज से बी० ए० 'ऑनर्स' प्रथम श्रेणी में। कॉलिज से फेलोशिप तथा भारतीय छात्रवृत्ति के लिए आवेदन-पत्र दिया, परन्तु विवाह हो जाने से सब कुछ अधूरा रह गया।

कॉलिज कहानी-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार पाने पर पत्र-पत्रिकाओं में भेजने का मन हो आया। तीन-चार कहानियाँ 'सरिता' में छपीं। एकाध 'माया', 'परख' आदि में भी।

रुचि : एक विज्ञान छोड़ और सभी बातों में रुचि है--घर सजाने में, घूमने-फिरने में, घर में पुस्तकों के सहारे कुछ एकान्त सन्ध्याएँ काटने में, क्रिकेट-कमेण्ट्री में। वाद-विवाद में बहुत अधिक है, भले ही दैनिक पत्र पढ़ कर ही हो, या और किसी बात पर। अच्छे सिनेमा देखने में सबसे अधिक है। संगीत और साहित्य में, किताबों में और पत्र-पत्रिकाओं में खूब रुचि है।

अरुचि : आपने पूछी नहीं, पर लिख दूँ : खाना पकाना ही सबसे अधिक अरुचिकर है।

वर्तमान कार्यक्षेत्र : दो बच्चे सँभालना। बदली पर इधर-उधर घूमते-घूमते एक स्थान पर न टिक पा सकने का क्षोभ। बच्चों को इधर की बदली के बाद अच्छे स्कूल में दाखिल कराने के अथक प्रयास; फिर से घर सजाने, नए नौकर-धोबी-भंगी खोजने के प्रयत्न।

लेखन सम्बन्धी भावी योजनाओं के बारे में क्या लिखूँ, स्वयं पता नहीं। आगे अध्ययन का प्रोग्राम अवश्य है।

सुबह का भूला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● ●जाने क्या बात है, वर्ष भर बाहर रह कर जब भी एकाध महीने की कॉलिज की छुट्टी में घर लौटती हूँ, एक तटस्थ दृष्टिकोण से सब कुछ देख पा सकती हूँ। अम्मा हैं, दादी हैं, पापा हैं, बुआ हैं, पर सब कुछ पर छायी हैं बड़ी भाभी। उनके बिना कैसे काम चलता रहा होगा इस घर का, सोचना कठिन है। बड़े भय्या का विवाह हुआ था तब मैं सातवीं-आठवीं में रही होऊँगी। भाभी ने कैसे आकर हमारे इस संयुक्त-परिवार के जीवन को मीठा-मीठा-सा कर दिया। दादी किसी के हाथ का खा जायें भला; आसमान गिर पड़े उस दिन। बस एक बड़ी भाभी ही हैं जो अम्मा से भी इस बात में बाज़ी जीती हुई हैं। दादी तो घर भर में घोषणा कर चुकी हैं—"मरने के बाद के भी रीति-रिवाज़ जो कुछ होने हैं, बड़ी भाभी की ही वसीयत हैं।"

छोटे अतुल को तो उन्होंने पाला ही है। अब छोटी भाभी की रेखा भी उनके बिना रह नहीं पाती। इस घर के लिए जैसे सचमुच ही वह विदेह हो गई हों। अपना सब कुछ होम कर चुकी हैं। अपनी चाह-अभिलाषा जैसे उनकी कुछ हो ही नहीं। कुछ ऐसी आयु भी तो नहीं, यही अठारह-उन्नीस वर्ष की कैशोर्य-यौवन-सीमा पर ही दादी-अम्मा के इस सूने आँगन में वह पायल की रुनझुन ले आयीं थीं। तब अतुल केवल ढाई-तीन साल का ही था। बहुत दिन पीछे हुआ था। अम्मा झेंपी-झेंपी-सी रहती थीं, सो उन्हीं को सौंप निश्चिन्त हुईं। अब वही अतुल चौदह-पन्द्रह के बीच में है। पर आयु और बड़ी भाभी का क्या सम्बन्ध! चिर-तृप्त वह, जैसे भरा सागर हों। यौवन की इच्छाएँ-आकांक्षाएँ जैसे उनके निकट सदा अस्तित्वहीन ही रही हों। कभी-कभी मुझे तो झुँझलाहट हो आती है, भाभी की इन्हीं शहीदाना बातों पर। क्या अम्मा-दादी-बुआ और उन्हीं से तंग-संकुचित विचारों की परिधि से घिरी रहने वाली स्त्रियों को प्रसन्न रखने के अतिरिक्त भाभी का और कुछ ध्येय नहीं? और कोई काम नहीं? उनके प्रशंसा-अनुग्रह की इतनी आकांक्षा क्यों, जिन्हें औदार्य की आँक नहीं। बिरादरी भर की बड़ी-बूढ़ियों में उदाहरण बन कितना कुछ नहीं गँवाया होगा उन्होंने। भला अब उस गौरव को बनाये भी रखो। होगा, अपने वश का तो यह रोग नहीं। शरीर-मन को कुचल कर ऐसी सीता-सी बहू बनना। सीता भी कितना कुछ गँवा कर प्रतिष्ठित हो पाईं—मन्दिर-मन्दिर स्थापित हैं, घर-आँगन में अर्चित हैं, पर उस मन की वेदना कौन समझेगा, जिसे फटी धरती ही अपने भीतर ढाँक सकी।

कितनी प्यारी हैं भाभी! इतनी आयु हो गई पर लता-सा यह तन! बड़े भय्या ने कितने अरमान सँजो रखे होंगे, कितने उत्साह-भरे थे वह और कितने नटखट! पर जाने क्या बात है सब के लिए भाभी के पास समय है केवल एक बड़े भय्या के लिए ही नहीं निकल पाता। बात सुनी तो है बार-बार इस बहाने उस बहाने कुलवधू का प्रिय के सामीप्य को भागना कुछ प्राचीन मर्यादा की सीमा में नहीं है, पर ऐसा भी क्या है; बड़े भय्या का क्या मन नहीं है?

छोटी भाभी हैं कैसी चपल...! राजी भय्या के आने का समय हुआ नहीं, फि चीखती रहें महाराजिन और उसके सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्मा, दादी सभी। वह एकदम ग़ायब। हँसते-हँसते रेशमी काँजीवरम् साड़ी के आँचल से वातावरण को रंगीन बनाती, रेखा, बबलू को बड़ी भाभी को सौंप, पिछले द्वार से भागी जा रही हैं। हम सभी रहते हैं साझीदार इस भागाछिपी के। बड़ी भाभी चोरी-चोरी बबलू की दूध की बोतल भर रही हैं, रेखा को तस्वीरों से, रंगीन पैन्सिलों से बहला रही हैं....कैसे चित्र-से खिंचे आ रहे हैं आँखों के आगे। अतुल से ज़रा छुट्टी पाई तो रेखा, बबलू तैयार हो गये। मुझे याद है कभी बड़े भय्या कहते भी, "आओ आज मेरे साथ चलो बाहर", तो भाभी विवश-सी हो जातीं--"आज? इस वक्त? अम्माजी के दूध के पराठे करने हैं; फिर बाबूजी के नागपुर से दोस्त भी तो आ रहे हैं आज, उनका भी तो इन्तज़ाम करना है। फिर कभी चलूँगी।" कभी भूले-भटके सिनेमा का प्रोग्राम बना भी और भाभी मान भी गयीं तो उसी दिन आ टपका कोई और फिर? भरी गृहस्थी का घर है; आजकल के इकल-सूरों का तो है ही नहीं जो होली-दीवाली ही कभी कोई आता हो। अब भाभी की हिम्मत कहाँ? फिर कभी!

ऐसे बहलावे अब बड़े भय्या को भुलावा नहीं दे पाते--अब जहाँ तक मेरा विचार है वह कहते ही नहीं कुछ इस आने-जाने के विषय को लेकर।

और जब कभी भाभी, भय्या के साथ गई भी हैं तो कुछ ऐसे थोड़े ही। बड़ी भाभी का कहीं बाहर जाना भी एक उत्सव-समारोह से कम नहीं होता। दादी की पूरी किस ओर किस बर्तन में ढँकी है, अम्मा की नीली छपी साड़ी कहाँ रखी है, उनके बँगला-पानों का कोटा कितना शेष है या अतुल और रेखा के स्वेटर के पैटर्न की कौन-सी लाइन पड़नी है, प्रातः नाश्ते की क्या तैयारी करनी है--ऐसा ही और बहुत कुछ सहेजना भी तो होता है। फिर छोटी भाभी की छिपी-छिपी निगाहें: "जीजी, कब तक आओगी? आज वो 'जंगली' जाने को कह रहे हैं, रात के शो में।"

बड़े भय्या झुँझलाये-से एक ओर खड़े, "अभी आई भाभी, भय्या!" की पुकारें सुनते मौन खड़े रहते। कभी-कभी झुँझला कर हमारे सामने ही भाभी पर झल्ला भी पड़ते, "तुम्हें तो मेरे लिये कभी समय ही नहीं रहता, जाओ कुछ और बाक़ी हो तो वह भी कर आओ।"

अभी उसी दिन भय्या की लाई हुई सफ़ेद चन्देरी साड़ी में लजाती-मुस्कराती भाभी जैसे ही दादी के दरबार में 'जाँच-परीक्षण' को आ खड़ी हुईं, मानो पृथ्वी डोल उठी। जबलपुर वाली बुआ उनसे भी दो क़दम आगे, "ये सफ़ेद रँग ही रह गया क्या पहनने को, और तो इस जग से उड़ गये!" क्षण मात्र में साड़ी उतरवा दी और सुहागिन के सुहाग मेरे भय्या क्रोध-क्षोभ से भरे खड़े ही रह गए।

मैं भी उस रात भाभी-भय्या के साथ निमन्त्रित थी। वैसे निमन्त्रित हो न हो, बड़ी भाभी के साथ तो एकाध पुछल्ला बाँधा जाना एक रीति ही है। भय्या राह-भर कुछ बोले नहीं। भाभी ने बात शुरू भी की तो उसका उत्तर न दे, बोले--

"सन्तोष हो गया उन्हें खुश करके! अब फेंक देना उस साड़ी को...जला डालना!" भाभी अपमान को हल्की-सी हँसी की ओट कर गईं--"अब इसमें क्या है, तुम तो समझते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, बड़ी-बूढ़ी हैं, इन्हीं बातों से खुश हो जाती हैं।"

"तो उन्हें ही खुश रखो!" एक अजब 'फ्रीज़िग-प्वाइंट' पर हम तिरते रहे...जिसकी शीतलता असह्य थी।

पर इस बार दो बरस के अन्तर से जो आई हूँ तो देखती हूँ बड़े भय्या कितने बदल गये हैं....कितने गम्भीर--नहीं-नहीं, कितने बुझे-बुझे-से।

दादी पर फिर से क्रोध आ गया, अपनी ही चिन्ता कर लें। उनकी आयु में वही बहुत है पर जब तक घर भर के सब लोगों का चलना-फिरना, उठना-बैठना नहीं देख लेंगी सब प्रवाह रुक जायगा, दुनिया स्थिर हो जायगी। इतना ही नहीं--अपने घर के अतिरिक्त पूरी बिरादरी मुहल्ले की चिन्ताएँ भी तो उन्हें हैं। अम्मा भी अब उसी ढाँचे में ढलती जा रही हैं कुछ-कुछ। अपने लिये ब्याह कर लाई हैं क्या भाभी को? शुरू-शुरू में दादी का जी भरना कर्त्तव्य था। फिर पिताजी के तबादलों पर स्वयं ले भागती रहीं। कैसी जोड़ी है--सलोनी--एक राम ही रह गये अयोध्या में बनवासी से!

शेव करते भय्या, नैपकिन से ब्लेड पोंछ रहे हैं। शेव का पानी माँगते हैं। भाभी को फ़ुर्सत नहीं। अपने बच्चे नहीं हुए तो क्या--इधर नौकर-महाराजिन से घिरी दादी-बुआ की पुकारों से दबी अतुल की शैतानियों के बीच भाभी को सच समय कहाँ? पानी मैं ले जाती, टूटे बटन अम्मा टाँक देतीं, कभी मैं भी। भय्या का मन भाभी की उन लम्बी-पतली उँगलियों में ही उलझ-उलझ कर न रह जाता होगा। जब आधा घर सो चुका होता तो थके-थके भाभी के कदम बढ़ रहे होते अपने कमरे की ओर।

अब बड़ी होने पर मैं कह भी देती--"भाभी सबके लिए तो समय है, एक बेचारे भय्या ही बेगारी के हैं क्या?"

भाभी हँसते-हँसते उत्तर देतीं--"वह तो मेरे हैं ही नीरू रानी! पिताजी, अम्मा दादी कब-कब आयेंगे सेवा कराने...उनके लिए भी तो...."

अधबीच ही उनकी बात पर से अपना ध्यान हटा कर मैं मन ही मन कहती, "ऐसे ध्यान में न खोयी रहो भाभी! यह मनोविज्ञान का युग है। कहीं पछतावा ही हाथ न पड़े। और फिर कोई कारण भी तो हो। माना, सबके प्रति ही कर्त्तव्य होता है, पर जिसकी सहधर्मिणी होकर आई हो उसके साथ भी धर्म निबाहो, कुछ बुराई भी पल्ले पड़ जायगी तो ऐसा विशेष हर्जा न होगा।"

इधर तीन-चार दिन से निरन्तर टिफ़िन में रात को खाना भरते देख मुझसे रहा नहीं गया, पूछ ही बैठी--

"किसे भेज रही हो भाभी?"

टिफ़िन के डिब्बे ठीक-ठीक बैठा कर प्लास्टिक की नीली टोकरी में रखती हुई भाभी बोलीं--"तुम्हारे भय्या को।"

पता लगा बड़े भय्या अब निरन्तर तीन-तीन, चार-चार दिन तक रात को घर आते ही नहीं, अक्सर ही ऑफ़िस में सो रहते हैं। लम्बे-लम्बे दौरों पर निकल भागते हैं। आकर घर करें भी क्या--और आश्चर्य यह, किसी को इसमें कुछ 'विशेष' दिखाई ही नहीं पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदत के अनुसार बड़ी भाभी सब का सब कुछ करती रहें, पर लगता है अब सागर में तूफ़ान आने ही को है। जाते भय्या की पीठ पर अटक-अटक पड़ती दृष्टि। इस बार शकुन अच्छे हैं, पर अब भय्या ही बदल-से गये हैं। पहले की-सी रुक-रुक कर भाभी का निहोरा करती, 'मूड' आँकती नज़र अब नहीं। कभी भूले से भले ही पड़ जाती होगी। शेव का पानी जाने कब किससे कह कर मँगा लेते हैं, पता ही नहीं चलता। कब घर से निकल जाते हैं, कब आ जाते हैं इसका भी कुछ पता नहीं। मुझे याद है शुरू में कितनी-कितनी देर वह कहीं जाने से पहले घर में इधर-उधर करते रहते। शायद भाभी समय निकाल पायें और चलें। अब वह सब कहाँ? बड़ी भाभी खाना लिये चुपचाप बैठी हैं--अक्सर ही बड़े भय्या कहीं खा आते हैं।

भाभी कमरे में आलमारी खोल रही हैं, बन्द कर रही हैं, चाहिये कुछ नहीं; पर बड़े भय्या को पुस्तक से ऊँची दृष्टि करने का अवकाश नहीं। सब देख-देख कर दुःख होता है। अब क्यों नहीं आती वह यशोगाथा काम? क्यों नहीं धधकते-जलते मन को शीतल कर जाती?

इधर कुछ दिनों से दादी भी हैरान हैं। इस बड़ी को भी छोटी के गुण लगते जा रहे हैं। पता नहीं ध्यान कहाँ रहता है, कोई काम ढंग का नहीं।

रेखा का लाल कार्डिगन जहाँ था, वहीं पड़ा है। नीली धोती में पाईपिंग लगानी पड़ी है। अम्मा हैरान हैं। घर में आटा खत्म होने को है पर दुलारी को बुला कर कोठे से गेहूँ निकलवाने की कोई सुधि नहीं है। विवाह के इतने वर्षों बाद भाभी ने जाना है--क्या खो गया, और किसके अर्थ खो दिया।

कल भय्या जा रहे हैं। उन्होंने अपनी बदली आख़िर करा ही ली है। इस बदली की बात सोच कर मन की इतनी उदासी में भी हँसी आ जाती है। जब-जब भय्या ने बदली की बात चलाई घर में तूफ़ान आ गया, प्रलय मच गया। अम्मा के आँसू, दादी के प्रवचन, बुआ की अनमाँगी सलाहें और भाभी की निवेदन करती निगाहें....भय्या रह ही गये--रह ही गये। पर अब उन्हें रोकना कठिन है।

चारों ओर कमरे में भय्या की ही चीज़ें बिखरी पड़ी हैं--कमीज़ें, किताबें, कैमरा, सूटकेस, अटैची....सब खुले पड़े हैं। भय्या के कमरे के भीतर से होकर छोटे कमरे की राह है। वहाँ घर-भर की कुछ पुरानी पुस्तकें पड़ी हैं। मन नहीं लग रहा; आकर उन्हें ही उलट-पुलट रही हूँ--कोई इस कमरे में आकर झाँकता तक नहीं। कितनी धूल-वूल हो रही है। अरे! यह 'शाकुन्तलम्', यह 'पद्मावत', शेक्सपीयर की यह 'मिडसमर-नाइट्स ड्रीम' सब बी. ए. में लगी थीं। कॉलिज की याद ने मीठी-मीठी टीस हृदय में भर दी। कैसी पिकनिक-सी रहती थी उस पेड़ के नीचे! हमने उसका नाम 'महिम' रखा था, शरत् के गृहदाह के सम्मान में।

यह सूटकेस-सा बन्द हुआ--भय्या आकर कपड़े 'पैक' कर रहे होंगे।

बड़े भय्या की किताबें हैं, छोटे भय्या की हैं, मेरी हैं, कुछ पापा के समय की भी हैं। पन्ने पीले पड़ गये हैं--एकदम खस्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ लगाये फटे जाते हैं। अबकी इनमें से कुछ किताबें ले जाऊँगी--बेकार पड़ी हैं यहाँ। वहाँ अकेले पड़े-पड़े पढ़ने को तरस जाते हैं।

यह किसकी आवाज़...बड़ी भाभी हैं क्या? इतने में भय्या की आवाज़, "रहने दो, रहने दो, मैं कर लूंगा।" शायद भाभी कपड़े रखने लगी होंगी।

क्षण भर चुप्पी रही, फिर भाभी बोलीं--

"तुम मुझसे नाराज़ क्यों हो? क्या हो गया है आख़िर? ऐसे क्यों जा रहे हो?"

हल्की-सी अवज्ञा भरी भय्या की हँसी की आवाज़ आई, बोले, "और यहाँ रह कर करूँ भी क्या?" भाभी का अच्छा-सा नाम है, पर भय्या उसे ले भी नहीं सकते। घराने की मर्य्यादा का उल्लंघन होता है। पर इस समय नाम लेकर ही कहा--

"तुम इस समय आ कैसे पाई अनुराधा! उधर तुम्हारे बिना सब काम चल कैसे रहा होगा; दादी तुम्हारी पुकार मचाये होंगी।"

धीमी-धीमी सिसकियों की आवाज़। कुछ देर मौन, फिर बड़े भय्या की ही आवाज़, "रो क्यों रही हो, अब तो तुम्हें समय ही समय मिलेगा, मैं बाधा रूप ही तो था तुम्हारे लिये... थोड़ी-बहुत तुम्हारी चिन्ता ही कम हो जायेगी।" भाभी की सिसकियों की ध्वनि आती रही।

भय्या के स्वर में आक्रोश हो आया, "पता नहीं, तुम्हें क्या सन्तोष मिलता होगा। पढ़ना है, लिखना है, हज़ार चीज़ें हैं, दुनियाँ कहाँ भागी जा रही है, कुछ पता नहीं, बस रहे तुम्हारी रसोई, दादी, अम्मा और तुम। बदली को कितनी बार कहा पर तुम्हें पसन्द न आया। रहो तुम अब, मैं नहीं रह सकता। और दो-चार को समेट अपनी छाया में कर लेना। कल्पवृक्ष के नीचे से मैं तो भिखारी ही लौटा।" स्वर कुछ नरम हो आया

"जो कुछ कहना हो कह डालो, मैं तो आज स्वयं अपराध स्वीकारने आई थी सच मैंने तुम्हें दुख ही दुख दिये, अब मुझे प्रायश्चित कर लेने दो, मेरा सभी कु तुमसे है। मुझे अपने साथ ले चलो, तुम्हा बिना मैं यहाँ नहीं रह सकती"--भाभी इत कुछ कह कर ही जैसे क्लान्त हो उठी एकदम मौन, न कपड़े रखने की ध्वनि, पाँवों की आहट, न ही और कोई आवाज़ इतनी देर हो गई, चुप्पी असह्य हो उठी हाथों से कानों को ढँके शुतुर्मुर्ग की-सी नीति अपनाये भय और लज्जा से भरी अपनी दृष्टि मैंने द्वार की सन्धि की ओर फेर दी--

उन्नाबी साड़ी में लिपटी, पलंग प औंधी पड़ी भाभी की खुली बिखरी भीगी केशराशि में उलझती भैय्या की उँगलियों की झलक नेत्रों के सामने चपला की-सी गति से कौंध गई।

दोनों आँखों को हाथों से ढँक मैंने अवरु लिया, पर उस रस से मैं भी भीज गई। म नाच उठा। भाभी कितने हल्के-फीके रं पहनने लगी थीं: आज उन्होंने सिन्दूरी रं पहना है। अब मचे प्रातः कोहराम, चीखतें रहें बुआ-दादी अपनी-अपनी सुविधाओं के पिताजी के कमरे में अविराम जाते चाय के प्यालों की गति थम जाय। अधूरी-तैया स्कूल जाती रेखा को सँभाले छोटी भाभी करे पूरे वह बीच पड़े कार्डिगन.....

और हाँ, मेरे भी तो कुछ ब्लाउज़ सी को थीं बड़ी भाभी। अब भाभी अपने सहे पथ पर मुड़ गई हैं। और फिर यहाँ आती जाती नहीं रहेंगी क्या? ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिका मोहिनी

• आत्म-परिचय

मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में एम० ए० अंतिम वर्ष की छात्रा हूँ। पंद्रह वर्ष की आयु से लेखन की ओर मेरी रुचि है। जीवन को पास से देखना और नये-नये परिचय बढ़ाना मेरा स्वभाव है। पाँच-छः वर्ष पूर्व मेरी रचनाएँ, मोहिनी 'रश्मि' के नाम से प्रकाशित होती रही हैं। उसके बाद बीच में किन्हीं भौतिक कारणों से मेरा लेखन-कार्य रुक-सा गया। एक लम्बे व्यवधान के पश्चात्, एम० ए० में आकर मैंने अपने चारों ओर साहित्यिक वातावरण पाया और कवियों-लेखकों के घेरे में, मेरी सोई हुई चेतना को नया बल मिली, प्रेरणा मिली और आजकल मुझे ऐसी अनुभूति होती है कि मेरे 'लेखक' का नया जन्म हुआ है, मेरी कविताओं और कहानियों को नई गति मिली है, नया मोड़ मिला है। ऐसा, मित्रों से भी सुनती हूँ। मेरा इरादा अभी अध्ययन-क्रम को बनाए रखने का है। इसके अतिरिक्त मेरी इच्छा खूब-खूब पढ़ कर तथा जीवन को बहुत नज़दीक से देख कर, अपने अध्ययन और अनुभव के आधार पर हिन्दी साहित्य को कुछ 'नया' देने की है। इसके लिए भविष्य में, मैं अपने विकास के अनुकूल परिस्थितियाँ ही चुनूँगी।

चुप के दायरे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● पिछले दो दिनों से मीनल चुप-सी है। उसे लगता, उससे बोला नहीं जा रहा, हँसा भी नहीं जा रहा; इस सब में उसके होंठ दुखते हैं। तब वह महसूस करती कि वह उदास है, उसका मन नहीं लग रहा। क्या चुप और उदास, एक दूसरे के पर्याय हैं? वह उदास नहीं है, केवल चुप है--वह स्वयं को समझाती; परन्तु उसे ऐसी अनुभूति बार-बार होती कि उसका मन नहीं लग रहा, दो दिनों से ही नहीं लग रहा, कहीं भी नहीं लग रहा। कोई स्पष्ट कारण उसके समक्ष नहीं था, और न ही कोई समाधान। वह अपनी स्मृति में पिछले सप्ताह की बातें दोहराती है। संभव है, कोई सूत्र ऐसा दीख पड़े, जो उसकी चुप्पी का कारण हो।

'कार्ल्टन' में काफ़ी पीते हुए देवेन ने धीरे से उसके बालों को छूकर कहा था, 'तू बहुत अच्छी है, मीनू।' मीनल को मज़ाक सूझा, वह बोली, 'अच्छी से क्या अभिप्राय है आपका? यानि शक्ल-सूरत से अच्छी हूँ या....' 'ओह! तो 'अच्छी' का अर्थ आप यह ले रही हैं?' देवेन ने भी उपहास किया, 'देख मिनी, तेरा रंग बहुत काला है, तेरी नाक बहुत मोटी है....' और मीनल ने रूठने का अभिनय किया था, 'मुझे मालूम है, मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती।' देवेन ने तब उसकी दोनों चोटियों को पीछे से खींच दिया था, 'तू पगला है मन्ना, तुझे कुछ नहीं मालूम।' प्यार से देवेन ऐसे ही बोलता है, वह मीनल को किसी एक नाम से नहीं पुकारता। उसका प्रत्येक सम्बोधन नया होता है और मीनल अकेले में बहुत बार अपने नाम दोहराया करती है, उँगलियों पर गिना करती है। उसी दिन मीनल ने कहा था, 'देवेन, अपनी एक दुर्बलता तुम्हें बताऊँ? पिछले दिनों हर छोटी-मोटी बात को लेकर मैं तुम पर सन्देह करती थी, तुम पर विश्वास नहीं हो पाता था, मैं स्वयं व्यथित होती और सदैव तुम्हें अपने से बहुत दूर पाती, परन्तु ऐसी प्रत्येक मनःस्थिति के पश्चात् मैंने तुम्हें ही विजयी पाया और स्वयं पराजित होने पर मैं भीतर ही भीतर बहुत लज्जित हुई। मैं कितनी कमज़ोर हूँ देवेन!' चम्मच को टेबिल पर घुमाते हुए देवेन ने कहा था, 'तुममें कितना साहस है मीना, अपना सही-सही विश्लेषण तुम स्वयं कर लेती हो, तटस्थ होकर ठीक समझ लेती हो। तुम जैसा समझदार साथी पाकर मैं संतुष्ट हूँ। तुम्हारी इतनी निश्छलता, सहजता देख कर मैं सोचता हूँ, मुझे भी तुम्हारे प्रति इतना ही ईमानदार रहना चाहिए।' उसके बाद दोनों मौन हो गये थे। दूसरे दिन देवेन का पत्र मिला था। उसके प्रत्येक पत्र को वह कई बार पढ़ती है, इसीलिए शब्द-शब्द उसे कंठस्थ रहता है।--

"मेरी मीना,

कल, मैंने तुम्हें जिया है: एक दूसरे को जीने का तात्पर्य यही तो है न, कि एक ख़ास तन्मयता से दूसरे का बोध प्राप्त करना। कम से कम, यह उस बात की पहली स्टेज तो है ही। ऐसे क्षणों की कीमत बहुत ज़्यादा होती है। वे चरम क्षण होते हैं। मुझे तो लगता है कि इस तरह का समर्पण, पुलक-प्यार के विस्तार को और-और कोमल करता है। मैंने कल पूरी एकाग्रता के साथ तुम्हें जिया। मालूम नहीं, इस तरह की स्थिति को तुम कैसा समझो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक यही और ऐसे ही मैं डायरी में लिखता। डायरी में दैनिक जीवन से अधिक ईमानदारी होती है। मेरे मन्ने, इसीलिए मैं तुम्हें अपने भीतर का यह पृष्ठ सौंपता हूँ।

बस तुम्हारा,
देवेन।''

'और मेरी डायरी का हर पृष्ठ तुम ही हो'--मीनल अपने हृदय की तहों तक देवेन को ले आई है। उन्होंने एक दूसरे का विश्वास सँजोया है, एक दूसरे के सम्मुख स्पष्ट होने का साहस बटोरा है।

उसी डाक से उसे पराग का लिफाफा भी मिला था। पराग कहानी लिखता है। मीनल का पत्र-मित्र है। उनकी मित्रता पिछले दो वर्षों से है। अभी तक दोनों ने एक-दूसरे को देखा नहीं है। पत्रों में ही विचारों का आदान-प्रदान हुआ है, साहित्य-चर्चा हुई है, कविता-कहानी को लेकर बहस हुई है, और इस तरह से दोनों एक-दूसरे के मित्र हैं। पिछले दिनों पराग ने अपना छाया-चित्र मीनल को भेजा था तथा प्रतिदान के लिए अनुरोध किया था। मीनल ने अनसुना कर दिया। पराग का अनुरोध आग्रह में बदलता गया और मीनल टालती रही। एक पत्र में पराग ने लिखा था, 'क्या आप को भय है कि मैं उसका दुरुपयोग करूँगा? मैं विश्वास दिलाता हूँ....केवल आपको देखने की लालसा है।' यह पढ़ कर मीनल को बहुत हँसी आई थी--पराग ने कितने निम्नस्तर से सोचा है। आखिर वह बिना बताए यह क्यों नहीं समझ पाया कि अपना छायाचित्र भेजकर उसके दिल्ली आने पर मैं उसे कैसे खिजाऊँगी? इतना बढ़िया मज़ाक, वह छोड़ना नहीं चाहती; साथ ही वह यह भी जानना चाहती है कि पत्रों में बातचीत करने के ढंग के आधार पर किसी का व्यक्तित्व कहाँ तक पहचाना जा सकता है? किसी व्यक्ति के पत्रों में और उसके वास्तविक जीवन में कहीं कुछ 'सामान्य' भी है, 'कॉमन' भी है, अथवा नहीं? वह देखना चाहती है कि पराग उसके पत्रों के सहारे उसकी सहेलियों के ग्रुप से उसे ढूँढ़ पाने में समर्थ होता है अथवा नहीं। उसने उत्तर में पराग को लिख दिया था, 'जब हम मिलेंगे तो मेरी ओर से आपको पहली भेंट मेरा छायाचित्र होगा।' इस बार पराग ने सिर्फ़ इतना ही लिखा था, 'आप कुछ लापरवाह-सी हैं, किसी की क़द्र करना नहीं जानतीं।'

पराग से मित्रता के आरम्भ में, मीनल ने देवेन को एक दिन पराग का लिफ़ाफ़ा पकड़ा दिया था, 'पढ़ लीजिए।' देवेन ने उसे वैसे ही लौटाते हुए कहा था, 'नहीं, तुम रखो। किसी का पत्र नहीं पढ़ना चाहिए।' 'मैं 'किसी' हूँ?' मीनल का स्वर रुँआसा हो आया था, 'मेरे सम्बन्ध क्या आपके नहीं है? हमारी सब बातें क्या एक-दूसरे की नहीं हैं?' देवेन ने कहा था, 'तुम प्रत्येक बात में भावुकता को प्राथमिकता क्यों देती हो? दो व्यक्तित्व, मन और आत्मा से एक होते हुए भी क्या अपना कुछ निजत्व नहीं रखते? उस निजत्व को पाने का आग्रह, हस्तक्षेप है।' 'पर मैं तो आपको स्वयं दे रही हूँ।' उसके बाद देवेन का उत्तर अत्यन्त कड़ुवा था, 'जो स्वयं अपने पत्र पढ़ाने का आग्रह करता है, उसके 'सबकांशस' में यह भय रहता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं कोई उसे ग़लत तो नहीं समझ रहा ?' मीनल को बहुत झुँझलाहट हुई थी। उसने सोचा था, 'क्या देवेन यह नहीं सोचना चाहता कि उसके ही 'सबकांशस' में कहीं ईर्ष्या हो सकती है ?' मीनल ने ऊपर से कुछ नहीं कहा। वातावरण की कटुता को दूर करने के लिए वह अनायास ही हँस दी, 'अब समझी। आप इस तरह की छूट अपने साथ भी चाहते हैं। हैं ना ?' देवेन जब गंभीर होता है तो जल्दी ही अपने को सँभाल नहीं पाता, फिर वह बहुत देर तक सीरियस रहता है। मीनल के मज़ाक ने उसे कहीं भी नहीं छुआ। उसने उतनी ही गंभीरता से कहा, 'मेरे अपने सिद्धान्त हैं, मैं उन्हें मानने के लिए किसी अन्य को बाध्य नहीं करता। हर किसी के जीने का ढंग अलग होता है। तुम अपने ढंग से जिओ और मुझे मेरे ढंग से जीने दो।' ऊपर से मीनल ने दिखाना चाहा था कि वह ठीक है, परन्तु उसका हृदय भीतर ही भीतर घुटता जा रहा था;--देवेन उसके साथ अपने सिद्धान्तों को क्यों ले आता है ? वह उसके साथ साधारण ढंग से क्यों नहीं रहता ? हर बात में बहस क्यों करता है ? फिर धीरे-धीरे उसने सोच लिया था,--वह भी अब समझदारों की तरह रहेगी। और अब वह पराग के पत्र, देवेन से पढ़ने का आग्रह नहीं करती। ऐसी ज़रूरत उसे महसूस नहीं होती।

मीनल बार-बार सोचती है परन्तु किसी भी बिन्दु पर टिक नहीं पाती। उसने देवेन से कहा था, 'मेरा तुम से भी बोलने को मन नहीं होता। मिल लूँ तो ठीक, न मिलूँ तो ठीक। आजकल तुम्हारी याद भी नहीं आती।' देवेन पर जैसे कोई प्रभाव न पड़ा। उसका चेहरा पूर्ववत था। उसने शिकायत तक न की। मीनल की पीठ थपथपा कर सिर्फ़ इतना कहा था, 'अरे! तो इसमें इतना दुःखी होने की क्या बात है ? कभी-कभी मन होता है चुप रहने के लिए। मैं इसे कुछ बुरा नहीं समझता : एक-दो दिन में सब ठीक हो जाएगा।' मीनल का धीरज और टूट गया। उसे थोड़ा दुःख हुआ--'यदि मैं हमेशा-हमेशा के लिए वैराग्य ले लूँ, तो भी ये तटस्थ रहेंगे।'

एक बार पहले भी कुछ ऐसी ही अनुभूति मीनल को हुई थी। देवेन से मिलना था। उसी दिन उसे रीना के साथ पार्टी पर जाना पड़ गया। वहाँ से बहुत चाहते हुए भी, वह शीघ्र छूट नहीं पाई, और रीना के साथ टैक्सी में आते हुए उसने घड़ी में देखा था कि वह पूरे तीन घंटे लेट है। मीनल सोच रही थी, आजतक कभी देर नहीं हुई, और फिर इतनी देर ? देवेन नाराज़ होगा; वह उसे कैसे मनाएगी ? रीना बार-बार कह रही थी, 'अब जाने से कोई फ़ायदा नहीं।'

उसने कहा था, 'देख रीना, जिस दिन देवेन से मिलना हो, उस दिन को दूसरा प्रोग्राम नहीं, समझी।' अनायास जैसे कोई बात याद आ गई। उसने क्षुब्ध मन से सोचा था, 'हमेशा चाहे कितनी देर हो जाए, आएँगे साहब बस में ही। यह नहीं कि स्कूटर ही ले लें।' देर तक प्रतीक्षा करने के बाद जब भी उसने देवेन को बस से उतर कर पैदल आते देखा है, उसे बहुत खीज हुई है। देवेन हमेशा यही कहता है, 'जब देर हो ही गई, तो मैंने सोचा, जहाँ तुमने इतनी देर प्रतीक्षा की, वहाँ दस मिनट में क्या अन्तर पड़ता है ? चलो, बस ही ले लें।' मीनल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बहुत क्रोध आता है, वह बोलती नहीं। देवेन भी चुप रहता है, वह उसे नहीं मनाता। तब दोनों किसी रेस्ट्राँ में चाय पीकर चुपचाप लौट जाते हैं। ऐसे ही समय, कई बार उसने सोचा है, देवेन को उसकी ज़रूरत नहीं है, वह उसकी क़द्र नहीं करता। पर अब वह ऐसा नहीं सोचती। देवेन की आदत है, कोई क्या करे? अब, उसे देवेन की ऐसी बातों पर आश्चर्य नहीं होता। वह समझ चुकी है, देवेन का स्वभाव है। वह आवश्यकता से अधिक बौद्धिक है। पहले मीनल को झुँझलाहट होती थी, क्रोध आता था; वह लड़ भी पड़ती थी। तब उसे कितनी ही बार ऐसी अनुभूति हुई थी कि उससे चुनाव ग़लत हो गया। एक हृदय और दूसरा मस्तिष्क--क्या दोनों साथ-साथ निभा सकेंगे? सारी उम्र की तल्ख़ वह नहीं सह सकती। उसे, वहाँ से वापस लौटना होगा, जहाँ वह आज 'प्यार' शब्द के सहारे चली आई है। देवेन ने तब उससे कहा था, 'क्या यह हम दोनों की ही उपलब्धि नहीं होगी कि दो भिन्न व्यक्तित्व, दो भिन्न संस्कार, दो प्रबल अहम्, हाथ में हाथ लेकर उम्र-भर साथ चलते रहें?' अब तो वह उसका स्वभाव जान गई है। जहाँ पहले उसे लगता था, देवेन उसकी उपेक्षा कर रहा है, वहाँ अब वह उसकी आदत समझ कर छोड़ देती है। अब जितनी भी देरी से देवेन आए, वह उसका हँस कर स्वागत करती है; कभी शिकायत भी नहीं करती, कारण भी नहीं पूछती। एक दिन देवेन ने बहुत प्यार से उसे कहा था, 'तुझे मुझ पर विश्वास नहीं है, पगली? क्या तू सोचती है, मैं अपने मीने को जान-बूझ कर कष्ट दूँगा?' अब वह सोचती है, 'ठीक है, कोई आवश्यक काम पड़ गया होगा, और फिर इतनी समझदारी तो होनी ही चाहिए कि हम एक-दूसरे को इतनी छूट दे सकें।'

उस दिन मीनल को छोड़, रीना उसी टैक्सी में वापस लौट गई थी। थोड़ी देर वे दोनों मौन चलते रहे थे। फिर मीनल ने बहुत बार क्षमा माँगी थी। 'अगली बार से ध्यान रखना--' इतना कह कर देवेन दूसरी बातों में उलझ गया था। मीनल को दुःख हुआ, देवेन ने शिकायत तक न की? उसने कई बार उसकी बात काट कर कहा था, 'तुम मुझे डाँटते क्यों नहीं? तुम मुझसे नाराज़ क्यों नहीं होते? मुझे सज़ा दे लो, देवेन!' तब देवेन ने धीरे से मुस्कुरा कर चलते-चलते उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा था, 'सीपी पर एक छंद लिखने देना, यही सज़ा है।' देवेन कभी कुछ साफ़-साफ़ नहीं कहता। वह ऐसे ही कवियों के लहज़े में बोलता है। मीनल की आँखों को उसने सीपी की उपमा दी है, और प्यार करने को वह छंद लिखना कहता है। फिर, और नये नाम आ जाते हैं, और नयी बातें आ जाती हैं। एक दिन मीनल बहुत चुप थी। उसका चुप रहने को ही मन था। उसे लगा था, 'चुप रह कर भी तो हम कितना कुछ कह जाते हैं।' अचानक उसने अपने होठों से देवेन का हाथ छू दिया। देवेन ने चौंकने का अभिनय करते हुए कहा था, 'अरे! संगीत की यह कैसी धुन थी?' तब मीनल को बहुत शर्म आई थी। दोबारा उसके होठों से अपना हाथ छुआ कर देवेन ने कहा था, 'संगीत की ये धुनें मैं तुम तक ही लौटा दूँ, तो?' उसे बहुत शर्म आई थी। घर आकर उसने डायरी में लिखा था, 'देवेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हर बात निराली होती है। प्यार की बातें करने का ढंग भी उनका अलग है, वे सब लोगों से कितने अलग हैं, कितने भिन्न हैं।'

मन नहीं लगा तो मीनल अपनी डायरी के पृष्ठ पलटती रही। आज उसे लग रहा था, वह सचमुच बदल गई है। डायरी के पृष्ठ उलटते-पलटते उसका अतीत उसके सम्मुख घूम गया--उसका अपना अतीत, जो आज उसे बहुत अपरिचित लगा। कल की मीनल और आज की मीनल में कहीं भी तो कोई साम्य नहीं था। उसके सम्मुख दो और मीनलें खड़ी थीं--दो व्यक्तित्व, दोनों ही एक दूसरे के लिए सर्वथा पराये-से। आज मीनल ने सोचा, 'कल की मीनल के भी अपने कुछ कुछ सिद्धान्त थे, कुछ मान्यताएँ थीं, कुछ विश्वास थे। वे सब आज टूट गए। उसमें भी इतनी ही दृढ़ता थी, आत्मबल था, आत्म-विश्वास था। फिर वह टूट कैसे गई? इतनी हल्की और कमज़ोर कैसे हो गई? तो क्या पिछला अस्तित्व ग़लत था? क्या अब तक वह ग़लत ज़िन्दगी जी रही थी?' और मीनल को लगा, उसके 'सबकांशस' में बैठी पुरानी मीनल आज उसे बोलने नहीं दे रही। रीना सच कहती है, पराग ठीक लिखता है, 'अब मैं कुछ और हो गई हूँ, मुझे किसी की क़द्र करनी नहीं आती, मैं कुछ लापरवाह-सी हूँ!'

कि वह लेखिका हैं!

स्त्रियाँ प्रायः काम से खिलवाड़ करती हैं, काम नहीं करतीं। वह जादू की मुसीबतों में विश्वास रखती हैं। इसी से वे जादू के प्रतीकात्मक संकेतों के भावपूर्ण कारनामों से बौखला भी जाती हैं। वे बीआवस कला-छात्र की तरह नकली चेहरा लगा लेती हैं और रंग-कूची की साज-सज्जा से अपने को लैस कर लेती हैं। पर जब प्रतिच्छाबि अंकित करने का वक्त आता है, तो उनकी आँख सफ़ेद कपड़े से हट कर दर्पण पर जा टिकती है, किन्तु फूलों का गुच्छा या सेब का कटोरदान, अपने आप ही 'केनवस' पर नहीं उतर आयेगा?

यही हाल उनके लिखने का है। अपनी मेज़ पर बैठी, वह अपने मन में बहकी-बहकी कथाओं को उलटातीं-पुलटातीं, इस सहज बहाने से अपने को बहलाये रहती हैं, कि वह लेखिका हैं। पर, उन्हें तो वास्तव में सफ़ेद कागज़ पर काले शब्द अंकित करने हैं, और उन शब्दों को दूसरों की आँखों के लिये अर्थ भी देना है। और तब, उनकी परिकल्पना का छल प्रकट हो जाता है। क्योंकि कोई भी कला-कृति परिकल्पना मात्र तो है नहीं; यह तो एक ठोस मन्तव्य है, और इस मन्तव्य को पूरा करने के लिए, लेखिका को अपने कार्य का ज्ञान होना चाहिए।

—मेरी बाशकर्टसेव

(संकलन : अनीता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्षनन्दिनी भाटिया

• आत्म परिचय

श्रीमती हर्षनन्दिनी भाटिया, एम० ए०, साहित्यरत्न। रुचि प्रारम्भ से ही साहित्य की ओर रही। विद्यार्थी-जीवन से ही कहानी, कविताएँ, ललित लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया था। लोक-गीतों में विशेष रुचि प्रारम्भ से ही रही है। अनेक बार आकाशवाणी से लोक-गीत प्रसारित हो चुके हैं। 'लोक-जीवन' एवं 'नवशत शृंगार' दो प्रमुख क्षेत्र रहे हैं। 'लोक-जीवन' से सम्बन्धित, 'ब्रज-साहित्य में गोवर्द्धन पूजा', 'शरद् की स्वर्ण-किरण छिटकी', 'राधाप्यारी जनम लियो है', 'नन्हीं नन्हीं बुँदिया रे सावन का मेरो झूलना', 'ब्रज में होरी रे रसिया', 'चर्खा तथा लोक-तत्त्व' आदि विषयों पर ललित लेख लिखे हैं। नवशत के अन्तर्गत 'भारतीय सौभाग्यचिह्न बिंदी' तथा 'नवसत में मेंहदी' अनुसन्धानपरक लेख हैं। आजकल अलीगढ़ में भारतीय महिला विद्यालय की प्रधानाचार्या हैं।

ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैनन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● गंगा-यमुना के मध्यान्तवर्ती अन्तर्वेद का ही निसर्ग सुषमा-मण्डित दक्षिणी-पश्चिमी भाग ब्रजमण्डल नाम से अभिहित होता है। ८४ कोस में विस्तृत, प्रकृति की उन्मुक्त लीलास्थली कनकवर्णा वसुन्धरा की परिक्रमा ही तो ब्रज-संस्कृति की खुली पाठशाला है, जिसमें ब्रज-लोक-जीवन से सम्बन्धित न जाने कितनी कथाएँ, कितनी परम्पराएँ पढ़ी जा सकती हैं। इसी ब्रजभूमि के प्रति कविवर रसखान का हृदय उमड़ पड़ा—'नैनन सौं रसखान कबौं ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।'

ब्रज के लोक-जीवन का प्रधान तत्व है मस्ती, जो वर्ष भर के लोकोत्सवों में आद्योपान्त झलकता है; जिसका प्रमुख एवं विशेष अनुभव होली और सावन पर किया जा सकता है। वसन्तपंचमी के आगमन के साथ प्रकृति मुसकराने लगती है और जन-मानस में आनन्द की लोक-लहरियाँ उठने लगती हैं। वसन्त की यही पूर्णाहुति, शिवरात्रि के मंगल-पर्व एवं रंगभरनी एकादशी के उपरान्त, आनन्ददायक एवं उल्लासमय होली के त्यौहार के रूप में होती है। ब्रज की रंगभरी होली, अपने अद्‌भुत वैचित्र्य एवं उल्लासमय वातावरण में खेली जाने के कारण ही भारत का सर्वश्रेष्ठ लोकोत्सव बन गयी है, जिसके दर्शनार्थ लाखों व्यक्ति दूर-दूर से आते हैं। मन्दिरों में तो वसन्त से ही रंग खेलना प्रारम्भ हो जाता है। फूलडोल, रसिया आदि के साथ फाग-धमार तथा होली विशेष रूप से गायी जाती है। रात-रात-भर होली के गीत चलते रहते हैं। लोकगीतों में प्रत्येक जाति के हृदय का स्पन्दन होता है। ब्रज में बरसाने की होली अत्यधिक प्रसिद्ध है। बरसाना, राधा-रानी का घर है। नन्दगाँव से अपने सखाओं के समूह को लेकर डगर-डगर में अबीर और गुलाल के बादल बिखराते हुए श्रीकृष्ण फेंट में रंग-भरी कटोरी लिये निकलते हैं। उधर राधारानी अपनी सखियों के साथ हाथ में लट्ठ लेकर निकल पड़ती हैं :

ठाढ़ौ रहौ, न डगौ, न भगौ
अब देखु जु हौं कछु खेलति ख्यालहिं।
गाँवन दे री बजावन दे सखि
आवन दै इतै नन्द के लालहिं॥

सखियों की चुँदरी आखिर रंग में भीज ही जाती है—

चूँदरिया रंग में बोर गयौ कान्हा बंसी वारौ।
भर पिचकारी सन्मुख मारी मो पै,
केसर गागर फोर गयौ कान्हा।

इस प्रकार 'इत ते आयी कुँवरि राधिका उतते कृष्ण कन्हाई हो', और फलस्वरूप 'गोरी के रंग में भीजियौ साँवरौ, साँवरे के रंग में भीजि गई गोरी,' की अलौकिक छटा तथा लोक में 'आज ब्रज में होरी रे रसिया' की गूँज के साथ हँसी-मज़ाक के मस्ती-भरे गीतों के साथ, यह लोकोत्सव अपनी अद्‌भुत छाप, वर्ष-पर्यन्त के लिए छोड़ जाता है।

ग्रीष्म की प्रचण्डता के बाद, मेघों का काला दुकूल पहन कर आया सावन मास कितना सुहावना और मनभावना होता है! कोकिल कंठों की भाँति वहाँ ग्रामबालाएँ कूकने लगती हैं :—

बदरा आयौ सुघर सुहावनौ,
एजी कोई घटा उठी घनघोर।
काले काले बादल, बिजली चमके,
झींगुर मचावत शोर॥
रिमझिम रिमझिम मेहा बरसे
बन में नाचत मोर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर क्या, स्थान-स्थान पर झूले की बहार दृष्टिगोचर होती है; सखियाँ गा उठती हैं—'नन्ही-नन्ही बुँदिया रे सावन का मेरी झूलना'; तो कहीं श्रावण के महीने में अन्य त्यौहार भी मनाये जाते हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं भैया-पाँचें, हरियाली-मानस, नाग-पंचमी, सती-पूजा, झूलना, चतुर्दशी और रक्षाबन्धन-सलूनों। रक्षाबन्धन का त्यौहार केवल राखी ही बाँधने के लिए नहीं वरन् और भी आनन्द प्रदान करने के लिए आता है। सलूनों, ब्रज में बूरा खाने का त्यौहार है, जिस दिन पति अपनी पत्नी को लेने ससुराल जाता है। सलूनों या सोना-पूजन, घर में स्त्रियों के द्वारा होता है। घरों में सेंवई, चावल पकाये जाते हैं। दरवाज़े पर सोना या सरमन रखे जाते हैं। झूला झूलने का उत्सव होता है। ब्रज में यह श्रावण का महापर्व है और लोक-जीवन में विशेष उल्लास और समारोह के साथ मनाया जाता है।

ब्रजभूमि का कण-कण, अणु-अणु कृष्ण की लीलाओं से अनुप्राणित है। जन्माष्टमी, ब्रज-भूमि का विशेष उत्सव है। यही वह भूमि है, जहाँ योगीश्वर साथ ही लीलामय कृष्ण ने जन्म लिया और आज भी कण-कण में उनकी ही अलौकिक लीलाओं की सुमधुर स्मृतियाँ व्याप्त हैं। सम्पूर्ण ब्रज, भगवान कृष्ण के जन्मदिवस पर कृष्ण के प्रेम में विभोर हो झूम-झूम उठता है। भगवान पालने में झुलाये जाते हैं। स्त्रियाँ, भगवान को पालने में झुलाते हुए मातृत्व-स्नेह की भावनाओं से हर्षित होकर गीत गाती हैं तो एक बार समस्त वातावरण गीतों से गूँज उठता है और कल्पनाएँ साकार हो उठती हैं :

जसोदा जायौ ललना, मैं जमुना पै सुनि आई।

इसके ठीक एक पक्ष बाद, राधाष्टमी का त्यौहार आता है। राधिका के नाम में कुछ ऐसा जादू है, जो हमें प्रेम के झूले में झुला देता है। राधा, प्रेम की पुजारिन, सरल-हृदया, साक्षात् स्नेह की प्रतिमा होने के साथ, आह्लादिनी शक्ति भी हैं। 'राधा प्यारी जनम लियो है,' कह कर ब्रजवासी नाचते-गाते फिरते हैं। ऐसा माना जाता है कि इसी दिन हरिदास जी का भी जन्म हुआ था। इस उपलक्ष में, हरिदास जी की साधना-स्थली, टट्टी स्थान पर एक मेला लगता है, जिसमें संगीत-समाज की व्यवस्था होती है और मथुरा से चौबे सहस्रों की संख्या में बड़े उल्लास से सम्मिलित होते हैं। इसी दिन रावल में भी धूमधाम से मेला लगता है।

आगामी माह में श्राद्ध, नवरात्र, दशहरा, टेसू, साँझी आदि त्यौहार आते हैं। ब्रज में बालक टेसू के गीत तथा बालिकाएँ साँझी के गीत गाती हैं। श्राद्ध भी प्रत्येक घर में होते हैं। इस माह में देवीपूजन का दूसरा मनोरम रूप है—साँझी का कोट, जिसमें ब्रज की लोक-कला की झाँकी ली जा सकती है। इस कार्य में प्रायः बालिकाएँ ही भाग लेती हैं। दीवाल पर कोट काफी लम्बा-चौड़ा बनाया जाता है। गोबर से भी बनाया जाता है। प्रतिदिन उसमें कुछ-न-कुछ वृद्धि कर दी जाती है। अन्तिम दिन वह पूर्ण होता है। इस दिन इसकी विशेष सजावट होती है। छोटी-छोटी बालिकाएँ अपने भाई-भतीजों के लिए मंगलकामना करती हैं और साँझी के गीत गाती हैं। साँझी कई प्रकार से बनाई जाती है।

ब्रज के लोक-जीवन के चार अमूल्य तत्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—रस, रास, रसिक, और रसिया। ब्रज के अणु-अणु में आनन्द-रस व्याप्त है, जिसको रसिक जन रास एवं रसियों के माध्यम से पान करते रहते हैं। ब्रज के लोक-जीवन में रास का विशेष महत्त्व है, जो एक प्रकार से खुला रंगमंच है। रास एवं नाट्य के ही विकृत रूप आज भी ब्रज में विशेष व्याप्त हैं, जिनमें भगत, नौटंकी, खोइया आदि उल्लेखनीय हैं। रसिया, ब्रज का लोकप्रिय गीत है। शास्त्रीय संगीत का प्राचीनतम केन्द्र होते हुए भी, लोक-संगीत के लिए भी ब्रज प्रसिद्ध है। टोली-गीत के रूप में रसिया का प्रादुर्भाव हुआ है। कौन सहृदय इस रसिया पर झूम नहीं उठता :

मेरो बारो सो कन्हैया कालीदह पै खेलन आयो रे
ग्वाल बाल सब सखा संग में, गेंद को खेल मचायो रे

कार्तिक-स्नान का महत्त्व वैसे गंगाजी के साथ विशेष है, पर ब्रज में भी इसकी अलौकिक मान्यता है। प्रतिदिन विधि-विधान से अनेक कथाओं के साथ इसका अनुष्ठान होता है। इसी माह में करवा चौथ—सौभाग्यवती स्त्रियों का सौभाग्य-विषयक व्रत—मनाया जाता है। इस व्रत में दीवाल पर एक चित्र भी खींचा जाता है। दिन-भर उपवास किया जाता है। चित्र के समक्ष करुए रक्खे जाते हैं। गौर रक्खी जाती है। चित्र-पूजन के साथ-साथ गौर-पूजन भी होता है, कहानियाँ सुनाई जाती हैं, करुए बदले जाते हैं। पति-कल्याण-कामना एवं पतिव्रता का प्रतीक ब्रज का मांगलिक पर्व, यह करवा चौथ है, तो संतान की कल्याण-कामना से परिपूरित अहोई-आठें है, जिसकी विधि-विधान से पूजा की जाती है।

ब्रज में दीपावली का राष्ट्रीय पर्व अपनी सार्वदेशिक परम्पराओं, भैया-दूज, एवं गोवर्द्धन पूजा के साथ विशेष महत्त्वपूर्ण एवं लोक के जीवन्त-स्वरूप का प्रतीक है। कोटि-कोटि भक्तों की श्रद्धा तथा भक्ति का प्रतीक, गिरिराज आज भी उतना ही पूज्य है। गोवर्द्धन की परिक्रमा भी श्रद्धालु लगाते हैं। कुछ लोग तो दण्डवत् करते हुए भी परिक्रमा लगाते हैं। दीपावली के दूसरे दिन गोवर्द्धन पर्वत का पूजन भी होता है और गोवर्द्धन-पूजा विषयक गीत गाये जाते हैं। अन्नकूट भी गोवर्द्धन-गिरिराज में होता है, जिसमें छप्पन भोग, छत्तीसों व्यंजनों के साथ तैयार किया जाता है। दीपदान किया जाता है। सखियाँ एकत्र होकर गाती हुई जाती हैं :—

चलौ चलौ री सखी सब हिलमिल कै।
श्री गिरिराज पुजावन को।
रोली अक्षत पुष्प माला संग भेंट चढ़ावन को।
धूप दीप नैवेद्य आरती कर बाके जस गावन को।
छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन गिरवर भोग लगावन को।

अन्नकूट के दूसरे दिन, द्वितीया के यमुना-स्नान का लोक में विशेष प्रचलन है। इस दिन भाई-बहिन मिल कर स्नान करते हैं।

ब्रज के लोक-जीवन की झाँकी अधूरी रह जाएगी, यदि यहाँ के मस्ती-भरे जीवन बिताने वाले चौबों का उल्लेख न किया जाय; जिनके रीति-रिवाजों की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। अनेक त्यौहार विशेष कर इस जाति में ही सम्पन्न होते हैं। राधाष्टमी का उल्लेख किया जा चुका है, गोपाष्टमी, कंस का मेला विशेष प्रसिद्ध है।

यह है ब्रज के लोक-जीवन की संक्षिप्त झाँकी, जिसमें ब्रज की अमराइयों, यमुना की कछारों एवं करील की कुंजों की अप्रतिम शोभा की झलक एक साथ ऐसी मस्ती भर देती है, जिसको—

ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैनन
त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● आत्म - परिचय

■ जन्म : १६ जुलाई, १९३८। बी० ए० : '६०। एल-टी० : '६१। इसी दौरान बीमार भी पड़ी और रही। फ़िलहाल बच्चों के एक स्कूल में हेडमिस्ट्रेस हूँ। इलाहाबाद ही में बराबर रहती आयी हूँ।

■ बी० ए० में आते-आते प्रारम्भिक अनुभूतियों को गद्य और पद्य में सँजोना शुरू कर दिया था। डायरी, स्केच, कहानियाँ और नयी टेक्नीक में कविता-लेखन मेरी प्रिय विधाएँ हैं। जीवन और साहित्य में किसी महान् उद्देश्य और आदर्श को लेकर चलने वाले लेखकों की रचनाएँ पढ़ने और प्राकृतिक दृश्यों के बीच रमने में आनंद अनुभव करती हूँ। स्वच्छ, कर्मठ व्यक्तित्व के आंतरिक सौन्दर्य और निष्ठा की प्राप्ति के लिए, जीवन को सार्थक करने का संकल्प है।

■ सम्प्रति दो चयन-संग्रह प्रेस में हैं : "घनानंद" और "मतिराम"।

चूहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● ●खिड़की बन्द रहे और हवा कम हो, तो मुझे उसका अभाव प्रायः नहीं महसूस होता; शिकायत नहीं होती। पर किसी झटके से खिड़की खुल जाय और ताज़ी हवा की फुहार भीतर आ जाय तो उसमें सिहरना भला मालूम देता है। मीठी हवा का आना अच्छा लगता है और उसके स्वागत को प्रस्तुत हो जाती हूँ....

सुबह हवा का ऐसा ही कुछ ताज़ा झोंका लगा, खुली खिड़की से लिपटी चाँदनी के संग, तो अंदर की कोई सिमटी चीज़ खुल पड़ी; और मैं हवा का, सिहरन का, भोर की चाँदनी का स्वागत करने को आतुर-सी हो उठी। कस के अँगड़ाई ली तो....''वाह रे दीदी, आज कल कैसी हो गयी हो ?'' ''मुझसे पूछती है ? अपने दिल से पूछ !'' इतना इशारा काफी था और बेला लाल पड़ गयी; रजाई खींच कर मुँह ढँक लिया। मैंने दूसरी ओर से कोंचा--''प्रिय अनी....सरसों के पीले सागर में साँसों का कम्पन...कैसा होता है ?....बेहद सुख से काँपते तुम्हारे....''

''बस करो दीदी, तुम बड़ी खराब हो; आज सुबह, भोर में तुम्हें यही सब पागलपन सूझा है।....हाँ मार दूँगी !''

इस बेहद तुनुक-मिजाज़, स्वार्थिन और बात-बेबात गुस्सा हो जाने वाली बेलिया को इस रूप में देखती हूँ तो मन सुख-सन्तोष से भर जाता है और बरबस उसे कोंचने की इच्छा उमड़ आती है...बड़े दुलार के संग।

अचानक मैं उस दिन की बात सोच जाती हूँ। थोड़ी तटस्थता-सी घिर आती है।

रोज़ रात को एक झटके से नींद टूट जाती है। जैसे कोई आता है हौले से, और जगा जाता है। बाहर, चाँदनी रुई के सफ़ेद जमे बादल-सी, ढलढल पारे-सी, कहती है : ''जगा दिया किसी ने ? आ बैठा तेरे पास !'' और मैं उससे कहना चाहती हूँ : ''हाँ री, 'जाग पड़ी मैं तो पिया के जगाये'।'' सोचती हूँ, क्या तुम भी इसी तरह रात में जाग पड़ते होगे ?....चाँदनी और सिहरन....पावन सिहरन....और सच मानो, रोज़ रात तुम्हारे स्वप्न में आ, खूब गहरी नींद में बन्द पलकों को, मैं सहला जाती हूँ और तुम्हारे ललाट और केश चूम कर अपने भीतर का ढेर-सा दुलार तुम्हारे तन पर छिड़क जाती हूँ। रोज़ रात।

फिर सुबह, खूब ताज़ी होकर रोज़मर्रे के काम में जुट जाती हूँ।....

हाँ तुमने पूछा है, ''कौन-सा काम तुम्हें उलझाये है ?'' काम ? हाँ, काम। काम तो ढेरों रहते हैं। मगर तुम किस काम की बात पूछते हो ?

काम और उलझाना। इन दो शब्दों के मायने तुम्हें समझाऊँ ! उलझी तो बस, तुम से हूँ और काम मैं तन की मशीन से करवा लेती हूँ।

आज, सुनोगे ? बड़ा मज़ेदार महा भारत हुआ घर में। कि बहुत देर तक हँसी थमी नहीं। पता नहीं, तुम्हें कैसा लगे।

सुबह हुई तो झाड़ू-बुहारू के बाद चौके में घुसी। दाल, चूल्हे से उतार कर रखी कि एक खूब मोटा चूहा आकर गोद में भर से कूदा। ज़ोर से मैं उछली। तरकारी की टोकरी उलट पड़ी, वह लगी भाई साहब के सिर में। ''ओ माई लॉर्ड !'' कह कर वह उचके, तो मुन्ने साहब के हाथ का गो गिर कर उछला, और सीढ़ी से उतरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्मा के सिर पर लगा तो वे चौंकीं--तो सीढ़ी पर रखी तेल की शीशी ज़मीन पर गिर कर चकनाचूर हो गई। कमरे में से बेला चीखी--"हाय दीदी, क्या हुआ?" और पैर फिसला तो सहारा लेने के लिए अलगनी थामी, तो भाई साहब की धुली पेंट हाथ में आ गई और आँगन में गिरी नाबदान के पास, जहाँ सूरत ने बर्तन माँज कर मिट्टी अभी साफ़ नहीं की थी। भाई साहब, "हाय रे मेरी नयी पैंट की यह दुर्दशा!" कर के उठे, तो पैर अरदावन पर पड़ा और वह पट् से टूटी, कि वह गिरते-गिरते बचे। हाथ से डिकेन्स का उपन्यास गिरा बुलू के सिर पर तो उसने रोना शुरू किया।

खैर, भाई साहब और बेला को उसी समय खाना खाने बिठा दिया तो सुशील चिल्लायी--"दीदी, मेरे बाल बाँध दो!" मुन्ने साहब को चूँकि पेचिश और बुखार है, तो अम्मा बड़बड़ायीं कि उसे अभी दवा नहीं खिलायी है मैंने। बुलू रोना भूल कर ज़िद करने लगी कि वह स्कूल नहीं जायेगी। मना-मुनू कर उसे नहलाया कि बेला आकर धीरे से मुझसे बोली--"दीदी, शाल गंदी हो गयी है, तुम दोपहर को ज़रा साफ़ कर डालना, आज ओढ़ कर नहीं जाऊँगी।" पर भाई साहब ने धीरे से यह बात भी सुन ली--"हाँ-हाँ, आपकी शाल तो रोज़ ही गन्दी होती है। काश्मीरी शाल रोज़-रोज़ धोयी गई, तो हो गयी उसकी मिट्टी पलीद। कहाँ गन्दी हुई है? बड़ी फ़ैशनेबिल की दुम!"

"हाँ, हम तो फ़ैशनेबिल हैं और तुम कहाँ के संन्यासी हो? जभी दो घंटे से मूँछ के बाल एक-एक कर कैंची से छाँट रहे हैं। रोज़-रोज़ तो दाढ़ी बनती है, जूते में पालिश लगती है; पायजामा पहन के तो कभी जाते नहीं, फ़ुलपैंट कोट से लैस होकर न जायँ तो शान में फ़र्क आ जाय।"

"जी हाँ, रहने दीजिये। बहुत बातें बनाती हैं।"

और भी न जाने क्या-क्या। मगर हँसी के मारे, मेरा बुरा हाल हो गया, और साबुन से हाथ धोती अम्मा मुस्करा रही थीं।

इस पर बेला और चिढ़ गई। "भाई साहब को तो नहीं कहेगी, बस हमीं हैं घर में फ़ैशनेबिल! और नहीं तो, ही-ही लगाये हैं।"

भाई साहब को जैसे कुछ मिल गया। "देखा तुमने, प्रमिला? अपने बारे में कितना चिढ़ती हैं।"

"ओ बेलिया, हँस!! भला तुझे हँसी नहीं आती?"

मेरे बेलिया कहते, बेला चिटकी बड़ी ज़ोर से, मगर हँसते-हँसते। तभी हमारी सुशील रानी झन्नाती चली आयीं, "अभी तक तुमने हमारा बाल नहीं बाँधा दीदी!"

बुलू की फटी फ्राक को आधा सिला छोड़ कर, मैंने उसके बाल बाँधने शुरू किये कि भाई साहब की फ़रमाइश हुई--"प्रमिला, मेरे मोजे-जूते निकाल कर रख दो।" जल्दी से जूता निकाला तो जूते में से एक मोज़ा गायब। तभी ऊपर आलमारी से आलते की शीशी गिरी। धोती और मैं होली के रंग में लाल। बुलू ताली पीटती हुई चिल्लायी--"दीदी के संग चूहे ने होली खेली! चूहे ने होली खेली!" भाई साहब मुस्कराये। "अपनी चुहिया के लिए चूहा आलता चुरा रहा था, पर योजना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असफल हो गयी।"

"हाँ, चुहिया भी अब फ़ैशनेबिल हो गई है और चूहा माडर्न मैन हो गया है, भाई साहब की तरह"--बेला ने कोंचा।

"आखिर यहाँ भी कोंचने से बाज़ नहीं आयी, देखती हो, प्रमिला! ख़ैर छोड़ो, मेरे मोज़े का क्या हुआ? क्या उसे भी चूहा उठा ले गया?"

"हाँ, शायद उठा ही ले गया हो। उसे भी तो साहब बनना है। देखो न, सब जगह ढूँढ़ मारा।"

"हे भगवान! तो मैं पहन कर क्या जाऊँ! और कोई मोजा हो तो दो।"

"मैं कहाँ से दूँ! दो जोड़े तो धोबिन ले गयी।"

उधर सुशील ने भिनभिनाना शुरू किया कि हम सिर्फ़ दाल और रोटी नहीं खायेंगे। जाकर मनाया कि बिटिया आज खा लो, कल से ऐसा नहीं होगा। "कल और परसों भी तुमने यही कहा था दीदी!" और भिन्ना कर खाना शुरू किया। मैं उसे कैसे समझाती कि बिटिया, घर में कैसी ग़रीबी आयी है, कि यह दाल और रद्दी आटे की रोटी भी मुश्किल से मिल रही है।

बुलू की फटी फ्राक फिर से सीने को उठायी कि भाई साहब का दूसरा आदेश मिला: "पायजामे में इजारबन्द डाल दो और कमीज़ में बटन लगा दो।" बेला खुश, कि आज भाई साहब पायजामा, कमीज़ और चप्पल पहन कर जायेंगे। उसे फ़ैशनेबिल की दुम कहा तो आखिर उनके साहबी ठाठ पर भी पानी फिर गया।

दोनों खा-पीकर जाने लगे तो मैंने कहा: "भाई साहब, बेला का शाप तुम्हें लगा है कि मोज़े चूहे उठा ले गये और तु विशुद्ध भारतीय बनकर जाना पड़ रहा है।

"क्या मैं पाजामा पहन कर गया न कभी!" कहते हुए वह सीढ़ी उतर गये

बच्चों को खिला-पहना कर स्कूल भे और फिर उनके कपड़े साफ़ करने बैठी सूरत चिल्लाया, "बड़ी दीदी, पेट में च कूद रहे हैं।"

"जा, निकाल कर खा ले।"

"नाहीं, तूही द। हमार पेट तो दिहले बिना ना भरेला, हमार अच्छी दीदी!

"तो अम्मा से जा माँग ले।"

"अम्मा कभो परोसलीं कि आजे दीहें बाप रे, आ के लगिहें बड़बड़ाये!"

खीझ कर उठी। दिया। फिर क धो-पसार, बाथरूम में घुसी तो दे एक चुहिया महारानी,--चूहे की शौक़ पटरानी,--बड़े मज़े से साबुन कुतर व उसका ज़ायका ले सिर हिला रही हैं। सा उन्हें बिदा किया।

नहा-धो कर छत पर आयी तो इन्द्रा दे विराजमान, बस्ता सहित। "दीदी, य यह पद्य समझा दो।"

"ज़रा पेट में कुछ डाल लूँ।"

खाते-खाते ऊपर से आने वाली ह की नली में खसर-खसर की आवाज़ सुन देने लगी। कान चौकन्ने हुए। खा खाकर ऊपर छत से शकुन को चादर लाने कहा। वह आयी तो बोली, "दीदी, उ नाबदान में मार के कपड़ा ठूँस देहले बा

"कहाँ?" कह कर ऊपर गई नाबदान पर दृष्टि पड़ते ही सिर पीट लि माँ के पेटीकोट के साथ मेरा नया ब्ला बाकायदा रस्सी से अच्छी तरह लपेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाबदान में ठूँसा पड़ा था। नाबदान से जब कपड़ा खींचा तो चुहिया चूहा दोनों नाबदान से निकल कर, बड़ी अकड़ के साथ सामने खड़े हो गये। मानो उनका अपहरण कर दिया गया हो। उनकी शान के ख़िलाफ़ यह काम उन्हें ज़रा भी नहीं रुचा।

अपनी ब्लाउज़ की बेबस फटी दुखी कहानी लिए हम नीचे उतरे तो माँ ने कहा, "प्रमिला, मुन्ने के लिए डबल रोटी मँगा कर रखी थी आलमारी पर, क्या हुई ?"

"चूहे ले गये होंगे !" मुँह से निकला।

"हे भगवान् ! इन चूहों ने क्या आफ़त मचा रखी है।"

इन्दु को पढ़ाने बैठी तो उसमें भी कहीं 'मूसक' शब्द आ गया। बड़ी अपार महिमा है गणेशवाहन मूसकराज की !

पढ़ाना छोड़ मैंने शकुन से गाने को कहा :

हमरो अँचरवा कहरा बिखिया क मातल
अँचरा देखत मर जइब।...

गीत के बोल और तुम :

हमरो बिहउला कहरा गेउ गरुड़ जी क
मितवा
डैना पसार के बिखिया अँगवेलँ ना।

जो खीझ थी वह गीत के सुर में खो गई। ब्लाउज़ का ग़म भूल गया।

शकुन चली गयी और कंठ में पूरे चित्त में कहरऊ गीत के बोल बजते रहे—"हमरो पियाजी...डैना पसार के बिखिया अँगवेलँ ना।"

बच्चे स्कूल से टिफ़िन के लिए आ गये थे। उन्हें विदा किया, तो भाई साहब आये। आते ही बोले, "आज बहुत देर हो गयी पुस्तकालय पहुँचने में, मूसकराज की कृपा से।"

बेला आई पेट-दर्द लेकर। उसकी सुबह की एक बात पर मैं खिलखिला कर हँसती रही।

"जाओ दीदी, बेमौके तुम्हें मज़ाक सूझता है।"

मगर मेरी हँसी रुकने का नाम न ले। सुबह की बात नये सिरे से मुझे लोट-पोट करने लगी। उसे गरम पानी की बोतल देकर मुन्ने का बुखार देखने चली आई। मुन्ने साहब और किसी के हाथ से दूध पीते ही नहीं। मना कर उन्हें दूध और दवा दी। ऊपर आते ही भाई साहब ने उलाहना दिया—"इत्ती देर हो गयी आये और तुमने अभी तक खाने को नहीं दिया।"

"आज तो कुछ भी नहीं है, और घर में पैसे भी नहीं; कुछ सामान भी नहीं कि कुछ बना दूँ।" और अचानक जीभ काट ली, कहीं मीरा ने सुन न लिया हो। बेला की सहेली बराबर के कमरे में बैठी थी।

भाई साहब ने कुछ हँसी और कुछ खीझ से कहा, "पैसे भी चूहे उठा ले गये, और सामान भी, क्यों ?"

"हाँ, पेट के अन्दर रहने वाले चूहे तो उठा ही ले गये। कहो तो बिना चीनी और दूध की चाय बना दूँ।"

"पहले देख लो, चाय का पैकेट भी कहीं चूहा न उठा ले गया हो।"

"दीदी, आज सुबह से चूहा-पुराण ही लगा रखा है तुम लोगों ने।"

बक्सा ढूँढ़ा तो दो आने पैसे मिल गये। दो समोसे मँगा कर मीरा को दिये। उनसे दो-चार मज़ाक किया, जिस पर उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नकली गम्भीरता ओढ़ ली, तो उनके खूब कसे ब्लाउज़ में कोंच दिया, "प्रमिला, कैसी निर्लज्ज हो गई हो तुम! भाई साहब बगल के कमरे से सब सुन रहे होंगे।"

मीरा को बाज़ार से, संग जाकर सोलह संतरे खरीदवाए थे, जो उनके स्वास्थ्य के लिए मुफ़ीद होते हैं। पैसे होते तो एक मुन्ने के लिए भी ले चलती। मीरा को रिक्शे पर बिदा कर हँसते हुए घर आई, तो बेला ने कहा, "मीरा ने दो संतरे मुझे नहीं भेजे? बड़ी दुष्टिन है!" कह कर वह हँस दी।

शाम हो गयी थी काफी। मूरत से रसोई का सामान तैयार करने को कह कर धोये कपड़ों पर आयरन करने नीचे गई। कमरे में सीलन थी। कुर्सी पर बैठी तो वही, वही गीत मन में उतर आया--"जाग पड़ी मैं तो...."

मुन्ने को थपकियाँ देकर सुलाया; बुलू और सुशील को थोड़ा-सा ही पढ़ा पायी। फिर बिस्तर पर लेट रही। दोनों पैरों में और हाथ के जोड़ों में बड़ा दर्द था। बक्से के पीछे से चूहों का उपद्रव होने में अभी देर थी।

आओ मैं तुम्हें राजा चूँ चूँ चांग की कहानी सुनाऊँ। हमारे घर एक राजा चूँ चूँ चांग रहते हैं। उनके बड़े ठाट-बाट हैं। सेना, लाव-लश्कर सभी कुछ। एक उनकी रानी भी है; बड़ी सुन्दरी, नखरे वाली। उनके बड़े नाज़ उठाने पड़ते हैं हमारे राजा जी को। राजा साहब उनके रूप पर लट्टू हैं। (शायद वह उनकी सबसे छोटी रानी हैं)। उनके सारे प्रेमालाप और मान-मनुहार, मनाने की चेष्टायें हमें रोज़ रात सुनायी पड़ती हैं। कभी-कभी राजा साहब बड़े क्रोध में गरज-तरज कर अपने मंत्री और सामंतों को आदेश देते हैं, जवाब-सवाल करते हैं। तब उनका मंत्रिमंडल सरगर्मी करने लगता है, जिसका पहला हमला हमारी नींद पर होता है। आजकल कुछ रसद की कमी हो गई है, इसलिये रात राजा साहब अपने अर्थमंत्री को डाँट-डाँट कर इसका कारण पूछ रहे थे। जब उन्होंने क्रोध में उसे दौड़ाया तो उसका परिणाम यों हुआ...

"हाय दीदी"--बेला चीखी। "क्या हुआ?" "चू-चू-चूहा। देखो, दो मोटे चूहे मेरे सिर पर से कूदे हैं। एक तो देखो खिड़की पर बैठा, किस कदर मुझे घूर रहा है।"

राजा साहब और राजा के मंत्री कूद कर भागे तो खाली टीन गिरी बड़ी जोर से। मगर हमारे भाई साहब की नाक बजती ही रही।

हाँ, तो हमारे राजा साहब का प्रताप बड़ा भारी है। राजा साहब के कोई हकीम या झाड़-फूंक करने वाले तो ज़रूर होंगे। कल उनके दरबार में फ़रियाद करूँगी कि, "हे अन्नदाता, हमारे मुन्ने साहब को खूनी पेचिश हो गयी है। बुखार में वह आलू की तरह उबल रहा है। अपने राजवैद्य को आज्ञा दीजिए कि वह बिना दाम के, मुन्ने को झाड़-फूंक कर अच्छा कर दे। नहीं, कल डाक्टर के पास जाऊँगी तो उसका क्लर्क बिल बना कर देगा, जब कि घर में इन दिनों फ़ाकामस्ती की नौबत आती दीख रही है। मुझे आशा है--राजा साहब दयालु हैं, और जरूर कृपा करेंगे।"

तो सुना आपने चूहा-पुराण? कैसा लगा?

(शेषांश पृष्ठ ८८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंचनलता सब्बरवाल

आत्म-परिचय

जन्म-तिथि : २८ अगस्त १९१८
जन्म-स्थान : लखनऊ
शिक्षा : एम. ए. (दर्शन शास्त्र);
एम. ए. (भारतीय संस्कृति);
एम. ए. (राजनीति शास्त्र);
पी. एच. डी. (दर्शन शास्त्र)

रचनाएँ :--

उपन्यास : मूक प्रश्न, भोली भूल, संकल्प, मूक तपस्वी, स्वतन्त्रता की ओर, त्रिवेणी, भटकती आत्मा, पुनरुद्धार, अनजानी राहें, अनचाहा, नया मोड़, स्नेह के दावेदार (प्रेस में)।
नाटक : आदित्य सेन गुप्त, अमिया, भीजी पलकें, अनन्ता, रानी लक्ष्मीबाई।
कहानी संग्रह : भूख।
अन्य : आचार-शास्त्र, समाज-शास्त्र, ईश्वर सम्बन्धी विचार, प्रगति की ओर।
कार्य-क्षेत्र : महिला विद्यालय में आचार्या हूँ।

अजन्मे की डायरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●●और फिर एक दिन वह भी आया जिसके कण-कण में, जिसके क्षण-क्षण में मेरे लिये लाखों वसन्त थे...नव वसन्त थे। पतझर, व्यतीत की, अतीत की बात-सी जान पड़ने लगी थी। ठीक ही तो है...मैंने उन्हें किसी दिन भी प्यार नहीं किया था, किन्तु मेरा अछूता मन प्यार की मिठास पाने को तड़पा तो बहुत बार था। मैंने किसी दिन भी उन्हें हृदय नहीं दिया था...सचमुच एक दिन भी तो, एक क्षण भी तो मैं उन्हें चितचोर नहीं कह पाई; किन्तु मेरा हृदय... मेरा चित्त लाखों ही बार चुराये जाने के लिए व्याकुल तो हो ही उठा था। मैंने किसी दिन भी उन्हें अपनी कुँवारी संवेदनाओं का साझी-दार नहीं बनाया था; लेकिन वह मेरे तन के स्वामी तो थे ही। सच ही तो कहाँ से कहाँ भटक जाती हूँ...यह मैं डायरी लिखती हूँ या... या...अपनी दबी-ढँकी व्यथाओं का अम्बार लगाती हूँ। लेकिन किसी तरह मन का भार तो हल्का करना होता ही है ना। हाँ, तो मैं कह रही थी कि यद्यपि वह संसार में मेरे सबसे अधिक पराये थे, सर्वाधिक अपरिचित थे, फिर भी वह मेरे सबसे अधिक अपने थे। सर्वाधिक निकट थे...निकटतम थे। इस सत्य को मैंने सर्वप्रथम उस दिन जाना जब कि वह इस संसार से विदा ले चुके थे। उस दिन तो सब के सामने रो-पीट चुकने पर मैंने यही समझा था कि मैं मुक्त हो गयी...स्वतन्त्र हो गयी...जी गयी, किन्तु हाय रे नारी का जला मन! इसे वह स्वयं भी तो जान नहीं पाती... पहचान नहीं पाती। समझी थी कि व्यथाओं का अन्त हुआ। जहाँ मन का मेल ही नहीं था, वहाँ तन का मेल भी छूट गया। सो तो ठीक ही हुआ, अच्छा ही हुआ। इससे विवश थर्राहट का, अनावश्यक वेदना का और मूक अनाचार का अन्त तो हो ही गया...और फिर सभी ओर की करुण, दयाभरी, सहानुभूतिपूर्ण दृष्टियाँ सहन कर जाना भी मेरे लिये कठिन नहीं रह गया। इसलिये कि उनमें भी सब कुछ होते हुए भी मेरे लिये तो मुक्ति का सन्देश ही था ना...तभी तो मैंने उन्हें सहर्ष सह लिया। भरी-भरी छाती के भीतर कहीं भी तो दर्द नहीं था...थोड़ी कसक थी अवश्य, किन्तु वह तो परिवर्तन का साधारण-सा परिणाम मात्र ही था। मैं भावुक तो किसी दिन भी नहीं थी; किन्तु होश सम्भालते ही जब मैंने अपने आप को किसी की गृहिणी पाया तो मेरा जला मन प्रेमिका बनने को तड़प उठा। मैं चाहती थी बनना प्रेमिका और वह थे पूरे-पूरे शत प्रतिशत गृहपति, गृहस्वामी। उन्हें तो गृहिणी चाहिये थी, गृह-पत्नी की आवश्यकता थी। मेरे गीले-गीले-से, भरे-भरे-से अरमान शुष्क हो गये, और मैं मन-प्राण से गृहिणी बनने में जुट गयी; किन्तु कहाँ क्या पाई...कुछ भी तो हाथ लगा नहीं। सभी ने तो मुझे ही दोष दिया। माँ ने भी, भाभी ने भी, सखियों ने भी, यहाँ तक कि उन्होंने भी और मैंने घबरा कर उधर से मुँह ही मोड़ लिया। किन्तु मुँह मोड़ लेने से ही क्या होता है! अग्नि-प्रदक्षिणा के साक्षी तो बने ही रहे। शृंखलाएँ तो और भी दृढ़ हो गयीं। बन्धन तो और भी कड़े पड़ते गये और मैं उनमें बँधती ही गयी। स्वयं अपने आप को बाँधे ही रही और उपाय भी क्या था...और करती भी क्या! उन्हें प्यार नहीं कर पायी, गृहिणी बन नहीं पायी...और विद्रोह भी नहीं कर पायी। किससे करती विद्रोह? स्वयं अपने मन से? सो भी नहीं बन पड़ा। और फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने मुझे मुक्ति दे दी...चिरकालीन मुक्ति... पूर्ण स्वातन्त्र्य...असीम स्वाधीनता।

मैंने स्वतन्त्रता का किसी दिन भी उपयोग नहीं किया था। मैं उसे पाने के लिए व्याकुल भी नहीं थी; किन्तु वह मिल गयी और अचानक ही मिल गयी। मैं उसका उपयोग भी नहीं जानती थी; किन्तु वह मेरे आँचल में आ पड़ी और अनचाहे ही आ पड़ी। मेरा आँचल फड़क उठा। उसके नीचे छिपा हुआ हृदय धड़क उठा, स्पन्दन तीव्र हो गये और मन प्यार की मिठास चखने को मचल ही तो गया। पर यह क्या ठीक होता? माँ ने संयम का उपदेश दिया; भाभी ने व्रत-उपवास का पाठ पढ़ाया; गुरु महाराज ने तपस्या एवं भक्ति का रहस्य समझाया, किन्तु मन ही तो है। न माना और न माना। स्पन्दन तीव्र हो उठे। गीत जाग उठे। प्रेमिका भले ही मर गयी हो लेकिन नारी तो जीवित ही थी। नारी...रमणी—चाहा कि उसे भी मार डालूँ, किन्तु कैसे? किस तरह? कौन-सी थी वह पूँजी, जिसके सहारे, मैं मरुस्थल जैसे शुष्क शून्य-जीवन को पार लगाती। स्नेह? वात्सल्य? लेकिन वह तो अनेकानेक विषाक्त दृष्टियों में पड़ कर स्वयं भी विषाक्त हो उठता है। स्नेह? पवित्र स्नेह...सन्देह...शक...शुबहा सभी की दृष्टि की ओट, स्नेहांचल तले जीवन-दीपक की ज्योति कब तक टिका पाती मैं? मैं...दुर्बल, मैं...अधम मैं...अशक्त, मैं...पराजय...ही पराजय स्वीकार करती हूँ मैं। अपने निकट... प्रणम्य हैं वे, जो जल का एक कण भी पाये बिना मरुस्थल को पार कर जाते हैं। किन्तु मैं वैसा नहीं कर पाऊँगी। कर सकूँगी ही नहीं.. मेरी अतृप्त..प्यासी जीवन-शक्ति, तृप्ति माँगती है। पूर्ति चाहती है! ओह कैसा था वह कठिन समय! परम्पराओं की बेड़ियाँ...मान्यताओं की जंज़ीरें...रुढ़ियों की हथकड़ियाँ मुझे चारों ओर से बुरी तरह जकड़े हुए थीं; किन्तु मेरा मन तड़प रहा था; मुक्ति के लिये...छुटकारे के लिए...उन सबसे छुटकारे के लिये...। और फिर...सभी दृष्टियों की ओट में, सभी ओर से मुख मोड़ कर मैंने खोजा आश्रय..... खोजी नयी राह...मुक्ति की राह...शान्ति की राह और प्यार की मंज़िल...उस प्यार की मंज़िल, जिसकी मुझे खोज थी।

इस बार उन्हें आवश्यकता थी नारी की... रमणी की। किन्तु उसे तो माँ भी बनना ही होगा। मेरा सहमा हुआ-सा, कुचला हुआ-सा मातृत्व सचेतन हो उठा। रोम-रोम जी उठा। अजन्मे नन्हे-से शिशु की कल्पना करके स्पन्दन...गति, धड़कनें खिल-खिल उठीं....। कली-कली मुस्करा उठी...किरण-किरण थिरक उठीं...कण-कण गा उठा जीवन-गान... मुक्ति-गान...प्रेरणा-गान...चिरजीवी अमर-गान।...हाँ, मैं माँ ही बनूँगी। उनके बालक की माँ, अपने बच्चे की माँ और उस बालक की भी माँ, जिसकी माँ इस विश्व से प्रयाण कर चुकी है।...माँ, केवल माँ। सौतेली माँ नहीं, अपनी माँ। मैं उसी की माँ हूँ और किसी की नहीं...किसी की भी नहीं...कभी भी नहीं... किसी दिन भी नहीं।...उन्होंने मुझे प्यार दिया...तृप्ति दी...मुक्ति दी...और मैं दूँगी उनके बालक को माँ, उसकी अपनी माँ। उन्होंने कहा—"सरो! अपनी सन्तान हो जाने पर भी, कमल को इतना ही प्यार कर सकोगी क्या?" "और यह क्या मेरी सन्तान नहीं है? मुझे और सन्तान की आवश्यकता ही क्या है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम महान हो, सरो!" उन्होंने मुझे हृदय की श्रद्धा दी, मन का स्नेह दिया, प्राणों का निष्कपट स्पन्दन दिया...और मैं जी गयी...मैं पूर्ण हो गयी...मैं भर गयी...।

और आज जब मातृत्व को सदा-सर्वदा के लिए तिलांजलि दे चुकी हूँ तो यह भीतर से कैसी चीख-पुकार सुनाई दे रही है? कैसा है यह विचित्र क्रन्दन! ओ मेरे अजन्मे शिशु! तुम क्यों मुझे व्याकुल किये दे रहे हो आज? यह कैसी विचित्र पीड़ा है, व्यर्थ वेदना है! हाय रे अजन्मे! कैसी कठिन...कैसी करुण तुम्हारी पुकार! क्यों न जान पायी मैं इसे कुछ दिन पूर्व? क्यों न समझ पायी मैं तुम्हारी कसक कुछ पहले? कमल मेरा है, मेरा बच्चा है। मैं इसकी माता हूँ...मैं तुम्हारी कोई भी तो नहीं हूँ...कभी होऊँगी भी नहीं। किसी दिन भी नहीं...। क्यों तुम अचानक रात को मेरा नींद छीन कर अपनी डायरी मुझे सुनाने लगते हो? क्यों...क्यों...किसलिये? मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं। ओ मेरे अजन्मे शिशु! मेरा कमल मेरे पास है। मेरी ममता आज भटकती नहीं फिर रही है। मेरा आँचल आज सूना नहीं है। मेरी गोद भरी हुई है। फिर तुम क्यों मुझे कष्ट देते हो अकारण ही? इसके पिता ने मुझे प्यार दिया है, मुक्ति दी है, तृप्ति दी है...किन्तु वह तुम्हारे पिता नहीं हैं। किसी दिन भी नहीं हो सकेंगे। मैं तुम्हारी चीत्कार भी नहीं सुनना चाहती। बन्द करो यह अपनी डायरी। मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनूँगी... क्यों तुम बरबस मुझे घसीट लाते हो अपनी चर्चा में? तुम्हारा अस्तित्व कहीं भी नहीं है और न होगा ही। फिर यह अनजानी पीड़ा क्यों, और सो भी अब ...अब, जबकि...सब समाप्त है...यह कैसी विचित्र-सी तड़प है! अजीब-सी कसक है! यह बेचैनी क्यों है? यह आकुल प्राणों की टीस-सी क्यों उठती है मेरे मन में? आज भी क्यों मेरा मन प्यार की मिठास पाने को वैसा ही व्याकुल है? इन्होंने मुझे प्यार दिया है। बहुत सारा प्यार दिया है। कमल ने मुझे स्नेह दिया है। बहुत सारा प्यार दिया है। निष्कपट नेह दिया है; फिर भी यह तड़पन कैसी? ओ मेरे चिर-तृषित मन! ...ओ मेरे आकुल प्राण! तू क्यों पागल हो रहा है इस अजन्मे की बात को लेकर? मत सुन...मत सुन...इसकी बात मत पढ़। ओ, मत पढ़, मूर्ख! इस अजन्मे की डायरी, जिसका एक-एक पन्ना मेरी चिर-स्थायी नग्न वेदनाओं का विवश चित्र है। मैं इसे चीर डालूँगी...फाड़ डालूँगी। इसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगी। मैं गृहिणी नहीं बन सकी, न सही। पत्नी बनी हूँ...और...और बनी हूँ माँ...माँ...हाँ, हाँ...परायी सन्तान की माँ। तू कौन है मुझे रोकने वाला? और रोक कर भी होगा क्या अब? चिर अशान्ति ही लिखी है ना मेरे भाग्य में, और तू बन कर आया है उसका अभागा दूत। आना ही था तो तब आया होता जब मैं तुझे जन्म दे सकती थी। अब! अब तो मैं केवल कमल की माँ हूँ और वही रहूँगी। बनी रहने देना मेरी नेकनामी। मैं भली हूँ; बहुत ही अधिक भली हूँ। तू मुझे क्यों सताता है? तेरी डायरी मुझे कमल से घृणा करने को उकसाती है: तेरी आवाज़ मुझे मेरे कमल से दूर करती-सी लगती है। तेरी पुकार सुन कर मुझे जान पड़ता है कि इस अभागे, मातृहीन बालक के कारण ही मेरा मातृत्व कुन्द कर दिया गया। तू मेरे मार्ग में मत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ। मुझे उन्हीं के निर्देशित मार्ग पर हँसते-हँसते चलने दे...जिन्होंने मुझे प्यार किया है, आश्रय दिया है और भर दिया है मेरी माँग में दुबारा सिन्दूर। सचमुच का सिन्दूर...जिन्हें गृहिणी नहीं चाहिये, पत्नी चाहिए और चाहिये अपने बच्चे की माँ। अपने बच्चे की माँ; मेरे बच्चे की नहीं। तू मुझे बना रहने दे उन्हीं के बच्चे की माँ। तेरी नहीं... तेरी नहीं ओ मेरे अजन्मे प्राण! तेरी बात मुझे विचलित कर देती है। तू मर जा। सदा के लिए मर जा। कभी लौट कर न आने के लिए चला जा, नहीं तो मेरा जीवन विषमय हो जायेगा। नहीं तो मेरा कमल पराया हो जायेगा और तू कभी भी तो मेरी गोद में आयेगा नहीं। तू जा...चला जा..सदा के लिए चला जा रे.. नहीं तो मुझे ही तेरी डायरी को जला कर भस्म कर देना पड़ेगा, ताकि हर रात मैं उसे पढ़ कर पागल होने से बच जाऊँ...नहीं तो मुझे स्वयं ही तेरा गला घोंट कर तुझे मार डालना पड़ेगा, ताकि मैं अपने सुखी जीवन में तुझे आग लगाने न दूँ, ताकि...ताकि... मैं अपने कमल की माँ बनी रहूँ। उसे प्यार करती रहूँ और उसके पिता का प्यार पाती रहूँ जिसके लिए मैं चिरकाल से प्यासी हूँ...अतृप्त हूँ...व्याकुल हूँ...बेचैन हूँ। किन्तु कितना सशक्त है यह अभागा अजन्मा शिशु, जिसकी पुकार चाह कर भी मैं अनसुनी नहीं कर पाती...जिसकी चीखें चाह कर भी मैं दबा नहीं पाती और जिसकी अनलिखी डायरी के वे पृष्ठ जो मुझे तड़पा-तड़पा देते हैं, किसी प्रकार भी मैं फाड़ नहीं पाती, मिटा नहीं पाती। हाय रे दुर्भाग्य...सब कुछ पाकर भी मैं आज कितनी अतृप्त हूँ, कितनी बेचैन हूँ कितनी व्याकुल हूँ...!

■ ■ ■

बच्चे की भाषा

कलकत्ते में मुस्लिम साहित्य-सम्मेलन की महिला-शाखा का वार्षिक अधिवेशन था। मुख्य अतिथि के रूप में सरोजिनी नायडू वहाँ उपस्थित थीं। भाषण-कर्त्रियों में कोई तो बँगला में बोलतीं और कोई चुस्त उर्दू में। श्रीमती नायडू के साथ बैठी हुई महिलाओं में भी कोई उर्दू की वकालत करतीं और कोई बँगला की। इतने में एक स्वयंसेविका ने आकर किसी 'देवी जी' को संकेत कर कहा, "आपकी आया ने फ़ोन से सूचना दी है कि आपकी बच्ची बहुत रो रही है, किसी से चुप नहीं होती।"

अब तक शान्त भाव से बैठी श्रीमती सरोजिनी नायडू ने स्वयंसेविका से बड़े गंभीर भाव से कहा, "बहन, ज़रा आया से पूछ तो लो, बच्ची उर्दू में रो रही है, बँगला में रो रही है, या हिन्दुस्तानी में?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रलेखा गुप्ता

आत्म-परिचय

मेरा आत्म-परिचय कुछ विशेष नहीं। मैं महारानी कॉलेज, जयपुर में बी० ए० की छात्रा हूँ। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा महारानी गायत्री देवी पब्लिक स्कूल में हुई। वहीं से मैंने 'केम्ब्रिज ओवरसीज़ सर्टिफिकेट' प्राप्त किया। पढ़ने तथा लिखने का मुझे बचपन से ही शौक है। मेरी विशेष रुचि साहित्य-अध्ययन में है। अंग्रेज़ी, हिन्दी तथा बंगला साहित्य का मुझे अच्छा ज्ञान है। मेरी इच्छा है कि मैं भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन करूँ--विशेष कर दक्षिण भारत की तमिल और तेलुगू का।

आत्मा की पुकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रोफ़ेसर लाल का कमरा। प्रोफ़ेसर एक एक्सपेरिमेण्ट करने में निमग्न है।)

प्रो. लाल : (स्वगत) हूँ--यह तैयार हो गया ग्रीन मिक्श्चर; अब इसमें सलफानिल-एमाइड मिलाना बाक़ी रह गया। (ज़रा उत्साह से) और अगर उसके मिलने से ये एक्सप्लोइड न हुआ तब ? तब मैं सफल हो जाऊँगा। मुझे अमृत प्राप्त हो जाएगा। इसे पीकर, फिर आदमी कभी न मर सकेगा। वह अमर हो जाएगा। (उत्तेजित होते हुए) तब तो फिर प्रो. लाल ! तुम्हारी ख्याति दूर-दूर तक फैल जाएगी; संसार के लोग तुमको पूजेंगे--कहेंगे--"तुम धन्य हो प्रोफ़ेसर"!

(हिस्टिरकली हँसता है) ओह ! जीवन के पिछले तीस वर्षों से, मैं इस अमृत की खोज में हूँ। शायद आज का दिन शुभ है। (बेपरवाही से) पर मुझे शुभ-अशुभ से क्या मतलब ? मुझे अपना काम करना चाहिये। यह रहा ग्रीन मिक्श्चर, और यह है सलफानिल-एमाइड। अब इन दोनों को मिला देना चाहिए।

(कुछ तरल वस्तु की कप में डालने की आवाज़,--साथ ही ज़ोर का धड़ाका)

प्रो. : (क्षुब्ध होते हुए) ओह...! नहीं-नहीं, यह क्या ? मैं असफल हो गया ? मेरा फ़ार्मूला बेकार रहा--सब मेहनत व्यर्थ थी--(रुआँसा होकर) ओह, मैं क्या करूँ ?

(सहसा एक स्त्री-स्वर)

स्वर : प्रोफ़ेसर ! प्रोफ़ेसर लाल !

प्रो. : कौन ? कौन है ?

स्वर : मैं हूँ, तुम्हारी आत्मा।

प्रो. : मेरी आत्मा ?

आत्मा : हाँ प्रोफ़ेसर। चलो यहाँ से भाग चलें--मेरा यहाँ दम घुट रहा है।

प्रो. : लेकिन क्यों ? देश के सबसे बड़े शहर में, मेरी सबसे ऊँची अट्टालिका है, जिसके सबसे बड़े कमरे में तुम हो। उसमें कैसे तुम्हारा दम घुट रहा है ?

आत्मा : इन सबमें तुम्हारी लेबोरेटरी में रखे, एसिड, कम्पाउन्ड्स, और एलिमेन्ट्स की बू आ रही है। मुझे इनमें घुटन होती है; मैं यहाँ नहीं रह सकती। मुझे कहीं खुले में ले चलो प्रोफ़ेसर ! वहाँ, जहाँ हरे-हरे खेत हैं, नन्हीं चिड़ियाँ हैं, खुला आसमान है।

प्रो. : (व्यंग से हँसते हुए) और मैं कर ही क्या रहा हूँ ? जिन हरे-हरे खेतों की तुम बात कर रही हो, उसके पौधों को अनेकों बार लाकर, मैंने उनके रोम-रोम का निरीक्षण किया है। जो नन्हीं चिड़ियाँ तुम्हें बेहद पसन्द हैं, उनकी नन्हीं छाती चीर कर मैंने उनके अन्तर की एक-एक रग तुम्हें दिखा दी। और जिस विज्ञान के प्रति तुम रोष प्रकट कर रही हो, उसी ने तुम्हें इस खुले आसमान की सैर, न जाने कितनी बार करायी है। (एण्टिसीपेशन) अब तो वह दिन भी दूर नहीं, जब चाँद और सूर्य पर भी तुम पहुँच जाओ....

आत्मा : वह दिन कभी न आएगा। तब तक तुम्हारा विज्ञान मुझे मार डालेगा। मैं मर जाऊँगी प्रोफ़ेसर--

प्रो. : क्या कहती हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा : ठीक कहती हूँ। उसीने तुम्हारी पत्नी कमला को मार डाला। याद करो--तुम घंटों अपनी लेबोरेटरी में मशगूल रहते; उधर वह सारा-सारा दिन, तुम्हारे खाने की प्रतीक्षा में बैठी रहती। पश्चिम में सूर्य छिप जाता; रात के अन्धेरे में चन्द्र उदय होता और भोर की लाली में वह भी ढल जाता, तारों की चमक फीकी पड़ जाती, किन्तु तुम न आते। बेचारी कमला, यूं ही घुट-घुट कर, घुल-घुल कर मर गयी।

प्रो. : जीवन में, एक को प्राप्त करने के लिए दूसरे की आहुति देनी ही पड़ती है। मैं मानता हूँ, मुझे कमला से विवाह नहीं करना चाहिए था; यह मेरी भूल थी। किन्तु, तुम यह क्यों भूलती हो कि आने वाली पीढ़ी की अनेकों कमलाएँ कितना सुख उठाएँगी! वही प्रेमी, जो पहले चाँद-सितारे तोड़ लाने की कल्पना भर करते थे, अब उसको सचमुच पूरा कर दिखाएँगे।

आत्मा : बहुत ऊँची उड़ान भर रहे हो प्रोफ़ेसर!

प्रो. : (**तनिक हँस कर**) ऊँची उड़ान नहीं, किस्से-कहानियों की कल्पना को यथार्थ की पृष्ठभूमि पर उतार रहा हूँ। मुझे याद आ रही है--बचपन की वह कहानी, जिसमें एक गरीब मछियारा था। उसने एक बार मछली रानी को पकड़ लिया था। वह माँगने पर कुछ भी देने को तैयार थी।

आत्मा : उसके एक पत्नी भी तो थी?

प्रो. : हाँ, इसी पत्नी की प्रत्येक माँग को मछियारे ने, मछली रानी की सहायता द्वारा पूरा किया—

(**समुद्र-गर्जन--मछियारे का स्वर**)

मछियारा : मछली रानी! मछली रानी!
सुन लो मेरी करुण कहानी--
इक इच्छा पत्नी की मेरी
क्या तुम कर सकती हो पूरी?

मछली : क्या इच्छा पत्नी की तेरी?
की पुकार उसने जो मेरी!

मछियारा : चाहती है वह धन वैभव औ',
भृत्य और भवन भी भारी।
बोलो दे सकती क्या रानी?

मछली : सब दे सकती हूँ मछियारे।
जा इच्छा पूरी हो उसकी।

प्रो. : और इस तरह, मछली रानी ने मछियारे की पत्नी की प्रत्येक इच्छा पूरी की। कई बार मुझे लगता है, वह मछली रानी विज्ञान का प्रतिरूप है; मछियारे की पत्नी आज का मानव है, तथा स्वयं मछियारा, हम वैज्ञानिक हैं। वह मानव की सुख-सुविधा तथा प्रत्येक माँग को इस विज्ञान रूपी मछली की सहायता से पूर्ण करता है--हमको उसने धन दिया है, ऐश्वर्य दिया है, महल दिये, हैं--सब कुछ दिया।

आत्मा : लेकिन, तुम कथा का अन्तिम भाग भूल रहे हो। मछियारे की पत्नी ने चाँद और सूरज की महारानी बनने की भी तो इच्छा की थी। और फिर, याद है--मछली रानी ने क्या कहा था?

प्रो. : (**याद करते हुए**) क्या कहा था....

(**समुद्र-गर्जन**)

मछली रानी : (**क्रोध से**)
बात असम्भव है मछियारे!
कहाँ इन्द्र है, कहाँ हैं तारे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनना चाहती उनकी रानी,
यह कैसी उसकी नादानी ?
नहीं-नहीं, यह है अनहोनी
जाओ-जाओ (समुद्र-गर्जन)
गरज रहा सागर क्रोधित हो,
तोड़ रहा धरती को है वो ।
बहुत लालची हो तुम दोनों,
नहीं मिलेगा कुछ भी तुमको ।
जाओ.....जाओ
जसे थे वैसे हो जाओ ।

आत्मा : याद आया प्रोफ़ेसर ?

प्रो. : लेकिन यह तो कहानी है ।

आत्मा : इसी कहानी को तुम यथार्थ की पृष्ठ-भूमि पर उतार रहे थे । मछली रानी चाहती तो मछियारिन को चाँद सूरज की रानी बना सकती थी, लेकिन उसने नहीं बनाया । जानते हो क्यों ?

प्रो. : क्यों ?

आत्मा : इसलिए कि धन पाकर, ऐश्वर्य भोगने से, महारानी बन जाने पर, वह शक्ति के घमण्ड में चूर हो गयी; उसकी आत्मा मर गयी । तभी तो उसने स्वार्थ में अभिभूत होकर अपने नेक पति से ऐसी वस्तुओं की माँग की, जिनके लिये वह अयोग्य थी । तुम भी ऐसा ही कर रहे हो प्रोफ़ेसर ! जो अमूल्य रत्न, तुम विज्ञान से माँग कर, मानव को लुटा रहे हो, उनके प्रयोग की रीति वह नहीं जानता ।

प्रो. : वह सीखने से आ जाएगी । यह ठीक है, मानव विज्ञान के इस अपरिमित दान के लिए अपात्र है, परन्तु वह भी क्या करे ? उसके लघु पात्र में अभी तक हज़ारों वर्ष पूर्व डाली गयी धर्म की मदिरा है, जिसे पीकर वह मद-मस्त है और चाहने पर भी आँखें खोल नहीं पाता है ।

आत्मा : (व्यंग से) चाहने पर भी आँखें खोल नहीं पाता ?

प्रो. : बिल्कुल ! कहानी की उस सुन्दर राजकुमारी की तरह, जो जन्मदिन के अवसर पर छः परियों से वरदान पाने के पश्चात्, सातवीं से अकारण ही भयंकर शाप ले बैठी । 'सौ साल तक अनन्त निद्रा में निमग्न होने का ।

आत्मा : 'स्लीपिंग ब्यूटी' की बातें कर रहे हो ?

प्रो. : हाँ, उसी की । कहानी में वह 'स्लीपिंग ब्यूटी' है, पर मैं उसको सुप्त-मानव का रूप मानता हूँ । वह दुष्ट परी धर्म है, जिसने निर्बोध मानव के असमय ही पैर बाँध दिये; उसे सुप्त कर दिया ।

(दुष्ट परी का अट्टहास)

परी : सो जा ! आ मेरी आँचल की छाँह में, यूँ ही आँखें बन्द कर पड़ी रह । अपने इस महल की चहार-दीवारी में तुझे जगाने के लिए कोई नहीं आएगा.... (हँसती है) बढ़ो, जंगली वृक्षों ! बेलों ! झाड़ियों ! घेर लो इस महल को । लिपट जाओ इसकी दीवारों से । सूर्य की किरण भी न आने पाये । दूर देश से जो राजकुमार, सौ साल बाद आएगा, उसे इसकी खबर भी न हो । (दाँत पीसते हुए) क्योंकि—क्योंकि—उसमें राजकुमारी की बन्द आँखों को खोलने की क्षमता है ।

प्रो. : सचमुच, उस राजकुमार में बन्द आँखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को खोलने की क्षमता थी। ठीक सौ साल बाद, समय आने पर उसने सोती हुई राजकुमारी को जगा दिया। आज हमारा भी समय आ गया है, जब हम सोये मानव को जगायें; अंध-विश्वासों के उन जंगली वृक्ष-लतादि को काट डालें...

आत्मा : किन्तु, तुम राजकुमार नहीं हो प्रोफ़ेसर! तुम सुप्त-मानव को नहीं जगा सकते। तुममें इतनी सामर्थ्य नहीं।

प्रो. : (गर्व से) विज्ञान की शक्ति पर सन्देह करती हो! जो चन्द्र और सूर्य को वश में करने की सामर्थ्य रखता हो, उसको ऐसा सुगम कार्य करने में क्या कठिनाई है?

आत्मा : (हँसते हुए) बस-बस इतना अभिमान न करो प्रोफ़ेसर! लंकाधीश रावण की करनी इतनी जल्दी भूल गये?

प्रो. : (सोचते हुए) लंकाधीश रावण? लंका का राजा रावण?

आत्मा : हाँ, वही, जो सीता को हर ले गया था। उसके पास भी सब कुछ था—विद्वत्ता थी, धन था, सोने की लंका थी, वायु, चन्द्र, सूर्य उसके अधीन थे; परन्तु फिर भी वह एक वनवासी की स्त्री को न पा सका।

प्रो. : वह तो उसकी मूर्खता थी, जो एक साधारण स्त्री के लिए हठ कर बैठा।

आत्मा : सीता साधारण स्त्री न थी। लोभी की, अतृप्त की, तृप्ति नहीं हो सकती, सुना प्रोफ़ेसर? तुम भी लोभी हो; यह विज्ञान-युग लोभी है। इस लोभ के जाल में मुझे मत फँसाओ। मेरा दम घुट रहा है। मुझे बचा लो, प्रोफ़ेसर! मेरी पुकार सुनो, अपनी आत्मा की पुकार सुन लो....

(एक विस्फोट होता है। हवाई जहाज की आवाज, मोटर की पों-पों, रेलगाड़ी, कारखानों आदि का शोरगुल....इनके बीच से प्रोफ़ेसर की आवाज.....)

प्रो. : मेरी आत्मा ने मुझे पुकारा था, कहाँ है वह? उफ़, इस शोरगुल के बीच मुझे कुछ नहीं सुनायी पड़ रहा—कुछ नहीं—कुछ नहीं....

(पृष्ठ ७८ का शेषांश : चूहे)

आपने पूछा था न, कि कौन-सा काम तुम्हें उलझाये है? तो उलझाते हैं तो आप और काम करती हूँ मैं। भाई-बहनों और घरेलू कामों के बीच इसी तरह गुजर जाती हूँ मैं। और इनके बीच वह गीत "जाग पड़ी मैं तो पिया के जगाये!" देखो न, इतनी रात हो गई और तुम मुझे सोने नहीं दे रहे हो। अब जाओ; सो जाओ। मुझे भी सोने दो। सुबह बड़े भोर में उठ जाना है। देखो, चूहे राजा कल क्या गुल खिलाते हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-परिचय

●जन्म : ३१ जुलाई १९३५; जन्म-स्थान : चकवाल, ज़िला जेहलम, पश्चिमी पंजाब, पाकिस्तान। शिक्षा : एम० ए० (राजनीति शास्त्र); एम० ए० (इतिहास); मानव विज्ञान में लघुक्रम डिप्लोमा।

● अपने परिवार की वर्षों पुरानी परम्परा को तोड़, शीघ्र विवाह की परिपाटी का घोर विद्रोह किया। यद्यपि सम्बन्धियों और परिवार के अन्य अनेक सदस्यों के लिए यह बिल्कुल प्रथम और नयी बात थी और उन्होंने जी-भर कर इसका विरोध भी किया और कटु आलोचना भी की, पर अपने माता-पिता के उदार एवं सहिष्णु विचारों ने मुझे सबके घोर विरोध के बावजूद भी सतत आगे बढ़ते रहने को प्रोत्साहित किया और उन्हीं के निरन्तर साहस देने पर मैं कहीं विचलित नहीं हुई। इस तूफ़ान को एक बार पार कर लेने का सुखद परिणाम ही हुआ है, क्योंकि अब परिवार की बाकी लड़कियों के लिए ––चाहे वे उच्च-शिक्षा प्राप्त करना चाहें या किसी विशेष व्यवसाय में जाना चाहें––कोई बाधा नहीं रही।

●साहित्यिक रुचि एवं प्रेरणा

विदेशी लेखकों में चैखव और ओ' हेनरी की कहानियों तथा डिकेन्स और हार्डी के उपन्यासों ने मुझे विशेष प्रभावित किया है। भारतीय उपन्यासकारों में मुझे अज्ञेय की कथा-शैली, विचार-वस्तु, भाव-गांभीर्य प्रिय है। आधुनिक कथाकारों में, मुझे राजेन्द्र यादव की लेखनी अधिक सशक्त और अनुभूतिपूर्ण लगती है। अवकाश के समय मेरे दो प्रिय साथी हैं : चित्रकला और संगीत।

●मेरी विनम्र साहित्य सेवा––पिछले सात वर्षों से मैं लिख रही हूँ, जिनमें कहानियाँ, रेखाचित्र, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक लेख, इंटरव्यू और रिपोर्ताज शामिल हैं। बहुत-सी कहानियों और लेखों का अनुवाद अंग्रेज़ी से हिन्दी में किया है और कुछ कहानियों का पंजाबी से हिन्दी में भी। कहानियों का एक संग्रह शीघ्र प्रकाशित होगा। अक्सर अंग्रेज़ी में भी लिखती हूँ। आकाशवाणी दिल्ली केन्द्र से अनेक बार वार्त्ताएँ, कहानियाँ और रेखाचित्र प्रसारित किए हैं।

●कार्यक्षेत्र : अक्तूबर १९६१ से नैशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया में हिन्दी, पंजाबी और उर्दू के प्रकाशनों के लिए सहायक-सम्पादिका का कार्य कर रही हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● कीरत को अक्सर महसूस होता, उसकी ज़िन्दगी महज़ एक रेगिस्तान है। वीरान और बंजर और वह स्वयं रेगिस्तान के उस हारे-थके मुसाफिर की मानिंद है, जो यह जानते हुए भी कि सामने दिखने वाला सोता पानी का नहीं, बालू का है, फिर भी उसी की ओर दौड़ पड़ता है।

यह सब सोच कर उसे बड़ी पीड़ा होती, जैसे दुखता ज़ख्म ठोकर खा गया हो। वह उदास हो जाता; कई बार अकेले में वह रो पड़ता; सिसकियाँ भरता; लेकिन कब तक? कोई आँसू पोंछने वाला भी तो न था। और वह अपनी बेबसी में अपने ग़म को भूल कर, अगले दिन के लिए जीने की तैयारी करता।

वह आर्ट-गैलरी का दरवान था, और यहाँ की दरवानी करते-करते उसे पाँच साल होने को थे। इससे पहले वह किसी बड़े सरकारी दफ्तर में दरवान था। पर इस दरवानी में उसे काम करते हुए ज्यादा अच्छा लगता था। जितने घंटे भी कोई नुमायश खुली रहती, उतनी देर वह बड़े गेट के बाहर अपने चमचमाते गद्दीदार स्टूल पर बैठा रहता।

परिवार के नाम पर उसके आगे-पीछे कोई भी न था। बीवी बहुत दिन पहले मर गयी थी और फिर दुबारा शादी करने को उसका मन नहीं हुआ। कई साल तक तो वह इस ग़म को ही नहीं भुला पाया था। फिर शादी का सवाल ही कैसे उठता।

जाते-जाते उसकी नन्दो उसे अपनी एक मात्र निशानी चंपी उसे सौंप गई थी। बड़ी कमज़ोर-सी आवाज़ में उसने कहा था:

"यह मेरी थाती है, चंपी के बापू! इसे संभाल कर रखना।"

और उस नन्हीं-सी जान को बचाने की उसने हर संभव कोशिश की। दिन-रात मेहनत करके वह उसके लिए हर चीज़ जुटाने में लगा रहता। उसे सामने देख कर वह अपना आधा ग़म भूल जाता, कई बार वह अपने आप से ही कह उठता—

"कमबख्त, बिल्कुल अपनी माँ पर पड़ी है, वही नाक-नक्शा और वही मासूम-सा चेहरा। बड़ी होकर दूसरी नन्दो लगेगी।"

और इस कल्पना से ही कि चंपी बड़ी होकर नन्दो-सी लगने लगी है, वह झूम उठता, दुगुने वेग से कार्य करने लगता, जैसे वह किसी अनन्त शक्ति का आगार हो।

पर शायद भगवान के घर से वह अपना नाम भाग्यवानों की सूची में लिखा कर नहीं आया था। बिना माँ की वह नाज़ुक चंपे की कली, केवल बाप के स्नेह के नीचे पनप न सकी।

और वह फिर अकेला हो गया, इतना अकेला कि उससे बात करने को भी कोई न था। रात के स्याह अँधियारे में वह अपनी वीरान कोठरी में लेटा-लेटा कई बार सुबक पड़ता। वह घंटों सिसकियाँ भरता और अपने में घुटता रहता; लेकिन उसके ग़म का कोई साझीदार न था।

उसने ज़िन्दगी के कई और वर्ष, ऐसे ही लुटे-लुटे और खोए-खोए से रहते हुए; बिता दिए। फिर धीरे-धीरे समय के मरहम ने उसके घावों को भरना शुरू कर दिया। अपने अकेलेपन से अब उसने समझौता कर लिया था। उसमें अब इतनी क्षमता आ गई थी कि अपने अन्दर के हर दुःख को वह पी लेता था। अपनी बेबसी और अपने अकेलेपन की पीड़ा से आहत रहते हुए भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने मुस्कराना सीख लिया था। कई बार रात को बड़ी देर तक वह हीर-राँझा का क़िस्सा गाता रहता या कभी सस्सी-पुन्नु या मिरज़ा साहिबा के बोल गुनगुनाता। उसकी आवाज़ में दर्द था; मिठास थी; लोच था। उसके साथ की कोठरियों वाले भी उसके पास आ जाते और उससे और अधिक गाने की फ़रमायश करते। कीरत अपना दुःख भूल जाता। संगी-साथियों को अपने आस-पास देख कर, उसे अपनी ज़िन्दगी सहज लगने लगती। पचपन साल की उमर में वह रिटायर हो गया था। उसे दुबारा काम ढूँढ़ने में ज्यादा परेशानी नहीं उठानी पड़ी थी। उसके बहुत पुराने एक साहब ने उसे इस आर्ट-गैलरी की दरबानी दिलवा दी थी।

० ० ०

आर्ट-गैलरी में होने वाली नुमायशों में अक्सर बड़े साहब लोग ही आते थे। कारों में बैठ कर खूबसूरत सजे-धजे बच्चों और फ़ारसी कवियों की कल्पनाओं जैसी हसीन बीवियों को साथ लेकर वे अन्दर दाखिल होते।

हॉल के अन्दर जाने वाले हर व्यक्ति को कीरत बड़े ग़ौर से देखता। फिर उनके अन्दर चले जाने पर भी वह, उनको देखता रहता। कोई हाथ से बनाई इन तस्वीरों को पास से देखता, कोई दूर से, कोई-कोई तो किसी एक तस्वीर के सामने खड़े होकर घंटों उन्हें घूरता रहता। कुछ लोग ऐसे भी होते जो अपने बीवी-बच्चों को साथ लिए हुए सिर्फ़ एक सरसरी निगाह डालते हुए, हर तस्वीर के सामने से गुज़र जाते। शायद उनके लिए ऐसी नुमायश में आना एक तफ़रीह भर थी या उनके फ़ैशन का एक हिस्सा।

कॉलेज के कुछ लड़के-लड़कियाँ भी आते; हँसी-मज़ाक करते हुए एक दूसरे को ठेलते-ठालते, वे अन्दर जाते। उन्हें देखने पर उसे यूँ लगता, जैसे ज़िन्दगी के दरिया में सैलाब आ गया हो, और वह किनारा तोड़ कर बाहर आ जाना चाहता हो। उन्हें बड़ी प्यार-भरी निगाह से वह देखता और फिर अपने-आप ही कह उठता—

"यही ज़िन्दगी है चार दिन की, हँसने-बोलने की, फिर तो आदमी सिर्फ़ कोल्हू का बैल बन कर रह जाता है।"

और हॉल के अन्दर वह उन खिलती-महकती कलियों के कहकहों को सुन कर, बरबस मुस्करा देता।

कुछ लड़के-लड़कियाँ ऐसे भी थे, जो देर तक बड़ी ग़ौर से इन तस्वीरों को देखते रहते, लेकिन उनकी संख्या कम थी।

वह इन सब वर्गों के दर्शकों को अब पहचानने लगा था। इन पाँच वर्षों में उसने जितने भी चेहरे देखे थे, उन सभी से वह वाकिफ़ हो गया था। इनमें से बहुत थोड़े व्यक्ति ऐसे होते थे, जो सभी तरह की ही नुमायशों को देखते थे। लेकिन इन थोड़े से व्यक्तियों में से भी उसे एक लड़की की खास पहचान थी। उसे अच्छी तरह से याद था, इन पाँच वर्षों में शायद ही कोई ऐसी नुमायश गुज़री हो, जो उसने न देखी हो। पहली बार ही उसको देखने पर उसकी विस्मृत स्मृतियाँ सजीव हो गई थीं। उसे देख कर उसे यूँ लगा था, जैसे नन्दो भगवान के घर से आकर उसके सामने खड़ी हो गई हो। वैसा ही नक्शा, वैसा ही मासूम भोला-सा चेहरा, खोयी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोयी उदास आँखें, दुबला-पतला शरीर और लम्बा क़द। देखने में वह लड़की, उसे बड़ी पढ़ी-लिखी लगी थी, पर उसकी नन्दो तो पढ़ी-लिखी न थी। इसीलिए तो वह इस लड़की की तरह न सीधी-सादी सूती साड़ी, कमीज़ पहनती थी और न ही बिखरे-बिखरे बालों का ढीला और बेतरतीब-सा जूड़ा बनाती थी। पर वैसे, उसे वह बिल्कुल नन्दो की तरह लगती। पहले दिन ही उसे देखने पर वह कह उठा था—

"मेरी चंपी भी अगर ज़िन्दा होती तो इतनी बड़ी ही लगती, इसी तरह की निकलती।"

और उस रोज, वह बहुत दिनों बाद फिर रोया था।

कीरत ने कई बार चाहा था, वह लड़की अगर एक बार मुस्करा दे तो वह यह तो देख ले कि क्या मुस्कराते हुए भी वह, उसकी नन्दो जैसी लगती है; लेकिन इन पाँच वर्षों से उसने एक बार भी उसे मुस्कराते न देखा था। वही शान्त चेहरे पर मोहक सरलता, वही चिन्तन में डूबी आँखें और वही सीधा-सादा लिबास। इसके अतिरिक्त वह इस लड़की में और कुछ नहीं देख सका था। इस लम्बे अरसे में, उसमें कहीं कुछ अधिक परिवर्तन न आया था। हाँ, चेहरे पर थोड़ी प्रौढ़ता अवश्य आ गई थी और उसके दूध जैसे सफ़ेद रंग में थोड़ा पीलापन आ गया था।

कीरत सोचता, देखने में तो यह लड़की बहुत अच्छे घराने की लगती है, पर जाने इसे चिंता किस बात की है। पैसे की? नहीं। पैसे की तो इसे कोई कमी नहीं दीखती। उसके कपड़ों पर कहीं ग़रीबी की झलक नहीं होती। ज़्यादा ज़ेवर न सही, लेकिन उसकी साड़ियाँ, चाहे वे सूती ही होती हैं, देखने में बड़ी अच्छी लगती हैं। उसकी घड़ी भी बढ़िया है, उसका पर्स भी देखने में ख़ूबसूरत लगता है और यह भी पता चलता है कि वह कहीं काम भी करती है; सो पैसे की तंगी तो हो ही नहीं सकती। फिर कैसी समस्या है? क्यों नहीं वह दूसरे लड़के-लड़कियों की तरह उन्मुक्त हँसी हँसती? और फिर, वह सोच में पड़ जाता—शायद उसकी कोई परेशानी हो। वह क्या जान सकता है? उसे कुछ भी तो मालूम नहीं। पर जाने क्यों, इस लड़की से कोई सम्बन्ध और साधारण बातचीत तक भी न होने पर, उसके हृदय में इसके लिए ममता उमड़ आती है। वह उसे अच्छी लगती है। मुँह से कुछ न कहने पर भी उसकी आँखें बहुत कुछ कह डालती हैं।...और उसकी चंपी की आँखें भी ऐसी ही थीं।

पिछले महीने जब किताबों का मेला लगा था, तो पहले चार दिनों में वह बराबर ग़ौर से हर आने वाले को देखता रहा कि शायद उनमें 'वह' हो; पर उसे 'वह' दिखी नहीं।

वह, हॉल के अन्दर जाती हुई, रेशमी साड़ियों में लिपटी, मधुर सुगन्ध बिखेरती बिंदी, लिपस्टिक से रँगे चेहरों वाली, पंजाबी, बंगाली, मद्रासी, गुजराती सभी तरह की औरतों की भीड़ को, तंग पायचे की सलवार और घुटनों से ऊँची तंग कमीज़ पहनने वाली कॉलेज की लड़कियों—सभी को देखता। पर इस मिले-जुले हुजूम में उसे अपनी नन्दो से मिलता-जुलता चेहरा न दिखा। वह उदास हो चला था। वह क्यों नहीं आयी? शायद बीमार हो। वह उसका नाम भी तो नहीं जानता और न ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके घर के अते-पते से वाकिफ़ है, फिर कैसे उसकी खोज-ख़बर ली जाए ? वह किससे कहे, इस लड़की को देख कर उसे अपनी चंपी मिल जाती है और इस चंपी के चेहरे में से, उसे अपनी नन्दो का चेहरा झाँकता हुआ दिखाई देता है ।

उस दिन बुधवार था, किताबों की नुमायश का आख़िरी दिन । कीरत बड़ा अनमना-सा अपने स्टूल पर बैठा था । उसे किसी में कोई दिलचस्पी नहीं महसूस हो रही थी । थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी आँखें गेट की ओर उठ जातीं, लेकिन जिस चेहरे की उसे प्रतीक्षा थी, वह न दिखा । शाम गहरी हो चली थी । संध्या का झुटपुटा अँधेरे में बदल रहा था । नुमायश ख़त्म होने में सिर्फ़ एक घंटा बाकी था । लोगों की भीड़ छँट रही थी । वह भी अपनी जगह से उठ कर चाय पीने के लिए जाने ही वाला था कि किसी की हल्की-हल्की हँसी सुन कर चौंक गया । आवाज़ जानी-पहचानी-सी थी, लेकिन यह हँसी उसने पहले नहीं सुनी थी । उसने घूम कर देखा, उसकी चंपी जैसे चेहरे वाली लड़की अन्दर आ रही थी । उसके साथ एक लड़की भी थी । शायद इसकी मित्र है, कीरत ने सोचा और उसका चेहरा खिल उठा । वह दुबारा अपने स्टूल पर जा बैठा । आज वह कुछ प्रसन्न दीख रही थी । बरामदे में पहुँच जाने पर उसके साथ वाली लड़की कह रही थी--

"मीना दीदी ! ठहरो, बाहर कुछ लोग कह रहे थे न, बुक फेयर एक्सटेंड हो रहा है, पूछ लेते हैं; अगर ऐसा है तो किसी और दिन आ जाएँगे, आज तो पहले ही बहुत देर हो गई है ।"

और इससे पहले कि वे किसी और से पूछतीं, कीरत अपने आप ही कह उठा, "नहीं बेटी ! आज आख़िरी दिन है, नुमायश बढ़ेगी नहीं ।"

वह ख़ुश था, उसे इसका नाम तो मालूम हो गया था । मीना ! बड़ा सुन्दर नाम है । उसकी नन्दो और चम्पी के नाम की तरह छोटा सा, प्यारा-सा । वह अपने आप ही कह उठा, "मीना बेटी !" और जाने कितनी बार वह इसी शब्द को दुहराता चला गया, जैसे इससे, उसकी युग-युग की प्यास बुझ रही हो । किसी को बेटी पुकारे, उसे एक अरसा हो गया था ।

मीना और उसकी सहेली हॉल में घूम-घूम कर, हर एक किताब को उलट-पलट कर देखती रहीं और कीरत उन्हें बाहर बैठे हुए बराबर देखता रहा । उसे लगा, जैसे उसकी चम्पी आँगन में खेल रही हो । उसकी बड़ी इच्छा थी, वह प्यार से मीना के सिर पर हाथ फेर दे ; उसे दुलार दे । पर सामाजिक नियमों की दीवार उसके पैर आगे न बढ़ने देती । वह सोच रहा था :

"यह कैसी दुनियाँ है, जहाँ किसी को अपनी बेटी की तरह समझने पर भी, हम उसे बेटी की तरह दुलार नहीं सकते ।"

बरामदे की बड़ी घड़ी में आठ बज रहे थे और नुमायश का समय ख़त्म हो रहा था । मीना और उसकी सहेली भी बाहर आ गई थीं । एकदम जाने किस भावना से अभिभूत होकर कीरत पूछ ही बैठा--

"मीना बेटी ! आप पहले दिन क्यों नहीं आयीं ? हर नुमायश तो आप पहले दिन ही देखती हैं । आज तो वक्त थोड़ा था, कुछ देख भी नहीं सकी होंगी ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीना हल्का-सा मुस्करा दी और कीरत का चेहरा खिल गया। आज इतने अरसे बाद पहली बार उसने मीना के ओठों पर मुस्कराहट देखी थी, लेकिन उसे लगा, यह मुस्कराहट ह-ब-ह चंपी की मुस्कराहट थी, नन्दो की नहीं। मीना कह रही थी--

"दरवान बाबा! तुम्हें भी मेरे पहले दिन न आने की बात खूब याद रही। पाँच साल से, पहले दिन ही मुझे आते देखते रहे हो न, शायद इसलिए। पर आगे से ऐसी भूल नहीं होगी। लेकिन बाबा, कई बार कुछ नियम टूट जाते हैं न, कुछ परेशानियाँ होती हैं, जो उन्हें टूटने पर मज़बूर कर देती हैं।"

और मीना के चेहरे पर, वह क्षण भर पहले की मुस्कराहट जाने कहाँ गुम हो गई थी। उसकी आँखों की गहराई, और गहरी हो चली थी। उसके बाल बेतरतीबी से इधर-उधर उड़ रहे थे। कीरत अवाक्-सा उसके मुँह की ओर देख रहा था। मीना के मुँह से उसने पहली बात सुनी थी, लेकिन वह भी बड़ी तीखी और चुभती-सी।

और इससे पहले कि वह कुछ कहता, मीना और उसकी सहेली, दोनों वहाँ से जा चुकी थीं।

'बुक फेयर' के बाद आर्ट-गैलरी में फिर दो हफ्ते तक कोई नुमायश न लगी, क्योंकि उसे नए ढंग से सजाया जा रहा था। नए रंग रोगन किए जा रहे थे। कीरत भी काफी व्यस्त रहता, लेकिन कभी-कभी उसे मीना की कही हुई वह बात याद आ जाती--

"कुछ परेशानियाँ होती हैं, जो नियमों को टूटने पर मज़बूर कर देती हैं।" और उसे अपने दिल पर एक चोट-सी महसूस होती।

वह सोचता, "उसकी कोई मज़बूरी नहीं हो सकती, वह तो बड़े घर की लड़की लगती है। यह बेकार की बात है। मज़बूरी तो सिर्फ़ हमलोगों की होती है; उलझनें हमारे लिए हैं। जो पढ़ा-लिखा है, अच्छी-खासी नौकरी करता है, उसकी क्या समस्या हो सकती है। कुछ और बात होगी; पढ़ी-लिखी है न, तभी किताबों जैसी बातें करती है। पगली कहीं की!"

वह अपने को समझा लेता और फिर अपने काम में व्यस्त हो जाता।

अबकी आर्ट-गैलरी में बड़ी भारी नुमायश लगने वाली थी। ऐसा सबने उसे बताया था कि दुनियाँ भर के कलाकारों की तस्वीरें गैलरी के ऊपर और नीचे दोनों भागों में लगाई जाएँगी। नुमायश का उद्घाटन एक नेता करेंगे और डेढ़ महीने के लिए, वह जनता के लिए खुली रहेगी।

कीरत प्रसन्न हो रहा था, उसने सोचा--

"अबकी मीना बेटी ज़रूर पहले दिन ही आएगी" और वह उस पहले दिन के एक-एक मिनिट को उचक-उचक कर देखता रहा लेकिन उसे मीना कहीं नज़र नहीं आयी। नुमायश लगे पन्द्रह दिन हो गए थे, पर उसे जिसकी प्रतीक्षा थी, वह अभी तक नहीं आयी थी। वह निराश हो चला था, पर फिर भी वह अनजाने ही रोज़ शाम के छः बजे तक नुमायश के अन्दर जाने वाले और अन्दर से बाहर आने वाले हर व्यक्ति को बड़ी बारीकी से देखता रहता।

एक दिन वह ड्यूटी पर देर से आया था। उसकी तबीयत भारी थी।

चार बजे के क़रीब वह जैसे ही अपने स्टूल पर आकर बैठा, उसे काऊंटर के पास मीना दिखाई दी। वह नुमायश में लगे चित्रों के बारे में सूचना देने वाली एक किताब देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी। काफ़ी देर उलटने-पलटने के बाद उसने काउंटर के पास खड़े व्यक्ति से उसकी क़ीमत पूछी।

"दो रुपये।" वह व्यक्ति कह रहा था।

और मीना ने बिना कुछ कहे, किताब को अपनी जगह पर रख दिया था। कीरत को आश्चर्य हुआ।

दो रुपये कोई ज्यादा तो नहीं, पर शायद इसकी ज़रूरत न समझी हो। उसकी आँखें उसी ओर लगी थीं; वह उठ कर उससे बात करना चाहता था, पर उसकी टाँगें वहीं जड़ हो गईं। उसने देखा, हॉल के बाहर बैठा चौकीदार एक हाथ बढ़ा कर मीना को अन्दर जाने से रोक रहा था, "मैडम, टिकट ले लीजिए, वहाँ काउंटर से आपको मिलेगा, पाँच आने में। टिकट के बिना आप अन्दर नहीं जा सकतीं।"

"पहले तो किसी नुमायश पर टिकट नहीं लगता था?"

"लेकिन इस बार है, तभी तो कह रहा हूँ।"

"कितने पैसे का है?"

"पाँच आने का, अभी जो बताया था।"

और कीरत का मुँह हैरत में खुला रह गया, जब उसने देखा, मीना काउंटर की ओर जाने के स्थान पर, बाहर की ओर मुड़ आयी थी।

चौकीदार अपने दूसरे साथी से कह रहा था, "बड़ी मेम साहब बनती हैं, नुमायश देखने चली हैं, पैसे जेब में हैं नहीं!"

और कीरत को लगा, जैसे उसके ही मुँह पर किसी ने तमाचा जड़ दिया हो, वह हतबुद्धि-सा मीना को देख रहा था कि वह एक क्षण पलट कर घूमी, मानो यह देखना चाह रही हो कि वह शब्द किसने कहे थे और फिर आगे बढ़ गई। उसने देखा--उसकी आँखें नम थीं और उसका चेहरा पीला पड़ गया था। वह बिना कुछ कहे धीरे-धीरे बरामदे की सीढ़ियाँ उतरी और फिर बाहर जाती हुई भीड़ में कहीं खो गई। कीरत फिर उसे न देख सका था।

उसका मन बहुत भारी हो गया था। नुमायश के खत्म होते ही वह अपने कमरे में बेसुध-सा पड़ रहा। उसे समझ में नहीं आ रहा था, मीना ने किताब क्यों नहीं ली? टिकट क्यों नहीं लिया? क्या उसके पास पैसे न थे? नहीं, यह ग़लत है; ऐसा नहीं हो सकता। तो फिर क्या था? और वह उस पहेली को सुलझा न पाता। अच्छी साड़ियाँ पहनने वाली और अच्छी घड़ी बाँधने वाली लड़की की भी कोई समस्या हो सकती है, यह उसकी कल्पना से परे की बात थी। परम्पराओं की लकीर को मानते चले आ रहे उसके विचारों में इस नई बात के लिए कोई स्थान न था। और वह उदास हो चला था।

जब भी कोई नुमायश लगती, वह हर रोज़ सुबह से शाम तक एक ही चेहरे को ढूँढ़ने की कोशिश करता रहा, पर उसे वह खोज न पाता। हफ़्ते पर हफ़्ते, महीने पर महीने और वर्ष पर वर्ष गुज़रते चले गए; पर उसे अपनी चंपी जैसा चेहरा नहीं दिखाई दिया।

इस घटना को बीते चार वर्ष हो गए थे। वह मायूस हो गया था, बिलकुल निराश। शायद, उसको वह चेहरा कभी न दिखाई देगा।

और फिर, एक दिन अचानक वह चौंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। घबरा कर, अपने स्टूल से वह उठ कर खड़ा हो गया। बत्तीस-चौंतीस साल की एक प्रौढ़ा युवती, बड़ी मामूली-सी साड़ी पहने, मामूली-से आदमी के साथ, मामूली-से दो बच्चों को लिए उसके सामने से होकर गुज़री और हॉल की ओर बढ़ गई।

वह विमूढ़-सा उधर ही देखता रह गया।

वही चेहरा-मोहरा, वही नाक-नक्शा, वही शरीर, वही क़द। पर, फिर भी सब कुछ कितना बदला हुआ था। वे आँखें अब उदास या खोयी-खोयी-सी न थीं, बल्कि ऐसी, जैसे सब कुछ लुट चुका हो, एकदम निरपेक्ष और भावशून्य। उसके शरीर की गोलाइयाँ, जाने एकदम सपाट कैसे हो गई थीं, आँखों के नीचे काले दायरे और बालों की स्याही में सफ़ेद धारियाँ। उसकी कलाई पर घड़ी न थी और न ही हाथ में पर्स था। उसके साथ वाला आदमी एक झोला उठाए था।

बिल्कुल पहले की ही तरह, वह एक तस्वीर से दूसरी तस्वीर तक गई, और फिर हल्के-हल्के कदम रखती हुई सारे हॉल में घूमती रही। वह साथ वाला आदमी भी उसके पीछे-पीछे चलता, फिर रुक जाता, फिर चलने लगता। उसके चेहरे की शिकन गहरी होती जा रही थी। फिर वे सब लोग बाहर आ गए थे।

कीरत ने सुना, वह आदमी कह रहा था :

"तुम्हारे भी क्या शौक़ हैं मीना! बोर कर दिया इस नुमायश ने। क्या तुक थी इन चित्रों में! मार्डन आर्ट! छि:! क्या ऊटपटांग चित्र थे। इससे अच्छा तो यह था कि बंगाली मार्केट में बैठ कर चाट खाते। नई दिल्ली आने की कीमत तो वसूल होती।"

मीना कुछ बोली न थी। बड़ी आहत दृष्टि से, उसने अपने पति की ओर देखा और फिर दोनों बच्चों को साथ लिए गेट की ओर बढ़ आयी।

कीरत ने बड़ी कोशिश की, कि किसी तरह वह एक मिनिट के लिए उसकी ओर देख ले, पर वह बिना इधर-उधर देखे, सीधी बाहर निकल गई थी।

वे सब लोग चले गए थे। और कीरत के सामने कुछ-कुछ स्पष्ट हो रहा था; लेकिन उस स्पष्टता के कोहरे में उसे अपनी चंपी का चेहरा विलुप्त होता हुआ दिखायी दिया।

एक धुँधली-सी याद, जो उसे कभी-कभी कचोटा करती थी, उसके मानस-पटल से धीरे-धीरे हटने लगी थी। उसे लगा, वह फिर अकेला था, नितान्त अकेला। लेकिन इस अकेलेपन में उसे, अब कोई वेदना महसूस न होती थी। कहीं कोई कसक न थी।

उसकी चंपी तो मर गई थी। कैसे उसने सोच लिया कि वह फिर जीवित हो गई? है न पागलपन यह! कभी कोई मर कर भी जी उठता है? और फिर एक बड़ी कड़वी-सी हँसी हँस कर वह चुप हो जाता।

अपने आपसे उसने अब समझौता कर लिया था। ● ● ●

मैं उन स्त्रियों को नहीं समझ सकती, जो अपने घर की, अपने बच्चों की और अपने पतियों की शिकायतें करती रहती हैं।

——पर्ल बक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• आत्म-परिचय

● जन्म : प्रयाग में एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण-परिवार में १२ नवम्बर, १९३७ को हुआ। शिक्षा-दीक्षा अत्यन्त अव्यवस्थित रूप से चली, किन्तु साहित्य का अध्ययन निर्बाध चलता रहा। हिन्दी और अंग्रेजी साहित्यों की पैठ प्राप्त की। २६ जनवरी १९५६ को जाति-पाँति के बन्धन तोड़ कर, हिन्दी के एक नवयुवक लेखक श्री रमेश वर्मा से विवाह किया। विवाहोपरान्त साहित्य-साधना के वेग में त्वरा आयी।

● कविताएँ लिखने का शौक बचपन से था। सैकड़ों की संख्या में गीत लिखे, किन्तु प्रकाशित उनमें से चुन कर केवल कुछ को ही किया। छन्द और ताल व लय का अभ्यास हो जाने के पश्चात् प्रतिभा का स्वाभाविक प्रस्फुटन मुक्त छन्द की कविताओं में हुआ, जिनका एक संग्रह 'तुम' शीघ्र प्रकाशित होने वाला है।

● प्रकाशन के क्षेत्र में, अपने पति से जो सहयोग मिला, वह इस एक वाक्य में व्यक्त किया जा सकता है : 'खुद हाथ-पाँव मारो और अपना रास्ता बनाओ।'

● सो, खुद हाथ-पाँव मारे। बच्चों के लिए विभिन्न देशों की लोककथाओं पर कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं : 'अमरीका की लोककथायें', 'इंगलैंड की लोक-कथायें', 'आयरलैण्ड की लोककथायें', 'यूक्रेन की लोककथायें' (दो भाग), चीनी लेखक फेड शू फ़ेड कृत 'चीनी बोधकथायें' का अनुवाद, तथा नवसाक्षरों के लिए 'जिस देश में गंगा बहती है' (भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत), और 'सत्यमेवजयते'। दो कृतियाँ 'निशू और चाँद' तथा 'भारत-लक्ष्मी' शीघ्र प्रकाशित होने वाली हैं। एक लघु उपन्यास भी प्रकाश्य है। बँगला की अनेक कहानियों के अनुवाद, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आजकल 'विश्व की श्रेष्ठ लघुकथायें' नामक एक विशाल संकलन में व्यस्त।

नये कोण से : शुभा वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी २२, सोमवार, '६२
रात्रि १० बजे

पिछले तीन दिनों से परेशान हूँ। किसी काम में जी नहीं लगता। यूं खाना पूरी के लिए सब कुछ कर रही हूँ। ऐसा क्यों है, कुछ स्पष्ट नहीं।

सुबह इनके साथ ही घर से निकली थी। बस-स्टॉप से हम दोनों ने अपनी-अपनी बस ली। ज़रा देर को बेला भी मिली थी। आज-कल वह काम करने लगी है। मुझे खुशी है कि उसने अपने को एक रास्ते पर लगा लिया है। बड़ी उल्टी-सीधी बातें सुनी जाती हैं; उसके बारे में। जो भी हो, गुजार चुका है, उसे लेकर रोना क्या। आज-कल इसने घूमना-फिरना बन्द कर दिया है। मेहनत करके चार पैसा कमा रही है तो क्या बुरा है! मैंने उसे अच्छी लड़की बन जाने की बधाई दी।

आज दिन भर मैं अनावश्यक रूप से चिढ़ती रही हूँ। जाने कैसे-कैसे विचार आते रहे हैं। शाम को जब परेशानी बहुत बढ़ गई तो सुमन के घर भी हो आयी। उसकी बड़ी बहन से ढाई घण्टे तक मैंने क्या-क्या बातें कीं, मुझे कुछ भी याद नहीं। ये आज काफी देर से घर लौटे हैं। वैसे देर करना इनके लिए कोई नयी बात नहीं है। दो घण्टे के काम में दस घण्टे भी लग गये हैं। मैंने तो अब इस ओर ध्यान देना ही बन्द कर दिया है। लेकिन जाने क्यों आज बड़ा बुरा लग रहा है। बड़ी कशमकश है।

जनवरी २३, मंगलवार, '६२
रात्रि ८ बजे

हमेशा की तरह कल देर से लौटने की क्षमा, इन्होंने नहीं माँगी। बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे। विज्ञान-एकेडमी का एक पुरस्कार इन्हें मिला है। बड़े खुश हैं। मुझे भी शायद खुश देखना चाहते हैं। लेकिन मैं इन्हें कैसे समझाऊँ कि चाह कर भी मैं खुश नहीं हो पा रही हूँ। कल इनकी बहन की एक चिट्ठी आई थी। पुरस्कार का बधाई-पत्र। उनका कहना है—मेरी जैसी पत्नी पाकर ये भाग्यवान हो गये हैं। इनकी प्रगति वहीं से आरम्भ हुई है, जहाँ से मैं इनकी जिन्दगी में आई हूँ। हो सकता है, बहन जी की इस बात में तथ्य हो। कभी-कभी बड़े अच्छे मूड में ये भी यही कहते हैं, लेकिन मैं जानती हूँ, इससे मेरी मान्यता में कोई अन्तर नहीं आने का। पति की मानसिक-मान्यता में मेरा चाहे जितना भी स्थान हो, व्यावहारिक रूप से, मैं उनके लिए एक बोझ ही हूँ, जिसे ढोने के अलावा उनके पास कोई और रास्ता नहीं है। ऐसा, उनके व्यवहारों से स्पष्ट है और कभी-कभी उन्होंने स्वीकार भी किया है। उनका कहना है—वे बहुत कुछ करना चाहते हैं। मुझे उनकी योग्यता और कुशलता पर पूरा भरोसा है। वे यदि चाहें, तो बहुत कुछ कर सकते हैं। किन्तु चाह कर भी, कुछ न कर पाने की उनकी मजबूरी आज तक मेरी समझ में नहीं आई है। मैं इसे अपना दुर्भाग्य मान कर, खामोश हो गयी हूँ। यह खामोशी एक ऐसा अस्त्र है जिसके सहारे बड़े से बड़े तूफ़ान को भी पार किया जा सकता है। कुछ भी हो, मेरी ये समस्याएँ ऐसी हैं, जिनका शायद कोई मूर्त समाधान भी नहीं है। बहन जी के पत्र से इतनी राहत तो मिली—चलो, अगर मैं जलती हूँ, तो कहीं रोशनी भी होती है।

पतिदेव की खुशी में साथ नहीं दे पायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि बहन जी के पत्र का जिक्र करते समय आँखों में आँसू आ गये। कभी-कभी गिरने वाले मेरे आँसुओं की कीमत, ये समझते हैं। बड़े प्यार से इन्होंने मेरी आँखें पोंछ दीं और मुझे विश्वास दिलाने का पूरा प्रयत्न किया कि मैं उनके लिए एक बोझ नहीं हूँ, जिसे वे किसी प्रकार ढो रहे हैं; बल्कि ऐसी निधि हूँ, जिसके लिए वे सब कुछ करना चाहते हैं और जिसके बिना वे जिवित नहीं रह सकते हैं। पतिदेव की ईमानदारी पर मुझे कोई शक नहीं। मानसिक रूप से, मैं उनके लिए बोझ नहीं हूँ, लेकिन मै हूँ तो एक परिवार है और परिवार के लिए कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। यहीं पर इनकी इच्छा और कर्त्तव्यपरायणता का द्वन्द्व होता है और इस द्वन्द्व में महीनों गुजर जाते हैं। प्रकाशकों के तक़ाजे आते हैं और इनकी क़लम करवट बदल कर लेट जाती है। पिछले छः वर्षों से यही क्रम है। मेरी हर शिकायत के बाद इनका एक ही उत्तर है, "आगे से ऐसा नहीं होगा।" और वह 'आगे' खिसकता ही जा रहा है। मुझे यह सब कुछ, एक पहेली मालूम पड़ता है। मेरी अपनी मान्यता से, यदि इच्छा-शक्ति बलवती है, तो आदमी कुछ भी कर सकता है। पतिदेव के लिए मैं बोझ नहीं हूँ, वे मेरे लिए बहुत कुछ करना भी चाहते हैं, मुझे उनकी ईमानदारी पर शक भी नहीं है; फिर ऐसी कौन-सी चीज़ है जो उन्हें रास्ते से हटा देती है। मैंने कई बार हल्के से हल्के मूड में पूछा है, "यदि मैं तुम्हारे रास्ते में किसी तरह भी बाधक हूँ, तो स्पष्ट कर दो।" इनके उत्तर में कभी कोई बनावट नहीं दिखी है; और मुझे भी मान लेना पड़ा है कि उन तमाम भाग्यशाली स्त्रियों में से, एक मैं भी हूँ, जिनका पति उनके बिना अपने अस्तित्व को अधूरा मानता है। मैं उस चीज का पता लगाना चाहती हूँ जो इनकी इच्छाशक्ति के आगे आड़े आती है, और मैं 'हाँ-नहीं' के बीच अपनी जिन्दगी के दिन गुजार रही हूँ।

वैसे हम दोनों के विचार, एक दूसरे से काफी मिलते हैं। अन्तर केवल एक ही जगह पर है। व्यावहारिक रूप से ये जितने मधुर हैं, मैं उतनी ही उग्र। इस एक जड़ की कितनी ही शाखायें हैं, जानती हूँ। पतिदेव ने अक्सर इस ओर इशारा भी किया है, लेकिन मैं इशारे को समझने से इन्कार कर देती हूँ और अपनी उग्रता—बल्कि कटुता कहा जाय, तो मेरे मन के ज्यादा निकट होगा—को अपनी स्पष्टता में छिपा लेना चाहती हूँ। अपने आक्रोश में, मुझे कभी-कभी इनकी ईमानदारी पर भी शक होने लगता है। अपने व्यवहार को थोड़ा मधुर बनाने से मैं इन्कार करती हूँ। मेरा अपना ख्याल है कि मेरे पास स्पष्टता का बल है। व्यावहारिक माधुर्य से, ये गुण बहुत ऊँचे हैं। और इसीलिए मैं ईमानदार हूँ। मुझमें सच्चाई है, पर कटु हूँ। पति के लिए कोई सहानुभूति मेरे मन में नहीं है। उनके गुणों को नजर-अन्दाज कर देती हूँ और दोषों को सुना-सुना कर घर-भर के सामने उन्हें खामोश कर देती हूँ। यहीं मुझे महसूस होता है, मैं हिमालय की चोटी पर खड़ी हूँ और मेरे पति....?

इन्हें शायद उसी की तलाश है, जिसे मैं छिपा कर रखना चाहती हूँ। कभी-कभी मन में आता है यदि मैं अपनी सच्चाई और ईमानदारी बेच कर भी व्यावहारिक मधुरता खरीद पायी, तो क्या इन्हें खुशी होगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी २५, वृहस्पतिवार, '६२
दिन ३ बजे

बयालिस घण्टे बीत गये। लगता है, मैंने कोई दुःस्वप्न देखा हो, जो अब वास्तविकता में बदल गया हो। या मैंने किसी की हत्या कर दी हो, कि जिस डर से भाग कर मुझे कहीं छिप जाना चाहिए। पिछली सारी रात इसी तरह बैठी रही हूँ। मेरी चेतना पंगु बन गई है। सब कुछ जैसे जड़ होकर जम गया है।

एक तूफ़ान आकर गुजर चुका है। परसों रात से, ये लगातार मेरे साथ हैं। कुछ कहने-समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं भी सुन-समझ रही हूँ, लेकिन मन और मस्तिष्क पर एक ऐसा बोझ है जो शायद चारों ओर से आँखें बन्द कर लेने पर मजबूर कर रहा है। परसों रात, जो स्थिति स्पष्ट होकर मेरे सामने आयी है, उसे लिखने का साहस मुझमें नहीं है। बड़ी स्पष्टवादी हूँ, निःसंकोच, सब कुछ कह-सुन लेती हूँ। लेकिन यहाँ मुझे भय लग रहा है। सच्चाई को ढँक लेना चाहती हूँ। मैं सोच भी नहीं सकती कि पिछले चार महीनों से, मेरी जड़ में मट्ठा डालने वाले स्वयं मेरे पति हैं, या वे माता-पिता जिन्हें अपनी कन्या को विवाह के पवित्र-सूत्र में बाँधने के लिए धन चाहिए। और यह धन, उनकी कन्या कहीं से भी ला सकती है।

इस तरह के प्रसंग पुस्तकों में पढ़े हैं। कभी-कभी लोगों की उड़ती हुई बातों में भी सुना है। पिछले हफ़्ते एक शाम, बेला से मुलाकात हुई थी। कह रही थी, "मेरा मँगेतर फ़रवरी के पहले सप्ताह में आ रहा है। तब तक, दो-तीन चीजें कर लेना चाहती हूँ।" मैंने कहा, "शादी वह तुझसे करेगा या दो-तीन चीजों से?" तो बोली, "तुझे पता नहीं दीदी, इस तरह ज़रा रोब पड़ेगा।" ठीक ही तो कह रही थी। उसके आने से पहले एक सोफ़ा-सैट, एक रेडियो-सैट या फिर कोई और सैट होना चाहिए। दो सौ रुपया महीना पाने वाले पिताजी, शायद अपनी पुत्री के लिए, इतना न कर पायें। तभी तो वह स्वयं घर से बाहर निकली है।

याद है जब वह पहली बार मेरे घर आई थी। छब्बीस जनवरी। मेरे विवाह की पाँचवीं वर्षगाँठ। उसने कई गीत सुनाये थे।

फिर कई महीने गुज़र गये। कभी-कभी वह मेरे घर आती रही। एक दिन बड़ी आजिजी से बोली, "दीदी, कौल मेरी ज़िन्दगी में गहरे उतर गया है। लगता है उसके बिना मैं रह नहीं सकती।" कौल मेरे देवर का दोस्त है, खाते-पीते घर का लड़का। चित्रकार है। पिछली चित्र-प्रदर्शनी में उसकी तीन पेन्टिंग्स एक हजार में बिकी थीं। यूँ कमर्सियल आर्ट भी जानता है और काफ़ी कुछ कमा लेता है। मेरे घर आता-जाता है। ऊपर से आज के रंग में पूरी तरह रँगा हुआ, लेकिन अन्दर से सीधा-सरल। शादियों के बाजे जब-जब सुनता है, मायूस चेहरा बना कर कहता है, "भाभी, कभी अपने भी भाग जगेंगे?" और उसकी इस बात पर मुझे हर बार हँसी आ जाती है। उस दिन मुझे सचमुच, बेला पर तरस आया। जाने बेचारी का भविष्य क्या है! मैंने उसे समझाया। कौल चाहे कितनी ही बातें करे, इस तरह का एडवेंचर नहीं कर सकता।

फिर कई महीने और बीत गये। उसका आना-जाना कम हो गया। मैंने सुना, उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक छोटा-सा स्कूल खोल लिया है ; किसी एम. पी. के यहाँ चुनाव के सिलसिले में काम करने लगी है, पास-पड़ोस की सिलाई-बुनाई भी करती है। मुझे बड़ी खुशी हुई। आखिरी बार जब परसों मैं इनके साथ ही बस-स्टॉप पर उससे मिली, तो मुझे एक ओर ले जाकर उसने पिक्चर के लिए आमंत्रित किया। इनसे उसने अभिवादन तक नहीं किया। मुझे थोड़ा आश्चर्य तो हुआ, लेकिन तभी मेरी बस आ गयी और मैं चली गयी। रात में जब, मैंने इनसे जिक्र किया तो ये बोले, "उसकी किसी उपेक्षा का दायित्व मेरे ऊपर है क्या ?" ठीक ही तो है। उसकी उपेक्षा का दायित्व इनके ऊपर कैसे आ सकता है !

और अब ? चार बज कर बीस मिनट हो चुके हैं। मैं पूर्ववत् बैठी हूँ। कभी-कभी कुछ लिख लेती हूँ। सामने की कुर्सी पर चुपचाप बैठे, ये मेरी गतिविधि को देख रहे हैं। मेरे सामने पिछले चार महीने हैं, उनकी उदासीनता के प्रत्युत्तर में, आक्रोश से परिपूर्ण अपनी कटुता है और एक ऐसी लड़की है जिसे अपनी शादी के लिए कुछ चीजों की जरूरत है जो मेरे पति आसानी से पूरा कर सकते हैं।

रात्रि, १० बज कर २० मिनट

इस दिन में एक घण्टा, चालीस मिनट और शेष हैं। इसके बाद कल का दिन आरम्भ हो जायेगा। छब्बीस जनवरी। देश को आजादी मिली थी। हर साल छब्बीस जनवरी का दिन, जुलूस देखने में बिताती हूँ और रात अपनी खुशी में। कल, मेरे विवाह की छठी वर्षगाँठ है। बेला से परिचय का पूरा एक वर्ष।

इनका कहना है, जो गुजर चुका है उसे भूल जाऊँ। इन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली है। अपनी भूल के लिए, दुखी भी कम नहीं हैं। किन्तु, कारण की तह तक पहुँचने के लिए जितनी जिम्मेदारी ये अपनी मानते हैं उतनी ही मेरी भी मानते हैं। इनकी शिकायत है, मेरा स्वभाव कटु है। मैं इसे स्वीकार करती हूँ। इनके प्रति, कटुताओं की चरम सीमाएँ मुझे याद हैं। उनसे जो यातनाएँ इन्हें मिली हैं वे भी मुझे याद हैं। बात समझ में आती है। मेरी कटुताओं से ऊब कर, किसी का आँचल पकड़ने की कोशिश इन्होंने की तो क्या बुरा किया ? इनके दुर्भाग्य पर मुझे दुःख है। क्या वे पति इनसे अच्छे होंगे जिनकी लक्ष्मण-रेखाओं में उनकी पत्नियाँ बँधी रहती हैं ? मेरे लिये इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं। पतिदेव ने आज तक मुझे कोई कटु बात नहीं कही। मेरी ग़लती भी अपने सर ओढ़ लिया है और उनकी इस सहनशीलता को मैंने उनकी कमजोरी मानी है। उन्होंने मेरे अस्तित्व को बुराइयों से कोसों दूर माना है और मैंने गर्व से सर ऊँचा कर उनकी उपेक्षा की है। मैं सब कुछ स्वीकार करती हूँ। लेकिन क्या यह सम्भव नहीं था कि मेरे प्रति थोड़ा अनुदार बन कर भी ये ईमानदार रहते ? क्या इनके लिए यह सम्भव नहीं था कि व्यावहारिक कटुता आ जाने पर भी ये मेरे विश्वास की रक्षा करते ? मैं इनके प्रति अनुदार थी, इनके प्रति कोई सहानुभूति मेरे मन में नहीं थी, तो क्या मुझे प्रताड़ित करने का यही एक रास्ता था ? कहते हैं, "तुम्हें—तकलीफ़ पहुँचाना चाहता था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चाहते हुए भी अपनी उपेक्षा से जो तकलीफ़ें इन्होंने मुझे दी हैं, क्या उनका अस्तित्व इतना कम था ? मेरी ईमानदारी, मेरी सच्चाई, मेरा अस्तित्व, क्या इसी की अपेक्षा करता था ? ये सारे प्रश्न मैं किससे पूछूँ ? कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ?

जनवरी २६, शुक्रवार, '६२
प्रातः ४ बजे

नींद तो तीन रातों से ग़ायब है। पलकें झपकते-झपकते रात गुजर जाती है। कल रात से ही लगातार पानी बरस रहा है। बादल बड़े घने हैं। मौसम साफ़ होगा, ऐसा कोई आसार नहीं है। वैसे भी क्या इस वर्ष में आजादी का जुलूस देखने जाती ?

सुबह की चाय, पापा जी के साथ पीनी है। उन्हें शिकायत है कि लाल किले के कवि-सम्मेलन में, मैं मम्मी जी को लेकर क्यों नहीं गयी और यदि मेरी इच्छा उन्हें ले जाने की नहीं थी, तो मैंने पहले से क्यों कह रखा था ? इनके एक मित्र की शिकायत है कि कवि-सम्मेलन का सारा मजा मेरी मायूसी से किरकिरा हो गया। मैं इन लोगों को कैसे समझाऊँ कि अभिनय के क्षेत्र में, मैं कोरी हूँ। पतिदेव की प्रेस्टिज और उनके मित्र के अनुरोध पर, मुझे जाना तो पड़ा, लेकिन चेहरा लगा कर मैं सबको खुश नहीं कर पायी और इस अपराध की जो भी सजा मुझे मिलेगी, स्वीकार कर लूँगी।

शाम को कुछ लोग डिनर पर आमंत्रित हैं। कुछ आवश्यक कार्य भी मुझे ही करना होगा।

रात्रि, ११ बज कर ४५ मिनट

पूरे दिन, मन भरा-भरा-सा रहा। सबसे बच कर, अकेले में यदि कुछ आँसू बहा लेती तो शायद हल्का हो जाता। किसी तरह मेहमानों को निबटाया। उनकी बधाइयाँ स्वीकार कीं, नये वर्ष की शुभ कामनायें लीं।

पिछले पाँच दिनों से हम दोनों साथ हैं। ये, हर सम्भव तरीक़े से मुझे बहलाने की कोशिश कर रहे हैं। पिछली बातें भूल कर क्षमा कर दूँ, इस भूल की उचित सजा देकर इसे ख़त्म कर दूँ।

मेरा ख्याल है, मैं काफी व्यवस्थित हो चुकी हूँ। भूल और सुधार का नाम ही तो जिन्दगी है। यूँ जीने के लिए किसी-न-किसी पर तो भरोसा करना ही पड़ेगा। आजतक, तर्क की कसौटी पर जिन्दगी कसी है। आज से मान्यताएँ बदल देना चाहती हूँ। आज से मेरे विवाह का सातवाँ वर्ष शुरू हो रहा है। एक नए कोण से जिन्दगी को देखने की बात मन में आ रही है।

मैंने तो पति के गुणों को नज़र-अन्दाज कर दिया है। फिर उनके दोषों पर नज़र टिकाना क्या उचित है ? अच्छाइयाँ-बुराइयाँ किसमें नहीं होती ?

पतिदेव अपने बिस्तर पर बैठे-बैठे ही शायद ऊँघ गये हैं। उनका सम्पूर्ण अस्तित्व एक अजीब मासूमियत में सिमट कर रह गया है। दो सप्ताह पहले 'शेफर्स' का एक पेन लाई थी। पिछले ६ वर्षों से हमलोग आज के दिन अपनी-अपनी भेंट एक दूसरे को देते हैं। दस मिनट और शेष हैं, जब दूसरा दिन शुरू हो जायेगा। मेरे विवाह का छठा वर्ष समाप्त हो जायेगा। मैंने पेन निकाल लिया है। जानती हूँ, मेरे पास पहुँचते ही अपने आँसुओं से वे मेरे मन का सारा मैल धो देंगे। अपनी शादी की पहली रात भी उन्होंने ऐसा ही किया था। ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दिरा 'नूपुर'

आत्म-परिचय

●जन्म : ३ सितम्बर १९३२ को नागपुर में। पिता उत्तर प्रदेश के एक अवकाश-प्राप्त उच्च सरकारी कर्मचारी हैं। उनका स्थानान्तर प्रायः होता रहता था। इस कारण, विभिन्न स्थानों को देखने और अनेक प्रकार के लोगों से समय-समय पर परिचय प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी कारण आरम्भिक शिक्षा विभिन्न स्थानों में हुई। सन् १९५५ में प्रयाग विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० पास करके स्थानीय राजकीय महिला इण्टर कॉलेज में प्राध्यापिका नियुक्त हुई।

●पढ़ने में रुचि बचपन से ही थी। परन्तु प्रेमचन्द की जिस रचना का बचपन में ही हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ा--वह थी एक छोटी-सी कहानी 'ईदगाह'। इस कहानी को पढ़ने के बाद, मन में एक प्रश्न उठा--"क्या मैं भी कभी कहानी लिख सकूँगी ?" और इसका उत्तर मिला सन् १९४४ में, जब एक दैनिक पत्र 'असलियत' में पहली कहानी प्रकाशित हुई।

●सन् १९५२ से अब तक समय-समय पर हिन्दी की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित होती रही हैं। आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र से भी प्रायः कहानी, कविताएँ एवं नाटक प्रसारित होते रहते हैं।

●अब तक तीन उपन्यास--'सपने मान और हठ', 'वह कौन थी ?' और 'उन्मन'; एक नाटक-संग्रह--'नया बसेरा' और एक कहानी-संग्रह--'शैव्या के आँसू' प्रकाशित हो चुके हैं। 'उन्मन' का गुजराती अनुवाद 'विषपान' के नाम से श्री कनुभाई रावल 'पथिक' ने किया है। कुछ कहानियाँ भी गुजराती एवं रूसी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं।

●इस समय प्रेस में हैं--कविता-संग्रह : 'एक साँझ ! एक मीत !' और कहानी-संग्रह : 'अपराजिता'।

स्नेह का तार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमरा नं० ११
'आनन्द-भवन'
बंगलौर : २२ मई, १९६१

प्रिय कल्पना,

बंगलौर, जो साढ़े तीन हज़ार फीट की ऊँचाई पर बसा है, बड़ा प्यारा शहर है। और मुझे तो, सच मानना इन पाँच दिनों में ही इससे बड़ा मोह-सा हो गया है। यहाँ आकर हम लोग घूमे भी बहुत हैं। परन्तु, इस मोह का कारण, यहाँ का घूमना-घामना नहीं है कल्पा ! यह प्यार वास्तव में बंगलौर के लिए नहीं, कुन्तम के लिए है।

साढ़े दस बजे तक कुन्तम मेरे पास ही बैठी हुई थी। आज शाम के बाद का सारा समय, उसका मेरे ही पास बीता है। लम्बा कद, छरहरा शरीर, और साँवला रंग होने पर भी, कुन्तम बड़ी मनोरम है। उससे अपनी पहिचान की बात ही तुम्हें बताऊँगी आज।

जिस दिन सुबह हमलोग यहाँ आए, मैं कमरे का सामान ठीक करने और खाना बनाने के इन्तज़ाम में लगी, और राजू को लेकर उसके पापा घर पर टेलीग्राम देने चले गए। मैंने आलमारियाँ झाड़-पोंछ कर बरतन वगैरा निकाल कर लगाए और स्टोव जला कर चाय का पानी चढ़ा दिया।

सब काम करने के बाद मैंने बाथरूम में जा कर मुंह धोया और कपड़े बदले। थोड़ी देर बाद पप्पू के खिलौने पर मेरी दृष्टि पड़ी तो देखा—बेचारा रबर का बन्दर ज़मीन पर पड़ा अपना सिर धुन रहा है, और पप्पू साहब का कहीं पता नहीं है।

'आनन्द-भवन' यहाँ का, बड़ी घनी आबादी में बसा हुआ, होटल है। पप्पू को कमरे में न देख कर मैं धक्-से रह गयी और लपक कर बाहर आई। बारजे पर से झाँक कर देखा—दूर-दूर तक पप्पू का कोई अता-पता नहीं था। झपकती हुई नीचे आयी। लोग आ-जा रहे थे। नयी जगह, नए लोग, पूछूँ तो किससे पूछूँ ? रुँआसी होकर मैं पूरे बरामदे का चक्कर लगा आयी, परन्तु बच्चे का कहीं पता न था।

कहते हैं न, मजबूरी का नाम सब्र है। कमरे में खड़ी मैं पल्ले से आँसू पोंछ रही थी और मन ही मन सारा क्रोध इन पर उतार रही थी। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? क्या इस यात्रा के लिए बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा ? सामने चलती सड़क है—कहीं किसी मोटर या गाड़ी के नीचे न आ गया हो....सोचते-सोचते मैं अधीर हो उठी।

घड़ी की ओर देखा—दस बज चुके थे। न पप्पू का पता था, न राजू और उसके पापा का। मैं फिर नीचे आयी और होटल के मैनेजर को अपनी बात समझाने का प्रयास किया। बड़ी मुश्किल से उसने मेरी बात समझी। फिर एक पल आश्चर्य से मेरी ओर देख कर टूटी-फूटी भाषा में बोला—

"पोलीस स्टेशन फ़ोन ?"

मैंने बदहवासी की हालत में सिर हिला दिया। उसने फ़ोन मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने नम्बर पूछ कर फ़ोन मिलाया, और उधर से आवाज़ आयी—

"पोलीस स्टेशन।"

"जी...जी मैं आनन्द-भवन से बोल रही हूँ। मिसेज़ शर्मा। जी हाँ, मिसेज़ पी. के. शर्मा। हमारा बच्चा, जिसकी उ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढाई साल की है, आज होटल से ग़ायब हो गया है।...." कहते-कहते मेरा गला भर आया और टप-टप करके आँसू रिसीवर पर टपकने लगे। और उन्हीं सिसकियों के बीच, मैंने पप्पू का हुलिया उन्हें बताया—"नीला नेकर, पीली बुश्शर्ट, गोरा रंग, काले-घुंघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें, माथे पर चोट का निशान—नाम पप्पू!"

"अबी ऐसा कोई बच्चा इदर नेंई आया। आने पर बोलेंगा। फ़ोन नं. प्लीज़!"

"वन टू थ्री फ़ाइव फ़ोर थ्री। आनन्द-भवन। रूम नं. इलेविन।" उधर से फ़ोन रख दिया गया और मैं आँसू पोंछती हुई कमरे में आकर बैठ गयी। जाने किस मनहूस घड़ी में यहाँ आए थे...सोचते-सोचते, मैं पलंग पर गिर कर सिसकने लगी।

द्वार पर आहट पाकर मैंने सिर उठाया। यह राजू को लेकर लौट आए थे। आते ही बोले—

"यह क्या मानो? रो क्यों रही हो? उठो!"

पर उन्हें देख कर तो मैं फूट-फूट कर रो पड़ी। काँपते अधरों से उन्हें सब हाल बताया। सुन कर वे भी चिन्तित हो उठे, पर मुझे सान्त्वना देते हुए बोले—

"मैं पुलिस स्टेशन जाता हूँ। तुम राजू को कुछ खिला दो—भूखा है। और घबराना नहीं!" और वे जैसे आए थे, वैसे ही लौट गए।

बारह बजे के करीब होटल के बैरे ने आकर कहा—

"आप का फ़ोन मेम शाब!"

चिहुँक कर मैं उठी और राजू का हाथ पकड़ कर नीचे मैनेजर के कमरे में पहुँची। फ़ोन पुलिस स्टेशन से आया था। उधर से आवाज़ आयी—

"मानो! यह मैं बोल रहा हूँ। पप्पू मिल गया है। मैं उसे लेकर आ रहा हूँ।" सुन कर खुशी से मेरे हाथ काँपने लगे। मैं कमरे में लौट कर आयी तो देखा, बैरा अभी तक दरवाज़े पर खड़ा था। मुझे देख कर बोला—

"मेम शाब! ये होटल है। जाती बखत कमरा लॉक करना होता। हम इसी वास्ते इदर खड़ा रहा। अपना असबाब देख लो!"

और तब मुझे ध्यान आया कि मैं जल्दी में कमरा खुला छोड़ कर चली गयी थी। मैंने उसे कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद दिया और इनके आने का इन्तज़ार करने लगी। आधे घंटे बाद वे पप्पू को लेकर आए। साथ में कुन्तम भी थी।

कुन्तम ने मुझे बताया कि उसने दफ़्तर जाते समय पप्पू को दूकान के पास खड़े देखा। नौ बजे का समय था। बार-बार टैक्सी और मोटरें उधर से निकल रही थीं। बच्चे को अकेला पाकर कुन्तम ने उससे कुछ पूछना चाहा—पर नयी जगह, अपरिचित लोग—बच्चा रोने लगा। तब उसे लिये-लिये कुन्तम दूकान में गयी, खिलौने और टॉफ़ी दिलायी, और ऑफ़िस में जाकर छुट्टी की अर्जी देने के बाद पुलिस स्टेशन पहुँची, जहाँ मैं पहले ही फ़ोन कर चुकी थी। वहाँ रिपोर्ट करने के बाद जब वह बाहर आ रही थी, उसी समय यह वहाँ पहुँचे और पप्पू इन्हें देखते ही पापा कह कर इनकी ओर लपका। इन तीन-चार घंटों में ही पप्पू, कुन्तम का अपना बेटा बन चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दूरस्थ स्थान में आते ही आते, कुन्तम की सहृदयता और बैरे की सज्जनता से मैं बड़ी प्रभावित हुई। उसके बाद से कुन्तम के सम्पर्क में यह चार-पाँच दिन बड़े सुख से बीते हैं।...और अब कल चल देना है। कुन्तम का साथ छूट जाएगा, पर पप्पू को देखते ही उसकी याद सदा मेरे मस्तिष्क को कुरेद जाएगी। इतना निश्चय है।

अच्छा, अब बस करूँ। मैसूर पहुँच कर फिर लिखूंगी। गुंटी को प्यार कहना।

तुम्हारी मनिषा

× × ×

कमरा नं० ६,
'इन्द्रभवन'
मैसूर : २९ मई, १९६१

प्रिय कल्पी,

विश्वास है कि प्रसन्न होगी। हम २३ ता० को ही यहां आ गये थे। मैसूर बड़ी सुन्दर जगह है—कम से कम अपने जीवन में मैंने जयपुर और चंडीगढ़ को छोड़ कर इतनी साफ़-सुथरी और ढंगदार कोई जगह नहीं देखी। यहाँ हम 'इन्द्रभवन' नामक होटल में ठहरे हैं, जो मेन रोड पर ही है, और इसी के सामने से होकर नन्दी पर्वत, चामुंडी पर्वत और 'वृन्दावन गार्डेन' के लिए बसें जाती हैं।

परसों की एक घटना सुनाऊँ? और सब जगहें, हमलोग देख चुके थे, इसलिये उस दिन चाय पीने के बाद हमने शहर घूमने का निश्चय किया। सोचा था, धूप तेज़ होने से पहले आठ साढ़े आठ बजे तक निकल जायेंगे। राजू और पप्पू के लिए बास्केट में कुछ खाने-पीने का सामान, फल इत्यादि रख कर, हमलोग होटल से बाहर आए। एक तांगे वाला उसी समय मस्ती से गाता हुआ सामने से निकला। इन्होंने उसे इशारा किया, तो वह पास आकर रुक गया। उ घंटों के हिसाब से तय करके हम चले। पह हमने वहाँ का 'ज़ू' देखा। बच्चे तो उ अनोखे जानवरों को देख कर ऐसे प्रस हुए, मानो स्वर्ग पहुँच गए हों। वहाँ से 'जगन मोहन पैलेस' गये, जहाँ की आर्ट-गैल देख कर हमें अजन्ता एलोरा गुफाओं की य हो आयी। और तब हम महाराजा मै का अस्तबल देखते हुए 'ललित महल' पहुँचे मैसूर शहर से ढाई-तीन मील दूर बना हु यह महल, वास्तव में बड़ा सुन्दर है। ऐ और आराम का कोई सामान ऐसा नहीं, यहाँ उपलब्ध न हो। अपने राष्ट्रपति य आकर ठहरते हैं, ऐसा हमें गाइड ने बता था।

यह सब घूमते हुए, हम तीन बजे होट वापस आए और वक्त की बात देखो कल तांगे वाले को पैसे देने के लिए इन्होंने जेब हाथ डाला तो इनका चेहरा फक् हो गया

मैंने पूछा—"क्या बात है?" बोले—

"गज़ब हो गया मानो, पर्स कहीं गिर गया।" हमारे काटो तो ख़ून नहीं, वह ह हो गया। पर्स में पूरे चार सौ रुपये थे। याद आया कि कुछ रुपये बक्स में पड़े मैंने वह लाकर इन्हें दिये और किसी प्रक तांगे वाले को विदा करके हम अपने कमरे आ गए।

यह बड़े उदास हो गए थे। समझ कि हमारी इस यात्रा की साइत ही ठीक थी। मैंने कहा—

"घर पर चाचा जी को तार दे दो—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये मँगा लो और यहीं से लौट चलो !"

हम यह बातें कर ही रहे थे कि किसी ने द्वार खटखटाया। कुछ अनिच्छा से झुँझला कर इन्होंने कुंडी खोली, तो एक सज्जन ने अंगरेज़ी में पूछा—

"आप ही पी. के. शर्मा हैं ?"

"जी हाँ, कहिए !"

"मैं हूँ वेंकट राव श्रीनिवासन।"

"आइये, तशरीफ़ लाइये !" कह कर यह पीछे हट आए। और कुर्सी उनकी तरफ़ बढ़ा दी। श्रीनिवासन इतमीनान से बैठ गए, और मुस्कुरा कर बोले—

"आप मुझे नहीं जानते। मैं आज ही पौने नौ बजे, मद्रास से यहाँ आया हूँ। रूम नं. नाइन में ठहरा हूँ। इधर से जा रहा था तो आपका यह पर्स..."

चौंक कर हमने उनकी ओर देखा। उन्होंने पैंट की जेब से पर्स निकाल कर इन्हें देते हुए कहा—

"यह पर्स इस कमरे के आगे पड़ा मिला। मैंने उठा कर इसमें लगा आपका कार्ड देखा और मैनेजर से पूछा कि आप किस कमरे में ठहरे हैं। अभी मैनेजर ने कहलवाया कि आप घूम कर लौट आए हैं। सो यह पर्स आपको देने लौट आया हूँ। इसमें पूरे चार सौ रुपये हैं—देख लीजिए...."

और कल्पी ! मैं आश्चर्य-चकित होकर उस नाटे, साँवले व्यक्ति की ओर देखती रह गयी जो उस आड़े वक्त पर हमारे लिये देवता के वरदान की तरह आ खड़ा हुआ था।

...कल्पना ! रानी बहन ! श्री निवासन तो दूसरे ही दिन, फिर मद्रास चले गए और हम भी कल ऊटी चले जायेंगे, पर इस अपरिचित स्थान में जो देवस्वरूप हमारे सामने आए, उन श्रीनिवासन की सज्जनता हम कभी भूल नहीं सकते।

अच्छा, ऊटी से फिर लिखूँगी। उत्तर तभी देना। गुंटी को प्यार।

तेरी अपनी, मनिषा

× × ×

कमरा नं० ४, 'वुडलेंड होटल'

उटकमंड (नीलगिरि पर्वत) २५ जून १९६१

कल्पना ! मेरी बहन !

अपने कमरे की खिड़की के सामने बैठी तुम्हें पत्र लिख रही हूँ। सामने 'रेसकोर्स' का मैदान है—और उसके पार ऊटी का छोटा-सा किन्तु मनोरम बाज़ार है। परसों से यहाँ 'मानसून ब्रेक' हो गए हैं। आज दो दिन बाद पानी कुछ थमा है, और इस समय हल्की धूप निकल आयी है।

ऊटी, जैसा सुना था, वैसा ही सुन्दर स्थान है। इस समय चारों ओर से उमड़ते काले बादलों को देख कर मुझे रानीखेत की याद हो आयी है। वैसे, यह स्थान भी उत्तर प्रदेश के पर्वतों से कम सुन्दर नहीं है। शिमला की तरह यहाँ तक ट्रेन आती है, और छोटे-छोटे आठ डिब्बों की उस ट्रेन में कम से कम चार गार्ड रहते हैं, जो चलती ट्रेन को बराबर हरी झंडी दिखाते रहते हैं। यहाँ आते समय राजू को तो यही देख-देख कर बड़ा आनन्द आया।

हमारा होटल थोड़ी ऊँचाई पर है। यहाँ के जो विशेष प्रकार के ताँगे होते हैं, उन्हें लोग 'झटका' कहते हैं। अन्दर से बैलगाड़ी की तरह और देखने में अपनी तरफ़ के ताँगों की तरह; इन ताँगों पर चढ़ना भी एक कसरत है पूरी। इसी 'झटके' पर बैठ कर हमलोग इस होटल में आए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने के बाद ही, हमलोग बोटेनिकल गार्डेन देखने गए थे। साढ़े सात हज़ार फीट की ऊँचाई पर बसे, इस गार्डेन को देख कर काश्मीर के निशात बाग़ की याद बरबस ही स्मृति-पटल पर छा कर रह गयी। तुम तो कल्ली, दिल्ली गयी हो कई बार। राजघाट में जो घास लगायी गयी है, वैसी ही मखमली घास से यह पूरा गार्डेन पटा पड़ा है। देश-देश के वृक्ष मँगा कर लगाए गए हैं--और इन सब के बीच गणतन्त्र-दिवस के अवसर पर बनवाया गया घास का भारतवर्ष का नक्शा तो जैसे इसकी शोभा में चार चाँद लगा देता है। इसके अतिरिक्त यहाँ की झील नैनीताल की झील और काश्मीर की डल झील से कम सुरम्य नहीं है।

उस दिन हम इसी झील में बोटिंग करने गए थे। नाव, हम दोनों ख़ुद ही चला रहे थे। बच्चे हम दोनों के बीच में बैठे हुए थे। मैंने झुक-झुक कर किनारे लगे कई कमल के फूल तोड़े, तो हमारे राजू साहब भला क्यों मानने लगे? झट लपक पड़े, और जब तक हम रोकें-रोकें, वे आधे पानी में लटक गए।

पतवार मेरे हाथ से छूट गयी। मैं भय से चीख पड़ी। तभी देखा कि पीछे से आने वाली नाव से कूद कर एक सत्रह-अठारह वर्ष का लड़का तेज़ी से तैरता हुआ हमारी तरफ़ आ रहा है। इस समय तक इन्होंने राजू को ऊपर खींच लिया था--पर उस लड़के ने पास आकर कहा--

"साब! हम आयेंगा। नाव ले चलेंगा!" और दूसरे ही क्षण वह लड़का --सुब्बाराव--हमारी नाव पर था। नाव खेते हुए हम किनारे पर आए। हमने सुब्बा-राव को इनाम देना चाहा, तो उसने हाथ जोड़ कर कहा--

"छोटा बाबा हामारा भाई! बक्शीस नेंई लेंगा!"....और हमारे बहुत कहने पर भी उसने इनाम नहीं लिया।....

ऊटी का पानी कुछ भारी है। कल रात के दस बजे से इन्हें अचानक कॉलिक पेन उठा और ढाई बजते-बजते यह बेहाल हो गए। मैंने कई बार गरम पानी की बोतल इन्हें दी, परन्तु दर्द में राई-रत्ती भी कमी नहीं आयी। यह लाख होठों को दबाए हुए थे, पर कराहने की आवाज़ बरबस ही निकल रही थी। अजब परेशानी में थी। आधी रात का समय, किसे पुकारूँ? किसे बुलाऊँ? अन्त में, पानी फेंकने बाहर आयी तो बगल के कमरे की रोशनी जल उठी। एक सज्जन बाहर आए और मेरे पास आकर बोले--

"मैं मदद करूँ मैडम?"

उन्हें देख कर मैं घबरा-सी गयी। यह वही सज्जन थे, जो कमरे में मुझे अकेली जान कर हमेशा सीटी बजा कर गाया करते थे-

"सोया सोया चाँद है...सोया आसमान है...
आँखों में सारी रात जाएगी....
तुमको भी कैसे नींद आएगी....?"

मैंने उत्तर नहीं दिया और पानी फेंक कर कमरे में आ गयी। यह सज्जन मेरे पीछे-पीछे कमरे के दरवाजे तक चले आए और बोले--

"मैं डाक्टर हूँ। आपके पति को क्या तकलीफ़ है...?"

"कौन है मानो?" इन्होंने अन्दर से पूछा। और वह डाक्टर एक प्रकार से मुझे ढकेल कर अन्दर आ गया। बोला--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इट्स मी सर! डॉक्टर रंगनाथन्। आपको क्या तकलीफ़ है ?....कॉलिक पेन ?... वेट, आई विल गिव यू 'एट्रोपीन मार्फ़िया' थ्रू इन्जेक्शन..." कह कर वह उलटे पैरों अपने कमरे में चला गया। पाँच मिनट बाद, उसने अपना बैग लाकर इन्हें इन्जेक्शन लगाया और दो गोलियाँ मुझे थमा कर बोला—

"जागने पर आधे-आधे घंटे के बाद दे दीजिएगा। खाने में फ्रूट जूस ओन्ली। सुबह मैं फिर देख लूँगा...."

मैं स्तब्ध खड़ी रह गयी। जिसे मैं लोफ़र समझ रही थी, वह मेरा सहायक बन कर आया, और धन्यवाद की अपेक्षा किए बिना ही चला भी गया।

आज दो बार डाक्टर रंगनाथन् आकर इन्हें देख गए हैं। न फ़ीस उन्होंने ली, और न दवा के दाम ही लिए। मैं तभी से सोच रही हूँ कि भारत के इन दूरस्थ प्रदेशों की यात्रा में और जो कुछ हुआ सो हुआ—मैंने यह अनुभव अवश्य किया है कि इन अनजान अपरिचित जगहों में भी, मेरे हर कष्ट को बाँटने के लिए कोई कुन्तम, कोई बैरा, कोई श्रीनिवासन् कोई सुब्बाराव या कोई रंगनाथन् आगे आ ही गए हैं। जैसे, यह उनका अपना काम हो।—जैसे हम भी उनके अपने हों! इस भावना मात्र से मैं पुलक उठी हूँ कि भौगोलिक दूरी चाहे जितनी हो, भाषा एक-सी हो या न हो, भारत के हर कोने को स्नेह, सहानुभूति एवं अपनत्व की भावना एक तार में बाँधती है—एक स्नेह के तार में।...

परसों हम यहाँ से चल देंगे। अब इलाहाबाद पहुँच कर ही तुमसे बातें होंगी। गुंटी को प्यार।

—तुम्हारी ही, मनिषा

● ● ●

पुरस्कार : पत्रकार : परिवार :

सन् १९२८ में साहित्य-विषयक नोबेल-पुरस्कार नार्वे की सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती सिग्रिड अनसेट को मिला। पत्रकार श्रीमती अनसेट के पास दौड़े—फोटो लेने, इण्टरव्यू लेने। प्रश्नों का ताँता—आप कैसे लिखती हैं? पुरस्कार पाकर आपको कैसा लग रहा है? विश्व की महिलाओं की प्रगति के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? आदि-आदि।

श्रीमती अनसेट ने अपने शयन-कक्ष से निकल कर कहा: "आप सब तशरीफ़ ले जाएँ, मुझे अभी फ़ुर्सत नहीं। क्षमा करेंगे।"

"क्यों? क्यों?"

"जी, अभी मैं अपने बच्चों को सुला रही हूँ। पुरस्कार पाने से मुझे प्रसन्नता अवश्य हुई है, पर उतनी नहीं, जितनी कि शान्तिपूर्वक बच्चों के साथ रह कर होती है।"

पत्रकार चले गये और लेखिका बच्चों को लोरियाँ गा-गाकर सुलाने लगी।

—वीणा श्रीवास्तव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GROWING WITH THE TIMES

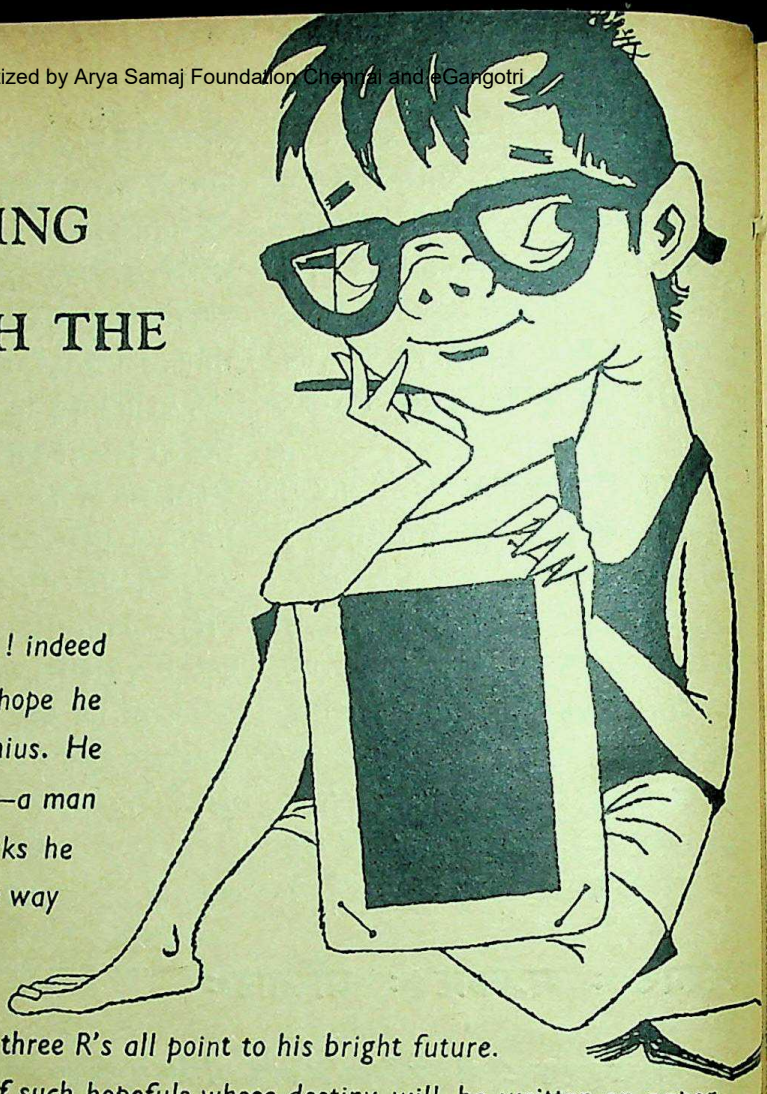

A child prodigy ! Ah ! indeed he looks it. Let's hope he blossoms into a genius. He is the coming man—a man of mark. The marks he makes on paper, the way his pencil is poised, and the speed with which he learns his three R's all point to his bright future. There are millions of such hopefuls whose destiny will be written on paper. It is paper indeed that counts.

We are also growing with the times. With every year that passes we are growing bigger and are trying to serve the millions in the country with the much needed paper for education, commerce and industry.

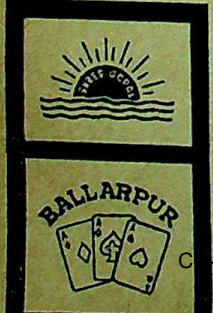

SHREE GOPAL PAPER MILLS LIMI

BALLARPUR PAPER & STRAW BO MILLS LIMITED

Managing Agents : KARAM CHAND THAPAR & BROS., PRIVA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसन्तप्रभा

• आत्म-परिचय

●मेरा जन्म ज़िला झंग (पंजाब) में सन् १९२१ नवम्बर में एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ।

●प्रारम्भिक शिक्षा क्वेटा और चमन (बिलोचिस्तान) में हुई। फिर पिताजी के देहान्त के पश्चात् हमलोग पंजाब लौट आये, मिडिल तक शिक्षा झंग में ही हुई; हिन्दी-रत्न, प्रभाकर, मैट्रिक लाहौर से किया। इसके पश्चात् शिक्षा का क्रम स्थायी न होने के कारण इण्टर की तैयारी मैंने घर पर ही की; लेकिन इसमें सफ़ल न हो सकी।

●साहित्य में मेरी रुचि बचपन से ही थी। मेरी पहली कहानी १९३७ में प्रकाशित हुई, इसके पश्चात् गद्यगीत भी लिखे, जो पंजाब की पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। १९५० से मैंने फिर से लिखने में रुचि ली। मेरे अनेक नाटक, रूपक और कहानियाँ रेडियो से प्रसारित होते रहे। दो उपन्यास भी प्रकाशित हुए—'अधूरी तस्वीर' और 'साझे के साथी।'

●मेरी कृतियों में अधिकतर करुण-रस की प्रधानता रही है; परन्तु समय-समय पर हास्य-रस की झलकियाँ और रेखाचित्र भी लिखती रही हूँ।

●अब तक मैं लगभग डेढ़ सौ कहानियाँ लिख चुकी हूँ।

माँ, अधिकार और बलिदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●●कितनी सुन्दर साँझ है ! कितना प्यारा समय है, **(तन्मयता)** जिस ओर घूमती हूँ उसी ओर से शहनाई के मधुर स्वर सुनायी दे रहे हैं। जिस तरफ़ झाँकती हूँ...सजावट ही सजावट दिखायी दे रही है, जिस ओर देखती हूँ...जगमगाहट से आँखें चकाचौंध हुई जा रही हैं !...ओह !... **(पुलक)** आज इस शुभ-घड़ी में, इस सुन्दर साँझ में, मेरा किशोर दूल्हा बनने जा रहा है। **(उमंग)** मैं कितनी खुश हूँ, कितनी उमंग में हूँ ! इस खुशी में मेरा शरीर फूल की तरह हल्का हुआ जा रहा है।

अरे ! आने-जाने वालों का ताँता तो बढ़ता ही जा रहा है। बधाई के स्वर चारों ओर से सुनायी दे रहे हैं। मेरी आवाज़ तो किसी को सुनायी ही नहीं दे रही। ओह! एक मैं हूँ...और हज़ार यह आवाज़ें हैं।

किसकी सुनूँ ? किसको जवाब दूँ ? किसकी भेंट क़बूल करूँ ? और किसकी लौटा दूँ ? कुछ समझ में नहीं आ रहा। उनसे पूछने को होती हूँ...तो कोई बीच में ही उलझा लेता है।

(विश्राम) थकावट से मेरे पाँव चूर-चूर हो रहे हैं। दर्द से सिर फटा जा रहा है। बोलते-बोलते गला बैठ गया है। लेकिन !... पर इतना-सब होने पर भी मैं खुश हूँ...! खुश हूँ कि मेरा किशोर दूल्हा बनने जा रहा है। **(आवेश)** आज ! आज...मेरी बहुत बड़ी साध पूरी होने वाली है। बहुत-बड़ी उम्मीदें फलने-फूलने वाली हैं। मेरा यह घर...खुशियों में सराबोर हो रहा है....

मेरे इस घर के सभी कमरे मेहमानों से भरे पड़े हैं। आँगन में तिल रखने को स्थान नहीं। हवेली मिठाइयों की सुगन्ध से महक रही है।

इस ड्योढ़ी को लाँघ कर आज मेरे घर कोई नया मेहमान आने वाला है। **(धीरे से)** नया मेहमान ?....यह नया मेहमान ? **(दबी हँसी)**

अमिता ! मेरे किशोर की अमिता। **(गर्व से)** मेरी होने वाली बहू...। **(धीरे से)** **(सोचते हुए)** बहू ? मेरी बहू...!

(चौंक कर) अरे ?....तो क्या मैं सास बनने वाली हूँ ?

(आश्चर्य से) सास ! **(आहत-सी)** सास ! ओह ! कैसा....शब्द है यह ? इस एक शब्द से माँ का सारा अस्तित्व ही बदल जाता है। इस शब्द के आगे, माँ की सारी ममता पर पर्दा डाल दिया जाता है।

ओह !....**(आवेश)** नहीं-नहीं ! मैं सास नहीं बनूँगी ? मैं....मैं ? मैं 'मैं' ही रहूँगी। अमिता मेरी बहू नहीं, लड़की ही बन कर रहेगी। मैं ? मैं उसे माँ का प्यार दूँगी ? उसे एहसास नहीं होने दूँगी कि वह सास के घर आयी है। इस घर में वह मायके और सुसराल का फ़र्क महसूस नहीं करेगी।

हाँ ! मैं माँ हूँ, माँ ! सिर्फ़ एक माँ। माँ, जिसकी सुखद छाया में किशोर और अमिता, एक जैसी शीतलता महसूस करेंगे। एक जैसा ही प्यार पायेंगे। जब कभी दोनों, एक-दूसरे से लड़-झगड़ पड़ेंगे...तो मैं सिर्फ़ अमिता को ही नहीं, किशोर को भी डाँट दिया करूँगी। कहूँगी, 'खबरदार जो अमिता को कभी कुछ कहा तो ! अमिता मेरी बच्ची है....मेरी लाड़ली बच्ची है। इसका सुख मेरा सुख है। इसका दुःख मेरा अपना दुःख है। इसकी इच्छा मेरी अपनी इच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।' जो वह चाहता रहा है...उसका विरोध मैंने कभी भी नहीं किया। **(सोचते हुए)** लेकिन!...लेकिन! तब उसकी चाहना केवल अपने तक सीमित थी। उसमें किसी दूसरे का कोई अधिकार नहीं था...उसके प्यार में किसी और का बँटवारा भी नहीं था। **(विचारते हुए)** ठीक है! किशोर मेरा बच्चा है। किशोर की चीज़ मेरी अपनी चीज़ है। उस चीज़ पर मुझे पूरा-पूरा अधिकार है। उस अधिकार को पाकर मैं अमिता को अपनी समझ सकती हूँ।

उस पर अपने प्यार, अधिकार का दावा भी कर सकती हूँ। मैं उससे कह सकती हूँ कि मेरे किशोर की होने के नाते तुम मेरी बन कर रहोगी। मेरी इच्छाओं का, मेरी भावनाओं का तुम्हें एहसास करना होगा। तुम्हें मेरे सुख-दुख में अपना साथ देना पड़ेगा। **(आश्चर्य)** क्या कहा, मेरे सुख-दुख में साथ देना पड़ेगा? लेकिन क्या अमिता मुझे अपना मान लेगी? क्या वह मेरी भावनाओं का एहसास कर सकेगी?

किशोर के प्यार पर जो मैं अपना अधिकार समझ रही हूँ, उस अधिकार को क्या वह स्वीकार कर सकेगी?

(आवेश) ओह नहीं! शायद नहीं! पति के प्यार पर अधिकार केवल पत्नी का होता है। उस प्यार में किसी और का शरीक़ होना उसे सहन नहीं होता। विवाह के बाद लड़का सिर्फ़ पत्नी का हो जाता है... तब माँ...माँ अलग छिटक जाती है।

(आश्चर्य) तो क्या? मैं! मैं भी किशोर से अलग हो जाऊँगी? किशोर भी केवल अमिता का हो जायेगा? क्या माँ के प्यार के सारे दावे खत्म हो जायेंगे?

(घबरा कर) नहीं-नहीं, मेरा किशोर ऐसा नहीं हो सकता। किशोर अपनी माँ से अलग नहीं हो सकता। किशोर जानता है कि मैं उसे कितना प्यार करती हूँ! जब तक वह घर नहीं लौटता...मेरी आँखें उसकी राह देखती रहती हैं। उसे देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ता...ओह! क्या कहा? उसे देखे बिना चैन नहीं पड़ता? **(धीरे से)** उसे देखे बिना चैन नहीं पड़ता?

ओफ़! ये शब्द! मेरे शब्द नहीं रहेंगे...इन्हें अब अमिता मुझसे छीन लेगी!

किशोर अब इनमें अमिता के ही प्यार की पीड़ा महसूस करेगा!

वह जब दफ्तर से लौटेगा, तो देखेगा कि माँ अब दरवाजे पर खड़ी उसकी राह नहीं देख रही! ओह! पहले की तरह अब किशोर भी शायद यह पसन्द नहीं करेगा कि मैं ही उसकी राह देखा करूँ।

मुझसे पहले अब वह अमिता को देखना चाहेगा! **(उच्छ्वास)** ठीक है...पति जब घर लौटता है तो पत्नी को देखने के लिए बेताब हो उठता है। पत्नी जब दीख नहीं पड़ती तो...अधीरता से वह इधर-उधर टहलता रहता है। तब ऐसे समय में माँ का प्यार उसे जरा भी अच्छा नहीं लगता। वह चाहता है कि उसकी उत्सुकता में माँ शरीक़ न हो। **(प्रश्नसूचक)** जाने, तब माँ अच्छी क्यों नहीं लगती?

अपनी उस अधीरता में वह माँ के साये से ही दूर क्यों हो जाना चाहता है?

यह क्यों भूल जाता है कि इस साये से उसकी इच्छाओं को बल मिला है? इस बल से उसका भविष्य बना है?

(आवेश) उसके वर्तमान और भविष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की देन होती है केवल माँ।

(उच्छ्वास)...माँ ? मैं किशोर की माँ हूँ। मैंने उसे जन्म दिया है। जन्म देने के वक्त मैंने कष्ट सहा है...इतना कष्ट कि जिसे याद करके मैं अब भी सहम जाती हूँ।

उस घड़ी को याद करते हुए मेरा अन्तर, पीड़ा और आह्लाद से भर उठता है। मैं पीड़ा से कराहती हुई भी नर्स से पूछ बैठती हूँ....

(अन्तराल संगीत)

●● **(कराहना)**...नर्स...! अब और कितनी देर है ?

(रोती हुई)...अब और...सहा नहीं जाता....

(टन-टन...टन-टन-टन) ओह ! चार बज गये। तुमने...तो कहा था...रात बीतने से पहले...मैं इस पीड़ा से मुक्त हो जाऊँगी,... आह...अब, अब...तो रात भी बीत गयी **(कराहना)**...और...और...मैं अभी तक दर्द में चीख रही हूँ !

(चीखती हुई) मैं...मैं बचूँगी नहीं... **(कराहती हुई)** मैं...बचूँगी नहीं... **(धीमी आवाज़)** मैं...मैं अब नहीं बचूँगी...! ●●

(वर्तमान)...ओह !...कितनी अजीब हालत थी मेरी ! ज़िन्दगी और मौत की कशमकश में, मेरी तमाम शक्ति चुक गयी थी। फिर भी साँस थी...जो धड़क रही थी। उस धड़कती हुई साँस में...किसी की छोटी-सी ज़िन्दगी मचल रही थी। और उस छोटी-सी ज़िन्दगी को मेरी ममता ने थाम रखा था। पीड़ा के अथाह सागर में, कहीं वह छोटा-सा दीप बुझ न जाये,...इसके लिए मेरी आँखें कितनी सतेज थीं...मेरा दिल कितना सचेत था ! हर पल, हर घड़ी...मैं तुम्हारे आने की बाट देख रही थी,..तुम्हारी नन्हीं-सी रुलाई की आवाज़ सुनने के लिए मैं बेताब हो रही थी !

तब ? तब वह समय भी आया... जब नर्स ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा--

'लड़का हुआ है, फूल-सा, प्यारा-सा !'

ओह ! तब पीड़ा से निर्जीव होती हुई भी, मैं मुस्कुरा दी थी।...मेरी आँखें बन्द थीं, लेकिन इन बन्द आँखों से भी, मैं अपने नन्हें-से किशोर को देख रही थी...।

मेरे छोटे-से दिल में सैकड़ों नन्हें-से दीप जगमगा रहे थे। अपनी कमज़ोर...विवशता से भरी हुई उस स्थिति में भी, मैं बच्चे की खुशी में झूम उठी थी...। अपनी सारी पीड़ा ही भूल गयी थी; आशाओं की मीठी तन्द्रा ने मेरे तन-मन पर अपना जादू फैला दिया था...। उस नींद और बेहोशी की हालत में, तब मुझे एक ही चीज़ याद आ रही थी--वह यह कि मेरी पीड़ा को हर लेने वाला मेरा बच्चा मेरे पास आ गया है।....

(रुलाई) मेरा बच्चा ! मेरी पीड़ा को दूर कर देने वाला मेरा किशोर...मेरा अपना किशोर...**(आवेश)** नहीं-नहीं, मेरा किशोर मुझसे दूर नहीं हो सकेगा। उसे जन्म मैंने दिया है। अपनी छाती पर मैंने उसे सुलाया है। अमिता ! अमिता... उसकी छाती पर अपना सिर रख कर जो सुख महसूस करेगी, उस सुख का सृजन मैंने किया है। किशोर की जिस प्यार की नज़र से वह अपनी सुध-बुध खो बैठेगी उस नज़र का छलकता हुआ प्यार...मेरे ही स्नेह का प्रतीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर की हर धड़कती हुई साँस में मेरे प्राण समाये हुए हैं। (हाँ...) किशोर... मुझसे अलग नहीं।

(**सन्तोष**) मुझसे दूर होकर भी वह मेरा अपना रहेगा। उसके प्यार पर मेरा अधिकार न सही...लेकिन मेरे स्नेह पर... मेरी ममता पर उसका अधिकार हमेशा के लिए बना रहेगा।

मैं क्यों सोचती हूँ कि अमिता मेरे किशोर को मझसे छीन लेगी ? मेरे अधिकार पर वह अपना अधिकार जमा लेगी ?

ओह ! कभी, किसी दिन.....मैं भी इस घर में बहू बन कर आयी थी।

घर-घर में इसी तरह से चहल-पहल हो रही थी; सकुचायी-सी....भयभीत-सी जब मैं इस घर में आयी थी तो भविष्य की रूप-रेखा के अनेक सुख-स्वप्न से मेरा नन्हा-सा दिल काँप-काँप रहा था। सास-ससुर का व्यवहार कैसा होगा ? मेरे...अपने वह किस तबीयत के होंगे ? मेरे साथ कोई किस तरह से अपनापन दिखायेगा ?...यह सब कौतूहल मेरे भीतर समाया हुआ था...। सास का विचार मुझे रह-रह कर भयभीत कर रहा था, मैं नहीं जानती थी कि सास मेरे साथ कैसे पेश आयेंगी ?

मगर...दो-चार दिन में ही...मैंने समझ लिया था कि मेरे उन पर, माँ का कितना बड़ा अधिकार है ! माँ की इच्छाओं का वह किस तरह से ख्याल रखते हैं। माँ की आज्ञा का पालन किस तरह से किया जाता है।

तब...तब यह सब देखते हुए मुझे कितनी ईर्ष्या हुआ करती थी ! कितनी अधिक जलन होती थी !

मैं चाहती थी कि जितना ख़्याल वह मेरा किया करें उतना ध्यान किसी की ओर दिया न जाये;...जितना समय वह मेरे साथ बिताया करें, उतनी देर वह किसी के पास न बैठें।...तब ? तब मैं इस घर की बहू थी। बहू के अधिकार को समझती हुई... सास की भावनाओं से अनभिज्ञ थी। मैं नहीं जानती थी कि जिस पति के प्यार पर मैं अपना अधिकार जमाना चाहती हूँ, उस प्यार पर अधिकार मेरी सास का भी हो सकता है ! जिस पति को मैं केवल अपना ही समझती हूँ, वह किसी और का भी है !

...तब अपनी इच्छाओं को मैं मान्य समझती थी...किसी दूसरे की भावनाओं का एहसास करने की मुझे फ़ुर्सत ही नहीं थी।....

(**उच्छ्वास**) ओह ! बहू बन कर... अब मैं सास बन गयी ?

सास बनना भी कितना मुश्किल होता है !

बहू को अपने सारे अधिकार देकर भी... सास केवल सास रह जाती है, (**भर्राए हुए गले से**) माँ की ममता की सारी पहचान ही इस एक सम्बोधन में लुप्त हो जाती है। प्रकृति का यह नियम जितना अटल है...सास शब्द भी उतना ही स्थायी है।

लेकिन . . . लेकिन मैं इससे परेशान क्यों हो रही हूँ ? क्यों समझती हूँ कि इस सम्बोधन से मैं माँ नहीं रहूँगी ? नहीं...नहीं।

सार्थकता नाम में नहीं होती, व्यवहार में होती है। अमिता से जैसा मेरा व्यवहार होगा, मेरा नाम भी उसी गिनती में लिया जायेगा।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए
लक्स ज़रूरी है'

चित्रतारिकाओं
का शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

'मेरा मनचाहा साबुन मेरे मनचाहे रंगों में !' साधना कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 111-X29 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनमोहिनी

★ आत्म-परिचय

मेरा परिचय कुछ ख़ास तो है नहीं। फिर भी, कुछ तो लिखना ही होगा। बी० ए० बी० एड० करने के बाद कुछ साल अध्यापन-कार्य किया। इसी बीच 'लहर' का प्रकाशन आरम्भ हुआ और तब से अध्यापन-कार्य छोड़ कर इसी में आकर डूब गयी हूँ। लिखना अभी सीख रही हूँ। अभी तो यह भी तय नहीं कर पायी हूँ कि मैं सचमुच लेखिका हूँ भी या नहीं। हाँ, लिखना और लिखते रहना मैं अब चाहती अवश्य हूँ।

मन नहीं लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●●सारा दिन हँसी-ठट्ठे में बीत जाता है। हँसी-ठट्ठा कहना ही बस नहीं होगा, धींगा-मस्ती कहना चाहिए। अपना-अपना काम भी करते ही हैं। नहीं करते तो कहानियों की पत्रिकाएँ ही चूसते रहते हैं। पर अलग होते हैं तो चलते-चलते कह देते हैं कि मन नहीं लगता। किसी काम में मन नहीं लगता। किसी बात में नहीं डूबता मन।

कई-कई बाज़ी शतरंज की जम जाती है और मन नहीं लगता। ताश खेलते हैं घंटों, मन नहीं लगता। बॉक्सिंग करते हैं, मन नहीं लगता। प्यार करते हैं, मन नहीं लगता। दुश्मनी करते हैं, मन नहीं लगता। क्या हो गया है मन को?

रह-रह कर जग्गी याद आता है। वह कभी नहीं कहता कि मन नहीं लगता; और हम उसके लिए भी कहने से बाज़ नहीं आते कि उसका भी मन नहीं लगता। कहीं भी मन नहीं लगता। हमें क्या अधिकार है उसके लिए यह सब कहने का? घंटों वह साथियों के साथ भटकता है। शहर के इस कोने से उस कोने तक। और उसका मन नहीं लगता। घंटों वह रेस्तराँ में बैठ कर प्यालों चाय और कॉफ़ी पी जाता है। उसका मन नहीं लगता।

वह हम सबसे नाराज़ है मन ही मन। वह हमसे कतई नाराज़ नहीं है। क्यों है वह नाराज़? कैसे है? नाराज़ होता तो पास तक नहीं फटकता। उसे क्या पड़ी है? पर वह नाराज़ है।

उस दिन बेवजह फिलॉसफर बन बैठा—'एक जगह बैठा रहता है सुरेश। इसे काम नहीं करना है। और शाम को रोज़ भंग चढ़ा लेते हैं ये सब। भंग बुरी चीज़ है। क्योंकि भंग एक नशा है। और हर नशा बुरा होता है। हर लत बुरी होती है।'

उस दिन अपना मूढ़ा लेकर बाहर जा बैठा कि सभी बाहर आ जाओ। उस दिन उसने भंग नहीं ली कि कोई न लो। और सुरेश और राजेन्द्र भी पूरे नकरे हैं। फिल्मी गाने गाते हैं। 'जो बोर करे यार को, उस यार से तौबा-तौबा' गाने लगे तो फिर गाते ही चले गये। और चाय बनने लगी तो जग्गी उठ कर चल दिया। ऐसा तो वह कभी भी नहीं करता है। दस जगह चाय और कॉफ़ी के आग्रह टाल कर भी वह आता रहा है। आज क्यों चल दिया? न, ऐसा नहीं होने देना है।

'चल दिये जग्गी भाई? चाय पीकर जाना।'

'नहीं, मुझे कहीं और चाय पर जाना है।'

'जाना है तो चले जाना। पहले चाय पीनी है।'

'नहीं, फिर वहाँ पी नहीं जाएगी।'

'ये लोग हूट कर रहे थे, इसलिए बुरा मान गये?'

'नहीं, वैसा तो मैं भी कई बार करता हूँ।'

'फिर?'

'ये लोग रोज़ भंग क्यों पीते हैं?'

'वह इनसे ही पूछो। उसके लिए तुम हमारी चाय का अपमान क्यों करते हो?'

'नहीं, मैंने बहुत सोचा है इन दिनों। इससे कई लोगों को नुकसान उठाते देखा है। मेरी दूकान बरबाद हुई। सुरेश की हुई।'

'भंग से? वह तो हमारी बेवकूफ़ियों से हुई। भंग ने नहीं कहा था हमसे कि नफ़े के साथ-साथ मूल भी खा जाओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पर सीमा होती है। यहाँ सिर्फ़ हम ही नहीं हैं। एक अपोज़िट-सेक्स के सामने हमें सीमाएँ रखनी ही हैं।'

अपोज़िट-सेक्स ? तो मन में सोचती हूँ कि ऐसा सोचता है यह ? मैं तो मन से ही वैसी नहीं इनके सामने। सोचती हूँ कि अधिक से अधिक स्पष्ट और सहज रह सकें सब आपस में। नहीं चल सकता यों सिमट-सिमट कर। खैर, कुछ भी हो। मुझे अब इसकी सीमाओं की सुरक्षा का ध्यान रखना है। वाह! सीमा बाँधे कोई और सुरक्षा की चिन्ता करे कोई और। खूब! पर करनी है। क़ानून कोई बनाता है, पालन कोई करता है। शहीद कोई होता है और सुख कोई और भोगता है। ठीक है।

कारण कुछ भी हो। सुरेश से नाराज़गी है मूल में--'वह क्यों इसके साथ-साथ नहीं भटकता ? वही तो इसका सबसे पुराना दोस्त है।' और सुरेश का परिचय भी इसी ने सबसे करवाया था कभी। और सुरेश अब औरों का ही होकर रह गया है--सुरेश, जग्गी का सबसे पुराना दोस्त। हर बात में साथी रहे हैं ये। और अब दोनों ही हमपेशा भी हैं। ये लोग क्यों इसके अपने होते जा रहे हैं ? इनकी सभी बातें मानेगा यह ? इस बुरी तरह ? और मेरी कोई परवाह ही नहीं है ?

सुरेश कहता है--

'अब मुझसे नहीं भटका जाता सारे दिन इसके साथ। कई दिनों से देख रहा हूँ कि मुझे वहाँ जाने से रोकने की हर चेष्टा यह करता है। कार्यालय से उठा कर ले जाता है तो बेकार के लोगों के यहाँ जम जाता है। मुझे कहता है--काम किया कर। जैसे मल्होत्रा के यहाँ जाकर रेकॉर्ड सुनना ही काम है ? कई दिनों से मैं इसकी हर बात मानता रहा हूँ। या तो सारे दिन मुझे भटकाएगा और शाम से ही अपने घर में घुस कर बैठ जाएगा। जैसे मुझे तो शाम को किसी साथी की ज़रूरत ही नहीं। या फिर दोपहर-भर आप लम्बी तान कर सोएगा और शाम को कहेगा कि क्या करेगा अब घर जाकर ? जैसे आये दिन घर से ग़ायब होकर खाने पर इन्तज़ार करवाना कोई काम की बात हो गयी ?'

क्यों हो गया है यह ऐसा ? एकाधिकार की भावना बढ़ती जा रही है। अब क्या यह बच्चा रह गया है ? गधा-पच्चीसी पार किये भी बरस बीत गये। यह निकलता है घर से ही बारह बजे। और मैं सात बजे से निकल कर अपना काम देख लेता हूँ, सो कुछ नहीं। मुझे तो जैसे अपने काम की चिन्ता ही नहीं है ? फिर बेकार ही कार का पैट्रोल फूँकना तो काम नहीं है। ऐरों-ग़ैरों के साथ बेमन बातें करना तो काम नहीं है ? जहाँ न मन रमता है, न बुद्धि को संतोष मिलता है। मुझसे नहीं भटका जाता दोपहरी-भर। अब मुझे अच्छे लगते हैं वे लोग, तो लगते हैं। कोई बुरी बात नहीं है। कितना इन्तज़ार करते हैं वे दोनों, हम सभी का! सिर्फ़ मेरी ही कोई विशेष खातिर करते हों, सो तो नहीं है। किसी में भी तो भेद नहीं करते वे लोग ? फिर यह जग्गी ऐसा क्यों सोचता है ?

पर चलो। दो दिन बाद सब ठीक हो गया। जग्गी फिर आने लगा है। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही बैठकें, चाय, गप्प और भंग और कहकहे।

मैंने कहा, 'जग्गी भाई। सच कहो उस दिन क्यों इतना बिफर गये थे तुम ?'

'कहाँ बिफरा था मैं ? मैं तो सुरेश के काम की ही वजह से कह रहा था। यहाँ बैठे-बैठे काम कैसे चलेगा इसका ?'

'तो क्या विक्रम्स में बैठ कर चलेगा ? कार दौड़ाने से चलेगा ? कैसे चलेगा ? करता नहीं है वह काम ? रोज़ तुम अपने कितने एजेन्टों से मिल लेते हो ? और सवेरे-सवेरे उनके पीछे नहीं दौड़ता है ? और भंग पिये बग़ैर तुम कितना रह लेते हो ? क्यों पीते हो तुम भंग ?'

सुरेश ही कहता है, 'अब छोड़ो ना, इस बेचारे की जान। हमसे पूछो। जीवन का मर्म जानने के लिए गीत और मन को प्रसन्न रखने के लिए भंग।'

और सुना कि शिब्बू को किसी ने भंग में कुछ मिला कर पिला दिया था। उसे ब्रेन-हैमरेज हो गया और वह आठ दिन से अस्पताल में पड़ा है। फिर भी सब जीवन का मर्म खोजते-खोजते जिये ही जा रहे हैं।

जग्गी, पता नहीं क्यों, लगता है कि वह स्वयं हमसे 'रेस्पेक्टेबल डिस्टेन्स' पर है या हमने उसे वह दूरी दे दी है, या कि वह दूरी केवल हमारे दिमाग़ की पर्तों में पैठ गयी है कि उसका वह स्वच्छन्द व्यवहार जैसे कहीं खो गया है।

जग्गी !

उसे हम हॉक-मर्चेन्ट कहते हैं। पान की दूकान पर खड़ा हो जाता है तो दो घंटे बिता सकता है, आने-जाने वाले से बात करके। अगर दो बजे किसी को कहीं मिलने के लिए समय देता है तो चार बजे तक वह गरीब उसकी प्रतीक्षा करके लौट जाता है। काम उसका फ़ील्ड में घूमने का है, कि ऑफ़िस के एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने ही वह शाम कर दे सकता है। और कभी हमारा कार्यालय बन्द रहे तो वह सुरेश को लेकर किशनगढ़ या पुष्कर में ही चाय आता है। उसका मन कहीं भी लग सक है। उसे दर्शन-शास्त्र अच्छा लगता है और दर्शन की भी अंग्रेज़ी पुस्तकें खरीद उसे अच्छी लगती हैं। उसे हाथ देख भी आता है और कुछ न हो करने को तो हाथ देख कर ही घंटों बिता सकता है। कि अब तो वह भी जैसे स्वीकार चुका कि उस मन नहीं लगता।

उसे प्रोमोशन मिला है। और प्रोम शन के बाद ही उसे बाहर जाना पड़ेगा जहाँ जीवन के छत्तीस वर्ष उसने बिताये वहीं से उसे बाहर जाना पड़ेगा। और क उसे अपने शहर, अपने साथियों अभाव अखरेगा। उसका मन नहीं लगेगा उसका मन नहीं लग रहा है। और उसे समझाते हैं, 'देख रे, परेशान होने की क बात है ? दुनियाँ में कितने लोग तो कि जिन्हें बाहर जाना पड़ता है। फि तुझे तो दो-एक वर्ष में वापस आने का अवसर मिल सकता है। कोई-कोई बेचारे जैसे निर्वासित हो जाते हैं, इन नौ रियों के चक्कर में। वे भी जीते ही हैं औ सभी स्थितियों से समझौता करके जी हैं। ऐसी क्या नयी बात हो रही है साथ ? फिर इसी उम्र में इतना ब अवसर ! आगे की ज़िन्दगी बनती है।'

किन्तु जग्गी का मन बिल्कुल ही उख गया है। हमें भी तो पीछे से उसकी य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम नहीं आएगी। मिलता था या नहीं दिन भर में, किन्तु मिल तो सकता था। और वह भी दिन में चाहे कहीं होता, किसी भी तरह के लोगों के बीच, उसका मन तो हमारे ही पास रहता था। फिर, फिर क्या करेगा वह? कुछ नहीं। हम उसे समझाते हैं, 'देख रे हम कभी-कभी पिकनिक करने वहाँ आया करेंगे। तू भी तो महीने भर में एक बार आ ही जाएगा। आखिर तेरे माता-पिताजी तो यहीं रहेंगे।

और सब समझ कर भी मन नहीं मानता। किसी बात में मन नहीं लगता। बहसें करते हैं और मन नहीं लगता; एक दूसरे को समझाते हैं; मन नहीं लगता। खूब-खूब बातें करते हैं; मन नहीं लगता। हँसते हैं; मन नहीं लगता। चिंता करते हैं; मन नहीं लगता; सारे भविष्य की ऐसी की तैसी करते हैं। मन नहीं लगता। क्या हो गया है मन को?

● ● ●

क्लर्क, प्रेमी और कवि

सोचते-चलते बात उतर कर प्रौस्पेक्ट पर चली आई। धोबी के गदहे ने कहा—"मेरे मालिक का व्यापार इन दिनों बहुत चल पड़ा है भाई। अकेले मुझसे सपरता नहीं। आजकल में वह और गदहे लेने वाला है। निश्चित है कि और सहकर्मी आ गये तो मैं हेड गदहा बना ही दिया जाऊँगा।"

सरकस के गदहे ने बतलाया—"मेरे मालिक की बेटी इन दिनों डोरी पर नाचने की कला सीख रही है। मालिक रोज उसे धमकाता है—अगर तू नीचे गिरी तो तेरी शादी गदहे से कर दूँगा। सो मैं तो इसी आस पर जी रहा हूँ कि एक न एक दिन वह नीचे गिरेगी ही और मैं मालिक का दामाद बन कर रहूँगा।"

और अब मैदानों में आवारा घूमने वाले नौजवान गदहे की बारी थी। ऊपर चाँद खिलखिला रहा था, नीचे पुरबा की फुरहरी छूट रही थी और समूचा मैदान गमगम कर रहा था। उसने एक बार चाँद को देखा, एक बार आकर्षक मुद्रा में गर्दन हिलाई और कहा—"मैं तो भाई, बँधी-बँधाई लीक पर, पिटी-पिटाई राह पर चलने का अभ्यासी नहीं हूँ। हमें मंजिल पर जाना है, यह रास्ता मंजिल को जाता है, इसलिए इस पर चल कर हम मंजिल पर पहुँच जायेंगे। शुष्क तार्किक की तरह यों चलना भी कोई चलना है? युग बदल रहा है, दुनिया बदल रही है, मानदण्ड बदल रहे हैं। अजब नहीं कि एक दिन मनुष्य का टेस्ट बदल जाय, वह हमारे स्वर में संगीत का रस पाने लगे और मैं रेडियो-आर्टिस्ट हो जाऊँ।"

तकदीर लिखने वाले विधाता ने सब सुना और अपने खाते में नोट किया—अगले जन्म में तीनों को मनुष्य योनि—क्लर्क, प्रेमी और कवि।

—सरस्वती झा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े काम के उपयुक्त

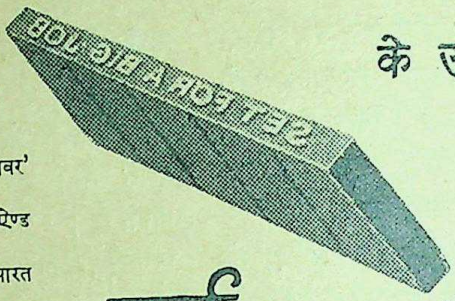

ब्रिटानिया — डी. पी. ई. 'जावर' इंगलैण्ड के डावसन, पाइन ऐण्ड इलियट लिमिटेड के सहयोग से भारत में पहले पहल तैयार की गई है जिसका निर्माण कम खर्च, अधिक दक्षता तथा मेन्टेनेन्स की सहूलियत पर विशेष ध्यान रखकर किया गया है।

यह मशीन एक सरल लगातार चलनेवाली मोटर से चलती है जिसमें चाल को कम या अधिक करने के लिये तीन तुरन्त बदलने लायक पुल्यिाँ लगी हैं। चलाने की जगह एक ही लिवर है जिससे स्टार्टिंग, इंचिंग और ब्रेकिंग के काम होते हैं। कागज की डेलीवरी चेन ग्रिपर से होती है जिससे छपा हुआ पहलू काम के समय अछूता रहता है।

नई लेटरप्रेस प्रिंटिंग मशीन

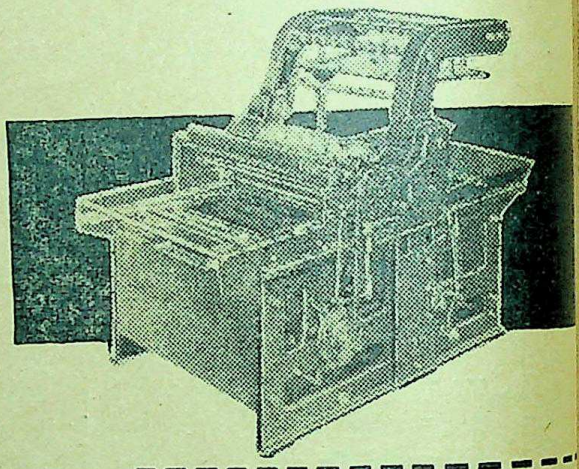

दि ब्रिटानिया-डी० पी० ई०

जाबर

स्पेसीफिकेशन

कागज की साइजें

स्टैण्डर्ड	: २०"×३०"	(५०८ मिमि.×७६२ मिमि.)
अधिक	: २०"×३३"	(५०८ मिमि.×८३८ मिमि.)
कम	: १०"×१५"	(२५४ मिमि.×३८१ मिमि.)
टाइप-बेड बीयरों के बीच की चौड़ाई	: ३४ १/२"	(८७६ मिमि.)
फार्म बारों के बीच की दूरी	: २६"	(६६० मिमि.)
कुल लम्बाई	: ७'११"	(२४१३ मिमि.)
कुल चौड़ाई	: ५'५"	(१६५१ मिमि.)
कुल ऊँचाई	: ५'८"	(१७२७ मिमि.)

दि ब्रिटानिया इंजिनीयरिंग कम्पनी लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्टस : मैकलाउड ऐण्ड कं० लि०, ३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

सोल सेलिंग एजेन्टस : इगडो यूरोपियन मशीनरी कं० प्राइवेट लि०

एस. पी. एम. रोड, बम्बई ५, बैंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता चाँदनी चौक, दिल्ली ६, माउन्ट रोड, मद्रास

PSBE. 15A

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्ति द्विवेदी ●

● आत्म–परिचय

●शिक्षा : इंटरमीडिएट तक, बी० ए० का अध्ययन चल रहा है।

●पारिवारिक वातावरण : बड़े भाई श्री रामचन्द्र शुक्ल भारत के मार्डर्न चित्रकार माने जाते हैं। उनके सम्पर्क से चित्र बनाती रही हूँ। कभी-कभी लिखती भी रही हूँ, जिनका प्रकाशन कालेज मैगज़ीन तक ही सीमित रहा। विवाह के बाद कुछ रचनाएँ छपवायीं। अधिकतर अभी अप्रकाशित हैं, जो पतिदेव के 'असहयोग' से प्रकाशित नहीं होना चाहतीं।

●शौक : घर-गिरस्थी सँभालने का ; उसी से सम्बद्ध सभी कार्यों का ; सोने का ; खिलाने-पिलाने का।

●नफ़रत : पढ़ने से ; यात्रा करने से ; खाने-पीने से—विशेष कर दवा।

एक गाँव की यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● मेरे पति ने अभी-अभी एक कहानी लिखी है जिसमें मुझे 'देवी जी' कह कर याद किया गया है। अब मुझे यहाँ उनका सन्दर्भ देना है तो उन्हें देवता जी कहूँ तो बात पारस्परिक हो जायगी। अतएव प्रचलित शैली में 'ये' 'वे' कह कर ही काम चला लूंगी।

एक दिन ये बोले कि, "तुमने आज तक गाँव तो देखा नहीं है, जबकि हमारे अधिकांश नातेदार देहात में ही रहते हैं। अपना पुश्तैनी घर भी गाँव में है। क्या ही अच्छा हो कि एक पखवारा हरियाली के कछार पर काटा जाय!"

मैंने कहा, "इधर कोई लम्बी छुट्टी होने वाली है क्या?"

"चिकित्सा-अवकाश (मेडिकल-लीव) ले लूंगा।"

"लेकिन...."

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। जल्दी ही चलेंगे। क्वार का महीना है। गाँवों में घूमने के लिए सर्वोत्तम।"

मैं बहुत घबरा गयी। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि हम दोनों की रुचियों में जमीन-आसमान का अन्तर है। इनकी चले तो झोरा-डंडा लिए घूमते ही रहें और मैं हूँ कि एक मुहल्ले से दूसरे को जाने में डर लगे। इसी तरह से मुझे नीला और हरा रंग पसन्द है जबकि ये इन रंगों को सपने में भी देख लें तो चौंक पड़ें। लेकिन मुझे ये सब यहाँ नहीं बयान करना चाहिए। पति-पत्नी के स्वभाव में अन्तर जान कर, बहुत सम्भव है कल को कोई कुमार (कुमारी यानी 'मिस' के तर्ज पर) अपनी रुचियों के मेनू और प्रेम-पत्र के साथ मुझे एप्रोच करे।

हाँ, तो हमलोग ग्राम-जीवन की छटा देखने के लिए तैयार हुए। फिर जैसा कि सभी यात्राओं के लिए आवश्यक होता है हम रेल पर बैठे। डिब्बे में हमलोग अके थे। कहीं कोई चिरई का पूत भी न था। इसलिए निर्द्वन्द्व भाव से हमले आमने-सामने की सीटों पर बैठ गए; क्यों दोनों जने खिड़की के पास बैठना चाहते थे मैंने खिड़की का शीशा चढ़ा दिया तो इन्हों उसे गिरा दिया। मैंने कहा, "ठण्डी ह लगती है।"

ये बोले, "ताजी आक्सीजन आने दो

मैंने कहा, "इंजन के धुएँ में कार्बन-डा आक्साइड होती है।"

ये बोले, "नाक पर अँगुली रख लो छन-छन कर आक्सीजन पेट में जायगी

मैंने कहा, "हवा पेट में नहीं, फेफड़ों जाती है।"

ये बोले, "चुप रहो और अँगुली रख लो

मैंने नाक पर अँगुली रख ली और बाह देखती रही। थोड़ी देर बाद ये बोले, "क देख रही हो?"

बाहर एक पगडंडी थी। मैंने नकनक हुए कहा, "विधँवाँ की माँगें।"

इन्होंने बहस करने की कोशिश तो मैंने उपन्यास निकाल लिया। हरियाली में खो गए और खर्राटे भरते खोए रहे। इस प्रकार से रेल-यात्रा पू हुई।

रेल से उतर, हमलोग बस-स्टेशन गए। मैं 'प्रतीक्षालय' नाम की बेंच बैठ गयी। ये तख्ते पर लिखी बस की सम सारिणी पढ़ते रहे। जब उससे कुछ न सम में आया तो लाइन में खड़े लोगों से पूछ राजपुर के लिए टिकट मिलने (यानी बिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बोर्ड जहाँ लगा था, वहाँ वालों ने बताया कि यहाँ खपड़डीहा का टिकट मिलता है। और खपड़डीहा का बोर्ड जहाँ लगा था, उस खिड़की पर इकट्ठी हुई भीड़ से पूछने पर पता चला कि वहाँ सरैंया का टिकट मिलता है।

हमलोगों को सकलदीपनारायणमणि-त्रिपाठीपुरवा जाना था। वहाँ का टिकट जिस जगह मिलता था, वहाँ भीड़ थी। इससे मैंने इनसे कहा कि पैसे मुझे दीजिए, मैं भीतर से टिकट ले आती हूँ। इन्होंने दस का नोट देकर कहा कि दो रुपए छप्पन पैसे के टिकट हुए। वापस मिलेंगे—सात रुपए चौव्वालीस पैसे। मैंने हिसाब लगाया तो पता चला कि आठ रुपए चौव्वन पैसे मिलने चाहिएँ। इनको समझाने की बड़ी कोशिश की; लेकिन पुरुष ज़िद्दी होते हैं। इनकी समझ में नहीं आया और ये अपनी ही ज़िद पर अड़े रहे। हार कर मैं टिकट-घर के भीतर गयी।

भीतर औरतों की बड़ी लम्बी लाइन लगी हुई थी। अपने साफ़ लिबास का फ़ायदा उठाने के खयाल से, मैं टिकट बाबू के पास जा खड़ी हुई। लेकिन तभी लाइन वाली औरतें चिल्लाने लगीं, "ए बहेन जी, अपना रास्ता नापो। बड़ी होंगी, अपने घर की होंगी।"

खिसिया कर मैं लाइन में सबसे पीछे खड़ी हो गयी। सोचा कि बाहर निकल चलूँ। ये बाहर से टिकट लेते फिरेंगे। तभी मेरी निगाह गयी तो मैंने पाया कि मर्दों को तो अभी टिकट मिल ही नहीं रहा था। औरतों की लाइन ही निबट रही थी। लाइन में खड़ी-खड़ी मैं फिर से टिकट के दाम का हिसाब लगाने लगी कि शायद भूल मेरी ही रही हो लेकिन ऐसी बात थी नहीं। तरस आयी मुझे मर्दों की अक्ल पर। इसी सब में लाइन कुछ आगे खिसकी। मेरे पीछे कुछ और औरतें भी आ गयी थीं। तसल्ली हुई कि अब जल्दी ही मेरा नम्बर भी आएगा। उत्सुकता के कारण मैं गिनने लगी कि मेरे आगे कितनी स्त्रियाँ और खड़ी हैं। लेकिन इतनी जाहिल औरतें थीं कि सीधे खड़ी नहीं रह सकती थीं। हिला-डुला करती थीं। इससे छः-सात तक आते-आते सब गड़बड़ हो जाता था। मैंने बार-बार गिनने की कोशिश की लेकिन असफल रही। होते-होते जब मेरा नम्बर छठे पर आ गया तब मैं अपना स्थान निर्धारित कर सकी।

लेकिन तभी एक गड़बड़ हो गयी। खिड़की के बाहर खड़े मर्दुवों...ने बोली बोलनी शुरू कर दी, "टिकट बाबू, जिनके पास औरतें नहीं हैं, उन्हें क्या टिकट ही नहीं मिलेगा? रँडुवे हैं तो क्या दो-दो नुकसान उठावें कि औरत से भी जायँ और टिकट से भी?"

टिकट बाबू ने उन्हीं लोगों को टिकट देना शुरू कर दिया। 'किस्मत की ख़ूबी देखिये टूटी कहाँ कमन्द'। हमलोग मुँह बाए खड़े रहे। मेरे जी में आया कि लाइन से निकल चलूँ और इन्हें कह दूँ। ये ही टिकट खरीदें। लेकिन फिर मैंने सोचा कि मेरा नम्बर तो छठा ही है। कहीं मर्दों की लाइन में इनका नम्बर बीसवाँ-पचीसवाँ पड़ जाय तो वह और मुश्किल हो जाय। इससे चुपचाप खड़ी रही। थोड़ी देर में सामने वाली औरतों ने शोर मचाना शुरू कर दिया कि अब हमको टिकट दो। लेकिन टिकट बाबू ठहरा पुरुष जाति का। मर्दों की तरफ़दारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर गया। उन सबको टिकट देकर ही हमलोगों की ओर मुड़ा।

अपना नम्बर आने पर मैंने कह दिया—"दो टिकट त्रिपाठीपुरवा।"

वह बोला, "कौन त्रिपाठीपुरवा? सकलदीपनारायणमणि या बिकलदीपनारायणमणित्रिपाठी?"

लम्बा नाम होने के कारण मैंने केवल शॉर्टफॉर्म याद कर लिया था। अब अजब चक्कर में पड़ी। तभी सूझ गया। बोली, "जिसका किराया दो रुपया छप्पन पैसा हो।"

वह बोला, "दो रुपया छप्पन पैसा तो दोनों में से कहीं का किराया नहीं है।"

अब मुझे क्रोध आया 'इन' पर। मुझसे कह दिया, दो रुपया छप्पन पैसा और खुद को ठीक किराया पता ही नहीं है। झल्ला कर लाइन में से निकली। बाहर आयी। बेंच पर जहाँ सामान रखा था, इनका पता ही नहीं था। कह गयी थी कि सामान देखना, लेकिन हज़रत गायब हैं। मैंने इधर-उधर निगाह दौड़ायी लेकिन इनका पता न चला। तब मैं बेंच पर बैठ गयी। झल्लाहट के मारे निश्चिंत हो बैठ न पायी। इनके ऊपर क्रोध आता रहा। उसी से थकान भी लगती हुई पता चली। मैंने माथे पर हाथ रख लिया और कुछ क्षणों के लिए आँखें मूँद लीं।

तभी मुझे लगा कि कोई बेंच पर का सामान खिसका रहा था। एकदम से आँख खुल गई। देखा तो एक मैला-कुचैला आदमी मेरा होल्डॉल उठाने के चक्कर में था। चौंक कर मैं बोली, "क्या करता है?"

उसने कहा, "बाबू जी कहिन हैं।"

"कौन बाबू जी?"

उसने मेरे पीछे की ओर निगाह की। मैंने घूम कर देखा। बेंच के पीछे ये खड़े थे। मुस्करा कर बोले, "बस पर सामान रखने में बड़ी दिक्कत होती है। कण्डक्टर रखवाते नहीं और खुद चढ़ पाना मुश्किल है। स्टेशन पर कुली रहते नहीं। मैं चला गया था आदमी ढूँढ़ने के वास्ते।"

ये फिर मुस्कराए। मैं समझ गयी कि घूमने निकल गए थे, अब आड़े-तिरछे बहाने बना रहे हैं। इनकी मुस्कराहट से तन-बदन में आग लग गयी। लेकिन मैंने अपने को सँभाला। बहुत शान्त भाव से बोली, "टिकट नहीं मिले।"

ये जैसे आकाश से टपक पड़े। लेकिन तुरन्त ही अपने को संयत कर, ये फिर मुस्कराए। बोले, "मजाक करती हो!"

मैंने फिर अपना गुस्सा दबाया। दस का नोट दिखा कर बोली, "ग़लत किराया बताते हो तो टिकट कहाँ से मिले? दो रुपए छप्पन पैसे का टिकट कहीं का नहीं मिलता।"

आधे मिनट को ये चुप रहे। फिर बोले, "दो रुपए छप्पन पैसे के दो टिकट। यानी एक टिकट एक रुपया अट्ठाइस पैसे का।"

"हमें जगह का नाम भूल जाता है। क्या तो है...."

इन्होंने बताया, "सकलदीपनारायणमणित्रिपाठीपुरवा।"

मैं फिर उठी। मन ही मन दुहराती हुई फिर टिकट-घर में गई। सीधे टिकट बाबू के पास पहुँची। बोली, "सकलदीप..."

तब तक लाइन की औरतें चिल्लायीं, "ए बहेन जी, लाइन में हम इत्ती देर से खड़ी हन...."

मैं चिल्लायी, "मैं तुम सबलोगों से पहले से आयी हूँ...."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सभै पहिले आवा है। बहेन जी, सभै का जल्दी है।"

लाइन भर की औरतें एक साथ चिल्लाने लगीं, "अन्याव न करौ बहेन जी। लाइन में पीछे आइ खड़ी हुइ जाओ। यही `म-धरम की बात है।"

तब तक टिकट बाबू उठ कर चलने लगा। आगे वाली औरत चिल्लायी, "अरे टिक्कस तो दिहे जाओ बाबू।"

वह बोला, "पूरी बस भर गयी। अब दो घंटे बाद बस जायगी।"

सब औरतें शोर करने लगीं, "अरे बाबू! मोका एक्कै टिकस चाही। दिहे जाओ बाबू। दिहे जाओ।"

लेकिन बाबू चला गया। सभी औरतें चिल्लाने लगीं, "एही बहेन जी आयी हैं, तभै ऊ टिकस बाबू चला गवा। नाहीं तौ अबै टिकस बहुत बचा है।"

उन औरतों से झगड़ा करना मेरे वश का नहीं था। इससे मैं बाहर निकल आयी। पतिदेव से सारा क़िस्सा न बयान कर केवल इतना कह दिया कि बस भर गयी।

ये मुस्कराये और दस का नोट लेकर चले गए। मैं बेंच पर बैठ गयी और सोचने लगी कि अभी बच्चू लौट कर आएँगे तो पता चलेगा। समझते हैं कि मैं ऐसे ही कह रही हूँ—बस भरी नहीं है।

थोड़ी देर बाद ये लौटे और सामान लदवा कर उस आदमी के साथ चले गए। फिर पलटे और बाकी सामान ले मुझसे बोले, "चलो, बस में बैठो।"

मैं चली गयी। इन्होंने बस का आगे वाला कटघरा खोल दिया और मुझे बिठा कर टिकट दे बोले, "मैं कुली को पैसे देकर आता हूँ।"

थोड़ी देर बाद उसी आदमी ने टिकट की जाँच की जिसने टिकट देते-देते कहा था कि बस भर गयी। और फिर थोड़ी देर बाद बस चली, उसके पहले ही ये आ गए थे: चूँकि सरकारी बस थी इससे दस मिनट ही लेट छूटी और रास्ते में भी कोई गड़बड़ी नहीं हुई। गाँव पहुँच कर एक पखवारा मैंने कैसे गुजारा यह फिर कभी बताने की बात है। यहाँ बस करती हूँ क्योंकि इतना लिखने में ही आफ़त आ गई है। श्रीमान् पतिदेव महोदय का खयाल है कि—

(१) मुझे लिखना नहीं आता,

(२) हर वाक्य में व्याकरण की ग़लतियाँ होती हैं,

(३) यह यात्रा-विवरण न रह कर व्यंग्य हो गया है (जबकि मैंने गम्भीरता से वर्णनात्मक यात्रा लिखने की कोशिश की है, जिसका स्कूल में मुझे अच्छा अभ्यास था)। मैं समझती हूँ इनके छिद्रान्वेषण का कारण इनका डर है। इन्हें डर है कि कहीं मेरी यह रचना छप गयी तो मैं और भी लिखने लग जाऊँगी और तब इन्हें बीच-बीच में चाय या कॉफ़ी तैयार करके देनी पड़ेगी (जो अभी मेरी ड्यूटी है)। ● ● ●

जीवन में दुःखी रह कर किसी वस्तु को स्मरण रखने से कहीं अच्छा है कि हम उसे भूल जाएँ और मुस्कराते रहें।

—क्रिस्टीना रोजेटी

(संकलन : सुनीति गुप्ता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Our crowning glory...

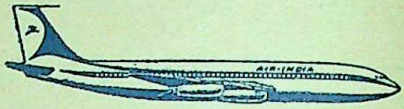

our Boeing RR 707
...magnificent
in performance...
breath-taking in her
beauty...your
palace in the sky!

Beautiful decor
and furnishings...
soft music...
princely service...
the fastest and
quietest aeroplane
you've ever flown!

Book now on Boeing Flights
for London and New York

AIR-INDIA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमित्राकुमारी सिन्हा

• आत्म-परिचय

गुरुकुल-कांगड़ी के विज्ञानाचार्य एवं डॉक्टर महेशचरण सिंह, एम० एस० सी०, ए० जी० आर० कारबैलिस अमेरिका, टैक्नोकेमिस्ट टोकियो, भूतपूर्व प्रिंसिपल प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन, की मैं सबसे बड़ी पुत्री हूँ। चौधरी राजेन्द्र शंकर, संचालक प्रेम-मंदिर, उन्नाव, की पत्नी हूँ। मेरे सुपुत्र अजितकुमार और सुपुत्री कीर्त्ति चौधरी हैं। मैं सन् ३६ से सामाजिक कार्यों में भाग लेती रही हूँ। रेडियो में सन् ५० से साहित्य-लेखिका का कार्य कर रही हूँ। मेरे काव्य-संग्रह हैं: 'विहाग', 'पंथिनी', 'प्रसारिका' तथा 'बोलों के देवता'। कहानी-संग्रह हैं: 'अचल सुहाग', 'वर्षगाँठ'। बाल-साहित्य में: 'आँगन के फूल', 'कथाकुंज' और 'दादी का मटका' हैं। अनेकों अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ पड़ी हैं। मैं इधर पंचवर्षीय-योजना का साहित्य लिखने के साथ-साथ कविताएँ, कहानियाँ और रेखाचित्र आदि भी लिख रही हूँ। रेडियो-शिल्प में भी मैंने बहुत लिखा है। विजयादशमी के दिन सन् १९१३ में, मेरा जन्म लखनऊ में हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठभूमि में वाद्य-संगीत)

वाचक : यह कथा उस युग की है जब हरि-नाम-संकीर्तन से भारत के समस्त प्रदेश प्रतिध्वनित हो उठे थे। एक ओर गोपियों ने अलख जगायी थी, तो दूसरी ओर ज्ञानियों के शुष्क मतवाद ने प्रगति के पथ पर चरण रक्खे थे। वैष्णव-भक्तों ने आराधना को जीवन का मूल सिद्धान्त मान लिया था। यह मान्यताओं और अन्धविश्वासों का युग था। समस्त देश में धार्मिक-चेतना के अंकुर फूट चुके थे, द्वैत और अद्वैत के बवण्डर उठ कर शान्त हो चले थे और जिस वीणा के तारों ने झंकृत होकर जन-हृदय को मोह लिया था उस पर राम, कृष्ण की भक्ति के तन्मय राग बज रहे थे। समय की गति के साथ ये राग भी बदले। ज्ञान, प्रेम और भक्ति सभी ने तानें भरीं; गीतों के नूपुर, मन्द और तीव्र स्वरों में बजे और लय हुए।

और अन्त में कृष्ण-गीतों की मृदु लहरी मधु-मंद गति से प्रवहमान हो चली। संगीत-कलरव और प्रेम-पीयूषी रस, इस धारा के माधुर्य में शत-शत वृद्धि कर रहे थे। कवि-कवियित्रियों के सम्मिलित गान-स्वरों ने मंगल-गीतों द्वारा इस काव्य-लहरी का अभिषेक किया।

इन गायकों में एक स्वर कितना अद्भुत है! सबसे कितना भिन्न! फिर भी कितना एकाकार! तन्मयता और उत्सर्ग जैसे साकार हो उठे हैं! वह देखो, शेख ने अर्चना की पुष्पांजलि आराध्य के चरणों में अर्पित की है!

शेख : **जोबन के फूल बन फूलनि मिलन चली,**
बीच मिले कान्ह सुधि बुधि बिसराई है।
बाँसुरी सुनत भई बाँसुरियों बाँसुरी सु,
बाँसुरी की कहि सेख आँसुनि अघाई है।
धरि पहराई बहराई बैठियो न कहूँ,
ठहराई जीभ ऐसी पुनि ठहराई है।
बारुनी बिरह आक बाक बकवासि लगी,
गई हुती छकि दैन आपु छकि आई है।

वाचक : शेख, उसके नाम से ही प्रकट है, जाति की मुसलमान और रँग-रेजिन थी। पता नहीं, कब उसने जन्म लिया और कब उसकी मृत्यु हुई। फिर भी....अन्वेषक कहते हैं कि अठारहवीं शती के मध्य में इस कोकिल ने अपनी कूकों से कविता-कानन को गुंजरित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। वह कथा भी विचित्र है, जिसने शेख की प्रतिभा को काव्य-क्षेत्र की ओर मोड़ा, नहीं तो कपड़ा रँगने वाली एक मुसलमान रमणी को ब्रज की अटपटी नवेली शब्दावली में भावों को छन्दबद्ध करने का क्या प्रयोजन ?.....

...अरे ये त्रिपुण्डधारी गौरवपूर्ण कौन महात्मा चले आ रहे हैं ? मुख पर कितना तेज है ! आँखें जैसे मद में डूबी हुई हैं !

एक स्वर : चुपचुप ! तुझे नहीं मालूम ? ये आलम हैं--शाहजादा मुअज्जम के दरबारी कवि !

वाचक : अच्छा !....

(कुछ देर की शान्ति के पश्चात्)

आलम : ओरी रँगरेजिन ! मेरी पगड़ी लौटा दे, अब तू रँग चुकी ! मैं तो प्रतीक्षा करते-करते थक गया लेकिन तूने ध्यान ही नहीं दिया कि यह भी एक काम करना है।

शेख : ऐसा मत कहिये आलम साहब ! आपकी पगड़ी तो उसी दिन रँग गयी थी। मैं तो बाट जोह रही थी कि आप आयें और मुझे सेवा करने का अवसर मिले। लीजिये, यह रही आपकी पगड़ी और वह कागज का पर्चा, जिसे पगड़ी के छोर में बाँध कर आप भूल गये थे। कहीं मेरे ऊपर चोरी करने का दोष न लगा दीजियेगा।

आलम : (पढ़ते हुए) 'कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन !'
खूब ! खोयी हुई चीज़ अच्छी मिली। मैं तो इसे खोज कर निराश हो गया था :

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।
कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन ॥

(चमत्कृत होकर) वाह, वाह, शेख रँगरेजिन ! इस अधूरे दोहे की पूर्ति किसने की है ?

शेख : (नम्रता-पूर्वक) अपराध क्षमा कीजिये श्रीमान ! मैं अपने को रोक न सकी। रंगों की प्यालियों में उलझी मेरी भावनाओं ने उभर कर अपने आप इस टूटी-फूटी पंक्ति की सृष्टि कर डाली। मेरी कल्पनाओं के बन्धन अनजाने में टूट गये। इसमें मेरा दोष न था। आपकी कल्पना की उर्वर भूमि में मैंने अपनी इन निम्न भावनाओं के अंकुर उगाये, यह निश्चय ही मेरी भूल है : किन्तु क्या मैं आशा करूँ कि आपका उदार चित्त मुझे क्षमा कर देगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलम : (आवेग-पूर्वक) देवि, तुम यह क्या कह रही हो ? तुम्हारे इन शब्दों में, तुम्हारी एक पंक्ति में प्रतिभा के अनन्त स्रोत छिपे हैं। तुम्हारे अन्तस्तल में लहराता हुआ भावनाओं का जलधि अब तक कैसे अवरुद्ध रह सका, यही मुझे आश्चर्य है। शेख ! तुमने मेरा चुराया तो कुछ भी नहीं, पर अब मैं तुम्हें यह कैसे समझाऊँ कि इस दोहे की पूर्ति करके तुमने मेरा वह सब ले लिया, जिसे मैंने सदा अजेय और अभेद्य जाना था। मैं यह नहीं जानता कि यह कैसा इन्द्रजाल है ! पर तुम्हारी रूप-माधुरी का सम्मोहन इस पाषाण को भी मुग्ध किये दे रहा है।

शेख : (स्वगत) मेरे देवता ! ऐसा लगता है कि मेरे स्वप्न आज साकार हो उठे हैं। मेरे स्वप्नों के वासी ने मेरी कल्पनाओं के सत्य में आज मूर्त्त होकर मुझे दरस दिये हैं। जनम-जनम के अन्धकार, ज्योति के विस्तार में खो गये हैं। परिवार और समाज के बन्धन आज मेरे लिये व्यर्थ हैं, क्योंकि मैंने प्रेम के आदर्शों को समझ कर ही इस ओर चरण बढ़ाये हैं।

वाचक : जब प्रेम के सतरंगी चापों ने हृदय को बेध दिया तो पचरंगी चुनरी और गुलाबी दुपट्टों का महत्त्व ही क्या शेष रहा ! रंग-बिरंगी प्यालियों को छोड़ रँगरेजिन ने शब्दों की कूँची हाथ में लेकर भाव-शिला पर चित्र लिखे। उन चित्रों को उसने अपने प्राणों का रसदान दिया। जात-पाँत और भेद-भाव की सीमित परिधियों को लाँघ, शेख ने प्रभु-चरणों में आराधना के दीप जलाये। अपने प्रियतम आलम के स्वरूप को उसने प्रेम-मूर्ति गोपाल के श्यामल आनन में प्रतिविम्बित पाया। पार्थिव जगत के धरातल से ऊपर उठ कर उसकी कल्पना-खगी ने विरह और मिलन की तानें भरीं। और फिर अनेक की भावना एक में प्रस्फुटित हुई। संसार के कण-कण में बिखरी हुई 'प्रेम की पीर' का अनुभव शेख ने किया। यमुना-तट पर रास रचाती गोपियों के भी स्वप्न उसने देखे और मधुबन के कुंजों में बिलखती हुई विरहणियों की अनुभूति भी की। कृष्ण की अनन्य पुजारिन बन, आत्म-विस्मरण की भूल-भुलैया में उलझ कर, शेख ने विस्मृत रागिनी के आलाप लिये :

शेख : **निधरक भइऊ गवति है नन्दघर,**
और ठौर कहूँ राह हू न अहदाति है।
पौरि परखे पिछवारे कौरे कौरे लागी रहे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँगन देहली या ही बीच मंडराति है ।।
हरि रसराती 'सेख' नेक हू न होई होती,
प्रेम मदमाती न गनति दिनराति है ।।
जब जब आवति है तब कछू भूलि जात,
भल्यो लेन आवति है और भूलि जाति है ।।

वाचक : इष्टदेव के प्रति प्रेम-प्रदर्शन की यह भावना इतना प्रबल रूप धारण कर लेती है कि शेख ने आत्म-समर्पण को भक्ति का चरम आदर्श मान लिया है । हरि के विरह में व्याकुल रह कर भी उसने दरस की आस नहीं छोड़ी है । उसके तो जनम-जनम के विश्वास संचित हैं कि गोपाल कृष्ण की अनुकम्पा कभी न कभी उस पर होगी ही । वैसे भी प्रियतम के अभाव में, हृदय में स्थित मूर्ति को ही उसने प्रत्यक्ष मान लिया है । उसे यह चिन्ता नहीं कि आत्म-समर्पण के पश्चात् क्या होगा ! भवसागर का भय उसे व्यापता नहीं क्योंकि परलोक की चिन्ता करने वाले देवता पर उसकी अटल आस्था है :

शेख : रूप सुधा मकरन्द पिये ते तऊ अलि कंट वियोग भरे है ।
'सेख' कहै हरि सों कहियो अलि ध्यान प्रतच्छ समान करे है ।।
जो मन मूरति के निरखे हम देखत ही गिर गात भरे हैं ।
ज्योति प्रसंग पतंग गिरे इक झाई के झूमत तेल तरे हैं ।।

वाचक : वास्तव में शेख की कविता भक्ति और रीति कालों के सम्बन्ध का अद्भुत उदाहरण है । एक ओर भक्ति-युग की प्रवृत्तियाँ--प्रेम, आत्म-समर्पण, इष्ट-आराधना आदि इसमें विद्यमान हैं, तो दूसरी ओर रीतिकालीन शृंगारिक कलापूर्ण शब्दजाल का भी अभाव नहीं। शेख में अनुभूति, सरसता और माधुर्य है और वाग्वैचित्र्य, चमत्कार-चातुर्य एवं भाषा-सौष्ठव भी नहीं छूटा । भक्ति, शान्ति तथा शृंगार की विभिन्न धाराओं का, शेख की कविता में संगम हुआ है, और प्रेम-पूर्ण मधुर शृंगार की अति सुन्दर सुषमा का दिग्दर्शन हो सका है । आराध्य का सर्व सुन्दर रूप, उसे इस प्रकार मोह लेता है कि अतृप्ति के सागर बार-बार उमड़ कर तृप्ति और संयम के बाँध तोड़ देते हैं :

शेख : रात के उनींदे अलसाते मदमाते राते,
अति कजरारे दृग तेरे यों सोहात हैं ।
तीखी तीखी कोरनि करारे लेत काढे जिउ,
केते भये घायल औ केते तलफात हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यों ज्यों ले सलिल चख 'सेख' धोवै बार बार,
त्यों त्यों बुल बुन्दन के बार झुकि जात हैं।
कं बर के भाले कँधों, नाहर नहन वाले,
लोहू के पियासे कहूँ पानी ते अघात हैं ।।

वाचक : धर्म के बन्धन शेख को अपनी सीमाओं में नहीं बाँध पाये। हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव समझना उस प्रेम की बावरी की सामर्थ्य में नहीं, उसने तो अपना केवल एक धर्म जाना है और वह है कवि-धर्म। कवि का धर्म ही कौन-सा...वे तो बाह्य आडम्बरों की अवहेला कर प्रकृति की रम्यस्थली में प्रेम-पथ के पथिक बनते हैं। शेख को जिसने रँगरेजिन कहा, ठीक ही कहा ; उसका हृदय तो साँवरे-सलोने के शत-शत रँगों से न जाने कब का रँग चुका था। राजरानी मीरा के स्वर में स्वर मिलाकर उसने अपने प्राण-प्यारे के चरणों की धूलि बन जाने की कामना की :

शेख : नैननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय,
पायन की धूरि हमें दूरि कै न जानिये ।।

इतना सब होते हुए भी शेख की कविता में युग की चेतना प्रतिध्वनित हुई है। युग की यह भावना शृंगारिकता, कलात्मकता, और काव्य-कौशल विषयक थी। कविता का सम्बन्ध सीधे हृदय से न होकर बुद्धि से हो चला था और शेख भी इस दोष से नितान्त मुक्त नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि उसके गीत हृदय की गहनतम प्रवृत्तियों का परिचय देते हैं, परन्तु साथ ही उसने भावों को शब्द-जाल और अलंकारों से सज्जित करने के भी यत्न किये। फलतः अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों की अनोखी छटाएँ सर्वत्र मिल जाती हैं।

वस्तुतः शेख में भाव और कला दोनों पक्ष प्रबल हैं। एक छन्द में खंडिता नायिका की उत्सुकता और नायक की दशा का अत्यन्त सुन्दर और श्लेषात्मक चित्रण बन पड़ा है :

शेख : ढीली ढीली डग भरी ढीली पाग ढरि रही,
ढरे से परत ऐसे कौन पर ढहे हो।
गाढ़े जु हिया के पिय ऐसी कौन गाढ़ी तिय,
गाढ़ी गाढ़ी भुजन सो गाढ़े गाढ़े गहे हो।
लाल लाल लोचन उनींदे लागि लागि जात,
साँची कहो सेख प्यारे मैं तो ललित हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस बरसावत सरसात अरसात गात,
आये प्रात कहाँ बात रात कहाँ रहे हो ।।

वाचक : यह कहना अत्युक्ति न होगी कि शेख की सुप्त कल्पनाओं के उद्‌बोधक आलम ही थे। इस मुग्धा किशोरी को इन रसिक शिरोमणि ने प्रेम-संगीत सुना कर एक साधारण रँगरेजिन के पद से उठा कर कवियित्री के महान स्थान पर बिठा दिया। तन्मयता के उपहारों से आलम ने इस स्वर-साधिका को अलंकृत कर दिया और प्रेम की महानताओं के सन्देश दिये। ब्रजभाषा की मधु-मदिर संगीत-लहरियों की शिक्षा देकर शेख को इस योग्य बनाया कि वह भाषा के सौष्ठव और भाव-गाम्भीर्य की महत्ता को समझ सके। उन्होंने पहली ही दृष्टि में शेख को परख लिया, और अपनी अनुभूतियों की व्यंजना उसमें पायी। फिर एक ब्राह्मण और एक मुसलमानिन के दो शरीर, विवाह और प्रेम के अटूट बन्धन में बँध गये।

इन दोनों सुकवियों के सम्मिलित गान-स्वर अपने युग-वाद्य पर बहुत-बहुत बजे और आज भी रसिक जनों के हृदयाकाश में उनकी गूँज शेष है :

प्रेम रंग पगे जगमगे जगे जामिन के,
जोबन की जोति जगी जोर उमगत हैं।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमते हैं,
झूमत हैं झुकि झुकि झाँपित थिरकत है।
आलम की नवल निकाई इन नैननि की,
पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है।
चाहत है उड़िबे को देखत मयंक मुख,
जानत है रैनि ताते राहि में रहत है।

(वाद्य-ध्वनि के सहित छन्द के अन्तिम चरण का लोप होता है) ●●

●● नारी जाति जब तक अपनी आत्म-मर्यादा के बारे में सचेत न होगी, जब तक अपने ऊपर न्यस्त कर्त्तव्य के बारे में सम्यक् उपलब्धि - लाभ न करेगी, तब तक सिर्फ़ किसी क़ानून के सहारे नारी समाज की उन्नति नहीं हो सकती।

--लीला मजुमदार (संकलन : गीता बनर्जी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरा

आत्म-परिचय

- गुरुकुल की स्नातिका। अध्ययन में--खास कर नये साहित्य के अध्य में--विशेष रुचि।

- यों लिखने को गद्य भी लिखती हूँ--कुछ कहानियाँ और व्यंग्य-रचनाओं अतिरिक्त 'मौत का फूल' शीर्षक एक उपन्यास लिख भी चुकी हूँ--लेकि कविताएँ लिखने की ओर विशेष रुझान है। बिम्बों और प्रतीकों में मौलि कता का विशेष ध्यान रहता है।

- रेडियो के महिला विभाग और हिन्दी वार्ता विभाग से अक्सर ही कहानि और कविताएँ प्रसारित होती रहती हैं।

- पति डाक्टर हैं। तीन बच्चे हैं, जिनके लिखने-पढ़ने और साहित्य के प्रं सही रुझान के संस्कार देने की ओर विशेष प्रयत्नशील।

मैंने ख़ुदकुशी कर ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● मैंने खुदकुशी कर ली, कारण आप शायद छोटा समझें, पर मेरे लिये बहुत बड़ा था। बात यूँ हुई कि ज़िन्दगी के रास्ते पर चलते-चलते एक दिन मुझे लगा कि यह जो तरीक़ा है जीने का--पति, बच्चे और गृहस्थी, बात कुछ जमती नहीं। वैसे इस कोटानुकोटि भूमि पर असंख्य प्राणी हैं और सभी प्रायः इसी तरह जीते हैं, जीते जाते हैं। मैं ऐसे क्यों जियूँ! क्या जिन्दगी का मेरे ऊपर कुछ लेना-देना आता है कि यूँ ही जीकर बिता दूँ! जाइये जी, नहीं जीते ऐसे, हम तो कोई असाधारण जिन्दगी जियेंगे। सो यह बात मेरे दिमाग के छेद में स्क्रू की तरह फ़िट हो ही तो गयी। मैं सोचती रही और सोचती रही पर इसका कोई हल एकदम न निकल पाया।

मैंने अपने पति से पूछा--"आप ही बताइये कि, अगर मैं असाधारग जिन्दगी जियूं तो कैसे! इस रोज़मर्रा के रोटी-पानी, कच्चे-बच्चे और घर-गृहस्थी में तो मेरा मन लगता नहीं।"

वे बोले--"तो क्या बात है, चलो कुछ दिन काश्मीर घूम-घाम आयें।"

पर मेरे मन में अगर कभी पहाड़ पर जाने की बात आयी है तो मन ने स्विटज़रलैण्ड का ही नाम प्रपोज़ किया है, लेकिन इतना पैसा पास है नहीं कि स्विटज़रलैण्ड जा सकें और पैसे की बात कह कर मैंने अपने पति का मन न दुखाना चाहा सो यूँ ही टाल दिया--"अजी नहीं, क्या करेंगे कश्मीर वश्मीर जाकर!"

फिर मैंने शाम को खाने की मेज़ पर अपने बच्चों से पूछा--"ओ मेरे बच्चो! तुम बताओ कि अगर मैं असाधारण जिन्दगी जियूं तो कैसे!"

मेरे बच्चे नन्हें-नन्हें हैं, वे बोले--"माँ, असाधारण, क्या होता है?"

मैंने समझाया--"देखो एक होता है साधारण, दूसरा असाधारण। साधारण यह कि हमने दाल, रोटी, चावल, रायता, चटनी खा ली और असाधारण यह कि हमने चमचम, रसगुल्ला, रसमलाई आदि..."

बच्चों ने मेरी बात भी न पूरी होने दी, बस खुशी से चिल्ला उठे--"हाँ हाँ माँ, तब तो हम भी असाधारण जिन्दगी जियेंगे।"

मैंने अपनी सखियों से पूछा--"ओ मेरी प्यारी सखियो! अब तुम्हीं बाताओ कि, मैं असाधारण

पति लेखक : पत्नी लेखिका

पति लेखक था अवश्य लेकिन पत्नी लेखिका नहीं थी। पति ने एक ऐसी पुस्तक लिखी जो कुछ ही दिनों में पुरुष-वर्ग में अत्यधिक लोकप्रिय हुई और उसके कई संस्करण निकले। अपने लेखक पति की इस प्रसिद्धि को देख कर पत्नी ने भी कुछ ही दिनों में एक पुस्तक लिखी जो स्त्री-वर्ग में काफ़ी लोकप्रिय हुई और इस पुस्तक के भी कई संस्करण प्रकाशित हुए। और अब पति-पत्नी दोनों 'लेखक' की श्रेणी में आ गये। ये दोनों पति-पत्नी थे--श्री और श्रीमती डेल कार्नेगी। पति द्वारा लिखी गयी पुस्तक का नाम था--'हाऊ टू विन फ्रेन्ड्स एण्ड इन्फ्लूएन्स पीपुल' और पत्नी द्वारा लिखित पुस्तक का नाम था--'हाऊ टू हेल्प योर हस्बेंड गेट एहेड।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्दगी जियूं तो कैसे ?"

वे सब सीधी-सादी घर-गृहस्थ औरतें थीं, सो अवाक् मेरा मुँह ताकने लगीं, उनमें से एक सोशल-वर्कर किस्म की थीं, बोलीं—"तुम्हारे मन में बड़ा अच्छा विचार उठा है। मेरे साथ नारी-कल्याण-निकेतन में चला करो। देखो, हमारे समाज में बहिनों की कैसी दुर्दशा है ! उनके प्रति तो अपना कुछ फर्ज है ना।"

उनका लेक्चर शायद कुछ और देर चलता कि तभी गली में निम्न तबके की दो स्त्रियों ने लड़ कर अपने सिर फुड़वा लिये। तुरन्त उन सोशल-वर्कर बहिन के पास खबर आयी और वे उठ कर चली गयीं। मैंने भी सोचा, राम बचाये इस सोशल-वर्करी से ! भला गन्दी औरतों के बीच अपना दिमाग खराब करने कौन जाये !

मेरी समस्या का समाधान न मिला तो मैं उदास रहने लगी। मेरे पति ने समझा कि शायद मैं बीमार रहने लगी हूँ। वे डॉक्टर के पास चलने का आग्रह करने लगे। पर मैं जानती थी कि मेरे रोग का उपचार डॉक्टर के पास नहीं है। इसलिये मैं नहीं गयी। मेरी उदासी से मेरे बच्चे भी मेरे सामने आते तो उदास हो जाते। उन्हें उदास देख कर मुझे दुख होता। मैं उन्हें हँसाना-खिलाना शुरू करती और कुछ देर मेरा मन भी बहलता कि सिर पर फिर वही भूत सवार हो जाता और एकाएक मैं बच्चों के बीच से उठ जाती।

आखिर एक दिन मेरे मन की अंधेरी गुफा में आशा की एक किरण प्रवेश पा ही तो गयी। बात यूं हुई कि मैं एक प्रसिद्ध बंगला-लेखक का उपन्यास पढ़ रही थी। उसके कथानक ने मुझे बड़ा मुग्ध किया। मुझ पर इतना प्रभाव पड़ा कि कुछ क्षण तो मुझे ऐसा लगा कि मैं शायद स्वयं एक बंगाली महिला हूँ, पर तभी मेरे बच्चों ने आकर मुझसे हिन्दी में बोलना शुरू किया तो मेरा यह सुखद भ्रम सुनहले स्वप्न की भाँति टूट गया। पर मैं बहुत देर तक सोचती रही कि काश ! मैं भी किसी ऐसे ही उपन्यास की नायिका होती।

पर यह तो हो ही नहीं सकता। मैं तो विवाहिता हूँ। अब अगर मैं प्रेम भी करूं तो कैसे ? विवाहिता का अनैतिक प्रेम कौन सम्भ्रान्त व्यक्ति स्वीकार करेगा ? और ऐरों-गैरों से प्रेम करना ठीक नहीं ! पता नहीं वे प्रेम की महानता को जानते भी हैं या नहीं।

मेरा मन उदास हो गया—आह ! क्या मैं प्रेम भी नहीं कर सकती। मैं विवाहिता हूँ, फिर मुझे अपनी गृहस्थी पर गुस्सा आया। यह भी कोई बात है कि किन्हीं वजहों से मैं प्रेम भी न कर सकूँ। मैं यही सब सोच रही थी कि पड़ोस की एक लड़की जो बी० ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ती थी और मुझ से कुछ उपन्यास माँग कर ले गयी थी, लौटा गयी। अन्यमनस्क भाव से मैं बिना नाम देखे एक उपन्यास के पृष्ठ उलटने-पलटने लगी कि मेरी उचटी नज़र एक पेज पर जम गयी।

ठीक है, ठीक है, मैं प्रेम कर सकती हूँ। कितने ही प्रेम-कथानकों की नायिकायें विवाहिता क्या प्रौढ़ा होती हैं; फिर मेरी शादी को अभी कुल जमा पाँच वर्ष हुए हैं। और एकाएक मेरा तन-मन-प्राण प्रेम की महिमा से आपूरित हो गया।

आह ! प्रेम भी क्या स्वर्गीय वस्तु है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसने प्रेम नहीं किया, जिन्दगी में कुछ भी नहीं किया। अगर लोग प्रेम न करते तो इतने उपन्यास, कहानियाँ, नाटक न लिखे जाते, इतने चलचित्र न बनते, और अगर न बनते तो लोग प्रेम करना कैसे सीखते। अभी उस दिन, मैंने एक पिक्चर देखी थी जिसमें प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही मर गये और दोनों की समाधि पर नायक की एक अन्य प्रेमिका फूल चढ़ाती दिखायी गयी थी। कितना त्याग है! कितनी महानता!

लैला मजनूँ दोनों मर गये,
मर कर भी वे नाम तो कर गये।

ठीक है, अब मैं भी प्रेम करूँगी। ऐसा असाधारण प्रेम जो कभी किसी ने न किया हो। पर करूँ किससे प्रेम? मैंने दूर दूर तक नज़र दौड़ायी पर कहीं कोई दिखलायी न पड़ा।

तभी एक दिन मैं छत पर कपड़े सुखाने के लिए चढ़ी तो देखा कि तीन-चार छतों के बाद जो बड़ी-सी खिड़की इधर महीनों से बन्द पड़ी थी आज खुली हुई है। खिड़की के अन्दर से धूल उड़-उड़ कर बाहर आ रही है। कोई आदमी अच्छे कपड़े पहिने हाथ में बाँस लिये खिड़की के पार इधर-उधर आता-जाता दिखायी दिया। होगा कोई, मैं नीचे आ गयी।

जाड़े के दिन थे। धूप सेंकने, कपड़े सुखाने मैं प्रायः ऊपर जाया करती और प्रायः वे सज्जन मुझे हाथ में किताब लिये खिड़की में दिखायी पड़ जाते। वे अक्सर हमारी छत की ओर देखा करते या शायद न देखते तो मुझे ही भ्रम हुआ हो। उस खिड़की के पार मुझे कभी कोई स्त्री, बच्चा या नौकर न दिखाई दिया। निश्चय ही बेचारे अकेले हैं! सो मुझे बड़ी दया आयी। अकेला आदमी कैसे रहता है यह मुझे मालूम है। प्रायः मैं उनके बारे में सोचा करती। एक दिन मैंने अपने चार-वर्षीय कुक्कू को समझा कर भेजा कि "जाओ अमुक मकान में वो जो अंकल रहते हैं उन्हें बुला लाओ, कहना माँ आपसे मिलना चाहती है।"

थोड़ी देर में खिड़की फटाक से बन्द हो गयी। मैंने सोचा वह कुक्कू के साथ आते होंगे। पर कुक्कू उनके बजाय उनकी स्लिप के साथ लौटा; लिखा था--"मुझे माफ करें, मैं तो खिड़की में धूप सेंकने के लिए बैठ जाता हूँ, यदि आप को असुविधा होती है तो मैं यहाँ नहीं बैठूंगा।"

कितना सज्जन पुरुष है! बेचारे ने समझा कि मैं नाराज़ हूँ। अब मैं छत पर जाती तो खिड़की फटाक से बन्द हो जाती और फिर न खुलती। उफ़, कितना बुरा हुआ! मेरे कारण एक शरीफ आदमी को कैसी असुविधा हो रही है!

मैं एक दिन कुक्कू की उँगली पकड़ कर उनके घर पहुँची। देखा कि वे घर बन्द करके कहीं जाने को तैयार थे। मुझे देख कर हत्बुद्धि से खड़े रह गये। न अन्दर जा सके न बाहर निकल सके, मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, घबराहट में उनके मुँह से निकला--"आप?"

मैंने उन्हें सांत्वना दी--"आप घबरायें नहीं, आप जो मेरे कारण खिड़की बन्द कर देते हैं ठीक नहीं। सच मानिये, मुझे बिल्कुल असुविधा नहीं होती।"

वे हकलाते से बोले-- "नहीं, नहीं, मैं पार्क में धूप सेंक लेता हूँ।"

मैंने उन्हें बार-बार आश्वासन दिया कि मुझे कोई असुविधा नहीं है उनके कारण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे मज़े से खिड़की खोल कर बैठें, फिर उन्हें अपने घर आने का आमन्त्रण दिया और वापिस आ गयी।

दूसरे दिन वे हमारे घर आये, फिर कई बार और भी आये, चाय पी, गपशप की। पता लगा कि वे अविवाहित हैं और कुछ शेरो-शायरी से भी शौक़ फरमाते हैं। जिन्दगी में अकेले हैं, घरवालों से बनती नहीं। शादी की नहीं, एक बार एक लड़की से प्रेम हो गया था, पर फिर....जाने दीजिए। यहाँ किसी ऑफ़िस में बदल कर आये हैं।

एक दिन मैंने उनसे कहा--"मैं आपसे प्रेम करना चाहती हूँ, आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं!"

उन्हें मेरी बात का यक़ीन ही नहीं हुआ; बोले--"आप भी मिसेज भाटिया क्या मज़ाक करती हैं!"

वे गये तो कुछ दिन तक नहीं आये। दुखी मन से मैं सोचती रही कि हूँ मैं आखिर बिल्कुल बेवकूफ़ ही। मुझे यह बात ऐसे कहनी चाहिये थी कि, वे मेरे आकर्षण में बिल्कुल बँध जाते। फिर हम नदी-किनारे, पेड़ों के नीचे वैसे ही मिला करते, जैसे सिनेमा के नायक-नायिकायें मिलते हैं।

आप सोच भी नहीं सकते कि वे दो-चार दिन मैंने कैसे काटे। एक दो बार मैं छत पर गयी तो देखा वे खिड़की खोले उदास निगाहों से मेरी छत की ओर देख रहे हैं। मैंने भी ठण्डी आहें भरीं और नीचे आ गयी और कुक्कू को भेजा, "जा अंकल को बुला ला।"

वे आये तो ठण्डी साँसें भरते हुए बोले--"मिसेज़ भाटिया! यह क्या किया आपने, जिस चिनगारी को मैं मन में दबाये सुलग रहा था उसे ही आपने कुरेद दिया। अब देखि मैं आपके प्रेम की ज्वाला में झुलस रहा हूँ

मुझे बड़ी खुशी हुई कि मेरा प्रेम सफ हुआ। और हमारी बैठकें लम्बी होने लगीं अब वे गज़लें लिखते, शेर कहते और मैं कर दाद देती। कितनी असाधारण हूँ मैं उनकी गज़लों और शेरों की प्रेरणा! ऐ सौभाग्य कितनी कम लड़कियों को मिलता है

अक्सर हमारे बीच इस तरह की ब होतीं: वे आँखें बन्द करके भाव-विभोर कर कहते--"मिसेज भाटिया! कितनी क हैं आप! प्रेम के बीच यह रेगिस्तान-सी दू मुझसे नहीं सही जाती।"

मैं कहती--"मिस्टर कपूर! आ ऐसा कहते हैं तो मुझे बड़ा दुख होता है सोचिये तो हमारा प्रेम अलौकिक और अनन्त है--इसमें पार्थिव मान्यताओं का स्थान कह क्या आप मेरे जन्म-जन्म के वही साथी न हैं, जिसको पुकारते-पुकारते मेरी आत्मा अ तक वीरान घाटियों में भटकती रही है?"

दो-तीन महीने बीत गये, एकाध-ब उनका मेरे पति से भी मिलना हुआ। एक दिन शाम को जब वह आये तो मैं अपने प के साथ चाय पी रही थी। मैंने उन्हें चाय का प्याला दिया, वे घूँट भरने लगे

मैंने निश्चय पूर्वक अपने पति से कहा "आप जानते हैं मैं मिस्टर कपूर से प्रेम क लगी हूँ।"

मेरे पति बोले--"अरे तुम क्या प्र करोगी, तुम्हें प्रेम करना ही नहीं आता और क्लब जाने के लिए कपड़े पहिनने लगे

मैंने देखा कपूर का चेहरा फक पड़ गय और वे भी मेरे पति के साथ ही बाहर च गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस रात मेरे पति मुझसे बोले--"आज तुम्हें पता है, कपूर क्या कह रहा था ?"

मैंने उत्सुकता से पूछा--"क्या ?"

वे बोले--"तुम्हारे रिमार्क से वह बिल्कुल घबरा गया। मेरे साथ गया तो मुँह से ठीक से आवाज़ भी नहीं निकल रही थी। घबराया-सा कह रहा था कि आपकी मिसेज़ कभी-कभी ऐसा मज़ाक कर देती हैं जो बिलकुल फिट नहीं बैठता।"

अपने प्रेमी की यह बात सुन कर मेरा मन बैठ गया। मेरे पति हँसते रहे, बोले--"क्यों उस बेचारे गरीब को परीशान करती हो !"

दूसरे दिन मुझे लगा कि मेरा मन अस्वस्थ है और मैं चुपचाप पलंग पर पड़ी रही। दोपहर को कपूर आये। बेहद घबराये हुए। बोले, "एक गिलास पानी पिलाइए।"

मैं पानी लेने गयी, लौटी तो मिस्टर कपूर वहाँ न थे। मैंने सोचा, शायद सिगरेट भूल गये हों; फिर लेने गये होंगे। पानी का गिलास टेबिल पर रख कर मैं बैठ गयी। देखा कुरसी पर एक लिफाफा पड़ा है।

लिफाफा उठाया, खोला--अरे यह तो कपूर की लिखावट थी, लिखा था--

"आपने अपने प्रेम की बात अपने पति से कह कर ठीक नहीं किया। अगर यह बात फैल गयी तो मेरी कितनी बदनामी होगी ! मेरी बीवी को आप नहीं जानतीं। फिर मेरे बच्चे भी हैं जो इसी महीने यहाँ आने वाले हैं। अब मैं आप से कभी नहीं मिलूँगा।"

यह पढ़ कर शायद मुझे गश आ गया होगा, क्योंकि, मुझे पता नहीं कि कुछ देर तक क्या हुआ। कुछ देर बाद होश आया तो मैंने वह पत्र फाड़ कर फेंक दिया। शाम को मेरे पति आये तो मैं बेतहाशा रोने लगी, वे मुझे थपथपाते रहे और मेरे रुदन का कारण पूछते रहे, पर मैं यह कैसे कहती कि मेरा प्रेमी एक झूठा और कायर आदमी था, जो भाग गया, सो मैं रोती रही।

वे बोले--"चलो, आज क्लब चलो।"

मैं तैयार हो गयी। बाहर आये तो उन्होंने बताया, कपूर मकान बदल कर अभी-अभी कहीं चला गया है। उसके घर में ताला लटक रहा था।

पर, मेरा मन हल्का न हुआ। यह तो बिलकुल साधारण-सी बात हुई कि प्रेमी प्रेमिका को छोड़ कर भाग गया। मैं रात भर सोचती रही हूँ, सवेरे से अब तक सोचती रही हूँ। बच्चों को मैंने उनकी नानी के पास भिजवा दिया है। अब मैं पोटेशियम घोल कर पी लूंगी और मर कर अपने प्रेम को अमर कर दूंगी। मुझे अपने बच्चों की चिन्ता नहीं है। पिछली रात बहुत कसमें देकर जब अपने पति से पूछा कि वे मेरे मरने के बाद दूसरी शादी तो नहीं करेंगे तो उन्होंने कहा कि जन्म-जन्मान्तर तक वे मुझे छोड़ कर किसी से शादी नहीं करेंगे। इस तरह मेरे बच्चों को जन्म-जन्म तक विमाता का मुँह कभी नहीं देखना पड़ेगा। और मैं जन्म-जन्म तक अपने प्रेमी के लिए खुदकुशी कर सकूंगी।

लीजिये मैंने पोटेशियम घोल कर पी लिया और खुदकुशी कर ली।

मेरे पति को कभी यह विश्वास नहीं हो सकता कि मैं प्रेम करके मर भी सकती हूँ, इसलिये वे मेरे लिये कभी समाधि नहीं बनवायेंगे। पर इससे क्या ! मैंने जिस क्षण खुदकुशी की उसी क्षण मेरी अपार्थिव प्रेम समाधि बन गयी। चाहें तो आप सभी एक-आध श्रद्धा का फूल उस पर चढ़ा दें। ●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमा बनर्जी

● परिचय को लेकर मेरे पास लिखने को बहुत कम है। अपने चाच तथा बड़े भाइयों की स्नेह-छाया में, घर के साहित्यानुरागी वात वरण से लिखने की प्रेरणा मिली।

● पहली रचना 'मनमोहन'--बच्चों की पत्रिका--में छपी थी, जब मैं हाईस्कूल की दसवीं कक्षा की छात्रा थी। तबसे 'मनमोहन', 'चुन्नू मुन्नू', 'नवनीत', 'ज्योत्स्ना', और स्थानीय पत्र 'नव-भारत' में मेरी कहानियाँ, लेख और भाव-कथाएँ समय-समय पर छपती रही हैं।

● जब मैं हाईस्कूल में थी, श्री रामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी, म शारदामणि के जन्म की शतवार्षिकी में अखिल-भारतीय-निबन्ध-प्रति योगिता में हिन्दी विभाग से प्रथम पुरस्कार मिला था।

● हायर सेकेण्डरी स्कूल की परीक्षा में हिन्दी और नागरिक शास्त्र में डिस्टिंक्शन मिला था। परन्तु अपने बड़े भाई की प्रेरणा से चिकित्सा शास्त्र के प्रति विशेष रुचि पैदा हो गई और इसी के फलस्वरूप आज मैं नागपुर मेडिकल कॉलेज की अन्तिम-वर्ष की छात्रा हूँ।

● वार्ड में हृदय की पैथोलाजी सीखते हैं, दिमाग़ के 'इरीटेटिव फ़ोकस' के बारे में जानते हैं और प्रत्येक मरीज़ के जीवन के साथ जुड़ी हुई एक कहानी सुनते हैं।

• आत्म - परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलिमामय विशाल सागर की प्यारी बेटियाँ, नन्हीं-नन्हीं लहरें, जब अपनी फेनिल, दुग्ध-धवल देह-लता को लोच के साथ झुकाती हुई मचलती-सी सैर को निकलतीं--तब मुग्ध होकर निहारते ऊँचे-ऊँचे शैल-शिखर ; अपनी अनुरागमय आराधना का सम्पूर्ण अर्घ्य निःशेष कर देते किनारे के कगार।

इन सबकी दृष्टि से बेखबर, वे अल्हड़ लहरें इठलाती हुई फिरती रहतीं। भला उनकी मस्ती में विघ्न पैदा करने का साहस कौन करे! सागर की उन लाड़ली कन्याओं की राह कौन रोके!

पर आखिर अल्हड़ ही थीं न लहरें। उनकी नादानी का क्या कहना! घबरा कर मुड़ती हुई लहरें टकराती गयीं उन विमुग्ध शैल-शिखरों से। उन कोमलांगियों की चोट तो खासी लगी पर शैल-शिखर के आश्रय में एक अनजाना सुख था, यह प्रत्येक लहर ने माना। लेकिन कितना क्षणिक था वह सुखानुभव! लजा कर तत्क्षण लौट पड़ीं वे। और शैल-शिखर भी ज्यों के त्यों खड़े रहे।

फिर पथ भूल गयीं वे लहर-बालाएँ। अबकी जा टकरायीं किनारे के कगारों से। पर ज्यों ही उन्होंने लौटना चाहा, कगार बेचारे अपनी सारी मिट्टी की काया सागर में डुबोते भागे उन्हें सम्हालने।

अनुभवहीन लहरें लौट चलीं शैल-शिखरों को सराहतीं--"कितनी विशालता है उनके हृदय में! किस तरह शौर्य-पूर्वक सहारा दिया उन्होंने हमें!"

पर अनुभवी सागर-पिता हँस पड़े ; हँसते ही गए—"कितनी नादान हैं ये सब भी! दम्भी शैल-शिखर की वह महानता, जो दया की ओट में अपनी विशालता का थोथा प्रदर्शन है, उसे ये प्रशंसनीय समझ बैठीं! और सच्चे स्नेही कगार, जो बेचारे दूसरों की रक्षा में लुटा गए स्वयं को, जो मिटा गये अपने नश्वर शरीर को, उनकी यह विनम्र विशालता अनदेखी ही रह गयी। क्या विशालता दूसरों पर दया दिखा, उन आफ़त के मारों को अपनी निकृष्टता का भान कराने में है? या सच्ची महानता उन्हें अपनाने में, उनके लिए स्वयं को मिटा देने में है?"

महानता और महानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय चौहान

●जन्म : ६ जनवरी, १९३० ; लाहौर में। माता श्रीमती सीतादेवी, भूतपूर्व एम्० एल्० ए०, तथा पिता प्रिंसिपल छबील दास, स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रमुख कार्यकर्ता रहे हैं। १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में विद्यार्थियों के जुलूस का नेतृत्व किया। जेल।

●१९५१ में पंजाब यूनिवर्सिटी से अंग्रेज़ी साहित्य में एम० ए० किया। तबसे अध्यापन कर रही हूँ। हाल ही में शिक्षा विभाग की पॉलिसी के विरोध में सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दिया है।

●हिन्दी और अंग्रेज़ी की पत्रिकाओं में कहानियाँ और आलोचनात्मक लेख छप चुके हैं। कहानी-संग्रह शीघ्र छप रहा है। हिन्दी और अंग्रेज़ी में कविताएँ भी लिखी हैं।

●अपने पति श्री शिवदानसिंह चौहान के साथ मिल कर बाईस के क़रीब विश्व-क्लासिकों का अनुवाद किया है, जिनमें टॉलस्टॉय, गोर्की, मोपासाँ, बाल्ज़क, डिकेन्स, कामू आदि की कृतियाँ हैं। शॉ के नाटकों के अनुवाद तथा अन्य अनुवाद केन्द्रीय तथा पंजाब सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुके हैं।

●१९६० में सोवियत विज्ञान अकादमी के निमन्त्रण पर 'गोर्की इन्स्टीच्यूट' में रिसर्च करने के लिए गई और आजकल सोवियत साहित्य का इतिहास लिख रही हूँ।

●वर्किंग गर्ल्ज़ की ज़िन्दगी पर उपन्यास लिखना चाहती हूँ।

●खाना पकाने का, भ्रमण, भारतीय तथा पाश्चात्य क्लासिक संगीत का शौक़ है।

आत्म-परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहीद की माँ

●●मोतियाबिंद के ऑपरेशन के बाद पिछले हफ्ते वीरांवाली की आँखों की पट्टी खोली गई थी। शरणार्थी-कैम्प की टीचर यशोदा पास बैठी अख़बार पढ़ रही थी। यशोदा ने अपनी सहेलियों को महारानी एलिज़ाबेथ और ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा की तस्वीर दिखायी और पढ़ कर सुनाया कि जब महारानी सफ़र करती हैं तो उनके साथ दर्जनों बॉक्स जाते हैं जिनमें उनके कोट, हैट, पोशाकें और जूते रहते हैं। महारानी के पहुँचने से पहले ही ब्लड प्लाज़्मा भी हवाई जहाज़ द्वारा पहुँचा दिया जाता है ताकि ख़ुदा न ख़ास्ता अगर महारानी को चोट आ जाये तो फ़ौरन उन्हें प्लाज़्मा दिया जा सके।

वीरांवाली ने क्षीण स्वर में पूछा, "नी कुड़ियो! किस महारानी का ज़िक्र कर रही हो? राजे-महाराजे तो अब रहे नहीं।"

"बेजी, आपको नहीं पता, विलायत की महारानी आ रही हैं। वह हमारे कैम्प में भी आयेंगी। इसीलिए तो सफ़ेदियाँ की जा रही हैं", यशोदा ने बताया।

विलायत का नाम सुनकर वीरांवाली चौंक उठी। उसने अपने चश्मे की कमानी को ठीक किया और बोली,

"नी कमलियो! विलायतवालों का यहाँ क्या काम?"

"बेजी, अब हम आज़ाद हैं। हमारी उनसे कोई लड़ाई नहीं।" इसके बाद यशोदा ने अपनी एक सहेली के कान में फुसफुसा कर कहा, "ड्यूक कितना ख़ूबसूरत है! पिछली बार रिपब्लिक डे के परेड पर यह पंडित नेहरू के साथ बैठा था; हज़ारों की तादाद में कॉलेजों की लड़कियाँ उसे देखने गयी थीं।"

कैम्प-इंचार्ज ने वीरांवाली से कहा कि महारानी के गले में हार डालने का फ़ख़्र उसी को मिलेगा। हर बार जब कोई बड़ा आदमी कैम्प में आता था तो वीरांवाली ही उसके गले में सबसे पहले हार डालती थी क्योंकि वह शहीद मंगतराय की माँ थी।

वीरांवाली यह सुन कर बड़ी खुश हुई कि विलायत की रानी हिन्दुस्तान की दोस्त है। उसने दिल्ली में महात्मा गांधी की समाधि पर ढेर-से फूल भी चढ़ाये हैं।

कैम्प-इंचार्ज ने कहा, "बेजी, मेरी एक बात आपको माननी पड़ेगी। आप काला दुपट्टा उतार कर लाल फुलकारी ओढ़ लें। घर आये मेहमान का स्वागत ख़ुशी-ख़ुशी करना चाहिए।"

वीरांवाली राज़ी हो गई। जब से उसके एकलौते बेटे मंगतराय को फाँसी हुई थी, वह काले रंग का मातमी दुपट्टा पहनती थी।

आज वीरांवाली को मंगत की याद आ रही थी। चालीस बरस पुरानी यादें फिर ताज़ी हो गयी थीं। वीरांवाली ने अपनी ज़मीनें बेच कर मंगत को कॉलेज में पढ़ने भेजा था, इस उम्मीद में कि वह किसी दिन डिप्टी कमिश्नर बनेगा, फिर वीरांवाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी धूमधाम से शादी करेगी। लस्सी में पैर डाल कर बैठेगी। लेकिन मंगत पढ़ाई करने के बजाय छिप-छिप कर बम बनाने लगा। पुलिस ने उसकी गिरफ्तारी के लिए पाँच हज़ार का ईनाम रखा। गिरफ्तार होने से कुछ दिन पहले मंगत भिखारी के भेष में वीरांवाली से मिलने आया था, वीरांवाली उसे देख कर छातियाँ पीटने लगी थी। मंगत ने होठों पर उँगली रखकर उससे चुप रहने का इशारा किया था, "माँ, मैं तेरा आशीर्वाद लेने आया हूँ। पुलिस मेरा पीछा कर रही है।" और फिर वह रातोंरात चला गया था।

पकड़े जाने पर मंगत को फाँसी की सज़ा मिली थी। वीरांवाली ने उसकी अपील की थी जो नामंज़ूर हो गई थी। जब वीरांवाली उससे मिलने जेल गई थी तो मंगत ने कहा था, "रोती क्यों हो माँ, देखती नहीं मैं ससुराल की रोटियाँ खा-खा कर कितना तगड़ा हो गया हूँ!"

जिस दिन मंगत को फाँसी लगी थी औरतों ने बाल खोल कर काले दुपट्टे पहन कर जुलूस निकाले थे; सारे शहर में मातम छा गया था। किसी के घर में चूल्हा नहीं जला था। लोग जलसों में मंगतराय की शादी की घोड़ियाँ गाते थे, मंगतराय की तस्वीरें घर-घर में लग गयी थीं।

तभी से वीरांवाली भी काले रंग का दुपट्टा पहनती आयी थी।

मंगतराय की किताबें, पेंसिलें और कपड़े वीरांवाली ने सँभाल कर एक संदूक में रखे हुए थे और वीरांवाली के भाई की लड़की कस्तूरी अभी भी हर साल मंगत के लिए राखी और टीका भेजती थी जिसे वीरांवाली मंगत के संदूक में रख देती थी।

मंगत के जन्मदिन पर वीरांवाली मं की तस्वीर के आगे धूप जला कर रख दे थी और एक तश्तरी में सूजी का हल बना कर तस्वीर के सामने रख देती थी खुद बैठ कर पंखा झलने लगती थी। मं को सूजी का हलुआ बहुत पसन्द था और एक बार में ही सेर-भर हलुआ जाता था।

कैम्प को झंडियों से सजाया गया मैदान में उगी घास और झाड़ियों को स करके रोड़ी बिछा दी गई थी। सब नज़र आ रहे थे। यशोदा कह रही "अगर महारानी हर साल यहाँ आये हमारे क्वार्टर में कम से कम सफ़ेदी तो जाया करे।" उसने वीरांवाली को बत कि महारानी की वजह से शहर के रेस्ट-हा के एक पुराने हिस्से को तोड़ कर नये क बनाये गये हैं—उन्हें ठंडा करने के लि मशीनें भी लगायी गई हैं और सुन्दर-सु चीज़ों से उस हिस्से को सजाया गया है महारानी की पसन्द के रंग सजावट में ल गये हैं।

"पर पंडित जी भी तो हर साल ठहरते हैं", एक लड़के ने कहा।

"नी कमलिये! पंडित जी की बात दू है। वे घर के आदमी हैं। टीमटाम बाहरवालों के सामने की जाती है।"

वीरांवाली हार लेकर महारानी स्वागत के लिए खड़ी थी और सोच रही कि जब कैम्प-इंचार्ज महारानी को बता कि वह शहीद मंगतराय की माँ से बात रही है तो महारानी मंगतराय की तस्वीर फूल चढ़ायेगी जो कैम्प-इंचार्ज के कमरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी थी, और कहेगी, "माँ जी! पिछली बातों को भूल जाओ।" वीरांवाली उसे ज़रूर माफ़ कर देगी और कहेगी, "पुत्तर, तेरा क्या कसूर है! उस वक्त तो तू छोटी बच्ची रही होगी।"

इसी वक्त बहुत-सी कारें आयीं। सबसे बड़ी कार से एक बड़ी सुन्दर मेम मुस्कराती हुई उतरी। चारों तरफ़ से आवाज़ें आयीं, "महारानी आ गयीं। महारानी आ गयीं।" औरतें एक दूसरे को धक्का देने लगीं।

वीरांवाली का ख़्याल था कि सबसे पहले उसी का परिचय महारानी से करवाया जायेगा। जब राष्ट्रपति कैम्प में आये थे तो उन्होंने वीरांवाली का दिया हुआ हार गले से उतार कर, वीरांवाली को पहना दिया था और उसे अपने साथ वाली कुर्सी पर बिठाया था। उसका परिचय पाकर पंडितजी की आँखें भी गीली हो गयी थीं।

भीड़ में धक्कमधक्का बढ़ता जा रहा था। पुलिस लोगों को आगे बढ़ने से रोक रही थी। कैम्प की इंचार्ज वीरांवाली को साथ लेकर आगे की तरफ़ चली। कुछ लोग फुसफुसाये, "आज तो बेजी ने लाल फुलकारी पहनी है, लगता है जैसे इसके बेटे की शादी हो।"

'बेटा' शब्द सुन कर वीरांवाली का माथा चकराने लगा। सचमुच उसने यह फुलकारी पचास बरस पहले इसी उम्मीद से काढ़ी थी कि वह मंगत की शादी के दिन उसे ओढ़ेगी और आज उसने वह फुलकारी ओढ़ ली थी।

उसकी आँखों के सामने वह खौफ़नाक नज़ारा आया जिसे सपने में देख कर वह पसीने से तर हो जाती थी और ज़ोर से चीखने लगती थी। उसका मंगत फाँसी के तख़्ते पर झूल रहा था, गर्दन पर रस्सी का दबाव बढ़ता जा रहा था। उसकी आँखों पर पट्टी बँधी थी और जीभ बाहर लटकी आ रही थी। "माँ, मुझे बचाओ!" उसे मंगत की आवाज़ सुनाई देती थी। वीरांवाली जेल के सीखचों से सर टकराती थी और उसका सर लहू-लुहान हो जाता था। इसके बाद वीरांवाली की नींद खुल जाती थी और वह घंटों तक गुप-चुप लेटी रहती थी। या उस गीत की पंक्तियाँ गुनगुनाने लगती थी जो मंगतराय अक्सर गाया करता था:

"सरफ़रोशी की तमन्ना है तो सर पैदा करो"

बरामदे की सीढ़ियों पर खड़ी महारानी मुस्करा रही थी। फ़ोटोग्राफ़र उसकी तस्वीरें ले रहे थे।

वीरांवाली की आँखों के सामने धुँधलापन छा गया; उसे लगा उसके हाथों में पकड़ा गुलाब और गेंदे के फूलों का हार एक मोटा-सा रस्सा बन गया है जिसे कोई ज़ोर से कस रहा है और मंगत कहता है, "माँ, मुझे बचालो।"

वीरांवाली सर थाम कर वहीं बैठ गयी। लोगों ने उसके माथे पर पानी के छींटे मारे।

वीरांवाली के हाथों से हार छूट कर कीचड़ में गिर गया था और भीड़ के कदमों तले कुचला गया था। अगले दिन बहुत से विदेशी संवाददाताओं ने अपने-अपने अख़बारों को ख़बर भेजी कि ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा की ख़ूबसूरती को देख कर एक हिन्दुस्तानी औरत बेहोश हो गई थी।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ३२ का शेषांश : रहिमन धागा प्रेम का)

कि उसने कब और कितने रुपए कृष्णा से लिये थे। सरला तन-मन-धन से कृष्णा की थी। उसका बैग कृष्णा खोल लेती थी। किन्तु सरला स्वयं कृष्णा की किसी चीज़ को छूती नहीं थी। वह कुछ हद तक उसके स्वभाव से परिचित थी। तिस पर भी कई बार वह भूल जाती और जब सरला भूल जाती तो कृष्णा उसे डाँट कर याद दिलाती। सरला ने कभी भी उसका बुरा न माना। एक इस बात को छोड़ कर सरला ने उसमें सारी अच्छाइयाँ देखीं। उसन कभी ग़लत सलाह नहीं दी। जो बात उसे अच्छी न लगती उसका वह उसी वक्त विरोध करती। उसकी बात टालना असंभव था। आज उसकी अनुपस्थिति में भी वह नयी सहेलियाँ बना न पायी थी। जब भी किसी लड़की से बात करने लगती तो उसे लगता कि वह बड़ा भारी पाप कर रही है। झट उसे कृष्णा के ताने याद आते। वे ताने जो कड़ुए होने पर भी सुखकर थे; जो उनके प्रेम को दृढ़ बनाए रखते। सरला को इन तानों के पीछे छिपा हुआ कृष्णा का प्यार दिखायी देता और वह सब कुछ पा जाती।

सरला की परेशानी के बावजूद समय बीत रहा था। और देखते-देखते सरला-कृष्णा की लड़ाई को एक महीना हो गया। अब तक सरला सँभल चुकी थी। उसे कृष्णा से न मिलने की आदत हो चुकी थी। इसी दरमियान सरला को एक दिन नियोजनालय के कार्यालय में जाना पड़ा। और फिर एक बार वे पुरानी बातें उसे याद आने लगीं। चार महीने पहले वह और कृष्णा इसी कार्यालय में आयी थीं। उन दिनों सरला के काम नहीं था। कृष्णा उसका हाथ अपने हाथ में लेकर यहाँ आयी थी। उसके साथ दोपहर तक ठहरी थी। इसी दरवाज़े से वे भीतर आयी थीं। वह अतीत उसके सामने सजीव हो उठा और वह उसी में खो गयी। वर्तमान का उसे भान भी नहीं रहा।

नौकरी के कारण वह पहले ही दुखी थी किन्तु नियोजनालय के मनहूस वातावरण ने उसे और भी उदास कर दिया। चारों लम्बे बेंच लगा कर लड़कियों के बैठने की जगह कर दी थी। कुछ लड़कियाँ पहले से वहाँ पहुँच चुकी थीं और दूसरी अभी आ रही थीं। सरला और कृष्णा जाकर बैठ गयीं। सरला के सामने एक सिन्धी लड़की बैठी थी जो बहुत ही कीमती कपड़े तथा गहने पहने हुए थी। उसके साथ ही एक ईसाई लड़की बैठी थी जो सरला की तरह काम की चिन्ता में बीमार लग रही थी। रह-रह कर वह आह भर रही थी। कृष्णा के साथ में तीन-चार मराठी लड़कियाँ बैठी संगीत पर चर्चा कर रही थीं। और कृष्णा बड़े ध्यान से उनकी बहस सुन रही थी। एक लड़की शास्त्रीय संगीत के पक्ष में थी तथा अन्य दो लड़कियाँ ठुमरी और ग़ज़लों को अच्छा समझती थीं। सरला को बार-बार लगता था कि थोड़ी ही देर में वे लड़ पड़ेंगी। किन्तु बात उसके विपरीत हुई। ग़ज़ल की तरफ़दारी करने वाली उस लड़की ने सचमुच ही ग़ज़ल सुना दी। वह बहुत ही धीरे-धीरे गा रही थी पर कृष्णा ने आगे झुक कर सुन ली। सरला ने विशेष ध्यान नहीं दिया। कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने उससे कहा, "देखा सरला, इनको भी काम नहीं है पर संगीत की बातचीत से कैसा जी बहला रही हैं।"

सरला ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने सोचा, संगीत का आनन्द तब आ सकता है जब मन प्रसन्न होगा और मन तब प्रसन्न होगा जब यह बेकारी ख़त्म हो जायगी।

"एक लाभ तो हो ही गया। कुछ संगीत के कलाकारों के नाम मैंने सीख लिए।"

सरला फिर भी चुप रही।

"आज तुम इतनी चुप क्यों हो?"

"यों हीं।"

पर कृष्णा का मन नहीं माना। उसने सोचा सरला के पास पैसे नहीं होंगे और माँगना उसके बस की बात नहीं। उसने उसका बैग खोल कर देखा। उसमें दो रुपए तेरह आने थे। फिर उसने उसका पास देखा। वह खत्म हो चुका था। कृष्णा ने सरला से कहा, "तुम्हारा पास तो कल ही खत्म हो गया। मुझसे क्यों नहीं कहा? डिपाजिट के दो रुपए भी ज़ाया कर दिए।"

सरला का चेहरा काला पड़ गया। आज सवेरे वह यही पास दिखा कर निकली थी। उसने पास अपने हाथ लेकर देख लिया। कृष्णा की बात सच थी।

"मैं तो भूल ही गयी, किसन!"

"तो यह अच्छा ही हुआ जो मैंने तुम्हारे बैग को खोलने की धृष्टता की।"

"इसमें धृष्टता की क्या बात है? जब मैंने अपना हृदय ही खोल कर तुम्हारे सामने रख दिया है तो बैग की क्या बात है?"

"वाह! वाह! क्या बात कही है। आज तो कविता करने लग गयी। पर मैं किसी को अपना बैग खोलने नहीं दे सकती। अपनी व्यथा तो बतायी जा सकती है पर अपना दैन्य किसी को बताया नहीं जा सकता।"

सरला ने पहले तो कोई उत्तर नहीं दिया फिर पूछा, "दैन्य कैसा? तुम्हारे बैग में तो कभी दैन्य नहीं रहता। हाँ, खाने का डिब्बा अवश्य रहता है।"

"वही तो मेरे दैन्य की निशानी है। मैं घर से पराँठे लाती हूँ। सिन्धी लड़कियाँ कभी नहीं लातीं। किसी होटल में मीट के प्लेट खा लेती होंगी। उनके बैग में शायद मेक-अप् का सामान रहता होगा।"

सरला चुप हो गयी।

"अच्छा, अब ध्यान से सुनो। यहाँ का काम ख़त्म होते ही..."

किसी भयंकर आघात ने सरला को वर्तमान में ला पटका। वह उससे आगे सोच ही न सकी। वह दृश्य जो अभी-अभी उसके आगे सजीव हो उठा वह इतना भयंकर था कि वह काँप गयी। उससे वहाँ बैठा ही न गया। वह उठ खड़ी हुई। चपरासी ने जब उसे अपना नाम लिखने के लिए कहा तो उसे कुछ सुनायी ही नहीं दिया। वह फ़ौरन ही नियोजनालय के कार्यालय के बाहर निकल आयी; और कृष्णा के दफ्तर की ओर चल पड़ी। रास्ते में एक ही वाक्य हथौड़े की तरह उसके माथे को तोड़ता जा रहा था। कृष्णा की आवाज़ चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थी, "अच्छा अब ध्यान से सुनो। यहाँ का काम ख़त्म होते ही सीधे बोरीबन्दर चली जाओ और अपना पास बनवा लो। पैसे मैंने तुम्हारे बैग में रख दिये हैं।"

और कृष्णा ने सचमुच ही उसके बैग में पैसे रखे थे। सरला ने पास बनवाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो रुपए डिपाजिट और पाँच रुपए का पास। सात रुपए दिए थे कृष्णा ने उसे। और वह भूल गयी थी। एकदम भूल गयी थी। छिः-छिः, वह भूल कैसे गयी? वह इतनी स्वार्थी है! राम, राम, और जब कृष्णा ने याद दिलाया तब भी उसे याद नहीं आया।

वह कृष्णा के दफ्तर पहुँची। इतने दिन जो करने की हिम्मत न हुई थी वह आज कर बैठी। कृष्णा टालती रही किन्तु आज की बात तो कुछ और ही थी। आज दिन ही और था। खुशी का भी और दुख का भी।

कृष्णा के हाथ मशीन पर ही रुक गए। वह मुस्करायी। उसने सरला का स्वागत किया। सरला बैठ गयी। रूमाल निकाल कर यों ही मुँह पोंछ लिया। गला साफ किया। फिर कृष्णा से आँख मिलायी। उनमें अभी भी प्यार था। वह कितनी शान्त लग रही थी। वह ज़रा भी विचलित नहीं हुई थी। इसके विपरीत सरला का रोम-रोम काँप रहा था। वह बातें करना चाहती थी पर एक शब्द भी फूट नहीं रहा था। इतने लम्बे अरसे बाद वह अपनी प्रिय सहेली को देख रही थी; फिर भी उसकी ज़बान बँधी हुई थी। कृष्णा ने अपना काम खत्म किया और सरला के साथ स्टेशन की ओर निकल पड़ी। रास्ते में कृष्णा ने कहा, "कहो सरला, अच्छी तो हो?"

"किसन, आज मैं नियोजनालय में गयी थी और मुझे वहाँ जाकर याद आया।"

"क्या याद आया?"

"वही।"

किसन ने सरला की ओर देखा। वह उस 'वही' का मतलब समझी नहीं या न समझने का अभिनय करती रही।

"जिसके कारण---"

"मैंने समझा कि तुम्हें वह तलत महमूद की ग़ज़ल याद आयी। कौन-सी थी वह?"

सरला अवाक् उसे देखती रही। जिस मनहूस बात ने उन्हें अलग किया था, उनकी दोस्ती में दरार पैदा की थी, वही बात कृष्णा को याद नहीं आ रही थी।

"हाँ अब याद आया। शकील की ग़ज़ल थी वह--

नज़र-नवाज़-नज़ारों में जी नहीं लगता

"मैं ग़ज़ल की नहीं कह रही हूँ। मैं तो---"

"वो क्या गये कि बहारों में जी नहीं लगता।

कृष्णा को दूसरी पंक्ति भी याद आयी।

"कृष्णा, तुम जानती हो कि मैं"---सरला के स्वर में व्यथा थी। पर कृष्णा ने उसे कुछ कहने का मौका ही नहीं दिया।

"देखो सरला, अभी छः-पाँच में बहुत समय बाकी है। चलो भेल खा आते हैं।"

दोनों भेल खाने गयीं। लौट कर छः-पाँच की फास्ट में घर गयीं। पर सरला जिस कृष्णा के लिए तरस रही थी वह उसे मिल न सकी। उसकी सखी किसन, यह नहीं थी। उसने उसकी रुपये वाली बात को काट दिया था। पुरानी बातों को वह याद करना नहीं चाहती थी और साथ ही उस पुरानी मित्रता को भी उसने भुला दिया था। सरला ने जब पूछा कि कल वह कौन-सी गाड़ी से आ रही है तो उसे एक सुन्दर-सा चुटकुला याद आया था। सरला को भी मजबूरन चुप रहना पड़ा था।

⊙ ⊙ ⊙

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Telg: SAHUJAIN

Tele: 251218

Bombay Vyapar Private Limited

15A, HORNIMAN CIRCLE,
FORT, BOMBAY-1

Sole Selling Agents for

MAHARASHTRA & GUJARAT STATES OF
ROHTAS INDUSTRIES LIMITED,
DALMIANAGAR

Special items of Manufacture :

DUPLEX BOARD, M. G. POSTER & SULPHITE, M. G. MANIFOLD & TISSUE, MAP LITHO S|C & GLAZED, BANK & BOND PAPER, CHROMO BOARD S|C, AND AIR FINISH ART BOARD

STOCKISTS & DISTRIBUTORS ALL OVER THE STATE.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आप हैं एक बिगड़े हुए नवाब...'

'मेरे पतिदेव एक बिगड़े हुए नवाब से कम नहीं,' डी/८, यूनियन हाउस, माहिम, बम्बई १६ की श्रीमती आर. आर. प्रभु कहती हैं, 'और कपड़ों की धुलाई पर तो इन का माथा मैला होते देर नहीं लगती। लेकिन जब से इन के कपड़े मैं ने सनलाइट से धोने शुरू किये हैं, यह भी खुश हैं और मैं भी। सनलाइट से कपड़े शानदार सफ़ेद और उजले धुलते हैं और इस का ढेरों झाग मैल का कण कण बहा ले जाता है!

गृहिणियाँ जानती हैं कि शुद्ध, मुलायम झागवाले सनलाइट की धुलाई में उन के कपड़ों की भलाई है। आप भी उन से सहमत हो जायेंगी।

सनलाइट

आप के कपड़ों की सर्वोत्तम सुरक्षा के लिए-

S. 30-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

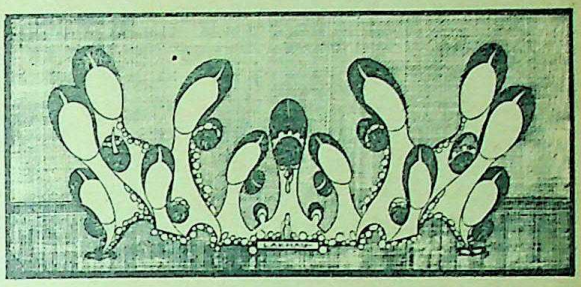

आत्म-कथन

●'नवोदित लेखिकाएँ अंक' की 'मैं और मेरा लेखन' शीर्षक इस विशिष्ट योजना के अन्तर्गत हमारा विचार था कि हिन्दी की जो लेखिकाएँ अपने लेखन के प्रारम्भिक संघर्षों को पार करके अब प्रतिष्ठित हो चुकी हैं, वे अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों, अपने प्रेरणा-स्रोत, अपनी रुचियों और अपनी भावी योजनाओं के सम्बन्ध में स्वयं अपने ही शब्दों में कुछ इस तरह बताएँ कि भावी लेखिकाओं के लिए वह दिशा-निर्देश का कार्य करे।

●इस योजना के अन्तर्गत हमें हिन्दी की कई प्रतिष्ठित लेखिकाओं के आत्म-कथन प्राप्त हुए हैं, जिनमें से स्थानाभाव के कारण हम केवल निम्नलिखित चार के ही विचार यहाँ प्रस्तुत कर पा रहे हैं :

- कौशल्या अश्क
- विद्यावती कोकिल
- चन्द्रा औलक
- अमृता प्रीतम

मैं और मेरा लेखन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशल्या अश्क

मैं भी कैसी लेखिका हूँ !

●

● लिखना मैंने कॉलेज के दिनों से ही शुरू किया। कुछ लेख, स्केच और छोटी-मोटी कहानियाँ लिखीं, जो कॉलेज मैगेज़ीन में छपती रहीं। प्रायः यह शिकायत मुझे सुनने को मिलती थी कि मेरी रचनाओं में गम्भीरता और भारीपन अधिक और हास्य-व्यंग्य कम होता है, लेकिन उस समय हास्य-व्यंग्य सूझता ही नहीं था। परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी विकट थीं कि हास्य-व्यंग्य नहीं सूझता था। दुख और खिन्नता के गहरे बादल मन-प्राण पर छाये रहते थे और हँसी-खुशी की किरणें उस घनी-गहरी घटा को भेद सकने में नितान्त असफल हो जातीं। और मैं जो भी लिखती, प्रायः गम्भीर हो जाता। यों कॉलेज पत्रिका की लेखिका के रूप में मुझे मान्यता भी मिली और फ़र्स्ट-प्राइज़ भी।

यदा-कदा मैं कहानियाँ लिखती रही। बड़े सुन्दर अक्षरों में लिख कर किसी पत्रिका में भेजती, पर वे छप न पातीं, बल्कि उत्तर भी न मिलता। उन दिनों कहानी की उतनी समझ भी न थी। जो लिखती थी, समझती थी बहुत अच्छा लिखा है, इसलिए सम्पादकों की 'मूढ़ता' पर गुस्सा बहुत आता था, लेकिन कोई चारा न था।

शुरू से ही कविता से बहुत लगाव था (अब भी है), पर कविता कर मात्र तुकबन्दी तक रह गया और फिर सृजन का प्रयास छोड़ रसास्वा और प्रशंसा में सुख पाना अपना लिया। शादी के बाद कुछ अश्क जी कुछ कृष्ण भाई (कृष्ण चन्द्र) की प्रेरणा से मैंने उर्दू तथा हिन्दी में कुछ कहानि लिखीं। उन में 'थकान' और 'फ़ैसला' खासी पसन्द की गयी थीं।

जीवन का संघर्ष शुरू से ही विकट रहा, शादी के बाद भी जारी रहा फिर अश्क जी यक्ष्मा के चंगुल में फँस गये। सारा समय भाग-दौड़,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्जेक्शन और अस्पतालों की भेंट होता रहा। फिर इन्हें पंचगनी सेनेटोरियम में दाखिल करा दिया और मैं बाहर मकान लेकर रहने लगी। इस एकान्त में लिखने को मन बहुत होता, पर उदासी और चिन्ता घेरे रहतीं और मैं कुछ लिख न पाती। बड़े सुन्दर कथानक और आधारभूत विचार नष्ट हो गये। पढ़ती मैं बहुत थी, लिखना भी चाहती, मन-ही-मन पूरी की पूरी कहानी की रूप-रेखा तैयार हो जाती, लेकिन अनजाने-अदेखे हाथ लेखनी को रोक रखते।

फिर इनका स्वास्थ्य कुछ सुधर गया। मैंने एकाध चीज़ लिखी जिसमें अश्क जी पर लिखा रेखा-चित्र और कहानी 'जगन्नाथ' लोगों ने बहुत पसन्द की। पहले-पहल लोग समझते थे कि अश्क जी स्वयं लिख कर मेरे नाम से छपा देते हैं। लेखक की पत्नी के नाते जहाँ लेखिका बन जाने की सम्भावना है, वहाँ यह अपवाद सहने की भी।

ये स्वस्थ हो गये तो मुझे आशा थी, मैं लिखती रहूँगी, लेकिन सब जमा-पूँजी तो इनकी बीमारी पर खर्च हो गयी थी और हम खासी परेशानी में प्रयाग आये थे। तब समस्या थी कि क्या काम किया जाय। इनका स्वास्थ्य सुधर तो गया था, किन्तु अधिक श्रम करने योग्य न था, (अब भी नहीं), परिस्थितियाँ अनुकूल न थीं, कुछ मित्रों ने व्यवहार भी अच्छा न किया। तब सब कुछ भूल कर, एक बार फिर संघर्ष में जुट जाना पड़ा और प्रकाशन का काम शुरू हो गया। पिछले बारह-तेरह वर्षों से निरन्तर इसी में लगी हूँ। इस सब में भी कुछ फुटकर चीज़ें लिखी हैं, पर मुझे अपने लिखने से सन्तोष नहीं। एक उपन्यास लिखने की आकांक्षा है। यदि परिस्थितियों ने साथ दिया और मैं अपने को उसमें लगा सकी तो सम्भवतः मुझे कुछ सन्तोष हो जाय।

यहाँ मुझे कॉलेज के दिनों में सुना एक किस्सा याद आता है--

एक सज्जन अपने मित्र से मिलने गये। मित्र ने बातों-बातों में ज़िक्र किया कि मुझे अपनी बेटी को पढ़ाने की बड़ी चिन्ता है।

उन सज्जन ने कहा, "तुम बेकार में उसे पढ़ा रहे हो, अब उसकी शादी कर दो, चिन्ता दूर हो जायगी।"

मित्र बोले, "नहीं, मैं चाहता हूँ कि वह पढ़ जाय।"

"पढ़ कर क्या होगा"? सज्जन बोले, "लड़की सयानी हो गयी है, इसे ब्याह दो और चिन्ता से मुक्त हो जाओ।"

मित्र फिर भी अपनी बात पर अड़े रहे, "नहीं भाई, मेरी इच्छा है, यह पढ़ जाय।"

"पर पढ़ कर होगा क्या?" सज्जन झुँझला उठे।

"मैं चाहता हूँ कि पढ़ कर यह मास्टरनी बन जाय।" मित्र बोले।

सज्जन हँसे। बोले, "इसमें पढ़ने की क्या ज़रूरत है, मास्टर से ब्याह दो, मास्टरनी बन जायगी।"

अपने लिए भी मुझे कुछ ऐसा ही लगता है--सोचती हूँ, मैं भी ऐसी ही लेखिका हूँ!

● ● ●

● प्यार की मंजिलों में धोबी नारी ठहरायी जाती है, पुरुष नहीं।

—पर्ल बक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार का
सर्वप्रिय

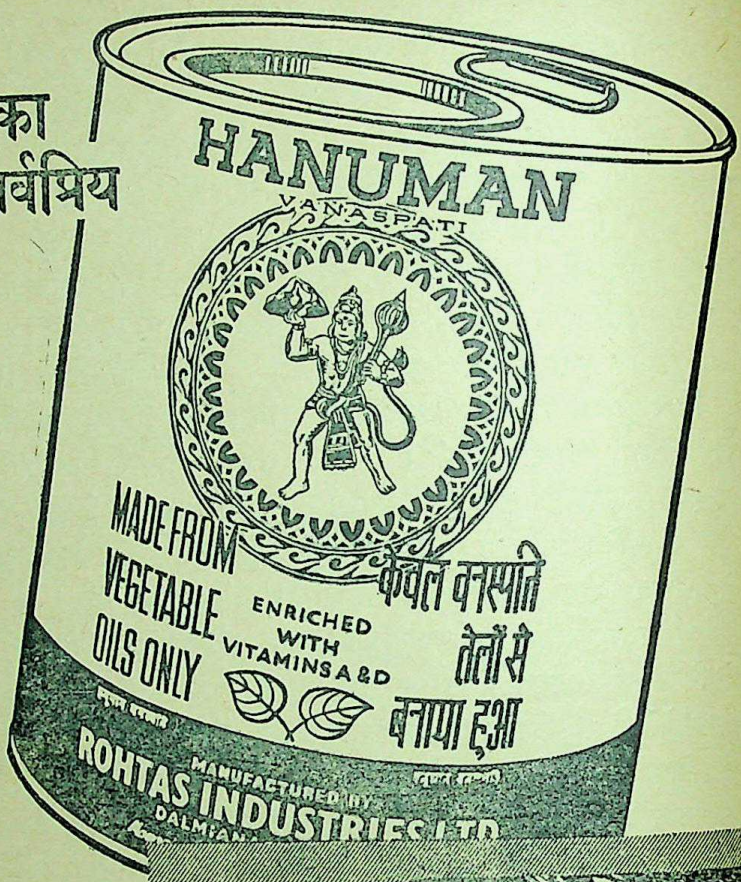

SAHU JAIN
INDUSTRIES

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

यदि आप अपने ४ किलोग्राम टिनों में भाग्य से एक कूपन पा जाँय तो उसके बदले में एक अपूर्व उपहार ले लें

332

उपहार कूपन का नमूना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यावती कोकिल

मेरी कहानी : मेरी ज़बानी

●

●● जहाँ तक मेरा और मेरे साहित्य का प्रश्न है, वह मेरे साथ चिपक कर असफल ही रहा है। क्योंकि मेरा 'मैं' तो आज तक जीवन के सब क्षेत्रों से विद्रोह ही अधिक करता रहा है, जिसका कारण मैंने कभी नहीं समझा।

बचपन में मैं इतनी कुशाग्रबुद्धि थी कि अपनी कक्षा में सबसे छोटी होते हुए भी पढ़ने में पीछे नहीं रहती। स्मरण-शक्ति इतनी तीक्ष्ण कि मेरे पिता, जो आर्यसमाज के प्रमुख व्यक्ति थे, अक्सर ही मुझे श्लोक व वेदमन्त्र रटने को देते जो दो-तीन बार पढ़ने पर ही मुझे कण्ठस्थ हो जाते। छोटी-सी आयु में उनके रटाए व्याख्यान ऐसे बोलती कि लोग दंग रह जाते। पर माँ के परलोकवास के बाद मेरी पढ़ाई तो अव्यवस्थित हो ही गयी, मेरी बुद्धि और स्मृति भी भ्रष्ट हो गयी। बाहर से मैं भले ही सँभलती रही, भीतर से यह टूटने की क्रिया बन्द नहीं हुई। बहुतेरे उतार-चढ़ाव आए, पर पूर्ण संतोष मुझे कहीं प्राप्त नहीं हुआ। इसी बीच किसी प्रतिक्रियास्वरूप साहित्य-प्रेम ने मेरे भीतर अपना डेरा डाल लिया, पर मैं उससे अपरिचित ही थी।

१६ वर्ष की आयु में विवाहोपरान्त शिक्षा - प्रेमी पति के अनुमोदन से पढ़ाई का सिलसिला कुछ जमा, और उनकी अभिरुचि के प्रभाव में बहुत दिनों तक मैं कांग्रेस के कार्यों में तथा और भी अन्य समाज-सुधार के कार्यों में, गृहस्थी के साथ-साथ, दिलचस्पी लेती रही। पर इन सभी कार्यों की प्रतिक्रिया मेरे भीतर बहिर्मुखी न होकर अंतर्मुखी ही थी। मेरे भीतर आ बैठे साहित्य-प्रेम को इन्हीं पाषाणी पथों पर पैदल चलना पड़ा है। मेरे हृदय ने उसे केवल उड़ने के लिए कभी नहीं छोड़ा। और उसकी सुख-सुविधा की ओर ध्यान ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं गया। यही कारण हो सकता है कि उसमें कल्पना और भाषा-परिष्कार की कमी सदा साहित्यिक कानों को खटकती रही। मैं मौन रह कर यह सब सुनती रही। जैसे कुछ ढूंढ़ने के लिए ज़ीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मैं पीछे के दरवाज़े से घुसी हूँ और जब उसे नहीं पा सकी हूँ तब वापिस आ गयी हूँ, तभी किसी कार्य-क्षेत्र को ध्येय बना कर न पकड़ सकी। मेरी बाल-बुद्धि ने न कभी यह जाना कि क्या ढूंढ़ना है, न कभी यह जाना कि क्यों नहीं मिला और कहाँ मिलेगा। बस असंतोष के पर्वत पर पर्वत लाँघती चली गयी हूँ। इसी में मन-शरीर सब कुछ भीतर ही भीतर टूट कर चूर हो गया, जिसे किसी ने नहीं जाना। शायद मेरी अन्तर-समस्या को कोई समझाने वाला होता तो ज्ञान की गंगा के किनारे भी मेरा हृदय, रेगिस्तान बना न रह जाता। मेरे साहित्य में कभी कोई गति ही न आ पायी।

आज श्री अरविन्द-आश्रम की शान्त पावन-भूमि में और जगत-जननी के आँचल के विशुद्ध प्रेम ने पहले-पहल मेरी सारी समस्याओं के समाधान उपस्थित किये हैं। सच बात तो यह है कि मैं न साहित्यिक थी, न समाज-सेवी, न अहिंसा की पुजारिन, न आयसमाज की भक्त। या सब कुछ थी पर एक दूसरे ही दृष्टिकोण से। मेरी आँखों ने अपने बचपन में एक भारतीय नारी (मेरी माँ) की झलक देखी थी, जो उसी समय अपनी छटा दिखा कर मेरे सामने से, अंतर्धान हो गयी थी घर के शान्त और संगीतमय वातावरण छाप आज भी मेरे हृदय पर है। घर न कोई आवाज़, न खटक, न मार, न डाँ न उत्तेजना। यह एक प्रकार का निर्मा तत्व है जो भारतीय नारी ने बड़े तप से पा है। मेरा बाल-हृदय उसके जाने के ब इसी तत्व को जीवन के हर क्षेत्र में देखने इच्छा लिए बिलख-बिलख कर रह गया इसे आप नारी की रचना-विधि कह सक हैं जो जीवन में गंगा जैसी शांत, गंभीर, पवि धारा से बहते हुए ही सृजन करना चाहती है इस विधि का कोई आग्रह शायद मेरी म मेरे कोमल और अनूठे हृदय में दबा कर च गयी थी। यह आज के अर्थ और कीर्ति लोलुप जीवन में कहाँ मिले! बस मे पूर्ण समर्पण किसी ऐसे ही आदर्श औ दिव्यात्मा की खोज में लगा रह गया। प्रे और समवेदना का वही क्षेत्र पुष्पित, पल्लवि और परिवर्धित करना चाहिए जो उसन अपना है। जब बिना पर्याप्त शिक्षा के ब लोक-साहित्य का सागर बहा सकी है, जिस कथा-कहानी-गीत-कहावतें क्या नहीं हैं, औ जीवन का कौन-सा विषय, कौन-सा रस उस नहीं है, तो आज पूर्ण स्वतंत्र और ज्ञा होकर वह क्या सृजन नहीं कर सकती यदि वह अपने अन्तर को ही केवल अप प्रेरणा-स्रोत बना सके तो वह निश्चय ह अत्यन्त उच्च-कोटि का स्थायी साहित्य र सकती है।

● यदि प्रेम बहुत दूर है तो एक घण्टे की प्रतीक्षा भी एक युग की प्रतीक्षा लगती है। और यदि प्रेम समाप्ति पर है तो अनन्त-काल की प्रतीक्षा भी छोटी पड़ जाती है।

—एमिली डिकिन्सन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

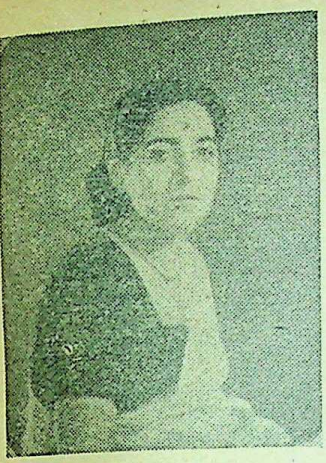

चन्द्रा ओलक

कुछ पुराने और नये ख़त

•

सेवा में, लेखक-समीक्षक ए. बी.

प्रिय भाई, दिनांक : १-१२-५३

आपका विचारोत्तेजक लेख पढ़ा। लेख पढ़ने के बाद इच्छा हुई है कि अपनी प्रतिक्रिया आपको लिख भेजूँ। आपने निस्सार कथाओं के छपते जाने को व्यर्थ ठहराया है, पर सारगर्भ कथा यदि बिना छपे रह कर किसी प्रतिभा को मिट्टी करती जाय, उसे भी क्या आपने असत् कार्य ठहराया है ?

तब आपका वह सत्य का उद्‌घाटन क्या करेगा ? जब कलाकार ही नहीं रहेगा, तो घटनाएँ किस अभिनव-मानव को ढूँढ़ निकालेंगी ? किसकी शनाख्त करेंगी ? चरित्र स्वयं ही जहाँ, भूमि-सात हों, वहाँ चरित्र-निर्माण कौन करेगा, और घटना की खोज कौन करेगा ?

क्या आज के कथाकार के साथ-साथ, आप भी फार्स्टर की उक्ति के कायल होना नहीं चाहते ? फार्स्टर की उक्ति के अनुसार, एक साहित्यकार का काम जीविकार्जन की चिन्ता में घुल-घुल कर मरना नहीं है। उनके विचार में कलाकार स्वतंत्र रहेगा, और किसी आकर्षण-प्रलोभन में नहीं फँसेगा। भले ही इसके लिए, राष्ट्र अथवा प्रकाशक को थोड़ी बहुत फ़िज़ूलख़र्ची भी करनी पड़े। आज आपका प्रकाशक-वर्ग 'नयी प्रतिभाओं को सामने लाना चाहिये' के नारे लगाता है। लम्बे-लम्बे लेख छापता है, पर कार्य-रूप में एक भी प्रयास उनका अभी तक आया क्यों नहीं ?

आप बुरा न मानें, आपको हितैषी समझ कर, आप तक अपनी बात पहुँचायी है।

—भवदीय, विभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुचिपूर्ण

सुपर बॅटर

स्कॉच

बहुत प्रकार की मिठाइयों में से एक
जिन्हें तैयार करने वाले हैं :—

मॉर्टनूस

सी० एण्ड इ० नॉर्टन (इण्डिया) लि०

M-3/57

मद्रास के लिए एजेन्ट :

लाला गोपीकृष्ण गोकुलदास

११४, मिण्ट स्ट्रीट, मद्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनांक : ११-१२-५३

प्रिय विभा जी,

आपके विचारों की मैंने सदा ही सराहना की है। भले ही उनमें से, एक भी अभी तक छाप न सका होऊँ, जिसके अपने कारण हैं। मैं, आप तथा आपके वर्ग की कठिनाइयों को भी समझ सकता हूँ। आप जिस संघर्ष में रत हैं, उसके हेतु आपको क्या कुछ बलिदान नहीं करना पड़ा? यह दैव का क्रूर विधान है कि जो सच्चाई की बाँह पकड़ता है, उसे ही साधना की आँच में तपना पड़ता है। और तप कर जो कुंदन होता है, वही युग-युग तक जीवित रहता है। परिश्रम का प्रतिफल यदि आपको आज विरोध अथवा असहयोग मिला है, तो एक दिन प्रोत्साहन एवम् संतोष भी मिलेगा। याद रखिये, ऐसी ही परिस्थितियाँ लेखनी की शान को ऊँचा रखती हैं।

—भवदीय, ए. बी.

× × × ×

दिनांक : २१-९-६१

श्रीमान् शर्मा जी,

आज आठ वर्ष बाद, आपका लेख पढ़ कर सहसा ध्यान आया, कि धरी हुई कलम उठा कर पहले की तरह नवलेखन पर टीका-टिप्पणी लिखूं। आपने लिखा है कि हर भाषा में स्वस्थ, अस्वस्थ पत्रिकाएँ होती हैं। हिन्दी में इसलिये स्वस्थ पत्रिकाएँ कम हैं, कि आज हिन्दी में पाठक नहीं रहे, खरीदार रह गये हैं, पर सच्ची बात इतनी ही तो नहीं शर्मा जी! पाठक तो ईमानदार मिलता है, पर जो 'हिन्दी हिन्दी' चिल्ला रहे हैं, उन्हें ही हिन्दी का साहित्य फीका व बेस्वाद भी लगने लगा है। और दुःख की बात भी है, कि हिन्दी की बागडोर उन्हीं के हाथों में होते हुए भी वही आवाज़ कस रहे हैं। फिर भी गूंज है कि नयी प्रतिभाओं को सामने नहीं लाया जा रहा। पर इस दिशा में क्रमगत् पग उठाने में जोखमों का सामना करना पड़ता है। इसी से प्रकाशक 'हानि, लाभ के आँकड़े' माइनस की ओर जाते देख कर हाथ रोक लेता है और तब सवेरे की क्रान्ति साँझ तक व्यापारिक समझौता बन जाती है। और फिर से वही लेख छपने शुरू होते हैं।...

स्टैण्डर्ड, पाठक नहीं मिलता है तो करें क्या?
स्टैण्डर्ड कविताएँ नहीं मिलतीं हैं तो क्या करें?

—भवदीय, विभा

× × × ×

दिनांक : २२-९-६१

विभा जी,

आपका ख़त मिला। समीक्षा सम्बन्धी विषय पर आपने खुल कर लिखा, यह मुझे अच्छा ही लगा। कथा-साहित्य तथा कथा के स्टैंडर्ड को लेकर जो शंकाएँ आपने उठायी हैं, उन पर प्रकाशकों, पाठकों एवं लेखकों को अवश्य विचार करना चाहिए, और कोई कारण नहीं कि वह इन तमाम साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए बाध्य न हों? यह सच है कि खरीदारों की संख्या ज्यादा है, कारण चाहे जो हो। कलाकार भी कम हैं; लेखक नहीं, उपभोक्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

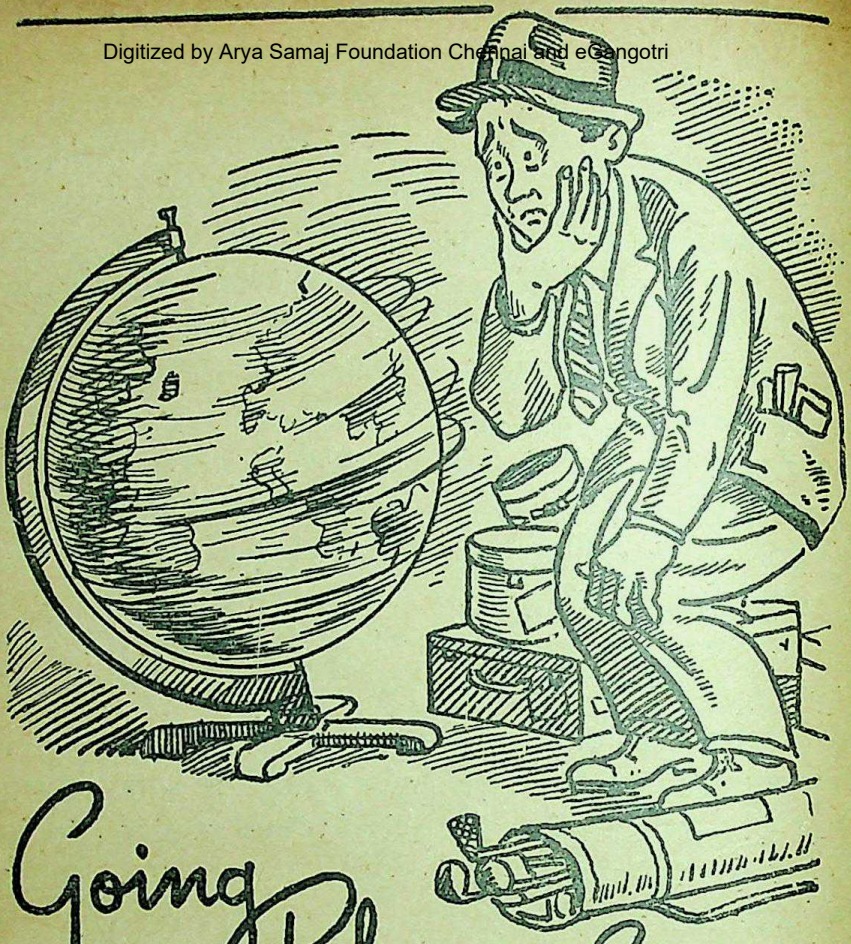

Going Places...?

Whether you travel on business or pleasure, your travel arrangements are important.

Don't leave them to Chance—Leave them to

Everett Travel Service

ESTD. 1936

EVERETT STEAMSHIP CORPORATION

Incorporated in the Philippines • Liability of Members Limited

GREAT EASTERN HOTEL ARCADE, CALCUTTA-1

Phone : 23-6651 (3 Lines) Gram : EVORIENT.

ETS 8-EA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इससे ज़िम्मेदारी लेखक, पाठक व प्रकाशक तीनों की है। ऐसी अधकचरी व्यवस्था में उत्तरदायी यदि प्रकाशक नहीं हैं, तो यह स्वाभाविक ही है। हाँ, आप अपनी रचना अवश्य भेजें, उसे पढ़ कर सही राय भेजने में, या छपवाने का यत्न करने में, मुझे प्रसन्नता ही होगी।

—भवदीय,
ए. शर्मा, प्रकाशक

\+ + + +

दिनांक : २५, ९, ६१

श्रीमान् शर्मा जी,

आपने मेरी रचनाओं में रुचि दिखायी, धन्यवाद! पर, मेरे भीतर का उत्साह आज परास्त हो चुका है। मेरा अपने तथा दूसरों पर से विश्वास उठ गया है। तो भी रचना भेज कर सही राय लेने में मुझे कोई एतराज़ नहीं। पर आप छपवाने का यत्न करेंगे, इन बातों में मुझे न घसीटिये। इस सम्बन्ध में, मैं एक पत्र की कुछ पंक्तियाँ उद्धत करती हूँ—

दिनांक : २६–९–५१

प्रिय विभा,

तुम्हारी सभी कहानियाँ देख गया हूँ। अच्छी हैं; किन्तु बहुत स्वकेन्द्रित। कठिन आरोप भी उनमें हैं। यह विरोध क्यों?

और सहानुभूति अपने को न मिले, और सब को तो मिलनी ही चाहिये। खैर, मेरे लिहाज़ से प्रकाश रूप में आने के लिए कहानियों को काफ़ी एडिटिंग चाहिये। यहाँ मेरे बस का काम तो दीखता नहीं। किसी से कराऊँ, तो किससे? तो भी मान रखना, मेरा ध्यान उधर है, फिर भी उपाय तो मेरे हाथ में कहाँ है?

—भवदीय, ए. बी.

शर्मा जी,

इस पुराने पत्र का सांकेतिक हवाला इसलिये दिया है कि मैं आपका ध्यान नारी की वर्गीय लाचारी की ओर खींच सकूँ? विश्व के बहुतेरे धन्धों की भाँति, पत्रकारिता का धन्धा भी पुरुषों ही के घेरे में है। नारी अभी तक अपने संकोच ही के घेरे को नहीं तोड़ सकी, तो फिर पत्रकारिता के घेरे में सीधा पदार्पण, अनायास कैसे करेगी? कहने लायक बहुत-सी बातों को वह ओठों तक नहीं ला सकती।

अब तो यही प्रतीक्षा है कि मौखिक सहानुभूति का स्थान व्यवहार में कब परिणत होता है?

—भवदीय, विभा

● ● ●

विद्रोह — एन रैण्ड

यह लिखना एक पाप है। उन शब्दों को सोचना पाप है, जिन्हें दूसरे नहीं सोचते। और फिर उन्हें काग़ज़ पर उतारना..जबकि कोई उन्हें देखने वाला भी न हो। यह एक नीचता है...एक दुष्कर्म। धर्म-सभाएँ कहती हैं कि बिना उनकी आज्ञा के एक शब्द भी नहीं लिखा जाना चाहिए।.... क्या हमें क्षमा किया जा सकता है?....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलो तो ओढ़ म्हारी गोरी पाणी हे
सारो ही गांम लुभायो गढ़ा मारूजी
अल्ला ने पल्लां साहिब मोर पपैया
घूंघट ऊपर नणदल बाई रो बीर

अद्भुत आभा

पीलो ओढ़ कर यह राजस्थानी सुन्दरी
लेने जा रही है। इसके पल्ले पर पपीहे
मोर बने हुए हैं जिन्हें देख कर सारा
मंत्रमुग्ध है।

हाथकरघा वस्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृता प्रीतम

●

मेरी पहली कविता

●● मैं अभी पूरे ग्यारह वर्ष की भी नहीं थी, जब मुझे किसी का स्वप्न आने लगा। स्वप्न में प्रायः मैं उसके साथ आँख-मिचौली खेलती थी। जिसका मुझे स्वप्न आता था, हमारे पड़ोसियों, जानकारों तथा रिश्तेदारों में से किसी की शक्ल, उससे नहीं मिलती थी। मैं बड़ी हैरान होती थी,—'वह' कौन था ?

फिर अपने आप ही मैंने उसका एक कल्पित नाम रख लिया—'राजन'। जो स्वप्न मुझे बार-बार आता था, वह मुझे अभी तक याद है। कोई पानी का किनारा होता था, जहाँ ऊँचा-ऊँचा सरकंडा उगा होता था। मैं अपनी हम-उम्र छोटी-छोटी लड़कियों के साथ वहाँ खड़ी होती और वह आ जाता। फिर हम सब मिल कर आँख-मिचौली खेलते। 'उसके' सिर बारी आ जाती। हम सब लड़कियाँ उस ऊँचे-ऊँचे सरकंडे में छुप जातीं।

सचमुच के खेल में सब का मन करता है कि वह खेल मे किसी से पकड़ा न जाय, परन्तु स्वप्न में मेरा मन किया करता था कि जहाँ मैं छिपी हुई हूँ, राजन तलाश करता हुआ वहाँ आ जाये और मुझे ढूंढ़ ले। स्वप्न में मेरा दिल धड़कता और जहाँ मैं छिपी हुई होती, वहाँ मैं राजन के पैरों की आवाज़ की प्रतीक्षा करती। फिर 'राजन' सचमुच वहीं आ जाता। मुझ छिपी हुई को तलाश कर लेता और कहता, "मैंने तुम्हे ढूंढ़ लिया है।" मैं बहुत खुश होती कि उसने किसी और लड़की को नहीं ढूंढ़ा, मुझे ढूंढ़ा था।

इस तरह मैं अभी पूरे ग्यारह वर्ष की नहीं थी, जब मैंने एक दिन चोरी-चोरी चार पंक्तियों की एक छोटी-सी कविता लिखी और उसमें अपने मन में सोचा हुआ उसका नाम 'राजन' भी लिख दिया। कविता के छोटे-से काग़ज़ को तह करके अपनी कमीज़ की जेब में छिपा लिया, कि स्कूल जाकर अपनी सहेली को दिखाऊँगी।

स्कूल अभी गयी नहीं थी, बस्ता हाथ में पकड़ा हुआ था; पिताजी से अपने रोज़ के ख़र्च करने वाले पैसे लने गयी। पिता जी ने पैसे मेरे हाथ में देने के स्थान पर, लाड़ से मेरी जेब में डाल दिये। जब वे जेब में पैसे डाल रहे थे, वह कागज़ सरक पड़ा। पिता जी ने वह कागज़ बाहर निकाल लिया और पढ़ लिया।

जितने मिनिट वे ध्यान से कागज़ पढ़ते रहे, मेरी साँस रुकी रही। और फिर उन्होंने धमका कर पूछा, "यह कविता तूने लिखी है ?"

मेरे होंठ काँप गये, परन्तु मुझसे तुरन्त कुछ कहा नहीं गया। उन्होंने पहिले से ऊँचा दबका देकर फिर पूछा, "यह कविता तूने लिखी है ?"

"नहीं...मैंने नहीं लिखी। मेरी सहेली ने लिखी है, उसने मुझे पढ़ने के लिए दी थी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंठ मेरे आगे ही काँप रहे थे, शब्द भी काँपने लग गये।

पिता जी ने मेरे काँपते शब्दों में से मेरे झूठ को पकड़ लिया और मेरे बाँयें गाल पर हाथ के पूरे ज़ोर से एक चपत लगा दी, "झूठ बोलती है? यह कविता तूने लिखी है।"

मुँह से कुछ न कहा गया और मेरे आँसू बहते रहे। उन्होंने फिर ध्यान से मेरी कविता पढ़ी और क्रोध से पूछा, "यह 'राजन' कौन है?"

"पता नहीं"...मैंने बिलकुल सत्य कहा था, परन्तु उन्हें मेरे ऊपर विश्वास न हुआ। उन्होंने दूसरे ही क्षण वह कागज़ टुकड़े टुकड़े कर दिया और मैं रोती-रोती स चली गयी।

इस तरह मैंने अपनी पहली कविता बोल कर पराये नाम पर लगानी चाही पर उसने पराये नाम को सहन न किया एक चपत सहित, फिर मेरे नाम लग गयी।

दो भाव-कथाएँ

●मध्याह्न की उदासीन नीरवता में वृक्षों के पत्ते धीरे-धीरे अपने हाथों हिला कर जीवन का सन्देश दे रहे थे। आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक शून्यता की सीमा अपरिमेय हो गयी थी। दूर दृष्टि-पथ में सर्व गहन उदासी, भीषण खामोशी और असहनीय व्याकुलता का राज्य था सामने के छायादार वृक्ष से कुछ पीतवर्ण पत्ते अपनी अन्तिम बात वायु कानों में कह कर, टूट गए। इतने में ही एक और वायु का झोंक आया और उड़ा ले गया उन्हें दूर, बहुत दूर, जहाँ वे शायद कभी भी अप आश्रयदाता वृक्ष को नहीं देख पायेंगे। वे पीले पत्ते जाने कहाँ होंगे! जाने किन चरणों की ठोकर लगी होगी उन्हें! जाने किस धूलि के गह्वर में समा गए होंगे! या किसी ऐसे ही हरे वृक्ष अथवा लताओं समीप बैठ, याद कर रहे होंगे अपने विगत जीवन को, केवल एक शुष्क मुस्कराहट के साथ।

●●ज़िन्दगी का हरेक ठहराव, हरेक मोड़ पीछे मुड़ कर देख लेने को बाध्य कर देता है। वैसे तो वर्तमान और भविष्य के पंखों पर झूलता हुआ यह जीवन अपने में सार्थक है, परन्तु फिर भी, न जाने क्यों मन अतीत की स्मृति दोहराये बिना नहीं रहता। चाहे क्षणिक हास्य-विनोद में हम उसे भुलाने का प्रयास करें परन्तु एकान्त पाते ही वे स्मृतियाँ फिर लौट आती हैं। इन्हें न तो स्वप्न कह कर भुलाया जा सकता है; न ही 'बीत गया', 'अब कभी न आयगा' कह कर सान्त्वना ही दी जा सकती है। इनका आगमन एक विचित्र पुलक एवं सिहरन जगा देता है मन में। बस, बिजली-सी कौंध जाती है मस्तिष्क के किसी कोने में, और नैनों में क्षोभ, दुःख या पुलक-भरे अश्रु।

—आशारानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

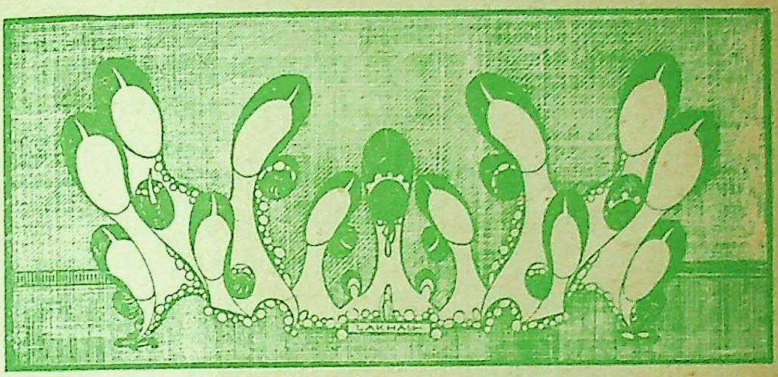

परिचर्चा

नवोदित लेखिकाएँ
लेखन, प्रकाशन और परिवेश सम्बन्धी समस्याएँ

हिन्दी की नवोदित लेखिकाओं के लेखन, प्रकाशन और परिवेश की कुछ अपनी समस्याएँ हैं, कुछ ऐसी विशिष्ट कठिनाइयाँ हैं जो उनके समुचित विकास में बाधक सिद्ध होती हैं। प्रस्तुत विशेषांक की परिकल्पना के मूल में हमारा यही आग्रह था कि नवोदित लेखिकाएँ अपनी इन समस्याओं और कठिनाइयों और सीमाओं पर स्वयं ही विचार-विमर्श करें और इस सम्बन्ध में अपने अनुभव, विचार और सुझाव प्रस्तुत करें, ताकि वर्तमान और भावी पीढ़ी की लेखिकाओं के विकास का पथ अपेक्षाकृत अधिक सहज-सुगम हो सके। इसी लक्ष्य को सामने रख कर हमने इस विशेषांक में एक परिचर्चा का आयोजन किया था जिसमें नवोदित लेखिकाओं की लेखन, प्रकाशन और परिवेश सम्बन्धी निम्न-लिखित समस्याओं पर विशेष रूप से विचार-विमर्श अपेक्षित था :

१. क्या कारण है कि लेखिकाओं के विषय का क्षेत्र इतना अधिक सीमित होता है ? अक्सर ही हम पाते हैं कि 'परिवार' और 'प्रेम' ही उनके दो प्रिय विषय होते हैं। क्या इसका कारण उनके अनुभव के क्षेत्र का सीमित होना है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. वे अधिकतर परम्परावादी शिल्प में ही लिखना क्यों पसन्द करती हैं ?

३. क्या कारण है कि अधिकांश लेखिकाएँ छात्र-जीवन में तो लेखन की ओर काफ़ी रुचि और उत्साह दिखलाती हैं, लेकिन शादी हो जाने के बाद उनका लेखन प्रायः बन्द जैसा ही हो जाता है ?

४. उनकी प्रकाशन की क्या समस्याएँ हैं ? अक्सर यह देखने में आता है कि वे प्रारम्भ में जो कुछ भी लिखती हैं उसे पत्रिकाओं आदि में भेजने में झिझकती हैं और दूसरे को दिखाने में भी संकोच करती हैं। अक्सर यह भी देखने में आता है कि जिन नयी लेखिकाओं के बन्धुओं, परिचितों आदि में कोई प्रतिष्ठित लेखक या संपादक आदि होता है, उनकी रचनाएँ जल्दी ही प्रकाश में आने लगती हैं और इसीलिए लेखन की ओर उनकी रुचि क्रमशः बढ़ती चली जाती है और भविष्य में वे पूर्ण आत्मविश्वास से लिखने लगती हैं, लेकिन जिन लेखिकाओं के साथ यह स्थिति नहीं होती वे अक्सर दो-चार चीज़ें लिखने के बाद ही निराश होकर लिखना बन्द कर देती हैं।

५. जो लेखिकाएँ अध्यापन आदि के कार्य में लगी हुई हैं उनके लिए तो लेखन का कार्य भी साथ-साथ चालू रखना कठिन नहीं होता लेकिन जो लेखिकाएँ नितान्त पारिवारिक जीवन व्यतीत कर रही हैं वे अपने लेखन और परिवार के बीच किस तरह सामंजस्य रख पाती हैं ?

● **उक्त परिचर्चा के अन्तर्गत आये बहुत-से विचारों में से हम स्थानाभाव के का केवल निम्नलिखित ७ लेखिकाओं के विचार यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :**

- इन्दु जैन
- पद्मा सुधि
- विमला राजेन्द्र
- मीरा मानिकवाला
- कुमारी राधा
- शोभा डोगरा
- विमल वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दु जैन

■ हमारे परिवेश की समस्या——यों मोटे तौर पर समझनी बहुत ही सरल है। स्वभावतः लेखन-कला को दर्शन या संगठन की दृष्टि से लेखिकाएँ देखती नहीं हैं। (मैं भारतीय लेखिकाओं की बात कर रही हूँ) वे किसी साहित्यिक दल की सदस्य नहीं होतीं——किसी खास स्कूल के शिल्प अथवा भावभूमि को सचेत रूप से नहीं अपनातीं——वैसे उनकी रचनाओं का विश्लेषण करके आलोचक उन्हें चाहे किसी भी 'टाइप-विशेष' से अंकित कर दें।

वास्तव में हम अधिकांशतः अपने आवेग को मार्ग देने और मन पर बहुत गहरे उतरे बोझ को हल्का करने के लिए लिखती हैं। हमारे लिए लिखना ऐसा ही है जैसे बोझिल शाम के धुँधलके में हाथों में मुख छिपा कर सिसक पड़ना। उसमें अनुभूति ही अनुभूति है, विचारवान सुलझाव के लिए स्थान कम है। उसमें एक ऐसे अभाव की निष्कृति है जिसे हम स्वयं ही समझ नहीं पातीं। बात यह है कि युगों-युगों से एक विशेष आदर्श, सुगृहणीत्व और मातृत्व की सुघड़ मूर्ति का बोझ कंधों पर लिए नारी झुकी-झुकी चली आयी है। उन कंधों की बनावट ही वैसी हो गयी है——वही उसका सौंदर्य माना जाने लगा है। मन की छटपटाहट ——पंख पसार कर दूर-दूर की सुगन्ध मन-प्राण में भर लेने की अकुलाहट—— मस्तिष्क की वह माँज कि माथे पर सूर्य चमकने लगे——न उससे अपेक्षित है और न ही वह इन सब की उपस्थिति निर्भीक होकर अपने आप से ही स्वीकार कर पाती है। मैं यह नहीं कहती कि नारी सुगृहणी न हो, आदर्श माँ न रहे; किन्तु यदि वह अपना थोड़ा-सा समय, अपनी कुछ शक्ति कहीं और——केवल... केवल अपने लिए सँजोना चाहती है तो उसकी यह बेहद स्वाभाविक माँग, जीवन के प्रति शैथिल्य और आदर्शों के प्रति उदासीनता क्यों मान ली जाए? यदि वह अपने विचारों में डूबी, किसी दूसरी दुनिया में उतरी, अन्यमनस्क——किसी दिन पति के थके माथे को सहलाना भूल जाए तो क्यों अपने को बार-बार कोसे! अपनी इस 'बेरुखी और स्वार्थ' के लिए अपने को कभी क्षमा न कर सके?

स्त्री के सम्मुख सामंजस्य और समन्वय के कितने विचित्र प्रश्न उठते हैं, उन पर विचार किया जाए तो लगेगा कि क्या इतनी छोटी-छोटी बातें भी जीवन को दिशा देने में सहायक या बाधक हो सकती हैं? पूरे सामाजिक ढाँचे में कौन-सा टुकड़ा कहाँ सही बैठेगा, यह जानना बड़ी बारीकी का काम है। जहाँ ज़रा भी ग़लती हुई कि टुकड़े आपस में रगड़ खा जाते हैं। उस रगड़ की खरोंच कभी नहीं जाती——फिर उस पर कितना ही निर्णयों का लेप लगाइए, कितना ही त्याग का पानी डालिए! पुरुष स्वभाव से ही नेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कितना भी उदार क्यों न हो, कितना भी सद्भाव क्यों न देना चाहे, स्त्री को--विशेषतः पत्नी को कभी भी मत और दृष्टिकोण की स्वाधीनता नहीं दे पाता। तर्क से समझाना चाहें, खीझ जाएगा, प्यार के अतर्क से मनाना चाहें, नाराज़ हो जाएगा। बहुत-बहुत सोच कर लगता है कि कुशल और हर तरह सफल गृहणी होने के साथ और किसी तरह की पूर्ण सफलता, अंतिम तृप्ति मिलनी कठिन है... बल्कि बहुत-बहुत कठिन है। शुरू ही में जब जीवन का दोराहा आता है तब बहुत अच्छी तरह सोच लेना चाहिए, समझ लेना चाहिए कि 'हम क्या चाहती हैं? हमारी चरम उपलब्धि किस ओर है?' एक राह अंगीकार करके दूसरी राह के फूलों का मोह छोड़ना ही पड़ेगा। यह चरम उपलब्धि की बात है वर्ना ज़िंदगी की कशमकश भी होती बड़ी प्यारी है--और उसी में तो हम-आप रहते हैं। कितने हैं जो कोई निर्णय ले पाते हैं। (यह फिर कविता की बात है--मोहक, भ्रामक और शिथिल!)

और हाँ! इससे मुझे ध्यान आता है कि स्त्रियाँ अक्सर कविता लिखती हैं या कवितामय गद्य। उसमें बिना सफ़ाई दिये वे पलायन कर पाती हैं, अपना दुख, कारण बिना समझाए, शब्दों में ढाल सकती हैं, अपने 'अप्राप्य' को भगवान या कोई अज्ञेय उलझन बना कर उसकी ओर बाहें फैला सकती हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि जो कुछ भी लिखा जाता है उसमें अनुभव और वास्तव तीन-चौथाई, व कल्पना की मात्रा एक-चौथाई होती है। आप कितना भी अपने पाठकों को बहलाने की कोशिश करें--जानते तो वे भी सब कुछ हैं ही। फिर भला लेखिका किस हिम्मत पर कहानी लिखे कार्य-कारण संबंध दिखाए और सबकी उँगली का इशारा अपनी ओर सहे? इस फिर वही आ खड़े होते हैं--परिवार का ढाँ और निजी स्वतंत्रता। उन्हीं लोगों बीच रह कर उन्हीं के बारे में लिख की हिम्मत नहीं हो पाती। आज साथ कर, कल कहीं चले जाना तो है नहीं।

विवाह के बाद लिखना बन्द कर का एक और कारण भी है। हर व्यक्ति लालसा होती है कि वह कुछ नया कर सके-कुछ क्रिएट कर सके! साहित्य-रचना निर्म की इस इच्छा को पूरा करती है। अक ही लेखक अपनी पुस्तकों व रचना को अपने भाव-शिशु कहते सुने जाते हैं विवाह के बाद यह इंस्टिक्ट मातृत्व सफलीभूत होता है। हर माँ के लिए उसे शिशु का जन्म अद्भुत, महत्वपूर्ण और बहु रोमांचकारी घटना है। सृजन की इ चरम तृप्ति के बाद साहित्य-सृजन की ओ से कुछ उदासीन हो जाना--समझा जा सक है। हर कवि, कवियित्री अपनी क कविता को उतना ही प्यार करते हैं जित अपने बच्चों को। (बहुत पहले मेरे पिताज कवि-नाम 'इन्दु' से कविता लिखा करते थे उनका वही नाम मुझे देना क्या मेरे तर्क पुष्टि नहीं करता?)

छात्र-जीवन में लिखना एक तरह छात्र-जीवन का ही एक अंग है। मैं समझत हूँ कि शायद ही कोई लड़की या लड़का ऐस होता हो जिसने १६ वर्ष से २२ वर्ष की आ में कभी कविता लिखने का प्रयास न किया हो यह आयु की माँग है। उस समय हम कवि ताएँ पढ़ते और कविताएँ जीते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवधि में 'हम' कुछ नहीं लिखते--हमारे काग़ज़ों पर शेली, निराला, मार्क्स और गोर्की की छायाएँ उतरती हैं। लेकिन तब की गीली धरती पर बिछे ये बीज, या कच्चे अंकुर कभी-कभी जूझ-जूझ कर जम जाया करते हैं और तब कविता हमें जीती है।

स्त्रियों के लिए एक तरह की दैविक मज़बूरी के अलावा और कोई मज़बूरी नहीं जो उनसे ज़बरदस्ती लिखवा ले। जीविका-उपार्जन, प्रतिस्पर्द्धा, प्रशंसा की लालसा--सब पुरुष ही के साथ काम कर पाती हैं। दैविक मज़बूरी का कोड़ा भी अक्सर दैनिक कर्त्तव्यों के हाथों में कसा-बँधा रह जाता है। जो थोड़ा बहुत लिखा जाता है उसमें भी अध्ययन, समय, स्वतन्त्रता और हिम्मत के अभाव में हज़ारों बेमेल रंग लग जाते हैं।

यह है वर्त्तमान परिस्थिति। आज की सामाजिक चारदीवारी में हम शिथिल पड़े हुए हैं लेकिन विश्वास है कि संस्कृति की गति हमें फिर गार्गी और लीलावती का युग प्रदान करेगी। कभी-कभी मन में बड़ी छटपटाहट होती है। लगता है कब हम आइन रैंड की तरह समाज-दर्शन का नया दृष्टिकोण दे सकेंगे; कब मार्गरीथा अलास्की की तरह राजनीतिक दर्शन में हलचल मचा देंगे; कब इज़ाडोरा डंकन की तरह निर्भीक अपने जीवन के पृष्ठ सबके सामने पलट सकेंगे; कब आएगा वह समय जब मार्गरेट मीड की श्रेणी के नृतत्वशास्त्री हो जाएँगे; कैथलीन विंसर बन कर इतिहास के सादे चित्र में असंख्य रंगों की भरमार कर देंगे और फ़ैंक्वॉय सागाँ की तरह....लेकिन जाने दीजिए--फ़िलहाल... ◉ ◉ ◉

पद्मा सुधि

●

■ जन्म : २ अक्तूबर, १९३८, प्रातः ४ बजे। ९ जीवित भाइयों और एक जीवित बहन के उपरान्त।

१९४२ के संग्राम में, अपने तीसरे भाई के साथ मैं हृषीकेश रही। १९४३ में भैया ने मुझे घर पर छोड़ दिया और स्वयं बम्बई पलायन कर गए। घर पर अजीब हाल था। चारों ओर अनियमितता, झगड़ा, मारा-पीटी और क्लेश-सा। जो भाई भी मौका पाता, वही मेरी पिटाई कर देता।

सात वर्ष तक जो घटना-प्राचुर्य-भरा जीवन रहा, वह भी वर्णनीय है, जिसको मैं अपनी आत्म-कथा में अवश्य लिखूंगी। घर की इस भीड़ में, जो भाइयों के विवाह के कारण बढ़ती जा रही थी, मैं ऊब रही थी। माता-पिता के कक्ष में ही मेरा शयन-स्थान था। बाबूजी शायर थे। कभी १२ बजे तो कभी १-२ बजे रात्रि को उठ कर माँ को जगा देते और माँ ऊँघते हुए उनकी शायरी सुनती थीं। शायद मेरे उपचेतन-मानस में, इसी काल में, कविता ने जन्म लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९ वर्ष की अवस्था में एक दिन छिप कर मैंने एक कविता बनायी। बाबूजी को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने मुझे बहुत पीटा। वैसे बाबूजी मुझे नाचने-गाने अथवा चित्र खींचने पर भी पीटते थे। किन्तु मेरा छिप-छिप कर गाना सीखने का क्रम चलता रहा था। बाबूजी ने पहले से ही घोषणा कर दी थी कि १० वीं तक पढ़ा कर तुम्हारा विवाह कर देंगे। मैंने डर कर अत्यधिक श्रम करना आरम्भ किया और कक्षा में सदा प्रथम अथवा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होती रही।

छठी श्रेणी में, मैंने गाँधीजी पर एक कविता लिखी। घर में जैनेन्द्र, अज्ञेय, प्रसाद, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि का साहित्य हमारे चौथे भैया को पढ़ने का बहुत शौक था। वह मेरे भी हाथ लग गया। महादेवी जी की कविताएँ पढ़ कर मैं, उनका आकार अपनी कल्पना में खींचती रहती थी। अर्थ तो बचपन में कुछ हाथ नहीं आते थे किन्तु कल्पना मन-गढ़न्त अर्थ निकाल ही लेती थी। कविताएँ बनती जा रही थीं किन्तु प्रयास बहुत अधिक करना पड़ता था। बाबूजी के डाँट का दौरा दिन में बार-बार पड़ने लगा। एक दिन चीख कर बाबूजी बोले--"घर से निकाल दूँगा अगर कविता-वविता लिखी। पता नहीं, कवियित्री को कितनी बदनामी मिलती है? सब लोग बुरी लड़की मानते हैं। कविता बन्द कर दो।" मैंने एक बार बाबूजी से पूछा कि क्या महादेवी जी को लोग बदनाम करते हैं जो मुझको कर देंगे? उसका उत्तर बाबूजी ने स्वीकारात्मक रूप में दिया। किन्तु उस समय मुझे यह सब झूठ लगा। मैंने बाबूजी को उत्तर दिया--"आप क्यों लिखते हैं? लोग आपको भी बदनाम कर देंगे। मैं आपको मना नहीं करती फिर आप मुझे क्यों मना करते हैं?" बाबूजी 'निराला' की भाँति अक्खड़ और क्रोधी थे--इसके साथ-साथ परोपकारी और स्नेही भी कम नहीं थे। मेरे इस उत्तर पर बाबूजी ने मुझे दुबारा पीट डाला। मैं पिटते-पिटते उद्दण्ड होती जा रही थी। बहुत हठी हो गयी थी। जो बाबूजी कहते थे, उसका उल्टा करती थी। बाबूजी मुझसे चिढ़ते जा रहे थे। इसी मध्य मेरी मित्रता एक ३५ वर्षीय महिला से हो गयी, जो मेरी कविताएँ सराहती थीं और लिखने को प्रोत्साहन देती थीं। १० वर्ष से २० वर्ष तक मैं उनके स्नेह की छत्र-छाया में पली।

११ वें वर्ष में मेरी कविताएँ 'धर्मयुग' के बाल-सखा-विभाग में निकलने लगीं। कुछ कविताएँ 'बालक' में भी निकलीं। १६ वर्ष के बालक-बालिकाओं के पत्र मेरे पास आने लगे। माँ ने और भाभियों ने उन अनजाने पत्रों के प्रति अपना आश्चर्य प्रकट किया। माँ के मुख से निकला--"हाय गजब हो गया! लड़की के पास लड़कों के पत्र आते हैं।" माँ की घबराहट से मैं बिलकुल विचलित नहीं हुई। संगीत की ओर मैं काफ़ी प्रभुत्व जमा चुकी थी। पास-पड़ोस और स्कूलों में काफ़ी प्रसिद्धि हो चुकी थी। संगीत के न्यौते आते थे और लोग मीरा के भजनों के लिए मुझे अपने संग ले चलते थे।

बाबूजी और सारे भाइयों की आँख का मैं काँटा बनती जा रही थी। बाहर से प्रसिद्धि और विजयोल्लास लेकर लौटती तो किसी को भी घर पर आकर प्रसन्नता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती। ये झगड़े ११ वर्ष की आयु से आरम्भ हो गये थे।

मैं बी. ए. आनर्स, संस्कृत में कर रही थी। नवयुवकों का एक झुण्ड मुझे परेशान कर रहा था। दृढ़-निश्चयी और हठी तो मैं बचपन से ही थी। मैंने उसी समय अपनी एक कविता में, इस परेशानी का समाधान ढूँढ़ा; जिसके बोल थे--'मैं अपने मन की प्रेयसी, मेरा मन मेरा प्रियतम'। इस पर कुछ विद्यार्थियों ने मीराबाई कह कर छेड़ना आरम्भ किया। एक दिन मैंने उनको बहुत समझा कर कह ही डाला--"तुम सब कृष्ण बनने की चेष्टा मत करो, मैं तो पद्मा सुधि हूँ।" यह उत्तर सुन कर कुछ तो दब गय और कुछ विरोधी बन गये जो यदा-कदा मुझ पर कीचड़ उछालने की चेष्टा करन लगे। कुछ नव-युवक कवि मेरे निर्धारित समय पर बस-स्टैण्ड पर जा खड़े होते। विद्यालय में कविता, संगीत और संस्कृत नाटकों में मेरी यथेष्ट ख्याति हो रही थी। एम्. ए. तक जितना अन्याय मुझको शिक्षा-क्षेत्र में सहना पड़ रहा था उतना ही अन्याय मैं साहित्य में भी भुगतती रही। किन्तु मन को एक आश्वासन था कि मैं एक केन्द्र पर स्थित हूँ जहाँ मुझको पूर्ण रूप से न्याय मिल रहा है।

मैं एक बहुत बड़े परिवार में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना रही हूँ जहाँ राई के पर्वत बना-बना कर मेरे ऊपर फेंक दिये जाते हैं। अब तो उनको ढोने की मैं आदी हो गयी हूँ। इधर बाहर के भी अनन्त विरोध एक संकटमय जीवन प्रस्तुत कर देते हैं। किन्तु मेरा साहित्य-सृजन जटिलता की ग्रन्थियाँ खोल देता है। प्रलोभनों से समाज भरा पड़ा है। किसी नारी पर आक्षेप करने के लिए समाज की जिह्वा पेशावर से लेकर कलकत्ते की ग्रांड ट्रंक रोड जितनी ही लम्बी है। किन्तु इसी रोड पर हमें अपने जीवन की गाड़ी चलानी है। शोषण और जटिलताओं को भुगतना है--केवल वीरांगना बन कर ही। वस्तुतः सौन्दर्य वही है जो अशिव और असत्य के प्रति संघर्ष करके भी कुरूप नहीं बन पाया। सबसे अधिक हितकारी है, सहिष्णु और क्षमाशील बनना।

अत्यधिक दुख अथवा अत्यधिक सुख के उपरान्त जब हृदय आत्मस्थ अवस्था में आ जाता है, उस समय ही मैं कविता लिख सकती हूँ। कविता लिखते समय मेरी कल्पना में बिम्ब उड़ते हैं और हृदय में अनुभूतियाँ। मस्तिष्क उस समय हस्तक्षेप नहीं कर सकता। यदि मस्तिष्क ने हृदय की अनुभूतियों पर चिन्तन करना आरम्भ कर दिया तो उस दिन मेरी कविता 'मानस-मन्थन' में परिवर्तित हो जाती है। उपन्यास अथवा गल्प लिखते समय मैं बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी स्थिति में समाधिस्थ होती हूँ। कविता लिखते समय केवल-मात्र अन्तर्मुखता रहती है। मानस-मन्थन अथवा चिन्तनशील साहित्य लिखते समय, ऊर्ध्वमुखता, अन्तर्मुखता का द्वार तोड़ कर अपना प्रभुत्व जमा लेती है। इन तीनों की पृष्ठभूमि होती है--सहिष्णुता, घर, बाहर और अपनी आत्मा के संग की हुई स्वयं की कठोरता के प्रति सहिष्णुता।

प्रकाशन की दृष्टि से भी मुझको निराशाजनक स्थिति में रहना पड़ा। मैंने कविता से कभी कुछ अर्जित करने की चेष्टा नहीं की। कविता से जो कुछ प्राप्त हुआ वह धन पुस्तकों के टाइप पर अथवा प्रकाशन में वरीयता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NUMBER
TEN
VIRGINIA

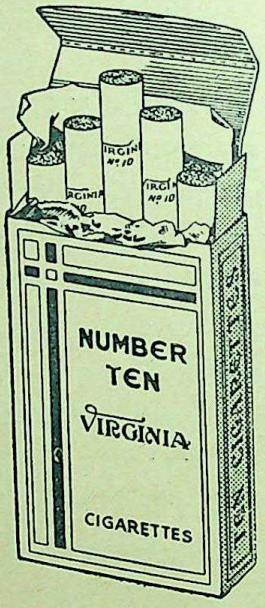

A tradition
in QUALITY

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाने के लिए व्यय कर दिया है। अपनी प्रथम पुस्तक में (भाव-लेखा, १९६०) 'आफ सेट पेपर' लगाने का अन्तर-व्यय मुझे ही करना पड़ा। ७ पुस्तकें अभी तैयार हैं--तर्जनी (उपन्यास), मानस-मन्थन (२ भाग, कविताएँ), कनीनिका (कविताएँ), बुक-शेल्फ (कहानियाँ), अलकनन्दा के साथ-साथ (यात्रा-संस्मरण), साहित्यिक-प्रबन्ध (उपनिषदों की पृष्ठभूमि पर बीस लेख)। किन्तु कुछ प्रकाशकों के जो-जो उत्तर मुझको प्राप्त हुए हैं उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि वे साहित्य को गौण और वित्त को प्रधानता देते जा रहे हैं। किसी पत्र-पत्रिका में भी प्रकाशन की दृष्टि से बहुत दिनों तक मैं 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के कोष्टक में ही बन्द रही।

नवोदित लेखिकाओं के लिए मेरा केवल यह सुझाव है कि वे साहित्य-सृजन करें किन्तु कीर्ति को 'शार्ट-कट' से प्राप्त करने का प्रयत्न न करें, अन्यथा वे चक्रव्यूह में फँस जायँगी। साहित्य को प्रकाशित करवाएँ किन्तु आत्म-प्रकाशन के माध्यम से नहीं। साहित्य के ऊपरी सौन्दर्य और उसके द्वारा धन-अर्जित करने के उद्देश्य से, साहित्य में प्रवेश नहीं किया जा सकता। उसके लिए शक्ति और विवेक की आवश्यकता है। शक्ति होगी तो सहिष्णुता होगी और विवेक होगा तो आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास अनमनीय होगा। साहित्य में सर्वहित और सर्वसुख, आत्म-त्याग और संवेदना से प्राप्त होता है। इसके लिए, लेखिकाओं को सबसे अधिक अन्तर्मुखी रहने का गुण लाभान्वित कर सकता है। अपने आदर्शों की सुरक्षा के लिए अपने सारे सुखों का मूल्य चुका कर भी प्रयत्नशील रहना होगा। साहित्य में एम. ए. पी. एच. डी. के सोपान द्वारा चढ़ना ठीक नहीं है। आत्मा की द्रवणा-शक्ति और समरसता ही साहित्य-सोपान है। प्रताड़नाओं और अपमानों का समाधान देने में हमारा साहित्य ही उत्तरदाता हो--जहाँ,

'कवियन बीच बैठि बैठि लोक-लाज खोई,
अँसुवन-जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई--'

जैसी तन्मयता और विश्वास हो। ●

विमला राजेन्द्र

■ हमारा मन परिवेश के अनुकूल बन जाय या परिवेश ही कुछ मन के अनुकूल बन जाय--दोनों बातें सम्भव हैं, सत्य हैं। एक हुआ यथार्थवाद और दूसरा आदर्शवाद। दोनों का झगड़ा कम पुराना नहीं है और दोनों के पक्ष-विपक्ष में तर्कों की भी कमी नहीं है। हाँ, एक विचार है जो स्पष्ट समझ में आता है और जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भले परिवेश मन के अनुकूल बनता हो (यद्यपि यह कठिन है; सारे संघर्षों, उत्सर्गों, निराशाओं की कहानी इसमें अंचित है) किन्तु परिवेश के अनुकूल मन का बन जाना ही अधिक देखा जाता है। हमारे फड़फड़ाते, कोशिश करते हुए मन का परिवेशों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

FOR ALL SORTS OF

DEISEL ENGINES, STONECRUSHERS
GRANULATORS LATHES, ALLIED
MACHINE TOOLS, PUMPING SET
SPARE PARTS FOR DEISEL OI
ENGINES, JAWS AND OTHER SPAR
PARTS FOR STONECRUSHERS AN
GRANULATORS ETC. ETC.

please write, ring or call at

**General Machinery & Electrica
Stores Private Ltd.**

**138, CANNING STREET,
CALCUTTA-1.**

SHOW ROOM
AT
**133, CANNING STREET,
CALCUTTA-1.**

Phone : { Show Room : 22-1552 & 22-8566
Main Office : 22-1578

Gram : "KISANMASD

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ-पैर काटा जाना एक अधिक नित्य घटना है। परिवेश की व्यथा अनन्त है।

नारी होने के नाते बाहर नौकरी करने वाली महिलाएँ भी, गृह-विधान में पुरुष से अधिक उत्तरदायी हैं (बात हमें अपवादों को छोड़ कर करनी है)। स्वभावतः परिवार उनके अधिकतम ध्यान का केन्द्र हो जाता है। परिवार और प्रेम को अलग कर देखना, मैं समझती हूँ, ठीक नहीं। प्रेम नहीं, तो परिवार क्या और कैसे? और परिवार के ही सदस्य-विशेष या सदस्यों से प्रेम होता है। क्वाँरा प्रेम भी परिवार के व्यक्ति से और परिवार में जुट जाने के लिए होता है। तो यदि परिवार के साथ लगा-लिपटा प्रेम भी (अधिकतर दाम्पत्य, साधारणतः अन्य प्रकारों का भी) नारी के ध्यान का बिंदु हो जाय तो कुछ भी अस्वाभाविक नहीं। रही बात विविध क्षेत्रों से विषय-चयन की हिचकिचाहट की। इसके सम्बन्ध में कुछ प्रश्न उभरते हैं--क्या यह हिचकिचाहट सचमुच में होती है? यदि होती ही है तो व्यक्ति की रुचि, क्षमता उससे संबद्ध हैं या नहीं?

मेरे ख्याल से, अधिकांश लेखिकाओं को यह हिचकिचाहट नहीं होती। रुचि और क्षमता से वे अपना क्षेत्र निर्धारित कर लेती हैं। कदाचित् परिवार को देखने के इतने दृष्टि-बिंदु हैं कि सबसे क्रमशः देखने पर भी उनकी विविधता, विचित्रता समाप्त होने वाली नहीं है।

लेखिकाओं द्वारा चुनी जाने वाली विधाएँ भी उतनी ही विविध हैं, जितनी वे स्वयं। जिस पर हाथ जम जाए और जो समय के अनुकूल पड़ जाये। हाँ, विधा-प्रयोग अवश्य लेखिकाओं में कम पाया जाता है। और इसके लिए हम कई कारण खतिया सकते हैं--आवश्यकता, रुचि, क्षमता तो हैं ही। सबसे बड़ा कारण दिखता है--अवकाश की कमी। किसी भी तरह के नए प्रयोग के लिए व्यक्ति जिस आत्म-झंझावात् से गुज़रता है, उसे थहराने के लिए अवकाश और धैर्य चाहिए। कुछ को छोड़ अधिकतर लेखिकाएँ अवकाश कम पाती हैं। इस अवकाश की प्राप्ति और उत्तरदायित्व से भार-मुक्ति (कुछ योग्यता-प्रदर्शन की वृत्ति भी) ही है, जिससे छात्र-जीवन में महिलाएँ लिखने का उत्साह रखती हैं। विवाह के बाद यह परिवेश बुरी तरह हावी हो जाता है। गृह-संचालन हुआ, परिवार का, अपना स्वास्थ्य-अभियोजन हुआ, आर्थिक संकट हुआ, दाम्पत्य असंतुलन हुआ--इनके चलते जब मन के बंधन ही ढीले पड़ने लगते हैं तो साहित्य-सर्जन की बात कोसों दूर जा पड़ती है। और यदि परिवेश अनुकूल रहा तो जिजीविषा दूनी हो जाती है, गृह-संयोजन महनीय बन पड़ता है। रचनाएँ अब प्राइवेट नोटबुक या डायरी से निकल कर पत्र-पत्रिकाओं में तेज़ी से जाने लगती हैं। कहीं लेखक-पति मिल गया तो उसका प्रोत्साहन अपूर्व सिद्ध होता है। या ऐसे किसी लेखक-व्यक्ति से परिचय भी कम महत्व नहीं रखता। प्रकाशक-सम्पादक से भी दोनों ही अवस्थाओं में परिचय का क्षेत्र बढ़ने लगता है। यानी उचित संयोग पाकर यदि रचनाएँ अधिकाधिक प्रकाशित होने लगें तो इसमें आश्चर्य ही क्या, उससे भी अधिक, बुराई ही क्या? रुचि, प्रोत्साहन और सफलता मिल कर आत्म-विश्वास पैदा करते हैं। आत्म-विश्वास यद्यपि आत्मिक दृढ़ता पर निर्भर करता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SHREE VISHNU STORES

★

10, JACKSON LANE, CALCUTTA-1.

★

Distributors of :

THE TITAGHUR PAPER MILLS CO. LTD.
THE BENGAL PAPER MILLS CO. LTD.
ROHTAS INDUSTRIES LTD.
ORIENT PAPER MILLS LTD.

★

Also Stockists of :

ALL KINDS OF PAPERS
AND BOARDS

★

Phone :
Office : 22-7127
Resi : 33-3937

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी एकाएक कहीं ऊपर से आ नहीं टपकता।

पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाली लेखिकाएँ अपने परिवार की शुभाशंसा, अपनी रुचि का बल पाकर कष्ट सह कर भी व्यस्तता के कुछ क्षणों को उठा कर साहित्यार्चन को अर्पित करती होंगी और अपनी इस आस्था के लिए वे सचमुच धन्यवाद की पात्र हैं कि कोई चक्र रुकता नहीं और कोई चक्र किसी चक्र से टकराता नहीं। ० ० ०

मी
रा
मानिकवाला

●

■ 'नवोदित लेखिकाएँ अंक' में आज की लेखिका की लेखन-सम्बन्धी कठिनाइयों के विषय में जो परिचर्चा आप आरम्भ कर रहे हैं, उस विषय में कुछ कहना चाहती हूँ--क्योंकि आपने इस परिचर्चा में जो प्रश्न उठाये हैं वे काफी महत्वपूर्ण हैं। यह सत्य है कि आज की नवोदित लेखिका के समक्ष लिखने की कई कठिनाइयाँ हैं--बल्कि इसे यों कहें कि वस्तुतः 'लिखने' की कठिनाइयाँ कम हैं और लेखन की ओर प्रवृत्त होने की ही कठिनाइयाँ अधिक हैं। लेखन में जिस तटस्थता, संयम, तपस्या व साधना की अपेक्षा होती है, आज की नवोदित लेखिकाओं में उसका अभाव है। अधिकांश लेखिकाएँ जो भी लिखती हैं उसे वे प्रकाशन के योग्य ही मानती हैं किन्तु लेखन एक पेशा नहीं, साधना है। उसके लिए पर्याप्त समय और पर्याप्त संयम की आवश्यकता है। और कुछ कथनीय कह सकने के लिए धैर्य के जिस विपुल भण्डार की इस साधना के लिए आवश्यकता होती है वह नारी हृदय में आज नहीं है।

फिर आज की नारी लिखे क्या? अपना कौन-सा निजी अनुभूत सत्य? किस परिप्रेक्ष्य में वह स्वयं को देखे? प्रेम और विवाह के बिन्दुओं के गिर्द घूमता आज की सामान्य नारी का जीवन, उसे चिन्तन की कितनी भूमि और लेखन के कितने अवसर प्रदान करता है? सृजन--चिन्तन का परिणाम होता है और चिन्तन--अध्ययन का, अध्यवसाय का। पर्याप्त अध्ययन-मनन के अभाव में सृजन भी अधूरा रहता है। और विचारणीय प्रश्न यह है कि आज की पढ़ी-लिखी नारी के जीवन-क्रम में, एम. ए. की परीक्षा देने तक के समय में--उसकी चिन्तन की भूमि की कितनी निराई हो पाती है--अध्ययन के कौन-से क्षितिजों को वह छू पाती है? आज लेखन के क्षेत्र में नारी-लेखिकाओं के उभर कर न आ सकने की कमी उनमें सृजनात्मक प्रतिभा की कमी नहीं बल्कि पर्याप्त चिन्तन, मनन और अनुभव की परिपक्वता का अभाव है--क्योंकि लेखन केवल अवकाश की देन नहीं है, चिन्तन और अभ्यास की वीथियों से गुज़र कर ही अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसोई

वनस्पति

भोजन बनाने का उत्कृष्ट साधन

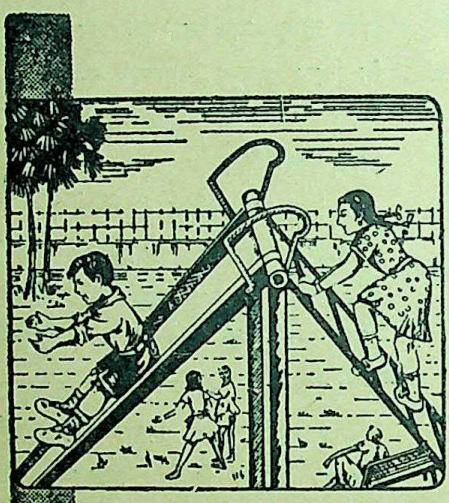

विटामिन से परिपूर्ण

विशुद्धता और
कारखाने की ताजगी

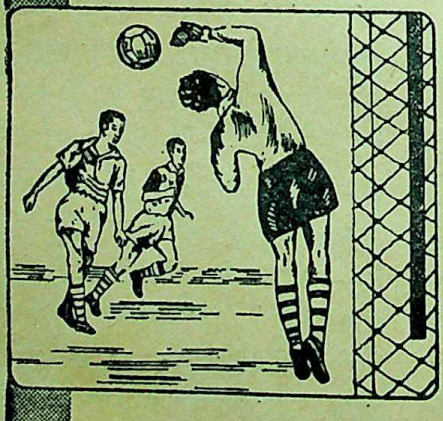

हिन्दुस्तान डेवलपमेन्ट कारपोरेशन लि०

मैनेजिंग एजेंटस :

तालुकदार लौ एण्ड कं० प्राइवेट लि०

हिन्दुस्तान बिल्डिंग्स

चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-१३

टेलीफोन नं० : २३-११६१ (५ लाइन)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सशक्त अभिव्यक्ति पाते हैं।

इसके अतिरिक्त, नारी आज स्वतन्त्रता के कितने ही ऊँचे नारे लगा ले—वह अब भी प्रकाश में आने से डरती है। यशःप्रार्थी लेखिकाओं की कमी नहीं है, किन्तु मध्यवर्गीय परिवार की सामान्य बाला—सम्पादक को अपनी रचना भेज कर स्वयं को उतनी निश्चिन्त नहीं समझती जितना कि आज का पुरुष-लेखक। कई लड़कियाँ आज भी छद्म नाम से लिखती हैं। इसके अतिरिक्त उसे सबसे बड़ा डर रहता है कि उसकी रचना 'अस्वीकृति' की स्लिप के साथ कहीं लौट न आये। यद्यपि इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं फिर भी इस डर के आघात को सहने लायक हृदय उसके पास नहीं। रचना को बार-बार लिखने और सुधारने की बात तो दूर—अस्वीकृति की एक ही चिट को देख कर उसके लिखने के सब स्वप्न धराशायी हो सकते हैं।

क्षमा करें—एक कारण और भी है और वह यह कि पत्रिका तक पहुँचने का माध्यम सम्पादक होता है। कई सम्पादक लेखिकाओं को उतनी तटस्थता और निर्पेक्षता से उत्तर नहीं देते—जितने तटस्थ होकर वे पुरुष-लेखकों को देते हैं। सम्पादक की लेखिका में किंचित-सी रुचि भी उसके झिझक और संकोच का कारण बन जाती है। अस्वीकृति का डर, नाम का प्रकाशन और सबसे बड़ी झिझक निजी अनुभूति के उद्घाटित हो जाने की। सम्पादक के लिए, समाज के लिए जितना महत्व उस रचना का है, कथ्य का है—उतना स्वयं लेखिका का नहीं होना चाहिये।

गृहस्थी में आपात् निमग्न प्रतिभाशालिनी नारी के सृजन (मेरा मतलब साहित्य-सृजन से है) की समस्या सबसे ज्वलन्त है। मेरी एक मित्र है जिसकी रसोई की एक ताक लिखने-पढ़ने के पूर्ण सामान से सुसज्जित है। सब्ज़ी बन जाने की प्रतीक्षा में बैठी-बैठी, बीच-बीच में एक-दो बार चम्मच से सब्जी को हिलाती हुई, वह कहानी लिखा करती है। हम लोग इसे किस रूप में ग्रहण करें? इस मनस्ताप और पीड़ा और गृहस्थी के चुराये हुए इन क्षणों में कौन-सा अमर साहित्य रचा जा सकता है?

और आज जितनी भी नारी-प्रतिभाएँ इस क्षेत्र में प्रकाश में आयी हैं, अधिकांश किसी न किसी का सम्बल लेकर (यद्यपि प्रत्येक लेखिका इसका विरोध करेगी)। अपवाद भी हैं अवश्य, लेकिन आज हिन्दी साहित्य के इतने स्पर्धित युग में, अपने अधकचरे अनुभवों के आरम्भिक सृजन लिये, नवोदित नारी के खड़े होने की ठोस भूमि भी कहाँ है? हिन्दी के ऐसे उद्भट विद्वानों, नवीनतम शैलियों, प्रौढ़ अभिव्यक्तियों के बीच आने का साहस करना ही बहुत बड़ी दृढ़ता की माँग करता है!

एक प्रश्न उठता है—आज की प्रतिभाशालिनी नारी की प्रतिभा के रचनात्मक-स्वरूप का। वह स्वरूप—पाक-शास्त्र में जितनी अभिव्यक्ति माँगता है उतनी ही आज के फ़ैशनों में भी अपना योग देने की। सबसे बड़ी बात है कि आज की नारी के पास फ़ुर्सत ही कहाँ है कुछ लिखने की, क्योंकि प्रतिभा को अभिव्यक्त, रचनात्मक रूप देने का केवल एक ही माध्यम नहीं है। विचारों के गूढ़ विश्लेषण के लिए उसके पास न अवसर है, और न प्रेरणा। आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RELIABILITY

WHAT DOES IT MEAN ?

A dictionary will show.....reliability (re-li-a-bil'i-ti) n. The state of being trustworthy and able to be leaned upon with confidence. The quality of being capable of satisfying with integrity. Dependability.

YES

We offer the reliability—on the basis of our long experience—at competetive rates with technical cooperation .....

Bhagvandas Maganlal Shah

Specialists in :

DYES & CHEMICALS

4, MANDIR STREET,

CALCUTTA-7.

Gram : FILDCAMERA.

Phone . 34-576
Resi. — 47-193

SERVICE BEFORE SELVES TO THE INDUSTRIES

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप-सज्जा पर उसकी रचनात्मक प्रतिभा का जो व्यय (या कि अपव्यय) होता है वह उसके लिए आज साहित्य-सृजन से अधिक आवश्यक हो गया है।

अन्य बहुत-से कारण हैं किन्तु एक जो सबसे महत्वपूर्ण है, जिसके बिना चिरन्तन साहित्य की सृष्टि का स्वप्न देखना मिथ्या है, वह है अतुल संयम के साथ विचार, मनन-गुनन की साधना। निरन्तर अभ्यास, और कुछ दे सकने की, समाज को कोई नई उपलब्धि प्रदान कर सकने की अदम्य प्रेरणा। और इतना तो आप भी मानेंगे कि आज की लेखिका के पास उसका पूर्ण नहीं तो काफी अभाव है। हो सकता है कि आप मेरे विचारों से पूर्ण सहमत न हों, पर यह विषय तो है भी बैठ कर एक दूसरे से विचार-विनिमय करने का। प्रत्येक की राय सर्व-सम्मत हो ही यह आवश्यक नहीं होता। फिर भी कहीं कुछ अनुचित लगे तो अज्ञता के लिए क्षमा चाहती हूँ। ● ● ●

कुमारी राधा ●

■ मैं परिपत्र के परिचर्चा सम्बन्धी प्रश्नों की लीक पर ही अपनी बातें कहूँ--

हिन्दी लेखिकाओं का सामाजिक परिवेश ही उनके लेखन विषय की इतनी अधिक सीमितता का कारण है। परिवार और प्रेम के अतिरिक्त अन्य विषयों को लेकर साहित्य-सृजन करने पर लांछित किये जाने के भय से वे अधिकतर संग्रस्त हैं। यह लांछन प्रेम को विषय बनाने पर भी मिलता है और इसीलिए वे अन्ततः आदर्शोन्मुखी रहती हैं और प्रचलित धारणाओं को मंडित करती हैं उन्हें खंडित नहीं कर पातीं, और नवीन मूल्यों को प्रतिष्ठित नहीं कर पातीं। इस प्रकार के खंडन से उनके चरित्र पर आक्षेप-अभियोग लगा दिये जाते हैं, क्योंकि पाठकों की यही मनोवृत्ति है कि प्रत्येक लेखन में लेखक या लेखिका का निजी चरित्र ही वर्णित होता है, यद्यपि सर्वथा यही सत्य नहीं होता।

अधिकांशतः लेखिकाएँ कहानियाँ लिखती हैं या कविताएँ, क्योंकि अन्य विधाएँ अधिकतर श्रम-साध्य, समय-साध्य, चिन्तन-साध्य, अध्ययन-साध्य और प्रवेग-साध्य होती हैं और हिन्दी लेखिका अल्प-श्रम, अल्प-चिन्तन, अल्प-अध्ययन तथा अल्प-प्रवेग से ही यश प्राप्त करना चाहती है। इन अल्पताओं का कारण भी सामाजिक परिवेश ही है; परिवार-व्यवस्था है, लांछन-भय है। अधिकतर परम्परावादी शिल्प में लिखने और नये-नये प्रयोगों से बचने के मूल में भी, कारण उपर्युक्त ही हैं। इसके अतिरिक्त एक और कारण है--सहज जी लेने की वृत्ति या प्रवृत्ति। लेखिकाएँ छात्र-जीवन में प्रायः स्वतन्त्र रहती ह; वात्सल्य और अपयश के भय की उत्पादक कारिकाओं का साहित्य उन्हें यह स्वतन्त्रता देता है। किन्तु विवाह के उपरान्त पारिवारिक बंधन, गृहस्थी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलोग्राम में खरीदिये

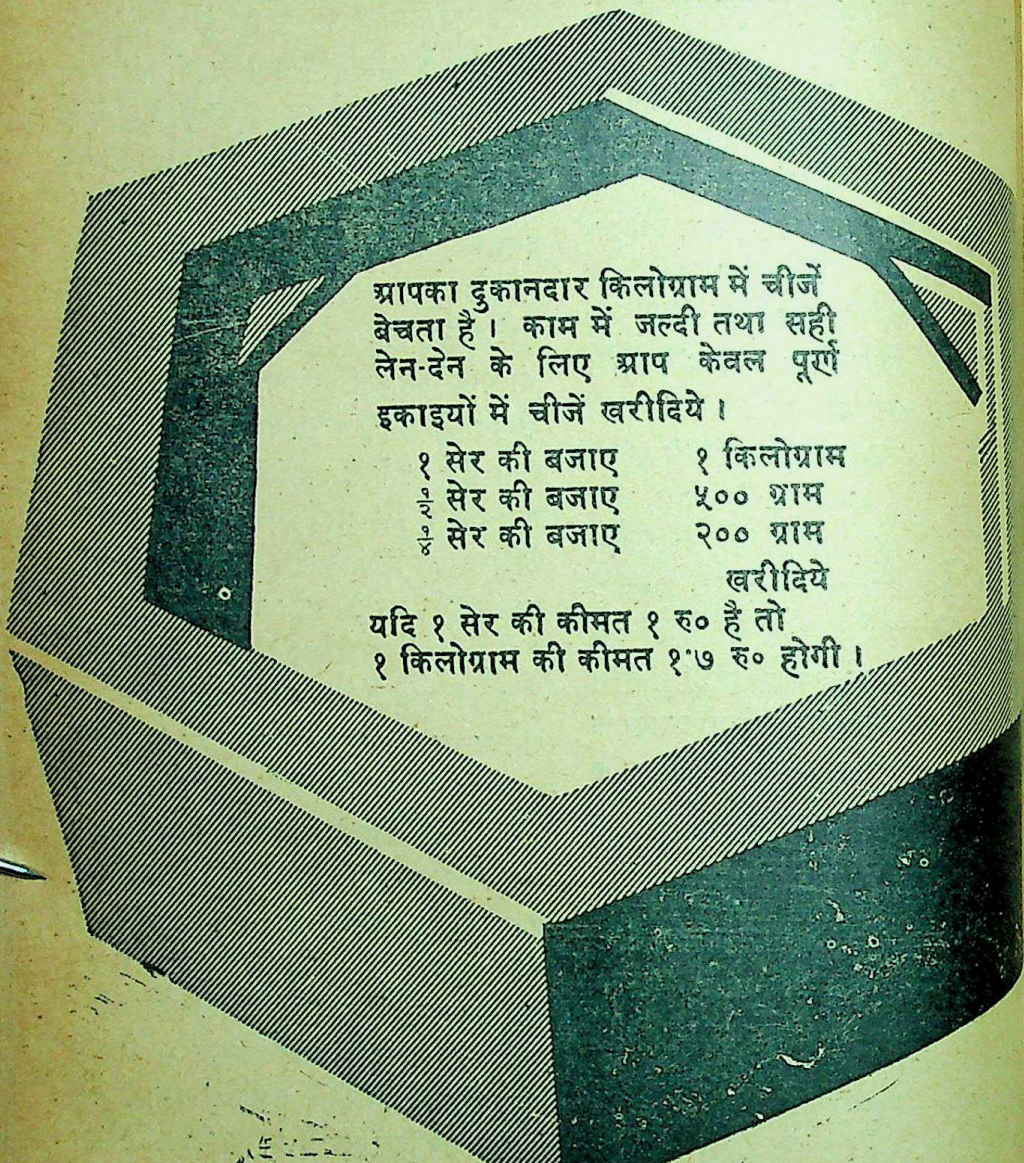

मेट्रिक तौल

सरलता व एकरूपता के लिए

भारत सरकार द्वारा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य और उत्तरदायित्व बढ़ जाते हैं।

यह सही है कि प्रारम्भ में वे जो कुछ भी लिखती हैं उसे पत्रिकाओं आदि में भेजने में झिझकती हैं और दूसरों को दिखाने में भी संकोच करती हैं। प्रारम्भ में ऐसा लगता है कि कहीं यह कुछ बन पायी या नहीं; और जो ग़लत-सलत कुछ हुआ तो लोग खिल्ली उड़ायेंगे। होता भी यही है। और भी अनेक तरह की बातें उठती हैं। ऐसी भ्रमात्मक और अवांछनीय कि उनकी चर्चा भी अनावश्यक लगती है। यह सब प्रतिफलित होता है आगे बढ़ कर समाज द्वारा अपमान, असम्मान, लांछन और अभियोग-आक्षेप के रूप में। परिवार के लोग भी विमुख होते हैं और अन्ततः बेचारी लिखना छोड़, चुप हो जाती है। हाँ, जब नयी लेखिकाओं के बन्धुओं, हितुओं या अपनों में से कोई प्रतिष्ठित लेखक या सम्पादक आदि होता है तो वह उसे प्रोत्साहित करता है, उसे अपकीर्ति से बचाता है, विपरीत परिस्थितियों में उतरने से रोकता है और फल यह होता है कि वह पूर्ण आत्मविश्वास से लिखने लगती है। लेकिन जिनके साथ ऐसा कुछ नहीं होता उन्हें उपर्युक्त स्थिति का हो भागी बनना पड़ता है या लिखने की बात भी सोचनी छोड़ देनी पड़ती है।

मैं पहले कुछ नहीं लिखती थी। एक दिन एक मित्र से पूछा कि वे कविताएँ आदि कैसे लिख लेते हैं। उन मित्र ने मुझे कुछ नहीं बताया। हाँ, बाद में उन्होंने मुझे पढ़ने को पुस्तकें दीं। विभिन्न प्रतिष्ठित लेखकों के बारे में बताते रहे और मेरा मानस गढ़ते रहे। एक दिन मैंने कौतुक-वश एक कविता लिखी। वह छप गयी। एक कहानी लिखी, वह भी छप गयी। फिर लिखती ही गयी और अब तो एक पुस्तक छप भी गयी है, अन्य छपेंगी भी। हाँ, मुझे प्रचलित लोकधारणा का शिकार अवश्य ही होना पड़ा है और अब भी सुनना पड़ता है कि यह क्या लिखेगी! इसमें संस्कार ही नहीं हैं। और भी बहुत कुछ। किन्तु समय सिद्ध कर ही देगा। बात रही प्रकाशन की। तो मैं अभी तो भुगत ही रही हूँ। 'धर्मयुग', 'कल्पना', 'ज्ञानोदय', आदि से भी मेरी रचनाएँ लौटी हैं।

तब क्या हो?

१--नयी लेखिकाएँ सृजन करती चलें। जीवन के विविध क्षेत्रों का अनुभव, ज्ञान और मनोभाव उपलब्ध करें। अपने अन्दर लेखन की अदम्य आकांक्षा जागृत करें। नये-नये प्रयोग करें। श्रम, समय, चिन्तन, अध्ययन और प्रवेग अर्जित करें। परिवार को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करें।

२--लेखिकाओं का एक निजी संगठन बने जो उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में सहायता दे। उनकी समस्याओं को सुलझाने के उपाय सोचे, उनके प्रकाशन की सुविधाएँ गढ़े और उन्हें विरत या अपघातिनी होने से बचाता चले। ऐसा कोई संगठन इस देश में है, इसका मुझे ज्ञान नहीं।

३--सम्पादक, प्रकाशक और साहित्यकार बन्धु अपने मनोभाव बदलें और इस युगापेक्षा को अपूरित रहने से बचाने को सद्प्रवृत्त हों। वृथा या अन्यथा आचरण श्रेयस्कर किसी भी तरह नहीं है।

४--इस सम्बन्ध में विद्रोह, प्रतिक्रियाओं को जन्म देगा; अतः इससे बचा जाये। जीवन के अन्य क्षेत्रों में महिलाएँ आगे बढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

OUR
HAPPY
GREETINGS
TO

GRAM : STEELCO
PHONE : 22-4492

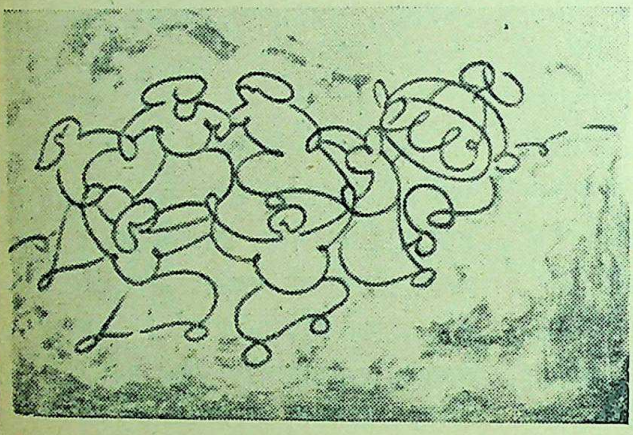

UNITED BROTHERS

29, STRAND ROAD,
CALCUTTA-1.

MODERN
WOMEN
WRITERS

Leading house for :

PIPES
PIPE FITTINGS
SANITARY FITTINGS
&
GUN METAL FITTINGS
also for
Steam & Water Purposes.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हैं--तमाम विरोधों, अपकीर्तियों के बावजूद ; तो साहित्य या कला-सृजन के क्षेत्र में यह जागृति या संचरण क्यों नहीं हो ?

५--आवश्यकता इसी बात की है कि लेखिका स्वयं को ही इतनी स्वयंसिद्ध बनाये कि परिस्थितियाँ अनुकूल हो जायें। ●

शो
भा
डोगरा

●

● जिन दिनों मैं स्कूल में भर्ती हुई, जम्मू के स्कूलों में गुरुमुखी और उर्दू पढ़ाने का रिवाज़ था। परन्तु मेरे पिता ने हिन्दी पढ़ाने वाले स्कूल में भर्ती किया, क्योंकि उन्होंने मुझे नागरी वर्णाक्षरों से ही विद्यारम्भ कराया था। उस स्कूल में मेरे संस्कृत और हिन्दी के गुरु थे पण्डित रघुनाथ शास्त्री; इन्होंने ही मुझे मैट्रिक तक ये दोनों विषय पढ़ाए।

इन्हीं की कृपा से मुझे हिन्दी-साहित्य में अभिरुचि उत्पन्न हुई। वे मुझे ठोस विषयों पर अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए दिया करते थे। फलस्वरूप मैं अपनी कक्षा में, हिन्दी में बहुत तेज़ समझी जाने लगी और लोगों को बराबर यही बात दुहराते देख कर मुझे इसका गुमान भी हो गया। और मैं प्रयत्न-पूर्वक कुछ लेख लिखने लगी।

'प्रभाकर' पास करने के बाद मेरी छोटी-छोटी रचनाएँ छोटी-छोटी मासिक पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। इसका श्रेय भी शास्त्री जी को ही है, क्योंकि वही जिस किसी अपने मित्र-सम्पादक के पास भेज देते थे, वही प्रकाशित कर देते थे।

अस्तु, निबन्ध-रचना की कल्पना मेरे भीतर निरन्तर दृढ़ होती गयी। फलतः किसी विषय पर निबन्ध लिखने के पहले उस विषय पर प्रकाशित पुस्तकें पढ़ कर "कहीं की ईट कहीं का रोड़ा" करके भानमती अपना कुनबा जोड़ने लगी थी।

मेरे लेखन-क्रम में इस तरह का ऊहापोह अभी चल ही रहा था, कि मेरे विवाह की बातें परिवार में होने लगीं।

विवाह के बाद परिवार बढ़ने लगा। देवरों की बड़ी भाभी के रूप में घर का सारा बोझ आ पड़ा। सास के न होने के कारण परिवार में खो-सी गयी।

और तब भूल गयी राग रंग.....बस याद रह गयी नून, तेल, लकड़ी। अब कुछ भी लिखने बैठती हूँ तो घर की समस्याएँ लिखने नहीं देतीं। यदि अधिक समय लगा कर अच्छा लिख भी लूँ तो प्रकाशित कहाँ हो ? आजकल के प्रकाशक तो कहानियाँ चाहते हैं, और वह भी या तो सिद्धहस्त लेखकों से या अपने गुट के मित्रों-परिचितों से। मैं किस गुट को खोजूँ ? इसलिए अकस्मात लेखन बन्द-सा हो गया है।

लिखने का प्रबल हार्दिक प्रवाह और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

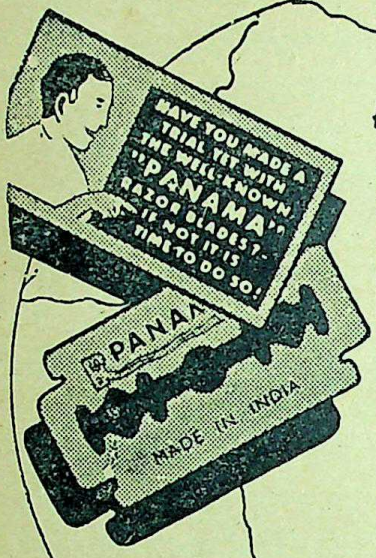

ALL OVER THE COUNTRY
MILLIONS USE
PANAMA
FOR A CLEANER, SMOOTHER
SHAVE!

☆ TO ENHANCE YOUR SHAVING COMFORT

PANAMA
Safety Razor
BLADES

Sole Agents for :

CALCUTTA : BOMBAY : MADRAS : KERAL :
MYSORE : ANDHRA

Lala Gopikrishna Gokuldoss

119, MINT STREET, MADRAS-1.

Bombay Branch :

11, WESTERN INDIA HOUSE,
Sir Pherozshah Mehta Road.

Phone : 3275, 55132 ESTED : 1887 Gram : JHAVE

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने लेख न छपने वाली कठिनाई की विशाल चट्टान ने आपकी इस नव-लेखिका को उदित ही नहीं होने दिया।

विमल वेद

• परिचर्चा के रूप में एक बड़ा ही मधुर क्षेत्र मिला है मुझे, जिसमें मैं अपने अनुभव के कुछ कड़वे-मीठे तत्व प्रस्तुत कर रही हूँ।

परिवार और प्रेम, वास्तव में इन दोनों विषयों पर ही मेरी लेखनी ढंग से चल सकी है, कारण कि यह क्षेत्र जाना-पहचाना है, इसका साथ रात और दिन का है, इसके बाहर देखने का समय भी नहीं मिल पाता, न साहस ही होता है। अपनी स्वयं की निर्बलताओं के कारण सीमा के जो बन्धन मैंने अपने चारों ओर बाँध लिये हैं उन्होंने वास्तव में ही कलम को जीवन के दूसरे क्षेत्रों की ओर नहीं मुड़ने दिया। आज तो यही सोचती हूँ कि इस दायरे से बाहर निकल कर यदि मैं भी जीवन के उतार-चढ़ावों को देख-परख सकूँ तो क्या मेरी क़लम में एक मोड़ नहीं आ सकता, मेरे लेखन का क्षेत्र विस्तृत नहीं हो सकता? मेरी यह निर्बलता कदाचित् उन सभी लेखिकाओं की निर्बलता है जिन्हें अपने परिवार, अपने पति और अपने बच्चों की सार-सम्हाल में ही अपने को डुबाये रखना पड़ता है।

जहाँ तक प्रश्न नये प्रयोगों का है, वहाँ सबसे अधिक आवश्यकता है पठन की, मनन की। संसार के साहित्य की गतिविधियों से परिचित हुए बिना शिल्प के नये-नये प्रयोग कर सकना नितान्त असंभव है और मेरा अपना अनुभव यही है कि हम, जो बँधी-बँधायी एक ही दिशा में लिखती चली जाती हैं वह इसलिए कि हम पढ़ती नहीं, मनन नहीं करतीं।

जब सांसारिक जंजालों में फँसना पड़ता है तो पठन-पाठन का यह क्रम छूट जाता है, इसलिये कि जीवन में जब नया साथी प्रविष्ट होता है और वह पत्नी को मात्र 'पत्नी' ही मानकर रखना चाहता है तो कितनी ही होनहार लेखिकायें खिलने से पहले ही मुरझा जाती हैं। जो दृढ़ होती हैं, जिन्हें अपने पर विश्वास होता है वे इस स्थिति से टक्कर अवश्य लेती हैं, पर इसका परिणाम एक ही होता है, उनकी पारिवारिक सुख-शान्ति प्रायः भंग हो जाती है, और यदि भाग्य से पति भी साहित्यिक रुचि वाला मिल जाता है तो कहना न होगा वे पूरी लगन और विश्वास से इस क्षेत्र में आगे बढ़ जाती हैं। अपने परिचित-मित्र चाहे कितना ही प्रोत्साहित क्यों न करे, हर स्त्री की आकांक्षा यही होती है कि वह अपने पति से प्रोत्साहन पाये।

चार उपन्यास प्रकाशन के लिए स्वीकार करवा लेने पर भी हमें क्या मिल पाता है? न यश, न मान, इस स्थिति से कभी-कभी बड़ा दुख होता है, क्षेत्र सीमित होने पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Builders & Architects Recommend

ALBION FLUSH DOORS

Block Boards, Laminated Boards, Plywoods

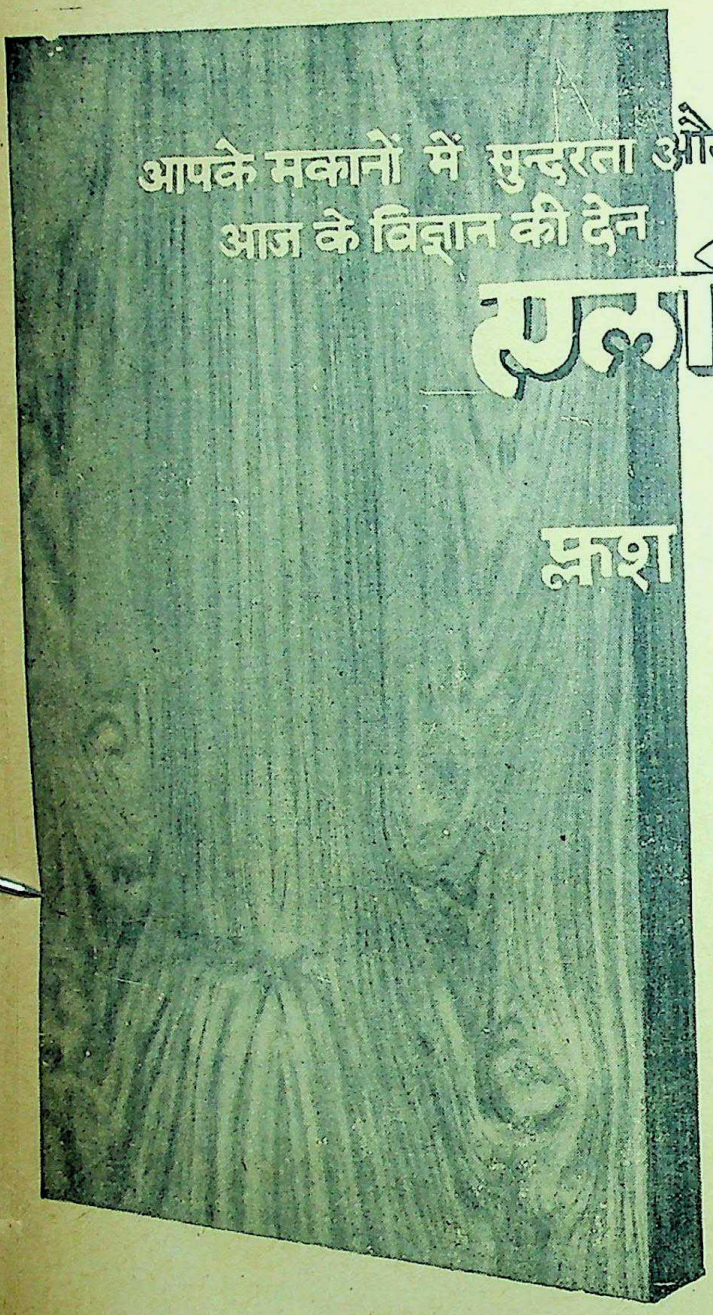

ALBION FLUSH

ALBION

FOR ALL YOUR
REQUIREME
PLEASE CONT

INDUSTRIAL SUPPLIERS

13, Dalhousie Square, Calcutta-1.

Gram : TERAZFLOR

Phone

Selling Agents for West Bengal & Bihar

FOR

ALBION PLYWOOD LTD.

CALCUTTA-1

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने लेखन के प्रति हम ईमानदार हैं, परिश्रम और लगन से इस साधना को करती हैं ; फिर भी हमारे सामने प्रकाशन की समस्या वैसी ही भयंकर है ; इसीलिए न कि हमारा किसी से सम्बन्ध नहीं, किसी से परिचय नहीं। हम किसी से मिलने नहीं जातीं, किसी सम्पादक को अपने यहाँ निमंत्रित नहीं करतीं और उसका कटु फल हमें हाथों-हाथ मिल भी जाता है। इसके और भी अनेक कारण हैं, जिनकी चर्चा एक प्रकार से अवांछनीय है।

पुरुष-लेखक के सामने लिखने की समस्या उतनी कठिन नहीं जितनी हमारे सामने है। समय की कमी, अपने उत्तरदायित्वों का बोझ, इन सबसे इतना अवसर नहीं मिल पाता कि शान्त-चित्त होकर साहित्य-सृजन कर सकें। मैं यह नहीं चाहती कि उस समय लिखूँ जब मेरी बच्ची मुझे अपने साथ खेलने के लिए कहे, न उस समय जब मेरे पति घर में हैं। तब मैं लिखूँ किस समय ? इसके लिए मैंने अपना 'स्लोगन' बना रखा है : "लिखो तब, सोये जग जब।"

●

ज वा हि र प्रे स

(कला-प्रभावक मुद्रणालय)

मुद्रण-सम्बन्धी समस्याओं के समाधान-हेतु निर्भरशील प्रतिष्ठान

हमारी विशेषताएं—

- हिन्दी-अंग्रेजी-बंगला भाषा की छपाई
- समय की विशेष पावन्दी
- मूल्य का उचित सन्तुलन
- परिणयोत्सव के आकर्षक निमन्त्रण-पत्र
- दीपावली-अभिनन्दन की मनमोहक पत्रिकाएं
- क्रिसमस की नवीनतम बधाई-पत्रिकाएं
- ...अन्य समस्त मुद्रण-कार्य

१६१/१, महात्मा गान्धी रोड,
कलकत्ता-७

फोन : ३३३५६३

परीक्षा के लिए आपको हमारा सादर आमन्त्रण !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Tel : 22203 Gram : BAGICH

SUKHANAND SHANKERLAL JAIN & CO.
PRIVATE LTD.

Direct Importers of :

ACID, BASIC, DIRECT, LIGHT FAST, SULPHUR,
NAPHTHOL, FAST BASES, FAST SALTS,
INDIGOSOLS, VAT GROUP OF DYES & ALIZARINE

47 DARIASTHAN STREET,
VADGADI, BOMBAY-3.

Branches :

Pathak Habash Khan,
Delhi-6.
Gram : BAGICHA Phone : 225364

22, Hathipala Road,
Indore.
Gram : BAGICHA Phone : 770

SHRI BIHAR ORISSA COLOUR COMPANY

DYES, CHEMICALS AND AUXILIARY PRODUCTS
for
TEXTILE, SILK, WOOL, RAYON, JUTE, PAPER
NYLON LEATHER, PAINT AND INK INDUSTRIES

Selling Agents to :
(In Bihar, Orissa & Nepal)
THE ATUL PRODUCTS LIMITED, BULSAR

Manufacturers of:
Acid, Basic, Direct, Light Fast, Sulphur, Naphthol, Fast Bases, Fa
Salts, Rapid, Vat Group of Dyes., & Optical Bleaching Agents.

and
THE ANIL STARCH PRODUCTS LTD., AHMEDABAD

Manufacturers of:
Maize Starch, Thin Boiling Chemical Starches, Dextrins, Yellow &
White, British Gum, Powder & Liquid Glucose Etc.

CHOWK, PATNA CITY-8.
Phone : 8167. Grams : BAGICH

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●लेखन, प्रकाशन और परिवेश की समस्याएँ मात्र हिन्दी या भारतीय लेखिकाओं का ही सिर-दर्द नहीं रही हैं, विदेशी लेखिकाएँ भी इसका शिकार रही हैं, और आज भी हैं; बल्कि सच तो यह है कि विदेशों में यह समस्या कहीं अधिक उलझी हुई और विकट है। इस स्थिति का दिग्दर्शन कराने वाली कुछ विदेशी लेखिकाओं की झलकियाँ हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :

- फ्रांस की फ्रैंक्वाय सॉगाँ
- इंगलैण्ड की डोरोथी वर्ड्सवर्थ
- इटली की ग्रेज़िया देलेदा
- जापान की तकाको नम्बा
- अमरीका की एलेन ग्लासगो

●इन सब के अतिरिक्त, इसी समस्या पर, हम यहाँ एक हिन्दी लेखिका—

- सोमा वीरा

के स्वानुभूत विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं, जो उन्होंने अमरीका से इस विशेषांक के लिए ही विशेष रूप से हमें भेजे हैं।

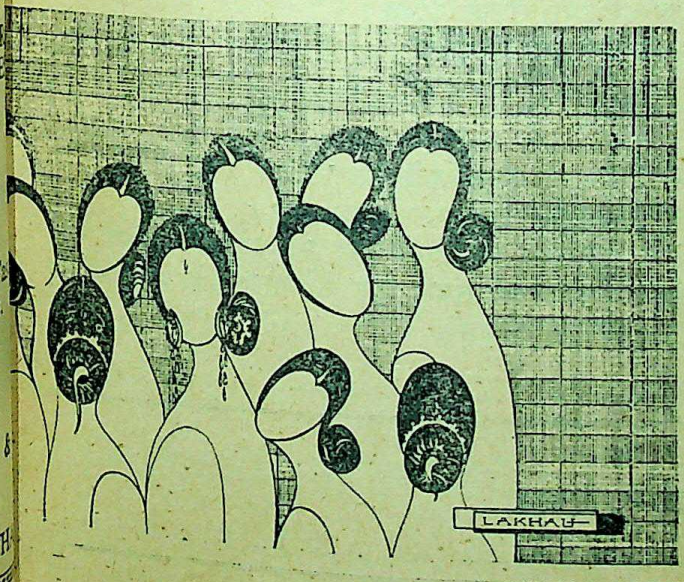

सागर पार की लेखिकाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा :

●एस० एन० डी० टी० यूनिवर्सिटी बाम्बे से बी० ए० सन् १९५७ में। फिर कोलोरेडो यूनिवर्सिटी से जर्नलिज़्म और इन्टरनेशनल अफ़ेयर्स में क्रमशः बी० ए० तथा एम० ए०। १९६० में न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में रिसर्च प्रारम्भ किया।

छात्रवृत्तियाँ :

●फ़ॉरेन स्टूडेण्ट स्कॉलरशिप, क्रिसमस एडवेन्चर स्कॉलरशिप, राइटर्स कॉन्फ्रेन्स स्कॉलरशिप आदि। सन् १९५६ में अन्तरप्रान्तीय यूथ फ़ेस्टीवल में प्रथम एकांकी पुरस्कृत हुआ। १९५७ में ऑल इण्डिया रेडियो में एक एकांकी पुनः पुरस्कृत हुआ।

अनुभव :

●इण्टरनेशनल हाउस में पार्ट टाइम टाइपिस्ट और सेक्रेटरी। न्यूयार्क १९६१
वोल्डर डेली केमरा की रिपोर्टर—१९५९–६०।
एशियन स्टडीज़ इन्सटीट्यूट, युनिवर्सिटी ऑव कोलोरेडो में सेक्रेटरी तथा रिपोर्टर
१९५८ से ५९ तक कोलोरेडो डेली की सम्पादिका।
नव भारत टाइम्स में चिल्ड्रेन्स पेज की सम्पादिका।
स्टॉफ़ आर्टिस्ट—ऑल इण्डिया रेडियो बाम्बे।
विदेशी संवाददाता—धर्मयुग और नवनीत।

प्रकाशन :

●मिडवेस्ट फ़ोकलोर—इण्डियाना यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स।
●धरती की बेटी—कहानी-संग्रह—आत्माराम एण्ड सन्स।
●इसके अतिरिक्त ८० के तकरीबन कहानियाँ और २६ एकांकी विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित। एक कहानी संग्रह, एक उपन्यास, तथा बारह अंग्रेज़ी में लिखी कहानियाँ प्रकाशनार्थ प्रस्तुत।

आत्म-परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमा वीरा

एक भारतीय लेखिका के अमरीका में प्रकाशन सम्बन्धी अनुभव

अपने देश में थी तब सुना था--अमेरीका में एक कहानी का पारिश्रमिक कम से कम २,५०० डालर (लगभग १२,५०० रुपये) मिलते हैं ; कि वहाँ प्रत्येक नगर में कम से कम पाँच-छः टेलिविज़न स्टेशन, और चार-छः रेडियो स्टेशन होते हैं ; कि वहाँ के लगभग सभी कॉलेजों के विद्यार्थी दैनिक समाचारपत्रों इत्यादि में नौकरी पा सकते हैं ।

झूठ-सच का पता अमरीका आते ही लग गया ।

यह सच है कि टैनेसी विलियम्स या हैमिंग्वे जैसे लेखकों को एक लेख या कहानी के लिए २,५०० डॉलर ही नहीं, इससे अधिक पारिश्रमिक भी दिया जाता है, किन्तु देश में कितने लेखक विलियम्स या हैमिंग्वे जैसी ख्याति प्राप्त कर सकते हैं । और फिर उतनी ख्याति सफलता की अन्तिम सीढ़ियों पर पहुँच कर ही मिलती है । जो लेखक सीढ़ी के पहले डंडों पर ही पैर रखने की कोशिश कर रहे हों, उनकी बात पूछने वाला कौन है ?

पता लगा--लगभग कोई भी नहीं ।

किसी नये लेखक के लिए यहाँ अपनी रचना प्रकाशित कर पाना उतना ही कठिन है जितना किसी एशियन-अफ्रीकन देश के लिए धरती की परिक्रमा करने वाला रॉकेट बनाना । जर्नलिज़्म की क्लास में साथ पढ़ने वाले अमेरीकन मित्रों तथा कॉलेज समाचार-पत्र में साथ काम करने वाले आकांक्षी युवक-युवतियों की बातों से शीघ्र ही पता लग गया कि प्रथम रचनाएँ प्रकाशित करने के लिए यहाँ सबसे पहली माँग है कि आपके पास इतना धन हो कि आप 'लिट्रेरी एजेन्ट्स' की माँग पूरी कर सकें; फिर यदि आपके सौभाग्य से, आपका 'लिटरेरी एजेन्ट' अन्य लिट्रेरी एजेन्ट्स को हरा सके, तो शायद आपकी रचना प्रकाशित हो सके ।

टेलिविज़न तथा रेडियो में स्थिति कुछ भिन्न है । उनमें प्रत्येक 'शो' किसी कमर्शियल प्रोडक्ट, जैसे कि साबुन-तेल की कम्पनियों द्वारा प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है। इनमें से प्रत्येक संस्था मासिक-वेतन पर लेखक-कर्मचारियों को नौकर रखती है। किसी अन्य लेखक द्वारा अपनी रचना स्वीकृत हो पाना नितान्त असंम्भव है।

ये बातें सुन-सुन कर विश्वास-सा नहीं हुआ था। पूर्ण विश्वास तब हुआ जबकि रचनाएँ प्रकाशित करने की कोशिश की। पाया कि मित्रों की बातें मिथ्या या अतिरंजित नहीं थीं। उस समय प्रथम बार इस बात का पूर्ण आभास हुआ कि यह मेरा कितना बड़ा सौभाग्य था--जब कि प्रथम बार, डरते-डरते 'सरिता' के 'नये अँकुर' में कहानी भेजी थी। उत्तर की प्रतीक्षा करते भी भय लग रहा था। उसके बाद दो कहानियाँ और भी लौट आयीं, किन्तु प्रत्येक बार सम्पादक के उत्साहपूर्ण शब्दों ने मन को और कुछ भेजने का साहस दिया।

यद्यपि इस विषय में कुछ कहना कठिन है, क्योंकि चरित्र मनुष्य का वैयक्तिक गुण है, फिर भी कभी-कभी बड़ा अचरज होता है कि क्यों यहाँ के सभी नामी लेखक अपने को 'आइवरी टावर' में प्रतिष्ठित कर रखना चाहते हैं? क्यों, बिना अपवाद, उनमें से सभी के मन में, भावी साहित्यकारों के प्रति ऐसी रुक्षता और निरादर है?

यहाँ आने के बाद, मैंने कितने ही लेखकों से मिलने का प्रयत्न किया। यहाँ पर उनमें से कुछ का ही उल्लेख किया जा सकता है--श्रीमती पर्ल बक, विन्सैण्ट शीन, नॉर्मन मेलर, टैनेसी विलियम्स, एडगर स्नो, आदि आदि। किन्तु प्रत्येक प्रयास का परिणाम एक ही निकला--या तो लेखक के 'लिटरेरी एजेन्ट' ने लिखा कि आजकल लेखक महोदय दो-तीन नयी पुस्तकें लिखने में व्यस्त हैं, अतः उन्हें मिलने का तनिक भी समय नहीं; या फिर उन्होंने मिलने का समय दिया, और मिलने के स्थान पर दो घंटा प्रतीक्षा करने के उपरान्त उनकी सैक्रेटरी ने आकर कहा कि किसी कारणवश आज वे यहाँ न आ सकेंगे।

उस समय याद आती है, अपने देश के अनेक ख्यातिनामा साहित्यकारों की--जो अपने देश के अमूल्य साहित्य-रत्न हैं; जिनकी रचनाओं का यदि अँग्रेजी में अनुवाद किया जाये तो वे अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य-जगत में न जाने कितने अमूल्य पुरस्कार और कितनी ख्याति प्राप्त कर लें, किन्तु सादगी और सरलता में जिनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता, जिनके मुख से नम्रता-भरे शब्द अनायास ही झरते हैं, और जिनका एक-एक शब्द मन के कोने-कोने में प्रेरणा के न जाने कितने अजस्र स्रोत भर देता है।

इस विषय में एक बात न कहने पर बात अधूरी ही रह जायेगी--समान अधिकार पाने का इतना ढिंढोरा और इतना दावा होने पर भी अमेरीकन जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के सामने पुरुष को ही प्राथमिकता दी जाती है। पत्रकारिता-जगत भी इसका अपवाद नहीं।

यह सब देख कर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि साहित्य-जगत में क़दम बढ़ाने की इच्छा करने वाली हमारी भारतीय बहनें निस्सन्देह ही बड़ी भाग्यवान हैं कि उन्हें किसी अच्छे सम्पादकों का सहयोग प्राप्त है। केवल शब्दों से ही नहीं, सच्ची सहायता देने वाले मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र-पत्रिकाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अपने सम्पादकों की मनोवृत्ति और कार्य-शीलता के बल पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि लिखने की इच्छा होने पर यदि हम न लिखें तो यह केवल हमारा ही दोष है। लिखने का निश्चय करने पर अपने देश के कथा-साहित्य या पत्रकारिता की सीढ़ियों पर क़दम बढ़ाना हमारे लिए कठिन नहीं।

● ● ●

फ्रांस की
फ्रैंक्वाय सॉगाँ

■ फ्रांसीसी कथा-लेखिका फ्रैंक्वाय सॉगाँ की पुस्तकों के अनुवाद, विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में मिलते हैं। आधुनिक लेखिकाओं में इनका बड़ा विशिष्ट स्थान है। यह पर्ल बक की संवेदना और डैफिन-डी मौरियर की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति लेकर साहित्य के क्षेत्र में उतरी हैं। फ्रेंच कथा-साहित्य की परम्परा के अनुकूल ही, इनके कथानक, मुख्यतया प्रेम तथा उससे उत्पन्न परिस्थितियों पर आधारित हैं।

प्रेम-कहानियाँ कहने का, इनका अपना ढंग है। पाठक को ऐसा एहसास होता है, जैसे वह किसी ड्राइंग-रूम में बैठ कर, किसी की प्रेम-कहानी, एकान्त में सुन रहा हो। इनके पात्र रुपए-पैसे वाले धनाढ्य व्यापारी, पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता तथा युवक और युवतियाँ हैं।

फ्रैंक्वाय सॉगाँ ने सत्रह वर्ष की आयु में एक उपन्यास लिखा था, 'बौनज्यॉर ट्रीस्टी' और विश्व-साहित्य में उज्ज्वल नक्षत्र के समान चमक उठी थीं। इस पर इन्हें फ्रान्स का सुप्रसिद्ध पारितोषिक 'ग्रान्ड प्रिक्स क्रिटीक्स' मिला, और फ्रान्सीसी भाषा में ही उपन्यास की दो लाख प्रतियाँ बिक गयीं।

फ्रैंक्वॉय सॉगाँ का जन्म १९३५ में, पेरिस के एक बड़े ही सम्पन्न परिवार में हुआ था। इन्होंने पेरिस के एक विख्यात पुस्तक-प्रकाशक के साथ विवाह किया है। इन्होंने बचपन में ही कहा था, कि वह पढ़ने के बजाय लिखना अधिक पसन्द करती हैं। बड़ी होकर इन्होंने इस कथन को चरितार्थ कर दिया है। इनकी शिक्षा स्कूल तक ही सीमित रही।

इनके उपन्यास, आधुनिक-युग की नारी की समस्त जटिलताओं से युक्त हैं। ऊब, निराशा, छटपटाहट, चिन्तन-बोझिल कॉफ़ी-हाउसों में लड़के-लड़कियों का मेल-जोल, तथा सुहानी शामें—इन्हीं सब का वर्णन इनके उपन्यासों में मिलता है। वर्तमान सामाजिक ढाँचे को इनके पात्र पसन्द नहीं करते। वे इस समाज से दूर जाकर 'बोहिमियन' प्रकृति को अपना लेते हैं। इनकी नारियाँ अपने मानसिक तनाव का समाधान भी जायज़ और नाजायज़ प्रेम में ढूँढ़ती हैं।

फ्रैंक्वाय सॉगाँ किसी प्रकार की कुंठा से ग्रस्त नहीं हैं। सब कुछ उन्मुक्त भाव से लिखती हैं। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में मानसिक या शारीरिक परिस्थिति का वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With

Compliments

of

Hindustan Bobbin Industries

WORKS & HEAD OFFICE

15, CANAL EAST ROAD,

CALCUTTA-4.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह इस सहजता से करती हैं, जैसे प्रकृति-चित्रण या पात्रों के भावानुभावों का चित्रण। इतने कम समय में, इतनी कीर्ति और इतना अर्थ अर्जित करने वाले लेखक, बहुत कम हैं।

इनके अन्य प्रमुख उपन्यास 'ए सर्टेन स्माइल', और 'दोज़ विदाउट शैडोज़' हैं।

—रजनी पनिकर

• • •

इंगलैण्ड की

डोरोथी वर्ड्सवर्थ

■ महान कवि वर्ड्सवर्थ के नाम से कोई भी कविता-प्रेमी अपरिचित नहीं है। परन्तु उनसे भी अधिक आदर और मान है कवि-भगिनी डोरोथी का। डोरोथी वर्ड्सवर्थ कवि की छोटी बहिन तो थीं ही पर साथ ही साथ उनकी पथ-प्रदर्शिका तथा प्रेरणा भी थीं। "वह देखो वर्ड्सवर्थ, फूल! "वह देखो, कसे सर हिला-हिला कर इशारे कर रहे हैं!" दोनों भाई-बहन प्रकृति की अनुपम छटा में खो जाते। तीसरा व्यक्ति था उत्कृष्ट कवि—कोलरिज। एक जगह कोलरिज ने लिखा है, "हम तीन शरीर एक प्राण थे।"

अपने फ्रांस निवास काल में वर्ड्सवर्थ एक फ्रेंच रमणी के प्रणय में फँस गए। उधर फ्रेंच क्रांति के बारे में भी नेपोलियन के अत्याचार देख उनकी आत्मा को अत्यन्त कष्ट पहुँचा। असफल प्रेम और टूटे सपनों से त्रस्त हो वह भग्न-हृदय इंग्लैंड लौटे। वहाँ डोरोथी थीं—भूरी-भूरी आँखों वाली, हृदय में प्रगाढ़ ममता व सहानुभूति का स्रोत रखने वाली, स्वयं जीती-जागती कविता! डोरोथी ने उनके मरुस्थल-से शुष्क जीवन में शाद्वल का काम किया। उसने कवि की खोयी मान्यताओं को, बिखरे विश्वास को पुनः स्थापित किया। डोरोथी ने मौन होठों की गीत-रागिनी भी लौटा दी:

"नेत्रों की ज्योति लौटा दी
घावों की सब जलन मिटा दी
नेह घृत लगा कर उसने!
जीवन - दात्री ने धो डाली
मैली चादर अश्रु जल से।"

डोरोथी अँग्रेज़ी के दो महान कवियों की रक्षक देव-दूत थीं। वर्ड्सवर्थ ने अपनी रचनाओं में डोरोथी की तीन छोटी कविताएँ भी प्रकाशित करवायीं। परन्तु 'एक स्त्री-मित्र की रचनाएँ' नामक ये कविताएँ तनिक भी प्रशंसा न उकसा पायीं। डोरोथी की महानता स्वयं कवियित्री होने में नहीं बल्कि कवि-भगिनी होने में है। अपनी अमूल्य 'डायरी' के पृष्ठों में उसने कवि के व्यक्तित्व का अनूठा व सच्चा रूप चित्रित किया है। उनकी 'डायरियाँ' स्वयं साहित्य हैं और वह एक खरे कवि-हृदय की ज्वलंत उदाहरण भी हैं। डोरोथी, वर्ड्सवर्थ को उसके अस्तित्व का भान करवातीं, कोलरिज पर अपना निष्कपट स्नेह न्योछावर करतीं, और उनकी बेसर-पैर की बातें बेहद चाव से सुना करतीं। "वह तुम्हारी और मेरी सच्ची मित्र हैं।" वर्ड्सवर्थ कोलरिज से कहा करते। जीवन भर डोरोथी इन कवियों की एकनिष्ठ भक्त और तीव्र प्रेरणा रही। जहाँ भी ये दोनों जाते डोरोथी छायारूपेण उनके संग-संग डोला करतीं।

कोलरिज जब पत्र लिखा करते तो भाई-बहन के नामों को जुदा न कर पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CONSULT Phone : 45-5251-2-3

BENGAL INGOT COMPANY

LIMITED

Modern Foundries & Machine Shops

AT 5, HIDE ROAD, KIDDERPORE,
P.O. BOX 10615
CALCUTTA-43.

Refining Non-Ferrous Railway Bronze Non-Ferrous Ingots Axle-Box Scrap & Castings. Bearings. Gunmetal Borings. Ingots.

CHILL CAST RODS — DIE CASTINGS
SHELL MOULDED CASTINGS —
MACHINED PARTS

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रिय विलियम तथा डोरोथी" यही इनके पत्रों का प्रारम्भ होता। उनके घनिष्ठ मित्र, कवि तथा कवि-भगिनी को एक रूप मानते। यह मित्रता सचमुच अद्भुत थी। यहाँ तक कि भाई-बहन एक ही नोट-बुक में नोट्स उतारा करते। वर्ड्-सूवर्थ की कई कविताएँ डोरोथी की डायरी से ही उपलब्ध हुईं। वर्ड्सवर्थ अपनी प्रिय पुस्तकें डोरोथी से पढ़वा कर सुना करते।

डोरोथी ने नारी-मात्र को यह शिक्षा दी कि समुचित शिक्षा-प्राप्ति के उपरान्त पुरुषों का संसर्ग नारी के बौद्धिक विकास को प्रखर करता है। उसके व्यक्तित्व को पूर्णता देता है। अपने भाई के साथ मिल्टन की महान कृति 'पैराडाईज़ लॉस्ट' पढ़ते-पढ़ते वह रो पड़ती। जेन आस्टीन की शुष्क आँखें इतनी आकर्षक नहीं जितनी डोरोथी की अश्रुभीगीं पलकें।

भाई के साथ कई मील भ्रमण करना उनकी दैनिक-चर्या में था। तथाकथित 'कोमलांगी' नारी डोरोथी न थीं। वह ग्रामीण बाला थीं--दृढ़ तथा उन्मुक्त।

साहित्य-प्रेमी, डोरोथी की 'डायरी' की एक-एक पंक्ति बड़े चाव से पढ़ते हैं। दो महान कवियों के जीवन की गुत्थियाँ इस विशिष्ट लेखिका ने सँजो रखी हैं। डायरी के पृष्ठ स्वयं कविता में पगे हैं। इन्हें पढ़ कर डोरोथी की कोमल, कल्पनाशील, तथा स्वच्छ पावन आत्मा की झलक मिलती है। डोरोथी दो महान कवियों के काव्य की आधार-भूत शिला है। विश्व साहित्य में उनका स्थान अद्वितीय है।

---तृप्ता कपूर

इटली की
ग्रेज़िया देलेदा

●

■ग्रेज़िया देलेदा का जन्म १८७५ में इटली के एक शहर नोरो में हुआ। उनके जीवन का आरम्भ सादा और सरल था। बालपन में ही उनके सुलझे हुए विचारों ने उन्हें होनहार बालिका की उपाधि से विभूषित किया। पारिवारिक आदर एवं स्नेह उन्हें यथेष्ट मात्रा में मिला, जो आगे जाकर उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियों में भली-भाँति व्यक्त हुआ।

स्कूली शिक्षा पर उनका ध्यान अधिक नहीं टिका। इसके विपरीत उनका ध्यान अनुभूति-पूर्ण कथाएँ सुनने एवं पढ़ाने में अधिक रहने लगा, जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही उन्होंने छिट-पुट रचनाएँ लिखनी आरम्भ कर दीं। उनकी शुरू की कहानियों पर --जैसा कि स्वाभाविक भी है--किसी भी पत्र अथवा प्रकाशक ने ध्यान नहीं दिया। पर यह भी ठीक है कि उनकी प्रतिभा में जन्म-जात साहित्यिक बीज थे, जिन्होंने उनसे १५ वर्ष की आयु में 'सॉग्यू सादों' नामक उपन्यास लिखवा लिया।

इस उपन्यास ने एक अच्छी-खासी खलबली-सी मचा दी। इस पुस्तक की प्रथम आलोचना से देलेदा को कष्ट ही हुआ। किन्तु उनकी प्रतिभा पर इससे कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। और उसके कुछ ही दिनों बाद उनका दूसरा उपन्यास 'मेरिना सिरका' प्रकाशित हुआ।

इन रचनाओं को लेकर देलेदा पर अजीब तरह की टीका-टिप्पणियाँ हुईं--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

JAWAHIR PRESS

creative printers.

dial 333593

GREAT YOU ALL

THROUGH THE SPECIAL NUMBER

printers of distinction

HINDI-ENGLISH-BENGALI

161|1, Mahatma Gandhi Road,
CALCUTTA-7.

● ● ● ● Punctuality a Speciality

Grams : METROFFSET
Phone : 75353

METRO
CARDS
THEY ARE
DURABLE
ECONOMICAL
AND ABOVE ALL OF
GOOD QUALITY

Manufactured by

METRO PLAYING CARD CO.

BYCULLA CLUB, BELLASIS ROAD,

BOMBAY-8.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचनाएँ भी और अतिरिक्त चर्चाएँ भी। नोरो में आज से पहले किसी भी नारी ने कुछ भी लिखा-लिखाया न था। यहाँ तक कि कोई सार्वजनिक-कार्य पर जन-गण का नारा तक किसी औरत ने नहीं लगाया था। ग्रेज़िया ही वह पहली लेखिका थी, जो स्त्री-जाति का सारा संकोच, सारी लज्जा भुला कर निश्शंक एक पर एक कहानी एवं उपन्यास लिख रही थी। थोड़े दिनों के बाद ही उन्होंने 'एनिमा ओनेस्ता' नामक अगली कथाकृति प्रकाशित करायी।

इस प्रकार २५ वर्ष की उम्र तक ही देलेदा अपने समकालीन लेखकों के हास्य-व्यंग्य-खिल्ली आदि सह सकने की क्षमता प्राप्त कर चुकी थी।

इस समय तक उसकी लेखनी ने, उसकी महत्वाकांक्षाओं का मार्ग प्रशस्त अवश्य कर लिया था, फिर भी भरे यौवन में, नारी के लिए प्रत्येक विरोध, मोह, एवं आकर्षण को सहज ही परास्त कर सकना बहुधा आसान नहीं हुआ करता। इसी प्रकार की उलझनें ग्रेज़िया के साथ भी थीं, किंतु उसमें उचित साहस भी प्रचुर मात्रा में था। यही कारण था कि आने वाले वर्षों में, प्रत्येक आकर्षण अथवा विरोध को पार करती हुई, वह साहित्य-क्षेत्र के विस्तृत व्यास में आ पहुँची।

यश एवं सफलता की इस उपलब्धि ने ग्रेज़िया में एक उच्च स्तर का आत्म-विश्वास भर दिया, जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही उन्होंने अपनी प्रौढ़ रचना 'लॉ माद्रे' प्रस्तुत की।

अन्त में १९२६ में उन्हें —"लॉ फ़ूगाज्या एगितो' नामक सर्वश्रेष्ठ कथाकृति पर नोबुल पुरस्कार मिला।

नोबुल-पुरस्कार से सम्मानित करते समय स्वीडन एकेडेमी ने ग्रेज़िया की प्रशंसा करते हुए उनकी रचनाओं के विषय में कहा, —"ग्रेज़िया की कला-कृतियाँ, उच्च आदर्श, उच्च-भावनाओं से सदा प्रेरित एवं परिपूर्ण रही हैं। उनके विचार, मातृभूमि के सुख-दुख से ओत-प्रोत रहे हैं।"

—अनीता

● ● ●

जापान की
तकाको नम्बा

●

तकाको नम्बा। जापानी उपन्यास-लेखिका। १९३० की जुलाई में टोकियो में जन्म। पिता प्रसिद्ध संगीतज्ञ, माँ फ्रांसीसी तथा जापानी रक्त से सम्बन्धित। कुमारी नम्बा ने पिता के साथ चौदह वर्ष की उम्र में पूरे यूरोप की यात्रा की, तथा तीन वर्षों तक पेरिस में चित्रकला की शिक्षा प्राप्त की। इक्कीस वर्ष की उम्र में प्रथम रचना प्रकाशित हुई। तेइस वर्ष की उम्र में प्रथम उपन्यास आया।

तकाको अविवाहित है, और पेशे के रूप में चित्रकला की शिक्षिका है। इसलिए रचनाओं में कल्पना और चित्रात्मक गद्यशैली की प्रमुखता होती है। उपन्यास अँग्रेज़ी, फ्रेंच तथा इतालवी में अनूदित हो चुके हैं। रचनाओं पर फ्रेंच अस्तित्ववादियों का प्रभाव है।

पिछले महायुद्ध के उपरान्त ही जापान के नवलेखन का अध्याय शुरू हुआ है। युद्ध से पूर्व जापानी साहित्य में काव्य का ही प्रमुख स्थान था, और थियेटरों में भी काव्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान जनरल इन्श्योरेन्स सोसाइटी लिमिटेड

•

चेयरमैन

•

डा० एन० एन० ला, एम्० ए०, पी-एच० डी०

•

मैनेजिंग डायरेक्टर

•

श्री पी० एन० तालुकदार, एम्० ए० (कैन्टब)

•

हेडआफिस

•

हिन्दुस्तान बिल्डिंग,

कलकत्ता—१३

शाखाएँ :

•

बम्बई : डॉ० दादाभाई नौरोजी रोड, फ़ोर्ट,

मद्रास : १०५, आर्मेनियन स्ट्रीट, जी० टी०

लखनऊ : हज़रत गंज,

नई दिल्ली : ६४, जनपथ,

नागपुर : इंडियन म्युचुअल बिल्डिंग, माउण्ट रोड एक्स्टेन्शन,

इन्दौर : सरदार बिल्डिंग, ट्रैफ़िक, रूट नं० २,६२२, न्यू यशवन्त रोड,

गौहाटी : पान बाज़ार,

पटना : राजेन्द्र पथ,

कटिहार : अमला टोला,

हैदराबाद : ११३ स्टेशन रोड,

कटक : गणेश घाट,

जलपाईगुड़ी : अन्जुमन बिल्डिंग,

कोचीन : १२।१६८, ज्यू टाउन,

आसनसोल : जानकी भवन, ईस्ट एण्ड जी० टी० रोड

ढाका : ४, चित्तरञ्जन एवेन्यू,

बंगलौर : केम्पेगोडा रोड,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक ही प्रस्तुत किये जाते थे। और स्थिति यह थी कि कि इन काव्य-नाटकों में पुरुष-अभिनेता ही नायिकाओं तथा अन्य स्त्री पात्रों का भी अभिनय किया करते थे। ज़ाहिर है, कि कला और साहित्य के क्षेत्र में स्त्रियों का उचित प्रवेश और उचित स्वागत नहीं था।

जापान की स्त्रियाँ स्वभाव से ही 'पारिवारिक स्त्रियाँ' होती हैं--सफल गृहिणी और सफल माताएँ। किन्तु, पिछले महायुद्ध ने, हिरोशिमा-नागासाकी के प्रलयकाण्ड ने, राजशाही के पतन ने, नये प्रजातन्त्र की स्थापना ने, और उद्योग-धन्धों तथा व्यवसाय की प्रगति ने जापानी जनसमाज को नये मूल्यों और नयी व्यवस्थाओं में ला खड़ा किया है। चाय का त्यौहार और फूलों का त्यौहार मना कर खुश रहने वाली स्त्रियाँ दूकानों और बाज़ारों और दफ्तरों में आ गयी हैं। पुरुषों के हर कार्य में बराबरी का साथ दे रही हैं। कहीं-कहीं तो आगे भी बढ़ रही हैं।

जापानी जीवन की इस नयी व्यवस्था में ही तकाको नम्बा जैसी लेखिकाओं का जन्म हुआ है। जापान की एरिस्टोक्रेसी और एरिस्टोक्रेसी द्वारा रक्षित-पालित साहित्य की सीमाएँ टूट चुकी हैं। साहित्य में नवयथार्थों का उन्मेष हुआ है, क्योंकि साहित्य के प्रेरणा-स्रोत, जीवन का परिवेश ही बदल गया है।

जब तकाको ने अपना पहला उपन्यास लिखा और उसे एक बड़े प्रकाशक के पास छपने भेजा, तो उपन्यास लौटाते हुए, प्रकाशक ने कई बातों के साथ, एक यह बात भी कही थी,--"क्वाँरी रहने, और रात का एकान्त काटने के लिए किस्से-कहानियाँ लिखने से क्या बेहतर बात यह नहीं है कि शादी के दफ्तर में अपना नाम लिखवा लिया जाए?"

प्रकाशक नहीं जानता था कि तकाको की उम्र अभी कुल उन्नीस साल है, और वयस की वृद्धि के कारण नहीं, अन्तर्दृष्टि और अध्ययन के कारण ही तकाको की रचना में इतनी प्रौढ़ता है। इस घटना के लगभग चार साल बाद एक बहुत ही साधारण प्रकाशक ने उसका पहला उपन्यास प्रकाशित किया। इस प्रकाशक की चर्चा करते हुए तकाको ने अपने जर्नल में लिखा है,

'टी. एन. (प्रकाशक के नाम का संक्षेप) ने जब पत्र लिख कर मुझे अपने दफ्तर आने का निमन्त्रण दिया, तो मैं बहुत डरी। मैं अबतक किसी बड़े लेखक या प्रकाशक से नहीं मिली थी। अन्त में, अपनी एक सहेली के जोर देने पर मैं पांडुलिपि लेकर उसके साथ टी. एन. के यहाँ गयी।

साधारण अभ्यर्थना के बाद मैंने थरथराते हाथों से बैग से पांडुलिपि निकाली और उसके सामने टेबुल पर रख दी। उसने क्या-क्या बातें कीं, मुझे कुछ भी याद नहीं है। मैं एकदम जड़ हो गयी थी, और सारी बातें मेरी सहेली ही कर रही थी। मुझे इतना ही याद है कि टी. एन. बहुत ही सभ्य और शीलवान व्यक्ति था, और उसकी उँगली में बहुत बड़ा सफ़ेद पत्थर चमक रहा था।'

अब तक तकाको के छः उपन्यास, एक कहानी-संग्रह, जर्नल के अंश, और जापानी चित्रकला सम्बन्धी दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'न्यू डाइरेक्शन्स' और 'न्यू वर्ल्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोडा ऐश यूनिट
धांगध्रा
गुजरात राज्य
●
तार :
केमिकल्स
धांगध्रा
●
टेलीफोन :
३१ और ६७
●

तार :
साहू जैन, बम्बई

टेलीफोन :
२५१२१८-१९

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

प्रसिद्ध 'हॉर्स शू' छाप हेवी केमिकल्स
के उत्पादन में अग्रसर निर्माता

- सोडा ऐश
- सोडा बाइकार्ब
- कैल्शियम क्लोराइड
- नमक और

हाइ रेयॅन ग्रेड
इलेक्ट्रोलिटिक कॉस्टिक सोडा
(९८-९९ प्रतिशत शुद्धता)

कॉस्टिक सोडा
साहूपुरम
पोस्ट–आरूमुगने
तिरुनुवेली डिस्ट्रि
मद्रास राज्य
●
तार :
केमिकल्स
आरूमुगनेरी
●
टेलीफोन :
कायलपटनम :

मैनेजिंग एजेन्ट्स :
साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लिमिटेड
१५ ए, हर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राइटिंग' में भी तकाको नम्बा की रचनाएँ अनूदित होकर आयी हैं।

अपने जर्नल में एक जगह तकाको ने लिखा है :

'एक अविवाहित स्त्री होने के कारण लेखन की मेरी सीमाएँ हैं। मैंने जीवन को जितना और जैसे देखा है, उतना ही और वैसे ही मैं चित्रित करती हूँ। लेकिन, जीवन का अधिकांश मैंने नहीं देखा है। यौन जीवन और मातृत्व का अनुभव मुझे नहीं है, और मैं विश्वास नहीं करती कि जो मित्रों के मुँह से सुना जाए, उसे बहुत अंश तक साहित्य में चित्रित किया जाए।'

---राजकमल चौधरी

अमरीका की

एलेन ग्लासगो

■ एलेन ग्लासगो दूसरा तालस्ताय बनना चाहती थी और आप आश्चर्य करेंगे यह सुन करकि उसका तालस्ताय बनने का स्वप्न केवल इसलिए टूट गया कि वह बहुत सुन्दर थी।

मैकमिलन पब्लिसिंग हाउस का फाइनल क्रिटिक न्यूयार्क के दालमोनिको होटल में उसके साथ लंच पर बैठा था---उसके भाग्य का फैसला करने। एलेन ने अपना पहला उपन्यास 'डेसेन्डेन्ट' निर्णयार्थ भेजा था।

"तुम तो अभी सोलह वर्ष की भी नहीं लगतीं" मि० कोलायर बोले। एक २२ वर्ष की लड़की को कोई कहे कि वह तो १६ वर्ष से भी कम लगती है तो उसे कितनी प्रसन्नता होगी, परन्तु इस प्रसंग में एलेन को यह बात खल गयी। उसने कहा,' जनाब, मैं २२ वर्ष की हूँ और अभी भी बढ़ रही हूँ।"

"फिर भी, तुम बहुत सुन्दर हो और मैं नहीं चाहता कि सुन्दर लड़कियाँ उपन्यास लिखें। उन्हें सुन्दर बच्चे पैदा करने चाहिए। तुम दक्षिण लौट कर कुछ बच्चे पैदा करो, मैकमिलन में तुम्हारा उपन्यास छपने की ज़रा भी गुंजाइश नहीं है।"

एलेन का कोमल दिल टूट गया। दो वर्ष पूर्व माँ की मृत्यु पर उसने यह उपन्यास अग्नि को भेंट कर दिया था। पुनः स्मृति के आधार पर लिखा तो पहले ही प्रकाशक का इतना क्रूर आघात...

यह तो खैर प्रकाशन सम्बन्धी ही बात थी, पर सच में क्या नयी लेखिकाओं के लिए लिखना इतना सरल होता है?...

इस घटना से भी पहले एलेन अपनी कुछ संगीत सीखने वाली सहेलियों के साथ न्यूयार्क आयी थी तो साथ में 'शार्प रियलिटीज़' नामक उसका उपन्यास था। नये लेखकों को कौन प्रकाशक ठीक रहेगा, इस सम्बन्ध की सही राय दे सकने वाले एक साहित्यिक आलोचक का विज्ञापन उसने दैनिक पत्र में पढ़ा। यह राय ५० डालर में मिलती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्माताओं !

दक्षिण भारत के बाज़ारों में
आपकी बिक्री बढ़ाने में
हम आपकी मदद कर सकते हैं।

सारे दक्षिण भारत में फैला हमारा अनुभवी, कुशल, शक्तिशाली और सुगठित बिक्री संगठन आपके सामान को बाज़ार के कोने-कोने में पहुँचाने के लिए सदा आप की सेवा में प्रस्तुत रहता है।

इन प्रसिद्ध निर्माताओं का प्रतिनिधित्व हमारे सामर्थ्य का साक्षी है।

- 'भारत' सेफ्टी रेज़र ब्लेड्स
- 'पनामा' सेफ्टी रेज़र ब्लेड्स
- द अल्बियन प्लाइउड का प्लाइउड
- राजकीय Hydrogenation फ़ैक्ट्री, कालीकट का वनस्पति व विशुद्ध तेल
- रोहतास ; पेपर्स एण्ड बोर्ड्स
- मे० मैंडैक्सपोर्ट, मास्को, यू० एस० एस० आर के Pharmaceutical Chemicals
- रतलाम स्ट्रा बोर्ड्स
- आई० एच० आई० के हिन्ज़ेज़, टावर बोल्ट्स, ब्रास फ़िटिंग्स आदि

अपनी एजेन्सियों का काम हमें सौंपिए :

लाला गोपीकृष्ण गोकुलदास

११६, मिन्ट स्ट्रीट, मद्रास–१

फ़ोन : ३२७५ और ५५१३२ तार : "JHAVER"

संस्थापित : १८८७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधार माँग कर एलेन ने समय निश्चित
क्या। वे महाशय उपन्यास देखना तो
रकिनार, एलेन की शारीरिक गठन जाँचने
गे। बोले, "एक उपन्यास-लेखिका बनने
लिए तुम्हारी देह का गठाव एकदम उपयुक्त
...कब तक ठहरी हो न्यूयार्क में ? दुबारा
हाँ भेंट होगी ? यहीं आना चाहो तो
परान्ह का समय ठीक रहेगा जब मैं यहाँ
केला रहता हूँ ; और हाँ, जाने से पहले
क चुम्बन तो अवश्य ही दोगी..."

एलेन कितना फूट-फूट कर रोयी उस
त ! दूसरी सुबह उपन्यास मँगवा कर
ग्नि की भेंट कर दिया और कसम खायी
क भविष्य म कभी भी कलम नहीं
ठायेगी।

परन्तु कहाँ निभी यह कसम : 'द डेसेन्डेन्ट',
कैज़ेज़ ऑव एन इन्फ़ीरियर प्नेनेट', 'द
ायस ऑव द पीपल', 'द रोमांस ऑव ए
लेन मैन', 'द बैटल ग्राउण्ड', 'द रोमेण्टिक
मेडियन्स', 'द शेल्टर्ड लाइफ़' जैसे उपन्यास
क-एक कर बाहर आने लगे और बीसवीं
दी की प्रथम दशाब्दी में ही यह ३५ वर्ष
लेखिका, वर्जिनिया और अमेरिका की
माएँ लाँघ कर, यूरोप और एशिया के
द्ध पाठकों की श्रद्धास्पद बन गयी।

प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचने के बाद
क दिन मैकमिलन पब्लिसिंग हाउस के प्रधान
० ब्रेट, एलेन से मिले और बोले, "मैंने
ने जीवन में दो बड़ी भूलें की हैं और उनमें
एक 'डेसेन्डेन्ट' को न स्वीकारना है।"

---परेश

• • •

ार पार की लेखिकाएँ

स्वास्थ्य और स्फूर्ति के लिये

हेमो-द्राक्षो मॉल्ट !

हेमो-द्राक्षो मॉल्ट एक पाचनशक्तिको बढ़ानेवाला और भूखको उत्तेजित करनेवाला टॉनिक है। यह आपकी तंदुरूस्तीको बनाये रखता है और शारीरिक व मानसिक थकावटको दूर करता है।

हेमो-द्राक्षो मॉल्ट जीवनसत्त्वों और खनिजोंसे भरपूर टॉनिक है। खूनको बढ़ानेवाला यह ज्ञानतंतुओंके लियेभी पोषक तत्त्व है। वर्षों से प्रसिद्ध यह आपको हमेशा स्वस्थ और ताज़ा रखनेमें मदद करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान हस्तकला का केन्द्र है

राजस्थानी कला के नमूने खरीद कर अपने घरों को

सुशोभित कीजिए

तथा

गृह उद्योगों को प्रोत्साहन दीजिए

- हाथी दांत के खिलौने
- लाख व नगीनों के कंगन
- बंधाई व छपाई के स्कार्फ
- जोधपुर की बनी शीतल जल की झारियाँ
- चन्दन की लकड़ी के खिलौने
- रंगीन एवं बंधेज की साड़ियाँ
- पक्के रंग की चादरें
- लकड़ी एवं खस की बनी वस्तुएँ
- नीले व सफेद पाटरी के सामान
- आकर्षक नमूने की दरियाँ
- सांगानेरी रंगाई व छपाई के
- उदयपुर के सुन्दर लकड़ी के
- जयपुर की कशीदा की जूतियाँ
- जयपुर की प्रसिद्धि चूड़ियाँ
- कोटा के सुन्दर डोरिये
- कलापूर्ण सामान

प्रत्येक सरकारी विक्रय-केन्द्र पर प्राप्त

राजस्थानी हस्तकला के नमूने अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनियों में भी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

राजस्थान हैण्डी क्राफ्ट्स एम्पोरियम

क्वीन्स वे लेन, नई दिल्ली; जयपुर, जोधपुर व उदयपुर

●

राजस्थान राज्य द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवोदित हिन्दी कवियित्रियाँ

विशेषांक के इस काव्य-खण्ड में हिन्दी की निम्नलिखित नवोदित कवियित्रियों की कविताएँ प्रस्तुत हैं :

- रमा सिंह
- ज्योत्स्ना मिलन
- अनामिका
- निर्मला वर्मा
- रमा गोयल
- विमला झँवर
- मोहिनी विरदी
- तृप्ता कपूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ रमा सिंह

जन्म : मई १९२९ ई। शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (राजनीति) एवं एल. एल. बी. (लखनऊ विश्वविद्यालय से)।

वर्त्तमान कार्य : लखनऊ विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एक महिला कालिज के हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका।

प्रकाशित कृतियाँ : 'समुद्र-फेन' कविता-संग्रह (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)।

●

धरती (एक रूप-चित्र)

ओस की फुहारों में नहा कर
थकान मिटाई,
उगते हुए सूर्य की बिंदी
माथे पर लगाई,
किरनों की बिनी हुई
हैण्डलूम की साड़ी पहनी
कलफ़दार, धुली-धुलाई !

नदियों के फ़ुलसाइज़ आइने में
अपनी धोती की चुन्नटें
ठीक करती,
इस बीच—
हवा के टेप-रिकार्डर पर
चिड़ियों की गाई प्रभाती सुनती,
फिर रोज़मर्रा के कामों में जुटती
काम-काजी धरती।

उलझन

(विविध मुद्राएँ)

जैसे संगीत की कोई धुन
मन में बार बार गूँजे
परंतु गीत गहरी नींद में सो जाय...

जैसे अचानक
कोई परिचित-सा चेहरा दीखे
परंतु परिचय का संदर्भ खो जाय...

जैसे चलने की तैयारी—
पूरी होते ही, किसी गृहस्थिन की
चाबी का गुच्छा गुम जाय...

जैसे पार्टी में जाने पर
'गेट' पर उतरते ही
रिक्शे की कील से साड़ी फट जाय...

जैसे परीक्षा-भवन की—
देहरी लाँघते ही, छोड़े हुए प्रश्न का उत्तर
बिजली-सा कौंध जाय...

जैसे मंच पर, नृत्य की—
द्रुत भङ्गिमा के बीच
पैरों के घुँघरू खुल जाँय...

●

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ ज्योत्स्ना मिलन

जन्म : सन् १९४१ ई., बम्बई में। शिक्षा : सेण्ट ज़ेवियर कॉलेज, बम्बई में बी. ए. की छात्रा। कविता-लेखन की भाषा गुजराती। इधर हिन्दी में लिखने की ओर प्रवृत्ति।

●

सच ही तुम लौट आये हो !

जब हर दिशा में
अन्धकार गहराये थे,
तो मेरी पुतलियों के
कंदील जल उठे थे,
मूक आलोक छिटक गया था
क्योंकि तुम जा रहे थे...।
आज,
अनन्त के हर कोने में
दीप जल उठे हैं।
आँखों के छलकते ताल में
पुतलियों के दो कमल
काँप कर खिल गये हैं...
क्या,
सच ही तुम लौट आये हो...?

याद का आँगन और तुम

आँस का यह पेड़
झुका हुआ, छाया हुआ आँगन में
फिर भी आँगन अकेला...।
आज तुम नहीं हो
और ये सब
रूठे-से अबोले हो गये हैं।
मैं भी इन्हीं की ओर पीठ कर
चुप बैठ जाती हूँ
औ' देखती हूँ द्वार पर
जाने को विवश
भारी चरण तुम्हारे
कभी छलकते सागर में डूब गये थे...।
आज, याद के आँगन में
वे पद-चिन्ह तुम्हारे
छोटा-सा अधूरा मांडला[1] बन
उभर आये हैं...।
तुम नहीं हो...और आज
बाँस की ये पतली, लंबी, हरी पत्तियाँ
सूख कर
याद के आँगन में
पद-चिन्हों के मांडले पर गिरी,
कभी काँप जाती हैं
तो लगता है कि—
तुम अभी आओगे...
अभी आओगे...।

---

१. आल्पना का एक प्रकार। मालवा और राजस्थान में इसे मांडला कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्जना का क्षण

एक क्षण जो वर्जना का है
उसे तुम
सर्जना का प्रभामय
आत्मीय वर दो !
यह विसंगतियाँ लिए
जो बढ़ रहा है
नहीं है यह तट महज़ मझधार की
अनगिनित लहरों का प्रकंपित स्वर
जिसे हम चीन्हते भी भूल जाते हैं
तुम इन्हें दो तट
इन्हें दो शान्ति का तट
और समतोलित सतह पर खींच दो यह
वर्जना संकेत अधिकारी अहंता

स्वर्ण प्रातः उस गहन तिमिरात्र से पहले
नहीं आए, न आ भी सके
पूर्व उसके तुम उसे
आभास ऐसा दो
अंकुर जाए सुबह का गीत उसमें
और वर्जित
क्षितिज सीमा से उतर
झाँके—
सृजन का सूर्य
उसको नाम देना तुम ।

■ अनामिका

जन्म : १५ अगस्त १९४० लायलपुर में । आजकल चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय में एम. ए. फ़ाइनल की छात्रा । विषय—हिन्दी । कविता-लेखन, संगीत और अध्ययन में रुचि ।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ निर्मला वर्मा

जन्म : १९४२ ई.। शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी) प्रयाग विश्वविद्यालय। आजकल वहीं पर हिन्दी-विभाग में शोध-छात्रा। संगीत और कविता में विशेष रुचि।

●

मेरी देह-सम्पुट में

(१)

मेरी उलझी बरुनियों में
अटकी बूँदें
गिरने मत
दो,
बल्कि यूँ ही सूख जाने दो।
शायद तुम्हारे नयनों की
कान्ति, बढ़
जाय।

कि मेरी व्यथा अतलता में
डूबा हुआ प्रश्न है—
जिसका उत्तर कोई
नहीं।

(२)

मेरे माथे को तवे-सा
जलने दो — छूने
आना
मत;
मेरी देह-सम्पुट में
बन्द न हो जाय
कहीं, कोई
राग।

(३)

बोलने की विवशता में
बाँधो मत मुझे;
शब्द बुलबुले नहीं
जो सुन्दर लगें—और
क्षणों में खो
जाँय।

कि गूँगी बच्ची-सी
अभिव्यक्तियाँ मेरी
सरल पर सस्ती
नहीं।

(४)

दूर के निज धुँधलके में
निहारो मत।
दृष्टि - विभ्रम ना
कहीं हो
जाय।...

सलिल तो हैं सभी
(देखने में)
गहन तो कोई
नहीं।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

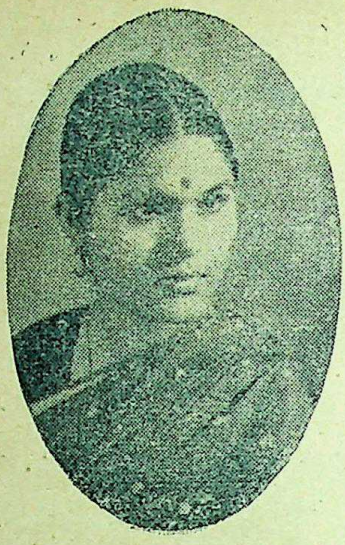

■ रमा गोयल

सेण्ट जॉन्स कॉलेज आगरा से बी. ए.। के अलावा चित्रकला और संगीत में रुचि। नयी-कविता और कविता के झगड़े से अलग मात्र लिखने में विश्वास।

• तुम्हारे पुकारने से

मन के छोर में लगी
तन्मयता की गाँठ खुली
अनुभूतियाँ बिखरीं
धरती पर गिरीं
हुईं चूर-चूर
ज्यों काँच की चूड़ियाँ !
तुम्हारे पुकारने से
स्वप्न सब भंग हुए
चेतना अचानक चौंक उठी
एकाएक जैसे बल्ब फ्यूज़ हो
और छा जाय कमरे में अँधेरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ विमला झँवर

आयु १८ वर्ष। उड़िया में कई अनूदित और मौलिक कविताएँ प्रकाशित। इधर हिन्दी में नयी कविता लिखने की ओर रुझान। वर्त्तमान निवास-स्थान : कलकत्ता।

●

तीन कविताएँ

(१)

उसके मेघ-रंगी केश हवा में मदमाते-से डोल रहे हैं
रात्रि के आभरण अस्त-व्यस्त हैं
विपन्न भवें जैसे हों दूर-दिगंत में फैली पर्वत-श्रेणियाँ।
गुलाब के फूल पर अपने कोमल गुलाबी गाल को रख कर
अलिन्द में झुकी हुई अनमनी-सी वह क्यों आँखों से मोती लुढ़का रही है ?

(२)

आलोकित खिड़की के किनारे
कौन एकाकी बैठी है ?
छाया और मैं, सिर्फ़ हम दोनों हैं।
जल-जल कर दीपक भी आखिर बुझ जाता है : अंधकार।
छाया मुझे छोड़ जाती है।
हाय रे !
मैं हतभागिन !

(३)

तुम जब चले जाते हो
मैं समझ नहीं पाती हूँ कि तुम मेरे पास हो या दूर चले गए हो।
सिर्फ जो कुछ भी देखती हूँ सब कुछ रीता-रीता लगता है।
तुम चले जाते हो
और सब कुछ शून्य में मिल जाता है।
सागर में छोटी मछली की तरह दिशा-ज्ञान-हीन होकर
मैं सोचती हूँ—
कहाँ जाने पर तुम मिलोगे ?

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▪ मोहिनी विरदी

चंडीगढ़ में अंग्रेज़ी एम. ए. की छात्रा। मातृभा पंजाबी। अक्सर लोग पूछते हैं कि मि लड़की होकर हिन्दी में क्यों लिखती-पढ़ती हूँ, तो मे उत्तर होता है कि मुझे हिन्दी और पंजाबी दो भाषाएँ सगी-बहनों-सी प्यारी लगती हैं। इ तरह जब लोग यह भी कहते हैं कि अंग्रेज़ी-सा की छात्रा हो तो अंग्रेज़ी में क्यों नहीं लिखती; उन्हें कैसे समझाऊँ कि अंग्रेज़ी में गाली देना अ लगता है लेकिन अंग्रेज़ी में सोचना अत्यन्त मनु कविता मन से फूटती है, और हिन्दी में आत्मा व्यक्ति अत्यन्त सहज लगती है।

• आत्म-रति

लाल रंग सुहाग का
भाने लगा है बहुत;
दिन भर ढूँढ़ती रहती हूँ
साँझ का सिन्दूरी आँचल।
लाल-लाल साड़ी में अंग लपेटे
लगती हूँ स्वयं को प्यारी
काँच की चूड़ियों से झाँकती
साँवली कलाई
लगता है निखर
हो गई है गोरी एकदम!

• गृह-कार्य

लो, आज फिर छुट्टी कर गई
जनवरी की धूप!
अनधोया, अनपुँछा चौका-बर्त्तन,
जूठे पड़े हैं सब के सब—
घर, गलियाँ, आँगन।
सूरज ने ज़िंदगी का लिहाफ़ खींचा
उफ़! इस सर्दी में उठ
अँगीठी जलाना
इन मुये नौकरों ने की है
सच, कैसी मुसीबत!

दो कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ तृप्ती कपूर

चंडीगढ़ में अंग्रेज़ी एम. ए. की छात्रा। घर में पिता हैं साहित्य के प्रति अटूट श्रद्धा और लगाव रखने वाले जो स्वयं भी बहुत सुन्दर लिखते हैं, लेकिन जिनका माध्यम सदा अंग्रेज़ी ही रहा। मुझसे भी अक्सर लोग पूछ बैठते हैं : 'अंग्रेज़ी की छात्रा और हिन्दी में लिखना-लिखाना!' मानो अंग्रेज़ी पढ़ने से ही हिन्दी से नाता टूट जाता है। घूमने का, हँसने का, अभिनय करने का और कविता-पाठ का बेहद शौक है। वे सब वस्तुएँ अच्छी लगती हैं जिनमें जीवन है, हरकत है।

• अभिसार

आज रात को क्या सूझी
तुम्हारे सिगरेट के धुँए-सी
झीनी-झीनी सुरमई
साड़ी पहन ली।
घुंद की हल्की झालर
टाँक ली फाल पर।
शाल नहीं, स्वेटर नहीं
कोई ऊनी वस्त्र नहीं
सख़्त कड़ाके की सर्दी में
यूँ घूमने चल दी।
बादल कुछ मनचले
ठिठोली करते, राह रोकते
पर रात ख़्याल में मग्न
मदहोश यौवना बढ़ी जा रही।
सहसा, याद ने पीछे से आ
ओढ़ा दी चाँदनी की नर्म चादर
चूम लिये पगली के केश भी
बड़े दुलार से!

जादू भरी यह रात

चाँद की सवारी
बादल के श्वेत बजरे पर
आकाश की नीली झील में,
उगे हैं जहाँ स्निग्ध शुभ्र
तारों के पुष्प भी
पी लूँ! पी लूँ!

सब का सब
सौन्दर्य का यह छलकता पात्र
नींद को दूर भगाऊँ
डूब जाऊँ इस स्वच्छ गीली
रात की गुफ़ा में।

जादू भरी यह रात
करती है विह्वल मुझे
करूँ क्या! करूँ क्या!

दो कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं की मज़बूत
पर तृतीय पंचवर्षीय योजना की सफल कार्य-
ो आरम्भ हो चुकी है। गाँव-गाँव में विकास-
ानाएँ चल रही हैं। बड़े और छोटे पैमाने पर
ने वाले उद्योगों तथा कृषिकार्यों में--प्रत्येक
ह समान गति एवं कर्मशीलता लक्षित हो रही
क्रमशः ७२ और १५२ करोड़ की लागत से
प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के
ात् इस तृतीय योजना में पश्चिम बंगाल पर
३.१५ करोड़ रुपये व्यय किये जाने का अनुमान
निश्चय ही यह अनुदान वृद्धि बहुत महत्त्वपूर्ण है।

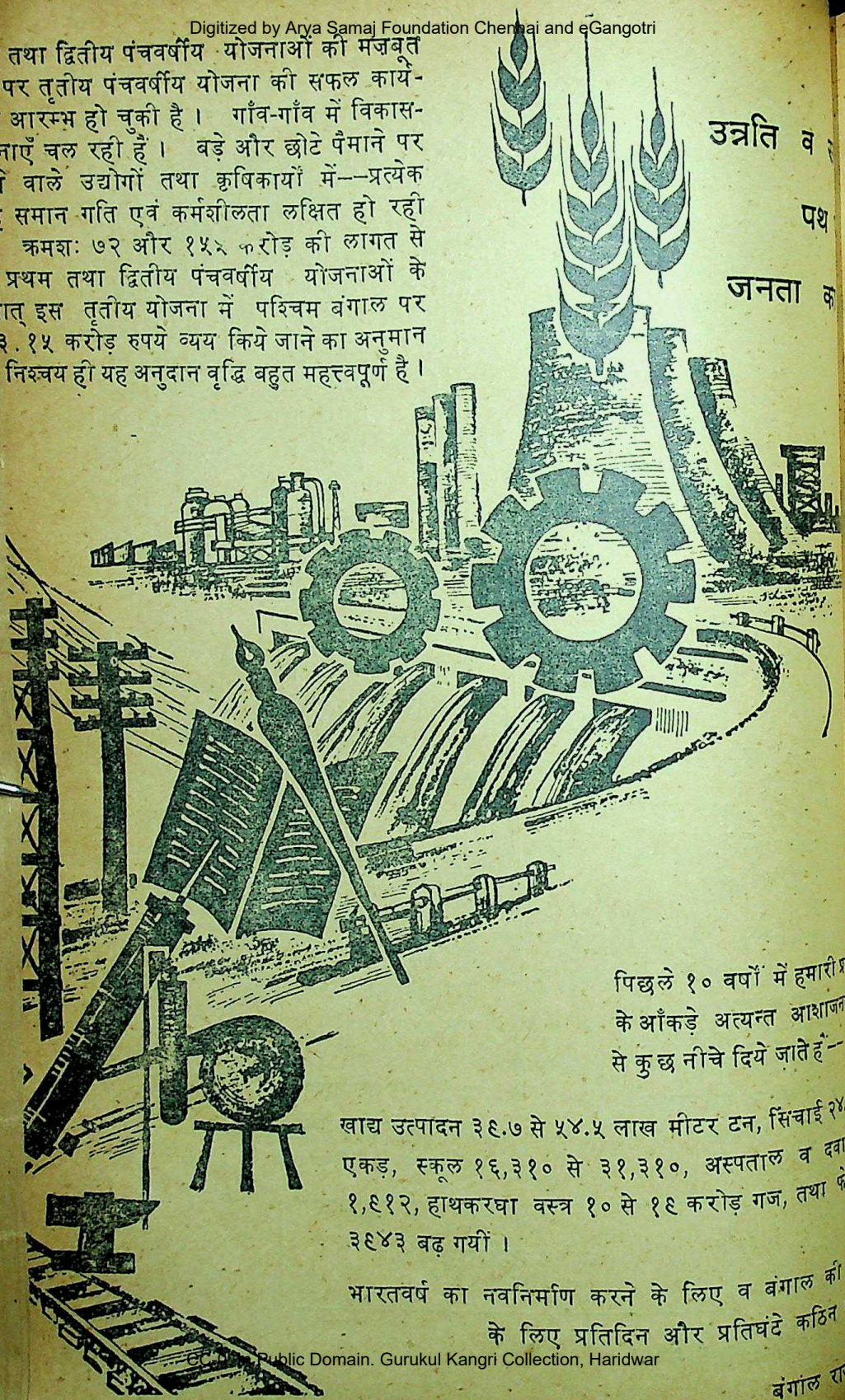

उन्नति व

पथ

जनता क

पिछले १० वर्षों में हमारी प्र
के आँकड़े अत्यन्त आशाजनक
से कुछ नीचे दिये जाते हैं--

खाद्य उत्पादन ३९.७ से ५४.५ लाख मीटर टन, सिंचाई २४.
एकड़, स्कूल १६,३१० से ३१,३१०, अस्पताल व दवाख
१,९१२, हाथकरघा वस्त्र १० से १९ करोड़ गज, तथा फेंद्
३९४३ बढ़ गयीं।

भारतवर्ष का नवनिर्माण करने के लिए व बंगाल की
के लिए प्रतिदिन और प्रतिघंटे कठिन श्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ अन्तर-भारतीय कविताओं के इस खण्ड में हम यहाँ स्थानाभाव के कारण केवल सात भारतीय भाषाओं की कविताएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। शेष सात भारतीय भाषाओं की कविताएँ आगामी अंक में प्रकाशित की जाएँगी। यहाँ प्रस्तुत सात भारतीय कविताएँ हैं :

- असमिया : प्रवीणा शइकिया
- उड़िया : कुमारी तुलसी दास
- गुजराती : दिनमणि शाह
- मराठी : सरिता पदकी
- कश्मीरी : ललिता मिरचन्दानी
- कन्नड़ : सी० रत्ना शर्मा
- तेलुगु : नायनि कृष्ण कुमारी

■ इस खण्ड को क्रियान्वित रूप देने में हमें श्रीगोपाल माहेश्वरी 'प्रताप' से सहयोग मिला है। ज्ञानोदय उनका आभारी है।

अन्तर - भारतीय कवियित्रियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ प्रवीणा शइकिया (असमिया)

जन्म : १९३१ ई.। शिक्षा : बी. ए. गोह
विश्वविद्यालय। कुछ दिनों तक गोहाटी
अध्यापन, लेकिन विवाह के बाद छोड़ दि
पति श्री चन्द्र प्रसाद शइकिया असमिया के प्र
नये कथाकार। लेखन : कविता तथा कहानी

(अनु० श्रीगोपाल माहेश्वर

मेरी पहली मुलाकात

उसके साथ मेरी पहली मुलाकात हुई थी एक मौन नदी के तीर पर
जिसके चारों ओर ऊँचे-नीचे पहाड़ घिरे हुए थे—
जिनका वर्ण-विन्यास था वर्णनातीत, व्याख्याविहीन
और छन्दहीन, रंगीन थी वह क्षुद्र-सी नदी।
किन्तु कभी-कभी मुझे लगता है, वह नदी भी नहीं थी,
वह तो जैसे मेरा ही भाराक्रान्त हृदय-मात्र था, जैसे एक पाषाण फ्रेम में
एक नारी का जीवन बन्दी हो गया हो।

ऐसे एक निर्जन, असीम एवं स्तब्ध परिवेश में
उसके साथ मेरी नज़रों का आदान-प्रदान हुआ था
प्रशांत आँखें : वह मेरी आँखों में आँखें डाल कर देखता रहा
मैं भी मूक उसके बलिष्ठ रूप से अपनी प्यास बुझाती रही।

मध्यरात्रि : बिजली चमक रही थी और बिजली की चमक से
पहाड़ दमक रहे थे। और सब ज्यों का त्यों था।
आँखों में आकांक्षाओं का ज्वार लिए वह मुझे निहार रहा था।
वह स्तब्ध खड़ा रहा, वह मूक खड़ा रहा। उसकी नीलाभ आँखों में
बादल एवं बिजलियों का खेल बन्दी बन कर रह गया।

दिनान्त तक उसका एक नाम था, अपना एक परिचय था
किन्तु विशाल प्रेम में बँधी हुई स्थविर इस नदी के तीर पर
चढ़ते-उठते पहाड़ों की निश्चल रेखाओं के सामने वह
अपना परिचय भूल गया—भूल गया अपना नाम।

रात्रि का अन्तिम प्रहर : सब कुछ ज्यों का त्यों था।
किन्तु अकस्मात् न जाने क्या हुआ, बिजली जोरों से चमकी
बादल गरजे, वह मेरी ओर बढ़ा, मुझे अपनी बाहों में भर कर
धीमे से बोला—"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ!"

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• कुमारी तुलसीदास (उड़िया)

जन्म : २४ जनवरी १९४० । शिक्षा : साहित्य शास्त्री (संस्कृत), कोविद (हिन्दी) । आजकल उत्कल विश्वविद्यालय में बी. ए. की छात्रा ।

प्रकाश्य कृतियाँ : अन्ध-रश्मि, स्मृति संखालि, मोक-विता सुरभि इत्यादि कविता-संग्रह । पिछले पाँच-छः वर्षों में उड़िया की प्रायः सभी श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में कविताओं का प्रकाशन ।

[अनु० श्रीगोपाल माहेश्वरी]

•

द्वन्द्व

सन्ध्या-तारा आकाश में ऊँघता है, उतरती आती है नील मेघ रात्रि
अमावस के गहन अन्धकार तले, शोभा बिखेरती है सौदामिनी छाती !
स्वप्नातुर प्रभंजन के बन्दरगाह में वज्र पढ़ता है प्रलय-मन्त्र
ईथर के निष्प्राण स्नायु में झंझावात करता है अकारण गश्त !
फुटपाथ की भीड़ कम हो आती है, शीत पैदा करता है स्वप्न के कंपन
आयुष्मती कृष्णा रजनी की वेणी के बन्धन खुल जाते हैं--
और सर्वहारों के दल का विकल क्रन्दन, आतुर होकर
उठाता है अन्तर में लाखों प्रश्न--जीवन क्या मृत्यु का ईंधन ?
सृष्टि क्या स्रष्टा का विलास ? इतिहास क्या बर्बरता जाया ?
मुक्ति केवल युक्ति का निर्यास ? परम्परा उर्णनाभि माया ?
शासन क्या शासितों का हत्यारा ? वैभव क्या अभाव-पीड़क ?
गौरव क्या रौरव का भूषण ? धर्म केवल कोक-शास्त्र के गीत ?
यौवन क्या जघन्य फ़साद ? सभ्यता क्या अश्लील व्यंजना ?
सत्य क्या सचमुच मिथ्या की छलना ? यह जमीं क्या करोड़पतियों की क्रीता ?
निःस्व का जन्म क्या केवल कूर्म होना, अन्न-वस्त्र के बिना परिश्रम करना ?
जीवित रहना क्या गोष्ठीगत स्वार्थ ? इससे तो मृत्यु शुभ है, श्रेयस्कर है ।
द्वन्द्व-सरीसृप का होगा नाश, पहले खुदेगी विश्व की कब्र ?

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनमणि शाह (गुजराती)

जन्म : १९१३ में, पूना में। बचपन से ही कविता की ओर रुझान। पति श्री सी. पी. साह बम्बई में 'पॉटरीज़' के व्यवसायी। काव्य-संग्रह 'दीपिका' गुजराती में अत्यधिक लोक-प्रिय। विदेश-यात्रा : चार बार— इंग्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका, इटली और स्वीटज़रलैंड। आजकल बम्बई में रह कर काव्य-सृजन।

●

रंग गुलाल

गुलाब जैसा गुलाल मेरे तन मन पर छिड़का
मतवाले प्रियतम ने मुख पर मल ही दिया गुलाल
सखि री मल ही दिया गुलाल।

सुबह सुबह जल भरने निकली
घेर लिया सखियों ने मिल कर,
घबरायी, मैं विवश अकेली
किया हाल बेहाल।
सखि री मल ही दिया गुलाल॥

प्रभु दर्शन को मन्दिर जाती
होली खेल रहे नर नारी,
धरा हुई अरुणिम ज्यों युवती
हो लज्जा से लाल।
सखि री मल ही दिया गुलाल॥

सांझ ढली, माँ-घर आई थीं
भाव भरी एकाकिन भाभी,
धूम मची रंगों की, हँसते
रंग बिरंगे गाल।
सखि री मल ही दिया गुलाल॥

रात हुई मैं चढ़ी अटारी
पिया खड़े थे ले पिचकारी,
एक न मानी, विसुध किया सखि
प्रेम रंग को डाल।
सखि री मल ही दिया गुलाल॥

●

अनु० कुमारी मधु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▪ सरिता पदकी (मराठी)

जन्म : १९२८ ई.। शिक्षा : एम. ए.; पूना विश्वविद्यालय। प्रकाशन : बाधा (नाटक), पुरस्कृत। चैत्र-पुष्प (काव्य-संग्रह)। इसके अतिरिक्त अनेक रचनाएँ मराठी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। वर्तमान निवास : पूना।

●

राह देखूँ

राह देखूँ--

कातर दुखती कातर-बेला में
ढँक कर आती है हृदय पर जब गहरी छाँव
निश्वास लूँ--"आएगा, ज़रूर कोई आएगा
मेरा यह अकारण एवं मूढ़ सौहार्द जान कर
सीने से लगा लेगा कोई मुझे और मेरा सारा भारीपन दूर हो जाएगा।"
ऐसे स्वप्न मिलते हुए-से खो जाते हैं
और आँखें गीली हो आती हैं...

राह देखूँ !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राह देखूँ--

प्रसन्न मुस्कुराते हुए मध्याह्न में
ऊपर नीला निरामय फूला हुआ हो हर्ष असीम
नीचे जल में खेलता हो झिलमिलाता हुआ रेशम
वैसे नाचते हुए स्वच्छन्द तरल आनन्द में
कोई आए, आए कोई
नयनों में लेकर विस्मित स्निग्ध नीलिमा
और अधरों पर हँसता हुआ कुछ कूजन
और फिर भूल कर सब कुछ
चेतना केवल नीली लय की बच जाए...
राह देखूँ !

राह देखूँ--

गगन में श्रावण के श्यामल मेघ जब झुक आएँ
अन्तर के वीणारव कल्लोलित हो उठें
वह नाद, वह वेध, वह सुखद व्यथा
सब कुछ असाध्य हो उठे
कोई उन्मद तूफ़ानी हवा की तरह बाँहों में भर ले
चेतना जागृत करते हुए प्राण अचेतनवत् आकर मिल जाए
और क्षितिज उजला होने पर तृप्ति के स्मित
उसमें फैला कर मिला दूँ...
राह देखूँ !

राह देखूँ--

राह देखूँ जब कभी भी,
जब भी मेरा मन चाहे !
क्यों दुख हो ? मिलन हो या न हो ।
राह देखूँ !

---अनु० अनिल कुमार •

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● ललिता मिरचन्दानी (कश्मीरी)

जन्म : १९३९ ई. । शिक्षा : जम्मू-कश्मीर से मैट्रिक, दिल्ली से इण्टरमिडिएट । आजकल गोहाटी विश्वविद्यालय में बी. ए. की छात्रा । मातृभाषा : सिंधी । किन्तु जन्म से ही कश्मीर में काफ़ी दिन तक रहने के कारण कश्मीरी पर भी पूर्ण अधिकार है । सिन्धी और काश्मीरी दोनों भाषाओं में काव्य-रचना । अनेक कविताएँ—कश्मीरी और सिन्धी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित । ●

किन्तु तुम नहीं आए !

ओ प्रियतम,

तुम नहीं आए !

बहुत दिन हो गए परदेस गए तुम्हें
बार-बार पूनम को चन्दा ने आकर
घर-आँगन में ज्योत्स्ना बरसाई,

अमावस के अँधियारे को बार-बार
लख मैं भी बड़ी घबराई ।

बसन्त आकर तुम्हारी याद नए सिरे से दिला गया
पतझर आया और मेरे सरीखा बीत गया
अब वापस घूम-फिर कर बसन्त आया है—
काली जामुन की डाली की ओट से
काली कोयल कुहू-कुहू पुकारती है,
किन्तु तुम नहीं आए !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ प्रियतम,

तुम्हारी याद में 'गर कमरे की सफेदी पर
कोयले की एक रेखा प्रतिदिन खींचती
(तो) अब तक कमरे की पूरी सफेदी ही
कालिख बन गई होती।
पर तुम नहीं आए!

ओ प्रियतम,

तुम्हारे प्यारे आइने के सामने खड़ी होकर
मैं अपना सोलह 'सिंगार' करती हूँ।
तुम्हारे कंधे को अपने बालों से उलझाती हूँ
तुम्हारे कपड़ों को अपने गालों से सहलाती हूँ
पर नहीं, डर भी लगता है--

कि कहीं सुहाग-बिन्दी ही कमीज पर न लग जाए
वर्ना तुम्हारे दोस्तों ने सुहागरात की सुबह को
जिस तरह तुम्हारा मजाक उड़ाया था....
मैं सोचती हूँ और शर्माती हूँ,
आइने में देखती हूँ और गोरे ललाट पर
पसीने की बूँदें उभर आती हैं!
पर तुम नहीं आए,
ओ प्रियतम!

--अनु० नीलिमा झँवर ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ सी० रत्ना शर्मा (कन्नड़)

जन्म : सन् १९३८ ई.। शिक्षा : बी. ए., मैसूर विश्वविद्यालय। आजकल बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र में एम. ए. की छात्रा। प्रकाशन : कन्नड़ की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तकरीबन ५० कविताएँ प्रकाशित। बालोपयोगी कहानियाँ भी लिखती हैं।

विश्लेषण

दोपहर की वर्णहीन धूप ने
एक दिन मुझसे पूछा :
"जीवन का अर्थ क्या है ?
बेकार घूमना, आवारागर्दी करना ?
या नाटकों में बच्चकाने पार्ट अदा करना ?
विलायती फलों के नाम झटपट कह देना ?
'इवनिंग इन पेरिस' से नहा कर पार्क में टहलना ?
दार्जिलिंग, शिमला में छुट्टियाँ बिता कर
दो आने के अखबार की सुर्खियाँ पढ़ कर
राजनीति की चर्चा करना और फिर भूल जाना
पार्टी, कार्पेट और कश्मीरी टोपी का गौरव ?"

नहीं-नहीं ! यह सब स्वच्छन्द स्थिति और क्षयिष्णु मरण की बातें हैं।
किन्तु असल उत्तर क्या है ?
मैं मौन खड़ी रहती हूँ !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक दिन
हरी-हरी कच्ची दूब ने मुझसे पूछा :
"प्रेम का अर्थ क्या है ?
बॉक्स में बैठ कर सिनेमा देखना ?
रेस्तोराँ में बैठ कर जूक-बाक्स के गाने सुनना ?
नेत्रों की रिकार्ड को नयी-नयी सुइयों से
बजाना, बजाना, बार-बार बजाना ?
रिकार्ड तो वही शब्द सुनाएँगे
घूम-फिर कर आख़िर कितना मन बहलाएँगे ?"
नहीं-नहीं ! यह नहीं ! यों तो अक्षम क्लीवता तृप्त होना चाहती है ।
किन्तु असल उत्तर क्या है ?
मैं मौन लेटी रहती हूँ !

●

नीले रंग की चिड़िया ने संगीत के स्वर में
एक दिन मुझसे पूछा था :
"पृथ्वी का अर्थ क्या है ?
पैरों तले रौंदी जाने वाली
कंकड़ और मिट्टी मिली यह ज़मीन ?
पगडण्डी और राजपथ की अठखेलियाँ ?
या फिर मानचित्र में देखा हुआ ग्लोब ?"

क्षमा करो ! मैं इन प्रश्नों का उत्तर नहीं जानती ।
पर इतना जानती हूँ (कि) तुम्हारे सारे सम्भावित उत्तर भी ग़लत हैं ।
सत्य के विपरीत हैं ।
हित के विपरीत हैं ।
मेरा इतना जानना भी क्या कुछ कम है ?

—अनु० पी० के० नारायणमूर्ति ●

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ नायनि कृष्ण कुमारी
(तेलुगु)

जन्म १९३० में गुंटूर ज़िले के नरसरावपेट में। तेलुगु के प्रख्यात कवि श्री नायनि सुब्बाराव की सुपुत्री। शिक्षा : एम. ए. संस्कृत। उस्मानिया विश्वविद्यालय में संस्कृत की प्रध्यापिका तथा आन्ध्र-प्रदेश साहित्य-अकादमी की सदस्या। कविता, कहानी, उपन्यास, एकांकी-नाटक, रेडियो-वार्ता सभी कुछ सफलता-पूर्वक लिखती हैं।

●

अनु० डी० मंजुलता

क्रुद्ध प्रकृति

(महाबलेश्वर में पाँच हज़ार फुट ऊँचे पश्चिमी पर्वत पर चढ़ कर :)

तेज छुरी जैसी वायु है
झकझोरने लगी सारे बदन को
होने लगी है पलकों से प्रवाहित
बरबस आँसू की धारा !

बादल घिर-घिर आये
अँधियारा छाने लगा
दिल दहल उठा मँडराते देख
काले-कजरारे बादल सिर पर !

काँपने लगे अंग-प्रत्यंग
पग आगे को नहीं बढ़ रहे
आजू-बाजू में खड़े थे
ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखर अनेक !

उन्हें देख सारा बदन
सिहर उठा जैसे वे
काले नाग थे वहाँ खड़े
डँसने को तैयार मुझे !

एक कदम आगे बढ़ाया,
कि वे सारे के सारे फन फैला कर
मौत के घाट उतार दें या
तत्काल ही मुझे कृष्णत्व प्रदान करें !

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

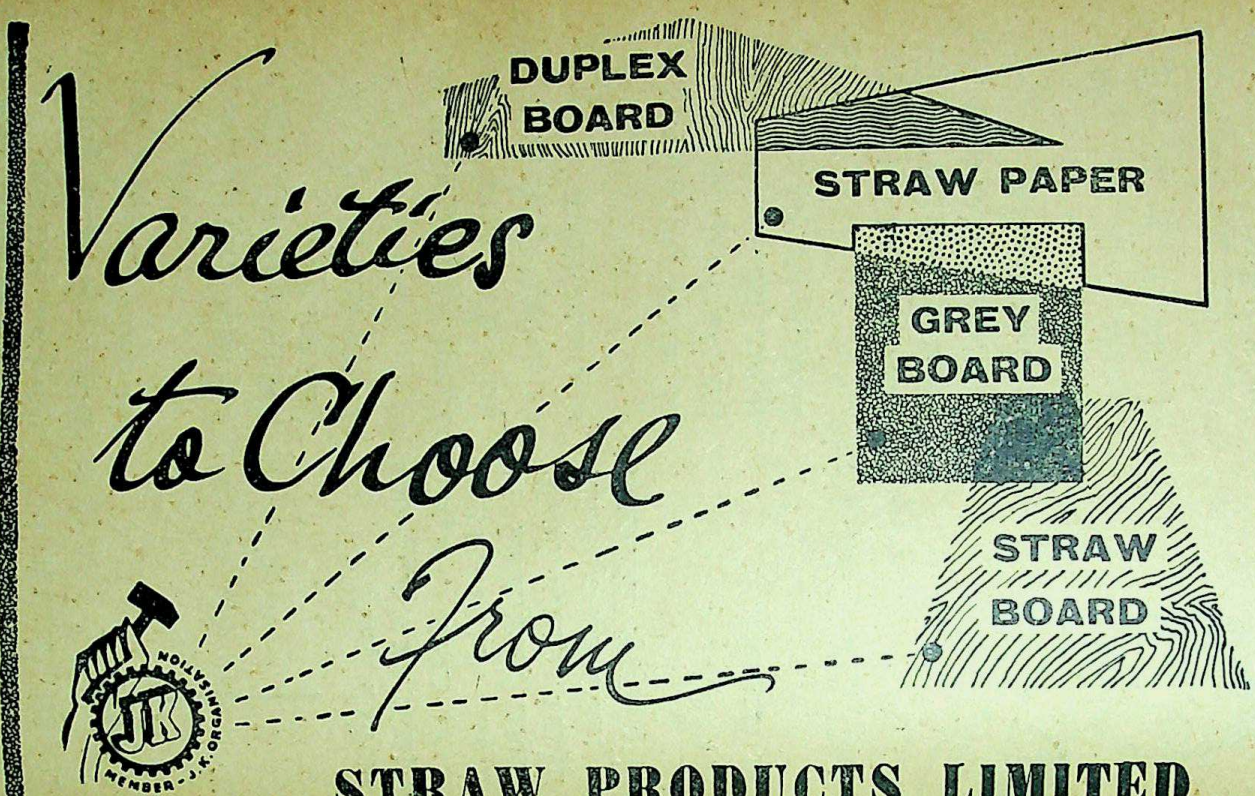

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्टरव्यू-लेखक

■**जन्म** : राजस्थान में सन् १९३४ में। **शिक्षा** : बी० ए० ऑनर्स (अंग्रेज़ी) और एम० ए० (हिन्दी) कलकत्ता विश्वविद्यालय से क्रमशः १९५४ और १९५६ में। पिछले चार वर्षों से 'ज्ञानोदय' के सम्पादक। इसके पूर्व करीब दो वर्ष 'सुप्रभात' का सम्पादन किया था।

■**कृतियाँ** :

१. **पत्थर का लैम्प-पोस्ट** : (विविध साहित्यिक विधाओं में लिखी हुई मौलिक रचनाएँ : १९६० में प्रकाशित)

२. **कथान्तर** : (इक्कीस देशों की अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक कहानियाँ : १९६१ में प्रकाशित)

३. **नयी किताबों पर बातचीत** : (एक विशेष कथा-शैली में लिखी समीक्षाओं का संग्रह : शीघ्र प्रकाश्य)

४. **सागर पार की हलचलें** : (आधुनिक युग के विश्व-प्रसिद्ध साहित्यकारों और दार्शनिकों के महत्वपूर्ण आत्मकथनों और लेखों का संग्रह : शीघ्र प्रकाश्य)

५. **बीसवीं सदी के एक राजपूत की डायरी** : (उपन्यास, अभी अपूर्ण)

समीक्षित लेखिकाएँ

■**प्रस्तुत इण्टरव्यू में समीक्षित चारों कथा-लेखिकाओं का आत्म-परिचय इसी विशेषांक के प्रारंभिक पृष्ठों में उनकी रचनाओं के साथ प्रकाशित है।**

एक रंगमञ्चीय काल्पनिक इण्टरव्यू

हिन्दी की चार नवोदित कथा-लेखिकाओं और कथा-नायिकाओं से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●

मायापुरी

कथा-लेखिका : शिवानी ; कथा-नायिका : शोभा ।

एक लड़की : दो रूप

कथा-लेखिका : रजनी पनिकर ; कथा-नायिका : माला ।

पचपन खम्भे : लाल दीवारें

कथा-लेखिका : उषा प्रियम्वदा ; कथा-नायिका : सुषमा शर्मा ।

सो क्या जाने पीर पराई

कथा-लेखिका : मीरा महादेवन ; कथा-नायिका : माधवी ।

●

प्रस्तुत इण्टरव्यू में कथा-नायिकाओं के शब्द-चित्र, उनके हाव-भाव और उनके उत्तर, सम्बन्धित उपन्यासों के उपयुक्त स्थलों से लिये गये हैं, या कम से कम यह प्रयत्न तो किया ही गया है कि वे यथा-सम्भव पात्रानुकूल हों ।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवानी : 'मायापुरी' की लेखिका

[पहला दृश्य]

(कमरे में एक बड़ी-सी अर्द्ध-गोलाकार मेज़ है, जिस पर अन्य सामान्य चीज़ों के अतिरिक्त हिन्दी की महिला-लेखिकाओं की हाल की प्रकाशित चार कथा-कृतियाँ रखी हैं ; दाहिने कोने पर सफ़ेद रंग का एक फ़ोन है। पीछे की ओर दीवार पर आधुनिक कला-शैली का एक चित्र टँगा है, और बायीं ओर की दीवार में एक बड़ी खिड़की है, जिसमें से बाहर की ओर दूर-दूर तक ऊँची-ऊँची इमारतों का ऊपरी हिस्सा दिखायी दे रहा है।

अपनी दुबली काया को, शुभ्र श्वेत खादी के वस्त्रों से आवेष्टित किये, कुर्सी पर आलोचक जी विराजमान हैं।

कमरे का दरवाज़ा खुलता है और दो महिलाएँ भीतर आती हैं। दरवाज़ा स्प्रिंगदार है, इसलिए अपने-आप वापस बन्द हो जाता है।

दोनों मेज़ के पास जाती हैं और उनमें से एक अपना और अपनी साथिन का परिचय देती है :)

लेखिका : मैं शिवानी--'मायापुरी' की लेखिका। और यह मेरी कथा-नायिका--शोभा।

(आलोचक जी अपना पढ़ने वाला चश्मा आँखों से उतार कर मेज़ पर रख देते हैं और मेज़ पर रखा हुआ चश्मा आँखों पर चढ़ा लेते हैं। फिर कथा-नायिका शोभा की ओर देखते हैं : उसकी सादी साड़ी भी ढंग से पहनी गयी थी, और उसके खद्दर के ब्लाउज़ के चौकोर गले से उसकी पतली सोने की चेन शरीर के रंग से घुल-मिल-सी गयी थी। उसके प्रशस्त गौर ललाट पर कुमकुम की एक छोटी-सी बिन्दी थी, लेकिन उस एकमात्र बिन्दी ने ही उसके निराभरण शृंगार-विहीन सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया था।)

आलोचक : इस सुन्दर निर्माण के लिए, मैं आपको बधाई देता हूँ, शिवानी जी ! आपकी कथा-नायिका सचमुच 'मारबल प्रिंसेस' है !

(शोभा के अधरों पर स्मित हास्य की रेखा खिंच जाती है, और उसके गालों में दो गहरे गढ़े पड़ जाते हैं। वह सकुचा कर अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौम्य, शान्त, स्थिर दृष्टि नीचे झुका लेती है।)

आलोचक : लेकिन एक प्रश्न उठता है शिवानी जी, **(चश्मे के मोटे काँचों के पीछे एकटक देखते हुए)** अपने इस सुन्दर संवेदनशील निर्माण के प्रति आप इ निष्ठुर कैसे हो सकीं ? लू लगने से कुछ ही क्षणों में पिता की मृत्यु, की बारात से लौटने पर एक ही रात में हैज़े से तीनों भाइयों की मृ ओस में पड़ी रहने से ज्वर द्वारा माँ की मृत्यु, और हवाई जहाज़ की दुर्घ में प्रेमी सतीश की मृत्यु। किस निर्ममता से आप इसका एक के द दूसरा सहारा छीनती चली जाती हैं ! क्या यों ही यह कम दुःखी थ क्या जीविकोपार्जन के लिए ही इसे कम संघर्ष करने पड़ रहे थे, और आस-पास के इन्सान रूपी हैवानों से स्वयं को बचाने के लिए ही इसे परेशानी उठानी पड़ रही थी, जो एक के बाद एक करके आप इसके आत्मीय जनों को भी इससे छीनती चली गयीं ?

शिवानी : इसलिए, कि मैं मानती हूँ कि दुःख इन्सान को माँजता है, उसके व्यक्तित्व विकसित करता है, उसकी छिपी हुई शक्तियों को उभार कर सामने लाता

आलोचक : लेकिन दुर्घटनाओं द्वारा पात्रों की मृत्यु कराकर, उन्हें कथा-मंच से हटा वाली यह स्थूल टेकनिक तो आज ठीक नहीं समझी जाती। अगर आप यही प्रभाव दिखलाना भी था तो इसके लिए आप अधिक सूक्ष्म और आधुनि उपाय काम में ला सकती थीं। **(कुहनियों से कलाई तक दोनों बाहें मे के ठंडे शीशे पर रख लेते हैं)** खैर, एक प्रश्न और है : आपके प्रायः चरित्र 'टाइप्स' हैं। परिस्थितियों के अनुसार उनका विकास नहीं होत वे जैसे शुरू में हैं वैसे ही अन्त तक बने रहते हैं : शुरू में खराब हैं अन्त तक खराब ही हैं ; शुरू में अच्छे हैं तो अन्त तक उतने ही अच्छे बने रहते हैं। यानी परिस्थितियाँ कैसी भी हों, वे अपने निर्माता के इशा के अनुसार, चाबी भरे खिलौनों की तरह पेटेण्ट ढंग से हाव-भाव व्यवहार करते हैं। **(क्षण भर रुक कर मेज़ पर कुछ आगे झुकते हुए)** सबसे अधिक शिकायत तो आपकी इस शोभा से ही है। आप इसे अ कल्पना के अनुरूप एक आदर्श भारतीय नारी बनाना चाहती हैं—परम्परा त्यागमयी, करुणामयी भारतीय नारी ; और यह बिना ज़रा भी विरोध वैसी ही बन जाती है। मैं पूछता हूँ, यह देवी बनने की जगह, हाड़-मा की एक साधारण औरत की तरह अपना भला-बुरा क्यों नहीं सोचती ? स्वयं इसका प्रेमी सतीश इसके साथ शादी करने को तैयार है, बल्कि आ है, तो यह स्वीकार कर के अपना और सतीश का जीवन क्यों सुखी बना लेती ? क्यों सुख और सुरक्षा का रास्ता छोड़ कर, दुःख और अनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पथ पर भटकती रहती है ? क्या बचा है इसके जीवन में अब—— सिवाय अन्धकार के ? क्या आपको अपने इस कृत्य पर पश्चाताप नहीं हो रहा है, शिवानी जी ?

(उत्तर में कथा-लेखिका के कुछ कहने के पहले ही, कथा-नायिका दृढ़ आवाज़ में)

शोभा : इनका मैं नहीं जानती, कम से कम मुझे तो अपने इस चुनाव पर बिलकुल भी पश्चाताप नहीं है। नारी जब प्रेम करती है तो अपना भला-बुरा भूल जाया करती है, वह अपने प्रेम को कभी भी स्वार्थ और लाभ के तराजू पर नहीं तौला करती। प्रेम में लिया नहीं जाता, मात्र दिया ही जाता है, और मैंने अपने प्रिय-पात्र के लिए अपना जो कुछ त्यागा है, उसकी स्मृति ही मेरे शेष जीवन को काटने के लिए पर्याप्त है। ० ० ०

(शोभा की अबतक की सौम्य, शान्त, स्थिर दृष्टि अब नीचे झुकी हुई नहीं है, आलोचक की ओर दृढ़ता से सीधी उठी हुई है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में अपार्थिव तेज है और उसकी सुडौल लम्बी ग्रीवा के गर्वीले मोड़ में है आलौकिक भव्यता। आलोचक से उस दृष्टि का तेज़ सहा नहीं जाता। वे अपनी दृष्टि नीचे झुका लेते हैं और सामने रखी नोटबुक में मशग़ूल हो जाते हैं।) ० ० ०

रजनी पनिकर : 'एक लड़की—दो रूप' की लेखिका

■

दूसरा दृश्य

आलोचक : **(अतिरिक्त उत्साह के कारण इस बार आलोचक जी अपना चश्मा बदलना भूल जाते हैं)** ओह, तो आप ही रजनी पनिकर जी हैं ? भई, सबसे पहले आपको बधाई दे दूं कि आपके इस **'एक लड़की : दो रूप'** का शिल्प मुझे भाया है। सच तो यह है कि इधर मैंने हिन्दी की लेखिकाओं के जितने भी उपन्यास पढ़े, उनसे मुझे जो एक सामान्य शिकायत थी, वह उनका कमज़ोर शिल्प था। आपका यह उपन्यास पढ़कर पहली बार लगा कि शिल्प के प्रति जागरूक किसी आधुनिक लेखिका ने इसे लिखा है। **(ज़रा रुक कर)** ओह, क्षमा करियेगा **(अब उन्हें याद आता है और वे फुर्ती से चश्मा बदलते हैं)**; आप माला जी हैं न——रजनी जी के इस उपन्यास की कथा-नायिका ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों के
स्वास्थ्य,
सौन्दर्य
एवं सुखी
जीवन के लिए

बैद्यनाथ
अशोकारिष्ट

आज ही से व्यवहार करें

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर · इलाहाबाद (नैनी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यों माला की आयु तीस वर्ष के लगभग है, लेकिन वह देखने में अपनी आयु से बहुत छोटी लगती है। न वह असुन्दर है और न बहुत सुन्दर ही। बीच मेल की-सी है। वह शरीर से भी ज़रा अधिक ही दुबली है, लेकिन यों देखने में बुरी नहीं लगती। उसके केश अभी काले हैं, लम्बे हैं जिन्हें उसने जूड़े में बाँध रखा है। उसके गालों पर छाई लाली बुरी तरह लगायी रूज़ की तरह लगती है। उसने 'लो कट' और बिना बाँह का ब्लाउज़ पहन रखा है। वह चिढ़े हुए स्वर में उत्तर देती है जिससे उसकी बदमिज़ाजी और बात-बात पर झल्ला उठने की आदत का पता चलता है :)

माला : ग़नीमत है कि आपको इस नाचीज़ का भी ख़याल आया तो !

(कुर्सी पर बैठने के लिए माला एक बार घूमती है तो उसकी पीठ क्षण भर के लिए आलोचक जी की ओर हो जाती है और उनकी पैनी दृष्टि से यह छिपा नहीं रहता कि माला की गर्दन के नीचे वाली हड्डी ज़रूरत से ज़्यादा उभरी हुई है।)

आलोचक : नहीं नहीं माला जी, मैं तो आप ही की तारीफ़ कर रहा था। जिस तरह से आप अपने व्यक्तित्व के दो विभाजित अंगों को समझती हैं और सूक्ष्मता से उनका विश्लेषण करती चलती हैं, वह तो भई अद्‌भुत है ! आपकी व्यवहार-कुशलता की भी मैं दाद देता हूँ। चूँकि कानोड़िया जी से आपको अपना स्वार्थ सिद्ध करना है, इसलिए उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए आप अनायास ही 'च्यूइंग गम मेलार्ड मार्का' हँसी हँस पड़ती हैं। आप जानती हैं कि राजू शादीशुदा है, आपके प्रति उसका रुख़ महज़ दो घड़ी के मन-बहलाव का है ; फिर भी आप उसे छूट देती हैं, क्योंकि उसके पास बड़ी-सी ख़ूबसूरत कार है जिसमें बैठना आपको अच्छा लगता है, उसकी जेब में पैसे हैं जिन्हें वह आपके लिए रेस्त्राओं के बिल पटाने और पिक्चर्स की टिकटें ख़रीदने में ख़ुशी से ख़र्च देता है। (**गहरे तक भेदने वाली दृष्टि से माला को देखते हुए**) लेकिन माला जी, आप इतनी समझदार होते हुए भी स्वयं को अपने परिवार के शोषण का शिकार क्यों बन जाने देती हैं ? आप जानती हैं कि आपके माँ-बाप आपकी शादी तक इसलिए नहीं करना चाहते कि आपके द्वारा होने वाली आमदनी बन्द हो जाएगी। फिर आप ही उनके लिए क्यों अपना भविष्य नष्ट करती हैं, अविवाहित जीवन के सूनेपन को सहती हैं, और दिन-रात खट कर जो कुछ कमाती हैं वह सब चुपचाप लाकर उनकी हथेली पर रख देती हैं ? आप जैसी आधुनिका से तो इस तरह के व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती !

माला : (**भृकुटी तन जाती है**) देखिये, नारी चाहे जितनी आधुनिका हो, उसके कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

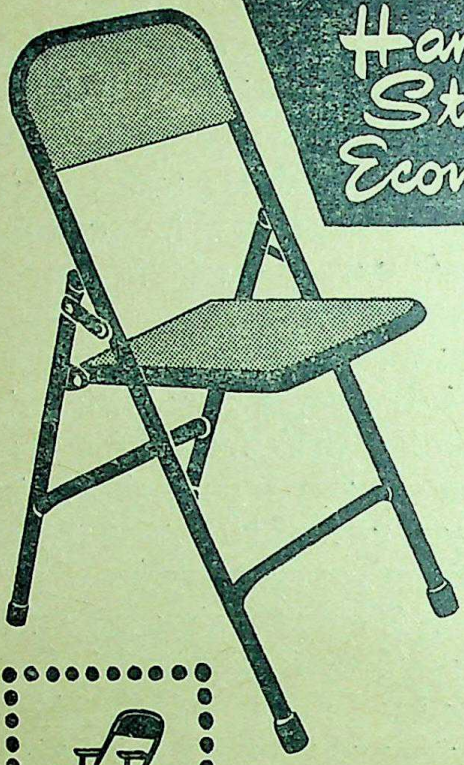

Handsome
Sturdy
Economical

HANSA

STEEL FURNITURE

INTER-CONTINENTAL EXPORTS

12-B, Netaji Subhas Road, Calcutta-1.

PHONE : 22-2926 TELEGRAMS : MASCHINIMP.

EAA/ICE.2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कमज़ोर पहलू होते हैं जिनसे वह चाह कर भी, स्वयं को अलग नहीं कर सकती। आप बिना नारी बने इस चीज़ को नहीं समझ सकते।

आलोचक : (कुछ देर को अवाक्-से हो जाते हैं) ख़ैर, आपको अब अधिक परेशान नहीं करूँगा। यों ही क्या आप कम परेशान और कुंठित हैं! एक तो तीस वर्ष तक के एकाकी जीवन का दुख और सूनापन, उस पर अब आपने धंधा भी गली-मोहल्ले के छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाने का शुरू कर दिया है—पांच रुपया महीना फ़ीस लेकर! अरे हाँ, मालाजी, क्या आप अपने इस नये कार्यक्षेत्र से संतुष्ट हैं? क्या अपने जीवन के शेष दिन इसी तरह बच्चों को पढ़ा कर गुज़ार देंगी?

माला : (तिक्त स्वर में) हाँ, इन्हीं बच्चों के साथ गुज़ार दूंगी, क्योंकि आपके इस सभ्य समाज का असली चेहरा मैंने देख लिया है और मुझे उससे दिली नफ़रत हो गयी है। मेरे मन में कई घाव हैं, कुछ तो नासूर बन गये हैं। अब तक मैंने इतने दुःख सहे हैं कि अब भविष्य के बारे में मैंने सोचना ही बन्द कर दिया है। सुना आपने, मैं इसी तरह बच्चों को पढ़ा कर अपना शेष जीवन गुज़ार दूंगी, लेकिन आपके इस नारकीय समाज में क़दम नहीं रखूंगी।

(आलोचक जी घबड़ा कर सामने रखी नोटबुक में लिखने में लीन हो जाते हैं। वे नज़रें ऊपर नहीं उठाते, लेकिन उनकी काल्पनिक आँखों के सामने वापस लौटती माला की गर्दन के नीचे वाली ज़रूरत से ज़्यादा उभरी हुई विशाल आकार में नाचती दिखाई देती है।) ० ० ०

उषा प्रियम्वदा : 'पचपन खम्भे—लाल दीवारें' की लेखिका

■

[तीसरा दृश्य]

(इस बार दो हम-उम्र और देखने में भी बहुत-कुछ एक जैसी ही युवतियाँ भीतर आती हैं तो आलोचक जी के लिए यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि उनमें से कौन लेखिका है और कौन नायिका।

लेखिका : 'पचपन खम्भे : लाल दीवारें' की लेखिका मैं हूँ—उषा प्रियम्वदा, और यह है कथा-नायिक—सुषमा शर्मा, वार्डन, गर्ल्स होस्टल।

(अपनी लम्बी-लम्बी कलात्मक अंगुलियों और पतली हथेलियों को बहुत सलीके से जोड़ कर, हल्की लिपस्टिक लगे होठों पर औपचारिकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

WITH
BEST
COMPLIMENTS
OF

Ramballabh Rameshwar

16, BROJODULAL STREET

CALCUTTA

Grams :
"GOLDFIELD"

Phone :
33-2137
33-5501

Manufacturers of :-
Automobile Spares,
Electrical Goods,
Press Tools,
Jigs & Fixtures.

Specialised in :-
Plywood,
Hardboard,
Millboard,
Bitumen Saturated Felt,
Woolen Felt,
Vulcanised Fibre,
Components

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मृदु मुस्कान लाकर, कथा-नायिका सुषमा, सधे हुए, मिठास भरे स्वर में नमस्ते कहती है। खुलता हुआ ऐसा रंग, जिस पर उसकी पतली, स्वाभाविक भौंहें और बड़ी-बड़ी दीप्त आँखें बहुत खिलती हैं। उसके ओठों की गठन में सहज कोमलता है। नाक लम्बी और तीखी है तथा आधे कान बालों से ढँके हैं और उनकी लवों में मोतियों के कर्णफूल झूल रहे हैं। बिना बाहों का ब्लाउज और बिलकुल उसी रंग की फिरोजी साड़ी पहने है। गले में नीली डोरी में पिरोए मोती की एक लड़ है, जिसका छोटा-सा नीला फुँदना पीठ पर लटक रहा है। आलोचक जी बरबस उधर से अपनी दृष्टि हटाते हैं और लेखिका की ओर मुख़ातिब होते हैं:)

आलोचक : भई उषा जी, आपके लेखन की एक बात मुझे बहुत पसन्द आती है। आपकी हर चीज़ नपी-तुली और ख़ूब दक्षता से तराशी हुई होती है। आपकी कथा के समस्त सूत्र, आपके पात्र, वातावरण के रंग और रेखाएँ, यहाँ तक कि बातचीत का हर शब्द--सब कुछ अपनी जगह पर एकदम सटीक है। आप अपने कार्य को ख़ूब पहचानती हैं, उषा जी।

उषा : (शिष्टतापूर्वक) शुक्रिया।

आलोचक : (उसी उत्साह से) मुझे लगता है प्रियम्वदा जी, कि आपकी इस कामयाबी का एक प्रमुख कारण यह है कि आप केवल उसी के बारे में लिखती हैं जो आपने अपनी आँखों के आगे घटते हुए देखा है, या कहूँ कि, जो आपने स्वयं जिया है। मसलन्, शिक्षा-संस्थाओं का, उनकी भीतरी पालीटिक्स का, अध्यापिकाओं की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं का, छात्राओं के मनोविज्ञान का जितना सही चित्र आपने प्रस्तुत किया है वह केवल एक अध्यापिका के ही लिए संभव है।

(लेखिका इस बार कहती कुछ नहीं, लेकिन उसके चेहरे पर आत्म-संतोष की आभा है।)

आलोचक : शिक्षित, स्वावलम्बी और कुमारी युवतियों के प्रतिनिधि रूप में सुषमा को पेश करके आपने आज की एक बहुत ही महत्वपूर्ण समस्या की ओर समाज का ध्यान खींचा है। आपकी यह कथा-नायिका सुषमा सुन्दर है, युवा है और एक इज़्ज़तदार पद पर है। अपना ही नहीं, अपने पूरे परिवार का ख़र्च भी यही चलाती है। लेकिन फिर भी, क्या यह सुखी है? इन सब बाहरी सुख-सुविधाओं के बावजूद इसके मन में अगाध सूनापन है। कभी-कभी इसका मन न जाने क्यों डूबने लगता है। तब यह चाह उठती है कि दो बाहें इसे भी सहारा देने को हों। और जब दो बाहें सचमुच इसे सहारा देने के लिए इसकी ओर उठती हैं--चाहे वे अपरिचित और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MICO

MARUBENI - IIDA CO., LTD.

(Incorporated in Japan)

EXPORTERS IMPORTERS & COLLABORATORS

Head Office :
P.O. Box Central 1000
OSAKA, JAPAN
Cable : MARUBENI
OSAKA

Calcutta Office
P-34, India Exchange Place
Branches in India
Bombay, New Delhi, Madras

Tokyo Office :
P.O. Box Central 59
TOKYO, JAPAN
Cable : MARUBEN
TOKYO

A VITAL LINK IN WORLD TRADE WITH MORE THAN 65 NET-WORK OF BRANCHES THROUGHOUT THE WORLD

BUYERS OF

Jute
Jute Goods
Oils & Oil Seeds
Minerals
Scraps
Hides & Skins
Fancy Skins
Textiles
Textile Raw Materials
Sugar Salts & other food stuffs
Various other
Indian Produces

IMPORTERS OF

Textiles
Yarns
Textile Sundries
Non-Ferrous Metal Products
Iron & Steel Products
Chemicals & Chemical Products
Paper & Pulp
Marine & Agricultural Products
Fertilizer
Electrical Goods
Precision Tools & Implements
Machineries of all Sorts
Sundries

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे काफ़ी कम आयु के नील की ही क्यों न हों—तो यह सब कुछ भूल कर, अपना आपा भी भूल कर, उन बाहों में स्वयं को सौंप देती है। इसके मन के चिर सूनेपन को नील अपने उन्मुक्त युवा प्रणय से भर देता है, इसके उत्साहहीन मन और देह में नये प्राण फूंक देता है। सच उषा जी, इस प्रणय के—जो आयु के व्यवधान के कारण दूर से चाहे जितना ही अस्वाभाविक लगता हो—इसकी उत्कण्ठा, मिलन और प्रतीक्षा के, और सबसे अधिक इसकी असहायता के जैसे सहज और प्रभावक चित्र आपने खींचे हैं, वे अद्‌भुत हैं। बल्कि सच तो यह है कि आयु के इस व्यवधान के कारण ही इसका तीखापन और इसकी दयनीयता कई गुना बढ़ जाती है। क्रमशः प्रौढ़ावस्था की ओर डर-डर कर कदम बढ़ाती इस युवती के मन की व्यथा का मैं सहज ही अनुमान लगा सकता हूँ जो स्वयं चिर-कुमारी रहने का संकल्प करती है और ऋण लेकर अपनी छोटी बहन की शादी रचाती है। असफल चाह, और व्यथा, और सूनेपन के इन चित्रों में रंग भरने में आप खूब कामयाब हुई हैं, उषा जी।

(लेखिका कुछ कहे इसके पूर्व ही, सहसा सुषमा की ओर मुड़ कर, बदले हुए लहज़े में)

आलोचक : लेकिन मुझे आपसे सख़्त शिकायत है सुषमा जी, कि आप जैसी शिक्षिता, समझदार, आत्म-निर्भर और आधुनिक विचारों की युवती क्यों अपना भला-बुरा नहीं समझ सकती? आपके माँ-बाप आपके लिए कभी कुछ नहीं सोचते, बल्कि एक तरह से निर्ममतापूर्वक आपका शोषण ही करते रहते हैं। मैं समझ नहीं पाता कि आप यह सब क्यों सहन करती हैं?

(सुषमा मुँह से कोई उत्तर नहीं देती, महज़ होठों से वही औपचारिकता वाली मृदु मुस्कान मुस्कुरा देती है। लेकिन आलोचक जी की अनुभवी आँखों से छिपा नहीं रहता कि सुषमा के महज़ होंठ मुस्कुराते हैं, आँखें नहीं। उसकी आँखों में तो ऐसा तीव्र दाह है कि देखने वाले को स्वयं ही आँखें झुकानी पड़ती हैं। आलोचक जी की बूढ़ी अनुभवी आँखें तत्काल पहचान लेती हैं कि सुषमा की आँखों की यह चमक सायास रोके गये आँसुओं की चमक है। वे एक बार तो द्रवित हो उठते हैं, लेकिन फिर उसी लहज़े में कहते हैं:)

आलोचक : मुझे आपसे एक और शिकायत है, सुषमा जी। अपनी समस्त बाह्य आधुनिकता के बावजूद आप मन से वस्तुतः हैं वही परम्परागत रूढ़िवादी और तथाकथित त्यागमयी करुणामयी भारतीय नारी। आप नील को अपने समस्त तन-मन से प्यार करती हैं, और जब आपका वही नील आपसे बार-बार शादी का आग्रह करता है, आपको इस होस्टल के 'बन्दीगृह' से निकाल कर अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PLEASE CONTACT FOR ALL YOUR REQUIREMENTS IN

PAPER and BOARDS

MANUFACTURED

IN INDIA

Purushottam Lallubhai Patel

74-78, DHANJI STREET,
BOMBAY-3.
Phone : 29887

Phone : 75353

Grams : METROFFSET

FOR QUALITY
OFFSET PRINTING
AND LITHOGRAPHY

METRO PRINTING & LITHO WORKS
BYCULLA CLUB
BOMBAY-8

- **CARTONS**
- **POSTERS**
- **LABELS**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आपके जीवन को सुखी बनाने के वायदे करता है, तब आप स्वयं ही पीछे हट जाती हैं,—क्या इसलिए कि आपको त्यागमयी होने का गौरव मिल सके? या शायद इसलिए कि इस आत्म-पीड़ा (self torture) में आपको मज़ा आता है? नहीं, तो फिर और क्या कारण है? आख़िर इस तरह अकारण अपने और नील के जीवन में सदा-सदा के लिए दुख और व्यथा भर देने का आपको हक़ क्या है? जवाब दो, सुषमा बेटी!

(सुषमा मेज़ पर रखा अपना ब्रोकेड का बटुआ उठा लेती है और दो पल उद्विग्न-सी उसकी डोरी को खोलती-बन्द करती रहती है। फिर अचानक वह शान्त हो जाती है, उसके नेत्रों की आकुलता एक अगाध निस्तब्धता में बदल जाती है जैसे भयंकर शब्द करती आँधी पास आते-आते कहीं दूर से ही गुज़र गयी हो। वह कुर्सी से उठती हुई अपने उसी शान्त स्थिर मृदु स्वर में कहती है:)

सुषमा : चलो बहन, लड़कियों की बहुत-सी कापियाँ जाँचनी पड़ी हैं। अधिक देर हो गयी तो होस्टल का गेट भी बन्द हो जाएगा। • • •

मीरा महादेवन : 'सो क्या जाने पीर पराई' की लेखिका

■

[चौथा दृश्य]

आलोचक : आओ, मीरा बेन! (हँस कर) बस आप ही का उपन्यास बचा है—'सो क्या जाने पीर पराई'।

मीरा : और शायद आपको मेरे इस उपन्यास से निराशा ही हुई होगी। अब तक आपने जिन कथा-नायिकाओं से भेंट की है वे सभी उच्च शिक्षिता, अप्सराओं-सी सौन्दर्यवाली, ऊँचे-ऊँचे आदर्शों और प्लेटोनिक प्रेम और त्याग की बातें करने वाली थीं; जबकि मेरी इस माधवी में तो इनमें से कोई भी गुण नहीं। **(निराशा से दबी आवाज़ में)** यह तो बेचारी एक बहुत साधारण घर की, बहुत साधारण चेहरे-मोहरे की, बहुत साधारण पढ़ी-लिखी—यहाँ तक कि मैट्रिक भी यह बड़ी मुश्किलों से पास करती है—रोज़मर्रा के सुख-दुख की बहुत साधारण बातें सोचने वाली, जीविका-उपार्जन के लिए बहुत साधारण नौकरियों की तलाश में भटकने वाली और बहुत साधारण लोगों के सम्पर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Cool, filtered drinking water?

Choose a **BLUE STAR**

Water Cooler!

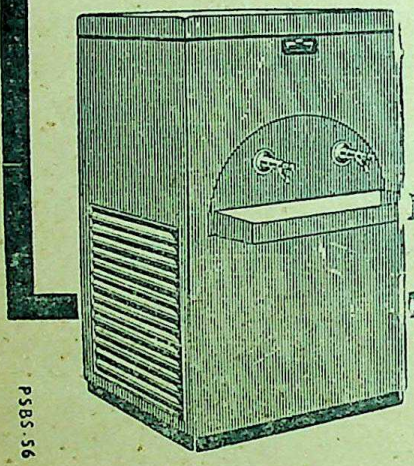

PSBS-56

STORAGE TYPE

In factory, office, school, restaurant, club .. a BLUE STAR WATER COOLER is your guarantee of satisfaction.

BLUE STAR offers you a choice of 13 models, both Storage and Instantaneous . . . each designed and engineered specially to suit Indian conditions.

INSTANTANEOUS TYPE

BLUE STAR— *The Greatest Name in Water Coolers*

BLUE STAR

BLUE STAR ENGINEERING CO. (Calcutta) PRIVATE LTD.

7 HARE STREET, CALCUTTA 1

Also at **BOMBAY, DELHI, MADRAS**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आने वाली, बहुत साधारण क़िस्म की टाइपिस्ट लड़की है।

(अन्तिम शब्द तक पहुँचते-पहुँचते लेखिका मीरा महादेवन का स्वर और अधिक धीमा होता हुआ होंठों में ही दबा रह जाता है। आलोचक-जी एक उड़ती-सी नज़र माधवी पर डालते हैं : माधवी सुन्दर नहीं है, किन्तु उसकी आँखें उसे असुन्दर होने से बचाती हैं। उनमें ऐसी चमक है जो किसी को भी अपना बना सकती है। रंग कॉफ़ी के रंग से मिलता है, बल्कि कहें साँवला ही है, फिर भी स्वच्छ त्वचा उसकी शोभा को दुगुना करती है। क़द न छोटा न लम्बा। हाँ, कपड़े पहनने का ढंग भद्दा है : घर के सिले कपड़े, जो अपेक्षाकृत बड़े लग रहे हैं। चेहरे पर एक विशेष प्रकार का भोलापन और निडरता है।)

आलोचक : (ममता भरे स्वर में) नहीं मीरा बेन, आपकी माधवी से मुझे निराशा हुई, यह कैसे कहूँ। इसको जिस साधारणता से आप निराश हैं, मुझे तो दरअसल उसी ने मोहा है। मुझे पहली बार महसूस हो रहा है कि मैं सचमुच की एक हाड-माँस की बनी सामान्य मानवी से मिल रहा हूँ। अपने व्यक्तित्व की समस्त कमज़ोरियों और शक्तियों के कारण ही यह अधिक यथार्थ और अधिक व्यावहारिक लगती है। इसका व्यक्तित्व सही मायने में स्वनिर्मित है। घर का इसे कोई सहारा नहीं,—मैं अबतक जिन कथा-नायिकाओं से मिला हूँ, उनको भी घर का कोई सहारा नहीं है, लेकिन फिर भी वे अकारण घरवालों द्वारा अपने शोषण को स्वीकार करती हैं और इसी बात की मुझे उनसे गहरी शिकायत है। पहली बार मुझे माधवी में अपनी मनवांछित लड़की मिली है जो एक सामान्य मानवी की तरह अपने व्यक्तिगत सुख को भी कुछ महत्व देती है। इसी तरह वे पहले की कथा-नायिकाएँ प्रेम करते हुए भी अपने चेहरे पर एक नक़ाब ओढ़े रहती हैं और एक झूठे त्याग की आत्म-प्रवंचना द्वारा परिचालित होकर अपना और अपने प्रेमी दोनों का जीवन दुखी कर देती हैं; इसीलिए मुझे वे उपन्यास की काल्पनिक नायिकाएँ ही अधिक लगती हैं, आपकी इस माधवी में मुझे पहली बार बम्बई के फोर्ट इलाके में जीविका-उपार्जित करने वाली असली मानवी के दर्शन हुए हैं।

(माधवी लजाने की कोशिश करती है, लेकिन लजाना उसे आता ही नहीं, इसलिए वह विवश होकर हँस पड़ती है)

आलोचक : (क्षणभर रुककर) जीविका-उपार्जन के अलावा इसकी देह की भी एक स्वाभाविक भूख है—आख़िर यह पूर्ण युवती जो है—और साथ ही इसे अपने भविष्य की सुरक्षा की भी चिन्ता है ही, इसलिए यह बिना कुण्ठाओं का शिकार हुए अपने जीवन में आने वाले हर पुरुष से स्वाभाविक रूप में मिलती है,

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With The Best Compliments Of

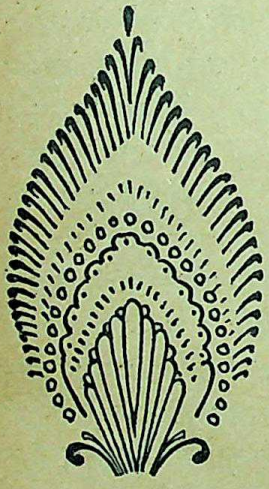

The Textile Waste Co.

113-C, NETAJI SUBHAS ROAD, CALCUTTA

Gram : FLY Phone : 33-542

COTTON WASTE EXPORTERS, IMPORTERS, MANUFACTURERS & SUPPLIERS OF ENGINE CLEANING WASTE TO INDUSTRIES ESTABLISHMENTS, GOVT. AND RAILWAYS.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे वह पुरुष लड़कियों को फाँसने वाले घोष बाबू के रूप में आये, या सोमण साहब, या थामस पत्रकार, या मनोहर सेठ, या डा० अनवर, या कपड़े के व्यापारी प्रकाश बाबू, या कलाकार अश्विन के रूप में। अपने जीवन में आनेवाले हर पुरुष से यह निस्संकोच मिलती है, उसके साथ अकेली घूमने जाती है, घोष या थामस होने पर दो-एक दिन उसके साथ गुज़ार भी देती है, धोखा पाने पर उतनी ही शक्ति से दुत्कार सकती है तो प्यार पाने पर उससे लिपट जाती है या उसकी छाती में मुँह छिपा लेती है। और इस तरह प्यार और धोखा पाती हुई यह अन्त में अपने लिए अश्विन के रूप में एक उपयुक्त जीवन-साथी चुनने में कामयाब हो ही जाती है। मैंने कहा न, कि इसमें एक सामान्य युवती की समस्त कमज़ोरियाँ और शक्तियाँ हैं और इसीलिए मुझे इससे उस क़िस्म की कोई शिकायत नहीं है जो इसके पूर्व की कथा-नायिकाओं से थी। इसके लिए आपको बधाई दूँ मीरा बेन, या माधवी को ?

(माधवी इस बार भी, चाहने पर भी, लजा नहीं पाती, इसलिए अपनी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें नीचे झुका लेती है। लेखिका भी मौन रहती है।)

आलोचक : (थकी हुई आवाज़ में माधवी से) एक मामूली टाइपिस्ट होते हुए भी तुम्हारे मन में सदा ही कुछ बनने की, कुछ करने की, बड़ा नाम पाने की, कामना रही है, और मुझे ख़ुशी है कि अपने धैर्य, अपनी लगन और अपने परिश्रम से तुम इस पथ पर बहुत कुछ आगे बढ़ने में कामयाब भी हो चुकी हो। तुम सही रास्ते पर हो, और मुझे विश्वास है कि ज़रूर अपनी मंज़िल पर पहुँचोगी, एक बड़ी लेखिका बनोगी।

(माधवी की बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों में कृतज्ञता के आँसू उमड़ आते हैं। आलोचक जी पुनः अपना पढ़ने वाला चश्मा आँखों पर लगा लेते हैं और सामने रखी नोटबुक में लिखने लगते हैं।) • • •

▪ आलोचक जी की नोटबुक में लिखी टिप्पणियों के कुछ रेखांकित अंश ▪

कथा-लेखिकाओं के सम्बन्ध में

• यह प्रचलित धारणा ग़लत है कि हिन्दी में लेखिकाओं का शोचनीय अभाव है। सही स्थिति तो यह है कि नयी पीढ़ी की लेखिकाएँ न केवल संख्या वरन् अपनी गुणात्मक उपलब्धियों की दृष्टि से भी हिन्दी जगत को आश्वस्त करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Phone : 5705 Gram : BABJE

BOARDS	FOR EVERY USE
DIAMONDS	FOR MULTICOLOURS
SULPHITE	POSTERS & BEEDIES LABELS
RIBBED KRAFT	FOR ALL KINDS OF PACKING PURPOSES
OFFSET PRINTING	FOR POSTERS, CALENDARS & MAPS

LARGEST STOCK CARRIED BY SOLE DISTRIBUTORS FOR HYDERABAD FOR PAPER & BOARDS OF

ROHTAS

ROHTAS INDUSTRIES LTD.

DALMIANAGAR, BIHAR

Hyderabad Paper Syndicate

1140 OSMANIA BAZAR

HYDERABAD-2 A. P.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी का कथा-साहित्य इस दृष्टि से अधिक सौभाग्यशाली है कि इसमें हिन्दी-भाषी प्रदेशों के साथ-साथ अहिन्दी-भाषी प्रदेशों की लेखिकाएँ भी साहित्य-सृजन में सक्रिय हैं। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि एकमात्र हिन्दी का कथा-साहित्य ही पूरे भारतीय समाज की नारी का प्रतिनिधित्व करता है।
- नारी के मन की बातें नारी ही ठीक से समझ सकती है, उसकी उलझी हुई समस्याओं की गाँठें वही कुशलता से सुलझा सकती है। पुरुष ने नारी-चित्रण में सदा ही अतिरंजना से कार्य लिया है। अस्तु, भविष्य में यह साहित्यिक नियम बन जाना चाहिए कि जिस उपन्यास की केन्द्र नारी हो वह लेखिका द्वारा ही लिखा जाए।
- लेकिन इसका एक दूसरा पहलू भी है कि लेखिकाएँ पुरुषों के चित्रण में अतिरंजना से कार्य लेती हैं। उदाहरण के लिए, आलोच्य कथा-कृतियों में पुरुष-पात्रों को अधिकतर इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि उनका केवल बुरा पक्ष ही उभर कर सामने आये : बेचारे पिता नामक प्राणी को तो सभी लेखिकाओं ने स्वार्थी, अत्याचारी और अपनी बेटी की कमाई पर जीने वाला दिखाया है। लेखिकाओं का अपनी जाति के प्रति यह पक्षपात स्वाभाविक भले ही हो, वांछनीय नहीं।
- शिल्प के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग करने में हमारी लेखिकाएँ अभी झिझकती हैं। परम्परागत शैली में सीधे-सादे ढंग से कथा कहने में ही उनका अधिक विश्वास है।
- विषय के प्रतिपादन में भी हमारी अधिकांश लेखिकाएँ अभी तक आधुनिक दृष्टि नहीं अपना सकी हैं। घूम-फिर कर जब वे कथा के अन्तिम बिन्दु तक पहुँचती हैं तो स्वेच्छा से दुःख और कष्ट सहन करने वाली भारतीय नारी का युगों पुराना आदर्शवादी रूप ही उन्हें समाधान के रूप में दिखाई देता है।

कथा-नायिकाओं के सम्बन्ध में

आज की कथा-नायिकाएँ पिछली पीढ़ी की कथा-नायिकाओं से सर्वथा भिन्न हैं। आधुनिक भारतीय नायिकाओं की समस्याएँ और स्थितियाँ-परिस्थितियाँ सभी कुछ बदल चुकी हैं। उदाहरणार्थ :—

- आज की शिक्षित भारतीय युवती अपने परिवार से कटी हुई होती है, इसलिए अब कथा का मंच घर की परम्परागत चारदीवारी के भीतर नहीं रहा। सास के अत्याचार और शराबी तथा जुआरी पति की

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलीफोन : कार्यालय
२५३११३ और २५४३६९
निवास : ८६७२९

तार
PANQUICK

सभी प्रकार के कागजों एवं बोर्डों के लिए
हम आपकी सेवा हेतु प्रस्तुत हैं।

मेसर्स
इण्डस्ट्रीज़

रोहतास
लिमिटेड

डालमियानगर
द्वारा निर्मित सामग्रियों के
अधिकृत विक्रेता

प्रहलादराय डालमिया एण्ड सन्स
५१, पोद्दार चेम्बर्स
फोर्ट, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार के बीच पिसती बहू की व्यथा अब कथाओं का केन्द्र-बिन्दु नहीं है।

- चूँकि वह घर से कटी हुई है, इसलिए उसकी सबसे प्राथमिक समस्या जीविका-उपार्जन की है। इसके लिए उसे जगह-जगह भटकना पड़ता है, पुरुषों और परिस्थितियों की ऊँच-नीच सहनी पड़ती है, लेकिन अगर वह शिक्षिता है तो इन अनेक बाधाओं के बावजूद जीविका-उपार्जन में कामयाब हो जाती है। बल्कि अधिकांश उदाहरण तो ऐसे हैं कि न केवल अपना वरन् अपने पूरे परिवार का खर्च भी वही चलाती है।
- दूसरी समस्या प्रेम की है। इसमें वह अधिक सौभाग्यशालिनी है। वह निरन्तर पुरुषों के सम्पर्क में आती है, इसलिए उसे चाहनेवालों, प्रेम करने वालों का अभाव कभी महसूस नहीं होता। निर्दोष रोमांस के इन क्षणों का आनन्द उठाना वह नाजायज़ भी नहीं समझती।
- नैतिक-अनैतिक के मामलों में उसका दृष्टिकोण परम्परागत भारतीय नारी से सर्वथा भिन्न है। वह पुरुष की प्रशंसात्मक दृष्टि या उसके हाथ के स्पर्श जैसी छोटी-छोटी बातों को अनैतिक नहीं मानती। बल्कि इन मामलों में वह अधिक व्यवहारकुशल हो गयी है और अपना स्वार्थ सिद्ध होता हो तो 'मेलार्ड मार्का चयूंइंग गम' हँसी भी हँस सकती है।
- वह पूर्णरूपेण आधुनिक है। न केवल वस्त्र, प्रसाधन और मेकअप आदि में ही उसके विचार आधुनिक हैं, वरन् पुरुष-मित्र के साथ किसी होटल या रेस्त्रां या पिक्चर या घूमने-फिरने और सैर करने के लिए अकेली जाने में भी वह झिझक महसूस नहीं करती।
- शादी उसके लिए एक बहुत विकट समस्या बनी हुई है। चूंकि वह घर से कटी हुई है, इसलिए मा-बाप द्वारा तय की जानेवाली शादी न तो उसके लिए संभव है और न उसे स्वीकार ही है। फल यह कि अपनी शादी की चिन्ता उसे स्वयं ही करनी पड़ती है, और यहीं वह असफल हो जाती है। कुछ समय के लिए उसका साथ चाहने वाले, उसके यौवन से प्रेम करने वाले तो उसे बहुतायत से मिल जाते हैं, लेकिन शादी करने वाले उपयुक्त व्यक्ति उसे खोजे से भी नहीं मिलते। अगर मिलते भी हैं तो दोनों में धन या आयु या शिक्षा या जाति का इतना अन्तर होता है, या कभी कुछ बाहरी बाधाएँ बीच में आ जाती हैं तो कभी उसका स्वयं का त्याग-प्रिय, कष्ट-सहिष्णु मन आड़े आ जाता है, और अधिकांशतः वह चिर-कुमारी ही रह जाती है। बहुत कम उदाहरण ऐसे होंगे कि वह अपने उपयुक्त पात्र चुनने और उससे शादी करने में कामयाब होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● परिणाम यह होता है कि इन शिक्षित, स्वावलम्बी और चिर-कुमा
युवतियों का एकाकी जीवन प्रतीक्षा, घुटन, कुण्ठा और सूनेपन की
लम्बी दुखभरी गाथा बन कर रह जाता है। दिन-दिन बढ़ती आयु
साथ इनके मन की निराशा भी अधिकाधिक गहरी होती जाती
इन भविष्यहीन चिर-कुमारियों के मन की इस स्थिति का चित्रण क
में हमारी कथा-लेखिकाओं को अद्भुत सफलता मिली है। लेकि
समाज के लिए यह एक विकट समस्या है, विशेषकर इसलिए कि भा
तीय समाज अभी स्त्रियों को सेक्स सम्बन्धी मामलों में पाश्चात्य दे
की तरह छूट देने को तैयार नहीं है। प्रस्तुत कथा-कृतियाँ ह
इस समस्या पर गहराई से विचार करने के लिए प्रेरित करती है
अगर इनकी केवल यही एक देन मानी जाय तो भी अपने आपमें
उपलब्धि कुछ कम नहीं है।

लेखिकाओं से एक अहमसवाल

● आज की ये चिर-कुमारी युवती कथा-नायिकाएँ दस वर्ष बाद जब प्रौढ़
हो जाएँगी, तब इनके मन और इनकी देह की क्या स्थिति रहेगी और
समाज पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, इस पर हमारी लेखिकाओं
अभी क़लम नहीं उठाई है।....तो क्या इसके लिए अभी हमें दस व
प्रतीक्षा करनी होगी?....

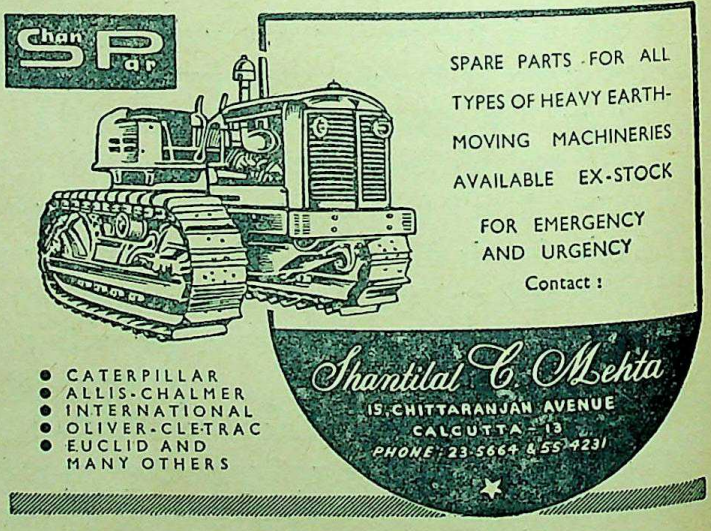

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SPRINGS & SPRING WASHERS

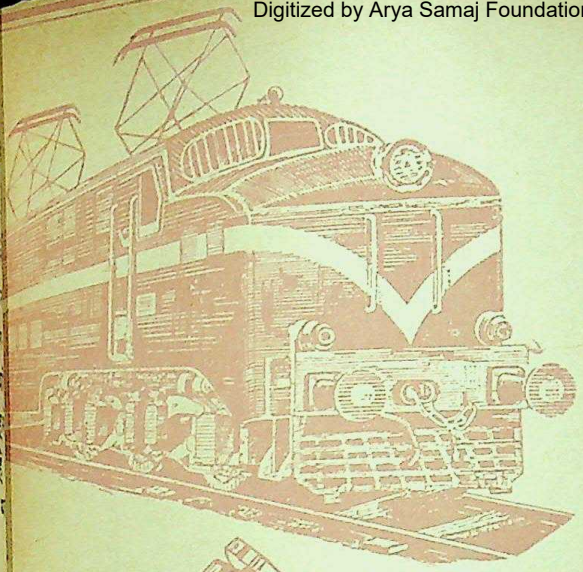

Factory at :—
15/16, MUSALMAN PARA LANE,
(Off Belilious Road)
HOWRAH.

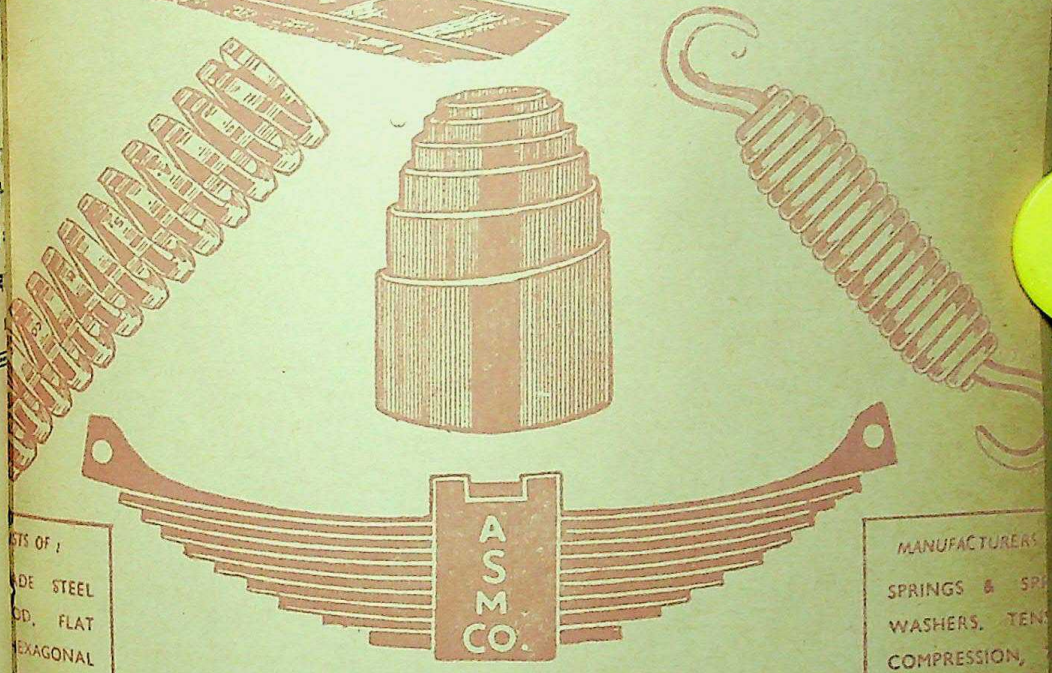

TS OF :
DE STEEL
D. FLAT
EXAGONAL
RASS, PHOS.
NICKEL
HOTDIE
AND HIGH
EEL ETC

TELEGRAM : "BRON SPRING"
PHONE OFFICE { 22-7980.
PHONE WORKS { 66-3310.

MANUFACTURERS
SPRINGS & SP
WASHERS. TEN
COMPRESSION,
SION, SOFA.
LAMINATED
PISTON RI
VOLUTE, BU
COMBS, MILLING

SIA SPRING MFG. C

(REGISTERED ORIGINAL FIRM)
NGINEERS & SPRING MANUFACTURERS.
A, CANNING STREET, CALCUTTA-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

FOR ALL CLASSES OF INSURANCES

FIRE

MARINE

MOTOR

FIDELITY

BURGLARY

ALL RISK

LOSS OF PROFITS

WRITE

FOR FULL

PARTICULARS

★

Managing Director

Advance Insurance Co., Ltd.

251, DR. DADABHAI NAOROJI ROAD,

FORT, BOMBAY-1.

Phone—262207—264996

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मशीनों से
तेल
ज्यादा सस्ता

लूब्रिकेशन
की
समस्याओं
या
ज़रूरतों
के लिए
मिलें

- शुगर फैक्ट्रीज़
- सीमेन्ट फैक्ट्रीज़
- कॉटन मिल्स
- जूट मिल्स
- पेपर मिल्स
- स्टील वर्क्स
- कोल माइन्स
- पावर स्टेशन्स
- ट्रैक्टर्स
- मोटर गाड़ी के ट्रैक पार्ट्स

VEEDOL

टाइड वॉटर ऑयल कं० इंडिया लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

For supply of

* PAPER * BOARDS * STRAW BOARDS
* PRINTING INKS & ALLIED LINES
* LARGEST HOUSE IN GUJARAT
* SAURASHTRA & CUTCH

Please Contact :

Kalyan Paper Mart

Importers & Wholesale Stockists :

646, CHAR RASTA,

NAVA DARWAJA ROAD,

AHMEDABAD.

Distributors

* ROHTAS INDUSTRIES LTD., DALMIANAGAR
* THE RATLAM STRAWBOARDS MILLS LTD., RATLAM
* HOOGHLY INK CO. (BOMBAY) LTD. BOMBAY
* STANDARD PULP & PAPER FACTORY, NASIK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ १० का शेषांश : महीयसी महादेवी)

चित-सा तो नहीं लग रहा। नाम-रूप का परिचय उतना महत्व भी नहीं रखता, क्योंकि सभी लेखक भाव-भूमि में एक दूसरे से चिर-परिचित रहते हैं।' मैं आश्वस्त होकर अपने चित्र से उनको मिलाने लगा। व्यक्ति के साहित्य और उसके व्यक्तित्व तथा व्यवहार में साम्य पा लेना सहज नहीं होता, पर देवी जी में इसकी स्वाभाविक स्थिति जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। 'जहाँ व्यक्ति को देख कर लगता है मानो काव्य की व्यापकता ही सिमट कर मूर्त हो गयी और काव्य से परिचित होकर जान पड़ता है मानो व्यक्ति ही तरल होकर फैल गया है,' देवी जी से मिलने पर मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ।

बिल्ली कूद कर उनकी गोद में जा जमी। उसके कान सहलाते हुए उन्होंने वात्सल्य-तरल शब्दों में कहा—'इसका नाम गोधूलि है, यह मेरी पोती है और वह (कुत्ते की तरफ संकेत करके) मेरा पोता है। दोनों बहुत अच्छे हैं, न कभी आपस में लड़ते हैं न किसी दूसरे को तंग करते हैं। साहचर्य-जनित स्नेह-सौहार्द की शिक्षा मनुष्य कर सकता है, करता भी है, पर जानवर नहीं करते। मनुष्य, बुद्धिमान जो ठहरा। मनुष्य का बौद्धिक ऐश्वर्य और मानसिक वैभव जीवन का वरदान है, परन्तु जब वह उसका उपयोग दया की स्वाभाविक वृत्तियों के विरोध में करने लगता है, तब पशु से अधिक कठोर और कुत्सित हो जाना ही सहज हो जाता है। इनकी बुद्धिहीनता बहुत बड़ा वरदान भी है, क्यों रे गोधूलि ?'

भक्तिन ने चाय के साथ प्रवेश किया। मिठाइयों की विविधता देख कर मैं बहुत पुलकित हुआ। चाय, मिठाई, मुक्त हास और वात्सल्यमयी पावन दृष्टि की छाया से स्फूर्ति पाकर मैंने विनय के साथ पूछा—'शान्तिप्रिय जी कह रहे थे आप कहीं आती-जाती नहीं, ऐसी क्या बात है ? हमारे यहाँ के अध्यापकों और विद्यार्थियों की बड़ी इच्छा है कि आप हमारी हिन्दी परिषद् में एक बार पधारें। मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।' 'कृतार्थ' कह कर सुखद वायु के झकोरे की तरह अपने मुक्तहास के विस्तार के साथ उन्होंने दृढ भाव से कहा—'नहीं, नहीं, मैं कहीं न जाऊँगी। मैंने कुछ दिनों के लिए क्षेत्र-संन्यास ले लिया है।' मैंने उत्सुकता से दुहराया—'संन्यास', और जो उत्तर मिला, वह विचित्र है।

'बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति भक्ति-मय अनुराग होने के कारण संसार को दुखात्मक मानने वाले उनके दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। मेरे संस्कार और परिस्थितियों से इसका ऐसा मेल बैठा कि बी. ए. पास करने के बाद मैंने भिक्षुणी होने का निश्चय कर लिया। ग्रीष्मावकाश में सिलोन से आये हुए प्रख्यात महास्थविर से मिली तो उन्होंने एक काष्ठ-पट आँखों के सामने रख कर मुझसे बात की। यह सब मुझे विचित्र तो लगा ही, क्रोध भी आया। जो गुरु शिष्य को सीधे देख सकने की भी शक्ति नहीं रखता, उसका शिष्यत्व स्वीकार करना हास्यास्पद ही नहीं, अपमानजनक भी है। मेरा मन विद्रोह कर उठा और मैं तुरंत उठ कर चली आई।' उनका मुँह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालटेक्स का "हानि-निरोधक" कार्यक्रम प्रति प्लान्ट १५% निर्वाह-व्यय की कटौती करता है।

"हानि-निरोधक" व्यवस्था पूरे प्लान्ट में लुब्रिकेशन को संगठित करती है—खरीदे जाने से लेकर काम में प्रयुक्त होने तक। बहुउद्देश्यीय लुब्रिकेन्ट्स् की विशेष रक्षा द्वारा और दोहरे कार्य को हटा कर "हानि-निरोधक" कार्यक्रम लुब्रिकेन्ट्स् की माँग को ५०% तक कम कर सकता है।

यह सर्वोत्तम है—प्लान्ट के प्रत्येक यन्त्र को उचित लुब्रिकेशन देकर "हानि-निरोधक" कार्यक्रम यन्त्र की जीवनी-शक्ति बढ़ाता है। परिणाम यह होता है कि पूरे प्लान्ट के निर्वाह-व्यय में १५% की बचत होती है। विस्तृत सूचनाओं के लिए अपने कालटेक्स सेल्स इंजीनियर से पूछ-ताछ करें।

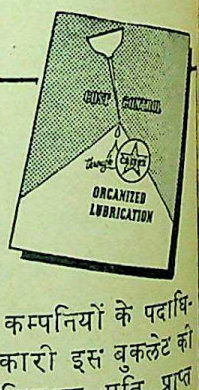

कम्पनियों के पदाधिकारी इस बुकलेट की निशुल्क प्रति प्राप्त कर सकते हैं।

CAL3.62SL

CALTEX

कालटेक्स के संगठित लुब्रिकेशन द्वारा मुनाफे को उन्नत कीजिए।

CALTEX (INDIA) LTD. BOMBAY • DELHI • CALCUTTA • MADRAS

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहसा तमतमा उठा और वे विचार-मग्न होकर मौन हो गयीं।

मैंने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया। कविवर पंत गुसाईं होने से बच गये और देवी जी भिक्षुणी न हो पायीं, अन्यथा छायावाद की चतुर्दिक पुष्टि में बड़ी बाधा पड़ती। उस समय मैं उनके क्रोध और विद्रोह का विश्लेषण नहीं कर सका, पर आज 'श्रृंखला की कड़ियाँ' पढ़ चुकने के बाद मैं उसे अच्छी तरह समझ सकता हूँ। 'मोतियों की हाट' के साथ 'चिनगारियों का मेला' लगाने में वे कभी चूक नहीं सकतीं।

गोधूलि ने उनका ध्यान भंग किया और वे ज्यों ही प्रकृतस्थ हुईं कि शान्तिप्रिय उठ खड़े हुए। आते समय बाहरी बरामदे तक वे हमें छोड़ने आयीं और छोटे भाई शान्तिप्रिय का घरेलू नाम 'मुच्छन' बता कर हँसती हुई तब तक खड़ी रहीं, जब तक हमलोग ओझल नहीं हो गये।

यह प्रायः दो युग पूर्व की घटना है। तब से बराबर उनके प्रति मेरी श्रद्धा और मेरे प्रति उनकी सर्वव्यापी करुणा-कृपा उत्तरोत्तर वृद्धि ही पाती रही है और आज तो मुझे उनके सामीप्य-सम्पर्क और वात्सल्य का वह सौभाग्य प्राप्त है, जो मेरे जीवन की सबसे बड़ी पूंजी है। परन्तु विरोधों के पुंजीभूत स्वरूप उनके व्यक्तित्व के विश्लेषण की क्षमता पर मुझे आत्मविश्वास नहीं। वास्तव में व्यक्तित्व, व्यक्ति की अन्तर-चेतना की प्रेरणा और बाह्य प्रभाव का समन्वित सुफल होता है। व्यक्ति के विकास की सबसे बड़ी विशेषता यह होनी चाहिए कि उसके बौद्धिक उत्कर्ष, हृदय की प्रेरणा और उसकी क्रिया में एक ऐसा सामञ्जस्यपूर्ण तारतम्य संगठित होता चले कि जीवन के मूल राग को विरोधी स्वरों से बेसुरा होने से बचाने के साथ-साथ व्यक्ति स्वयं इस प्रकार ढलता चले कि जीवन की कसौटी में खरा सिद्ध होकर सारवान हो उठे। महादेवी जी का व्यक्तित्व ऐसा ही है।

समन्वय और सामञ्जस्य उनके व्यक्तित्व के मूलाधार हैं। अनेक आश्चर्यजनक विलक्षणताओं का सहज समन्वय, विविध विजातीय वर्गों से समान सम्बन्ध, विभिन्न वयस और विचार के व्यक्तियों से एकरस सहानुभूति, परस्पर विरोधी नाना प्रकार के कार्यों की अनन्य कुशलता आदि उनके इस समन्वय के साधनाशील साक्षी हैं। जीवन की सम्पूर्णतम स्वीकृति उनका उदात्त उद्देश्य है। काव्य में गम्भीर रहस्यवादी होकर भी जीवन में इतनी सहज, सरल तथा परानुभूति-शील, स्पष्ट और शिशुवत कुतूहली होने का रहस्य भी यही है।

छोटे-से खिलौने-विशेष के लिए वे बच्चों के साथ कलह-कोलाहल के लिए भी तैयार हो जाती हैं। चुन्नी का हाथी छीन लेना चाहती हैं, मुन्नी की गुड़िया छिपा देना चाहती हैं। संपर्कित परिवार के बच्चे खिलौनों के विषय में उनसे सदा सतर्क रहते हैं—

'यह खिलौने और यह उर!
प्रिय नयी असमानता है।'

बच्चों के साथ उनकी एक बात में और बाजी रहती है, 'क्षण में आँसू क्षण में हास।' पलकों में आँसू और ओठों में हास, साथ ही बन्दी रखने की क्षमता में वे अद्वितीय हैं। महाप्राण निराला की मानसिक अवस्था से करु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE MANUFACTURERS OF

Waco

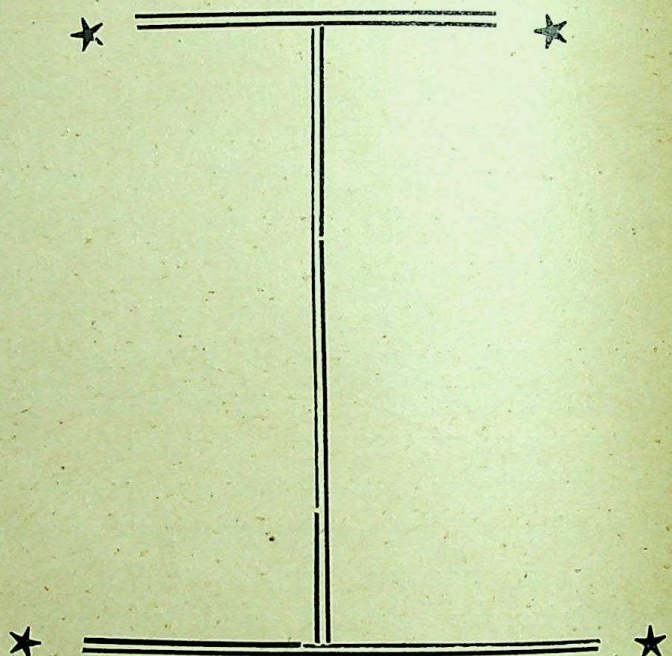

GUMMED PAPER TAPES

WATERPROOF CORPORATION

PRIVATE LIMITED

23-36, IMPERIAL CHAMBERS, WILSON ROAD,

Ballard Estate,

BOMBAY-1

Grams : WACOTAPE

Phone : 265346

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णार्द्र होकर आँसुओं के साथ विदा करते समय भी वे राष्ट्रकवि का स्वागत मुक्तहास से करने में समर्थ हैं। साहित्यिकों से भरे कक्ष में भी कहीं चूहा दिखा कि उनका सारा सयानापन पलायन कर जाता है। चूहे के जाते ही कहने लगती हैं—'चूहे से डरने की बात नहीं, उसे देखते ही जाने कैसा लगने लगता है। वह इतना बुद्धू होता है कि बिल्ली को देखते ही आँखें बन्द कर लेता है। जीवन की ऐसी संघर्षहीन पराजय भय का नहीं, तो क्या साहस का संचार करेगी ?'

करुणा जनित कातरता के साथ उनकी निर्भीकता भी कम प्रशंसनीय नहीं। सन् '४२ में 'दीपशिखा' के प्रकाशन के साथ ही देशप्रेमी तथा कथित विद्रोहियों की जो सहायता उन्होंने की, वह बहुत ही रोमांचकारी है। अमुक विद्रोही को बाहर जाने के लिए पैसे चाहिए, और उनका प्रिय ड्रेसिंग टेबिल बिक गया ! अमुक विद्रोही के कागजों को संरक्षण चाहिए, और पोटली उनके घर में आ गयी। जोशी जी ने गतिविधि जान कर एक दिन कहा—'आजकल सरकार की नीति बहुत ही बर्बर है, किंचित सन्देह होने पर बहुत तंग किया जाता है। आपको सावधान रहना चाहिए।' उनकी आँखें लाल हो गयीं, संकल्प की दृढ़ता में बोलीं—'मैं जानती हूँ, पर विश्वास के साथ आये हुए देश-प्रेमी बन्धु का अपमान भी तो नहीं कर सकती। इस समय देश को बहुत बड़े बलिदान की आवश्यकता है, तो क्या मैं इतना भी न करूँ ? जोशी जी आप निश्चिन्त रहें, जौहर व्रत के उत्तराधिकारियों को जीवित पकड़ने वाली पुलिस अभी नहीं पैदा हुई।' हमलोग अवाक् रह गये। सद्भाव और सहानुभूति के अमोघ अस्त्रों में अजर दृढ़ता और अमर करुणा का पानी चढ़ा कर जीवन की विषम परिस्थितियों को स्वानुकूल बना लेने में वे प्रायः सफल रहती हैं। जीवन विकास की किसी भी स्थिति को उनका सहयोग सुलभ रहता है, पर साधनों की शुचिता पर वे अडिग हैं। सम्भवतः इसीलिए जीवन की व्यवस्था में बौद्धिक निरूपण और राजनीतिक दंड विधान को पर्याप्त न मान कर हृदय के परिष्कार पर अधिक बल देती हैं। साहित्यकारों, प्रकाशकों, परिवारों, अध्यापकों, विद्यार्थियों की पंचायत में वे इसी आधार को लेकर पंच का भी काम करती रहती हैं।

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके उन्होंने अपना कोई परिवार नहीं बसाया, पर उनका जैसा विशाल परिवार-पोषण सबके लिए सम्भव नहीं है। गाय, हरिन, कुत्ते, बिल्ली, गिलहरी, खरगोश, मोर और कबूतर तो उनके चिर संगी हैं ही, लता, फूल, पौधे, पेड़ सभी उनकी जीवन्त ममता के समान अधिकारी हैं। आगंतुक और यदि वह अतिथि हो तो उसके स्वागत की उनकी तन्मयता देखने लायक होती है। सारांश यह कि उनका घर शंकर की बारात का जनवासा बना रहता है। सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उनका स्नेह और उनकी सहानुभूति सुलभ रहती है, पर उसके दुर्प्रयोग का अधिकार किसी को भी नहीं। सुन्दर भविष्य के विकास-सम्भव अंकुर की रक्षा के लिए वे प्राणों की बाजी भी लगा सकती हैं, परन्तु जीवन-उपवन के सौन्दर्य को नष्ट करने वाले बड़े से बड़े वृक्ष के प्रति भी ममता-हीन हो जाना उनके लिए कठिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Champaklal Lalwani & Co.

Authorised Distributors for

EAST KHANDESH

WEST KHANDESH

AURANGABAD &

AHMEDNAGAR

OF

PAPER & BOARDS

Manufactured by

Rohtas Industries Ltd.,

DALMIANAGAR

Also Stockist For

WEST COAST PAPER MILLS

Please Contact :

Lalwani House

31, MIRZA STREET,

BOMBAY-3.

Phone : 22103

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। निजत्व और परत्व की सीमित भावनाओं से वे बँधी नहीं हैं, फिर भी उनके जीवन और व्यवहार में निर्णय और निश्चय की वे श्रेणियाँ, जो लोकहित की कामना से निर्मित हैं, अडिग और अचल हैं। 'विश्वासी बुद्धि और विवेकी हृदय अपने आप में सब शंकाओं का समाधान है', यही उनका आप्त वचन है।

जो अखंड आत्मभाव उनकी करुणा को सक्रियता देता है, वही उनके विद्रोह को साहस और बल। पुरुष के मनोविनोद के लिए परित्यक्त और उसके अहं की पूर्ति के लिए उपेक्षित नारी-जाति के पीत-क्रीत-मुख से भरे भारतीय समाज में काले हिन्दू ला के समक्ष उन्होंने स्व-स्वीकृति के बिना हुए विवाह को, डंके की चोट के साथ परिवार, समाज और संसार के कटुतम व्यंग-प्रहार सहते हुए भी सबको चुनौती देकर ही अपने अपरिग्रही जीवन की नींव उन्होंने रखी है। जो उचित, न्यायपूर्ण और मनुष्यता के सम्मान के अनुकूल समझा, सो किया, हठ के साथ किया। संसार का कोई भी प्रलोभन या दण्ड-भय उन्हें उनके निश्चित पथ से विचलित नहीं कर सकता। दुर्दमनीय स्थितियों के प्रति मन में विद्रोह की भावना स्वाभाविक है, पर उसे क्रियात्मक रूप देने की क्षमता, जिस अपराजेय आत्मदान की अपेक्षा रखती है, वह देवी जी की अपनी निजी विशेषता है। उनके विद्रोह की प्रखरता जीवन के प्रति अटूट आस्था की सजलता में उसी प्रकार छिपी रहती है, जैसे बादल में बिजली।

पुरुष निरपेक्ष नारी के व्यक्तित्व की स्थापना और समवर्द्धना के लिए उन्होंने अपने जीवन और साहित्य में जो भगीरथ अनुष्ठान किया है, वह हमारे इतिहास का नया पृष्ठ है। सिद्धार्थ का त्याग, मैथिली की अग्नि-परीक्षा और महादेवी का विद्रोह सत्य को सुन्दर और सुन्दर को शिव बनाने की वे ऊर्ध्वगामी सीढ़ियाँ हैं, जिनके द्वारा मनुष्य, जीवन की उच्च भूमि पर चढ़ सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इनके विद्रोह में किसी प्रकार का उद्दाम वेग नहीं, एक सधा संयम है; आग की लपटों का उच्छ्वसित वेग नहीं, दीपक के लौ की स्निग्धता है; चमत्कारी बुद्धि का उद्वेग नहीं, भावावेश को स्पंदित करने वाली हार्दिकता है; संकोच और सन्देह नहीं, पराजय का भाव नहीं; विजयी की वह विनम्रता और उदारता है जिस पर साधना का पानी चढ़ा है—

'सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला', कह कर उन्होंने 'निर्वैरहः सर्व भूतेषु' की सर्वात्मकता को ही प्रत्यक्ष किया है।

अनंत स्नेह और अगाध करुणा के कगारों से सुव्यवस्थित उनका जीवन-प्रवाह सामूहिक जीवन के लिए सरसता, स्निग्धता और निर्मलता का संयोजन करता चलता है। उनका जीवन जितना ही बहुधंधी है उनका साहित्य उतना ही बहुरंगी। कर्ममय जीवन और भावमय साहित्य उनके व्यापक व्यक्तित्व के युगल छोर हैं। जीवन की किस गति में उनका स्पंदन झंकृत नहीं? सामने आयी हुई किस रुक्षता को वे सरस नहीं कर देतीं, किस पाषाणी कठोरता को वे अपनी सजल करुणा से नहीं कँपा देतीं, सत्य और लोक मंगल की रक्षा के लिए विद्रोह की किस ज्वाला को उन्होंने अपने त्याग-तपस्या की आँच नहीं दी, मेरे लिए बता सकना कठिन है। उन्होंने सोचा भारतीय नारी पीड़ित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, क्योंकि वह अशिक्षित है, और स्त्री-शिक्षा की ओर झुक पड़ीं। परिणाम में महिला विद्यापीठ, प्रयाग सामने है। अपनी पुत्री को भरती कराने आये हुए एक केरली सज्जन ने पूछा--'आपके कोई सन्तान भी हैं?' उनका उत्तर था--'हाँ, हाँ, मेरे सात-आठ सौ बच्चे हैं। सब विद्यार्थी मेरे बच्चे ही तो हैं।' वे ऐसी ही बड़ी माँ हैं।

राजनीतिकों की तरह हर नगर में ठहरने के प्रासाद न हों, पर प्रयाग में तो साहित्यिकों का कोई घर ऐसा होना चाहिए जहाँ वे विश्राम के लिए कुछ दिन ठहर सकें। साहित्यकार संसद, प्रयाग उनकी इसी भावना का भवन है। साहित्यकारों के परस्पर सम्पर्क और सहयोग के लिए संसद द्वारा आयोजित सन् '५२ का अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन राष्ट्र की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों के मिलने-जुलने की परम्परा की स्थापना करने में अगुआ ही नहीं, अपनी सफलता में भी अब तक अकेला है। अधिक कठिनाइयों के कारण बहुत कम साहित्यकार हिमालय-दर्शन कर पाते हैं, वस्तुतः ताकुला, नैनीताल में देवी जी ने साहित्यकारों के कैम्प का एक आयोजन किया, जिसमें विभिन्न भाषाओं के कलाकार प्रायः एक माह साथ रह कर कविता, कहानी, नाटक और विचार गोष्ठियों का आनन्द लेते-देते रहे। महादेवी जी मूर्तिमान मनुष्यता हैं। अपने नाम के शाब्दिक अर्थ को क्रियात्मक सार्थकता देने वाली महादेवी, वास्तव में महादेवी हैं।

दीपक उनका प्रिय प्रतीक और जल, प्रकाश तथा वायु उनके प्रिय तत्व हैं, तो क्या इसी कारण उनका व्यक्तित्व तरलता, दिव्यता और निर्मलता से संश्लिष्ट है

होली रंगोत्सव का पर्व है। प्र के रूप, रंग, गंध और रस होली में म और यौवनित हो उठते हैं। मनुष्य नवान्न का उपहार मिलता है। फाग मस्ती और रंग की तरंगों में सारा तरंगित हो चलता है। सबसे बढ़ कर कि इसी दिन संसार के सभी सम्व प्राचीन और गौरवपूर्ण हमारे सम्वत्-वर्ष का प्रारम्भ होता है। यही दिन देवी जी का जन्मदिन भी है, यह कम की बात नहीं। जीवन-साहित्य के इतने भिन्नरंगी सूतों का समन्वय विरल होता है, पर महादेवी जी ने कवि, चित्र समालोचक, निबंधकार, संस्मरण और सफल कला की विधाओं के रसायनिक सम्मिश्रण से उसे ऐसा प्रमा कर दिया है कि आश्चर्य ही होता है।

आकाश, आलोक और रंगों का है। सन्ध्याकालीन आकाश देखिए, रंगमयता परखिए और उस आकाश के एकाकार कवयित्री महादेवी के दर्शन कीजि

प्रिय सांध्य-गगन मेरा जीवन
सुधि-भीने स्वप्न रँगीले घन।

आज उनके जन्मदिन के अवसर मैं ऐसी विद्रोहिणी, कर्मयोगिनी महा महादेवी को अपना विनम्र प्रणाम देकर कृतकृत्य हूँ, कहने की बात नहीं। महा निराला की ये पंक्तियाँ युग-युगों तक महा जी की विराट प्रतिभा को हमारे स्पष्ट करती रहेंगी, इसमें सन्देह नहीं

हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा-वा
स्फूर्ति, चेतना, रचना की प्रतिभा कल्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

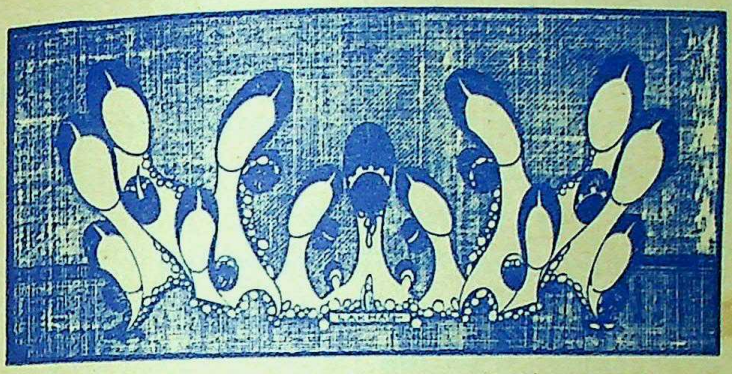

नवोदित लेखिकाएँ अंक (२)

[परिशिष्टाङ्क]

मई १९६२

●

● नवोदित लेखिकाओं की सृजन, परिवेश और प्रकाशन सम्बन्धी परिचर्चा के अन्तर्गत निम्न-लिखित लेखिकाओं के महत्वपूर्ण विचार :

- मन्नू भण्डारी
- रजनी पनिकर
- मनमोहिनी
- रमा सिंह
- मोहिनी ओबराय
- प्रेमलता वर्मा
- सुनीता अग्रवाल
- सरस्वती चौधरी
- ज्योत्स्ना मिलन
- शुभा वर्मा
- शशिप्रभा शास्त्री
- ममता अग्रवाल
- जया नागर
- शिवानी

● विविध साहित्यिक विधाओं में लिखी हुई मौलिक रचनाएँ :

१. मीरा (टेलिविज़न विधा) : इन्दु जैन
२. शुभागता (प्रणय गाथा) : मुक्ता राजे
३. आठ सदियों की एक महफ़िल (संस्मरण) : अमृता प्रीतम
४. परिवार में बँधी लेखिका का अल्बम (व्यंग्य) : इरफ़ाना शरद्
५. दो कमरे का फ्लैट (कहानी) : कुमारी मधु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. यह प्रतिध्वनि भी सुनो (संस्मरण) : डॉ० गार्गी गुप्ता
७. बेचारी राधा (कहानी) : कौशल्या अश्क
८. पत्रकारिता जगत् में अफ्रीकन नारी का निखरता रूप (लेख) : सोमा वीरा
९. पतझड़ की एक अन्तहीन शाम (कहानी) : कुमारी राधा
१०. नया देवदास (व्यंग्य) : गीता बनर्जी
११. सत्य क्या है (लेख) : लावण्यप्रभा राँय
१२. महादेवी के बाद (व्यंग्य-एकांकी) : विद्यावती मिश्र
१३. मैं व्यास हूँ (काव्य-कथा) : सुनीति गुप्ता
१४. दुविधा (कहानी) : शारदा सिंह
१५. मैडम क्यूरी : विज्ञान की वेदी पर (जीवनी) : उर्मिला मल्होत्रा
१६. स्नेह की भूख (कहानी–विदेशी पृष्ठभूमि) : देवकी रामपाल
१७. आखिरी तस्वीर और काफ़ी हाउस की दो शामें (कहानी) : कमला वनमाली
१८. गद्य गीत : पुष्पा पुरी
१९. एक बार मुस्करा कर तो देखिये (व्यंग्य) : कुंवरानी सरला जैन
२०. वार्डन की कहानी : छात्रा की ज़बानी (कहानी) : सुकीर्ति गुप्ता
२१. एक इञ्च मुस्कान (धारावाही उपन्यास) : राजेन्द्र यादव

●

० इनके अतिरिक्त 'सागर पार की लेखिकाएँ', 'अन्तर-भारतीय कवियित्रियाँ', तथा 'नवोदित हिन्दी कवियित्रियाँ' शीर्षकों के अन्तर्गत भी महत्त्वपूर्ण और पठनीय सामग्री।

० स्पष्ट है कि विशेषांक की तरह ही यह परिशिष्टांक भी संग्रहणीय होगा। समय रहते अपनी प्रति सुरक्षित करवा लें।

मूल्य १) रु०

० विशेष जानकारी के लिए लिखें :

ज्ञानोदय कार्यालय
१८ ए, बेबोर्न रोड, कलकत्ता-१.

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

नये प्रकाशन

अंकित होने दो : अजितकुमार

प्रस्तुत कृति की विशेषता है उसका सुनिश्चित संक्रामक स्पन्दन जो न घोष और वेग पूर्वक आता है न वातावरण में आलोड़न लाकर क्षुब्ध या स्तब्ध ही करता है, बल्कि बिलकुल घास के फूलों-सा न जाने कब और कैसे वह चुप-से चटक पड़ता है और कोई रौंद उसे भले दे पर आँखों से जी तक पैठ-कर ज्ञान-तन्तुओं को छूता ज़रूर है। जीवन के ये सोचते और सुझाते हुए चित्र भीड़ से साधिकार भिन्न हैं; और उन पाठकों के भी उपयोग के हैं जो इन्हें केवल देखना, अर्थात् पढ़ना, चाहेंगे और उनके भी जो पढ़कर कुछ सोचना भी चाहेंगे। मूल्य : ४.००

खुला आकाश मेरे पंख : शान्ति मेहरोत्रा

एक ऐसी कृति जो आकृति से एक बार को यदि न लुभाये पर किसी प्रेरणा पर जिसे देखें तो देखते जायें और तृप्ति और सुख की पुलक अनुभव किये बिना न रहें। अतिरिक्त विशेषता यह कि विषयवस्तु, दृष्टि एवं अभिव्यक्ति तीनों को देखते इसकी कल्पना और सृष्टि एक नारी द्वारा ही सम्भव थी जो माँ भार्या और भगिनी भी हो और तीव्र संवेदनशील भी। पुस्तक को पढ़कर किसी भी सुसंस्कृत पाठक को निश्चय लगेगा कि उसने इन रचनाओं में अपना ही परिवेश देखा और अपने को पहचाना भी। मूल्य : ४.५०

प्यार के बन्धन : रावी

सत्रह पत्र-कथाएँ जो सामाजिक-पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत प्रेम, मर्यादा एवं मानवीय अनुराग की माँगों और समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। अनेक प्रश्नों को इन कथाओं में स्वर मिला है जो आज के तरुण-जागृत मनों म घुमड़ते हैं, और उन प्रश्नों के यथासम्भव उचित समाधान भी सुझाये गये हैं। तरुण वर्ग के लिए पुस्तक विशेष रूप से उपादेय है। मूल्य : ३.२५

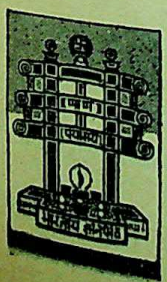

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आँगन के पार द्वार : अज्ञेय

अज्ञेय की अन्तःसलिला का सबसे स्फीत और श्रद्धापूत प्रवाह। अपने
संग्रह तक आते-आते अज्ञेय का काव्य निखार और गहराई के ऐसे उत्कर्ष
पहुँचा है जिसमें भारतीय चिन्तन-परम्परा की विश्व से संयोजन की ध्व
साकार हो उठती है। इस दृष्टि से यह संग्रह हिन्दी काव्य की अद्वि
उपलब्धि है। मूल्य ३.००

आँगन का पंछी और बनजारा मन : विद्यानिवास मिश्र

हिन्दी और सम्भवतः सभी भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य में अ
और बेजोड़ ललित निबन्ध। विषय, दृष्टि-भाव, शैली, भंगिमा, और स्व
सभी का इतना सहज और प्रौढ़ समन्वय कहीं और नहीं मिलता। इ
राग-रंग और तड़क-भड़क के लिए स्थान नहीं है, यहाँ पार्थिव परम्परा
आकार ग्रहण किया है। एक ओर सत्य की निरन्तरता और गतिशील
की प्रतिष्ठापना की गयी है तो दूसरी ओर यहाँ भ्रमरानन्दी मन की उ
भी आयी है। यही विशेष कारण है कि पुस्तक युग और जीवन के लि
अतिरिक्त उपयोगी और आवश्यक बन गयी है। मूल्य ३.००

फिर बैतलवा डालपर : विवेकी राय

हिन्दी में ऐसी कृतियाँ कम ही हैं जो ठे आज के गाँवों और वहाँ रह
जीते असंख्य प्राणियों के जीवन और उस जीवन की क्रिया का एक्स-रे कि
हुआ रूप उकेरती हों। प्रस्तुत पुस्तक की रचनाओं की यही विशेषता है
इसीलिए अच्छा हो यदि आवश्यक समझकर इन्हें एक बार वे पढ़ें जो ग्रह
जीवन में जनमे और रहते आये हैं और वे भी पढ़ें जिन पर जन-जीवन
रूप और दिशा देने का दायित्व है। मूल्य ३.५०

शाइरी के नये दौर–५ : अयोध्या प्रसाद गोयलीय

जमील मज़हरी, रविश सिद्दीक़ी, अफ़सर मेरठी, निहाल सेवहारवी का जी
परिचय सहित चुना-चुना कलाम एवं विवेचना। मूल्य : ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

अपने-अपने अजनबी : अज्ञेय

केवल असाधारण नहीं, भारतीय साहित्यों में अपने ढंग का अद्वितीय उपन्यास। मृत्यु से साक्षात्कार को विषय बनाकर जीवन और नियति का सरल मार्मिक विवेचन। मृत्यु विषयक पूर्व और पश्चिम की दृष्टियों की टकराहट, दोनों के मिलन द्वारा मानव-जीवन के एक नये आयाम का उन्मेष। मूल्य ३.००

नये रंग नये ढंग : लक्ष्मीचन्द्र जैन

हिन्दी गद्य-शैली की सर्वथा नयी रचना जिसके हर पृष्ठ पर युग की छाप और प्रतिभा की चमक अंकित है। सम्भव नहीं कि पुस्तक हाथ में लें और पढ़ कर समाप्त किये बिना रख दें। मूल्य २.००

पलासी का युद्ध : तपनमोहन चट्टोपाध्याय

देश के इतिहास को एक मोड़ देने वाले इस युद्ध और उसकी पृष्ठभूमि का सर्वप्रथम प्रामाणिक चित्रण, जो तथ्यात्मकता के बल पर इसे इतिहास-पुस्तक बनाता है और कथा-रस के कारण उपन्यास। महत्त्वपूर्ण होने से मूल बंगला पुस्तक का अँगरेज़ी अनुवाद भी हुआ। मूल्य ३.५०

हरी घाटी : रघुवंश

हिन्दी गद्य-लेखन में एक अभिनव-प्रयोग : यात्रा-डायरी-संस्मरण तीनों के तत्वों का सुखद सामंजस्य। पुस्तक में जहाँ एक ओर गहरे चिन्तन से अभिभूत क्षणों का अंकन किया गया है वहीं सामान्य दैनन्दिन घटनाएँ भी मानवीय संगति में पहचानी गयी हैं। इसी से इन अकाल्पनिक यात्रा-संस्मरणों में जितना ऊपर-ऊपर दिखता है उससे कहीं अधिक भीतर मिलेगा। मूल्य ४.५०

देशान्तर : धर्मवीर भारती

इक्कीस पाश्चात्य देशों की एक सौ इकसठ कविताओं की हिन्दी छायाएँ। मूल कविताएँ उन कवियों की हैं जो विश्व में 'आधुनिक काव्य-बोध' के निर्माता कहे जायेंगे और जो अपनी-अपनी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। हिन्दी में अपने प्रकार की सर्वप्रथम कृति। मूल्य १२.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

वेणु लो गूंजे धरा : माखनलाल चतुर्वेदी

कवि की नवीनतम कविताओं का संग्रह जो अनुभूति की उदात्तता, अभि व्यक्ति की ताज़गी, व्यापक और समर्थ जीवन-चेतना, वैष्णव आस्था और कवि की अनूठी कलात्मकता का सही परिचय देता है। मूल्य ३.००

नग़मए हरम : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ख्यातनामा समसामयिक १०४ महिलाओं की शाइरी का हिन्दी में सर्वप्रथम संग्रह जिसमें दीनो-दुनिया के अन्दाज़ ही नहीं इश्क़ो-वहदत के नशे का सुरू भी भरपूर लहरा आया है। मूल्य ४.००

ग़ालिब : रामनाथ 'सुमन'

जितने लोकप्रिय उतने ही अज्ञात इस महाकवि की रहस्यों में छिपी ऊँचाइयों को लेखक ने अपनी परख-प्रतिभा से इस पुस्तक में पूरी तौर पर अफ़ज़ाँ कर दिया है। कलाम-संग्रह तथा विवेचना आदि की दृष्टि से पुस्तक हिन्दी में बेजोड़ है। मूल्य ८.००

वाणी : सुमित्रानन्दन पन्त

पन्त जी की नवीनतम हृदय-स्पर्शी कविताओं का संग्रह। संग्रह की एक लम्बी कविता कवि के मार्मिक संस्मरण तथा जीवन-दर्शन सम्बन्धी होने के कारण सहज ही उनकी श्रेष्ठतम रचनाओं में से है। पन्त जी की काव्य प्रेरणाओं को समझने और उनकी कविताओं की रस-उपलब्धि के लिए अनिवार्य। मूल्य ४.००

सागर की लहरों पर : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

यात्रा-साहित्य में एक नया मान, साहित्यकार और चिन्तक की दृष्टि से विदेशों को पाठकों के ज्ञान की परिधि में लाने का प्रथम सफल प्रयास। उपन्यास जैसी रोचक कृति। मूल्य ४.००

नाटक बहुरंगी : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

वर्तमान हिन्दी नाटय-लेखन के प्रसिद्ध 'रंगधर्मी' नाटककार के चुने-चुने नवीनतम एकांकियों का तीसरा संग्रह जो निश्चय ही हिन्दी रंगमंच क्षेत्र की उपलब्धि का एक उज्ज्वलतम उदाहरण है। मूल्य ४.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

समाजवाद : डॉ० सम्पूर्णानन्द

हिन्दी में इस विषय की सर्वप्रथम एवं एकमात्र आधिकारिक कृति जो विशिष्ट पुरस्कारों द्वारा सम्मानित हुई और जो देश में समाजवाद की स्वाभाविक प्रगति का मानदण्ड जैसी है। नया पाँचवाँ संस्करण। मूल्य ५.००

एक बूँद सहसा उछली : अज्ञेय

हिन्दी में यात्रा-साहित्य अधिक नहीं; पर यह पुस्तक भारतीय भाषाओं के यात्रा-साहित्य में भी अद्वितीय है। लेखक यहाँ यूरोप के विभिन्न देशों की ही यात्रा नहीं करता, जैसे काल में भी करता है। समस्त दृश्य को वह देखता-दिखाता है, पर साथ ही चेतना से साक्षात्कार भी करता है। परिणाम यह कि प्रत्येक देश पाठक के आगे प्राणवती प्रतिमा-सा आ खड़ा होता है, और फिर उसका स्वर ही नहीं, हृदय की गति तक अजानी नहीं रहती। मूल्य ७.००

हिन्दी नव-लेखन : रामस्वरूप चतुर्वेदी

प्रस्तुत कृति मात्र समसामयिक लेखन का मूल्यांकन नहीं, वरन् उसकी रचनात्मक प्रक्रिया के समवर्त्ती रह कर उसके मूल्यों, प्रतिमानों के आकलन तथा भाव-बोध के स्तरों को उद्घाटित करने का सशक्त प्रयत्न है। इसी दृष्टि में लेखक के विवेचन का महत्त्व है, और यह दृष्टि अपने आप में नयी है। मूल्य ४.००

रूपाम्बरा : सम्पादक – अज्ञेय

खड़ी-बोली के शताधिक कवियों की प्रकृति विषयक उत्कृष्ट रचनाओं का अपूर्व संकलन जो हिन्दी कवि मानस के इस विशिष्ट अंग के क्रम-विकास का सफल और सम्पूर्ण परिचय देता है। हिन्दी काव्य की वस्तुतः स्वर्ण मंजूषा। मूल्य १२.००

कनुप्रिया : डॉ० धर्मवीर भारती

प्रस्तुत कृति का आविर्भाव साहित्य-लोक की एक विशिष्ट घटना है। इस में जहाँ बहुमुखी प्रणय के विविध आयामप्राणों की धरा में से प्रस्फुटित हो कर प्रकृति के प्रतीकों में सार्थक तादात्म्य प्राप्त करते हैं, वहीं राधा के प्रणय को एक सर्वथा नयी दृष्टि और नया परिप्रेक्ष्य भी देते हैं। मूल्य ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ प्रकाशन

आत्मनेपद : अज्ञेय

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समकालीन साहित्यकार की स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओं पर गम्भीर विचार-चिन्तन। स्वयं लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने के लिए अनिवार्य और एकमात्र पुस्तक। मूल्य ४.००

वीणापाणि के कम्पाउण्ड में : केशवचन्द्र वर्मा

ज़िन्दगी के हर पहलू को छूती-छेड़ती ये कविताएँ, लेखक के शब्दों में, "अच्छे आदमी को अच्छी लगेंगी और बुरे को बुरी।" बहरहाल नयी खिड़कियों से नये तमाशे दिखने की सम्भावना यहाँ अपरिमित है। मूल्य ३.००

रेडियो वार्ता शिल्प : सिद्धनाथ कुमार

प्रत्यक्ष ही रेडियो वार्ता पत्र-पत्रिकाओं के निबन्धों से भिन्न है। यह मुद्रण के लिए नहीं प्रसारण के लिए, आँखों के लिए नहीं कानों के लिए होती है। स्वाभाविक है कि इसका सारा रूप-विधान और शिल्प भी भिन्न हो। इसी भिन्न रूप-विधान एवं शिल्प की आधिकारिक विवेचना तथा व्यावहारिक रीतियों पर प्रकाश इस पुस्तक द्वारा हिन्दी में प्रथम बार सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है। रेडियो पर वार्ता प्रसारित करने वालों और प्रसारण के सुयोग को सफलता से सम्पन्न करने वालों के काम की एकमात्र कृति। मूल्य २.००

शतरंज के मोहरे : अमृतलाल नागर

यथार्थ में एक ऐतिहासिक उपन्यास जो सवा-डेढ़ सौ वर्ष पहले की अवध की नवाबी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीतियों का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करता है। चित्र इतने व्यापक और सजीव हैं कि आप विवश-से उपन्यास की रसधार में बहते चले जायेंगे, और पात्र ऐसे सच्चे और जीवन्त कि अनेक की याद आप को बार-बार हो आया करेगी। मूल्य ६.००

काठ की घण्टियाँ : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

अज्ञेय द्वारा सम्पादित इस एक पुस्तक में एक समूचा उपन्यास, बीस कहानियाँ और इकहत्तर कविताएँ संकलित हैं। इसके माध्यम से न केवल लेखक की बहुमुखी एवं प्राणवती प्रतिभा का परिचय मिल जाता है बल्कि पुस्तक के आस्था-स्वरों से जीवन में विश्वास और स्फूर्ति का स्पन्दन भी होता है। मूल्य ७.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

श्रेष्ठ प्रकाशन

सीढ़ियोंपर धूप में : रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय : अर्थात् नये हिन्दी गद्य-लेखकों में जिन्हें वास्तव में 'मॉडर्न' कहा जा सकता है उनमें अन्यतम। इसी से प्रस्तुत कृति का मूल्य और महत्त्व समझा जा सकता है। कृति में दस कहानियाँ हैं, अस्सी कविताएँ और ग्यारह लेख जो विषयवस्तु एवं शिल्प में अन्यतम हैं। मूल्य ४.००

अंगद का पाँव : श्रीलाल शुक्ल

शिष्ट और उच्चस्तरीय किन्तु पैने और मीठे-से तिलमिला देने वाले व्यंग्यात्मक निबन्ध जो सभी कहीं सराहे गये और जो मात्र मनोरंजन नहीं करते बल्कि कुछ देते और माँगते भी हैं। मूल्य २.५०

तीसरा सप्तक : सम्पादक – अज्ञेय

'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' की परम्परा में। गत पन्द्रह वर्षों की हिन्दी कविता की प्रगति जानने के लिए अनिवार्य। मूल्य ५.००

सात गीत वर्ष : डॉ० धर्मवीर भारती

'ठण्डा लोहा' और 'अन्धा युग' के बाद के सात वर्षों की चुनी-चुनी ५१ कविताओं का बहु-प्रतीक्षित संकलन, जिसमें प्रस्तावना के रूप में कवि का रचना-प्रक्रिया पर एक काव्यात्मक गद्य-खण्ड भी अतिरिक्त आकर्षण बना सम्मिलित है। मूल्य ३.५०

आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य : केशवचन्द्र वर्मा

हिन्दी में शिष्ट हास्य-व्यंग्य का सर्वथा अभाव न कभी पहले था न आज है, इसका प्रमाण ही यह कृति है। संकलन की दृष्टि से सर्वोत्तम। मूल्य ४.००

पत्थर का लैम्प-पोस्ट : शरद देवड़ा

लेखक की बारह बहुविध कथात्मक गद्य-रचनाओं, बारह राजस्थानी विरह-चित्रों, और बारह सबरंगी कविताओं का प्रतिनिधि संकलन। कृति की विशेषता रचनाओं की ताज़गी और मदीली गन्ध-सी ही नहीं, उनका भाव-धन और प्रभाव-गुण भी है जो सरलमना पाठक को प्रीतिकर लगेगा। मूल्य : ३.००

मुर्गछाप हीरो : केशवचन्द्र वर्मा

हास्य-रस की कहानियों और लेखों का अनूठा संग्रह। मूल्य : २.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य श्रेष्ठ प्रकाशन

कहानियाँ–उपन्यास

गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
आकाश के तारे धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२.००
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
जय दोल	अज्ञेय	३.००
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
मेरे कथागुरु का कहना है : भाग १–२	रावी	६.००
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	३.००
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिव प्रसाद सिंह	३.००
मुक्तिदूत	वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५.००
रक्तराग	देवेशदास आई० सी० एस०	३.००
एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
सूने अँगन रस बरसे	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	५.००
ग्यारह सपनों का देश	सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
गुनाहों का देवता	डॉ. धर्मवीर भारती	३.००

इतिहास–राजनीति

हिंदी-जैन-साहित्य-परिशीलन (भाग १-२)	नेमिचन्द्र शास्त्री	५.००
एशिया की राजनीति	परदेशी	६.००

एकांकी–नाटक

कहानी कैसे बनी	कर्तार सिंह दुग्गल	२.५०
रेडियो नाट्य शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२.५०
चेखव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३.५०
भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०
सूखा सरोवर	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	२.००
कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ. भ. श. उपाध्याय	३.५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी आदि

दीप जले : शंख बजे	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	३.००
द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथ सिंह विनोद	२.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित रचना, सांस्कृतिक निबन्ध आदि

जिन्दगी मुसकरायी	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४.००
गरीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	सम्पूर्णानन्द	१.००
बाजे पायलिया के घुँघरू	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४.००
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२.००
शरत् के नारी पात्र	रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
काग़ज़ की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०

दार्शनिक, आध्यात्मिक, ज्योतिष

भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००
भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००

भाषा विज्ञान

संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५.००

संगीत-प्रसाधन

ध्वनि और संगीत	ललितकिशोर सिंह	४.००
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०

यात्रा-विवरण

पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००

कविताएँ

सौवर्ण	सुमित्रानन्दन पन्त	२.५०
लेखनी बेला	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
शाइरी के नये मोड़ (भाग १-२)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	६.००
शाइरी के नये दौर (भाग १-५)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१५.००

सूक्तियाँ

कालिदास के सुभाषित	डॉ. भ. श. उपाध्याय	५.००
ज्ञानगंगा (भाग १–२)	नारायणप्रसाद जैन	१२.००
शरत की सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
सन्त विनोद	नारायणप्रसाद जैन	२.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत महत्त्वपूर्ण प्रकाश

उर्दू शाइरी

शेरो शाइरी	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
शेरो सुख़न (भाग १–५)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०.००

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	६.००
मिलन-यामिनी	बच्चन	४.००
धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर	३.००

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३.००
पहला कहानीकार	रावी	२.५०
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६.००

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्तिसागर	६.००
खोज की पगडंडियाँ	मुनि कान्तिसागर	४.००
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.००
कालिदास का भारत (भाग १–२)	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८.००

एकांकी - नाटक

जनम क़ैद	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३.००
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
और खाई बढ़ती गयी	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०

संस्मरण - रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक प्रकाशन

१	जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक)	३.००
२	कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्दके ग्रंथोंका संक्षिप्त सार)	२.००
३	धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित)	३.००
४	आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन)	३.७५
५	हिन्दी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	२.८८
६	महाबन्ध — भाग १–७ (कर्म सिद्धान्त का महान् ग्रन्थ)	७८.००
७	सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित)	१२.००
८	तत्त्वार्थ राजवार्तिक—भाग १, २ (संशोधित और हिन्दी सार सहित)	२४.००
९	तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित)	१६.००
१०	समय-सार — अँग्रेज़ी (आध्यात्मिक ग्रन्थ)	८.००
११	मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक)	८.००
१२	न्यायविनिश्चय विवरण — भाग १, २ (जन दर्शन)	३०.००
१३	आदिपुराण — भाग १, २ (भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित)	१०.००
१४	उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित)	१०.००
१५	वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित)	५.००
१६	जिनसहस्र नाम (भगवान्के १००८नामोंका अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित)	४.००
१७	केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ)	४.००
१८	करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तरेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रन्थ	०.७५
१९	नाममाला सभाष्य (कोश)	३.५०
२०	सभाष्य रत्नमंजूषा (छन्दशास्त्र)	२.००
२१	कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची	१३.००
२२	पुराणसार संग्रह — भाग १-२ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र)	४.००
२३	जातकट्ठकथा (बौद्धकथा-साहित्य)	९.००
२४	थिरुकुरल (अंग्रेज़ी प्रस्तावना सहित तमिल भाषा का पंचम वेद)	५.००
२५	व्रततिथि-निर्णय (विधि-विधानों एवं तिथि-निर्णय का विवेचन)	३.००
२६	जैनेन्द्रमहावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ)	१५.००
२७	मंगल-मंत्र णमोकार : एक अनुचिन्तन	२.००
२८	पद्मपुराण (भाग १, २, ३)	३०.००
२९	जीवन्धर चम्पू (हिन्दी टीका सहित)	८.००
३०	जैन धर्मामृत	३.००

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SPECIFY "RIV" FOR BEARINGS

Four modern plants of "RIV" (Italy) offer Bearings of almost every description to suit the individual requirements.

OTHER AGENCIES HANDLED BY US

"FERA ITALY"
Diesel Injection Equipments and Spare Parts.

"SAMSAW" (English)
Metal Cutting Band Saws & Hacksaw Blades.

"VEB" (Eastern Germany)
Instruments : Verniers, Callipers, Micrometers, Gauges, etc.

RIV

BALL AND ROLLER BEARINGS

For your specific requirements and for booking indents against your licences please contact

SOLE DISTRIBUTORS :

THE CENTRAL TRADING COMPANY

137, Canning Street, P. O. Box No. 2684, Calcutta

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PRODUCTS OF OUTSTANDING VALUE

SAFEX : Laminated Safety Glass & Toughened Safety Glass

TWINBIRD : Polished Plate Mirror

WELDING GLASSES to BSS 679

Manufactured by

HINDUSTHAN SAFETY GLASS WORKS PRIVATE LTD.

Sole Selling Agents :

India Trades Agency

7, Chittaranjan Avenue,

CALCUTTA-13.

Phone : 23-9092

भारत में प्रथम — एकमात्र अग्रणी

टैण्डम और आयर नॉन-फ़ेरस एलॉय

•

० टैण्डम ह्वाइट ऐण्टी-फ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स ०

गन मेटल्स फ़ास्फ़र ब्रान्ज

स्टिक और कोर्ड सोल्डर्स

•

सोल्डरिंग फ्लक्स

•

सोल्डर पेण्ट्स और क्रीम

दी आयर स्मेल्टिंग प्राइवेट लिमिटेड

कलकत्ता-४३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैंकिंग हमारा काम है

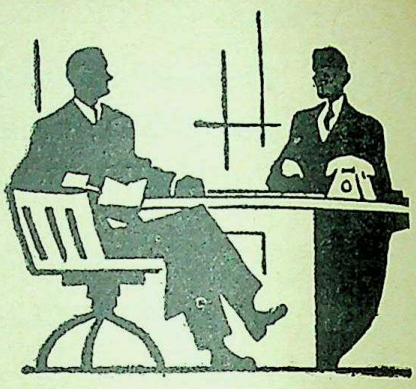

देश भर में ४२५ से अधिक कार्यालय और विदेशी विनिमय विभाग, साथ ही विशेषज्ञ कर्मचारियों के अधीन आञ्चलिक कार्यालय आपकी सेवा में संलग्न हैं।

- चालू खाता
- बचत खाता
- मुद्दती खाता
- कैश सर्टिफिकेट
- हुण्डी का बट्टा
- विदेशी विनिमय
- सेफ-डिपौजिट वौल्ट
- अग्रिम-ऋण

यात्रियों के चेक

दि पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

स्थापित सन् १८९५ ई०
प्रधान कार्यालय : नई दिल्ली

अप्रैल १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

United Metal Mart

ENGINEERS & MANUFACTURERS

58, NETAJI SUBHAS ROAD, - - CALCUTTA-1.

For all sorts of cocks & valves :—

Gun Metal Wheel valves, Gate valves, Plug Cocks, Gland Cocks, Check valves, all Flange Type valves & Cocks, Ball Valves, Instantenous Type Couplings & Nozels, High Pressure Cocks & Valves, Stainless Steel Valves & Renuable Seat Valves, etc., etc.

CAST IRON SLUICE VALVES, REFLUX VALVES, AIR VALVES, BALL VALVES, HIGH PRESSURE STEEL VALVES, ETC., ETC.

SPECIAL JOB WORKS AS PER CUSTOMER'S REQUIREMENTS & DRAWINGS OUR SPECIALITY. PROMPT DELIVERY & SERVICE AFTER SALES GUARANTEED.

Cable : SHARAFAT Phone : 22-5111

Marfatia & Co.

(*Newly Constituted in 1956*)

GENERAL HARDWARE MACHINERY TOOLS MERCHANTS & ORDER SUPPLIERS

Specialist in :

CHAIN-PULLEY BLOCKS & JACKS

Authorised Sole Distributors for "ALPHA" Jubilee Pattern HOSE CLIPS

67-A, NETAJI SUBHAS ROAD, CALCUTTA-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Cable Address : 'CUTSIZE' CALCUTTA

Telephone No : 23-7721
(3 lines)

WITH COMPLIMENTS OF :—

Shalimar Industries Private Limited

Formerly :

SHALIMAR WOOD PRODUCTS PRIVATE LIMITED.
25, GANESH CHANDRA AVENUE
CALCUTTA-13 (INDIA)

Premier Manufacturers and Exporters of :—

JUTE MILL : Bobbins, Shuttles, Card Staves, Card|Gill Pins, Wood Lagging|Loom Lay Bloacks, Picking Arms and various wooden stores for Jute and Cotton Textile Mills.

FACTORY :

1, SWARANAMOYEE ROAD, SHALIMAR (HOWRAH)

Telephone Nos. 67-4661|2

For all your requirements
of :

TOOLS AND IMPLEMENTS SUCH AS DRILLS, TAPS, REAMERS, CUTTERS, CHASERS & DIES.

Asbestos Goods such as Steamjointings, Rope Packing & Lagging Asb. Cloth & Tapes etc.

Please Write to or Call

A. K. Jain & Brothers

67-B, Netaji Subhas Road
(Room No. 18)
CALCUTTA.

Distributors of :

I T I. T. M. PRODUCTS

Telephone : 22—3394

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Contact

Carbins

For Wax & Water-proof Paper.

Specialist in :—

- CARDBOARD AND CORRUGATED BOXES, PAPER TUBE, CORE, DRUM & COMPOSITE CONTAINERS.
- ALUMINIUM & VANILYTE FACED CORK & TICKET WADS.
- QUALITY PRINTERS OF OFFSET, LETTER PRESS, SILKSCREEN PRINTING.

Offices :—

250, UPPER CHITPORE ROAD, CALCUTTA-3.

76, LOWER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA-14.

Phone No.
55-3013
24-3772

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

WITH BEST COMPLIMENTS OF

Phone Numbers 23-7301
23-6436

PARTS SERVICE INDIA LIMITED

30, CHITTARANJAN AVENUE,
CALCUTTA-12.

HAPPY GREETINGS &
HEARTY CONGRATULATIONS TO
MODERN WOMEN WRITERS
ON THE VIVID OCCASION OF
HOLI

Model Engineering Stores

MANUFACTURERS & HARDWARE MERCHANTS
71-A, NETAJI SUBHAS ROAD,
CALCUTTA-1.
PHONE : 22-2029

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ीसा सिमेंट लि०

डाकघर : राजगंगपुर
जिला सुन्दरगढ़
(उड़ीसा राज्य)

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता

डालमिया एजेंसीज़ प्रा० लि०

अब उच्चकोटि के

डालमिया ऊष्मसहों
(REFRACTORIES)

को

आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं
जो आयस (Iron), वज्रायस (Steel), और धातुकार्मिक (Metallurgical) शालाओं (Works), वज्रचूर्ण भट्ठियों (Cement Kilns), मृच्छिल्प (Ceramic) और अन्य उद्योगों के लिए अग्निमृद (Fireclay), संकजा, (Silica), भ्रज्रांगिज (Magnesite), वर्णिज (Chromite), वर्णक भ्रज्रांगिज (Chrome Magnesite) और विसंवाहक (Insulating) की सभी कोटियों में
समस्त मापों (Sizes) व जटिल आकारों (Intricate Shapes) में विभिन्न प्रकारों के समृदों (Mortars) के सहित प्राप्त हो सकते हैं।

Dr. C. Otto & Comp. G. M. B. H.

Bochum—Dahlhausen (W. Germany).

के

सहयोग और मार्गदर्शन में निर्मित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Telegram :
'MATACANTOS'
CALCUTTA.

Telephone :
Office : 22-3226
Resi : 55-1825

ASUTOSH MOOKERJEE
& COMPANY PRVT. LTD.

ESTD. 1900

SHIP CHANDLERS &
ENGINEERS
IMPORTERS, EXPORTERS &
MFG., REPRESENTATIVE

12, RAJA WOODMUNT ST.
CALCUTTA-1.

WITH
BEST
COMPLIMENTS
OF

LARSEN & TOUBRO LIMITED
Engineers

BOMBAY CALCUTTA MADRAS
BANGALORE COCHIN AHMEDABAD
NEW DELHI LUCKNOW HYDERABAD

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

NOVITOME

A VERY EFFICIENT OXYGEN PROFILE CUTTING MACHINE

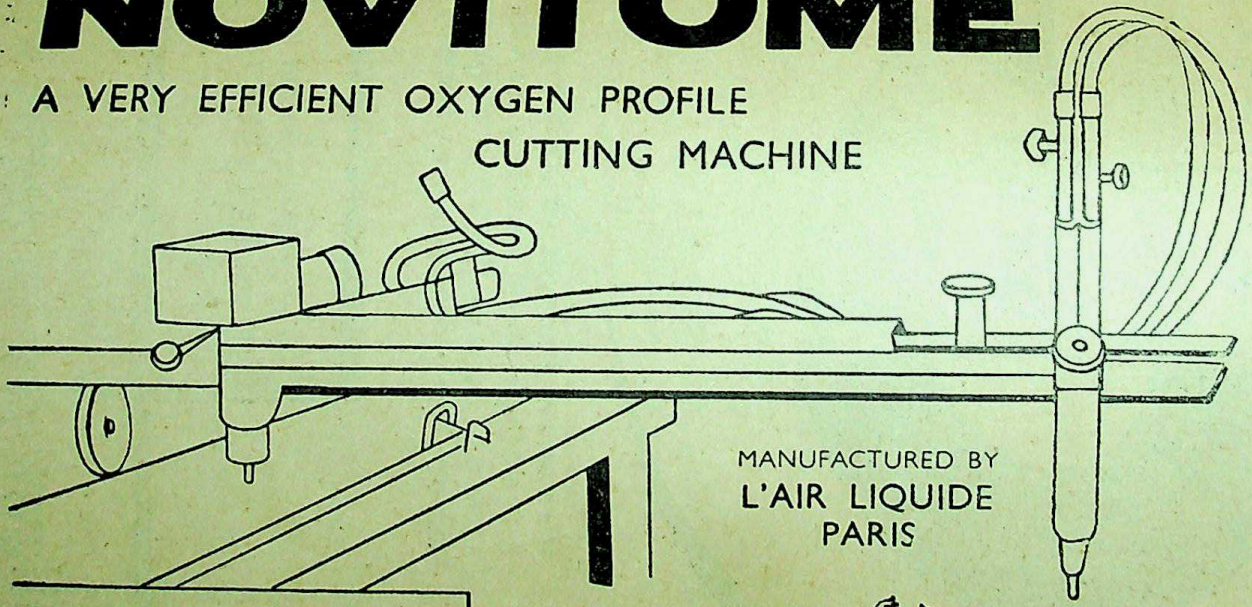

MANUFACTURED BY
L'AIR LIQUIDE
PARIS

TECHNICAL DATA :
CUTTING RANGE 3-150 mm.
LARGEST RECTANGLE 1.35 m. x 0.80 m.
LARGEST CIRCLE 0.80 m. DIAMETER
ELECTRICITY CHARACTERISTICS
220 VOLTS AC/DC

THE ASIATIC OXYGEN
AND ACETYLENE CO. LTD.
8 DALHOUSIE SQUARE EAST, CALCUTTA 1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरा पता

जल्दी डाक

संक्षिप्त पता लिख कर आप हमें बड़ी परेशानी में डाल देते हैं। हमारे लिए यह पता ही आप के पत्र का सब से जरूरी भाग होता है। अधूरा पता लिखने से पत्र को बहुत लम्बा सफर करना पड़ता है—आवश्यकता से बहुत ही अधिक।

आपका पत्र सीधे अपने स्थान पर पहुँचे इसके लिए साफ और पूरा पता लिखना जरूरी है।

हमें उत्तम सेवा का अवसर दीजिए

DA 61/310

डा क - ता र वि भा ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Telegrams : WIREANFELT
Telephone : 254534

G. Varadan Private Ltd.

Sole Agents for :

C. H. JOHNSON & SONS LTD.
Machine Wires & Patch Welders

SCAPA DRYERS LTD.
Felts for Paper & Board Machines

W. P. EVANS & SON LTD.
Rotabelt Suction Unit

WOOLLARD & HENRY
Dandy Roll

CROOKES ROBERTS & CO.
Beater, Refiner Bars & Knives

THE REISS ENGG., CO. LTD.
Steam Heatings etc.

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

THAOOMAL HOUSE

3rd Floor,
1|5, Banaji Street,
BOMBAY-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

FOR
TIMBER
AT IT'S
BEST

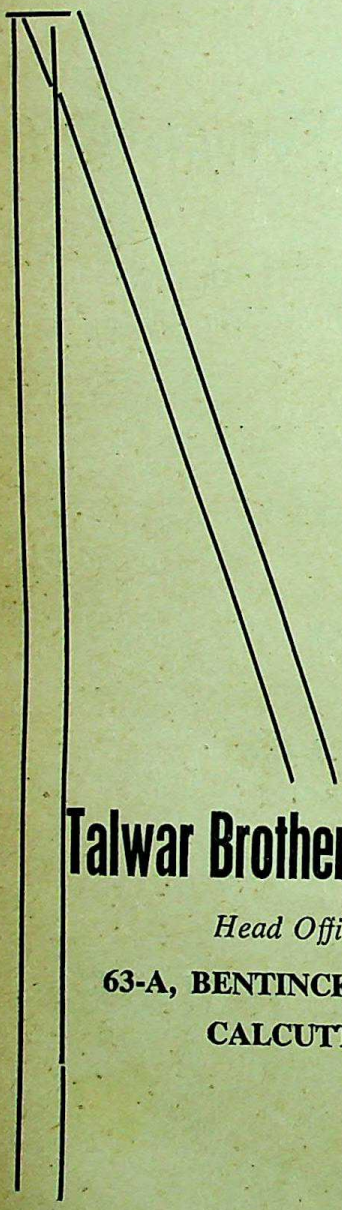

Talwar Brothers (P). Ltd.

Head Office :

63-A, BENTINCK STREET,
CALCUTTA.

SUPPLIERS OF ALL TYPES OF
INDIGENOUS TIMBERS

Branches :

●

LUCKNOW

Aishbagh Road

Phone : 3552
Grams : TALWAR

●

PATHANKOTE

College Road

Grams : TALWAR

●

TINSUKIA

Khageshwar Road

Phone : 355

●

GAUHATI

Choudhury Colony

Ulubari

Phone : 537
Grams : HIMALAFIR

●

JABALPUR

192, Narbada Road

Phone : 363
Grams : TIMBER

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम आपकी तथा आपके उद्योग की सेवा करते हैं

ओरियण्ट पेपर मिल्स लि०

द्वारा उत्पादित

पैकिंग के लिए

- (ए) एम० जी० रिब्ड क्राफ्ट
- (बी) एम० एफ० अनरिब्ड क्राफ्ट
- (सी) वाटरप्रूफ क्राफ्ट
- (डी) क्रेप-क्राफ्ट

लिखने तथा छापने के लिए

- (ए) ह्वाइट प्रिण्टिंग
- (बी) क्रीमलेड
- (सी) सेमी ब्लीच्ड
- (डी) अनब्लीच्ड

पैकिंग एवं रैपिंग के लिए

- ब्राउन रैपिंग

बक्स तथा कार्टन आदि बनानेके लिए

- (ए) कार्टन बोर्ड
- (बी) एम० जी० ग्रे बोर्ड
- (सी) एम० एफ० ग्रे बोर्ड
- (डी) ट्रिप्लेक्स
- (इ) डुप्लेक्स
- (एफ) कार्ट्रीज
- (जी) टिकिट बोर्ड
- (एच) कवर बोर्ड

ओरियण्ट पेपर मिल्स लि०

मैनेजिंग एजेन्ट्स :

बिड़ला ब्रदर्स प्राइवेट लिमिटेड

८, इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता–१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

HIGH CLASS PAINTS & VARNISH

(Established — 1921)

Telephone :
23-7626
23-7627

Telegram : " VARNISH "

MURARK

Makers of High Class
Varnishes, Enamels, Zinc
Dry, Red Lead.

THE MURARKA PAINT & VARNISH WORKS (P.) LTD.

Reg. Office :
4E, DALHOUSIE SQUARE, 29, STEPHEN HOUSE,
CALCUTTA.

अप्रैल १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

VIJAY ART PRINTING PRESS

PACKAGING EXPERTS

22, KELEWADI, GIRGAUM

BOMBAY-4.

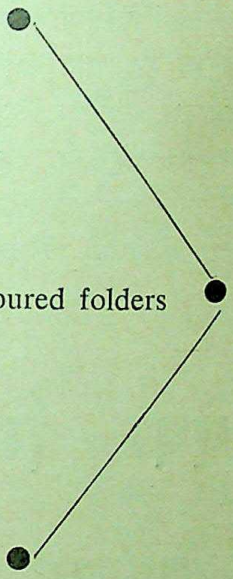

Phone : 28642

Specialised in cartons & multi-coloured folders from designing to printing.

LEADING SUPPLIERS OF PACKAGING MATERIALS TO MANUFACTURERS OF PHARMACEUTICAL AND COSMETIC GOODS.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनिक जीवन का प्रधान अंग

आज की सभ्य दुनिया में काग़ज दैनिक जीवन का एक प्रधान अंग बन गया है। वास्तव में यह एक ऐसा आवश्यक पदार्थ बन गया है कि जिसके बिना कोई भी कार्य नहीं चल सकता।

इस उप-महादेश के सभी शिक्षित व्यक्तियों ने स्टार (तारे) चिह्न वाले कागज को सबसे उत्तम, मज़बूत और चिरस्थायी बताया है। आपका चाहे जो भी उद्देश्य हो, आप सदैव 'स्टार ब्रैण्ड' कागज को अपने मनोनुकूल पायेंगे। इसी कारण से इसके प्रशंसकों की संख्या में वृद्धि हो रही है तथा लिखने, छापने, पैकिंग, बँधाई तथा अन्य कार्यों में विशेष रूप से इसे व्यवहार में लिया जा रहा है।

स्टार पेपर मिल्स लिमिटेड

सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

प्रबन्धक एजेण्ट :—

बाजोरिया एण्ड कम्पनी

२७, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EXPORTERS, IMPORTERS

AND PAPER MERCHANTS

Gram : CREAMLAID Phone : 22—2266
22—7904

Bengal

Stationery Stores

10, JACKSON LANE,

CALCUTTA-1.

Stockist of :

THE TITAGHUR PAPER MILLS CO., LTD.
BENGAL PAPER MILLS CO., LTD.
ROHTAS INDUSTRIES LTD.
ORIENT PAPER MILLS LTD.
SIRPUR PAPER MILLS LTD.
SHREE GOPAL PAPER MILLS LTD.

Sole Distributors of :

M. G. PAPERS FOR THE STATE OF W. BENGAL FOR STAR PAPER MILLS LTD.

Dealers in :

ALL KINDS OF INDIAN & FOREIGN PAPERS & BOARDS

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिंग ट्यूब्स्

जल तथा गैस
वितरण के लिए

कलिंग ट्यूब्स् लिमिटेड
२३, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-१२
कारखाना :
चौदवार, कटक, उड़ीसा

KALPAN.KT.24

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ किस्मत से

बाल सुंदर नहीं बनते ...

'बालों को सुंदर रखने में किस्मत नहीं, बल्कि अपनी **मेहनत** और उनकी हिफाजत काम आती है'—हो शियार महिला का उत्तर यही होगा। सुंदर तथा आकर्षक बालों का राज उनकी पूरी-पूरी हिफाजत में है...और आप के लिए '**केशा**' यह काम बखूबी करता है। '**केशा**' बालों को **जवान** और पौष्टिक रखनेवाले तत्वों से भरपूर है, जो बालों की जड़ों तक पहुँच कर उन्हें रेशम जैसे मुलायम, चमकीले और सचमुच आकर्षक बनाते हैं। सच तो यह है अनोखी खुशबूवाला '**केशा**' आपके बालों के लिए वरदान है।

केशा

सोल एजेंट्स और निर्यातकः
एम. एम. खंभातवाला,
अहमदाबाद-१
एजेंट्सः
सी. नरोत्तम एंड कं.,
बम्बई-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Do not shovel away at your paper work

DYNAMITE IT!

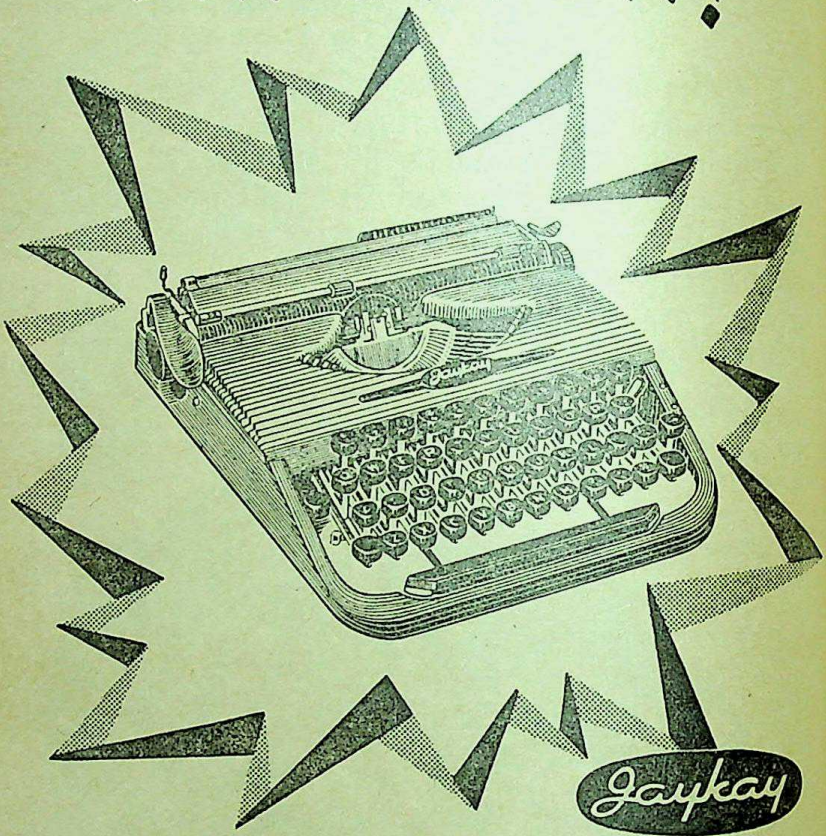

Jaykay

The feather touch of your finger-tips is enough to speed up and finish a lot of work in no time.

It is service par excellence on a Jaykay Portable.

J. K. BUSINESS MACHINES LTD.

2, Mangoe Lane, Calcutta

Divisional Offices :

Calcutta . Bombay . New Delhi . Madras . Kanpur

AGENTS ALL OVER INDIA

PRO/JBM—2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With
Best
Compliments
From

MANUFACTURERS
OF
JEDY
ELECTRICAL
INSULATING
MATERIALS
&
ADHESIVE
TAPES

J
JEDY
D
Y

J
JEDY
D
Y

Commercial Bureau

9, BRABOURNE ROAD,
CALCUTTA-1
Gram : BLAKTAPE
Phone : 22-4473

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection; Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

WITH BEST COMPLIMENTS OF :

The Cardboard Box Mfg. Co.

38, COLOOTOLA STREET,

CALCUTTA-7.

"USE MORE PACKAGING—SAVE MORE WOOD"

Gram : STRAWBOARD **Phone : 34-2666 (2 lin**

Quality Yarn

For Hosiery and Cloth from 6s to 80s including Doubling Yarn in Cheese Cones and Hanks

WE PRODUCE CLOTH IN OUR AUTOMATIC LOOMS

We export yarn every month

BENGAL FINE SPINNING & WEAVING MILLS LTD.

Managing Agents :

M/s. B. C. Nawn & Brothers (P.) Ltd

7, Bipin Behary Ganguly Street,
Calcutta-12.
Telephone No. 22-1015 & 1016 (2 lines)

Mill No. 1
Konnagar
(Hoogly)

Mill No. 2
Gayaspur
(Nadia)
will commence
working soon

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gram :
DYESGLUE

SINGHANIA & SONS
PRIVATE LIMITED
15, C. I. T. ROAD, CALCUTTA.
BOMBAY ✲ KANPUR

Phone :
22-2812
22-2813

DYESTUFFS
CHEMICALS
SYNTHETIC RESINS
(AEROLITE BRANDS
FOR WOOD INDUSTRY)

CHINA CLAY
FOR
ALL INDUSTRIES
MILL STORES
ETC.

Mill Agents for :

Ciba of India Limited

FOR WEST BENGAL, BIHAR, ORISSA, KANPUR &
ADJOINING TOWNS

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AUTHORISED DISTRIBUTORS & STOCKISTS OF

Special Items Of Manufacture :—

WHITE & COLOURED DUPLE
BOARD, M. G. POSTER,
& SULPHITE, M. G.,
MANIFOLD & TISSUE

Rohtas Industries Ltd.

Dalmianagar.

MAP LITHO S|C & GLAZE
BANK & BOND PAPER, CHRO
BOARD S|C, AIR FINISH A
BOARD, WHITE CREAMWO
PAPER & CHROMO PAPER
ETC.

Baroda Stationery Stores

KHARIVAV ROAD

Telg : BOARD

BARODA

Tele :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Ramjilal Ramsaroop

62-1A, NETAJI SUBHAS ROAD,
CALCUTTA.

Cable :
"BOLTSWALA" Cal.-1.
" Delhi.

Phone : { 33-4441
22-6262

MANUFACTURERS' REPRESENTATIVES
IMPORTERS & EXPORTERS

HEAD OFFICE :
HAUZ KAZI, DELHI

STOCKISTS OF :
BOLTS, NUTS, RIVETS, WASHERS, WOOD-SCREWS, HINGES & COACH SCREWS ETC.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Corrugating & Paper Processing Co.

243, BARRACKPORE TRUNK ROAD,
CALCUTTA-36.

Gram : "CASTLE", Calcutta. Phone : 56-31-

MANUFACTURERS OF ALL VARIETIES OF CORRUGATED ROLLS, DOUBLE PASTED CORRUGATED SHEETS, BOTH PRINTED & PLAIN, PRINTED & PLAIN HEAT-SEALED & TWIST-SEALED MOISTUREPROOF WAXED WRAPPERS FOR PROCESSED FOODS, TOFFEE ETC. ETC.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

FOR

PAPERS

INDIAN OR FOREIGN

Please Contact :

Dahyabhai & Sons

51, MARUTI LANE

BOMBAY-1

Authorised Distributors of :

Rohtas Industries Ltd.

DALMIANAGAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Phone : 25-4247

Grams : PADU

PAPERS & BOARDS
Manufactured by
ROHTAS INDUSTRIES LTD.
(DALMIANAGAR)

SUPERFINE GLAZED MAP LITHO
POSTER PAPERS
CHROMO BOARDS
DUPLEX BOARDS
M. G. PINK MANILA
AIR FINISH ART BOARDS
ALL ITEMS AVAILABLE

STAR
TRADING
COMPANY
Paper Dept.

Please Contact at :
31-34, GHOGA STREET, FORT, BOMBAY-1.

BCR

For Typewriter Buy
"TYPIX"

BHARAT (SALES) LTD.
RIBBONS AND
CARBON PAPERS
★
THE BHARAT CARBON & RIBBON MFG. CO. LTD.
BOMBAY : CALCUTTA : DELHI : MADRAS :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gokalchand Jagannath Nahar

28, Chawri Bazar

DELHI

* * *

Importers of all kinds of

PAPERS & BOARDS

* * *

Distributors for Delhi for Papers & Boards of

Rohtas Industries Limited

Dalmianagar.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी प्रकार के
बोर्ड्स और पेपर्स
हमारे स्टॉक में सदा प्राप्य हैं।

हमें अपनी सेवा का अवसर दें
यूनाइटेड इण्डस्ट्रियल एण्ड इंजीनियरिंग कं०
(प्राइवेट) लिमिटेड

नगर के अधिकार प्राप्त विक्रेता
रोहतास इण्डस्ट्रीज़ लि०
टाटाघर पेपर मिल्स
(सन् १९४५ से कागज़ और प्रिण्टिंग व्यवसाय
की सेवा में तत्पर रहने वाले)
४६, सुतार चाल, पोस्ट बॉक्स २३५९, बम्बई-२

कार्यालय फोन :
३९०९६
६२८५६

केबिल :
HOLY TRADE
BOMBAY

बैंकर्स :
दि फ़र्स्ट नेशनल सिटी बैंक आफ न्यूयॉर्क

हम सभी प्रकार के विदेशी पेपर्स और बोर्ड्स का सीधा आयात करते हैं।
हम आपकी पूछ-ताछ का ससम्मान स्वागत करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

New Era Trading Co.

14|2, OLD CHINA BAZAR STREET,
CALCUTTA.

मोहनलाल एण्ड कम्पनी

५६, सुतार चाल, बम्बई नं० २

अधिकृत विक्रेता

रोहतास इन्डस्ट्रीज़ लि०

डालमियानगर

पोस्टरपेपर, डुप्लेक्स बोर्ड, कह्वर पेपर, क्रोमो आर्ट बोर्ड, क्रीम वूव,
क्रीम लेड आदि के व्यापारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

Telephone : 23513
Telegram : STATIONERS

P. Moonirathinam Naidu & Sons

Established : 1913

H. O. VELLORE
BRANCH : TIRUNELVELI

10, STRINGER STREET,
MADRAS-1.

P 3
H 4
O 1
9
N 7
E 2

KHANNA ELECTRIC CO.

34, EZRA STREET,
CALCUTTA.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकलियॅड एण्ड कंपनी लिमिटेड

मैकलियॅड हाउस,

३, नेताजी सुभाष रोड,

कलकत्ता-१

मैनेजिंग एजेन्ट्स, सेक्रेटरी और कोषाध्यक्ष

जूट मिल्स

- अलेकजेण्डर जूट मिल्स लि०
- एलायन्स जूट मिल्स कं० लि०
- नेल्लीमारला जूट मिल्स कं० लि०
- चितावलसाह जूट मिल्स कं० लि०
- ईस्टर्न मैनूफैक्चरिंग कं० लि०
- एम्पायर जूट कं० लि०
- केलविन जूट कं० लि०
- प्रेसिडेन्सी जूट मिल्स कं० लि०
- वेवरली जूट मिल्स कं० लि०

चाय के बगीचे

- अमलूकी टी कं० लि०
- बागमारी टी कं० लि०
- भतकावा टी कं० लि०
- बोरमाह जान टी० कं० (१९३६) लि०
- डिब्रूगढ़ कं० लि०
- दैजू वेली कं० लि०
- मार्गरेट्स होप टी कं० लि०
- राजभात टी कं० लि०
- रानीचेरा टी कं० लि०
- रूपचेरा टी कं० लि०
- सुंगमा टी कं० लि०
- तेलोईजान टी कं० लि०
- तिंगामीरा टी सीड कं० लि०
- तिरींहन्ना कं० लि०
- तीयरून टी कं० लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad postage extra 18 nP. This co

लोकप्रियता में सर्वोपरि

क्यों कि

गुण में सर्वोत्कृष्ट

गुण और स्वाद
में अतुलनीय

विभिन्न किस्मों में प्राप्य।

लिलि बिस्कुट कम्पनी प्राइवेट लि०, कलकत्ता-४

Published by Shri Munishwarlal for Bharatiya Jnanpith Calcutta from 18-A, Ro
Printed by him at Bimal Printers Private Ltd.
38, Strand Road, Calcutta-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

ई १९६२
मूल्य १)

नवोदित लेखिकाएँ अङ्क (२)

[परिशिष्टाङ्क]

CC-0. [illegible] Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोडा ऐश यूनिट
धांगध्रा
गुजरात राज्य
●
तार :
केमिकल्स
धांगध्रा
●
टेलीफोन :
३१ और ६७
●

तार :
साहू जैन, बम्बई

टेलीफोन :
२५१२१८-१९

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

प्रसिद्ध 'हॉर्स शू' छाप हेवी केमिकल्स
के उत्पादन में अग्रसर निर्माता

- सोडा ऐश
- सोडा बाइकार्ब
- कैल्शियम क्लोराइड
- नमक शोर

हाइ रेयॅन ग्रेड
इलेक्ट्रोलिटिक कॉस्टिक सोडा
(९८-९९ प्रतिशत शुद्धता)

कॉस्टिक सो
साहू
पोस्ट-आ
तिरुनुवेली
मद्रास
●
तार
केमि
आरुमु
●
टेलीफो
कायलपट

मैनेजिंग एजेन्ट्स :
साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लिमिटेड
१५ ए, हर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई-१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकु० - ११११२२ - ५२६

नवोदित लेखिकाएँ अङ्क (२)
(परिशिष्टाङ्क)

अनुक्रम

१. मेरो दरद न जाने कोय (टेलिविज़न विधा) : इन्दु जैन ३
२. कि मैं कैसी हूँ (स्वगत-कथन) : अनीता औलक १०
३. शुभागता (प्रणय-कथा) : मुक्ता राजे १७
४. बेचारी राधा (कहानी) : कौशल्या अश्क ३०
५. दो कमरे का फ्लैट (कहानी) : कुमारी मधु ३३
६. पतझड़ की एक अन्तहीन शाम (कहानी) : कुमारी राधा ४१
७. एक बार मुस्कुरा कर तो देखिए (व्यंग्य) : कुँवरानी सरला जैन ४६
८. परिवार में बँधी लेखिका का अलबम (व्यंग्य) : इरफ़ाना शरद ४९
९. यह प्रतिध्वनि भी सुनो (संस्मरण) : डॉ० गार्गी गुप्त ५३
१०. नया देवदास (व्यंग्य) : गीता बनर्जी ५८
११. पत्रकारिता जगत में अफ्रीकन नारी का निखरता रूप (लेख) : सोमा वीरा ६३
१२. सत्य-परिभाषा की कसौटी पर (लेख) : लावण्यप्रभा राय ६८
१३. दुविधा (कहानी) : शारदा सिंह ७३
१४. विषभरी स्मृतियाँ (गद्य-काव्य) : पुष्पा पुरी ७८
१५. स्नेह की भूख (कहानी—विदेशी पृष्ठभूमि) : देवकी रामपाल ८१
१६. मैं हूँ व्यास (काव्य-कथा) : सुनीति गुप्ता ८५
१७. महादेवी के बाद (व्यंग्य-एकांकी) : विद्यावती मिश्र ८८
१८. आठ सदियों की एक महफ़िल (संस्मरण) : अमृता प्रीतम ९३
१९. वार्डन दो—कहानी एक (कहानी) : सुकीर्ति गुप्ता ९७
२०. सोया कैनबरा और जागती अनथकी आँखें (संस्मरण) : शोभिता जैन १०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● हिन्दी कवियित्रियाँ १०९

१. शकुन्त माथुर ११०
(सवक्तव्य)
२. पद्मा सुधि ११४
३. जया गोस्वामी ११५
४. आशालता शर्मा ११६
५. आनन्दा आयंगर ११८
६. शेफाली ११९

●अन्तर-भारतीय कवियित्रियाँ १२१

१. पंजाबी : प्रभजोत कौर १२२
२. बँगला : केतकी कुशारी १२३
३. तमिल : मीनाक्षी १२४
४. मलयालम : सुगत कुमारी १२५
५. भारतीय-अंग्रेज़ी : लीला राय १२६
६. उर्दू : तबस्सुम 'सहर' १२७

● नवोदित लेखिकाएँ : परिचय

१. मन्नू भण्डारी १३१
२. मोहिनी ओबराय १३४
३. रजनी पनिकर १३६
४. ज्योत्सना मिलन १३९
५. मनमोहिनी १४१
६. शिवानी १४२
७. रमा सिंह १४४
८. शुभा वर्मा १४५
९. शशिप्रभा शास्त्री १४७
१०. ममता अग्रवाल १४८
११. जया नागर १४९
१२. प्रेमलता वर्मा १५१
१३. सुनीता अग्रवाल १५५
१४. सरस्वती चौधरी १५७

●

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन : शरद देवड़ा

●

संचालक
भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

●

कार्यालय
१८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१

●

एकमात्र वितरक :
बेनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दु जैन

आत्म - परिचय

●जन्म : अगस्त १९३५, नई दिल्ली में। माँ (श्रीमती कुन्था जैन) मेरे जन्म के समय दिल्ली के हिन्दू कॉलेज में बी० ए० ऑनर्स (अंग्रेज़ी साहित्य) की छात्रा थीं, इसलिए स्वभावतः साहित्य के गहरे अध्ययन की ओर उनका सहज रुझान था; पिता (श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन) अंग्रेज़ी और संस्कृत में एम० ए० करने के बाद ऑल इण्डिया रेडियो, नई दिल्ली में हिन्दी कार्यक्रमों के संचालक थे। इसलिए मैंने जन्म से ही पाया कि घर का वातावरण उदार विचारों और साहित्य, संस्कृति तथा अन्य ललित कथाओं से अनुप्राणित था। पहली सन्तान होने के कारण अपने माँ-बाप की बेहद लाडली तो थी ही, यदि कहूँ कि अपने साहित्यिक, कलात्मक संस्कार भी मुझे उन्हीं से विरासत में मिले हैं तो अत्युक्ति नहीं होगी।

●मेरे कविता-लेखन का प्रारम्भ किस तरह हुआ इसकी भी एक रोचक घटना है। मैंने पहली कविता ९ वर्ष की आयु में लिखी थी। मुझे अच्छी तरह याद है, खेलते-खेलते अचानक आकर ममी से कहा कि खेल में मन नहीं लग रहा, कुछ और करना चाहती हूँ। ममी पत्र लिख रही थीं। बिना सिर उठाए बोलीं : 'कविता लिख ले।' मैंने पूछा, 'किस पर लिखूँ?' (जैसे कि रोज ही लिखती रहती थी!) ममी ने उसी तरह सहज कहा : 'फूल पर लिख।' और मैंने फ़ौरन काग़ज़ पेंसिल लेकर लिखा : 'फूल मधुर तुम हो मुस्काते'! आज मुझे स्वयं आश्चर्य होता है कि 'मधुर' शब्द मुझे कहाँ से आ गया था! और उससे भी अधिक आश्चर्य होता है कि ममी को क्या सूझा था उस समय? हर पंक्ति के बाद ममी को सुनाती, और आख़िर वे भी पत्र लिखना छोड़ कर मेरे खेल में लग गयीं। कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त होते ही उन्होंने मुझसे उसे साफ़-साफ़ उतारने को कहा, मुझी से एक फूल का चित्र बनवाया और दोनों को 'शिशु' में प्रकाशनार्थ भिजवा दिया। कविता छप भी गयी। अब क्या था! मैं तो कवियित्री क़रार हो गयी। डैडी को जब पता लगा कि उनकी बिटिया कवियित्री हो गई है तो उन्होंने मुझे ख़ूब प्यार किया और कहा कि एक नई कविता उन्हें हर सुबह तकिए के नीचे मिलनी चाहिए। करीब सप्ताह भर यह क्रम चला, और उसके बाद मैं फिर स्कूल की पढ़ाई करने वाली बच्ची हो गयी।

●अपने बारे में यदि कहूँ कि 'Nature I love and next to nature art' तो ग़लत नहीं होगा। अपने छात्र जीवन में ही नृत्य सीखा, संगीत सीखा, विश्व-विद्यालय की चित्रकला-प्रदर्शनियों में भाग लेती रही, नाटक लिखती व खेलती रही, प्रथम श्रेणी में एम्० ए० किया और जी-जान लगा कर 'प्रयोगशील कविता' पर विस्तृत लेख तैयार किया, रेडियो-वार्ताओं और नाटकों में भाग लिया, टेलिविज़न की स्क्रिप्ट लिखती हूँ और स्वयं उसमें भाग भी लेती हूँ, और कुछ समय के लिए क्ल मॉडलिंग की क्लास में श्री सुधीर ख़ास्तगीर की प्रिय शिष्या भी रह चुकी हूँ। सब किया पर कहीं टिकी नहीं...इसके पीछे भी वही रोग था—मेहनत न कर सकने का। अब भी जब जोश आता है कोई काम उठा लेती हूँ, लेकिन हैमलेट का inaction मेरी भी ट्रेजिडी है। अब इन सब कलाओं का मिश्रण करके एक नई कला बना ली है—'घर सजाना'। मेरे पति और मैं, दोनों ही काफ़ी इस चक्कर में पड़े रहते हैं। रोज़ घर की चीज़ों का क्रम बदलते हैं, कीलें ठोकते हैं, पौधे सजाते हैं, और चित्रों के फ़्रेम व बैक-ग्राउण्ड के साथ नये-नये प्रयोग किया करते हैं।

●कविता लिखना मेरे लिए सदा से सहज, स्वाभाविक रहा है। मन में कुछ आया, किसी भी समय, कहीं भी और कविता स्वयं बन गयी। वह क्षण सपने में भी आ सकता है, नितान्त एकान्त में और ख़ूब भीड़-भाड़ में भी। लिख भी जल्दी लेती हूँ —पाँच-सात मिनट के अन्दर ही कविता बिजली की चमक-सी लिखी जाती है, और वर्षा के बाद के आकाश की ही तरह मन को हल्का और उन्मुक्त छोड़ जाती है। गद्य लिखना मेरी अपनी भीतर की मजबूरी नहीं है। वह तभी लिखती हूँ जब कहीं से विशेष माँग होती है या कोई ख़ास विचार ढालना होता है।

●कविता की भाषा अधिक से अधिक सरल हो और चेतन-अवचेतन सब के आयाम इसकी परिधि में आ सकें यही मेरी इच्छा रहती है। जिस तरह हम पुस्तक की एक पंक्ति-विशेष पढ़ते हुए भी उसके आरंभ और अन्त के पूरे विस्तार के प्रति चेतन रहते हैं, उसी तरह कविता में वह संवेदनात्मकता लाने का प्रयत्न करती हूँ जो भाव को यहाँ से वहाँ तक, भीतर और बाहर, सब का आलिंगन करती हुई, 'क्षण' को प्रकाश में ला सके। इसके साथ शर्त यह भी है कि कविता दुरूह न हो जाए। जिस सहजता से यह सारा विस्तार मेरे मन में उतरा है उसी सहजता से कविता उसे औरों के मन में उतार सके। जिस दिन यह सुलझाव प्राप्त कर लूंगी—धन्य हूँगी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[दृश्य-संकेत]	[ध्वनि संकेत]
१. कृष्ण की प्रतिमा वेदी पर है। उसके आगे अगरू और धूप की लहरें उठ रही हैं--एकतारा रखा है।	संगीत के स्वर उभरते हैं। एक-तारे की झनकार---
२. एकतारे पर धीरे-धीरे मीरा की छाया पड़ती है। छाया समीप आ प्रणाम में झुकती है।	"हे मेरो मनमोहना। आयो नहीं सखी री, हे मेरो मनमोहना।" ---मीरा (नेपथ्य गीत)
३. कैमरा---कुमारी मीरा की पीठ की ओर। वह आकर दीप जलाती है, एक बार आरती उतार, एकतारा छेड़ती है।	मारवाड़ में फूल कली-सी, सुरभित राजदुलारी। बालपने से हरि-पद लागी हिरदय नन्द बिहारी। ---पुरुष स्वर (सस्वर)
४. मीरा एकतारा उठा कर कैमरे की ओर घूम आई है। तन्मय गा रही है।	"हे मेरो मनमोहना! कहा करूँ, कित जाऊँ मोरी सजनी? लाग्यो है विरह सतावणा। मीरा दासी दरसण प्यासी, हरि चरणाँ चित लावणा।।" ---मीरा (गीत)
५. द्वार पर मीरा के पिता। पुत्री को क्षण भर प्यार से मुस्करा कर देखते हैं। फिर चिन्तित, द्वार पकड़े खड़े रह जाते हैं।	गिरिधर में लीन हुई मीरा सयानी थीं! पिता पुत्रि-भक्ति देख हो जाते चिंतित। सो---वर ढूँढ़ा...घर ढूँढ़ा..... ---पुरुष स्वर (पाठ)

[दृश्य-परिवर्तन]

फ़ेड आउट तत्काल ही उभरता है---

१. एक व्यक्ति दुंदुभी अथवा शहनाई बजा रहा है (अभिनय: दो व्यक्ति हर्ष-भरे संकेत करते वादक को देखते गुज़रते हैं) शहनाई

मेरो दरद न जाने कोय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. एक स्त्री मंगल चौक पूरती है---पटरा रखती है। दूसरी बंदनवार लटका रही है।

मंगल चौक पूरती सखियाँ
बंदनवार सजातीं।
मीरा अपने नटनागर की
सुधि में डूबी जातीं।

---स्त्री स्व
(सस्व

८. राणा पधारते हैं। साथ परिजन। पीछे छत्रधारी। पटरे पर आते हैं। आरती।

द्वार चार को प्रस्तुत राणा,
मीरा की आँखों में मोहन।

---पुरुष स्व
(सस्वर)

९. मीरा तन्मय-प्रसन्न। गवाक्ष से देख रही है।

राणा देख नहीं पाती वह
जहाँ देखती, पाती काहन!

---स्त्री स्व
(सस्व

१०. राणा का मुख, ओवरलैप, कृष्ण-छवि

शहनाई व मंगल वाद्य के साथ मिला-जुला मीरा का गीत उभरता है:

"साजन मेरे घर आया हो!
युगों युगों मग जोती,
बिरहिन पिव पाया हो।

---मीरा
(गीत

११. राणा पर एक स्त्री रत्न न्योछावर करती है, दूसरी शंखध्वनि करती है, तीसरी पद पखारती है।

रतन करा न्योछावरा
ले आरत साजा हो!

१२. मीरा झाँक कर गा रही है।

पिय आया मेरो साँवरा
अंग आनन्द साजा हो!

(और गति से)

१३. राणा पटरे से उतर मुस्करा रहे हैं---स्त्रियाँ फूल बिखेर रही हैं।

पिय आया मेरो साँवरा...
पिय आया मेरो साँवरा....."

राणा–मीरा---राणा ओवरलैप---कृष्ण

वीणा और मृदंग

[दृश्य-परिवर्तन]

१४. राणा का सूना महल---मंद ज्योति। खंभे, गवाक्ष---सूने-सूने।

मीरा रानी बन कर आई---
रानी बन कर आई!
लेकिन महल उदास पड़े हैं---
महल उदास पड़े हैं।

---स्त्री स्व
(उदास पा

१५. मीरा व्याकुल है। भोजन की थाली सरकी पड़ी है। अकुला कर पंखा

"हेरी मैं तो प्रेम दीवानी
मेरो दरद न जाने कोय।

---मी
(मंद गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झलती दासी को रोक देती है। इधर-उधर टहलती है (अभिनय)

भोजन भवन भलो नाहिं लागै,
जिया जात म्हारो खोय।
विरह भुजंगम डस गया तन को,
लहर हलाहल होय।

१६. साधु मार्ग पर जा रहे हैं। मीरा झट उठ कर खिड़की पर आ जाती है।

सब संतन पर तन-मन वारूँ,
चरण कमल दूँ धोय।
मेरो दरद न जाने कोय।"

संगीत, वाद्य सब बंद। क्षण भर मौन।

१७. मीरा उदास–गवाक्ष में खड़ी रह गई है। परिवार की एक स्त्री आकर कहती है। मीरा चौंकती-सी है।

रानी मीरा ! ––स्त्री
ऐसी भी क्या भक्ति ?
बड़े भाग जो पाए राणा,
ऐसा नेही और न दूजा।
जग भूली, क्यों ऐसी डूबी ?
पति, परिवार सभी से ऊबी।

१८. मीरा समझाना चाहती है––तन्मयता में और उलझा देती है।

"मेरे तो गिरिधर गोपाल ––मीरा
दूसरो न कोई। (गीत)
जाके सिर मोर मुकुट
मेरो पति सोई....."

१९. परिवार की वह स्त्री कानों पर हाथ रख कर हट जाती है।

केवल संगीत––मीरा की गुनगुनाहट

२०. राणा का प्रवेश। क्षण भर असमंजस में रहते हैं––फिर पुकारते हैं।

मीरा ! ––राणा
देखो रैन सुहानी। (पाठ)

२१. मीरा अपराधिन-सी सिर झुकाए है।

आओ !
महल जगाओ रानी !

२२. मीरा राणा से दूर हट आई है। प्रार्थना के स्वर में कहती है।

"राणा, मैं तो विवश भई ! ––मीरा
पायो म्हाने प्रेम अनूठो (पाठ)
जामें पीर भरी।
जो ये जाने सोई माने
कहनो किस बिध होई।
घायल की गति घायल जाने
और न जाने कोई।"

२३. राणा व्याकुल हैं। मीरा को समझाते हैं।

कैसी पीर बसा ली मन में ? ––राणा
मीरा ! (पाठ)
तुम तो गिरिधर हाथ बिकानी !
माना मुझसे नेह नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल, राज, प्रजा—
सब बिसर गए क्या ?

२४. मीरा आँखें मूँदे मौन है। राणा कन्धे पर हाथ धर फिर कहते हैं—

मीरा ! कुछ तो करो विचार !
जग हँसता है तुम पर, मुझ पर
परिजन भाग्य कोस रोते हैं...

२५. मीरा और रुक नहीं पाती। तन्मय होकर गा उठती है।

"मीरा लागो रंग हरी।
औरन सब रँग अटक परी।
कोई निन्दो, कोई बिन्दो
ना म्हारे गरज परी....."

[दृश्य-परिवर्तन]

२६. एक माला तोड़ कर फेंकी जाती है; उसके फूल—दो एक अलग निकल जाते हैं। माथ का बोर फूलों पर गिरता है। उस पर सुहाग चुनरी फैल कर आ जाती है।

केवल मृदंग
तब
करुण संगीत (सितार)

२७. एकतारा उल्टा पड़ा है। उसके पास मंजीरे आ गिरते हैं। साथ ही मीरा टूटी लता-सी गिरती है। सादी ओढ़नी, बाल खुले, पाँवों में घूँघरू। क्षण भर यों ही पड़ी रहती है फिर मुख उठाती है।

कुल परिजन पर बिजली टूटी
राणा असमय स्वर्ग सिधारे।
मीरा ने महलों को छोड़ा
पूजागृह से नाता जोड़ा।

"अँसुवन जल सींच-सींच
प्रेम बेल बोई।
अब तो बेल फैल गई
आनंद फल होई....."

२८. मीरा धीरे-धीरे उठ कर हरिचरणों में जा बैठती है।

"मीरा मगन भई हरिके गुन गाय!"

२९. राणा विक्रम के हाथ में पिटारा है जिसमें साँप फुफकार रहा है।

साँप पिटारा राणा भेज्यो
मीरा हाथ दियो जाय।

३०. परिचारिका बन्द पिटारा मीरा को देती है। कमर पर हाथ धर विद्रूप से मीरा को देखती है।

संगीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३१. मीरा कृष्ण को प्रणामकर पिटारा खोलती है। उसमें शालिग्राम की माला है। मीरा उसे धारण करती है।

न्हाय धोय जब देखन लागी
सालिगराम गई पाय।
मीरा मगन भई हरि के गुन गाय!

३२. परिचारिका कृष्ण के चरणों में गिर जाती है।

दूसरा गीत उभरता है

३३. मीरा विष का प्याला लिए खड़ी है। परिचारिका उनके चरणों में बैठी फूट-फूट कर रो रही है। मीरा शान्त मन से विषपान करती है।

"विष का प्याला राणा ने भेजा
पीवत मीरा हाँसी री!
तन-मन वारा हरि चरणों में
दरसन अमृत प्यासी री!"

३४. मीरा के चरण—नृत्यरत

नृत्य-संगीत

"मैं गिरिधर आगे नाचूँगी। —मीरा (गीत)
नाच-नाच पिया रसिक रिझाऊँ
प्रीत पुरातन जाचूँगी।"

३५. मीरा नगर के बाहर चली जा रही है—तन्मय। उसके चरणों के पीछे अनेक चरण हैं।

मीरा ने त्यागा मेवाड़। —सम्मिलित स्वर
चलीं द्वारिका धाम को
मीरा ने त्यागा मेवाड़।

३६. मीरा जिधर देखती है—कृष्ण दिखाई देते हैं।

निरगुन सगुन भेद —स्त्री स्वर (सस्वर)
दोउ भूले!
मीरा पायो प्रीतम प्यारे!

३७. उसी पर 'फ़ेड इन' होते हैं—
शीर्षक
पात्र
निर्देशक
संगीत
आदि.....

अचराचर का एक निदान। पुरुष स्वर (सस्वर)
हरि मीरा में, मीरा हरि में—
एकाकार भगता भगवान।

नेपथ्य में मीरा का अंतिम पद सुनाई दे रहा है।

"हरि तुम हरो जन की पीर। —मीरा (नेपथ्य गीत)
द्रोपदी की लाज राखी,
तुम बढ़ायो चीर।
बूड़ते गजराज राख्यो,
कियो बाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर,
हरचो म्हारी भीर।"

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनीता औलक

●

आत्म - परिचय

●नाम अनीता औलक। परिवार पंजाबी। जन्म-स्थान लाहौर, ३ अगस्त १९४२। पिता प्रसिद्ध उद्योगपति हैं। आरम्भ काल शिक्षा कन्वेण्ट देहली। बाद में भाई के साथ-साथ हैम्पटन कोर्ट में पाई, जहाँ पर दोनों को 'कॉमिक्स' पढ़ने की बुरी आदत पड़ गई इसके बाद सेण्ट वेवरली (मसूरी में) से सीनियर कैम्ब्रिज पास किया। भाई है, वह एंजीनियरिंग कॉलेज में है; मुझे अंग्रेज़ी साहित्य का उन्हीं की एकत्रित पुस्तकों से मिला है।

●मम्मी के संग्रहालय से हिन्दी तथा अंग्रेज़ी के क्लासिक्स पढ़े हैं। साहि में रुचि भी मम्मी की 'साहित्य-साधना' के कारण ही हुई। उन्हीं की और फल का परिणाम है कि मैंने उनकी प्रेरणा से कुछ लिखा। घर लगभग चौबीसों घंटे साहित्यिक वातावरण रहने से ही संस्कार कुछ बने हैं कि बैठे-बैठे एक अन्तर्दृष्टि का बोध होता रहता है--कि म अपने को नापे-तौले और आगे बढ़े।

●पेंण्टिंग की ओर रुचि का कारण भाई हैं। सहित्य, संगीत और स्टेज की ओर विशेष रुझान है। १९५५ में शिक्षा-केन्द्र की ओर से यू भ्रमण (विषय : पाश्चात्य यूनिवर्सिटी से विचारों का आदान-प्रदान)। छोटी बहन जिस पर साहित्यिक प्रभाव शायद कुछ-कुछ पड़ रहा है।

कि मैं कैसी हूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● मेरे भीतर अक्सर सवाल उठता है कि मैं कैसी हूँ ?...अक्सर यह चर्चा ही सुनने में आई होगी कि यह कैसा है ?---वह कैसा है ? पर कोई कभी यह भी सोचेगा, कि मैं कैसी हूँ ?

पर मुझे तो सोचना ही पड़ा है ! कैसे ? क्यों ? इसी का यह जवाब है, पर जवाब देने के साथ ही मैं आपसे भी प्रश्न करूँगी, कि आप भी उत्तर दीजिये कि मैं हूँ कैसी ?

कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से लौट आने के शुरू के दिनों की बात है। देहली पहुँचने पर नये सिरे से 'देहली ने कितनी तरक्की कर ली है' सुने जा रही हूँ। रास्ते में पूछती जा रही हूँ,---'सैन्ट्रल प्लेस से कितनी दूर है---'सुन्दर कॉलोनी' ?' पर भैया रास्ते में बनी नई इमारतों, संस्थाओं, महकमों और सड़कों के नाम आदि बताने में इतने तल्लीन हैं, कि असल बात का जवाब ही नहीं दे रहे हैं।

इस बार मैं अपनी कोठी के बारे में पूछती हूँ, "कैसी बनी हुई है ? बँगला टाइप ? या फ्लैट टाइप ?"

भैया कहते हैं, "अभी पहुँचे जाती हो, खुद देख लेना।" और वह फिर उँगलियों से नई इमारतों को इंगित करके उनका नाम-हवाला दिये जा रहे हैं। मैं एक अजीब नशे में भरी-भरी, मातृ-भूमि की हवा से अपने को नहाया पाकर विभोर होने में कुछ सुन नहीं पाती। सहसा "आओ, उतरो !" सुन कर उसी मद में---(कि जिसमें एक हल्का-सा मद कैम्ब्रिज का भी मुझमें विद्यमान हो) उड़ते जाते बालों को सँभाल कर, कार से उतर कर, कपड़े झाड़ कर दुरुस्त करती दो-तीन अपरिचित सीढ़ियाँ चढ़ती, अजनबी की तरह नये घर में, माँ के पीछे-पीछे प्रविष्ट होती हूँ। धीरे-धीरे घूम कर पूरा घर देख लिया, तो नज़र अटकती है गुलाब और मोतिये की क्यारियों पर। कोठी का पिछला हिस्सा, जहाँ कच्चे-पक्के नींबू के पौधे थे, पपीता और यूक्लिप्टस आजू-बाजू खड़े थे, उसे ही अपने लिये चना।

कुछ दिन घर की अव्यवस्था को अनुकूल बनाने में लगे। मनलायक घर को सजा कर, मेरी तृप्ति नहीं हुई। क्योंकि 'सुन्दर नगर' जैसे नाम को तब वह घर चरितार्थ नहीं करता था। मैं 'सुन्दर नगर' शीर्षक को बढ़ा-चढ़ा कर देखने लगी थी। क्योंकि, उस समय और अब के 'सुन्दर नगर' में आकाश-पाताल का अन्तर था।

कुछ हो, घर की साज-सज्जा की व्यवस्था करने के बाद सोचा, कि थोड़ा घूम-घाम कर कॉलोनी के बाहर का रूप भी देख लेना चाहिये, कि कॉलोनी है किस टाइप की। यहाँ यह बताना ठीक होगा, कि एक तो हमारी कोठी सुन्दर मार्केट की तरफ थी, दूसरे उस समय ज़्यादा प्लाट खाली पड़े थे। कुछ ही प्लाट अभी तैयार हुए थे, वह भी दूर-पार...बहुतेरे प्लाटों को लाँघ कर यत्र-तत्र ही कुछ बन पाये थे। यह उट-पटाँग व्यवस्था देख कर मुझे बड़ी कोफ्त हुई। मैंने मन में सोचा---'यह भी क्या कोई ढंग है, कि कोठियाँ भी करीने से नहीं खड़ी कर सके ? शायद यह भी एक शान है कि प्लाट एक के बाद एक न बना कर फ़ासले-फ़ासले पर कहीं-कहीं इमारतें चुन दीं ?...'

पर बाद में धीरे-धीरे रईसों, अथवा एकानामिस्टों ने जब एक जगह ऊँची-ऊँची इमारतें उठा दीं, तो मुझ पर इन चुनी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमारतों ने एक दूसरी ही प्रतिक्रिया की। मेरे भीतर कोई चिल्ला-चिल्ला कर 'प्रीस्टले' की उक्ति को उघाड़ रहा था कि---'मीलों धरती तो, आपने इन घरों को एक-ब-एक यहाँ कीलों की तरह जड़ कर, घेर ली है।' अब एक भी तो प्लाट खाली नहीं रहने दिया, जहाँ से खुले मैदान में झाँक कर किसी धुँधली, बदली भरे दिन का आनन्द तो ले सकते---और खास कर जब कई साहूकारों को घर की जरूरत नहीं थी, तो फिर बनवाये ही क्यों? क्या किरायेदारों को बसाने के लिये?...

ओफ़्---! और अब तो प्रान्त-प्रान्त से आकर किरायेदार यहाँ बसने लगे हैं। किसी नये किरायेदार को सामान लादे आते देख कर दिल में कुढ़ती हूँ---लो अब इन साहिब का भी यहाँ पधारना जरूरी था। इनसे भला कोई पूछे, "कि जब यहाँ फ्लैट नहीं बने थे तो क्या महाशय आप सड़कों पर धक्के खाते थे? और यदि फिर कहीं रह रहे थे, तो फिर वहीं क्यों नहीं खपे रहे?"

उन्हीं दिनों की बात कर रही हूँ, जब शुरू दिनों में मुझे यह पता न था, कि कौन कहाँ रहता है? पर एक दिन 'लव मैरिज' देखने जाने पर एक पड़ोसी का परिचय मिला।

बात यों हुई थी कि इन्टरवल के समय भैया को एक लड़के ने इशारा करके अपने पास अगली सीट पर बुला लिया, और लगा फुसफुसाने। जब भैया पलटे, तो मैंने पूछा, "कौन था?"

"एक दोस्त।"

पूछा, "क्या चाहता था?"

"कि बाकी वक्त उसके साथ बैठ कर पिक्चर देखूँ?"

"बहुत खूब! बड़े उजड्ड दोस्त हैं। घर वालों के साथ भी असभ्य-सा व्यवहार करना सिखा रहे हैं।"

पिक्चर पुनः आरम्भ हो गई थी, इसे चुप होना पड़ा। पर मन में उसे अभी कोस रही थी---"बड़े खबसूरत हैं न तभी घर से इनके साथ और कोई देखने चला न? इसलिये पिक्चर इन्हीं के बैठ कर देखो। ज़रा अपनी शक्ल तो देखें ...शक्ल वस्तुतः उसकी अच्छी ही यह अनुमान इसलिए लगाना पड़ा, कि साथ मेरी कज़िन सिस्टर और भाई भी दोनों ही साँवले थे, पर कज़िन भाई तो ज्यादा काले, भौंडे, व बेडौल भी थे। सवाल था कि वह तो मेरे कज़िन थे और...यह...?

पर अगले ही दिन पाती हूँ, वह

सृजन का आनन्द

नारी की सृजनात्मक शक्ति ही तो उसको माँ की संज्ञा देती है, उसके हृदय को ममता, करुणा और विनय का आगार बना देती है। सृजन! सृजन!! सृजन!!! ओह, मैं जितना अधिक इसके बारे में सोचती हूँ, जाने क्यों उतनी ही तीव्रता से अपनी लेखनी को ज़ोर से पकड़ लेती हूँ और फिर उसको चूम लेती हूँ, ठीक वैसे ही जैसे मेरे हाथों में एक नन्हा-सा शिशु हो,---मेरी सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक!

---मेरी कोरेली

(प्रेषक : मोहिनी ओबराय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैरिज' वाला लड़का तो सामने वाली कोठी में ही रहता है ; क्योंकि घर में मालिकाना तरीके के ठाठ-बाट से खड़ा-खड़ा मानो मुझे देख कर मुस्कुराता जा रहा है ।

मैं डर कर हट जाती हूँ, ख़ास तौर से यह पता लगाने कि उसकी इस भौंडी हरकत को भैया-वैया ने देख तो नहीं लिया ?... पर भीतर आँगन में उसी लड़के को लेकर भैया और माँ में कुछ बात-चीत चलती पाती हूँ, तो वहीं रुक कर सुनने लग जाती हूँ ।

"लड़का देखने में तो अच्छा है, पर पढ़ा-लिखा कितना है ? यह भी जानना जरूरी है।" भैया की आवाज़ आई—"आप यहाँ नहीं थीं, तब पिछली छुट्टियों में उसकी माँ आई थी । उसी ने मुझसे पूछा था कि निशा कब लौटेगी ? आपसे भी मिलना चाहती थी । शायद अब सारा परिवार यहाँ आकर बस जायेगा । अभी तक तो परीक्षाओं की सुविधा रहे, उसी से किशोर यहाँ अकेला रहता था । परिवार 'लाल कुँए' वाले घर में है..."

पर निशा क्या ऐसे घटिया-स्तर के सास-ससुर के बीच, उफ़...और लाल कुआँ !

मैं खटर-खटर करती तब तक बरामदे से होकर एक चक्कर नींबू के बगीचे का लगाने के बहाने प्रकट हो गई थी, इसी से भैया और माँ ने वह वार्तालाप वहीं रोक दिया था ।

इसके बाद जब कभी वह लड़का मेरी ओर ताक कर मुस्कुराने का प्रयत्न करता तो इच्छा होती, उस पर अपनी प्रतिक्रिया झाड़ूं, "कि यह मुँह और मसूर की दाल !" पर धीरे-धीरे मेरी ही प्रतिक्रिया दूसरी तरह की होती गई ।

उस 'किशोर' नाम से अब शायद मुझे चिढ़ नहीं रही, और उसका मुस्कुराना अच्छा लगने लगा । उसके जिन घुँघराले बालों को भद्दा रूप दिया करती, वह भी धीरे-धीरे अच्छे लगने लगे । पर उसकी मुस्कान का मैंने कभी कुछ जवाब नहीं दिया, और खासी गम्भीर बनी रही । हाँ, यदा-कदा बिस्तर पर पड़े-पड़े ध्यान हो आता कि मेरी इस उदासीनता या लापरवाही से तंग आकर, जो कहीं उसने मेरी ओर ताकना या मुस्कुराना छोड़ दिया तो ?...

पर ऐसा हुआ नहीं, वह पहले जैसा रेलिंग या खिड़की पर खड़ा होता, और वैसे ही मुस्कुराया करता । कभी-कभी—"भैया हैं, कि नहीं ?"—पूछने चला आता । उसका बहाने से आना, मुझसे छिपा नहीं था, पर इससे मुझे सन्तोष ही मिला करता, और इस जानकारी से तो और भी संतोष बढ़ गया कि इधर आस-पास के चौराहे तक, कहीं एक भी दूसरी बाला नहीं थी, कि जिसे देख कर वह मुस्कुरा सकता था या उस लड़की के किसी भैया के बारे में पूछने जा सकता ।

पर समय एक समान नहीं रहता । सुन्दर कॉलोनी बढ़ती गई और इस बढ़ने के साथ-साथ बहुतेरे नये लड़के-लड़कियाँ वहाँ आ बसे । हम सब का ध्यान भी आस-पास से हट कर नये-नये आने वालों में बँट गया । मैंने और उसने भी जान लिया कि हम परस्पर छले जा रहे हैं । और अन्त में कॉलोनी में किन्हीं सहेलियों से मुझे यह पता चला, कि उस पीली इमारत में रहने वाली लड़की से तुम्हारे पड़ोसी 'किशोर' का पुराना रोमान्स चल रहा है ।

सुन कर मुझे आग-सी लग गई । और मैंने अपनी लापरवाही को खासी घृणा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल दिया। अपनी यह अवज्ञा मैं उस पर ज़ाहिर करने को छटपटाया करती। और फिर उसे प्रतिस्पर्धा में जलाने के हेतु मैं अपनी सहेलियों के साथ आये उनके भाइयों से हँस-हँस कर बोलती। या फिर भैया के मित्रों के साथ, 'फ्री स्टाल' में खड़ी होकर बातें करती, या कैम्ब्रिज के नये नमूने के 'कैक्टस प्लान्ट्स' का ब्यौरा दिया करती। और कुछ नहीं तो सहेलियों को अपने बगीचे में लगी 'केतकी की बेल' दिखाती या तोरई के फूलों का ज़िक्र ले बैठती।

अन्त में एक दिन मैंने पीली इमारत वाली नायिका की ओर उँगली से संकेत करके, सहेलियों को कुछ कहा। सहेलियाँ

लेखिका का धैर्य

श्रीमती पर्ल बक प्रतिदिन बहुत काफ़ी संख्या में 'आटोग्राफ़' देने पर भी इस काम से नहीं थकतीं। एक दिन एक पाँच साल की बच्ची ने श्रीमती बक से 'आटोग्राफ़' लेते समय कहा, 'अपना नाम बड़े अक्षरों में लिखिएगा। मैं अभी पहली क्लास में ही हूँ।' श्रीमती बक ने बड़े धैर्य से बड़े अक्षरों में अपना नाम लिख कर उसकी इच्छा पूर्ण की।

—स० ना० सिन्हा

हँस पड़ीं, और एक-एक करके विदा हुईं। इस तरह उस 'किशोर' पर मैंने प्रकट कर दिया कि—"मैं खूब जानती हूँ, कि उसी लड़की से तेरा 'रोमान्स' चल रहा है!" पर शीघ्र ही भैया का एक मित्र स्कूटर खड़ा करके भैया को पूछ गया है। "भैया नहीं हैं।" कहने के उपरान्त जो मैंने स्कूटर लड़के को बाई-बाई किया तो देखती कि सामने की रेलिंग पर किशोर भी वैसी ही एक मुस्कान द्वारा मुझे उत्तर देता कह रहा है—"अरे मैं भी जानता कि इसी स्कूटर वाले सुन्दर युवा से प्यार है!"

"ऊँह-ह-ह-अहमक हो तुम! हो तो समझो!"—और मैं खुश थी वह जान गया है, कि मेरे चाहने वालों संख्या कल्पनातीत है, कि मैं उसके प्यार मोहताज नहीं हूँ।' और न जाने यह तक चलता रहा, पर परीक्षाएँ थीं वह सब दब गया-सा ही लग रहा था।

अक्सर ऊपर झाँकने पर जनाब की खुली मिलती है। टेबल-लैम्प की रोशनी नीचे, माथा थामे, परिश्रम में दत्त-चित्त हैं। मैं विद्रूप से कहती हूँ—"बड़ी कर रहे हैं.....जैसे और कोई भला कर सकता है?....या कि आज तक रिसर्च की है? और कम से कम रिसर्च करने में तो मुझे सन्देह है, आप मेरे ख्याल में खिड़की बन्द कर शायद पास हो भी जायें.....अन्यथा आपकी रिसर्च पूरी हो। हम भी तो पर आपकी तरह पढ़ने का प्रदर्शन तो करते।" मैं टेबल पर पड़ी रिस्ट टाइम देखने उठती हूँ—"सब दिखाने के सिर्फ दिखाना है, कि कितना पढ़ सकते कितना जीनियस हूँ! भई मुझे तो तरस आ रहा है, हमने मान लिया कि बहुत पढ़ते हैं, अब आप सो सकते हैं उसी भन्नाहट में खिड़की का पट ढक रोशनी बन्द करके, सो जाती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्ध्या को 'सुन्दर कॉलोनी' का चक्कर लगाती हूँ, तो पाती हूँ, उसी नायिका ने अपनी खिड़की पर एक दर्पण टिका रखा है, और उसी में अपनी प्रतिच्छवि निहार रही है।

मैं दिल में बोलती हूँ--"हूँ, बड़ी अपने को सुन्दर समझती होंगी, इसी से दर्पण खिड़की में टाँग दिया है, ताकि देखे कि रोशनी में और कितनी सुन्दर लगती है! ख़ूब! जाने क्या समझ रखा है अपने को। वैसे दर्पण मैं भी दिन में पच्चासों बार देख कर तुष्टि पाती हूँ, परन्तु बात यह है कि मेरी बात दूसरी है।"

कॉलोनी में एक फ़ैशनेबल लड़की बहुत घूमने लगी है। उस लड़की से दोस्ती करने की इच्छा भी है। एक दिन उसने खुद ही मुझ से दोस्ती भी कर ली। पर जिस दिन से यह जान लिया कि वह लड़की भैया के स्कटर वाले दोस्त में बेहद 'इन्टरेस्टेड' है तो उस लड़की पर मेरे क्षोभ की सीमा न रही। लड़की को दिल में कोसते हुए कहा--"अपनी शक्ल भी देखी है शीशे में? या कि बिना सोचे-विचारे ही अपने को उस लड़की की बराबरी का समझ लिया है?" पर यह लड़कियाँ भी तो कोई लड़का नहीं छोड़तीं कि जिसे 'हीरो' न बना लें। फिर चाहे बम्बई से लक्ष्मी बुआ के तीन भाई, इंजीनियर होकर, देहली छुट्टियाँ बिताने आकर, केवल मेरे ही आकर्षण से छुट्टियों की अवधि लम्बी किये डाल रहे हों। बेचारे एक बार भी मुझसे खुल कर बात नहीं कर पाये, वैसे चाहे एक वाक्य भर इंटरप्रेट करने को तड़पते रहे हों। पर अपना वैसा क्यों बुरा लगने लगेगा मुझे?

देखती हूँ कि पीली कोठी वाली नायिका, लाल कोठी वाली लड़की से नोट्स माँगने आयी है। मैं देखकर मन में कहती हूँ--"हूँ, नोट्स ही लेने तो आयी है। तीन बार अंग्रेजी में फेल होकर भी अभी नोट्स माँगने की इच्छा बाकी है। सीधे से कहो न, कि इस सामने वाले 'अशोक' को ही ताकने-झाँकने आयी हो। वैसे खुद मैं लाल कोठी वाली लड़की से मैत्री करना चाहती हूँ, क्योंकि उसके पड़ोस में उसके दो कज़िन भाई अलग से फ्लैट लेकर रहने लग गये हैं। उसके कज़िन चूँकि हाल ही में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से ऊँची डिग्री लेकर आये हैं, इसलिए मैं उनमें 'इन्टरेस्टेड' हूँ--क्योंकि आखिर 'इंगलैण्ड रिटर्नड' से ही तो मैं 'एक्सचेंज आफ़ व्यूज़' कर सकती हूँ, नहीं तो यहाँ अपनी कॉलोनी में कौन ढंग का आदमी है? ऐसे-वैसे लड़कों की तो यहाँ भरमार है। मिसाल के तौर पर हमारे बग़ल के फ्लैट में रहने वाला युवा यह ज्ञान बघारता है कि वह कॉलोनी में रहने वाले सभी सज्जनों के नाम-धाम-पते जानता है। मैं दिल में कहती हूँ कि--"हाँ, यही तो तेरी ज़िन्दगी में काम आयेगा!" पर जैसे ही कोई अपरिचित, किसी घर का नाम-पता पूछता चला आता है, तो, मैं खुद ही उसे अनजान समझ कर, उसकी परेशानी दूर कर देती हूँ। पर अपनी बात तो और है ना!

जब कभी निकट पड़ोस में कोई बच्चे की माँ, अपने बच्चे को डाँट रही होती है, और भैया मुझ से आकर कहते हैं, "देखो, उनकी माँ कैसे गुस्से वाली है", तो मैं पलट कर कहती हूँ, "क्यों, कोई उनकी माँ का दिमाग तो नहीं फिर गया जो उनको डाँट रही है! हो न हो, उन बच्चों ने ज़रूर कोई नाजायज़ काम किया होगा।" पर जब कभी हमारी माँ हमें ऊँचे डाँट देती हैं, तो ध्यान होता है, "कहीं किसी पड़ोसी ने तो नहीं सुन लिया!" क्योंकि सुन कर यदि उन्होंने मेरे दोष का अनुमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा लिया तो बहुत बुरा होगा, और मेरी बाहर शान से निकलने की इज्ज़त ही नहीं रहेगी। किन्तु दूसरे ही क्षण अपने मन को सान्त्वना देती बोलती हूँ, "वह मेरे बारे में अनुमान लगाने वाले ही कौन होते हैं?" क्या घर में एक ही बात पर हल्ला हो सकता है, और वह भी मुझे डाँटने के लिए? क्या घर में सौ और बातें या लोग नहीं हो सकते कि जिनको माँ डाँट सकती हैं? सबको ही हमारी कॉलोनी में पता है कि माँ ढंग से काम न होने पर धोबी, नाई, चमार, नौकर आदि सभी को डाँटती हैं। तो बात यह कर मुझे डाँटते समय लोग यह भी तो अनुमान सकते हैं कि माँ मुझे नहीं डाँट रहीं। डाँटने का कोई सवाल ही नहीं उठता, उनको जान लेना चाहिए कि केवल कु ऊपर लिखी बुराइयों के अतिरिक्त और बुराई मुझमें नहीं है, इसलिए मैं एक अच्छी लड़की हूँ।

यदि किसी को इसमें कोई सन्देह है कि अच्छी लड़की नहीं हूँ तो कृपया बताने का कष्ट करें कि फिर मैं हूँ कैसी?

मैं रोऊँगी नहीं

'मैं रोऊँगी नहीं' वह सुप्रसिद्ध पुस्तक है जिसने दो वर्ष पूर्व अचानक पाश्चात्य जगत में तहलका मचा दिया था। हर युवक, हर युवती, ऐनकधारी प्रौढ़ व्यक्ति के हाथ में यही पुस्तक थी। हर गोरे मुह इसकी चर्चा थी। हर भूरी आँख में इसकी प्रशंसा थी। इस मर्मस्प आत्म-कथा ने साहित्य-जगत को एकदम चौंका दिया।

पुस्तक की लेखिका हैं श्रीमती लिलेन रॉथ, अमरीकन अभिनेत्री। अभिनय! कहाँ लेखन!! वह भी उत्कृष्ट कोटि का। इसकी भी दर्द भरी दास्तान है:

एक दिन रेडियो पर कोई धर्म-कथा सुनते-सुनते वह रो पड़ी और पति से बोली, "बर्ट, मुझे यीशू की शरण में जाना है।" सहृदय पति एक पादरी के पास ले गए, जिसने शुष्क कर्कश स्वर में कहा, "नि यह पथ बहुत कँटीला है।" वह कई पादरियों से मिली पर सब नि से सर हिलाते हुए बोले, "असम्भव! तुम्हारा उद्धार एकदम असम्भव

पर साहित्य तो किसी धर्म का ठेकेदार नहीं! कला तो किसी की बाँदी नहीं। यहाँ ऊँच-नीच, पवित्र-अपवित्र, अच्छा-बुरा कुछ न सौन्दर्य की गंगा में स्नान कर सब धुल-पुंछ निखर आते हैं। श्रीमती लि भी इसी तीर्थ की ओर निकल आयीं। यहाँ उनकी त्रस्त, दुखित आत्मा छिले-रिसते घावों पर मरहम पट्टी हुई। दुखिनी लिलेन ने लिखना कर दिया। उनकी कलम उनके आँसुओं से तर थी। उनके शब्द को छू लेने वाले थे। उनकी अभिव्यक्ति सरल, स्पष्ट तथा मार्मिक दुख ने उन्हें नया जन्म दिया। पीड़ा ने उन्हें लेखिका बना दिया। सर्वप्रिय पुस्तक "मैं रोऊँगी नहीं" और दूसरी पुस्तक "तुम कहाँ उनके विश्वास की अटूट शिलाएँ हैं। आधुनिक साहित्य में उनका अद्वितीय है।

—तृप्ता क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ता राजे

●

●पिता का तबादला होते रहना बच्चों की शिक्षा के लिए बहुत बड़ी बाधा माना गया है, लेकन मेरा समस्त शैशव तबादलों के कारण इतने रोचक ढंग से बीता कि विश्वविद्यालय में मिली हुई सारी शिक्षा उस घुमक्कड़ी की शिक्षा के सामने महत्वहीन लगती है। प्रायः हर दो साल बाद नई जगहें देखने को मिलती थीं। नया वातावरण, नये लोग, नई-नई रीति-रिवाजें, नई-नई प्रादेशिक भाषाएँ, नई जगहों से सम्बन्धित तमाम तरह की कहानियाँ, रवायतें, सब कुछ बहुत अच्छा लगता। तराई के एक नगर में मेरा बचपन बीता। मुझे याद है पिताजी के कॉलेज का प्रिंसिपल अंग्रेज़ था; उसकी मेम ने सिर्फ़ हिमालय देखने के लिए कॉलेज के अहाते में एक चबूतरा बनवाया था; उस पर भी चढ़ कर जब मुझे हिमालय नहीं दीखता था तो मैं पहले ईंटें, ईंटों पर बस्ता और बस्ते पर खड़ी होकर चोटियों की ओर ताकती थी। लेकिन घूमने-फिरने का सबसे आनन्ददायक अनुभव चित्रकूट के जंगलों में या केन नदी के किनारे रंगीन चित्र वाले पत्थर बीनने में हुआ था। एम. ए. के पाठ्यक्रम में प्रसाद जी की 'चित्र वाले पत्थर' कहानी पढ़ कर तबीयत होती थी कि क्लास छोड़ कर फिर वहीं वापस भाग जाऊँ।

●लिखने की शुरूआत तो अंत्याक्षरी की तुकबंदियों से हुई जो पिताजी की अध्यक्षता में घर में होती थी और जिसमें थोड़ी देर के बाद ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई-बहनों में महायुद्ध छिड़ने की नौबत आ जाती थी। दूसरा चरण था कॉलेज और युनिवर्सिटी की पत्रिकाओं के लिए लेख और कहानियाँ लिखने का। एक चार पृष्ठों वाली पत्रिका की स्वनामधन्य सम्पादिका भी थी। सम्पादन का कार्य सखियों के साथ विश्वविद्यालय के एक बाँस के झुरमुट में बैठ कर करना पसन्द था। उसे सम्पादित कर बड़े उत्साह से अपने अध्यापकों की मेज़ पर रख आई थी। शाम को उसकी सब प्रतियाँ रद्दी की टोकरी में पड़ी मिलीं। इस 'प्रोत्साहन' के बाद पत्रकारिता से जी खट्टा हो गया। सोचा, अध्यापक बनना बेहतर होगा ताकि दूसरों की सम्पादित पत्रिकाएँ रद्दी की टोकरी में फेंकने का सुख मिल सके।

कविताएँ लिखना शुरू किया था और छायावादी गीतों की नक़ल में महादेवी की तरह बहुत-सी पीड़ा आदि भी पाली, लेकिन जब तक वैसे दो-एक गीत अपने कॉलेज की पत्रिकाओं में छपाये, तब तक दुःखभरा समाचार मिला कि छायावाद का फ़ैशन नहीं रहा, नई कविता शुरू हो गई है। सोचा, जब कविता के नाम पर भी घुमा-फिरा कर गद्य ही लिखना है तो सीधे फिर गद्य ही क्यों न लिखा जाये। साहसिक कथाएँ, संस्मरण तथा अनुवाद में मन अधिक रमा। हिन्दी के एक प्रमुख साप्ताहिक ने कुछ ऐसी कथाएँ छापीं। तब हुआ यह कि अध्यापकों द्वारा दिये गये 'प्रोत्साहन' से ठीक विपरीत प्रकार का प्रोत्साहन उसके पाठकों से मिला और उस क्रम में मुझे फिर काफ़ी कथाएँ लिखनी पड़ीं।

यह जो कथाएँ आपने ज्ञानोदय में पढ़ी हैं, इस प्रकार की चीज़ों की ओर पहली बार एक ऐसी पुस्तक के कारण झुकाव हुआ था जो चेखव के जीवन से सम्बन्धित है। उससे यह जानने की उत्सुकता बढ़ी कि बड़े-बड़े लेखक अपनी प्रख्यात पुस्तकों में जो लिखते हैं उसका मूलस्रोत उनके जीवन में कहाँ है? वह पुस्तक तो एक बार गर्मियों की छुट्टियों में बैठ कर हिन्दी में अनूदित कर डाली। उसके बाद अन्य लेखकों की जीवनियाँ भी पढ़ने में लग गई। वहीं से जो कुछ बटोर सकी उसमें से कुछ आपके सामने प्रस्तुत होता रहता है। इस समय दो पुस्तकें प्रेस में हैं, जो हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर से प्रकाशित हो रही हैं।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

★

(पश्चिम के आधुनिक काव्य का सबसे मधुर, सुकुमार गीतात्मक और गहरा व्यक्तित्व है जर्मन कवि रेनर मारिया रिल्के का। कविता पर उसकी वैसी ही आस्था थी जैसी भक्त जनों को धर्म पर होती है। उसकी मृत्यु के बाद ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा है उसके काव्य का अभिप्राय और अर्थ अधिकाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता जा रहा है।

अपनी पत्नी और पुत्री से विच्छिन्न, निराधार, अकेला, अपने में डूबा हुआ जीवन बिताने वाले रिल्के के विषय में बहुत-सी किंवदंतियाँ थीं। विशेष रूप से कई यूरोपीय राजकुमारियों का उस पर बहुत प्रभाव बताया जाता रहा। लेकिन लिखित रूप में, उसकी केवल एक या दो ही कविताएँ किसी बेनवेनुटा नामक महिला को समर्पित थीं। कौन थी यह बेनवेनुटा? इस नाम की किसी स्त्री का ज़िक्र रिल्के के जीवनी लेखकों ने नहीं किया है।

अभी कुछ वर्ष पहले जर्मनी की एक प्रख्यात पियानिस्ट मैगडावॉन हैटिनबर्ग ने अपनी आत्मकथा का एक अंश प्रकाशित किया। मालूम हुआ कि रिल्के की अन्तरंग संगिनी वही रही है, जिसने अपने संगीत के द्वारा बिना किसी को बताये, रिल्के के काव्य को मूर्तिमान करने का प्रयत्न किया। रिल्के उसे प्यार से 'बेनवेनुटा' कह कर पुकारता था।

पहले तो जीवनी-लेखकों को विश्वास नहीं हुआ। पर फिर रिल्के के ढेरों पत्र बेनवेनुटा के नाम प्राप्त हुए। उनसे मालूम हुआ कि यद्यपि बेनवेनुटा का उल्लेख रिल्के की एक ही दो कविताओं में है, पर उसकी सैकड़ों कवितायें बेनवेनुटा की अंतरंगता से अनुप्राणित हैं।

बेनवेनुटा की उस प्रख्यात पुस्तक पर आधारित उसी के शब्दों में कही गई यह कथा प्रस्तुत है।)

★

शुभागता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● चमचमाती पन्नियों की लतरों और गोटे के फूलों से सजे क्रिसमस ट्री, चमकीली अबरक जड़े रुपहले सितारे, पवित्र घंटियाँ, जगमग-जगमग रंग-बिरंगी रोशनी। चारों ओर रौनक ही रौनक। कोई खिलौने खरीद रहा था, कोई चाँदी या चमड़े के बैग तो कोई सिल्क की पोशाकें, कोई प्रसाधन की सामग्रियाँ। पर मेरा मन विकल था किसी ऐसी किताब के लिए जो मेरे लिये एकदम नई तरह की हो, जैसी चीज़ मैंने पहले कभी न पढ़ी हो और जो मेरी उदास ज़िन्दगी को नई ताज़गी, नई ख़ुशबू दे सके। मैंने कई दूकानों पर सैकड़ों किताबें उलट-पुलट कर देखीं पर कोई जँची ही नहीं। न जाने कैसी किताब के लिए मन में प्यास जगी थी।

एकाएक चर्च की घंटियाँ मधुर सम्मोहक आवाज़ में बजने लगीं। उनकी मीठी आवाज़ सारे बाज़ार में तैर-सी गई। जैसे झरती हुई बरफ़ ज़मीन पर तह पर तह जमती जाय, उसी तरह बाज़ार, दूकानों और वहाँ के हर व्यक्तियों के कानों से टकरा-टकरा कर वह आवाज़ सबके प्राणों में जमती, बिंधती जा रही थी। लगता था घंटियों की आवाज़ एक पालना है जिसमें सारी दुनिया शिशु की तरह हौले-हौले झूल रही हो। और ऐसे में अच्छी पुस्तक के लिये प्यास मेरे मन में और भी तीखी हो आई।

एक छोटी-सी दुकान का बूढ़ा मालिक हमारा पुराना जान-पहचानी था। मैंने उससे कहा, "अंकल, आज कोई बहुत बढ़िया—बहुत ही बढ़िया—किताब दो।"

उसने मुझे एक किताब लाकर दी—एक छोटी-सी किताब। मैंने उसे खोला—'टेल्स ऑफ़ दी आलमाइटी'। लेखक का नाम देखा : 'रेनर मारिआ रिल्के'। मैंने पूछा "यह रिल्के कौन है, अंकल ?"

दुकानदार की आँखों में एक चमक तैर गई। उसने बड़ी ममता से किताब पर मृदुल हाथ फेरा और बोला—"रिल्के एक कवि। एक सच्चा कवि। एक अद्वितीय व्यक्तित्व। इस किताब में तुम्हें बहुत कुछ मिलेगा, बिटिया!"

और उसने बिना मेरी स्वीकृति लिये ही किताब रंगीन काग़ज़ में लपेट कर मुझे थमा दी। उसके देने का ढंग कुछ ऐसा था कि पुस्तक मुझे लेनी ही पड़ी। लेकिन ऐसा क्यों हुआ कि किताब मैंने अभी खोली भी नहीं, केवल उसे पाकर ही अंतर्मन सन्तोष से भर उठा!

घर आई; किताब का पहला पृष्ठ खोला, पढ़ना शुरू किया। और लो, मैं सारी रात पढ़ती ही रही। नहीं, पढ़ी नहीं, पूजा करती रही। वह रिल्के—दो घंटे पहले तक मैं जिसका नाम भी नहीं जानती थी—मेरे अंतर-मन के फूल में सुगन्ध-सा बस गया। मुझे लगा जैसे इस पुस्तक ने मुझे ज़िंदगी जीने के लिए नई दिशा दी है, खुद को समझने के लिए नई दृष्टि दी है।

दूसरे दिन, सारे दिन, किसी काम में मेरा जी ही नहीं लगा। वह किताब मेरे हाथ में बनी रही। दिन उसी में खोये खोये गुज़रा। रात भी किताब में पढ़ी कहानियों के विभिन्न पात्रों के बारे में सोचते हुए ही बीती। मेरा माथा हल्का-हल्का गरम-सा हो गया था, पलकें भारी होने कड़ुवाने लगी थीं, कनपटियों में कुछ तड़क रहा था। पर मेरा मन बहुत धुला-धुला बहुत निखरा हुआ-सा हो गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबह घर के अन्य सब लोग चाय की मेज़ पर हँस-बोल रहे थे। पर उन सबके बीच जाने को मेरा मन नहीं हुआ, मैंने अपनी चाय कमरे में ही मँगा ली ; और काग़ज़-कलम लेकर बैठ गई। जी हुआ, इतनी सुन्दर कृति के लिए रिल्के को धन्यवाद देना चाहिए। हाँ, मेरे मन में किसी भी सामान्य पाठक की तरह लेखक को मात्र धन्यवाद भेजने की ही भावना थी। उससे अधिक कुछ भी नहीं। मैंने लिखा :

"प्रिय महोदय,

...आपकी 'टेल्स ऑफ दी आलमाइटी' ऐलेन के. को समर्पित है। उस मधुर समर्पण में आपने लिखा है कि क्योंकि जितना ऐलेन के. ने इन कहानियों को पसन्द किया है उतना और किसी ने नहीं, इसलिये यह पुस्तक उसके लिए है। यों तो जो कुछ भी मैं हूँ उसके अलावा मैंने और कुछ कभी नहीं होना चाहा। पर अब मुझे लग रहा है जैसे मानो मेरा कायाकल्प हो गया हो और मैं ही ऐलेन के. हूँ। और यह समर्पण मेरे ही नाम है। क्योंकि मुझे अडिग विश्वास है कि इन कहानियों को दुनिया का कोई भी व्यक्ति मुझसे अधिक प्यार कर ही नहीं सकता।

इस पुस्तक से मुझे कितना सुकून, कितनी दिलासा और कितनी आन्तरिक शक्ति मिली है, बता नहीं सकूँगी। मैं कवि नहीं हूँ, शब्दों पर मेरा अधिकार नहीं। मेरी हर अनुभूति पियानो की झंकार में ही व्यक्त हो पाती है। काश, इसका हर पृष्ठ एक झंकार बन कर गूँजता रहता, गूँजता रहता और उसमें मैं धुएँ की तरह घुल जाती।...

इस अद्भुत कृति के सृजन के लिए मेरे धन्यवाद लें।"

मुझे उनसे उत्तर की कोई आशा थी नहीं, इसलिये नीचे बिना अपना पूरा पता लिखे सिर्फ़ नाम लिख दिया था। पर समस्या तो यह थी कि पत्र भेजा कैसे जाय ? मुझे रिल्के का पता तो मालूम ही नहीं था। बहुत सोच कर ; मैंने उसी बूढ़े दुकानदार के द्वारा उस पुस्तक के प्रकाशक को वह पत्र भेज दिया कि वह रिल्के के पास भेज दें।

...एक सप्ताह बाद। सर्दी के मौसम की गुनगुनी धूप का सेंक लेती

अपनी किताबें खुद लिखती हूँ

अमरीका की एक लेखिका जिप्सी रोज़ ली ने अपनी आत्म-कथा 'जिप्सी' लिखी और उसके प्रकाशन के सिलसिले में अपने बेटे एरिक के साथ कनाडा पहुँची। एक प्रकाशक को सन्देह था कि जिप्सी रोज़ ली खुद नहीं लिखतीं बल्कि कोई अन्य उनके नाम पर अपनी कलम बेचता है। सो उसने श्रीमती ली से पूछ ही लिया : "श्रीमती ली, कभी आपने दूसरों से लिखवा कर भी पुस्तक पर अपना नाम दिया है ?"

श्रीमती ली गुस्से में आकर बोलीं : "सुनिये महाशय, मैं अपनी किताबें खुद लिखती हूँ, मछलियाँ खुद पकड़ती हूँ और यह एरिक गोद लिया हुआ बेटा नहीं है !"

—शुभा वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई मैं बाहर लॉन में बैठी पियानो की एक नई धुन के बारे में सोच रही थी कि एक ऐक्सप्रैस ख़त मेरे नाम आया। पते पर की लिखावट एकदम अन-पहचानी, भेजने वाले का नाम भी नहीं लिखा था। बस, लिफाफे पर हरे रंग की एक अंडाकार मोहर लगी थी जिसमें लिखा था 'पेरिस'। मुझे जाने क्या हुआ कि गालों पर सुर-सुरी-सी महसूस होने लगी, कान की कोर गरम हो आई, ऐसा लगने लगा जैसे चारों ओर फुलझड़ियाँ छूट रही हैं, झंडे फहरा रहे हैं।

ऐसा मैंने पहले कभी महसूस नहीं किया था। बौराई-सी मैं घड़ियों वह ख़त खोल ही नहीं सकी। काफ़ी देर बाद उसे खोला। अन्दर छोटे-छोटे घनेरे अक्षरों और बेगरी पाँतियों में लिखे कई पृष्ठ थे। अंत में नाम लिखा था--'रिल्के'। मुझे सहज ही विश्वास नहीं हो पा रहा था कि यह रिल्के का पत्र होगा। फिर-फिर नाम के उन्हीं अक्षरों को बड़ी देर तक पढ़ती रही।

आँखें मूँदे-मूँदे मैं बिना पढ़े ही उस ख़त को हथेलियों में पुष्प-पँखुरी की तरह दबाये रही। थोड़ी देर बाद, काँपती उँगलियों में लेकर, सीली आँखों से उसे पढ़ा :

"भली मित्र,

तुम्हारा ख़त मेरे लिये जैसे मेरा ही एक अंश बन गया है। कितना सुकुमार, कितना मधुर है तुम्हारा यह सोचना कि ऐलेन के. के रूप में तुम्हारा कायाकल्प हो गया है।

यों तुम्हें बताऊँ मित्र, जिसने वह कहानियाँ लिखी थीं और ऐलेन के. को समर्पित की थीं वह युवक तो अब मुझ में शेष नहीं

पीले गुलाब की पँखुड़ी

एमिली ब्राण्टे

सुप्रसिद्ध आलोचक मेथ्यू आरनल्ड ने एमिली ब्राण्टे के बारे में लिखा है: 'भावोद्गार, भाव प्रावल्य तथा पीड़ा की गहन अनुभूति में बायरन से पूर्व इनका कोई प्रतिद्वन्द्वी न था।' वास्तव में एमिली एक उपन्यासकार की अपेक्षा एक कवियित्री पहले थी, तथापि उनके यश का दीप-स्तम्भ उनका एकमात्र उपन्यास 'वूदरिंग हाईट्स' है जो उनकी अकाल-मृत्यु के केवल एक वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हुआ था।

इनके पिता पेट्रिक ब्राण्टे हद दर्जे के गर्म मिज़ाज, असहनशील तथा स्वार्थी थे। वे स्वयं एक स्कूल मास्टर थे और घर पर भी उसी अनुशासन और आज्ञा पालन की आकांक्षा रखते थे। घर इतना ख़ामोश रहता (इस अत्याचारी पिता के राज्य में) कि मानो वहाँ कोई बसता ही नहीं है। इसलिए तीनों बहनें एमिली, शारलट और एन. ऋषि-मुनियों-सी गम्भीर रहतीं और तप-स्विनियों-सा जीवन व्यतीत करतीं। यॉर्कशायर की पहाड़ियों-सा ही इनका जीवन उदास और निपट एकाकी था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। तुमने उसे जितनी प्रशंसा दे डाली है शायद वह उतने का अधिकारी भी नहीं। पर एक बात है, तुम्हारा संगीत वह तो कभी सुन नहीं सकेगा। हाँ, मैं ज़रूर सुन सकता हूँ। क्या इसकी उम्मीद करूँ? लगता है, संगीत में ही तुम्हारे प्राण बसते हैं।"

मैं ख़त पढ़ती रही और बीच-बीच में सोचती रही—कहीं सपना तो नहीं देख रही हूँ। आगे लिखा था :

"तुम कभी इधर घूमने आओ तो मुझे पूर्व-सूचना भेजना। तुम्हारा आना मेरे लिए बहुत सुख और श्री लेकर आयेगा। तुम्हारे स्वागत के लिए मैं द्वार खोलूँगा तो लगेगा, मेरे हृदय की गहराइयों का एक पट खुल गया है।"

मीलों दूर से एक अपरिचित व्यक्ति इतना प्यारा, इतना आत्मीय ख़त लिखेगा, इसकी मैं पहले कभी कल्पना भी नहीं कर सकी थी। मैं पढ़ती गई :

"एक बार की बात मुझे याद है। मैं एक होटल में ठहरा था। मेरे कमरे के बगल वाले कमरे में कोई पियानो बजा रहा था। वादक मुझे दीख नहीं रहा था, पर संगीत ने मेरा सारा ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। लग रहा था, जैसे सारी दुनिया थक कर, अलसा कर, वहाँ

एमिली लम्बे क़द की अपूर्व-सी दिखने वाली एक दुबली-सी लड़की थी। इस लड़की का व्यक्तित्व निराला था। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण उसे बहुत भाता। 'मुक्ति' के लिये उसकी आत्मा फड़फड़ाया करती, स्वभाव भी था उन्मुक्त। आँखें अस्वाभाविक पर सुन्दर, रंग पीला-पीला मानो पीले गुलाब की पंखुड़ी हो।

एक दिन शारलट को एमिली की लिखी कविताओं का संग्रह (हस्त-लिखित) मिल गया, जिसमें उसे विचित्र गुदगुदाहट उत्पन्न करने वाले संगीत का आभास मिला। तब शर्माती-शर्माती एन. ने भी अपनी कविताएँ दिखायीं जिनमें मधुर मदिर टीस-सी गूंजती थी। अब तीनों बहनों ने अपनी कविताओं को संग्रहित कर किसी प्रकाशक को भेजने का निश्चय किया। १८४५ में 'करर, एलिस, तथा एकटन बेल की कविताएँ' जनता के समक्ष आयीं। तीनों का नाम परिवर्तित कर पुरुष नाम से कविताएँ छपवाना बीसवीं सदी की नारियों के लिये बड़ा रोचक विषय हो सकता है, परन्तु उस समय उनके समाज में ऐसी स्थिति थी कि लेखिकाओं को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था और नारी का बौद्धिक स्तर पुरुष से निम्न-कोटि का समझा जाता था। यही कारण है कि शारलट का उपन्यास 'प्रोफ़ेसर' कई प्रकाशकों के द्वार से वापिस लौटा दिया गया था। विश्व के उत्कृष्ट उपन्यासों में गिना जाने वाला 'जेन ऑयर' भी धन्यवाद सहित वापिस लौट आया था।

प्रकाशक नहीं जानते थे कि ये 'नवोदित लेखक' (ब्राण्टे बहनें) वास्तव में उदीयमान लेखिकाएँ ही थीं। मि. स्मिथ जब 'करर बेल' से मिले तो आश्चर्य-चकित हो गये। अरे, यह तगड़ा गौरवशील पुरुष कहाँ है जिससे मिलने की उम्मीद लेकर वे आये थे। यह तो एक अदना-सी, बेहद शर्मिली, भावुक युवती थी!

—तृप्ता कपूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठ कर, दो क्षण को सुस्ता रही है। फिर मुझे ऐसा लगने लगा था जैसे मानो सारी दुनिया की अनुभूतियाँ मुझ में से होकर गुजर रही हैं, मेरे अन्दर जी रही हैं..मर रही हैं...

अब मैं यहाँ हूँ, संगीत से बहुत दूर। पर अब एक उम्मीद भी बँधती जा रही है मन में। शायद कभी तुम्हारे संगीत के जादू में डूबने का दिन आये..."

मुझसे इतनी प्यारी, इतनी अपनायत भरी बातें पहले कभी किसी ने नहीं कीं। पर इस सबको सपना भी कैसे मान लूँ, जब ये काग़ज़ मेरे हाथ में है...मंत्रमुग्ध-सी मैं पढ़ती रही। अंत में उन्होंने लिखा था :

"तुम्हारे मन में जो दुर्लभ चिनगारी जाग गई है, उस स्फुलिंग को बुझने मत देना।"

और सबसे अन्त में लिखा था :

"तुम्हारे प्रति मैं कृतज्ञ हूँ, विनत हूँ।
—रेनर मारिआ रिल्के।"

ज़रूर ही नियति हमारे लिये बहुत-कुछ ऐसा तय कर रखती है जिसका ज्ञान अक्सर हमें स्वयं नहीं होता, पर अनजाने में ही हमारी प्रतिक्रियाएँ उसके अनुकूल होती चलती हैं। रिल्के से मेरी कोई प्रत्यक्ष जान-पहचान नहीं थी, पर पत्रों का यह क्रम ऐसा शुरू हुआ कि फिर मुझे प्रतिदिन उनका एक पत्र मिलने लगा। कितने मधुर, कितने पवित्र और सुकुमार, कितने गहरे होते थे वे पत्र! मैं बराबर सोचती, इन्हें लिखने वाला कितना निष्कलुष और कैसा निर्विकार होगा वह कवि हृदय!

रिल्के के पत्रों से मैंने उनकी ज़िंदगी की बचपन से लेकर अब तक की तमाम-तमाम बातें जान ली थीं। और बड़ी बारीकी से पढ़ लिया था उन अक्षरों को भी जो लिखे तो नहीं गये थे, पर हर पंक्ति में समाये थे। वह यह कि बचपन से लेकर आज तक सब कुछ प्राप्त होते हुए भी सारी सुख-सुविधाओं के बीच, वह बहुत अकेले हैं।

उनके पिता जोसेफ़ रिल्के नौवुल घराने के थे। वे सेना के एक बड़े पदाधिकारी बनने वाले थे, पर किसी अस्वस्थता के कारण न बन सके। उनका वह सपना टूट गया। मगर जैसा कि स्वाभाविक ही था उस स्वप्न को उन्होंने अपने बेटे को सेना का बड़ा अफ़सर बना कर पूरा करना चाहा। मिलिट्री का बड़ा अफ़सर बनने का शौक जोसेफ़ रिल्के को जितना अपने लिए नहीं था उतना रिल्के की माँ के लिए था। वह बड़ी पदवी, बड़े नाम और शान-शौकत की बहुत प्यासी थी। रिल्के को अपनी माँ का झूठा दिखावा बहुत बुरा लगा करता था। बचपन में अपने पिता के लिए उनके मन में बड़ी इज्ज़त थी।

४ दिसम्बर १८७५ को रिल्के का जन्म हुआ था। बचपन का अधिकतर समय घर की चारदीवारी में तमाम तरह की वर्जनाओं के बीच गुज़रा। वर्जनाएँ इसलिए कि उनके स्वास्थ्य का ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान रखा जाता था। परिणाम यह हुआ कि वह बहुत प्रारम्भ से ही ज़रा ज़्यादा ही बीमार रहने लगे और बेहद अन्तर्मुखी हो गये। रिल्के ने एक बार मुझे लिखा :

"आज रविवार है। आज के दिन को मैं पूजा के दिन की तरह पवित्र बना कर रखता चाहता हूँ ताकि तुम्हें ख़त लिखूँ। तुम्हें जिसकी मुट्ठियों में मेरे लिए एक सुनहला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्य आकुल है। मेरी मित्र। मैं यह नहीं पूछता कि वह दिन कब आयेगा ? पर जानता हूँ कि आयेगा ज़रूर वह दिन जब यह सारा अँधेरा हट जायेगा और प्रकाश की किरण फूटेगी। जब बचपन में ही मैं मिलिट्री ऐकेडमी में भेज दिया गया था तब भी मैंने किसी से यह नहीं पूछा था कि मेरी मुक्ति का दिन कब आयेगा ? मैं हर अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति को जीता चला गया हूँ पर कभी मैंने अपनी नियति के प्रति प्रश्न नहीं किया। तुम्हें एक मज़े की बात बताऊँ। बचपन में मेरी माँ मुझे लड़कियों के कपड़े पहनाती थीं। मेरे लम्बे-लम्बे सुनहले बाल थे। माँ बड़े शौक से मेरी चोटियाँ गूँथती थीं। रसोई के बर्तनों के जो खिलौने होते हैं वह और तरह-तरह की गुड़ियाँ मुझे खेलने के लिए देती थीं। जैसे मानो मैं माँ के लिए अपनी मृत बहन की कमी पूरी करता था। माँ मुझे सोफ़ी कह कर पुकारती थीं ; मैं भी लड़कियों की तरह महीन आवाज़ बना कर नाज़ से बोला करता था। आवाज़ बनाने में, गुड़ियों से खेलने में शायद तकलीफ़ होती थी, पर मैंने कभी किसी से कोई प्रतिवाद नहीं किया। मैंने कभी नहीं पूछा, असली व्यक्तित्व मुझे कब मिलेगा ? इसी तरह यह नहीं पूछता कि वह दिन कब आयेगा ? पर जानता हूँ कि आयेगा ज़रूर !"

उन्होंने अपनी बेशुमार यादों को पत्रों के माध्यम से मेरे साथ दुबारा जिया। उनके हर पत्र का जवाब मैंने बड़ी कृतज्ञता और विनम्रता के साथ दिया। पर मुझे इतना-इतना विश्वास और स्नेह देने वाले रिल्के जब यह लिखते कि मैं उन्हें अपने ख़तों के माध्यम से अछूती ख़ुशी, अपरिमित ताज़गी देती हूँ और जब वह मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट करते तो मुझसे अपना सौभाग्य, अपना वह सुख सहज हो सहते भी न बनता। दिन पर दिन मैं उनसे और-और बँधती गई..बँधती गई...

एक बार उन्होंने लिखा :

नारी का प्रेम

नारी के लिए प्रेम वह अनुभूति है, जिसके एवज़ में वह कुछ लेना नहीं सिर्फ़ देना ही जानती है। उसके प्रेम की सारी तीव्रता और छटपटाहट इस 'देने' में ही होती है, परन्तु पुरुष का प्रेम लेने-देने की इन सीमाओं में नहीं बँधता, अपितु उसका दृष्टिकोण तो उस सौदागर जैसा रहता है जो न्यूनतम दाम की वस्तुओं पर अधिकतम लाभ की अपेक्षा करना अपना धर्म समझता है।

—मार्गरेट मिशेल

(प्रेषक : मोहिनी ओबराय)

"प्रिय, मेरी आत्मीय, मेरी बहन, मेरी मित्र!

कभी-कभी विश्वास ही नहीं होता कि तुम वास्तविक व्यक्ति हो। कितना दयालु है वह भगवान, जिसने मेरे इन चरम यंत्रणा के क्षणों में तुम्हें मुझ तक भेज दिया है। तुम्हारे परिचय ने मुझे बड़ा नैतिक सहारा दिया है, नई ज़िन्दगी बख़्शी है। मुझे इस दुनिया को महसूस करते अब अच्छा लगता है, इस दुनिया की हवा में साँसें लेते अब अच्छा लगता है, क्योंकि इस दुनिया में तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। और तुम हो तो यह भरोसा होता है कि इस दुनिया में ईश्वर भी है। वह ईश्वर जिसे मैंने अपने सृजन के क्षणों में वैसे ही महसूस किया है जैसे तुम अपने संगीत के स्वरों में उसे पाती हो।"

उन्होंने अपना प्यार, दुलार, ममता और चरम विश्वास सब कुछ मुझे दे दिया था। अपने ख़तों में उन्होंने अपने बारे में भली-बुरी एक-एक बात मुझे बताई। कभी-कभी तो मुझे लगता कि वह ख़त नहीं लिख रहे हैं वरन् लिख-लिख कर कुछ सोच रहे हैं, ख़ुद से बातें कर रहे हैं। अपने ख़तों में उन्होंने मुझे बताया कि १८८६ में वह मिलिट्री ऐकेडमी में भेज दिये गये थे। उसी के दो साल बाद उनके माता-पिता में सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। वह माँ के साथ थे, पर मन उनका हमेशा अपने पिता के आदर्शों पर ही चलता था। मिलिट्री स्कूल की कड़ी कसरतों और परिश्रमसाध्य अभ्यासों के कारण उनकी तबियत बहुत जल्दी ख़राब हो जाया करती, पर पिता का सपना पूरा करने की बात सोच कर वह पुनः कड़ा परिश्रम करते, फिर बीमार पड़ते, और अपनी वर्तमान जिन्दगी से ऊब कर वह अकेले में अपने सपनों की दुनिया बनाते और उसके ख़ुद हीरो बनते; घंटों दिवास्वप्न देखते-देखते बीत जाते। बीत जाते। साथ के लड़के उन्हें हमेशा छेड़ा करते, पर वह निज में ही खोये रहते।

आख़िर सन् १८९१ में उन्हें उस स्कूल से नज़ात तो मिली, लेकिन एक असफल मिलिट्री जवान की तरह ही। वह कोई बड़े पदाधिकारी न बन सके। हार कर फिर उन्हें लिंज के कॉमर्स कॉलेज में पढ़ने के लिए भेजा गया। वहाँ उन्हें अपनी प्रतिभा के अनुकूल वातावरण मिला और उनकी रिल्के कॉलेज के रत्नों में होने लगी। उन दि उन्होंने साहित्य का खूब अध्ययन किया और स्वयं भी लिखा। लेकिन बचपन से तमाम प्रकार की वर्जनाओं के आदी रिल्के जीवन में अब प्रतिक्रियाएँ आनी शुरू और वह फिज़ूल ख़र्च आवारा लड़कों की तरह रहने लगे। तीन साल बाद ही, एक प्रेम प्रसंग के कारण उन्हें वह कॉलेज भी छोड़ देना पड़ा। यहाँ से उनके जीवन में घुमक्कड़ी का प्रारंभ हो गया था, पर साहित्य-सृजन की पुकार उन्हें अपनी ओर खींचने लगी थी और उसके प्रति वह सजग भी हो गये थे।

एक बार रिल्के ने मुझे लिखा था कि जब वह तमाम प्रकार के साहित्यिक प्रतिबंधों में उलझे हुए थे तब बहुत अकेला-अकेला अनुभव करते थे। कुछ दिन बाद, दो लड़कियों से उन्हें बहुत मानसिक सांत्वना मिलने लगी थी। एक तो थी चित्रकार पाउला बैकर, दूसरी थी मूर्तिकार क्लारा वैस्थोफ़। उन्होंने स्वीकारा था कि वह उन दोनों के बीच चुनाव नहीं कर पा रहे थे कि कौन उनके उपयुक्त है। बाद में जब पाउला ने किसी और से विवाह कर लिया तब रिल्के को निर्णय लेना सहज हो गया और उन्होंने भी सन् १९०१ में क्लारा से विवाह कर लिया। पहले वर्ष वह दोनों काफ़ी खुश रहे। दिसम्बर में उनकी बेटी रूथ का जन्म हुआ। पर धीरे-धीरे रिल्के का मन उखड़ता गया। विवाह के सा को वह एकाकी क्षणों के अभिभावक के में पाना चाहते थे, पर उनका एकांत धीरे धीरे बढ़ता ही गया, और वह क्लारा से अ हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जितना-जितना अपने निजी जीवन के बारे में लिखते उतना ही उनके लिए मेरा मन और-और कोमल होता जाता। क्यों ऐसा होता है कि ऐसा आदमी जो सबके प्रति इतनी सहज आत्मीय भावना रखता है, हर एक को क्षमा कर देता है, वह इस दुनिया में बहुत ग़लत चश्मों से देखा जाता है। जितना ईमानदार आदमी होता है उतना ही अकेला क्यों पड़ता जाता है? पर साथ ही, मुझे बड़ा सुखद संतोष होता यह जान कर कि कम से कम मेरे पत्र उन्हें कुछ न कुछ सुख और सहारा देते हैं। एक बार उन्होंने लिखा था :

"मेरे हृदय की प्रतिरूप! मेरी मित्र! मेरी बहन!

तुम्हारे लिए मेरे मन में कितनी पवित्रता, कितने प्रकाश, कितने माधुर्य का समन्दर भरा पड़ा है! आज मेरे मस्तिष्क की, मेरे हृदय की ज़िंदगी में यदि कोई सच्चाई है तो इसीलिये कि वह तुम्हें पाकर सार्थक हो गया है। मेरे मन में अपरिमित विस्तार के चारों ओर तुम्हारे हृदय की विशालता का और भी बड़ा वृत्त खिंच गया है और मैं उसमें सिमट आया हूँ!"

कभी-कभी मैं सोचा करती कि क्या इस हद तक उन्हें प्रभावित करना उचित है? हर व्यक्ति को अपनी नियति का निर्माण अपने हाथों से करना चाहिये। मुझे लगता कि इस उद्यम में मैं रिल्के के लिए बाधक बन रही हूँ। मैंने महसूस किया कि अब मेरी उनके प्रति ज़िम्मदारी भी बहुत बढ़ गई है। कभी-कभी भविष्य के प्रति बड़ा डर भी लगने लगता। पता नहीं, इतने कोमल व्यक्ति की इतनी वायवी और गहरी भावनाओं को मैं सदा सहेज भी सकूँगी या नहीं? वह मुझे अब बहुत भरोसे, बहुत दुलार से वेनवेनुटा (शुभागता : जिसका आगमन जीवन में शुभ को लेकर आये) कह कर पुकारने लगे थे। धीरे-धीरे मैंने भी सारे ऊहापोह त्याग कर मन में दृढ़ संकल्प कर लिया कि हृदय की इस गूँज को कोमल से कोमलतर, पवित्र से पवित्रतर, बनाती ही जाऊँगी। और उनके लिए सही मानी में 'वेनवेनुटा' बन कर ही अपनी ज़िन्दगी को अर्थ दूँगी।

यह मैंने उनके लिए कोई बड़ा भारी त्याग नहीं किया था। बरसों पहले मेरा अपने पति से विच्छेद हो चुका था। दुनिया तो सिर्फ़ चारों ओर से छेदना ही जानती है; उसने अपना धर्म पूरा किया। मुझे सिर्फ़ मेरा पियानो ही सहारा देता था; उसके स्वरों में डूब कर मैं सब कुछ सह जाने की ताक़त बटोरती चल रही थी। वरना मैं बहुत अकेली पड़ गई थी और एक बहुत बड़े शून्य में जीती जा रही थी। रिल्के के विश्वास और समर्पण ने मेरे मन को एक उद्देश्य दे दिया था; ज़िंदगी को एक सुनिश्चित दिशा दे दी थी। उनके स्वास्थ्य, उनके मानसिक सन्तोष और उनकी साहित्यिक प्रगति के लिए मेरे मन में जो ज़िम्मेदारी की भावना आ गई थी उसने मेरी बेसुरी, बेमानी ज़िन्दगी को प्रार्थना के-से स्वर प्रदान कर दिये थे। मेरी खुद की ज़िन्दगी उसको लेकर बड़ी पवित्र, बड़ी पूजामयी, बड़ी आस्था-सम्पन्न हो गई थी।

एक बार उन्होंने लिखा :

"अबोध बच्चे की-सी आत्मा वाली, प्यारी-सी बिटिया! मेरा मन बहुत आकुल है तुम्हारी उँगलियों का स्पर्श अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थके बोझिल माथे पर महसूस करके उस स्पर्श की छाँह में कुछ पल विश्राम लेने को ! तुम्हारे पियानो के स्वरों में विगत की सारी कटुताओं को धो डालने को। कभी-कभी सोचता हूँ, वह दिन जब आ जायगा तो उसके बाद क्या मुझे जीवित रहना चाहिये ? अपनी सारी जिंदगी की खोज को तुम्हारे रूप में पाकर क्या मुझे सुख से मर नहीं जाना चाहिए ? बेनवेनुटा ! मेरा मन क्यों इस क़दर समर्पित है तुम्हारे लिये ? बोलो, कब मैं तुम्हें देखूंगा ? कोई कार्यक्रम बनाओ।"

उनकी आज्ञा मेरे लिये परमात्मा का आदेश था। मैंने लिख दिया : फ्लोरेंस, ल्यूसर्न या जेनेवा कहीं भी मिल सकती हूँ। और तय हो गया कि हम जेनेवा में मिलेंगे। लेकिन दूसरे ही दिन मुझे समाचार मिला कि एक संगीत सम्मेलन में अपना पियानो का प्रोग्राम देने मुझे बर्लिन जाना है।

इस बीच मैंने लगातार तीन रात एक ही सपना बार-बार देखा। मैंने देखा, मैं एक भूरे रंग की चौकोर मीनार पर खड़ी हूँ। चारों ओर पानी ही पानी है—निश्चल शांत पानी। जहाँ मैं खड़ी हूँ, वहाँ उस मीनार की पत्थर की दीवार में तीन बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हैं। एक खिड़की समुद्र की ओर खुलती है, दूसरी पहाड़ों की ओर; और तीसरी जहाँ खुलती है वहाँ से आज का आधुनिक जीवन दीख रहा है। उस मीनार के पास एक 'गेट वे' है ; उसमें से गिरते-पड़ते दलित स्त्री-पुरुषों और बच्चों का एक विशाल जुलूस गुजर रहा है। सब धीरे-धीरे चुपचाप खामोशी के साथ किन्हीं अनजानी अंध गुफ़ाओं की ओर चलते चले जा रहे हैं। मौत का एक अधिकारी अपनी नाव में खड़ा उस जुलूस को देख रहा है। एक बार उसने अपना मुँह घुमाया तो मैंने देखा, उसकी आँखों में नक्षत्र दमक रहे थे।

जब-जब नया खेवा आता था, मुझे एक घंटी बजानी होती थी। घंटी में से आवाज़ निकलती थी : "कब ? कब ?" और उदास भीड़ चुपचाप गुज़रती जाती थी। जो खिड़की समुद्र की ओर खुलती थी उसमें से अचानक मैंने देखा, कि बहुत-बहुत दूर जहाज़ मीनार की तरफ़ बढ़े चले आ रहे हैं। उस जहाज़ पर जो सैनिक हैं उनके शिरस्त्राण धूप में चमक रहे हैं। वह बड़ी दूर से मौत की घाटी पर धावा बोलने आये हैं। लेकिन ज्योंही वह नज़दीक आये कि एक बहुत विशाल काली दीवार उनके और मीनार के बीच में अचानक उठ आई। उनके शिरस्त्राण गिर पड़े, अस्त्र-शस्त्र छितर-बितर हो गये और फिर पूर्ववत् मौत की खामोशी चारों ओर व्याप गई। जुलूस उसी तरह गुज़रता रहा।

पर एकाएक मैंने देखा कि जो खिड़की आधुनिक जीवन की ओर खुलती थी, उसमें कुछ हलचल दिखाई दे रही थी। एक गली थी जिसमें साइकिलें, मोटरें और बड़े शहर की-सी तमाम चहल-पहल थी। इसी भीड़ भाड़ में एक छोटा बच्चा सड़क पार करना चाह रहा था। उसकी नन्हीं-नन्हीं बाँहों में एक गुड़िया थी। वह उसे थपकी देता हुआ सड़क पार कर रहा था कि अचानक भयंकर तेज़ी के साथ अंधड़ की तरह दो घोड़े दौड़ते हुए आये और बच्चे को धक्का मारते हुए निकल गये। बच्चा ज़मीन पर गिर पड़ा। तमाम लोग उसकी ओर दौड़े। किसी ने उसे गोद में उठाया तो मैंने देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया है ; जगह-जगह से बुरी तरह ख़ून बह रहा था और वह अपनी गुड़िया को और भी कस कर छाती से चिपकाये था। उसके नन्हें मरणा-सन्न मुख पर मैंने देखा हँसी बिल्कुल सूरज की तरह चमक रही थी। मौत का अधिकारी उस ओर घूमा। ऐसा लगा कि वह अपनी नाव और अपने मृतकों की भीड़ को जैसे एकदम भूल गया। वह उधर देखता गया, देखता गया और मैंने देखा कि उसकी नक्षत्रों वाली आँखों से झरझर आँसू चूने लगे।

एकाएक घंटी आप से आप बजने लगी। और वह सब, जो मौत की गहन घाटी में चले गये थे, उस अंधगुहा से हँसते-मुस्कराते वापस आने लगे। स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे—भीड़ की भीड़, सब खिले चेहरों से गाते चले आ रहे थे—"देखो-देखो, एक नन्हीं-सी जान ने सारे संसार को मुक्ति दे दी है।"

लगातार तीन रातों तक सिर्फ़ इसी सपने को देखते-देखते मैं घबरा गई थी ; यह सपना मन पर इस क़दर हावी हो गया था कि बिना रिल्के को लिखे मेरा मन हल्का नहीं हो सकता था। मैंने उन्हें पूरा सपना लिख कर भेज दिया।

जिस दिन मैं बर्लिन के लिए जाने वाली थी—उसके एक दिन पहले मुझे रिल्के का प्यारा-सा ख़त मिला। और वह वृत्त जो 'टेल्स ऑफ दी ऑलमाइटी' पढ़ कर शुरू हुआ था, रिल्के के इस ख़त से पूरा हुआ। उन्होंने लिखा था :

"प्रिय, तुम्हारा सपना जानती हो क्या था ? यह 'टेल्स ऑफ दी ऑलमाइटी' की एक सबसे बेहतरीन कहानी थी। लेकिन यह मेरी किताब में नहीं मिलेगी। क्योंकि मैंने इसे लिखा नहीं। पर यह है वही कहानी और तुमने उसका सपने में सृजन किया है। कितनी गहरी, कितनी सूक्ष्म दृष्टि है इस स्वप्न की !"

...पता नहीं, कौन है वह व्यक्ति, कैसा है वह व्यक्ति, जिसे मैंने आज तक देखा भी नहीं है, पर जिसकी कल्पनायें मेरी आँखों में सपने बन कर आ रही हैं। जिसकी कहानियों के सूत्र मेरे शरीर की नस-नस में बिछ गये हैं, उन्हीं में से मेरा मन सपनों म नया सृजन करता चल रहा है। मेरे चेतन, अवचेतन मस्तिष्क को इस क़दर प्रभावित करने वाला कैसा होगा वह ! कब उससे मिलूँगी, कब उसे देखूँगी ? और जब उसे देखूँगी तो कैसा होगा वह क्षण ? कहाँ बहा ले जायगा वह मुझे ?....

● ● ●

अगले अंक में :

किस प्रकार एक अज्ञात आकर्षण मन में सँजोये रिल्के और बेनवेनुटा की बर्लिन में प्रथम बार भेंट हुई। और किस तरह धीरे-धीरे रिल्के के सृजन में बेनवेनुटा का व्यक्तित्व घुलने लगा।

शुभागता : मुक्ता राजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशल्या अश्क

●

आत्म-परिचय

●जन्म १९१६ ई० में गुजरात (पश्चिमी पंजाब) में हुआ। मैं अभी १२–१३ वर्ष की ही थी जब पहले मेरे पिता और फिर २८ दिन के अन्तर से मेरी माँ परलोक सिधार गये। मैंने अपनी नौका को स्वयं ही खेने का निश्चय कर लिया। मेरे सबसे छोटे मामा ने, जो उन्हीं दिनों अमरीका से लौटे थे, मेरे साहस और निश्चय की प्रशंसा की, मेरा हाथ पकड़ा और मुझे माता-पिता का अभाव महसूस नहीं होने दिया।

●मैंने फिर शिक्षा का टूटा हुआ तार पकड़ लिया––'हिन्दी रत्न' और 'भूषण' की परीक्षाएँ देकर मैंने 'मिडिल' की परीक्षा दी और ज़िले में सर्व-प्रथम रही। दो वर्ष बाद 'हाई स्कूल' की परीक्षा में बैठी और सौभाग्य से छात्रवृत्ति पा गयी। कॉलेज में मेरी प्रिंसिपल श्रीमती ए० के० वर्मा ने (जो इस समय कलकत्ता में निवास करती हैं) मेरी बड़ी सहायता की, मुझे माँ का प्यार दिया और उनकी देख-रेख में मैंने बहुत कुछ सीखा और कॉलेज में सर्वप्रथम आती रही। १९४० में मैंने बी० टी० की डिग्री ली और पंजाब के दूरस्थ कस्बे रिवाला खुर्द में हेड मिस्ट्रेस होकर चली गयी। १९४१ में मैंने अश्क जी को जीवन-साथी बना लिया और नौकरी छोड़ कर दिल्ली आ गयी। अश्क जी की बीमारी के बाद १९४८ में हम इलाहाबाद आये जहाँ मैंने सरकार से ऋण लेकर प्रकाशन का काम शुरू किया और गत १२–१३ वर्षों से मैं उसे देख रही हूँ।

●लिखने का शौक यद्यपि मुझे कॉलेज से ही है, पर मैं अधिक लिख नहीं पायी। उर्दू में मेरी कहानियाँ 'साकी' और 'आजकल' में और हिन्दी में 'देश दूत' 'वीणा' तथा 'हंस' में छपीं। हमारे संयुक्त संग्रह 'दो धारा' में मेरी पाँच कहानियाँ सम्मिलित हैं।

बेचारी राधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● सुबह उठी तो चाची ने कहा, "राधा आज दोपहर बाज़ार चलेंगे और सभी चीज़ें ले आयेंगे।"

सोचा जल्दी से तैयार होकर थोड़ा-बहुत पढ़ लूं। नहा-धोकर नाश्ता करने जा रही थी कि चाची बोलीं, "बेटी जाना तो ज़रा नरोत्तम बाबू के यहाँ, यह साड़ी और छींट के टुकड़े अपनी सीता चाची को दिखा लाओ और पूछ आओ, क्या-क्या और किस रंग-डिज़ाइन का मँगाना चाहती हैं।"

पढ़ने को भी मन था और भूख भी लगी थी, पर चाची का आदेश टाल सकने की शक्ति मुझमें नहीं। शुरू से ही उनका मुझ पर इतना स्नेह रहा है कि वे मेरे निकट चाची कम और सहेली अधिक रही हैं। नाश्ते में अभी कुछ देर थी, इसलिए मैंने चुप-चाप कपड़े उठाये और चलने को तैयार हो गयी।

"देखो बेटी! दाम उन्हें बता देना, यह धोती सात रुपये की है और छींट एक रुपये तेरह आने गज", चाची बोलीं। और फिर जैसे समझाते हुए उन्होंने कहा, "और हाँ, जो चीज़ उन्हें मँगानी हो, उसके रुपये अवश्य लेती आना, नहीं तो बाद में परेशानी होती है।"

"बहुत अच्छा!" कह कर मैं चल पड़ी।

छुट्टी का दिन था, नरोत्तम बाबू बरामदे में बैठे नाश्ता कर रहे थे, सीता चाची भी पास ही बैठी थीं और बड़े स्नेह से उन्हें चाय बना कर दे रही थीं। मुझे दूर ही से उन्होंने देख लिया था और जैसे मुझे देखते ही वे अन्दर चली गयीं। मैंने सोचा, प्याला कम होगा, मुझे देख कर लेने गयी हैं।

"आओ राधा", नरोत्तम बाबू बोले, "सुबह-सुबह कैसे?" और वे पूर्ववत् चाय पीते रहे।

मुझे लगा, मुझे सुबह-सुबह नहीं आना चाहिए था। मैंने झिझकते हुए कहा, "चाची ने ये कपड़े दिखाने को भेजा है।"

तभी सीता चाची वापस आयीं और उन्होंने दाल वाला पराँठा नरोत्तम बाबू के सामने रखी तश्तरी में डाल दिया। मेरी भूख जैसे और भी चमक आयी। मेरे हाथ से कपड़े लेकर वे बैठ गयीं और अपने पति को दिखाते हुए कहने लगीं, "देखो यह कपड़े कितने अच्छे हैं, और सस्ते भी।"

नरोत्तम बाबू ने एक लम्बी-सी 'हूँ' करते हुए पराँठे का कौर मुँह में डाला। सहसा जाने सीता चाची को क्या ख़याल आया, बोलीं, "राधा, नाश्ता करोगी?"

मैं शायद 'हाँ' ही कह देती, पर बीच ही में नरोत्तम बाबू बोल उठे, "अरे, तुम भी पागल हो। राधा की चाची क्या इसे भखे बाहर जाने देती हैं?"

मुझे न चाची की बदनामी स्वीकार थी, न अपना पेटू कहलाना। तब मैंने विवश-सी 'ही-ही' कर दी।

"कितने की है यह साड़ी?" नरोत्तम बाबू ने पूछा।

"साड़ी सात रुपये की है और छींट एक रुपये तेरह आने गज़ है।" मैंने कहा।

"और तुम दस रुपये की रद्दी साड़ी ले आयी हो?" नरोत्तम बाबू पत्नी से बोले।

"तो अब एक अच्छी मँगा दो!" श्रीमती मिनमिनायीं।

"मँगा लो।" नरोत्तम बाबू ने लापर-वाही से कहा।

"इसमें और भी बहुत-से रंग हैं--बादामी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरा, नीला, ग्रे, आपको जो भी मँगाना हो, बता दीजिए।" मैंने कहा।

"रंग तो सभी अच्छे हैं," नरोत्तम बाबू ने कहा, "पर ग्रे ज़्यादा अच्छा लगता है।"

अब मुझे चाची की बात याद आयी—पैसे अवश्य ले आना...मैं सोच में पड़ गयी कि पैसे कैसे माँगूँ। बड़ी हिम्मत करके मैंने कहा, "जो भी मँगाना हो, बता दीजिए और उसी हिसाब से रुपये दे दीजिए। चाची शायद न जायँ, मैं आपकी चीज़ें भी ले आऊँगी।"

नरोत्तम बाबू चौंके, "साड़ियाँ तो तुम अभी लायी हो," उन्होंने श्रीमती की ओर मुड़ कर कहा, "चाहो तो एकाध ब्लाउज़ मँगा लो। ब्लाउज़ तुम्हारे पास कम हैं।"

"अच्छा ब्लाउज़ ही मँगा दीजिए।" उदास भाव से श्रीमती जी ने कहा, "वायल का मँगाऊँ या छींट का?"

अब के नरोत्तम बाबू ने कपड़ों को बारी-बारी से हाथ में लेकर देखा। वायल का भी अच्छा है और छींट का भी, पर छींट का यह फूल कुछ बड़ा है।" नरोत्तम बाबू बोले।

"तो इसे समझा देते हैं, यह अपने मन से ले आयेगी।" श्रीमती जी ने निराश होने से इनकार करते हुए कहा।

"हाँ, वहाँ ढेरों डिज़ाइन हैं।" बात को समाप्त करने की ग़रज़ से मैं बोली।

"तो किसी दिन हमीं चल कर देख लेंगे और वहीं तुम पसन्द कर लेना।" नरोत्तम बाबू बोले। फिर कुछ रुक कर और एक बड़ी-सी डकार लेकर जैसे वे किसी निष्कर्ष पर पहुँच गये हों, बोले, "तुम्हारे जो ब्लाउज़ छोटे हो गये हैं, वे राधा को दो, इसे छुट्टियाँ हैं, यह ठीक कर देगी।"

श्रीमती नरोत्तम का मुँह उतर गया पर वे चुपचाप अपने छोटे हो गये ब्लाउज़ को इकट्ठा करने अन्दर चली गयीं। मैं न 'हाँ' कर सकी और न 'नं'। नरोत्तम बाबू चाचा के मित्र हैं और उसी मित्रता के बल पर उन्होंने इतने अधिकार से यह काम मुझे सौंप देना चाहा।

चाची को मेरी पढ़ाई का इतना ख्याल रहता है कि बस चले वे मुझे काम नहीं करने देतीं। उनका काम करके मुझे वास्तव में खुशी होती है, एक विचित्र सन्तोष से मन भर जाता है, लेकिन नरोत्तम बाबू का दिल्ली क्लाथ मिल पर कृपा करने के बदले अपनी कृपा की धारा गठरी भर ब्लाउज़ों के रूप में मेरी ओर मोड़ देना मुझे अच्छा नहीं लगा।

जब मैं गठरी लेकर चलने लगी तो नरोत्तम बाबू ने श्रीमती जी से कहा, "भई एक पराँठा और लाना।" और फिर मेरी ओर मुड़ कर बोले, "तुम एक पराँठा ही खाओ राधा, बड़े स्वादिष्ट बने हैं।"

"आपने तो चाय भी नहीं पिलायी।" मुझे शरारत सूझी।

"चाय पियोगी?" उन्होंने पूछा। तब तक उनके लिए दूसरा पराँठा लेकर सीढ़ी चाची आ गयीं। वहीं बैठे-बैठे चिल्ला कर उन्होंने अपने बूढ़े नौकर को आदेश दिया, "सखाराम, चाय का पानी चढ़ा दो।" फिर बैठ गयी।

क्षण भर बाद उठते हुए मैंने कहा, "जाने दीजिए, चाय फिर कभी पी लूँगी।"

वहीं से उन्होंने फिर आवाज़ दी, "सुनो राम, पानी उतार दो।'

(शेष पृष्ठ ८० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

कुमारी मधु

आत्म-परिचय

जन्म सन् १९३३ में चन्दौसी के प्रख्यात वैश्य-वार्ष्णेय परिवार में हुआ। नाम सरस्वती है लेकिन कुमारी मधु के नाम से हिन्दी-साहित्य जगत में समादृत है। पिताजी की सम्प्रदायहीनता, सहृदयता एवं दार्शनिकता और माता की भावुकता, आस्तिकता ने व्यक्तित्व का निर्माण किया है। बचपन से ही संगीत प्रेमी होने के कारण कबीर, मीरा, सूर, तुलसी के भाव-मय संगीतात्मक पद भाव विभोर करते रहे।

सन् १९४९ में 'सरस्वती', १९५० में साहित्यरत्न और १९५७ में आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी एम. ए. किया। १९५७ ई० में बी. एम. जी. कालेज चन्दौसी में हिन्दी प्राध्यापिका नियुक्त हुई। सम्प्रति दिल्ली में हिन्दी प्राध्यापिका हूँ।

सन् १९५० में जो कविता-स्रोत फूटा—अभी तक बह रहा है। कहानी, लेख, एवं गद्यकाव्य भी लिखने में रुचि है। भारत की सभी उच्च-स्तरीय हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। आकाशवाणी से कार्यक्रम प्रसारित होते हैं।

'स्वगता' प्रथम कविता-संग्रह पटना से प्रकाशित हो रहा है। द्वितीय कविता-संग्रह 'सागर-सीपी' और बच्चों की पद्य-रचनाओं का एक संग्रह प्रेस में जा रहा है।

दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन और दिल्ली लेखिकासंघ की सदस्या हूँ।

दो कमरे का फ्लैट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतापबाग़ से दरियागंज की दूरी कम नहीं है। कभी प्रतापबाग़ से १६ ए बस मिल जाती है कभी शक्तिनगर से ६ ए। ऐसा भी प्रायः होता है कि प्रतापबाग़ से १ नम्बर बस लेकर रेलवे स्टेशन पर उतर कर दरियागंज के लिए कोई भी बस पकड़ लेती हूँ। काफी समय लगता है आने-जाने में। बड़ी बोरियत लगती है। इसलिए बस में आत्म-लीना-सी रहती हूँ। अभ्यासवश गन्तव्य पर नींद स्वतः टूट जाती है।

बहुत-से यात्रियों की शक्लों से परिचित हो गयी हूँ; लेकिन शक्तिनगर से चढ़ने वाली एक सुसंस्कृत सभ्य महिला ने विशेष रूप से आकर्षित किया है। कभी शलवार-कमीज, कभी साड़ी-ब्लाउज में उसकी छरहरी देह का लावण्य दृष्टि को ठिठका देता। चम्पई रंग, घुँघराले बाल, और साँचे में ढली देह देकर भी विधाता ने उसके साथ क्रूर मज़ाक किया था। अपने दाहिने पैर को घसीटती हुई जब वह चलती, करुणा की सृष्टि हो जाती। हाँ, उसका दाहिना पैर बेकार था। मोर-मोरनी का सर्वांग सुन्दर, पैर अशोभनीय; कैसी विडम्बना है!

उसके मुख पर सदैव गम्भीरता व्याप्त रहती। फतहपुरी पर वह उतर जाती। बस-ड्राइवर के किसी कारणवश ब्रेक लगाने पर जब भी मैं चौंक कर आस-पास देखती; वह मुझे शून्य दृष्टि से सड़क या सड़क के दोनों ओर बने मकान, दुकानों को देखती हुई मिलती। जैसे सब कुछ देखने पर भी दिखायी कुछ नहीं पड़ता था। दृष्टि अन्यत्र देखती थी।

दिल्ली में नववधू को पहचानना सरल है, किन्तु २० वर्ष से ३० वर्ष की अप्टुडेट महिलाओं में कुमारी-विवाहिता का भेद करना सरल नहीं है। फिर भी उस रमणी के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा था कि अनायास उसके विवाहित होने का बोध हो जाता। अनेक बार मैं उसे लेकर विचार-मग्न हुई हूँ। कहीं सर्विस करती है शायद, अध्या-पिका होगी। शाम को फतहपुरी, खारी बावड़ी या चाँदनी चौक के किसी विद्यालय में पढ़ाती होगी। लौटते समय फतहपुरी पर कितनी भीड़ रहती है। बसें रुकती हैं नहीं, रुकती भी हैं तो एक-दो पैसेन्जर लेती हैं। स्थान पाने के लिए कितनी धक्का-मुक्की रहती है। भारत की राजधानी दिल्ली में भी पंक्तिबद्ध खड़े होने की अभ्यास-प्रियता नहीं देखी जाती। कमजोर को ठेल कर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है। मैंने प्रायः उसे भीड़-भाड़ से पृथक् खड़े देखा है। बसें निकल जाती होंगी, वह इसी प्रकार बड़ी देर तक खड़ी रहती होगी। आखिर इतना कष्ट सह कर सर्विस करने में कौन-सी मजबूरी है? उसे लंगड़ाता देख बहुतों की दृष्टि में करुणा उभर आती, मुझे अच्छा नहीं लगता। यों शिक्षित होकर भी जिसने शिक्षित होकर समय के साथ पिछड़ने से इन्कार कर दिया, सर्विस में कर्मठता का परिचय दिया, उस पर करुणा करने का हमें क्या अधिकार है? उसके विषय में क्यों इतना सोचती हूँ, कभी-कभी स्वयं पर ही झुँझला उठती।

अक्टूबर का अन्त था। जैन बुल से कार्डिगन के लिए ऊन लेकर घंटा घर बस ली। सीट उसी रमणी के पास मिली। उस पर एक दृष्टि डाल कर मैं अपने आप खो गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कितने बेशर्म हैं ?"

किसी ने कहा। मेरी तन्द्रा पूर्ववत् रही। मेरा कंधा किसी ने हिलाया। इस बार चौंकी। "देख बहिन कितने बेशर्म हैं ?" वही रमणी कह रही थी।

"कहाँ ? कौन ?" कह कर मैंने बस के सम्पूर्ण यात्रियों पर विहंगम दृष्टिपात किया। कहीं भी अस्वाभाविकता लक्षित न होने पर प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देखा।

"अरे वे !" कहने से उसकी दाहिनी आँख छोटी पड़ गयी, ओठ सिकुड़ गये। मुख पर घृणा का भाव झलक आया। मैंने पुनः हर यात्री को भली प्रकार देखा। इस बार भी किसी में निर्लज्जता का आभास नहीं हुआ। मैंने निराश किन्तु विवश दृष्टि से उसे देखा, जैसे व्यक्त किया—तुम्हारी घृणा के पात्रों को मैं नहीं देख सकी।

"ऊँह...वे," कोहनी से धक्का देकर एक नारी-पुरुष की ओर उसने इंगित किया। कुछ दूर एक नवदम्पति बस के हर यात्री को भूले हुए, प्रेम विभोर होकर, हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। पुरुष की बायीं भुजा सीट के ऊपरी भाग को घेरे हुई थी।

मैं खिलखिला कर हँस पड़ी।

"तो क्या हुआ ? ये कई बार प्रताप-बाग़ से एक साथ चढ़े हैं, यों ही रास्ते भर बैठे रहे हैं। मंत्रमुग्ध भाव से एक दूसरे को निहारते हुए हँसते-बोलते रहे हैं। न्यूली कपल हैं भई।"

"होंगे", ग्रीवा को उसने झटका दिया। "इसका मतलब यह तो नहीं कि सार्वजनिक स्थानों पर प्रेम-प्रदर्शित करें। क्या प्रेम-व्यापार के लिए घर अपर्याप्त है ?"

मेरे भीतर बिजली कौंध गयी। किन कुण्ठाओं वश यह नवदम्पति के प्रेमालाप को घृणास्पद समझ रही है ? उसके प्रति अब तक की समस्त जिज्ञासाओं ने मुझे उसके मन का रहस्य जान लेने को प्रेरित किया। सहानुभूति और अपनत्वपूर्ण वाणी व्यक्ति के मनो-राज्य का द्वार खोल देती है।

"हाँ, अच्छा तो नहीं लगता। लेकिन नया-नया प्यार सीमाओं, मर्यादाओं के कूल-किनारे तोड़ कर बहता है। घर-बाहर का भेद कहाँ रहता है ! दिल्ली जैसी महानगरी में इसे अस्वाभाविक भी नहीं कह सकते।"

"नॉट करैक्ट। माइ हस्बैंड इज़ वेरी हैन्डसम। माइ मरिज इज़ सिविल मैरिज। लेकिन हमने कभी भी अपने प्यार को 'पोज़' नहीं किया। दाम्पत्य-प्रेम प्रदर्शन की वस्तु नहीं है बहिन।"

"लेकिन मकानों की तंगी से कुछ गृह-स्थियाँ एक-दो कमरे में ही..."

"...प्रेम करने के लिए एकान्त नहीं मिलता, यही कहना चाहती हैं आप ? किन्तु रात्रि में पति-पत्नी को मिलने वाला सामीप्य यथेष्ट होता है। इस पर भी प्रेम में बहुत उफान आए तो दिल्ली में होटल, रेस्त्राँ आदि में एकान्त सुलभ हो जाता है। जरूरी नहीं है कि बसों, सड़कों या बाजारों में उसे दिखाते चलें। आखिर सामाजिकता भी कोई चीज़ होती है।"

मैं उसे कैसे समझाती कि हर दम्पति इतने सम्पन्न, एडवांस और अवकाश प्राप्त नहीं होते कि रेस्त्राँ-होटल का व्यय-साध्य आनन्द प्राप्त कर सकें। मेरा उद्देश्य बहस करना नहीं था।

"स्टॉप दिस टॉपिक। इतना अवश्य कहूँगी...यू आर वेरी लकी। मनचाहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीत, पति रूप में मिल गया।"

उसका चेहरा काला पड़ गया।

"मन चाहा मीत...वेरी लकी...धोखा... सब धोखा।..." वह बुदबुदायी। अधरों पर विद्रूपमयी मुस्कान छा गयी।

"माइ मैरिज लाइफ इज़ नॉट हैप्पी। रियली आइ एम नोट हैप्पी।"

मैं स्तब्ध। कुछ क्षण अबोले निकल गये।

"ओह! आपकी बात समझ में नहीं आयी। कैसा धोखा? दाम्पत्य जीवन सुखी क्यों नहीं?"

वह शान्त दिखायी पड़ी। हाँ चेहरे पर कभी वेदना, कभी घृणा, कभी करुणा के भाव आते-जाते रहे। वह अतीत में पहुँच गयी थी। असमंजस में थी कि अतीत को अनावृत करे या न करे।

मुझे दुख हुआ--क्यों मैंने उसे छेड़ दिया? तभी वह बोली--"मेरे पति बी. एड. में मेरे सहपाठी थे। वह अम्बाला से आये थे, मैं मातृ-पितृ विहीना चाचा के पास रह कर पढ़ रही थी। हम दोनों में मैत्री हो गयी। यह मैत्री बढ़ते-बढ़ते प्रेम में बदल गयी। चाचा को हमारे प्रेम का ज्ञान था। उन्होंने हमें नहीं रोका; क्योंकि वह कर्त्तव्यवश मुझे पढ़ा रहे थे। मैं एक प्रकार से उन पर भार थी जिसे विवाहोपरान्त ही उतरना था। उन्होंने सोचा--अच्छा है, वर ढूंढ़ने की दिक्कत नहीं हुई। जीवन में प्रेम का अभाव था। अतः मैं उनके प्रति मानसिक रूप से सम्पूर्णतः समर्पित हो गयी। वह छुट्टियों में एक-दो दिनों को अम्बाला चले जाते। एक वर्ष बाद मैं अध्यापिका हो गयी, वह एम. एड. करने लगे। फिर भी हम होटल, रेस्त्राँ, सिनेमा, पार्क में मिलते रहे। हमने अनुभव किया कि हम एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते। अतः उन्होंने एक दिन चाचा के समक्ष विवाह प्रस्ताव रख दिया। चाचा ने स्पष्ट कह दिया--मैं आडम्बरपूर्ण विवाह का कट्टर विरोधी हूँ। करना हो तो सिविल मैरिज कर लो। और हम पति पत्नी हो गये। गर्मी की छुट्टियाँ हमने पहाड़ों पर व्यतीत की। सहसा वह रुक गयी। कुछ क्षण बाद निश्वास लेकर बोली--"वही दो मास मेरे जीवन का स्वर्ण-काल है। लौटने के कुछ दिन बाद ही ज्ञात हुआ कि वह विवाहित था।"

"क्या?" मेरे मुँह से चीख निकलते निकलते रह गयी।

उसका स्वर धीमा पड़ गया जैसे कहीं से आ रहा हो। "जिस समय हमारी मैत्री हुई, उसकी फर्स्ट वाइफ की फर्स्ट प्रेग्नेंसी चल रही थी। वह शीघ्र ही रमा को ले आया।"

"तब?"

मेरा प्रश्न भी शायद उसने नहीं सुना। उसका सिर सीट से टिक गया। आँखें अधमुँदी हो गयीं। वह इस प्रकार बोल रही थी जैसे स्वयं से बातें कर रही हो।

"मैं क्या करूँ? एक कमरे का फ्लैट है। मेरी आँखों के सामने ही सब व्यापार होते हैं। कोई नारी-पुरुष इतने बेशर्म भी हो सकते हैं? वह इतनी निर्लज्ज हो सकती है, मैं नहीं। लेकिन जब वह मुझ से भी इसकी आशा करता है तब...तब ओह...उसकी जबरदस्ती...आह, कितनी मानसिक यंत्रणा सहनी पड़ती है। घृणा, वितृष्णा से मन भर गया है। उसको,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमरे को छोड़ कर कहाँ जाऊँ ? आइ हेट हिम बैंडली। ही इज़ नॉट माइ हस्बैंड, बट ए बीस्ट। आइ एम अलोन, कम्पलीटली अलोन, इन दिस वर्ल्ड, माइ लाइफ हैज़ बीन पोइज़न्ड।"

तीव्र वेदना से उसका मुख पीला पड़ गया। फिर जैसे उसे मेरा ध्यान आया।

"आप ही बताइए, उस नारी का जीवन ही क्या जिसे दाम्पत्य-सुख के लिए एकान्त न मिले, जिसके जीवन में कोई प्राइवेसी न हो ?"

मेरा स्वर गहरी सहानुभूति से भीग उठा।

"आप तो 'धनोपार्जन' भी करती हैं। पति को दो कमरे का फ्लैट लेने को विवश कीजिए न !"

"न जाने कितनी बार कहा है, वह सुनता ही नहीं। सुने भी क्यों ? एक कमरे के कारण उसके जीवन में किसी अभाव या दुख की सर्जना ही कब हुई है ? एकान्त का अभाव मुझे ही है, क्योंकि मैं घर से साढ़े ग्यारह बजे निकल कर शाम को सात-साढ़े सात पर लौटती हूँ। वह सुबह सात बजे जाकर एक बजे लौट आता है। वह रमा के साथ खूब एन्जोय करता है, पूर्ण सन्तोष पाता है, जीवन को जीवन की तरह जीता है, इसीलिए मेरी उपेक्षा करता है। किसी बात का विरोध करने पर कहता है--"सर्विस क्या करती है दिमाग सातवें आसमान पर रहता है। बाहर मज़े करती है इसलिए दो मिनट को न प्यार से बोलती है न किसी से बोलने देती है। सर्विस के गुमान में न रहना, किसी दिन इस्तीफा दिलवा दूंगा। लँगड़ी होने पर इतने मिज़ाज है यदि कहीं...।"

दो मोटे-मोटे आँसू उसकी आँखों में चमके, गिरने से पहले ही विलीन हो गये। आँसू पीने की कदाचित वह अभ्यस्त थी।

"रमा उसका पक्ष लेती है। आप उस असहनीय स्थिति की कल्पना भी नहीं कर सकतीं---जब वह यह जताने की चेष्टा करती है कि मैं उससे अधिक सुन्दर, सुशिक्षित और आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर होने पर भी पति की उपेक्षिता हूँ और वह प्रियतमा है।"

उसकी आँखें जल उठीं, मुट्ठियाँ बँध गयीं। एक मिनट बाद ही वह शिथिल हो गयी जैसे कोई दीपशिखा 'भक' से जल कर बुझ गयी हो।

"वह सर्विस छुड़वाने की धमकी देता ही है लेकिन उसके मन में मेरी सर्विस के प्रति गहरा लोभ है। हर महीने की पहली तारीख को वह दो सौ पचास में से दो सौ पच्चीस रुपये लेना नहीं भूलता। मेरा अस्तित्व मात्र सोने का अंडा देने वाली मुर्गी के समान है। कई बार सोचा है---सर्विस छोड़ दूं, जरा पति और रमा को आर्थिक कष्ट का अनुभव हो जायगा। और मेरा महत्त्व भी समझ में आ जाएगा। पर मैं ऐसा नहीं कर सकी। कुछ देर घर से बाहर बच्चों एवं स्टॉफ के बीच मन बहल जाता है। यह सुख भी खो दिया तो जीवित कैसे रहूँगी ! मुझे स्वयं से विरक्ति हो गयी है।"

"शक्तिनगर का आपका मकान नम्बर क्या है ?"

"क्यों, क्या आने का विचार है ? यदि अपना तमाशा ही बनवाना होता तो इतनी दूर सर्विस क्यों करती ? रूपनगर स्कूल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने इसीलिए ट्रान्सफर करा लिया कि घर के समीप होने के कारण मैं छात्राओं और स्टॉफ की आलोचना सुनने की सामर्थ्य नहीं रखती थी। बाहर वालों की दृष्टि में मैं हास्यास्पद होना नहीं चाहती।"

"बुरा न मानें तो एक सुझाव दूं। आप डायवोर्स क्यों नहीं ले लेतीं?"

वह हँस पड़ी जैसे मैंने बचपना भरी बात कह दी हो।

"डायवोर्स लेकर जाऊँगी कहाँ? भूखे भेड़ियों की क्या कमी है?" अचानक बस रुकी। उसने सीधे हाथ से मेरा हाथ दबाया।

"आइ नेवर फौरगेट योर सिम्पैथी", और वह पैर घसीटती हुई बस से उतर गयी। तब मुझे पता चला---फतहपुरी आ गयी थी। बस जब तक आगे नहीं बढ़ी मैं उसे जाते हुए देखती रही। सत्य तो कहती है। डायवोर्स लेकर जायेगी कहाँ? माँ-बाप हैं नहीं, यदि होते भी तो क्या यह स्वाभिमानिनी अपमानित नारीत्व लेकर उनके पास जाती? चाचा के पास जाने का प्रश्न ही नहीं उठता, टली हुई बला को वह क्यों प्रश्रय देने लगे! लाख सुन्दर होने पर भी पंगु युवती से विवाह भी कौन युवक करेगा? सम्भवतः वही पुनर्विवाह न करे। प्रथम प्यार में जिसके मन में प्रेमी पति के लिए घृणा की इतनी गहरी जड़ें जम गयी हैं; क्या वह पुनः किसी पुरुष पर विश्वास कर सकेगी? फिर परित्यक्ता होकर वह कौन-सा पथ स्वीकार करेगी? हमारे समाज में इतनी उदारता, सहृदयता और नैतिक दृढ़ता ही कहाँ है कि वह विधवाओं और परित्यक्ताओं को शान्ति-पूर्वक जीवन-यापन करने दे। पति नाम की छाया उठने पर न जाने कितनी हिंस्र निगाहें उसे निगलने को तैयार हो जायेंगी। मुझे उसके शब्द याद हो आए---"आइ एम अलोन, कम्पलीटली अलोन, इन दिस वर्ल्ड।" तब वह क्या करेगी? उसका जीवन-ज्वालामुखी कैसे शान्त होगा? मुझे अपने आप पर ही क्रोध आया। उसका नाम तक नहीं जान सकी थी---उसके भविष्य को क्या पढ़ती! बस रुकी। देखा दिल्ली गेट था। दरियागंज छूट चुका था।

० ० ०

शक्तिनगर पर वह चढ़ी। आँखें सूजी हुईं, साड़ी अस्त-व्यस्त, बनाव-शृंगार का नाम नहीं। आखिर बात क्या है? वह गुमसुम बैठी थी। सब्जी मण्डी पर उसके पास की सीट खाली हुई, मैं जाकर बैठ गयी। उसने मुझे देखा। बहुत हल्के मुस्करायी। स्वाभाविक मुस्कान नहीं, थकी...विवश मुस्कान।

"बहुत थकी नज़र आती हो?"

क्लान्त होना स्वाभाविक है। सुबह खाना बना कर आती हूँ। शाम को लौटकर बनाती हूँ। टुन्नू के बहाने रमा को रसोई से मुक्ति मिल जाती है। मशीन बन गयी हूँ।"

टुन्नू रमा का लड़का होगा---मैंने सोचा। लेकिन यह सूजी लाल आँखें क्या थकने का कारण हैं? नहीं, कोई बात अवश्य है।

"लगता है रोकर आयी हो।"

"हूँ"। कह कर वह पुनः गुमसुम हो गयी।

"बात क्या है, मुझे बताइए न!"

उसने मुझ पर गहरी दृष्टि डाली।

"टुन्नू के कारण आज घर में महाभारत मच गया। बहुत चाहने पर भी मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां के समान प्यार नहीं कर पाती। जिस पति को घृणा करती हूँ, उसके बच्चे को माँ की ममता कैसे दूं ? वे मुझसे इसकी आशा ही क्यों करते हैं ? वे कहते हैं मैं टुन्नू से ईर्ष्या करती हूँ। यद्यपि यह नितान्त गलत है।" उसकी ग्रीवा तन गयी, मुख पर दृढ़ निश्चय का भाव झलकने लगा।

"अब मुझे कुछ करना ही होगा।"

हम दोनों चुप रहे।

कुछ दिनों तक मैं ९ ए बस में जाती रही। वह मुझे नहीं मिली। एक दिन अत्यन्त सुन्दर-आकर्षक युवक के साथ चढ़ी। फतहपुरी तक दोनों एक दूसरे में डूबे बातें करते रहे, हँसते रहे। उसकी दाहिनी कोहिनी युवक के बायें कन्धे पर रखी थी। बातें करते-करते वह कभी-कभी अपना मुँह युवक की बायीं बाँह पर रख लेती। एक बार उड़ती नज़र से उसने मेरी ओर देखा, पर जैसे पहिचाना नहीं।

मैं आश्चर्य में डूब गयी। इसके सारे आदर्श और लज्जा कहाँ गयी ! इसे तो पति से घृणा थी। आज यह उससे इतनी घुल-मिल कर कैसे बातें कर रही है ! इसका गहन प्यार तीव्र घृणा में परिवर्तित हो गया था। क्या किसी कारण वश वह पुनः प्रेम में परिणत हो गया ? कदाचित दो कमरे का फ्लैट मिल गया है। लेकिन उसका पति एक बजे लौटता था। तो क्या पति और परिवार से प्राप्त गहरी असन्तुष्टि के कारण वह इस युवक की ओर उन्मुख हो गयी है ? लेकिन...लेकिन...मैं असमंजस के झूले पर झूलती रही।

वह जब-तब उस युवक के साथ चढ़ती। बनाव-शृंगार, भाव-भंगिमा से उसका उत्साह, उमंग और सन्तोष छलका पड़ता। इन दिनों उसका सौन्दर्य भी निखर गया था। सच कहूँ, उस युवक की आँखों में इतना प्यार लहराता था कि कोई भी रमणी उसमें डूब कर बेसुध हो जाती, फिर मुरझायी लता के लहलहा उठने में आश्चर्य ही क्या ! शायद उसके पति का ट्रान्सफर फतहपुरी के समीप कहीं हो गया था, इसलिए दोनों साथ आते थे। जब पति उसे बाँह का सहारा देकर चलता, उसकी लंगड़ाहट में भी एक सौन्दर्य, एक नज़ाकत आ जाती।

मैंने उसे शीला के बॉक्स में, गोलचा से 'ज़िन्दगी और ख्वाब' देख कर निकलते, कनाट प्लेस में शापिंग करते, यॉर्क होटल और मोती महल में डिनर लेते देखा है। उसकी ज़िन्दगी के बिखराव ने मेरे मन में उसके प्रति गहरी सहानुभूति उत्पन्न कर दी थी। उसे प्रसन्न देख कर मैं भी आनन्दित हुई।

एक दिन फतहपुरी पर उतरते समय जब वह मेरी सीट के पास से निकली—मैंने धीरे से कहा—

"प्रसन्न जीवन के लिए बधाई। इज़ दिस योर हस्बेंड ?"

"ओह ! नो नो..देट।"

जिस पुरुष की ओर आँख से संकेत कर वह उतर गयी, वह बौखलायी दृष्टि से उसे जाता देखता रहा। इस युवक को तो मैं कई दिनों से लगातार बस में देखती हूँ। यों ही बदहवास-सा उन दोनों को घूरता रहता। इस घूरने को मैंने कभी महत्त्व नहीं दिया। सुन्दर नारी को घूरना आम बात है। अब मालूम हुआ पत्नी उससे प्रतिशोध ले रही है, जैसे बता देना चाहती हो—मेरे नारीत्व को इतना अपूर्ण...उपेक्षणीय न समझो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें छोड़ कर मेरी दुर्गति न होगी। अब भी तुमसे श्रेष्ठ पुरुष को पागल बनाने की सामर्थ्य है मुझमें। और पति, पत्नी के हाथ से निकल जाने की आशंका से, उसका पीछा करता है, उसकी गति-विधि पर नज़र रखता है। इस बार सीधे उसके पौरुष को चुनौती दी गयी थी।

न जाने क्यों मुझे उस रमणी पर गुस्सा आया। शायद इसलिए कि उसके कृत्य ने उसके प्रति मेरी धारणाओं पर आघात किया। मैंने अनुभव किया कि उस पर धीरे-धीरे अश्रद्धा हो रही है, यहाँ तक कि उसके मिलने पर मैं मुँह फिरा लेती। मेरी यह विमुखता उसने भी लक्ष्य की। दोनों में से किसी ने बोलने का प्रयास नहीं किया।

कुछ दिनों तक वह अदृश्य रही। फिर घंटा घर से चढ़ने लगी। अब उसके साथ वह युवक नहीं रहता, फिर भी उसकी आँखों में दीप्ति और अधरों पर मुस्कराहट रहती। अभी चार फरवरी की बात है, वह मेरी सीट पर ही आकर बैठी। मैं खिड़की के बाहर देखने लगी। कुछ देर बाद 'आषाढ़ का एक दिन' पढ़ने लगी। वह जामुनी रंग का बेबी सूट बुन रही थी। कभी-कभी मुझ पर दृष्टि डाल लेती, फिर बुनने लगती। तीसहजारी पर सलाइयाँ बेग में रख दी और एक हाथ मेरी कमर में डाल कर दूसरे हाथ से मेरा मुँह अपनी ओर करके बोली--

"बहुत नाराज हो ?"

"....."

"क्या मैं सचमुच घृणा की पात्री हूँ ? तुम्हें सुन कर हर्ष होगा---अब मैं बहुत प्रसन्न हूँ ?"

मैंने उसे देखा।

"उसी युवक से पुनर्विवाह कर लिया शायद ?" मेरे स्वर में तीखा व्यंग्य था।

"अच्छा...तो इसलिए रुष्ट हैं आप!" वह इतनी ज़ोर से खिलखिलायी कि बस के कुछ यात्री चौंक कर हमारी ओर देखने लगे।

"अरे, वह तो मेरा दूर का ममेरा भाई था! पिछले दिनों तुमने जो देखा, सब एक नाटक था। साइड हीरो के कारण हीरो की आँखें खुल गयीं। नाटक सुखान्त रहा। अब तो हँस दो न।" मैं उछल पड़ी। बस न होती तो मैं उसे दोनों हाथों पर उठा लेती।

"देखो अब हमने कमलानगर में दो कमरे का फ्लैट ले लिया है। कल मेरे टुन्नू की सैकेन्ड बर्थ डे है। कल सायं चार बजे आना न भूलना! ई फोर में गीता अरोड़ा को पूछ लेना। हाँ, आना अवश्य, अन्यथा बोलूंगी नहीं।"

फतहपुरी आ गयी थी। ●●●

बहस

दो व्यक्तियों में काफी देर से बहस चल रही थी। एक कह रहा था कि शेक्सपीयर के सारे नाटक रानी एलिजाबेथ ने लिखे हैं। दूसरे सज्जन ने चुनौती दी कि ऐसा हो ही नहीं सकता।

पहले सज्जन ने बिगड़ते हुए कहा, "क्या आप समझते हैं कि एक औरत इतने सुन्दर और महान नाटक लिख ही नहीं सकती ?"

दूसरे महाशय बोले, "ओह्, पर आप मेरी बात तो समझे ही नहीं। मैं तो कह रहा था कि एलिजाबेथ एक आदमी का नाम है।" ---माया तिवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारी राधा

आत्म-परिचय

- जन्म-स्थान : जीवछपुर, सहरसा (बिहार); जन्म-तिथि : २७ सितम्बर '३६
- शिक्षा : पहले साहित्यरत्न तक। अब बी० ए० (पार्ट—१) में पढ़ रही हूँ।
- रुचियाँ : राजनैतिक वाद-विवाद, देशी-विदेशी साहित्य का अध्ययन, साहित्य, राजनीति एवं सामाजिक कार्यों के प्रति विशेष आग्रह एवं इन क्षेत्रों में सतत कार्यरतता।
- वर्तमान कार्य-क्षेत्र : अध्ययन एवं लेखन।
- लेखन सम्बन्धी भावी योजनाएँ : अभी-अभी एक कविता-संकलन "सरयू कछारों की हरिणी" प्रकाशित किया है। आधुनिक हिन्दी काव्य में ऐसे ही रचनात्मक योगदान की आकांक्षा है। कहानियों का एक संकलन तथा एक उपन्यास भी निकट भविष्य में प्रकाशित करने की योजना है।

पतझड़ की एक अन्तहीन शाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● ● समय आता है, चला जाता है; एक गीत, एक गुलाब, एक समुद्र और कुछ कथाएँ छोड़ कर। समय लौटता नहीं; किन्तु बार-बार लौट कर आते हैं गीत, गुलाब, समुद्र और कथाएँ--मिसेज कपूर ने सोचा, फिर काला चश्मा आँखों पर डाला; बेनिटी-बेग हाथों में झुलाया, आईने के सामने आ मुस्कुरायी और बाहर आ गयी। सामने के लॉन में मि० विकास को देखा। वह मित्रों से बातों में उलझा था। बहुत देर तक मिसेज उसकी ओर देखती रहीं, गुलाब उगे और लौट गये। मि० कपूर किसी पुर्जे को ठीक कर रहे थे। कार तैयार न थी।

मि० विकास, विश्वविद्यालय का प्रोफेसर है, सामाजिक तौर पर सम्मानित। ऊँचा कद, स्वस्थ, संतुलित, मितभाषी और खूबसूरत। मिसेज कपूर उसे देखतीं, और उनके सपने लौट आते। बहुत देर तक विकास को वह एकटक निहारती रहीं और जब जुड़े हाथों से विकास अपने मित्रों को विदा देने लगा तो मिसेज कपूर ने एक उसाँस ली--काश, ये जुड़े हाथ मेरे लिए कभी उठ सकते, प्रति-नमस्कार में ही सही। यों वह जानती है कि विकास आदतन किसी ओर देखता नहीं है, फिर ये जुड़े हाथ मिसेज कपूर के लिये कैसे उठ पाते!

कार तैयार थी सो कपूर ने हार्न दिया। मिसेज कपूर सीढ़ियाँ उतर आयीं। मिसेज कपूर ने देखा विकास नहीं है। अमला खड़ी है। कुछ कथाएँ उगीं और राजपथ में खो नहीं गयीं, केवल मिसेज कपूर की मुद्राएँ भर बदलती रहीं।

अमला ने उसे बताया था कि विकास की पत्नी बहुत ही सुन्दर-स्वस्थ और पढ़ी-लिखी गृहस्वामिनी है, शायद ही नगर में एक-दो वैसी निकल आयें। और तब मिसेज कपूर अपने को रोक नहीं पायी थीं, विकास भी कम सुन्दर तो नहीं है। अक्सर वह दफ्तर आते-जाते दीख जाता है। विकास के स्मरण मात्र से ही एक बहुत ही प्यारा-सा गीत उस समय मिसेज कपूर तक तिर आया था और अमला प्रश्न-चिह्नों में घिरी अपने घर लौट गयी थी। कभी मिसेज कपूर ने अमला से पूछा भी था--"विकास को डी० लिट० किस विषय पर मिला था?" "समाज-शास्त्र से सम्बन्धित विषय था, शायद सोशियालोजी ऑफ लिटरेचर, भई इतना बड़ा विद्वान और इतना विनम्र?"--अमला ने मिसेज कपूर की गहरी साँसों को समझा नहीं था, और शायद विस्मित लौट गयी थी।

मि० कपूर और डा० विकास वैसे एक ही विश्वविद्यालय के एक ही विभाग में थे और दोनों प्रायः मित्र ही थे, किन्तु मित्रता सीमित थी विश्वविद्यालय तक ही। अतएव घर में प्रविष्ट नहीं हुई थी। कपूर से कुछ खोद-खोद कर पूछना खाई को बढ़ा सकता था और बदले में कुछ प्राप्य नहीं था। मिसेज कपूर ऐंठती रहतीं और उन्हें याद आतीं अपनी पिछली कहानियाँ।

कालेज होस्टल। हर तरफ पाबन्दियाँ और पहरे। पहरे लाँघ कर वे सेकेण्ड शो सिनेमा हफ्ते में तीन दिन देखतीं--साथ में और कोई सहपाठिन नहीं जा पाती तो अकेले जातीं और नेपाली दरबान की खुली खुली कभी रुपये, कभी दो रुपये मुट्ठियों में होती बन्द हो जाती।

पिता का घर। खुली बालकनी नृत्य का अभ्यास करतीं और सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेस के लड़कों की नज़रें बहकती रहतीं। कुछ दिनों के बाद सोमेश की नियमित बाँसुरी बजती और वे उससे रात के पिछले पहर मिलतीं, उसके एकान्त कमरे से घंटे-दो-घंटे व्यतीत कर लौटतीं, कपड़े बदलतीं, सो जातीं। थकान सपनों में उतर जाती और प्रतीक्षाएँ फिर प्रारम्भ हो जातीं। फिर अचानक विवाह हुआ। वे कुछ दिन अनमनी-सी रहीं तो। मगर कुछ और नहीं हुआ। पति विदेश गये, तो सोमेश किसी न किसी बहाने उस मेस में रहता ही चला गया। नगर के एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक की इंजेक्शन चलती ही रही। सोमेश गया तो क्लब में विभास मिले। विभास की नियुक्ति अन्यत्र हुई तो मल्होत्रा और लाल आते रहे। बोतलें खाली होती रहीं--और गीतों की सिम्फनी मधुर ही होती गयी। पिता भारत में रहते थे और सपने भी अंग्रेजी में ही देखते थे, ऐसा कहना था। माँ नहीं थी और इकलौती के सपने तोड़ना अपराध था।

विकास--उफ, व्यक्ति अपने में कितना भी सन्यस्त हो, वह वातावरण से दूर कैसे रह सकता है? निश्चित, तटस्थ कैसे जी सकता है? वह सोचती और विकास उन्हें सालता रहता। सो आज भी वह उसकी खुली-धुली केशराशि में अँटके बड़े गुलाब की उपेक्षा कर गया, और उसकी बासन्ती साड़ी मि० कपूर के ढीले व्यक्तित्व से बनी सलवटों को छोलती रही...।

कार सरपट दौड़ रही थी और चुप्पी दोनों के बीच के एकान्त को गहन ही करती जा रही थी कि मिसेज मुखरित हुई, "कहाँ जा रहे हैं?" कपूर नहीं बोले, और गाड़ी को बढ़ाते ही चले। मिसेज कपूर ने पुनः पूछा तो इतना ही कह कर चुप्पी साध ली कि चलो, थोड़ी दूर घूम आयें। मिसेज विषण्ण होती गयी और उनकी नसें तनती गयीं। गाड़ी नहर किनारे जाकर रुक गयी थी। दोनों अपने-आप में तटस्थ घूम रहे थे चुपचाप, दोनों में कोई बात नहीं हुई। औपचारिक भी नहीं। जैसे ये पति-पत्नी नहीं हैं। परिचित भी नहीं। अपरिचित। एक दूसरे के मन से। शायद तन से भी।

गाड़ी पोर्टिको में आ लगी थी। मिसेज ने देखा, सामने के बंगले की रोशनी बुझी है और वहाँ एक आकृति खड़ी है, चुप और गुलाब की झाड़ियों में खोयी। वह सीढ़ियाँ चढ़ गयी और वह आकृति ओझल हो गयी। रात भर वे करवटें बदलती रहीं। मि० विकास की कई छायाएँ उन्हें अन्धकार में घेरती रहीं। कपूर सोये रहे...सोये रहे। रात में अक्सर घूम कर एक बजे से पूर्व कभी न लौटे और मिसेज कपूर मन की अनेक आकृतियाँ गढ़ती रहीं। बरामदे पर, बारजे पर सजी-सँवरी चहल-कदमी करती रहीं। विकास अपने बँगले से बाहर चुप-चुप जाता रहा, बिना कहीं दृष्टि अँटकाये। समय बीतता गया--गीत, गुलाब, समुद्र और कथाएँ।

शैल की बीसवीं वर्षगाँठ के दिन मिसेज कपूर मि० विकास की छाया से जब दुहरी हुई तो विकास आगे बढ़ने को हुआ, और मिसेज ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उसके चेहरे पर गड़ाते हुए पूछा कि श्रीमती विकास क्यों नहीं आयीं? विकास इस अप्रत्याशित प्रश्न के लिए जैसे तैयार न था, सो उसने एक बार घूम कर देखा और उसने सोचा, यह कैसी अशिष्ट महिला है? उस क्षण मिसेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपूर को लगा कि यह जूड़े का गुलाब प्रयोजनहीन है।

अचानक एक दिन मिसेज कपूर ने मि० कपूर को विश्वविद्यालय में टेलीफोन किया। पर विकास ने ही उस क्षण रिसीवर उठाया--"हलो।"... "मैं मिसेज कपूर। मि० कपूर हैं क्या ?"...."अभी-अभी चले गये हैं।"..."अच्छा, आप विकास बाबू हैं न ? भई एक बात मानो तो कहूँ कि आज शाम को चाय पर आ जाओ। पास रह कर भी इतने दूर ?" और विकास ने रिसीवर रखते हुए सोचा--अजीब हैं मिसेज कपूर भी...।

विकास चाय पर पहुँचा तो वहाँ मि० कपूर न थे। पता चला कि वे विश्वविद्यालय से लौट कर कलकत्ते की यात्रा पर गये हैं। उनके भाई वहाँ सख्त बीमार हो गये हैं।

विकास चाय पर सहज नहीं हो पाया। उसकी अति परिचित गम्भीरता को मिसेज कपूर चपलता में नहीं बदल सकी। बातों में विकास "हाँ" "हूँ" करता रहा। मिसेज कपूर की "लोकट ब्लाउज" और "मेडनफार्म" फेल कर गयी। लम्बे-काले कुन्तलों में उड़ेली गयी सेंट बेकार हो गयी, और जब विकास लौट गया तो वह निढाल हो गयी। उसके सामने एक वीरान पतझड़ की शाम रात में बदलती चली गयी। उदास और अन्तहीन।

कई दिन और कई रातें बीत गयीं। एक रात को विकास ने देखा कि मि० कपूर रात को बहुत तेजी से गाड़ी लेकर कहीं चले जा रहे हैं और मिसेज कपूर नाइट गाउन में लिपटी अपने बरामदे पर चहलकदमी कर रही हैं। विकास उस रात सो नहीं सका, और कार के लौटने की आवाज का इन्तजार करता रहा। कार लौटी तो सुबह हो गयी थी और मि० कपूर की उम्र दस साल ज्यादा उसे दीख रही थी।

अमला ने एक दिन विकास को बताया कि मि० कपूर कहते हैं कि वे घरबार छोड़ कर कहीं लम्बी यात्रा पर अकेले जाने वाले हैं। अपने स्टडी रूम में बैठे-बैठे वे बिल्कुल गुम घंटों पेन ठुड्डी से दबाये बैठे रह जाते हैं। टेलीफोन की घंटियाँ बजती रह जाती हैं। किसी तरह वे पत्नी को निबाह रहे हैं। और इसलिये वे काम में जुटे रहते हैं कि और क्या करें। डाक्टर निराशा प्रकट करते हैं और न तो दवाइयाँ कारगर हो पाती हैं नहीं शराब....नीलू पता नहीं क्यों विस्तर से ही लगी रहती है--बरामदे पर, छत पर खिड़कियों पर खड़े होते समय उसकी आँखों में रौशनी जलती है और घंटों खड़ी रहो-रहते पलकें झुक जाती हैं और रौशनी बुझ जाती है...और भी कई बातें, कई स्वालाप-विकास को न तो चिंता हुई थी और न वह हँस ही सका था, जैसा कि वह सदा ऐसी बातों पर ठठा कर हँस देता था।

और, एक दिन सचमुच मि० कपूर ने विश्वविद्यालय से छुट्टी ले ली और तीन महीने के लिए कहीं चल दिये। विकास को बताया तक नहीं--कहाँ, क्यों जा रहे हैं। इस बीच मिसेज कपूर बीमार हो गयी। अमला विकास को पकड़ कर ले गयी। सहायता करो, हम पड़ोसी हैं, कहीं कुछ हो गया तो लोग हमें क्या कहेंगे। विकास गया। उसने व्यवस्था की, डाक्टर आये। बीमारी पता नहीं दे पाती थी, और बीमार स्वस्थ दीखती हुई और बीमार होती जा रही थी। टॉनिक बेकार हो गयी, सुइयाँ काम नहीं कर पा रही थीं। मिसेज कपूर बीमार हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी कि अमला कॉलेज की ट्रिप पर चल दी। विकास अकेला रह गया, अकेली रही मिसेज कपूर और दोनों बंगलों में दो नौकर।

विकास विश्वविद्यालय के लिए नोट्स तैयार कर रहा था, कि मिसेज कपूर का नौकर आया, मेम साहब की हालत अच्छी नहीं, चलिए बुला रही हैं। विकास ने स्लीपर पहने, गाउन की डोरी कसी और चल पड़ा। मिसेज कपूर बिस्तर में बैठी थी और उनकी आँखें लाल थीं। वह एकटक विकास को देखती जा रही थी। विकास ने उसका माथा छुआ, हल्का गर्म था। नाड़ी देखी, वह तेज थी। साँसों को परखा, वे काफी तेजी से चल रही थीं। विकास ने कहा,—"लेट जाएँ, आराम करें, ठीक हो जाएँगी। कोई एबनार्मलिटी नहीं दिखती। सुबह डाक्टर को बुलाऊँगा, अभी रात काफी बीत गयी है।" मिसेज कपूर सोयी नहीं, विकास को देखती रही। गीत, गुलाब, समुद्र और कथाएं.....

वह सहसा उठी और विकास के सम्मुख झुक गयी। विकास पास खिसक आया, और जैसे विक्षिप्त की तरह बोलने लगा,—"मैं तुम्हारा हूँ, मुझे पीस डालो कि नसें चिटख जाएँ, रग-रग टूट जाएँ। मैं बहुत बीमार हूँ, मगर, तुम स्वस्थ हो जाओ नीलू, किसी तरह स्वस्थ हो जाओ!" विकास को उस क्षण मिसेज ने तीव्र दृष्टि से देखा, और सहसा गुस्से से फूट पड़ी। गुस्से से और नफरत से चीखने लगी। क्यों चीखने लगी? मिसेज कपूर चीखती रही। द्वार बन्द थे, नौकर अपने कमरे में सो गया था। मिसेज कपूर बीमार ही होती गयी। कपूर नहीं लौटे। विकास बिस्तरे पर झुका खड़ा रहा। कब तक खड़ा रहा?

मिसेज कपूर की आँखों के आगे पतझड़ की एक अन्तहीन शाम और गुलाब की कँटीली झाड़ियाँ फैली थीं और उसकी छाया में हिलती-डुलती एक आकृति मिसेज कपूर को अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से घूर रही थी...। ●

माँ भगवान है, बस!

नारी-प्रेम के लिये भटकना एक तृष्णा मात्र है—मृग-तृष्णा! स्त्री-प्रेम के अलावा और भी प्रेम हैं—जैसे भाई-बहन का प्रेम, भाई-भाई का प्रेम, मित्र-प्रेम, पिता-पुत्र, पिता-पुत्री प्रेम और इन सबसे ऊपर है माता का प्रेम जो सबसे पवित्र, और निष्कपट, स्वच्छ, निर्मल व आवरणीय है।

माँ का प्यार ईश्वर के प्रति प्रेम है। कौन कहता है कि ईश्वर अदृश्य है? यदि ईश्वर कोई शक्ति है तो वह माँ है जो जन्म देती है, जो सृजन करती है, जो पोषण करती है। जो दृश्य है, वह सत्य है; अदृश्य में कोई शक्ति नहीं— केवल एक भुलावा है। मातृ-भक्ति ही ईश्वर-पूजन है—माँ भगवान है, बस!

—ऊषा मित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुँवरानी सरला जैन

●१९४८ ई० में मेरी प्रथम रचना प्रकाशित हुई थी। उस रचना के प्रकाशित होने से मुझे लिखने की बड़ी प्रेरणा मिली। इसके पश्चात मेरी रचनायें धर्मयुग, पराग, सारिका, ज्ञानोदय, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, आजकल, त्रिपथगा, सन्मार्ग आदि बहुत-से पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं। ५०० से लगभग लेख, कहानियाँ और ग़ज़लें प्रकाशित हो चुकी हैं।

●मैं साहित्य विशारद हूँ। आयु ३५ वर्ष है।

आत्म - परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हास्य का होना आवश्यक है। हमारे आयुर्वेद में हास्य के सम्बन्ध में लिखा है, 'हँसने से मस्तिष्क से लेकर हृदय तक की सभी नाड़ियाँ हिल जाती हैं और फुफ्फुस का विकास उथल-पुथल मचा कर निकल जाता है। शरीर शुद्ध हो जाता है और प्रत्येक रग अपना कार्य करने लगती है। चेतना शक्ति जागृत हो उठती है और चित्त प्रसन्न हो उठता है। यही नहीं, क्रोध और क्लेश हँसते ही न जाने कहाँ किनारा कर जाते हैं। हास्य से शारीरिक तथा मानसिक बल की वृद्धि होती है।'

हास्यप्रिय व्यक्ति का विपत्ति कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती है। यदि एक बार ऐसा व्यक्ति बीमार भी पड़ जाये तो बीमारी उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाती है और वह शीघ्र ही हँसते-हँसते स्वस्थ हो जाता है। हास्य मस्तिष्क-शक्ति को स्वस्थ रखने का अपूर्व वैज्ञानिक साधन है और इसका स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। सभी शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ इससे ताज़ी हो जातीं हैं। डाक्टर बी. नेकेफोडन का मत है—'जिस पुरुष को हास्य गुण प्राप्त है वह कारागार में भी दिव्य सुख की उपलब्धि महसूस करेगा।'

पुराने ज़माने में राज-दरबार में विदूषकों का होना इसलिए आवश्यक समझा जाता था कि वह अपने हास्य से तथा अनोखी सूझ-बूझ से दरबारियों को प्रसन्न रखे। यही कारण था कि दरबारी मानसिक प्रसन्नता के कारण स्वस्थ रहते थे।

हास्य से कभी-कभी बड़े-बड़े कलह भी मिट जाते हैं। इंगलैण्ड के एक प्रसिद्ध रईस का कथन है कि जिस दिन उन्हें प्रातः ही हँसी न आये वह दिन उनका बड़ा मनहूस गुजरता है। हालाँकि उनके घर की प्रेयसी का आनन्द और हास-विलास से भरी हुई वाक्य-पटुता ये सब ऐसे साधन हैं जिससे मनुष्य दिल खोल कर हँस सके। यदि फिर भी वह नहीं हँस पाता है तो उसके लिए इससे बढ़ कर क्या दुर्भाग्य होगा!

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए यह आवश्यक है कि मन के भीतर किसी प्रकार का शोक निवास न करता हो। जब तक शोक या चिन्ता मन के भीतर प्रवेश किये रहेंगे तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसका बल क्षीण होता रहेगा। यदि शरीर को पुष्ट रखना है तो मन को प्रसन्न रखिये।

फ्रांस के एक प्रसिद्ध डाक्टर का कथन है कि हास्य में पाचन की सबसे बड़ी औषधि है। जो दुर्बल मनुष्य चूरण-चटनी तथा सिरप पीते-पीते ऊब गये हैं, वे एक बार हास्य-रूपी औषधि का प्रयोग करें तो उनका रोग निस्सन्देह दूर हो जायगा। इससे उन्हें लाभ ही लाभ होगा, हानि कभी नहीं। यही विचार नैकस बिरहियुम का है कि दिल खोल कर हँसो। जिससे शरीर एक बार काँप उठे। यदि कोई महिला हँसे तो उसके गालों में गढ़े

एक बार मुस्कुरा कर तो देखिये!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ जाँय, कानों तक हल्की-सी सुर्खी आ जाय, ओंठ शुष्क हो जायें और हृदय की धड़कन कुछ अधिक तीव्र हो उठे। यही नहीं बल्कि आँखों के कोये में थोड़ा-सा पानी भी आ जाय। हँसने का आनन्द तो तब है।

स्टीवेंसन जैसे हास्य रस के प्रधान विशेषज्ञ का मत है कि मनुष्य जाग्रत अवस्था में तो हँसते ही हैं, उन्हें स्वप्न की अवस्था में भी हँसना चाहिए। कभी-कभी तो स्वप्न में हास्य इतना प्रबल हो उठता है कि सोता हुआ मनुष्य खिलखिला कर हँस उठता है।

कुछ आकर्षक महिलाएँ हँसने में संकोच करती हैं यानी वे हँसी के वेग को एकदम रोक लेती हैं, इससे उन्हें हानि होती है। हँसी तो मानसिक प्रसन्नता का उद्गार है। यदि वह फूट कर बाहर नहीं निकलती, या अदब से अथवा दबाव पड़ने से वह भरपूर नहीं हँस पाती तो उन्हें दिल की शिकायतें होती हैं। कभी तो इससे उनकी हृदय की गति भी बन्द हो जाती है। अधिक प्रसन्नता होने पर उसे सहन न करने पर भी प्राणान्त हो सकता है। क्योंकि प्रसन्नता के उद्गारों से हृदय पूरी तरह से साफ़ नहीं हो पाता। हृदय के उद्गारों का बाहर आना प्राणीमात्र के लिए बड़ा आवश्यक है। बहुत से व्यक्तियों को राजयक्ष्मा इसलिए होती है कि वह अपने अन्दर हँसी के स्थान पर दुःख को सँजो कर रखते हैं। यदि वह दुख खूब रो-रोकर बाहर निकाल दिया जाय तो उनका हृदय शान्त हो सकता है। फिर किसी प्रकार की हानि का डर नहीं रहता। इस सम्बन्ध में ऐला व्हीलर विलकॉक का कथन है—'हँसो, तो देखोगे कि विश्व तुम्हारे साथ हँसता है, रोओ तो तुम देखोगे तुम अकेले बैठ कर रोते हो।'

बहुत-से व्यक्तियों का ऐसा कथन है कि खाना खाते समय कभी नहीं हँसना चाहिए लेकिन समझ में नहीं आता कि उनकी बात में कहाँ तक सचाई है। अक्सर देखने में आता है कि भोजन के समय मुस्कुराने से भोजन करने में विशेष आनन्द आता है। यानी कुछ अधिक ही खा जाता है। यह आवश्यक ही है कि वह हँसी ऐसी होनी चाहिए कि जिसका मन पर बुरा प्रभाव न पड़े। किसी प्रकार के पाप का भाव भी मन में न घुस पाये। हमारे हिन्दू-शास्त्र भी भोजन में हास्य को हानिकारक नहीं समझते हैं।

एक अंग्रेज ग्रन्थकार का कहना है कि बुराई की बाढ़ को रोकने के लिए विवेक-बुद्धि और कानून दो दीवारें हैं और तीसरी दीवार है हास्य। यह उन छोटी बुराइयों को रोकती है और दूर करती है जो रक्षकों की आँख बचा कर पहली दोनों दीवारों के बीच घुस जाती हैं।

हमारे बहुत-से विद्वान हास्य को अशिष्टता और मूर्खता में सम्मिलित करते हैं यही कारण है कि उन लोगों के स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरते होते जा रहे हैं और क्यों न हों, हास्य में जीवन शक्ति है। हास्य के जीवन में प्रवेश किए बिना आदमी का जीवन बिल्कुल नीरस है, वह एक नर-पशु के समान है।

वरजीनिया वुल्फ से किसी ने पूछा कि आपके नाम का अर्थ क्या है तो उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया : 'पहले शब्द से मैं रचनात्मक साहित्यकार हूँ और दूसरे से आलोचक।'

—सुनीति गुप्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरफ़ाना शरद ●

आत्म - परिचय

● परिचय कुछ यों है--पैदाइश लखनऊ की है और अब तक तालीम हासिल की है शाजापुर (मालवा) में जहाँ मेरे वालिद सा. श्री अख़्तर उज्ज़माँ सिद्दीक़ी हिकमत करते हैं।

● बचपन में अपनी कक्षा में प्रथम रहती थी लिहाज़ा वालिद सा. ने दादी के पास लखनऊ भेज दिया कि आलातालीम हासिल कर सकूँ। दादी का प्यार कुछ इस रूप में उभरा कि जब ऐन पार्टीशन के दिनों में कुनबे के कुछ सदस्य पाकिस्तान जाने लगे तो हमें उनके साथ उस नए मुल्क रवाना कर दिया--बिना वालिद सा. को सूचित किए। वहाँ परमिट सिस्टम शुरू हो गया। अब हालत यह कि कभी लाहौर, कभी रावलपिंडी तो कभी कराँची। बमुश्किल तमाम दो-ढाई साल में शाजापुर पहुंचे और भारतीय नागरिकता प्राप्त की।

● इसके बाद तो बुरी तरह अधूरी पढ़ाई के पीछे पड़ गई। फिर कहानियाँ लिखनी शुरू कीं। रेडियो से ब्राडकास्ट हुईं। इसके लिए इन्दौर केन्द्र पर जाना होता था।

● फिर दैनिक 'नई दुनिया' (इन्दौर) में लगभग साल भर तक साप्ताहिक कॉलम लिखती रही। शरद (जोशी) भी उन दिनों 'नई दुनिया' में थे। इनसे मिलने और इन्हें समझने का मौक़ा मिला। धीरे-धीरे हमलोग इस नतीजे पर पहुँचे कि अगर हम साथ रहें तो ज़्यादा बेहतर ज़िन्दगी गुज़ार सकेंगे बजाय इसके कि कहीं अलग-अलग जगह हमारी शादी हो।

● तो साहब, बड़ी कठिनाइयों और विरोधों से जूझ कर ९ 'मई '५८ को हमने शादी कर ही डाली।

● अब हालत ये है कि तिनका-तिनका जोड़ कर गृहस्थी तो जुटा ली है। मगर गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ और स्कूल की नौकरी ज़रा मोहलत नहीं देतीं। साल में एक-आध कहानी लिख पाती हूँ।

● बचपन में लिखी बच्चों की कहानियों का एक संकलन प्रकाशित हो रहा है। आज-कल बी. ए. की तैयारी में हूँ।

परिवार में बँधी लेखिका का अलबम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● मैं एक छोटी-सी बच्ची की माँ हूँ।

मैं एक लेखक की पत्नी हूँ।

मैं स्वयं लेखिका हूँ।

ऊपर लिखे तीनों वाक्य एक ब्रैकेट में डाल दीजिए तो मेरा परिचय हो जायेगा। मैं लेखिका हूँ यह वाक्य आख़िर में है। और यह साधारण जानकारी है कि मैं लेखिका हूँ। हूँ नहीं पर थी और शायद हो जाऊँ। आज-कल तो मेरे हाथों को बेलन, कप-प्लेट, खाने की थाली और सूई-धागे ने व्यस्त कर रखा है। क़लम नहीं है पास। टाइपरायटर के बजाय सीने की मशीन चलाती हूँ। (टाइपरायटर की बात सोच कर हँसी आती है।)

अच्छी बात नहीं है यह। मुझे लिखना चाहिये। ये भी कहते हैं, बल्कि नाराज़ होते हैं। मुझ पर असर नहीं होता सो हँस देती हूँ। शरद ने लेखिका इरफ़ाना सिद्दीक़ी से शादी की और मैं हो गई श्रीमती शरद जोशी। पाँच-छः माह में एकाध रचना लिखती हूँ। उसे पढ़ कर ख़ुद इनफ़ीरिओरिटी अनुभव करती हूँ। शरद पसन्द करते हैं राकेश, यादव, परसाई, अश्क और जाने कितने। लेखिकाओं में मन्नो, अस्मत वग़ैरा। इनकी भाषा, अभिव्यक्ति, कला की नफ़ासत की तुलना में मैं कहाँ हूँ। ख़ुद शरद की स्पीड और भाषा के सामने मुझे हीनता लगती है। ऐसी बात शादी के पहिले नहीं थी, अब है। फिर कभी ख़ुद शरद की कहानी संपादक के पास से वापस लौट आती है तो अपनी रचना पोस्ट करने में डर लगता है। कोई एकाएक पूछे तो यही वजहें बता पाऊँ। पर नहीं, वजहें इससे गहरी हैं और कई हैं। लिखना सरल है, अच्छा लिखना मुश्किल है।

इज़्ज़त और है नुमाइश कुछ और चीज़!

छोड़िये इन बातों को। देखिये यह अलबम!

यह फ़ोटो पाकिस्तान से आने के बाद पासपोर्ट से उखाड़ कर चिपका दिया गया है। तब कितनी मोटी थी ना मैं!

पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ कर लगता था इन सबसे अच्छी कहानी मैं लिख सकती हूँ। नाटक देख कर लगता था इन सबसे अच्छा अभिनय मैं कर सकती हूँ और खेलने में कोई लड़की मेरी बराबरी क्या करेगी। जाने क्या-क्या बातें और कितना जोश। पाकिस्तान से आयी थी तब हिन्दी नहीं जानती थी। वह भी सीख ली। इन्तिहा यह कि हिन्दी में कहानियाँ और लेख लिखने लगी। तारीफ़ें होतीं, मनीआर्डर आते, पत्र आते जिनसे आगे की राहें उजली नज़र आतीं। रेडियो पर सुनाने का उत्साह, कॉलम लिखने में स्फूर्ति सब कुछ था। मगर हाय रे इश्क़! निकम्मा करके रख दिया। भाषा की सारी नज़ाक़त ख़तों में लुट गयी। शरद के लिए स्वेटर बुन देना उनके अख़बार में लिख कर देने से बेहतर लगने लगा। डूब हुई जो शायरी न करने लगी। प्रोज़ हो प्रोज़ में मोहब्बत चलती रही। तसल्ली ये कि ये हज़रत भी निकम्मे हो गए। नौकरी की वजह से लिखते थे, दिल कहीं और दौड़ता था। बक़ौल अकबर दोनों के हाल खराब—

इश्क़ नाज़ुक मिज़ाज है बेहद,
अक़्ल का बोझ उठा नहीं सकता।

फिर यह दूसरी तस्वीर जो इन्होंने खींची थी। लेखिका लगती हूँ ना इसमें!

मगर सच, कुछ नहीं लिखती थी। ड्रामों में काम करने का चाव हो गया। बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल नया परिवार था यह। अंदर की लहर और थी बाहर के एक्शन दूसरे। फिर जब राज़ेइश्क़ खुला और शादी की बात चली तो हज़ार मुसीबतें खड़ी हो गयीं। एक सिरे से सब नाराज़। शरद अपनी किताबें-काग़ज़ात समेट कर घर से निकल गए, मुझे अपने घर में गिरफ्तार-सा कर दिया गया। कहानी क्या ख़ाक लिखती, ख़ुद फ़साना बन गयी। प्रेमपत्र लिखने की मुमानियत। विरह में सूख कर काँटा। जो किताबों में पढ़ा था ख़ुद भुगत के देखा। न एक कॉलेज में पढ़ते थे कि चुपके से मिल जाएँ और न एक शहर में रहते थे। विरह असली था।

उस दिन शरद और उनके चुनींदाँ दोस्तों का कारवाँ आ गया और मैं घर छोड़ निकल गयी। छः मास में तस्वीर बदल गयी थी। सबने मुँह बिचकाया--"इस मरियल और बदशक्ल से शादी करने के लिए पगला रहे थे!" पर सपने और इरादे तो बेइंतिहा थे। हमारी शादी दो ख़्वाबों की शादी ही तो थी।

यह तीसरी तस्वीर शादी के बाद की।

फ़िक्र यह नहीं कि ख़ुद के लिखने का क्या होगा। फ़िक्र यह कि शरद का लिखना शुरू हो जाए। दोस्त लोग कवियों के अन्दाज़ में कहते—"भाभी आप इन्हें प्रेरणा नहीं देतीं।" मैं एक सफल गृहस्थिन बनना चाह रही थी। शरद घर से ख़ाली हाथ निकले थे और मैं भी खाली हाथ बाहर आयी थी। मुझे खाना बनाना भी नहीं आता था। शरद मेरे किचन को लेबोरेटरी कहते। रोटी बनाने और सब्ज़ी में स्वाद लाने के रोज़मर्रा प्रयोग चलते। न अच्छी-सी बैठक, न ठीक-सा कुछ और दोस्तों का ताँता मेरी कुशलता के इम्तहान लेने आ जाता। परिवार, जाति वग़ैरह में विरोध, मगर उनकी ज़रा परवाह नहीं की और चुनौती ले ली सब कुछ ठीक करके रहूँगी। शरद क़र्ज़ से लदे थे मगर मुझे कॉलेज भेजते थे। मैंने छोड़ दिया और अध्यापन करने लगी। धीरे-धीरे सब ठीक होने लगा। शरद जो होली-दीवाली लिखते थे, बराबर लिखने की सोचने लगे। मैं सिर्फ़ व्यवस्था कर सकती हूँ, प्रेरणा कैसे दी जाती है मुझे पता नहीं।

इसी बीच दो मज़ेदार अनुभव हुए।

बच्चों के लिए लिखी अपनी कुछ कहानियों की पांडुलिपि दिल्ली के एक प्रकाशक महोदय को भेजी। जवाब आया परामर्शदाता महोदय बाहर गए हैं, आने पर निर्णय होगा। छः माह बाद फिर पत्र लिखा—फिर वही जवाब। बाद में जवाब आना भी बन्द। दो साल हो गए वे पांडुलिपि नहीं लौटाते। शायद छाप कर बेच दी। तय कर लिया है जब दिल्ली जाएँगे एक डंडा हाथ में लेकर जाएँगे।

इतनी सब मुसीबतों में रेडियो के कांट्रेक्ट जैसे-तैसे निभ जाते थे। पाँच-छः सालों का अनुभव रेडियो के काबिल रचना बनवा देता था। ये तो रेडियो के सख़्त ख़िलाफ़ हैं पर मेरा झुकाव समझते थे। एक दिन मेरी रचना प्रसारित हुई तो नए आये एक प्रोड्यूसर महोदय ने शरद को उसके लिए बधाई दी। शरद ने कहा बधाई इरफ़ाना को दो। वे बोले हम सब समझते हैं कौन किसके नाम से लिखता है। इन्हें बहुत चुभी यह बदतमीज़ी, मैंने भी सोचा। मैं जब लिखूँगी लोग उसे शरद का लिखा सम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झेंगे। महिला लेखिकाओं के बारे में अक्सर यही सुनने में आता है कि उनके नाम से दूसरा लिखता है। ख़ैर रेडियो पर लिखना भी बन्द कर दिया। अब नहीं लिखती।

शादी के पहले और बाद साहित्य सम्बन्धी नज़रिये में बहुत फ़र्क आ गया है। सिर्फ़ लिखना ही मक़सद नहीं होता। मक़सद है अच्छा लिखना, जिसमें अपना अलग रंग-रूप और शैली झलके। जिसमें सामाजिक सच्चाइयाँ उभर कर आएँ। पारिवारिक घेरे ने मुझे जैसे सामाजिक जीवन से दूर कर दिया। सिर्फ़ अपने आस-पास से परिचित हूँ और उसे लिख देने की कला नहीं आती। फिर छात्रा जीवन के लेखन का जो आदर्शवादी ढर्रा था, उससे मन उचट चुका है। नया साहित्य दूसरी तरह का है। किसी अख़बार या पत्रिका में जगह घेर कर बैठना साहित्य-सेवा नहीं होती। यही सोच कर सिर्फ़ पढ़ती रहती हूँ। धीरे-धीरे कोई रास्ता निकाल कर रहूँगी। शरद कहते हैं अगर लेखिका बनना है तो इस्मत चुग़ताई जैसी 'पत्थर फेंक पर्सनलिटी' बनो। कोशिश करती हूँ, पत्थर तो हाथ में आ जाता है, निशाना किसे बनाऊँ? पहला निशाना शरद को बनाऊँगी। इनके प्रभाव से उबरना होगा तब मेरी रचना बनेगी। या अच्छे लेखक से शादी करने की सज़ा मुझे भुगतनी होगी।

और यह तस्वीर है मेरी बिटिया रानी की।

बमुश्किल तमाम उसे सुला पाती हूँ और लिखने बैठती हूँ कि आठ-दस लाइनें लिखने के बाद वह जाग जाती है। खेलने दूँ और लिखती रहूँ तो थोड़ी देर बाद वह सारे घर में चीज़ें इधर-उधर कर देगी। साबुन बाल्टी में डाला, मिट्टी का तेल बहा, कोयले में हाथ साने, बन्द रेडियो शुरू कर दिया, कुशन खींच कर डाल दिये, गुड़िया गैलरी से फेंक दी और चाकू हाथ में ले सब्ज़ी काटने के मूड में आ गयी। कभी चंचलता कम हो जाती है तो भी मैं लिख नहीं सकती। डर लगता है कहीं बीमार नहीं हो गयी हो। फिर उसके साथ जो आनन्द आता है वह और कहीं नहीं। यश न मिले चाहे।

लोग भूल चुके कि मैं लिखती थी। अब जब पाठशाला में जाऊँगी, पहली क्लास में दाखला मिलेगा। ठीक रहेगा। अभी तक मैंने एक भी तो अच्छी रचना नहीं लिखी। अटक-अटक कर चलना भी कोई चलना है।

क्या चला मैं जो रहे शौक़ में रुक-रुक के चला
लुत्फ़ चलने का तो जब है, हवा बन जाऊं

अलबम में आगे हर पोज़ बानी का है।

प्रेम

हमने प्रेम का सब कुछ पढ़ा...एक-एक मात्रा, एक-एक अक्षर...फिर शब्द, फिर अध्याय और अन्त में उसकी सबसे महान पुस्तक। तब, एकाएक सारी अभिव्यक्ति चुक गई और हम दोनों की आँखों में एक मौन अजानेपन का भाव छा गया, जैसे हम कुछ भी नहीं जानते, कुछ भी नहीं समझते। यह अजानापन, बचपन से भी अधिक पावन और ख़ूबसूरत था। फिर हम दोनों ने इसे व्याख्यायित करने की हज़ार कोशिशें कीं—उन दो बच्चों की तरह, जो दोनों एक दूसरे को समझा रहे हों: 'तुम नहीं समझते, तुम नहीं जानते...तुम...'

—एमिली डिकिन्सन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० गार्गी गुप्त

आत्म-परिचय

● जन्म २ अक्तूबर, १९२९ में उत्तर प्रदेश के एक मध्यवित्त परिवार में हुआ।

● अमेरिका के कोलम्बिया-विश्वविद्यालय से पत्रकारिता में 'मास्टर' की उपाधि प्राप्त की। राम-काव्य-विषयक एक शोध-प्रबन्ध पर दिल्ली-विश्व-विद्यालय ने पी० एच-डी० की उपाधि प्रदान की। प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं—पत्रकारिता और अध्यापन। गत वर्ष तक भारत सरकार के प्रकाशन-विभाग में नियुक्त थी। तदुपरान्त दिल्ली-विश्वविद्यालय में अनुवाद का स्नातकोत्तर डिप्लोमा-पाठ्यक्रम आरम्भ होने पर वहाँ अध्यापिका का पद स्वीकार कर लिया।

● रूढ़िवाद और आडम्बर के प्रति तीव्र विद्रोह; और यह विद्रोह मात्र विद्रोह के लिए न होकर 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के आदर्श से अनुप्राणित है। एक ऐसे सबल-सुष्ठ मानव-समाज की कामना करती हूँ, जिसमें न तो आदर्श मानव-स्वभाव की उपेक्षा करें और न ही मानव-स्वभाव आदर्श को पशुता के पाँवों-तले कुचले। समन्वय, हितकारी समन्वय, मेरा अभीष्ट है और मेरा प्रयास रहता है कि मेरे लेखन में भी यह तत्व स्पष्ट परिलक्षित होता रहे। प्रस्तुत लेख में भी मैं जिस प्रतिध्वनि की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ, वह वस्तुतः प्रत्येक हिन्दी-भाषी के, बल्कि प्रत्येक मानव के, अपने अन्तर की सुषुप्त परन्तु सनातन ध्वनि है।

यह प्रतिध्वनि भी सुनो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● 'निराला जी हमें छोड़ गये। एक महाकवि उठ गया।...'

आज जो चारों ओर हाहाकार-सा मचा हुआ है, वह क्या शत-प्रति-शत वास्तविक है, या कि इस प्रकार हम अपने चेहरे के दाग़ छिपा रहे हैं? निराला जी अकस्मात् नहीं गये। कई वर्ष पहले से उन्होंने जाने की तैयारी शुरू कर दी थी और हम सबको इसका पता था; पर उन्हें रोकने के लिए हमने किया क्या? निराला जी की मूक पीड़ा हमने नहीं समझी, या यों कहें कि समझ कर भी दृष्टि फेर ली। आह, उनकी आन्तरिक पीड़ा ने उन्हें कैसा बना दिया था!

सन् १९५८ की बात है। मैं राम-काव्य पर अपना शोध-प्रबन्ध तैयार कर रही थी। तभी एक दिन एक मित्र ने बताया कि निराला जी राम-कथा पर एक महाकाव्य की रचना कर रहे हैं और यदि सम्भव हो, तो मैं जाकर उनसे मिल लूँ। बात मन में बैठ गयी। यों भी, उस महाकवि के दर्शन की साध बहुत दिनों से थी। सो, बहाना मिलते ही उनके दर्शनार्थ प्रयाग पहुँच गयी।

प्रयाग में मैं अपने एक मुसलमान मित्र के घर ठहरी। पर जब उन्हें मेरे आने का उद्देश्य मालूम हुआ, तो मानो उन्हें सहसा विश्वास नहीं हुआ; वे बोले--"निराला से मिलोगी--उस पागल से? नहीं-नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। तुम्हारे होश दुरुस्त नहीं हैं।"

मैंने यह अवश्य सुना था कि निराला जी इधर कुछ अस्वस्थ रहते हैं, परन्तु उनकी वास्तविक स्थिति का मुझे कोई ज्ञान न था। अतः उन मित्र की बात सुनकर मुझे बहुत बुरा लगा। आख़िर हार मान कर वह भी मेरे साथ चल पड़े। दारागंज की एक तंग-सी गली के अन्दर निराला जी का निवास-स्थान था। कमरे का द्वार बन्द था और अन्दर एक भीमकाय व्यक्ति कुछ कदमी कर रहा था। बाहर से ही मैंने अनुमान लगा लिया कि हो-न-हो, यही निराला जी हैं। प्रसन्नता के आवेग में हाथ-पैर काँपने लगे। तभी मेरे मित्र ने कमरे के अन्दर प्रविष्ट होते-होते मुझ पर एक आक्रोश-भरी दृष्टि डाली और फिर निराला जी की ओर बढ़ कर कहा--"आदाब अर्ज़ है।"

निराला जी ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनके अभिवादन का उत्तर दिया; फिर मेरी ओर घूम कर एक प्रश्नभरी दृष्टि मेरे मित्र पर डाली।

उन्होंने अपने मनोभावों को अत्यन्त संयत करके मेरा परिचय दिया--"मेरे मित्र की पत्नी हैं, दिल्ली से आपसे मिलने आयी हैं। कुछ पूछना चाहती हैं।" मैं भक्ति-विह्वल होकर उन्हें पुनः प्रणाम किया।

निराला जी ने सहज भाव से मेरा अभिवादन स्वीकार किया, फिर पूछा--"कहिए, कैसे आना हुआ?"

मैंने कहा--"निराला जी, मुझे..." इसके पूर्व कि मैं अपनी बात पूरी कर सकूँ, वह क्रुद्ध स्वर में बोल उठे--"क्या आप निराला से मिलने आयी हो? वह तो बलिया गया है। उससे तुम नहीं मिल सकती। उसे तो बलिया गये आठ दिन हो गये। पता नहीं, कब लौटेगा। नहीं, उससे तुम्हारी मुलाकात नहीं हो सकती।"

"मैं सकते में आ गयी, सोचने लगी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया भारत के इस महान् कवि को ? अभी-अभी तो इतनी प्रसन्नतापूर्वक बातें कर रहे थे। क्षण भर में ही क्या हो गया ?" मेरी आहत दृष्टि अपने-आप मित्र महोदय के चेहरे पर चली गयी। वह आँखों-ही-आँखों में चुनौती दे रहे थे--"देखा ? मैंने क्या कहा था ? देख लिया न अपने महान् कवि को अपनी आँखों से ?"

मैं अभी सम्भल भी न पायी थी कि निराला जी उन मित्र की तरफ मुड़े और अंग्रेजी में बोले--"हाँ साहब, आप रहते कहा हैं ?...अच्छा, आनन्द-भवन के पास। देखिए भला, आप ही देखिए, यह जवाहरलाल कल इलाहाबाद आया था। मैंने उसे 'डिनर' पर बुलाया, पर नहीं आया। ज़रा उसकी हिम्मत देखिए, इलाहाबाद आया और बिना मुझसे मिले चला गया। बड़ा गुस्ताख हो गया है वह। आनन्द-भवन में दुनिया भर को बुलाता है और मेरा नाम भी नहीं लेता।..."

इसी तरह लगभग पाँच मिनट तक वह नेहरूजी को लेकर न-जाने क्या-क्या कहते रहे। इस बीच मैंने ग़ौर किया, जिस छोटी-सी कोठरी में हम खड़े थे, वह काफी अन्धेरी-सी थी। एक तरफ एक चौकी पड़ी हुई थी, जिस पर एक अधमैली-सी चादर बिछी थी। निराला जी स्वयं एक मैली बनियाइन और कच्छा पहने थे।

उनकी यह हालत देख कर मेरा मन रो उठा। पर तभी वह मेरी ओर मुड़े और बोले--"हाँ, तो तुम मुझसे मिलने आयी हो! कहो, क्या पूछना-जानना चाहती हो !"

मैं फिर आशान्वित हो उठी, बोली--"आपके दर्शन की साध बहुत दिनों से थी। यह मेरे जीवन का अत्यन्त पुनीत क्षण है।" हर्षावेग से मेरा कण्ठ रुद्ध हुआ जा रहा था, फिर भी मैंने प्रयत्नपूर्वक अपनी बात जारी रखी--"मुझे पता चला है कि आपने राम-सम्बन्धी किसी महाकाव्य की रचना की है। मैं उसे पढ़ना चाहती हूँ।" वह मेरे और पास आ गये तथा स्नेहपूर्वक मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगे। इसी बीच मैंने कुछ और कहना चाहा--"निराला जी, आप..." और उन्हें मानो करेण्ट मार गया; वह लगभग चिल्ला उठे--"अभी तो कहा था कि निराला बलिया गया है। तुम्हारा महाकवि बलिया गया है। उस महाकाव्य को तुम नहीं देख सकती। निराला बलिया गया है, वह यहाँ नहीं है। जाओ, चली जाओ।"

मेरा मन मुरझा गया। आँखों में आँसू भर आये और हाथ-पैरों की चेतना जैसे लुप्त हो गयी।

मेरे मित्र मुझे बाहर ले आये, लगभग खींचते हुए-से। मैं न जाने कहाँ खो गयी थी। कई दिनों तक उनका वही चित्र मेरे मानस-पट पर घूमता रहा। मैं सोचती रही--"निराला जी इतने दुःखी क्यों हैं ? उन्हें 'निराला' नाम से इतनी चिढ़ क्यों है ?"

उस समय तो मेरी समझ में कुछ न आया, पर बाद में सब-कुछ दोपहर दिन की भाँति स्पष्ट हो गया। मेरे एक अन्य कथाकार मित्र से उन्होंने स्पष्टतः कहा--"मैं हिन्दी का कवि नहीं हूँ। हिन्दी वालों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो अंग्रेजी का कवि हूँ। अंग्रेज़ी में ही मैं बोलता हूँ, सोचता हूँ, लिखता हूँ। मैं तुम्हारे जवाहरलाल से अच्छी अंग्रेज़ी लिख और बोल सकता हूँ। मुझे हिन्दी नहीं आती, फिर मैं हिन्दी का कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे हो सकता हूँ ?"

वह अपने स्नेहियों से जिस स्नेह की अपेक्षा करते थे, वह उन्हें नहीं मिला। फिर, वह विक्षिप्त न होते, तो क्या होते ? वह सच्चे अर्थों में कवि थे—हार्दिकता ही उनकी पूँजी थी, वैभव था। दाँव-पेंच से उन्हें घृणा थी, इसीलिए हार्दिकता का अभाव देख कर उन्होंने हिन्दी वालों से मुँह फेर लिया—हमारी कृत्रिमता ने उन्हें हमसे दूर हटा दिया।

अपनी मृत्यु से कुछ महीने पहले निराला जी ने श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' से कहा था—"अब मैं केवल मौत चाहता हूँ ; पर यमराज को मेरे पास आते भय लगता है। अब किसलिए जिऊँ ? कोई इच्छा बाकी नहीं रही। मैंने सब-कुछ देख-सुन लिया।" 'सनेही' जी ने इस बातचीत के बाद स्वभावतः विचलित होकर हिन्दी के बहुत सारे महारथियों से अनुरोध किया कि वे निराला जी की ओर ध्यान दें। उन्होंने कहा कि अगर हिन्दी वाले उनके पास जाकर स्नेह-पूर्वक दो क्षण बातें ही करें, तो वह अपने को उपेक्षित न समझें—उन्हें लगे कि वह उपेक्षित नहीं हैं ; एक-एक हिन्दी वाला उनका अपना है। और तब, सम्भव है कि निराला जी को नवजीवन प्राप्त हो जाय। पर सबने समय तक की कमी बतायी—उन लोगों ने भी समयाभाव का रोना रोकर निराला जी के पास जाने से मुक्ति पा ली, जिन्हें मिट्टी के लोंदे से मूर्ति का रूप स्वयं निराला जी ने दिया था।

अब निराला जी चले गये, तो चारों ओर चर्चा हो रही है ; छात्रवृत्तियों और स्मारकों की बात हो रही है। कितनी बड़ी विडम्बना है ! अभी कल राष्ट्रपति-भवन में निराला जी की जयन्ती मनायी गयी। उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् ने निराला जी के चित्र का अनावरण किया, उन्हें महान् कवि कहा। श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने उन्हें कबीर के समकक्ष स्थान दिया। 'दिनकर' जी ने भी उनकी महानता स्वीकार कर उनकी पीड़ा को व्यष्टि की पीड़ा न मान कर समष्टि की पीड़ा माना और गाँधी जी के निधन के सन्दर्भ में मौलाना आजाद की एक उक्ति का उल्लेख करते हुए कहा कि जिस प्रकार मौलाना को लगा कि कहीं गाँधी जी के खून के छींटे उनके हाथ पर भी तो नहीं पड़े हैं, उसी प्रकार कहीं निराला जी की मृत्यु की जिम्मेदारी हमलोगों पर ही तो नहीं है।

वस्तुतः इसमें सन्देह की बहुत कम गुंजायश है। जाने या अनजाने हम सबने निराला जी की मृत्यु को समय से पूर्व ही बुलाया है। इसीलिए हम सबका मन शंकित है। हमारी कर्त्तव्यहीनता हमारे हृदय को कचोट रही है। बड़े-छोटे, नये-पुराने, सबको निराला जी की आत्मा पुनः प्रक्षालन के लिए प्रेरित कर रही है। तभी कवि 'राही' की ये पंक्तियाँ भी इसी ओर इंगित करती हैं :

किन्तु झर गया है गुलाब तो सभी भेंट लाये,
लो, यह ताज़ी हवा और यह धूप और पानी है,
बीन रहे हैं खोज-खोज कर धूलिमग्न पँखुरियाँ,
सच है हम बेहद उदार, दुनिया बहुत दानी है।

कुछ लोग कहते हैं कि निराला जी की मृत्यु अर्थाभाव के कारण हुई। पर ऐसा कहने से पहले हमें निराला जी की दान और त्याग की भावना को नहीं भूल जाना चाहिए। निराला जी यदि चाहते, तो किसी भी बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्यकार से अधिक श्री-सम्पन्न बन सकते थे। क्या उनमें प्रतिभा की कमी थी? या कि उनकी रचनाओं के प्रेमी पाठक नहीं थे? वास्तव में, उनकी जीवन-बेल हमारे स्नेह-रस के बिना मुरझा गयी, जल गयी; अन्यथा निश्चय ही हिन्दी ने भारत को दूसरा रवीन्द्रनाथ दिया होता।

आज भी निराला जी को लेकर जो आर्तनाद सुनायी पड़ रहा है, वह कितना हृदय-प्रेरित है, नहीं कहा जा सकता। कभी-कभी शंका होती है कि कहीं देवराज 'दिनेश' की यह पंक्ति बहुत सत्य तो नहीं है:

लेकर उसका नाम चली है,
दुनिया अपना काम बनाने।

ईश्वर करे, यह पंक्ति सच न हो--यही 'दिनेश' जी की भी कामना होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। हमने एक निराला खो दिया है, पर यदि हम इससे भी कोई सबक ले सकें, तो यह स्वयं हमारे हित में होगा। अन्यथा, हम हिन्दी के कितने ही वरद् पुत्रों को खो देंगे और हमारी कंगाली स्थायी बन जाएगी--हम साधारण मनुष्य कहलाने के योग्य भी नहीं रह जाएँगे, कला के उपासक की तो बात दूर। इस प्रसंग में मैं राहुल जी की ओर संकेत करना चाहूँगी, जिनकी दशा दिन-दिन चिन्तनीय होती जा रही है। उन्हें भी हमसे अब तक एक सीमा तक उपेक्षा ही मिली है। पर अब इसका अन्त होना ही चाहिए--हमें अपनी विमूढ़ता त्यागनी ही चाहिए। निराला जी की आत्मा द्वारा अभिप्रेरित यह प्रतिध्वनि हर क्षण हमें चेतावनी दे रही है--"निराला को ही हिन्दी-जगत् की मूढ़ उपेक्षा की अन्तिम बलि सिद्ध करो। अब और कोई नहीं....अब और कोई नहीं।....." ● ●

कोई है, जो...

● मैंने सदा से दया का विरोध किया है, दुःख का नहीं। एक बार जब एक औरत ने मुझे 'बेचारी लड़की' कहा तो मैं खुद अपनी ही दृष्टि में अपराधी महसूस करने लगी थी। मैं सब कुछ के प्रति इतनी उदासीन रहती हूँ। घर में कम से कम जगह मुझे चाहिए। एक कमरा, एक छोटा-सा लैम्प, एक किताब और मेरा प्यारा जिरेनियम का फूल--अकेला जिरेनियम का फूल। मैं कभी नहीं बोलती जब तक कि मुझे पुकारा न जाय। और उसके बाद भी मेरी आवाज़ कितनी ठण्डी, धीमी और क्षण-स्थायी होती है! और सच कहूँ, अब तक यदि मैंने यह जान न लिया होता कि 'कोई है, जो मुझ से दूर जा रहा है', तो हमेशा की तरह मैं यही सोचती रहती कि 'कितनी उपेक्षित, अजानित मैं मरूँगी!'

--एमिली डिकिन्सन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता बनर्जी

●

आत्म - परिचय

गंगा, जमुना और सरस्वती के मेल से जहाँ त्रिवेणी संगम की सृष्टि हुई है, उसी तीर्थराज प्रयाग में मेरा जन्म हुआ। मेरा बचपन जबलपुर में बीता जहाँ मेरे पिता स्वर्गीय प्रबोधचन्द्र चटर्जी वकालत करते थे।

बचपन के वे सुनहरे दिन माता-पिता, भाई-बहन और सहेलियों के बीच सपने-से बीत गये। छात्रावस्था में नृत्य, गीत, अभिनय तथा खेल-कूद में मुझे बहुत उत्साह था।

६ फरवरी, १९४६ के दिन मेरी शादी हुई। पति श्री सुरंजन बनर्जी बर्दवान में सरकारी अफ़सर हैं। यहाँ बर्दवान में ही मैंने आई० ए० और बी० ए० परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। फिर एक मित्र के कहने पर राष्ट्रभाषा की 'कोविद' परीक्षा उत्तीर्ण की।

हिन्दी साहित्य में मेरा प्रवेश अचानक हुआ। माननीय अशोक मित्र आई० सी० एस० एक नामी आर्ट-क्रिटिक हैं; उन्हीं की 'पश्चिम यूरोप की चित्रकला' पुस्तक का मैंने सबसे पहले हिन्दी में अनुवाद किया। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने अन्य कई बंगला उपन्यासों का भी हिन्दी में अनुवाद किया जिनमें से प्रमुख हैं—रमापद चौधरी का 'विष्णुपुर की नूरजहाँ', प्रतिभा राय का 'मन-मयूर', महाश्वेता भट्टाचार्य के 'जमुना के तीर' तथा 'नटी' और राय का 'पुनरावृत्ति'।

मेरी मातृभाषा बंगला होते हुए भी हिन्दी साहित्य की सेवा ही जीवन का व्रत है।

न या दे व दा स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●●शरतचन्द्र के देवदास के नाम से नहीं, बल्कि नीना के पति देवदास के नाम से एक अजीब ख़त आया है। नीना उसी को पढ़ रही थी—

"देवदा,
मेरे बच्चे के लिए एक प्यारा नाम भेजो।
—पारू"

नीना की आँखें 'पारू' इन दो अक्षरों में ही अटकी रहीं। एक पंक्ति का ख़त। बातें भी बहुत मामूली हैं; मगर यह 'पारू'! यह कौन है?

देवदास तब तक ऑफ़िस से लौटे नहीं थे। पूछना भी है तो उन्हीं से। लेकिन आधुनिक पढ़ी-लिखी लड़की होकर, जासूसी से वह घृणा करती है। इतने दिनों तक वह सोचती थी कि उसके पति देवदास सिर्फ़ उसी से प्रेम करते हैं। उससे कोई भी बात छिपाते नहीं। पर, आज उसके सुखाकाश में अशान्ति के काले बादल उसे साफ़ दिखने लगे।

रात को भोजन समाप्त होने के बाद मच्छरदानी लगाती हुई नीना बोली—"अरे, तुम्हें एक ख़त देना तो मैं भूल ही गई थी। मद्रास से तुम्हें किसी ने एक चिट्ठी भेजी है," कह कर ख़त को पासवाले मेज़ से उठा कर देवदास को दे दिया। तीखी नज़रों से वह देवदास को निहार रही थी।

ख़त हाथ में थामे देवदास मुस्कराया, पल भर में चिट्ठी को पढ़ कर नीना को लौटा के बोला—"भेज दूँगा कोई प्यारा-सा नाम।"

नीना चुपचाप आकर लेट गई। थोड़ी देर बाद देवदास ने अपना दाहिना हाथ बढ़ाया, लेकिन नीना छिटक गई। पकड़ में न आ सकी। देवदास ने मन ही मन सोचा, दिन भर की थकी-माँदी है, बिचारी को सोने दो। उधर चुपचाप पड़ी नीना सोच रही थी कि ख़त को हाथ में ले के देवदास कैसे मुस्कराया था। उसकी आँखें भी ख़ुशी से चमक रही थीं।

कई रोज यों ही बीत गये। इलाहाबाद से देवदास की बदली पटने हो गयी। नई जगह में आकर घर-गिरहस्थी का सारा इन्तज़ाम करने में नीना के दो महीने यों ही बीत गये, पर रह-रह के उसके दिल में सिर्फ़ एक ही काँटा चुभ रहा था—'पारू'-'पारू'-'पारू'।

देवदास तो ग़लती से भी पारू का नाम होंठों पर नहीं लाता और यही कारण है कि नीना घुट-घुट कर मर रही है, लेकिन उसे कुछ पूछने का मौका नहीं मिल रहा।

देवदास जब ऑफ़िस से घर लौटता तो हँसी-मजाक और बातों में नीना को बहुत व्यस्त रखता। कभी कहता—"चलो नीना, सोडा फाउन्टेन चलें।"

न मालूम क्यों नीना भी झट राज़ी हो जाती। देवदास के सामने ही कस कर बालों का डोनर बाँधती। गुलाबी अधरों को रक्तिम बनाती। मुँह पर स्नो-पाउडर का पफ़ देकर साड़ी-ब्लाउज़ की ओर बढ़ती। सफ़ेद खादी सिल्क की साड़ी की हरी किनारी से मिला कर गाढ़े हरे रंग का वेलवेट का ब्लाउज़ पहनती। कानों में हरे पन्ने तथा मोती के बने टाप्स तथा हरी अंगूठी पहन लेती। ड्रेसिंग टेबिल के सामने खड़ी हो पैरों से साड़ी की किनारी को नीचे की ओर खींचती-खींचती नीना कहती—"ज़रा ठीक कर दो न!"

मुस्करा कर देवदास साड़ी ठीक कर देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पल्ले की चुन्नट को बड़ी होशियारी से बाँए हाथ से थामे दाहिने हाथ से हरा वेनिटी बेग उठा लेकर 'रिस्टवाच' बाँधती हुई वह तैयार हो जाती।

मंत्रमुग्ध देवदास उस ओर ताकता ही रह जाता। देवदास को ऐसी अवस्था में देख नीना को कभी-कभी शक होता, तो क्या देवदास एकनिष्ठ है? उसकी आँखें तो झूठ नहीं बोल सकतीं। तो क्या नीना को ग़लतफ़हमी हो गई? क्या मालूम?

देवदास नीना को देख कर मुस्कराता हुआ गुनगुनाता। उस राग में सुर हो या न हो, पर मन की ख़ुशी की झलक तो बेशक जान पड़ती है।

नीना सुन्दरी है, सुशिक्षिता-आधुनिका है। उस जैसी पत्नी को पाकर तो बड़े-बड़े आई. ए. एस. भी अपने को धन्य मानते, मगर देवदास क्या...?

बाहर निकलने पर चारों ओर हरियाली के बीच फीकी-नीली रोशनी, वातावरण को मस्त बना देती। धीमे सुर में दुनिया से बेख़बर दो दिल हिलमिल के बातें करते। दोनों एक दूसरे को देख सोचते, मैं सुखी हूँ। मैं धन्य हूँ।

मगर जब देवदास आफ़िस में रहता तब सूनी सेज पर पड़ी दोपहर भर नीना छटपटाती रहती। सोचती कि देवदास पारू का नाम तक क्यों नहीं लेता? वह ख़ुद तो यह बात पूछ नहीं सकती क्योंकि ऐसा करना उसकी रुचि के ख़िलाफ़ है।

पोस्टमैन की साइकिल की घंटी सुन अकबरी बाई की एक होरी ठुमरी गुनगुनाती हुई नीना ने पत्र ले लिया। लिफाफे को फाड़ कर वह पढ़ने लगी—

"देवदा,

मेरा एक पत्र इलाहाबाद रहते समय शायद तुम पा चुके हो। बच्चे का नाम तुम न भेजा। तुम मुझे भूलना चाहते हो क्या?

देवदा, उन सुनहरे दिनों को तुम भूल गये, जब हम दोनों साथ-साथ चाँदनी रातें बिताया करते थे। नौका-विहार के समय मेरा सिर तुम्हारी गोद में होता, आँखें में आँखें डाल के हम दोनों गाते थे—हँसे चाँद की आज निराली, मन को लुभाने वाली।

किसी सुहावनी भोर को हम दोनों रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि पढ़ते और झूमते थे, मानो हम एक ही वृन्त में खिले दो फूल हैं।

जुदाई का दिन भी याद है। बड़ी कोशिश से तुमने कहा था 'फिर मिलेंगे'। मेरे मुँह से एक बात भी न निकल पाई थी। गरजती हुई गाड़ी मेरी ही आँखों के सामने से मेरे ही मन के मीत को लेकर चली गयी थी।

ख़ैर, कुछ दिनों के लिए मेरे पास न जाओ न। भाभी मुझसे जलती है क्या? उसे भी साथ लाना।

—पारू

पत्र पढ़ के नीना आग-बबूला हो गई। इसका फ़ैसला आज उसे करना ही पड़ेगा। फ़ैसला कि ये बिना वह रह नहीं सकती। इस पारू की बच्ची ने तो उसके नाक में दम कर रखा है। इस ख़त का मुँहतोड़ जवाब देने का नीना ने मन ही मन निश्चय कर लिया।

दराज से पैड और कलम निकाल कर लिखने बैठ गई।

"कलमुँही पारू,

तू बिल्कुल बेशरम है। आखिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति के पीछे हाथ धो के क्यों पड़ी है ? अरी चुड़ैल, तू भी तो शादीशुदा है । अपने पति के रहते हुए भी दूसरे के पति का तू काहे को पीछा कर रही है ? मेरे लिए नहीं तो कम से कम अपने पति और बच्चे का भी तो ख़याल कर ।

आइन्दा मेरे पति के नाम ऐसी गन्दी चिट्ठियाँ न भेजना,वरना फल बहुत बुरा होगा ।

मुझे तूने भाभी लिखा है । अगर मैं भाभी हुई तो मेरे पति तेरे भैया हुए । फिर, भैया को ऐसी गन्दी चिट्ठी लिखते तुझे शरम नहीं आई क्या ?

बस आगे मैं कुछ नहीं लिखना चाहती । अपने को सम्हाल के रख । घर-गिरहस्थी के काम में मन लगा । बच्चे और पति की चिन्ता में अपने को व्यस्त रख ।

अतीत को भूल जा—

—मिसेस देवदास"

पत्र समाप्त कर उसे लिफाफे में भर के पता लिखने के लिए उसने कलम उठायी । लेकिन पता ? दोनों चिट्ठियों को बार-बार उलट-पुलट कर उसने देखा, लेकिन वहाँ पता तो कहीं नहीं था । अब वह क्या करे ? इस मुश्किल को कैसे हल करे ? अब तो उसे देवदास से पारू का पता पूछना ही पड़ेगा ।

ऑफ़िस से लौटते ही देवदास ने धीरे से अपना दाहिना हाथ नीना के कंधे पर रख दिया ।

नीना का दम घुट रहा था । उसके भीतर तूफ़ान मचा था पर ऊपर से वह बिल्कुल शान्त थी ।

हर रोज़ की तरह उस दिन भी देवदास को देख कर वह ज़रा मुस्कराई । उठ कर खड़ी हो बोली—"तुम कपड़े बदलो, मैं नाश्ता ले के अभी आती हूँ ।"

हर रोज़ की तरह नाश्ता चाय दे के होंठों को दाँतों से ज़रा काट के नीना धीरे से बोली—"बहुत दिन हो गए हम कहीं बाहर घूमने न निकले ।"

"वाह जी, यह भी कोई बात है ? जहाँ जी चाहे चलो चलें ।"

"मुझे लगता है कि किसी मित्र को हम यहीं बुला लें ।"

"तो बताओ किसी मित्र का नाम ।"

"अपनी ज़िगरी पारू को ही यहाँ बुला लो ।"

"पारू को ?"

"हाँ, चाहो तो मैं खुद ही एक ख़त लिख दूँ ।" दोनों की आँखें मिलीं । नीना होशियारी से बोल रही थी । देवदास कुछ समझ न पाया ।

"अरे, तब तो बड़ा अच्छा रहेगा । मुझे तो फ़ुर्सत ही नहीं मिलती कि मैं लिखूँ !"

"ख़त तो मैं लिख दूँगी, लेकिन पता ? पता तो मुझे नहीं मालूम ।"

"कोई बात नहीं, कागज़-कलम लाओ, लिख लो ।"

नीना के पाँव थर-थर काँप रहे थे । पर वह धीरे-धीरे सोने के कमरे में चली गई । पूर्ववत् शान्ति से कागज़-कलम ले लौटी, धीरे से बोली—"बोलो ।"

"वाह जी, तुम तो बिल्कुल 'सीरियस' हो । खैर लिखो—

"पार्वती चरण मजुमदार
'एसिस्टेन्ट डिरेक्टर'
ऑल इण्डिया रेडियो
मद्रास"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन्त्रवत् पता लिख रही थी नीना। देवदास का ध्यान उस ओर न था। वह कह रहा था—"जिस दिन से पार्वती चरण हमारी कक्षा में भर्ती हुआ तभी से वह मुझे 'देवदा' कहता रहा। मैं भी उसे 'पारू' कह कह ही बुलाता था। हम दोनों को देख लड़कियाँ भी हँसती-हँसती लोट-पोट हो जाती थीं।"

दबे पाँव नीना सोने के कमरे में घुसी। वहाँ से बिना पते के लिफाफे को लिए रसोई में जाकर महाराजिन से बोली—"श्रीवास्तव दीदी से जाके कह आओ कल शाम को हम उनके यहाँ जाएँगे।"

महाराजिन चली गई। नीना ने तुरन्त उस चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े कर के जलती हुई आग में डाल दिया। सफ़ेद कागज़ के टुकड़े पल भर में जल कर राख बन गये।

और उसका गोरा सुन्दर मुँह बिल्कुल लाल हो रहा था। ●●

दो देश : दो प्रश्न : एक उत्तर

●१९४५ में जब विजयलक्ष्मी पंडित अमरीका गईं तो एक पत्रकार ने उनसे पूछा : 'अमरीका आने का आपका क्या उद्देश्य है?' उन्होंने उत्तर दिया : 'सत्य से असत्य को हटाना।' फिर एक पत्रकार ने पूछा : 'क्या आप सुगठित ब्रिटिश-शासन-प्रचार का अकेले सामना कर सकती हैं?' उनका उत्तर था : 'सत्य का एक आउंस भी असत्य के लाखों टन का सामना कर सकता है।'

●सुप्रसिद्ध अमेरिकन उपन्यास-लेखिका पर्लबक हाल ही में भारत-भ्रमण पर आई थीं। दार्जिलिंग में उन्होंने एक पत्रकार के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : 'अमरीका-वासी भारत को दो प्रकार से जानते हैं—कहानियों के माध्यम से और प्रचार के माध्यम से। पहले प्रकार के लोग सोचते हैं कि भारत केवल साँप नचाने वालों या राजे-महाराजों का देश है, और दूसरे प्रकार के लोग ऐसा प्रचार करते हैं कि भारत भिखमंगों का देश है।'

●इसी बीच एक पत्रकार ने बीच में टोक कर पूछा : 'आप क्या सोचती हैं?' उन्होंने तुरन्त बिना झिझके गर्व से कहा : 'यह मैं पहले ही अपने उपन्यास के नाम के रूप में कह चुकी हूँ—'मदर अर्थ'—जिसे आप चाहें भारत माता कह दीजिए।'

सुनीति गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमा वीरा

आत्म - परिचय

शिक्षा :

एस० एन० डी० टी० यूनिवर्सिटी बाम्बे से बी० ए० सन् १९५७ में। फिर कोलोरेडो यूनिवर्सिटी से जर्नलिज़्म और इन्टरनेशनल अफ़ेयर्स में क्रमशः बी० ए० तथा एम० ए०। १९६० में न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में रिसर्च प्रारम्भ किया।

प्रकाशन :

मिडवेस्ट फ़ोकलोर—इण्डियाना यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन।
धरती की बेटी—कहानी-संग्रह।
इसके अतिरिक्त ८० के तकरीबन कहानियाँ और २६ एकांकी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। एक कहानी-संग्रह, एक उपन्यास, तथा बारह अँग्रेज़ी में लिखी कहानियाँ प्रकाशनार्थ प्रस्तुत।

पत्रकारिता जगत में अफ्रीकन नारी का निखरता रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● नारी का सौन्दर्य केवल सजने-सँवरने में है, या समस्त नारी-समुदाय को समाज का सुन्दरतम अंग बनाने में है? आज की शिक्षिता अफ्रीकन नारी मानो इसी प्रश्न को सुलझाने में व्यस्त है।

अफ्रीकन समाचार-पत्रों के पढ़ने से, तथा अमरीका में पढ़ने के लिए आने वाले अफ्रीकन विद्यार्थियों की बातों से यही पता लगता है कि इस महाद्वीप के अधिकांश देशों में ऐसी अनेक प्रगतिशील महिलाएँ हैं, जो अपनी साक्षर व अर्द्ध-साक्षर बहनों को प्रगति के मार्ग पर खींच लाना चाहती हैं। अपनी आशा-अभिलाषा को कार्यान्वित करने, तथा अपने विचारों का प्रसार करने के लिए उनमें से अधिकांश ने समाचार-पत्रों तथा मासिक पत्रिकाओं का सहारा लिया है।

यह काम सरल नहीं। इनमें से अधिकतर देशों ने अभी नयी-नयी स्वतंत्रता प्राप्त की है। राज्य तथा समाज सम्बन्धी कार्यों के संचालन के लिए शिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता है। किन्तु जहाँ मुश्किल से पच्चीस प्रतिशत नागरिक शिक्षित कहे जा सकें, वहाँ की कठिनाइयों का अनुमान कर पाना कुछ कठिन नहीं।

इस स्थिति का तात्कालिक फल यह है कि जो शिक्षित महिलाएँ काम में रुचि रखती हैं, वे प्रायः दो-तीन क्षेत्रों में काम करती दिखाई देती हैं। जैसे कि टीचिंग या नर्सिंग के साथ-साथ वे किसी पत्र-पत्रिका की रिपोर्टर या सह-सम्पादिका के रूप में भी काम करती हैं।

इसका दूसरा परिणाम यह है कि साहित्य में, कथा-कहानियों का महत्त्व कम है; और तात्कालिक सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक समस्याओं के विचार-विमर्श पर अधिक लेख लिखे जाते हैं।

पत्रकारिता की ओर इतनी रुचि होने पर भी अफ्रीकन महिलाओं के लिए पत्रकारिता की शिक्षा पाने के साधन अत्यन्त सीमित हैं।

किसी भी देश में यह शिक्षा केवल दो प्रकार से पायी जा सकती है—किसी पत्र-पत्रिका या प्रकाशन-संस्था में काम करने से या किसी कॉलेज में पत्रकारिता की शिक्षा पाने से। अफ्रीका के लगभग सभी देशों की प्रकाशन-संस्थाएँ प्रायः महिलाओं को काम सिखाना पसन्द ही नहीं करतीं, अपितु उन्हें इस ओर उत्साहित भी करना चाहती हैं। किन्तु शिक्षित महिलाओं के अभाव के कारण उनके प्रयत्नों का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है।

पत्रकारिता की शिक्षा देने के लिए यहाँ अभी केवल दो स्कूल हैं। किन्तु राज्य-सरकारों का ध्यान अब इस ओर आकृष्ट हो रहा है, और नये खुलने वाले स्कूलों में पत्रकारिता की शिक्षा देने की योजना बनायी जा रही है। उदाहरण के लिए नाइजीरिया में 'सुक्का' में खुलनेवाली नयी युनिवर्सिटी में शीघ्र ही पत्रकारिता की शिक्षा प्रारम्भ की जायेगी।

अफ्रीकन नारियों को पत्रकारिता सम्बन्धी शिक्षा पाने की सर्वप्रथम सुविधा आज से लगभग दस वर्ष पूर्व मिली थी, जब कि सर कैनेट ब्लैकबर्न तथा श्री आर. एफ. जॉनसन नामक दो ब्रिटिश अधिकारियों ने लन्दन पौलिटेकनिक में, प्रतिवर्ष आठ अफ्रीकन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति द्वारा पत्रकारिता की शिक्षा देने की योजना शुरू की थी।

इस इन्स्टीट्यूट की दो छात्राएँ—श्रीमती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टी. ओगनबी, और श्रीमती एच. ओगनबैंजो, आज नाइजीरिया की प्रमुख महिला पत्रकार हैं।

x x x

स्वयं अफ्रीका में, पत्रकारिता का प्रथम स्कूल, लगभग तीन वर्ष पूर्व ग़ना में स्थापित किया गया था। यहाँ विद्यार्थियों के अतिरिक्त, प्रकाशन-संस्थाओं में काम करने वालों को भी ऊँची शिक्षा देने की व्यवस्था है।

इस स्कूल में, कोर्स दो भागों में विभाजित है। पहले वर्ष विद्यार्थी ये विषय सीखते हैं: अँग्रेजी, शौर्टहैण्ड, टाइपिंग, रिपोर्टिंग, फ़ीचर-राइटिंग, रेडियो-राइटिंग, वर्तमान राजनैतिक समस्याएँ आदि-आदि।

इसके बाद, वे पन्द्रह महीने किसी पत्र-पत्रिका या प्रकाशन-संस्था में काम सीखते हैं। यह अवधि पूर्ण हो जाने पर परीक्षा में पास होने वाले विद्यार्थियों को पत्रकारिता का डिप्लोमा मिल जाता है।

यह स्कूल केवल ग़ना के विद्यार्थियों के लिए ही नहीं। इसका उद्देश्य अफ्रीका के अन्य देशों के विद्यार्थियों को भी पत्रकारिता में शिक्षा पाने के लिए आकृष्ट तथा उत्साहित करना है।

ग़ना में एक 'ग़ना प्रैस क्लब' भी है, जो कि लगभग चार वर्ष पूर्व स्थापित किया गया था। इसमें लगभग १५० सदस्य हैं, जिनमें १२ महिलाएँ हैं।

x x x

उत्तरी रोडेशिया भी इस दिशा में प्रयत्नशील है। यहाँ मिन्डोलो के 'अफ्रीका लिट्रैसी एण्ड राइटिंग सेन्टर' में पत्रकारिता की शिक्षा देने के साथ ही साथ अफ्रीकन भाषाओं की शिक्षा भी दी जाती है, जिससे कि भावी पत्रकार लिट्रैसी टीम के सदस्य बन सकें।

इस केन्द्र में केवल चार महीने पत्रकारिता की शिक्षा दी जाती है, और केवल उन्हीं को भर्ती किया जाता है, जो कि या तो लेखक-पत्रकार हों, या इस बात का प्रमाण दे सकें कि उनमें पत्रकार बनने की योग्यता है। यहाँ सियरा-लिओन, दक्षिणी रोडेशिया, कांगो, टैंगनीका, नौर्दर्न नाइजीरिया, टोगोलैण्ड आदि देशों से भी विद्यार्थी पढ़ने आते हैं। जनवरी १९६० से अगस्त १९६१ तक यहाँ ५ महिलाओं ने पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त कों।

इसमें सन्देह नहीं कि इस स्थिति के फलस्वरूप अफ्रीका के इन देशों में कुछ गिनी-चुनी महिलाएँ ही पत्रकारिता के क्षेत्र में हैं, किन्तु इस विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने कार्य में इनमें से लगभग सभी ने अत्यधिक योग्यता का परिचय दिया है, और यथेष्ट ख्याति पायी है।

x x x

ग़ना में श्रीमती ए. सदरलैण्ड पहले केवल पढ़ाती थीं। फिर उन्होंने लेख लिखना शुरू किया, जो केवल ग़ना में ही नहीं, अन्य देशों के पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए। उसके बाद उन्होंने कविताएँ तथा पुस्तकें प्रकाशित कीं। इस सबसे उत्साह पाकर उन्होंने एक ऐक्सपैरिमेन्टल थियेटर स्थापित किया, जिसके लिए स्वयं कई सफल नाटक भी लिखे।

मिस मेबेल डव, ग़ना की लैजिस्लेटिव असेम्बली में प्रथम महिला सदस्या थीं। उन्होंने टाइम्स आफ वेस्ट अफ्रीका में अनेक सामयिक, सामाजिक व राजनैतिक लेख प्रकाशित किये। उसके बाद नियमित रूप से 'इवनिंग न्यूज़' के लिए भी लिखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू किया। उनका 'लुकिंग एराउण्ड' नामक कालम बहुत मशहूर है। इसमें वे अधिकतर ऐसे विषयों पर लिखती हैं, जैसे कि, 'आधुनिक जगत में अफ्रीकन नारी का स्थान', 'अफ्रीकन नारी और भूखे कांगोलीज़', आदि आदि।

'इवनिंग न्यूज़' की दूसरी प्रमुख पत्रकार, एडिथ यवर, फ़ैशन, बाल-रक्षा, तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्याओं की विशेषज्ञ हैं, क्रिश्चीन प्यूटनी, घरेलू जीवन, प्राथमिक चिकित्सा तथा सौन्दर्य की समस्याओं पर लेख लिखती हैं, और ना लैमिली नामक लेखिका सोशल प्रॉबलम्स ब्यूरो की अध्यक्षा हैं।

'ग़नियन टाइम्स' महिलाओं के लिए एक विशेष पृष्ठ, 'विमेन्स टाइम्स पेज फॉर ग़ना वुमनहुड' प्रकाशित करता है। इसमें ग्लैडिस कोर्टा व क्रिश्चीन प्यूट्नी, घरेलू समस्याओं पर लेख लिखती हैं, और जिनोवी मेरेज़ सामाजिक समस्याओं पर। श्रीमती मेरेज़, जो कि एजुकेशन अफसर भी हैं, ऐसे विषयों की विवेचना भी करती हैं, जैसे कि प्रौढ़ शिक्षा पर गन्दी फ़िल्मों तथा अन्य ऐसी ही दूसरी वस्तुओं का प्रभाव।

'सनडे-मिरर' में पेशेंस-कार्बो-समनी के विचारपूर्ण लेखों में अफ्रीकन नारियों की सफलता, योग्यता व कार्य-क्षमता का रुचिर किन्तु सच्चा वर्णन रहता है।

x x x

नाइजीरिया में, जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, लन्दन-शिक्षा प्राप्त महिला पत्रकार, टैरेसा ओगनबी और हिल्दा ओगन-बैंजो बहुत प्रख्यात और कार्यशील हैं।

श्रीमती ओगनबैंजो लैगोस की इन्फ़ोर्मेशन मिनिस्ट्री द्वारा प्रकाशित 'चिल्ड्रेन ओन पेपर' की सम्पादिका हैं। श्रीमती ओगनबी 'सनडे टाइम्स' की 'वीमेन्स पेज' की [illegible] दिका हैं। इसके साथ ही साथ वे [illegible] टाइम्स' के महिला-पृष्ठ का सम्पादन [illegible] करती हैं, और प्रति सोमवार को 'वीमेन [illegible] वीमेन' विषयों पर लेख प्रकाशित करती [illegible] जैसे 'एक महिला डाक्टर द्वारा विवाहोच्छु [illegible] बालिकाओं को सलाह', 'कुँवारे लड़के कॉलेज [illegible] में पढ़ी लड़कियों से विवाह करने में क्यों घबराते हैं', आदि-आदि।

'डेली टाइम्स' का 'जूनियर टाइम्स' [illegible] भी महिलाओं द्वारा सम्पादित किया जाता [illegible]

'डेली एक्सप्रेस' में लिखने वाली महिला पत्रकार, मोडुप मेरियस, और एलिज़ाबेथ एकिनसोला, केवल सामाजिक समस्याओं पर लेख ही नहीं लिखतीं, वे अन्तर्राष्ट्रीय नारी-जगत् से सम्बन्धित विषयों की चर्चा भी करती हैं और दूसरे देशों की महिलाओं के विषय में लेख लिखती हैं।

x x x

सियरा लियौन के समाचार-पत्र इतने छोटे हैं कि उन्हें इतनी सुविधा नहीं है कि 'महिला पृष्ठ' प्रकाशित कर सकें। फिर भी वे महिलाओं सम्बन्धी समाचारों को यथेष्ट स्थान देते हैं।

यहाँ से 'मैडोरा' नामक एक पत्रिका प्रकाशित की जाती है, जिसकी विख्यात सम्पादिका श्रीमती कौन्सटैन्स कर्मिस हैं। 'मैडोरा' एक सियरा-लियौनियन महिला थी जो कि उन दिनों जब कि ऐसे विचार क्रान्तिकारी माने जाते थे, नारी-शिक्षा तथा समान स्थिति प्राप्ति के लिए लड़ी थीं। देश की उस क्षमताशालिनी सुपुत्री की स्मृति में 'मैडोरा' पत्रिका आज भी नारी-प्रगति विषयक आन्दोलन में अग्रगण्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूडान में महिलाओं ने विशेष प्रगति की है। बालिका-शिक्षा प्रारम्भ हुए वहाँ अधिक समय नहीं बीता। पहला इंटर-मीडियेट गर्ल्स स्कूल वहाँ सन् १९४० में खोला गया था। और पहला गर्ल्स सैकेन्डरी स्कूल सन् १९४५ में। किन्तु आजकल वहाँ सैकड़ों लड़कियाँ इन स्कूलों में पढ़ रही हैं, और उनमें से अधिकांश कॉलेज तथा युनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त करने को उत्सुक हैं।

यहाँ फ़ातिमा तालिब नामक लेखिका ने विशेष ख्याति प्राप्त की है। टीचर तथा हेड मिस्ट्रेस होने के साथ ही साथ वे प्रायः रेडियो से भी ब्रॉडकास्ट करती हैं, और अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में उन्होंने अपने देश की नारियों का प्रतिनिधित्व किया है।

खारतूम के प्रत्येक दैनिक समाचार-पत्र में एक महिला-पृष्ठ अवश्य होता है। महिला पत्रिका (मासिक) यहाँ केवल एक ही है, किन्तु सूडानीज़ महिलाओं की प्रगति में उसने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस पत्रिका की सम्पादिका कुमारी फ़ातिमा अहमद इब्राहीम ओमडरमैन के प्राइवेट स्कूल में अध्यापिका हैं, और इसकी कला-विभाग की अध्यक्षा, कुमारी फ़ातिमा फ़राज़ ओमडरमैन ट्रेनिंग कॉलेज में आर्ट टीचर हैं।

x x x

सेन्ट्रल अफ्रीका में स्थिति इतनी अच्छी नहीं। न्यासालैण्ड में कोई भी महिला पत्रकार नहीं है। जोम्बा के इन्फोर्मेशन डिपार्टमेन्ट में एक महिला पत्रकार थी, किन्तु विवाह कर लेने के उपरान्त उसने काम छोड़ दिया, और तब से कोई और महिला रिक्त स्थान की पूर्त्ति के लिए नहीं मिली।

सदर्न रोडेशिया को इस बात का बड़ा गर्व है कि वहाँ कई प्रमुख महिला पत्रकार हैं। इसका एक कारण यह है कि यहाँ 'अफ्रीकन राइटिंग सेन्टर' है, जो क्रिश्चियन साहित्य प्रकाशित करने का वृहत् तथा महत्वपूर्ण केन्द्र है।

सेलिसवरी के 'अफ्रीकन डेली न्यूज़' में श्रीमती ऐंजलीना हलँगा का बड़ा मान है। फ़ेडरेशन में वह प्रथम महिला पत्रकार हैं। नर्सिंग के साथ-साथ, वे तीन भाषाएँ बोलना जानती हैं। वह प्रायः ऐसे विषयों पर लिखती हैं, जैसे कि 'रेशियल डिस्क्रीमीनेशन'। 'समाज में अफ्रीकन नारी का महत्त्व', 'क्या अफ्रीकन नारियों को अब भी पुरुषों के संरक्षण की आवश्यकता है?' 'नौकरी करने या भूमि खरीदने के लिए क्या पुरुष की इज़ाज़त लेने की आवश्यकता है?' आदि-आदि।

x x x

इन गिनी-चुनी महिला पत्रकारों की क्षमता, योग्यता और उत्साह देख कर, एक बात निःसन्देह कही जा सकती है कि इस वृहत् महाद्वीप में, जहाँ आदि अफ्रीकन सभ्यता के चिह्न कोलोनियल सत्ताओं द्वारा लगभग मिटा डाले गये हैं; जहाँ शिक्षा के साधन इतने सीमित हैं; जहाँ कला-उद्योग के विकास के अभाव में, देश के प्रचुर साधनों का उपयोग विदेशी राज्यों की सहायता के बिना कर पाना लगभग असम्भव ही है, और जहाँ अभी भी राजनैतिक तथा सामाजिक अशान्ति का बोलबाला है, अफ्रीकन महिला पत्रकार अपने समाज तथा देशों की प्रगति में यथासाध्य योगदान दे रही हैं।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावण्य प्रभा राय।

आत्म – परिचय

● जीवन के संध्याकाल पर पहुँच गई हूँ। परिचय बहुत ही साधारण सा है। शिक्षा कलकत्ते के डायोसेशन कालेज में आंशिक प्राप्त हुई थी। बी० ए० में अंग्रेज़ी में ऑनर्स था। संस्कृत साहित्य में एम० ए० हूँ। बरसों से इलाहाबाद के नामी कालेज क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में अध्यापिका कार्य कर रही थी। अभी इस कालेज की अध्यक्ष हूँ। सब प्रकार की कला में बहुत रुचि है। बंगला मातृभाषा है। बंगला, अंग्रेज़ी, हिन्दी––तीनों भाषाओं में लिखती हूँ। आठवें कई वर्षों से हिन्दी में लिखने लगी हूँ––हिन्दी लिखने में विशेष आनन्द का अनुभव करती हूँ। हिन्दी-लेखक-समाज में पर्याप्त सम्मान भी प्राप्त कर चुकी हूँ। अवकाश ग्रहण करने पर लिखने को ही पेशा बनाने की आकांक्षा है––आगे ईश्वर की इच्छा।

सत्य
परिभाषा की कसौटी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● महाभारत के यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा था--"देव दिवाकर को किसने ऊपर आकाश पर रखा है? दिनमणि कहाँ प्रतिष्ठित हैं?"

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने उत्तर दिया था--"ब्रह्म ने दिवाकर को ऊपर आकाश में रखा है और सूर्य भगवान सत्य में प्रतिष्ठित हैं। सत्य की इतनी महिमा है कि वह चराचर जगत् को उत्पन्न तथा प्रकाशित करने वाले देव सविता का भी आधार है। सत्य का महत्व अविसंवादी है।" फिर भी स्वतः ही प्रश्न उठता है कि सत्य क्या है? उसका स्वरूप क्या है?

भिन्न-भिन्न मत के भिन्न-भिन्न विद्वानों तथा मनीषियों ने सत्य के स्वरूप पर विचार किया। 'जितने मुनि, उतने मत'--इस कथन के अनुसार सत्य का स्वरूप भी विभिन्न निर्णीत हुआ है। विभिन्न मतवाद के अनुशीलन से सत्य का जो स्वरूप उद्घाटित होता है वह बहुत ही रोचक है।

कृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा था--

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
तत्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम्॥
भवेत् सत्यभवक्तव्यं वक्तव्यभनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यञ्चाप्यनृतं भवेत्॥

सत्य बोलना उचित है: सत्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं है। फिर भी सत्य के अनुसार कार्य करना चाहिए या नहीं, उसका निर्णय करना कठिन है। जहाँ पर मिथ्या सत्य के समान हितकर व सत्य मिथ्या के समान अहितकर है वहाँ सत्य बोलना अनुचित है--मिथ्या बोलना ही उचित है।

अँग्रेजी में एक कहावत है--all is fair in love and war. हमारे शास्त्र में भी कहा जाता है कि: 'विवाहकाले, प्राणात्येय, सर्वधनापहरे, विप्रस्य चार्थे अनृतं वेदत।' इसी प्रकार दूसरा निर्देश है--'परिहास, स्त्रियों का मनोरंजन, विवाह, प्राणसंशय व सर्वस्व नाश की संभावना होने पर मिथ्या बोलना पाप नहीं है।'

इन कथनों के समर्थन में महाभारत में यह कहानी कही गई है--कौशिक नाम के एक ब्राह्मण गाँव से बाहर नदी के किनारे पर रहते थे। वह थे धार्मिक; परन्तु मन्द बुद्धि। वह सदा सत्य वचन बोलते थे। एक दिन कई आदमियों ने दस्युओं के भय से कौशिक के तपोवन में आकर आश्रय लिया। जब दस्युओं ने उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आकर कौशिक से पूछा तब कौशिक ने बता दिया कि वे इसी जंगल में छिपे हुए हैं। निष्ठुर दस्युओं ने उन लोगों को ढूँढ़ निकाला और उन्हें मार डाला। कौशिक के सत्य वचन से बहुतों का प्राणनाश हुआ। ऐसे अवसर पर सत्य के स्थान पर मिथ्या बोलना ही उचित होता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण भगवान का दूसरा भी निर्देश है कि--

अवश्यं कजितव्ये वा शंकेरन् वाप्यकजतः।
श्रेयस्तभानृतं वक्तुं तत् सत्यभविचारितम्॥

जिस अवसर पर कुछ बोलना आवश्यक है, न बोलने से शंका उत्पन्न होने की संभावना है, वहाँ पर मिथ्या बोलना ही उचित है और उस मिथ्या को सत्य के समान समझना चाहिए। श्रीकृष्ण ने और कहा है--'दस्यु के हाथ से बचने के लिए सदा झूठ ही बोलना चाहिए--इसमें कोई अधर्म नहीं है।' धर्म के लिए भी झूठ बोलना पाप नहीं है। इस प्रकार सत्य व मिथ्या का स्वरूप निर्णय कर कृष्ण ने अर्जुन का भ्रम तो अवश्य ही दूर किया था; परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण मनुष्य के मन में सत्य व मिथ्या की सीमा रेखा बहुत ही धुँधली हो गई। सत्य क्या और असत्य क्या, इसका निर्णय करना मनुष्य के लिए कठिन ही नहीं असंभव-सा हो गया। एक के लिए जो सत्य व धर्म है, दूसरे के लिए वह असत्य व पाप है। इसी प्रकार एक के लिए जो असत्य है, दूसरे के लिए वह सत्य है। इस परिस्थिति में वास्तविकता कहाँ है : सत्य का वास्तविक रूप क्या है, इस प्रश्न ने युग-युग से मनुष्य के मन को व्याकुल किया है। मानव अपनी विद्या, बुद्धि, ज्ञान व विज्ञान के अनुशीलन से इसी जिज्ञासा के उत्तर के लिए यत्नशील है। परन्तु फिर भी जिस निर्णय व सिद्धान्त पर वह पहुँच सका---वह एक नहीं अनेक।

जड़वादियों का सिद्धान्त है कि जड़ ही एकमात्र सत्य है। अनात्मवाद के इस सिद्धान्त में आत्मा का कोई भी स्थान नहीं है। जड़ ही आत्मा का उद्भावक है। मनुष्य एक जड़-यन्त्र-मशीन मात्र है---परन्तु क्या यह सत्य है? मनुष्य की प्रतिभा, मनुष्य की अभीप्सा, उसकी नित्य नवीन सृजन-शक्ति---जो विभिन्न मनुष्यों में विभिन्न भाव व अनुपात से प्रकट होती है---क्या ये सब कभी एक जड़ मशीन से उत्पन्न हो सकती है? मनुष्य की चेतना मशीन की गतिशीलता से सम्पूर्ण भिन्न है। उत्तरदायित्व ज्ञान, कर्त्तव्यों के क्षेत्रों का प्रसार व विभिन्नता, व्यक्तिगत प्रयत्नशीलता, प्रयोजनीयता, अनिश्चितता, रुचि, संघर्ष आदि क्या कभी एक यंत्र से उत्पन्न हो सकते हैं? क्या जड़वाद से हमारी आत्मा की भूख व प्यास मिट सकती है? आत्मा का अस्तित्व सर्वमान्य है। मनुष्य जड़ नहीं, आत्मा जड़ नहीं। मनुष्य एक मशीन---एक कठपुतला नहीं। जड़वाद में मनुष्य को सत्य की खोज नहीं मिलती।

वस्तु का रूप क्षण-क्षण पर बदलता रहता है। वस्तु के विभिन्न रूपों में कौनसा रूप सत्य है---कौन उसका वास्तविक रूप है यह निर्णय करना कठिन है। अनेकबार पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि सत्य एक नहीं अनेक है। वस्तु के सभी रूप सत्य हैं। प्रातःकाल के सूर्योदय से सूर्यास्त तक आकाश में कितने ही विभिन्न रंगों की रंग-रेलियाँ चलती रहती हैं। इन रंगों के आधार पर यदि आकाश का रंग निर्णय किया जाय तो आकाश का मूल रंग एक नहीं अनेक सिद्ध होगा। परन्तु यह कैसे संभव हो सकता है? एक ही आकाश का रंग कभी 'लाल' कभी 'लाल नहीं' होता है। परस्पर विरोधी तत्व कैसे सत्य कहा जा सकता है? किसी भी पदार्थ का मूलगत आकार व गुण एक होना चाहिए---अनेक नहीं। और उस एक रूप में उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है। वस्तु का वाह्य प्रकाश चाहे कितना ही विभिन्न क्यों न हो, उसका आन्तर स्वरूप एक ही है और वही उसका सत्य रूप है जो एक है---अनेक नहीं।

किसी-किसी विद्वानों के मत के अनुसार सत्य का स्वरूप उसकी प्रयोजनीयता पर आधारित है। जिस वस्तु या विचार का market value या cash value जितना अधिक होगा---वह वस्तु या विचार उतना ही सत्य तथा महत्व का होगा। मनुष्य के जीवन में जिस वस्तु या भावना का प्रयोजन है वही उसके लिए सत्य है। परन्तु व्यक्तिगत प्रयोजनीयता या सामयिक आवश्यकता की पूर्ति के ऊपर सत्य का शाश्वत स्वरूप कैसे आधा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रित हो सकता है? जो एक के लिए आवश्यक माना जाता है, दूसरे के लिए वह आवश्यक नहीं भी हो सकता है। तब सत्य का वास्तविक मान क्या और कहाँ है?

कई विद्वानों का मत है कि सत्य वही है जो हमारी भावना में विद्यमान हो। साथ ही किसी वस्तु की धारणा या conception उस वस्तु के अस्तित्व से कहीं अधिक सत्य है। जिन सिद्धान्त या नियमों के आधार पर एक सेतु बनाया जाता है, वे नियम उस सेतु से अधिक सारवान तथा सत्य हैं। सेतु का नाश हो सकता है परन्तु नियम स्थायी है। इसी प्रकार एक वृत्त खींच कर हम उसे मिटा दे सकते हैं परन्तु उस वृत्त की धारणा हमारे मन में सत्य है जिसके आधार पर हम कितने ही वृत्त बना सकते हैं।

किसी वस्तु का आकार हमारे मन में चित्र जैसा खींच जाता है--उस पर हम एक नाम का आरोप करते हैं--वह हमारे लिए एक सत्य वस्तु बन जाती है। जैसे घोड़ा--एक चार पैर वाले पशु का हमने घोड़ा नाम दिया। घोड़ा शब्द के उच्चारण के साथ हमारे नेत्र के सामने घोड़े का रूप स्पष्ट हो उठता है--किसी दूसरे पशु का नहीं। इसी से हम इस सिद्धांत पर पहुँचते हैं कि जो हमारे ज्ञान तथा धारणा में विद्यमान है वही सत्य है।

गणित-शास्त्र में कई ऐसे तथ्य हैं जो सत्य समझे जाते हैं। वृत्त, विन्दु, रेखा, चतुष्कोण आदि हमारे ज्ञान व धारणा के अनुसार सत्य है परन्तु चतुष्कोण-वृत्त की धारणा हम नहीं कर सकते--तभी उसका अस्तित्व हमारे लिए मिथ्या है। दो और दो जोड़ कर चार होगा ही और यह तब तक सत्य रहेगा जब तक इसकी असत्यता प्रमाणित नहीं होगी। मनुष्य के इतिहास में ऐसी घटना भी दुर्लभ नहीं। एक समय था जब मनुष्य जानता था कि पृथ्वी का आकार समतल है, गोल नहीं। उस समय यही धारणा मनुष्य के लिए सत्य था। फिर पृथ्वी के गोलाकार के आविष्कार के साथ-साथ यही सत्य प्रमाणित हुआ--पहला विचार भ्रम सिद्ध हुआ।

परिभाषा के अनुसार एक सरल रेखा वह है जिसमें लम्बाई तो हो परन्तु चौड़ाई न हो--यानी length without breadth. परन्तु कागज पर या और कहीं एक सरल रेखा खींचने पर उसकी कुछ न कुछ चौड़ाई तो अवश्य ही होगी--चाहे वह कितना सूक्ष्म क्यों न हो। नक्शा बनाने वाला तरह-तरह की सरल रेखाएँ खींचता है--कोई मोटी, कोई पतली--सभी रेखाएँ हैं परन्तु परिभाषा के अनुसार ये रेखाएँ अशुद्ध हैं--नक्शा बनाने वाले के लिए चाहे वे कितनी शुद्ध व सत्य क्यों न हों।

इसी प्रकार जितने भी दृष्टिकोण से देखा जाय, सत्य का वास्तविक रूप निर्णय करना कठिन है। मनुष्य के स्वभाव, रुचि व परिवेश के अनुसार वस्तु में विभिन्न गुणों का आरोप किया जाता है। इन गुणों में से वस्तु का वास्तविक गुण उसका सत्य स्वरूप कैसे जाना जा सकता है? कई दार्शनिक विद्वानों का कहना है कि सत्य का मूल मनुष्य के मन में निहित है। जो मन कहता है--'विवेक का जो निर्देश है वही सत्य है।' परन्तु यह कहाँ तक ठीक है? साधु का मन, साधु का विवेक एक असाधु के मन व विवेक से सम्पूर्ण भिन्न है। तभी तो 'सत्य क्या है'--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जटिल समस्या है। वेदान्तियों के अनुसार व्यक्तिगत प्रयोजनीयता के परे, सार्वजनीन क्षेत्र में जो सबके लिए, सदा के लिए कल्याणकर है, वही सत्य है। सत्य चिरन्तन है—देश, काल, पात्र आदि की सीमा रेखा के घेरे में जो आबद्ध नहीं है—जिसका स्वरूप शाश्वत व सर्वमान्य है, वही सत्य है।

•••

आधुनिक युग के कार्त्तिक और गणेश

●यह बिल्कुल संयोग ही था कि कार्त्तिक और गणेश दोनों भाई एक ही पद के लिए उम्मीदवार थे। किन्तु स्थान एक ही रिक्त था। अफसर ने सुझाव दिया कि एक के पक्ष में दूसरा बैठ जाय। पर बेरोजगारी की समस्या तो दोनों ही के लिए जटिल थी। आखिर अफसर ने ही एक दूसरा रास्ता निकाला। तय हुआ कि कम से कम समय में जो समूचे प्रान्त का भ्रमण कर आयेगा उसे ही यह पद सौंपा जायगा।

दोनों भाई एक साथ चल पड़े। कार्त्तिक को अपनी सफलता का विश्वास था। मयूर उसका वाहन था, एक घंटे में योजनों भूमि की परिक्रमा कर सकने वाला! प्रान्त की सीमाएँ कौन बड़ी समस्या थी?

बेचारे गणेश जी अपने मोटे शरीर से चलने-फिरने में यों ही लाचार। फिर उनका वाहन भी तुच्छ जीव मूसकराज! पर फिर भी उनके मुख पर प्रसन्नता थी।

पूरी यात्रा सिर्फ छह घंटों में पूरी कर कार्त्तिक हाँफते हुए लौटे तो ज्ञात हुआ, पद गणेश जी को दिया जा चुका था। गणेश ने पूरी यात्रा सिर्फ चन्द मिनटों में पूरी कर ली थी।

कार्त्तिक को विश्वास नहीं हुआ। अफसर का मुस्कराता चेहरा और गणेश का विजयोन्मत्त मस्तक यदि कार्य-सम्पन्नता के सूचक थे तो आराम से बैठा मूसकराज कारण की दुर्बलता का पर्याप्त प्रमाण था। सो उन्होंने अपने हाँफते मयूर को एड़ लगाई और समूचे प्रान्त के चारों ओर एक बार फिर घूम आये। सचमुच, प्रान्त के चप्पे-चप्पे पर चूहे के नन्हें-नन्हें पद-चिह्न अंकित थे।

घर आकर कार्त्तिक ने इस सफलता का रहस्य पूछा तो गणेश ने गद्गद् कण्ठ से बतलाया, 'मैं तो भाई, इस विभाग के मिनिस्टर के चारों ओर ही एक चक्कर लगा गया था।'

—सरस्वती झा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारदा सिंह

आत्म – परिचय •

•बनारस जिले के एक पिछड़े गाँव में जन्म। प्रारंभिक शिक्षा गाँव पर ही। आगे की शिक्षाओं के लिए एक लड़की को जितने संघर्ष करने पड़ते हैं, मैंने भी किया है। १९६१ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए०। वहीं इन दिनों हिन्दी विभाग में भाषा-विज्ञान के एक विषय पर रिसर्च।

•लिखने से अधिक कहीं कहानियाँ, उपन्यास, आलोचना आदि पढ़ने का शौक रहा है। पिछले दो-तीन साल से बहुत-से स्केच, कहानियाँ और टिप्पणियाँ लिखी हैं लेकिन उन्हें प्रकाशित होने के लिए कहीं नहीं भेजा।

दुविधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शहर आने के चार-पाँच रोज बाद ही कोई मुंशी नौजादिक लाल मिल गये"--यहाँ बिताये दो महीने की घटना का जिक्र करते ही सम्पत उत्साहित हो उठा--"मुंशी जी ने मेरे दुःख को सुना, दर्द को महसूस किया। अगले दिन पता चला कि उनकी जनाना भी किसी के साथ कलकत्ते भाग गई है।"--बात खत्म होते-होते रिक्शे की चैन उतर गयी। सम्पत ने रोक कर चैन ठीक की। फिर रिक्शा दौड़ा कर सीट पर बैठ गया।

और शायद मुझसे अपने बयान की प्रतिक्रिया के इन्तज़ार में खामोश हो गया।

मेरा ध्यान उस समय सम्पत की बात पर नहीं, मौसम की तेजी पर था। और कह दूँ कि मौसम का उल्लेख मैं कहानी या स्केच की जरूरतों को अनुभव करते नहीं कर रही। क्योंकि 'मई का दोपहर ढलने लगा था' वाक्य का हवाला कुछ ऐसा ही माना जाता है जैसे 'पूस का जाड़ा था' अथवा 'बसन्त की बहार'। मगर इतना सच है कि उस समय आसमान नंगा था और धूप तेज थी। सड़क के दोनों किनारों पर एक खास किस्म का उजड़ापन था जो एकाध आदमी या जानवर के दीख जाने से और भी निखर जाता था। यद्यपि लू नहीं चल रही थी लेकिन जब कभी रिक्शे की रफ्तार तेज होती तो हवा का झोंका आकर शरीर को राहत दे जाता था।

"मालिक, लगता है आपने मेरी बात सुनी नहीं।" सम्पत ने निराश होकर आहिस्ता से कहा।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं"--मैंने हड़बड़ी में कहा--"तुम्हीं तो चुप हो गए!"

"हाँ तो," सम्पत ने दो-तीन बार पैडल जोर से घुमाई और साँस को संयत करते हुए बोला--"यह बात मारे शर्म के मुंशी जी ने पहले दिन नहीं बताई। लेकिन सच पूछो तो वह भगी कहाँ थी? घर में ही थी लेकिन मुंशी जी को खबर न थी कि वह घर में है।"

"यह कैसे हो सकता है?" सचमुच सम्पत की इस बात से मुझे ताज्जुब हो आया।

"हाँ मालिक, यही तो अचरज था। खुद मुझे विसवास न था। और मुंशी जी ने कि उनकी हुलिया टायट। लेकिन आपसे क्या छिपाना मैं रोज शाम को उनके लिए कचहरी जाता और उन्हें घर पहुँचा देता। वे बेचारे उसी बेहोशी में चार आने की जगह मुझे एक आने देकर चल देते। मैं भी सोचता भई, दुखी आदमी को पैसा माँग कर सदका पहुँचाना कोई भलमनसाहत नहीं है।"

रिक्शा उस समय बरना पुल पर चढ़ रहा था। सम्पत नीचे उतर गया था और हाथ से रिक्शा ठेलने लगा था। पुल के दोनों तरफ बरना नदी गहरी खाई की तरह बड़ी दूर तक चली गई थी। उसमें कहीं भी पानी न था इसलिए वह और भी भयावह और सूनी दीख रही थी।

मुझे सम्पत की बात पहेली-सी लगी। मैंने जाँचने के लिए पूछा--"सम्पत, तुम्हें कैसे पता चला कि मुंशीजी की पत्नी घर में है?"

सम्पत ऊँचाई खत्म कर चुका था। वह हाँफता हुआ बोला--"हुआ यह कि एक दिन मुंशी जी बदहवासी में एकन्नी भी देना भल गये। मैं उनके घर का पता लगाता गली में चला गया। देखा तो उनके मकान के सामन एक औरत खड़ी थी जो उनकी जनाना ही हो सकती थी।"

उसकी बात खत्म होते-होते मुझे इतनी तेज़ हँसी आयी कि सम्पत चौंक पड़ा। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी देखादेखी वह भी हँसने लगा—"देखो, ऐसे-ऐसे तो मूरख हैं जिन्हें खबर नहीं कि घर में क्या-क्या हो रहा है?"

सम्पत ने पुल पार कर रिक्शा रोक लिया। उसने अपने सिर से फटे मैले मारकीन की पगड़ी खोली। उसका ललाट—जिस पर कम-से-कम एक पर्त धूल की तह बैठी थी—पसीने से तर था। और पसीने का एक पतला पनाला माथे से बह कर उसके चूसे हुए आम की तरह गालों में रुक कर बदबू कर रहा था। उसने गमछे से पहले ललाट, फिर मुँह, फिर गर्दन पोंछा और उससे हवा करता हुआ सड़क की दाहिनी ओर पाइप के पास चला गया।

मैं रिक्शे पर चुपचाप बैठी रही। मुझे लगातार मुंशी नौजादिक लाल की घटना याद आ रही थी।

सम्पत मेरे गाँव का धोबी है। बचपन में हम इसे किसी और नाम से पुकारा करते थे जो मुझे अब याद नहीं पड़ता। इसके एक बूढ़ी माँ थी और एक लँगड़ा भाई। परिवार की सारी जिम्मेदारी इसी गरीब सम्पत पर थी। अगर मैं भूल नहीं करती तो सम्पत के निज का कोई गधा न था, वह दूसरे की पट्टीदारी पर काम करता था और कपड़े धोता था। वह जब बड़ा हुआ तो घर की इज्ज़त के लिए शादी करना उचित मालूम पड़ने लगा। लेकिन घर में बहू लाने के लिए जरूरी था कि दौलत के नाम पर घर में कम-से-कम एक गधा हो। अपनी कमाई और उधार से सम्पत ने एक गधा खरीदा और धूमधाम से कहीं शादी की। लेकिन शादी के अधिक से अधिक साल दो साल बाद उसकी औरत चल बसी।

इसी बीच सम्पत आया। उसने दो-तीन बार घंटी टुनटुनाई और उछल कर रिक्शे पर बैठ गया। "मालिक को यहाँ भी तो कोई न कोई धोबी होगा ही?" सम्पत के इस सवाल से लगा कि उसने इसे अकस्मात नहीं पूछा है।

"क्यों, क्या बात है?"

"नहीं, कुछ नहीं।" सम्पत ने बड़ी लापरवाही से कहा। उसकी कत्थई रंग की निमिस्तीन पसीने से भीग कर पीठ से चिपक गई थी। जब भी हवा का कोई झकोला आता था वह पीठ के बीच से पाल की तरह थोड़ी देर के लिए फड़क उठती। रिक्शा खामोश चला जा रहा था। कभी-कभी चैन उतर जाती तो वह रुक कर ठीक कर देता था।

"जब मेरी पहली जनाना मरी थी तो मालिक शायद गाँव पर ही थीं।" सम्पत ने टोह लेते हुए बात नये सिरे से शुरू की। "उसके मरने के बाद मैं दूसरी जनाना ले आया था, यह तो पता ही होगा।"

"नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम।" मेरे जवाब से सम्पत को कुछ बल मिला।

"नहीं तो मैं दूसरी भी जनाना ले आया था", उसने डरते-डरते कहा—"पहली को तो मालिक ने देखा ही था। दूसरी भी उससे कम सलीके वाली नहीं थी। हमें तो वह पहली से भी अधिक मानती रही।" कहते हुए सम्पत शरमा-सा गया। उसके खुरदुरे होठ का एक कोना जरा-सा सिकुड़ गया था।

जिस ढंग से सम्पत ने बात की, मुझे मुंशी नौजादिक लाल फिर स्मरण हो आये। मैंने चुटकी लेते हुए पूछा—"क्यों, वह अब कहीं भाग गई क्या?"

"भाग कर कहाँ जाती साहब, हाथ-पैर नहीं तोड़ देता।" सम्पत तड़प उठा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● उसके हाथ रिक्शे के हैंडल पर कस आये थे क्योंकि चलते हुए रिक्शे में एक-ब-एक ब्रेक लग गया था। फिर वह उदास-सा हो उठा, "मालिक, यह ससुरी भी पहली की तरह दग़ा दे गई।"

मैंने सहानुभूतिपूर्ण भाव से सम्पत के चेहरे की तरफ देखा जो उसके ही दाहिने कंधे पर जरा-सा झुक आया था। वह एकदम भावहीन था। उसकी खोई आँख ऐसी लग रही थी जैसे ललाट के नीचे गड्ढा बना कर किसी ने उसमें नीले शीशे की गोली पिला दी हो।

"सम्पत"--मुझे लगा कि उसे हमदर्दी की जरूरत है। वह भले ही बाहर से एकाध बार हँस लेता हो, लेकिन भीतर से सचमुच बड़ा दुःखी है--"तुमने अपनी ज़िन्दगी में जितना दुःख उठाया, कोई क्या उठाएगा ? तुम पर क्या-क्या पड़ी, कितनी आपदाएँ आयीं यह तुम्हीं जानते होगे। और सम्पत, इस जीवन में सुख मिलता ही किसे है ? जहाँ देखो, वहीं लोग रो रहे हैं।"

सम्पत को मेरे आश्वासन से सन्तोष नहीं हुआ। वह मुझसे कुछ और सुनना चाह रहा था--"अब तुम्हीं देखो, तुम्हारी ही उमर रिक्शा चलाने की है ?

सम्पत ने पीछे मुझे इतना कातर होकर देखा जैसे मैं उस पर दोष लगा रही हूँ। वह कुछ असमंजस में पड़ गया--"एक बात है मालिक"--वह सोचता हुआ अपराधी स्वर से बोला--"अब भी मैं जितना बोझ उठा लेता हूँ, जितना रिक्शा चला लेता हूँ, उतना दूसरे मोटे-तगड़े भी नहीं कर पाते हैं। और मेरी उमर...." वह थोड़ा रुक गया, "जब मालिक ने इस्कूल जाना शुरू किया था न ? उस समय पूरे बीस भी न थी।"

एक बार फिर मेरे विश्वास को जाँचने के लिए उसने मुड़ कर देखा। मैंने सम्पत के चेहरे पर ध्यान से अपनी आँखें घुमाईं। उसके बाल पकने लगे थे, गालों में उभार न था। और उसके नीचे के दो अगले दाँतों के बीच से उसकी जीभ झाँकने लगी थी। मुझे लगा कि मैं पहली बार एक आदमी को लड़कियों की तरह अपनी असली उम्र को चोरी करते हुए देख रही हूँ। हाँ, इतना जरूर था कि अब भी उसमें ताकत थी और उसे गरीबी न खा गई होती तो उसका शरीर अब भी मांसल और भरा होता।

"मालिक, मेरे बगल के दाँत बड़े मजबूत हैं। उनसे सूखे चने और मटर भी टूट जाते हैं। यही नहीं, मेरी आँखों की रोशनी भी मद्धम नहीं है"--सम्पत साबित करना चाह रहा था कि वह अभी बुड्ढा नहीं हुआ है। और इसके लिए वह मुझे विश्वास दिलाने की कोशिश कर रहा था।

यहाँ एक तिमुहानी थी। दाहिनी ओर नीम के पेड़ के नीचे कई लड़के गोलियाँ खेल रहे थे। अचानक एक लड़के के सड़क के बीच में आ जाने से रिक्शा रुक गया। सम्पत उसे गालियाँ देता हुआ ठेल कर आगे निकल गया।

वह इस बीच खामोश रह कर मेरे कुछ बोलने की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन मुझे कोई बात नहीं मिल रही थी।

"मालिक को मालूम ही है कि मैं किसी लड़ाई-झगड़ा के बाद पहली जनाना लाया था, सो मर गई। हमने कहा--भई मरना जीना तो लगा ही रहा है। एक नहीं दूसरी लायेंगे। दूसरी के लिए भी कम तूफान नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मचा।" यहाँ थोड़ी-सी चढ़ान थी। सम्पत हाँफने लगा था। थोड़ा आराम करके फिर बोला--"और जब वह भी चल बसी तो मालिक, मुझे भी ज़िद हो आई है कि देखें, तुम कितनी मरोगी। मैं एक फिर लाऊँगा। उसने कहते-कहते मुँह बन्द कर लिया और नाक से साँस लेने लगा। उसकी आँखों में चमक और चेहरे पर सख्ती आ गयी थी।

सम्पत की निमिस्तीन के पसीनों की बदबू के कारण मैंने नाक पर रूमाल रख ली थी और उसी के बारे में सोच रही थी। अचानक मुझे एक जिज्ञासा हुई--"सम्पत, इन दिनों तुम्हारे घर कौन-कौन हैं?"

"मालिक, केवल माँ और भाई। एक गधा था, लेकिन उस बेचारे ने भी चार-पाँच महीने पहले दम तोड़ दिया। भाई है जो कर्षा चला कर किसी तरह घर संभाले हुए है। और रहा मेरा सवाल"--बोलते हुए शायद सम्पत ने थूक घोंटने की कोशिश की और उसे खाँसी आ गयी। वह खाँसते-खाँसते इतना अधिक झुक गया जैसे वह कमर के पास से दो टुकड़े हो गया हो।

"भई, न हो, चुपचाप चले चलो, बोलो मत। तुम्हें ज्यादा मिहनत पड़ रही है।" मुझे डर लगने लगा कि इस गर्मी और घाम में कहीं सम्पत को कुछ हो न जाय। वरना राह चलते एक बला हाथ लग जायगी।

"नहीं मालिक, कुछ नहीं है। बस ज़रा-सा", उसने संयत और स्वस्थ होकर कहा, "मैंने इस दो महीने में कुल तीस रुपये जमा कर लिये हैं।" वह उत्साहित हो उठा।

मेरे दिमाग में एक दूसरी बात आ रही थी। "क्यों सम्पत, जहाँ तक मुझे याद है, पहली बार औरत लाने के लिए तुम्हें एक गधा लाना पड़ा था। तुम्हारी सारी गिरस्ती वही तो है। क्या अब.....?"

सम्पत को मेरी जिज्ञासा से एक झटका-सा लगा। वह चलते-चलते क्षण भर के लिए ठिठक गया। फिर आगे बढ़ता हुआ कुछ सोचने लगा। ऐसी बात नहीं कि उसका ध्यान उस तथ्यकी ओर नहीं गया रहा होगा, लेकिन मुझे अपने आप पर गुस्सा आने लगा था। मैं उससे बात करने में संकोच अनुभव कर रही थी।

मौसम ठंढा होने लगा था। धूप के कारण सड़कों पर जो एक मनहूसी थी, वह अब भंग होने लगी थी। सवारियाँ निकलने लगी थीं। ज्यों ही सम्पत का रिक्शा जगत-गंज पहुँचा, मैंने रोकने का संकेत किया। उसने ब्रेक दिया। यहाँ घर के लिए मुझे बस मिलती थी, मैं उतर गई और किराया के रूप में दो रुपये उसके हाथ पर रख दिये।

सम्पत ने बड़ी उदासीनता से उन रुपयों को लिया। मुझे लगा कि उसमें अब उतना उत्साह नहीं है। मैंने देखा--उसकी निमि-स्तीन के तमाम बटन खुले हुए थे। और सीने के घने अधपके बाल जिन्हें उसने कैंच कर छोटा कर दिया था--पसीने से भीग कर छाती की उभरी हुई हड्डियों से बुरी तरह चिपक गये थे।

मैं आकर बस-स्टैण्ड के पास खड़ी हो गयी। सम्पत धीमी चाल से चलता हुआ आकर मेरे सामने रुक गया और बड़ी आतुरता से कहा--"मालिक, भूलना मत, अपने धोबी से पूछ रखना", और बड़ा खिन्न-सा होकर लौट गया।

उसके बाद सम्पत फिर नहीं मिला। और तब से मैं यह निश्चित नहीं कर पा रही हूँ कि अपने धोबी से मैं किसके लिए पूछूँ! ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्पा पुरी

●

● जन्म : ८ मार्च १९३८, गुरदासपुर जिले के 'छुमान' नामक गाँव में।

● शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी) प्रथम श्रेणी १९६० में दिल्ली विश्वविद्यालय से।

● पिछले डेढ़ वर्ष से दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध 'जानकी देवी महाविद्यालय' में प्राध्यापिका के रूप में पढ़ा रही हूँ। साहित्यिक विधाओं में कविता में मेरा विशेष अनुराग रहा है।

आत्म - परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखों के गहरे सागर में डूब जाने की तीव्र इच्छा होती है लेकिन न जाने क्यों तुम्हारी स्मृति का कर्णधार मुझे डूबने से बचा लेता है। विवश आकांक्षाओं की रुँआसी आकृति को देखकर बाँध तोड़ कर स्वयं फूट पड़ती हूँ। आहों की तीव्र आँधियों से टक्कर खा-खाकर धैर्य्य का पर्वत भी चूर-चूर हो गया है। मन की रुग्णता कराहों के निर्दयी संसार में छटपटाते हुए मृत्यु की शान्ति को पुकार रही है।

लेकिन फिर भी स्मृतियों के ये कहने में कच्चे धागे लोहे की जञ्जीरों के समान मेरे व्यक्तित्व को जकड़े हुए हैं। सोचती हूँ एक वे भी स्मृति-कुंज हैं जो सौरभ के उन्मुक्त वातावरण में हर्ष-विभोर होकर झूमा करते हैं और एक ये मेरे स्मृति-पुंज हैं जो घनीभूत धुएँ की तरह चतुर्दिक फैलकर मेरी साँसों का गला घोंटने पर तुले हुए हैं। इस घुटन में मेरा जीना दूभर हो गया है। मेरी बेबस आँखें रोशनी के लिए तरस रही हैं। मैं इनसे दूर किसी निस्तब्ध भावना के लोक में खो जाना चाहती हूँ जहाँ संज्ञा-शून्य होकर मैं इनकी तीखी चुभन को भूल सकूँ।

लेकिन स्मृतियों की ये लम्बी कतारें फुंकारती हुई सर्पिणियों के समान मुझे डँस लेने के लिए बढ़ती चली आ रही हैं। मैं पूछती हूँ इनके विष में हमेशा के लिए सुला देने की शक्ति क्यों नहीं है? क्यों यह हलाहल मेरे रोम-रोम को चीरता हुआ असह्य वेदना के कोड़े मार-मार कर मुझे तड़पा रहा है। काश! मेरे इस छटपटाने का चीत्कार उसके कानों तक पहुँच पाता जिसके पास इन विषभरी स्मृतियों के दंश को दूर करने का मंत्र है। न जाने मेरे देवता ने अपने इस मंत्र को किस दिन के लिए सम्हाल कर रखा है? इतनी कठिन परीक्षा लेकर भी क्या तुम्हारा 'अहं' नहीं पिघला! परीक्षा की मर्माहत कठोरता से मुझे इतना निराश मत करो कि जिस दिन तुम मेरी तपस्या से मुग्ध होकर वरदान देने आओ उस दिन तुम्हारे आने से पूर्व ही मेरी आँखें सदा के लिए बन्द हो जायँ।

विष भरी स्मृतियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ३२ का शेष : बेचारी राधा)

श्रीमती जी बोलीं, "आप भी खूब हैं, एक प्याला पीकर जायगी ।"

तब नरोत्तम बाबू ने पुकारा, "सखाराम, चाय का पानी चढ़ा दो ।"

लेकिन रुकने को मेरा मन नहीं हुआ । कुछ अजीब-सी खिजलाहट मन में भर गयी । उठते और यथासम्भव हँसते हुए मैंने कहा, "अब मैं जा रही हूँ, चाची प्रतीक्षा करती होंगी ।" और ब्लाउज़ों की गठरी बगल में लेकर और दोनों को नमस्कार कर मैं पलटी ।

"सखाराम, पानी उतार दो ।" पीछे से नरोत्तम बाबू की आवाज़ सुनी ।

मेरी आँतों में चूहे दौड़ रहे थे और मेरे कानों में नरोत्तम बाबू के शब्द गूँज रहे थे— 'चढ़ा दो ।' 'उतार दो !' 'चढ़ा दो । 'उतार दो ।'...

●●●

आस्ट्रेलियन कथा-लेखिका कैथरीन मैन्सफील्ड

जिन थोड़े से लेखकों, कवियों और रचनाकारों की वजह से आस्ट्रेलियन साहित्य का स्थान विश्व-साहित्य में आज गिना जाने लगा है उनमें कैथरीन भी आती हैं । एक जगह उन्होंने लिखा है—"वास्तव में हमारे ऊपर इतना दबाव है कि हम लिखने की बात बहुत देर तक सोचते रह जाते हैं । उदाहरण के लिए आर० को ही लो । वह कितनी अच्छी कविताएँ लिख सकता है । जब मैं उससे पूछती हूँ कि वह क्यों नहीं लिखता, तो वह हँस कर चुप हो जाता है—'कैथरीन ! क्या मेरा जीवन इतना सस्ता है कि उसे मैं हज़ारों साल की कला से जूझते हुए, एक नयी राह निकालने में बिता दूँ ? तिस पर भी पता नहीं वह मौलिकता मुझे मिल सकेगी या नहीं । नहीं, कैथरीन, मुझे ख़ुशी-ख़ुशी जीने दो ।'... और इसी दबाव को मैं भी झेल रही हूँ—कला के इसी बोझ को ।"

कला का बोझ और मौलिकता की प्यास कैथरीन के जीवन के अन्त तक लगी रही । इसके कारण उसे प्रकाशन के क्षेत्र में भी कष्ट उठाने पड़े ।

उसकी पहली कहानी १९०७ में लंदन के एक अंग्रेज़ी पत्र में प्रकाशित हुई थी । उसके बाद लगातार कई वर्षों के प्रयत्नों के बावजूद कोई भी मौलिक रचना, किसी पत्र में प्रकाशित नहीं हुई । सन् १९१२ में जब, वह कुल २४ साल की थी, उसने यह प्रतिज्ञा की कि वह अब कुछ नहीं लिखेगी । आर० ठीक ही कहता था । लेकिन लंदन जैसे नगर में भी कैथरीन का भयानक अकेलापन...आख़िर ऊब कर उसने अपनी शिल्प-दृष्टि की ओर से आँखें मूँद कर, कभी न छपाने के लिए कहानियाँ लिखनी प्रारम्भ कीं । यह क्रम कुछ दिनों तक ही चला । एक दिन उसके एक मित्र ने उसकी अनछपी कहानियों की एक पाण्डुलिपि, एक प्रकाशक को दिखाई । प्रकाशक ने तुरत उसे मंज़ूर कर लिया ।

इसके बाद उसके कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें से कुछ विश्व के श्रेष्ठ कथा-संग्रहों में से माने जाते हैं ।

—दूधनाथ सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवकी रामपाल

आत्म - परिचय

•मेरा जन्म अल्मोड़े में हुआ और मैंने वहीं मिशन स्कूल में शिक्षा पाई। मध्यवर्गीय होने पर भी मेरे पिता आधुनिक विचारों के हैं। प्रथम श्रेणी में हाई स्कूल पास करने के बाद, मैं लखनऊ इजाबेला थोबर्न कालेज में भेजी गई। इन्टर और बी० ए० वहीं से पास कर, एम० ए० और एल० एल० बी० मैंने लखनऊ यूनिवर्सिटी से किये। बी० ए०, एम० ए० और एल० एल० बी० में मुझे प्रथम श्रेणी मिली। लिखने का शौक कालेज से हुआ। यूनिवर्सिटी में कहानियाँ लिखीं जिनमें दो-तीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुईं।

•सन् १९५१ में मेरी नियुक्ति लखनऊ यूनिवर्सिटी के अंग्रेज़ी विभाग में अध्यापन के लिये हुई और सन् १९५३ में मुझे ब्रिटिश कौंसिल स्कॉलरशिप मिला और साल भर मैंने लीड्स यूनिवर्सिटी, इंगलैण्ड में अंग्रेज़ी विभाग में अनुसन्धान का कार्य किया।

•१९५६ में दो पुस्तकें बच्चों के लिये प्रकाशित हुईं : 'बम्बई से टिलबरी तक' और 'अंग्रेज़ों का देश।

•१९६० में मेरा विवाह श्री सत्येन्द्र नाथ रामपाल से हुआ। मेरे पति भारतीय वायुसेना के पलाइंग विभाग में हैं। विवाह के बाद मैंने यूनिवर्सिटी से इस्तीफा दे दिया। पारिवारिक व्यस्तताओं से जो समय बचता है वह लिखने-पढ़ने में ही व्यतीत होता है। अंग्रेज़ी में भी कहानियाँ और लेख लिखती हूँ।

स्नेह की भूख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● बाहर पानी की रिमझिम झड़ी लगी थी। राधा को कैरिन की याद आ गई, बहुत दिनों से उसका पत्र न आया था और कैरिन के पत्र न आने पर राधा को चिन्ता और बेचैनी होने लगती। पिछले पत्र में उसने लिखा था कि उसे यूनिवर्सिटी छोड़नी पड़ी है और उसने नौकरी कर ली है। फिलॉसफी में अन्वेषण के दो साल पूरे करने पर उसे शायद पुरानी परिस्थिति से बाध्य होकर यूनिवर्सिटी छोड़नी पड़ी हो।

कैरिन और राधा की भेंट विलायत में हुई थी। राधा हिन्दुस्तान और कैरिन जर्मनी से वहाँ पढ़ने गयी थीं। दोनों के स्वभाव में इतनी भिन्नता थी जितनी कि दो व्यक्तियों में हो सकती है, फिर भी दोनों में घनी मित्रता हो गई। जब वह पहले-पहल छात्रालय में पहुँची तो उसने अंग्रेज लड़कियों को कैरिन की बुराई करते सुना कि वह प्रश्न पूछ-पूछ कर नाक में दम कर देती है, और यूरोपियन होने के बावजूद भी चीनी, हिन्दुस्तानी और अरबी लड़कों से दोस्ती करती है। राधा ने खाना खाते समय उसे देखा अवश्य था किन्तु उनकी बातचीत न हुई थी। कैरिन देखने में बड़ी सुन्दर थी, गोरे चेहरे पर हल्की ललाई, सर पर सुनहरे बालों का झुरमुट और नीली-नीली आँखें। डील-डौल लम्बा-चौड़ा, शरीर स्वस्थ और सुडौल था। उसमें एक अतृप्त जिज्ञासा थी और विभिन्न देशों के विषय में विस्तृत ज्ञान।

राधा विलायत के छात्रालय में घबरा उठी। वहाँ के जीवन में अपने को खपाने में उसे अत्यन्त कठिनता का अनुभव हुआ। हिन्दुस्तान में तो घर का काम करने के लिए दो नौकर, कपड़ा धोने के लिए धोबी, घूमने के लिए मोटर, लाड़-दुलार करने के लिए माँ-बाप, भाई-बहन और मन-बहलाव के लिये हमजोली सखियाँ थीं। घर पर तो उसे कभी चाय भी नहीं बनानी पड़ती थी और यहाँ अपना सारा काम अपने ही सर आ पड़ा। जब पहले-पहल वह अपने कपड़ों में स्त्री करने लगी तो उसका अनाड़ीपन देख कर लड़कियाँ हँस दीं। राधा को अब और भी झेंप आई कि इनसे कैसे पूछे कि कपड़ा निचोड़ने की मशीन से कैसे काम लिया जाता है। यह मशीन तो दूर की बात रही, उसने तो पहले कपड़े धोये ही न थे। वह लड़कियों से छिप कर रात को कपड़े धोती। पहले दिन इस्त्री की छोटी-सी मेज में छः गज की साड़ी को सँभालने में असमर्थ हो उसकी आँखों में आँसू आ गये थे। क्यों आ गई वह अपना देश छोड़ कर? उसे अपना अकेलापन तो बहुत ही अखरता। और छात्राएँ बातचीत तो करतीं मगर केवल मतलब की; आत्मीयता किसी से न हो पाई। जो भी खाली समय मिलता उसे लड़कियाँ अपने पुरुष-मित्रों के साथ व्यतीत करतीं---सिनेमा जाना हो, बाहर खाना हो या सैर करना हो। वह कमरे में अकेली बैठ कर पढ़ने से थक जाती तो लम्बी-चौड़ी चिट्ठियाँ लिखती और घर की याद कर रो देती।

एक दिन बाहर घना कोहरा छाया था और राधा का मन अकेले में उदासी से घबरा उठा। कोट पहन कर वह टहलने निकल रही थी कि दरवाज़े पर कैरिन से मुठभेड़ हो गई और बाहर जाने का ख़याल छोड़ कर राधा कैरिन को चाय पीने अपने कमरे में बुला लाई। चाय पर गप-शप और इधर-उधर की बातें होने लगीं तो राधा को बड़ा आनन्द आया। कैरिन मामूली-सी बात को भी बड़े ही मनोरंजक ढंग से कहती। चाय पीने के बाद कैरिन ने झट से बरतन जमा कर लिये और बोली, "मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धो लाती हूँ। तुम्हें तो बरतन धोने की आदत न होगी।" राधा के बहुत मना करने पर भी वह बरतन धोकर ही मानी और बोली, "तुम बड़ी नाज़ुक हो। यहाँ के भारी काम तो तुमसे न होते होंगे। मदद की ज़रूरत हो तो मुझे बुला लेना।"

राधा को आश्चर्य हुआ। अँग्रेज लड़कियों ने तो उसका मज़ाक ही उड़ाया था कि हिन्दुस्तान में तो तुम्हारे दर्जनों नौकर होंगे। यहाँ कैसे काम कर लेती हो? किसी ने उसे मदद न दी थी।

अवसर मिलने पर अब राधा कैरिन को अपने कमरे में बुला लेती। टहलने भी कभी-कभी साथ चले जाते। दो-एक बार दावत पार्टियों में भी इन दोनों का साथ हो गया तो राधा की समझ में न आया कि क्यों अँग्रेज लड़कियाँ कैरिन से इतना जलती हैं। दावतों में पुरुषों का झुण्ड कैरिन के चारों ओर होता। एक तो वह देखने में बहुत आकर्षक थी और दूसरे, देश-विदेशों के विषय में, साहित्य, संगीत एवं कला के सम्बन्ध में उसे जानकारी बहुत थी। वह हर व्यक्ति से बात कर लेती। राधा उसे छेड़ती कि, "कैरिन, तुम्हें तो किसी राजदूत की पत्नी होना चाहिए। तुम जानती हो कि किस व्यक्ति से कैसे बातें करते हैं।"

एक दिन बाज़ार से लौटते समय राधा को कैरिन मिल गई। उसने राधा के हाथों में लदे थैलों को देखा तो फौरन उसके हाथों से ले लिये। "इतने भारी हैं कि तुम ठीक से चल भी नहीं पा रही हो। मुझे क्यों नहीं बुला लिया? मैं साथ चली जाती। तुम्हें सामान नहीं ढोना चाहिए।"

"जब तुम ढो सकती हो तो मैं क्यों नहीं ढो सकती?"

"मुझे तो आदत है। मैंने तो बचपन से वह भारी काम किये हैं जिनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं। मैं तो तुम्हें भी उठा ले चलूँ।"

कमरे में पहुँच कर राधा ने उससे चाय पीकर जाने को कहा। जब तक राधा कोट उतार कर सामान ठीक करती, कैरिन फौरन केतली में पत्ती डाल कर किचन से खौलता पानी डाल, ले आई और गरमागरम टोस्ट बना कर उसने राधा को खिलाये। बातों-बातों में वह राधा से बोली, "तुमने मुझे हिन्दुस्तानी चाय का जो पैकेट दिया था उसे मैंने सँभाल कर रख छोड़ा है! जर्मनी जाकर बनाऊँगी और तुम्हें याद करूँगी। इस छात्रालय में तुम्हीं एक ऐसी हो जिसने मुझसे स्नेह से बातें की हैं। जानती हो, कोई अँग्रेज लड़की मुझसे सीधे मुँह बात नहीं करती, वार्डन तक ने मुझे इस बात पर ताना दिया कि मेरी मित्रता एशियाई लोगों से है। यह लोग नहीं समझते कि पूर्व के लोग कितने स्नेहशील होते हैं और कितनी इज्ज़त से बात करते हैं। मैं तो स्नेह की भूखी हूँ।"

राधा ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा; वह कह रही थी, "तुम नहीं जान सकती कि स्नेह-रिक्त जीवन कैसा होता है! तुम्हें तो प्यार की कमी नहीं रही। माँ-बाप की दुलारी हो, भाई-बहन स्नेह करते हैं। लेकिन मुझे तो घर में स्नेह मिला ही नहीं।"

"लेकिन कैरिन, माँ तो सभी को प्यार करती हैं।"

"मेरी माँ ने कभी मुझे प्यार नहीं दिया। वह मेरे भाई को इतना चाहती थी कि मुझे सदा उसके राह का रोड़ा समझा। मैंने तो छुटपन से यही सुना कि यह लड़की क्यों पैदा हुई? अगर यह न होती तो लड़का सुख से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता। यह बात न थी कि हमें रुपये-पैसे की कमी रही हो। मेरे पिता की आमदनी अच्छी है। जब हम भाई-बहन खाना खाने बैठते तो मेरी माँ मेरे भाई की रोटी में तो जैम लगाती पर मुझे सूखी ही थमा देती। पिता तो मुझे प्यार करते थे मगर एक तो वह घर पर अधिक नहीं रहते थे और दूसरे अगर वह माँ के सामने मुझे तनिक भी दुलारते तो माँ को हिस्टीरिया हो जाता। मेरी माँ बड़ी सुन्दर हैं और उनके चारों ओर अब भी पुरुषों का झुण्ड लगा रहता है। उन्हें यह बर्दाश्त नहीं होता कि कोई मेरी तारीफ़ करे। पिताजी को शायद मालूम न था कि माँ घर के सारे बरतन भी मुझसे धुलवाती है और बिस्तरे भी मुझसे बनवाती है।

मेरी माँ से मेरी तारीफ न सही गयी और उस रात उसने मुझ पर छुरे से आक्रमण किया। अगर मेरे भाई ने शोर न मचाया होता, तो आज मेरे मुँह में भद्दे निशान होते।"

राधा को विश्वास न हुआ कि कोई माँ अपनी जाई बेटी से इस प्रकार दुर्व्यवहार कर सकती है।

"कैरिन, तुम्हारी माँ सौतेली तो नहीं है?"

कैरिन हँस पड़ी। "नहीं जी, माँ अपनी ही है और मैंने माँ की ही सूरत पायी है। अगर मैं कुरूप होती तो शायद वह मुझसे स्नेह कर सकतीं।"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह फिर बोली, "लड़ाई के दिनों में बम फटने से मेरे भाई की मृत्यु हो गई। अब तो मुझे जीना और भी दूभर हो गया। रात-दिन, उठते-जागते मेरी माँ मुझसे यही कहती कि तू क्यों न मरी। मेरे लड़के को खा गई और तब भी पीछा नहीं छोड़ती। एक दिन पिताजी के मुँह से निकल पड़ा कि अब तो कैरिन ही हमारा सहारा है। उस दिन तो माँ ने ज़हर खाने की धमकी दी और मुझसे बोलीं कि तू मेरी संतान नहीं, सौत है।

माँ के यह शब्द मुझसे नहीं सहे गये और रात के सन्नाटे में मैं घर से निकल भागी। तीन साल तक मैंने एक अमेरिकन परिवार में नौकरानी का काम किया और वहाँ मुझ पर जो बीती, मैं ही जानती हूँ। सभी भारी काम मुझे करने पड़ते थे। मैंने वह भारी बक्से उठाये हैं जिन्हें तुम हिला भी नहीं सकतीं।"

उसकी कहानी सुन कर राधा की आँखें भर आयीं। "तो अब तुम्हारे पढ़ने का खर्च कौन देता है?"

"मेरी माँ। मेरे घर छोड़ कर जाने के मेरे पिता बड़े दुखी रहने लगे और उनके मित्रों ने मेरी माँ को बहुत समझाया। अब वह थोड़ा-बहुत पैसा भेज देती हैं। सात-आठ महीने में मैं भी उनसे मिल आती हूँ, मगर घर पर रहती नहीं, कभी-कभी चोरी-छिपे पिताजी मुझे देख जाते हैं, कपड़े-लत्ते बनवा देते हैं। और छात्रों के घरों से घर की बनी खाने की चीज़ें आती हैं, माँ-बाप मिलने आते हैं, चिट्ठियाँ आती हैं। मेरे घर से महीने के आरम्भ में सूखे पैसे आते हैं जो कभी पूरे नहीं पड़ते। मैं लोगों के कपड़े सीकर खर्च पूरा करती हूँ।"

° ° °

बाहर पानी की झड़ी लगी थी। सुबह राधा की माँ ने आकर कहा कि, "आज छुट्टी बहुत है। तुम अभी बिस्तरे से न उठना; मैं चाय वहीं मेज़ पर भेज दूँगी।"

बिस्तरे में लेटे-लेटे राधा को कैरिन का ख्याल आया। न जाने वह क्या कर रही होगी।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनीति गुप्ता

●

आत्म – परिचय

● आत्म-परिचय क्या लिखूँ ? मुझे कॉले (Cowley) की एक पंक्ति याद आ जाती है कि 'अपने बारे में लिखना सबसे कठिन है ; कहीं तो आत्म-प्रशंसा के गर्त में गिरने का भय रहता है, और कहीं आत्म-भर्त्सना की आशंका रहती है।'

● १९६२ में मैंने जीवन का बीसवाँ वसंत देखा, क्योंकि मेरी आदत है केवल वसंत देखने की ; पतझड़ की मैं परवाह नहीं करती, वर्षा को मैं एक क्रम समझती हूँ, शीत अप्राकृतिक है और ग्रीष्म मेरे समीप रहते हुए भी मुझसे दूर है। वसंत आये और गये। हरी कोपलें उगीं और झर गयीं। परंतु मैंने तो केवल सृजन का रूप देखा ; देखा शाश्वत सौन्दर्य जो अमिट है।

● यही वसंत मेरे साहित्य में भी है। हाँ, साहित्य में, जो सहित जीवन का अंश है। इसी का मैं निरन्तर दर्शन करती हूँ—यही मेरा दर्शन है। गति में मेरा विश्वास; क्योंकि सर्वाधिक गतिमान भास्कर को जब प्रणाम करती हूँ तो उनकी द्विति मेरी गति हो जाती है।

● शिक्षा मेरा अंग है। इसलिए नहीं कि मैं कलकत्ता-विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एम० ए० की छात्रा हूँ, वरन् इसलिए कि शिक्षा में प्रेरणा-शक्ति है, उसमें विकास की एक ऐसी समष्टि है जिसका अंग मैं आजीवन रहूँगी। शिक्षा मानव-मूल्यों की शक्ति है और 'शिक्षालय—यत्र विश्वम् भवत्येक नीड़म्।'

● मैं यदा-कदा लिखती भी हूँ, इसलिए कि बिना लिखे रह नहीं सकती। इस प्रयास में यदि साहित्य का सृजन हो जाए तो मेरा क्या दोष !

मैं हूँ व्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप ?
वत्स, व्यक्ति नहीं विचार ;
समझा नहीं, प्रभु !
प्रवंचना और परम्परा ने तुम्हारा ज्ञान है
धुँधला कर दिया,
तो ?
तो, सुनो मेरी आत्म-कथा--
"मैं जन्मा एक द्वीप पर,
कुहासे में,
मेरी माँ मत्स्यगंधा,
मेरे पिता पराशर,
हुआ मेरा जन्म पराशर के पराग से,
औ' मत्स्य के स्वरूप से"
समझे कुछ--संभवतः नहीं,
तो सुनो--मूर्ख टीकाकारों ने मुझे देखा नहीं,
समझा नहीं ;
समझ सकते नहीं,
वे क्या समझ सकते शाश्वत सत्य ?
जो पकड़े रहते निरी कहानियों की डोर,
जो खोजते रहते प्रेमी-प्रेमिकाओं का वार्तालाप;
परम्परा ! तू ही मूर्खता है ;

मेरा जन्म द्वीप में,
अर्थात् मैं सबसे पृथक्
एवं सबसे सम्बन्धित--
तारल्य भाव से ;
मैं पराशर-सुत
अर्थात्--मैंने परा-अपरा का भेद है
त्याग दिया,
और मेरी माँ ! मत्स्यगंधा ! !
अर्थात्
जो तत्त्वपूर्ण, तथ्यपूर्ण,
जिसमें न गंध-सुगंध का भेद,
जो नित नवीना, अखंडिता,
वही सृजन कर सकती मुझे--
मैं जो शाश्वत--मौलिक, शाश्वत-विचार,
शाश्वत-प्रभावपूर्ण
मैं जो सूक्ति और टीका--साथ-साथ ;
मैं जो लेखनी औ' सिद्धि,
मैं जो ग्रहण-शक्ति का आधार,
मैं जो घूमता हूँ युगों से,
जब सहस्रों बार--
सृष्टि का हुआ लय ;
किन्तु मेरी गद्दी आज भी--
व्यास गद्दी है ;
कुछ समझा मेरा नाम ?
मैं हूँ अभिव्यक्ति,
जिसे मूर्खता से लोग समझते हैं व्यक्ति ;
और मेरा कुल--
पाण्डवों और कौरवों का नहीं
वरन्
विचार का, दर्शन का, शृङ्खला का ;
तेइस ऐसी ही संतानें हुईं मेरी ;
प्रत्येक ने भारत को देखा,
भिन्न-भिन्न रूप से,
भिन्न-भिन्न काल में,
और योग दिया--
समझने में--
महाभारत को ;
महाभारत !
मैंने ही तो कहा है--
"जो महाभारत में है वह भारत में है,
जो महाभारत में नहीं है--
वह भारत में नहीं है"
ऐसा ही महाभारत
मैंने सोचा था,
और लिखा भी--
मैंने और मेरी संतानों ने ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ही महाभारत में हुए कृष्ण
फिर मूर्खता करोगे,
उसे भगवान समझ कर ;
एक व्यक्ति समझ कर ;
कृष्ण !
अर्थात् कर्म,
अर्थात् कर्म-दर्शन
अर्थात् निष्काम योग
अर्थात् कर्म में भक्ति की अभिव्यक्ति
अर्थात् कर्म की समष्टि ;
ऐसे ही कृष्ण ने--
गौवों के साथ जन्म लिया,
गोवर्द्धन को उठाया,
कालीय का दमन किया
रास किया गोपियों के साथ
और वध किया कंस का ;
न समझो--
यह है एक कहानी,
जिसमें है शृङ्गार फूटता,
काम-लोलुपता का चित्र दीखता,
समझो,
सूक्ति-पूर्ण-वाक्य-प्रदर्शन की प्रणाली,
समझो !
संकेत को न कि शब्द को ;
कृष्ण की गौ !
अर्थात् पृथ्वी ;
कृष्ण का गोवर्द्धन !
अर्थात् संकल्प
कृष्ण का कालीय नाग
अर्थात् विषमय प्रचार,
और कृष्ण का कंस--
इतिहास का राजा होते हुए भी
कृष्ण का सबसे बड़ा--
दार्शनिक शत्रु ;

उसी महाभारत में
कृष्ण और अर्जुन
कुरुक्षेत्र के रण-क्षेत्र में,
कृष्ण !
शक्तिशाली अश्व की रास को हाथ में थामे
हाँ वही कृष्ण--
गौ का कृष्ण,
अब.....
अश्व का कृष्ण हो गया
अपने द्वारा नहीं
माध्यम शक्ति--
भारत के भारत द्वारा ;

वही कृष्ण--
फिर महाभारत की परिसमाप्ति पर
लेटा हुआ--व्याधे के तीर से आहत--
हाँ तीर से। जिसमें लोहा है
हाँ लोहा--मूर्त्त कर्म,
बहिष्कृत--अध्यात्म,
हाँ उसी लोहे ने कृष्ण को मार दिया
युगों से जनमते हैं ऐसे कृष्ण
व्यक्ति नहीं समष्टि,
व्यक्तित्व नहीं विचार,
तो समझ गये--
कंसत्त्व और कृष्णत्त्व ;

तो मैं सृजनकर्त्ता,
युगों से--
इसी कृष्ण का ;
मैं मौलिक हूँ,
मैं विशद् हूँ,
मैं हूँ प्रभावपूर्ण ;
मैं हूँ व्यास !

■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यावती मिश्र

आत्म - परिचय

- जन्मस्थान : गौर (पोखराचां) जिला कानपुर। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। पिता तथा भाई हिंदी के विद्वान थे। उनके ही प्रभाव के फलस्वरूप बचपन से साहित्य की ओर रुचि रही। १३ वर्ष की आयु में विवाह हो गया। दो-तीन वर्ष के बाद पति पं. मदन मोहन मिश्र का अवसान। वे मध्य प्रदेश में सहायक अभियंता थे।
- वैधव्य के बाद ही लिखना प्रारंभ किया। लगभग १५ वर्ष तक मौन साधना की। उसके उपरांत सन् ४५ से पत्र-पत्रिकाओं में लिखना प्रारंभ किया। इस समय तक २००० रचनायें पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। पुस्तकें पाँच प्रकाशित हुई हैं—ज्योति, प्रतीक्षा, श्रद्धा, मुक्ति तथा कठोपनिषद का पद्यानुवाद। कठोपनिषद के अतिरिक्त शेष चारों गीत-संग्रह हैं। समय-समय पर रेडियो-वार्ता तथा गद्य रचनाएँ भी लिखीं।
- मैंने अध्ययन अधिक नहीं किया। वे ही कविताएँ पढ़ीं जो पसन्द आयीं। कहानी और उपन्यास मनोरंजन के लिए पढ़े। वैसे महादेवी जी की कविताएँ मुझे बहुत पसन्द आयीं।
- गत कुछ दिनों से कृष्ण-भक्ति की ओर मन विशेष उन्मुख है।

महादेवी के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्थान : संपादक 'स्वस्तिका' का कार्यालय। संपादक जी अपनी डाक देख रहे हैं।)

●

(विमला का प्रवेश)

संपादक जी: आइये-आइये विमला जी। बहुत वर्षों बाद दर्शन हुए इस बार! बस तभी लगभग चार-पाँच वर्ष पूर्व मेरठ के कवि-सम्मेलन में आपके दर्शन हुए थे। याद है न आपको कि हमलोग छावनी में डिप्टी साहब के बँगले में टिके थे।

विमला: नमस्ते जी, नमस्ते! मुझे तो खुशी है कि आपने पहचान तो लिया मुझे! मैं तो समझती थी कि मुझे नये सिरे से आपको अपना परिचय देना होगा। भला मेरठ के कवि-सम्मेलन की बात मैं भूल सकती हूँ! क्या खूब जमी थी आपकी कविता!

संपादक जी: रहने भी दीजिये। आपके सरस और सुरीले कंठ से पढ़े गीतों के आगे मेरी ऊबड़-खाबड़ कविता खाक जमेगी। पर हाँ, बड़ा रंग रहा उस कवि-सम्मेलन में। (**मुस्कराते हैं।**)

विमला: आप भी बस वही हैं। ....हाँ आप 'स्वस्तिका' में कब से आ गये? आप तो पहले शायद अपना पत्र 'चण्डूल' निकाल रहे थे। (**कमरे में चारों ओर देखते हुए**) यहाँ तो आपके बड़े ठाट हैं।

संपादक जी: बस-आ फँसा हूँ। मैं तो नौकरी को ही एक जंजाल मानता हूँ। पर क्या करूँ, संगी-साथियों और उच्च अधिकारियों ने इतना दबाव डाला कि लाचार हो गया। दूसरों की बात न मानूँ तो भी बनता नहीं। ठाट क्या, किसी तरह से दिन काट रहा हूँ। हाँ मैं तो यह पूछना भूल ही गया कि आप लखनऊ आयीं कब और कहाँ ठहरी हैं?

(**टेलीफोन की घंटी बजती है**)

संपादक जी : (**टेलीफोन पर**) हाँ, ...बोल रहा हूँ....कहिये कुमार जी क्या हाल है? कितने फार्म छपने को गये? ....ऐसे काम नहीं चलेगा।.....डट कर मेहनत करिये।.....मेरे पढ़े प्रूफ़ों को भी पढ़ लीजिये।....अच्छा...हाँ उस दिन मैंने कहा था कि विमला जी से एक कविता मँगाने के लिए लिख दीजिए।....आप भूलते बहुत हैं।....नमस्कार.....(**टेलीफोन रख कर**)

संपादक जी : कभी-कभी ऐसे सहायकों से पाला पड़ जाता है कि तबीयत रो जाती है। ऐसा अनाड़ी पड़ा है मेरे जिम्मे। आम बताओ, इमली सुनता है।

विमला: कौन हैं आपके सहायक?

संपादक जी: 'किरण' के भूतपूर्व संपादक कुमार शर्मा।

विमला : कुमार शर्मा....अरे कुमार शर्मा! जिनके चरणों में बैठ कर मैंने कविता लिखनी सीखी। मेरे गुरू! कुछ न कहिये उनके विषय में। वह मेरे लिए चिरादृत हैं।

संपादक जी : (**हतप्रभ से**) हटाइये इन बातों को। हाँ, आप नगर में कब आयीं?

विमला : आज सुबह ही आयी। एक सहेली के यहाँ ठहरी हूँ। मेरे साथ मेरी बड़ी लड़की पप्पी है। उसे विश्वविद्यालय में एम. ए. में भरती कराने के लिए लायी हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक जी : बहुत अच्छा, बहुत अच्छा !

(घंटी बजाते हैं)

(चपरासी का प्रवेश)

संपादक जी : विमला जी के लिए चाय लाओ। एक ही चाय लाना और कुछ ताजा मीठा-नमकीन। गरम समोसे हों तो दो ले आना।

चपरासी : मीठा नमकीन तो होगा नहीं, चाय लाता हूँ। एक कप लाऊँ ?

संपादक जी : तुम्हें सपना आता है कि क्या चीज़ है और क्या नहीं। खैर जाओ विमला जी के लिए जो कुछ मिल सके लाओ।

विमला : अपने लिए भी तो कुछ मँगवाइये।

संपादक जी : मेरा तो आज मंगल का व्रत है। केवल शाम को भोजन करूँगा।

(चपरासी मुस्कराता है)

विमला : मैं तो अभी खाना खाकर ही आ रही हूँ। मेरे लिए तक्ल्लुफ न करिये। फिर मैं तो खिलाने-पिलाने के लिए पप्पी को आपके शहर में ही छोड़े जा रही हूँ।

संपादक जी : **(चपरासी से)** अच्छा जाओ। विमला जी को शीतल जल ही पिलाओ। और हाँ, विमला जी, तो पप्पी भरती हो गयी न ? कोई दिक्कत हो तो मुझे बताइए। आप तो जानती ही हैं कि मैं तो जरूरत पड़ने पर चोटी के लोगों को ही पकड़ूँगा।

विमला : भरती तो हो ही जायेगी, पर होस्टल में जगह पाने की कठिनाई है। उसी की चिन्ता में हूँ। सयानी लड़की है, रिश्तेदार के यहाँ रखना नहीं चाहती।

संपादक जी : मैं कैसे कहूँ कुछ। पर जब कभी भी मेरे योग्य सेवा की जरूरत हो मैं तैयार हूँ। लल्ली को इस बार यहाँ लाना चाहता था, पर उसकी माँ तैयार नहीं हुई। न लल्ली यहाँ पप्पी ही रहेगी मेरे पास।

विमला : बहुत-बहुत धन्यवाद। विवशता आयी तो कष्ट दूँगी आपको।

संपादक जी : इसमें कष्ट की क्या बात है ? जैसी लल्ली वैसी पप्पी। मकान काफी बड़ा है ही और नौकर खाना बनाता ही है। फिर इस विश्वविद्यालय के अधिकांश प्राध्यापक हमारे लेखक भी हैं।

विमला : अभी तो मैं यहाँ दो-तीन दिन हूँ। फिर जैसी स्थिति होगी बताऊँगी। इस समय तो आज्ञा दें।

संपादक जी : अभी जाने की बात कैसे ? कोई कविता तो देती जाइए। आखिर स्वस्तिका आपकी कविताओं से कब तक वंचित रहेगी ?

विमला : जहाँ तक मुझे स्मरण है आपके कार्यालय में मेरी कुछ कविताएँ दो-तीन माह से पड़ी हुई हैं। उन्हीं को छाप डालिये।

संपादक जी : छोड़िये भी उन कविताओं को। कोई नई कविता दीजिये। सच कहूँ हूँ आपकी कविताएँ मुझे बहुत पसन्द आती हैं। शब्द-चयन, भावाभिव्यक्ति अनुभूति और माधुर्य जो मुझे आपकी कविता में मिलता है वह किसी कवियित्री की रचना में नहीं मिलता। सच बात कहूँगा तो आप हँसेंगी।

विमला : कह डालिये, मन की बात मन न रखिये।

संपादक जी : महादेवी के बाद हिन्दी

ज्ञानोदय : मई १९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप ही हैं। और वैसे तो गिनती के लिए.....

विमला: यह आपकी उदारता है। वर्ना मैं तो.....। अभी तो कल आऊँगी, तब कविता लेती आऊँगी। कहें तो चित्र तथा संक्षिप्त परिचय भी भेज दूँ। **(शीला का प्रवेश)**

संपादक जी: आइये, आइये, शीला जी।

विमला: आइये शीला जी। प्रयाग से कब आयीं?

शीला: अब तो स्थायी रूप से ही प्रयाग से आ गयी हूँ। मेरी बदली हो गई है यहाँ रेडियो पर।

संपादक जी: बधाई, बधाई! आज तो चाय पी ही लीजिये। बहुत दिनों बाद सौभाग्य मिला है आपके दर्शनों का।

शीला: इस समय तो रेडियो-स्टेशन जा रही हूँ। आज ही चार्ज लेना है। फिर आऊँगी।

संपादक जी: चाय किसी और दिन सही। पर मेरे पत्र के लिए कविता.....।

शीला: अभी एक सप्ताह पूर्व ही मुझे यहाँ से कविताएँ वापस मिली हैं। फिर भी यदि आप कहते हैं तो कभी दे दूँगी। यहीं तो रहना है अब मुझे।

संपादक जी: माफ करियेगा, मेरे सहायक महोदय जरा सनकी टाइप हैं। और स्टेनो मूढ़मति। सो उन्होंने बिना मुझे दिखाये ही आपकी कविताएँ वापिस कर दीं। भला मैं आपकी कविता वापिस कर सकता था? आपकी कविता में मीरा की तन्मयता, सहजो बाई की सरलता, ताज की अनुभूति और सरोजनी नायडू का गेय तत्त्व है।

विमला: और महादेवी का कोई प्रभाव नहीं?

संपादक: **(मानो विमला की बात सुनी ही नहीं)** अब तो आप यहीं रेडियो पर आ ही गयी हैं। फिर दर्शन होंगे आपके। **(शीला और विमला दोनों उठने का उपक्रम करती हैं। वीणा का प्रवेश)**

विमला: अरे पप्पी! **(संपादक जी की ओर देखकर)** लीजिये मुझे खोजती हुई पप्पी भी आ गयी। **(शीला से)** आपने तो इसे देखा ही होगा प्रयाग में?

शीला: अभी एक महीने पहले तो इनका कविता पाठ हुआ था मेरे सेक्शन से। वीणा शर्मा ही तो नाम है।

संपादक जी: विमला जी, मैं तो वीणा शर्मा नाम से भलीभाँति परिचित हूँ। पप्पी के रूप में आज देख रहा हूँ। अभी कल ही किसी पत्रिका में आपकी कविता पढ़ रहा था। मेरी समझ में नहीं आता कि आप सब मुझसे और मेरी 'स्वस्तिका' से ही क्यों अप्रसन्न हैं? न मेरी चाय पीती हैं, न स्वस्तिका के लिए रचना ही देती हैं।

विमला: क्या कवियित्री विशेषांक निकालने का इरादा है?

संपादक जी: यह बात तो नहीं, पर आप सब तो लिखती ही बहुत अच्छा हैं। यदि अच्छी रचना की इज्ज़त न करूँ तो संपादक की कुर्सी पर बैठना ही व्यर्थ है। पप्पी की जो रचनाएँ मैंने पत्रिकाओं में पढ़ी हैं उन पर मुझे शैले और कीट्स की स्पष्ट छाप दिखलायी पड़ती है। कहीं-कहीं तो लगता है कि रवि बाबू की आत्मा बोलने लगी है।

पप्पी: **(संकोच से)** यह सब तो आपके सदृश गुरुजनों का आशीष है। अभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मुश्किल से आठ-दस गीत लिखे हैं। अब तो यहीं रहना है। आपके पास ही कविता शुद्ध कराने आया करूँगी।

शीला : अच्छा। मैं तो चली। अब आप वीणा जी की कविताएँ शुद्ध और प्रकाशित करिये। कभी रेडियो पर आइए, वहीं बात होगी।

संपादक जी : चाय तो पीती जाइए।

शीला : इस समय तो चल रही हूँ। फिर कभी चाय पियूँगी। अभी वीणा जी और विमला जी को चाय पिलाइए।

(शीला का प्रस्थान)

विमला : मैं भी किसी और दिन चाय पियूँगी। पप्पी फार्म तो जमा करा आयी है। ज़रा होस्टल की व्यवस्था का भी पता लगा लूँ।

संपादक जी : देख लीजिये। नहीं तो फिर पप्पी का घर तो मौजूद है ही। **(पप्पी से)** बहुत अच्छा लिखती हो तुम। मेरी समझ में इस समय किसी और कवियित्री की तूली में वह क्षमता नहीं जो तुम में है। साल दो साल मेरे पास रह लो तो फिर.....

पप्पी : **(आश्चर्य से)** माता जी और दीदी की कविताओं के आगे मेरी कविता खिलवाड़ हैं।

विमला : कल पप्पी की भी एक कविता लेती आऊँगी।

संपादक : मैं आपकी और पप्पी की कविता एक ही पृष्ठ पर छापूँगा। और जानते हैं शीर्षक क्या दूँगा?

पप्पी : उसी पृष्ठ पर एक शीला दीदी का छोटा-सा गीत भी छाप दीजिये।

विमला : तब फिर शीर्षक जो मैं बताऊँ वह दे दीजियेगा।

संपादक जी : बताइए, बताइए!

विमला : उस पृष्ठ पर शीर्षक दीजिये--महादेवी के बाद।

संपादक जी : **(हँसते हुए)** यही सही, वही सही।

विमला (व्यंग्य-हास्य की मुद्रा में) ठीक रहा न शीर्षक! अब चल रही हूँ। कल या परसों आऊँगी।

(विमला और पप्पी का प्रस्थान)

■

घबराइयेगा नहीं

नारी सहनशीलता की मूर्ति है, धैर्य की प्रतिमा, करुणा और ममता की प्रतीक है,--ठीक है मान ली आपकी बात। पर यकीन मानिए इस मूर्ति और प्रतिमा में अब प्राणों का संचार भी हो गया है और वह अपने समान अधिकारों की माँग करने लगी है, देखिये, घबराइयेगा नहीं!

—श्रीमती सरोजिनी नायडू

(प्रेषक : मोहिनी ओबराय)

ज्ञानोदय : मई १९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृता प्रीतम

आत्म – परिचय

प्रकाशित रचनाएँ

- पंजाबी में :
  १४ कविता-संग्रह ; ७ उपन्यास ; ४ कहानी-संग्रह ; पंजाबी-लोकगीतों के दो संग्रह; संसार के लोकगीत ; पंजाबी-साहित्य ; आत्म-कथाएँ ; यात्रा-विवरण (भारत से रूस)।
- हिन्दी में :
  ७ उपन्यास (अन्तिम है 'बन्द दरवाज़े') ; ३ कहानी-संग्रह ('अन्तिम-पत्र', 'लाल मिर्च', 'एक लड़की एक जाम')।
- उर्दू में :
  ३ उपन्यास ; एक कहानी-संग्रह।
- गुजराती में :
  २ उपन्यास।
- अंग्रेज़ी में :
  एक गीत-संग्रह।

आठ सदियों की एक महफ़िल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● "ऐसे तो सोवियत देश का चप्पा-चप्पा अपने लेखकों के यादगारी-चिन्हों से सजा हुआ है परन्तु यह अजर बाईजान की राजधानी बाकू वह पहला शहर है जिसके बीच एक शायरा का बुत बनाया गया है।"

"यह हमने पिछले वर्ष बनाया था, नातवा हमारी उन्नीसवीं सदी की बड़ी प्यारी शायरा थी।"

"मैंने निजामी अजायबघर देखा, महसती गंजवी का चित्र देखा।"

"यह हमारी बारहवीं शताब्दी की शायरा थी, लिखती भी थी, गाती भी थी, अपने समय की एक साहसपूर्ण व्यक्तित्व।"

"और मैंने आपके शहर बाकू में स्वतन्त्र अजर बाईजान औरत का वह बुत देखा, जिसमें वह अपने मुँह पर से पर्दा उतार रही है।"

"यह हमने क्रान्ति के बाद ही औरत के मन को एक बुत में तराशा है।"

"और मैंने तुम्हारे नगर में अमन माँगती उस औरत का बुत देखा, जिसके कन्धे पर उसका बच्चा और हाथ में अमन का चिन्ह पेंडुकी पकड़ी हुई है।"

"अमन औरत की प्राचीन काल से चली आ रही माँग है।"

"एक जाम अजर बाईजानी औरतों की मानसिक स्वतन्त्रता के नाम, कलमी उन्नति के नाम और उनकी प्रारम्भिक प्राचीन माँग अमन के नाम।"

मेज़ पर अंगूरों और सोयों के पत्तों में पके हुए खास अजर बाईजानी पकवान थे। और रसूल रज़ा, जो अपनी भाषा के बहुत बड़े राष्ट्रीय कवि माने जाते हैं, इस दावत के मेज़बान थे।

रसूल रज़ा की नीली आँखों में एक चमक आई और वह कहने लगे, "मेरी माँ को लिखना नहीं आता था; परन्तु उसके मन में किसी नातवा वाली चिंगारी थी। कभी-कभी वह अंजीरों के, सेबों के, गलासों के मुरब्बे डालती शेर कहा करती थी। वह मस्ती में शेर गुनगुनाती होती तो कई बार मेरा बाप कागज़ लेकर उसके पास बैठ जाता और उन शेरों को लिख लिया करता।"

"तो यह चिंगारी आपको विरासत में मिली है! और आपने ज़िन्दगी के साथ के लिए भी वैसा ही साथी तलाश किया, जिसके होठों पर गीत छलकते थे।"

"यह मेरी पत्नी निगार कविता लिखा करती थी, और मैं तनक़ीद किया करता था, और इस तरह करते-करते हमारा विवाह हो गया।"

"आपकी तनक़ीद जरूर बहुत अच्छी होगी, तब ही तो निगार ने विवाह के बाद भी इतनी कवितायें लिखीं कि इस समय वह पन्द्रह किताबों की लेखिका है।"

"परन्तु कभी-कभी वह पासा बदल लेती है। मैं कवितायें लिखता हूँ और वह मेरी तनक़ीद करती है – खैर, मैं उसकी लेखनी की उन्नति के लिए जाम पीता हूँ। इसकी उन्नति के लिए, तुम्हारी उन्नति के लिए और तुम्हारी दायीं ओर बैठी हुई मिख़ारद की उन्नति के लिए, जो इस समय अजर बाईजान की बड़ी मशहूर शायरा है, इसने २५ पुस्तकें लिखी हैं।"

"यदि कहीं आज उजबेकिस्तान से जुलफ़िया भी आ जाती.....", अजरी शायर तैमूर ने कहा।

"१५ तारीख ताशकन्द में औरतों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जलसा था। उन्होंने जुलफ़िया को आने नहीं दिया, परन्तु मीलों दूर बैठी उस जुलफ़िया की हाजिरी हम यहाँ भी महसूस कर सकते हैं, क्योंकि मैंने जुलफ़िया के बारे में एक शेर लिखा है :

चिर बिछुड़ी कलम इस तरह
कागज़ के गले लगी
इश्क का भेद खुल गया
एक पंक्ति पंजाबी की
एक पंक्ति उज़बेक की
तब भी काफ़िया मिल गया"

"जुलफ़िया हमारी कायनाती शायरा है। मैंने भी जुलफ़िया पर एक कविता लिखी है।" मिखारद खानम दिलबाज़ी ने कहा, और कविता की दो-तीन पंक्तियाँ पढ़ी :

"उज़बेक सुन्दरी
सूरज अस्त के समय तू ने राग छेड़े थे
रात्रि का पथ चीर कर
सूरज फिर आ गया।
तू ने सूरज की गैरहाज़िरी
हमें महसूस न होने दी।"

"तो हम यहाँ बैठी तीन नहीं, चार शायर औरतों की सेहत के लिए जाम पीते हैं", तेमूर ने कहा।

"ठहर जाओ, पहले मैं आज की मेहमान के लिए एक कविता पढ़ लूँ। यह कविता मैंने आज प्रभात समय लिखी थी," मिखारद खानम ने कहा और कविता पढ़ी :

"दिल का सूरज ऐसा चढ़ा
जैसे शिखर दोपहर
गीतों भरी आवाज़ इस तरह
जैसे गंगा की लहर
तेरी दोनों आँख इस तरह हैं
जैसे विचारों के दो चश्मे
ओ चन्द्रमा की रश्मि
दो देशों के गीतों को मिला दे

लोक पीड़ा की भट्टी में
आज तेरे लफ्ज़ पक चुके हैं
यह दिलों के रिश्ते कितने सच्चे हैं
कितने सच्चे और कितने गहरे

वायु आज इत्र छिड़क रही है
मिट्टी में कितनी सुगन्धि है
आज मेरी एक अर्चना है
काश तेरे दिल के होंठ हँस पड़ें।"

"कभी मैंने एक कविता लिखी थी..... 'मिल गई थी इसमें एक बूंद तेरे इश्क की, इसलिए मैंने आयु की सारी कड़वाहट पी डाली।' परन्तु आज की महफ़िल में बैठे मुझे पता चला है कि उमर के इस प्याले में एक नहीं मानव प्यार की बहुत-सी बूंदें मिल गयी हैं, और उमर का यह प्याला बड़ा मधुर हो गया है।"

संगीतकार आरिफ़ चाहे अब वैज्ञानिक हो गया था, पर उसके भीतर का संगीत आज उसी तरह उसके मन में छलक रहा था। वह रबाब उठा लाया, और पास बैठे शायर बख्तियार वहाबज़ादा का एक नगमा छेड़ दिया :

"क्या गुलाब खिल सकता ?
यदि कभी उसे किसी बुलबुल का
गीतों भरा साँस न स्पर्श करता ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो हम अब सारे गुलाब मिल कर चार बुलबुलों के नाम जाम पीते हैं।"

"चार नहीं पाँच। कल मैं आपकी ईरानी शायरा मदीना गुलगुन से मिली, उसकी कविता सुनी, "अरे वैद, तू मेरी बाँह टटोल रहा है, परन्तु मेरी नब्ज़ में से तुझे मेरा रोग नहीं मिल सकता।"

"वह भी हमारी अच्छी शायरा है। और उसकी कविताओं में एक गहरी उदासी है।" मिखारद ने कहा।

"इस उदासी का भेद उसने मुझे बताया था कि अजर बाईजान का जो कुछ भाग इस समय ईरान के पास है, वह उस भाग की रहने वाली है। उसको अपना घर, अपना देश याद आता है।"

"तुम उसका दर्द महसूस कर सकती हो, क्योंकि तुमने भारत का विभाजन देखा है, अपने जन्म-शहर से बिछुड़ कर देखा है।"

"और अब पाँच शायर औरतों का कलाम मिल कर पंजाब बन गया है, पाँच आब, पाँच पानी। अजर बाईजान की धरती पर बैठे हम पंजाब की रक्षा के लिए जाम पीते हैं।" रसूल रज़ा ने कहा।

आरिफ़ ने फिर 'रबाब' उठाई। पहले अजरी और बाद में भारतीय संगीत छेड़ा। उज़बेक युवक नबीजान ने आरिफ़ के संगीत के साथ भारतीय गीत मिला दिया, "सूर्य अस्त हो गया, गगन मस्त हो गया।" और अजरी लेखकों के पैरों में नाच भर गया।

यह दावत दोपहर के खाने से आरम्भ हुई थी। शाम की चाय की घूंट भरती अब रात की रोटी के समय तक आ पहुँची थी।

अज़री शायर नबी ने कुछ खाली प्यालों को फिर भर दिया और कहा, "तुम्हारी आँखों में गहरे बादलों जैसी उदासी, और फिर कभी-कभी बादलों को चीरती मन के सूरज की रेखा, हम कला की गहराई पा सकते हैं। एक जाम हम मन के सूरज के लिए पीयेंगे।"

"चिर-काल से हम अपने साहित्य में कोहक़ाफ़ की परियों का उल्लेख करते आये हैं—और आज मैंने काकेशिया के इस भाग अजर बाईजान में वे प्यारी लड़कियाँ देखी हैं। इस दस्तरख़ान के आस-पास बैठी रसूल रज़ा की सुन्दर बेटियाँ और उनकी नाज़ुक पुत्र-वधू के सुन्दर भविष्य के लिए हम दुआ माँगते हैं....."

सारा कमरा अजरी लोक-गीतों से भर गया, और फिर निगार ख़ानम महसती गंजवी की किताब ले आयी और कहने लगी, "मैंने महसती के कलाम का फ़ारसी से अजरी में अनुवाद किया है।"

"आज बीसवीं सदी की इस यादगारी महफ़िल में हम बारहवीं सदी की शायरा महसती की कविता पढ़ेंगे और इस तरह यह महफ़िल अपने सीने में आठ शताब्दियों की याद सम्भाल लेगी", मैंने निगार ख़ानम से कहा और निगार ने महसती का एक शेर पढ़ा :

"बुतपरस्ती अच्छी
यदि कहीं तू बुत हो
नशाई होना मंज़ूर
यदि तू होंठों में से शराब पिला दे
बेख़ुदी अच्छी
यदि मैं तेरी देहरी पर होश गँवा लूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकीर्ति गुप्ता

●

आत्म – परिचय

●श्री शिक्षायतन कालेज, कलकत्ता, में हिन्दी की अध्यापिका। बचपन से ही अध्ययन में रुचि। इधर कुछ समय से स्वयं भी छोटे-छोटे लेख और कहानियाँ लिखनी आरम्भ की हैं। एक उपन्यास भी समाप्त प्रायः है। शुरू में कविताएँ लिखी थीं. और बहुत लिखी थीं, किन्तु प्रकाशित नहीं करवायीं।

●कमरे में अकेले रहना, लिखना-पढ़ना या इधर-उधर का सोचना बड़ा अच्छा लगता है। चित्रकला और शास्त्रीय-संगीत से बहुत प्रेम है। शुरू में बहुत-से चित्र स्वयं भी बनाये थे, लेकिन अब चित्र बनाने का समय नहीं मिल पाता, हाँ, संगीत-साधना अब भी नियमित रूप से करती हूँ। ये ललित कलाएँ मेरी अभिन्न साथिनें हैं जिन्होंने मेरे जीवन को सदा भरा-पूरा रखा है, कभी बोर नहीं होने देतीं।

●कलकत्ते की प्रसिद्ध सांस्कृतिक संस्था 'अनामिका' की संयुक्त मंत्री हूँ। इधर कुछ समय से 'रागरंग' मासिक पत्रिका की संयुक्त सम्पादक भी।

वार्डन दो : कहानी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● "अड़तालिस नम्बर की बीवी जी, आपसे कोई मिलने आए हैं।" कहता हुआ रामू कमरे के सामने आकर रुक गया।

उसने जल्दी से शीशे पर एक सरसरी निगाह फेंकी और चप्पल पहन सीढ़ियों से उतर कर गैस्ट-हाउस के पास पहुँच गयी।

हरी-हरी रविशों के मध्य काफी लड़कियाँ अपने मित्र या सम्बन्धियों के साथ खड़ी बातें कर रही थीं। जब वह शीला के पास से गुज़री, तो उसने व्यंग्य-पूर्ण दृष्टि उसकी ओर फेंकी मानो पूछ रही हो—ये कौन हैं? इन लोगों के निकट सम्बन्धियों का अर्थ समझना अत्यन्त कठिन होता है।

"कनु! कैसी हो?"

'अरे, भैया! कब आये? माँ कैसी हैं?"

"ठीक हैं।... आज-कल क्या अधिक पढ़ रही हो? बहुत दुबली हो गई हो!"

वह हँस पड़ी; कुछ बोली नहीं।

"जल्दी अपनी वार्डन से आज्ञा ले लो; तुमको मेरे साथ मामा जी के घर चलना है, उन्होंने बुलाया है।"

वार्डन का बँगला समीप ही था। देखा, मिस तिवारी बराण्डे में एक कुर्सी पर बैठी हैं। आस-पास फूलों के गमले रखे हैं। छोटे-छोटे पुष्प गमले में बड़े अच्छे लग रहे थे। बड़ी मीठी महक थी। कोने में ही एक नागफनी का पौधा भी लगा हुआ था। लम्बा-सा वीरान, जाने कितने काँटों को हृदय में छिपाये था।

"मिस तिवारी!"

"यस, तुम, कनु, कहो, क्या है?"

"देखिए, भैया घर से आये हैं; आज रात होस्टल नहीं आ सकूँगी।"

अविश्वास की रेखा मुख पर उभरी। अधपके बालों पर हाथ फेरती हुई बोलीं "हूँ! कौन-से भाई?"

"छोटे भाई, मिस।"

अद्भुत प्रतिभाशालिनी भारतीय लेखिका

तरूलता दत्त

तरूलता दत्त का जन्म ४ मार्च १८५६ में रामबगान के प्रसिद्ध परिवार में हुआ। १३ वर्ष की आयु में तरू को सपरिवार योरप यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी बड़ी बहन आरू दत्त की चित्रकला में रुचि थी। तरूलता की प्रबल कामना थी, कि वह और आरू मिलकर एक पुस्तक छपवाएँ जिसमें उसकी अपनी कविताओं के साथ आरू द्वारा अंकित रेखाचित्र हों। लेकिन तरू की यह आकांक्षा कहाँ पूरी हो सकी!

तरू की शिक्षा मुख्यतः फ्रान्स और इंग्लैण्ड में हुई। अपने इस प्रवास-काल की छोटी आयु में ही उसने फ्रेंच रचनाओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन अपनी आरू दीदी की बीमारी के कारण उसे वापिस भारत लौटना आना पड़ा।

आरू की मृत्यु के बाद अपने मन के सूनेपन को दूर करने के लिए तरू ने स्वयं को अध्ययन और लेखन में पूरी तरह डुबो दिया। संस्कृत के समृद्ध साहित्य का अध्ययन करने के लिये उन्होंने संस्कृत भाषा सीख डाली, पर साथ-साथ

CC-0: In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लेकिन गार्जियन तो तुम्हारे बड़े भाई हैं।"

आवेश को दबाती हुई कनु बोली, "लेकिन ये भी मेरे भाई हैं मिस ; इनके साथ जाने की भी आज्ञा मुझे मिलनी चाहिए।"

मिस तिवारी कुछ सोच कर बोलीं, "हाँ, तो यह निश्चित है कि ये तुम्हारे भाई हैं?"

वह उबल पड़ी, "मिस तिवारी, और कुछ मैं नहीं जानती, हाँ इतना मालूम है कि ये मेरी ही माँ के बेटे हैं।"

और वह चली आयी।

व्यर्थ की रोक-टोक की भी एक सीमा होती है।

और मिस तिवारी देख रही थीं दूर रविशों की ओर। श्यामा बात-बात पर किस तरह हँस रही है ; साथी-युवक कुछ कहता जा रहा है। ओफ़! इन लड़कियों को अपना पल्ला तो ब्लाउज में ही सिल लेना चाहिए। कुछ दूर पर लता बैठी हुई है, अपने पैरों की ओर देख रही है, और उसके पास बैठा युवक शून्य की ओर देख रहा है। रमा आ रही है ; शायद बाहर जाने की आज्ञा लेगी ; तो आज भी उसका 'कजिन' आया होगा।

मिस तिवारी की बड़ी-बड़ी आँखें झप-सी जाती हैं, आस-पास का वातावरण उन्हें संज्ञाहीन-सा कर देता है। स्वयं की शून्यता जैसे उन्हें खाये जा रही है। संध्या का धीरे-धीरे बढ़ता हुआ अन्धकार जैसे उनके अस्तित्व को ढक लेना चाहता है। उन्हें अपने से चिढ़ है, आसपास के वातावरण से चिढ़ है। हृदय की उमड़ती हुई आकुलता, बबूला, आक्रोश, लेकिन किस पर...

"माली, ओ माली!"

"जी, साब।"

"तुम कितने आलसी हो! सामने के पौधों में तुमने पानी नहीं दिया ; देखो,

---

कविताओं का अनुवाद करना भी जारी रखा। ये अनुवाद 'बंगाल मैगेज़िन' में छपे। उनकी महान कृति 'ए शीफ़ ग्लीण्ड इन फ्रेंच फ़ील्ड्स' भी उन्हीं दिनों प्रकाश में आयी। विक्टर ह्यूगो के 'ला मिज़रेबुल' का भी उन्होंने अनुवाद किया जो 'बंगाल मैगेज़िन' में ही छपा। इनके अतिरिक्त भी उन्होंने अन्य कई विश्व-विख्यात कृतियों के अनुवाद में हाथ लगा रखा था।

अपनी आरू दीदी के ही रोग से ग्रस्त होकर दिन-दिन मृत्यु के निकट पहुँचते हुए भी तरू ने अपना लेखन बन्द नहीं किया और मृतवातर लिखती ही चली गयीं। उन्होंने इस छोटी आयु में ही चार भाषाओं अंग्रेज़ी, फ्रान्सीसी, संस्कृत और बंगला में अभिव्यक्ति की कुशलता हासिल कर ली थी। अपने अन्तिम दिनों में उनका रुझान प्राचीन भारतीय गाथाओं और लोक-संगीत की ओर बढ़ रहा था ; इस दिशा में रचित उनकी कृतियाँ उनकी मृत्यु के बाद प्रकाश में आयीं, और भारतीय तथा विदेशी सभी लेखकों समीक्षकों, ने मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा की।

यह अद्भुत प्रतिभाशालिनी भारतीय लेखिका कुल २१ वर्ष की अल्पायु में ही हमारी इस धरती को छोड़ कर चली गयी थी।

---चन्द्रा औलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NOTHING BETTER HAS COME TO LIGHT

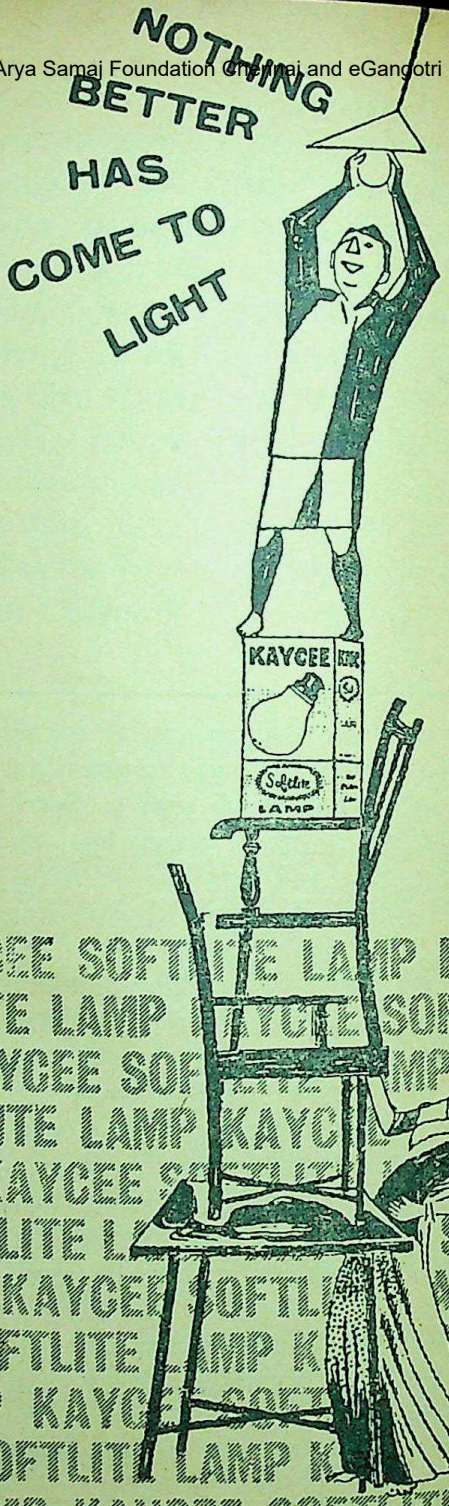

KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYCEE SO
FTLITE LAMP KAYCEE SOFTLITE LAM
P KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYCEE S
OFTLITE LAMP KAYCEE SOFTLITE LA
MP KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYCEE
SOFTLITE LAMP KAYCEE SOFTLITE L
AMP KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYCE
E SOFTLITE LAMP KAYCEE SOFTLITE
LAMP KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYC
EE SOFTLITE LAMP KAYCEE SOFTLIT
E LAMP KAYCEE SOFTLITE LAMP KA

Bajaj Electricals Limited

BOMBAY · CALCUTTA · NEW DELHI · MADRAS · KANPUR · AHMEDABAD · INDORE · WARDHA · GAUHATI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौधे कितने झुलस गए हैं !... जाओ, वर से कह दो एक गिलास पानी दे जाये,...उफ़ गर्मी...!"

पीछे मुड़ कर देखा, रमा खड़ी थी ।

"मिस, मेरे कजिन आये हैं ।"

"तुम रोज ही कजिन के साथ बाहर जाती हो, आज आज्ञा नहीं मिलेगी । पहले अपने स्थानीय गार्जियन से एक पत्र लिखा लाओ, जाओ ।"

रमा कुछ देर खड़ी रही । आँखें झिलमिला उठी थीं । वह सिर नीचे किये लौट रही है । उसकी उदास आँखें मिस तिवारी को कुछ याद दिला देती हैं । वह पुकार कर कहती है, "सुनो, अच्छा, आज चली जाओ ।"

रमा कृतज्ञता से भीग उठी ।

x x x

मिस तिवारी ने कुर्सी से पीठ टिका ली । दूर ताकती उनकी आँखों के सामने से बादल की एक परत हटी, दूसरी हटी, अब आसमान साफ हो रहा था । भीगी धरती की सोंधी-सोंधी महक चेतना पर छा रही थी । काश ! वह जीवन फिर लौट आता !!

...कुमार होस्टल तक पहुँचाने आया है । नौ बज चुके हैं ; हाजिरी की घण्टी बज चुकी है । भय से मैं सिहर उठी । लेकिन खैर, अब तो भोगना ही पड़ेगा ।

"बीवी जी, वार्डन सा'ब बुला रही हैं ।"

"अच्छा...!"

सिर झुकाए मैं पहुँची । मिस सेठ बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठी थीं । उनका स्थूलकाय शरीर कुर्सी पर अच्छी तरह फिट हो रहा था । चेहरे पर जीवन के कठोर अनुभव की वक्र रेखाएँ थीं ।

"जी, आपने बुलाया है, मिस...?"

चश्मा धीरे से आँखों से हटा, पुस्तक मेज पर रखी, नीचे से ऊपर तक दृष्टि गयी... उस समय अपने भड़कीले कपड़ों पर मुझे स्वयं ही ग्लानि हो आयी ।

"तुम फिर आज लेट आई हो, चन्द्रा ?"

"मिस, कोई सवारी नहीं मिली...चौक से आते समय अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ी ।"

"मैं बहाना नहीं सुनना चाहती ; यदि आठ बजे के भीतर नहीं आ सकोगी तो तुम्हें होस्टल छोड़ना पड़ेगा ।"

"मिस..." अपमान से भौंहें चढ़ गयीं । चुपचाप कमरे में लौट आयी । कुमार से कितनी बार कहा कि रोका न करे, किन्तु करूँ भी क्या ! समय न जाने कितनी जल्दी बीत जाता है । कम्पनी-गार्डन में वृक्ष के नीचे बैठे थे ; सामने एक छोटा-सा तालाब था, चन्द्रमा चुपके से वृक्ष के तने से झाँक रहा था, और कुमार की बातें हमेशा अधूरी ही रह जाती हैं । जाने के लिए उठी तो कुमार ने हाथ पकड़ लिये ।

"चन्द्री, अभी तो आठ ही हुए हैं ।"

"लेकिन मेरा तो होस्टल बन्द हो जायेगा ।"

"सच, थोड़ा नहीं रुक सकतीं, प्लीज !"

"ओह, कुमार...तुम...!"

मेरे शब्द अचानक अधूरे ही रह गये, आसपास का वातावरण रस से भीग-भीग उठा, चाँदनी रात थी न ! मैं हतप्रभ-सी उठ खड़ी हुई । न जाने कब के साढ़े आठ बज चुके थे ।

रास्ते में हम दोनों ही गम्भीर थे । मैं स्थिति का सामना करने के लिए साहस बटोर रही थी ।

"चन्द्री, क्या तुम्हारी वार्डन मिस सेठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी से प्रेम नहीं करतीं ?"

"करती क्यों नहीं हैं ! सुना है, जब पढ़ती थीं तभी से मिस्टर रावल से प्रेम है, किन्तु...बेचारी शादी नहीं कर पायीं । जब मिस्टर रावल आते हैं, उनका चेहरा देखने लायक होता है ; बड़ी कोमल और उदार हो जाती हैं, हम लोगों को कभी नहीं डाँटतीं किन्तु उनके जाने के बाद वैसी ही कठोर हो जाती हैं । अरे, फ्रस्ट्रेशन है जीवन का ! अब जीवन में स्वयं को कोमलता मिलने की आशा नहीं है, इसीलिए दूसरों के प्रति इतनी कठोर हैं । .....किसी भी लड़की का यदि नीला लिफाफा आयेगा तो जरूर उसे खोल कर पढ़ेंगी । भाई ही क्यों न मिलने आये, जरूर शक करेंगी । सात बजे के बाद तो दरबान भी कमरे के पास नहीं आ सकता । अजीब शक्की है ! लिख कर जाओ, कहाँ जाना है, कब तक आना है...झूठ बोलना ही तो सिखाती हैं । उनकी नज़र में जैसे प्रेम करना भी पाप है ।"

कुमार चुप था । होस्टल का गेट आ गया । कुमार ने धीरे से चन्द्री का हाथ दबाया और ठंडी साँस लेकर विदा हो गया ।

फिर...सन्ध्या होते ही लगता जैसे वही वृक्ष का तना बुला रहा है, जहाँ चाँदनी बिछी है । किन्तु एक दिन यह भावुकता का तार टूट गया । सुना मिस सेठी ने दोनों के घरों में शिकायत भिजवा दी है । कुमार की शादी उसके जमींदार पिता ने ठीक कर दी है । कुमार एक वैसी ही सन्ध्या को विदा माँगने आया था, विवश नेत्रों में जल था । विरोध करने की क्षमता न थी, या पता नहीं क्या था । अविश्वास भी तो नहीं किया जा सकता ।

जीवन की एक बुरी घड़ी में कुछ वर्ष पश्चात् फिर कुमार से भेंट हो गई । वह अपनी पत्नी से संतुष्ट नहीं था, क्योंकि गँवार थी, यद्यपि धनी बाप की बेटी थी । वह अब भी चन्द्री को प्यार करता है । पुरुष का चातुर्य स्त्री की कमज़ोरी से खिलवाड़ कर उठा और चन्द्री अभी तक मिस ही है, मध्याह्न की कुँवारी धूप की तरह जो ढलना ही जानती है ।.....

वह यह सब कोमल, मधुमय संगीत भूल जाना चाहती है, किन्तु मनुष्य आखिर तो वातावरण का ही अंगी है, कैसे उसे छोड़ सकता है ! हृदय कसक उठता है, संध्या भीग-सी गई है । वह आगे कुछ नहीं देखना चाहती, उन रविशों को छोड़ कर भागना चाहती है, पलकों को ज़ोर से बन्द करती है, कानों पर हाथ रखना चाहती है....

"मिस तिवारी, कजिन आए हैं ; मैं आठ बजे तक आ जाऊँगी ।"

मिस तिवारी जैसे तन्द्रा से जगीं ; पत्थर की रेखा मुख पर अकस्मात् उभर उठी ।

"तुम्हारे गार्जियन लिस्ट में इनका नाम है ?"

"जी...नहीं...।"

"नहीं जा सकती ।"

"देखिए...आज...।"

"कहा तो, नहीं जा सकती ।"

शीला सिर झुकाए चली गयी । और मिस तिवारी का मुख और कठोर होता गया मानो उनकी कठोर रेखाएँ प्यार से बदला लेने वालों की एक पीढ़ी तैयार कर रही हों ।

● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोभिता जैन

आत्म – परिचय

- घर में शिक्षा का वातावरण। बड़ी बहिनों में साहित्य की रुचि; एक बहिन एम. बी. बी. एस. डाक्टर है। भाइयों की शिक्षा विलायत में हुई।
- स्वयं प्रयाग विश्वविद्यालय से बी. ए.; लखनऊ से एम. ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति)।
- कविता में रुचि। लगभग ५०-६० कविताएँ लिखीं। साहित्य की नयी गतिविधि के प्रति जागरूक। साहित्य-बोध; लेखन में रुचि। शैली के सम्बन्ध में दृष्टि यह कि बात सहज ढंग से अपने बिम्ब आप बनाती चली जाये।
- अभिनय, संगीत, नृत्य में यूनिवर्सिटी के आयोजनों में बराबर भाग लेती रही। यूनिवर्सिटी वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में स्वर्ण-पदक। चित्रकारी में विशेष रुचि।
- अपने पति श्री रवीन्द्र जैन के साथ आस्ट्रेलिया में भारतीय इतिहास की व्याख्याता।

सोया कैनबरा और जागती अनथकी आँखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● सारी पुरानी स्मृतियों से काफ़ी भिन्न, एक बड़ी अपनी, और ताज़ी याद की तस्वीर बहुत साफ़ है मेरे सामने। उसके बारे में लिखने का बड़ा मन है। गहरे और घने कुहासे के बाद जब पहाड़ियों के नीलेपन को ज़्यादा नीला बनाती हुई, सूरज की किरणें एक साथ कैनबरा की लम्बी फैली सड़कों, इमारतों और घरों पर आकर लगती हैं तो रात भर से चल रही बर्फ़ीली हवा में थोड़ा सलोनापन आ जाता है और चढ़ते सूरज की चमकीली धूप की उठान के साथ ही

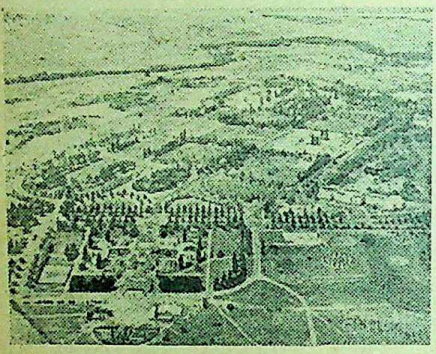

कैनबरा नगर का एक विहंगम दृश्य: हजारों की संख्या में खूबसूरत पार्क, बाग-बगीचे, लॉन और पेड़-पौधे नगर को एक विशिष्ट आकर्षक रूप दे देते हैं।

साथ यहाँ की सारी चीज़ों में एक ख़ास चमक भरती जाती है, जिससे घिर कर यहाँ का कण-कण अपने अद्भुत जादुई आकर्षण में मन को बाँध जाता है।

यहाँ मलय देश के जलजाल में तर-बतर मन फिर-फिर जाता है अपनी कल्पना-कोरों के बादल में कि जब हम लौटकर कैनबरा जायेंगे, वहाँ बर्फ़ के पहाड़ों को गला कर झील बनाने की योजना पूरी हो चुकी होगी। मैं उस झील में अपने कैनबरा की चमकीली धूप में हँसते बदन का प्रतिबिम्ब बहुत साफ़ देख पा रही हूँ... नगर ज़्यादा चौड़ी तो नहीं पर बहुत साफ़ सड़क है। बड़ी देर से एक ख़ामोश चुप्पी छायी हुई है। सूरज काफ़ी देर का पहाड़ियों को पार कर चुका है, घरों के ऊपर आकर उनके अन्दर झाँकने की कोशिश कर रहा है, जिससे चारों तरफ़ की हवा में गरमाहट की नरम खुशबू भर गई है। जब किरणें चमकी ही थीं, हवा काफ़ी ठण्डी थी तभी आठ बजे के क़रीब कैनबरा के सारे दफ्तरों में लड़के-लड़कियाँ अपना-अपना काम शुरू कर चुके थे। कुछ मिनटों पहले तक ख़ामोश सड़कों पर ढेरों कारों-बसों का शोर गुज़र गया था, पर इस वक्त तो स्थितप्रज्ञ-सी खोई सड़कों पर एक दूसरी तरह का शोर है जो बड़ा चुप है और सिर्फ़ आपसे धीरे-धीरे बात कर रहा है, क्योंकि आप उस ख़ामोशी में डूबे हुए उसकी अनुभूतियों के एकमात्र साथी हैं।

ग्यारह बजे की धूप भी बड़ी अच्छी लग रही है, सामने की पहाड़ियों से एकदम सट कर हमसे टकराती है तो चारों तरफ़ की ठण्ड में धीमा-धीमा-सा सेक महसूस होता है। दो दिन के बाद निकला सूरज कैनबरा के लोगों के लिए 'चमकीला दिन' ले आया है। सब बड़े खुश हैं, क्योंकि कल शनिवार है। उनका 'सप्ताहान्त' हो जायेगा। पाँच दिनों के सुबह के आठ बजे से शाम के पाँच बजे तक काम में थक गये उनके शरीर और मस्तिष्क के लिए दो दिन की लम्बी छुट्टी.....सभी ने अपना प्रोग्राम बना लिया है। हमारे पड़ोसियों के कनाडियन पति-पत्नी 'कोटर डैम' जा रहे हैं, न्यूज़ीलैण्डर 'रेड हिल' जा रहे हैं, हम 'स्नोई माउन्टेन्स' जायेंगे। चीनी पति-पत्नी शाम को अपने बच्चों को लेकर 'ड्राइव-इन-थियेटर' जाते दिखेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम आज भी छुट्टी मना रहे हैं....अभी सामने से एक बस गुजर गई है। बस-स्टॉप पर बड़ा-सा बैग लिये एक वृद्धा उतरी है जिसके साथ आइसक्रीम खाता हुआ एक नन्हा-सा लाल गालों वाला चार साल का बच्चा है; हम उसे जानते हैं। पीटर और उसकी दादी हमें 'वेव' करते हैं। यहाँ के चमकीले दिनों में नन्हें बच्चे और वृद्ध लोग काफ़ी बाहर दिखाई देते हैं—अपने में ज़्यादा से ज़्यादा गरमी भर लेने के लिए। धूप में चमकते उनके मुस्कान से भरे चेहरे ख़ुशी से लाल रहते हैं, ज़िन्दगी के प्रति बड़ा प्यार भरा आकर्षण उन्हें घेरे रहता है। बच्चों के हर काम में निर्द्वन्द्व उल्लास और सरल क्षमता भरी रहती है। बुड्ढों की आँखों की कोरों में उनकी तमाम ख़ुशियाँ इकट्ठी होती रहती हैं, उनके गाल, होंठ, हथेलियाँ, बाल सभी मुस्कुराते हैं अपनी इतनी ज़्यादा भरी-पुरी दुनिया के रंग में। वे अपने हास-विलास में अपने नन्हें-मुन्नों की ख़ुशी की प्रार्थनाएँ किया करते हैं। पीटर और उसकी दादी अपने घर के फूलों की क़तार के पीछे छिप गये हैं। अब फिर सड़क पर सड़क है, हम हैं, और सन्नाटा है, जिसके अन्दर गूँजता हुआ सड़क का अपना मीठा गाना है, जिसे अगर आप अपने घर के शीशों वाले दरवाजे से निकल, लॉन पार करके फुटपाथ के किनारे-किनारे लगे फूलों से लदे पेड़ों के पास ठहर कर सुनें तो ज़रूर समझ पायेंगे और आपका मन करेगा कि इस फूलों के दुशाले में अपना मुँह गड़ा दें, वहाँ की ख़ूबसूरती को प्यार करते जायें और फिर एकदम से मुँह उठा कर ऊपर देखें तो एक साफ़ नीला आस्मान दिखे, जहाँ अपनी एक ख़ामोशी है, जिसे कैनबरा के चारों तरफ़ की नीली पहाड़ियाँ क्षितिज पर स्पर्श करती हैं। मन ही तो है आपका, फूलों के आँचल से ढुलक कर दौड़ लगाना चाहेगा—पहाड़ियों की चोटी तक आस्मान को अपनी बाँहों में भर लेने के लिए। फिर आप अपने चारों तरफ़ खिंची हुई पहाड़ियों की क़तार देखते हुए उस ख़ामोश सड़क पर आगे चलते जायेंगे। एक छोटी-सी पतली धार दिखेगी, उस पर बड़ा-सा पुल

नगर के बाहर की ओर की एक शान्त छायादार सड़क।

मिलेगा। कैनबरा के लोगों के लिए यह एक बड़ी नदी है, जिसमें अगर पानी बढ़ जाये तो वहाँ के अख़बार 'कैनबरा में बाढ़' की ख़बर निकालते हैं। पुल के दोनों तरफ़ लगे पाइन के नुकीले पेड़ों के पास खड़े होकर नीचे की तरफ़ देखने से 'वीपिंग विलोए' की घनी छाया के बीच से छनता हुआ आपका चेहरा पानी में तैरेगा और फिर उस पार की इमारत! यह यहाँ का अस्पताल है। लम्बे-लम्बे ढलावदार लॉन, फूलों से लदे पेड़ों की क़तार—बड़ा स्वस्थ मन भी यहाँ की छायादार नरम-नरम गर्मी में बैठ कर सुस्ताना चाहेगा। यहाँ की ख़ुशबू बिना बोले ही चिर-परिचिता-सी बड़े रहस्यमय तरीके से आकर आपके चारों ओर लिपट जायेगी।

वहाँ से एक सीधा रास्ता है, जिसमें दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ़ खपरैल की छतों और लकड़ी के फ़र्शों वाले छोटे-छोटे मकान हैं। हर एक में अपने-अपने लॉन हैं, जिसमें किनारे-किनारे खिले फूल यहाँ के लोगों की तरह ही खुशी और प्यार से भर कर हवा में झूमते हैं और सारी सड़क को अपनी सुगन्ध से भिगो देते हैं।

अब तो वक्त भी ज़्यादा हो चुका है। नन्हें-नन्हें बच्चे-बच्चियाँ धूप के चमकीले मौसम में कमरों के अन्दर के अपने गरम-नरम बिस्तरों को भूल चुके हैं। बाहर कोई अपनी ट्राइ-साइकिल पर, कोई अपनी 'काउ बॉय' की ड्रेस में भरपूर शैतानी का मज़मा जोड़े होंगे। हमारे पहुँचते ही पहले थोड़ा सहमे हैं, फिर उनकी आँखों में एक चमक आई है। उनमें से कुछ हमें जानते हैं। हम सबसे 'हॅलो' करते हैं। सब हमारे चारों ओर घेरा बना कर खड़े हो जाते हैं। ये उनकी 'फैन्सी ड्रेस' को देखते हैं और तारीफ करते हैं। वे मेरी साड़ी को भी 'फैन्सी ड्रेस' समझ कर बड़े ग़ौर से, आश्चर्य से देखते हैं, छूते हैं। सबसे ज़्यादा आश्चर्य की चीज़ है उनके लिए मेरी बिंदी। कुछ तो समझते हैं कि यह चोट है जिससे खून निकल रहा है और डर कर पीछे हट जाते हैं। कुछ उस पर आँखें जमाये पूछ ही तो लेते हैं, तो मैं समझाती हूँ कि जैसे उनकी ममी अँगूठी पहनती हैं, गले में 'नेकलस' पहनती हैं उसी तरह यह भी अपने को सजाने के लिए लगाई जाती है, यह चोट नहीं, वरन् एक तरह का लाल पाउडर है। पीछे हट गये डरे बच्चे कुछ-कुछ समझते हुए मुस्कराते हैं। हम सबको 'बाइ-बाइ' करके आगे बढ़ते हैं।

इस रास्ते को पार करने के बाद यहाँ का बाज़ार पड़ता है, जिसके बीच में एक चौड़ा-सा फुटपाथ है, घने पेड़ों की छाया से घिरा। और दोनों तरफ़ चौड़ी सड़क है, जिस पर कार व बस निरन्तर जा-आ रही हैं। यहाँ काफ़ी चहल-पहल है। आज ज़रा ज़्यादा क्योंकि आज शुक्रवार है--सप्ताह का आखिरी दिन। सभी अगले सप्ताह के लिये खरीद-दारी कर रहे हैं। कल-परसों सारा बाज़ार बन्द रहेगा, यहाँ तक कि परसों तो सिनेमाघर भी। रंग-बिरंगे ऊनी कोट, स्वैटर पहने लड़के - लड़कियाँ घूम रहे हैं। एक तरफ़ माँ बच्चे को सँभाल रही है और सब्ज़ी की दूकान वाली यह ग्रीक लड़की उसका सामान पैक करके उसकी गाड़ी में रख रही

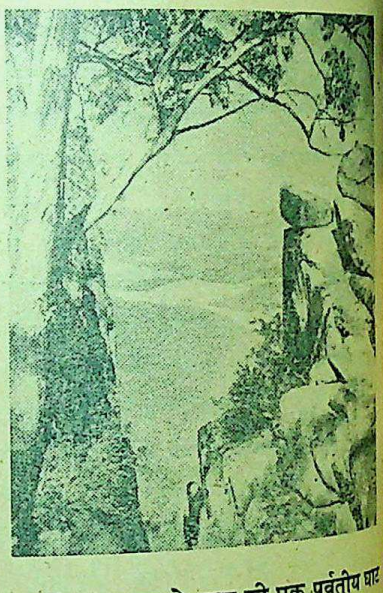

पूर्वी समुद्र-तट के पास की एक पर्वतीय घाट का मोहक रोमांचक दृश्य।

है। यहाँ कई दूकानों पर आपको वे लोग मिलेंगे जो अपने रूप-रंग, बोल-चाल, वेश-भूषा और हाव-भाव में न आस्ट्रेलियन लगेंगे, न इंगलिश, न ही अमेरिकन, या चीनी-जापानी। वे लम्बे क़द के, गोरे, लम्बी नाक वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े सुंदर चेहरे वाले ग्रीक-इटालियन कैनबरा की 'न्यू आस्ट्रेलियन' जनता है। इनमें यहाँ के लोगों से भिन्न अपनी संस्कृति का काफी स्पष्ट प्रभाव साफ़ मालूम देता है। स्वभाव के ये बहुत अच्छे होते हैं। ये यहाँ पर विशेष महत्व के काम नहीं करते हैं। अधिकतर प्रायः सब्जी की दूकानों

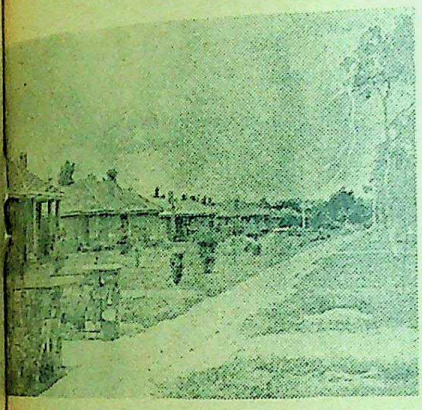

कैनबरा की एक मध्य-वर्गीय बस्ती का दृश्य। कैनबरा के आधे से अधिक घरों के मालिक उनमें रहने वाले ही होते हैं।

या 'कॉफ़ी शॉप' पर काम करते मिलते हैं।

हम आगे बढ़ते जाते हैं—यहाँ की सड़कों, जगहों का नाम पढ़ते हुए, जिनमें आस्ट्रेलिया के आदिमवासियों की संस्कृति की छाप मिलती है। 'कैनबरा' नाम भी एक ट्राइबल नाम है जिसका अर्थ है 'मिलने-जुलने की जगह'। इसी तरह यहाँ और भी नाम हैं, जो बड़े संगीतात्मक लगते हैं, जैसे मनूका, कूमारी और यारालुमला आदि।

अब स्टोर्स पीछे छूट गये हैं, भीड़ वहीं रह गई है। यहाँ कुछ दूसरी ही खुशबू आ रही है। सारे माहौल में भर गई है। कभी लगता है सड़क में से आ रही है। पर वह तो चुप है, तो लगता है बंगल की झाड़ियों में से आ रही है। आँख उठा कर देखते हैं तो फुटपाथ के बाद झाड़ियों के परे मकान नहीं हैं, इमारतें नहीं हैं। दोनों तरफ़ मैदान फैला है बंजर-सा। बीच-बीच में से पगडंडियाँ गई हैं सामने की चोटियों तक, जिनके परे और भी लम्बे मैदान हैं, ऊँचे पेड़ हैं और घनी कँटीली झाड़ियाँ हैं, जिन पर बिना पगडण्डियों के रास्ते हैं, बिना आदमियों की एक बहुत बड़ी बस्ती है। वहाँ एक बड़ा चुपचाप जादू है, जिसे जानने का बड़ा मन करता है। वहाँ पहुँच कर मस्त होकर गाने का बड़ा मन करता है कि आवाज़ घाटियों और मैदानों में गूंजती चली जाये, जिससे झाड़ियों के हिलते ही पेड़ मुस्कुरा दें और तब हम बहुत प्यार से वहाँ के जादू की एक-एक गाँठ धीरे-धीरे से खोलें और वह हमारे पास बिखर जाये—बाँस के झुरमुट में रात भर की जमा ओस की बूंदों की तरह। दूर-दूर तक कुछ भी नहीं है। सूनापन है महादेश का। कैनबरा के बसाव में शहर के चिह्न नहीं हैं। यहाँ की बस्ती की तुलना हम अमेरिकन उपन्यासों में वर्णित छोटे-छोटे उपनगरों से कर सकते हैं। फैले मैदानों की खुली हवा से उठ कर ज़िंदगी यहाँ के लोगों के अंदर खुलापन भर देती है, जिससे चारों तरफ़ एक बड़े सुखीपन का सर्जन होता है। और आहा! जब दिन भर की तेज़ धूप के बाद दोपहर में एकदम काले बादल पहाड़ियों के पीछे इकट्ठे होकर कैनबरा के आस्मान की तरफ़ धीरे-धीरे बढ़ते हैं तो अपने मकान की खिड़की से देखने से लगता है कि 'स्पेस-वॉर' के सिपाही मार्च पर हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ सूरज छिपते-छिपते छः बजे के क़रीब 'टी' ली जाती है जिसका अर्थ हमारे यहाँ की चाय नहीं वरन् डिनर है। और फिर आठ बजे तक प्रायः सभी सो जाते हैं—विशेषकर बच्चे एवं बुड्ढे सभी। यहाँ हमारे शहरों की तरह शाम या रात की चहल-पहल वाली ज़िन्दगी नहीं है। यहाँ दिन बहुत जल्दी शुरू होता है। कैनबरा में तीन महीने रहने के बाद लगता है कि एक स्वस्थ और बहुत ख़ुश तरीके से रहने के लिये इस तरह का रूटीन रहना ही चाहिये।

हम फिर एक बार ऊँची जगह से मुड़ कर पीछे देखते हैं तो पेड़, झाड़ियों और रास्तों के बिखरे जाल में मन उलझ-उलझ जाता है। दूसरी तरफ़ थोड़ी-थोड़ी रौशनी के ब्रश से नीली पहाड़ियों पर कुछ और ही हो रहा है। नीली पहाड़ी की चमक गहरे ऊदे रंग में बदल गई है और एक क्षण को चारों तरफ़ सिंदूरी रंग छा जाता है; तब एकदम से पलक झपते ही सारी पहाड़ी गहरे सलेटी रंग में बदल जाती है और सूनेपन के गह्वर में कालापन मिल जाता है। पर यह तो कुछ देर को ही है क्योंकि अभी ही उजाले की दूसरी तस्वीर चमकेगी, जिसमें रहें की हर चीज़ दूसरी कल्पना में खो जायेगी। हम सब अपने-अपने घरों में दरवाज़े-खिड़कियाँ बन्द कर आग जलाये कमरों में बैठे होंगे। खिड़कियों के बाहर सड़कों पर फूले पेड़ों की घनी छाया लम्बी होकर लेट जायेगी और एकदम ख़ामोश सोती रहेगी; बीच-बीच में पहाड़ी से भेजे हवा के संदेशे से चौंक कर अनपेक्षित की अपेक्षा में चौंक-चौंक जायेगी। सारे आस्मान में तारे बहुत कम होंगे पर एक बड़ा-सा चाँद होगा, जो चाँदनी को हर घर में भेज-भेज कर बाहर करने की कोशिश करता दिखेगा। दिन-भर से ख़ामोश सड़कें थकी-सी चाँदनी को पाकर खिल जाती हैं; उसे चिपकाये अपनी कल्पना में डूबी रहती हैं। सारा कैनबरा आठ बजे के बाद सोया रहता है। सिर्फ़ यहाँ का आस्मान, नीली पहाड़ियाँ, चाँद, धुली सड़कें, पेड़ों की लम्बी-लम्बी छाया और इस जादू को ताकते-ताकते हमारी अनथकी आँखें जागती रहती हैं। ●●

कथा-लेखिका पर्ल बक

श्रीमती पर्ल बक को १९३७ में उनकी रचनाओं पर नोबेल-पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इस पुरस्कार के बाद श्रीमती बक को अमेरिका का सर्वोच्च साहित्यिक पारितोषिक—पुलीज़र पारितोषिक—मिला।

श्रीमती बक के माता-पिता धर्म-प्रचारक थे, और धर्म-प्रचार के लिए अमेरिका से चीन गये थे। साहित्य में उन्हें रुचि अपनी चीनी नर्स से मिली, जो उन्हें बौद्ध-कथायें सुनाया करती थी।

अमेरिका से बी० ए० करके वह पुनः चीन वापस आईं और एक अमेरिकी पादरी जान एल० बक से विवाह किया। इसके बाद दस वर्षों तक श्रीमती बक नानकिंग के विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी की प्रोफ़ेसर रहीं। १९३४ में वह चीन से अमेरिका वापस आ गईं और अपने पति को तलाक देकर एक प्रसिद्ध प्रकाशक से शादी कर ली। उनकी अधिकांश रचनाएँ इसके बाद लिखी गईं। उनमें १५ उपन्यास और २३ बच्चों की पुस्तकें हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- शकुन्त माथुर
  (सवक्तव्य)
- पद्मा सुधि
- जया गोस्वामी
- आशालता शर्मा
- आनन्दा आयंगर
- शेफाली

हिन्दी - कवियित्रियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्त माथुर

●

●जन्म-स्थान : दिल्ली

●जन्म-तिथि : २८ फरवरी १९२३

●कृतित्व : 'अज्ञेय' द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' में शकुंतला माथुर के नाम से

●कविता संग्रह : 'चाँदनी चूनर'

●प्रथम रचना 'हंस' १९४१ में छपी

आत्म - परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●● कविता अनुभूति की प्रक्रिया के किसी ऐसे स्तर पर जन्म लेती है, जहाँ प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाओं और उद्वेगों के अवशेष एक भिन्न बिंब क्रम में पहिले ही से जमा रहते हैं, और प्रसाद स्वरूप अपनी छाप छोड़ चुके होते हैं। यही कारण है कि कलात्मक उपलब्धि अनायास ही छोटी से छोटी घटना या दृश्य के संस्पर्श से उत्पन्न हो जाती है। उसके द्वारा वह मर्मस्थल जाग्रत हो जाता है जिस पर अनेक आघातों के चुभनचिह्न अंकित रहते हैं। जितनी तीक्ष्णता से इन चुभनों की छाप मर्म पर पड़ती है उससे कहीं कम मात्रा में वह अभिव्यक्ति की पकड़ में आती है। अतः पैनी अभिव्यक्ति के लिए अनुभूति को उसके सूक्ष्मतम पक्षों में पकड़ने की ज़रूरत होती है। मन में निरन्तर द्वंद्व का चाक चलता रहता है और भावनाएँ विविध आकार ग्रहण करती रहती हैं।

यहीं एक कठिनाई हर कृतिकार के सम्मुख उपस्थित होती है। एक क्षेत्र में होता है अनुभूतियों का शुद्ध, 'निर्मल' अहसास और दूसरी तरफ़ सिद्धान्त, आदर्श, फ़लसफ़े, मतमतान्तर, नैतिक और बाहिरी सामाजिक परिवेश की मर्यादाएँ आदि—एक शब्द में यदि कहें तो उसके समस्त संस्कार जो मन की अमूर्त चित्रशाला में मौजूद रहते हैं। होता ये है कि अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में शुद्ध अनुभूति और संस्कारों के रूढ़ प्रभाव धीरे-धीरे एक-दूसरे से मिलने लगते हैं और तब भावना के दर्पण में अन्यान्य रंग आने शुरू हो जाते हैं। अनुभति के छोटे-छोटे तत्वों में सिद्धांत और विचारा दर्श अपने अनुरूप अर्थ देने का यत्न करना आरम्भ कर देते हैं। चूँकि यह प्रक्रिया 'आसान' होती है इसीलिए मन 'आसानी' की तरफ़ जल्दी से चला जाता है। मन का यही रहस्य है कि वह हर चीज़ का उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश करता है और जब आसानी से नहीं मिलता तो दूसरे क्षेत्रों में जैसे दर्शन, आदेश, सामाजिकता आदि में उसे खोजता है।

यही कारण है कि बहुत-सी कविताएँ किसी प्रत्यक्ष "संदेश" की व्यंजना की तरफ़ भागती हैं। नतीजा ये निकलता है कि उनमें निहित अनुभूति शुद्ध नहीं रह पाती और इसीलिए कविता के सीधे आनन्द में बाधा पहुँचती है। बहुत-सी कविता इसी ढंग से लिखी जाती रही है। पर वह 'निर्मल' कविता न रह कर संदेश, वक्तव्य लेख या व्याख्यान हो जाती है। लेकिन शुद्ध अनुभूति स्वयं ही बहुत मूल्यवान होती है, उसे इतर रंगों की ज़रूरत ही नहीं होती। सीधे-सादे, मिलावट-रहित मानवीय संवेग स्वतः ही संदेशवाही होते हैं, वे भावक के अंतर को अधिक समृद्ध, अधिक ग्रहणशील और अधिक प्रखर बना देते हैं। भावक के मन को यदि कविता अधिक संवेदनशील बना सके,

निर्मल अनुभूति और 'शुद्ध' कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी झकझोर सके तो यही उसकी सबसे बड़ी सार्थकता है।

मैंने अपनी कविता में यही दृष्टिकोण रखा है। मैं अपनी अनुभूति को शुद्ध 'निर्मल' रूप में सीधे व्यक्त करना पसन्द करती हूँ। चीज़ों को मैं उनकी सहज, स्वभावगत स्थिति में देखती हूँ, उन्हें किसी और भावना या विषय का "उद्दीपन" नहीं मानती, बल्कि उनकी अपनी सत्ता को समझ कर उसी को बाँधना चाहती हूँ। उनके अलोने सौंदर्य और अस्तित्व को जब मैं सीधे देखती हूँ तो उस समय हमारे बीच किसी भी तरह के अन्य विचार या भावना का पर्दा नहीं रहता। इस प्रकार मैं उनकी निकटतम सत्ता से परिचित हो लेती हूँ और तब सहज, कोरी, ऋजु तथा अनालंकृत भाषा अपने आप आ जाती है।

ऐसी ही भावना को व्यक्त करती हुई मेरी एक कविता—

जब कई पक्षी
कई दिशाओं से
एक साथ बोलते हैं
तब
उनका
सिर्फ़ स्वर सुनती हूँ
अर्थ नहीं भरती।

कविता के लिए मुझे कोई भी आयास नहीं करना पड़ता। हर अनुभूति की नितांत सीधी और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति अपनी भाषा और शैली खुद लेकर आती है।

मेरी कविता की भाषा इनट्यूशन (Intuition) की भाषा है। वह तर्क-सम्मत, व्याकरण तथा अलंकरण की यांत्रिकता से बँधी "साहित्यिक" भाषा से भिन्न है जिसमें एक कृत्रिम अभिजातीय आवरण होता है जो मेरी राय में कविता की आंतरिक प्रकृति के विपरीत पड़ता है।

कविता के लिए किसी भी प्रकार की कृत्रिमता उसकी अनुभूति को क्रमशः नष्ट करती चली जाती है। तर्क-सम्मत भाषा जहाँ सिलसिलेवार हर नुक्ते को समेट कर क्रम से चलती है, वहाँ 'इनट्यूशन' की भाषा बीच की कड़ियों को लाँघ कर एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर तुरन्त पहुँच जाती है, और थोड़े से सहज शब्दों के हल्के स्पर्शों से किसी भी बड़े व्यापक क्षेत्र को उजागर कर देती है। तर्क-सम्मत भाषा प्रसरणशील होती है, 'इनट्यूशन' की भाषा उड्डीयनमुखी।

इसी भावना को व्यंजित करती हुई एक और कविता :

रस भरा
शीशे का गिलास
टूट गया
हाथों से छूट गया
टूट जाने दो
ज़िंदगी को अब
टुकड़ों में देखो।

शुद्ध कविता के लिए ये भाषा अधिक उपयुक्त है। इसके द्वारा उन चीज़ों की अनुभूति भी सहज रूप से व्यक्त हो सकती है जो देखने में साधारण जान पड़ती हैं और जिन्हें अधिकतर कविता के क्षेत्र से बाहर समझा जा रहा है।

मैं समझती हूँ कि कवियों की "रचना-प्रक्रिया" की व्याख्या करना कवि का काम नहीं, मनोविश्लेषक का है। कोई भी कवि अपनी रचना-प्रक्रिया को पूर्णतया समझ नहीं सकता, समझ जाय तो वह 'रचना'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रक्रिया' नहीं होगी व्याख्या या आत्म-समर्थन होगा। यह सही है कि हर कवि की पद्धति अलग होती है और वह मूल्यवान भी होती है, लेकिन सबसे बड़ा मूल्य तो उसका है जो उस प्रक्रिया से निर्मित होकर कृतित्व के रूप में बाहर आता है।

(१)

चप्पल का जोड़ा
रखा हुआ ज़्यादा
पहिना हुआ थोड़ा

फैला हुआ कालीन
उलटा-सुलटा बिछौना
सोया हुआ कम
जागा हुआ ज़्यादा

कमरा
ये
तरतीब से सजा है
किंतु
घड़ी में वही बजा है
कलेंडर में जनवरी ही का
मुख-पृष्ठ अभी लगा है
ये
ऊबा है कम
डूबा है ज़्यादा।

(२)

प्यासी ही लौटी हूँ
देखती रही खड़ी-खड़ी
पानी की सुन्दरता
बिंबों में डूब
डूबी ही लौटी हूँ
प्यासी ही लौटी हूँ
सोचती हूँ कुछ देर सो जाऊँ
फिर से खो जाऊँ
पानी के गहरे में
खोल पाऊँ
तब ये बिंब
हल्की हो जाऊँ

(३)

गहरी नींद में
सोये हुए शिशु की एक किलक
पास लेटी हुई माँ के
मुँह में
शैशव के दूध की एक बूँद

(४)

बदली आई है
न समझना बरसात को
शीत को
गर्मी के ताप को
ये
वही रस भीनी है
रंग भीगी है
शुरू साल की
होली के बाद की
याद है न
नीली यमुना की धार की
दूज के-से चाँद
उस कटाव वाली नाव की

बदली
फिर वही आई है
जानी-पहिचानी
महुए का मद ले
आम्र बौर की उठती हुई नोकों से
नीचे
धीरे
खिसल आई है
बदली आई है।

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

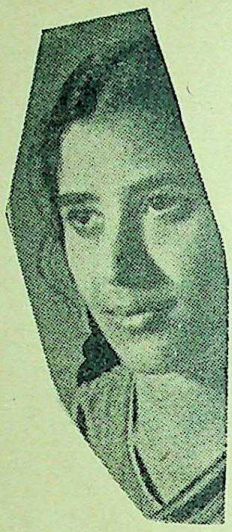

पद्मा सुधि

●

जन्म : २ अक्तूबर, १९३८; नौ जीवित भाइयों और एक जीवित बहन के उपरान्त। एक बहुत बड़े परिवार में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना रही हूँ जहाँ राई के पर्वत बना-बना कर मेरे ऊपर फेंक दिये जाते हैं। साथ ही बाहर के भी अनन्त विरोध एक संकटमय जीवन प्रस्तुत कर देते हैं। किन्तु यही अनन्त संघर्षों की झंझा मेरी प्रेरणा रही है। प्रेम, माध्यम और समन्वित ज्ञान-विज्ञान मेरा पथ। गन्तव्य है साहित्य द्वारा आत्म-बोध करना। एक पुस्तक 'भावलेखा' छप चुकी है। ७ और पुस्तकें प्रकाशनार्थ तैयार हैं।

गीत

हरसिंगार का झरना
क्षरित हुआ प्राँगन में।

अर्धज्वलित कर्पूर - सा—
मधुमास शरद सम्पर्क - सा
झरा सुमन बन बूँद - बूँद
दे इष्ट को मधुपर्क - सा।

भौरों के शिलाखंड—
टूट पड़े गुंजन में।

जाति लता की सब सखियां
हिना, मोंगरा, सुगन्धरा,
धो बैठीं सौरभवलियां
स्नात गन्ध से वसुन्धरा।

मधुरस पी मधुमाछर,
निपुण हुआ दंशन में।

तम बाँध - बाँध देती है
रात पातकी निर्झर में
निज ज्वाल - माल धोने को
ऊषा पर हूँ निर्भर में।

बसा रहा है झरना
नेहपुरी सिहरन में!

फैली मदिरा गन्ध की
फिर बात उड़ी घर - घर में!
सभी उठा निज घर लाए
भीर जुड़ी मेरे दर में।

घट - पट भरे सभी ने
फिर निर्झर आँगन में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोझीला प्रश्न-चिन्ह

कई दिनों बाद
आज अभी बस स्टैंड पर
अकायक मुलाकात हो गई
"ओहो...तुम (!)
क्या हाल है....
और सुनाओ...
भई कभी आओ न घर...
अच्छा, तो जरा जल्दी है..."
और सर्र...
तेजी से गुजर गए फायर ब्रिगेड जैसा
वह एक मिनट
औपचारिकता, आशंका, उपेक्षा,
बनावटी व्यस्तता के भाव और
अब भी आ रही सेंट की खुशबू
के साथ निकल कर
सारे वातावरण को
एक अजीब प्रश्नवाचक बना गया है
जिसका आकार
कुछ यों सा है—
ऊपर का पूँछदार अर्धवृत्त चिन्ह
बिल्कुल हलका, छोटा-सा
और नीचे वाली बिन्दु
निहायत पड़ी, बोझिल ।

शोध : सन्दर्भहीन

कुहासे-सी क्षणिक उस मुलाकात के बाद
ढूँढ़ती रही मैं तुम्हें
शहर के
हर भीड़ भरे रेस्तराँ में
कॉफी हाउस में
जगमग हाट की
लम्बी फुटपाथ पर
घूमते टिप्‌टाप
हंटिंग यूथ के जत्थों में
अंग्रेजी शो में
केवल फैशन के लिए आने वाली जेन्ट्री में
कहाँ नहीं ढूँढ़ा है
तब से तुम्हें ?

लेकिन फिर लगा जैसे
ये सब कितने बेतुके संदर्भ हैं तुम्हारे लिए
रद्दी की टोकरी में
भूल से फेंक दिए जाने वाले
ओ' महत्वपूर्ण कागज के टुकड़े
तुम इनमें से
कहीं भी नहीं मिल सकते
और कहीं भी मिल सकते हो ।

● जया गोस्वामी

४ फरवरी १९३८ को जयपुर के एक विद्वत्परिवार में जन्म हुआ। शिक्षा: बी. ए. (फायनल)। ललित कलाओं में रुचि। चित्रकला से विशेषानुराग। कविता की नई शैली से प्रभावित होकर कुछ प्रयोग किये हैं। रचनात्मक नवीनता की ओर अत्यधिक झुकाव। भविष्य के लिए बहुत महत्वाकांक्षाएँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशालता शर्मा

●

जन्म-तिथि : ४ अप्रैल, १९४०; अध्ययन : बी० ए०। सितार वादन, गायन तथा चित्रकला अतिरिक्त रुचियाँ हैं। प्राथमिक कविताएँ आगरा कॉलेज मैगजीन (अनुजा) तथा 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित। प्रकाशनार्थ : कविता-संग्रह "नीली झीलों में"।

तरसा हियरा रात भर

रात - रात भर बदरा बरसा, तरसा हियरा रात भर।
बादल - सा आँचल पसार कर
लगा झड़ी दी ; चले गये।
राह रोक कर खड़ी द्वार पर
रही जड़ी - सी ; चले गये।
बला तुम्हारी, भले जले फिर कोई बिछुरा रात भर॥

भीग रहा है आँगन जैसे
खेले मोहन होली हों।
या फिर बिछुरी हुई गोपियाँ
साथ बैठ कर रो ली हों।
गया शाम की कह कर फिर भी, फिरा न निठुरा रात भर॥

चौखट के बाहर रखते ही
मेरे कदम फिसल जाते हैं।
इस वर्षा में बिन भीगे ही
कैसे लोग निकल जाते हैं।
कड़क - कड़क कर देती रहती बिजली पहरा रात भर॥

आँखों में चढ़ते खुमार को
ओलों से कैसे धो लूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँहों में सोने की आदत
शोलों पर कैसे सो लूँ।
नैनों की कोरों में गल-गल पिघला कजरा रात भर।।

बन्द खिड़कियों की छाती पर
सिर धुन-धुन जाती बूँदें।
मैं न किसी को व्यथा बताऊँ
पर सुन-सुन जाती बूँदें।।
धुला न ज़हर ज़रा भी, इतना गहरा उतरा रात भर।।

दरवाजे पर दस्तक कोई
बार-बार पहचानी-सी।
आहट पाँवों की लगती है
सुनी हुई-सी, जानी-सी।
नींद उड़ी आँखों में झलके शशि-सा मुखड़ा रात भर।।

बिन छूए मेरी वीणा के
तार गूँज से जाते हैं।
कोई कर आकर जूड़े में
हार गूँथ-से जाते हैं।
पर कसका सूखे सुमनों का बिखरा गजरा रात भर।।

लगता जैसे मेरे प्रियतम
अब आते, अब आते हैं।
क्षण में महल टूट पड़ता
स्वप्नों के शव दब जाते हैं।
सुधि की समिधा बना दहकता, भूला-बिसरा रात भर।।

कैसे काटूँ पल, निर्बल मैं,
पल-पल मुझको काट रहा।
कब तक बाट निहारूँगी मैं
समय साँस ले, बाँट रहा।
सुबह जिबह करने आयेगी, चीखे जियरा रात भर।।

बदली पगली छोड़ ये गली
आज मुंहजली रपटेगी।
तरु को पता न, भले सता ले,
लता, लता है, लिपटेगी।
जा न सकोगे अब बैठी हूँ, बाँधे अँचरा रात भर।।
रात-रात भर बदरा बरसा, तरसा हियरा रात भर।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

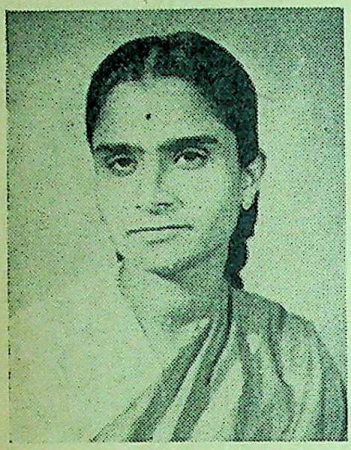

आनन्दा आयंगर

●

जन्म ३० अप्रैल, १९३६ को बंगलौर में हुआ। आरंभिक शिक्षा बंगलौर और मैसूर में। एम. ए. (अंग्रेजी में) रीवा, मध्य प्रदेश से। मातृभाषा कन्नड़। कॉलेज जीवन में अंग्रेजी भाषा में कुछ लेख और कविताएँ लिखीं। कन्नड़ कविताओं और कहानियों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया; लेकिन वे सब मित्र वर्ग तक ही सीमित रहे। १९६० में बंगलौर से आकाशवाणी के भोपाल केन्द्र में स्थानान्तरण होने पर कुछ मित्रों के सम्पर्क से हिन्दी में लिखने की प्रेरणा मिली।

●

तुम रूठ कर न जाओ
कुँआरे सुहाग की सौगंध।
मेरी माँग को
रेल की पटरी न बनाओ
तेरे विश्वास की सौगंध।

यदि तुम्हारा
रुकना नहीं संभव
तो, मैं
विंध्याचल-सी
देखती रहूँगी रास्ता
मुझे तो सूरज छिपाना है
अपनी गोद में।

मुझे पहचान लेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेफाली

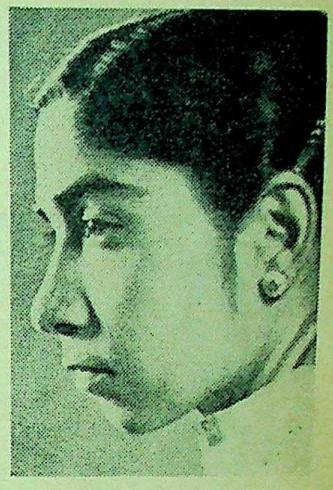

जन्म नवम्बर १९३६ में एक पंजाबी परिवार में हुआ। पाँच-छः साल पहले लिखना शुरू किया। अधिकतर कहानियाँ व लघु-भाव-कथाएँ लिखीं। कविताएँ कम लिखी हैं। 'नई कविता' मुझे बहुत भाती है। पत्रिकाएँ पढ़ना, एस्प्रेसो कॉफ़ी पीना, सोना और पिक्चर देखना मेरे प्रिय शौक हैं। घर सजाना मुझे पसन्द है। दकियानूसी लोग मुझे बिल्कुल अच्छे नहीं लगते। आजकल दिल्ली - विश्वविद्यालय से एम. ए. कर रही हूँ।

ज्यों ही दर्द कुरेदोगे,
वर्षा के बाद मिट्टी की,
सोंधी - सोंधी सुगन्ध - सा,
प्यार छा जायेगा।

फूल कहीं हँस देंगे,
कोयल कहीं गायेगी,
घुटन बड़ी देर की है,
बादल बरस जायेगा।

ज्यों ही दर्द कुरेदोगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतलता की प्राप्ति

चिंता से मुक्ति

उमस-भरी हवा और भट्टी-सी तपती धूप में शीतलता पाने और शीतल रहने का सबसे अच्छा उपाय है—अफगान लेवेंडर का छिड़काव। और भूलिये मत! कमल साबुन, अफगान टाल्कम और अफगान स्नो, हर युवती के लिए तीन अनिवार्य चीजें हैं।

अफगान स्नो—सौंदर्य प्रसाधन

ई० एस० पाटनवाला, बम्बई–७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

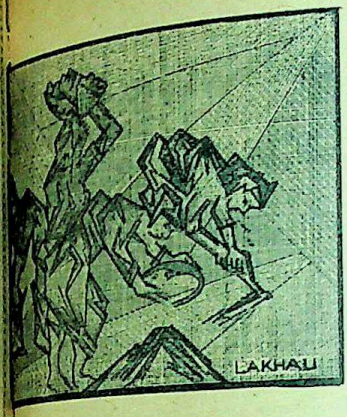

●इस खण्ड के अन्तर्गत विशेषाङ्क में स्थानाभाव के कारण केवल सात भारतीय भाषाओं की ही कविताएँ प्रकाशित की गयी थीं ; शेष छः कविताएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :

- पंजाबी : प्रभजोत कौर
- बँगला : केतकी कुशारी
- तमिल : मीनाक्षी
- मलयालम : सुगत कुमारी
- भारतीय-अंग्रेज़ी : लीला राय
- उर्दू : तबस्सुम 'सहर'

अन्तर-भारतीय - कवियित्रियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबी

• प्रभजोत कौर

(अनु० तृप्ता कपूर)

पति-पत्नी दोनों साहित्यकार हों तो फिर सोने में सुगंध ही समझिए। प्रभजोत कौर श्री नरिन्दरपाल सिंह की जीवन-संगिनी हैं जो पत्नी के लेखन-कार्य को उत्साह-पूर्ण तथा प्रशंसात्मक दृष्टि से देखते हैं।

अमृता प्रीतम की तरह प्रभजोत ने भी नारी-हृदय के स्वप्न, उसकी आशाओं तथा उमंगों को गीत-बद्ध करने का प्रयत्न किया है। कविताओं में व्यक्त भाव चाहे सुपरिचित हों, अभिव्यक्ति निष्कपट, निर्दोष, तथा लोकगीतों-सी सरलता लिए है। इसीलिए जानी-पहचानी बात भी नई-सी लगने लगती है।

पंजाबी काव्य-साहित्य को प्रभजोत जी ने अब तक ७ काव्य-संग्रह दिये हैं।

ओ माँ, परदेसी बेटियाँ तेरी---
परदेसी बेटियाँ,
दो दिन आँगन में खेलना
दो दिन तेरी छाँह में बैठना
परदेसी बेटियाँ !
वीर ने वर ढूँढ़ा, बाबल ने रचाया ब्याह
पल में किया पराया, हाथ से हाथ छुड़ाया
रोते-रोते डोली में बिठाया
सुनी न कुछ भी बात
परदेसी बेटियाँ, ओ माँ !
ओ वीर, तेरी घोड़ी के चूमती हूँ पाँव
शगन मनाऊँ तेरे बार-बार
सखियों में बैठ प्रशंसा करूँ तुम्हारी
बाबल का यश गाऊँ---परदेसी बेटियाँ !
दो दिन दाना चुगेंगीं तेरे खेत का
उड़ेंगी फिर बेग़ानी राह
कौन खेलेगा माँ तेरे आँगन में फिर
हाय रे भाग्य, बेटियाँ अपनी देस बेगाना
परदेसी बेटियाँ...ओ माँ...!

बेटी अपनी, देस बेगाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगला

सॉनेट

बरसात के रुक जाने पर झिलमिलाते हुए रेशमी आकाश पर
पत्तों की मधुर सरसराहट से कम्पित-सी मधुर ध्वनि बिखरती रहती है
सांध्य ट्रैफिक का स्वर भींगे हुए राजपथ से तैरता हुआ आता है
आलोकित खिड़कियाँ यदाकदा संगीत की स्वर-लहरी बिखेर देती हैं।

रेस्तराँ से भोजन कर घर लौटते समय गिरजाघर के पास
दिखाई पड़ता है, हाथी-दाँत का बना हुआ गोरा चमकता हुआ चाँद
खाली बिछौने की सफेद चादर पर ठंडी चाँदनी सोई रहती है
दीवारों में स्पन्दित होती रहती है घड़ी की टिक्-टिक् आवाज।

रात के सवा दस बजे का आलोकित दुखित रेलवे स्टेशन
उस समय स्मृति के अन्तर में एकमात्र वही जगा रहता है
गाड़ी की खिड़की से निहारता हुआ एक प्यारा-सा मुखड़ा
फ्रेम-बन्द फोटो-सा आँखों में तैरता रहता है।

मेरे हृदय-समुद्र में ज्वार आता है और उसकी लहर मुझे याद दिलाती है
(कि) आज दस दिन हो गए कोई पत्र नहीं आया।

• केतकी कुशारी

जन्म: सन् १९३८ ई०; सन् १९५४ ई० में स्कूल फाइनल परीक्षा में बंगाल की छात्राओं में आपने सर्वप्रथम तथा छात्र-छात्राओं को मिला कर चतुर्थ स्थान प्राप्त किया था। अंग्रेज़ी विषय में आपने सर्वाधिक अंक प्राप्त किए थे। बी० ए० में भी आपने अंग्रेज़ी में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए। कलकत्ता विश्वविद्यालय से गत १९६० ई० में एम० ए० भी आपने अंग्रेज़ी साहित्य में ही किया है। वर्त्तमान कार्य है अध्यापन एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय में खोज कार्य।

(श्री गोपाल माहेश्वरी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमिल

सन जैसे सफेद केशों वाली बुढ़िया दादी

यह मेरी बुढ़िया दादी—
अस्सी वर्ष की,
दोपहरी की चिलचिलाती धूप में
या फिर
मूसलाधार बरसात में, तूफ़ान में
इधर-उधर घूमती-फिरती है।
अच्छे और बुरे
दोनों तरह के दिनों की ही
इसने अवहेलना की है
और घूमती-फिरती है : सन जैसे सफेद केशों को लेकर।
एक दिन दादी को प्रणाम कर
मैंने पूछा था,
"दादी माँ, इस लकुटी का सहारा लेकर
तुम क्या ढूँढ़ती-फिरती हो?"
अपनी धुँधली आँखों से
मेरी ओर देख कर
मुस्करा कर उसने कहा,
"मैं क्या ढूँढ़ती हूँ, तुम नहीं समझोगी...
फिर भी सुनो...
मैं मेरे उन बीस वर्षों को ढूँढ़ती हूँ
मेरे स्वप्नों के, मेरे यौवन के बीस वर्षों को
हो सकता है
(कि) वे इस रास्ते की धूल में ही लीन हुए पड़े हों!"

• मीनाक्षी

पूरा नाम : कुमारी जी० बी० मीनाक्षी रामुलु। जन्म : सन् १९३२ ई०। शिक्षा : स्कूली शिक्षा मात्र नवीं श्रेणी तक। वर्तमान कार्य : पारिवारिक जीवन। विभिन्न दैनिक, पाक्षिक, मासिक पत्र-पत्रिकाओं में बहुत-सी कविताएँ एवं कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

(अनु० राकेश खन्ना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नया 'नारसिसस'

शैलों की हैं सात श्रेणियाँ
सात समुन्दर के उस पार ।
उनके परे है एक सरोवर
स्फटिकोपम है जिसका जल ।
कल की बात है, शाम को
जब मैं उस जल में
अपना ही मुख
देख रहा था निर्निमेष हो
झुक कर, अपने में ही आप ।
पास खड़े कुसुमित चंपक के
पसरे कर पर आ बैठा
सुमनपराग संलिप्त नील-तनु
भ्रमर एक अति मंजु-स्वरूप ।
कल का फूला एक कुसुम झट
झड़ कर जल में ज्यों ही गिरा
लहरें उठीं और पोंछ ही डाला
मेरा जल में पड़ा प्रतिरूप ।
आर्द्र कांच पर जो मंजुलतर
प्रतिबिंबित था मेरा रूप ।

उसे इस कदर टुकड़े-टुकड़े
होता देख, विवश होकर
उठा, मगर यह क्या ?
मेरे पैर
अक्ष्म तुल्य निश्चल हैं बने ।
दूर से कोई मेरा नाम ले
पुकार उठा—"वापस आ जा !"
हारे-थके तारों वाली
वीणा सिसकी—"प्रतीक्षा में हूँ ।"
पर जल पर नाचने वाले
मेरे चंचल रूप की ओर
तकता रह जाता उदास-निराश
सदा किसी के पुकारने पर भी
जाने से लाचार ।
सात समुन्दर
सातों पर्वत
पार किए मैंने बेकार ।
मिला मुझे क्या आखिर हाय राम !
नैन-नीर कर एक तड़ाग !

• सुगत कुमारी

मलयालम की नई पीढ़ी की कवियित्रियों में इनका प्रमुख स्थान है । इन्होंने अधिक नहीं लिखा है । किन्तु जो कुछ लिखा है, वह उज्ज्वल भविष्य की प्रतिश्रुति लिये हुए है ।

(अनु० रवि वर्मा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वतमालाएँ और समतल मैदान

महन्त अपनी प्रार्थनाएँ गुनगुनाते हुए ;
घुटनों के बल झुकती हैं
लबादे ओढ़े हुए पहाड़ियाँ
आकाश की श्वेत वेदी के चरणों पर ।

लबादेदार पर्वतमालाओं की उपत्यका के बीच से
चौड़े मंगोलियन मैदानों में
आड़ी झीलें झुकी हुई हयादार आँखें उठाती हैं
रत्नजटित महन्त शिखरों की ओर ।

भाई की मृत्यु से शोक-संतप्त के लिए

वापस बुला लिये गये मृत के घर में
तुम उँगलियों से खोलते हो
स्मृति के शिशु-वस्त्र ;
तुम्हारी आँखें खिड़कियाँ, जिन पर स्याह पर्दे लगे हैं ।
दुखी और आशंकित, अपरिचित, एक अजनबी,
मैं पराये घर के सुरक्षित लॉन में
कदम रखती हूँ ।

• लीला राय

कवियित्री, निबन्ध-लेखिका तथा अनुवादिका । प्रसिद्ध बंगाली उपन्यासकार अन्नदाशंकर राय की पत्नी । १९३० में अमरीका से भारत आयीं । 'एतलांतिक', 'ईस्ट एण्ड वेस्ट', 'क्वेस्ट', 'यूनाइटेड एशिया', 'द आर्यन पाथ', 'राइटर्स वर्कशॉप मिसेलेनी' तथा अन्य पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित हुई हैं । इन दिनों शान्तिनिकेतन में रहती हैं ।)

(अनु० राजकमल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

समझी नहीं हयात की शामो-सहर को मैं
हैरत से देखती रही शम्सो-क़मर को मैं
यह कौन गायबाना है, जल्वे दिखा रहा
बेताब पा रही हूँ जो अपनी नज़र को मैं
मंज़िल का होश है, न है अपनी ख़बर मुझको
मुद्दत से तक रही हूँ तेरे रहगुज़र को मैं
दिल की कली कभी न खिली फिर भी आज तलक
हसरत से तक रही हूँ नसीमे-सहर को मैं
मेरे जनूने-शौक़ का आलम तो देखिए
सजदे भी कर रही हूँ तो अपने ही दर को मैं
मुड़-मुड़ के देखने पर वह मजबूर हो गए
अब कामयाब पाती हूँ अपनी नज़र को मैं
यह किसके नक्शे-पा ने हैं थामे मेरे क़दम
मंज़िल समझ कर बैठ गई रहगुज़र को मैं
माना नहीं है कोई तबस्सुम-नवाज़ आज
फिर भी परख रही हूँ किसी की नज़र को मैं

• तबस्सुम 'सहर'

जन्म: सन् १९३७ ई०। शिक्षा: आंध्र विश्वविद्यालय से बी० ए०। वर्त्तमान कार्य: पारिवारिक जीवन एवं साहित्य सृजन। दो कविता-संग्रह प्रकाशनार्थ तैयार हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

"मगर मुन्ने का मीठा शरबत तुम्हें नहीं मिलेगा—समझीं चिड़िया रानी!"

शक्ति और स्फूर्ति देनेवाला **नौनिहाल** बच्चों को हमेशा निरोगी और प्रफुल्ल रखता है।

नौनिहाल ग्राइप सिरप दांत निकलने की तकलीफ़, कब्ज़, पेट फूलना, दस्त, वायु और पेचिस की तकलीफ़ों में तुरन्त आराम पहुँचाता है।

नौनिहाल बेबी टॉनिक, स्वास्थ्य के लिये ज़रूरी विटामिनों से भरपूर, यह टॉनिक ख़ून की कमी, हड्डियों की कमज़ोरी, मसूढ़ों की सूजन, सर्दी और ज़ुकाम के लिये बहुत ही फायदेमन्द है।

बच्चों को निरोगी और प्रफुल्ल रखने के लिये—

नौनिहाल

हमदर्द

देहली
कानपूर
पटना

maa. HDN. 482 A HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

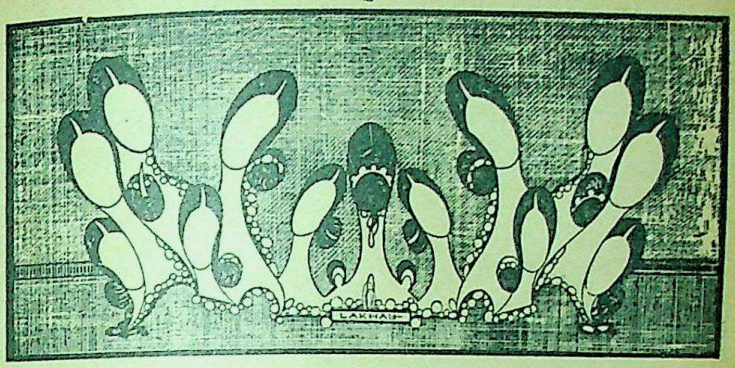

परिचर्चा

हिन्दी की नवोदित लेखिकाओं के लेखन, प्रकाशन और परिवेश की कुछ अपनी समस्याएँ हैं, कुछ ऐसी विशिष्ट कठिनाइयाँ हैं जो उनके समुचित विकास में बाधक सिद्ध होती हैं। विशेषांक की परिकल्पना के मूल में हमारा यही आग्रह था कि नवोदित लेखिकाएँ अपनी इन समस्याओं और कठिनाइयों और सीमाओं पर स्वयं ही विचार-विमर्श करें और इस सम्बन्ध में अपने अनुभव, विचार और सुझाव प्रस्तुत करें, ताकि वर्त्तमान और भावी पीढ़ी की लेखिकाओं के विकास का पथ अपेक्षाकृत अधिक सहज-सुगम हो सके। इसी लक्ष्य को सामने रख कर हमने विशेषांक में एक परिचर्चा का आयोजन किया था जिसमें नवोदित लेखिकाओं की लेखन, प्रकाशन और परिवेश सम्बन्धी निम्नलिखित समस्याओं पर विशेष रूप से विचार-विमर्श अपेक्षित था :

१. क्या कारण है कि लेखिकाओं के विषय का क्षेत्र इतना अधिक सीमित होता है ? अक्सर ही हम पाते हैं कि 'परिवार' और 'प्रेम' ही उनके दो प्रिय विषय होते हैं। क्या इसका कारण उनके अनुभव के क्षेत्र का सीमित होना है ?

नवोदित लेखिकाएँ
लेखन, प्रकाशन और परिवेश सम्बन्धी समस्याएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. वे अधिकतर परम्परावादी शिल्प में ही लिखना क्यों पसन्द करती हैं ?

३. क्या कारण है कि अधिकांश लेखिकाएँ छात्र-जीवन में तो लेखन की ओर काफ़ी रुचि और उत्साह दिखलाती हैं, लेकिन शादी हो जाने के बाद उनका लेखन प्रायः बन्द जैसा ही हो जाता है ?

४. उनकी प्रकाशन की क्या समस्याएँ हैं ? अक्सर यह देखने में आता है कि वे प्रारम्भ में जो कुछ भी लिखती हैं उसे पत्रिकाओं आदि में भेजने में झिझकती हैं और दूसरे को दिखाने में भी संकोच करती हैं। अक्सर यह भी देखने में आता है कि जिन नयी लेखिकाओं के बन्धुओं, परिचितों आदि में कोई प्रतिष्ठित लेखक या संपादक आदि होता है, उनकी रचनाएँ जल्दी ही प्रकाश में आने लगती हैं और इसीलिये लेखन की ओर उनकी रुचि क्रमशः बढ़ती चली जाती है और भविष्य में वे पूर्ण आत्मविश्वास से लिखने लगती हैं, लेकिन जिन लेखिकाओं के साथ यह स्थिति नहीं होती वे अक्सर दो-चार चीज़ें लिखने के बाद ही निराश होकर लिखना बन्द कर देती हैं।

५. जो लेखिकाएँ अध्यापन आदि के कार्य में लगी हुई हैं उनके लिए तो लेखन का कार्य भी साथ-साथ चालू रखना कठिन नहीं होता लेकिन जो लेखिकाएँ नितान्त पारिवारिक जीवन व्यतीत कर रही हैं वे अपने लेखन और परिवार के बीच किस तरह सामंजस्य रख पाती हैं ?

● **उक्त परिचर्चा के अन्तर्गत आय बहुत-से विचारों में से हम विशेषांक में स्थानाभाव के कारण केवल ७ लेखिकाओं के विचार प्रकाशित कर सके थे; शेष १४ लेखिकाओं के विचार यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :**

मन्नू भण्डारी, मोहिनी ओबराय, रजनी पनिकर, ज्योत्सना मिलन, मनमोहिनी, शिवानी, रमा सिंह, शुभा वर्मा, शशिप्रभा शास्त्री, ममता अग्रवाल, जया नागर, प्रेमलता वर्मा, सुनीता अग्रवाल, सरस्वती चौधरी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्नू भण्डारी

●

प्रिय लूसी,

हिन्दी में लिखा तुम्हारा पत्र मिला। फ्रांस की निवासिनी होकर भी तुम इतनी अच्छी हिन्दी लिख लेती हो और हिन्दी साहित्य का ऐसा पूर्ण ज्ञान तुम्हें है, यह देख कर आश्चर्य तो हुआ ही, साथ ही बड़ी प्रसन्नता भी हुई। हिन्दी की लेखिकाओं के कृतित्व और व्यक्तित्व को लेकर तुमने जो इतने सारे प्रश्न पूछ डाले उससे तुम्हारी उस जिज्ञासा-वृत्ति का अनुमान सहज ही हो जाता है जिसने तुम्हें इतना कुछ ज्ञान लेने में समर्थ बनाया। सच कहूँ तो दो दिन से मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर ही खोजती रही हूँ, और चाहा है कि कुछ ऐसा लिखूं कि तुम्हें स्थिति का पूरा और सही ज्ञान हो सके। यों मैं चाहे सभी लेखिकाओं की ओर से कहूँ, पर इतना समझ लो कि उसका मुख्य आधार मेरे अपने अनुभव ही हैं, इसलिये चाह कर भी शायद सही अर्थों में मैं लेखिकाओं का प्रतिनिधित्व तो न कर सकूँगी।

देखती हूँ तुम्हारी सारी बातों को बड़ी सरलता से दो प्रश्नों में बाँधा जा सकता है—पहला हिन्दी की लेखिकाओं के विषय इतने सीमित क्यों है और दूसरा उनकी अभिव्यक्ति में वह गहराई, ईमानदारी और निर्भीकता क्यों नहीं है जो किसी भी कलाकृति के लिए अपेक्षित है। बातें तुम्हारी दोनों ही सही और बड़ी मार्के की हैं और हमारे यहाँ की लेखिकाओं की सीमा और सामर्थ्य पर विचार करने को विवश करती हैं।

सोचती हूँ अपना उत्तर एक उदाहरण से आरम्भ करूँ तो ज्यादा अच्छा रहेगा। कहानी लिखती हूँ इसलिए घटनाओं के माध्यम से बात कहने में अधिक सुविधा होती है—बात का विवेचन-विश्लेषण करना शायद मुझे ठीक से आता भी नहीं।

अभी चन्द दिनों पहले की ही बात है। मेरे अपने कॉलेज की एक अध्यापिका ने (हिन्दी की अधिकतर लेखिकाएँ सम्भवतः अध्यापिकाएँ ही हैं) एक कहानी लिख कर दी कि मैं उस पर अपनी राय और सुझाव दूँ। वह एक प्रेम-कहानी थी, पर किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से कही गई थी। मैंने कहा इसे प्रथम पुरुष में लिखो तो ज्यादा अच्छा रहेगा, अन्य पुरुष में लिखने से इसकी प्रभावोत्पादकता ही समाप्त हो गई है। उसने छूटते ही कहा—'हाय राम! सब लोग पढ़ेंगे तो क्या कहेंगे—भैया-भाभी क्या सोचेंगे? उत्तम पुरुष में तो मैं लिख ही नहीं सकती!'

उम्र उसकी सताइस-अट्ठाइस के आसपास की होगी, पर क्योंकि वह अविवाहित है और परिवार के बीच रहती है इसलिए उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रेम की बात न जाने-सुने, न कहे-लिखे। सेक्स की बात का तो प्रश्न ही हमारे यहाँ नहीं उठता। तुम्हारे यहाँ सत्रह साल की सागाँ जिस निर्भीकता से लिख लेती है उसे हमारे यहाँ अक्षम्य दुस्साहस माना जाता है और उसका अभाव यहाँ की लेखिकाओं में तो क्या यहाँ के लेखकों में भी मिलेगा। 'सेकिण्ड-सेक्स' या 'इन्टि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेसी' जैसी चीज़ें लिखने की बात सोचने तक का साहस भी हम नहीं कर सकतीं। 'सुनीता' की सुनीता, 'दादा कॉमरेड' की शैल और 'नदी के द्वीप' की रेखा में हमारे यहाँ की तथाकथित शील की सीमाओं का अतिक्रमण हुआ कि चारों ओर जैसे खलबली मच गयी। इन रचनाओं के लेखक पुरुष थे जो सह गये और इस निर्भीकता को उनका मानसिक-विकार कह कर बात टाल दी गई; पर यही सब यदि किसी लेखिका ने लिखा होता तो इसमें सन्देह नहीं कि अत्यधिक आधुनिक और उदार दृष्टिकोण रखने वाले लोग भी छींटाकशी करने से बाज नहीं आते और कथा की नायिका का सीधा सम्बन्ध उसके व्यक्तिगत जीवन से जोड़ कर उसे निर्लज्ज, बेहया और बेशर्म क़रार दे दिया जाता। यदि वह परिवार के बीच रह रही है तो उसे सदाचार के उपदेश सुना-सुना कर सत्पथ पर चलने का आदेश दिया जाता, और यदि परिवार से कट कर स्वतन्त्र रूप से कहीं अध्ययन-कार्य कर रही है तो संचालकों को गम्भीरता-पूर्वक इस बात पर विचार करने को बाध्य होना पड़ता कि अनेकानेक छात्राओं की पथ-प्रदर्शिका यदि स्वयं गुमराह है तो छात्राओं का पथ-निर्देशन कैसे करेगी? यदि वह किसी ऑफिस में है तो उसे चालू लड़की समझ कर हर कोई उससे कुछ अनुचित आशा करने लगता है। तुम्हीं बताओ ऐसी स्थिति में हम लोग कैसे लिखें?

यह जान कर तुमको शायद हँसी आएगी कि मुझ जैसी लेखिका को भी यहाँ के लोग दुस्साहसी मानते हैं। 'ईसा के घर इन्सान', 'घुटन', 'गीत का चुम्बन' और 'यही सच है' कहानियों में से शायद ही कोई ऐसी कहानी हो जिसके प्रकाशन पर मुझे यह सब न सुनना पड़ा हो कि 'मन्नू तुम बेशर्म होती जा रही हो' या कि यह सब लिखते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती! चुम्बन और आलिंगन की बात तुम लिख कैसे लेती हो आदि-आदि।' और क्योंकि अन्तिम कहानी को छोड़ कर सभी रचनाएँ विवाह से पहले लिखी गई थीं इसलिये मेरा अपराध और गुरुतर हो उठा था। हमारे यहाँ प्रेम और सेक्स की बातें जानने का लाइसेन्स उम्र से नहीं विवाह से मिलता है। चौदह वर्ष की लड़की यदि विवाहित है तो सब कुछ जान सकती है और पैंतीस साल की होकर भी यदि अविवाहित है तो उसके लिए इन सब का ज्ञान वर्जित है। 'यही सच है' कहानी मैंने अपने विवाह के छः महीने बाद लिखी थी और सब ने एक स्वर से कह दिया कि यह मेरे अपने प्रथम प्रेम और दूसरे प्रेम की कहानी है और फिर अनेक मित्रों ने सत्परामर्श के तौर पर सुझाव दिया था कि जो बात बीत गई उसे खोद कर मुझे अपने वर्तमान जीवन को विषमय नहीं बनाना चाहिये! सौभाग्य से मेरे पति स्वयं लेखक हैं और लेखन-प्रक्रिया से परिचित हैं वर्ना इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस अकेली कहानी से ही विवाहित जीवन विषमय हो सकता था।

ऐसी बात नहीं कि हमारा हृदय संवेदनशील नहीं या किसी बात की अनुभूति होती नहीं होती, पर अपनी वास्तविक अनुभूतियों और भावनाओं को कलात्मक-संतुलन और उन्मुक्त-निर्व्याज भाव के साथ व्यक्त करने की अनुभूति भी हमारा परम्परागत-सामाजिक गठन नहीं देता; यहाँ तक कि हम स्वयं भूले-भटके ऐसा कुछ लिख डालने पर निरन्तर अपराधी महसूस करती रहती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कहानी-संग्रह की भूमिका में लिखा भी था—"यदि कहानी-लेखिका घिसे-पिटे कथा-नकों और भाव-धरातलों को ही लेती रहे तब तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ उसने जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्रों को छूने का साहस किया कि प्रत्यक्ष और परोक्ष वर्जनाएँ उसकी ओर उँगली उठाती सामने आ खड़ी होती हैं। जगह-जगह 'निषिद्ध-क्षेत्र' की तख्तियाँ उसके आसपास मँडराती हैं। ऐसे में यह मानसिक द्वन्द्व उसके लिये एक समस्या बना रहता है कि वह कला के प्रति ईमानदारी बरते या जड़ विधि-निषेध के प्रति।" और परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि उसे मजबूर होकर विधि-निषेध के प्रति ही ईमानदार रहना पड़ता है। हमारी अनुभूति समाज द्वारा थोपे हुए संस्कारों और अनेक परतों से छन कर अभिव्यक्ति पाती है और यही कारण है कि उसमें वह गहराई नहीं आ पाती।

इसी के साथ तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर भी जुड़ा हुआ है। दूसरे शब्दों में कहूँ तो वास्तव में तुम्हारे दोनों प्रश्न एक ही स्थिति के दो पहलू हैं। कहानियों की सीमित विषय-वस्तु का सीधा सम्बन्ध हमारे अनुभव की सीमाओं से है। उच्चकोटि की कला के लिए जहाँ एक ओर अभिव्यक्ति की ईमानदारी अपेक्षित है वहीं अनुभवों की व्यापकता भी। और यहाँ भी हमारे सामने वही सीमाएँ और मर्यादाएँ आड़े आती हैं। अनुभव समृद्धि के लिए कथाकार को अपने आप से बाहर निकल कर जिन क्षेत्रों और जीवन-खण्डों को जानना ज़रूरी होता है वह सब हमारे लिए सहज-सम्भव नहीं है। हम लोग न तो किसी 'ऐसी-वैसी' जगह जा सकती हैं और न हर किसी व्यक्ति से एक सीमा से आगे घनिष्ठ ही हो सकती हैं। जिनसे थोड़ी-बहुत घनिष्ठ होती भी हैं उन्हें पहले परिवार की 'सुरक्षित मर्यादाओं' में बाँध लेती हैं। हर क्षण दूसरों की ओर से सन्देह, व्यक्ति और स्थान (object) के प्रति आशंका और अपने प्रति भय और अविश्वास हमारे रग-रग में इस प्रकार समा गया है कि हज़ारों साल की यह मानसिक जड़ता काटे नहीं कटती। मैं अपनी ही बात कहूँ तो नगर का हर क्षेत्र, हर स्थान और हर गली मेरे पति राजेन्द्र के लिए खुली हैं, मैं तो सिर्फ़ चौड़ी और 'साफ़' सड़कों पर चल सकती हूँ। इधर-उधर देखने की स्वयं मेरी हिम्मत नहीं पड़ती—परिचित, परिवार वाले, विद्यार्थी या जाने-अनजाने लोग पता नहीं क्या सोचें!

यही कारण है कि आज जब लड़कियाँ घर से बाहर निकल आई हैं, अपने पैरों पर खड़ी हो रही हैं तब भी उनके लिए दो ही क्षेत्र हैं और मेरे देश की हर लेखिका उन्हीं दो क्षेत्रों के बारे में लिखती है—एक है उसका परिवार, दूसरा है उसका वह एकान्त कक्ष जहाँ वह काम करती है और चूँकि वह घर से अपने कार्य-स्थल तक होठ कसे, आँखें झुकाए हुए आती है इसलिए उसे न तो रास्तों का ज्ञान होता है न अपने आसपास के वातावरण का। हमलोगों का ऑब्ज़रवेशन चाहे जितना तेज हो किन्तु वह एक दूसरे की हुलिया जाँचने में ही समाप्त हो जाता है, कथा-स्थलों पर आवश्यक सामग्री जुटाने के लिए हमारे पास कोई पूँजी ही नहीं रहती।

हम लोगों के सारे कथा-लेखन को पढ़ जाओ तो लगता है सब कुछ बड़ा उदास-उदास, घुटा-घुटा और कुण्ठा उत्पन्न करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला है। हमारे कथानकों में हँसती-खिल-खिलाती और जीवन को सरस बनाती नायिका एक भी नहीं है। हाँ, एक सिरे से रोती, बिसूरती और बीमार नायिकाओं का जमघट तुम्हें जरूर मिलेगा। मजबूरी यह है कि ये नायिकाएँ सिर्फ दो प्रकार की हैं—एक, किसी बीते हुए प्रेम को छाती से लगाए अपने वर्तमान में सन्तोष खोज रही हैं; दूसरी, उपयुक्त जीवन-साथी न पाने की मजबूरी में जीवन को जैसे-तैसे घसीट रही हैं। कार्य (job) उसके लिए स्वयं प्रेरणा और जीवनी-शक्ति नहीं है, पढ़ लेने और घर बसा लेने के बीच का अन्तराल है। परिणामतः वह घर और बाहर दोनों ही जगह अपनी प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ नहीं दे पाती। इस स्थिति में सचमुच मेरी समझ में नहीं आता कि कथा की इन बँधी हुई रुढ़ियों को कहाँ तोड़ूँ, किस प्रकार के नायक-नायिकाओं का चित्रण करूँ कि हम लोगों के प्रति तुम्हारी शिकायत कुछ दूर हो सके।

सोचती हूँ इतना सब पढ़ कर तुम हमारी स्थिति और मजबूरी को शायद समझ सकोगी। हँसो नहीं तो एक बात और लिख दूँ कि तुम्हारे सामने जिस ईमानदारी से मैंने यह सब कुछ कन्फ़ैस कर लिया है उसे यहाँ किसी प्रतिद्वन्द्वी पुरुष-लेखक के सामने मैं शायद कभी स्वीकार न कर पाऊँ (फिर वही पर्दानशीनी)! अब पत्र समाप्त करती हूँ, वर्ना घर के लोग समझेंगे कि रात ग्यारह बजे तक इन नीले कागजों पर इस तन्मयता के साथ 'जाने किसे' पत्र लिखा जा रहा है।

उत्तर की प्रतीक्षा में....

स्नेह, मन्नू भण्डारी

● ● ●

मोहिनी ओबराय

मैं अब भी कभी-कभी यह महसूस करने लगती हूँ, लिखना मेरे लिए बचपन से ही एक मजबूरी रही है। जब मेरे अन्दर कुछ ऐसा उद्वेलित होने लगता है, जो ज्वालामुखी के लावे की तरह बाहर आने को अकुला उठता है, तो मेरी लेखनी फिर मेरी बुद्धि की बात नहीं सुनती, मेरे मन की ज्यादा सुनती है। घुमड़-घुमड़ कर बाहर आने को अकुलाने वाली अनुभतियों को बिना अभिव्यक्ति दिये वह मानती नहीं। पर यह स्थिति क्षणिक होती है। इसके शीघ्र ही बाद अपने अन्दर एक और छटपटाहट महसूस होने लगती है कि कोई इन भावनाओं को समझने और उनका औचित्य बताने वाला भी हो और इस "कोई" की तलाश में प्रायः हर लेखक को परेशान होना पड़ता है, पर हमेशा नहीं, एक खास अवधि तक।

लेकिन अपवाद-स्वरूप कुछ ऐसे भी सौभाग्यशाली होते हैं जिनके लिए अवधि कोई अर्थ नहीं रखती, या जो अवधि की प्रतीक्षा नहीं करते, अपनी साधना में रत रहते हैं। उनकी अपनी योग्यता या उनकी अनुकूल परि-स्थितियाँ इस "कोई" को तत्काल उनके सामने आ उपस्थत करती हैं। खैर, मैं इतनी सौभाग्यशालिनी नहीं थी कि मुझे इस "कोई" की बिल्कुल ही तलाश न करनी पड़ी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन मैं अधिक परेशान नहीं हुई।

कॉलेज में जो कुछ भी लिखा करती थी, कॉलेज की मैगज़ीन में छप जाया करता था, किन्तु विश्वविद्यालय की शिक्षा की अन्तिम सीढ़ी को पार कर जब कार्य-क्षेत्र के प्रांगण में पाँव रखा तो लगा, जो कुछ तब लिखा था, शायद वह उन्हीं लोगों के लिए उचित था, जिनके बीच रह कर उसकी रचना की थी, परन्तु उस दायरे से बाहर किसी अन्य के सामने उसे पढ़ने में झेंप मालूम होती थी। इसी भावना से त्रस्त हो, अपने लिखे की आलोचना स्वयं अपने ही द्वारा एक आलोचक की दृष्टि से करने की बात मन में ज़ोर पकड़ती गई। लिखने के साथ-साथ मेरा अध्ययन भी गंभीर होता चला गया। अंग्रेजी, फ्रेंच, अमरीकी और रूसी साहित्य के चोटी के साहित्यकारों तथा सामान्य साहित्यकारों को भी पढ़ डाला। अपने देश के साहित्यकारों की रचनाओं के भी जितने नज़दीक मैं जा सकती थी, मैं गई और इसके पश्चात् अपनी रचना को मैं पढ़ती तो उसका मूल्य आँकने में मुझे अपना दिमाग़ अधिक खर्च न करना पड़ता था। मैंने अनुभव किया, लिखने के लिए दो बातें नितान्त आवश्यक हैं। अच्छे साहित्य का अध्ययन और गहन अनुभूतिशीलता। भाषा तो हमारी अनुभूतियों, हमारे विचारों को अभिव्यक्ति देने का माध्यम है। यह सही है कि जिस भाषा में भी हम लिखें, वह शुद्ध होनी चाहिये तथा उसकी गति, लय, भाषा का कोष तो अत्यन्त समृद्ध है, पर विचारों की दृष्टि से नितान्त खोखले हैं, तो चाहे हम जितनी ही मुहावरेदार, अलंकारयुक्त और प्रभावशाली भाषा क्यों न लिखें गंभीर और सुलझे हुए विचारों के अभाव में यह लिखना वैसे ही होगा जैसे सुन्दर वस्त्र धारण किये मूर्ख का शरीर।

शुरू-शुरू में लिखने पर जब कोई चीज़ किसी पत्र में भेजने पर वापस आ जाती है, तो मन झल्लाहट से भर उठेगा, यह स्वाभाविक ही है पर यह ज़रूरी नहीं कि पत्र ने आपको नई लेखिका ही समझ कर आपसे दुश्मनी निकाली है, हो सकता है कि जो कुछ आपने लिखा हो वह पत्र के स्तर के अनुकूल ही न हो। पत्र में प्रकाशित दूसरी रचनाओं को पढ़ कर अपनी अस्वीकृत रचना का मूल्य स्वयं मालूम हो जाता है। इस सत्य का आभास मुझे किसी किताब को पढ़ने से नहीं, बल्कि अपने अनुभव से हुआ था। मुझे याद है, शुरू-शुरू में, एक-दो बार जब मेरी रचनाएँ बड़े सम्मानपूर्वक ढंग से अस्वीकृत करके दो-एक पत्रों ने लौटाईं तो यकीन मानिए मैं रोई, झींकी, चिल्लाई नहीं और न ही अपना मूड खराब किया। उन अभागिन अस्वीकृतों को मैं एक अलग फाइल में नत्थी कर दिया करती थी। और फिर चार-छः महीने के लिए उनकी शक्ल नहीं देखती थी। कभी कभी तो आठ महीने तक की भी नौबत पहुँच जाती। लेकिन जब इस लंबे व्यवधान के पश्चात् उनको दुबारा पढ़ने के लिए निकालती तो फिर उन्हें सँवारने के लिए मेरी लेखनी दर्जी के-से सधे हुए हाथों जैसी चलती और फिर जो उनकी आकृति मेरे सामने आती उसे देख कर बरबस मुझे महसूस होता अब ठीक है। मैं सन्तुष्ट हूँ।

पर इसके लिए धैर्य और साहस की आवश्यकता तो है ही। लिखने की प्रेरणा मुझे अपने अन्तर्मन से ही मिलती है। अपने आस-पास हर क्षण घटने वाली अनेक घटनाओं, परिचित-अपरिचित चेहरों, जिनमें से कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल को इतना कचोट देता है कि उसके प्रति पूरा अस्तित्व ही करुणा और सहानुभूति से भर उठता है। यही चेहरे मेरे प्रेरणा-स्रोत हैं। मेरे लिए हर चेहरा अपने में एक कहानी होता है। मैंने अब तक जो लिखा है, इन्हीं चेहरों की कहानियाँ लिखी हैं।

भविष्य में क्या लिखूँगी, मैंने इसकी कोई लम्बी-चौड़ी भूमिका या योजना अभी कुछ भी नहीं बनाई है। हाँ यह बात दिमाग में ज़रूर है कि जो कुछ भी भविष्य में लिखूँ चाहे वह उपन्यास हो या लघु-कथा या निबन्ध, पर उसमें कहीं कुछ ऐसा न हो जो पढ़ने पर अपना ही एक अंग न महसूस हो, जिसके चरित्रों को बोलते हुए यह न लगे कि "अरे यह तो अपनी 'क्लास मेट' रीना है, और यह आंटी और यह तो बिल्कुल पिताजी जैसे हैं।" या "जिसके चरित्रों का चिन्तन पढ़ने पर मन में एक सर्द आह-सी न उठा जाए।" यही तो मैं चाहती थी, इन्हीं सत्यों की प्रतिष्ठा तो जीवन में अवश्यम्भावी है। अगर निकट भविष्य में कुछ ऐसा लिख पाई, तो अपना लिखना मैं सार्थक समझूंगी। ● ● ●

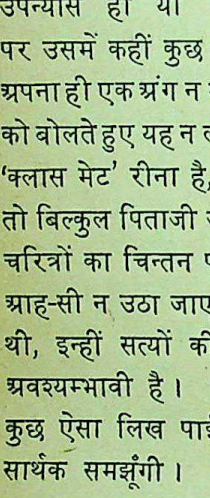

रजनी पनिकर

●

मैंने तब लिखना शुरू किया था, जब मैं कॉलेज में पढ़ती थी। तब राष्ट्रीय संघर्ष का समय था। मैं भी इस आन्दोलन के प्रभाव से अछूती न रही। बड़ी जोशीली कविताएँ लिखती और कॉलेज में उन्हें उससे भी अधिक ओजस्वी स्वर से पढ़ती। तब तक तो लिखना सार्थक था। कहानियाँ लिखती तो उन्हें अक्सर फाड़ देती। गद्य-गीत लिखने का भी बड़ा ही शौक था, जो मुझे केवल साहस की कमी के कारण छोड़ देना पड़ा। विभाजन के पहले पंजाबी लोग बहुत परम्परावादी थे। मेरा घर और परिवार भी इसी 'पैटर्न' पर था। घर की लड़की प्रेम कहानियाँ लिखती हैं, इससे बढ़ कर लज्जाजनक बात उनके लिए दूसरी नहीं हो सकती थी। वैसे वातावरण में स्वाभाविक प्रतिभा का गला घोंट कर रख देना ही मैंने उचित समझा।

सच कहूँ तो साहस की कमी तो मुझ में अब भी है। किसी भावनात्मक परिस्थिति का वर्णन करते समय मेरा प्रयत्न यही होता है कि मैं मर्यादा का सामान्य आवरण, जिसे मैं जानती हूँ कि बिल्कुल झूठा है, बनाये रखूं। माता-पिता को मेरी कृतियाँ अपने बच्चों को देने में झिझक न हो। मैं अभी तक कला की उत्कृष्टता के लिए, यथार्थ के चित्रण के लिए, परम्परागत भारतीय आदर्शों का उल्लंघन नहीं कर पायी। मैं यह स्वीकार करती हूँ कि इसी लिए मेरी रचना जितनी पुष्ट और यथार्थवादी होनी चाहिए उतनी नहीं हो पाती। मुझे स्वयं इस बात का एहसास है और नारी होना मुझे यहीं खलता भी है। पर अब मैं साहस बटोरने की कोशिश कर रही हूँ। मेरा उपन्यास 'जाड़े की धूप' इसका प्रमाण है।

महिला-लेखिका पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि उसकी लेखनी का विषय केवल 'परिवार' और 'प्रेम' ही होता है। लेखक चाहे पुरुष हो या नारी, वह हमेशा उन्हीं विषयों पर लिखना पसन्द करेगा, जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे अच्छी तरह ज्ञान है। नारियों का दायरा घर और परिवार तक ही सीमित रहता है। 'प्रेम' को वह पुरुष की तरह, जीवन के अन्य अनेक उपकरणों में से मात्र एक उपकरण नहीं मानती। प्रेम पुरुष व्यक्तित्व का केवल अंश भर है। नारी प्रेम की प्रतिमा होती है। प्रेम उसकी साधना, सिद्धि और सर्वस्व है। अन्य प्रकार की निराशाएँ नारी भी बर्दाश्त कर लेती है। किन्तु, प्रेम की निराशा उसके जीवन को अर्थहीन बना देती है। सोचने की बात है कि प्रेम का स्थान नारी के जीवन में इतना महत्वपूर्ण क्यों है। मेरा ख्याल है, यह सीधे प्रकृति का अभिशाप या वरदान नहीं है। प्रकृति तो केवल आदमी तैयार करती है। नर और मादा का निर्माण हमारा समाज करता है।

पुरुष के जीवन में अनेक प्रकार के कर्म होते हैं। वह अनेक क्षेत्रों में काम करके अपना मानसिक संतोष खोज लेता है। लेकिन, नारी घर की चहारदीवारी में बन्द ऐसे कामों में लगी रहती है जिनमें विविधता नहीं होती, जिनके लिए समाज बड़ाई नहीं देता, न जिनसे पूरा मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है। निदान, वह कर्म-क्षेत्र में उपेक्षित होने के कारण भावना के लोक में बस जाती है।

आज भी संसार में पति के बिना नारी-जीवन की सार्थकता सिद्ध नहीं होती। पति उसका अभिभावक, अन्नदाता और प्रेमी तो होता ही है, नारी अपनी आँखों में भी ऊपर उठने के लिए पति का अवलम्ब चाहती है। नारी 'साइकिक' प्राणी होती है। वह अपने रूप, शृंगार, साज-सज्जा, सब की प्रशंसा पति की आँखों में खोजा करती है। पुरुष तो कर्म-लोक का जीव है। उसे इतना अवकाश कहाँ कि भावनाओं की आवाज़ वह कर्म के कोलाहल में सुन सके? लेकिन, एकान्त में बैठ कर अपने पति और प्रेमी के रूप, गुण, शील आदि को विसूरने वाली नारी भावनाओं की हलकी से हलकी फुसफुसाहट को भी आसानी से सुन लेती है।

लेकिन, जब से समाज में सहज दृष्टि का अभाव हो गया, नर-नारी दोनों संकट में पड़ गये। नारी के बहुत से संस्कार पुरुषों के रचे हुए हैं। पुरुष नारी को जैसा देखना चाहता है, नारी अपने को वैसा ही बनाने लगती है। दफ्तरों और कारखानों में काम करने वाली नारियों को जब अफ़सर स्निग्ध दृष्टि से देखने लगते हैं, तब नारी के मन में यह सवाल उठे बिना नहीं रह सकता कि दफ्तर के कामों में अधिक महत्व शायद उसके अपने व्यक्तित्व का है। और यह शंका उसे कर्म-क्षेत्र में भी भावना का शिकार बना देती है। समाज पुरुषों के प्रभुत्व में है। नारी इस प्रभुत्व को तोड़ नहीं सकी है। इसीलिए उसके साहित्य में उन भावों और विचारों की प्रधानता देखी जाती है जो प्रेम और परिवार के भाव हैं।

गत दस वर्षों में जो कथा-साहित्य हिन्दी में लिखा गया है, उसमें अधिकतर होटलों में बीतने वाले चन्द गीले-गीले, सीले-सीले क्षणों पर आधारित 'मूडों' की कहानियाँ ही लिखी गयी हैं। कुछ लेखकों की समस्या-पूर्ण और ग्रामीण कहानियों को छोड़ कर शेष कथा-साहित्य में ऐसे जीवन का प्रतिनिधित्व होता है जो हमारी भारतीय जनता का पाँच प्रतिशत जीवन भी नहीं है। इसके बहुत से कारण सम्भवतः हैं, जिनकी चर्चा यहाँ अप्रा-संगिक होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखते समय मेरे सामने जो कठिनाई वास्तविक रूप से आई, वह है किसी ऐसे व्यक्ति का अभाव जिसे रचनाएँ पढ़कर सुनाई जाएँ। पुरुष लेखक दिन भर कॉफ़ी हाउस में बैठ कर, मित्रों से मिल कर अपनी लिखी हुई रचनाओं की चर्चा करते हैं। एक कहानी दस जगह पढ़ कर सुनाई जाती है। उस पर घण्टों बहस होती है, सुझाव दिये जाते हैं, मनन होता है और रचना परिष्कृत होकर प्रकाशित करने के लिए भेजी जाती है।

प्रकाशन सम्बन्धी कठिनाई मुझे यही रही कि प्रकाशक रायल्टी का हिसाब कभी ठीक नहीं करते। एक बार पूरा संस्करण समाप्त हो जाता है, तो दूसरा संस्करण निकाल कर भी प्रकाशक कहता है कि पहला संस्करण ही चल रहा है। प्रेस वालों से या अन्य किसी व्यक्ति से पता चलता है कि पुस्तक का दूसरा संस्करण निकल गया है पर मुझसे इतनी तकलीफ भी नहीं उठाई जाती कि वहाँ प्रेस में जाकर पता कर लूँ या प्रकाशक की दूकान पर जाकर रायल्टी का सही हिसाब कर लूँ। लेखिकाओं में ऐसी बहुत कम हैं जो यह हिसाब ठीक तरह से कर पाती हैं।

एक और कठिनाई यह है कि मैं जब भी आत्म-कथात्मक शैली में लिखती हूँ तब उसे व्यक्तिगत मान लिया जाता है। कई बार उससे बड़ी हास्यास्पद स्थिति पैदा हो जाती है, मुझे परेशानी उठानी पड़ती है।

मैं दिन भर तो रेडियो के काम में व्यस्त रहती हूँ, फिर लिखने के लिए मुझे बहुत कम समय मिल पाता है। जो थोड़ा-बहुत समय मिल पाता है उसमें से अधिकांश पढ़ने में व्यतीत हो जाता है।

मेरे विचार में तो, शैली के नवीन प्रयोगों से भी अधिक महत्व इस बात का होना चाहिए कि जो कुछ लिखा जाय वह पाठकों की रुचि के अनुकूल हो। पढ़ते समय उन्हें ऐसा महसूस हो कि वह उसकी अपनी कहानी है।

अभी तक मैंने जो कुछ भी लिखा है उससे मैं पूर्णतया संतुष्ट नहीं हो पायी हूँ। संतोष मुझे केवल इस बात का है कि मैं नारी के दृष्टिकोण को भरसक सही-सही प्रस्तुत करने में सफल हो सकी हूँ। आजकल मैं एक समस्यामूलक उपन्यास लिखने की कोशिश कर रही हूँ। और मुझे विश्वास है कि माध्यम से मैं अपनी पहली सारी कमजोरियों को दूर कर सकूँगी।

आज तक मेरे लिखने का क्षेत्र अधिकतर कार्यशील नारियों को लेकर ही रहा है। अब तो दिनोंदिन नारियों के कार्य-क्षेत्र विस्तृत होते जा रहे हैं, वे अधिक से अधिक संख्या में दफ्तरों में काम करने लगी हैं। कार्य-क्षेत्र में विस्तार के साथ ही उनकी समस्याओं में भी विस्तार हुआ है। कई बार लड़कियों में स्वाभाविक प्रतिभा तथा कार्य-कुशलता की क्षमता होती है, पर ऑफ़िस में पहुँचते ही वह परिस्थितियों की शिकार हो जाती है। और ऐसी स्थिति में वह ऑफ़िस में तो हास्यास्पद बनती ही है, उधर वह अपना घरेलू जीवन भी ठीक तरह से निभा नहीं पातीं। मुझे ऑफ़िस में काम करते एक अर्सा गुज़र गया है और इस बीच मैंने जो अनुभव प्राप्त किया है उसी के आधार पर मेरा ऐसा विचार बन गया है। मैं चाहती हूँ कि मेरी अन्य बहनें भी इस अनुभव से लाभ उठा सकें तो उत्तम हो। 'प्रेम' और 'परिवार' के साथ-साथ मैं अपना यह क्षेत्र अधूरा नहीं छोड़ना चाहती। कार्यशील नारी न तो रुपया पैदा करने की मशीन है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नहीं वह समाज के माथे पर कलंक का टीका है। वह भी समाज की एक सम्मानित सदस्या है। समाज के निर्माण में उसका पूरा-पूरा हाथ है। इसी तथ्य को मैं पाठकों के सम्मुख रखना चाहती हूँ। विश्वास है हमारे पाठक शायद मेरी बातों से सहमत होंगे।

●●●

ज्योत्सना मिलन

●

अपने अनुभव की यह जो छोटी-सी दुनिया मेरे सामने है, उसमें से मेरे मन ने मौन-मौन यही अनुभव किया, कि एक तो प्रायः स्त्रियों में ज्ञान-पिपासा इतनी तीव्र होती ही नहीं है; और अगर कभी होती भी है तो शायद ऐसी नारियाँ, स्त्री से कुछ अधिक होती हैं: निरी स्त्री नहीं होतीं। लगता है कि नारी स्वभावतः ही कुछ दूसरी चेतना लेकर आती है। एकान्तिक समर्पण करके अपने आपको मिटा कर किसी महान व्यक्तित्व को खड़ा करने की चाह शायद नारी प्रकृति की चरम सीमा है। कभी-कभी स्त्रियों में प्रतिभा का प्रकाश दिखाई भी पड़ता है, तो विवाह होने से पहले ही अपना चमत्कार दिखा कर विवाह होते न होते जाने कहाँ ग़ायब हो जाता है। कुछ ऐसा लगता है कि जन्मजात प्रतिभा से किसी भी क्षेत्र में साधना करके सिद्धि पाने को वह अपने जीवन की चरम उपलब्धि नहीं मानती। वह कुछ और ही ढूँढ़ती है, अपनी उस प्रतिभा के साथ अपने समूचे व्यक्तित्व को किसी अन्य व्यक्तित्व में लीन करके, उसी माध्यम से सिद्धि पाना जैसे नारी का स्वभावगत लक्ष्य है। शायद यही कारण है कि प्रथम कोटि की नारी-प्रतिभा विरल ही नज़र आती है।

प्रश्न है कि लेखिकाओं के विषय 'परिवार' और 'प्रेम' तक ही सीमित होने का कारण क्या यह है कि उनके अनुभव का क्षेत्र सीमित होता है? उसके उत्तर में मुझे तो लगता है कि अनुभव का क्षेत्र सीमित होकर भी इतना अधिक संकीर्ण तो नहीं होता कि ये मात्र इन दो विषयों के बीच में ही बँधी रह जायें। पर नारी की मूलगत चेतना और महदंशी भावनाएँ इन्हीं दो विषयों में सहूलियत से, बहुत ही सहजता से एकरूप हो जाती हैं। अपनी किसी अशक्ति के कारण नहीं; किन्तु अपने भीतर की आद्या-मातृ-शक्ति को चरितार्थ करने के लिए ही शायद, वह अनजाने ही, इन दो विषयों में ही अधिकतर लीन हो रहती है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि संसार के अन्य सभी क्षेत्रों की अपेक्षा, यही दो क्षेत्र बहुत अधिक विशाल हैं, तथा अन्य सभी क्षेत्रों के आधार रूप हैं। हृदय के भावों की छोटी से छोटी हलचल को समझने की नारी में जो सूक्ष्म दृष्टि है, और उससे भी बढ़ कर अपने ममता भरे आँचल की वत्सल छाँव में मानव-जीवन की हर व्यथा, पीड़ा और अशान्ति को गला देने की, मिटा देने की जो सर्व विजयिनी शक्ति है, सामर्थ्य है, उसकी झाँकी उसके मौलिक सर्जन में हमें बहुत ही सहज रूप में मिलती है, उसका अत्यन्त वास्तविक चित्रण वहाँ दिखाई पड़ता है। जीवन जीने की कला जैसे नारी की मूल-प्रकृति में है, उसी तरह उस जीवन की सूक्ष्मतम अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला भी उसे सहज साध्य है। 'प्रेम' और 'परिवार' नारी के रक्त-माँस से, उसके मन-प्राण से सीधा सम्बन्ध रखते हैं, यही कारण है कि सीमित फिर भी असीम गामी क्षेत्रों में ही वह सदा रत रहती है।

पर अपने इन क्षेत्रों की सम्राज्ञी, नारी को यह बात खलती नहीं, न उसे ऐसी कोई कमी ही महसूस होती है। अन्त में यह बात भी कहना चाहूँगी कि अनुभव के क्षेत्र सीमित होने से ही नारी की सर्जनात्मक शक्ति या उपलब्धि कमतर नहीं हो जाती। अपनी अनुभव सीमा में भी वह सर्जना के मास्टर-पीस दे सकती है।

प्रायः ऐसा पाया है कि स्त्रियाँ कविता, गीत या कथा-कहानी जैसी साहित्यिक विधाओं में ही अधिक रुचि रखती हैं। लगता है कि गीत या कविता में नारी की कोमल गतिमय आत्मा को सहज अभिव्यक्ति मिल जाती है, तो कहानी के माध्यम से पारिवारिक पात्रों के द्वारा कौटुम्बिक प्रश्नों और गुत्थियों को वे आसानी से सुलझा सकती हैं, मानव हृदय के सनातन भावों का निरूपण कर सकती हैं, उनके मूल्यों का अंकन कर सकती हैं। शायद ये प्रकार उनकी मूल प्रकृति के अधिक अनुकूल होने के कारण ही वे इनका उपयोग अधिक करती हों।

अब यह प्रश्न सामने है कि नारी अधिकतर परम्परावादी शिल्प में ही लिखना पसन्द करती है: नये प्रयोगों से बचती क्यों है? सामने मेरे मन में प्रति-प्रश्न है कि क्या यह सच है कि वह स्वयं वैसा पसन्द करती है, या पसंद और नापसंद से परे सहज रूप से जिस किसी तरह के शिल्प में अभिव्यक्ति हो जाये, होने देती है? मुझे तो लगता है कि प्रयोग करने के लिए ही करने की अपेक्षा सहज रूप से सफलता पूर्वक कह लेना वह अधिक पसंद करती है। विशिष्ट (Form) का आविष्कार करने की ही दृष्टि लेकर वह आगे नहीं बढ़ती। पर अगर सहज रूप से कथन के भीतर ही यदि कोई शिल्प का नया क्षितिज स्वयं ही खुलता हो तो उसे अपनाने में वह हिचकती है, ऐसा भी वे नहीं मानती। मज़ाक करने का दिल भी होता है, कि शायद पुरुष की स्वीकृत करने की उदारता पर उसे इतनी आस्था न हो।

विद्यार्थी-अवस्था में तो स्त्रियों में लेखन की रुचि रहती है, पर शादी के बाद लेखन प्रायः बन्द-सा हो जाता है, यह विधान कुछ हद तक सच अवश्य है, पर इसका कारण जैसा कि मैं कह चुकी हूँ, शायद यही हो कि नारी अपने जीवन की चरम सिद्धि केवल लेखन में नहीं पाती, बल्कि अपने व्यक्तित्व को किसी और में मिटा कर, अपना सब कुछ देकर उसी में ही वह अपने जीवन की चरितार्थता अनुभव करती है।

नई लेखिकाएँ आरम्भ में अपनी रचनाएँ कहीं भेजने या किसी को बताने में, शायद इसी लिए हिचकती हैं कि कुछ तो ये स्वभावतः सहज संकोच और लज्जा अनुभव करती हैं और कुछ अज्ञात भय-सा भी उनके मन में रहता है। स्वभाव से ही कुछ डरपोक, पता नहीं कोई क्या सोचे? क्या कहे? और जहाँ तक प्रकाशन का सवाल है, थोड़ी-बहुत तो बाधा आती ही है, फिर भी पुरुषों की अपेक्षा प्रकाशन उनके लिए सुगम होता है, इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि नारी इस क्षेत्र में कम ही पायी जाती है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनमोहिनी

●

नवोदित लेखिकाओं के सृजन और परिवेश से सम्बद्ध समस्या पर अपने निजी विचार संक्षिप्ततम रूप में भेज रही हूँ।

लेखिकाओं का विषय-क्षेत्र सीमित होता है। परिवार और प्रेम ही प्रिय विषय होते हैं उनके—क्यों? क्या अनुभव-क्षेत्र की संकुचितता के कारण? या विविध क्षेत्रों से सामग्री लेने में संकोच के कारण?

लेखिकाओं को हम भारत की नारी से अलग नहीं कर सकते। और तब आती है नारी-इतिहास की बात। भारतीय नारी बहुत ही पिछड़ी रही है, आज यह बात स्वीकारने में शायद सभी बुद्धिजीवियों की गर्दनें झुकती हैं। तो फिर वह नारी रही है एक सीमित दायरे में। परिवार में। कुछ आगे बढ़ी तो प्रेम भी उनके जीवन में प्रवेश कर गया। एक बँधा-बँधाया घेरा होता है उनके अनुभवों का, उनके जीवन का। दफ्तरों में नौकरी भी करती हैं तो वे सभी साथी-कार्यकर्त्रियों के साथ घुल-मिल नहीं सकतीं। पुरुषों की तो बात ही क्या? सहस्राब्दियों के संस्कार शताब्दी भी ले लें नष्ट होने के लिए तो बड़ी बात नहीं।

पुरुष प्रेम करता है तो खुल कर उसकी चर्चा कर सकता है, करता है। और नारी? वह अपनी किसी एक अंतरंगिनी को बता दे तो पर्याप्त है। और जो चार-छः सखियाँ जुट भी जाती हैं तो उनके कार्य-कलाप, उनकी बातों के विषय, सब कुछ सीमित। उनमें भी प्राधान्य रहेगा परिवार और प्रेम का ही। जैसे दबी रह कर वे अन्दर तक सिकुड़ गयी हैं।

किस साहित्यिक-विधा की ओर इनकी अधिक रुचि होती है और क्यों? आलोचना के क्षेत्र में तो मुझे अच्छी लेखिकाएँ बहुत कम नज़र आयीं। शेष रहे कहानी, उपन्यास और कविताएँ। उपन्यास के क्षेत्र में भी कम ही लेखिकाएँ प्रविष्ट हुई हैं। कहानी और कविता में समान-प्रायः स्थिति ही प्रतीत होती है। और वे प्रयोगों से इनमें भी अनुपातन (पुरुषों की तुलना में) बचती हैं। शायद उनके क्षेत्र की सीमाओं के ही कारण ऐसा हो या फिर वे कम सहिष्णु और कम साहसी भी हो सकती हैं। इनिशिएटिव पुरुष भी कितने ले पाते हैं? और आपका अगला प्रश्न, कि विवाहोपरान्त लेखन प्रायः बन्द क्यों हो जाता है? फिर तो वे घर की चारदीवारी में और भी बन्द हो जाती हैं न? चूल्हा, पति और बच्चे। पुरुष व्यापार या नौकरी करके भी तन या मन से उनमें इतने नहीं चिपके रहते।

प्रकाशन की समस्याओं वाले प्रश्न पर तो लगता है कि एक अच्छी-खासी परिचर्चा की जा सकती है। सभी लेखिकाएँ अपने-अपने अनुभवों की बात स्पष्ट कहें। यों किसी को रचना दिखाने या कहीं भेजने में झिझक का कारण बताना भी मेरे लिए कठिन है, क्योंकि मैंने तो अभी शायद लिखना भी आरम्भ नहीं किया है। हाँ, बहुत-से स्नेही लेखकों ने कोंचा मुझे बेहद है कि मुझे लिखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर मुझे तो उनके स्नेह-भय से ही लिखना पड़ रहा है जैसे। और परिचितों में प्रतिष्ठित लेखक, सम्पादक होने पर रुचि बढ़ने का प्रश्न भी अभी तक मुझसे बहुत दूर है। औरों के विषय में कुछ कह नहीं सकती। 'परिवार बसा कर लेखन और परिवार में सामंजस्य किस तरह रख पाती हैं लेखिकाएँ?' यदि वे सामंजस्य रखती हैं तो यह कोई अनहोनी बात मुझे नज़र नहीं आती। उन फ़ैशन-परस्तों की बात और है कि उस समय बनानी हो चाय और लेखिका जी बुनने लगें कविता। अन्यथा लेखन तो स्वयं ही संतुलन का परिणाम है। तो संतुलन होने पर सामंजस्य न हो पाने की शंका ही नहीं करनी चाहिए। किन्तु बाधा परिवार के अन्य सदस्यों की ओर से भी हो सकती है। विशेषतः पति की ओर से बाधा हो तो स्थिति विकट हो उठती है। फिर होता यह है कि लेखिका सामंजस्य की चाह को ही ताक पर रख दे और वह ऐसे में अपने आप को, अपने परिवार को और अपने लेखन को भी चौपट कर दे। तो यह समस्या पुरुषों के लिए भी उतनी ही विचारणीय है, जितनी लेखिकाओं के लिए।

●●●

शिवानी

●

मोपासाँ ने एक स्थान पर लिखा है, 'वह मनुष्य वास्तव में अत्यन्त मूर्ख, हद दर्जे का साहसी और सनकी होगा, जिस पर [illegible] लेखक बन जाने की सनक सवार होगी, क्योंकि अब बचा ही क्या होगा जो वह कर दिखायेगा, वह कहेगा ही क्या जब सब कहा जा चुका है। हम लेखकों में कौन ऐसा होगा जो अपनी साहित्यिक कृति में सर्वथा मौलिक होने का दावा कर सकता है। क्या कभी-कभी हर अपनी कहानी का एक वाक्य, एक मुहावरे में स्वयं बासीपन की बू नहीं आती?' किन्तु सत्य कथन है! किन्तु एक बात का मोपासाँ को संभवतः ध्यान नहीं रहा, प्रत्येक व्यक्ति के अनुभवों का क्षेत्र विस्तृत है, प्रत्येक लेखक या लेखिका की प्रतिभा का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व है। प्रतिभा में बासीपन का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रतिभा में शैथिल्य आ सकता है, आत्मविश्वास की कमी से प्रतिभा कुंठित हो सकती है, किन्तु किसी भी लेखक या लेखिका में यदि प्रतिभा है, तो वह अवश्य ही अपना अस्तित्व व्यक्त करेगी। चाकू की धार की भाँति, वह संघर्ष की कड़ी शिला पर जितनी ही बेरुखी से घिसी जायेगी उतनी ही वह तेज़ होगी; हिना की भाँति पत्थर पर घिसी जाने पर ही वह रंग ला सकेगी। पर यह प्रतिभा है क्या? मुझे अनायास ही मोपासाँ के प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन की एक घटना स्मरण हो आती है। एक बार वे अपनी एक रचना, अपने मित्र एवं गुरु फ्लॉबेयर के पास ले गये, पढ़ कर फ्लॉबेयर ने कहा—'मित्र, मैं कह नहीं सकता कि तुम्हारा साहित्यिक भविष्य कैसा रहेगा, किन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि तुम्हारी रचना में प्रतिभा का स्पर्श है, इतना हमेशा याद रखना मेरे जवान दोस्त कि प्रतिभा, धैर्य का ही दूसरा नाम है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कहानी लेखिका को इसी धैर्य की प्रचुर मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। यदि वह सीधी-सादी, प्रेम या पारिवारिक जीवन पर ही कोई कहानी लिखने की धृष्टता करती है तो उसका क्षेत्र संकुचित बतलाया जाता है। 'सेक्स' के प्रयोग या फिर बौद्धिक-इन्द्रजाल का ताना-बाना बुन कर यदि वह किसी कथानक को सजाने-सँवारने की चेष्टा करती है तो उसके नारीत्व के लालित्य पर ठेस लगती है। आलोचकों की इस युग में कमी नहीं है किन्तु अधिकांश आलोचनायें ध्वंसात्मक ही अधिक रहती हैं। साहित्यिक गुटबाजी के व्यूह से, प्रकाशकों के मायाजाल से अपनी मौलिकता को बचा कर रखना भी आज की लेखिका के लिए एक समस्या है। कोई भी प्रकाशक, कहानी-संग्रह छापने के लिए तैयार नहीं होता, पत्रिकाओं का भी अपना-अपना भिन्न व्यक्तित्व रहता है, इसी से आज की कहानी-लेखिका की सबसे बड़ी कठिनाई है—उचित प्रोत्साहन का अभाव। बाध्य होकर या तो उसे अपनी साहित्यिक विद्या का क्षेत्र संकुचित करना पड़ता है, या फिर आत्म-विश्वास खोकर, निराश होकर लिखना ही बंद कर देना पड़ता है। इस पीढ़ी में, प्रतिभाशालिनी कहानी लेखिकाओं की संख्या कम नहीं है। रज़िया सज्जाद ज़हीर, इस्मत चुगताई, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, प्रभा शास्त्री एवं अन्य भी कई लेखिकाओं की सशक्त लेखनी से इस पीढ़ी को बहुत कुछ आशा है। और भी न जाने कितनी Bronte Sisters, Jane Austin की प्रतिभायें धूल में छिपी होंगी, समुचित सहयोग एवं प्रोत्साहन से उनका आत्मविश्वास पुनः जाग उठेगा। आज की कहानी लेखिका को साहित्य के शाश्वत सत्य की रक्षा करनी होगी अपने आत्मविश्वास को प्रहरी बना कर। सत्य का अर्थ यह नहीं है कि किसी सुन्दरी पात्रा के नख-शिख वर्णन करने के पूर्व, लेखिका उसके ढाँचे की २०८ हड्डियों का ही सर्वप्रथम वर्णन करे, किसी भी रससिद्ध कविश्वर के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी गजगामिनी की मनोहर चाल का वर्णन करने के पूर्व, प्राणी-शास्त्र में चित्रित, विचित्र हड्डियों के जाल का तथ्यपूर्ण अध्ययन करे। सत्य में भी वह सुन्दर का चयन करे और सुन्दर में भी वह 'शिवं' के मोती ढूँढ़-ढूँढ़ कर अपनी रचना के हार में पिरो सके, तो आज की कहानी लेखिका, अवश्य ही अपनी रचना के माध्यम से अपने पाठकों का हृदय स्पर्श कर सकेगी।

मोपासाँ ने एक लेख में पाठकों के विषय में लिखा है—"पाठक भी कई प्रकार के होते हैं,हम लेखकों से कोई कहता है—'मुझे सांत्वना दो।'

कोई कहता है, 'मेरा मन बहला दो—'

दूसरा कहता है, 'मुझे स्वप्न दिखाना।'

एक दूसरी पुकार आती है, 'नहीं, मुझे गुदगुदा दो मेरे लेखक।'

'मुझे रुला दो।'

'मुझे सोचने की सामग्री दो।'

किंतु बहुत कम ही ऐसे पाठक निकले हैं जो कहते हैं, 'हमें, अपनी मनपसन्द की कोई ऊँची सुन्दर वस्तु दो।' लेखक यही देने का प्रयास करता है—वह अपने प्रयास में कहाँ तक सफल रहा है यह आँकने का काम है आलोचक का।" मोपासाँ की इस व्याख्या के अनुसार आज की कहानी लेखिकाओं का प्रयास कहाँ तक सफल रहेगा, यह गुणी आलोचक स्वयं ही आँक लेंगे। ●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमा सिंह

लखनऊ
१२-२-६२

प्रिय भाई,

'नवोदित लेखिकाएँ अंक' सम्बन्धी सूचना मिली। पहली प्रतिक्रिया जो इस पत्र के साथ हुई वह यह कि क्या लेखक और लेखिका के दायित्व और परिवेश इतने अलग-अलग हैं कि इन लोगों को एकदम भिन्न जगत का मान लिया जाय। यह बात मन में काफी देर तक उमड़ती-घुमड़ती रही और ऐसा लगता रहा कि अचानक कुछ उलझे हुए सूत हाथ में आ गए हैं और धीरे-धीरे उन्हें सुलझाने में मन डूब गया है।

आज सामाजिक जीवन का जो ढाँचा हमें रहने के लिए मिला है उसमें लड़के-लड़कियाँ सभी को एक जैसे रास्तों से गुज़रना पड़ रहा है। नये मूल्यों और नयी मान्यताओं ने हमें ऐसा लपेटा है कि अचानक हमें पुरानी जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं को, ऊपर पड़ी हुई धूल के समान झाड़ देना पड़ा है और नये दायित्वों को निभाने के लिए प्रस्तुत होना है। इस नये युग ने हमें बहुत कुछ दिया है; इसने हमें सोचने के लिए नये क्षितिज दिये हैं, काम करने के लिए नयी भूमि दी है; परन्तु साथ ही इस युग में ऐसी भी एक भूलभुलैया है जो हमारी गति को जकड़ लेने के लिए अपनी भरपूर शक्ति लगा रही है। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि युग की ये विषमताएँ नये लेखक और लेखिका दोनों के ही सामने हैं। अन्तर केवल यह है कि एक लेखिका को युग की चुनौती स्वीकार करने के लिए कहीं अधिक शक्ति लगानी होगी, क्योंकि आज के पहले उसने जो सपना देखा था वह बिल्कुल भिन्न था। पहले के युग में स्त्री ने यदि केवल पढ़-लिख भर लिया या मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली तो उसका नाम हो गया, यदि किसी ने थोड़ा-बहुत लेखन का कार्य भी किया तो वही उसकी बहुत बड़ी उपलब्धि बन गयी। आज के युग में ऐसा नहीं है, केवल 'कुछ भी लिख देना' आज की लेखिका का साध्य हो ही नहीं सकता। दूसरे पहले लिख भर देने से समाज की प्रशंसा मिल जाती थी; लेकिन वह प्रशंसा वात्सल्य में दया-गत होती थी या सहानुभूतिजन्य, बेचारी स्त्रियाँ जो चहारदीवारी में बन्द समझी जाती थीं, उनके प्रति प्रोत्साहन का एक उदार दृष्टिकोण था। अब इस तरह के 'कन्सेशन' का कोई अर्थ रह नहीं गया क्योंकि समाज की विषमताओं ने इस तरह नारी को भी जकड़ लिया है, उसके सामने भी संघर्ष का कंकरीला रास्ता है। उसके सामने भी जीविकोपार्जन की ठोस समस्याएँ हैं, केवल प्रशंसा पा लेना ही उसका लक्ष्य नहीं है। उसके सामने भी वे सब स्थितियाँ हैं जो हमें यदि एक ओर कुण्ठित करती हैं तो दूसरी ओर हमारे चेतन को झकझोर देती हैं। धीरे-धीरे डूबने वाले पुराने संस्कारों और नये क्षितिज से उभरे हुये नए मूल्यों के बीच की आज की स्थिति ने हमारे मन को निरन्तर मथा है। इस प्रकार के संक्रान्तिकाल में यदि हमारे मन:प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें युग अपनी झिलमिलाती हुई छाया देखता है, तब तो रचना की सार्थकता समझ में आती है अन्यथा शब्दों के खिलवाड़ में व्यर्थ समय और शक्ति ही नष्ट करना है। इस कथन की सीमा केवल यथा-तथ्य वर्णन करना नहीं है, वरन् इसका अर्थ यह है कि हमारे चिन्तन का धरातल खुद जीवन होना नहीं, जीवन के संघर्षों से संजोयी गयी चेतना ही समय के आघात को झेल सकती है; रिल्के ने एक कविता में कहा है :

"This is my strife : to rove through all days longing-consecrated. Then, strong and broad, with thousand root-strips to grasp deep into life —and through suffering to ripen far out of life and far out of time".

यदि हमारी कुंठाएँ और विवशताएँ जड़ों की तरह हैं जो घुप अन्धेरी पर्तों में भी जीवनी-शक्ति सँजोती हैं और बाहर हरीतिमा और फल-फूलों के रूप में प्रगट होती हैं तो निश्चय ही हमारा कृतित्व सफल है। और यदि हमारी दृष्टि केवल कुंठाओं के अन्धेरे में बँधी रह जाती है और हम इस अन्धेरे को चेरने वाली पैनी किरण को देख नहीं पाते तो निश्चय ही हमारी साहित्य-रचना उद्देश्य-हीन है। रचना प्रक्रिया की यह स्थिति आज की लेखिकाओं के लिए उतनी ही सच्ची है जितनी लेखकों के लिए। यह सोच लेना नितान्त भूल है कि मैं लेखिका हूँ, अतः लोग मुझे उदारता से पढ़ें और उदारता से ही मेरा मूल्यांकन करें। जब दुनिया भर की सारी सुविधाएँ हमें दे दी गयी हैं, जीवन के अनेकानेक क्षेत्रों के द्वार हमारे लिए खोल दिये गये हैं, तब हमें भी एक व्यापक भूमि पर आना है, व्यापक भूमि पर सोचना-विचारना है, व्यापक भूमि पर काम करना है। ●●●

शुभा वर्मा

■

लेखक की पत्नी हूँ इसलिए परिवेश सम्बन्धी समस्यायें नहीं के बराबर है। पतिदेव लेखन से ही जीविका कमाते हैं, देवर चित्रकार हैं और अपना शौक लिखने-पढ़ने का है ही। जो कुछ लिखती हूँ प्रकाशित हो ही जाता है, इसलिए नहीं कि पतिदेव सहायक हैं या मेरी रचनाओं के शर्त के साथ अपनी कृतियों से प्रकाशक बन्धुओं को कृतार्थ करते हैं बल्कि इसलिए कि, किसी सहायता से साफ़ इनकार कर देते हैं, और तब बुरा मान कर कहिये या 'हम भी कुछ हैं' के कारण दूने वेग से परिश्रम करती हूँ और परिश्रम का फल मीठा होता ही है।

अपने प्रति इस उदासीनता के लिए पतिदेव की शुक्रगुज़ार हूँ। आज की मेरी दृढ़ता और आत्मविश्वास उनकी उदासीनता की ही देन है। बात पाँच वर्ष पहले की है। तब मैं प्रयाग में थी। लोक-कथा-साहित्य पर कुछ काम किया था। प्रकाशन के क्षेत्र में पहला ही कदम था। पतिदेव ने जब किसी प्रकाशक से परिचय कराने से साफ़ इन्कार कर दिया तो मैंने अकेले ही चक्कर लगाना शुरू किया। लेकिन मैं नयी थी, मेरी प्रकाशित कुछ पुस्तकें नहीं थीं, कोई खास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठभूमि नहीं थी। कोई प्रकाशक मेरी रचनाओं में रुचि क्यों लेता? एक दिन थकी-हारी एक ऐसे प्रकाशक के पास पहुँची जो मेरे ख़्याल से प्रयाग का आख़िरी प्रकाशक था, जिसके यहाँ मैंने फेरी नहीं लगाई थी। जानती थी वही घिसा-पिटा जवाब मिलेगा, फिर भी अपनी चार पाण्डुलिपियाँ सामने रख दीं। प्रकाशक महोदय ने पाण्डुलिपियाँ देखीं और सब की तरह 'दो-चार दिन में देख कर बता देंगे' के लिए रख लीं। औरों की तरह मैंने उनके पास भी पाण्डुलिपियाँ छोड़ दीं। दो सप्ताह के अन्दर ही उनका पत्र मिला और उस सीरीज़ में जितनी भी पुस्तकें मैं लिखूँगी सबका अनुबन्ध उनके साथ हो गया। अब भी मैं उनके लिए लिखती हूँ और साल में औसतन दो पुस्तकें दे ही देती हूँ।

लेकिन कुछ समय बाद एक नया अनुभव मिला; यहाँ के प्रकाशकों को यह समझाना मुश्किल हो गया कि लेखिका मैं इसलिए नहीं हूँ कि लेखक की पत्नी हूँ बल्कि अपने पास भी ख़ुदा का दिया हुआ एक दिमाग़ है। आगरे के एक बड़े मशहूर प्रकाशक ने, जिसे पतिदेव ने अपनी एक कृति देकर कृतार्थ किया था, एक दिन बड़ी आत्मीयता से पूछा,—'बुरा न मानियेगा वर्मा जी, आपकी पत्नी वाक़ई कुछ लिखती हैं या....।' आगे की बात उन्होंने अपनी संकोच भरी मुस्कराहट से पूरी की।

एक तथाकथित लेखक और प्रकाशक हैं। थोड़े दिनों से पुस्तक विक्रेता भी हो गये हैं। ख़ुदा के फ़ज़ल से दो बीवियाँ हैं। दो साल मेहनत करके एक पुस्तक तैयार की थी तो उसी से मसाला निकाल-निकाल कर आगे की छः पुस्तकें तैयार कीं, कभी एक बीवी के नाम से कभी दूसरी के। उनका कथन है, 'औरतें कभी लिख सकती हैं सारे पुरुष वही करते हैं जो मैं करता हूँ उनके इस वक्तव्य पर मैंने अपने को कोसा काश, मेरे पति ने आधी ही पुस्तक मेरे लि लिखी होती।

ये तो हुईं प्रकाशकों की बातें—जिन्हें के सारे समझौते इन्हीं के साथ करने हैं इसलिए इनका नाम सब से पहले आ गया। अब सुनिये पढ़े-लिखे सभ्य पुरुषों की बात जो आवश्यकता पड़ने पर नारी-जागृति और नारी द्वारा साहित्य सृजन की उपयोगिता पर लम्बे-लम्बे भाषण दे सकते हैं। पतिदेव के कुछ घने मित्र उपन्यासकार, कहानीकार, कवि (और बहुत कुछ)। अपने को कविता का कीड़ा बचपन से ही है। समय-असमय उन्हों सीधी कड़ियाँ बराबर जोड़ती रही हैं जो कुछ भी लिखा उन्मुक्त होकर सुनाया ऐसे लोगों को जिनकी सहायता पर भरोसा था या जिनकी सलाह मेरे लिए सहायक हो सकती थी। भाग्य कहिये या दुर्भाग्य मेरे श्रोताओं में कुछ ऐसे महापुरुष निकल जिन्हें मेरे भावों में अपनी ही उपस्थिति मालूम पड़ी। बात यहीं तक होती तो ग़नीमत थी। मित्रताएँ शत्रुताओं में बदल गयीं और पति-पत्नियों में वह महाभारत मचा कि 'बनने-बिगड़ने' की नौबत आ गयी और मैं इस सब से बेख़बर, काव्य रचना में तल्लीन।

एक दिन इनके एक मित्र ने आकर पूछा, "आजकल कुछ सुनाती नहीं। लिखना क्यों बन्द कर दिया?"

मैंने उन्हें बताया, "लिखना तो क्या बन्द करूँगी यदि यही हालत रही तो अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना किसी को सुनाने से पहले एक पंक्ति जोड़ दूँगी, 'यह आपके लिए नहीं है'।"

संक्षेप में कहूँ तो लेखन या प्रकाशन सम्बन्धी कोई समस्या मेरे सामने नहीं है जो आमतौर से नारी-वर्ग के सामने हो सकती है। मेरी समस्याएँ ज़रा दूसरी तरह की हैं जिन्हें मैं लोगों का दृष्टि-दोष ही मानती हूँ और जिनका पूरा दायित्व बड़ी उदारता से पतिदेव पर लाद कर निश्चिन्तता-पूर्वक अपने काम में रत-चित्त हो जाती हूँ। ●●●

शशिप्रभा शास्त्री

●

महिला लेखिकाओं का विषय-क्षेत्र प्रायः सीमित होता है। परिवार और प्रेम ही उनके दो प्रिय विषय होते हैं। अधिकांश में यह सच है। यों लीक से हट कर भी महिलाओं द्वारा बहुत-कुछ लिखा जाता है और लिखा जा सकता है, किन्तु उपर्युक्त सचाई के मूल में मेरे विचार में जो मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है वह यह है कि कला के हृदय में कलाकार की आत्मा विराजती है। नारी हृदय स्वभाव से ही भावुक होता है। चाहे समय कितना भी आगे बढ़ चुका हो, मान्यताएँ कितनी ही बदल गयी हों, पर नारी अपने को परिवार की परिधि में बँधा हुआ आज भी मानती है। परिवार के सुख-शान्ति और सहयोग की कामना वह आज भी करती है। इसकी विशृंखलताएँ उसे कचोटती हैं। स्वभाव से ही भावुक होने के कारण वह अपनी तरुणाई की मंज़िल से ही प्रेम के सपने देखती है, भावनाओं के झूले में झूलती है और इसलिये इन्हीं के विविध रूपों को लेखनी से सँजोने में, तूलिका से खचित करने में सुख पाती है। पुरुष के विपरीत, प्रकृति की ओर से मिला हुआ माँ का विचित्र हृदय भी उसकी सुकोमल भावनाओं को उजागर करने में सहायक होता है।

मेरे विचारों से विषय की यह सीमा, उसके अनुभवों की कमी न होकर एक प्रकृति-प्रदत्त, स्वभावजन्य विवशता है। अपनी क़लम की यही विवशता मैं कभी-कभी स्वयं अनुभव करती हूँ। अपनी रचनाओं से अपने आप ऊब जाने के वे क्षण बड़े विचित्र होते हैं। अपने सृजन से हट कर जब मैं अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाती हूँ, तो पाती हूँ, दूर पास की सभी लेखिकायें इसी घेरे में घिरी हैं। पर उनकी रचनाओं से मुझे ऊब नहीं होती। तब मैं भी सोचती हूँ अपनी इस विवशता पर मैं दुःख क्यों मनाऊँ! वस्तुतः परिवार और प्रेम की गहराइयों और सच्चाइयों का सच्चा अंकन महिला-लेखिकाओं की लेखनी ही भली प्रकार कर सकती है। पुरुष सदा से परिवार की छोटी-छोटी समस्याओं तथा दायित्वों से प्रायः अलग-थलग रहता आया है। आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के संघर्षों पर विजय पाने की सामर्थ्य, उसमें नारी की अपेक्षा अधिक होती है। अतः भावुक हृदय वाले व्यक्ति की क़लम से भी नारी जगत की समस्याओं के प्रति उचित न्याय किये जाने की आशा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जा सकती। यों अपवाद कहाँ नहीं हैं।

जब महिला लेखिका की यह स्वभाव-जन्य विशेषता है तो मेरे विचार में एक लेखिका के द्वारा लीक से हटने का प्रयत्न इतना अपेक्षित नहीं है, जितना कि इन्हीं दो क्षेत्रों में विविधता और रोचकता लाना।

आज युग बदल रहा है। युग के साथ-साथ सभी क्षेत्रों की मान्यतायें भी तेज़ी से बदल रही हैं। यदि एक महिला लेखिका इन सब चीज़ों का बारीकी से अध्ययन करे तो मेरा विश्वास है कि लेखिकायें अपने सीमित क्षेत्रों में भी नूतनता ला सकती हैं। यों परिवार और प्रेम के दायरों में ही कितनी चीज़ें हैं, जिनके द्वारा इन क्षेत्रों को विस्तार दिया जा सकता है। मान्यताओं के साथ दौड़ते रहना ही सम्भवत: उसके लिए इतना उपयोगी न रहेगा, जितना उन मान्यताओं के द्वन्द्व में से सही मार्ग निदर्शन करना। रचनात्मक क्षेत्र में नयी शैलियों का अनुगमन भी इन सीमित दायरों को व्यापकता प्रदान करने में सहायक हो सकता है। ●●●

ममता अग्रवाल

●

पिछले कुछ वर्षों ने कई सुदृढ़ कहानी-लेखिकाएँ हमें दी हैं। आज वे हिन्दी साहित्य-जगत की मान्य लेखिकाएँ हैं। पर हमारे मन-मस्तिष्क और संवेदनाओं की धार दिनोंदिन पैनी होती जा रही है। ऐसे समय में अब की कहानी-लेखिका बड़ी उलझन में है कि उसकी गति कहाँ है, और जहाँ है वह ठीक है या नहीं? फलत: उसके सम्मुख एक समस्या खड़ी हो गई है कि कहानी के कॉम्पलेक्स सृजन और परिवेश के साथ वह नारी-सुलभ दायरों का मान रखते हुए कैसे न्याय करे?

मैंने माना उसके विषय का क्षेत्र बहुत सीमित होता है। पर इसके पीछे कारण उसके अनुभव-क्षेत्र की संकीर्णता नहीं, उसकी स्थिति है। सत्य कहें तो आज भी वर्जनाओं का उस पर अम्बार लगा है। पाठक-वर्ग की जिज्ञासा विस्तृत होती है। मनुष्य का स्वभाव है, वह हर छवि में पहले परछाइयाँ ढूँढ़ निकालना चाहता है। इसलिए नवोदित लेखिका को, जो अनिवार्यत: संकोची भी होती है, हर क्षण यह भय होता है कि उसकी कहानी आत्मकहानी समझ कर न पढ़ ली जाए। अविवाहित लेखिका का संकोच और भी गहरा और फलत: समस्या और भी गंभीर हो जाती है। साधारण पाठक बहुत आसानी से भाव-प्रभाव की हर कड़ी उसके व्यक्तिगत जीवन से जोड़ देता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह तो वह नए थीम छूती ही नहीं, अगर छूती भी है तो उस पर स्पष्ट और निष्पक्ष विचार नहीं कर पाती। प्राय: वह फिर-फिर घूम कर पुराने विषयों पर चली जाती है। इसके लिए अधिकांश लेखिकाएँ परम्परावादी कहानी लिखती हैं या आधुनिक विषयों को मज़बूरन अनचाहे आदर्शवाद का जामा पहना देती हैं। और आज जब साहित्य इतने सहज रूप से मुखर हो बैठा है, उसकी यह असहजता बड़ी खटकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्या सिर्फ़ अविवाहित लेखिका की ही नहीं विवाहिता की भी है।

नारी कल्पनाशील होती है--भावुक। विवाह जैसे अनायास उसे धरती पर ला देता है। परिवार के रुटीन में फँस कर उसकी बौद्धिक चेतना प्रायः सुप्त हो जाती है। साथ ही विवाह के दायित्व उसके लिए अनगिन देहरियाँ बना देते हैं। पुरुष पति होते ही जैसे और भी संकुचित हो जाता है। लेखिका-पत्नी की रचना को वह महज़ पाठक बन कर नहीं ही पढ़ सकता। पति की विपरीत प्रतिक्रिया के भय में लेखिका थोड़े ही समय में सिर्फ़ पत्नी रह जाती है--व्यक्ति नहीं बचती।

सम्भवतः हर पहलू ही काफ़ी विवादास्पद है और स्वयं में पृथक्-पृथक् परिसम्वाद का विषय।

नवोदित लेखिका सहज रूप में अपने साहित्य का अपनाया जाना चाहती है। इसका दायित्व पाठक-वर्ग पर है। आज की उभरती हुई लेखिका की लेखनी एक बार अनावश्यक औचित्य-अनौचित्य का भय लाँघ कर चल पड़े, फिर उसकी सम्भावनाओं के आगे कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकेगा। ●●

जया नागर

●

प्रेम-शृंगार-रसों में रसराज, आख़िर क्यों न हो नारी के मानस का अधिष्ठाता? नारी के कोमल अन्तर्मन के इसी विशिष्ट को तो समझ पाये थे बँगाल के शरत्। और सम्वेदनशीलता--भाव-तादात्म्यता अंतर तक जा झाँक आ सके ऐसी दृष्टि, अँग्रेज़ी में जिसे कहते हैं अण्डरस्टैण्डिंग। इन्हीं का मिला-जुला रूप ही तो प्रेम है। माँ के मन में यह सब न निखार पायेगा तो और किसकी!

परिवार? सच है, परिवार ही तो उसके जीवन की परिधि है, केन्द्रबिन्दु है। फिर सामाजिक मान्यताएँ, बन्धन, रीति-नीतियाँ उसके लिए इस अपेक्षाकृत उदार युग में भी शिथिल तो नहीं ही हैं। कागज़ पर एडिक्ट्स निकल जाते हैं, क़ानून बदल जाते हैं, पर परम्पराओं से चली आती मान्यताएँ और संस्कार क्या यूँ ही अस्तित्व खो देते हैं? पुरुषों की भाँति हम स्वतन्त्र नहीं। शारीरिक रूप से कमज़ोर रख कर नियति द्वारा किया गया उपहास है। 'पेटन-प्लेस' की नायिका की तरह नारी लेखिकाएँ (विशेषतः भारतीय) भी एक छोटी-सी परिधि में घिरी पड़ी हैं, उसी लक्ष्मण-रेखा के भीतर जो कुछ भी वे खोज पायें, उतना ही बहुत है, हावर्ड स्प्रिग, सॉमरसेट मॉम के से अनुभव उनके वश के कहाँ? जीवन के विविध क्षेत्रों से सामग्री ली भी कैसे जाय? बिना अनुभव, मार्ग भटकने से नये सामान हो जायेंगे। कुछ पुरुषों से नारी संवेदनशील भी अधिक होती हैं। एक दम से कुछ नवीन 'क्रान्तिकारी' का सृजन कर विपरीत आलोचना की आशंका - भय की परवाह किये बिना, एक दम प्रकाश में आ सर्वत्र आच्छादित हो जाना भी साहस चाहता है। यही शायद उनके परम्परावादी शिल्प के प्रति प्रेम का कारण होगा। इसी से अधिकतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियाँ, भले ही वे पत्र-कथा के रूप में हों, कविताओं के घेरे में बन्द हैं। नये-नये प्रयोगों से वे बचती रहती हैं अथवा नये-नये प्रयोग ही उनसे बचे-बचे रहते हैं।

छात्र-जीवन में निश्चिन्तता की एक अनोखी मादकता होती है। मन उमंगों से भरपूर, आने वाले कल के मीठे-मीठे सपने—आकांक्षाएँ....अनुरंजित कल्पनाएँ। ऐसा कि अकवि पर भी काव्य छा जाये। शादी के बाद कम से कम कुछ काल तो नये परिवार में हिसाब-किताब बैठाने में लगता ही है। फिर कहाँ का लिखना! और आवश्यक नहीं कि पति से रुचि मिले ही इस विषय को लेकर। साहित्य विशिष्ट में आपकी रुचि हो सकती है पर बहुत सम्भव है वह केवल 'अर्ल स्टेनले गार्डनर' ही की दुनिया में बसते हों, या उसके भी आश्रित न हों। कुछ विवाह के बाद सपनों का बिगड़ना और बनना भी इस 'हाँबी' को छिन्न-भिन्न कर सकता है।

जो लेखिकाएँ अध्यापन कार्य में लगी रहती हैं वे इसलिए लिख पाती हैं कि उनके छात्र-जीवन से बहती आ रही नदी की धार एकदम राह नहीं बदलती। वह उसी वातावरण से अभी भी बँधी रहती हैं। और भी अधिक आत्मविश्वास के साथ। जो सहज था वह अभी भी उन्हें दुष्प्राप्य नहीं। विशेष प्रतिभा न होने पर भी वह लिख सकने में सफल हो सकती हैं क्योंकि विचार, विचार ही से जगते हैं।

निस्सन्देह ऐसे भी अनेकों क्षण आते हैं जो नितान्त रूप से अपने ही होते हैं और उनके लिए समय निकल आना भी चाहिए। इनमें यदि कई दिनों के उद्योग-परिश्रम के बाद कुछ लिख भी लिया और पोस्ट आफिस का सामना भी कर लिया तो भी क्या होता है? महीने भर से ऊपर की बाट देख कर वह भी तीन-चार स्मरण-पत्रों के बाद सम्पादक के 'अभिवादन व खेद सहित' रचना लौट आती है। मन निराश अवश्य हो जाता है जब कि आप के अपने विचार में उससे कम अच्छी रचनाएँ छप रही होती हैं और वह भी ऊँचे-ऊँचे पत्रों में।

पारिश्रमिक भी लगता है प्रतिष्ठित और नए लेखकों के ही हिसाब से दिया जाता है। यह बहुत अन्याय की बात है। अच्छी और बुरी की तुलना होनी चाहिये न कि लेखकों के नाम की। प्रतिष्ठित और सम्मानित नामों का अवश्य ही पत्र-पत्रिकाओं को बड़ा मोह है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

'भाई-भतीजा वाद' इस युग का क्या एक पुरातन दोष है? प्रकाश में आना कठिन अवश्य है; पहले और अधिक रहा होगा पर मेरा अनुभव है, यदि आग्रह किया जाय तो प्रवेश मिल ही जाता है। अच्छी रचना की क़द्र भी होती है। बिना किसी सम्बन्ध सिफ़ारिश के रचनाएँ स्वीकृत होती भी देखी हैं, स्वयं अपनी ही। कॉलिज के दिनों में 'सरिता' में पहली कहानी स्वीकृत होने का सुख आज भी नहीं भूलता।

कुछ समय लिखना बन्द-सा कर फिर लिखने का मन हो आया और 'धर्मयुग' 'ज्ञानोदय' दोनों में ही पहली बार भेजने पर रचनाएँ स्वीकृत भी हो गयीं। या तो शरत्-मोपासाँ-प्रेमचन्द-सी प्रतिभा हो, हाथों की राह मानस का निर्झर बह जाय। फिर भी मन की राह कितने विचार, अनुभव भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ पैठते हैं। सभी याद नहीं रह पाते। नोट करने आवश्यक हो जाते हैं। मेरे विचार में लिखने, बार-बार लिखने, अथवा बार-बार न लिखने के आलस्य को भी कुछ कम करके न जानना चाहिए, यह भी एक बाधा है और मेरी तो सबसे ही बड़ी।●●

प्रेमलता वर्मा

●

लंबे युगों के बाद जो किंचित सुविधा और फैलाव नारी के जीवन में आया है, उसमें लेखिकाएँ यदि अपने सीमित विषयों को ही कुछ गहरा बनाने की दृष्टि पा सकी हैं, तो वो ही क्या कम है ! दूसरे, हम यह मान कर क्यों चलें कि 'प्रेम' और 'परिवार' ऐसी मूलभूत समस्याएँ नहीं कि इनके क्षेत्र में और सारी बातें भी आ सकें !

वस्तुतः 'सीमित' शब्द के साथ विषय क्षेत्र को न लाकर उसकी अभिव्यक्ति के ढंग, उसके विस्तार, उसके प्रतिपादन की सूक्ष्मता के अभाव या न्यूनता को ही रखें तो वह अधिक सही होगा। अभिव्यक्ति के तर्कसंगत, खरे, यथार्थमूलक कल्पना से बोझिल रचनाओं में क्षेत्र (जो भी हो) निस्संदेह सीमित हो जायगा।

अधिकतर लेखिकाएँ मध्यवर्ग, निम्न मध्य वर्ग से आयी हैं। इस वर्ग में उनकी शिक्षा-दीक्षा और पारिवारिक संस्कार उन्हें विकास का व्यापक परिवेश नहीं देते। जो कुछ भी उपलब्धि होती है वह आधे सफल आधे असफल संघर्ष द्वारा ही। इसमें प्रायः पुरुष वर्ग उनका सहायक नहीं ही होता ; या केवल एक सीमा तक ही होता है।

अपनी 'अर्द्धांगिनी' को अपने से ऊँचे (सांस्कृतिक) स्तर पर देखने की कल्पना अभी पुरुष भाग को सह्य नहीं है ; अतः उसकी सृजनात्मक प्रगति को कुंठित कर देना ही उसका काम हो जाता है। ज़बानी सहानुभूति और ऊँची-ऊँची बातों के बावजूद। इसका कारण यह है कि आज भी समाज में अनेक संस्थाएँ मध्यकालीन भावनाओं की जड़ों को सींचती चली जा रही हैं। अपने पारिवारिक रहन-सहन में--काफ़ी हद तक सामाजिक जीवन में भी --वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से हम अपरिचित हैं। हमारे वे सामाजिक और सांस्कृतिक नेता जिनके सम्पर्क में हम आते हैं (जब भी आते हैं) अंदर ही अंदर अर्थहीन जर्जर रुढ़ियों से चिपके हुए हैं : नारी के प्रति वास्तविक आदर-भाव और समता की भावना उनके अंदर नहीं है। अपवाद इतने कम हैं कि उनसे कोई विपरीत तथ्य सिद्ध नहीं होता। कम से कम उत्तर-प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश जैसे क्षेत्रों के बारे में तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। फिर भी शिक्षा की प्रगति, परिवारों की भीषण आर्थिक कठिनाइयाँ, स्वयं इस स्थिति को बदल रही हैं ; और पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अपने दिमाग़ से काम लेने और अपने पाँवों पर खड़े होने का साहस करने लगी हैं। और यह अनिवार्य भी हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के विविध क्षेत्रों से सामग्री लेने में जो 'हिचक' दिखाई देती है, वह हिचक नहीं, मजबूरी है। बल्कि परिस्थिति की माँग भी है--कि अगर मार्मिक और सप्राण रचना तैयार करनी है तो उसकी सामग्री वहीं से ली जाय जहाँ लेखिका या लेखक ने अनुभव को इस गहराई से भोगा है कि वह अनुभूति में बदल गया है। तभी रचना की अपील सीधी और ठोस होगी।

यह सही है कि लेखिकाएँ कुल मिला कर अभी 'परिवार' और 'प्रेम'--यानी निजी परिवेश--के बाहर की (सामाजिक 'संघर्ष' या 'निर्माण' की ?) दुनिया को गहरी दिलचस्पी के साथ समझने, परखने और उसे मार्मिक कलात्मक अभिव्यक्ति का अंग बनाने में सफल नहीं हो सकी हैं। (वस्तुतः लेखक ही कितने सफल हो सके हैं, हिन्दी के सृजनात्मक साहित्य में इस पर भी काफ़ी तटस्थता से विचार करने की आज जरूरत है।)

सम्भवतः इसके मूल में यह मौलिक प्रश्न भी निहित हो कि: क्या नारी उस निस्संग और तटस्थ भाव से अपने परिवेश को देख सकती है जो हर बड़े कलाकार के लिए अपेक्षित और अनेक (सभी नहीं) पुरुष कलाकारों के लिए बहुत दूर तक सहज और संभव रहा है ?

२

नारी स्वभावतः स्पष्टता को अस्पष्टता पर तरजीह देती है। 'क्या' और 'क्यों' पर उसकी दृष्टि पहले जाती है ; 'कैसे' पर उतनी नहीं। परम्परावादी शिल्प के प्रायः विरोध में नया शिल्प 'कैसे' को लेकर उपस्थित होता है 'क्या' और 'क्यों' के ठोस प्रश्न बाद में सुलझते हैं, और तब नया शिल्प और उसका 'कैसे' भी परम्परा से जुड़ जाता है। और महिलाओं के लिए उसका अपनाना तब सहज हो जाता है।

इसको फैला कर समझाने की जरूरत नहीं कि पत्र-शैली--और पात्रों का तीव्र विरोध---और भावस्थितियों को उनके छोर पर ले जाना--लेखिकाओं के लिए अधिक स्वाभाविक है, लेखकों की अपेक्षा। उनकी अधिक रुचि अक्सर डायरी-शैली या कथ्य की ओर होती है। कारण--इनमें अभिव्यक्ति की सुगमता और सहजता होती रहती हैं।

लेखिकाएँ अधिकतर उस शिल्प-शैली को सहज ही और तीव्र गति से अपनाएँगी जिसकी 'धाक-सी' या 'आतंक-सा' हो। इस दृष्टि से देखें तो यह सामान्य(generalise) सत्य कि 'वे अधिकतर परम्परावादी शिल्प में ही लिखना पसन्द करती हैं', अर्द्ध-सत्यवत् ग़लत-सा भी सिद्ध होगा। नई कहानी में, और सम्भवतः उससे बढ़ कर नई कविता के क्षेत्र में हम इस वस्तुस्थिति को देख सकते हैं।

'परम्परावादी शिल्प'--यद्यपि यह भी व्याख्या की अपेक्षा रखता है--तेज़ी के साथ मैदान से हटता जा रहा है। कारण:

१. सुशिक्षित सुरुचिसम्पन्न लेखिकाओं पर पश्चिमी साहित्य का प्रभाव।

२. नया शिल्प काफ़ी प्रतिष्ठित हो चुका है। उसमें (सदैव व्यर्थ ही नहीं) चौंकाने के पर्याप्त साधन हैं।

३. नये शिल्प ने, विशेष कर नई कविता के क्षेत्र में, व्यक्ति को सहज ही एक ऐसी आन्तरिक मुक्ति प्रदान की है जिससे वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी दुःसह और जटिल भावनात्मक स्थितियों को 'ईमानदारी' से व्यक्त कर सकता है। कुंठाग्रस्त मध्यवर्ग के व्यक्ति के लिए यह वरदान स्वरूप ही सिद्ध हुआ।

हाँ, आज के स्तर से अल्पशिक्षित और 'भावुक' (sentimental) लेखिकाओं के लिए "गीत" की विधा या फ़िल्मी तर्ज़ का रोमांस या एडवेंचर अधिक आकर्षक हो सकता है, और होता पाया जाता है।

३

'क्या कारण है कि अधिकांश लेखिकाएँ छात्र-जीवन में तो लेखन की ओर काफ़ी रुचि और उत्साह दिखाती हैं, लेकिन शादी हो जाने के बाद इनका लेखन प्रायः बन्द जैसा ही हो जाता है ?'

कारण यह है कि नौ सौ निन्यानवे 'पढ़े-लिखे' घरों में सुशिक्षित बहुओं को जिन "आदर्शों" में जकड़ कर बाँध रखने की चेष्टा की जाती है, उनका मध्यकालीन तर्क पुरुषों पर भी लागू करने की कल्पना नहीं की जाती।

४

आज की प्रायः सभी लेखिकाएँ साहित्यिक परिवारों की, या उनसे किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध रह कर ही, आगे आ सकी हैं।

लेखिकाओं के यदि अपने सुन्दर और सफल सांस्कृतिक मुखपत्र हों—और उनसे सम्बद्ध उनका अपना एक सच्चा आन्दोलन भी हो (जो राजनैतिक धरातल पर ही, या मात्र शैक्षणिक (academic) घेरे में ही सीमित न रहे) तो यह नयी लेखिकाओं के लिए काफ़ी उत्साहवर्द्धक हो सकता है। पर सबसे बड़ी ज़रूरत है समाज और परिवार में विचारों के परिवर्तन की। यह शिक्षण के और अधिक प्रसार और उसके स्तर के उन्नत होने पर ही संभव है। अभी तक महिला आन्दोलन ऊपरी वर्ग की महिलाओं के ही हाथ में है जिन्हें मध्यवर्ग और देहात और मज़दूर क्षेत्रों से कोई आन्तरिक सहानुभूति नहीं।

जिस चीज़ से त्रस्त होकर नवोदित प्रतिभाएँ आज कुंठित हो रही हैं—न अच्छी तरह पनप पा रही हैं, न उठ पा रही हैं—वह है उनका दारुण आर्थिक परिवेश। और वह फैला हुआ, अनेक रंगीन पर्दों में छिपा हुआ भी, खुला हुआ भी, भ्रष्टाचार और व्यभिचार; जिसके कारण सारे ऊँचे-ऊँचे सपने और सृजन के महल उठने-उभरने से पहले ही उपहासास्पद हो जाते हैं, अर्थहीन हो जाते हैं: अधिक सार्थक हो जाता है किसी भी प्रकार जीवन की सुख-सुविधाओं का भोग: अर्थात् वास्तविक 'सुख' इसी में लक्षित होता है।....और, सृजनात्मक प्रेरणाओं के नीचे से ज़मीन खिसक जाती है।

५

प्रत्येक सृजनकर्ता या सृजनकर्त्री की अपनी पृथक एक दुनिया है;—अपने सृजन के माध्यम, शैली और प्रेरणाओं में एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न। सृजन और पारिवारिक स्थितियों के बीच सामंजस्य की समस्या को प्रत्येक लेखिका अपने निजी ढंग से सुलझाने को बाध्य होती है। कहीं यह कार्य अर्द्ध-गोपन रूप से ही सम्भव है; कहीं इसको यत्किंचित-यत्र-तत्र सहायता-संशोधन, अथवा सहानुभूति, अपेक्षित है—जो कहीं न कहीं से कभी-कभी मिल ही जाती है, पति से, भाई से, मित्र अथवा सहेली से, पिता अथवा किसी साहित्यिक बुजुर्ग या गोष्ठी से: परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से। विशेष चीज़ धुन या शौक़ है, जो किसी न किसी बहाने जारी रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

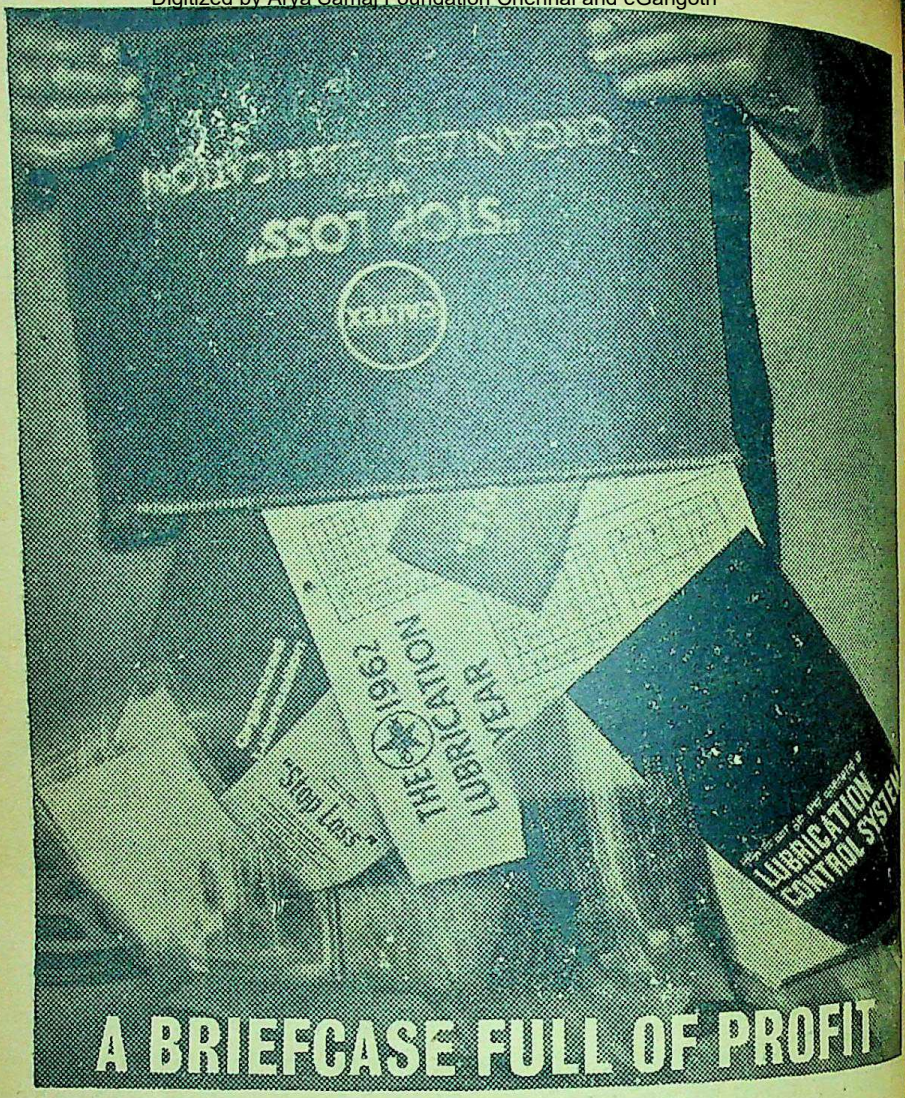

A BRIEFCASE FULL OF PROFIT

कालटेक्स सेल्स इन्जीनियर के बैग से योजनाओं का पुलिन्दा, संगठित लुब्रिकेशन द्वारा व्यय-नियंत्रण के लिए निकल रहा है—कालटेक्स का "हानि-निरोधक" कार्यक्रम। यह कार्यक्रम शीघ्र ही प्रारम्भ कीजिये। संगठित लुब्रिकेशन आपको उत्पादन, सन्धारण तथा क्षय हानि से बचायेगा। यह बचत आपको सीधे तौर से ४ प्रतिशत का लाभ देगी।

कम्पनियों के पदाधिकारी कालटेक्स दफ्तर से इस बुकलेट की निशुल्क प्रति तथा अन्य सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। कालटेक्स के संगठित लुब्रिकेशन द्वारा अपने लाभ में वृद्धि करें।

CALTEX

कालटेक्स (इण्डिया) लिमिटेड
कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, मद्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष सहायक होती हैं महान रचनाकारों की पुस्तकें जो सौभाग्य से घर में हों या आती रहती हों। रेडियो प्रोग्राम भी यही काम अपने ढंग पर करते हैं। कभी-कभी घर के बालक-बालिकाओं की रोचक रंगीन पुस्तकें या कहानी, उपन्यास या काव्य-संग्रह आदि अपना अतिरिक्त योगदान करते हैं। ये सब उपकरण वास्तविक रूप से सहायक हो सकें, इसके लिए घर का वातावरण, सास, देवरानी-जेठानी, चाची-मामी आदि की दुर्जना का न होना या बहुत कम होना अत्यावश्यक है। नहीं तो फिर राम ही सहायक है।

वस्तुतः लेखिका यदि 'अपने क्षेत्र', प्रेम या परिवार के ही विषय में कुछ कहना चाहती है तो भी उसे इतना साहस नहीं होता कि वह प्रेम और परिवार से जुड़े ऐसे अनेक प्रसंगों पर गहराई से विचार कर सके, उन्हें रूपायित कर सके, जैसे—समाज की बहुत निचली तहों में छिपी विकृतियाँ ; नाना प्रकार के ढोंग; और ऊपर से नीचे तक सामाजिक सम्बन्धों की अनेक मजबूरियाँ। यदि वह ऐसा सहसा एक बार करे, तो वह लोगों को चौंकाने वाला होगा : उसे वे शील-विरुद्ध घोषित करेंगे।

स्त्री होना ही मानो लेखिकाओं से विस्तृत क्षेत्र के अनुभव करने का अधिकार छीन लेता है। यही नहीं, यह उनके लिए अनुभव को गहरा करने की सुविधाओं का भी अंत कर देता है। उच्च वर्ग में जहाँ महिलाओं को सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ हैं, वहाँ लेखन ऐयाशी बन जाता है। प्रतिष्ठित लेखकों के मात्र अनुकरण पर रचनाओं का सृजन होता है, जो निजी अनुभूतियों के स्पंदन से प्रायः शून्य ही होती हैं: दूसरी ओर यह भी सच है कि मध्य और निम्न मध्यवर्ग की गृहिणियों की अधिक व्यस्तता भी उच्चकोटि के सृजन के लिए अवकाश नहीं देती। ●●●

सुनीता अग्रवाल

●

छात्र-जीवन भावनाओं से परिपूरित होता है। इस काल में प्रत्येक पुरुष और नारी यौवन की दहलीज़ में पाँव रख रहे होते हैं। पिछला सब कुछ पुराना और आगे आने वाला एकदम नया लगता है। पुराने और नए के अनूठेपन का सामंजस्य जब नहीं हो पाता, तब भावनाओं का विकास होता है। लेखन का भावनाओं से बहुत गहरा सम्बन्ध है। इसलिए मनोगत भाव लेखनी की सहायता से काग़ज़ पर फूट निकलते हैं। यही कारण है कि किसी भी लेखक अथवा लेखिका की प्रथम रचनाएँ अति आकुलता से पीड़ित होती हैं।

अति हर वस्तु की बुरी होती है। रचनाओं को अति भावुकता शिथिल कर देती है। अतः नई लेखिकाओं के लिए यह एक गहन बात है, कि वे अपने भावों को अतिरंजक न होने दें। प्रेम-कथाएँ लिखना सबसे सरल होने के साथ-साथ बहुत कठिन भी है। प्रेम एक विशद विषय है—केवल ऊपरी सतह को लेखनी से उतारना तो सरल है, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके मर्म तक पहुँचना कठिन है। प्रेम कथाएँ केवल उसी समय लिखी जानी चाहिएँ—जब मन-मस्तिष्क पूर्णतः प्रौढ़ हो जाएँ और छिछले रोमान्स की उम्र गुज़र जाए।

प्रायः छात्र-जीवन के बाद लेखिकाएँ इसलिए लिखना बन्द कर देती हैं, कि उनके रोमान्स का भूत उतर चुका होता है और अब वे अपना सब-कुछ एक ही पर केन्द्रित कर चुकी होती हैं—जिसे वे अपना पति कहती हैं। पिता के घर लड़की को प्रायः स्वतंत्रता होती है कि वह चाहे जैसे करे, किन्तु पति के घर उसे पग-पग पर तानों-व्यंग्यों का सामना करना पड़ता है और पति की आज्ञा के बिना कुछ भी करना असंभव होता है। यदि पति स्वयं लेखक है अथवा साहित्य-प्रेमी है, तो नारी का लिखना ज़ारी रह सकता है, अन्यथा उसे अपने पति की आज्ञा से लेखन को तिलाञ्जलि दे देनी पड़ती है। पुरुष में अपने को श्रेष्ठतम समझने की आदत होती है। लेखिका-पत्नी के आगे असाहित्यिक पति अपने-आपको हीन समझने लगता है और पत्नी को श्रेष्ठ। उसे लगता है कि मानो उसका झूठा अहम् टूट चला है। इसलिए अपनी श्रेष्ठता स्थायी रखने के लिए वह अपनी लेखिका-पत्नी को न लिखने की सज़ा देता है। परम्पराओं में बन्दी नारी-जीवन इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त कुछ और नहीं कर पाता।

भारतीय परिवार नारी—विशेषकर पत्नी अथवा बहू—की स्वच्छन्दता को अरुचिकर समझते हैं। अतः नारी परिवार की सीमा से बाहर सोच भी नहीं पाती है। जिन नारियों को विवाह के बाद लिखने की अनुमति मिल जाती है, वे अपने सीमित क्षेत्र के कारण पारिवारिक रचनाएँ ही लिख पाती हैं। समय परिवर्तन के इस युग में पुरानी मान्यताएँ अररा कर ढह रही हैं। नारी को बाँधने वाली सीमा-परिसीमाएँ भी अब खुलनी ही चाहिएँ। मुझे विश्वास है कि इसके लिए स्वयं उसे ही प्रयत्नशील होना पड़ेगा।

लेखन की इस सामान्य पीठिका पर मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव क्या रहे हैं, उनका भी यहाँ संक्षेप में उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

प्रारंभ में मैं भी भावुक थी। मेरी रचनाओं में अति भावुकता का पुट था—प्रेम की अतिरंजकता थी। किन्तु शीघ्र ही मुझे सुप्रसिद्ध लेखकों का अध्ययन करने के पश्चात् ज्ञान हुआ कि प्रेम की अतिरंजकता और अतिभावुकता को निबाहे रखना मेरे अपने वश की बात नहीं है, क्योंकि अभी मुझे अपनी बात कहनी नहीं आती है।

इसके बाद जब भी मैं कोई कथा-कहानी लिखती, तो पहले उसे तौलती और यदि उसमें ज़रा-सा भी असंतुलन दिखाई देता, तो मैं वह रचना फाड़ कर फेंक देती थी। नई लेखिकाओं की भाँति मेरे मन में भी छपने की तीव्र उत्कण्ठा थी। मैं अपनी रचनाएँ इधर-उधर प्रकाशनार्थ भेजती। किन्तु वर्ष में बीस रचनाएँ लिखने के बाद इस परिणाम पर पहुँची कि केवल तीन ही प्रकाशित हो पाई हैं। अपनी एक कहानी से मैं बहुत परेशान हुई। ग्यारह स्थानों पर भेजने के बाद भी वह अप्रकाशित ही रही। मेरा धैर्य टूट चला था और मैं लेखन छोड़ने के लिए कटिबद्ध हो चली थी। मैंने कहानी यह उलझन भारत के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को लिखी, तो उनका उत्तर मिला : 'उलझनें न हों, संघर्ष न हो, तो ज़िन्दगी का मज़ा ही क्या ? आनन्द तो उसी में है, कि मनुष्य सारे व्यवधानों, विषमताओं, परेशानियों को चुनौती देता हुआ, झाड़-झंखाड़ों को रौंदता हुआ, राह बनाता हुआ, मंज़िल की दिशा में निरन्तर अग्रसर रहे—बिना इस बात की परवाह किए कि मंज़िल मिलती है अथवा नहीं।'

मुझे धैर्य बँधा और मैंने पुनः उस कहानी को एक प्रतियोगिता में भेज दिया। सौभाग्य से, वह कहानी उसमें पुरस्कृत हुई। मुझे आत्म-विश्वास बँधा कि मुझे भी लिखना आ गया है। फिर तो मुझे संघर्ष से जूझना एक खेल मालूम पड़ने लगा और अपनी मंज़िल समीप दिखाई देने लगी। लेखन के साथ-साथ मैंने अध्ययन को भी तरजीह दी। विचारों की परिपक्वता के लिए अध्ययन अति आवश्यक है। मेरे मार्ग में पाठकों ने, अन्य सहयोगी लेखकों ने, बल्कि स्वयं मेरे सम्बन्धियों ने रोड़े अटकाए—मुझे बदनाम करने का प्रयत्न किया, किन्तु अपने माता-पिता के स्नेह को पा, मैंने लेखन का परित्याग नहीं किया, बल्कि उनके आशीर्वाद से लिखती ही रही।

अठारह वर्ष की आयु में मैं विवाहिता हो गई। पति ने मेरे लेखन में कभी कोई बाधा नहीं डाली। मैं पिछले नौ वर्षों से निरन्तर लिख रही हूँ और अब पचीस की वयस में आकर भी अपने आप को पूर्ण सन्तुष्ट नहीं पा रही हूँ। लेखन में मैं कुछ नए प्रयोग करना चाहती हूँ और कुछ मैंने किए भी हैं।

•

सरस्वती चौधरी

•

मन में एक बात बहुत दिनों से घुमड़ रही थी; पर कहने का कभी अवसर ही नहीं मिला क्योंकि लेखिकाओं की एक कठिनाई तो यही है कि जो कुछ वे कहना चाहती हैं उसके लिए उन्हें मौका ही नहीं दिया जाता। मन में आवाज़ें उठती हैं और अँधेरे में खो जाती हैं। पहले तो घर और आस-पास वाले ही नहीं उठने देते, वहाँ से जैसे-तैसे निकलीं तो समाज की पैनी आँखें जैसे छेदे डालती हैं; एक लेखक को उन सब बातों का सामना नहीं करना पड़ता जितना लेखिकाओं को।

पुरुषों की ओर कोई अधिक ध्यान नहीं देता। वह तो दुनिया देखे होते हैं पर बेचारी लेखिकाएँ अगर वे क्वाँरी हैं तो माँ-बाप की तीखी नज़र उनकी हर गतिविधि का ध्यान रखती हैं। बिटिया रात बारह बजे तक क्यों जागती रही ? क्या लिखती रही ? प्रेम-पत्र तो नहीं ! और हाँ, तब लिखना कितना कठिन होता है जब कमरे में जासूसों का आना - जाना जारी रहे। बड़े भैया कमीज ढूँढ़ने के बहाने आ धमकते हैं, माँ बेटी को खाने की बात पूछने और पिताजी एक आँख से अपनी छड़ी ढूँढ़ते हैं और दूसरी आँख बेटी के कागजों पर जमाए रखते हैं, आखिर रहा नहीं गया तो पूछ बैठे,....'है...हं...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिज की तो छुट्टियाँ है बिटिया यह क्या लेकर बैठ गई' या 'कौन-सी सहेली को चिट्ठी लिख रही हो' और बिटिया बेचारी पानी पीने भी बाहर गई तो बस छोटे भैया की जासूसी शुरू। आखिर जीजी क्या कलम घिसाई कर रही है उसे भी तो जानना चाहिए, लो भेद खुल गया, जीजी कहानियाँ लिखती है, एक मिनट में घर भर में खबर फैल गई और अब हर कोई कहानियाँ पढ़ने लगा। कहीं कहानी में प्रेम का वर्णन आ गया तो बस शामत। लड़की प्रेम कहानी लिखे! या लो, दाम्पत्य जीवन की इतनी बातें इसने कहाँ से सीख ली! बाल की खाल निकालने लगी। फिर माता जी की शिकायत, "मैं यहाँ चूल्हे में सिर मार रही हूँ, बिटिया पटरानी बनी बैठी है।"

पर विवाहित महिलाओं को कोई कठिनाई न हो सो भी नहीं। पति महोदय का कुछ साहित्य से लगाव हो तो भी ठीक है पर जहाँ साहित्य से किसी को प्रेम ही न हो वहाँ की बात न पूछिए। पत्नी महोदया को लिखने का शौक लगा और पति महोदय खीज रहे हैं, "लो यह और नया शौक शुरू हो गया, दिन भर थक कर घर लौटे और श्रीमती जी यह तो नहीं प्रेम-शब्दों से थकान हर लेतीं, यह सिर दर्द लेकर बैठ गईं"! पत्नी कभी लेखिका बन सकती है यह पति महोदय कैसे मान ले।

जैसे-तैसे एकाध रचना छप भी गई तो जानने वालों ने कहानी की हर पंक्ति में हर शब्द का सम्बन्ध लेखिका के व्यक्तिगत जीवन के साथ जोड़ना शुरू कर दिया। "इनके घर में ऐसे ही झगड़ा होता होगा..... कहानी का वह पात्र काल्पनिक नहीं वास्तविक है, तुम्हें नहीं मालूम इनके पति का ही तो चरित्र विवरण है...लो यह भी खूब रही अरे यार आदमी जो अपने आस-पास देखेगा सुनेगा वही तो लिखेगा"...इन कड़वे-कड़वे घूँटों को गले के नीचे लेखिका उतार भी ले, पर पति महोदय खीजते हैं, "क्यों जी तुम्हारी उस कहानी में क्या तुमने मेरे ऊपर छींटाकशी नहीं की है...तुमने अमुक कहानी में पुरुष चरित्र को इतना क्यों गिरा दिया है, लोग मुझे भी उस श्रेणी में ले लेंगे!" अब लेखिका किस-किस को समझाए और क्या समझाए?

हाँ, अब प्रश्न उठता है लेखिकाओं के लेखन क्षेत्र का। अधिकतर परिवार और प्रेम ही उनके प्रिय विषय होते हैं..आखिर क्यों? स्त्रियाँ स्वभाव से ही संवेदनशील होती हैं। हर स्त्री की सबसे गहरी इच्छा परिवार प्रेम और सुख को एक ही इकाई में देखने की होती है। पहले वह परिवार को प्रेम के धागों में बाँध कर मज़बूत कर लेना चाहती है, तभी आगे बढ़ती है। भावनाओं का मूल्य भी पुरुष की अपेक्षा नारी ही अधिक आँक पाने में समर्थ होती है। अधिकांशतः नारी का अधिक समय घर में व्यतीत होता है। इसलिए परिवार को, उसकी समस्याओं को वह पुरुष की अपेक्षा अधिक निकट से देखती है और उसकी रचनाओं को उससे यही अनुभव बाँध लेता है। महिला लेखिकाएँ अधिकतर परम्परावादी शिल्प में ही क्यों लिखती हैं, या नये प्रयोगों से बचती क्यों हैं, इसके एक नहीं अनेक कारण हैं। उनके अनुभव का क्षेत्र सीमित है यह तो मान ही लेना पड़ता है, विशेष रूप से उन महिलाओं के लिए जो कहीं बाहर काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय श्री शामनाथ, मेयर दिल्ली ने

एस० बी० चैरिटी फण्ड, देवास का प्रथम पुरस्कार

एक स्कूल छात्र को प्रदान किया

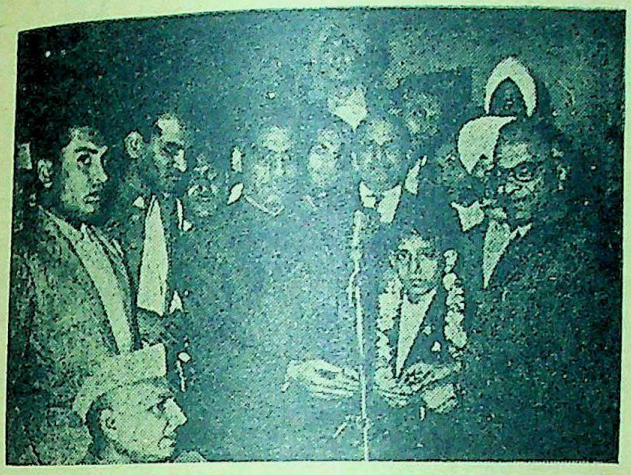

किस प्रकार फराश खाना दिल्ली का एक गरीब छात्र महावीर प्रसाद धनी बन गया.....
क्योंकि उसने एक टिकट खरीदा था ।

एस० बी० चैरिटी फण्ड, देवास (एम० पी०)

यह लाटरी जो १९३५ में आरम्भ की गयी थी, अब तक पूर्ण सफलता के साथ १०६ बार-ड्राइंग्स आयोजित कर चुकी है । यही कारण है कि लोगों का इस पुरानी संस्था में विश्वास है । अतएव आप भी इस अवसर से लाभ उठाइये । इस ड्रा में अपना भाग्य आजमायें, जो आपको एक भारी—

गारण्टी की गयी

रु० ५०,०००/ पचास हजार की रकम
प्रथम पुरस्कार के रूप में प्रदान करेगा

रु० १/ प्रति टिकट दान देकर आप केवल अपना भाग्य ही नहीं आजमाते बल्कि मानवता के एक श्रेष्ठ कार्य में अपना सहयोग प्रदान करेंगे ।

११ टिकटों के पेड फार्म के लिए

केवल रु० ८/ भेजिये

नोट : यदि आपको फार्म्स प्राप्त हो गये हैं तो कृपया उन्हें उचित रूप से भर कर साथ ही मनिआर्डर या पोस्टल आर्डर द्वारा रुपया भेजें जिससे हमें अन्तिम तारीख ७-५-६२ के पहले मिल जाय ।

ड्राइंग की तारीख १७-५-६२ है

अपने कलेक्टर्स तथा डिस्ट्रीब्युटर्स के अनुरोध के कारण बन्द होने की अन्तिम तारीख ६-४-६२ से बढ़ा कर ७-५-६२ कर दी गयी है । और खुलने की तारीख पूर्ववत् १७-५-६२ होगी ।

टिकट और फार्म्स के लिए आवेदन करें :—
आनरेरी सेक्रेटरी
एस० बी० चैरिटी फण्ड, देवास (एम० पी०)
चोपड़ा पब्लिसिटी, नई दिल्ली

विज्ञापन
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करतीं। जब तक व्यक्ति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के सम्पर्क में नहीं आता, ज़िन्दगी के अनेक रूप नहीं देखता, उसकी रचनाओं में विविधता की आशा हम कर भी कैसे सकते हैं? विशेष रूप से मध्यवर्गीय महिलाओं का अनुभव-क्षेत्र बहुत सीमित है और लगभग सभी महिलाएँ हैं भी मध्यवर्ग से ही सम्बन्ध रखने वाली। कुछ विषय तो ऐसे हैं जिनमें महिलाओं का अनुभव शून्य के बराबर ही है। उदाहरणार्थ वेश्याओं की समस्याओं को ही ले लीजिए। महिलाएँ इस विषय में अपनी जानकारी बढ़ाएँ भी तो किस तरह? एक तो वह किसी से इस विषय पर बात करते वैसे ही हिचकती हैं, फिर हमारे पुरुष समाज का दृष्टिकोण इतना स्वस्थ कहाँ कि कोई महिला इस प्रकार का ज़िक्र चलाए और वह उस पर नुक्ताचीनी न करे। बेचारी लेखिका बहुत कुछ कहना चाहती है पर कह नहीं पाती। उसने न उन गलियों को देखा है, न मोहल्लों को देखा है, न उन लोगों के सम्पर्क में आई है, और तो और वेश्या उन्मूलन कानून के बाद भी उसे उनसे सम्पर्क बढ़ाने का मौका नहीं मिला। हाँ थोड़ा बहुत जो पढ़ा है कहानियों और उपन्यासों में ही, भला उससे क्या काम बनता है: इस विषय में ठोस ज्ञान वह प्राप्त करे तो कैसे? पुरुष ने एक सम्मानित नारी और वेश्या के बीच में स्वार्थ साधन के लिए जो खाई डाल दी है उसे वह पाटे तो कैसे? और उसको बिना पाटे लिखे तो कैसे?

इन कठिनाइयों का हल क्या हो? महिला लेखिकाओं को पुरुष लेखकों के बराबर लाकर खड़ा किया जाय तो किस तरह?

स्वास्थ्य और स्फूर्ति के लिये
हेमो-द्राक्षो मॉल्ट!

हेमो-द्राक्षो मॉल्ट एक पाचनशक्तिको बढ़ानेवाला और भूखको उत्तेजित करनेवाला टॉनिक है। यह आपकी तंदुरूस्तीको बनाये रखता है और शारीरिक व मानसिक थकावटको दूर करता है।
हेमो-द्राक्षो मॉल्ट जीवन-सत्त्वों और खनिजोंसे भरपूर टॉनिक है। खूनको बढ़ानेवाला यह ज्ञानतंतुओंके लियेभी पोषक तत्त्व है। वर्षों से प्रसिद्ध यह आपको हमेशां स्वस्थ और ताज़ा रखनेमें मदद करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक पारिवारिक कठिनाइयों का प्रश्न है वे किसी तरह सुलझाई जा सकती हैं और सुलझा भी ली जाती हैं, किन्तु इतना अवश्य है कि पारिवारिक सदस्यों का सहयोग और प्रोत्साहन लेखिकाओं के आरम्भिक दिनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। कई बार ऐसा होता है कि लेखिकाएँ आरम्भ में पारिवारिक सदस्यों के हतोत्साह कर देने से या उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त न होने से ही निराश होकर लेखन कार्य बन्द कर देती हैं, विशेष रूप से पुरुष सदस्यों का सहयोग अधिक अनिवार्य होता है।

पर इन सब से बढ़ कर आवश्यकता इस बात की है कि लेखिकाएँ स्वयं ही इस ओर अपने दृढ़ कदम उठाएँ, आलोचनाओं-प्रत्यालोचनाओं की परवाह न करते हुए जो कुछ कहना है उसे बेझिझक कहें। बिना किसी की चिन्ता किये हुए कहें। सदियों से मन में बैठी हुई हीनत्व की भावना से अपने को स्वतंत्र बनाएँ। व्यर्थ की कुण्ठाओं को निकाल फेंकें पर साथ ही अपने अनुभव के क्षेत्र को बढ़ाने का पूरा-पूरा प्रयास करें। यदि लेखिकाओं में पूर्ण आत्म-विश्वास हो, समाज से टकरा जाने की क्षमता हो तो फिर कोई कठिनाई उनके सामने कठिनाई न रहेगी और जो उनके मन में है वह अवश्य ही बाहर आ सकेगा।

With the best Compliments of :

D. WREN & COMPANY
WARDLEY HOUSE
25, SWALLOW LANE, CALCUTTA-1.

Gram : "TROLLEY"
Phone : 22-7408-9

WORKS
Mechanical Engineering Co., (Private) Ltd.
50|1, TANGRA ROAD,
CALCUTTA-15.
Phone : 22-4304

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप की खूबसूरती ढल रही है

जब बाल पकने लग जाय तब आप का चांद जैसा चेहरा ढलने लगता है, फिर आप भले ही इसे खूबसूरत रखने के लिए हर कीमत चुकाने को तैयार क्यों न हों ..सादी-सी बात है कि सुंदरता ही जहान है आप के लिए ।

भगवान करे, आप से ऐसी न बीते...आपके बालों की जवानी कुम्हलानी नहीं चाहिए, वह भी उस हालत में जब कि आप को लोमा सुलभ हो। मनमोहक खुशबूवाला लोमा बालों को श्याम बनाता है। लोमा सिर्फ बालों को श्याम ही नहीं करता, बल्कि वह आदर्श केश-प्रसाधन और बढ़िया केश-तैल भी है।

लोमा में बालों को दुबारा जवानी प्रदान करनेवाले, उन्हे पुष्ट रखनेवाले तत्व है, जिससे आप के बाल रेशम जैसे मुलायम, घने और अधिक आकर्षक बनते है। मृदु लोमा लगाने पर आप की सुन्दरता कभी नहीं ढलेगी...सच पूछिये तो उसमें चार चाद ही लग जायेंगे।

लोमा

दुनिया भर में
उत्कृष्ट गुणों के लिए
ज्यादा पसंद तेल

सोल एजेंट्स और निर्यातक:
एम. एम. खम्भातवाला,
अहमदाबाद-१ (भारत)

एजेंटस:
सी. नरोत्तम एंड कंपनी,
बम्बई-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ीसा सिमेंट लि०

डाकघर : राजगंगपुर
जिला : सुन्दरगढ़
(उड़ीसा राज्य)

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता

डालमिया एजेंसीज़ प्रा० लि०

अब उच्चकोटि के

डालमिया ऊष्मसहों
(REFRACTORIES)

को

आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं

जो आयस (Iron), वज्रायस (Steel), और धातुकार्मिक (Metallurgical) शालाओं (Works), वज्रवूर्ण भट्ठियों (Cement Kilns), मृच्छिल्प (Ceramic) और अन्य उद्योगों के लिए अग्निमृद (Fireclay), पंकजा, (Silica), भ्रज्रांगिज (Magnesite), वर्णिज (Chromite), वर्णक भ्रज्रांगिज (Chrome Magnesite) और विसंग्राहक (Insulating) की सभी कोटियों में

समस्त मापों (Sizes) व जटिल आकारों (Intricate Shapes) में विभिन्न प्रकारों के सनृदों (Mortars) के सहित प्राप्त हो सकते हैं।

Dr. C. Otto & Comp. G. M. B. H.

Bochum—Dahlhausen (W. Germany).

के

सहयोग और मार्गदर्शन में निर्मित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

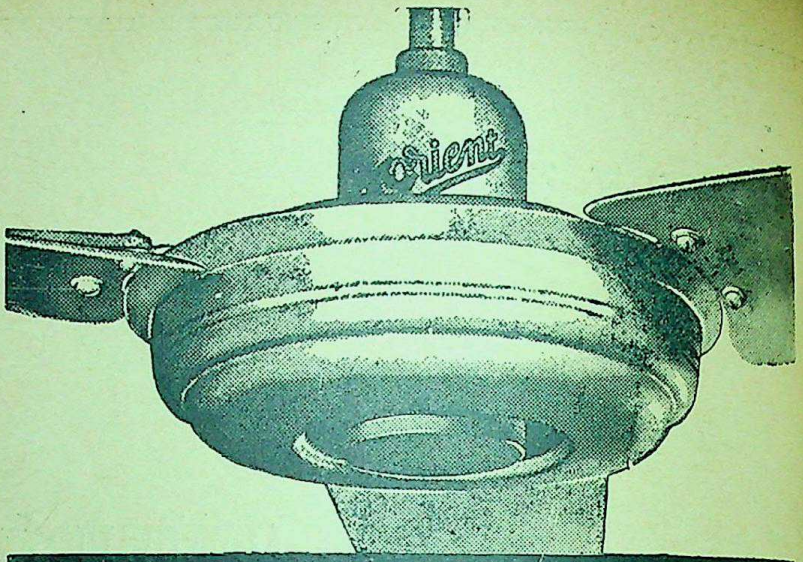

अनुपम निर्माण-कला के योग से उत्तम
पंखे बनते हैं

यही है
ओरिएन्ट
प्रणाली

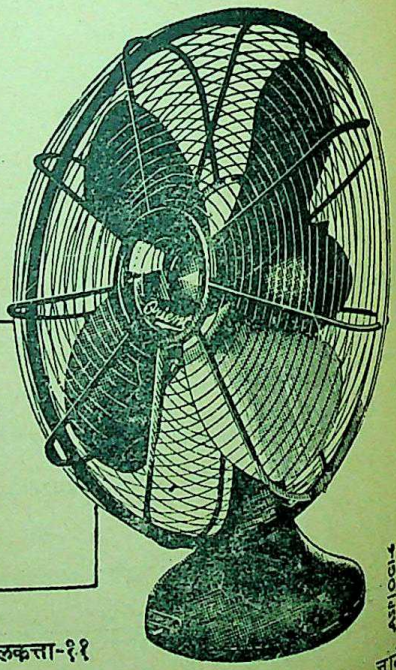

ओरिएन्ट
पंखा
सौन्दर्य और सेवा में
सदा अग्रगामी

ओरिएन्ट जेनेरल इण्डस्ट्रीज लि०, कलकत्ता-११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Telegram :
'MATACANTOS'
CALCUTTA.

Telephone :
Office : 22-3226
Resi : 55-1825

ASUTOSH & COMPANY

MOOKERJEE PRVT. LTD.

ESTD. 1900

SHIP CHANDLERS & ENGINEERS
IMPORTERS, EXPORTERS & MFG., REPRESENTATIVE

12, RAJA WOODMUNT ST.,
CALCUTTA-1.

PLEASE CONTACT FOR ALL YOUR REQUIREMENTS IN

WEIGHING, COUNTING, MEASURING AND TESTING MACHINES

The Avery Company of India Private Ltd.

REGISTERED OFFICE
AVERY HOUSE
28|2, WATERLOO STREET
P.O. Box No. 377
CALCUTTA-1.

Phone : 23-5125|8
23-8121

Gram : WEIGHING
CALCUTTA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्ही० पी० पी० द्वारा मँगाइये।

एग्ज़ीमा औषधि--पुरानी बीमारी को शीघ्र ही दूर करने वाली गुणकारी औषधि। इससे हर प्रकार का दाद साफ हो जाता है। मूल्य ५ रु० ; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

श्वास-रोग (दमा) की औषधि--नये या पुराने दमा के मरीजों के लिए एकमात्र औषधि। मूल्य : ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

बवासीर की औषधि--कष्टदायक व्याधि के लिए उत्कृष्ट इलाज। सूजन, दर्द, ज़खम आदि का एक अकेला उपचार। खाने और लगाने की दोनों औषधियों का मूल्य : मात्र ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

पौष्टिक औषधि--शरीर की गर्मी, कड़की और अशक्तता को दूर कर शक्तिवर्द्धन करने वाली औषधि। निराश रोगी एक बार इसे आज़मा कर देखें। मूल्य: ५ रु०; डाक-व्यय: १ रु० २५ नये पैसे।

नेत्रांजन--आपकी नज़र तेजस्वी बनाता है। मूल्य : ३ रु०; डाक-व्यय : १ रु० २५ नये पैसे।

सफ़ेद दाग़ (श्वेत-कुष्ठ)--सन् १९३६ से प्रयोग में लायी जाने वाली प्रसिद्ध औषधि। भारत सरकार द्वारा रजिस्टर्ड। मूल्य : ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

वैद्य के० आर० बोरकर, 'आयुर्वेद भवन'

पोस्ट--मंगरूलपीर, जि० अकोला, (महाराष्ट्र)

PLEASE CONTACT FOR ALL YOUR REQUIREMENTS OF

PAPER AND BOARD MANUFACTURED IN INDIA

United Paper Mart

NEAR PANCH NATH, RAJKOT

Authorised Distributors :

M/S ROHTAS INDUSTRIES LTD.

DALMIANAGAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGang

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

नये प्रकाशन

अंकित होने दो : अजितकुमार

प्रस्तुत कृति की विशेषता है उसका सुनिश्चित संक्रामक स्पन्दन जो न घोष और वेग पूर्वक आता है न वातावरण में आलोड़न लाकर क्षुब्ध या स्तब्ध ही करता है, बल्कि बिलकुल घास के फूलों-सा न जाने कब और कैसे वह चुप-से चटक पड़ता है और कोई रौंद उसे भले दे पर आँखों से जी तक पैठ-कर ज्ञान-तन्तुओं को छूता ज़रूर है। जीवन के ये सोचते और सुझाते हुए चित्र भीड़ से साधिकार भिन्न हैं; और उन पाठकों के भी उपयोग के हैं जो इन्हें केवल देखना, अर्थात् पढ़ना, चाहेंगे और उनके भी जो पढ़कर कुछ सोचना भी चाहेंगे। मूल्य : ४.००

खुला आकाश मेरे पंख : शान्ति मेहरोत्रा

एक ऐसी कृति जो आकृति से एक बार को यदि न लुभाये पर किसी प्रेरणा पर जिसे देखें तो देखते जायें और तृप्ति और सुख की पुलक अनुभव किये बिना न रहें। अतिरिक्त विशेषता यह कि विषयवस्तु, दृष्टि एवं अभिव्यक्ति तीनों को देखते इसकी कल्पना और सृष्टि एक नारी द्वारा ही सम्भव थी जो माँ, भार्या और भगिनी भी हो और तीव्र संवेदनशील भी। पुस्तक को पढ़कर किसी भी सुसंस्कृत पाठक को निश्चय लगेगा कि उसने इन रचनाओं में अपना ही परिवेश देखा और अपन को पहचाना भी। मूल्य : ४.५०

प्यार बन्धन : रावी

सत्रह पत्र-कथाएँ जो सामाजिक-पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत प्रेम, मर्यादा एवं मानवीय अनुराग की माँगों और समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। अनेक प्रश्नों को इन कथाओं में स्वर मिला है जो आज के तरुण-जागृत मनों में घुमड़ते हैं, और उन प्रश्नों के यथासम्भव उचित समाधान भी सुझाये गये हैं। तरुण वर्ग के लिए पुस्तक विशेष रूप से उपादेय है। मूल्य : ३.२५

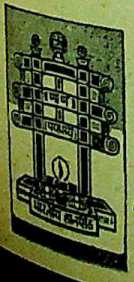

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आँगन के पार द्वार : अज्ञेय

अज्ञेय की अन्तःसलिला का सबसे स्फीत और श्रद्धापूत प्रवाह। अपने इस संग्रह तक आते-आते अज्ञेय का काव्य निखार और गहराई के ऐसे उत्कर्ष पर पहुँचा है जिसमें भारतीय चिन्तन-परम्परा की विश्व से संयोजन की क्षमता साकार हो उठती है। इस दृष्टि से यह संग्रह हिन्दी काव्य की अद्वितीय उपलब्धि है। मूल्य ३.००

आँगन का पंछी और बनजारा मन : विद्यानिवास मिश्र

हिन्दी और सम्भवतः सभी भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य में अनूठे और बेजोड़ ललित निबन्ध। विषय, दृष्टि-भाव, शैली, भंगिमा, और स्वरः सभी का इतना सहज और प्रौढ़ समन्वय कहीं और नहीं मिलता। इनमें राग-रंग और तड़क-भड़क के लिए स्थान नहीं है, यहाँ पार्थिव परम्परा ने आकार ग्रहण किया है। एक ओर सत्य की निरन्तरता और गतिशीलता की प्रतिष्ठापना की गयी है तो दूसरी ओर यहाँ भ्रमरानन्दी मन की उड़ान भी आयी है। यही विशेष कारण है कि पुस्तक युग और जीवन के लिए अतिरिक्त उपयोगी और आवश्यक बन गयी है। मूल्य ३.००

फिर बैतलवा डाल पर : विवेकी राय

हिन्दी में ऐसी कृतियाँ कम ही हैं जो ठेठ आज के गाँवों और वहाँ रहते-जीते असंख्य प्राणियों के जीवन और उस जीवन की क्रिया का एक्स-रे किया हुआ रूप उकेरती हों। प्रस्तुत पुस्तक की रचनाओं की यही विशेषता है। इसीलिए अच्छा हो यदि आवश्यक समझकर इन्हें एक बार वे पढ़ें जो शहरी जीवन में जनमे और रहते आये हैं और वे भी पढ़ें जिन पर जन-जीवन को रूप और दिशा देने का दायित्व है। मूल्य ३.५०

शाइरी के नये दौर—५ : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

जमील मज़हरी, रविश सिद्दीक़ी, अफ़सर मेरठी, निहाल सेवहारवी का जीवन परिचय सहित चुना-चुना कलाम एवं विवेचना। मूल्य : ३.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

अपने-अपने अजनबी : अज्ञेय

केवल असाधारण नहीं, भारतीय साहित्यों में अपने ढंग का अद्वितीय उपन्यास। मृत्यु से साक्षात्कार को विषय बनाकर जीवन और नियति का सरल मार्मिक विवेचन। मृत्यु विषयक पूर्व और पश्चिम की दृष्टियों की टकराहट, दोनों के मिलन द्वारा मानव-जीवन के एक नये आयाम का उन्मेष। मूल्य ३.००

नये रंग नये ढंग : लक्ष्मीचन्द्र जैन

हिन्दी गद्य-शैली की सर्वथा नयी रचना जिसके हर पृष्ठ पर युग की छाप और प्रतिभा की चमक अंकित है। सम्भव नहीं कि पुस्तक हाथ में लें और पढ़ कर समाप्त किये बिना रख दें। मूल्य २.००

पलासी का युद्ध : तपनमोहन चट्टोपाध्याय

देश के इतिहास को एक मोड़ देने वाले इस युद्ध और उसकी पृष्ठभूमि का सर्वप्रथम प्रामाणिक चित्रण, जो तथ्यात्मकता के बल पर इसे इतिहास-पुस्तक बनाता है और कथा-रस के कारण उपन्यास। महत्त्वपूर्ण होने से मूल बंगला पुस्तक का अँगरेज़ी अनुवाद भी हुआ। मूल्य ३.५०

हरी घाटी : रघुवंश

हिन्दी गद्य-लेखन में एक अभिनव-प्रयोग : यात्रा-डायरी-संस्मरण तीनों के तत्वों का सुखद सामंजस्य। पुस्तक में जहाँ एक ओर गहरे चिन्तन से अभिभूत क्षणों का अंकन किया गया है वहीं सामान्य दैनन्दिन घटनाएँ भी मानवीय संगति में पहचानी गयी हैं। इसी से इन अकाल्पनिक यात्रा-संस्मरणों में जितना ऊपर-ऊपर दिखता है उससे कहीं अधिक भीतर मिलेगा। मूल्य ४.५०

देशान्तर : धर्मवीर भारती

इक्कीस पाश्चात्य देशों की एक सौ इकसठ कविताओं की हिन्दी छायाएँ। मूल कविताएँ उन कवियों की हैं जो विश्व में 'आधुनिक काव्य-बोध' के निर्माता कहे जायेंगे और जो अपनी-अपनी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। हिन्दी में अपने प्रकार की सर्वप्रथम कृति। मूल्य १२.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

वेणु लो गूंजे धरा : माखनलाल चतुर्वेदी

कवि की नवीनतम कविताओं का संग्रह जो अनुभूति की उदात्तता, अभिव्यक्ति की ताज़गी, व्यापक और समर्थ जीवन-चेतना, वैष्णव आस्था और कवि की अनूठी कलात्मकता का सही परिचय देता है। मूल्य ३.००

नग़्मए हरम : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ख्यातनामा समसामयिक १०४ महिलाओं की शाइरी का हिन्दी में सर्वप्रथम संग्रह जिसमें दोनो-दुनिया के अन्दाज़ ही नहीं इश्क़ो-वहदत के नशे का सुरूर भी भरपूर लहरा आया है। मूल्य ४.००

ग़ालिब : रामनाथ 'सुमन'

जितने लोकप्रिय उतने ही अज्ञात इस महाकवि की रहस्यों में छिपी ऊँचाइयों को लेखक ने अपनी परख-प्रतिभा से इस पुस्तक में पूरी तौर पर अफ़शां कर दिया है। कलाम-संग्रह तथा विवेचना आदि की दृष्टि से पुस्तक हिन्दी में बेजोड़ है। मूल्य ८.००

वाणी : सुमित्रानन्दन पन्त

पन्त जी की नवीनतम हृदय-स्पर्शी कविताओं का संग्रह। संग्रह की एक लम्बी कविता कवि के मार्मिक संस्मरण तथा जीवन-दर्शन सम्बन्धी होने के कारण सहज ही उनकी श्रेष्ठतम रचनाओं में से है। पन्त जी की काव्य-प्रेरणाओं को समझने और उनकी कविताओं की रस-उपलब्धि के लिए अनिवार्य। मूल्य ४.००

सागर की लहरों पर : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

यात्रा-साहित्य में एक नया मान, साहित्यकार और चिन्तक की दृष्टि से विदेशों को पाठकों के ज्ञान की परिधि में लाने का प्रथम सफल प्रयास, उपन्यास जैसी रोचक कृति। मूल्य ४.००

नाटक बहुरंगी : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

वर्तमान हिन्दी नाट्य-लेखन के प्रसिद्ध 'रंगधर्मी' नाटककार के चुने-चुने नवीनतम एकांकियों का तीसरा संग्रह जो निश्चय ही हिन्दी रंगमंच क्षेत्र की उपलब्धि का एक उज्ज्वलतम उदाहरण है। मूल्य ४.५०

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

समाजवाद : डॉ० सम्पूर्णानन्द

हिन्दी में इस विषय की सर्वप्रथम एवं एकमात्र आधिकारिक कृति जो विशिष्ट पुरस्कारों द्वारा सम्मानित हुई और जो देश में समाजवाद की स्वाभाविक प्रगति का मानदण्ड जैसी है। नया पाँचवाँ संस्करण। मूल्य ५.००

एक बूंद सहसा उछली : अज्ञेय

हिन्दी में यात्रा-साहित्य अधिक नहीं; पर यह पुस्तक भारतीय भाषाओं के यात्रा-साहित्य में भी अद्वितीय है। लेखक यहाँ यूरोप के विभिन्न देशों की ही यात्रा नहीं करता, जैसे काल में भी करता है। समस्त दृश्य को वह देखता-दिखाता है, पर साथ ही चेतना से साक्षात्कार भी करता है। परिणाम यह कि प्रत्येक देश पाठक के आगे प्राणवती प्रतिमा-सा आ खड़ा होता है, और फिर उसका स्वर ही नहीं, हृदय की गति तक अजानी नहीं रहती। मूल्य ७.००

हिन्दी नव-लेखन : रामस्वरूप चतुर्वेदी

प्रस्तुत कृति मात्र समसामयिक लेखन का मूल्यांकन नहीं, वरन् उसकी रचनात्मक प्रक्रिया के समवर्त्ती रह कर उसके मूल्यों, प्रतिमानों के आकलन तथा भाव-बोध के स्तरों को उद्घाटित करने का सशक्त प्रयत्न है। इसी दृष्टि में लेखक के विवेचन का महत्त्व है, और यह दृष्टि अपने आप में नयी है। मूल्य ४.००

रूपाम्बरा : सम्पादक – अज्ञेय

खड़ी-बोली के शताधिक कवियों की प्रकृति विषयक उत्कृष्ट रचनाओं का अपूर्व संकलन जो हिन्दी कवि मानस के इस विशिष्ट अंग के क्रम-विकास का सफल और सम्पूर्ण परिचय देता है। हिन्दी काव्य की वस्तुतः स्वर्ण मंजूषा। मूल्य १२.००

कनुप्रिया : डॉ० धर्मवीर भारती

प्रस्तुत कृति का आविर्भाव साहित्य-लोक की एक विशिष्ट घटना है। इस में जहाँ बहुमुखी प्रणय के विविध आयाम प्राणों की धरा में से प्रस्फुटित हो कर प्रकृति के प्रतीकों में सार्थक तादात्म्य प्राप्त करते हैं, वहीं राधा के प्रणय को एक सर्वथा नयी दृष्टि और नया परिप्रेक्ष्य भी देते हैं। मूल्य ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ प्रकाशन

आत्मनेपद : अज्ञेय

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समकालीन साहित्यकार की स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओं पर गम्भीर विचार-चिन्तन। स्वयं लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने के लिए अनिवार्य और एकमात्र पुस्तक। मूल्य ४.००

शतरंज के मोहरे : अमृतलाल नागर

यथार्थ में एक ऐतिहासिक उपन्यास जो सवा-डेढ़ सौ वर्ष पहले की अवध की नवाबी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीतियों का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करता है। चित्र इतने व्यापक और सजीव हैं कि आप विवश-से उपन्यास की रसधार में बहते चले जायेंगे, और पात्र ऐसे सच्चे और जीवन्त कि अनेक की याद आप को बार-बार हो आया करेगी। मूल्य ६.००

कर्मनाशा की हार : डॉ० शिवप्रसाद सिंह

सोलह कहानियाँ जिनमें से अनेक को पढ़ते बरबस लगे कि यह तो अचानक समाज के ऐसे अंगों और जीवन के ऐसे पहलुओं से साक्षात्कार हो गया जो अभी तक भूले-बिसरे ही रहते आये और जिनके अभाव में साहित्य की चित्रशाला के कितने फ्रेम सूने ही टँगे रह जाते! सभी कहानियाँ ऐसी सच्ची और सहज कि मानो वास्तव हीं आँखों आगे टेलवाइज़ हो आये। मूल्य : ३.००

वीणापाणि के कम्पाउण्ड में : केशवचन्द्र वर्मा

ज़िन्दगी के हर पहलू को छूती-छेड़ती ये कविताएँ, लेखक के शब्दों में, "अच्छे आदमी को अच्छी लगेंगी और बुरे को बुरी।" बहरहाल नयी खिड़कियों से नये तमाशे दिखने की सम्भावना यहाँ अपरिमित है। मूल्य ३.००

रेडियो वार्ता शिल्प : सिद्धनाथ कुमार

रेडियो पर वार्ता प्रसारित करने वालों और प्रसारण के सुयोग को सफलता से सम्पन्न करने वालों के काम की एकमात्र कृति। मूल्य २.००

काठ की घण्टियाँ : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

अज्ञेय द्वारा सम्पादित स एक पुस्तक में एक समूचा उपन्यास, बीस कहानियाँ और इकहत्तर कविताएँ संकलित हैं। इसके माध्यम से न केवल लेखक की बहुमुखी एवं प्राणवती प्रतिभा का परिचय मिल जाता है बल्कि पुस्तक के आस्था-स्वरों से जीवन में विश्वास भी जग उठता है। मूल्य ७.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

श्रेष्ठ प्रकाशन

सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय : अर्थात् नये हिन्दी गद्य-लेखकों में जिन्हें वास्तव में 'मॉडर्न' कहा जा सकता है उनमें अन्यतम। इसी से प्रस्तुत कृति का मूल्य और महत्त्व समझा जा सकता है। कृति में दस कहानियाँ हैं, अस्सी कविताएँ और ग्यारह लेख जो विषयवस्तु एवं शिल्प में अन्यतम हैं। मूल्य ४.००

अंगद का पाँव : श्रीलाल शुक्ल

शिष्ट और उच्चस्तरीय किन्तु पैने और मीठे-से तिलमिला देने वाले व्यंग्यात्मक निबन्ध जो सभी कहीं सराहे गये और जो मात्र मनोरंजन नहीं करते बल्कि कुछ देते और माँगते भी हैं। मूल्य २.५०

तीसरा सप्तक : सम्पादक – अज्ञेय

'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' की परम्परा में। गत पन्द्रह वर्षों की हिन्दी कविता की प्रगति जानने के लिए अनिवार्य। मूल्य ५.००

सात गीत वर्ष : डॉ० धर्मवीर भारती

'ठण्डा लोहा' और 'अन्धा युग' के बाद के सात वर्षों की चुनी-चुनी ५१ कविताओं का बहु-प्रतीक्षित संकलन, जिसमें प्रस्तावना के रूप में कवि का रचना-प्रक्रिया पर एक काव्यात्मक गद्य-खण्ड भी अतिरिक्त आकर्षण बना सम्मिलित है। मूल्य ३.५०

शह और मात : राजेन्द्र यादव

प्रतिभा-धनी लेखक की नयी उपन्यास-कृति जिसमें स्त्री के माध्यम से पुरुष-मन को समझने का सफल प्रयास किया गया है। मूल्य : ४.००

आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य : केशवचन्द्र वर्मा

हिन्दी में शिष्ट हास्य-व्यंग्य का सर्वथा अभाव न पहले था न आज है, इसका प्रमाण ही यह कृति है। मूल्य ४.००

पत्थर का लैम्प-पोस्ट : शरद देवड़ा

लेखक की बारह बहुविध कथात्मक गद्य-रचनाओं, बारह राजस्थानी विरह-चित्रों, और बारह सबरंगी कविताओं का प्रतिनिधि संकलन। कृति की विशेषता रचनाओं की मदीली गन्ध-सी ही नहीं, उनका भाव-धन भी है जो सरलमना पाठक को प्रीतिकर लगेगा। मूल्य : ३.००

ज्ञानोदय

मई १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य श्रेष्ठ प्रकाशन

कहानियाँ–उपन्यास

गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
आकाश के तारे धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२.५०
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	२.००
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
जय दोल	अज्ञेय	३.००
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
मेरे कथागुरु का कहना है : भाग १–२	रावी	३.००
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	६.००
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	३.००
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिव प्रसाद सिंह	२.५०
मुक्तिदूत	वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	३.००
रक्तराग	देवेशदास आई० सी० एस०	५.००
एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
सूने अँगन रस बरसे	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	३.००
ग्यारह सपनों का देश	सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन	५.००
गुनाहों का देवता	डॉ. धर्मवीर भारती	४.००

इतिहास–राजनीति

हिंदी-जैन-साहित्य-परिशीलन (भाग १-२)	नेमिचन्द्र शास्त्री	३.००
एशिया की राजनीति	परदेशी	५.००
		६.००

एकांकी–नाटक

कहानी कैसे बनी	कर्तार सिंह दुग्गल	२.५०
रेडियो नाटय शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२.५०
चेखव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३.५०
भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०
सूखा सरोवर	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	२.००
कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ. भ. श. उपाध्याय	३.५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी आदि

दीप जले : शंख बजे	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	३.००
द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथ सिंह विनोद	२.५०

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित रचना, सांस्कृतिक निबन्ध आदि

जिन्दगी मुसकरायी	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४.००
ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	सम्पूर्णानन्द	१.००
बाजे पायलिया के घुंघरू	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४.००
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२.००
शरत् के नारी पात्र	रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
ठूंठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
कागज़ की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०

दार्शनिक, आध्यात्मिक,

भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००

भाषा विज्ञान

संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५.००

संगीत-प्रसाधन

ध्वनि और संगीत	ललितकिशोर सिंह	४.००
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०

यात्रा-विवरण

पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००

कविताएँ

सौवर्ण	सुमित्रानन्दन पन्त	२.५०
लेखनी बेला	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
शाइरी के नये मोड़ (भाग १-२)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	६.००
शाइरी के नये दौर (भाग १-५)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१५.००
आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००

सूक्तियाँ

कालिदास के सुभाषित	डॉ. भ. श. उपाध्याय	५.००
ज्ञानगंगा (भाग १–२)	नारायणप्रसाद जैन	१२.००
शरत की सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
सन्त विनोद	नारायणप्रसाद जैन	२.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उर्दू शाइरी

शेरो शाइरी	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	
शेरो सुख़न (भाग १–५)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
		२०.००

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	
मिलन-यामिनी	बच्चन	६.००
धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर	४.००
		३.००

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३.००
पहला कहानीकार	रावी	२.५०
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६.००

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्तिसागर	६.००
खोज की पगडंडियाँ	मुनि कान्तिसागर	४.००
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.००
कालिदास का भारत (भाग १–२)	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८.००

एकांकी - नाटक

जनम क़ैद	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३.००
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
और खाई बढ़ती गयी	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०

संस्मरण - रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक प्रकाशन

१	जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक)	३.००
२	कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्दके ग्रंथोंका संक्षिप्त सार)	२.००
३	धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित)	३.००
४	आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन)	३.७५
५	हिन्दी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	२.८८
६	महाबन्ध — भाग १–७ (कर्म सिद्धान्त का महान् ग्रन्थ)	७८.००
७	सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित)	१२.००
८	तत्त्वार्थ राजवार्तिक—भाग १, २ (संशोधित और हिन्दी सार सहित)	२४.००
९	तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित)	१६.००
१०	समय-सार — अँग्रजी (आध्यात्मिक ग्रन्थ)	८.००
११	मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक)	८.००
१२	न्यायविनिश्चय विवरण — भाग १, २ (जन दर्शन)	३०.००
१३	आदिपुराण — भाग १, २ (भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित)	१०.००
१४	उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित)	१०.००
१५	वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित)	५.००
१६	जिनसहस्र नाम (भगवान्के १००८नामोंका अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित)	४.००
१७	केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ)	४.००
१८	करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तरेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रन्थ	०.७५
१९	नाममाला सभाष्य (कोश)	३.५०
२०	सभाष्य रत्नमंजूषा (छन्दशास्त्र)	२.००
२१	कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची	१३.००
२२	पुराणसार संग्रह — भाग १-२ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र)	४.००
२३	जातकट्ठकथा (बौद्धकथा-साहित्य)	९.००
२४	थिरुकुरल (अंग्रेजी प्रस्तावना सहित तमिल भाषा का पंचम वेद)	५.००
२५	व्रततिथि-निर्णय (विधि-विधानों एवं तिथि-निर्णय का विवेचन)	३.००
२६	जैनेन्द्रमहावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ)	१५.००
२७	मंगल-मंत्र णमोकार : एक अनुचिन्तन	२.००
२८	पद्मपुराण (भाग १, २, ३)	३०.००
२९	जीवन्धर चम्पू (हिन्दी टीका सहित)	८.००
३०	जैन धर्मामृत	३.००

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

ज्ञानोदय

मई १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना से सुनिये एक सत्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए
लक्स ज़रूरी है'

चित्रतारिकाओं
का शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

'मेरा मनचाहा साबुन मेरे मनचाहे रंगों में!' साधना कहती हैं

LTS. 111-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

POPULAR — CHOICE OF PLAYERS EVERYWHERE

Popular playing cards have been the favourite of millions of card players at clubs, at home everywhere, for years, because *Popular* cards are made from superior quality boards, are attractively designed and have a slip-easy finish.

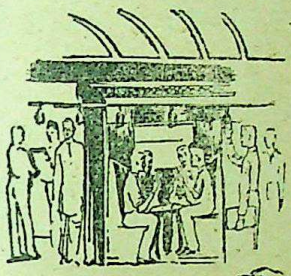

POPULAR

Buy a POPULAR pack today.

POPULAR FINE ART LITHO WORKS PVT. LTD.,
33-C, Vakola, Santa Cruz East,
Bombay 55.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैंकिंग हमारा काम है

देश भर में ४२५ से अधिक कार्यालय और विदेशी विनिमय विभाग, साथ ही विशेषज्ञ कर्मचारियों के अधीन आञ्चलिक कार्यालय आपकी सेवा में संलग्न हैं।

- चालू खाता
- बचत खाता
- मुद्दती खाता
- कैश सर्टिफिकेट
- हुण्डी का बट्टा
- विदेशी विनिमय
- सेफ-डिपौजिट वौल्ट
- अग्रिम-ऋण

यात्रियों के चेक

दि पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

स्थापित सन् १८९५ ई०

प्रधान कार्यालय : नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े काम के उपयुक्त

नई लेटरप्रेस प्रिंटिंग मशीन

ब्रिटानिया — डी. पी. ई. 'जाबर' इंगलैण्ड के डावसन, पाइन ऐण्ड इलियट लिमिटेड के सहयोग से भारत में पहले पहल तैयार की गई है जिसका निर्माण कम खर्च, अधिक दक्षता तथा मेन्टेनेन्स की सहूलियत पर विशेष ध्यान रखकर किया गया है।

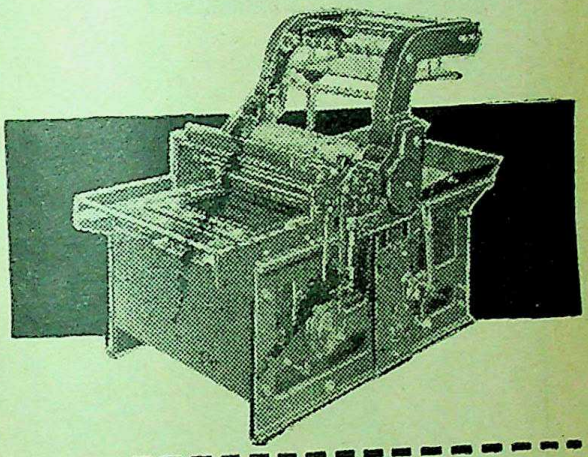

यह मशीन एक सरल लगातार चलनेवाली मोटर से चलती है जिसमें चाल को कम या अधिक करने के लिये तीन तुरन्त बदलने लायक पुलियाँ लगी हैं। चलाने की बेंगह एक ही लिवर है जिससे स्टार्टिंग, रनिंग और ब्रेकिंग के काम होते हैं। कागज की डेलीवरी चेन ग्रिपर से होती है जिससे छपा हुआ पहलू काम के समय अछूता रहता है।

स्पेसीफिकेशन

कागज की साइजें		
स्टैण्डर्ड	: २०"×३०"	(५०८ मिमि.×७६२ मिमि.)
अधिक	: २०"×३३"	(५०८ मिमि.×८३८ मिमि.)
कम	: १०"×१५"	(२५४ मिमि.×३८१ मिमि.)
टाइप-बेड बीयरों के बीच की चौड़ाई		: ३४ १/२" (८७६ मिमि.)
फार्म बारों के बीच की दूरी		: २६" (६६० मिमि.)
कुल लम्बाई		: ७'११" (२४१३ मिमि.)
कुल चौड़ाई		: ५'५" (१६५१ मिमि.)
कुल ऊँचाई		: ५'८" (१७२७ मिमि.)

दि ब्रिटानिया-डी० पी० ई०

जाबर

दि ब्रिटानिया इंजिनीयरिंग कम्पनी लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्टस : मैकलाउड ऐण्ड कं० लि०, ३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

सोल सेलिंग एजेन्टस : इण्डो यूरोपियन मशीनरी कं० प्राइवेट लि०

सर पी. एम. रोड, बम्बई ५, वैंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता चाँदनी चौक, दिल्ली ६, माउन्ट रोड, मद्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिंग ट्यूब्स्

जल तथा गैस
वितरण के लिए

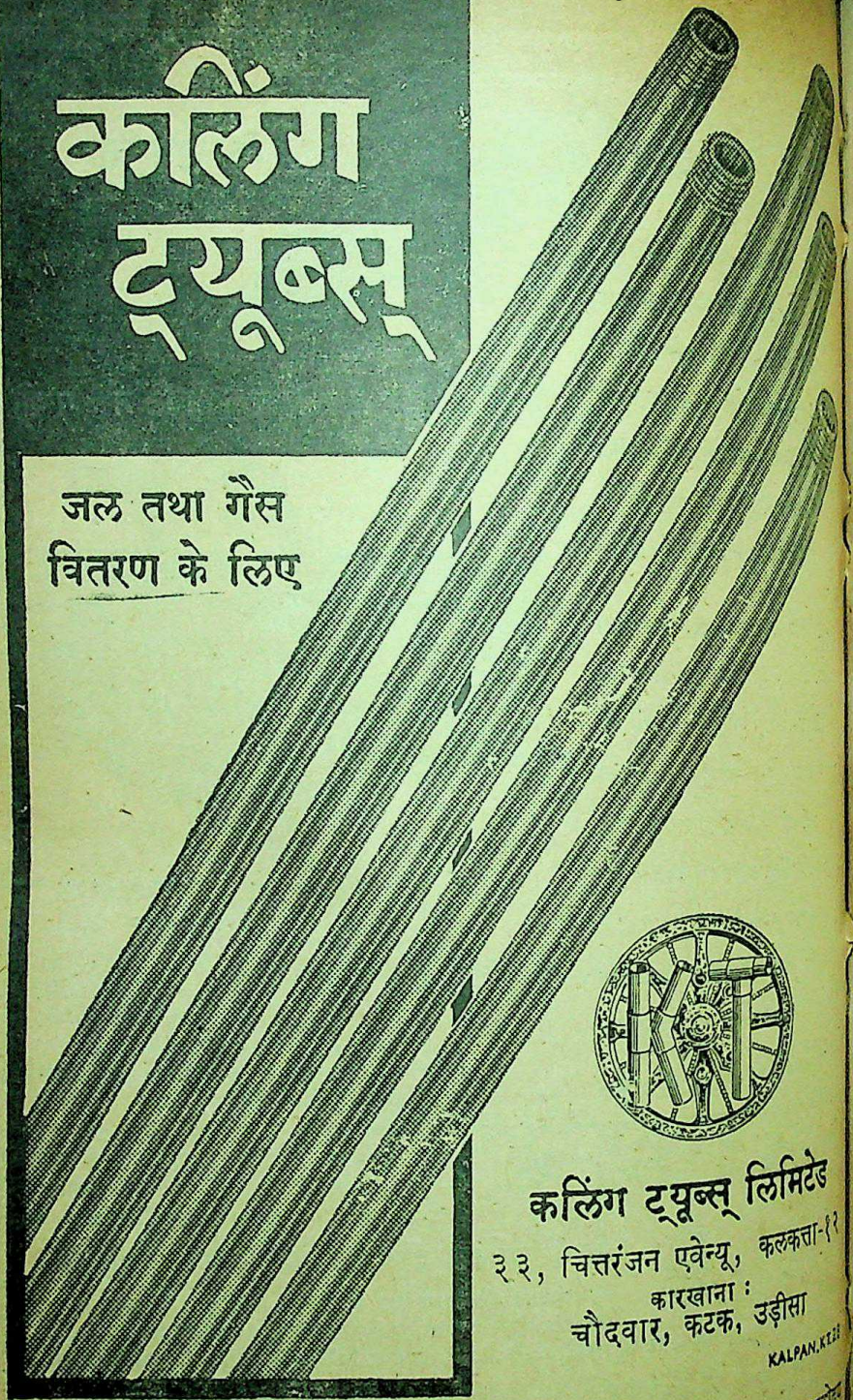

कलिंग ट्यूब्स् लिमिटेड
२३, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-१२
कारखाना :
चौदवार, कटक, उड़ीसा
KALPAN.KT.22

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

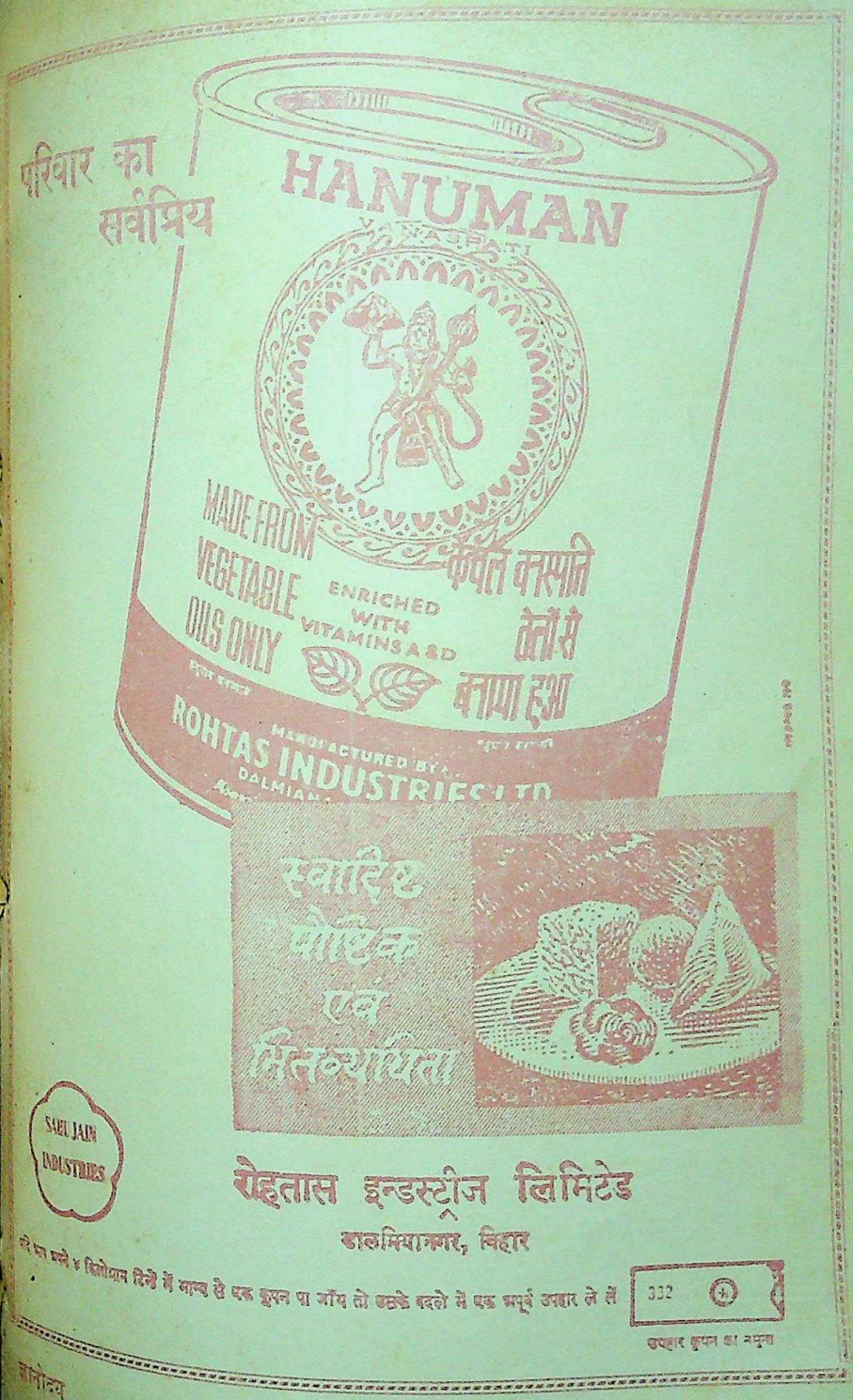
परिवार का
सर्वप्रिय
HANUMAN
VANASPATI
MADE FROM
VEGETABLE
OILS ONLY
ENRICHED
WITH
VITAMINS A & D
केवल वनस्पति
तेलों से
बनाया हुआ
MANUFACTURED BY
ROHTAS INDUSTRIES LTD
DALMIANA
स्वादिष्ट
पौष्टिक
एवं
मितव्ययिता
SAHU JAIN
INDUSTRIES
रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार
यदि आप अपने ४ किलोग्राम टिन्डे में भाग्य से एक कूपन पा जाँय तो उसके बदले में एक अपूर्व उपहार ले लें
332
उपहार कूपन का नमूना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad postage extra 18 nP. GYANODAY, May, 19

Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. C. 4123

मैकलियॅड एण्ड कंपनी लिमिटेड

मैकलियॅड हाउस,
३, नेताजी सुभाष रोड,
कलकत्ता-१

मैनेजिंग एजेन्ट्स, सेक्रेटरी और कोषाध्यक्ष

जूट मिल्स

- अलेकजेण्डर जूट मिल्स लि०
- एलायन्स जूट मिल्स कं० लि०
- नेल्लीमारला जूट मिल्स कं० लि०
- चितावलसाह जूट मिल्स कं० लि०
- ईस्टर्न मैनूफैक्चरिंग कं० लि०
- एम्पायर जूट कं० लि०
- केलविन जूट कं० लि०
- प्रेसिडेन्सी जूट मिल्स कं० लि०
- वेवरली जूट मिल्स कं० लि०

चाय के बगीचे

- अमलूकी टी कं० लि०
- बागमारी टी कं० लि०
- भतकावा टी कं० लि०
- बोरमाह जान टी० कं० (१९३६) लि०
- डिब्रूगढ़ कं० लि०
- दैजू वेली कं० लि०
- मार्गरेट्स होप टी कं० लि०
- राजभात टी कं० लि०
- रानीचेरा टी कं० लि०
- रूपचेरा टी कं० लि०
- सुंगमा टी कं० लि०
- तेलोईजान टी कं० लि०
- तिंगामीरा टी सीड कं० लि०
- तिर्रीहन्ना कं० लि०
- तीयरून टी कं० लि०

Published by Shri Munishwarlal for Bhartiya Jnanpith Calcutta from 18-A, Brabo Road, Calcutta and Printed by him at Binani Printers Private Ltd., 38, Strand Road, Calcutta-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

જ્ઞાનોદય

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

મૂલ્ય ૧।

જૂન ૧૯૬૨

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोडा ऐश यूनिट
ध्रांगध्रा
गुजरात राज्य

तार :
केमिकल्स
ध्रांगध्रा

टेलीफोन :
३१ और ६७

तार :
साहू जैन, बम्बई

टेलीफोन :
२५१२१८-१९

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

प्रसिद्ध 'हॉर्स शू' छाप हेवी केमिकल्स
के उत्पादन में अग्रसर निर्माता

- सोडा ऐश
- सोडा बाइकार्ब
- कैल्शियम क्लोराइड
- नमक और

हाइ रेयॅन ग्रेड
इलेक्ट्रोलिटिक कॉस्टिक सोडा
(९८-९९ प्रतिशत शुद्धता)

कॉस्टिक सोडा यूनिट
साहूपुरम
पोस्ट–आरुमुगनेरी
तिरुनुवेली डिस्ट्रिक्ट
मद्रास राज्य

तार :
केमिकल्स
आरुमुगनेरी

टेलीफोन :
कायलपटनम : ३

मैनेजिंग एजेन्ट्स :
साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लिमिटेड
१५ ए, हर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

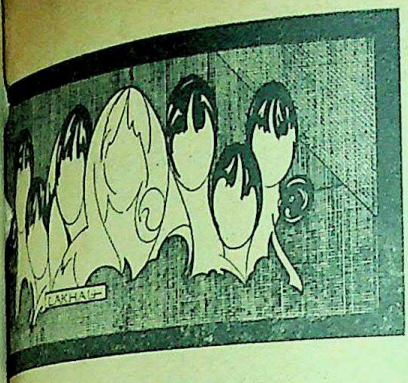

अनुक्रम

15 JUN 1962

• कविताएँ

१. रेशमी मूर्तियों की रात : **गिरिजा कुमार माथुर** ६
२. आवाज़ों के घने जंगल में : **डॉक्टर कैलाश वाजपेयी** २३
३. आधुनिक कोरियन कविता : **परेश** ५३
४. उड़ चल अपने देश : **राजेन्द्र अनुरागी** ७६
५. अहिल्या का प्रतिवेदन : **नन्दकिशोर मालवीय** १०५

• कहानियाँ

१. मिटती राहें और गौरय्या का घोंसला : **अनन्तकुमार पाषाण** ११
२. केवल इन्सान नहीं बचा था : **वोल्फ़गाँग बोरखार्ड** २४
३. आख़िरी तस्वीर और कॉफ़ी हाऊस की दो शामें : **कमला बनमाली** ५६
४. सिन्दूर की बाँधी और..... : **डॉक्टर रवीन्द्र भ्रमर** ८०
५. एक थकी हुई आवाज़ : **श्याम व्यास** १०७

• एकांकी

१. उमर का सुनहला फूल : **अनिल कुमार** ६७

• सहयोगी उपन्यास

१. एक इञ्च मुस्कान—(१३) : **राजेन्द्र यादव** ३१

वाचनालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

० लेख

१. आधुनिक मानव की अन्तर्चेतना : गणेश मंत्री ३
२. संसार के बूढ़े क्या करें : रामशरण शर्मा २७
३. हकलाना––मनोवैज्ञानिक कारण और निदान : शशिबन्धुभ ६१
४. चन्द्रलोक में जीवधारी : कुमार काश्यप ८३
५. ज़ेन : एक विश्लेषण : महेन्द्र साईजी माकिनो ११३

० स्तम्भ

१. गोरी नज़रों में हम : डॉक्टर प्रभाकर माचवे १७
२. नेपथ्य में (शुभागता–२) : मुक्ता राजे ८९
३. मेरे रेखांकन : विभिन्न पाठक-पाठिकाओं द्वारा १२३
४. साहित्यार्चन : पुस्तक-समीक्षाएँ १२९
५. सृष्टि और दृष्टि : पत्र-प्रतिक्रिया १३५

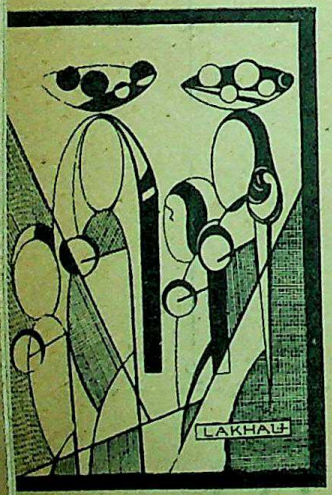

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन : शरद देवड़ा

संचालक
भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

कार्यालय
१८ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१

एकमात्र वितरक
बेनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

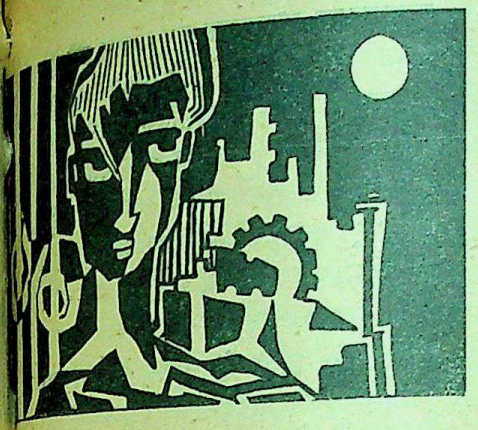

5 JUN 1962

गणेश मंत्री

●

युग की समस्याओं, संघर्षों और चिन्तन की वेदनाओं को भोगने वालों की जीवन-दृष्टि का परिचय, काव्यगत अभिव्यक्तियों के साक्ष्य में।

●

आधुनिक मानव की अन्तर्चेतना

आधुनिकता अपने युग के सहज और स्वाभाविक बोध की मनःस्थिति है। आधुनिक वह है जो वर्त्तमान के प्रति पूर्ण सजग और सचेत है : अपने युग के बोध से जिसके प्राण और मन स्पंदित होते हैं। इस दृष्टि से आधुनिकता का बोध प्राप्त करने के लिए वर्त्तमान में जीना आवश्यक तो है; परन्तु वही पर्याप्त नहीं है। इससे कुछ अधिक, आधुनिक व्यक्तित्व में वर्त्तमान को उसके सभी स्वरूपों और अभिप्रायों में समझने तथा उसे अपनी चेतना का जीवन्त यथार्थ बनाने की सामर्थ्य चाहिए। वर्त्तमान के प्रति सजगता का यह बोध ही उस प्रक्रिया को जन्म देता है जिसकी परिणति अचेतन मन में जमी रूढ़ ऐतिहासिक धारणाओं के प्रति एक नये सन्देह और अविश्वास में होती है। संदेह और अविश्वास इन रूढ़ धारणाओं की गहरी गुत्थियों को काटने लगता है और तभी व्यक्ति को यह अनुभव होने लगता है कि पुरातन मान्यताओं पर आधारित जीवन-पद्धति अब जीवन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ नहीं रहा है, वह अतीत का कूड़ा-करकट हो गया है--जिसको इकट्ठा करके इतिहासों का ढेर लगाया जा सकता है, परन्तु प्रत्यक्ष यथार्थ की समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में कहें तो आधुनिकता के बोध के साथ ही साथ व्यक्ति के जीवन में अतीत के मूल्यों का अवमूल्यन हो जाता है, उसे मान्यताएँ अमान्य लगने लगती हैं और परम्पराओं की परम्परा खंडित दीखती है। इस प्रकार से वह गहरे अर्थों में अ-ऐतिहासिक बन जाता है और पूरी तरह से परम्पराओं की परिधियों में जीने वाले जन-साधारण की भीड़-भाड़ के बीच अपने को अजनबी अनुभव करने लगता है। वास्तव में पूर्णतः आधुनिक होने का अर्थ है इतिहास से मिलने वाली गरिमा को स्वेच्छा से त्याग देना तथा खोखलेपन, शून्यता, आध्यात्मिक दारिद्रय को स्वेच्छा से स्वीकार कर लेना : यह विश्व-चेतना का कगार है, जो कुछ भी त्याज्य और क्षत-विक्षत है उसे वह त्याग चुका है--इसके आगे शून्य है, महाशून्य जिसमें से सभी कुछ जन्मा है और जिसमें सभी कुछ विलुप्त होता है।

आधुनिकता की चेतना का यह उद्भव अतीत को निस्सार और निष्प्राण बना देता है : यथार्थ नया स्वरूप ग्रहण कर लेता है, एक ऐसा स्वरूप जिसकी गुत्थी को सुलझाने में परम्परागत सामाजिक गुर असमर्थ होते हैं। सामाजिक शून्यता की इस स्थिति में ही द्वार पर दस्तक देते हुए सांस्कृतिक संकट की अनुभूति होती है। इस अवस्था में वर्त्तमान को नई दृष्टि से देखने, मानव नियति की नवीन परिभाषा बुनने, नये मूल्यों का अनुसंधान करने का काम अब अपने आप में एक तीव्र आवश्यकता बन जाता है। यह आध्यात्मिक प्यास की स्थिति होती है, प्यासा मन बार-बार पुरातन की ओर भटकता है परन्तु मरु प्रदेश की मृग-मरीचिकाओं से निराश और हताश लौटता है। प्राणों की इस छटपटाहट को, आत्मा की इस प्यास को, साहित्यकार, जिसके प्राणों में निखिल सृष्टि का संवेदन स्पंदित रहता है, सबसे प्रथम और अत्यन्त तीव्र रूप में अनुभव

जिसने निराश होना नहीं जाना !

जब आपको हर काम में नाकामयाबी ही मिलती जा रही हो, आपकी अभिलाषाएँ पूरी न हो रही हों, और आप अपने जीवन से बिल्कुल निराश हो जाएँ, उस समय एक व्यक्ति के जीवन भर की आशाओं-निराशाओं, हार और जीत पर ध्यान दे लीजिए--

व्यापार में नुक्सान	सन्	१८३१
लेजिस्लेचर के चुनाव में हार	,,	१८३२
व्यापार में फिर नुक्सान	,,	१८३३
लेजिस्लेचर में चुनाव	,,	१८३४
पत्नी की मृत्यु	,,	१८३५
स्नायु-रोग से पीड़ित	,,	१८३६
स्पीकर के चुनाव में हार	,,	१८३८
लैंड-अफसर की नियुक्ति में हार	,,	१८४३
काँग्रेस के चुनाव में हार	,,	१८४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगता है। इस अभिनव अनुभव की अभिव्यक्ति होती है--युगान्तरकारी साहित्य में।

हमारा अपना युग भी आज इसी युगान्तर के मोड़ पर है। इतिहास का शायद ही अन्य युग वर्त्तमान के प्रति इतना सचेत रहा हो जितना कि यह युग। विज्ञान के उदय ने न सिर्फ़ प्रकृति की गुप्त शक्तियों का रहस्य अनावृत्त किया है बल्कि इस युग की सम्पूर्ण दृष्टि, जीवन की पद्धति तथा सांस्कृतिक बोध में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन ला दिया है। इन्द्रियातीत और अतिप्राकृतिकता का मध्ययुगीन स्वप्न पूर्णतः खंडित हो चुका है और उसका स्थान बुद्धि, विवेक तथा परीक्षण-प्रयोग ने ले लिया है। प्रारम्भ में यह एक प्रकार से मानव की मुक्ति का अभियान था : पत्थर के देवताओं तथा प्रकृति की विवशताओं से मुक्ति। यंत्र इस मुक्ति के वाहन थे और भौतिक उपलब्धियाँ इसकी लहराती ध्वजाएँ थीं। परन्तु एक सीमा आई जहाँ पहुँच कर मनुष्य यंत्रों पर से अधिकार खो बैठा, भौतिक उपलब्धियों की ध्वजाओं के आकर्षण ने उसे विचित्र शून्यता में परिणत कर दिया। गणनात्मक का गुणात्मकता से सम्बन्ध विच्छेद हो गया : उपभोग के साथ सृजनात्मकता का अनुपात नहीं बल्कि उपभोग की मात्रा में निष्प्रयोजन वृद्धि ही जीवन्त यथार्थ बन गया। इससे भी अधिक यंत्रों का नियंता स्वयं ही यंत्र बन कर रह गया। अपने प्रारंभिक युग में वैज्ञानिकता ने साहसिक प्रयोगवादी मस्तिष्कों को आकर्षित किया था, जिन्हें कि कठिन और दुसाध्य कार्यों में आनन्द का बोध होता था; परन्तु यांत्रिकता की सफलता ने उन्नत औद्योगिकता की समस्त उपलब्धियों का नियंत्रण दैनिक परिपाटीवादियों, अनिवार्यता तथा सहमति के प्रेमियों के हाथों में सौंप दिया है, जिनका कि काम चक्कों को अपनी रफ्तार से चलते हुए देखना मात्र होता है।

यह सत्य है कि वर्त्तमान संस्कृति एक युगव्यापी विकास की उपलब्धि है; परन्तु इसके साथ ही वह मानव जाति की आशाओं की दृष्टि से सर्वाधिक निराशाजनक भी है। इस

दुबारा चुनाव मे हार	सन्	१८४८
सिनेट के चुनाव में हार	,,	१८५५
वाइस प्रेसिडेंट के चुनाव मे हार	,,	१८५६
सिनेट के चुनाव में हार	,,	१८५८
प्रेसिडेंट के चुनाव में हार	,,	१८६०

तीस वर्षों तक निराशा के झूले में झूलते रहने पर भी आशा की ज्योति प्राप्त करने वाला आखिर यह कौन था? गाँव का एक गरीब युवक, जो मुसीबतों के तूफान से घिर जाने पर भी कभी निराश नहीं हुआ और न जिसने भाग्य के आगे हार मानी;--दृढ़-आत्मविश्वास का सम्बल लेकर नित नवीन उत्साह से, जीवन-पथ पर आगे बढ़ता चला गया।

यह था, अमेरिका का भूतपूर्व राष्ट्रपति--अब्राहम लिंकन।

--सत्यदेवनारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर दीखने वाली स्थिति से आधुनिक मानव पूर्णतः अवगत है और यह परस्पर विरोध का भाव ही उसकी अंतर्चेतना का मूल तत्व बन गया है। वह विज्ञान, शिल्प और संगठन के वरदानों तथा उनके विनाशकारी परिणामों को एक साथ ही देख भी रहा है और भुगत भी रहा है। स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व, मानववाद और समाजवाद की घोषणाएँ--सभी तो अपने मूल में खोखली तथा अग्नि परीक्षा में खोटी सिद्ध हुई हैं। सभी की तह में एक गहरे काटन वाला संदेह कुलबुलाता है। कार्ल युंग के अनुसार आधुनिक मानव को प्राणान्तक आघात लगा है और वह घनी अनिश्चयता में जा पड़ा है। इस घनी अनिश्चयता, सांस्कृतिक शून्यता तथा इनसे जन्मी विवशता के बोध से ही आधुनिक मानव की अंतर्चेतना अभिभूत है। उसे सभी कुछ व्यवस्था-शून्य, बिखरा-बिखरा दीख रहा है :

सब बिखरा है ; केन्द्र सम्भाल नहीं पाता
मात्र अराजकता संसार में विमुक्त है
रक्तपात उन्मुख ज्वार फूट पड़ा है, और चहुँदिश
भोलेपन का रिवाज उठ गया है ;
अच्छों में निष्ठा नहीं है, जबकि बुरों में
आवेशपूर्ण तीव्रता व्याप्त है.....!
भीतर हमें बन्द कर और ताला डाल दिया है
हमारी अनिश्चयता पर !

—यीट्स —अनु० भारती

वर्त्तमान की यह अंतर्चेतना अपने मूल में सत्यान्वेषण के एक नये प्रयास की कड़ी है। आधुनिक मानव अबकी बार मानव-समाज और मानव-मन, बाहर और भीतर की रहस्य-भरी सभी पर्तों को उघाड़ कर रख देने तथा इसके बाद समग्र सत्य का साक्षात्कार करने के प्रयोजन से गतिमान है। इसीलिये वह अतीत के निषेधों की सर्वत्र अवज्ञा कर रहा है। वर्त्तमान को उघाड़ कर रख देने की इच्छा से अभिप्रेरित होकर ही वह कभी मार्क्स के रूप में इतिहास की आदर्शवादी व्याख्या के अन्तर में छिपे वर्गों के संघर्ष का भयानक कथानक कहता है तो कहीं पर फ्रॉयड के रूप में मानव-मन को उद्वेलित करते रहने वाले यौन-निषेधों की शक्ति और सामर्थ्य को अनावृत्त करता है। अंतर्चेतना में आये इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का परिणाम यह हुआ है कि जीवन और समाज में जहाँ कहीं भी, जो कुछ भी सड़ा, निर्जीव और निष्फल है वही टूट-टूट कर, खंडित और विमुक्त

निरभिमान सरल वृत्ति

बात है उस समय की, जब कांग्रेस ने प्रसिद्ध 'स्वराज्य दल' के रूप में कौंसिलों में मोर्चा बाँध कर अपना ऐतिहासिक संग्राम छेड़ रखा था। इन्हीं दिनों नई दिल्ली में आये हुए एक अमेरिकन दंपति एक दिन केन्द्रीय एसेम्बली भवन देखने के लिए पहुँचे। दैवयोग से, वहाँ उनकी भेंट सफ़ेद दाढ़ी वाले खद्दर धारी एक बूढ़े व्यक्ति से हो गई, जिसने बड़ी भद्रता के साथ घुमा-फिरा कर सारा कौंसिल भवन उन्हें दिखा दिया, तब बारी-बारी से दोनों को स्वयं अध्यक्ष की कुर्सी पर बिठा कर शिष्टाचार पूर्वक उनका अभिवादन किया। प्रसन्न होकर उन्होंने चाहा कि उस बूढ़े आदमी को कुछ पुरस्कार दें, परन्तु वह भला क्योंकर इस बात को स्वीकार करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर, उथल-उथल कर सामने आ रहा है। जिससे कि गंदगी का कोई पल्ला दबा नहीं रह जाये :

सबेरे-सबेरे
न ही आती बुलबुल
न श्यामा मुरीली
न फुक्की न दंहगल
सुनाती है बोली
.....
.....
वैसे ही जागा
यहीं पर अभागा
भड़भड़ाता है कागा....
कॉय ! कॉय ! कॉय !

—अज्ञेय

आखिर गंदगी को उलीचे बिना फेंका भी तो नहीं जा सकता ! परन्तु गन्दगी है कि फेंकने में आ ही नहीं रही है। हो यह रहा है कि गंदगी के किसी एक पक्ष को ही इतिहास

दूसरे दिन जब यही लोग एसेम्बली का अधिवेशन देखने की इच्छा से पुनः कौंसिल भवन पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वही बुड्ढा भरी सभा में एसेम्बली के अध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान है और बड़ी योग्यता से सभा का संचालन कर रहा है। समय पाते ही उन बेचारों ने तुरन्त जाकर पिछले दिन की अपनी बेअदबी के लिए क्षमा माँगी। किन्तु विट्ठल भाई पटेल उत्तर में केवल खिल-खिला कर हँस दिए। ऐसी थी उनकी निरभिमान सरल वृत्ति।

—हीरालाल

और जीवन की कुंजी बनाने का रिवाज चल पड़ा है। चाहे वर्ग-संघर्ष की बात हो या अचेतन में कुलबुलाते सामाजिक निषेधों की—वे समग्र यथार्थ के अंशमात्र हैं, पूर्ण यथार्थ नहीं। परन्तु जनसंख्या की बहुलता के साथ बढ़ रहे औसतन, मिडियाकर आदमियों के निराकार व्यक्तित्व ने अंश को ही समग्र का रूप दे दिया है। मूल्यों की संवेदना रखने वाला, समग्र की चेतना से ज्योतिर्मान लेखक और कलाकार इस अगम्य भीड़ के आगे अपने को बिल्कुल बौना महसूस करता है। कोई आश्चर्य नहीं कि वह 'ऊब' कर कह उठे—

हुआ यह है कि मैं अपने इस आदमी होने से
ऊब गया हूँ
यूं मैं दर्जियों की दूकानों जाता हूँ,
फिल्मों में जाता हूँ
पर यह सब इतना नीरस, इतना छिछला मालूम
पड़ता है जैसे
एक ऊनी नमदे का राजहंस
आदिम चेतनाओं और
खुश्क राख की ढेरी पर तैर रहा हो !

—पैब्लो नेरूदा (चिली)—अनु० भारती

'ऊब' और घुटन के साथ चारों तरफ फैली हुई व्यापक कुंठा की स्थिति कभी-कभी तो इतना गहरा आघात पहुँचाती है कि उसे अपनी चेतना ही भार लगने लगती है। ऐसे अवसरों पर इस चेतना के ढेर सारे बोझे को एक ओर फेंक कर वह भाग खड़ा होना चाहता है। परन्तु चेतना तो जीवन है और इसीलिये वह निरूपाय खड़ा प्रश्न करता है :

कुलबुलाती चेतना के लिए सारी सृष्टि निर्जन
और कोई जगह ऐसी नहीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपने जहाँ रख दूँ
दृष्टि के पथ में तिमिर है
पर हृदय में छटपटाहट
ज़िन्दगी आखिर कहाँ पर फेंक दूँ मैं
कहाँ रख दूँ ?
—दुष्यन्त कुमार

ज़िन्दगी बोझा तब बनती है जबकि चारों ओर कोई राह नहीं हो, प्रकाश नहीं हो, भय और अन्धकार हो। आधुनिक मानव के सामने जितनी भी जीवन-पद्धतियाँ हैं वे भय पर आधारित हैं। इसलिए वे खोटी और मिथ्या, हिंस्र और त्याज्य हैं। सदियों से पाल-पोस कर बड़े किये गये सपनों और अरमानों का यह पतन दुःखद तो है परन्तु नये सपनों के लिए प्राणों को सम्बल देना भी तो आवश्यक है :

आओ साथी,
हम सभी बेच कर आये हैं अपने सपने
उस चोटी पर
कल रात जहाँ पर बनजारों का लश्कर था
—विजयदेव नारायण साही

झूठ-सच के सौदे का यह बोध अपने आप में इतना व्याकुलतापूर्ण और तीव्र है कि आधुनिक मानव अतीत से पिटा हुआ आगत के प्रति भी शंकित हो गया है। संदेह उसकी चेतना में गहरे जा बैठा है। सर्वव्यापी भय से वह आतंकित है। वह विचित्र-सी सांस्कृतिक रुग्णता का शिकार है। टी. एस. ईलियट के शब्दों में वह बार-बार महसूस कर रहा है कि "हमारा हृदय हमसे अलग जा पड़ा है, और हमारा दिमाग प्याज के छिलकों की तरह उतर गया है—क्योंकि हम एक अज्ञात भय से आकुल हैं जिससे हम आँख नहीं मिला सकते।" इस अज्ञात भय ने ही एक अनाम अपराध की वृत्ति का विषदंश उगा दिया है जो चाहे जब चुभ जाता है—

मुझे एक अनाम अपराध के झूठे कलंक का
अहसास होता है
मानो अज्ञात सूचक मेरे खिलाफ़ ग़लत सूचनाएँ
दे रहे हैं
मुझे किसी अजीब अपराध का दोषी करार
देने के लिए
ग़लत सूचनाओं का ढेर लगा रहे हैं!
लुई गिन्सबर्ग अनु० शरद देवड़ा

आधुनिक मानव चाहते हुए भी इस विवशता से मुक्त नहीं हो पा रहा है। विचारों की सापेक्षता के सिद्धान्त ने उसकी इस विवशता को और बढ़ाया है और विचित्र-सी पुंसत्वहीनता से वह ग्रस्त है—वह चाहे तो भी इस सापेक्षता के बन्धनों को काट नहीं सकता क्योंकि तलवारें स्वयं टूट चुकी हैं।

हम सबके दामन पर दाग़
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में
टूटी तलवारों की मूठ
—भारती

आत्मा में बैठा हुआ झूठ, जीवन से उब, अनाम अपराध के भय से आत्म-हत्या का प्रयास—ये सब के सब ही जीवन्त यथार्थ के काले-गंदे, निराशा-भरे पक्ष हैं। क्योंकि ये

(शेषांश पृष्ठ १२१ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिजाकुमार माथुर

रेशमी मूर्तियों की रात

[खजुराहो स्मृति]

: १ :

मुग्ध क्षणों की अमरता

गेरुआ, झीना गुबार
सघन भी, मुलायम भी
अस्खलित, अनिर्वच
गोल-गोल-गोल क्षणों के वलय
गंधपार अन्वितियों में निमग्न
एक स्निग्ध, सिल्कन लय

बीज धारण को मुड़ते चरणों से पूर्व की
मंद उदित मुग्धता
आसन्न अमरता में बंद होता
दूरी से लौटा हुआ
एक नील उत्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

आनन्द : एक चिरंतन प्यास

गोरी गोल कँचियाँ
खांचेदार
फँसे हुए दुहरे पद्मासन
ढली मूर्तियों के
विहद साँचे
लाल कमल
कटि बाँह बाँधे

प्यासी, खुली पंखुड़ियाँ
आधी रुकी हुई घड़ियाँ

: ३ :

प्रक्रिया की पूर्व-स्थितिः

अनडूबी चाँदनी वाले
अटूटे
लयवृत्तों में
तैरती हैं बोधपार
संदली देहें
खुला गोरा देह-रस
और
एक फूल
एक शिशु
एक कविता
एक और जन्म
अक्षुण्ण अमरता का !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थालय,
गुरुकुल कांगड़ी

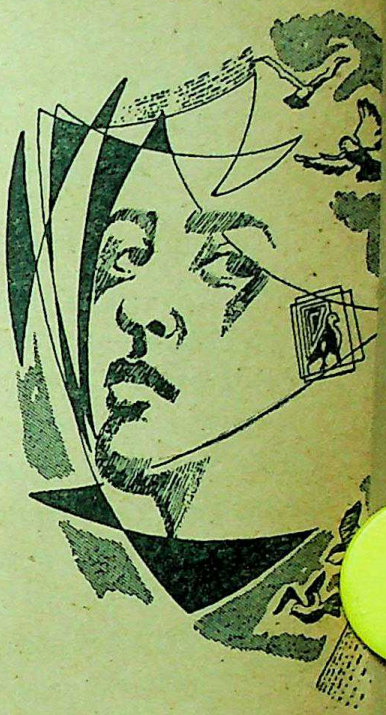

अनन्तकुमार पाषाण

•

जीवन का एक ही क्षण और अस्तित्व की प्रतीति का एक ही सहज कम्पन जहाँ मन के सागर में अनुभूतियों की अनन्त लहरें उद्वेलित कर देता है, वहाँ यदि अनेक वर्षों की अनेक सम्पृक्त स्मृतियाँ यदि अनुभूतियों को पुरपुदा जायें तो....?

•

आज सवेरे काफ़ी पानी बरस चुका था, कॉलेज के लिए निकलते-निकलते सब कुछ थम गया था—पानी और समय.....

घटाएँ घिर आयी थीं। मन जैसे ओस में भींजी घास का-सा हो आया था....

सड़क पर पानी आकर जा चुका था....बस-स्टॉप तक पहुँचते-पहुँचते जैसे स्वप्न गाढ़ा हो आया, जैसे झरने ने अकस्मात ही लौट कर स्फटिक की तरुण शिला का मुख चूम लिया.....

खिड़की के पास बैठने पर ठंडी हवा लगती है—हवा की गोरी देह पानी में भीजी जैसे खिल-खिल करके हँसे जाती है—गिरिजाघर में नये साल की खुशी में बजते ऑरगन की तरह.....

मिटती राहें और गौरय्या का घोंसला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी बरसे तो मुझे लगता है जैसे समुद्र की तलहटियों में मोतियों के बच्चे गा रहे हों। पानी थमा और घटा घिरी रही तो मानो.... तो मानो किसी तीस-बत्तीस वर्ष की विधवा की छाती कामनाओं के धुएँ से घुट रही हो....

धुएँ का एक उठान है मगर फिर शाम हो जाती है--हमेशा की-सी गर्म, बेशर्म और प्यार भरी.....

सन् १९५०--द्वितीय श्रेणी में एम. ए. पास कर लिया गया--असफलता ही थी यह ! बी० ए० में प्रथम श्रेणी में किया था....

सो असफलता से भाग कर बम्बई और फिर अनेक अनुभवों के बाद बड़ौदा....

वहाँ एक बहुत बड़े हॉस्टल का बहुत बड़ा हॉल--बरामदे में कुर्सी बिछा कर बैठने पर बाहर देखने से विचित्र अनुभूति होती थी....

पीले-पीले लाल-लाल चौड़े-चौड़े ढाक के पत्तों से वह लम्बा-चौड़ा मैदान अच्छी तरह भरा था। हवाओं के साथ वह पत्ते एक अजीब-सी दहशत से इधर-उधर भागते और बाहर नल के पास की ठंढी जमीन पर बैठा एक कुत्ता उठ कर अचानक भूंकने लगता.....

तीसरे पहर का सालता सन्नाटा, ठंढे पत्थर का वह लम्बा-चौड़ा बरामदा, चौड़ी-चौड़ी लाइनों वाले कपड़े की वह सस्ती आराम-कुर्सी और एक बदचलन क्वाँरा--बस यह ही रह जाता.....

और उस रेशमी सन्नाटे में पागल पवन बहता रहता, बहता रहता....और ढाक के वह चौड़े-चौड़े ताँबिया पत्ते उड़ते रहते, उड़ते रहते.....

जैसे सहसा ही लगा कि अब लौटना न होगा। जो सड़क आज तक मेरे साथ थी, वह भी यहाँ मुझे छोड़ कर कहीं चली गयी है....

और बड़ौदा रेसिडेन्सी में सूखे हुए मुलूहे पत्तों से लदे एक पेड़ को देख कर उचटी हुई दोपहरी में अपने एक विद्यार्थी से मैंने कहा था, 'एक दिन मैं यहाँ तुम्हारे साथ न होऊँगा। तब इस पेड़ को देख कर तुम शायद मेरी याद करोगे।'

जैसे उन लम्बे-लम्बे चौड़े मैदानों में कहीं मेरा रूमाल गिर गया है....याद है ना, छोटा-सा लकड़ी का वह हरा-हरा पुल जिस पर बैठ कर एक गिरगिट हमेशा जाड़े के दिनों में धूप सेंका करता था....

और जिस दिन इस्तीफ़ा देकर चुपचाप कालिज से सरक आया, तब उसी पुल पर खड़े होकर अपने चिरपरिचित गिरगिट मित्र का इन्तज़ार करता रहा.....

गिरगिट न आया, न आया, न आया... आया भागता हुआ एक लड़का जो एक ही साँस में बहुत कुछ कह गया। सारांश यह था कि आप मत जाइये, मत जाइये....

मैंने कहा कि भाई, जाना तो मुझे है ही... ठहरने के बाद फिर रह ही क्या जायेगा... इसलिये विदा ! ईश्वर तुम्हारे साथ रहे... और यह जो मैं चलता जा रहा हूँ यह आखिर क्यों.....

तभी वह मन होता है !

कभी-कभी मन इतना संवेदनशील हो उठता है कि यदि उसमें स्नेह या क्रोध की एक छोटी-सी कंकरी भी डालो तो बड़ी देर तक लहरें उठती रहती हैं।

लेकिन कभी-कभी मन पाषाण की तरह इतना कठोर हो उठता है कि बड़ी से बड़ी चोट से भी उसके चेहरे पर शिकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या बताऊँ! घर बहुत दूर है। मैं घर का रास्ता भूल गया हूँ।

एक ज़माना गुज़र गया। ग्वालियर स्टेट में शिवपुरी नाम के एक रमणीय स्थल में डेरा जमा। नीचे उगने वाला शिरीष का वृक्ष ऊपर छत पर आकर फैल गया था....

रात को हम छत पर सोते थे। सुबह शिरीष के हल्के-हल्के फूलों से मैं और मेरा बिस्तरा दोनों ढँके होते....

तब माँ जिन्दा थीं। घर में रात-दिन कुछ न कुछ पकता ही रहता था....रात को सोने के पहले एक प्याला गरम चाय...

सामने एक ईसाई रहता था, जिसकी कुतिया का नाम नैन्सी था.

लाल बजरी की वह लम्बी सड़कें, घास के लाल-लाल फूलों में ऊँघते वह टिड्डे और घाटियों में छिपी मनोहर झीलें....

तक नहीं आती।

लेकिन मन जब पाषाण की तरह कठोर होता है तभी वह मन होता है।

कारण तब वह जानता है कि फटे हुए दूध और टूटे हुए पत्थर की तरह मन भी एक बार टूट जाने पर फिर नहीं जुड़ा करता।

--रामनारायण उपाध्याय

कभी-कभी शाम के धुँधलके में कोई अपने थके टट्टू को उस झील पर पानी पिलाता था—बगुलों की एक लम्बी टोली सहसा ही नीले आकाश में उड़ जाती थी....पानी में टट्टू का प्रतिबिम्ब काँपता रहता—मैं किनारे पर खड़े और घोंघे बटोरते हुए देखा करता....

बाँसों की सुनहली झाड़ी में से निकल कर एक रूई का बना खरगोश अपने कान खड़े करके सहसा पूछ बैठता...कितने दिन ठहरने का ख्याल है?

मैंने कहा कि भाई खरगोश जरा बताओ, यह ठहराव और चलाचली क्या अपने हाथ की बात है?.... इस सुनसान लम्बी सड़क पर कल्पना मेरी एकमात्र संगिनी है। वह कल्पना मुझे जीवन से दूर नहीं ले जाती पर जीवन की हरेक गुनगुनाहट को नयी तर्ज़, हर रागिनी को एक नया मोड़ देती है.....

उस कल्पना से मुझे विश्व हर घड़ी एकदम नया मालूम होता है।

एक कच्ची गली में खड़े पीले बदरंग मकान की खुली खिड़की का धूप में दीवार पर पड़ता साया जैसे एकदम साफ़ और गहरा हो जाता है...

नीले और चौड़े आकाश में रेडियो के अनेक एरियल एक पाँत में खड़े होकर मेरी कल्पना को हाथ हिला-हिला कर बुलाते हैं....

जिस दुनिया को मैं देखता हूँ उसे सिवाय मेरी कल्पना के मेरे साथ, देखने वाला और कौन है! इसीलिए मैं बिल्कुल अकेला हूँ।

उस दिन सुबह बौछार में भीगते हुए मैंने देखा कि एक बस के साये में पानी से बचने को एक गाय खड़ी थी। एक बछड़ा कूद-कूद कर उसका थन चूस रहा था....

और न जाने क्यों मेरा मन आनन्द से भर आया। और जब 'बस' चल दी और गाय और बछड़ा पानी में भींजते रह गये, तो मुझे लगा कि वह दुनिया बड़ी ग़लत है, जिसमें बसें चल देती हैं और इसलिए खड़ी नहीं रहतीं कि उनकी आड़ में एक बछड़ा अपनी माँ का दूध कूद-कूद कर पीता है....

बौछार से बचने को बकरियाँ और मेमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे बरामदे की शरण लेते हैं। बरामदा मैंगनियों से भर जाता है पर मैं उन बकरियों को हटा नहीं सकता....

मोटे-मोटे मच्छर जब आराम से मेरी खून भरी बाजुओं पर बैठ कर आहार ग्रहण करते हैं तो मुझे बहुत भोले मालूम होते हैं....

मेरी कल्पना ने मुझे दीवाना बना दिया है। वह मुझे अपना जीना नहीं जीने देती....

मैं पानी के भीतर से पानी के बाहर की दुनिया देखा करता हूँ....

जैसे सब कुछ पीछे को भागा चला जा रहा है। ट्रेन खड़ी है पर आसपास की दुनिया पीछे को तेज़ी से भागी चली जा रही है....

मैं चाहता हूँ कुछ ऐसा जो भागे नहीं—कुछ ऐसा जो मेरे साथ-साथ चले....

कहीं कोई मेरा नहीं, अपना नहीं। कभी कोई मेरा अपना था। वह कौन था इसे याद करने में ही जीवन बीता जा रहा है....

जैसे हर घड़ी मैं घर जाने को व्यग्र हूँ पर घर का पता-ठिकाना भूल गया हूँ..... चिड़ियों में सीधी-सादी गौरय्या मेरी मनपसन्द चिड़िया है—'फ़ेवरिट बर्ड'.....

मेरे घर में गौरय्या के लगभग चार बड़े-बड़े कुटुम्ब रहते हैं। एक घोंसला वेन्टि-लेटर में, एक घोंसला खिड़की में, एक और घोंसला रसोई में, और एक घोंसला रसोई की मेढ़ी पर रखी दीवाली में जलायी जाने वाली जापानी लालटैन के रंग-बिरंगे पतले कागजों के बीच.....

यह गौरय्या बहुत ही चपल है—दूर-दूर रह कर भी परिचय प्रगाढ़ करती रहती है.... थिरकती है तो जी चाहता है कि उसके पाँवों में पायजेब पहना दूं—इतनी पास चली आती है कि लगती है अभी हाथ पर आकर बैठ जायेगी, पर ज़रा ज़ोर से साँस भी ली कि बस उड़ गई...

ऐसी ही लड़की मेरे मन भाती है—जो गौरय्या की तरह हो....और ऐसी लड़की जो नटखट हो, चपल हो, परिचय ज्यों-ज्यों बढ़े त्यों-त्यों अपरिचय के नवीन स्तर सामने खुले रहें.....

और गौरय्या को पकड़ लो तो ऐसा मीठा-सा मुँह बना लेगी, ऐसी भोली-भाली आँखों से

जब मन बेचैन हो।

आज मन बहुत बेचैन है।
अभावों, असंतोष और घुटन से परेशान हूं।
ऐसे में तुम आए।
तो जैसे कोई दरवाजे पर पर्दा खींच दे कमरे की

कहीं दूर देखती रहेगी, आपकी गर्म हथेलियों के सटा उसका नन्हा-सा दिल ऐसे धड़-धड़ करता रहेगा.....

आपका दिल पानी-पानी हो जायेगा... आपको लगेगा आप बहुत क्रूर हैं, दुष्ट हैं आदि-आदि।

और एक साथ ही न जाने कैसे वह छोटी-सी गौरय्या आपके हाथ से छूट कर दूर कहीं उड़ जायेगी.....इस अनुभव के पीछे एक बहुत ही लम्बी कहानी है....

हुआ यह कि मकान के हर कोने में जब उन नटखट चिड़ियों को घर बनाते देखा गया तो उनका साहस बहुत ही बढ़ गया। और सच पूछिये तो, मैं चाहता भी यही था कि उनका साहस इस क़दर बढ़ जाये कि डाइनिंग टेबिल पर मेरी थाली में आकर कभी-कभी वह भी शरीक हों....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगाढ़ता बढ़ाने के इस प्रयास में मुझे क्या-क्या सहन करना पड़ा....चिड़ियें दीवार पर लगे एक बहुत पावन चित्र के पीछे प्रणय का आयोजन करतीं....

बगुले के पंख-से सफ़ेद डाइनिंग टेबिल के टेबिल-क्लॉथ पर उनकी हरी व काली बीटें जगह-जगह दिखाई पड़ने लगीं.....

एक बार तो चिड़ियों का एक जोड़ा

अस्त-व्यस्त चीजों को ढँक दे ऐसे मेरे चेहरेपर
हंसी खिच आई है ।
आओ दो क्षण हँसें-बोलें ।
और दो क्षण ही सही अपने दर्द को सुख
से तोलें ।

—रामनारायण उपाध्याय

दोपहर के लंच के बाद मेरे लड़के की गरम हरी ट्वीड की 'हैट' में आराम फरमाता पाया गया.....

मकान के जिस कोने में भगवान का छोटा-सा मन्दिर है, उसमें भी वह जाने लगीं—पर्दों की डोरियों पर, ठीक भगवान के सिर पर एक प्रेमी युगल झूला झूलने लगे.....

अब मेरा धैर्य टूट गया। बक़ौल बच्चन जी के—"सहने की भी सीमा होती है".....

मैंने कहा कि बस, अब इन चिड़ियों का घर में आने देना बन्द...

अन्दर आते ही उन्हें बाहर हकाल देता—चिड़ियें पहले तो कुछ सकपका-सी गयीं। मित्रों से ऐसे अभद्र व्यवहार की अपेक्षा कौन कर सकता है ?....

कई दिनों तक मेरा यही काम हो गया। घर में उन्हें देखा नहीं कि चारों तरफ़ से हकाल कर, घेर कर बाहर कर दिया.....

और भगवान के मन्दिर में चिड़ियों के प्रवेश-निषेध को पुरअसर करने के लिये मुझे भारतवर्ष के किसी भी पण्डे से अधिक जागरूक रहना पड़ता.....

मिसरी के-से रंग वाले बेडरूम के शीशों पर चिड़ियों की एक अस्पष्ट छाया दिखती पर खिड़की का खुल जाना तो एकदम असम्भव ही था...

बिस्किट के झाड़े हुए चूरे को खाने वह सामने बरामदे में आतीं और चीख-चीख कर मुझे समझाने की कोशिश करतीं। पर मैं पिघलने वाला न था। जहाँ तक सवाल मेरे सफ़ेद टेबिल-क्लॉथ का, या मेरे लड़के की क़ीमती हरी फैल्ट-हैट का था, मैं बर्दाश्त कर सकता था ; पर यह तो बिल्कुल असह्य था कि चिड़ियों का एक जोड़ा अपने प्रणय के मद में भगवान के मन्दिर के रेशमी पर्दों की नाज़ुक डोरियों पर झूला झूले.....

कई बार बड़े प्यार से चिल्ला कर उन्हें समझाया कि देखो, बस इस एक कोने को छोड़ कर बाकी सारे घर को अपना ही घर समझो.....

पर बक़ौल मेरी बेगम के—'अजी, अब वह आपकी सुनती हैं ! पहले तो बाल्मीकि बनने चले थे। सुखी घर वही है जो चिड़ियों की चहचहाहट से सदा गूँजता रहे। अब वह इतना सिर चढ़ गई हैं कि उनके मन में आपके प्रति किसी प्रकार का भय नहीं रहा है.....'

मैंने कहा—'यही तो मैं चाहता हूँ—किसी को भी मुझसे किसी प्रकार का भय न रहे.....'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बेगम ने एक रहस्यपूर्ण दृष्टि से आँखों-ही-आँखों में साफ़-साफ़ मेरी घोर पराजय की घोषणा कर दी---बेगम का कहना है कि मेरे घर में घुसते ही उनका दिल धड़-धड़ करने लगता है, पाँव थरथराने लगते हैं.....

हर चीज़ में दखलन्दाज़ी करने की मेरी आदत के कारण उन्हें घर पर कभी अपना अधिकार मालूम नहीं होता.....

जब क्रोध का जुनून मुझ पर चढ़ता है तो मेरी शक्ल उत्तेजना से टेढ़ी हो जाती है, आँखें बाहर को निकल आती हैं, नथुने फूल जाते हैं.....

और चूंकि यह सब सच है इसलिए मैं कमरे में से खिसक गया---बाहर ड्राइंग रूम में आकर दूर दिखते नीलाकाश में चक्कर खाती काले-काले कौवों की टोलियों को देखने लगा.....

और तब मुझे एहसास हुआ कि सचमुच विष मुझमें ज्यादा है ज़रा। प्रारब्ध ने मुझे व्यक्तित्व दिया, बुद्धि दी और विष दिया.....

और मेरे जीवन में यही विष मेरी विवशता है और यही विष मेरा ऐश्वर्य है---जैसे बिच्छू का ऐश्वर्य उसके उठे हुए डंक में, साँप का ऐश्वर्य उसकी फूत्कार में और शेर का ऐश्वर्य उसकी दहाड़ में है.....पर मेरा यह ऐश्वर्य बेगम को काफ़ी महँगा पड़ता है.....

मैं जानता हूँ कि बेगम का हृदय विशाल है और वह क्षमतामयी हैं.....

पर ईश्वर ने मुझे कुछ बहुत ही अजीब जीव बनाया है....वैसे गहराई से देखने पर मुझे लगता है कि सभी जीव अजीब ही हैं। कोई दो व्यक्ति यहाँ एक-से नहीं हैं.....

ठेस लगाना कोई भी नहीं चाहता---ठेस तो लग जाती है। जापान से लाया हुआ कीमती और प्यारा काला और सुनहरा 'ड्रैगन' के आकारों से सुशोभित 'टी-सेट' तोड़ना कौन चाहता है! वह टूट न जाये इसलिये तो नौकर को वह धोने नहीं दिया जाता, अपने हाथ से धोया जाता है...पर एक दिन उसकी केतली का ढकना सहसा ही हाथ से छूट कर टूट जाता है.....

और पादरियों की टोपी-जैसे उस छोटे-से फुँदनेदार ढकने के टूटते ही दिल भी कहीं से टूट जाता है...पर बहरहाल ढकना तो गया ही; दिल भी उसके साथ ही गया इससे क्या ढकना जुड़ सकता है.....

ऐसे ही यहाँ सब कुछ है...एक घटिया और सस्ती बचकानी टाई पहन-पहन कर आप थक जाते हैं पर वह नहीं फटती...

दूसरी क़ीमती टाई जिसे आप साल भर में कभी एकाध बार ही निकालते हैं, शादी की दावत में दहीबड़ों के दही का शिकार हो जाती है---दो-एक बार के पहनने में ही...

डेढ़-सौ रुपये की क़ीमती मद्रासी साड़ी में पहनते ही खोंच लग जाती है पर दस रुपये की साधारण साड़ी दस साल में भी नहीं फटती...

यहाँ टूटना और जुड़ना मानो किसी दूरस्थ व्यतीत से व्यवस्थापित है...कठपुतलियों को यह अधिकार नहीं है कि पर्दे के पीछे बैठे डोरियाँ खींचने वाले को एक नज़र देख लें...

और ऐसा सब दर्शन खड़ा करके बड़ी मिस्कीनियत से उन सब से मैं क्षमा माँगता हूँ जिन्हें जान में या अनजान में---एक बार या अनेक बार मैंने दुःख पहुँचाया होगा...

(शेष पृष्ठ ११६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० प्रभाकर माचवे

गोरी नज़रों में हम—(४)

उक्त लेखमाला के अन्तर्गत चौथी क़िश्त जिसमें भारतीय धर्म और दर्शन के सम्बन्ध में यूरोप और अमरीका वासियों के कुछ सही कुछ ग़लत दृष्टिकोण और उसके वास्तविक कारणों पर रोचक ढंग से प्रकाश डाला गया है।

■ ■ ■

बर्क्ले (कैलिफोर्निया) के शेन् बौद्ध मन्दिर के जापानी पुजारी फूजितानी हमारे बड़े मित्र हो गये थे। पूरे अमरीका में यही एक मन्दिर देखा (म्यूज़ीयम में मन्दिरों की प्रतिकृतियाँ छोड़ कर) जहाँ बड़ी मात्रा में पौर्वात्य-जन—विशेषतः जापानी—आराधना के लिए आते थे। वहाँ अमिदो (=अमिताभ) की मूर्ति है ; त्रिरत्न के संकेत-रूप तीन गोल कड़ियों के शिल्प हैं। अमिदो की मूर्ति के आगे एक कुत्ता होता है, जिसके सामने धूप जलाया जाता है। इस मन्दिर में दो बार मुझे व्याख्यान के लिए बुलाया गया। एक बार डेढ़ घंटा जम कर बौद्ध-दर्शन और अस्तित्त्ववाद पर भाषण और भाषणोत्तर प्रश्नोत्तरी भी हुई। पता चला कि भारत से इतने दूर इस भूभ्यांचल में बौद्ध न्याय, बौद्ध नीति-शास्त्र और बौद्ध संप्रदायों का काफी गहरा और बारीक अध्ययन विविध श्रोताओं ने किया है। अमरीका में ज़ेन बौद्ध धर्म न केवल सुज़ुकी, ऑसन वॅट्स, ह्यूस्टन स्मिथ आदि प्रोफेसरों द्वारा जगह-जगह विश्व-विद्यालयों में पढ़ाया जाता है ; पर लाखों प्रतियाँ 'इसेन्स और ज़ेन' जैसी पुस्तकों की बिकी हैं। हवाई से छपने वाले त्रैमासिक 'फिलासाफी : ईस्ट एण्ड वेस्ट' का एक समूचा विशेषांक ज़ेन - विषयक

भारतीय धर्म और दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाद-विवाद को लेकर छपा है। तिब्बती बौद्ध धर्म, लामा-मत, शून्यवादी नागार्जुन-वाद आदि कई पन्थों को लेकर कुतूहल ही नहीं, गहरी दिलचस्पी विद्वानों में है। न्य जेरेसी में एक नया तिब्बती ढंग पर बौद्ध-मन्दिर भी बना है।

मेरे दो वर्ष के विदेश-प्रवास में हिन्दू-धर्म, बौद्ध-धर्म, भारतीय दर्शन में परमाणुवाद, भारतीय दर्शन में मरण और पुनर्जन्म, भारतीय उपासना-पद्धति, भक्ति के विविध सांप्रदाय, शैव-मत के विभिन्न रूप, मन्दिर-शिल्प और उसके प्रतीकार्थ, रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द-दर्शन आदि पर मुझे न केवल मैडिसन और बर्क्ले में; पर सेंट लुई, ॲपलटन, मिशिगन (ॲन अरबर), सॅन फ्रान्सिस्को, मिनेसोटा आदि कई स्थानों पर बोलना पड़ा। और प्रत्येक व्याख्यान के बाद काफ़ी तीखे प्रश्नोत्तर भी होते। मैं उन प्रश्नोत्तरों में से कुछ बहुत चौंकाने वाली घटनाएँ नीचे दे रहा हूँ। स्थान और व्यक्तियों के नाम जान-बूझ कर छोड़ दे रहा हूँ:

(१) एक छोटे बच्चों के स्कूल में जाना हुआ। एक बुद्ध की छोटी प्रतिमा और गाँधी जी का छायाचित्र लेकर मैं पहुँचा। और मैंने बहुत सरल भाषा में बातें की: "भारत में कई धर्म-मत हैं; और सब शान्ति से एक साथ रहते हैं" आदि-आदि। यह सुन कर एक छोटा बच्चा पीछे से खड़ा हुआ और उसने बहुत संत्रस्त भाव से पूछा: "तुम्हारे भगवान और हमारा 'गॉड' एक-सा कैसे हो सकता है?"

(२) एक दूसरे चर्च-ग्रूप में 'अहिंसा—बुद्ध से गाँधी तक' बोलने के बाद कुछ विद्यार्थियों ने प्रश्न पूछे: "हमने बनारस के 'बर्निंग घाट' की तस्वीरें देखी हैं। मुर्दे वहाँ बहाये जाते हैं, उसी में लोग नहाते हैं और पवित्र समझ कर वह पानी पीते हैं—यह कैसे होता है?" प्रश्न दो: "अहिंसा और शान्ति की दुनिया को नसीहत देने वाले देश में ठग लोग काली पूजा करते थे, और डाकुओं के उपद्रव कैसे होते हैं?" प्रश्न तीन: "भारत विभाजन के बाद हमने मुश्किल दस मिलियन (एक मिलियन=दस लाख)

अमरत्व की खोज

'ये गीत कितने मनोरम हैं माँ! जी करता है, इन्हें सुनता ही रहूँ। माँ! ये आज क्यों गाये जा रहे हैं?'

'तुम सच कहते हो, पुत्र! ये गीत बड़े ही लुभावने हैं और आज अपने पड़ोसी के घर पुत्र का जन्म हुआ है, इसलिए ये गाये जा रहे हैं।'

'मैं जन्मा तब भी ये गाये गये होंगे?'

'पुत्र! तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। तुम्हारे वैभव के सामने पड़ोसी का वैभव नगण्य है। उन मंगल गीतों के स्वर आज भी कानों में थिरक रहे हैं, जो तुम्हारी जन्म-वेला में कुल-वधुओं ने गाये थे।'

कठिनाई से दो घंटे बीते होंगे। थावच्चा पुत्र विषाद भरा मन लिए माँ के पास आया। 'माँ! मन को बहुत ही दुखाने वाले हैं ये गीत। मन करुणा से भर गया है, रुलाई-सी आ रही है। ये क्यों गाये जा रहे हैं माँ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-मुसलमान मारे गये और इससे दुगुनी संख्या में बेघर हुए। क्या यह अहिंसा-शान्ति के लक्षण हैं?"

(३) तीसरे एक गिरजाघर से सम्बद्ध विद्यार्थियों के धर्म-चर्चा-मंडल में प्रश्न: "हिन्दू की परिभाषा क्या है? क्या आपकी कोई निश्चित आचार-संहिता नहीं? कोई एक धर्म-ग्रन्थ नहीं? कोई एक उपासना पद्धति नहीं?" इस प्रश्न के उत्तर में आप कुछ भी जवाब दें, उसके विरोध में आचरण या विश्वास करने वाला तथाकथित हिन्दू भारतीय इन विदेशियों को मिल चुका होता है। मसलन आप कहें: 'हिन्दू वेद मानते हैं, या गीता मानते हैं, या राम-कृष्ण को मानते हैं' तो इनमें से एक भी चीज़ को न मानने वाले या नास्तिक हिन्दू भी वे देख चुके हैं। यदि आप कहें 'हिन्दू अमुक-मांस नहीं खाते या अमुक मद्य नहीं पीते' तो वह तो ज़ाहिरा ग़लत होता ही है, विदेश जाकर अधिकांश भारतीय कोई खान-पान सम्बन्धी नियम नहीं मानते; बल्कि उन्हें मानना दकियानूसीपन और अवैज्ञानिक समझते हैं। सो अन्ततः विदेश में कम से कम हिन्दू की परिभाषा यह है: जो अपने आपको मुस्लिम, ईसाई, यहूदी, सिख, बौद्ध, पारसीक न कहे वह हिन्दू है।

(४) सर्वाधिक कुतूहल भारतीय 'योग' को लेकर है। डिट्राइट में एक दिन घूमते हुए सहज 'योगानन्द' के उपासना पीठ में जाना हुआ। छह सौ से ऊपर अमरीकन उस एक नगर में उस स्थान के नियमित मेम्बर थे। प्रार्थना में कृष्ण और क्राइस्ट की एक साथ भजन-धुन-स्तुति गायी जाती थी। योगानन्द जी के शिष्य गंभीरतापूर्वक यह मानते हैं कि उनकी ज्योति अभी भी अमरीका में विद्यमान है--उनकी मृत्यु के कई वर्षों बाद--और वह अभी भी किसी-किसी भाग्यवान के सपने में कौंध जाती है। योग को शरीर-शक्ति बढ़ाने के माध्यम से मानसिक वशीकरण, स्मृति-वृद्धि, मनः शान्ति, उन्निद्ररोग की दवा आदि सभी रूपों में लिया जाता है।

(५) वेदान्त का प्रचार रामकृष्ण मिशन की कई शाखाओं द्वारा होता है। मैंने इस

'बेटा! इस नश्वर संसार की लीला ऐसी ही है। पड़ोसी के घर जो पुत्र जन्मा था वह चल बसा। इसलिए यह क्रन्दन हो रहा है। ये गीत नहीं हैं, पुत्र!'

'माँ! जो आता है वह इस प्रकार उड़ जाता है?'

'हाँ वत्स! यह निश्चित है, जो जन्म लेता है वह मरता भी है।'

'तो, मैं भी मरूँगा?'

'वत्स! यह विश्व का नियम है।'

'इसमें कौन अपवाद हो सकता है, माँ! मरना न पड़े इसका कोई उपाय है? है, तो कौन जानता है?'

'भगवान् अरिष्टनेमि जानते हैं', माँ ने कहा।

और थावच्चा पुत्र तत्काल अमरत्व की खोज में चल पड़ा। भगवान् अरिष्टनेमि की शरण पा, वह कृतार्थ हो गया।

--मुनि श्रीनथमल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मठ की शिकागो स्थित शाखा (शिकागो में वह स्थान भी जहाँ स्वामी विवेकानन्द ने १८९३ में विश्व-धर्म-सम्मेलन में व्याख्यान दिया था, और जहाँ श्रीमती हेल के घर ठहरे थे वह १३१४, डी अरबोर्न स्ट्रीट वाला घर मैंने देखा) में दो बार गया ; न्यूयार्क की शाखा में मैंने सन् साठ की क्रिसमस सर्विस देखी जिसमें स्वामी श्री निखिलानन्द का 'सर्मन' सुना ; बर्क्ले की शाखा में भी दो-तीन बार गया ; लास एजेंलेस से 'वेदान्त एंड दि वेस्ट' पत्रिका प्रतिमास छपती है, जिसके सम्पादक एल्डुअस हक्स्ले और क्रिस्टोफर ईशरवुड हैं। कई लोगों का--विशेषतः पुरानी पीढ़ी के अमरीकियों को--वेदान्त में और युनिटेरियन चर्च में विलक्षण समानता जान पड़ती है। इमर्सन ने 'ब्रह्म' कविता गीता के श्लोकों से प्रभावित होकर लिखी ("इफ़ दि रेड स्लेअर थिंकेथ ही स्लेज़..." "नैवं हन्ति न हन्यते...") ; उसके एक निबन्ध का शीर्षक है 'ओवर-सोल' (परम+आत्मा)। एक युनिटेरियन महिला तो मुझे वेदान्ती समझ कर कई बार रविवार की प्रार्थना और विशेष-भोजों पर आमंत्रित करती थी। और ध्यान रहे यह स्त्री कोई अमीर, सुख-विलास-चैन के जीवन से ऊबी हुई, शौकिया धर्म मानने वाली दुखियारी, परित्यक्ता स्त्री नहीं थी। यह बेचारी भले घर की, बाल-बच्चे वाली एक मध्यवित्त घर की मास्टरनी थी, जिसे भारत के दर्शन में बड़ी दिलचस्पी थी।

(६) हमारे आधुनिक दर्शनों में सबसे अधिक आकर्षण अरबिन्द के प्रति है। 'टीचिंग्ज़ ऑफ द पिस्टिक्स' नामक स्टेस द्वारा सम्पादित विश्व के रहस्यवादियों की उक्तियों या रचनांशों के संकलन में भारत से केवल उप-निषद और अरबिन्द यह दो ही अध्याय हैं। सॅन फ्रान्सिस्को में सन् साठ में अरबिन्द के जन्म-दिवस के उपलक्ष में डाक्टर हरिदास चौधरी द्वारा आयोजित एक समारोह में बोलने का मौका मिला। बहुत अच्छी उपस्थिति थी। एक सज्जन ने 'सावित्री' का नाट्य-रूप सुनाया--यम और सावित्री के संवादों को स्वयम् दो आवाज़ों में पढ़ कर सुनाया। मेरे व्याख्यान के बाद कई प्रश्नकर्त्ता मित्र बने। उनके यहाँ निमंत्रण मिले। चर्चा बढ़ी। पता चला कि स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के सिल्वरबर्ग अरबिन्द-दर्शन पर एक ग्रंथ लिख रहे हैं।

(७) भारतीय देवी-देवता और उपासना-मार्ग तथा पद्धतियाँ भी कम कुतूहल के विषय नहीं। मिलवॉकी में ईस्टर १९६० में एक दिन देखता क्या हूँ कि एक भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर महोदय एक चार फुट ऊँची नाचते हुए गणेश की नेपाल से प्राप्त ब्रौन्ज़-मूर्ति ले आये और मुझसे पूछने लगे : "इसने सर्प की जनेऊ क्यों पहनी है ? इसके मुकुट पर पंचमुंड क्यों हैं ? इसकी सूँड़ वाम दिशा में क्यों है ?" मैं भी कच्चा नहीं था: विश्वभारती से प्रकाशित 'गणपति की उत्पत्ति और विकास' पर पुरातत्व तथा प्राच्य विद्या विषयक शोध पुस्तिका पढ़ चुका था। दो घंटे गणेश जी को लेकर किस्सा-कहानी, प्रतन, पुराणेतिहास, साहित्य-कलाविवाद होता रहा। प्रोफेसर ने मेरी बातचीत रेकार्ड कर ली। परिणाम यह हुआ कि अगले वर्ष हमारी कक्षा में देखता हूँ प्रोफेसर की बेटी विद्यार्थिनी के रूप में समुपस्थिता हैं। शक्ति और शिव तथा तंत्रों को लेकर खासी भ्रान्त कल्पनाएँ प्रसृत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत पूना में पढ़े हुए एक प्रोफेसर के घर एक तिब्बती 'पट' देखने को मिला। उसके जो अर्थ उन्होंने बताये वे अद्‌भुत थे। 'भक्ति' विषयक एक पाठ्यक्रम जब मैं पढ़ाता था, तब संस्कृत पढ़ने वाली (और भारत में केरल में एक वर्ष रह चुकी) एक विद्यार्थिनी ने शिव-मूर्ति की कल्पना के विकास पर एक प्रबन्ध लिखा--काफी विस्तृत, शिल्प-मूर्तियों के उदाहरण और चित्रों से सज्जित, शिवस्तोत्रों से उदाहृत। कई मानव-वंश-शास्त्र के अमरीकी विद्यार्थी और प्रोफेसर हिमाचल-प्रदेश, टोडा-आदिवासियों के बीच या ऐसे ही अनोखे स्थानों में घूम-घूम कर सामग्री जमा किये हुए हैं। और फिर कई बार वे आवश्यकता से अधिक आध्यात्मिक अर्थ, हर आदिमानवी रीति-रिवाज़ में खोजने लगते हैं....।

कुल जमा कर यों कहा जा सकता है कि पौर्वात्य धर्मों में जापानी बौद्ध धर्म और इस्लाम का जितना अता-पता सर्वसाधारण अमरीकियों को है; हिन्दू-धर्म या दर्शन के विषय में बहुत कम सही जानकारी है। सिख-धर्म की जानकारी ज्यादा है। जैन या अणु-व्रत आदि मतों के विषयों में तो वे बिल्कुल कोरे हैं--मेरे एक विद्यार्थी ने जैन-धर्म दर्शन पर 'पेपर' लिखा था। राधाकृष्णन् और मूर की 'सोर्सेज़ ऑफ इंडियन फिलासफ़ी' पुस्तक पाठ्यक्रम में रखी जाती है, पर बहुत कम हमारे दर्शनों की प्रत्यक्ष या सही जानकारी वहाँ हो पाती है। अधिकांश भारतीय जो वहाँ जाते हैं--विद्यार्थी, इंजीनियर, अध्यापक या व्यापारी आदि---वे चर्च से या धर्म से कोई प्रेम नहीं रखते, और अधिकतर धर्म-दर्शन को व्यक्तिगत (और गोपन) वस्तु मान कर उसके बारे में चर्चा करना उचित नहीं समझते। फिर वहाँ के सर्वसाधारण नागरिक का यदि यह विश्वास हो जाय कि आधुनिक भारतीय विज्ञान-प्रवण अधिक हो रहा है; उसे भारी मशीनों के कारखानों में और सामूहिक उद्योगों में ज्यादा रुचि है तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

यूरोप में ऐसी बात नहीं है: फ्रांस में या जर्मनी में, स्वीडन-नार्वे-डेनमार्क में, इटली या इंग्लैण्डमें भारतीय धर्म-दर्शनों पर लिखने वाले, बोलने वाले, खंडन-मंडनात्मक चर्चा करने वाले, अध्ययनशील व्यक्तियों की पूरी परम्परा है: मैक्समूलर, रोम्मां रोलां, श्वाइट्ज़र, रीस डेविड्स, शीबौ, याकोबी इत्यादि दर्जनों नाम सहज लिये जा सकते हैं। अमरीका में ऐसा कम हुआ है: वहाँ भारत के धर्म-दर्शन एक 'सिद्धि' या 'शक्ति' के रूप में लिये गये हैं, जैसे जादू के खेल के बारे में कोई बच्चा सोचता हो। सुपरिपक्व मेधा, सन्तुलित विवेक, वैज्ञानिक बुद्धिवाद की स्वर्णतुला पर भारत के तर्क, न्याय, जीव-अजीव-विचार, आत्म-परमात्म-विषयक चिन्ता को उसी देश-काल-परिपार्श्व में देखने की सहानुभूति वहाँ कम पायी जाती है। एक तो अमरीकी विश्लेषण-वादी विचार-पद्धति समाज-शास्त्र और मानव वंश-शास्त्र की खोजों से बेहद प्रभावित है; दूसरे धर्म के प्रात्यक्षिक प्रभाव और रूप में उनकी अधिक आस्था है: यानी अधर्म को वह कैसे, कहाँ तक रोक सकता है? चीन या तिब्बत में इतने प्राचीन धर्म-नीति-विषयक समाज-बन्धनों और आचार-स्मृतियों के बावजूद जब साम्यवाद वहाँ इतनी जल्दी से आ गया, जम गया, फैल गया, पनप गया; तो बार-बार जो प्रश्न मुझसे वहाँ के सोचने वाले पूछते थे, वह यही था कि भारत में धर्म हार रहा है, समाजवाद जीत रहा है---बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल्दी भारत में धर्म म्यूज़ियम में रखने की वस्तु हो जायगा। धर्म के नाम की दुहाई देने वाली राजनैतिक पार्टियों में अमरीका के अध्येताओं की बड़ी दिलचस्पी है, और माहोन वाइनर नामक शिकागो के प्रोफेसर की लिखी, 'भारत की राजनैतिक पार्टियाँ' पढ़ें या कोलंबिया युनिवर्सिटी से प्रकाशित 'सोर्सेज़ ऑफ इंडियन ट्रैडिशन' के अन्तिम अध्याय---हम अपने देश में जिन 'साम्प्रदायिक' दलों को मुमूर्षु या म्रियमाण मानते हैं; ईसाई गोरी दुनिया अभी उन्हें ज़िन्दा समझती है। और फिर जब कोई कोएस्लर 'दि लोटस एंड रोसे' लिखता है, या कोई अगेहानन्द 'दि ओकर रोब' (भगवा वस्त्र) तो उसी पश्चिम में (कमल और यंत्र-मानव) उन किताबों को लेकर बड़ा शोर-शराबा मचता है!

विदेशियों की समझ में जो नहीं आता है वह है भारतीय मनसा में अवचेतन रूप में जमा हुआ धर्म-दर्शन का कुहासा, या कहिए 'संस्कार'। वे उसे इस-या-उस फुटे से या टेप से नापने की कोशिश कर-करके थक जाते हैं। उन्हें यह सब 'गारूड़' लगता है (पूंगी बजाई और नाग-मस्तक डोलने लगे) या जादू है कि रस्सी को हवा में खड़ा करके उस पर जमूरे को चढ़ाने जैसी नज़रबन्दी है यह सब कुछ। पर "चौरिस्मा' (या करिश्मा) वाला अंश छोड़ भी दें तो सचमुच यह विचारणीय है हमारे लिए कि धर्म-दर्शन प्रधान देश में अब कितने 'जीवित' दार्शनिक हैं जिनके विचारों को समझने, पढ़ने-गुनने के लिए विदेशी हमारे पास खिंच कर आयें? क्या हमारे धर्म या धार्मिकता का प्रतिबिम्बन हमारे राष्ट्रीय चारित्र्य, हमारे नित्य-प्रति के दैनन्दिन व्यवहार और नैतिकता में दिखाई पड़ता है? यदि वह है तो कितना उसमें से गोरी जातियों पर असर डालने वाला है? यदि वह नहीं है, तो उसे लेकर इतना हाय-तोबा क्यों? यह सब प्रश्न उस समय हमारे मन में उठते हैं, जब एक विदेशी हमसे सीधा सवाल करता है: "क्या है तुम्हारा धर्म? क्या है तुम्हारा जीवन-दर्शन, वह हमारे धर्म-दर्शन से किस तरह अलग है? किस तरह से बेहतर है?"

हमारी नज़रों में गोरे—उस समय

एक समय की बात है, स्वामी विवेकानन्द अमरीका में भारतीयों के समक्ष भाषण दे रहे थे। वह देशी कपड़ा पहनने पर ज़ोर दे रहे थे। अतः वह स्वयं भी देशी कपड़ा पहनते थे, लेकिन उनका जूता विदेशी था। अतः एक अँगरेज़ महिला ने जो वहाँ उनका भाषण सुन रही थी, पूछा—

"आप तो देशी चीज़ों का प्रयोग करने को कहते हैं परन्तु आप स्वयं विदेशी जूता क्यों पहनते हैं?"

स्वामी जी ने तत्काल उत्तर दिया---"यह बताने के लिए कि हमारे देश में अँगरेज़ों का क्या स्थान है!"

---सत्यदेवनारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

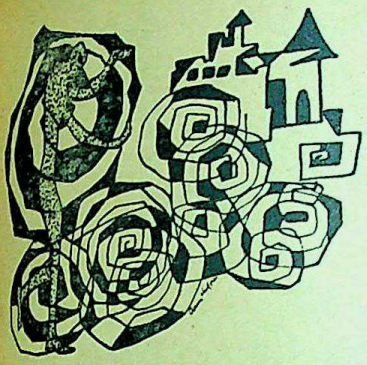

डॉ० कैलाश वाजपेयी

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

आवाज़ों के घने जंगल में
लगी आग
(बर्फ़ असम्बोध की)
हरा बाँस जल गया।
भीतर सोया विपन्न गायक
बीमार था
भाग नहीं पाया
धुँए में बदल गया।

अपनी जड़ अभिधा से ऊब कर
कोशिश की
अनवरत अभोग लिए
यहाँ वहाँ भर-जाऊँ।

टेढ़ी रतिक्रान्ता छतें
हिलीं
ढह गईं
किसी बिना रास्तों वाले नगर में
काली दीवारें भर
रह गईं!

आवाज़ों के घने जंगल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● जर्मन कहानी

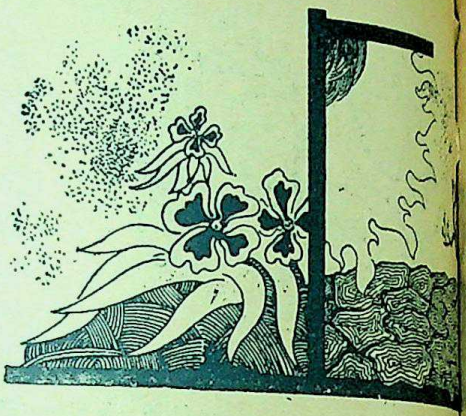

मूल : वोल्फगाँग बोरखार्ड

अनु : उषा जैन

●

मानव-संहार जिनके लिए क्रीड़ामात्र है या स्वार्थपूर्त्ति और अहंकार-तृप्ति की विवशता--उनकी अन्तिम परिणति का साक्षी....एक केंचुवा.....

●

"सबके घरों में सिलाई की मशीन, रेडियो, रेफ्रीजिरेटर और टेलीफ़ोन हैं। अब क्या किया जाये ?" कारखाने के मालिक ने पूछा।

"बम"--आविष्कारक ने कहा।

"युद्ध"--जनरल ने कहा।

"और कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं है"--कारखाने के मालिक ने कहा।

सफ़ेद वस्त्रधारी व्यक्ति ने कुछ संख्याएँ काग़ज़ पर लिख दीं। उसमें उसने बहुत नन्हें और नाजुक अक्षर बना दिये। फिर उसने वे सफ़ेद वस्त्र उतार दिये और एक घंटे तक खिड़की पर रक्खे फूलों को निहारता रहा। जब उसने देखा कि एक फूल मुरझा गया था तो वह अति उदास हो गया और रोने लगा।

केवल इन्सान नहीं बचा था!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वे संख्याएँ काग़ज़ पर लिखी थीं। उसके अनसार मनुष्य आधे-ग्राम से दो घंटे में हज़ार मनुष्यों को मृत्यु के घाट उतार सकता था।

फूलों पर सूर्य चमक रहा था और उस काग़ज़ पर भी।

x x x

दो व्यक्ति आपस में बातें कर रहे थे।

"कितना खर्चा बैठेगा ?"

"टाइल पत्थर के साथ ?"

"और क्या, हरे टाइल के साथ।"

"चालीस हज़ार।"

"चालीस हज़ार ? अच्छा, मेरे मित्र, यदि मैंने ठीक समय पर चॉकलेट की जगह बारूद बनाना न शुरू कर दिया होता तो मैं आपको आज ये चालीस हज़ार नहीं दे सकता था।"

"और मैं आपको यह मनोरम स्नानागार नहीं।"

"हरे पत्थर के साथ ?"

"हाँ, हरे पत्थर के साथ !"

दोनों व्यक्ति अलग-अलग चल दिये।

इनमें से एक कारखाने का मालिक था, दूसरा ठेकेदार।

युद्ध हुआ।

x x x

दूसरा स्थान। दो व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं।

"मास्टर साहब, यह काला वेश क्यों ? कुछ दुःखद समाचार है क्या ?"

"बिलकुल नहीं, किसी हालत में भी नहीं, उत्सव है आज तो। नवयुवक युद्ध के लिए जा रहे हैं। छोटा-सा भाषण हुआ। स्पार्टा की याद ! कुछ विचार सुझाये गये। सम्मान ! पितृभूमि ! ह्योलडरलिन पढ़ने को दिया गया। लांगेमार्क के विषय में चिन्तन किया गया। हृदयस्पर्शी उत्सव। अति भावुक। नवयुवकों ने गाया : 'भगवान, अस्त्रों को बढ़ने दे।' आँखों में चमक थी—मर्मस्पर्शी, अति मर्मस्पर्शी।"

"हे भगवान ! मास्टर साहब, चुप भी करिये। यह अति भयानक है !"

मास्टर ने दूसरों को उपेक्षा की दृष्टि से घूरा। उसने बोलते समय काग़ज़ पर छोटे-छोटे पवित्र क्रास बनाये थे। पवित्र छोटे क्रास ! वह खड़ा हुआ और हँसा। एक छोटा-सा गोला लिया और लाइन के ऊपर लुढ़कने दिया। हल्का-सा धमाका हुआ और कुछ टुकड़े पीछे की ओर बिखर गये। वे टुकड़े छोटे-छोटे मनुष्य-से लगते थे।

x x x

दो व्यक्ति आपस में बातें करते हैं :

"यह सब कैसा चल रहा है ?"

"खास बुरा तो नहीं है।"

"आपके पास अभी कितने हैं ?"

"यदि सब ठीक रहे तो चालीस हजार।"

"आप मुझे कितना दे सकते हैं ?"

"ज्यादा से ज्यादा आठ सौ।"

"कुछ और ?"

"अच्छा एक हजार।"

"धन्यवाद।"

दोनों व्यक्ति अलग-अलग चल दिये। ये मनुष्यों के विषय में बातचीत कर रहे थे।

ये दो जनरल थे।

यह युद्ध था।

x x x

दो व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"स्वेच्छा से ही ?"

"हाँ हाँ, स्वेच्छा से ।"

"क्या उम्र है ?"

"अट्ठारह, और तूं ?"

"मैं भी ।"

दोनों व्यक्ति अलग-अलग चल दिये । ये दो सिपाही थे ।

दोनों में से एक युद्ध में मर गया ।

यह युद्ध था ।

x x x

जब युद्ध समाप्त हुआ तो सिपाही घर लौटा । उसके पास रोटी थी । उसने देखा कि एक और व्यक्ति के पास भी रोटी थी । उसने उसे मार डाला ।

"तू किसी को जान से नहीं मार सकता", न्यायाधीश ने कहा ।

"क्यों नहीं ?" सिपाही ने पूछा ।

x x x

जब शान्ति सम्मेलन समाप्त हुआ तो मंत्रीगण शहर में गये । वे एक शूटिंग गेलेरी (Shooting Gallery) के पास से गुज़रे ।

"फिर से गोली चलायेंगे श्रीमान् ?" लाल ओंठो वाली लड़कियाँ चिल्लाईं । सब मंत्रियों ने एक-एक गोली काग़ज़ के छोटे-छोटे आदमियों को मारी । इसी बीच एक वृद्धा आयी और उसने बन्दूक छीन ली । जब एक मंत्री ने उसे वापिस लेना चाहा तो उसने उसके कान ऐंठ दिये ।

यह एक माँ थी ।

x x

दो मनुष्य थ । जब दो वर्ष के थे तो हाथ से मारते थे । जब बारह वर्ष के थे तो छड़ियों से मारते और पत्थर फेंकते थे । जब बाइस वर्ष के थे तो एक दूसरे के ऊपर बन्दूक चलाते थे । जब ब्याँलीस वर्ष के थे तो बम फेंकते थे । जब बासठ वर्ष के थे तो शक्तिप्रदायक दवाई खाते थे । जब बयासी वर्ष के थे तो मर गये । दोनों एक दूसरे के पास ही दफ़ना दिये गये ।

सौ वर्ष के बाद जब एक केंचुए ने दोनों के शव को खाया तो उसे बिल्कुल भी पता नहीं चला कि यहाँ दो भिन्न व्यक्ति गड़े हुए थे । वह तो एक-सी ही मिट्टी थी। एकदम एक जैसी ही मिट्टी थी ।

x x x

पाँच हजार वर्ष बाद जब एक कीड़ा पृथ्वी से निकला तो उसने पाया :

वृक्ष अब भी वही वृक्ष हैं ।

कौवे अब भी काँव-काँव करते हैं।

कुत्तों को अब भी हड्डी चाहिये ।

गंध और तारे, काई और समुद्र, और मच्छर, सभी वैसे के वैसे ही हैं,

लेकिन इन्सान मुश्किल से ही कभी कभी इक्का-दुक्का दिखलाई दे जाता है ।

पत्नी और पुरातत्त्ववेत्ता

लोकप्रिय जासूसी कथा-लेखिका अगाथा क्राइस्ट के पति प्राचीन वास्तु शास्त्र के ज्ञाता हैं, और ईरान में पुरानी इमारतों के ध्वंसावशेषों की खोजबीन कर रहे हैं।

क्राइस्ट से एक बार किसी ने पूछा, "आप एक लेखिका हैं, फिर आपने एक पुरातत्त्ववेत्ता से शादी क्यों की ?"

और तब उत्तर देते हुए क्राइस्ट ने अपने पति के विषय में कहा, "पुरानी वस्तुओं में रुचि रखनेवाला पति पाना भी एक सौभाग्य है। स्त्री की आयु जितनी अधिक होती जाती है, पति की रुचि उसमें उतनी ही बढ़ती जाती है।"

—सत्यदेवनारायण सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामशरण शर्मा

केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के नये मन्त्रिमण्डलों के सदस्यों की औसत आयु क्या है? आप पायेंगे कि जीवन-यात्रा में वह सीमा-रेखा उस क्षेत्र से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत लाखों प्राणियों का जीवन अपनी बुजुर्गी के कारण दुर्वह बना हुआ है। कौन है जो इनके बारे में कभी कुछ सोचता है?

कभी आपने देखा है मुहल्ले के चबूतरों पर बैठे बूढ़ों को--निश्चल, शायद हुक्का पीते हुए, स्थिर जीवन ही आँखें हैं जिनकी, जो मानो थक गए हैं, डूब गए हैं। फिर कभी मालूम किया है कि दो जून दो रोटियों के लिए कितना अपमान या अवहेलना उन्हें सहनी पड़ती है। वे समझते हैं, वे भार हैं। व्यर्थ हैं। परिवार और समाज उन्हें यह बताने में नहीं चूकता कि उनकी अब कोई आवश्यकता नहीं है।

मैं एक वृद्धा को जानता हूँ जो हा-हा खाकर भगवान से मौत माँगती है। कहती है, 'जाने मेरे काग़ज़ उसके दफ्तर से कहीं गुम हो गए हैं क्या?'

सवेरे-शाम पार्क में घूमने जाइए--ये पृथ्वी के भार आपको वहाँ देखने को मिलेंगे। या उन्हें पोतों को गोद में लिए, मूंगफली का थैला लिए देखिए। यदि आप मनुष्य हैं तो रोना आ जायगा आपको।

यह वही पीढ़ी है जिसका कभी डंका बजता था। जिसने नयी पीढ़ी संसार को दी।

यह सब क्यों है? केवल इसलिए कि संसार स्वार्थी है।

संसार के बूढ़े क्या करें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उसका है, जो कमा सकता है, लड़ सकता है, जो शक्तिवान है, सामर्थ्यवान है। यदि किसी के पास यह नहीं तो वह व्यर्थ है। फेंक देने योग्य है।

और यह समस्या आज विकट हो गयी है—अधार्मिकता के कारण, औद्योगीकरण के कारण, टूटती मान्यताओं के कारण। इससे पहले तक परिवार सम्मिलित होता था। बड़ों का मान और पालन कर्त्तव्य था। वे पूज्य थे। घर के बच्चे से लेकर बड़े तक उनका सम्मान करके अपने को धन्य समझते थे। उनके चरण छूकर सवेरे उठते तथा रात को सोते थे।

पर धीरे-धीरे समय बदला। धर्म का मजाक उड़ाना शुरू हुआ। और आज तो पूर्ण अधार्मिकता का बोलबाला है। धर्म का अर्थ यहाँ थोड़ा व्यापक समझिएगा—वह जिसके द्वारा मनुष्य को सही तथा ग़लत आचरण का बोध होता है। अर्थात् नीति-नियम और नीति-नियमों की यह अवमान्यता संसार-व्यापी है। केवल हमारे यहाँ ही नहीं है। अन्य देशों में भी वृद्धों के लिए उनके रिश्तेदार कुछ नहीं करते; जो कुछ करती है सरकार ही करती है, पर इस सब का नतीजा यह होता है कि इन्सान अपना आत्म-सम्मान खो देता है, भिखारी-जैसा बन जाता है।

हमारे यहाँ तो स्थिति और भी बदतर है। पुरानी मान्यताएँ, नीति-नियम तो गये, नये अभी बने नहीं। औद्योगीकरण ने करेले की इस बेल को नीम पर और चढ़ा दिया। सम्मिलित परिवार का ढाँचा तक शेष न रहने दिया। सो आँखों देखे की शर्म भी गयी। आज अधिकांश मध्यम वर्ग के पुत्रों के पिता-पितामह कहीं गाँव-गँवई में या किसी खण्डहर में अपनी सन्तान की कृपा पर दो रोटियाँ पा रहे हैं—कृपा के स्वरूप। मानो उनका अधिकार इतना भी नहीं। सन्तान उन्हें साथ रखे कैसे? न बड़े नगर में काफ़ी जगह मिलती है, न साथ रखने में सुख-सुविधा ही होती है।

तो इस लोक-कल्याण के युग में केवल युवकों का ही कल्याण किया जा रहा है। हमारा सारा ध्येय वही है। सारी योजना, सारी परियोजनाएँ, सारी परिपाटी, केवल उनकी सेवा के लिए हैं। वृद्ध तो रहे, सहने, खाने-पीने, चलने-फिरने—सब में कृपा के भिखारी हैं, मज़ाक के पात्र हैं। याद कीजिए, आपने कितनी बार कम-उम्र वालों को बूढ़ों का मज़ाक़ उड़ाते नहीं देखा है? अनगिनत बार।

और उस पर तुर्रा यह है कि कानून और समाज भी युवकों का ही पक्ष लेता है। आप अपने पिता को भोजन मत दीजिए, कपड़ा न पहिनाइये, घर से निकाल दीजिए, कानून चुप रहेगा। पर जब वह बूढ़ा अपाहिज भीख माँग कर पेट की आग बुझाना चाहेगा तो कानून उसे जेल में डाल देगा।

यदि कहीं दुखी होकर वह आत्महत्या करना चाहे—आखिर भूखा आदमी कब तक जी सकता है?—तो भी कानून उसे इजाजत नहीं देता, बल्कि दण्ड देने को जरूर तैयार रहता है। कानून के पास उसके रोटी-कपड़े का कोई प्रबन्ध नहीं है, पर मरने से रोकने का, माँग कर खाने से रोकने का पूरा प्रबन्ध है।

यदि वह कहे कि उसे उसकी शक्ति के योग्य काम ही दे दिया जाए जिससे वह पेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पा सके, तो समाज के पास वह काम भी नहीं है। 'बूढ़े हो गए, राम का भजन करो', यह शिक्षा तथा व्याख्यान उसे ज़रूर सुनने को मिलेगा।

मुझे अपने देश का अनुभव है। अन्य देशों के बारे में पढ़ा है। उसी की बुनियाद पर कह सकता हूँ कि हमारी कार्यवाही तर्कहीन है और बेरहम है। हमारे देश में नित्य बेकार के आन्दोलनों पर देश के नेतागण करोड़ों रुपया लुटा सकते हैं, पर ऐसी ही ज्वलन्त समस्याओं के लिए न उनके पास समय है न शायद सोच सकने योग्य दिमाग ही।

संसार के सारे देशों की सरकारों नें भी क्या किया है अब तक? बस चाँदी के चन्द टुकड़े उन वृद्धों को मिल जाते हैं जो एकदम असहाय हों। निपट लावारिस।

गज़ा तो यह है कि यह सब दुर्गति बूढ़ों की तब है जब संसार के अधिकांश नेता, महानेता बूढ़े रहे हैं, और आज भी हैं। उन्हें अपनी श्रेणी का तनिक भी ख्याल कभी नहीं आया। कारण यह नहीं कि वे समझते नहीं, वरन् यह है कि वे शक्तिशाली हैं, सामर्थ्यवान हैं; सो प्रभुता पाकर वे लोग अपनों को भुला बैठे हैं।

यदि हम यह ईमान से समझते हैं कि समाज के बूढ़े व्यर्थ हैं, किसी उपयोग के नहीं, तो हमलोग अपने से सच क्यों न बरतें? सचाई सबसे बड़ी चीज़ है ऐसा सभी ने कहा और माना है: और प्रकृति में जो व्यर्थ हो जाता है—पेड़ की डाल, मुर्झाया फूल—वह टूट कर गिर पड़ता है। पशु-पक्षी भी बूढ़े अपाहिज को या तो मार डालते हैं या मरने को छोड़ देते हैं, या वही स्वयं कहीं सुनसान में मरने चला जाता है।

हम भी कुछ ऐसा ही जो करें!

बूढ़े, अपाहिज, न कमाने वाले, भार-स्वरूप वृद्धों को एक इन्जेक्शन द्वारा कानूनन शान्ति की मौत भेंट की जाए। यही कानून करे, यही समाज स्वीकार करे।

चौंकिए मत! सोचिए!!

समाज बूढ़े का निरादर करता है, मज़ाक़ उड़ाता है, उसे भार समझता है, व्यर्थ का भार।

बूढ़ा अपमान, भूख, निरादर, मज़ाक़ का न निराकरण कर सकता है, न उपचार।

वह ख़ैरात पर जीवित रह कर, अपमान-अभाव से घुट-घुट कर मौत की राह देखता रहता है।

इससे ख़ैरात देने वाला और लेने वाला दोनों मनुष्यता से गिरते हैं।

कानून और समाज बूढ़े को न रोटी, न सम्मान, न कपड़ा, न मकान दे सकते हैं। कम से कम सम्मान तो दिला ही नहीं सकते।

फिर?

फिर एक ही उपाय है, जो मैंने बताया।

या फिर हम सब अपनी मान्यताएँ बदलें। धारणाएँ ठीक करें। समाज का पुनर्संगठन हो। बूढ़ों को भार न समझ कर अनुभवी शिक्षक, मार्गदर्शक, समाज का आवश्यक अंग समझा जाए।

आपके ख्याल से क्या अब ऐसा हो सकता है?

नहीं, न?

तो फिर मेरे उपाय में क्या बुराई है, बताइये तो?

अलबत्ता, ऐसा नियम होने पर बूढ़े नेताओं का क्या होगा?

इस प्रश्न का उत्तर देने की सामर्थ्य न मुझमें है न आप में! ● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्लेक्स

जूतों में
आपके पांवों को
बेहद आराम
मिलेगा...

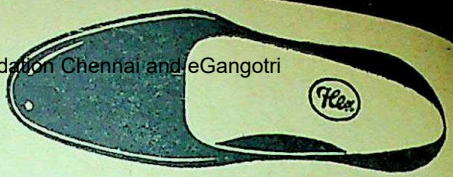

K 529

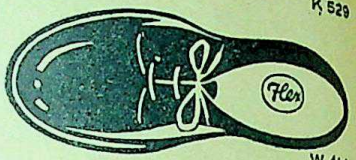

W 414

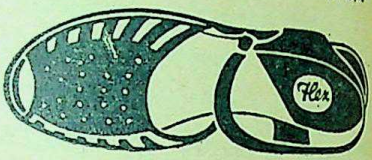

R 743

क्या सारे दिन की थकान के बाद आपके पांव जवाब दे देते हैं ? क्या आप जूता पहनते ही उसे निकाल फेंककर राहत की सांस लेते हैं ? आपके दुर्व्यवहार से आपके पांव बहुत ही दुःखी हैं। फ्लेक्स जूतों में आप अपने पांवों को सुख और आराम दीजिये। इसका निर्माण विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। फ्लेक्स जूतों के ऊपरी हिस्से मुलायम और तल्ले मज़बूत होते हैं। इनका निर्माण विशेष रूप से आपके आराम के लिए किया जाता है।

Flex

स्वाभाविक पसन्दगी

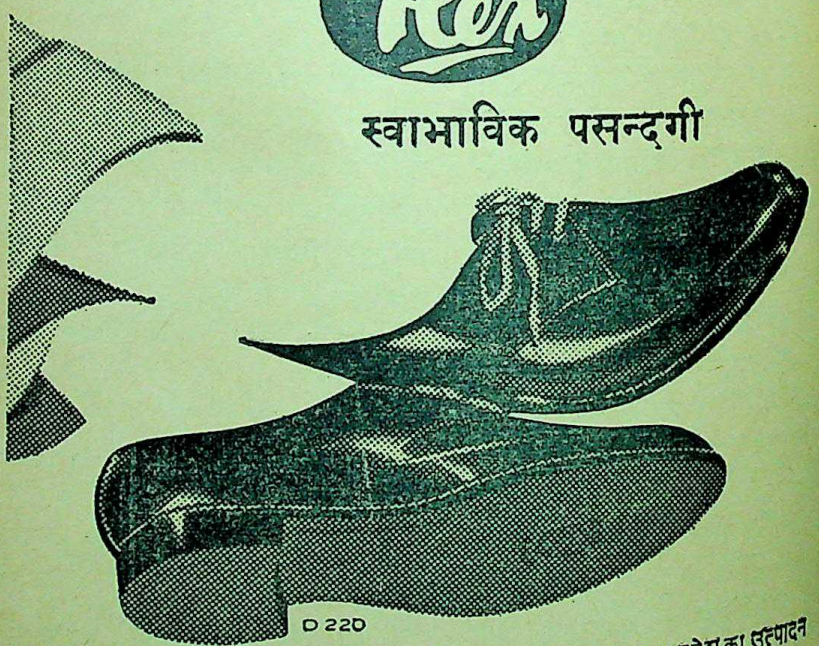

ब्रिटिश इण्डिया कार्पोरेशन लि., नार्थ वेस्ट टेनरी शाखा, कानपुर, उत्तर प्रदेश का उत्पादन
F.S.C.9.H

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी का धारावाही सहयोगी उपन्यास

एक इञ्च मुस्कान—[१३]

हिन्दी की नयी पीढ़ी के सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार-दम्पत्ति राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी द्वारा प्रणीत धारावाही सह-योगी उपन्यास 'एक इञ्च मुस्कान'—जिसके अब तक आप निम्नलिखित १२ अध्याय पढ़ चुके हैं :

१. सागर संगम अरुण-नील (जनवरी अंक) : राजेन्द्र यादव
२. कुहासा और आँधियाँ (फरवरी अंक) : मन्नू भण्डारी
३. धुंधलके के आरपार (मार्च अंक) : राजेन्द्र यादव
४. डूबते सूरज के लहर-भीगे किनारे (अप्रैल अंक) : मन्नू भण्डारी
५. बन्द दरवाज़ा और दुहराती दस्तकें (मई अंक) : राजेन्द्र यादव
६. एक बिन्दु और दो अलग-अलग रेखाएँ (जून अंक) : मन्नू भण्डारी
७. निर्णय का एक दिन (जुलाई अंक) : राजेन्द्र यादव
८. पुकारती मंज़िलों की मरीचिकाएँ (सितम्बर अंक) : मन्नू भण्डारी
९. छोटी-छोटी बातें (अक्तूबर अंक) : राजेन्द्र यादव
१०. अप्राप्य सुख की मृग-मरीचिका (जनवरी अंक) : मन्नू भण्डारी
११. एक खोया हुआ आदमी (फरवरी अंक) : राजेन्द्र यादव
१२. चाबी भरे खिलौने (मार्च अंक) : मन्नू भण्डारी

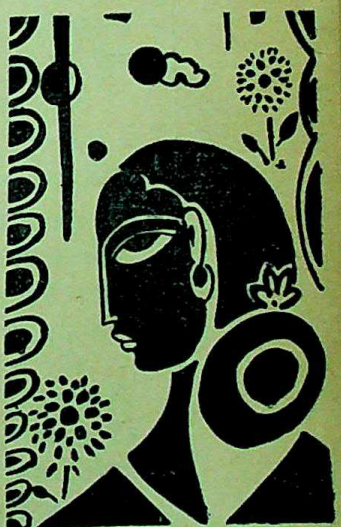

अब इस अंक के अगले पृष्ठों में पढ़ें राजेन्द्र यादव लिखित 'अव्यर्थ चाँदनी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व-कथा

अमला अमर को प्रेरित करती है कि यदि अमर को अपनी अद्भुत प्रतिभा और कला को चरम विकास पर ले जाना है तो वह विवाह के चक्कर में न पड़े, अपनी कला के साथ कभी समझौता न करे।

और अमर ने रंजना से स्पष्ट कह दिया कि वह शादी के बन्धन में नहीं बँधेगा, अपनी कला के साथ समझौता नहीं करेगा। रंजना से कट कर अमर ने स्वयं को अपने कमरे में बन्द कर लिया और दत्तचित्त होकर उपन्यास के निर्माण में लग गया। उपन्यास की समाप्ति के दिन उसने पाया कि वह तेज़ बुखार में तप रहा था। मन्दा भाभी उसे बुखार की हालत में ही टैक्सी में डाल कर अपने घर ले आती है, जहाँ उसकी तेज़-सुश्रूषा के लिए रंजना भी उपस्थित है।

इधर अमला के साथ इसी बीच क्या-क्या नहीं घट गया?—कार से कैलाश से इस क़दर झड़प हुई कि सदा के लिए उससे सम्बन्ध टूट गया;—पिताजी सफ़र से लौटे तो एक विचित्र प्रस्ताव लेकर कि वह अपने फीके किशोरी बाबू को अब क्षमा कर दे या अमला चाहे तो कैलाश से या जिससे भी चाहे उससे विवाह कर ल....

"अमला को, जिसके परिचय ने उपन्यास लिखा लिया....।" अपने उपन्यास की पाण्डुलिपि पर यह समर्पण लिखते ही अमर को लगा कि उसने मन ही मन एक बहुत बड़ा निर्णय ले लिया है...., और जल्द ही रंजना और अमर शादी के बन्धन में बँध जाते हैं।

लेकिन उनका यह चिर-प्रतीक्षित दाम्पत्य-जीवन सुखी साबित नहीं हुआ। अचानक अमला के आगमन ने स्थिति को और अधिक असह्य बना दिया; यहाँ तक कि रंजना अपने पिता के यहाँ चली जाती है।

तीनों दुखी हैं। रंजना विवाह करके दुखी है; अमला पुरुष के अभाव से दुखी है; और अमर इसलिए दुखी है कि वह इन दोनों तटों में से किसी एक पर स्वयं को टिका नहीं पाता है।

रंजना के चले जाने के बाद अमर भटकता है और व्यथा की गहराइयों में लेखक-जीवन की ट्रेजेडी का इतिहास अपने ऊपर आरोपित करके अपने को संतोष देने का प्रयत्न करता है। टण्डन जब उसके सामने उसकी इसी कृत्रिमता को खोल कर रख देता है तो वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है।

और आख़िर वही हुआ जो होना था: अमर के आग्रह पर रंजना लौट आती है, और अमर के ही आग्रह से मजबूर होकर अपने भावी शिशु को अजन्मा ही रह जाने देती है, लेकिन उसे लगता है कि उन दोनों को मिलाने वाला सेतु बनने से पहले ही टूट गया है, और अब उनकी ज़िन्दगी यों ही बीत जाएगी—नीरस, शुष्क और अवसादपूर्ण....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों? ये अचानक क्या हो गया?" फ़ोन पर टण्डन ने ज़रा नाराज़ लहजे में पूछा।

"कुछ नहीं। उसकी कुछ 'कलीग्ज़' आ गयी हैं....." बहुत ठण्डे स्वर में अमर ने बताया—"फिर किसी दिन रख लेंगे यार....।"

"और हुज़ूर कहाँ हैं इस वक्त....?"

"जंगपुरा....।"

"जंगपुरा!" टण्डन ने दुहराया और भड़क उठा, "वहाँ क्या करने गये हो? जब पहले से प्रोग्राम था तो ये सब....तुम लोगों के साथ तो कुछ भी प्रोग्राम रखना गुनाह है।"

"लेकिन उसमें फ़र्क क्या पड़ता है। तुम लोग जाओ न?"

"हम जायें या न जायें—यह हमारे ऊपर छोड़ो। अच्छा रंजना अब घर ही होगी न?"

"नहीं। वे सब की सब कहीं बाहर गयी हैं। यह भी पता नहीं, कब तक लौटेंगी।"

"और तुम?"

"मैं एक दोस्त के घर बैठा हूँ....।"

"जाओ भाड़ में.....।" और ज़ोर से टेलिफ़ोन पटके जाने की आवाज़ के साथ लाइन कट गयी।

अमर जेब से पैसे निकाल कर देने लगा; तभी देर से खड़े बैरे ने कहा: "साब वो ऊपर आपको बुलाया है....।" उसने बाल्कनी की ओर इशारा किया।

"कौन?" चौंक कर अमर ने देखा। इतना बड़ा धुँधला हॉल पार करके ऊपर बाल्कनी में दीखता कुछ भी नहीं था। "अच्छा, अभी चलता हूँ....।"

कॉफ़ी-हाउस का एकरस कोलाहल गूँज रहा था और उसमें गुज़रते हुए अमर को हल्का-सा सन्तोष हुआ। अचानक उसे जंगपुरा का नाम अच्छा सूझ गया,

अव्यर्थ चाँदनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ना हुक्म होता सीधे चले आओ....या अगर गुस्सा कम होता तो यह भी हो सकता था, टण्डन उसे रास्ते से ही ले लेता....ऐसे मूड में वह कहाँ जायेगा? उन लोगों के प्रोग्राम को क्यों बिगाड़े व्यर्थ ही....

ऊपर गया तो अनायास ही खिल उठा; मुँह से निकला, "अरे कौन शकुन?"

उसे देखकर शकुन, बैठने के लिए जगह छोड़ती एक तरफ़ सरक गयी, बोली, "मैंने सोचा इतने ज़ोर-ज़ोर से हॉल में कौन बोल रहा है नीचे! झाँका तो आप फ़ोन से भिड़े थे....।"

अमर झेंप गया। सचमुच फ़ोन से बातें करते हुए उसे खयाल ही नहीं रहता, कि उसका स्वर कितना ऊँचा है। "इतने ज़ोर से बोल रहा था क्या? हट्ट, झूठी।" अपने कन्धे से अमर के कन्धे को हल्के से धकेल कर शकुन बोली--"अरे तू तो सचमुच उदास हो गया--अच्छा बाबा तू ज़ोर-ज़ोर से बोल नहीं रहा था? मैंने यहीं से देख लिया था। पहले हमलोग सिरे वाली कुर्सियों पर बैठे थे सो नीचे का हाल सारा दीखता था। इधर खाली हुआ तो इधर आये थे।" लम्बे सोफ़े पर शकुन खिड़की की तरफ हटी। अमर बैठा तो खयाल आया कि इस समय उसकी इच्छा एकदम अकेले रहने की थी। कॉफ़ी-हाउस के सामने से निकलते हुए अचानक टण्डन को फ़ोन करने की बात उसे सूझ गयी थी, इसलिये इधर आ गया। हर क्षण आशंका थी कि कोई न कोई मिल जायेगा और उसे ज़बर्दस्ती बैठना होगा। अकेले बैठने की इच्छा से आप कॉफ़ी-हाउस जाइये तो हमेशा यही होता है--कोई न कोई आकर्ण-मुस्कान आपकी ओर बढ़ी चली आती है। कई बार तो अमर का मन हुआ, कह दे, कॉफ़ी मेरी ही तरफ़ से रहेगी, लेकिन आप कृपया उस मेज़ पर बैठ कर ली जिये--मैं इस समय शान्ति चाहता हूँ...।

"इनसे मिल, आप हैं मौनी'दा....यानी श्री चिन्तामणि घोष--आकाशवाणी के मंगीत-विभाग में....." अचानक शकुन की आवाज़ से अमर का ध्यान टूटा। अभ्यासवश उसने हाथ जोड़े--सामने वाले सोफ़े पर मांसल-दुबले-पतले-से सज्जन बैठे थे,...श्रद्धा का झक करता, चुनी बाँहों वाला कुर्ता, सोने के बटन....चाँदी की अँगूठी में जड़ा नये पैसे के बराबर अण्डाकार मूँगा, दूसरे हाथ की अँगुलि में अँगूठी की तरह पहनी हुई सिगरट। दोनों हाथों से ठण्डी कॉफ़ी का गिलास पकड़े बड़े तन्मय भाव से तीली चूस रहे थे।

"और ये अमर द ग्रेट.....यानी महान् कहानीकार, उपन्यासकार और बीवी के फरमाबरदार....." और अचानक उसे कुछ याद आ गया तो बात बीच में काट कर बोली, "अरे हाँ अमर, ये टण्डन-टण्डन कौन है?"

"तु....तू.....तुम कैसे जानती हो?" नये आदमी के सामने उसे तू कहे या तुम, इसी उलझन में उसने पूछा।

"अरे यों ही, हमारे यहाँ की एक टीचर है अरोरा, उसके बच्चे की बर्थ-डे-पार्टी में मुलाकात हो गयी। परिचय में जब संगीत-स्कूल की बात आयी तो पूछा: "एक बार अमर शायद किन्हीं शकुन जी का....." मैंने कहा, "हाँ-हाँ... बस, फिर तो तुझे लेकर इतनी बातें हुईं, इतनी बातें हुईं.....।"

बातचीत में मौनी'दा अकेले न रह जायें, इसलिए अमर ने उनकी ओर देख कर कहा, "तुम लोगों ने कोई अच्छी बात तो मेरे बारे में की नहीं होगी.....।"

"यही तो मैं अभी मौनी'दा को बता रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी कि इस क्षण-भंगुर संसार में, पर निन्दा से बढ़ कर दूसरा कोई टॉनिक ही नहीं है।" शकुन अपने स्वाभाविक लहजे में आ गयी—"उन्हीं से पता चला कि आपने लव-मैरेज की है, लड़की वहीं मेरठ की है....।"

"यह सब तो उस दिन मैंने ही बता दिया था—गोल्चा के ऊपर।" अमर ने सिगरेट निकाल ली।

"कहाँ? तूने यह सब कहाँ बताया था? झूठा!" शकुन की ठोड़ी के नीचे की सलवट कुछ इस तरह हिली कि अमर का मन हुआ उसे छू कर देखे। "तूने तो सिर्फ़ इतना बताया था कि शादी कर ली है....लव-मैरेज है और वर्षों का परिचय था—यह सब तूने कहाँ बताया था?" शकुन ने बैरे को देख कर पूछा, "अच्छा, क्या लेगा?"

"कुछी ले लूँगा....।" जान-बूझ कर बोला और मुस्कुराहट छिपाने के लिए झट सिगरेट होठों में लगा ली। "कोल्ड क्रीम।"

"दुष्ट!" शकुन ने प्यार से उसके कन्धे पर मुक्का जमा दिया, और फिर उसे खयाल आ गया मौनी'दा की ओर देख कर बोली: "मौनी'दा, ये हमारे बहुत पुराने बन्धु हैं... हम लोग एक साथ एक बाड़ी में रहते थे। तब यह हमको बहुत मारता था....।"

"तो उसका बदला ले रही है?" कह कर अमर अचानक फिर सुस्त हो आया। शकुन बेचारी क्या बदला लेगी.....बदला तो ले रही है रंजना.....। उसकी हर खुशी, हर उत्साह के ऊपर एक पीला उदास मुरझाया चेहरा उभर आता है। वह बात करता होता है और अचानक बात टूट जाती है, वह हँस रहा होता है और फ़िल्म की रील टूट जाने की तरह हँसी रुक जाती है... आजकल रंजना बोलती नहीं है। बहुत ही आवश्यक बात हाँ और ना में कहती है...बस एक मनहूस चेहरा है जो यहाँ से वहाँ घूमता है...अजब बात है अमर को रंजना का शेष शरीर नहीं, सिर्फ़ चेहरा दीखता है—मानो रंजना सिर्फ़ एक ज़र्द चेहरा हो, और अमर उस चेहरे से डरता है, घर जाते कतराता है।

"बदला तो लेना है मुझे...।" शकुन को कहते सुना—"अच्छा क्यों रे तू मुझे अपनी बीवी से नहीं मिलायेगा...?"

"चल, चाहे जब चल। लेकिन आज तो उसकी कुछ कलीग्ज़ आ गयी थीं, सो उनके साथ कहीं चली गई है।" अमर को अभी-अभी टण्डन की बात याद हो आयी। मन हुआ शकुन से कह दे—नहीं, वह कहीं नहीं गयी हैं...आसन पाटी लिये ओंधे मुँह कमरा बन्द किये पड़ी है। ख़बरदार तू कभी मेरे यहाँ मत आना नहीं तो मेरे साथ तेरे इस उन्मुक्त व्यवहार को देख कर वह आत्महत्या कर लेगी।

"नहीं, आज नहीं। फिर किसी दिन बुला। आज तो शरद पूर्णिमा है न, सो मौनी'दा के साथ गोल-मार्केट की तरफ़ जाना है। क्लाइव-स्क्वायर में आज इन लोगों ने कोई प्रोग्राम रख लिया है...चल, तू चल, हमारे साथ...।"

"हाँ, हाँ, आप भी चलिये...।" इतनी देर बाद मौनी'दा बोले।

"नहीं...मुझे कुछ ज़रूरी काम है, नहीं तो मैं ज़रूर चलता।" मन में बोला—नहीं मिस्टर अमर, तुम्हें कोई ज़रूरी काम नहीं है—यहाँ से उठ कर तुम इधर से उधर भटकोगे...उस मनहूस चेहरे को सामने रख कर मन ही मन पागलों की तरह सवाल-जवाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोगे...और फिर चुपचाप चोर की तरह रात को ग्यारह बजे घर जाकर सो जाओगे। सफ़ाई देते हुए शकुन की ओर मुड़ कर कहा : "उसी वजह से आज ऐसा अच्छा प्रोग्राम कैन्सिल कर डाला है कि अभी तक अफ़सोस है। टण्डन साहब ने किसी की गाड़ी माँग ली है। सोचा था, पाँच-छः बजे यहाँ से निकलें...और दस-ग्यारह तक आयें। ताज पहुँच जायें, शरद पूर्णिमा की रात ताज पर ही कटे, फिर दो-तीन बजे चल कर सुबह तक घर वापस.....।" बात बीच में फिर टूट गयी। प्रोग्राम तय करके जब रंजना को बताया था तो उसने निहायत ही उत्साह-हीन दृढ़ स्वर में कहा, "मैं नहीं जा पाऊँगी।"

"क्यों ? मैंने उन लोगों से तय कर लिया है।" बहुत मुलायम स्वर में अमर ने कहा। उस घटना के बाद अपने आप ही मुलायम स्वर में बातें करने लगा था।

"आप चले जाइये। मेरी तबियत अच्छी नहीं है।"

"चलो, किसी डाक्टर-वाक्टर को दिखाये देते हैं। उन लोगों ने ऐसे उत्साह से प्रोग्राम बनाया है...।"

"इसीलिये तो कहती हूँ...मुझ में किसी चीज़ के लिये उत्साह नहीं है। मैं चाहती भी नहीं हूँ कि अपनी मनहूसी से आप लोगों की खुशी...।" बात आधी रह गई और वह होंठ चबाती पलंग पर जा पड़ी। अमर थोड़ी देर खड़ा रहा, खड़ा रहा...फिर कन्धे झटक कर बाहर सीढ़ियाँ उतर आया...। पीछे हल्ली ट्रे में चाय सजाये सीढ़ियों तक आकर बोला : "बाऊजी, चाय तो पी लेते..." उसने जवाब नहीं दिया।

"आज तो वहाँ बेहद भीड़ होगी।" मौनी'दा कह रहे थे—"जाना है तो एक दिन पहले या एकाध दिन बाद जाइये।"

अमर चौंका—मौनी'दा शुद्ध उच्चारण में हिन्दी बोलते थे—कहीं-कहीं लग जाता कि बंगाली हैं। उनकी ओर सिगरेट बढ़ा कर उसने पूछा : "आप क्या इधर के ही हैं ?"

"बनारस, लखनऊ—शुरू से ही यहीं था।" उन्होंने अमर का पैकेट लेकर सिगरेट निकाली और मेज पर ठोकते हुए कहा : "यों बंगाल में एक रोमाण्टिक एसोसियेशन ज़रूर है। उसी चक्कर में एक बार कलकत्ता जा पहुँचा—

शायरों की बातें

'जोश' और फ़िराक़ गोरखपुरी के साथ किसी होटल में बैठे थे, मजाज लखनवी। बातों ही बातों में जोश साहब आइने के सामने जा खड़े हुए। कुछ देर अपने प्रतिबिम्ब का निरीक्षण करते रहे, फिर बोले—"यार फ़िराक़! मैं अभी कुछ ऐसा बूढ़ा तो नहीं हुआ। जवान ही तो दिखता हूँ।"

फ़िराक़ ने उनकी हाँ में हाँ मिलाई

वहाँ जाकर एक भी दिन मेरा मन नहीं लगा—एकदम अजनबी—मुझे लगा जैसे आस्ट्रेलिया आ गया हूँ...।"

इस बार अमर ने उनका चेहरा देखा, लहरदार खिचड़ी बाल, मोटे कत्थई फ्रेम का चश्मा, तीखी नाक और पतले - पतले सांवले होंठ—लम्बा चेहरा। उसे आश्चर्य हुआ, अभी तक वह इनके चेहरे की ओर क्यों नहीं देख पाया था ? मन को समझाया—शायद उस उदास और अपराध-आरोपते चेहरे से वह इतना डर गया है कि हर चेहरे से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय

करवाता है। पूछा, "तो आपकी फ़ैमिली...?"

"मौनी'दा अकेले ही हैं...।" धीरे-से शकुन बोली।

"ओः।" और अचानक उसकी समझ में शकुन का यों मौनी'दा के साथ ऊपर अकेले में बैठना, यों खिल-खिल पड़ना समझ में आ गया; बात जान लेने का संतोष हुआ। एक बार फिर कॉफ़ी का गिलास होठों तक लाने के बहाने देखा--आदमी तो बुरा नहीं है--उम्र होगी चालीस-पैंतालीस। गंभीर लगता है। सहसा उसके मन में आया,

---

और फिर स्वयं जोश के अनुकरण में कुछ देर आइने में देख कर बोले--"जोश साहब, मैं भी तो अभी लड़का-सा ही दिखता हूँ। अभी मेरी उम्र ही क्या है?"

और मजाज़, जो अब तक ख़ामोश बैठे, सब कुछ देख-सुन रहे थे, अनायास बोल उठे--"तो हज़रात! इस लिहाज से में तो अभी पैदा ही नहीं हुआ।"

--शाकिर पुरुषार्थी

शकुन को समझाये--किस झमेले में पड़ी है; रेडियो में दुनिया भर की लड़कियाँ होती हैं। अब बेचारा शान्ति से कुछ काम कर रहा है; फिर तू एक-एक बात पर उसकी ज़िन्दगी हराम करेगी--कि उससे मत मिलो, उससे क्यों हँस रहे थे? दुनिया भर की पुरानी बातें खोदेगी और लड़ेगी। उसके सामने पाइन एपिल पीती अमला का चेहरा और बातें उभर आईं।

"क्या बात है, आज बहुत सुस्त है...?" शकुन ने सहसा पूछा, और हँस कर बोली--

"चाँदनी रात में ताजमहल न देखने का बहुत ग़म है क्या? अरे देख लेना फिर कभी--बहुत ज़िन्दगी पड़ी है। फिर, अभी तो तुम लोगों के वो दिन होंगे कि जहाँ बैठ गये वहीं शरद-पूर्णिमा हो गयी।"

"हाँ...हैं तो।" अमर बुज़ुर्गी से मुस्कुराया। स्वप्न-भंग का पिता! ज़र्द चेहरा...क्लिनिक की गंध और लहर भीगा सूरज।

"अच्छा अमर," शकुन ने दोनों कुहनियाँ मेज़ पर टिकायीं और एक पर अमर की ओर झुक कर पूछा: "हमारे यहाँ कई दिनों से एक बहस हो रही है; मौनी'दा की अपनी राय है, लेकिन तू बता; क्या कलाकार को विवाह की ज़िम्मेदारी में पड़ना चाहिए?" अचानक अमर के सामने से शकुन ग़ायब हो गई...धुंध से उभरती हुई, बड़ी आत्मीयता से कही गयी बात रह गयी--"देखो अमर, हमलोग इस सब ज़िम्मेदारी के लिए..."

पहले मौनी'दा शकुन की गंभीरता से कुछ सामने आ गये थे--अब हल्के मुस्कुराते हुए शरीर ढीला छोड़ कर पीछे टिक गये:--"वही शाश्वत-समस्या...।"

"भई, मैं अभी कुछ भी कह सकने की स्थिति में नहीं हूँ।" अमर ने गंभीरता से कहा, फिर सिगरेट का कश खींचा। मन में उभरा, नहीं, उसे क़तई--भूल कर भी शादी नहीं करनी चाहिये! कहा: "लेकिन व्यक्तिगत नहीं, तेरी बात को अगर सैद्धान्तिक स्तर पर ही लें तो सवाल उठता है किससे?"

"किससे क्या मतलब?" शकुन जब भौहें तान लेती थी तो उसके माथे पर चाँद के शक्ल की सलवट उभर आती थी। अमर ने देखा तो ताज्जुब हुआ--यह इतनी ख़ास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात उसे पहले क्यों नहीं याद आयी ? शकुन बोली—"किसी से भी ।" "आई थिंक ही शुण्ट !" मौनी'दा जैसे नींद से जाग कर एक झटके से सीधे हो गये ।

अमर ने शकुन की बात का जवाब दिया—"मेरा मतलब था कि हमपेशा से या किसी से...।" उस दिन का अमला का वार्तालाप दिमाग़ में घुमड़ता चला आ रहा था, और वह बलपूर्वक रोके था ।

"नो, किसी से नहीं ।" मौनी'दा ने बात काट कर कहा—"हमपेशा से और भी नहीं । यह एक छलावा है कि विवाह में बँधे दो कलाकार एक-दूसरे के प्रेरक और पूरक होते हैं । रेडियो में आये दिन यह घटनाएँ होती हैं ; किसी ड्रामे में, किसी दो-गाने में, दो आर्टिस्ट साथ आते हैं, मिलते हैं, धीरे-धीरे घनिष्ट होते हैं और इस छलना के शिकार होते हैं । एक बहुत बुज़ुर्ग आर्टिस्ट ने मुझे आपबीती बता कर कहा कि हमपेशा आर्टिस्ट कभी सफल गृहस्थ हो ही नहीं सकते । दोनों चूंकि कला-सृजन की एक जैसी रचना-प्रक्रिया से परिचित होते हैं, इसलिये उनमें एक को दूसरे के प्रति न तो आस्था होती है, न श्रद्धा । रादर, कला-सृजन की इनर-स्ट्रग्ल (अन्तर्संघर्ष) के प्रति दोनों ही इनकन्सीडरेट और इण्डिफ़रेंट हो जाते हैं । एक को दूसरे की रचना-प्रक्रिया में न तो कुछ रहस्यमय लगता है न श्रम-साध्य...। कृति के प्रति सम्मान की भावना रखते हुए भी यह आधारभूत उदासीनता दोनों के बीच की खाई को..."

"प्लीज़, मौनी'दा—" शकुन उनकी बात पर उँगलियाँ चटखा रही थी—लगा, पहले भी ये तर्क सुन चुकी है और अब बहुत बोर होती जा रही है । आखिर बात काट कर बोली—"आप टू मच एकेडैमिक होने करने लगे हैं । सुनी-सुनाई बातों पर कोई सिद्धान्त कैसे बनाया जा सकता है ? आपके अनुभव सैकिण्ड हैण्ड...।"

मजबूरी के भाव से कन्धे झटक कर मौनी'दा सहसा चुप हो गये और माचिस से सींक निकाल कर खिसियाए भाव से दाँत कुरेदने लगे । वे शायद बहुत पान खाते थे ।

लेकिन अमर भीतर चौंका । मौनी'दा पढ़े-लिखे आदमी हैं— केवल संगीतज्ञ ही नहीं हैं, उसे जाने कैसे विश्वास हो गया था कि बड़ी उम्र का पढ़ा-लिखा अविवाहित बंगाली अपने युवाकाल में ज़रूर कहीं न कहीं क्रान्तिकारियों से सम्बन्धित रहा होता है । उसके मन में मौनी'दा के प्रति हल्का सम्मान जागा । इस बार कुछ अधिक सावधानी से शब्दों का चयन करके बोला : "हमपेशा का मेरा कोई अनुभव नहीं है, इसलिये मैं माफ़ी चाहूँगा । लेकिन दूसरा पक्ष भी अगर कला को न समझता हो तो एक कठिनाई कुछ-कुछ ज़रूर आती है । दोनों के जीवन-मूल्य दो तरह के हो जाते हैं । दूसरे पक्ष को रचना, रचना-प्रक्रिया और रचनाकार तीनों ही किसी अजीब नक्षत्र के वासी लगने लगते हैं । खास तौर से औरतों में एक आत्म-विश्वास कुछ ज़्यादा ही होता है । वे इसे सिर्फ़ सनक समझती हैं और सोचती हैं ये सिर-फिरे साहब उनके गले बाँध दिये गये हैं । खैर कोई बात नहीं—थोड़े दिन उछलें-कूदेंगे—इसके बाद ढर्रे पर लगा लूँगी । सारी चौकड़ी भूल जायेंगे । धीरे-धीरे जब यह आत्म-विश्वास झूठा पड़ने लगता है तो अपनी असफलता की कटुता का ज़हर...।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन को दुष्टता से मुस्कुराते देख कर अमर बीच में ही चुप हो गया। पहले उसने ज़रूर सावधानी बरती थी, मगर फिर तो जैसे वह स्वयं अपना ही विश्लेषण करने लगा।

अमर की झेंप को जान-बूझ कर दरगुज़र करते हुए शकुन ने पूछा: "तो इसके पीछे तुम प्यार और अण्डर्स्टेण्डिग की कमी मानते हो? इसे यों क्यों नहीं कहते कि औरत ज्यादा प्रैक्टीकल होती है, और उसके इस सारे अनुशासन के पीछे गृहस्थी के सुख का ही मंशा होता है—व्यापक अर्थों में प्यार ही होता है!"

"लेकिन प्यार का वह कैसा आवेश है जिसमें दूसरे की साँस ही घुट जाये?" अमर को लगा, सहसा उसका स्वर बहुत कठोर हो गया है। उसने आवाज़ गिरा कर कहा—"मैंने प्यार और अण्डर्स्टेण्डिग पर कुछ नहीं कहा—हो सकता है मंशा भी बहुत शुभ ही हो मैंने तो सिर्फ़ इतना कहा था कि दूसरा साथी अगर आपके मिशन को नहीं समझता तो दो जीवन-मूल्य इतने दूर पड़ जाते हैं कि परस्पर विरोधी हो उठते हैं!" अमर के सामने वही उदास चेहरा उभर आया।

"भई आफ्टर ऑल, परम्परागत विवाह के मुकाबले लव-मैरेज को इसीलिये तो तरजीह दी जाती है कि दोनों पक्ष एक-दूसरे की दृष्टियों और जीवन-मूल्यों को समझें...।" शकुन डिबेटर के अन्दाज़ में बोली—"वर्ना फिर तो ...

"इतना सब सोच-समझ कर लव-मैरेज कौन करता है?" मौनी'दा ने एक हाथ की आड़ करके दूसरे की चुटकी से बारी-बारी से नथुनों में सुंघनी भरी और रूमाल से नाक होंठ पोंछ कर कहा—"यहाँ तो पड़ौस में पहले दादा-दीदी हुआ, फिर सिनेमा वाला जन्म-जन्मान्तर का प्रेम हुआ; दोनों भाग कर बम्बई पहुँच गये—अब लवर साहब विलवेड के गहने बेच रहे हैं और नौकरी खोज रहे हैं...इज़ इट लव?"

"मौनी'दा—" लाड़ से ठुनक कर शकुन कहने लगी—"आप क्या किसी चीज़ का उजला पक्ष देख ही नहीं पाते? अच्छा आप गहने बेचने की ही बात लीजिये, मेरा हस्बैण्ड मुझे हफ्तों खाना नहीं देता था, कमरे में बन्द करके टॉर्चर करता था कि मैं घर से रुपया क्यों नहीं मँगाती। वह तो लव-मैरेज नहीं थी।"

बहुत चिन्तायुक्त स्वर में मौनी'दा बोले—"नहीं मिस्टर अमर, मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा। आप मेरी बात पर ग़ौर करके देखिये; इधर प्रेम-विवाह जिस तेज़ी से असफल होते जा रहे हैं, उससे लोगों के मन में बड़ा डर पैदा होने लगा है। इन विवाहों में से अधिकांश की उम्र दो साल भी नहीं होती। दो-तीन साल जैसे-तैसे खिच-खिच, किच-किच में बिताये, फिर वही तलाक़, लीगल सैपरेशन, क़ानूनी खींच-तान..मैं पूछता हूँ, आखिर परम्परागत विवाह ही क्या बुरे थे? हमारे आस-पास जाने कितने उदाहरण हैं जहाँ माँ-बापों की की हुई शादियाँ हैं और मियाँ-बीबी दसियों-वर्षों से सुख से रह रहे हैं। शकुन जैसा एकाध अपवाद छोड़ दो...। अभी उस दिन एक दोस्त का अमेरिका से लौटा हुआ लड़का कहता था कि अंकल, कोई भी छठे-सातवें तक पढ़ी सीधी-सादी लड़की, पापा से कहिये तलाश कर लें—मुझे ये सब स्ट्रीम-लाइन्ड, पढ़ी-लिखी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये...मैं तो दंग रह गया।" फिर शकुन की ओर मुड़े--"सचमुच शकुन मैं तो दंग रह गया।"

अमर को टंडन और मंदा भाभी का ख्याल हो आया। दोनों कितने सुखी हैं। उसे लगा मौनी'दा ने एकदम सही बात कही है--रंजना अगर छठे-सातवें तक ही पढ़ी होती तो शायद अपने दृष्टिकोण को अधिक आसानी से समझा लेता। लेकिन उसके सारे शिक्षा-संस्कार विरोध कर उठे। वह बोला : "लेकिन मौनी'दा, ये तो इतिहास के चक्र को पीछे लौटा ले जाने जैसी बात...।"

"अब नाम इसे आप जो भी दें। जो स्थिति है, वह मैंने बता दी।" लगा जैसे सूँघनी से उनकी सोई तर्कशक्ति सहसा जाग गई है--"और परम्परागत विवाहों के सफल होने का कारण भी साफ़ ही है। उनमें शिक्षा और उम्र दोनों ही कम होती हैं, सो दोनों लड़-भिड़ कर आपस में एडजस्ट कर लेते हैं, एक-दूसरे के रंग में रँग जाते हैं। लव-मैरेज़ों में एक तो उम्र बड़ी हो जाती है सो उस समय तक हर चीज़ के प्रति दृष्टिकोण और आदतें दोनो ही पक्के हो चुकते हैं...तब एडजस्टमेण्ट उतना नहीं होता, जितना क्लैश होता है...।"

शकुन बार-बार आसन बदल कर कुछ कहना चाह रही थी। इस बात पर हल्के से ताली पीट कर हँस पड़ी--"हियर हियर। वाह मौनी'दा ; यानी बाल-विवाह और अशिक्षा आदर्श सुखी गृहस्थ-जीवन की असली कुंजियाँ हैं...।"

"हाँ, मौनी'दा, यह तो आप दोनों पक्षों की विकासहीनता की मजबूरी को गृहस्थ-सुख का नाम दे रहे हैं।" अमर ने नरमी से विरोध किया। उसे लगा यह आदमी को एकदम भीतर से रूढ़िवादी है--कहीं शकुन दुबारा ग़लती करने तो नहीं जा रही? बात कहीं सख़्त तो नहीं हो जायेगी, सोच कर उसने दृढ़ता से कहा : "इस तरह के जिन सुखी गृहस्थों को आप आदर्श कह कर पेश करते हैं--मैं पूछता हूँ क्या वे सब के सब मॉडियोकर लोग नहीं हैं? बीवी-बच्चे, मकान-प्रमोशन, जायदाद इस सब को छोड़ कर ज़िन्दगी में उनकी उपलब्धियाँ क्या हैं? बँधी-बँधाई लीक पीटने के सिवा उन्होंने क्या किया है? जो उन लीकों से हटे, उन्हें गालियाँ देकर उन्होंने ज़ोर-ज़ोर से गला फाड़ कर दी। मगर सभ्यता, संस्कृति, कला-विज्ञान को उन्होंने कुछ दिया?" अमर को लगा, जैसे वह अमला की बात को अपने शब्द दे रहा है।

बीमारी का इलाज

मण्टो की कहानी 'बू' पर जब मुक़दमा चला, और इश्लाक के ठेकेदार कई अख़बारों ने उस पर कीचड़ उछालना शुरू कर दिया तो एक दिन उर्दू के एक प्रसिद्ध साहित्यकार ने मण्टो से कहा, "भई मण्टो, लाहौर के कुछ भंगियों ने अदालत में शिकायत

शायद मौनी'दा स्वयं अपने निकाले नतीजे पर सकपका गये थे। बात सँभाल कर बोले--"हाँ, अब आये आप मूल विषय पर। कलाकार को गृहस्थी की ज़िम्मेदारी उठानी चाहिये या नहीं,--विषय यह था। आप लोग उसे परम्परागत-विवाह और प्रेम-विवाह की तुलना पर ले आये--वहाँ मैं समझता हूँ मेरी बात बहुत ग़लत नहीं थी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं, वहाँ भी मैं समझता हूँ सारे नज़रिये में कोई आधारभूत ग़लती है।" अमर ने महसूस किया कि इतनी देर से वह सिर्फ चेतना की बड़ी ऊपरी सतह से बातें कर रहा था—उसका अधिकांश ध्यान तो रंजना के व्यवहार, अपने अवसाद और शकुन, मौनी'दा को पढ़ने में ही लगा था—लेकिन अब सहसा मौनी'दा की इस बात ने उसके भीतर की किसी सोयी चीज़ को चुनौती दे दी है, एक ऐसी समस्या लाकर रख दी है जिसका सैद्धान्तिक पक्ष उसे अपने सामने साफ़ करना ही होगा—उसके अपने जीवनानुभव उसके पक्ष में हों या विपक्ष में। अपने लिये नहीं, बल्कि अपने से बाद वालों के लिए। और यह तो होता ही है, पीढ़ी किसी समस्या का वैचारिक और सैद्धान्तिक समाधान करती है लेकिन व्यवहार में रूढ़ियों से ही चिपकी रहती है। तब सिद्धान्त और व्यवहार के इस अंतर से झुंझला कर प्रायः दूसरी पीढ़ी उसे व्यवहार में ले आती है। व्यवहार की अपनी मजबूरियाँ, कमज़ोरियाँ और लिहाज़ हैं, लेकिन बात दिमाग़ में साफ़ कर लेने में क्या बुराई है! इसलिए एक तरह वह मुखर-चिन्तन करता-सा बोला—"मौनी'दा, पहले दोनों प्रकार के विवाहों का मूलभूत अन्तर समझ लें। मुझे लगता है, परम्परागत विवाह, दो अलग परिवेशों का गठबन्धन है—माइनस वास्तविक उम्मीदवारों के। उधर प्रेम-विवाह दो व्यक्तियों का सम्बन्ध है—माइनस परिवेशों के...। यानी परम्परागत विवाह में दोनों पक्ष एक दूसरे के कुल, गोत्र, जाति, परिवार, स्तर, नगर सभी कुछ जान लेते हैं, नहीं जानते हैं तो लड़के और लड़की को व्यक्तिगत रूप से—गृहकार्यकुशला कन्या और कमाऊ पति, उम्मीदवारों के व्यक्तिगत गुण कम; स्थिति अधिक होते हैं। जबकि प्रेम-विवाह में दोनों एक दूसरे को ही जानते हैं और परिवेश को भुला देते हैं—दोनों किसी भी परिवार और परिवेश के हों। वैज्ञानिक शब्द लूँ तो कहूँ कि उस ज़माने में लोगों का विश्वास यह था कि व्यक्ति और व्यक्तित्व सिर्फ़ वातावरण की उपज होते हैं और कुछ नहीं; इसलिये वातावरण की संगति बैठा लो—सब ठीक हो जायगा। जबकि बाद के लोगों का विश्वास यह हुआ कि नहीं, व्यक्ति वातावरण से विद्रोह करके भी अपना व्यक्तित्व बना सकता है। वह उस वातावरण को अपने अनुसार तत्काल ही न ढाल सके तो, उसे छोड़ कर कम से कम दूसरा वातावरण अपना तो सकता है। इस प्रकार मैं समझता हूँ यह ज्यादा वैज्ञानिक तरीक़ा है कि जिनका सम्बन्ध हो, वे व्यक्ति एक दूसरे को जानें—"

अचानक अमर को लगा कि उसकी बात श्रोताओं को ऊबाने लगी है। मेज़ की काली सतह पर कुहनी टेके शकुन एक हाथ से अपनी मटरमाला को ठोड़ी पर अटकाती है और फिर गिर जाने देती है; शंका से कभी-कभी मौनी'दा को देख लेती है कि

की है कि आपने एक कहानी 'बू' लिखी है जिसकी 'बदबू' दूर-दूर तक फैल गई है।"

मण्टो ने सुना और उसी तरह मुस्कराते हुए कहा, "कोई बात नहीं, मैं एक कहानी 'फ़ीनाइल' लिखकर उनकी शिकायत रफ़ा कर दूँगा।"

—शाकिर पुरुषार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्राइमरी स्कूल वाले भाषण से वे कितने ऊब रहे हैं। लेकिन शायद मौनी'दा ध्यान से सुन रहे थे। उसके रुकते ही बोले—"फिर? इससे क्या सिद्ध हुआ? इसके विरोध में तो जाने कब से तर्क दिया जाता रहा है कि इस प्रकार परिवेशहीन-विपरीत जाति (सैक्स) के लोग आपस में मिलते हैं तो अपना अच्छे से अच्छा रूप ही सामने रखते हैं—असलियत तो बाद में खुलती है...।" फिर उन्होंने दोनों जेबों में कुछ टटोला—घड़ी देखी—"और इसीलिये अधिकांश प्रेम-विवाह असफल हो जाते हैं।" फिर उठते हुए बड़ी नम्रता से बोले—"सात से ऊपर हो गया है अमर जी; अब हम चलेंगे। इस बहस को फिर किसी दिन के लिए रख लें... आप भी चलें...।"

"नहीं, मुझे सचमुच काम है, वर्ना चला चलता।" अमर बहुत कुछ कहना चाहता था; सहसा भूल गया। उस क्षण उसे यह भी याद नहीं आया कि बहस शुरू किस बात पर हुई थी, लेकिन सारी माथा-पच्ची का निष्कर्ष इस तोड़ पर हो, इससे बड़ी बेचैनी हो रही थी। इस सारे समय उसका मन होता रहा कि इस बहस में अमला भी रहती।

सीढ़ियों पर बैरा मिल गया तो ज़िद करके मौनी'दा ने ही बिल दिया। वह आगे-आगे बाहर निकल कर कॉरीडोर में पान लगवाने लगा। सिगरेट मुँह में लगा कर वह माचिस जलाने ही को था कि स्प्रिंग वाला दरवाज़ा खोल कर मौनी'दा और शकुन साथ बाहर आये; मौनी'दा शकुन के लिये दरवाज़ा रोके रहे। उसका हाथ वहीं ठिठक गया; एक क्षण को उसे लगा, जैसे ये दोनों यहाँ रोज़ आते हैं, और नियम-पूर्वक तीनों यहाँ बैठते हैं, फिर इसी तरह [illegible] खाने निकलते हैं। उसे जाने क्यों, [illegible] जोड़ा बड़ा मन-जुड़ाने वाला लगा। [illegible] ख़याल आया; शायद वह टण्डन दम्पति [illegible] शकुन-मौनी'दा को कन्फ्यूज़ कर रहा है। [illegible] हल्की-सी मुस्कुराहट आ गयी।

"किस बात पर हँसी आ रही है?" बहुत पास आकर धीरे-से शकुन ने पूछा। शायद वह उसके मन की बात ताड़ गयी थी।

पान वाले के बढ़े हुए हाथ से पान लेकर उसने मुस्कुराहट को और भी मुखर करके कहा: "मैं मौनी'दा की बात पर हँस रहा हूँ। अभी वातावरण और परिवेश में से मौनी'दा वातावरण का पक्ष ले रहे थे—और वह [illegible] गये कि अभी बता चुके हैं कि बंगाल [illegible] आस्ट्रेलिया जैसा लगा और कुछ दिनों में [illegible] भाग खड़े हुए। वहाँ भी उन्हें व्यक्ति [illegible] बचाने की ही चिन्ता ज़्यादा पड़ी..."

"गुड।" चूना चाटते हुए मौनी'दा मुस्कुराये। उनके चश्मे के दोनों कोनों [illegible] रोशनी का चोंधा झलक रहा था। [illegible] वाले हाथ को ऊपर-नीचे करके बोले—"[illegible] शब शंगीत का टान-पलटा था...। हाँ, [illegible] मैरेज में एक बाट अच्छी है कि शाड़ी [illegible] डाड़ी...।"

उनकी अगली बात टूट गयी। [illegible] खुले में, पॉलिशवालों के बाद, एक कार [illegible] टिके कुछ लोग इतने ज़ोर-ज़ोर से [illegible] लगे थे कि सब का ध्यान उधर खिंच गया था। दो युवतियाँ और दो नवयुवक पहले पान [illegible] खड़े बातें कर रहे थे, फिर खिल-खिला [illegible] हँसते हुए दो-दो क़दम पीछे हट आये। [illegible] सरदार लड़के ने कोई चुटकुला सुनाया [illegible] अमर को उन लोगों का यों दिन-दहाड़े [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोल कर हँसना एक ऐसी अजब बात लगी कि मन हुआ जाकर उन्हें टोक दे...ध्यान आया, उसे इस तरह हँसे हुए जाने कितने युग हो गये हैं। वर्ना उसके ठहाके दोस्तों में मशहूर थे और कॉफ़ी हाउस में ही दोस्तों के बीच उसके यों हँसने पर बैरा बड़े क्षमा माँगने के लहजे में एक बार बोला था—"सा'ब, मैनेजर साहब ने इतने ज़ोर से हँसने...।" "यानी इतनी ही ज़ोर से रोयें तो मैनेजर साहब को कोई शिकायत नहीं होगी...।" किसी ने जवाब में कहा और हँसी के क़हक़हे दुगुने ज़ोर से गूँज उठे...कलकत्ते में अमला के यहाँ जाने किस बात पर एक बार हँस पड़ा था तो अमला बोली थी—"इतने ज़ोर से नहीं हँसते हैं अमर...।" शायद उसे डर था कि उसके परिवार के लोग तथा नौकर-चाकर कहेंगे कि कैसा असभ्य मित्र है अमला का...। इन चारों को हँसते देख कर पहली बात उसके मन में आयी इन लड़कियों को आपस में ईर्ष्या नहीं हो रही ?....इन दिनों किसी को हँसते-मुस्कुराते देख कर उसे बड़ा आश्चर्य होता था, पहला सवाल उठता—क्या इसके घर में ऐसी शान्ति है कि यों उन्मुक्त भाव से हँस ले ? लिपस्टिक लगाये, पॉलिश्ड दाँतों की मुस्कुराहट बिखेरती औरतों को वह ग़ौर से देखता रह जाता, कि घर की देहलीज़ पार करते ही यह खिला हुआ चेहरा किस तरह बदल जाता होगा ? वह अपने पर अथाह आश्चर्य करता ; देखो कितनी गहरी बात पहले उसकी जानकारी से बाहर थी कि हर बात पर हँस-हँस कर दुहरा हो जाने वाला प्रत्येक जोड़ा, रात को बिस्तर के दो सिरों पर एक दूसरे की ओर से करवटें बदल कर सोता है। बड़े दुख से अक्सर स्वयं प्रश्न करता क्या दुनियाँ का हर आदमी ऐक्टर है और उसे हर पल दो ज़िन्दगियाँ जीनी पड़ती हैं—एक वह अकेले में अपनी पत्नी के साथ जीता है, दूसरा समाज में आकर ? बाहर से आकर आदमी कोट-पेण्ट ही उतार कर वार्डरोब में नहीं रखता, एक चेहरा भी उतार कर हैंगर पर लटका देता है—बाहर निकलेगा तो फिर पहन लेगा...दुनिया के किसी आदमी की तस्वीर, किसी का भी चेहरा, देख कर पहला प्रश्न मन में यही उठता—इसका 'वह' चेहरा कैसा होगा ? और अपनी इस मनोवृत्ति से वह इतना कतराता था कि उसने लोगों के चेहरे देखना छोड़ दिया। अब असली कारण समझ में आया कि क्यों उसने मौनी'दा का चेहरा नहीं देखा था...

"अच्छा अमर, अब चलें।" शकुन की बात उसे फिर ऊपर खींच लायी। कुछ औपचारिक बातें हुईं और फिर दोनों को कॉरीडोर में जाते हुए देर तक अमर देखता रहा। शकुन ने आसामी लोक-कला वाला काला शॉल कन्धों पर डाल रक्खा था,—कमर तक पीठ पर कसा शॉल, और वहीं साड़ी के पल्ले का सिरा, साथ में मौनी'दा की ढीली-ढाली बंगाली धोती का चुन कर कुर्ते की जेब में अटका हुआ अभिजात फूल...अचानक एक प्रश्न मन में उभरा : क्या यही वह शकुन है जिसके साथ दिनछिपे चुपचाप खड़े होकर 'जय जगदीश हरे' की आरती गाया करते थे ? बीच में आँखें खोल कर सबको हाथ जोड़े आँखें बन्द किये देख लेते, और आरती समाप्त होते ही प्रसाद के लिये छीना-झपटी हो जाती। सातवें या आठवें में अंग्रेज़ी सवाल ग़लत कर आया था तो घर जाने के बजाय, सारे दिन शकुन के यहाँ छिपा रहा। उसके स्कूल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते ही उसकी गोद में मुँह छिपा कर रोने लगा।

जाने क्यों मन में आया, शकुन को वापस बुला ले और उसके कन्धे पर माथा टेक कर रोने लगे...शकुन, शकुन, मैं बहुत दुःखी हूँ शकुन। फिर से एक पेपर ग़लत कर आया हूँ। लेकिन इस बार घर वालों से भाग कर नहीं, अपने से भाग कर किसी गोद में रो लेना चाहता हूँ...चाहता हूँ कोई मेरी आँखों माथे पर बिखरे बालों को समेट कर फिर पूछे : "क्या बात हुई अमर...? अमर... अच्छा देखो अमर, तुम हमें नहीं बताओगे ?" और मैं सिसकते-सिसकते बता दूँ...फिर कोई प्यार से झिड़क कर सारा बोझ अपने पर ले ले : "बस ? अरे लड़का होकर यों रोता है ? इम्तहानों में तो अच्छे-बुरे पेपर होते ही हैं। चल मैं कहती हूँ तेरे बाबूजी से..."

शायद मौनी'दा यही तो कह रहे थे कि इस प्रकार के विवाहों में सबसे बड़ी बात यही है कि सारी ज़िम्मेदारी ख़ुद अपने ऊपर होती है...जो कुछ है, खुद भोगना पड़ता है...और यही बात उसने कही थी पालम पर अमला से—'मैं किसी से कुछ भी नहीं कह सकता।' आगे इस क्षण जोड़ा—शायद यही मेरी नियति रहेगी कि यों ही एक पाप—नहीं, शायद अपराध का बोझ लिये घुटता रहूँ। अपने आप से लड़ता और स्तर-स्तर करके बाढ़ के कगारे की तरह धसकता रहूँ।

जनपथ के फुटपाथ पर चलते हुए अमर ने हल्के से संतोष की साँस ली : चलो, कॉफ़ी हाउस के आस-पास भी किसी साहित्यिक-जीव से मुठभेड़ नहीं हुई। नहीं तो छूटते ही पूछता—'कहिये, क्या लिख रहे हैं आजकल ?' और अन्दर की कचोट को बाहरी हँसी में बदल कर उसे कहना पड़ता : "कुछ नहीं यार अपना कुछ लिखने-लिखाने का प्रोग्राम नहीं है। तुम अपनी बात बताओ। क्या नोट मार रहे हो ?"....सच ही लगता है, क्यों हो गये—न कुछ लिखा है और न लिखने का मन में इरादा है....बिल्कुल लगता है, जैसे कोई बात ही इस लायक नहीं है कि उस पर लिखा जाय। और जो लगती भी है, वह दूसरे क्षण याद नहीं रहती। अजब याद्दाश्त हो गयी है—हर चीज़ या तो दिमाग़ से फिसलती लगती है या उसके फिसल जाने का डर बना रहता है...जैसे हर चीज़ से धीरे-धीरे उसका सम्बन्ध टूटता चला जा रहा है और ज़िन्दगी पकड़ से सरकती जा रही है। चीज़ें एक दूसरे में गडमड हो गयी हैं...

वज़ीफ़े का उपयोग

"मजाज़ ! एक बात कहूँ, अगर तुम मान जाओ।" राजा महमूद अब्बास ने बड़े प्यार से कहा।

"सर आँखों पर, राजा साहब। फ़रमाइये क्या इर्शाद है ?"

"मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे लिए दो सौ रुपए माहवार वज़ीफ़ा मुक़र्रर कर दूं।"

"बड़ी नवाज़िश है हुज़ूर की।"

इस बात पर उसे ध्यान आया कि चीज़ों के गडमड होने का एक उदाहरण यह भी है कि जो बात वह शकुन के लिए सोच रहा था, वह वास्तव में अमला के लिए उसके मन में आयी थी। वर्ना विवाह और प्रेम पर सोलहवीं सदी के उस वार्तालाप को मुग्ध भाव से सुनने वाली शकुन के लिए इसके मन में ऐसे भाव कैसे आ सकते थे ? उसे अब अफ़सोस होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा कि मौनी'दा की उस दकियानूसी बात का उसने खुल कर विरोध क्यों नहीं किया, और क्यों उसे वे सारी बातें सच लगीं ? ज़िन्दगी की पकड़ से सरकने का एक उदाहरण यह भी है कि वह जब जो कुछ सुनता है, वही सच लगने लगता है। उसकी अपनी कोई दृष्टि ही नहीं रह गयी है। उसने अपने को विश्वास दिलाना चाहा कि हज़ारों बार उसके मन में यह बात आयी है कि मानो वह कहीं किसी दिशाहीन जंगल में भटक गया हो ; लेकिन जिसे सचमुच भटकना कहते हैं वह यही स्थिति है। जिधर ज़रा भी रोशनी, जिधर ज़रा भी स्वर मिलता है वह उसे ही मुक्ति-द्वार समझ कर दौड़ पड़ता है...कभी रंजना...कभी अमला..कभी शकुन..!

मजाज़ ने बड़े अदब से कहा।

"लेकिन", राजा साहब ने बड़ी संजीदगी से कहा, "शर्त यह है कि तुम शराब पीना छोड़ दो।"

"शराब पीना छोड़ दूँ !" मजाज़ ने हैरान होते हुए कहा, "तो आपके दो सौ रुपए हर महीने मेरे किस काम आएँगे राजा साहब ?"

—शाकिर पुरुषार्थी

लेकिन वस्तुतः सबकी ज़िन्दगी अपने-अपने गति-चक्र में कुछ इस तरह बँधी घूम रही है कि किसी को किसी भी बाहरी नक्षत्र को अपने पथ में ले लेने का हक़ नहीं है....गहराई से देखा जाय तो किसे फ़ुरसत है अपनी ज़िन्दगी में उसे गंभीरतापूर्वक लेने की—अमला को ? नहीं, यह भ्रम उसने कभी अपने भीतर नहीं आने दिया ? शकुन को ? रंजना को ?....हाँ रंजना को भी नहीं....

अपने फ़ालतू होने की ऐसी तीव्र अनुभूति तो उसे कभी नहीं हुई, जैसी इन दिनों हमेशा होती रहती है...हल्ली जिस समय उसे सुबह चाय का प्याला देता है तो सुबह का अख़बार और ख़ाली प्याला मेज़ पर पहले ही रक्खा होता है, और रंजना गुसलखाने में होती है (एक बार उसने देखा कि अख़बार में वाण्टेड वाले पृष्ठ पर "लेडी लैक्चरार" की ख़ाली जगह, पेंसिल से छोटा-सा टिक-मार्क लगा है...। जगह कहीं गोहाटी में थी) फिर वह साड़ी लपेटे बड़ी व्यस्त-सी आती है और कपड़े बदलते, या बाल सँवारते हुए आवाज़ लगाती है—"हल्ली, जो-कुछ बना हो जल्दी दे दो। हमें देर हो रही है।....फिर दो-एक ग्रास खाकर पूछती है, "आप अभी खाइयेगा ?"....अमर का मन होता है, इस सबको चुपचाप घुटते हुए देखने की अपेक्षा वह सुबह-सुबह कहीं घूमने चला जाया करे। एकाध बार उसने सोचा भी कि सुबह पाँच बजे उठ कर घूमने जाया करेगा—सारे दिन ताज़गी रहेगी ; लेकिन आदत कुछ ऐसी बिगड़ी है कि आठ से पहले आँख ही नहीं खुलती। और फिर जब तक रंजना रहती है एक तनाव-सा बना रहता है ; कहीं कोने में अधलेटा वह किसी किताब-अख़बार के पीछे मुँह छिपाये प्रतीक्षा करता रहता है...वह कहीं भी बैठा रहे लेकिन उसकी एक चेतना है जो हमेशा रंजना के साथ-साथ घूमती और आ-आकर अमर को सूचना देती रहती है कि अब वह क़लम में स्याही भर रही है, अब सैण्डिल के फ़ीते बाँध रही है...अब छाते के भीतर अधबने चिड़िया के घोंसले को बाल्कनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भुनभुनाती झाड़ रही है...अब सीढ़ियाँ उतर गयी है। और जैसे ही वह चेतना उसे सूचना देती है कि रंजना चली गयी है कि मुक्ति की साँस लेता है और सायास लादे उत्साह से हल्ली को पुकारता है—"हल्ली यार, एकदम गरम चाय तो दो..." और रंजना के आने से पहले ही वह निकल जाता है; लौटता है तो उसका खाना मेज़ पर रक्खा होता है... रंजना चुपचाप बाल्कनी में खड़ी होती है या बिस्तर पर लेटी होती है मगर उसकी 'चेतना' उसे बता देती है कि सोयी नहीं है...जब वह बाल्कनी में होती है, या कुछ पढ़ रही होती है तो अमर को बेहद बेचैनी महसूस होती रहती है, उसका मन होता है मेज़ पर रक्खे सारे बर्तनों को पागलों की तरह इधर-उधर फेंक दे और खूब चीख-चीख कर कहे—"मुझे यह खाना नहीं खाना...।" लेकिन चुपचाप खा लेता है। जैसे उसकी हिम्मत नहीं पड़ती कि पूछ ले—कोई आया था? इस घर की व्यवस्था का सूर्य रंजना है, वह तो उस सौर मंडल के गति-प्रवाह में घूमता हुआ 'डमी' नक्षत्र है....अपनी धुरी से टूट कर भटकता हुआ फ़ालतू नक्षत्र...बुझने और गिरने की प्रक्रिया के आगे माथा टेके—निष्क्रिय...।

उसे हमेशा महसूस होता रहता है कि कुछ है जो हो चुका है...कोई महत्वपूर्ण घटना अभी-अभी घट कर चुकी है; और कुछ है जो होने वाला है...और इस 'घटित' और 'घटनीय' के बीच की तनाव भरी स्थिति में वह सिर झुकाये फ़ालतू की तरह खड़ा है... दिन-पर-दिन गुजरते जाते हैं और 'घटित' की बोझिल छाया (अपराध?) और 'घटनीय' की आशंका भरी प्रतीक्षा उसके मन के एक-एक पंख को नोचती जाती है...इस बिन्दु पर खड़ा होकर कुछ भी लिखने की बात उसने सोचना ही बन्द कर दिया है—यानी घर से निकलने से पहले ही दोनों तरफ़ का बस का किराया, कॉफ़ी और दो-चार आने सिगरेट का हिसाब लगाना पड़ता है...। कहीं कोई आ न जाय, कहीं कोई मिल न जाय का डर उसे निरंतर किसी वीरान दुनिया में खदेड़े लिये चला जा रहा है...क्या इसी स्थिति के लिए उसने विवाहित जीवन की कामना की थी...?

एकाध बार ऐसा भी हुआ है कि वह आया तो देखा, रंजना टेबिल लैम्प से कुछ पढ़ रही है। उसे देख कर रोशनी के घेरे से मुँह निकाल कर पूछती है, "आप पढ़ेंगे क्या?" इच्छा रहते हुए भी अमर कह देता 'नहीं तुम पढ़ो, मैं लेटूँगा...।" और लेट कर वह चुपचाप देखता है रोशनी के दायरे में एक पथराया हुआ चेहरा गुमसुम स्थिर है...सीधी नाक, कसे होंठ, पलकें और निगाह पृष्ठ की पंक्तियों पर न हिलें तो लगे जैसे मूर्ति हो। दूर से अमर को लगता है कि नाक के पास और आँखों के नीचे कालिमा की पट्टी इधर फैली है, दिन में उसने देखा ही नहीं—देखे देखते चेहरे की माँस-पेशियाँ ढीली होकर झुर्रियों के रूप में बदल जाती हैं—और ईमानदारी से उसकी समझ में नहीं आता कि क्या यही सौन्दर्य है? नारी में सुन्दर आखिर है क्या? क्या रंजना में भी कभी उसे कुछ सुन्दर लगता था?

फिर देखते-देखते उसकी पुतलियाँ भर उठतीं—मैं इस लड़की को आखिर क्यों मार रहा हूँ? वह हल्के से कहता—"सो जाओ न, सारे दिन बाहर रहती हो..." रंजना सोचती-सी निगाहें उठाते, अँधेरे की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंह करती और क्षणांश के लिए एक हल्की-सी मुस्कुराहट कहीं उसके होठों पर तैर जाती—अमर को लगता, मानो कह रही हो—बड़ा ख़्याल है...। और अमर का मन होता दोनों मुक्कों से तकिये को कूट डाले...वह हल्के से करवट बदल कर आसमान के छोटे-से टुकड़े को देखने लगता...टण्डन के यहाँ उसने रंजना का खत पढ़ा था, मंदा के नाम। उसमें कहीं लिखा था अमला के लिए—"बड़ी ही विचित्र है इसकी मुस्कान, जो इसके अधरों पर फैल कर इसके लावण्य को इतना अधिक बढ़ा देती है कि मन अनायास ही बँध जाये...।" और वह शायद डायरी में लिखे—"रंजना बोलती कुछ नहीं है, लेकिन ज़हर बुझी मुस्कान किसे कहते हैं यह देखना हो तो रंजना को मुस्कुराते देखना होगा..." नहीं, नहीं, डायरी में कुछ नहीं लिखना... डायरी और पत्र तो रंजना की निगाह से बच ही नहीं सकते...दस तालों में वह डायरी और पत्र पढ़ती है...अमर के प्रति उसकी कोई ज़िम्मेदारी है या नहीं, वह क्या पढ़ता है, क्या लिखता है, खाता-पीता है या नहीं—उसके कपड़े धुले हैं या बटन टूटे हैं; उसकी मानसिक स्थितियों का लेखन पर कोई प्रभाव पड़ता है या नहीं—उसकी आर्थिक व्यवस्था क्या है, उसकी चिन्ता-परेशानियाँ क्या हैं—यह सब जानने की उसे क़तई कोई उत्सुकता नहीं है; हाँ उसका 'व्यक्तिगत' क्या है—इसे जानने को वह बेहद व्याकुल है...

"अरे!" अमर अचानक चौंक कर झटके से खड़ा हो गया—"शायद आज आया, अमला का खत मेज़ पर ही छूट गया!" उसे याद आया तो उसने झटपट सारी जेबें तले तक खखोलीं। हाँ, नहीं है! उफ़! आज ख़ैर नहीं है। यह क्या ग़ज़ब हो गया? पत्र पढ़ते हुए ख़ुद उसे यह आशंका हुई थी कि कहीं ये हिस्से रंजना न पढ़ ले और अब? पागलों की तरह उसने हथेली से कई बार माथा ठोका—"अब क्या हो?" उसने जैसे मदद के लिए चारों ओर देखा; वह इस समय सेण्ट्रल-विस्टा एरिया में खड़ा था, सामने चौड़ी-सी नहर थी और अनेक नावें दूर-पास तैर रही थीं। अगर स्कूटर भी ले और जल्दी से पहुँच भी जाय तो कोई फ़ायदा नहीं—रंजना अब तक पढ़ चुकी होगी। अब तो देर से जाने में ही ख़ैर है...

"तुम्हें पता है, दो दिन बाद शरद पूर्णिमा है..." अमला ने लिखा था—"ताज पर तो प्रोग्राम कई बार बना है, इस बार एक अजब सनक सवार हुई है। सुनते हैं जबलपुर के पास कोई भेड़ाघाट, या धुँआधार नाम की जगह है...संगमरमर की चट्टानों के ऊपर नदी का पानी प्रपात से पहले एक प्राकृतिक झील के रूप में रुक गया है...इस बार मन होता है, शरद पूर्णिमा की रात वहीं अकेले एक छोटी-सी डोंगी में गुज़ार दी जाय... तुम भी होते तो सच, कैसा आनंद रहता। फिर उस वर्णन को तुम्हारी किसी कहानी या उपन्यास में पढ़ कर मैं कैसा महसूस करती..."

एक जगह बड़े चिन्तापूर्ण ढंग से लिखा हुआ था—"अमर, यहाँ मेरा मन क़तई नहीं लगता। बड़ा उखड़ा और पराया महसूस करती हूँ। किसी से बातें करते भी डर लगता है कि कहीं कुछ ऐसा न कह दूँ जिसे बाद में मेरे ही ख़िलाफ़ इस्तैमाल किया जा सके। सब कुछ मन में ही घुटता है, और ऊपर से मुस्कुराहट ओढ़ लेते हैं। सच कहूँ,

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन अपनों से बड़ा डर लगने लगा है—शायद इस डर का सामना न करने के लिए ही हमेशा भागती रहती हूँ। इधर कुछ बातें ऐसी हुई हैं कि बड़ी आशंका...अच्छा ख़ैर इस समय तुम्हें यह सब बता कर परेशान नहीं करेंगे। हाँ, एक बात मैं बहुत गंभीरता से सोचने लगी हूँ। तुम भी सलाह दो। यहाँ तो कोई भी इसके पक्ष में नहीं है, दिल्ली में ही एक छोटा-सा मकान लेकर एकदम अकेली रहना चाहती हूँ...देसाई आयी थीं—उन्होंने बहुत आश्वासन दिया है, बहुत आग्रह कर गयी हैं कि सोशल-वेलफ़ेयर का कुछ काम करूँ। गोल्फ़लिंक रोड या निज़ामुद्दीन में कोई छोटा-मोटा मकान मिलना बहुत मुश्किल तो नहीं होना चाहिये। भई, किसी के ज़िम्मे जाकर पड़ना अपने को गवारा नहीं है—रहेंगे तो अपना इन्तज़ाम करेंगे। हमें कहीं जाना है, तैयार होकर खड़े हैं और सारी गाड़ियाँ साहब की सेवा को गयी हैं, यह सब अब बहुत हो चुका...। चलो, दिल्ली आ जायेंगे तो तुम से भी ग़प-शप खूब रहा करेगी। तुम्हारी बीबी जानतो नहीं रोकेंगी न? हम तो कुछ-कुछ डरने लगे हैं उनसे। बड़ा तेज़ स्वभाव लगता है। तुम कुछ लिख-पढ़ पाते हो या...? बहुत दिनों से कहीं कुछ भी नहीं देखा। अब तो शायद कोई लम्बी चीज़ भी नहीं है हाथ में? क्या कर रहे हो आजकल? गृहस्थी चलाने में कुछ मदद करते हो या एकदम ही छोड़ दिया...?" इस हिस्से पर अमर तिलमिला उठा था। आगे लिखा था—"अच्छा छोड़ो यह सब, इस समय तो हमारे दिमाग़ में धुँआधार की संगमरमर की चट्टानें, उनके बीच छोटी-सी झील और अकेली डोंगी...शरद पूर्णिमा की रात की उँगलियों में थिरकता, सुनहली शराब भरा बिल्लौरी पैमाना। फ़िराक़ का वो शेर सुना है:

दिल के आइने में इस तरह उतरती है निगाह
जैसे पानी में लचक जाये किरन; क्या कहना।

और जहाँ लचकती किरनों का जमघट हो वहाँ के अलिफ़ लैलाई वातावरण को क्या कहोगे...?"

पत्र पढ़ कर अमर सोचता रहा, इनमें कौन-सी बात सच है? अलिफ़ लैला का जादुई वातावरण या दिल्ली आने की परेशानी...? या दोनों झूठ हैं?

एक तरह से

फ़िराक़ गोरखपुरी अपनी रुबाइयों की दूसरे शायरों की रुबाइयों से तुलना करते हुए कह रहे थे—"कहने को तो रुबाइयाँ जोश साहब ने भी लिखी हैं, लेकिन वे इस शैली का प्रयोग बाक़ायदा फ़न की हैसियत से नहीं करते। दर-असल वे अपनी शायरी के मुँह का मज़ा

ज़रा एकान्त-सी जगह में रूमाल बिछा कर वह चुपचाप बैठ गया—आज उसकी परछाईं घास पर कितनी साफ़ थी। कहीं रेकार्ड बज रहा था। कई परिवार इधर-उधर बिखरे थे। चाँदनी ताप-हीन ठण्डी-ठण्डी धूप जैसी बिखरी थी। शकुन के साथ छत पर जाकर इस चाँदनी में सुई पिरोने की प्रतियोगिता की हल्की-सी याद आयी, चाँदी के कटोरे में केसरिया खीर सारी रात छत पर रख कर सुबह खाने और आँखों की रोशनी बढ़ाने का विश्वास याद आया...हल्का-सा ख़्याल यह भी उभरा कि इस समय कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा के आस-पास जा रहे होते...और इन सब ख़यालों के साथ-साथ उसकी चेतना उसे उड़-उड़ कर बताती रही कि किस पंक्ति और किस शब्द का रंजना पर क्या प्रभाव पड़ रहा है...रंजना आख़िर क्या चाहती है, उसे किस अपराध की सज़ा दे रही है ?... असंभव ! उसने झुंझला कर कहा--"अब उसके साथ रहना असंभव है।" और सहसा अपने स्वर से ही चौंक कर उसने इधर-उधर देखा। कहीं उसे यों बोलते किसी ने सुन तो नहीं लिया ? फिर ओस भीगी घास की एक पत्ती तोड़ कर दाँतों में कुतरता रहा। काश, वह आज घर जाये ही नहीं, और यों ही अलिफ़ लैला के सिन्दबाद की तरह देश-देश में भटकते हुए अपनी ज़िन्दगी काट दे...किसी खलिहान के किनारे दो रोटियाँ खा लिया करे और किसी अलाव के चारों ओर बैठे लोगों को भूतों और जिनों की कहानियाँ सुना-सुना कर रात बिता दिया करे...कभी बरसते पानी में किसी अनजान द्वार को खटखटा कर शरण माँगे, और कभी किसी अजनबी का सामान लेकर उसके साथ-साथ चले...कभी किसी अपाहिज को उसके घर तक छोड़ दे जहाँ उसकी बेटी उसकी राह देख रही हो....

> **खटने के लिए दूसरी चीजें लिखते-लिखते कभी-कभी रुबाइयाँ भी लिख लेते हैं।--उनकी रुबाइयाँ एक तरह से 'चटनी' हैं--" क्षण भर को फ़िराक़ साहब रुके और फिर बोले--"और मेरी रुबाइयाँ...."**
>
> **पास बैठे मजाज़ ने फ़िराक़ की बात काटते हुए कहा--"एक तरह से मुरब्बा।"**
>
> **--शाकिर पुरुषार्थी**

और जैसे एक बिजली के झटके से अमर का सारा शरीर रोमांचित हो आया...उसके भीतर कोई चीज़ कोंधी और जुहू के किनारे से आज तक का सारा जीवन जैसे एकबारगी सर्चलाइट की रोशनी में उद्भासित हो उठा। एक सिहरन उसकी रीढ़ की हड्डी में तैरती चली गयी...उसने ज़ोर से कन्धे झटक कर इस झनझनाहट को दूर करना चाहा--उसका सारा अस्तित्व मानो मुँह पर हाथ रख कर बोलने लगा--"यह मत कहो...ऐसा मत बोलो।"...उसने अपनी गर्दन की पीठ पर चींटी जैसी किसी चीज़ को झाड़ा।

पहले तो उसकी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों हुआ; लेकिन कुछ मिनट बाद जब वह अपने भीतर आया तो लगा, मानो वह अमला को बैठा पत्र लिख रहा है--"तुम्हें धुँआधार प्रवाह का अलिफ़ लैलाई वातावरण याद आ रहा है...यहाँ मैं किस अलिफ़ लैला में रह रहा हूँ सुनोगी ?" (कलाई की घड़ी देख कर) "रात को साढ़े नौ बजे यहाँ अनाथ-निर्वासित बेघर बैठा हूँ और सोच रहा हूँ कि सिन्दबाद की तरह किसी अनजान कठिन सफ़र पर निकल पड़ूँ...और फिर कभी,--कभी भी इस नगर में न आऊँ...बहुत दिनों तुम से छिपाया, अब साफ़ ही कहूँगा...ज़िन्दगी को रंजना की नाराज़ी से दुखी और खुशी से सफल मानने की चाह भोगते-भोगते आज़िज आ गया हूँ...

"अलिफ़ लैला का ही एक हिस्सा है। स्टीफ़ेन ज़िवग ने इसे एक और संदर्भ में इस्तैमाल किया है। लेकिन इससे क्या ? किस्सा अलिफ़ लैला का है; वही एक दूसरे अर्थ में मुझे याद आ रहा है। सिन्दबाद के सातों सफ़रों में से किसी एक की बात है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तूफ़ान आया और उसका जहाज़ टूट गया। एक तख़्ते के सहारे वह एक ऐसे द्वीप में आ पहुँचा जहाँ कोई आदमी न आदमज़ाद...! भटकते-भटकते उसने एक चश्मे के किनारे एक बहुत ही बूढ़े अपाहिज को पड़े देखा। सिन्दबाद को देख कर वह बूढ़ा बहुत खुशामद और प्रार्थना के स्वर में अनुनय करने लगा कि 'मुझे झरने के पार पहुँचा दो। उसकी दयनीय हालत पर सिन्दबाद को तरस आ गया...उसने बूढ़े को कन्धे पर उठा लिया और झरने के पार ले आया--लेकिन जैसे ही उतारने लगा कि बूढ़े ने अपनी दोनों टाँगों से कस कर उसका गला भींच लिया, और पेड़ की टहनी से इसकी धुनाई करते हुए कड़क कर बोला--"उतारता कहाँ है...चल मुझे घुमा...।" और सिन्दबाद का कहना है कि वह बूढ़ा, उसे हफ्तों कुत्ते की तरह दौड़ाता रहा ; जहाँ यह ज़रा भी ढीला हो कि वह गर्दन की जकड़ कस दे और टहनियों के हंटर से मार-मार कर इसकी खाल उधेड़ ले...इसे न तो आराम करने की फ़ुरसत दे, न इधर-उधर देखने की। और टाँगों के शिकंजे में गर्दन फँसाये, मार खाता हुआ सिन्दबाद सोचे कि इस मरियल सूखे बूढ़े में आखिर इतनी जान कहाँ से आ गयी...? और क्या यही वह निर्बल, निरीह बूढ़ा है जो अब ऐसा निर्दय और कटु हो गया है...फिर उसने किस तरह उससे जान छुड़ाई यह एक लम्बा किस्सा है...

"आज चाँदनी रात के एकान्त में बैठे-बैठे यह किस्सा मुझे क्यों याद आया, मैं नहीं जानता। तुम इसका जो भी अर्थ करो। लेकिन इतना मैं ज़रूर कहूँगा कि रंजना को मैं सचमुच प्यार करता था (अब तो शायद ही कोई विश्वास करे) और वही सद्भावना थी कि एक बार मना करने के बाद फिर से तुम्हारे संकेतों के बावजूद मैंने उससे विवाह किया लेकिन आज मैं अपने आपको सिन्दबाद की तरह हाँफते और भागते पाता हूँ...वह बूढ़े चेहरा हमेशा मेरी नसों पर तैरता है और हर बार मैं उसे उतार कर लाता हूँ लेकिन हर बार ज़िद्दी बैताल की तरह एक नये सवाल का बहाना लेकर पीपल पर जा लटकता है और मुझे अब तो ऐसा लगता है जैसे मेरी सारी ज़िन्दगी इस बूढ़े बैताल की बातों का जवाब देने, इसकी इच्छाएँ तृप्त करने में बीत जायेगी--वर्ना यह मेरी गर्दन जकड़ेगा और हंटर मारेगा...। और मैं यों ही जंगल-जंगल भागता रहूँगा। वह मेरा सम्पूर्ण चाहता है, उसे क़तई सह्य नहीं है कि अपना कोई अंश बचा कर किसी और के लिए भी रख लूं...

"और अपने आस-पास देख कर सोचता हूँ कि औरों की तरह शायद मैं अपना सम्पूर्ण दे भी देता..लेकिन उससे बड़ा एक भूत और भी तो मेरे सिर सवार है न...और वही तो है जिसके लिए मैंने हर सुख, हर सुविधा, हर सुअवसर से समझौता करने से इन्कार कर दिया है। सिन्दबाद की ही शब्दावली लूं तो बड़े-बड़े सागर लाँघने का भूत, इस छोटे-से 'पीर तस्मा-पा' (चमड़े के पट्टे जैसे पैरों वाले बूढ़े) से ज्यादा बड़ा है...इसकी टाँगों के शिकंजे में गर्दन फँसा देने के लिए यह सारी 'वाण्डरलस्ट' (भटकने का नशा) नहीं थी।

"रंजना ईर्ष्यालु पत्नी हो सकती है लेकिन कला सबसे ज्यादा ईर्ष्यालु पत्नी है--और जो एक बार इस पत्नी से गठबंधन कर लेता है उसके सामने सिर्फ़ एक ही विकल्प होता है--या तो इस पत्नी के साथ रहे या एकदम इसे छोड़ दे। यह आंशिक अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी क़ीमत पर नहीं बरदाश्त करती,...बल्कि जीवन का एक-एक अनुभव और एक-एक साँस माँगती है...प्रयत्न करूँ तो शायद रंजना को सुखी कर सकता हूँ, एक सुखी गृहस्थ का आदर्श उपस्थित कर सकता हूँ; लेकिन क्या करूँ, 'सुखी गृहस्थ' होने के यश की बात मन में ही नहीं आती...क्योंकि यह विश्वास आज भी नहीं छूटता कि शायद कुछ बड़ा कर सकूंगा....

"रंजना या अपने वर्तमान जीवन के प्रति कुछ भी कहने का मेरा मुँह नहीं है; यह बात पालम पर तुमने भी कही थी और आज एक नव-परिचित मौनी दा ने भी दूसरे ढंग से यही कहा। सच पूछो तो मैं मानसिक रूप से तभी से बड़ा अव्यवस्थित हो उठा हूँ। प्रेम-विवाह और परम्परागत विवाह की तुलना में एक मुख्य अन्तर यही आया था कि यहाँ नारी और पुरुष दोनों को जाँच-परख कर एक साथ आते हैं...इसलिए अन्तिम जवाब-देही भी उन्हीं की है...

"लेकिन मैं मौनी दा को जवाब नहीं दे पाया था। तब सूझा ही नहीं। मुझमें यही कमज़ोरी है; जवाब मुझे हमेशा बाद में सूझता है। डैडीकेटेड (समर्पित) व्यक्ति के लिए विवाह साधन बन कर आता है, साध्य बन कर नहीं। वह अपने मन का साथी इसीलिये तो चाहता है कि अपनी साधना को दुगुनी शक्ति और निष्ठा से चलाये रख सके...। उन्हें साथ लाने वाला तत्व, प्यार, परिचय, कमिटमैण्ट जैसी रोमैण्टिक बातें नहीं—साधना है। मैंने रंजना का साथ इसीलिए तो चाहा था कि अपने लेखन को निखार सकूंगा...और आज पाता हूँ कि वह लेखन ही सबसे नगण्य हो उठा है, बस रह गयी है एक अदृश्य और उद्धत रस्साकशी कि कौन किसे अपनी ओर खींच ले...कौन किसे झुका दे...

"और आज मैं अपने को इस भावना से भी मुक्त नहीं कर पाता कि मैं फ़ालतू हूँ, मैं असफल हूँ और मेरे कन्धों पर एक पीली मनहूस गर्दन कटी रक्खी है...और उसे काटने की ज़िम्मेदारी मेरी है..."

यह सब सोचते-सोचते अमर भूल गया कि वह अमला के पत्र में ही यह सब लिखना चाहता था...उसे तो ऐसा लगा कि एक छोटी-सी नाव है और उसके सामने सिर्फ़ एक अशरीरी-निराकार-संयत मुस्कान है और उसे ही सम्बोधित करके वह यह बोल रहा है, और पानी के नीचे तथा चारों ओर संगमरमर की पारदर्शी चट्टानें बिल्लौर के फ़ानूसों की तरह झलमला उठी हैं...

वह झटके से उठ खड़ा हुआ। दोनों हाथ एक-सी स्थिति में रहने से सो गये थे; सो हवाई जहाज़ के प्रौपेलर की तरह उन्हें एक साथ ज़ोर से घुमाया। लगा, जैसे सारी जड़ता छिटक कर दूर जा पड़ी है... ●

सूचना

लेखकों से सूचनार्थ निवेदन है कि केवल स्वीकृत रचनाओं की ही सूचना दी जाती है, और केवल वही अस्वीकृत रचनाएँ लौटायी जाती हैं जिनके साथ आवश्यक टिकट होता है। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ASP/OGI-20
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर्षक आकार
अनुपम निर्माण कौशल
उचित मूल्य

निरन्तर अनुसंधान तथा योजना के कारण ओरिएन्ट के आधुनिक कारखानें में उत्पादन-साधनों तथा प्रणाली में सुधार होता रहता है। परिणाम स्वरूप उत्पादन में भी सुधार होता है और उत्पादन-खर्च तथा मूल्य कम हो जाता है... अन्ततोगत्वा उपभोक्ता को इसका लाभ प्राप्त होता है। अतः आश्चर्य नहीं कि आपको सुन्दर तथा आकर्षक ओरिएन्ट पंखा इतने कम मूल्य में प्राप्य है! दुविधा-मुक्त संचालन तथा कम बिजली खर्च के कारण ये पंखे भारत में आज अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

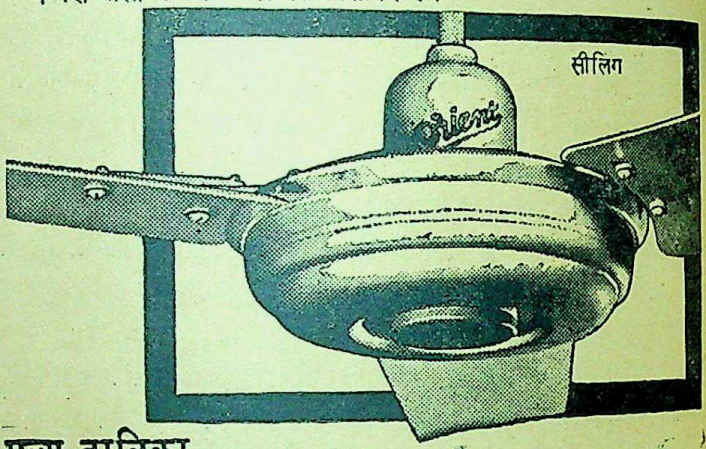

सीलिंग

मूल्य तालिका

सीलिंग ए०सी०	
६०"	१७६.०० रु०
५६"	१६७.०० रु०
४८"	१५८.०० रु०
३६"	१२४.०० रु०
१६" घुमावदार ए०सी०	११७.५० रु०
१६" ए० पी० ए०सी०	७७.५० रु०
१६" ए० पी० पेडस्टल ए०सी०	११२.०० रु०

आसान किश्तों पर भी मिलता है

इन मूल्यों में आबकारी शुल्क सम्मिलित है। स्थानीय कर अलग।

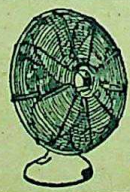
घुमावदार

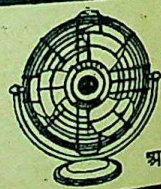
आल-परपज

ओरिएन्ट पंखा

दो वर्ष की गारन्टी
ओरिएन्ट जेनेरल इण्डस्ट्रीज लिमिटेड
कलकत्ता-११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परेश

■

पृष्ठ-भूमि

शताब्दी के घुमाव पर, जहाँ जनतंत्र का उबाल और पुनः ताजी हो आई प्रबुद्ध चेतना मिलती हैं वहाँ आधुनिक कोरियन कविता प्रारम्भ होती है। यूराल अल्तायिक परिवार की मंगोल शाखा से कोरियन भाषा सम्बद्ध है। उच्चारण में कहीं भी कटु स्फोट और अनुनासिक ध्वनियों का बाहुल्य नहीं है, बल्कि शब्दों की गूंज बहुत ही मृदु और संगीतात्मक है।

१९२३ में 'के० सी० पी०' के नेतृत्व में 'द एसोसियेशन ऑफ प्रोलेटेरियन लिटरेचर एण्ड आर्टस' ने 'सोसियो-रीयलिस्टिक स्कूल ऑफ पोएट्री' की स्थापना की। निश्चय ही इस स्कूल ने कोरिया के इतिहास में पहली बार वैयक्तिक स्वातंत्र्य, औद्योगिक उत्थान और जनसामान्य की सांस्कृतिक उपलब्धियों को लेकर एक व्यापक स्तर पर वकालत की।

तब इस 'सामाजिक यथार्थवाद' के आह्वान पर कोरिया में, १९२६ में, 'रोमैंटिसिज्म' का जागरण हुआ। रूसो, ब्लेक, कीट्स जैसे यूरोपियन लेखकों से प्रभावित होकर ली वैंग-सू, ली युक-सा जैसे रोमैंटिक कवियों ने भौतिकवाद की ओर झुकते हुए समाज को प्रत्याह्वान किया और कविता में आत्मा और अनुभूति की महत्ता को प्रतिष्ठित किया। इस स्कूल के कवियों के विषय अतीत और प्रकृति हैं।

सर्वाधिक चर्चित रहस्यवादी एक बौद्ध भिक्षुक हैन यंग-अन था जिसने दार्शनिक पक्ष को सँभाला।

आधुनिक कोरियन कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'किम कि-रिम' और 'किम वैंग-सब' पर बॉदलेयर तथा वरलेन का ऋण है। इन्होंने सामाजिक यथार्थवाद तथा रोमैंटिसिज़्म दोनों के विरुद्ध विद्रोह किया और नये भाव-स्वरों को प्रतीक शैली में अभिव्यञ्जना दी।

यद्यपि 'आधुनिक कोरियन कविता' शब्द में एकेडेमिक अर्थों में कोई स्वर-संगति नहीं है, फिर भी एक सूक्ष्म अन्तःसंगीत है जो इसकी अपनी विशिष्ट उपलब्धि है। जैसे ईश्वर की सबसे बड़ी रचना मनुष्य है उसी तरह कोरियन कविता में सबसे बड़ी अनुभूति प्रकृति है। जड़-चट्टानों में दृश्यतः संभवतः आत्माएँ नहीं हों, पर इधर की उठती हुई प्रतिभाओं ने उन्हीं में से गन्ध और उर्वरता, आत्मा और अमरता खींच कर रख ली है।

कुछ ताजे बिम्बान्तर यहाँ प्रस्तुत हैं।

• उड़ते हुए इंगित

नदी के पुल पर
तनहा परछाईं का परस
मूक
पत्तियों के गूंजते हुए नृत्य-स्वरों में भी
स्थिर-शान्त
'कुछ खो गया है भद्रे ?'
मेरा भद्दा प्रश्न
उत्तर में एक निराहट
मुस्कराहट
और धवल मेघ-खण्डों के पार
दूर स्थित पर्वत-शिखरों की
उड़ती हुई
उसकी संकेत मुद्रा.....

——एक प्रतिनिधि रचना

• मृत्यु के क्षितिज

ली युक-सा

(१९०५–१९४४) पेकिंग जेल में मृत्यु। मृत्यु के समय तक पेकिंग यूनिवर्सिटी में चीनी-साहित्य के छात्र थे।

परिस्थितियों का
एक और
कशाघात
और अब मैं
हाँक दिया गया हूँ
कथानक के उत्तरार्द्ध में।
एक गूँगा मैदान
और उससे लिपटी हुई
संवेदनहीन
पगडंडी——
पगडंडी पर बर्फ़
तलवार की नंगी धार
धार
जो मेरी रक्त जमी पगथलियों का
अनोखा चाव है।

कुहरे में
मन्दिर नहीं दीखते
घुटने कहाँ झुकाऊँ ?
समर्पण-संज्ञाएँ दिशाहारा
कदम किधर बढ़ाऊँ ?

मूँदती हुई पलकों में
क्षितिज उगते हैं
खिंचते हैं
इस्पात के इन्द्रधनुष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• क्षण-बोध

किम वैंग-सब

(नासेदा यूनिवर्सिटी, टोकियो के ग्रेजुएट, जन्म १९०४ ; 'नस्तल्जिया' नामक एक कविता-संग्रह ।)

व्यक्तित्व की तंग घाटी में
यदि एक कंकर जन्म लेता है
और चट्टान नहीं बनता

नाले-सा बहता है
और समुद्र तक नहीं पहुँचता

तो रोको
समय को रोको
एक-एक क़तरा
क्षण
सम्पूर्णता से भोगो ।

• समुद्र-फूल

किम कि-रिम

('अवान्त-गार्दे' आन्दोलन के 'पायोनियर', जन्म १९०९ ; तोहोकू इम्पीरियल यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट ।)

समुद्र में खिले हुए
ज्वार
लहरों की कँपती हुई
नन्हीं पंखुड़ियाँ...

घास के मैदानों में कोई नहीं डूबता
खिला हुआ ज्वार
भय नहीं
तितली का घर है ।

पंखुड़ियों पर झूलती हुई
वह नन्हीं परी
समुद्र की सम्राज्ञी है ।

मौसम को तो रंग लग गया है
सुर्ख...नीला...बैंजनी
समुद्र-फूल गन्धाता क्यों नहीं ! ...

• निर्वासित

ली वैंग-सू

(आधुनिक कोरियन साहित्य के पिता, जन्म १८९२ ; 'द पायोनियर', 'द फ़गरेंस ऑफ लाइफ एण्ड लव' उपन्यासों के लेखक के नाते अधिक प्रसिद्ध ।)

टूटी हुई दीवार पर अंकित
झुकी हुई मेरी
प्रार्थना-मुद्रा
तुम सुनते हो ?
ओ मेरे आत्मांश !
तुमने देखे नहीं
मेरे अधरों से
उड़े हुए गीत ?
इस टूटे हुए धूपदान से
छितरती हुई
कोई गन्ध
तुम्हें नहीं छूती ?
उत्तर लौटाओ मुझे
ओ मेरे अपने रक्त !

शहर के बाहर
यह टूटी हुई दीवार
आँसुओं की लज्जित रेखाओं में
काँपता हुआ
यह प्रतीक्षा का पात्र
बोलो
बोलो मेरे अपने प्राण !
तुम्हारे दिल में कोई जगह नहीं ?
कोई...

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमला बनमाली

ढेर सारे राजनेता और एक चित्रकार—अनुपम। सर्वशक्तिमय परमात्मा, और एक चित्रकार, अनुपम। वह किसकी छवि बनाये, किसकी नहीं। लेकिन चितेरा कोई दूसरा है जो चीतता है और पोतता है!

अनुपम। एक चित्रकार का नाम। इस इतनी बड़ी सृष्टि में एक छोटे-से अस्तित्व को पहचानने के लिए समाज द्वारा रख दिया गया एक परिचय-बोधक शब्द। अर्थहीन। न रुपया, न सम्मान। अकेला। एक इकाई। समाज का 'विक्टिम'। पर संघर्षरत। बिल्कुल उसी तरह का संघर्ष, जैसा एक अकेला आदमी नाखून से हिमालय को खोद कर पृथ्वी के इस छोर से दूसरे छोर पर ले जाने की सोचे। जैसे मगरमच्छों से घिरा कोई तैराक रपटीली चट्टान पर चढ़ने के लिये हाथों-पाँवों के पंजे घायल करने में जुटा हो। घबराया-सा, बौखलाया-सा। भविष्य की कोई उम्मीद नहीं और वर्तमान का कोई सहारा नहीं।

"मैं क्या करूँ?" उसने चीख कर कॉफ़ी हाऊस के दोस्तों से पूछा।

एक खोखली गूँज के साथ आवाज़ कॉफ़ी हाऊस में तैर गये कहकहों से टकरा कर वापिस आ गई।

"मैं मर जाऊँगा।" उसकी आवाज में कम्पन था। मरना वह नहीं चाहता था।

"सुनो," एक दोस्त ने अपनी दृष्टि-सम्पन्नता का परिचय देते हुए कहा,

आखिरी तस्वीर और कॉफ़ी हाऊस की दो शामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह दुनिया बड़ी ज़ालिम है। यहाँ सिर्फ़ कलाकार बन कर ज़िन्दा नहीं रहा जा सकता। इस दुनिया का कहना यह है कि यदि ज़िन्दा रहना चाहते हो तो मेरी छाती पर चढ़ जाओ। वर्ना मैं तुम्हारी छाती पर चढ़ जाऊँगी। क्या तुमने छोटी मछली, बड़ी मछली वाली बात नहीं सुनी? यहाँ, आँखों से शर्म की विनम्रता निकाल दो। कूल्हे करो और गर्दन और भी ऊँची कर लो। डरो नहीं।"

"मुझे तुम्हारी बात समझ में नहीं आती। मैं सिर्फ़ यह जानता हूँ कि मैं इस समाज की चक्की में पिसा जा रहा हूँ।"

"तुम बच्चे हो। स्वच्छन्द पक्षी की तरह अगर हवा में उड़ते रहोगे तो भूखे मरोगे। अपना आहार लेने के लिए तुम्हें ज़मीन पर आना ही पड़ेगा।"

"मैं चित्रकारी के सिवा कुछ नहीं कर सकता...."

"वही करो। पर ढंग से। सुनो, कान इधर करो।"

अनुपम ने कान झुकाया और मित्र ने मंत्र फूंक दिया।

० ० ०

स्वच्छन्द पक्षी को मुक्त आकाश से धरती पर आना ही पड़ा। दृष्टि-सम्पन्न मित्र ने बताया कि "किसी विदेशी राजनेता का बड़ा-सा तैलचित्र बनाओ। जिस देश का वह राजनेता होगा, उस देश की सरकार निमंत्रण भेजेगी। निमंत्रण स्वीकार करो। जाओ। वहाँ घूमो। लौटोगे तो अपने देश के जौहरी भी खरा सोना कहेंगे।"

० ० ०

राष्ट्रसंघ के एक सौ तीन सदस्य देशों में से एक देश को अनुपम ने चुना और वहाँ के राष्ट्रनेता का वृहत् तैलचित्र बनाया। लेकर गया। उस सब आयोजन में घर का काफी सामान बेच डाला। पर पता चला कि वह देश जितने कलाकारों को बुला सकता था उससे दुगुने वहाँ पहुँच चुके हैं। अब कोई 'चांस' नहीं। दस महीने बाद नये साल के लिए भी चुनाव हो चुका है। हाँ, तीसरे वर्ष के लिए आवेदन-पत्र देने की अनुपम को अनुमति मिल गई।

० ० ०

मस्तिष्क में विचार कुछ गहरा उतर चुका था। इसलिए उसने फिर कार्यरूप ग्रहण किया। अनुपम ने एक और देश के लिए घर के कुछ और सामान को दांव पर

रात : एक अनुभूति

बरस कर थम जाने वाली बदली से वर्षा की चन्द शरारती बूंदें रात बड़ी देर तक मेरी छत पर दस्तक देती रहीं।

ताक में रखी अलार्म घड़ी का समूचा अलार्म बज जाने पर भी दोनों काँटों में रात भर किच-किच चलती रही।

दिये की लौ मेरी अनकही कहानी पर समूची रात सिर हिलाती रही।

कौन कहता है कि रात जब मुझे नींद नहीं आई मैं अकेला था?

—रामनारायण उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाया। पर चित्र तैयार करके जब वह दूतावास का द्वार खटखटाने पहुँचा तो पता चला कि जिस राजनेता की तस्वीर अनुपम ने बनाई है उसको तो अब वहाँ की सरकार राजनेता के रूप में मानती ही नहीं। राजनेता तो क्या, अब तो वह एक अपराधी माना जाता है। अनुपम वह बाज़ी भी हार गया।

० ० ०

तीसरे देश के राज्याधिकारी की तस्वीर बनाई तो वहाँ विद्रोह हो गया। चौथे देश के राष्ट्रपति पर परिश्रम किया तो पता चला कि उस राष्ट्रपति को अपदस्थ करके शासन की बागडोर वहाँ के सेनानायक ने अपने हाथ में ले ली है। पाँचवें देश के शासक को काग़ज पर उतारा तो उन्होंने तस्वीर तो ले ली लेकिन कहा कि वह देश किसी भी कलाकार को निमंत्रित नहीं करता, जो जाये अपने खर्चे पर जाये। और छठे देश के राष्ट्राध्यक्ष के चित्र के लिए उसके घर में कुछ नहीं रहा।

० ० ०

मुँह लटकाए हुए वह फिर अपने दृष्टि-सम्पन्न मित्र के यहाँ पहुँचा। उसने फिर रास्ता सुझाया। बोला, "कैलेंडर छापने वालों के यहाँ जाओ। भगवान के चलते हुए सस्ते चित्र बनाओ। जब कुछ रुपया इकट्ठा हो जाए तो फिर उसी कोशिश में लग जाना। दरवाज़ा तब तक खटखटाते रहना चाहिए जब तक कि खुल न जाये।"

अनुपम ने कहा, "सृष्टि पाँच तत्वों के सम्मिश्रण से बनी है। जिस तरह लकड़ी में सींव अपने आप पैदा हो जाती है उसी तरह इस धरती पर मनुष्य भी अपने आप पैदा हो गया। इस सृष्टि का कोई नियंता नहीं। सिर्फ़ प्रकृति है। जो स्वयमेव कार्यशील रहती है। इसलिए इस दुनिया में जो भगवान का अस्तित्व नहीं मानता। और जब भगवान का अस्तित्व नहीं मानता तो उसका चित्र कैसे बना सकता हूँ?"

"लैक्चर मत दो। भगवान का चित्र बनाने का यह मतलब नहीं कि तुम भगवान को मानने लग गए। जिन्दा रहने के लिए कभी-कभी आँखें बन्द करके भी रास्ता पार करना पड़ता है। ज़िन्दगी बहुत लम्बी है। अपनी बात कहने के लिए तुम्हें और भी बहुत-सा समय मिलेगा। अभी ज़िन्दगी बचाना जरूरी है। उसे बचाओ।"

० ० ०

पर यहाँ अनुपम को सोचने में कई दिन लग गये। वह किसी भी शक्ति को सृष्टि का रचयिता नहीं मानता। वह सिर्फ़ भौतिकता को मानता है। दुनिया न जाने कब से चली है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक इस बारे में खोज कर रहे हैं। बहुत कुछ उन्होंने खोज निकाला है। जो कुछ नहीं खोजा गया उसे भी खोजने की चेष्टाएँ सतत जारी हैं। लेकिन जहाँ अज्ञान का अँधेरा है वहाँ अनुपम अँधेरा ही मानता है, ईश्वर नहीं। जहाँ से आगे नज़र नहीं आता, वहाँ से आगे 'अनदिखा' तो हो सकता है, पर वहाँ से आगे ईश्वर है, यह बात अनुपम के मन में नहीं पैठती। जाने कितने प्रश्न हैं, जिनका उत्तर मनुष्य के पास नहीं। जाने कितना अँधेरा है। पर सिर्फ़ अँधेरा ही है। ईश्वर नहीं। और अँधेरा एक न एक दिन ज़रूर दूर होगा।

० ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूख ! भूख !! भूख !!! सिर्फ़ भूख। कुछ नज़र नहीं आता। मौत जैसे मुँह खोले निगलने को तत्पर है। जैसे धुंध है। कोहरा है। हड्डियाँ जमा देने-वाली ठंड है। और....इन सबों से ऊपर अँतड़ियाँ उमेठ देने वाली भूख है।

० ० ०

"आओ, मैं भगवान का चित्र बनाता हूँ। पर मुझे कोई रोटी दो। थोड़ा पानी दो। लेटने को कम्बल दो। सोने को छत दो।"

० ० ०

मलिन भरा कमरा है। ओढ़ने और बिछाने के नाम पर एक पतली-सी चादर है। एक मिट्टी का बर्तन है, जिसमें दो-तीन घूँट पानी है। जल कर मृत लेटी एक मोमबत्ती है। कुछ काग़ज़ के टुकड़े हैं। एक-दो ब्रुश और...बस। न रंग न रौनक। यह है अनुपम का कमरा। विपन्नता का मारा हुआ। न बोर्ड न स्टैंड। ज़रा सोचिये कैसा दृश्य होगा जब कमेटी का कर्मचारी इसमें घुसा होगा! यहीं, इसी कमरे में, इसी पतली चादर पर अनुपम की मृत्यु हो गई है। उसके पास ही कमेटी को एक चित्र मिला है जिस पर भगवान का अधूरा चित्र खिंचा था।

० ० ०

कहानी की बात जाने दीजिए। यह सच इतना विकट है कि स्वाभाविकता से भी दूर हो गया-सा लगता है। पर सच जानिये, यह सब सच है। अनुपम। एक अस्तित्व। एक इकाई। इस धरती पर बिल्कुल इसी तरह ख़त्म हो गया। महशर के रोज़ भी उसका ख़ून किस के सर मढ़ा जायेगा! उसकी हत्या की सज़ा किसको मिलेगी? कौन गुप्तचर इस दुनिया में ऐसा है जो अनुपम के हत्यारे को ढूंढ़ निकालेगा? वह मूर्ख चित्रकार जिसने राजनेताओं के चित्र इसलिए बनाने शुरू किए कि उसको निमंत्रण देकर उस देश की सरकारें उसे आगे बढ़ाने का अवसर देंगी पर.... सोचती हूँ, ठीक चल रही है यह दुनिया। जब अनुपम आया था तो कुछ लोगों ने कुछ चर्चा कर ली थी और जब चला गया तो फिर कुछ लोगों ने कुछ चर्चा कर ली। बिल्कुल ऐसे ही जैसे कॉफ़ी हाऊस की दो शामें—एक वह जब क्रिकेट का मैच शुरू हुआ और एक वह जब क्रिकेट का मैच ख़त्म हुआ। बाद में लोग कितनी जल्दी भूल जाते हैं! एक इकाई मिल गई। एक अस्तित्व मिट गया। अनुपम फिर कभी पैदा न होगा। वह तत्त्व जिन्होंने इकट्ठे होकर अनुपम का रूप धर लिया था, अब फिर कभी इकट्ठे न होंगे।

लेकिन....

हाँ, मैं उसके लिए क्यों परेशान हूँ! ठीक ही तो है। उसने बहुत से राजनेताओं की तस्वीरें बनाईं। सफल नहीं हुआ। भगवान की तस्वीर बनाई। सफल हो गया। हाँ, भगवान ने शायद उसको अपने देश में निमंत्रित कर लिया है।

● ● ●

अक्खड़पन

जोश मलीहाबादी ने पंजाबी ज़बान के अक्खड़पन से खीझ कर कुंवर महेन्द्र सिंह बेदी से कहा—"क्या आप जानते हैं कुंवर साहब, कि दोज़ख की सरकारी ज़बान आपकी पंजाबी होगी?"

कुंवर साहब ने फ़ौरन जवाब दिया—"फिर तो जोश साहब! आपको ज़रूर सीख लेनी चाहिए।"

—शाकिर पुरुषार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतलता की प्राप्ति
चिंता से मुक्ति

उमस-भरी हवा और भट्टी-सी तपती धूप में शीतलता पाने और शीतल रहने का सबसे अच्छा उपाय है—अफगान लेवेंडर का छिड़काव। और भूलिये मत! कमल साबुन, अफगान टाल्कम और अफगान स्नो, हर युवती के लिए तीन अनिवार्य चीजें हैं।

अफगान स्नो—सौंदर्य प्रसाधन

ई० एस० पाटनवाला, बम्बई—७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रोग जो अभिव्यक्ति को कुंठित करता है क्योंकि व्यक्तित्व के विकासशील दिनों में शैशव के पौदे में कहीं कोई घुन बैठ गया.....

मुझे एक प्रतिष्ठित पत्र-सम्पादक से भेंट करने जाना पड़ा। दफ्तर में जाते ही जब मैंने उन्हें देखा तो प्रथम दृष्टि में ही वे मुझे एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी नज़र आये: गेहुवाँ रंग था उनका, असाधारण रूप से स्वस्थ बदन, धीरे-धीरे चिकना होता हुआ बुद्धिमत्ता का सूचक सर....। मेरे अभिवादन का उत्तर उन्होंने सर झुका कर और हल्के से मुस्करा कर दिया। मैं बैठ गया उनके सामने पड़ी कुर्सी पर।

उनकी मेज़ पर पड़े टेलीफोन की घंटी बजी तो संकेत से ही मुझसे क्षमा-याचना करते हुए उन्होंने रिसीवर उठा लिया :

"हलऽऽऽउ.....!"

"....."

"मैं स्ऽऽऽऽ....."—इस जगह जो कुछ वे कहना चाहते थे, नहीं कह पाये। मैंने देखा उनके चेहरे पर अत्यधिक तनाव आ गया था: नाक जितना ऊपर को सिकुड़ सकती थी सिकुड़ चुकी थी; आँखें इस क़दर भिच चुकी थीं कि सारे चेहरे की चर्बी सलवटों के रूप में आँखों के गड्ढों में जमा हो गई मालूम होती थी; गर्दन असाधारण रूप से झुक गई थी और उसकी तमाम नसें उभरी तनी हुई दिखाई दे रही थीं: वह स्थिति वस्तुत: उनके लिए पर्याप्त यातनामय रही होगी।

हकलाना
मनोवैज्ञानिक कारण और निदान

अचानक वे 'टैपिंग' करने लगे—शायद दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर से बोलने वाले ने झल्ला कर फ़ोन रख दिया था। सम्पादक महोदय 'टैपिंग' कर-कर के थक गये तो उन्होंने भी रिसीवर रख कर मेरी ओर देखते हुए, शायद झेंप उतारने के लिए, खीसें निपोर दीं।

'डिक्शनरी ऑफ सायकोलॉजिकल टर्म्ज़' में देखने पर हमें पता चलेगा कि किसी कष्ट-दायक स्थिति से छुटकारा पाने के लिए ही व्यक्ति एक प्रकार के पागलपन या उन्माद (न्यूरासिस) का सहारा लेता है। हकलाना, झेंप जाना, अथवा अन्य असाधारण और अजीब-अजीब आदतें व्यक्तित्व में पाये जाने वाले किसी भारी दोष को छिपाने के लिए पर्दा मात्र हैं।

इस प्रकार के दोषों से पीड़ित किसी व्यक्ति को, जो उक्त तथ्यों से भलीभाँति परिचित न हो, यह समझा लेना कि उसके ये लक्षण और यह कष्ट कुछ विशिष्ट अर्थ रखते हैं, आसान काम नहीं है। उदाहरण के लिए हकलाने वाला व्यक्ति अपने इस 'उन्माद' को बाहर से थोपी हुई कोई विपत्ति ही समझता है क्योंकि इसी के कारण प्रायः सामाजिक जीवन के आनन्द से वंचित रह जाता है, अतः अपने भाग्य को कोसा करता है।

क्योंकि कई प्रकार के उन्माद को औषधि द्वारा आसानी से दबाया जा सकता है; अतः डॉक्टर लोग, रोगी के जीवन में उस उन्माद का क्या महत्त्व है, यह जानने का कभी प्रयत्न ही नहीं करते। अपनी व्यस्तता के क्षणों में औषधि द्वारा उसे दबा देना ही उपयुक्त निदान समझते हैं।

मैं एक सज्जन को जानता हूँ जिन्हें कुछ वहम हो गया अपने बारे में। वे कहते हैं—"मैं जब भी गली में निकलता हूँ मेरा हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता है, दम फूलने लगता है, ज़ोरों से पसीना आने लगता है और हाथ-पैर ठण्डे पड़ जाते हैं।....."

इसका परिणाम क्या होगा? वे अकेले तक भी हो सकेंगे, सक्रिय जीवन से अपने आपको दूर रखने लगेंगे, एकाकी रहने लगेंगे। इस वहम का वास्तविक कारण यह है कि वे अचेतन रूप से, अपने अन्दर किसी ऐसे दोष का अनुभव करते हैं जो उन्हें, आगे बढ़ने की बजाय, पीछे पग धरने के लिए प्रेरित करता है।

इसी तरह से हकलाना भी अपने व्यक्तित्व में पाये जाने वाले किसी दोष के प्रति असाधारण एवं अचेतन सजगता का ही परिणाम है। यह किसी ऐसे मानसिक संघर्ष की ओर संकेत करता है जिसका मूल खोजने पर बाल्यावस्था में व्याप्त किसी भय में मिलेगा। जैसे असाधारण रूप से लज्जालु स्वभाव हमारे अन्दर "मैं करूँगा।" और "लोग क्या कहेंगे?" के बीच चल रहे संघर्ष का प्रतिफल है, उसी प्रकार से हकलाना भी "मैं बोलना चाहता हूँ!" पर "कोई सुन न ले!" द्वारा लगाये गये अंकुश का नतीजा है। इस अंकुश के कारण कण्ठ की, स्वर-यंत्र (Larynx) की मांस-पेशियों में तनाव आ जाता है—हम बोलने के लिए मुँह खोलते हैं, लेकिन मानसिक द्वन्द्व के कारण आवाज़ नहीं निकल पाती और निकलती भी है तो अटक-अटक कर। ऐसी अवस्था में बोलना भी किसी कष्टकर व्यायाम या ज़बर्दस्त कुश्ती से कम नहीं रहता। इसी कारण से हकलाते समय चेहरा विकृत हो जाता है; बोलने में हो रहा कष्ट और आन्तरिक संघर्ष चेहरे से प्रकट हो जाता है।

आपको शायद यह जान कर आश्चर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा कि मानव-जाति में वाणी का विकास बहुत बाद में हुआ है। यह वाणी पक्षी के चहचहाने, घोड़े के हिनहिनाने और कुत्ते के भौंकने की तरह मूल प्रवृत्ति जन्य नहीं है; बल्कि वह तो, हमारी अधरों, जिह्वा और स्वर-यंत्र की सहायता से स्वरोत्पादन की शक्ति पर आधारित होते हुए भी, प्रशिक्षण-जन्य है, सीखने का परिणाम है।

सभ्यता के आदिम युग में मनुष्य को भोजन के हेतु पशुओं का शिकार करने के लिए अपने जैसे अन्य प्राणियों--मनुष्यों--के सहयोग की आवश्यकता हुई। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उनसे बातचीत करना ज़रूरी हो गया। आपस में बातचीत करने की आवश्यकता ही वस्तुतः भाषा की जननी है, स्पष्टवाणी की प्रेरक है।

यह समझ लेने पर कि वाणी प्रशिक्षण-जन्य है, हकलाने वाले व्यक्ति के विषय में यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि उसके प्रशिक्षण-क्रम में अन्ततः कौन-सी ऐसी बाधा उपस्थित हुई थी, जिसके कारण वह सामान्य मनुष्यों की तरह निरन्तर धारा-प्रवाह नहीं बोल पाता ?

कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति, प्रायः बालक, जिसे प्रशंसा की दृष्टि से देखता है, उसकी प्रत्येक गतिविधि का अनुकरण करता है। ऐसे ही किसी व्यक्ति का अनुकरण करते हुए वह हकलाना भी सीख जाता है। तदनन्तर वह अपनी सही आदत को बनाये रखने की बजाय, अपने अनुकरण की आवश्यकता के पक्ष में तर्क-वितर्क करने लगता है, क्योंकि इसी अनुकरण के बहाने वह स्वयं को अपने प्रशंसनीय व्यक्ति के ऊँचे स्तर तक उठा हुआ अनुभव करता है और इस प्रकार से अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति (जो कि वस्तुतः बेहतर स्थिति है) असन्तोष अनुभव करता है।

मैं शुरू में ही कह चुका हूँ कि हकलाने की आदत के पीछे अपनी ओर दूसरों का ध्यान आकर्षित न कर पाने का भय होता है; लोगों की दृष्टि में 'आकर्षक' बनने की तीव्र इच्छा ही हकलाने की प्रवृत्ति की प्रेरक होती है। ऐसा व्यक्ति, जिसे बचपन में अपनी इस इच्छा को व्यक्त करने के लिए उचित मार्ग नहीं मिलता, हकलाने की आदत को बुराई के स्थान पर एक अच्छाई के रूप में देखने लगता है--वह उसका मूल्यांकन एक गुण के रूप में करता है; क्योंकि इसके कारण वह अनेक ऐसे कामों से छुटकारा पा जाता है जिन्हें वह नहीं करना चाहता।

तुम भी सुना डालो !

पिण्डी के एक मुशायरे में हफ़ीज़ जालन्धरी अपना कलाम सुना रहे थे। एक शेर पर बोले, "सुनिए हसरत साहब ! ज़रा ग़ौर फ़रमाइये इस शेर पर--"

और ग़ौर फ़रमाने से पहले ही मौलाना चिराग़ हसन हसरत झट से कह उठे, "हाँ भाई, सुनाओ ! तुम भी सुना डालो। अपनी तो उम्र ही मुर्दों को कन्धा देते और यार लोगों के शेर सुनते गुज़री है।"

--शाकिर पुरुषार्थी

आप उसे बाज़ार भेजना चाहते हैं और बालक जाना नहीं चाहता--वह हकलाने का सहारा लेगा। शीघ्र ही वह स्थिति आ जायगी, जब आप स्वयं कहा करेंगे--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बब्बू को मत भेजो। उसे तो बात कहने में ही आधा घण्टा लग जाता है।"

स्कूल में भी मास्टर जी कह देते —"बैठ जाओ, बब्बू, बैठ जाओ। जब तक तुम समझाओगे तब तक तो छः जने और बता देंगे। हाँ, दूसरा लड़का!....." इस प्रकार से बब्बू को अपने आपमें सिमट कर निष्क्रिय बने रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

स्कूल में बालक जब किसी बैठक में या वाक्प्रतियोगिता आदि में बोल रहा होता है तो वह अक्षरों और शब्दों को धारा-प्रवाह बोलने के लिये बहुत अधिक संघर्ष करता है, लेकिन वह अपने श्रोताओं के चेहरे पर उभरती हुई उकताहट और अधीरता की रेखाएँ भी देखता है।

हकलाने वाले व्यक्ति का जीवन निरन्तर संघर्ष एवं निराशा का जीवन होता है। इस संघर्ष से और निराशा से छुटकारा पाने का प्रयास करते-करते वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अपनी बोलने की असमर्थता को ही छिपाया जाय—और इस छिपाने के लिए वह तमाम सामाजिक गतिविधियों से स्वयं को हटा लेता है।

यहीं पर वह भारी भूल करता है। उसे 'इसके कारण' सामाजिक जीवन से उदासीन हो जाने की बजाय 'इसके होते हुए भी' उसमें भाग लेना चाहिए—इस प्रकार के दुस्साहस (!) की उसे सबसे अधिक आवश्यकता है।

इस दोष के लिये, कुछ सीमा तक, भय अथवा आतंक के कारण उत्पन्न स्नायविक तनाव भी उत्तरदायी है। 'मैं बोल रहा हूँ।' अथवा 'मैं बोलने वाला हूँ।' जैसी कल्पनाओं से ही बीच में अटक जाने का भय, न बोल पाने का भय, मज़ाक उड़ाये जाने का भय, आलोचना का भय एवं इसी प्रकार की अन्य बातों से उत्पन्न तनाव असफलता को अवश्यंभावी बना देता है। ऐसे व्यक्ति के पास इस अभिशाप से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय यह है कि वह अपनी दृढ़ धारणा कर ले।

"इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मेरे श्रोता और मेरे सम्पर्क में आने वाले लोग जितना मैं उन्हें समझता हूँ, उससे कहीं अधिक सहानुभूतिपूर्ण एवं विचारशील हैं—और यदि न भी हों, तो वे मुझे खा तो जायेंगे नहीं। हँसेंगे ही तो? हँस लेने दो उन्हें!"

एक बार वह बिना किसी तनाव का अनुभव किये उठ खड़ा हो, बस समझिये आधी बाज़ी तो मार ली। दूसरी बात उसे यह ध्यान में रखनी चाहिये कि धीरे-धीरे, कुछ झिझकते हुए बोलना किसी भी तरह से अपराध या दोष नहीं है।

इसी प्रकार से सोचते-समझते एक स्थिति ऐसी भी आयेगी जबकि स्वरोत्पादन की तकनीक को समझने से भी उसे अधिक आत्म-विश्वास प्राप्त होगा; लेकिन उसका अन्तिम उद्देश्य, स्वर की उत्पत्ति की यंत्रगत प्रणाली की ओर ध्यान दिये बगैर, धारा-प्रवाह बोलते जाना ही होना चाहिये। "मेरे विचार अपनी अभिव्यक्ति के लिये शब्दों का चोला पहनते हैं।"—यही विचार सर्वोपरि होना चाहिये।

बोलने में बाधा उपस्थित करने वाले विभिन्न प्रकार के भय की चर्चा करते हुए 'आवश्यकता से अधिक कह जाने के भय' का उल्लेख करना भी आवश्यक है। शायद कोई भी माता-पिता अपने भोले प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाले—बातचीत करते समय अपना बहुत अधिक प्रदर्शन करने वाले—बालक को देख कर सुख का अनुभव नहीं करते होंगे ; लेकिन देखा जाय तो बालक के स्वभाव में इस बुरी आदत की स्थापना का अधिकतम उत्तरदायित्व अभिभावकों, विशेषतया पिता ही पर है।

कठोर अनुशासन, जल्दबाज़ी, अपने चिड़चिड़े स्वभाव अथवा व्यर्थ में की गई

तुम और मैं !

बुढ़ापे में जिगर मुरादाबादी ने शराब छोड़ दी थी। जोश ने एक दिन उन्हें छेड़ते हुए कहा, "जिगर साहब, तरस आता है आपकी हालत पर! शराब छोड़ कर तो आप रिंद से मौलवी बन गये और अपने मुकाम को भूल बैठे।—मुझे देखिए, मैं रेल के खम्भे की तरह आज भी अपने मुकाम पर अटल खड़ा हूँ—।"

सुन कर बड़ी संजीदगी से जिगर ने कहा, "हाँ जोश साहब ! आप वाक़ई रेल के खम्भे हैं।—किन्तु मेरी जिन्दगी रेलगाड़ी की तरह है, जो आप जैसे हर खम्भे को पीछे छोड़ती हुई आगे ही बढ़ती जाती है।"

—शाकिर पुरुषार्थी

अत्यधिक चिन्ता के द्वारा वे बालक के मन में वाणी से सम्बद्ध एक भय की स्थापना कर देते हैं। इस भय के कारण हकलाना और भी बढ़ जाता है। बालक इस चिन्ता अथवा जल्दबाज़ी से प्रभावित होकर मन ही मन में अनेक ऐसी बातों को स्मृति-कोष में एकत्रित कर लेता है जिन्हें वह अकथ्य सम-

झता है—इन्हीं की अभिव्यक्ति से स्वयं को रोकने के प्रयत्न में वह हकलाने लगता है ; क्योंकि उसे भय रहता है कि कहीं धारा प्रवाह बोलते हुए वह उन बातों को न कह जाय।

सबसे बड़ी कठिनाई, जब हम इस रोग का निदान ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं तो, हमारे सामने यह आती है कि प्रत्येक हकलाने वाला व्यक्ति विशेषज्ञ की तरह अपना मनोविश्लेषण नहीं कर सकता। लेकिन यदि निम्नांकित ढंग से विचार करना शुरू करें, तो मेरा विश्वास है कि प्रत्येक हकलाने वाला व्यक्ति इससे लाभ अवश्य उठा सकता है।

डॉक्टर आर. मैकडोनल्ड लैडेल ने अपनी पुस्तक "द' स्टैमरर अनमास्क्ड" में इस विषय में लिखा है कि इस रोग के निदान में सबसे बड़ी कठिनाई है हकलाने वाले का अपने प्रति व्यवहार। हकलाने वाला व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अपनी वाणी की हीनता के प्रति सचेत होता है—वह जानता है कि वह ठीक-ठीक बोल नहीं सकता—लेकिन वह आधारभूत रूप से हीनता का नहीं, उच्चता का अनुभव करता है।

वह प्रायः सोचा करता है—"अगर मैं मात्र इस कठिनाई (बोलने में कठिनाई) को हल कर पाता तो इन सब (सम्पर्क में आने वाले दूसरे प्राणियों को) हरा देता !" भाग्य की विडम्बना तो यह है कि वह प्रायः ठीक ही सोच रहा होता है: उसमें अनेक ऐसे गुण विद्यमान होते हैं, अनेक ऐसी व्यक्तिगत विशेषताएँ होती हैं कि यदि वह हकलाता न होता तो जीवन में बहुत अधिक उन्नति करता।

लेकिन—और यह 'लेकिन' बहुत बड़ी दीवार है, चीन की दीवार समझिए—इस विचार मात्र से ही उसे इतना गहरा आश्वासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल जाता है कि फिर वह अपनी इस अयोग्यता की उपेक्षा करने और इस 'नक़ाब' को उतार कर 'खुलें बन्दों दुनिया का सामना करने' का साहस ही नहीं जुटा पाता। जब वह अपनी सम्भावित सामर्थ्य के अनुसार जीवन-यापन नहीं कर पाता तो इसके लिए हकलाने की आदत को पूर्णतया दोषी मान लेता है। अपनी कमज़ोरी से सम्बद्ध दोषारोपण से बचने के लिये उसे हकलाहट एक बहुत बड़ा सहारा, बहुत बड़ा बहाना नज़र आती है--परिणाम यह होता है कि उसके बिना जीवन संभव है, इसकी कल्पना भी नहीं कर पाता वह।

मैंने एक ऐसे कथावाचक महोदय को घण्टों तक धारा-प्रवाह बोलते देखा है, जबकि वे साधारण बातचीत में एक शब्द भी बिना हकलाये नहीं कह पाते। कथा-वाचन के समय अपनी हकलाहट पर विजय पाने के लिए उन्होंने एक अनोखा तरीक़ा खोज निकाला था: पूछने पर उन्होंने मुझे बताया कि एक दिन एक भजन गुनगुनाते हुए उन्हें अनुभव हुआ कि वे बिना हकलाये भजन गा सकते हैं--बस, फिर क्या था? उन्होंने अपनी सारी बात-चीत, सामान्य घरेलू बातों लाप भी संगीत का पुट देकर करनी शुरू की और कथा-वाचन तो संगीतमय स्वर में करना सामान्य बात है।.....अब यदि वे कहना चाहें "मैं खाता हूँ।" तो वे इसे सामान्य रूप से गद्य में न बोल कर, इसे संगीतमय स्वर में "मैं खा ऽऽ ता ऽऽ हूँ ऽऽ" करके बोलते हैं।

मेरा नम्र सुझाव यह है कि हकलाने वाले लोग बचपन के हवाई किलों को भूल जायें--उनके कारागृह से मुक्ति पायें और जीवन के भवन को कठोर यथार्थ की दृढ़ भूमि पर खड़ा करें, क्योंकि तभी वे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक परिस्थिति के उपयुक्त बसेरा पा सकेंगे; तभी वे अपना पूर्ण विकास कर सकेंगे। ●●●

स्वर्ग का रास्ता

ग्लासगो शहर के एक गिर्जाघर में एक पादरी को भाषण करने के लिए दूसरे शहर से निमंत्रण देकर बुलाया गया। ग्लासगो पहुँच कर पादरी को बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि वह भाषण के लिए निश्चित किये गये स्थान तक पहुँचने का सही रास्ता नहीं जानता था। अतः उसने सामने से चले आ रहे तीन-चार लड़कों से उस नियत स्थान का पता पूछा।

उन लड़कों में से एक ने पूछा--"आप कौन हैं? और वहाँ किस उद्देश्य से जा रहे हैं?"

पादरी ने उत्तर दिया--"मैं वहाँ इस विषय पर भाषण देने जा रहा हूँ कि मनुष्यमात्र के लिए स्वर्ग पहुँचने और ईश्वर-प्राप्ति का सबसे आसान रास्ता कौन-सा है?"

उस लड़के ने शैतानी से मुस्कराते हुए पूछा--"आश्चर्य की बात है कि आप स्वयं उस नियत स्थान तक का रास्ता नहीं जानते।"

--माया तिवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

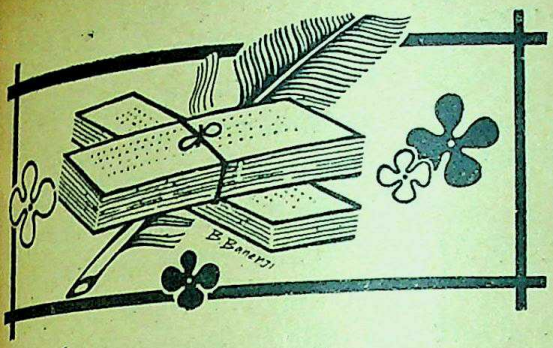

अनिल कुमार

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

('फ्रेडरिक द ग्रेट' के सृजन-काल में थामस कॉर्लाइल की मन:स्थिति तथा निरीह लेखक-पत्नी के मौन उत्सर्ग का रूपांकन)

पात्र

थामस : प्रसिद्ध ग्रंथ 'फ्रेडरिक द ग्रेट' के लेखक कॉर्लाइल ।
जिनी : लेखक-पत्नी, आयु ३० से ६० तक ।
वाचक, डाकिया और कोचवान ।

वाचक : अदृश्य की लेखनी अनेक जीवन-कहानियाँ लिख चुकी हैं। १४ जुलाई १८०१ को वह लेखनी एक कहानी आरंभ करती है—जिनी वेल्श थामस कॉर्लाइल की जीवन-कथा ! दार्शनिक पति की महानता की जड़ों में कर्मठ पत्नी का व्यथा-दग्ध मौन उत्सर्ग !!

उमर का सुनहला फूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जलतरंग पर आशा और प्रसन्नता-सूचक मनोरम संगीत)

थामस : (प्यार भरे स्वर में) जिनी ! जेन !!

जिनी : यस कॉर्लाइल.....

थामस : (चुप रहता है)

जिनी : कॉर्लाइल, अभी मुझसे कुछ कह रहे थे न !

थामस : (जैसे किसी सपने से जाग रहा हो) अँ.....नहीं तो !

जिनी : नहीं क्या ? अभी-अभी कितने प्यार से तुमने मुझे पुकारा कॉर्लाइल ! सच बताओ, तुम कुछ छिपा रहे हो मुझसे ?

थामस : तुम्हारा विश्वास है, मैं तुमको प्यार से पुकार रहा था। (उपहास से हँस कर) भ्रम है तुम्हारा !

जिनी : नहीं-नहीं कॉर्लाइल, मैंने कितना स्पष्ट सुना (कॉर्लाइल के अनुराग पूर्ण स्वर का अनुकरण करते हुए) जिनी ! जेन ! डार्लिंग !!—तुमने नहीं कहा ?

थामस : कहा भी हो....लेकिन अपनी जेन से कहा था। अपने मन की।

जिनी : तो मुझे क्यों सुनाई दिया ?

थामस : बता दूं ?

जिनी : नहीं....मैं ही बताती हूँ।

थामस : हाँ।

जिनी : मैं तुम्हारे मन की जेन हूँ न....मैंने सुन लिया ! (खिलखिला कर प्रसन्नता बिखेर देती है)

(थामस अपनी प्रसन्नता को उसकी हँसी में मिला देता है)

(वायलिन और जलतरंग पर उलझन भरे स्वर)

थामस : मैं एक प्रश्न पूछूंगा—बस एक। दोगी उत्तर ?

जिनी : मत पूछो। मैं उत्तर दे रही हूँ। (और जैसे एक नशे में सब कह जाती है) डियर कॉर्लाइल, आइ लव यू ! डीयरेस्ट आइ लव !! मैं जानती हूँ मेरा कथन अविचारपूर्ण है लेकिन क्या करूँ ? मेरे स्वभाव की सारी अभिलाषाएँ उमड़ कर तुम में केन्द्रित होकर तृप्त हो जाती हैं। पर अगर तुम मेरे भाई होते तब भी इसी तरह तुमसे स्नेह करती। मैं केवल तुम्हारी मित्र बनी रहूँगी। एकनिष्ठ मित्र ! जब तक मेरे प्राणों में स्पन्दन होगा। लेकिन तुम्हारी पत्नी ? नहीं... नहीं, कदापि नहीं। नाम और दाम की ऊँची चोटी पर बैठ कर मुझे तरसाओगे तब भी नहीं।

थामस : (विह्वलता से) जेन ! जेन !!

(शोक विह्वल थामस का हृदय चित्रित करने वाला वायलिन पर करुण आरोह-अवरोह)

(जिनी खिलखिला कर हँसती है)

थामस : लगातार हँसती हुई तुम कितनी सुन्दर दिखती हो जेन ! सुकुमार लिली की तरह। लेकिन तुम्हारा हँसना मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम्हारी विषण्ण मुद्रा देखने के लिए मेरा मन तरसता रहता है। मैं प्रेम की देवी उदास और गंभीर जेन को चाहता हूँ। चंचल, हँसोड़ जिनी मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाती।

जिनी : (तटस्थता से) और मैं तुम्हें—केवल तुम्हें चाहती हूँ कॉर्लाइल ! यदि ऐसा न करूँ तो अपने आपके प्रति कृतघ्नता होगी। लेकिन मेरे प्रेम में नदी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेग नहीं; अस्तित्व पर धूल डाल देने वाला बवंडर नहीं जो दिमाग के द्वार बन्द कर देता है। यह स्थिर ममता है—जिसका आधार है, श्रद्धा और सहानुभूति।

थामस : तुम्हारी बेसिलसिला बकबक का कभी कुछ मतलब भी होता है जिनी ?

जिनी : क्यों नहीं ? मैं कहने जा रही थी—हमारे पारिवारिक सुख की इमारत इसी स्थिर ममता पर खड़ी हो सकती है।

(वायलिन पर लम्बे-लम्बे आलाप)

थामस : आजकल ग्रामीण वातावरण में रहने की इच्छा है।

जिनी : गाँव में ? **(असम्मति से)** छीः ! तुम्हारा दिमाग भी जाने क्या-क्या सोचता रहता है कॉर्लाइल !

थामस : अभी तो पूरी बात सुनी ही नहीं तुमने !

जिनी : मुझे जलाने के लिए कुछ और बाकी रह गया है क्या ? सुना दो जल्दी से, कम से कम एक उसाँस तो ले सकूँ।

थामस : इसके लिए स्कॉटलैण्ड ज्यादा अच्छा रहेगा। वहाँ एक अच्छा-सा खेत खरीदने का विचार है। नीरव—निर्जन एकान्त बड़ा प्रिय होता है जेन !

जिनी : क्रेगनपुटक में मेरा एक खेत है, वहीं चले जाओ न !

थामस : क्रेगनपुटक ?

जिनी : हाँ ! पूरा एकान्त प्रदेश है। चिड़ियों के अतिरिक्त कोई शोर मचाने वाला भी नहीं। शहरी आवागमन के साधन ही नहीं तो भीड़-भड़क क्यों होगी ! वहाँ पड़ोसी भी घर से मील भर दूर रहता है। पोस्ट-ऑफिस और दवाखाना पन्द्रह मील दूर। चारों तरफ नरम दलदल....न कहीं टीले, न झुरमुट। आदमी की चहल-पहल से शून्य क्रेगनपुटक तुम्हारे लिए एकदम सुविधाजनक होगा। जहाँ शाखों में पत्तियाँ तक डरते-डरते ऊगती हैं। बस, एकदम तुम्हारे योग्य ! रूखा ! नीरस-बंजर !

थामस : भई वाह ! एकदम सुन्दर ! तुमने बिल्कुल उचित स्थान सुझाया जिनी। मैं ऐसे ही किसी प्रशान्त वातावरण की खोज में था।

जिनी : **(व्यंग कारगर न होता देख कर)** धत्तेरे की। तुम कुछ नहीं समझे !

थामस : **(भोलेपन से)** तो ? तुम हँसी उड़ा रही थी ?

जिनी : और क्या तारीफ कर रही थी ?

थामस : मैं समझा सहयोग दे रही हो। पर मज़ाक छोड़ो, वास्तव में ऐसे स्थान पर कुछ रोज रहना चाहता हूँ जिनी। शहरी जीवन से ऊब गया हूँ।

जिनी : क्यों ? मैं शहर में रहती हूँ इसलिये !

थामस : तुम भी क्रेगनपुटक में रहोगी। चली चलो मेरे साथ। तुम होगी और स्वर्ग होगा।

जिनी : मेरी उपस्थिति तुम्हारी एकान्त-साधना में बाधा नहीं बनेगी ?

थामस : नहीं जेन, उस एकान्त की महिमा बढ़ जायेगी।

जिनी : पर मैं तुम्हारे प्रेम में अभी पागल नहीं हुई हूँ जो क्रेगनपुटक के बंजर को स्वर्ग समझने लगूँ।

थामस : जेन !.....**(वेदना से)** जेन !!

(पियानो पर आघात—करुण संगीत लहर, संगीत चलता रहता है)

थामस : **(आत्म-चेतना)** मेरी मनोदेवता चीख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीख कर कहती है--मानव ! तेरा पतन हो रहा है। दिन-रात भीतर ही भीतर तू सुलग रहा है। देख, तेरे हृदय का अमृत जहर बन रहा है। भाग्य की ठोकर खाने वाले प्राणी, उठ, प्रभु का नाम ले और अपने भविष्य का निर्माण कर। यंत्रणा के नरक में जल कर खाक बन जाने के लिए तू पैदा नहीं हुआ !

जिनी : नहीं....नहीं, मैं प्रेम में कोई मर्यादा नहीं मानती। शिक्षा, विनय और कर्त्तव्य की समस्त मर्यादाओं को ठुकरा देने की शक्ति मेरे प्रेम में है। पर हृदय में वह असीम प्रणय-सागर आलोड़ित कर देने वाला महापुरुष कहाँ है ? अच्छा है, वह पहाड़ी झरना नहीं फूट पड़ता, कहीं जीवन के कगारे टूट कर न बहने लगे। मेरे प्रेम का प्रवाह शान्त-सरिता की तरह जीवन की सृष्टि करता चलता है।

(संगीत लहर विलीन)

थामस : कितना सुन्दर पत्र लिखा है तुमने ! इसे लिख कर तुम मेरे निकट आ गयी हो जेन ! मेरी जेन ! !

जिनी : तुम्हारे लिए अपनी धारणाएँ बदल रही हूँ। पत्नी बनने के लिए भावनाएँ सुकुमार बना रही हूँ।

थामस : **(अविश्वास का अभियोग)** अभी ऐसा कहती हो। कल कुछ और कहोगी। तुम्हारा क्या विश्वास ?

जिनी : तुमको छोड़ कर कहाँ जाऊँगी अब ? मुझे समझने वाला इस दुनिया में कौन है ? हम कल ही शादी कर लें। हमारा विश्वास अब कोई नहीं तोड़ सकता। तुम्हारे संग दुःखों को सुख मान कर सहूँगी थामस। दोषों को गुण बना लूँगी। जिस पर सम्पूर्ण प्रेम लुटाया उसके लिए इतना भी न कर सकूँगी ? मेरा यही तो कर्त्तव्य है अब !

थामस : मेरे साथ विवाह-सूत्र में बँध जाने की अभिलाषा तुम्हारे मुँह से मुखर हो रही है। मैं तुम्हारी प्रवंचना नहीं करना चाहता।

जिनी : शुभ संकल्प के क्षणों में मधुर नहीं बोलना चाहते तो चुप ही रह जाओ थामस।

थामस : जिनी, मुझे अपने जीवन की एक परिस्थिति भर समझो। इसे विस्तार

भेड़िया बनाम एटम बम

प्रगतिवादी साहित्य की आलोचना करते हुए एक बार 'असर लखनवी' ने मजाज के बारे में लिखा--"मजाज उर्दू शायरी का कीट्स था जिसे तरक्की-पसन्द भेड़िये उठा कर ले गए।" यार लोगों में बड़ी चर्चा रही इस बात की।

असर साहब के इस वर्डिक्ट का

देकर तुम अच्छा नहीं करोगी।

जिनी : ऐसा न कहो मित्र ! मैं तुम्हें सुख के सरोवर में नहलाऊँगी। तुमको शिकायत का अवसर ही नहीं मिलेगा। आँखों से--ओठों से अपना प्रेम मुझ पर बरसने दो। उस वर्षा में भीग कर संसार को तुच्छ समझने दो !

थामस : लेकिन मेरी एक शर्त है।

जिनी : कहो !

थामस : मेरा सिगार भी साथ रहेगा।

जिनी : नहीं। मैं सिगार से घृणा करती हूँ। जाने कैसे यह गंदी चीज सदा ओठों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाये रखते हो। धूम्रपान वन्द !

जिनी : सिगार मुझसे प्यारी नहीं हो सकती।

थामस : तुम्हारे सामने न सही। कभी-कभी....जब तुमसे दूर रहना पड़े....

जिनी : नहीं। आप तो अभी से दूर हटने के साधन जोड़ रहे हैं।

थामस : बिना सिगार के मेरे लिए कुछ भी संभव नहीं। क्या तुम्हारे पास मेरे लिये कोई सुविधा नहीं ?

जिनी : सुविधा ?

थामस : हाँ ! शादी के बाद दिन में तीन सिगार पीने की अनुमति दे सकोगी ?

ज़िक्र करते हुए किसी दोस्त ने मजाज़ से पूछा--"असर लखनवी के बारे में आपकी क्या राय है मजाज भाई ?"

मजाज़ ने ख़ौफ़ज़दा होकर उत्तर दिया--"एक एटम बम का था जो हिरोशिमा पर गिरा था, दूसरे असर लखनवी हैं जो हमा-शुमा पर गिरते हैं।"

--शाकिर पुरुषार्थी

बिलकुल कम्पलसरी ! उस पर तुम्हारे ताने और झिड़कियाँ नहीं सुनूँगा। मेरी मानसिक शान्ति के लिए सिगार एकदम आवश्यक है।

(अन्तराल)

जिनी : क्या चल रहा है ?

थामस : (उपेक्षा भाव) कौन ? अरे जेन !

जिनी : बड़ी जल्दी परायापन आ गया।

थामस : अभी जाओ, फिर आना। मुझे एकान्त की आवश्यकता है।

जिनी : फिर ? तुम्हारा 'फिर' कभी आने वाला भी है ? सवेरा इस कमरे में होता है। नाश्ते के बाद शाम के चार यहीं बजते हैं। दिन डूबता है, अकेले टहलते हुए और रात इसी मनहूस कमरे के सूने अँधेरे में--

थामस : (तड़प कर) भगवान के लिए मुझे चुपचाप लिखने दो। जाओ, मेरा ध्यान उचटने के पहले हट जाओ मेरे सामने से ! तुम नहीं जानती मैं.....

जिनी : मैं नहीं जानती थी मेरे जीवन में अँधेरा लेकर आओगे।

थामस : (झींक कर) उफ़् ! जाओ जिनी जाओ। मुझे काम करने दो।

(सीढ़ियाँ उतरने का शब्द)

जिनी : मिल गयी फ़ुरसत ?

थामस : नहीं। एक बात कहने आया हूँ।

जिनी : कहिये ?

थामस : यहाँ काम ठीक नहीं हो रहा। आये दिन एक न एक झंझट बना रहता है।

जिनी : इतनी जल्दी मैं झंझट हो गयी ?

थामस : तुम से नहीं कहता। दूसरी कई दिक्कतें हैं। मिलने वालों का सिलसिला बना रहता है। काम में मुश्किल पड़ती है। मैं जो ग्रंथ लिखने जा रहा हूँ उसके लिए मन को शान्ति की ज़रूरत है। बिल्कुल तन्मयता--जिसमें खलल डालने वाला कोई न हो। मिलने-जुलने वालों से बचना चाहता हूँ। एकान्त बड़ा ज़रूरी है। वैसा एकान्त जैसा तुमने एक बार क्रेगनपुटक के बारे में कहा था।

जिनी : (आशंका से) क्रेगनपुटक ?

थामस : हाँ ! वहीं अच्छा रहेगा। जितनी जल्दी हो सके वहाँ चलने की तैयारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनमोल भेंट

"मेरे लाल! शादी के इस शुभ अवसर पर मैं आज तुम्हें ऐसी वस्तु दे रहा हूँ जो मुझे भरपूर आशा है कि तुम्हारे विवाह पर मिलने वाली सब भेंटों से बढ़िया सिद्ध होगी। यह वस्तु, भविष्य में तुम्हारी झोली को खुशिया से भर देगी। इससे प्राप्त की हुई पूँजी से तुम अपने लड़के की शिक्षा, लड़की की शादी तथा सुखी बुढ़ापे का प्रबन्ध कर सकोगे।

"इस पालिसी को जारी रखना मेरे बेटे! मुझे विश्वास है कि तुम्हारी सुघड़ पत्नी इसकी किश्तों को वक्त पर अदा करने में ठीक वैसे ही तुम्हारी सहायता करेगी जैसे तुम्हारी मां ने मेरी गदद की और मैं उस पालिसी को निभा सका जिस से प्राप्त किये धन से तुम ऊँची शिक्षा पाने में और फलस्वरूप गौरवमई जीवन को आरम्भ करने में सफल हो सके!"

लेन देन के लिये जीवन बीमे की पालिसी एक बढ़िया लोहफ़ा है।

जीवन बीमा
सुरक्षा का सबसे बेजोड़ साधन है

EP/SZ. LIC. 1 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो। इस एडिन्बरो में काम नहीं चलेगा। उसके लिए क्रेगनपुटक ही ठीक रहेगा।

जिनी : (आत्म-व्यथा) हाय! क्रेगनपुटक!!

थामस : (निश्चय पूर्वक) हाँ, क्रेगनपुटक! वह नीरव....एकान्त प्रदेश.... **(जाता है)**

जिनी : (आत्म-व्यथा) जिनी! तू छाया है। चलाने वाले के पीछे चलना तेरा धर्म है। विवाहित स्त्री है तू। क्रेगनपुटक जाऊँ या न जाऊँ यह सोचने की स्वतंत्रता तुझे नहीं। तुझे जाना होगा। दुर्भाग्य को सौभाग्य मान कर जीना सीख! महान लेखक की पत्नी बनी है तो पी उसकी महानता का अभिशाप!

(रूखी हवा का झोंका स्वरों को डुबा देता है)

जिनी : यहाँ क्रेगनपुटक में कुछ भी तो नहीं। पियानो होता तो आपका मनोरंजन करती।

थामस : मेरे मस्तक में दिन-रात पियानो बजता रहता है। यही क्या कम है? मेरी प्रतिभा आजकल जोर-जोर से गा रही है। तू अपनी बेसुरी तान छेड़ कर क्यों परेशान करती है?

जिनी : रात-दिन लिखते रहते हैं--देखिए, कितने थक गये हैं? गाने से थकान मिटेगी।

थामस : मेरा चुपचाप बैठना भी तुमसे नहीं देखा जाता। भगवान के लिए मुझसे ज़रा कम बातें किया करो। देखती नहीं, कब किस विचार में दिमाग डूबा रहता है। किसने कहा यह बेकार की झंझट मोल लेने के लिए?

जिनी : किसी ने नहीं। सोचा था--आपकी थकान ही मिटा सकती।

थामस : कोई जरूरत नहीं। मेरे सब काम ठीक चल रहे हैं। अपनी देखो। बात-बात में टाँगें अड़ाने की आदत छोड़ दो!

जिनी : मैं तो आप ही के लिए कह रही थी।

थामस : मेरे लिये? मेरे लिये कुछ मत सोचो। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। **(खीझ कर)** दम भर चैन से बैठ कर कुछ सोचने नहीं दिया जाता। **(जाने लगता है)**

जिनी : (हारी हुई, बेबस) किस्मत अपनी ही फूट गयी तो शिकायत किससे करूँ? किसके सामने रोऊँ? **(करुणा से गीली)** कभी मेरे लिये भी सोचते हो निष्ठुर! मतलबी!!

थामस : (दूर से) रोटी सबेरे तुमने बनाई थी?

जिनी : बाहर से मँगवाई थी। क्यों?

थामस : मँगवाओ बाज़ार से। यहाँ पियानो बजाने की फ़ुरसत मिलती है। मेरे लिये घर में डबल रोटी नहीं बना सकती? तुम्हें मालूम है, मेरा हाजमा अच्छा नहीं... बाज़ार की चीज़ चलती नहीं। किसी दिन कुछ हो गया, सब धरा रह जायेगा। लेकिन क्या करोगी? सीखा ही नहीं होगा।

जिनी : किताब मँगाई है। दो-चार दिन में घर की डबल रोटी खिला दूँगी।

थामस : उफ्! दो-चार दिन? पेट तो अभी से पत्थर हो गया है।

(सामान उठाने, रखने, बर्तन टकराने, खटकने की आवाज़ें घड़ी में दो बजने का शब्द)

(जिनी को खाँसी का दौरा आता है)

थामस : (खीझ कर) भई क्या हो गया?

जिनी : जरा खाँसी आ गयी... **(फिर खाँसती है)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थामस : (शिकायत) मेरी तो नींद हराम कर दी तुमने !

जिनी : बाहर चली जाती हूँ। लेट जाइए आप।

थामस : और यह खटर-पटर क्या होता रहता है बार-बार ? रात में भी आराम से नींद लेने दोगी या नहीं ? किताब से थक कर थोड़ा लेटा ही था।

जिनी : डबल रोटी बना रही हूँ आपके लिए।

थामस : (चिड़चिड़ेपन से) आधी रात उलट गयी और तुम्हारा काम निबटा ही नहीं ?

जिनी : थोड़ा और है। इतनी रोटी भुन जाय (खाँसी)।

थामस : बीमार पड़ कर मुझे परेशान करने के लिए रात-रात भर डबल रोटी सेंका करो। कल सिर-दर्द होगा, पीठ दुखेगी--मेरे काम में हर्ज होगा यह नहीं सोचा कभी। दिन में क्यों नहीं कर लेती--रात के लिए काम बचा रखा है। ज़रा आँख लगी थी, तुम्हारी खट-खट से नींद उचट गयी। तुमसे भी नाक में दम आ गया। एक न एक परेशानी बढ़ती ही रहती है।

जिनी : दिन में कहाँ फ़ुरसत मिलती है ? आपने नौकर को डाकखाने भेजा है कल से लौटा ही नहीं। दिन भर काम धरा रहता है।

थामस : (आश्चर्य से) कल से गया और अभी तक नहीं लौटा ?

जिनी : (चिढ़ कर) तो झूठ कहती हूँ ?

थामस : तुम तो सीधे से बात ही नहीं करती। वह कम्बख्त अभी तक क्यों नहीं लौटा ?

जिनी : (ताने से) पास है ? पन्द्रह मील जाना, पन्द्रह मील आना।

थामस : तो क्या दो रोज़ लगा देगा ?

जिनी : मेरे लिये दवा लेने अस्पताल भी ... गया होगा।

थामस : तुमको फिर दवा की ज़रूरत पड़ गयी ?

जिनी : कुछ रोज़ से खाँसी का ज़ोर बढ़ गया है देखते नहीं परेशान हूँ। (खाँसती है)

थामस : रात-रात जागने का फल क्या होगा ?

जिनी : आप ही के लिए--

थामस : (तुनक कर) और उलटा मुझ पर एहसान लाद कर मरोगी ?

(थामस का स्वर क्रमशः विलीन)

जिनी : रात के दो बजे, खाँसती हुई आपके लि... डबल रोटी सेंकती खड़ी हूँ--यह भी नहीं देखा जाता ? (फूट-फूट कर रोने लगती है)

(अन्तराल)

जिनी : (आत्मगत) अब नींद नहीं आती। 'मार्फिया' से ज़रा कभी आँख लग जाती थी। अब वह भी असर नहीं करता। किसी तरह नींद नहीं आती। शायद तीन बजने वाले हैं। और ये अभी तक लिख रहे हैं ?.....लिखो। जब तक मैं जाग रही हूँ, लिखे जाओ--संसार की बेखबर--सबको भूल कर....अपने को भुला कर। लेकिन जल्दी करो--अब बहुत नहीं जाग सकूँगी। तेल चुक रहा। आँखें झपकने ही वाली हैं। कुछ 'मार्फिया' का असर, कुछ ज़िन्दगी की सीधी चढ़ान की थकावट। थोड़ी और रह गयी है वह भी किसी तरह चुपचाप कट जाय। जब तक मुझे नींद लगे....तुम अपनी मंज़िल पार कर लेना मेरे कलम के धनी ! फिर अवकाश मिले या न मिले.....? (घड़ी की टिक-टिक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थामस : (आकर) जिनी, कल हमलोग लन्दन चलेंगे। मेरा बहुत-सा काम निबट गया है। डाकखाने की बड़ी दिक्कत है यहाँ। कैसी है तुम्हारी तबियत ? लन्दन चल सकोगी ? साफ़-साफ बता दो। कहीं रास्ते में तुम्हारी तबियत को लेकर परेशान न होना पड़े।

जिनी : अब आपको परेशानी न होगी। चली चलूंगी....। थोड़ी-सी तकलीफ है, वह भी थोड़े समय की है।

थामस : (रुख न समझ कर) हाँ-हाँ, लन्दन में इलाज करवा लेना। लेकिन वहाँ मिलने-जुलने वालों की भीड़-भड़क रहेगी। तुम्हारी सहायता के बिना तो वहाँ मेरा कदम नहीं हिल सकेगा। वहाँ पहुँचते ही तुमको एकदम स्वस्थ हो जाना चाहिए।

जिनी : वैसे तो अभी भी स्वस्थ हूँ। जरा लेट गयी थी....अभी ढेर सारा काम पड़ा है। (**हाँफती-काँखती उठने लगती है--लड़खड़ा कर गिरने लगती है**)

थामस : देखो....देखो--अभी मैं न सँभालता तो फिसल पड़ती। जो नहीं बनता, करने दौड़ती है। मेरी आफ़त थी, तुम्हारा क्या, पड़ जाती बिस्तर पर ! रह जाता मेरा लन्दन जाना....जरा मेरी तकलीफ़ भी देखा करो !

(**अंतराल संगीत**)

जिनी : (**पत्र पढ़ती हुई-सी**) "किटी, तू शादी करने जा रही है और चाहती है मैं तेरा अभिनन्दन करूँ ? तुझे बधाई का पत्र लिखूं ! अच्छा है, कर शादी। मेरी अभिलाषा है, तेरा नया जीवन सुखी हो। लेकिन एक बात बता दूं ? तू सच मानेगी या पागल कहेगी मुझे ? अगर सच बता दूं--तेरी चिट्ठी में शादी की बात पढ़ कर मैं ज़ोर से चीख़ पड़ी ! मुझे लगता है, सीमाहीन अज्ञान की गहराई में तू कूद रही है।

मैं जानती हूँ किटी, अपने जीवन में तू बहुत सुखी और प्रसन्न लड़की है। पिता की इकलौती प्यारी बेटी होकर तूने सब सुख पा लिया है। मैं भी तेरी तरह अपने पिता की अकेली प्यारी बेटी थी। मुझ पर कितना गर्व था उनको। तेरे पिता का क्या होगा ? भावी जीवन में उनको कौन सुख पहुँचायेगा ? पत्नी पहले ही चली गयी, अब बेटी भी चली जायेगी। कैसा विचित्र पत्र लिख रही हूँ किटी, लेकिन क्या करूँ ? अब मैं तुझे कहाँ से प्रकाश दूं ? नींद आने के लिए रोज थोड़ा-सा ज़हर (**मार्फिया**) ले लेती हूँ। शायद यह उसी का असर है। अब प्रकाश देने की मुझ में शक्ति कहाँ है ? मेरे भीतर अँधेरा घिर गया है ; वही बाहर फूटा पड़ रहा है, इसलिये अपने ऊपर आवरण डाल लेती हूँ। कहीं एकाध छींट तुझ पर न पड़ जायें। ईश्वर तुझे सुख दें !"

(**करुण संगीत स्वर**)

(**घोड़ागाड़ी के दौड़ने का स्वर निकट आने लगता है। बस के दौड़ने का स्वर पास आता है। दोनों स्वर टकरा कर खटका होता है। बस रुकती है। घोड़ागाड़ी जल्दी में रोकी जाती है। लोगों की आवाज़ें--"एक्सिडेन्ट... एक्सिडेन्ट..." थोड़ा शोर...कुछ चहल-पहल, फिर शान्ति। एक आवाज़--"कोई बुढ़िया है। आँख से बराबर नहीं**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई दिया। बस पकड़ने की कोशिश में विक्टोरिया से टकरा गयी।")

(घड़ी की टिक्-टिक्)

(जिनी कराहती है)

थामस : (फर्श पर चलने का शब्द) जेन! मूर्ख की तरह मुँह क्यों खोल रखा है? बन्द करो न!

(बोलने में असमर्थ जिनी सिर्फ कराहती रहती है। घड़ी की टिक्-टिक् साफ़)

थामस : (झल्ला कर) मैं क्या पूछता हूँ, सुनाई देता है?

जिनी : (वेदना से) ओह!....ओह!!...

थामस : खैर मनाओ भगवान की, जो एक्सिडेंट गंभीर नहीं था। आये दिन मुसीबत..... आये दिन आफ़त लगी रहती है।

जिनी : (रुक-रुक कर, हाँफती-कराहती कहती है) मेरे कष्टों की तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। यहाँ दर्द से मेरी जान निकल रही है, भगवान की क्या खैर मनाऊँ?

थामस : (जाते हुए) चुपचाप पड़ी रहो। ऐसा आक्रोश, मेरे प्रति अवहेलना का ऐसा दुत्कार तुम में पहले कभी नहीं देखा, जिनी!

(संगीत)

जिनी : अब बिल्कुल अच्छी हूँ। थोड़ा-बहुत चल-फिर सकती हूँ। पड़ोस में कह दूँगी, अब कोई आने-जाने की तकलीफ़ न उठायें। बीमारी में मुझसे मिलने-जुलने वालों की चहल-पहल से उनके काम में रुकावट पड़ती है। अब उनकी किताब समाप्त हो रही है। शान्ति से पुस्तक का अन्तिम अध्याय लिख लें तो मैं भी उनके सुख में संतोष की साँस भर सकूँगी।

थामस : (पुकारता हुआ आता है। प्रकाश है। तनिक दूर का स्वर) जिनी...जेन! (पास से) जेन! मेरे सिर का बोझ उतर गया जेन! 'फ्रेडरिक द ग्रेट' आज पूरा हो गया। प्रकाशक को पाण्डु-लिपि भेज कर सीधे तुम्हारे पास आ रहा हूँ। जैसा चाहता था उससे कुछ बढ़ कर ही उतरा है। आज मैं बेहद खुश हूँ जेन! बहुत खुश हूँ। यह सब तुम्हारे कारण हो सका....केवल तुम्हारे कारण...कितना सहयोग दिया तुमने! यह क्या हाल बनाया है तुमने! और अभी तक क्या कर रही हो? (बाहर द्वार पर खटका) कौन? ....क्या है?

आवाज़ : तार.....

थामस : लाओ। (कागज पढ़कर खुशी से) जेन!

जिनी : क्या है?....किसका है तार?

थामस : एडिनबरो युनिवर्सिटी का है। मुझे 'लॉर्ड रेक्टर' चुना गया है।

जिनी : 'फ्रेडरिक द ग्रेट'--ग्रंथ पूरा हुआ। एडिनबरो युनिवर्सिटी ने तुम्हें रेक्टर चुना। जीवन भर कठोर साधना की, उसका फल मिल रहा है--इसी जन्म में! इसी शरीर से वह सुख भोगो। थामस, तुम बहुत खुश हो न आज?

थामस : हाँ जेन, बहुत खुश हूँ।

जिनी : तुम्हारी प्रसन्नता ही मेरा पुरस्कार है। मैं सब कुछ पा गयी।

थामस : झटपट तैयारी करनी है। एडिनबरो जाना होगा। कन्वोकेशन हो रहा है। मुझे दीक्षान्त भाषण पढ़ना है।

जिनी : जाओ, ईश्वर करे, वहाँ भी तुम्हारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय हो !

शाम्स : तुम्हारी सद्भावना ही मेरा वास्तविक संबल है। चलो, जल्दी मेरे जाने की तैयारी करो। अधिक समय नही है।

(घोड़ागाड़ी के जाने का स्वर उभरता है। बाद में केवल घड़ी की टिक्-टिक् ; थोड़ी देर बाद द्वार पर दस्तक)

जिनी : कौन है ?

आवाज़ : तार.....

जिनी : तार ? **(हाँफती हुई उठती है। डगमग-लड़खड़ चलती है।)** उन्हीं का होगा। चार दिन हो गये। एडिनबरो गये हैं न ! उन्हीं का कोई शुभ-समाचार होगा.... **(लिफाफा खोलने का शब्द)** कॉर्लाइल वन द कन्वोकेशन....जीत गये ! ....सच, तुम जीत गये ! **(हर्षातिरेक से)** तुम्हारा दीक्षान्त भाषण अब तक की परम्परा में सबसे अभूतपूर्व रहा। कॉर्लाइल जीत गये ! कॉर्लाइल जीत गये ! ! इतनी कँटीली पगडंडियों के बाद यह एक खुला राजमार्ग दीखने लगा है लेकिन कब तक ? अँधेरी रातों में, काँटों भरी दलदल का लम्बा रास्ता चल कर यहाँ पहुँची हूँ....सुख-तरंगिनी के तट पर.... लेकिन इस हाल में ! काँटों की पगवट पर चलने वाली मैं, क्या फूलों की पग-डण्डी पर चल सकूँगी ? और अब मुझमें वह चैतन्य कहाँ ?....अँधेरे में भटक कर... काँटों में उलझ कर समस्त चैतन्य चुक गया ; प्रकाश बुझ रहा। अब इस जीवन का प्रयोजन भी क्या है ? डेज़ी कहती है, 'अब मैं अच्छी हो जाऊँगी !' बेचारी !....वह क्या जाने कि यह बुझने के पहले की भभक है। और चाहूँ भी तो जी कर क्या करूँगी ? वे सपने, वे राजमार्ग पीछे छूट गये। उमर का वह सुनहला फूल एक-एक पँखुरी बिखेर चुका है। रह गया निःश्वासों के डंठल पर एक ठूँठ। जिसके होने न होने से इस उपवन का क्या बनता बिगड़ता है ? एक हल्का-सा झोंका मेरे पतझड़ की कहानी का अन्तिम पृष्ठ लिख देगा।

(गहरी उदास साँसें)

कोचवान : **(खटका...फिर एकाएक स्वर)** ओह ! क्षमा कीजिए मैडम। गाड़ी पोर्च में लग चुकी है। घूमने न जाइयेगा ?

जिनी : तैयार हूँ। **(नीरवता। पदचाप दूर जाती हुई)**

(घोड़ागाड़ी चल पड़ती है। स्वर कभी निकट कभी दूर जाता हुआ)

कोचवान : मैडम....मैडम....वापस नहीं लौटिये .....ओह ! **(करुण स्वर)** आप वहाँ पहुँच चुकी हैं जहाँ से कोई नहीं लौटता....

(वायलिन पर करुण आलाप)

वाचक : घोड़ागाड़ी में शाम की सैर को निकली जिनी गाड़ी में बैठी-बैठी चिरनिद्रा में विलीन हो गयी। गृह-परिवार के सुख-दुःखों के आन्दोलन, क्रन्दन, प्रलोभन से परे हो गयी। और सन् १८०१ को विधाता की लेखनी से आरंभ हुई एक दुखद् पारिवारिक जीवन-कथा का अन्तिम पृष्ठ सन् १८६३ की किसी उदास संध्या में स्थायी विराम-चिह्न से अंकित हुआ। ● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए
लक्स ज़रूरी है'

चित्रतारिकाओं
का शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

'मेरा मनचाहा साबुन मेरे मनचाहे रंगों में!' साधना कहती हैं

LTS. 111-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्र अनुरागी

नखरों के घुंघरू, बाँसुरिया प्यार की,
थाप दिये चल माझी रे पतवार की !

नौका कान्हा बनी, लहरियाँ गूजरियाँ,
बुंदियाँ नाचीं रास, बजीली नूपुरियाँ
घट-घट जमुना भरीं नयन की गागरियाँ,
भटकीं-बिसरीं ग्राम-प्रान की नागरियाँ,

ऐसी सीझी साँझ, न सुध भिनसार की,
खुली गुलाबी कोर उषा के द्वार की !

बछियें झूल बजाएँ, आकुल हैं गैयाँ,
रोये बालगुपाल फेंक हत्तू पैयाँ,
सुमन सुनैएँ चढ़ीं टहनियों की कैयाँ,
चुपके खुले दुआर उड़े भौंरा सैयाँ,

कन - कन केशर रची अनंग फुहार की,
उड़ चल अपने देश चिड़ैया डार की !

उड़ चल अपने देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

ग्राम्य जीवन की एक सरस रस-कथा, लोक-गीतों के अमर कोश से

(किसी यशोदा को कोई नन्दलाल हुए हैं। गाँव-पुर के लोग बधाई ले आये हैं। ड्योढ़ी के बाहर मंगल-वाद्य बज रहे हैं और आँगन में गा रहे हैं सोहर के सुरीले बोल। पिछवाड़े की पगडंडी से गुजरता हुआ पं० शर्मा, एक यायावर नीम की छाँह तले बिरम गया है। सोहर की लोक-माधुरी में डूबा हुआ, गीत की प्रत्येक अर्थ-पंक्ति को पकड़ने की कोशिश कर रहा है वह।)

बहुरिया है कि सोने की छड़ी। अंग की पतली और रंग की गोरी। चले तो अँगूठा मोड़ कर और पैजनी न बजे। हँसे तो बत्तीसी खिल जाय—हंसों की पाँत तैरने लगे। किसी ने कभी घूँघट उलटते नहीं देखा।

नउनियाँ मैंके से साथ ही आयी थी। एक दिन महावर लगा रही थी, मौका पाकर अकेली में बोली—

'सुनो दीदी !'

'का है री !'

'अब ताल का पानी पाताल चला जायगा।'

'काहे ?'

'सोहाग चनरमा पर गरहन की छाया पड़ गयी है।'

'काहे, का है री ?'

सिन्दूर की बाँधी और....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अच्छा-सा नाम है निगोड़ी का, वह छोकड़िया मालिन है न, नौरंगिया, मालिक को विभोर कर रक्खा है उसने, बेलमा लिया है। कभी आधी रात बीते, अटारी चढ़ कर पूरब वाले झरोखे से देखना।'

क्या कहती है नउनियाँ? काटो तो खून नहीं। सारी देह झनझना रही है, जैसे बिच्छू का ज़हर चढ़े। नौरंगिया मालिन ने स्वामी को विभोर कर रक्खा है, बेलमा लिया है।

तुलसी चौरे संझा का दियना बाल बहुरिया आँगन में मन मारे बैठी रही। काले-काले उलझे बिखरे केश--चारों ओर रैन हो आयी थी। एक पहर बीता। दूसरा पहर बीता। तीसरे पहर झमक कर अटारी चढ़ गयी। कुछ-कुछ अँजोरिया थी। झरोखे से झाँक कर देखा। स्वामी फुलवारी में हैं। मालिन के संग क्रीड़ा कर रहे हैं। बेला-चमेली की क्यारियाँ गमक रही हैं। मालिन! नौरंगिया मालिन!! तिरिया नहीं, कमरा है। बहुरिया ने बार-बार उसके रूप से अपने अंग-प्रत्यंग की तुलना की। धू धू...पैरों की धूल है....नौरंगिया मालिन!

अलस सबेरे नउनियाँ फिर आयी--तेल उबटन के लिए।

'सुनती है, रे!'

'काऽ दीदी।'

'आज यह सिंगार-पटार रहने दे।'

'काहे?'

'जा, पहले नौरंगिया को बुला ला। बोलना, सवा सेर चमेली चाहिए और तीन पात गुलाब।'

नौरंगिया पान चबाती हुई आई। भौंह नचाती आँगन में बैठ गई। पिंजर-दोलित सारिका ने अपरिचिता का स्वागत किया।

'मैनी! बहुरिया से बोल दे कि नौरंगा आयी है। चमेली लायी है और गुलाब भी। दिन भर सारा घर गमकेगा और रात में सारी सेज।'

बहुरिया मुस्कराती हुई ओसारे निकली। मालिन ने देखा। देखती ही रह गयी। उलझे-बिखरे केश जैसे बलखाती नागिन। लाल डोरों वाली आँखें--जैसे उखड़ा हुआ नशा।

तेज़ आँखों से घूरती हुई बहुरिया बोली, 'क्या देखती है रे? देखने वाला तो तुझे देखता है। कामरू हो आयी है क्या? कौन-सा जादू कर दिया है तूने जो कन्हैया को बेलमा लिया है?'

'ए बहू! बिख बैन न बोलो। मेरे आगे डोंगे आयी हो। मौरी मैंने ही उतारी थी। सुनती हो तो सुनो। किसी दुलहिन ने एक कोयल से पूछा कि उसने उसके दूल्हे को क्यों बस में कर लिया है--कैसे बस में कर लिया है? क्यों वह उसकी सेज छोड़ भर दोपहरी निचाट अमराई में बैठा रहता है। कुहूऽ कुहूऽ--बिचारी कोयल! एक तो पंछी की जात, दूसरे तन से काली। मर्म की बात कैसे समझाती! अपने मिश्री बोल से, अमृत-रस घोल कर मौन रह गयी थी!'

नौरंगिया तो बात बनाने में माहिर है, बात टालने में भी। कोयल का खिस्सा बुझाती है।

'नउनियाँ! इससे बोल कि मेरी बात का जवाब यह नहीं हुआ। मैं पूछती हूँ कि इसने मेरे स्वामी को किस रस में सराबोर कर रखा है कि मेरे प्रीत-प्यार की पुरइन कुम्हला रही है, कि मालिक आँगन नहीं झाँकते, दुआरे, बैठक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बैठते-सोते हैं। मैं क्या करूँ? कैसे जीऊँ? कैसे रहूँ?'

'ए बहू! बिख बैन न बोलो। अपनी बात का जवाब चाहती हो तो लो, सुनो:

पान की सेज बिछाती हूँ। बेला-चमेली छितरा देती हूँ। सोने की झारी में ठंडा पानी। पाँव पखारती हूँ। आँचल से पोछती हूँ। सारी रात बेनिया डोलाती हूँ। और, नयन-रस में डुबो कर रखती हूँ तुम्हारी जीवन-निधि, तुम्हारे स्वामी को। मैं क्या जानूँ जादू-मन्तर, मैं क्या जानूँ टोना? कोई ओझा-फकीर थोड़े हूँ।'

नउनियाँ बीच में ही चमक उठी: 'अरे, बाह रे, नौरंगिया, बाह! कोई कहाँ से लाये नाग-बेल कि लगाये अपने पी की सेज। कोई कहाँ से लाये बेला-चमेली कि सैयाँ को रिझाए। और नयन-रस में डूबो रखने की सिच्छा तो तुझसे लेनी पड़ेगी!'

'तू चुप रह नउनियाँ।' बहुरिया ने भरे हुए गले से कहा। 'जो भी हो, नौरंगा! तुम अच्छा नहीं कर रही हो। मेरा अनभल ताकती हो। घुमची बरन का मेरा स्वामी, नीला पड़ गया है। तराज़ तौला हुआ था वह। अब तो हलका लगता है। नौरंगा! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। उनका पल्ला छोड़ दो। बन पड़े तो कहीं चली जाओ। उनसे बहुत दूर चली जाओ!' और, बहुरिया की आँखों से सावन-भादो की नदी उमड़ चली थी।

आँगन में काठ की मूरत बनी नौरंगिया, डेहरी से बाहर मुखर हुई: 'अब लो! जमाना रहेगा कि जायगा! बहुरिया अपने स्वामी को तराजू तौलती है। भारी-हलका देखती है। कहती है, घुमची बरन का नीला पड़ गया। अपनी करनी सँवारती नहीं और पराये माथे लांछन मढ़ती है। नौरंगा ने ऐसी बहुत-सी बहुएँ देखी हैं। बड़ी नगर-नाचन है। कहती है, उनका पल्ला छोड़ दो। मैंने कब किसी को बाँध रखा है!'

अम्मा-दादी, बड़ी मालकिन, दुमंजिले से सब सुन रही थीं। डेहरी से बाहर होती हुई नौरंगिया को उन्होंने ऊपर बुलवा लिया। उसने तीन-तेरह शुरू की। एक की तीन लगायी। लेकिन, अम्मा-दादी को चमिया कहारिन ने पहले ही सारा वृत्तान्त सुना रखा था कि छोटे मालिक नौरंगिया मालिन के भरम-जाल में फँस गये हैं कि बहुरिया बड़ी उदास रहती है।

'देखो नौरंगा! अपनी औकात न भूलो। बहुरिया सिन्दूर की बाँधी हुई है। मेरे बेटे ने भरी सभा में उसकी माँग भरी है, हाथ पकड़ा है। तुम मालिन की जात। गजरा गूँथो और डलिया सजाओ। रखेल होकर मेरी बहुरिया को कुछ कहोगी तो.....!!'

बड़ी मालकिन ने कुठाँव मारा। तीर आर-पार हो गया। बहुरिया सिन्दूर की बाँधी है और नौरंगा रखेल! सिन्दूर की बाँधी और रखेल!!

नौरंगिया गाँव छोड़ कर चली जाती। अब!

औरतें ही शब्दों की सही निर्णायक होती हैं इसलिए कि वे सामान्य जीवन में पुरुषों की अपेक्षा अधिक उनके अर्थों के निकट रहती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

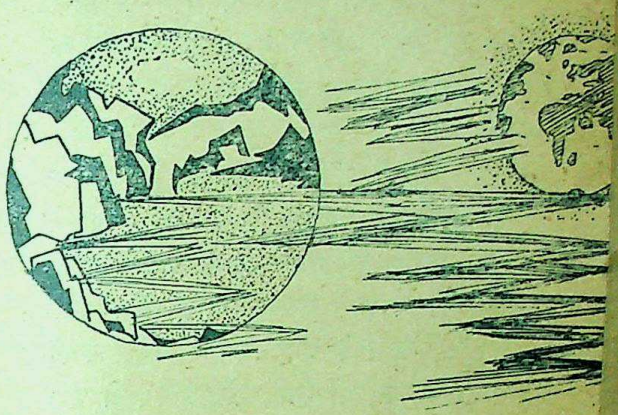

चन्द्रलोक में जीवधारी

कुमार काश्यप

•

लेखक का अपना मंतव्य और दलीलें कि "चन्द्रलोक में जीवधारियों की विद्यमानता के विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। और जब तक मनुष्य स्वयं वहाँ जाकर सब कुछ अपनी आँखों से देख न ले, तब तक इस संबंध में निश्चित रूप में कुछ कहना सम्भव नहीं है।"

•

चन्द्रमा पर 'जीव' की विद्यमानता सम्बन्धी समस्या का विवेचन करते समय सबसे पहली बात जो ध्यान में आती है, वह यह है कि जब सभी ज्ञात्यों के अनुसार उस लोक में न वायुमंडल है और न पानी, तो फिर वहाँ पर जीवधारियों के उद्भव और विकास की क्या सम्भावना हो सकती है? हमारी धारणाओं में जीव के लिए वायु (आक्सिजन् मिश्रित) और पानी परमावश्यक हैं। इसलिए हम सहज ही में यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि जब चन्द्रमा पर जल और वायु नहीं हैं, तो 'जीव' भी नहीं होगा।

इस विषय में कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। बात यह है कि जब हम चन्द्रमा पर हवा के न होने की चर्चा करते हैं, तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि ऐसी हवा नहीं है, जैसी कि पृथ्वी पर है, अर्थात् जिसमें साँस ली जा सके अथवा जिसकी गति अनुभव की जा सके। चन्द्रमा का वातावरण पूर्णतः 'वायुहीन' हो, ऐसी बात नहीं है, हाँ, हम अपनी प्रयोगशालाओं में कृत्रिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से जिस मात्रा का निर्वात उत्पन्न कर सकते हैं, अथवा बिजली के बल्ब के भीतर जितना निर्वात होता है, उससे चन्द्रमा का वातावरण निश्चय ही कहीं अधिक निर्वात है।

परन्तु वैज्ञानिकों ने देखा है कि आकाश में घूमती हुई उल्काएँ जिस प्रकार पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश कर काफ़ी ऊँचाई पर ही हवा की रगड़ से जल उठती हैं, ठीक उसी प्रकार चन्द्रमा के वातावरण में प्रवेश करने वाली उल्काएँ भी काफ़ी ऊँचाई पर ही जल कर नष्ट हो जाती हैं; चन्द्रमा की भूमि तक नहीं पहुँच पातीं। इससे प्रत्यक्ष रूप में प्रमाण मिल जाता है कि चन्द्रमा पर कम से कम इतनी हवा ज़रूर है, जितनी कि पृथ्वी पर पचास-साठ मील की ऊँचाई पर हो सकती है। स्मरण रखना चाहिए कि पृथ्वी की ओर गिरने वाली उल्काएँ लगभग इतनी ही ऊँचाई पर जल कर नष्ट होती हैं। हमारे लिए इतनी ऊँचाई पर साँस ले सकना असम्भव है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि चन्द्रमा पर साँस लेने योग्य हवा तो नहीं है, लेकिन इतनी 'हवा' ज़रूर है, जो उल्काओं को भस्म करने के लिए पर्याप्त हो।

दूसरा प्रश्न यह है कि चन्द्रतल पर सर्वत्र जो विशाल गढ़े, छेद या 'पहाड़ी दीवार से घिरे हुए गोल मैदान' से दिखाई देते हैं, और जिन्हें शब्दाभाव के कारण 'ज्वालामुखी' की संज्ञा दी जाती है, उनकी रचना किस प्रकार हुई होगी, यह प्रश्न हमारे वर्त्तमान प्रसंग में नितान्त स्वाभाविक है। कारण, चन्द्रतल पर पहाड़, घाटियाँ, दरारें और अन्य भौगोलिक लक्षण, जो कुछ भी हैं, वे पृथ्वी पर के ऐसे ही लक्षणों से बहुत ज़्यादा भिन्न नहीं हैं, यदि हैं भी, तो हम उनकी भिन्न का कारण समझ सकते हैं। लेकिन वस्तु हमें सर्वथा असाधारण, अनोखी अद्भुत प्रतीत होती है, वह है ये गोल या 'वलय-पर्वत' जिनमें कहीं-कहीं तो कलात्मक कृत्रिमता की झलक दिखाई है।

इन गोल पर्वतों के विषय में विगत शताब्दियों में कुछ एक बड़े ही अनूठे रोचक सिद्धांत प्रस्तुत किये गये हैं, जिनका उल्लेख न करना उनके जन्मदाताओं प्रति तो अन्याय है ही, पाठकों के साथ कुछ कम अन्याय न होगा! इसलिए उनमें से तीन विशेष सिद्धांतों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। इनमें से एक का सम्बन्ध बर्फ़ से है, दूसरे का 'आँधियों से, और तीसरे का -- परमाणु बमों से!

'बर्फ़ का सिद्धांत' यह है कि चन्द्रतल पर के विशाल गढ़े दरअस्ल जमी हुई झीलें हैं और उनके चारों तरफ़ के पहाड़ी घेरे भी बर्फ़ के ही हैं। चन्द्रतल पर लगभग एक सौ मील की गहराई तक बर्फ़ की भारी परत जमी हुई है। सारा चन्द्रमा बर्फ़ से आवृत है। सर्वत्र बर्फ़ ही बर्फ़ है; बर्फ़ के सिवा और कुछ भी नहीं। कहना पड़ता है कि यह 'बर्फ़ीला सिद्धांत' किसी कवि के चिन्तन के लिए कदाचित् उपयुक्त विषय हो; परन्तु विज्ञान की कसौटी पर ज़रा मुश्किल से ही खरा उतर सकता है। कारण चन्द्रतल पर दिन के समय की ताप-मात्रा खौलते पानी के समान हो जाती है, जिससे वहाँ पर बर्फ़ के अस्तित्व की कोई सम्भावना ही नहीं रह जाती। उस प्रचंड ताप के आगे बर्फ़ तो बर्फ़, उसकी कल्पना करने वाले भी भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन कर उड़ जाएँगे।

कुछ हो, बर्फ़ की बात फिर भी वैज्ञानिक थी। लेकिन 'आँधियों' की धारणा से तो स्वयं विज्ञान भी चकित रह गया। आस्ट्रिया के एक विद्वान ने यह कह कर सारा झगड़ा ही समाप्त कर दिया कि चन्द्रतल पर पहाड़, घाटियाँ और घेरे आदि कुछ भी नहीं हैं : बस समतल मैदान है ; और दूरबीन द्वारा देखने पर जो विभिन्न बनावटें दिखाई देती हैं, वे दरअस्ल 'आँधियाँ' हैं, जो चन्द्रमा के गहन वायुमंडल में इतना भीषण रूप धारण किये खड़ी हैं। उस विद्वान् को बड़ा आश्चर्य हुआ, जब वैज्ञानिक जगत ने उसकी इस 'महान् खोज' पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने से इन्कार कर दिया।

'आँधियों' से आगे बढ़ना ज़रा मुश्किल ही था। लेकिन स्पेन् के एक इंजीनियर साहब ने वह भी कर दिखाया। उन महाशय ने पहले तो विस्तार के साथ दुनिया को यह समझाया कि चन्द्रमंडल किस प्रकार अपने अक्ष पर बिल्कुल स्थिर हो चुका है। और उसके बाद 'अकाट्य तर्कों' द्वारा सिद्ध किया कि चन्द्रलोक किसी युग में बसा हुआ था। हुआ यह कि चन्द्रवासियों ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इतनी उन्नति की, इतनी उन्नति की कि अंततोगत्वा वे परमाणु-बमों का निर्माण कर आपस में युद्ध करने लगे। उसी आण्विक युद्ध के परिणामस्वरूप उनकी सारी सभ्यता, कला और संस्कृति का अंत हुआ, और शीघ्र ही उनका अस्तित्व भी समाप्त हो गया। आज चन्द्रतल पर जो असंख्य छेद दिखाई देते हैं, वे दरअस्ल उसी विनाशकारी अणु-युद्ध में प्रयुक्त परमाणु-बमों के विस्फोट-चिह्न हैं। उस महायुद्ध में चन्द्रमा की भूमि पर ही नहीं, अपितु समुद्रों में भी आग लग गयी, और उनका सारा पानी भाप बन कर उड़ गया। कुछ भाप पृथ्वी तक भी आ पहुँची थी, और उसी के फिर जल में परिणत होने से वह प्रलयंकारी बाढ़ आई थी, जिसकी चर्चा धर्म-ग्रन्थों में की गई है...अधिक उद्धरण अनावश्यक है। स्पष्ट है कि यह तथाकथित सिद्धांत वास्तव में किसी व्यंग्यात्मक लेख का विषयमात्र है, विषय आकर्षक, भावोत्पादक और शिक्षा-प्रद है, इसमें संदेह नहीं।

परन्तु यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि आज से दो सौ वर्ष पूर्व तक जनसाधारण ही नहीं, बल्कि गणित-ज्योतिष के प्रमुख पण्डित भी चन्द्रमा को बड़ी हद् तक पृथ्वी की तरह बसा हुआ मानते थे। वास्तव में चन्द्रमा के संनिवासित होने की धारणा बहुत पुरानी है। तीन शती पूर्व दूरबीन की ईजाद से भी इस धारणा का खंडन नहीं हुआ, बल्कि वह और अधिक प्रबल हो उठी। दूरबीन द्वारा देखने के बाद बहुत से वैज्ञानिक अपने इस मत में और भी दृढ़ हो गये कि चन्द्रतल पर जो कुछ दिखाई देता है, वह दरअस्ल एक बसी हुई दुनिया है। इसी धारणावश कुछ वैज्ञानिकों ने चन्द्रतल पर के अनेक लक्षणों को कृत्रिम तक घोषित किया। उदाहरण के लिए विगत शती के प्रारम्भ में एक जर्मन ज्योतिषी ने यह दावा करके तत्कालीन वैज्ञानिक जगत में हलचल मचा दी कि उसने चन्द्रमा की मध्यम-खाड़ी के समीप एक समूचा शहर आविष्कृत किया है। यह शहर या चन्द्रनगरी, जैसा कि उसने बतलाया, पत्थर की दीवारों का एक विस्तृत समूह था। बीचों-बीच एक ऊँची और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बी दीवार चली गई थी, और उसके दोनों ओर २०-२५ मील की दूरी तक अगणित छोटी दीवारें बनी हुई थीं--ऐसे ही जैसे कि मछली की रीढ़ का काँटा होता है। उस जर्मन वैज्ञानिक के शब्दों में 'यह स्पष्टतः कृत्रिम है, और चन्द्रलोक में बुद्धियुक्त प्राणियों के कलात्मक निर्माण-कार्य का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करता है।'

बाद में अधिक प्रबल दूरबीनों द्वारा देखने पर वह 'मछली के काँटे' जैसी कलात्मक चन्द्रनगरी कोरी कल्पना की ही वस्तु सिद्ध हुई। उसके स्थान पर टेढ़ी-मेढ़ी पहाड़ी मेंडों का एक जाल-सा बना था, जिसमें कहीं भी कृत्रिमता की पुट दिखाई न पड़ी।

इस विषय को लेकर कई प्रकार के प्रपंच भी रचे गये हैं, और जन-साधारण को ही नहीं, वरन् वैज्ञानिकों को भी मूर्ख बनाया गया है। उदाहरण के लिए विगत शती के चौथे दशक में प्रसिद्ध ज्योतिषी जॉन् हरशेल् के गवेषणा-कार्य पर एक मिथ्यावादी अमरीकी पत्रकार के संवाद-पत्र विशेष रोमांचकारी सिद्ध हुए। इस पत्रकार के कथनानुसार उक्त वैज्ञानिक ने एक नई प्रकार की दूरबीन द्वारा चन्द्रतल पर जीव के कई अद्भुत रूपों का आविष्कार किया था। चन्द्रमा की दुनिया में, जैसा कि उसने लिखा, रंग-बिरंगे हीरों की चट्टानें और मणि-मुक्ता के ढेर सर्वत्र दिखाई देते हैं। और उनके बीच विचित्र आकार-प्रकार के पशु-पक्षी, चमगादड़ जैसे परों वाले अर्द्धमानवी जीव और समुद्र-तट पर तीव्र गति से लुढ़कने वाली गोलाकार रहस्यमयी मछलियाँ विचरण करती हैं। जिस अमरीकी पत्र में यह सारी विचित्र कथा छपी, उसकी प्रकाशन-संख्या कुछ ही दिनों में तीन गुनी हो गई। प्रमुख वैज्ञानिकों तक ने टिप्पणी की कि 'इन महान् आविष्कारों से गणित-ज्योतिष में वस्तुतः एक क्रान्ति उप स्थित हो गई है।' परन्तु शीघ्र ही सारा भेद खुल गया; और तब उस दुष्ट पत्रकार के साथ तो जो हुआ सो हुआ, पर उपहास का विषय बेचारे वैज्ञानिकों को ही बनना पड़ा।

यथार्थ की दृष्टि से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि चन्द्रमा की दुनिया एक अत्यन्त कठोर, भयंकर और घातक दुनिया है। शीतल, कोमल चन्द्रमा, जो हमें अपने आकाश में इतना सुन्दर और सुखद प्रतीत होता है, अपने वास्तविक रूप में न सुन्दर है और न सुखद ही। कोमलता तो उसे छू भी नहीं गई है। ताप-मात्रा बहुत ज्यादा या बहुत कम है। वायु का पूर्णतः अभाव है, और वातावरण प्रायः निर्वात है। ऐसी परिस्थितियाँ जीव के उच्च रूपों के प्रादुर्भाव और विकास के लिए अनुकूल नहीं कही जा सकतीं। इसलिए चन्द्रलोक में बुद्धियुक्त, प्राणियों के संनिवास का विषय चाहे कितना ही सम्मोहक हो, पर यह है केवल कल्पना का विषय।

वर्तमान शती के प्रारम्भ तक प्रायः सभी वैज्ञानिक इस मत के हो गये कि चन्द्रलोक में जीव के उच्च रूपों के लिए कोई स्थान नहीं है; वह पूर्णतः अनिवासित और अवास्तव्य है। तभी से कल्पित चन्द्रवासियों की जीवन-संबंधी परिकल्पनाएँ कहानीकारों और उपन्यास-लेखकों के लिए छोड़ दी गईं। और इस वर्ग ने इन विषयों में कल्पना की जो उड़ानें दिखाई हैं, वे निःसंदेह विश्व के प्रत्येक साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। वैज्ञानिक विचित्र कथाओं के प्रसिद्ध लेखक एच० जी० वेल्स का 'चन्द्रमा में प्रथम मानव' इस साहित्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रशंसनीय उदाहरण है। आज भी जब कि चन्द्रमा तक पहुँच पाने की मनुष्य की चिरसंचित साध पूरी-सी होती लगती है, इन लोकप्रिय कहानियों और उपन्यासों की शृंखला टूटने में नहीं आयी। परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि काल्पनिक कहानियों का यह युग अब समाप्त हो रहा है, और वह दिन दूर नहीं, जब हम चन्द्रलोक की यात्रा पर गये हुए प्रथम पर्यटकों के मुख से वहाँ का वास्तविक वर्णन सुन रहे होंगे। इस समय कुछ वैज्ञानिकों के बीच चन्द्रमा पर निम्न स्तर के कीड़े-मकोड़ों की विद्यमानता को लेकर जो विवाद चल रहा है, उसका निबटारा भी संभवतः तभी होगा, कुछ ऐसा दीखता है।

अब अन्त में जीव का केवल एक ही रूप विचारणीय रह गया है, और वह है वनस्पति। इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना बहुत कठिन है। यह तो प्रकट है कि चन्द्रमा की भूमि में केवल ऐसी हीं वनस्पति पनप सकती है, जो प्रायः निर्वात वातावरण, तापमान की चरम अवस्थाओं और नमी के पूर्ण अभाव को सहन करने की क्षमता रखती हो। हम पृथ्वी पर किसी ऐसी वनस्पति से परिचित नहीं, जो इन सभी शर्तों को पूरा कर सकती हो। लेकिन इसके साथ ही हम यह भी जानते हैं कि कुछ वनस्पतियाँ असामान्य परिस्थितियों में भी भली-भाँति फलती-फूलती रहती हैं। इसलिए चन्द्रमा की असाधारण परिस्थितियों को सहन कर सकने वाली कोई विशिष्ट वनस्पति यदि वहाँ की भूमि में पायी जाये, तो आश्चर्य नहीं।

सारांश यह कि चन्द्रलोक में जीवधारियों की विद्यमानता के विषय में हमारा ज्ञान अभी अत्यंत सीमित है। और जब तक मनुष्य स्वयं वहाँ जाकर सब कुछ अपनी आँखों से देख न ले, तब तक इस सम्बन्ध में निश्चित रूप में कुछ कहना संभव नहीं है। इतनी बात अवश्य निर्विवाद है कि अगणित कहानियों में वर्णित 'चन्द्रवासियों' का कोई अस्तित्व नहीं है। अन्य जीव-जन्तु और कीड़े-मकोड़े भी सम्भवतः काल्पनिक ही हैं। रही वनस्पति, तो पार्थिव वनस्पति तो वहाँ पर पनप नहीं सकतीं। हाँ, चन्द्रमा की भूमि में उसकी अपनी कोई विशिष्ट वनस्पति विकास पा रही हो, यह असम्भव नहीं है। ● ● ●

* भूख उर्फ पहाड़ी भेड़िये *

बरसात के मौसम में पहाड़ी भेड़िये पहाड़ों की गुफ़ाओं में अपने पूरे परिवार के साथ जा छिपते हैं। बरसात ख़त्म होने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। मगर, भूख तो लगती ही है। तब, पहले बड़े भेड़िये मिलकर अपने बच्चों को खा जाते हैं। मगर, भूख तो रूक नहीं जाती है। तब, स्वस्थ और बलिष्ठ भेड़िये परिवार के दुर्बल और बीमार सदस्यों को खा जाते हैं। अन्त में शायद कुल एक ही भेड़िया बचा रह जाता है, और बरसात बची रह जाती है, और भूख बची रह जाती है।

क्या मशीन-युग के मनुष्य का परिवार इस अर्थ में पहाड़ी भेड़ियों के परिवार से भिन्न है?

——सर सी० पी० स्नो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े काम के उपयुक्त

नई लेटरप्रेस प्रिंटिंग मशीन

ब्रिटानिया — डी. पी. ई. 'जावर' इंगलैण्ड के डावसन, पाइन ऐण्ड इलियट लिमिटेड के सहयोग से भारत में पहले पहल तैयार की गई है जिसका निर्माण कम खर्च, अधिक दक्षता तथा मेन्टेनेन्स की सहूलियत पर विशेष ध्यान रखकर किया गया है।

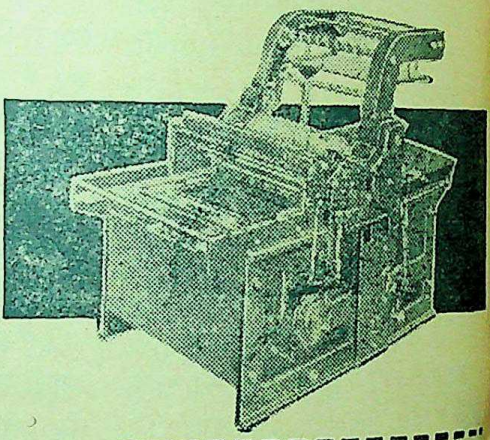

यह मशीन एक सरल लगातार चलनेवाली मोटर से चलती है जिसमें चाल को कम या अधिक करने के लिये तीन तुरन्त बदलने लायक पुल्यिाँ लगी हैं। चलाने की जगह एक ही लिवर है जिससे स्टार्टिंग, इंचिंग और ब्रेकिंग के काम होते हैं। कागज की डेलीवरी चेन ग्रिपर से होती है जिससे छपा हुआ पहलू काम के समय अछूता रहता है।

स्पेसीफिकेशन

कागज की साइजें		
स्टैण्डर्ड	: २०"×३०"	(५०८ मिमि.×७६२ मिमि.)
अधिक	: २०"×३३"	(५०८ मिमि.×८३८ मिमि.)
कम	: १०"×१५"	(२५४ मिमि.×३८१ मिमि.)
टाइप-बेड बीयरों के बीच की चौड़ाई		: ३४ १/२" (८७६ मिमि.)
फार्म वारों के बीच की दूरी		: २६" (६६० मिमि.)
कुल लम्बाई		: ७'११" (२४१३ मिमि.)
कुल चौड़ाई		: ५'५" (१६५२ मिमि.)
कुल ऊँचाई		: ५'८" (१७२७ मिमि.)

दि ब्रिटानिया-डी० पी० ई०

जाबर

दि ब्रिटानिया इंजिनीयरिंग कम्पनी लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्टस : मैकलाउड ऐण्ड कं० लि०, ३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

सोल सेलिंग एजेन्टस : इण्डो यूरोपियन मशीनरी कं० प्राइवेट लि०

सर पी. एम. रोड, बम्बई ५, बैंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता चाँदनी चौक, दिल्ली ६, माउन्ट रोड, मद्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ता राजे

नेपथ्य में—(३)

पश्चिम के आधुनिक काव्य का सबसे मधुर, सुकुमार गीतात्मक और गहरा व्यक्तित्व है जर्मन कवि रेनर मारिया रिल्के का। कविता पर उसकी वैसी ही आस्था थी जैसी भक्त जनों की धर्म पर होती है। उसकी मृत्यु के बाद ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा है उसके काव्य का अभिप्राय और अर्थ अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता जा रहा है।

अपनी पत्नी और पुत्री से विच्छिन्न, निराधार, अकेला, अपने में डूबा हुआ जीवन बिताने वाले रिल्के के विषय में बहुत-सी किंवदंतियाँ थीं। विशेष रूप से कई यूरोपीय राजकुमारियों का उस पर बहुत प्रभाव बताया जाता रहा। लेकिन लिखित रूप में, उसकी केवल एक या दो ही कविताएँ किसी बेनवेनुटा नामक महिला को समर्पित थीं। कौन थी यह बेनवेनुटा? इस नाम की किसी स्त्री का ज़िक्र रिल्के के जीवनी-लेखकों ने नहीं किया है।

अभी कुछ वर्ष पहले जर्मनी की एक प्रख्यात पियानिस्ट मैगडावॉन हैटिनबर्ग ने अपनी आत्म-कथा का एक अंश प्रकाशित किया। मालूम हुआ कि रिल्के की अन्तरंग संगिनी वही रही है, जिसने अपने संगीत के द्वारा बिना किसी को बताये, रिल्के के काव्य को मूर्तिमान करने का प्रयत्न किया। रिल्के उसे प्यार से 'बेनवेनुटा' कह कर पुकारता था।

पहले तो जीवनी-लेखकों को विश्वास नहीं हुआ। पर फिर रिल्के के ढेरों पत्र बेनवेनुटा के नाम प्राप्त हुए। उनसे मालूम हुआ कि यद्यपि बेनवेनुटा का उल्लेख रिल्के की एक ही दो कविताओं में है, पर उसकी सैकड़ों कविताएँ बेनवेनुटा की अंतरंगता से अनुप्राणित हैं।

बेनवेनुटा की उस प्रख्यात पुस्तक पर आधारित उसी के शब्दों में कही गई यह कथा प्रस्तुत है। (गतांक से आगे)

शुभागता—(२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● ● बर्लिन में मेरा प्रोग्राम था। मैं वहाँ अपने एक मित्र परिवार के साथ ग्रूनवाल्ड में टिकी थी। ये लोग बहुत ही धनी हैं किन्तु उनके सारे घर की सजावट में धनिक वर्ग में प्रचलित चमक-दमक नहीं थी। बहुत ही सादे और कलात्मक ढंग से एक-एक कमरे की सजावट की गई थी। घर में क़दम रखते ही चारों ओर से सुख, शांति, सादगी और प्यार की बयार आगन्तुक को शीतलता प्रदान करती रहती है। सारे घर में प्रसिद्ध कलाकारों की कलाकृतियाँ बड़े क़रीने से सजाई गई थीं। पर मेरे विशेष आकर्षण का केन्द्र था उनके ख़ूबसूरत बाग़ के एक कुंज में रखा पियानो। अपनी मित्र फ्राड बर्टा डैलब्रुक जैसी स्त्री मैंने तो दूसरी कोई अपनी ज़िन्दगी में देखी नहीं है। जहाँ बैठ जायेगी ऐसा लगेगा कि खुशियों के फूल झर रहे हैं, हँसी की हिलोरें उठ रही हैं। एक नन्हा-सा दिया जैसे चारों ओर रौशनी बिखेरता है वैसे मेरी यह सुकुमार सखी अपने चारों ओर सुख और शान्ति विकीर्ण करती रहती है। उसके पास जाकर मुझे हमेशा से बहुत शांति मिलती रही है। इस बार जब मैं वहाँ गई तो मैंने उससे रिल्के के बारे में बहुत-सी बातें कीं। रिल्के के कुछ ख़त भी उसे दिखाये। एक दिन रात को खाना खाने के बाद फ्राड ने मुझसे बड़े इसरार से कहा कि उसे कोई अच्छी चीज़ पढ़ कर सुनाऊँ। सब बच्चे तो सोने चले गये। बचे हम तीनों। सारे कमरे की बत्तियाँ बुझा दी गईं, पर्दे खींच कर गिरा दिये गये। एक कोने में केवल एक लैम्प जलता रहा जिसके ऊपर लगे शेड के नीचे मैं ऐसे लेट गई कि केवल मेरी किताब पर रौशनी थी, बाकी सारा कमरा अँधेरा था। अजब-सा भावुक वातावरण बन गया। मैंने उन दोनों को माल्टे लॉरिड्स ब्रिग में से कुछ चीज़ें पढ़ कर सुनाईं।

काफ़ी रात गये भरे-भरे मन से हम अपने बिस्तरों पर जाने को उठे। मन में जाने कैसा क्या घुल गया था कि सोने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। मैं और फ्राड एक खिड़की पर खड़े बड़ी देर तक पेड़ों की शाखों के पार टिमटिमाते तारों का खेल देखते रहे। अचानक मैंने देखा फ्राड कुछ बहुत दमकते-से नक्षत्र की ओर एकटक देख कर कुछ सोच रही है। थोड़ी देर में वह बोली, "काश यहाँ रिल्के भी होता! जब से तुमने उसके बारे में बताया है मैं उसी की बात सोचती रही हूँ। शायद उसके अकेले सूने मन को यहाँ कुछ राहत और सुख मिल सके।" फ्राड से तो उस समय मैंने कुछ नहीं कहा लेकिन मैं सारी रात सोचती रही सचमुच जेनेवा से कहीं बेहतर होगा कि हम पहली बार इतने प्यारे, इतने निश्छल और आत्मीय लोगों के बीच मिलें। मैंने रात ही में बैठ कर रिल्के को खत लिखा और अपने इस बहुत प्यारे परिवार और इस घर के एक-एक कमरे, एक-एक खिड़की इसके बाग़ के तमाम फूल-पत्तों के बारे में खूब विस्तार से लिखा और रिल्के से अनुरोध किया कि वह यहीं आ जाये।

रिल्के का उत्तर आया—"प्यारी बिटिया, तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुरंत जवाब नहीं दे सका उसका कारण मेरी व्यस्तता नहीं बल्कि यह है कि तुम्हारा खत मैं पूरा का पूरा एक बार में पढ़ ही नहीं सका। कुछ पंक्तियाँ पढ़ता और इतना-इतना डूब जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि आगे पढ़ ही नहीं पाता। इसी तरह बीच से तोड़-तोड़ कर उसे पढ़ता रहा। फिर एक बार पूरा पढ़ा, दो बार पढ़ा, तीन बार पढ़ा, बार-बार पढ़ा। अक्सर ऐसा होता है न कि जिस समय तेज़ हवा चल रही हो, उस समय किसी सूने तट पर समुन्दर किनारे जाओ तो जी होगा सारी की सारी हवा मुँह खोल कर साँसों में भर लो और जब ऐसा करना शुरू करो तो लगेगा अरे अब तो साँस ही नहीं ली जा रहीं! वैसा ही होता है तुम्हारे खत के साथ। जी होता है पूरा का पूरा एक साँस में पढ़ जाऊँ। मगर पढ़ने लगो तो एक-एक लाइन साँसों में इस क़दर भर जाती है कि....बेनवेनुटा प्रिय! मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि तुम्हारी भाषा के जादू ने मुझे शब्दों को प्यार करना सिखा दिया है। ऐसा लगता है कि खतों के माध्यम से हम एक दूसरे से बातें करते हैं वैसे ही जैसे धरती और नक्षत्र की बातें होती हैं। मैं तुमसे कुछ इस तरह बँधता चला जा रहा हूँ कि मेरे अन्दर से बार-बार यह आवाज़ आती है कि मुझे तुम्हारे लिए कुछ करना है—कुछ मौलिक सृजन करना है जो तुम्हारे योग्य हो, जिसे लिख कर मैं तुम्हारे प्यार के प्रति अपनी कृतज्ञता को कुछ अभिव्यक्ति दे सकूँ। नियति की सुकुमार अर्थ हो तुम। तुम्हें शब्द दे सकूँगा क्या? अरे लो मैं यह सब क्या लिखने लगा....तुमने लिखा है कि मैं बर्लिन आ जाऊँ। ठीक है मेरे हृदय की पवित्रता की प्रतिरूप! अपने प्रथम मिलन की स्थली जो तुम चुनो वही हो सकती है, होनी चाहिए, होगी। मुझे विश्वास है कि बर्लिन में एक दूसरे से मिल कर हम लोग बहुत कुछ कर सकेंगे। बहुत कुछ वह जो सबसे पृथक है....जो हमारा अपना है....केवल हमारा। ओह बेनवेनुटा! तुम्हारे चतुर्दिक एक दिव्यता है। तुम्हारा संगीत, तुम्हारे शब्द, तुम्हारा आह्लाद, तुम्हारे अन्तर की पवित्रता, सब कुछ जो भी है उसे मैं केवल एक शब्द ही दे सकता हूँ– दिव्य! और इसीलिये तुमसे मिलने के लिये मैं प्राणों में जो ताक़त बटोर रहा हूँ उसे अपने बचपन की स्मृति की प्रकाश-किरणों से बुन रहा हूँ। मेरे बचपन की आस्थाएँ, वह भोले विश्वास, वह मनोरम कल्पनाएँ, वह सहज उमगाव, वह पवित्रता, वह सादगी ही मेरे पास ऐसी निधि है जिसे लेकर मैं तुम्हारा स्वागत करूँगा।.."

और एक दिन तार आ गया––"कल––रेनर"

चौबीस घंटे बाद वह यहाँ होंगे....मुझे याद है मैं बेइन्तिहा नर्वस हो गई थी। अपनी उत्कट आकुलता को किसी तरह थपकी देकर शांत रख सकूँ इसके लिये शाम को मैं एक पार्टी में चली गई। वहाँ भी मेरा मन नहीं थिराया। रात हुए जब अपने कमरे में लौटी तो बत्ती जलाने का मन नहीं हुआ या कहूँ जाने क्यों हिम्मत नहीं पड़ी। अँधेरे में टटोलती हुई अपनी मेज़ तक गई। आशा के अनुकूल वहाँ एक लिफाफा रखा था। मैं जानती थी यह रिल्के का ही हो सकता है। अपने प्रथम मिलन के पहले का उनका आखिरी खत। हमेशा की तरह बेसब्री से मैंने उसे खोला नहीं। आहिस्ते से उसे अपनी अंजुरियों में दबा लिया और आँखें मूँद कर बैठी रही। पर वह निरर्थक मौन नहीं था मेरा। आँखें मूँदे मैं चुपचाप निःशब्द प्रार्थना करती रही थी। अपनी पूरी आस्था से धन्यवाद देती रही थी उस परमात्मा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो बहुत दयालु है। थोड़ी देर बाद कमरे की खिड़की खोली—बाहर सारा बाग़ सोया पड़ा था। जाने कैसे ख़्वाबों में डूबी-डूबी-सी ठंडी हवा का एक झोंका आया और मेरा रोम-रोम सिहर उठा। खिड़की बन्द की तो लगा जैसे रिल्के ने मेरे लिए तमाम-तमाम फूल भेजे हैं और उनकी गमक से सारा कमरा महमहा रहा है। मन में जाने क्यों पहली बार लाज की सुरसुरी-सी महसूस की। बत्ती जलाई और लो रिल्के के ख़त में भी फूलों ही फूलों की बातें थीं....कैसा रहस्य है यह प्रभु! उन्होंने लिखा था "सुहृदया, तुम्हारी मेज़ पर पीले ट्यूलिप्स रखे होंगे। मैं फ्रैंज़िस्का ब्रुक के पास गया था कि तुम्हें कुछ गुलाब भेज दूं। पर वहाँ पहुँच कर बिना कुछ ऑर्डर दिये ही वापस आ गया। जानती हो क्यों? मुझे क़तई समझ में नहीं आया कि फ्रैंज़िस्का को कैसे बताऊँ कि मैं कौन-से गुलाब तुम्हारे लिये भेजना चाहता हूँ। उसकी दुकान में जितने भी गुलाब थे क्या वह मेरी कल्पना के गुलाब थे? नहीं वह 'मेरे गुलाब' नहीं थे...उन लाल-पीले फूलों को तुम तक भेज कर होता भी क्या? तुम तक पहुँच कर जो महक सकें वह शब्द-फूल तुम्हें भेज रहा हूँ मेरी दिव्य मित्र! तुम्हारे हृदय की प्रकाश-किरणों से ही तो मेरे शब्द फूलों में रंग भर जाते हैं न!

"....तुम्हें कल देखूँगा, बेनवेनुटा, मेरे आज के ये बेगाने हाथ कल तुम्हारी अँजुरियो में शरण पा लेंगे। बेनवेनुटा, ऐसे समय व्यक्ति को क्या करना होता है? किसी को वह रात जिसके बाद प्रतीक्षित प्रभात आने वाला है कैसे गुज़ारनी चाहिये? आज की सारी रात मैं प्रार्थना करूँगा!—रेनर"

शरीर की कीमत

काउन्ट लियो टाल्स्टाय की प्रसिद्धि रूस की सीमा लाँघ कर देश-देशान्तरों में फैल चुकी थी। एक दिन सुबह वे अपने कमरे में बैठे थे। सेवक ने सूचना दी: "एक युवक आपसे मिलना चाहता है।"

"कौन है?"

"अपना नाम-पता नहीं बतला रहा है। कहता है, अगर मुलाकात न होगी, तो आत्म-हत्या कर लेगा।"

टाल्स्टाय को बड़ा आश्चर्य हुआ। कहा, "अच्छा! आने दो!"

युवक सामने आया। हट्टा-कट्टा, पर मैले-फटे कपड़े पहने।

"क्या बात है?"

"आपके दर्शन की इच्छा थी।"

"मेरे दर्शन! मैं कोई अद्भुत व्यक्ति तो हूँ नहीं। तुम लोगों जैसा इंसान ही हूँ।"

"काउन्ट, मैं भूख, बेकारी, निर्धनता से तंग आ गया हूँ। मेरे पास एक पैसा नहीं है।"

"तुम्हारे पास एक पैसा नहीं है?"

"हाँ, काउन्ट!"

टाल्स्टाय के माथे पर सिकुड़नें पड़ गयीं। बोले, "अच्छा! तुम एक काम करो। मेरा परिचित एक ऐसा व्यापारी है, जो जीवित आदमी की आँखें खरीदता है। मैं पत्र लिख दूँगा। तुम्हारी दोनों आँखों के बदले वह दो हजार रुपये जरूर देगा!"

"आँखें.....काउन्ट.....मैं तो...."

"अच्छा! ऐसा करो! वह हाथ भी खरीदता है। तुम्हारे दोनों हाथों का एक हजार रुपया मिल जायेगा!"

युवक घबरा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम का झुटपुटा था। किसी सवारी पर जाने की इच्छा नहीं हुई। मैं पैदल चली जैसे कोई भक्त तीर्थयात्रा को निकला हो। एक गली, दूसरी गली, दसियों गलियाँ पार करती हुई मुहल्ले पर मुहल्ले पीछे छोड़ती हुई आखिर मैं अपनी मंज़िल पर पहुँची—"मारवरगर स्त्रासे—४" दरवाज़े पर प्लेट लगी थी "हॉसपिज़ डॅसवेस्टैन्स" थोड़ी देर मैं वहीं ठिठकी खड़ी रही फिर मारे घबराहट के द्वार का सहारा ले टिक कर खड़ी हो गई और कॉलबैल बजाई। एक नौकरानी बाहर आई। मैं बौराई सी उसकी ओर बस देखती ही रह गई। कंठ से आवाज़ ही नहीं फूट रही थी कि उससे पूछ सकूं—रिल्के आये हैं क्या? अन्त में वही लड़की बोली—"कहिये, आपको किससे मिलना है? महाशय रिल्के से?" मैं कुछ नहीं बोल सकी। शायद वह समझ गई और उसने कहा—"तीसरी मंज़िल पर कमरा नं० २४।" बस मैं एक के बाद एक सीढ़ियाँ चढ़ती एक ही साँस में ऊपर पहुँच गई। यह लो यह तो सामने ही २४ नम्बर का कमरा दिख रहा है। फिर मैं पगलिया की तरह कमरे के सामने ही खड़ी रही....खड़ी रही। एकाएक ऐसा लगा जैसे नीचे की सीढ़ियों से कोई आ रहा है। मुझे होश आया—मैंने घंटी दी। अन्दर से आवाज़ आई "कौन है?" ओह! एक क्षण को लगा अब खड़ी नहीं रह सकूंगी। यह वही आवाज़ जिसे सुनने के लिये मेरे कान व्याकुल थे। मेरी श्रद्धा, मेरे आदर, मेरे प्यार की आवाज़....जिसे सुनने के लिये कब से मैं विकल थी।....अंदर गई मैं।

ऐसा लगा जाने कितने कोहरे और बादलों को चीर कर मैं यहाँ तक पहुँच सकी हूँ। सबसे पहले कोने में हरी शेड का एक लैम्प दिखाई दिया उसके बाद दिखे अपने सामने खड़े रिल्के। पतले-दुबले ताम्रवर्ण के....बहुत सौम्य। वह अपनी नीली-नीली आँखों से मेरी ओर देख रहे थे। ओह, इतना चमकता हुआ, इतना अलौकिक, इतना दिव्य चेहरा मैंने अभी तक और किसी का नहीं देखा था। मन की श्रद्धा पर सौगुनी मोटी पर्त और चढ़ गई।

टाल्स्टाय ने आगे कहा, "वह तुम्हारा पूरा शरीर खरीद लेगा। इसका वह लाख रुपये दे देगा। मेरा व्यापारी-मित्र जीवित आदमी के शरीर को मारकर एक बहुत ही गुप्त औषधि तैयार करता है।"

युवक ने काँपते हुए कहा, "मैं तो मर जाऊँगा, काउन्ट! इन रुपयों का क्या होगा!"

"इसका मतलब है कि तुम एक लाख रुपये में भी अपना शरीर नहीं बेच सकते हो! इसकी इतनी कीमत है, तो फिर तुम क्यों कहते हो कि तुम्हारे पास एक पैसा नहीं है। लाखों रुपयों के मूल्य का यह शरीर लिये घूमते हो! बताओ, तुम निर्धन कहाँ हो!"

युवक का सिर लज्जा से झुक गया।

काउन्ट लियो टाल्स्टाय ने कहा, "जाओ युवक! अपने मन से यह हीन भावना निकाल दो। अपने इस कीमती शरीर को श्रम, दृढ़ इच्छाशक्ति, लगन के बदले में बेचो। तुम्हारे पास सब कुछ हो जायगा।"

—विनोद कुमार

नेपथ्य में—(३) : मुक्ता राजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बेनवेनुटा, बेनवेनुटा...तुम आ गई...." मुझे लगा इस आवाज़ को सुनने के बाद मैं कुछ कर ही नहीं सकती सिवाय इसके कि आँखें मूँद लूँ और इसे सुनती रहूँ आखिरी साँस तक, बस सुनती ही रहूँ !....

हम दोनों ही कुछ नहीं बोले; सिर्फ़ एक दूसरे का हाथ थामे ख़ामोश बैठे रहे। मैंने पहली बार जाना कि बिना एक भी शब्द बोले कितनी-कितनी बातें की जा सकती हैं।

अन्त में वह क्षण भी आया जब वह तन्मय मौन टूटा। हमने हरे मख़मल के सोफ़े पर बैठ कर दुनिया भर की बातें कीं। और मुझे लगता रहा कि ये मनुष्य नहीं हैं कोई देवपुरुष हैं जो किसी चमत्कार से पृथ्वी पर आ गये हैं।....मेरी दृष्टि की परिधि में आ गये हैं ....

हमारे सारे दुःख-दर्द जैसे एक दूसरे को देख कर ही धुल-पुँछ गये थे। जैसे एक नई ही सृष्टि का सृजन हो गया था हमारे लिये....और समय थम गया था हमारे चारों ओर !....जब मैं वापस आने लगी तो बोले, "कल फिर मिलोगी न !" उनकी आवाज़ में जो चहक थी उससे मुझे उनके सबसे पहले ख़त की एक पंक्ति याद आ गई "तुम्हारे स्वागत के लिये मैं द्वार खोलूँगा तो लगेगा मेरे हृदय की गहराइयों का एक पट खुल गया है —"

जब घर पहुँची तब तक सब सो चुके थे। मैं चुपचाप अपने कमरे में चली गई। कमरे में जाकर सबसे पहले मैंने बत्ती जलाई और सीधी एक बड़े आदमक़द शीशे के आगे जाकर खड़ी हो गई। बड़ी देर तक खुद को देखती रही। मुझे लगा मेरे चेहरे का नया संस्कार हो गया है, इस पर नई पवित्रता आ गई है। मैंने अपनी इन सांसारिक आँखों से एक दिव्यात्मा के दर्शन जो कर लिये हैं।

मेरे हाथों में रिल्के का पत्र था जो उन्होंने मेरे पास आते हुए गाड़ी में लिखा था और यहाँ आकर मेरे पहुँचने के पहले उस कमरे में पूरा किया था जहाँ मैं गई थी। बहुत डूबे-डूबे कृतज्ञ मन से मैंने उसे पढ़ा। उस ख़त में अन्त में मेरे लिये एक कविता थी—

"बहा मैं पवन-सा आह सब कुंजों के आर-पार
उठा मैं हर छत से बन कर धुँएँ का गुबार
परिपाटी ने दी जहाँ दूसरों को सुख-सुविधा
किसी विचित्र परिपाटी-सा मैं रहा अलग-अलग-सा
दे डाले डरते-डरते हर बार हाथ मैंने अपने
किन्हीं और हाथों के भाग्य विधायक कसाव में
आतुर क्षण जब कोई हर हृदय लगा अपनी कहने
रीत गया मेरा ही अन्तर उस बहाव में।
प्रिये तारे की राह निहार भर सकने को
चाहिये हमें जगह धूल में पग धरने को
विश्वास पनपता है दूजों के विश्वास से ही
देना कुछ और नहीं, है पाये को लौटाना भर ही।
रात नहीं माँगती कुछ मुझसे,
पर मैं चाहता उससे, दर्शननक्षत्र जड़े आकाश की
क्षणभंगुर हूँ स्वयं और चाहना मेरी सनातन!
कहाँ मिलेगा आश्वासन मुझे मेरे आधार का?
बढ़ता आ रहा है क्या अँधेरा मेरी डगर में
ऊष्मा तुम्हारी थोड़ा और अगर मैं पा लूँ
समय-समय आ जायेगा कि रख दूँ हल्के से
अंजुरियों में तुम्हारी हाथ अपने ठिठुरे से!
पाऊँ वह शान्ति जिसे पाये बीतेजाने कितने बरस
जान पाओगी इस अंतराल का अर्थ क्या?
अजनबियों में एक अजनबी जब कि व्यर्थ था।
आह आज खिचा आता हूँ घर की ओर बरबस!"

सोने जाने के पहले मेरे मन में केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विचार था कि अगर इस समय मृत्यु भी आ जाय तो मुझे वह नष्ट नहीं कर सकती। अब मैं पूर्ण काम हूँ! सम्पूर्ण परितुष्ट!....

सुबह भोर की बेला में जब मैंने खिड़की खोली तो देखा बाग़ में लॉन पर छिटकी बर्फ़ गल चुकी है। सब्ज़ लॉन पर, छाये आसमान पर सुबह खिली हुई थी। आसमान का रंग अजब पीला-पीला नीला-नीला-सा था। गेट तक जो एक पगडंडी गई है उसके दोनों ओर पीले रंग के ढेर के ढेर फूलों के पौधे बिछे पड़े थे। ऐसे में रिल्के का ख़्याल मन को चौगुनी ताज़गी से भर गया। सुबह का नाश्ता करने के बाद पगडंडी के पार जो निगाह गई तो उन पीले-नीले फूलों पर से फिसलती हुई मेरी दृष्टि गेट के पास खड़े रिल्के पर जाकर टिक गई। और ऐसा लगा जैसे बरसों से हर सुबह वह वहाँ इसी तरह आकर खड़े होते रहे हैं इस इंतज़ार में कि कोई उनकी पुकार पर खिंचा चला आयेगा।

मैं उनके स्वागत के लिये आगे बढ़ी। उनकी नीली गहरी आँखों में और सारे चेहरे पर अमित संतोष और सुख बिखरा पड़ा था। पर मेरी दृष्टि ने तुरंत एक दूसरी चीज़ भी पहचान ली। बहुत ऊँची लहरदार तान लेने के बाद एक कसकभरी मींड़ लेकर यदि स्वरों को छोड़ दिया जाय तो जैसा दर्द चारों ओर बिखर जाता है वैसा ही था रिल्के के चेहरे का भाव। हर्ष और विषाद की मिली-जुली ऐसी तस्वीर क्या और भी होती होगी?....

उन्होंने किंचित् संकोच से कहा—"अभी अंदर नहीं चलेंगे। मैंने एक-दो मकान छोड़ कर यहीं क़रीब ही एक कमरा देखा है। बहुत सुन्दर है। सोचता हूँ उसे किराये पर ले लूँ। क्या तुम...." मैंने तुरंत कहा—"हाँ, हाँ चलिये अभी देख लेते हैं।" चलते हुए वह बोले—"मीठे-मीठे सपनों की तरह वह कमरा भी कहीं खो न गया हो।" और मैंने देखा कमरा सचमुच बिल्कुल ख्वाबगाह था। खिड़कियों पर पड़े जाली के सफ़ेद पर्दे पता नहीं किस लोक में उड़ाये ले जा रहे थे। रिल्के बोले—"यहाँ कुछ काम कर सकेंगे। ख़ूब पढ़ेंगे तुम्हारे साथ, ख़ूब गप्पें मारेंगे और...." कहते-कहते रुक गये और मेरी ओर ससंकोच देखने लगे। मैं उनका मतलब समझ गई, मैंने कहा—"और संगीत के सुरों में डूबेंगे। बीथोवेन, बाख, शुमान.... और वह सब कुछ जो सुंदर है...." ख़ुशी की लहर दौड़ गई उनके चेहरे पर, बोले—"ठीक-ठीक....ठीक मेरे मन की बात कही तुमने—लेकिन कैसे होगा यह सब?"

"क्यों नहीं होगा? मैं अभी जाती हूँ आइवाख के यहाँ। उनकी एक बहुत बड़ी फ़र्म है, वहाँ बहुत अच्छे पियानो होते हैं। उनसे कहूँगी एक यहाँ भेज दें।"

रिल्के जैसे बिना सुने ही स्वरों में डूब गये। खिड़की से हट कर मेरे क़रीब आये। बोले—"तुम सब कुछ कितनी सहजता से सोच लेती हो जैसे साँस ले रही हो, आँखें मूँदे सो रही हो"—मेरी उँगलियों के नाखूनों को दुलार से सहलाते हुए बोले—"जानती हो मेरी एक ख़ास आदत रही है—बचपन से लेकर आज तक दुनिया की तमाम चीज़ों के प्रति अचरज करने का मेरा स्वभाव रहा है। गिरजाघर की ऊँची बुर्जियों को देख कर मैं अचरज से भर जाता हूँ, आसमान के सितारों को देख कर मुझे बहुत अचरज होता है, अपनी ख़ुद की ज़िंदगी के प्रति मुझे बड़ा अचरज है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर केवल एक तुम हो जिस पर मुझे क़तई अचरज नहीं होता....तुम्हारी संभावनायें अनन्त हैं। मेरा तो सारा दृश्य संसार ही तुम में सिमट आता है। विनत हूँ। लेकिन तुम्हें कैसे बताऊँ कि संगीत के लिये मैं बिल्कुल अनाड़ी हूँ...."

"उसके लिये आपको कोई अथक उद्यम थोड़े ही करना है! बस संगीत में विश्वास रखिये और शांत मन से उसे सुनिये। यह तो कर सकेंगे न!"

"देखो, कर सकता हूँ कि नहीं। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने तुम्हें बताया है या नहीं। मैं केवल गिरजाघर का संगीत ही बर्दाश्त कर सकता हूँ। बाकी और कोई संगीत मेरे मन को छू नहीं पाता। गिरजाघर में तो ऐसा लगता है जैसे स्वर छत और मीनारें पार करते हुए सीधे ईश्वर तक जा रहे हैं क्योंकि वह संगीत ईश्वर को समर्पित रहता है। अच्छा तुम बताओ, तुमने तो संगीत की पशुता और संगीत के देवत्व दोनों को महसूस किया होगा....तुम्हें कैसा लगता है वहाँ?"

"नहीं यह तो कुछ नहीं बता सकती, हाँ मैं पियानो बजा सकती हूँ। और आप बस केवल सुनियेगा।"

फिर हमलोग गये, आइबाख़ के यहाँ से एक बहुत बढ़िया पियानो लाये, और रिल्के के उस ऐंडरसन रूम में उसे एक कोने में बड़े प्यार से सजा दिया। रखने के बाद अपने कमरे में चारों ओर निगाह घुमा कर रिल्के बोले--"इस कमरे को 'थ्री इन वन' कहेंगे--पढ़ना, आराम और संगीत!"

मेरी ज़िंदगी का सबसे प्रिय और स्मरणीय दिन आया जब मैं पहली बार उन्हें सुनाने के लिये पियानो के सामने बैठी। मेरे मन में यह बात गहरी जमी हुई थी कि अपने व्यक्तित्व का सर्वश्रेष्ठ मैं इन्हें संगीत के माध्यम से ही दे सकती हूँ। रिल्के बोले--"मुझे याद है एक बार तुमने लिखा था कि तुम्हारे लिये सबसे मधुर क्षण वह होते हैं जब हॉल की बत्तियाँ गुल हो जाती हैं--संगीत निर्देशक का संकेत मिलता है और तुम्हारी उंगलियाँ पियानो के स्वरों पर थिरकना शुरू कर देती हैं। तुमने लिखा था उस समय तुम्हारे सामने केवल पियानो के स्वर बिखरे रहते हैं। बेनवेनुटा, इस समय तुम्हारे सामने पियानो के स्वर हैं और मुझे लग रहा है मेरे सामने मेरी ज़िंदगी फैली है। मुझे पूरा विश्वास होता जा रहा है कि मेरी मानसिक ज़िंदगी की बेतरतीबी अब व्यवस्थित होने जा रही है।"

मैंने कुछ जवाब नहीं दिया। पियानो की चाबियाँ ऐसे उठाईं जैसे मैं पूजा करने जा रही हूँ। एक बहुत कोमल और लंबी राग मैंने बजाई। न जाने कौन-सी अदृश्य शक्ति कभी-कभी हमारा बड़े विचित्र ढंग से साथ देने लगती है। मैंने ज्यों ही पियानो बजाना शुरू किया मेरे स्वरों के साथ ही साथ बाहर के पेड़ पर बैठी कोयल भी बराबर कुहुकती जा रही थी। उसकी कुहुक से संगीत में अजब रहस्यमयता-सी बिंध गई। मैंने काफ़ी देर तक ख़ूब डूब कर बजाया। संगीत समाप्त हुआ और लो वह कोयल भी एकदम ख़ामोश हो गई। मैं आँखें मूँदे चुप बैठी रही। मैंने महसूस किया रिल्के मेरे पीछे आकर खड़े हो गये हैं। अपनी उंगलियों से मेरे बाल सहला रहे हैं। थोड़ी ही देर में मैंने पाया कि मेरे बालों पर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ बूंदें ढुलक कर मेरी गोद में गिर गई हैं —अरे तो क्या रिल्के के आँसू ये हैं ? आँख उठा कर देखा—स्तब्ध थे वह, स्तब्ध थी रात, स्तब्ध था उनका कमरा, स्तब्ध था सारा आलम—बस केवल उनकी आँखों से झड़ी लगी थी।

हम एक दूसरे से कुछ बात नहीं कर सके। मैं जब वापस आने लगी तो रिल्के ने अपनी दोनों हथेलियों में मेरा चेहरा थाम कर मेरे माथे को चूम लिया। मुझे लगा इस क्षण मेरी ज़िंदगी को परमात्मा के शत-शत आशीष मिल गये।

रविवार को महान संगीतज्ञ बुसोनी ने हम दोनों को अपने घर खाने पर बुलाया। विस्टोरिया लुई प्लाज़ में ११ नम्बर का उनका मकान जैसा है शायद वैसी ही जगह को स्वर्गिक कहते होंगे। चारों ओर काही नक़ाब के पर्दों की सैटिंग के बीच बुद्ध की एक विराट स्वर्ण-प्रतिमा सारे कक्ष को अतींद्रिय शांति प्रदान कर रही थी। एक ओर काँच की अलमारियों में संसार के समस्त देशों की संस्कृति और दर्शन पर पुस्तकें लगी थीं। एक छोटी अलमारी में हौट्टमैन बाल्ज़ाक, रूटे, आरिओस्तो, दांते आदि का सम्पूर्ण साहित्य सजा था। और एक रैक में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकायें रखी थीं।

बुसोनी ने रिल्के का हार्दिक स्वागत किया। उन दोनों को हाथ मिलाते देख कर मुझे ऐसा लगा जैसे दो पृथक् संसार एक दूसरे से हाथ मिला रहे हैं। दोनों में पहले तो बहुत औपचारिक बातें होती रहीं। मौसम की, खाने की, देश-विदेश की राजनीति की। उसके बाद मॉसल प्रूस्त की एक नई किताब को लेकर बहुत बहस होती रही। फिर रिल्के बुसोनी से संगीत की ऐस्थेटिक्स के बारे में बहुत सी-बातें पूछते रहे। अन्त में बसोनी के विशेष अनुरोध पर रिल्के ने श्रीमती बुसोनी को बहुत प्रिय लगने वाली अपनी कविता "सौंग ऑफ़ दी सी" पढ़ कर सुनाई।

"सागर की आदिम उसांस
रात के समय समद्री बयार कि....."

वह ऐसे पढ़ रहे थे कि लगता था समुद्र क़दमों के पास ही थपेड़े ले रहा है।

"विशुद्धि अंतरिक्ष
अज्ञात अंतराल से हरहराता टूटता..."

कलम के उस धनी के पढ़ने के ढंग में भी एक अजब जादू-सा था, सब मंत्र-मुग्ध-से उन्हें सुनते रहे।

वहाँ से लौटने के बाद हम सीधे ऐंडरसन रूम में आये। उनके हाथ में मेरी स्वर-लिपियों की एक कापी थी। वह उस पर कुछ लिखना चाह रहे थे। मुझे घर जाने की जल्दी थी। पानी बरस रहा था। मैंने कहा, "देखिये तो कम्बख्त पानी बरसे ही जा रहा है।" खिड़की से बाहर देखते हुए बोले, "नहीं तो, पानी कहाँ बरस रहा है ? वह देखो एक कुत्ता बिना छाता लगाये जा रहा है।" मैंने देखा सचमुच एक कुत्ता भीगता हुआ सड़क पार कर रहा था। और लो मेरी कापी में एक पंक्ति टाँक दी गई—"एक कुत्ता बिना छाता लगाये जा रहा है।"

जितना महान है इनका कवि रूप उतना ही बच्चों जैसा मन है। इनके मन के भोले-पन को जितना ही देखती इनके लिए और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक ममता मन में उमड़ती जाती ।

बहुत खुशनुमा बन आयी थी ज़िन्दगी, बड़े प्यारे-प्यारे दिन गुज़र रहे थे। हम घंटों झील के किनारे धूप खाते, जंगलों में मारे-मारे भटकते घूमते, हँसते, गाते, पढ़ते-लिखते, दुनिया भर की बातें करते न अघाते। मैंने अच्छी तरह ग़ौर किया था कि इन चन्द दिनों में ही रिल्के की हँसी में दूसरी ही उन्मुक्तता आ गयी है। चेहरे पर सुर्खी दौड़ गयी है, बदन ज़रा भर-सा आया है। मन ही मन मैं भगवान से प्रार्थना करती, "हे ईश्वर, अब इन्हें ऐसा ही खुश रहने दे। बहुत तकलीफ़ें तो झेल चुके अब तक ये !"

बर्लिन प्रवास की अवधि समाप्त हुई। अब हमलोगों का प्रोग्राम पेरिस जाने का था। ऐंडरसन रूम अब छूट जायगा सोच-सोच कर मन बड़ा उदास हो जाता था। पता नहीं कौन अपरिचित उसमें आकर रहने लगेगा। भला वह क्या क़दर जानेगा हमारे उन क्षणों की जो इस कमरे में हमने साथ गुज़ारे हैं। यहाँ से पियानो उठ जायेगा। और पियानो के साथ ही वह संगीत भी इस कमरे से चला जायेगा जिसने हमें अलौकिक तन्मयता में डुबा-डुबा लिया था। ऐंडरसन रूम से बिछुड़ने की तकलीफ़ के साथ ही साथ मन में एक दहशत भी थी—रिल्के ने अपने शुरू के ख़तों में लिखा था, वह नगर जितना ही खूबसूरत है उतनी ही यंत्रणाएँ उन्हें उस शहर में मिली हैं। बेहद तकलीफ और मानसिक व्यथा के दिन गुज़रे हैं उनके वहाँ। मैं डरती थी कि रिल्के वहाँ जाकर उदास न हो जायें।

बुसोनी और मेरा एक सहयोगी जोसेफ़ भी स्विटज़रलैण्ड होकर पेरिस जा रहे थे। म्यूदाँ में रोदाँ से मुलाकात कर सकूँगी, इस बात की उत्सुकता भी थी मन में। रिल्के ने मुझे रोदाँ के बारे में बहुत-सी बातें बताई थीं। वह दोनों अभिन्न मित्र थे। लेकिन दोनों के स्वभाव, दोनों के विचार और आदर्श तक दोनों की जीवन-पद्धति एकदम एक दूसरे से विपरीत थी। आखिरकार दोनों में झगड़ा हो ही गया। इस झगड़े से रिल्के के मन पर बहुत गहरी उदासी छूट गई थी क्योंकि झगड़े की जड़ में मात्र ग़लतफ़हमी थी। झगड़े के बावजूद भी रिल्के रोदाँ की कला की बहुत इज़्ज़त करते थे। उनके लिए वह कहा करते थे कि रोदाँ का एक अकेला मस्तिष्क परमात्मा के बहुत विराट् आरकेस्ट्रा की तरह है जिसमें अनगिनत वाद्य एक साथ बजा करते हैं। रिल्के अक्सर रोदाँ के बारे में बड़ी मज़ेदार बातें बताया करते थे। एक बार उन्होंने मुझे बताया था कि वह और रोदाँ प्रति दिन दूर-दूर तक टहलने जाया करते थे। अक्सर रोदाँ रुक जाते और बातों को बीच में ही छोड़ कर अपनी कमीज़ के बाँये कफ़ पर पेंसिल से कुछ लिखने लगते। घूमते-घूमते उनका यह नोट्स बनाने का ढंग बड़ा विचित्र था। घर जाते और कमीज़ उतार कर अपने कमरे के एक कोने में फेंक देते। दूसरे दिन दिन दूसरी कमीज़ की बाँह पर नोट्स बनाते। बेचारी श्रीमती रोदाँ की मजाल नहीं थी कि इन कमीज़ों को धुलने के लिए दे सकें। किसी दिन फ़ुर्सत से रोदाँ महोदय बैठते और सारी कमीज़ें इकट्ठी करके वह नोट्स चुन कर एक नोट बुक में उतार लेते तब कमीजें धुलने जातीं। कहते हैं उनकी "ले कालेद्राले द ता आदि के बहुत से अध्याय इसी विधि से लिखे गये हैं।

रिल्के से सुन-सुन कर रोदां के लिए मेरे मन में बड़ी इज़्ज़त जाग गई थी। उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने का मन करता था। पर पेरिस के नाम से रह-रह कर मुझे भय-सा लगने लगता। वहाँ जाकर अगर कहीं रिल्के को उनकी कटु स्मृतियों ने घेर लिया तो ?.....पर जिस दिन हम एंडरसन रूम से बिदा लेकर पेरिस के लिये चलने वाले थे, रेनर ने इतनी प्यारी बात कही कि अपना भय मुझे बहुत व्यर्थ लगने लगा। उन्होंने कहा--"अपने घर के जिस कमरे में मेरे परम एकाकी और चरम यंत्रणा के क्षण बीते हैं उसी कमरे के लिए मेरा मन अब एक विशेष संवेदन से उमगता है--जानती हो क्यों? बेनवेनुटा मुझे वह कमरा अब बहुत प्रिय है क्योंकि उसमें बैठ कर मैंने तुम्हें खत लिखे हैं--तुम्हारे खत पढ़े हैं। वह खत जिनमें मेरे जीवन का समस्त सुख समाया हुआ है--मेरे भविष्य के स्वप्न सँजोये हुए हैं...."

और मुझे लगा ये बहुत बड़े हैं, बहुत बड़े। मैं भी कैसी पागल हूँ जो वैसी छोटी-छोटी चिन्ताएँ करती थी।

यह तय हुआ कि पहले म्यूनिच फिर इंसब्रक होते हुए ज़ूरिच, बर्न, बन्सले घूम कर तब पेरिस पहुँचेंगे।

पेरिस जाने के लिए हम गाड़ी में सवार हुए। रिल्के का मन बहुत उछाह में था। वह मुझसे कह रहे थे, "बेनवेनुटा, पता नहीं कैसे मेरी बातें तुम तक पहुँच जाती हैं क्योंकि मैं जानता हूँ कि जब मैं तुमसे बात कर रहा होता हूँ तो वह मन में अन्दर की किसी चीज़ का बाहरी अभिव्यक्ति पाना नहीं होता ; वरन् बोल कर स्वयं अपने ही अन्दर और डूबना होता है। तुमसे बात करके मेरे हृदय में कुछ और विकसित हो जाता है। माँ की कोख में बच्चा दिन-ब-दिन जैसे विकास पाता रहता है न वैसे ही....." इतने गहरे डूब कर तो वह बातें कर रहे थे कि इतने में चाय लाने वाले एक छोकरे ने उन्हें "योर एक्सलेंसी" कह कर पुकारा। बस फिर क्या था उनका बच्चा मन सातवें आसमान पर चढ़ गया। जनाब का मूड बिल्कुल शाही हो गया कि इतने में पास की सीट से एक छोटी-सी बच्ची आई और सीधी रिल्के के पास जाकर बोली, "मेरा नाम लॉटी है। आपका नाम क्या है?" जवाब मैंने दिया, "बेबी, ये छोटे से यीशू को जानने वाले अंकल हैं। इन्हें बहुत-सी कहानियाँ आती हैं।" बस फिर क्या था बच्ची मचल गई कहानी सुनने को। रिल्के ने उसे अपनी गोद में बिठा लिया और उसे अपनी "टेल्स ऑफ़ दी आलमाइटी' की एक कहानी सुनाने लगे। मेरे मन के आगे वह दिन घूम गया जब मैं क्रिसमस के दिन बौराई-सी घूम रही थी और उस पुस्तक को खरीद कर लायी थी फिर सारी रात पढ़ती रही थी! ....बच्ची कितने ध्यान से कहानी सुन रही थी। सच-सच स्वीकारूँ तो उस समय मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मानो इस बच्ची के रूप में मैं ही हूँ। कहानी जैसे ही खत्म हुई तो उस बच्ची की माँ बोली, "बहुत-बहुत धन्यवाद महोदय! आप तो कवियों की-सी बातें करते हैं। आपको चाहिए कि यह कहानी लिख डालें। मैं सोचती हूँ अगर आप इस ओर ध्यान दें और मेहनत करें तो शायद लेखक बन सकते हैं।" रिल्के शरारत से मुस्कुराये और बोले, "अरे नहीं, आप भी कैसी बातें करती हैं!" लेकिन वह महिला तो जैसे रिल्के को लेखक बना देने पर उतारू थीं। बोलीं, "नहीं नहीं, मेरी तो यही राय है कि आप लेखक बन जाइये और बच्चों के लिए कहानियाँ लिखा करिये।" रिल्के बोले, "अच्छा आपकी बात का खयाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखूँगा।" मैं ही जानती हूँ कि उस दिन मैं अपनी हँसी कितनी कठिनाई से रोक पाई थी।

म्यूनिच स्टेशन आया। हम उतरे। शहर में आये। वहाँ रेनर मैरीन बाद होटल में ठहरे और मैं नाइम्फ़ वर्ग में अपनी बहन मेरिया के पास टिकी। वहाँ मेरा अधिक समय अपनी बहन के साथ गुज़रा। फिर म्यूनिच से टाइ-रॉल होते हुए हम इन्सब्रक पहुँचे। वहाँ गर्मी ज़रा ज़्यादा थी। वहाँ से कुछ दूर एक जगह मुझे अपने एक मित्र से मिलने जाना था। रिल्के की तबीयत ज़रा ढीली-सी थी इसलिये मैंने सोचा उससे मिलने जाना टाल दूँ। लेकिन उन्होंने मुझे ज़बर्दस्ती वहाँ भेजा। पर मेरा मन इधर ही अटका था। वहाँ जाने पर जब पता चला कि मित्र कहीं बाहर गये हुए हैं तो मैंने भगवान को धन्यवाद दिया और जल्दी-जल्दी होटल वापस हुई। वहाँ आकर क्या देखती हूँ कि रिल्के अपने कमरे में बिना कपड़े बदले ही दीवान पर लेटे हैं। क़रीब से जो उनका चेहरा देखा तो मैं धक्-से रह गई। एकदम ज़र्द पीला पड़ा था जैसे किसी ने सारा खून चूस लिया हो। वह बड़ी तकलीफ़ से कराह रहे थे। कोई कहता कि डाक्टर बुलवा दें तो एकदम सख्त ना कर देते थे। मैंने किसी तरह अपनी घबराहट पर क़ाबू किया और उनके सिर पर बर्फ़ के पानी में भिगो-भिगो कर ठंडी पट्टियाँ बदलने लगीं। वह फ्रेंच में पता नहीं क्या-क्या अंट-शंट बड़बड़ा रहे थे! धीरे-धीरे उनकी तकलीफ़ कम हुई तो उन्हें एक प्याला चाय और दवा पिलाई। उसके बाद वह सो गये। सोते समय वह कितने कमज़ोर लग रहे थे! आज मैंने पहली बार उन्हें ऐसा देखा था। और महसूस किया था कि इनके सुन्दर शरीर में किस कदर घुन लग चुका है। हे ईश्वर! शरीर तो इनका कमज़ोर हो ही गया है इनके मन की ताक़त दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रहे!

स्विट्ज़रलैण्ड घूमने के बाद हम पेरिस गये! वहाँ सजीले सपनों की दुनिया मूर्त साकार हो उठी। नॉत्रेन्दाम, नुई लेलिस के उद्यान, लूव्र, वहाँ की नदियाँ, वहाँ के पुल सब कुछ बेहद स्वप्निल था!

और अन्त में मैं वहाँ गई जिसे अपनी कल्पनाओं का पूजा घर कहूँ तो ठीक रहेगा यानी रिल्के के कमरे पर गई। उन्होंने ताले में जब चाबी डाली तो मुझे लगा मेरे लिये जैसे एक नई ज़िन्दगी का द्वार खुलने जा रहा है। ताला खोला, पूरा कमरा मुझे बहुत परिचित-सा लगने लगा। रिल्के के खतों में उस कमरे की जो तस्वीर मेरे दिमाग़ में बिंधी थी कमरा ठीक वैसा ही था। वह रोशनी वाली मेज़, किताबों से सजा रैक, मेज़ पर रखा हरे शेड का लैम्प, वह फ़िलदार पर्दे सब कुछ मेरा पहचाना था जैसे! अमिट प्यार और कृतज्ञता की भावना से मैं हर चीज़ को अपनेपन के भाव से देख रही थी। मन की पुलक सारे तन पर छाने लगी और मैंने अपने में डूब कर आँखें बन्द कर लीं। दो क्षण बाद मैंने अपने कंधों पर रिल्के का स्नेही हाथ अनुभव किया; वह कह रहे थे—"तुम जानती हो न कि अब मैं तुम में जीता हूँ; तुम कहीं भी रहो तुम्हारे प्यार ने मेरे मन को जिस स्तर पर ऊर्ज्वसित कर दिया है मेरा वह समर्पण तुम्हें इर्द-गिर्द डोलेगा।"

उनकी बात का भला मैं क्या जवाब देती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे मन में जाने कैसी कुलबुलाहट हो रही थी। बड़ी मृदुलता से उनके कमरे की हर चीज़ को छूती डोली मैं। उनकी स्याही की दावात, उनका ब्रीफ़केस, डेस्क, कुर्सी यहाँ तक कि उनके कमरे की दीवारें भी! एक दीवार पर लगी ईसा की मूर्ति.....सबको मैं बड़ी ममता से छूती रही जैसे हर चीज़ मेरे आशीष की प्यासी है। मेरा रोम-रोम रिल्के को धन्यवाद देता जाता था और उनकी हर चीज़ को आशीष। हम एक दूसरे से कुछ बात नहीं कर सके। बड़ा भरा-भरा खोया-खोया मन था। मैं लौट आई अपने होटल के कमरे में। चलते समय रिल्के ने एक पैकेट मुझे दिया--आकर खोला उसमें एक किताब थी--"गेटे की एक बच्चे से खतोकिताबत"। उसमें कई लोगों के नाम लिखे थे; जिन्होंने कभी उसे पढ़ा होगा। सबसे अन्त में रिल्के ने सुन्दर अक्षरों में सजा कर मेरा नाम लिखा था। ओह! कितने-कितने ढंग आते हैं उन्हें प्यार देने के!

एक दिन मेरे पास तार आया कि बुसोनी आ रहे हैं और दूसरे ही दिन एक प्रोग्राम देना है। अपने सारे कार्यक्रम रद्द करके मैं तैयारी में लग गई। दूसरे दिन सुबह रिल्के बोले, "वेनवेनुटा प्रोग्राम के समय यदि एक खूबसूरत-सी युवती मेरे पास आये तो तुम उससे मधुरता से बोल देना।"

"अरे इसमें ऐसे कहने की क्या बात है? कौन है वह?"

"मार्या है! पर तुम्हें यह बताना मुश्किल है कि वह कौन है। तुम उसे खुद ही देख लेना।" वह बोले।

मेरे अधिक पूछने पर सिर्फ़ इतना बताया कि एक गरीब लड़की है बहुत भावुक, बहुत खूबसूरत, बहुत समझदार लेकिन परिस्थितियों के चक्र में फँस कर एक गर्हित जीवन बिताने वाली बेबस इंसान है: मैंने ऐसी लड़कियों के बारे में केवल उपन्यासों में पढ़ा था। रिल्के से उसकी बातें सुनकर मेरे मन में करुणा के साथ-साथ दहशत-सी भी समा गई। बेचारी एक रूसी आदमी के साथ रहती है वह उसे शराब पीकर खूब मारता है, आजिज़ आ गई है पर उसे छोड़ भी नहीं सकती। रिल्के के पास कभी-कभी किताबें लेने आती है। रिल्के ने बताया, "मेरी पूरी संवेदना उसके साथ है लेकिन यह समाज वाले कभी किसी चीज़ को पवित्र चश्मे से देख ही नहीं सकते। उड़ाने लगे कि मैं तो उसे प्रेम करता हूँ। यहाँ तक कि प्रिंसेज़ मेरी तक यही शक करने लगी थीं तो मैंने फिर और किसी से उसके बारे में कोई बात ही नहीं की। क्यों मैंने ठीक किया न?"

"ठीक तो किया। लेकिन यह प्रिंसेज़ मेरी कौन हैं भला?' मैंने उन्हें छेड़ते हुए कहा। तो बोले, "अरे गज़ब क्या मैंने इनके बारे में तुम्हें कभी नहीं बताया?" फिर उन्होंने बड़े दुलार से उनके बारे में मुझे बताया। "उनका असली नाम थर्न डन्ड टैक्सिस है। वह अधिकतर आधी स्टेटों में घूमती रहती हैं। दुइनो नाम की उनकी एक स्टेट तो बहुत ही अद्भुत है। उतनी खूबसूरत जगह मैंने अपनी ज़िन्दगी में दूसरी नहीं देखी। इसके अलावा वह जगह जैसे शोक-गीतों का भण्डार है। काश मैं वह सब लिख सकूं। तुम्हें वहाँ ले चलूंगा कभी।"

बुसोनी के साथ मेरे कई दिन बहुत व्यस्त गुज़रे। इतने व्यस्त कि थोड़ी शिथिलता भी छोड़ गये। जिस दिन सब प्रोग्रामों से छुट्टी मिली उस दिन शाम को रिल्के मेरे कमरे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये और मुझे घंटों अपनी नई कविताएँ सुनाते रहे। 'दी इन साइड ऑफ़ दी रोज़', 'दी पैन्थर', 'दी राउंड अबाउट्स, 'वेनिस', 'दी रोमन फाउन्टेन्स' आदि बहुत प्यारी-प्यारी कविताएँ सुनने के बाद मेरी सारी शिथिलता जाने कहाँ काफ़ूर हो गई। और मन उनकी भाषा के जादू में और-और जकड़ गया। उस दिन मैंने यह भी महसूस किया कि जिसके दिल में बहुत पवित्र और गहरा प्यार लहरें लेता है केवल वही रिल्के के काव्य का मर्म ठीक-ठीक समझ सकता है।

उस दिन हमलोगों में तय हुआ कि रिल्के मुझे कवितायें सुनाया करेंगे और मैं उन्हें संगीत सुना-सुना कर उनके मन में संगीत की गहरी समझ जगा दूंगी। दूसरे ही दिन रिल्के ढेर-ढेर सारे गुलाब लेकर मेरे कमरे में आये। सारा कमरा गमक उठा, मन-प्राण उस सुगंध से सिंच गये। और फिर हर शाम मैं उन्हें घंटों संगीत सुनाती। वह मुझे कवितायें सुनाते कभी अपनी कभी अपने प्रिय कवियों की! मैंने एक बात ग़ौर की कि एक बार की सुनी चीज़ को तो वह आराम से बैठ कर सुनते रहते हैं लेकिन अगर एक भी नई लय बजा दूं तो वह बेहद ध्यान से उसे सुनेंगे मानो सब कुछ उन्हें सीख लेना है। साथ ही एक और अजब बात थी अगर कहीं मेरा मन उनके लिए कुछ अतिरिक्त मृदुल हो आता और मैं उसे संगीत में अभिव्यक्ति देती तो वह विशेष टुकड़ा उनके मन को एकदम छू लेता और वह कहते 'इसे एक बार फिर', हे भगवान यह कैसा रहस्य है मैं अपने मन को कोई भी भाषा दूं यह कितने सहज ढंग से उसका एक-एक आखर पी लेते हैं!

यह सब तो था लेकिन मेरे मन में धीरे-धीरे एक और भावना उदित होती आ रही थी। क्या मैं इनके व्यक्तित्व पर कुछ ज्यादा ही छा रही हूँ? इस बात से मुझे खुशी ही होनी चाहिये थी; पर मन परेशान इसलिये होता था कि रिल्के इधर कुछ लिख-पढ़ नहीं रहे थे। सारा समय तो उनका मेरे ही साथ गुज़रता था। वह रिल्के जो चरम विराग और एकान्त को अपने जीवन का सबसे बड़ा वरदान मानते थे एकान्त के क्षणों में सौन्दर्य का सृजन करने वाले रिल्के अब अकेलेपन से घबराने लगे थे और हर समय मेरी छाँह खोजते थे। मैं कभी-कभी अपने को अपराधी-सा महसूस करती। कहीं मैं इनके व्यक्तित्व के, इनकी सृजन-शक्ति के किसी अंश को नष्ट तो नहीं कर रही मैं उन्हें कहीं से कमज़ोर तो नहीं बना रही हूँ। और मेरे मन के अन्दर ही अन्दर घुन-सा लगने लगा। मन-प्राण पर उदासी छा गई। उनसे तो मैंने कुछ नहीं कहा लेकिन मेरे मन की भाषा एक बार मुझे धोखा दे सकती है पर उन्हें नहीं। एक दिन मुझे समझाते रहे कि मैं उनके लिए किस क़दर आवश्यक हूँ। और उस दिन विदा लेते समय बोले, "ऊपर आसमान में देखो कितने तारे जगमगा रहे हैं। ईश्वर करे आसमान का हर सितारा तुम पर अपनी आशीष भरी निगाह रखे और तुम्हारे भोले मन की रक्षा करता रहे।"

उनके ऐसे आशीष और उनके मन का मुग्ध मेरी अपराध भावना को बहुत कुछ समाप्त कर जाते थे पर एक दिन जब उन्होंने मुझसे कहा, "बेन वेनुटा क्या तुम ताज़िन्दगी मेरे साथ नहीं रह सकोगी?" मैं जितनी भी देर उनके साथ गुज़ारती वह क्षण मुझे हमेशा परमात्मा के आशीष जैसे लगते थे। पर यह 'ताज़िन्दगी' शब्द सुनते ही जैसे मुझे काठ मार गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं कुछ बोल नहीं सकी। उन्होंने मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में थाम कर उस दिन पहली बार बहुत कोमलता से अपने ओठों से लगा लिया। मेरी आँखें छल-छल बरसने लगीं।

वह बोले, "नहीं मैं तुमसे कोई प्रतिज्ञा, कोई वचन नहीं माँगता। तुम्हें यदि कभी यह लगने लगे कि मेरी ज़िन्दगी के सुख-दुख तुम्हारे लिये भारी पड़ रहे हैं तो तुम खुशी-खुशी अपनी राहों पर वापस लौट जाना। मैं तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि शुरू से ही जिस तरह जिस स्तर पर मेरा मन तुम्हारे प्रति समर्पित हो गया है उसमें मेरी अगाध आस्था है।"

मेरी आँखों के आगे हज़ारहा सवालों की बिजलियाँ चमकने लगीं। क्या मैं उन्हें पत्नी की तरह प्यार कर सकती हूँ? क्या मैं उनके बच्चों की माँ बनना चाहूँगी? क्या मेरा प्यार पति-पत्नी के सम्बन्धों में समा सकेगा? क्या मेरे स्वप्न केवल सांसारिक नातों की परिधि में पनप सकेंगे? और हर सवाल का जवाब एक निश्चित 'ना' में आता था। रिल्के मेरे लिये परमात्मा का आशीष हैं। उनके इर्द-गिर्द मेरा एक बहुत मृदुल सपना है जिसके तार ज़रा-सा छूने भर से बिखर जायेंगे। अगर मैं उनके साथ दुनियावी सम्बन्धों में बँधी तो यह उनके और मेरे दोनों के व्यक्तित्वों के प्रति बेईमानी होगी--क्षणिक आवेग होगा। मुझे कभी-कभी रिल्के की पहली पत्नी और उसके बच्चे का भी ख्याल आता। यह ज़रूर है कि उनका विवाह बहुत बचपन में कर दिया गया था। बरसों से उन्होंने अपनी पत्नी का मुँह भी नहीं देखा था। पर जाने क्यों मुझे उसका भी ख्याल हो आता था।....पर इसके साथ ही मेरे मन की गहराइयों में से एक और भारी आवाज़ उठती। रिल्के ने मुझे ज़िन्दगी जीना सिखाया है। उन्होंने मेरी उजाड़ ज़िन्दगी में नक्षत्रों की पवित्रता, फूलों की सुकुमारता भर दी है। सुख श्री और सौन्दर्य से भरा-पुरा मेरा आज का जीवन केवल उन्हीं की देन है। प्रकृति की और इंसानियत की छोटी से छोटी चीज़ से लेकर बड़ी-बड़ी बातों तक को समझने की दृष्टि उन्होंने ही मुझे दी है। मुझे इतना-इतना देने वाले वह! क्या मैं उन्हीं की दी ताक़त में से उनकी खातिर इतना भी नहीं कर सकती कि उनकी ज़िन्दगी के अकेलेपन के बोझ को अपने ऊपर ले लूँ!

●●

अगले अंक में :

अंत में बेनवेनुटा ने क्या निर्णय लिया? उस निर्णय ने दोनों के जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया? यह पढ़ें।

नेपथ्य में--(३) : मुक्ता राजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ किस्मत से

बाल सुंदर नहीं बनते ...

'बालों को सुंदर रखने में किस्मत नहीं, बल्कि अपनी मेहनत और उनकी हिफाजत काम आती है'—होशियार महिला का उत्तर यही होगा। सुंदर तथा आकर्षक बालों का राज उनकी पूरी-पूरी हिफाजत में है...और आप के लिए 'केशा' यह काम बखूबी करता है। 'केशा' बालों को जवान और पौष्टिक रखनेवाले तत्वों से भरपूर है, जो बालों की जड़ों तक पहुँच कर उन्हें रेशम जैसे मुलायम, चमकीले और सचमुच आकर्षक बनाते हैं।
सच तो यह है अनोखी खुशबूवाला 'केशा'
आपके बालों के लिए वरदान है।

केशा

सोल एजेंट्स और निर्यातकः
एम. एम. खंभातवाला,
अहमदाबाद-१
एजेंट्सः
सी. नरोत्तम एंड कं.,
बम्बई-२

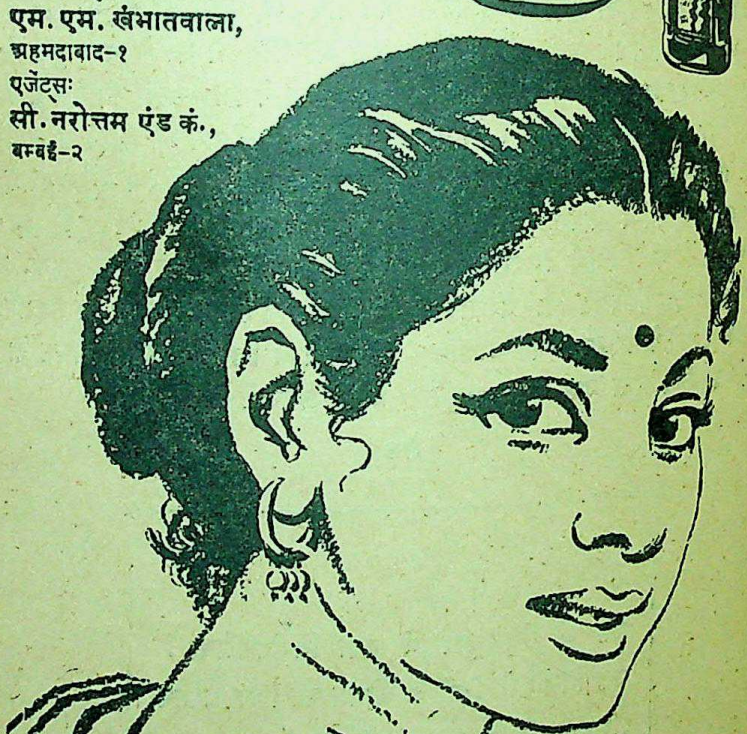

वाचनालय गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

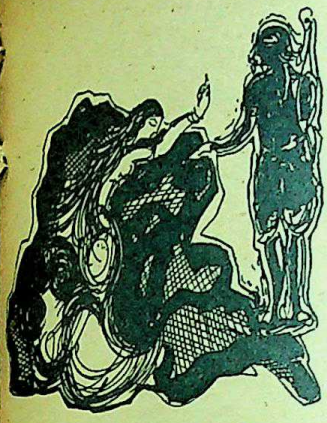

नन्दकिशोर मालवीय

अहिल्या का प्रतिवेदन

राम !
तुमने मेरा उद्धार (?) किया,
अच्छा किया ।
एक प्रार्थना है,
सुनते जाओ !
कलंक, जो सिर पर
मढ़ दिया गया है,
उसे धोते जाओ ।
क्या जानता है—
गौतम प्रियतम थे मेरे
प्रियतम से अधिक और प्रिय
क्या होता मुझे ?
सौन्दर्य इन्द्र का
आकर्षित न कर सका था मुझे ?
होती जो वासना
किंचित सौन्दर्य की,
आश्रम में गौतम के
युवक अनेक थे
सुन्दर थे,
युवा थे,
पुष्ट थे तन-मन से ।

किन्तु
गौतम की पत्नी के वे
सभी लाड़ले लाल थे ।
उषः-बेला में
जब इन्द्र निकट आया मेरे
प्रियतम के वेश में,
अनंगदान की याचना पर
मैं स्तब्ध थी,
बर्जना चाहा पर—
मौन हो रही स्मरण कर
आज्ञागुरुणामविचारणीया..'
समर्पण कर दिया मैंने
अपना तन गौतम को उसी क्षण
सत्य तो तभी जाना,
प्रकट हुआ इन्द्र जब
प्रियतम के सामने ।
सुनती हूँ
जग कहता है—
"भले ही वह छल था,
इन्द्र था गौतम के वेश में ;
किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पर्श से गौतम के
अहिल्या तो परिचित थी
क्यों नहीं सावधान हो गयी ?''

राम !
जग तो सुनेगा नहीं,
तुमसे ही कहूँगी मैं--
याचना पर अनंगदान की
प्रियतम वेशधारी इन्द्र की
होकर स्तब्ध पहले
पीछे कामार्त्त हो गई थी,
पालन ही धर्म था न, आज्ञा का !
हो जब कामार्त्त कोई
कैसे रहेगी संज्ञा
निज व्यक्तित्व की ?
तुम्हीं कह दो,
और उत्तर दे जाओ मेरे प्रश्न का--
क्या मैं कुलटा हूँ ?
परपुरुषगामिनी हूँ ?
नारी अपावन हूँ ?
कहा करते थे गौतम
आश्रम के शिष्यों से--
'मन की पवित्रता ही प्रधान है,
तन तो माध्यम है,
अतः वह गौण है ।'
जाने से पूर्व मैं
उनके निकट अब,
प्रश्न एक पूछूँगी
संहिता औ' शास्त्र के रचयिता
उन महर्षि गौतम से--
क्या है प्रमाण उनके पास
यह कहने को, कि--
मेरा मन कलुषित था
समर्पण की वेला में देवराज इन्द्र को,
दिया जो दण्ड मुझे
सहने का आतम, हिम, वर्षा औ'
वात को ?'
और फिर--
मृत्तिका सम मानकर नारी को
भ्रष्ट कह त्याग था जिसे दिया,
वही नारी
अपावन (?)
मृण्मयी
केवल स्पर्श से
तुम्हारे चरण-कमलों के
पुनः पावन हो गई ?
पात्र मृत्तिका का
एक बार भंग हो पुनः जुड़ता नहीं,
अहिल्या ही भला कैसे
पूर्ववत् हो गई ?

राम !
ये प्रश्न सारे, सीमित नहीं है
गौतम की नारी,
ब्रह्मनन्दिनी अहिल्या तक ;
बात समुदाय की है,
आगत भविष्य की है ।
मौन रहोगे जो
व्यवस्था समाज की विशृंखल होगी ही,
इसीलिए आज ही
उत्तर अपेक्षित है ।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

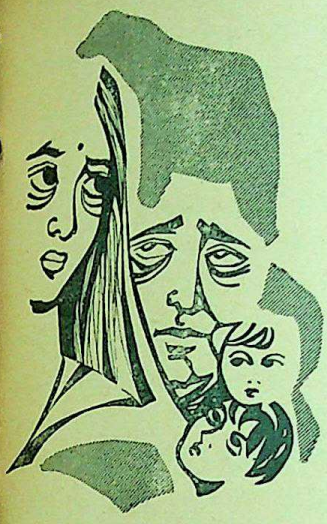

श्याम व्यास

●

जब एक दिन रोमांटिक और रंगीन सपनों का अन्त होता है और जीवन की चक्की चिन्ताओं को पीसती जाती है बारीक, और बारीक, और बारीक !

●

देखो, मैं सच कहती हूँ, मेरा अंग-अंग दुख रहा है, हर जोड़ दर्द कर रहा है। सर का भारीपन मुझे चैन नहीं लेने दे रहा है। सच कहती हूँ, मुझे ज़रा सो लेने दो, थकान मिटाने के लिए एक नींद ले लेने दो।

तुम जानते हुए भी क्यों नहीं समझते कि सारे दिन भर की खटर....खट... खटर...खटनुमा ज़िन्दगी की व्यस्तताओं के बाद मैं बहुत थक जाती हूँ और अब मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। बदन के हर जोड़ पर थकेला खड़ा पहरा दे रहा है जैसे सूदखोर चौराहे-चौराहे पर फैल अपने कर्जदार के लिए घात लगा बैठता है। यह थकेला मुझे पूरी तरह डसता भी तो नहीं। बस रिग... रिग...रिग...रिग कर यह बदन को गलाता है, गलाता जा रहा है। इस गलने के दौर में भी यदि मैं रात भर सोकर थोड़ा-सा सकून प्राप्त कर सकूं तो तुम क्यों उदास हो जाते हो।

मैं सदा से तो ऐसी टूटी हुई नहीं रही। तुम और मैं दोनों उन दिनों की एक याद हैं। और आज ये सारे दिन मुझे उलझाये रखनेवाले हमारे बच्चे उन्हीं दिनों के प्रतिरूप तो हैं ही। इनकी फूल जैसी हँसी में मेरा खिल-

एक थकी हुई आवाज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिलाता हुआ यौवन ही तो मुखरित हो रहा है और साथ ही मेरा वर्तमान का खोखलापन जाग-जाग उठता है। इनकी चुहल में, शोर-शराबे में मेरी थकान, मेरी रक्तहीन देह और मेरी समस्त खीझ-झल्लाहट झाँकने लगती है। मैं तुमसे शिकायत नहीं करती। अपने विगत के लिए प्रायश्चित नहीं करती, लेकिन न जाने क्यों इन सब बातों को याद कर मन में तीव्र विरक्ति-सी समा जाती है।

ज़रा याद तो करो कितनी ललक के साथ मैं तुम्हारे लिए चाय की ट्रे लेकर तुम्हें सुबह ही सुबह उठाने से पहले गुदगुदाती थी। पाँच-दस मिनट तुम अपने बिस्तर में इधर-उधर करवट बदलते रहते और अपने सेमल के तकिये से खेलते रहते। तुम सेमल की रुई के तकिये से खेलते थे और गुदगुदी मुझे होती थी.....एक मीठा-सा कंप मेरे मन में होने लगता था और मेरी समर्पणमयी देह तुम्हारी अँगड़ाइयों के मन्दिर में नतमस्तक हो जाती। मैं चाय की केतली पर से टीकोजी हटा लेती और एक सोंधी-सी महक मेरी नासिका और और मेरे मन को छू लेती। ठीक जैसे तुम्हारी गर्म-गर्म साँस मेरा भाल चूमती।

मेरी प्रातः कालीन व्यस्तताएँ कभी तुम्हारी जिद्द के आगे नहीं ठहर पायीं। मुझे सुबह कितना काम करना होता है लेकिन तुमने कभी उठने नहीं दिया। तुम हौले-हौले चाय पीते रहते, मुझे तुम्हें इस प्रकार चाय को "सिप" करते देख बड़ा भला लगता। तुम्हारा सारा प्यार और स्नेह मुझे ठीक ऐसा ही लगता। कैसे आहिस्ते से तुम उठती बेर मेरा हाथ थाम लेते, चाय का प्याला मेरे हाथों से लेती बार अपनी आँखें मेरी आँखों से मिला देते। उस समय तुम्हारी तरफ से तुम्हारी आँखें बोलने लगतीं। तुम्हारी आँखें मेरे समूचे चेहरे पर तिरने लगतीं और मुझे कुछ इतना ज्यादा सुहाता कि हाय राम मैं क्या करूँ मैं बस नजरें नीची कर लेतीं।

तुम्हारे आगे-आगे मैं बिछती। तुम बाथ-रूम पहुँचो उसके पहले तुम्हारा मनपसंद तौलिया, अन्डर वियर, तेल आदि चीजें न करीने से सजा देती। तुम बाथ-रूम में नहाते और मैं उसकी गंध में डूबती-उतराती रहती। वह गंध मुझे बराबर यह अहसास कराती रहती कि तुम मेरे पास हो। आज तो तुम खुद झल्लाते हो। आज सुबह तुम बाथ-रूम में तुम बनियान न मिलने पर मुझ नाराज़ हो रहे थे। मैं करूँ भी तो क्या बच्चों को दस बजे स्कूल भेजना होता है और उन्हें तैयार करना पड़ता है। उन्हें नहलाना, तौलिए से पोंछना, तेल-कंघी करना कपड़े बदलना यह सब इतना उलझा-उलझा काम है कि मैं और सब कुछ भूल जाती हूँ। बच्चों की जिद्द भी कैसी है यह तुम्हें मालूम है। कभी कहेंगे यह कमीज नहीं पहनेंगे और कभी नई नेकर पहनने पर अड़े रहेंगे। फिर भी मैंने भाग कर तुम्हें बनियान खोजी। इसी बीच छोटा बच्चा गीला बैठा रहने से रो पड़ा और फिर तुम झल्ला बैठे--बच्चों को तो शान्त रखा करो। मैं कैसे सब कुछ 'मैनेज' करूँ! फिर तुम्हें बाथ-रूम से बाहर होते ही नाश्ता तैयार मिलना चाहिए। जरा-सी देर तुम्हारे झल्लाहट रूपी बल्ब में करैंट पैदा कर देती है।

तुम्हें नाश्ते में मीठे टोस्ट बहुत पसन्द आते थे। मैं कितने उत्साह से तुम्हारा नाश्ता तैयार करती थी! कितनी मनुहार होती थी तब! तुम टोस्ट का पहला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मुझे खिलाने के लिए अड़े रहते और मैं तुम्हारे खाये बग़ैर न खाने का व्रत पाले रहती। लेकिन तुम्हारी जिद्द मेरे व्रत को लूट लेती और इस लुट जाने के सुख में मैं सराबोर हो जाती। मुझे अभी भी ठीक-ठीक याद है तुम्हें आधा घंटा लगता नाश्ता करने में। तुम टोस्ट चबाते और दैनिक पत्रों की सुर्खियाँ पढ़ते और मैं देखती रहती तुम्हें, और बस तुम्हें।

फिर मैं तुम्हारे कपड़े निकाल लाती। तुम आफिस जाने की तैयारी करने लगते। तुम कपड़े पहन कर मुझसे पूछते—'अच्छा अनु, चलता हूँ ऑफिस।'

और मैं जानते हुए भी पूछती—"कब तक लौटेंगे?"

तुम हँस देते और मुझे जवाब मिल जाता। मेरा विश्वास और ऊँचा हो जाता। मेरी आस्था का सुहाग चमक उठता और मेरी आशाएँ महकने लगतीं।

तुम कहा करते, 'अनु, तुम कितना स्वादिष्ट खाना बनाती हो' और फिर मुझे छेड़ते हुए कहते—'तुम्हारे खान्दान में रसोइयों का धन्धा ज़रूर चलता होगा।'

मुझे और चाहिये भी क्या था? तुम्हारी ये बातें सुनने के लिए मैं ग्यारह बजे से एक बजे तक तरसती रहती। तुम खाना खाते जाते और मुझे और खाने का आग्रह करते। फिर साँझ का प्रोग्राम बनता। आज यूनिवर्सिटी गार्डन चलेंगे, तो आज पिक्चर देखेंगे, तो आज वोटिंग करेंगे। मेरे मन में इतना सारा हर्ष कहाँ समाता! इतनी खुशियों को कहाँ रखती! मैं बावरी-बावरी हो जाती।

लेकिन अब तो ऐसा लगता है कि मैं इन सब बातों को याद कर दुखती नस को छू रही हूँ। पर, करूँ भी तो क्या, तुम अन्यथा न समझ लो, इसीलिए मैं यह सब तुम्हें याद दिला रही हूँ कि मैं शुरू से ऐसी थकी-माँदी नहीं थी। वह तो अब कुछ सहा नहीं जाता। मेरा विश्वास बौना हो गया है, आस्थाएँ खंडित हो चुकी हैं, टुटपूँजिए मन को अब कुछ नहीं भाता। अब तो दिन भर की थकान के बाद सोना चाहती हूँ, बस सोना चाहती हूँ।

अब यदि मैं तुम्हें अपनी थकान की बही खोल कर हिसाब बताना शुरू करूँ तो तुम और भी झल्लाओगे। लेकिन देखो न, सुबह ही से मैं कैसी जुती हुई रही हूँ। सुबह छः बजे उठते ही सिगड़ी जलाई और घर भर के लिए चाय का पानी रखा। गीले कोयले यूँही देर से सुलगते हैं और सुलगने पर भी मसर-मसर कर जलते हैं। रोज ही आँखें फूटती हैं और खाँसी उभर आती है। चाय का पानी उबले तब तक मैं हाथ-मुँह धोती हूँ कि बच्चे जाग जाते हैं और चाय के लिए उनका शोर उठने लगता है। मुझे तुम्हारा डर लगता है कि कहीं तुम्हारी नींद न उचट जाये। जल्दी-जल्दी में चाय का पानी हाथ पर गिर जाता है और वहाँ फफोला हो जाता है। बच्चों को चाय पिलाऊँ तब तक तुम्हारी आवाज़ आती है—'अनु, चाय लाओ।'

बच्चों को चाय पिलाना छोड़ मैं तुम्हारी चाय तैयार करने लगती हूँ; सो बच्चे उपेक्षा के दर्द से चीख उठते हैं। फिर तुम्हारी खीझ... तुम्हारी झल्लाहट कि बच्चों को चुप करो..... और चाय जल्दी लाओ। अब तुम्हें कैसे समझाऊँ कि दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते। बच्चों को चुप रखने के लिए उनके पास बैठ कर उन्हें चाय पिलानी पड़ेगी और इस कारण तुम्हारी चाय की ट्रे में देर होगी। उभरती हुई खाँसी, जलती हुई आँखें और हबकता हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फफोला लिये मैं बच्चों को पुचकार कर तुम्हारी चाय तैयार करती हूँ और तुम्हारे सामने पहुँच कर तुम्हारी मुद्रा देख सहम जाती हूँ। कुछ न कह कर भी तुम बहुत कुछ सुना देते हो मुझे, तुम्हारी मुद्रा कह देती है कि वक्त पर तुम चाय भी नहीं पिला सकती, छिः।

फिर वही क्रम। एक सिगड़ी पर दाल चढ़ाना तो दूसरी पर चावल। बच्चों की जिद्द....उन्हें नहलाना-पोंछना और कपड़े पहिना कर तैयार करना। तुम्हारी टूथ-पेस्ट खतम हो गई तो तुम मुझ पर बिगड़े: 'जरा-जरा-सी बात पर कहना पड़ता है तुम्हें, मेरा जरा भी ध्यान नहीं रखती तुम।' हाँ, तुम्हारी टूथपेस्ट के लिए भी मैं ही जवाबदार हूँ। मुझे मँगवा लेनी चाहिए थी, लेकिन मैंने तुम्हारा केस कल देखा नहीं था और मैं अन्दाज़ न कर पायी थी कि तुम्हारा पेस्ट खतम हो गया है। वैसे तुम भी कल मुझे जता सकते थे।

नाश्ता तुम्हारी मेज़ पर रख कर लौटी तो देखा कि दाल जल रही थी। दाल की पतीली को उतारा और तुम्हारे और बच्चों के कपड़े ले नल पर पहुँची। तभी तुम्हारी चीख सुनायी दी, 'अनु.....!' और मैं भागी। तुम टूटे बटन की कमीज़ लिये तमतमा रहे थे। मैं अपराधिन-सी सुई-धागा ले कमीज़ में बटन टाँकने लगी और तुम मुझे घूरते रहे। और फिर भर्त्सना के स्वर में बोले—'जरा अपनी दशा भी देखो। यह फटी हुई और तमाम भीगी हुई साड़ी। न शकल का ठिकाना, न किसी और बात का खयाल। कम से कम सुबह उठ कर कंघी-चोटी तो कर लिया करो। कितना भद्दा मालूम देता है!'

छोटा मुन्ना रोटी के लिए अपना रेंहट शुरू करता है। मैं फिर भाग कर रसोई घर में जाती हूँ और रोटियाँ सेंकने लगती हूँ। फिर बच्चों की परोसगारी और खाने के बाद फिर से उनकी तैयारी। तभी बाबू मंदिर की नौकरानी आ जाती है और तीनों बच्चों को रवाना करती हूँ। भाइयों को जाता देख कर छोटा मुन्ना रोने लगता है और मैं उसे गोद में लेकर बैठ जाती हूँ। सामने खाली मिट्टी में कोयले सुलग रहे हैं और मैं उनकी जलन को देखती रहती हूँ।

फिर गीले कपड़ों को धो-निचोड़ कर सुखाया और बची हुई रोटियाँ सेंकने बैठ जाती हूँ। तभी धोबिन कपड़े लेने आ जाती है और मैं उसके लिए कपड़े निकालने बैठती हूँ। तुम्हारे कमीज़, पैंट, कोट की जेबें देखती हूँ—बच्चों के कपड़े छाँटती हूँ और सब को डायरी में लिखने लगती हूँ। धोबिन अपने खसम को नास-पीटा दारू-कुट्टा सम्बोधित कर अपनी वेदना में मुझे साझीदार बनाना चाहती है। बच्चों के भूखों मरने और पति के दारू पीने की करुण दास्तान सुनाते-सुनाते वह पाँच रुपये की माँग कर बैठती है और फिर मेरे आगे दस रुपये का बचा हुआ एक नोट घूम जाता है जिससे मुझे अभी महीने के सात दिन निकालने हैं। मैं धोबिन से साफ झूठ बोल जाती हूँ कि मेरे पास पैसे नहीं हैं—बाबूजी के लौटने पर उनसे माँग कर तुम्हें दे दूंगी। और फिर तुम आते हो और मैं पुनः रोटियाँ सेंकने बैठ जाती हूँ। तुम चुपचाप खाना खा लेते हो। न भला कहते हो, न बुरा। मुझे बराबर लगता है कि तुम्हारी खुराक इन दिनों बहुत कम हो गयी है, परन्तु मुझसे पूछते नहीं बनता है। तुम खाकर जब बाहर दफ्तर चले जाते हो तो मैं कुछ राहत अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हूँ। पता नहीं क्यों तुमसे मन ही मन मुझे भय लगता है। मेरे आत्म-विश्वास में एक कमी आ गयी है।

तुम गये और फिर मैं बर्तन आदि एकत्र कर एक ओर रखती हूँ। खाने बैठती हूँ। भूख लगती नहीं, फिर भी कुछ न कुछ तो खाना ही होता है। तब तक धूप की गर्मी कम होने लगती है। घड़ी-आध घड़ी 'कुछ' पी करने बैठ जाती हूँ कि बच्चों के आने का टाइम हो जाता है और मैं झटपट फिर से सिगड़ी जलाती हूँ—चाय का पानी चढ़ाती हूँ। अब तक थकान फैलने लगती है और मैं बुझी-बुझी सिगड़ी जैसी गर्मी अपने में शेष पाती हूँ।

बच्चों का हुल्लड़, उनकी चाय, साथ ही नाश्ता और यह सब पूरा हो तब तक तुम्हारा आगमन। फिर तुम्हारी चाय और नाश्ता। मैं कप-बसी धोती हुई सोचती हूँ कि मैं भी चाय पीने की प्लेट हूँ। जब तक चाय है इसका उपयोग है वरना जूठे बर्तनों में गिनती होगी या प्लेट स्टैण्ड में पटक दिया जायेगा। फिर मैं शाम के खाने के लिए तुमसे पूछती हूँ और तुम टाल जाते हो। मैं संतप्त हो मूली काट लेती हूँ और तुम खाती बार झल्ला कर मूली की कटोरी फेंक देते हो। तुम्हारा यह कृत्य मेरे अभिमान पर चोट करता है, मेरा विश्वास आहत कर देता है और मैं एकाएक बहुत ज्यादा बूढ़ी हो जाती हूँ—बहुत ज़्यादा कुंठित हो जाती हूँ और भाग कर रसोई घर में जा, सुबक उठती हूँ।

और अभी रात के ग्यारह बजे हैं। चौका धो-पोंछ चुकी हूँ। बच्चों को सुला दिया है। सभी कमरों के दरवाजे बन्द कर दिये हैं। बड़ी बत्तियाँ बुझा कर नाइट लैम्प जला लिया है। सब कामों से छुट्टी पा गयी हूँ और मेरा सारा शरीर थकान की पाश में बँधा हुआ हबक रहा है। मेरी खाँसी बार-बार कलेजे में घुल रही है और हाथ का फफोला दम निकाले दे रहा है। मैं और कुछ नहीं चाहती। यदि जीवन में मैंने तुम्हें जरा भी सुख दिया हो तो उस सुख के नाम पर मैं तुमसे आरजू करती हूँ कि मुझे अब सो लेने दो....बस सो लेने दो। देखो, मैं बहुत थक गयी हूँ....मेरी आवाज़ नहीं निकल रही है। मुझे अब यह सब जरा भी नहीं सुहाता....सच कहती हूँ, मुझे सो लेने दो।

—०:—

पत्नी और मरीज़

डॉक्टर ने मेरे स्वास्थ्य की जाँच की और कहा कि पूरा आराम नहीं पाने के कारण ही मेरी सेहत कमज़ोर है। अपने दो-तीन बच्चों की देखभाल और परिवार की व्यवस्था में लगे रहने के कारण पूरा आराम मेरे नसीब में नहीं था।

"अपने लिये और अपने बच्चों के लिए तुम्हें अधिक से अधिक आराम करना चाहिए," डॉक्टर ने कहा। मैं जानती थी, डॉक्टर के भी दो-तीन बच्चे हैं, इसीलिए, पूछा, "डॉक्टर, तुम्हारी पत्नी पूरा आराम कर पाती है?"

"नहीं!" डॉक्टर ने शरमाते हुए उत्तर दिया, "मगर वह मेरी पत्नी है, मेरे पास इलाज के लिए आयी हुई मरीज़ नहीं!"

—राजकमल चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिंग ट्यूबस्

जल तथा गैस
वितरण के लिए

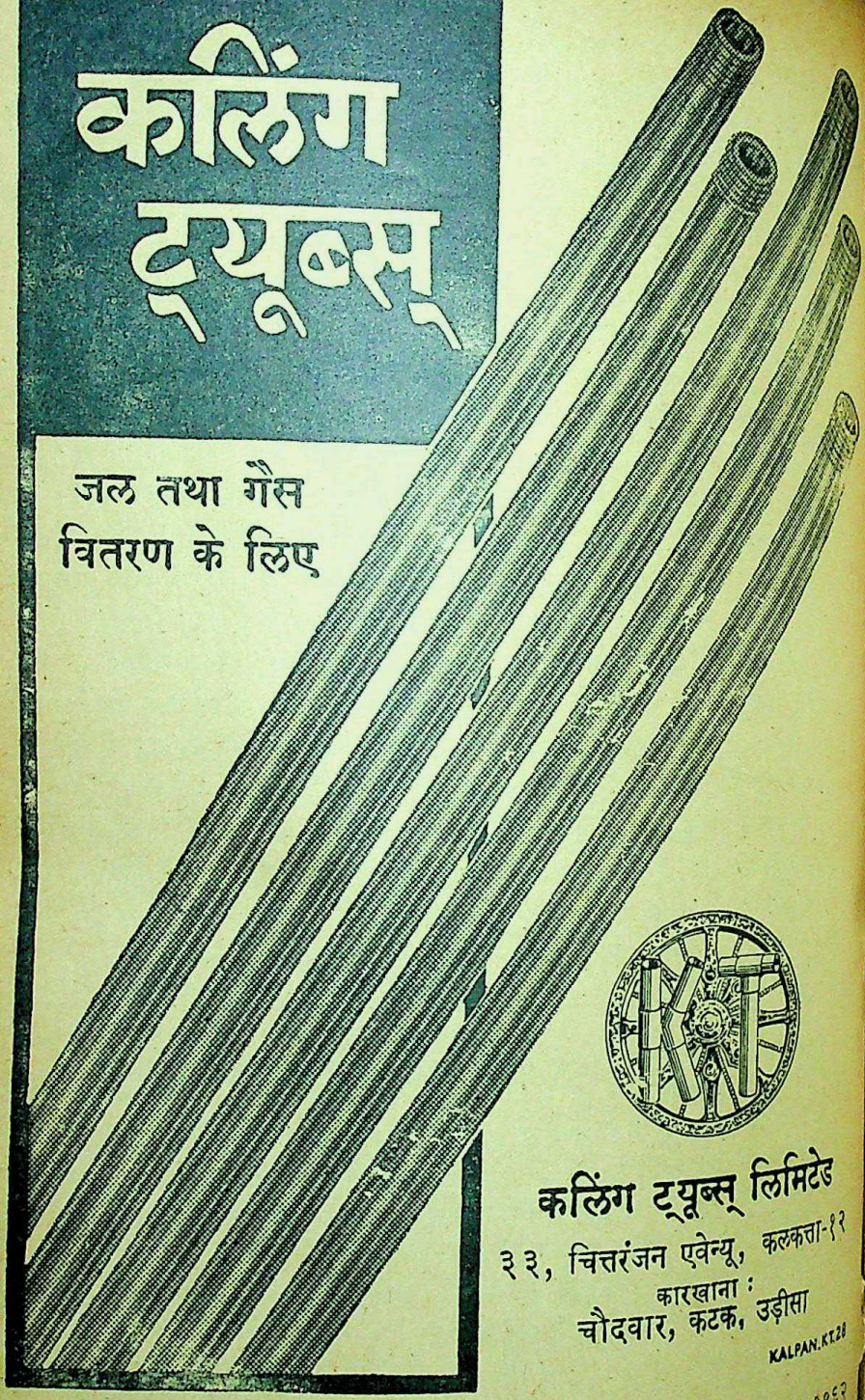

कलिंग ट्यूब्स् लिमिटेड
३३, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-१२
कारखाना :
चौदवार, कटक, उड़ीसा

KALPAN.KT28

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेन्द्र साईजी माकिनो

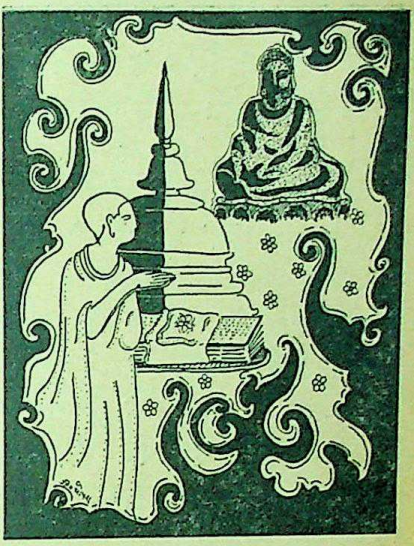

अज्ञेय के 'अरी ओ करुणा प्रभामय' कविता-संग्रह में जिस दर्शन की छाप है, और 'रोबोट एण्ड दि लोटस' में आर्थर कोएस्लर ने जिस धर्म-पद्धति की अगम्य राहों में भटकन और मरीचिका अनुभव की है, उस 'ज़ेन' पद्धति पर परिचयात्मक प्रकाश। लेखक हैं एक जापानी भिक्खु जिन्होंने हिन्दी सीख कर स्वयं यह लेख लिखा है।

●

आजकल अमेरिका और योरोप में 'ज़ेन' धर्म इतना लोकप्रिय हो गया है कि इसके ऊपर पुस्तक प्रकाशित करने पर लोग ज़रूर उसे खरीद लेते हैं। 'ज़ेन' के संबंध में विभिन्न मत हैं। आज कुछ लोग मानसिक आरोग्य शास्त्र (Psychopathy) की दृष्टि से देखते हुए 'ज़ेन' का अनुसंधान कर रहे हैं। अगर ध्यानासन की अवस्था में वैज्ञानिक ढंग से मनुष्य के मस्तिष्क की हालत मापी जाय, तो पता चलता है मानो वह घोर निद्रा की अवस्था में है। इस अवस्था को हम मनुष्य का मानसिक, संपूर्ण स्वास्थ्य मान सकते हैं। भावुक चित्रकारों का कहना है कि मुक्तहस्त से या उदार भाव से बनाई हुई कृति 'ज़ेन' के अनुभव जैसी है। यह भी कहा जाता है कि समाज के सभी कोटि के मनुष्य 'ज़ेन' का अध्ययन करना चाहते हैं।

पिछले साल की बात है। एक ईसाई पादरी हमारे मंदिर में आये और कहने लगे कि मुझे 'ज़ेन' के सातोरी (तत्क्षण तत्ववाद) की मानसिक अवस्था के बारे में बताइए। इस प्रकार आज लोग 'ज़ेन पद्धति' में अधिक रुचि दिखाने लगे हैं।

ज़ेन : एक विश्लेषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक समाज के जीवन-माप तेजी से बदल रहे हैं। ऐसे युग में आत्मविनाश या मानवविनाश की शंका उत्पन्न होती है। यंत्र और छिछली विद्या के भुलावे में मनुष्य फँसता जा रहा है। ऐसे मनुष्य को अपनी यथार्थ स्थिति का अनुभव कराना तथा आत्मपरिवर्तन के सहारे जीवन का सच्चा दर्शन कराना 'ज़ेन' का ध्येय है। रिंजाई संप्रदाय में एक प्रसिद्ध कहावत है, "प्रत्येक परिस्थिति में अगर अपने को वश में रख सकें, तो उसी क्षण सत्य के दर्शन होंगे।"*

रिंजाई का मत है कि दुनिया में केवल दो दृष्टियाँ होती हैं, एक तो कर्म-परक (Objectivity) और दूसरी आत्म-परक (Subjectivity)। लेकिन हम मानते हैं कि कर्म-परक बुद्धि का स्थान आत्म-परक से ऊँचा है। रिंजाई का यह मत है कि कर्म-विषयता को छोड़ कर आत्म-विषयता को अपनाना चाहिए। 'ज़ेन' का सार है इसी आत्मीय का बोध करने में। ऐसे ज्ञान का बोध करने से हमारा जीवन सच्चा बन जाता है।

मेरे पास शरीर है, आत्मा भी है। अतः मेरा शरीर और आत्मा मिल कर एक व्यक्ति के रूप में जीते हैं। यह व्यक्ति आत्मीयता प्रधान है और मुझे छोड़ कर बाकी सब कर्म-विषयक हैं। किन्तु अगर बारीकी से देखा जाय तो मेरा यह शरीर पदार्थ-विषयक है। जैसे डाक्टर अपना शरीर भी स्वयं निदान कर सकते हैं वैसे ही अपना शरीर भी पदार्थ-विषयक हो सकता है। इतना ही नहीं, बल्कि अपना आचरण भी पदार्थ-विषयक हो सकता है। उदाहरणार्थ आज एक ऐसी बुरी बात हुई जो नहीं कहनी चाहिए थी या नहीं करनी चाहिए थी, सो कही और करी....। इस प्रकार के अनुभव में हम अपने आचरण को पदार्थ-विषयक दृष्टि से देखते हैं। और भी आगे बढ़ कर देखें तो हम अपने स्वभाव को भी पदार्थ-विषयक दृष्टि से देखते हैं जैसे—मुझ में कायरता नहीं होनी चाहिए, मुझ में अव्यवस्थितता नहीं होनी चाहिए, मुझ में उदासीनता नहीं होनी चाहिए इत्यादि, इत्यादि। इस प्रकार हम अपने स्वभाव की आत्मसमीक्षा करते रहते हैं। आत्म-दृष्टि धीरे-धीरे चित्त के भीतर घुस जाती है और अंत में वहाँ एक गंभीर रहस्य के रूप में स्थायी स्थान बना लेती है। हमारी आँख सभी कुछ देख सकती है किन्तु वह अपनी पुतली स्वयं नहीं देख सकती। 'मासामुने' नामक प्रसिद्ध तलवार सब कुछ काट सकती है किन्तु अपने आपको नहीं काट सकती। हमारा चैतन्य सब पहचान सकता है किन्तु वह अपने को नहीं पहचान सकता। ऐसा शुद्ध चैतन्य हमारे चित्त के भीतर मौजूद है जो कभी स्पष्ट नहीं देखा जा सकता। वह न तो आत्मा है, न ज्ञान जनित अनुभव। दूसरे शब्दों में हम इसे जीवन-तत्व कह सकते हैं। यह क्या है, यह है शून्य।

मनुष्य की प्रतिष्ठा या मानवी अधिकार का गौरव आजकल लोकप्रिय विषय हो गया है। लेकिन मैं समझता हूँ कि हमें मनुष्य-शरीर को इतना महत्व नहीं देना चाहिए। क्योंकि असल में हमारे

*नोट :—रिंजाई संप्रदाय प्रवर्तक ऐसाई-जेंजी (११४५–१२१५) द्वारा स्थापित किये गये ज़ेन-संप्रदाय की मुख्य शाखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह आचरण और स्वभाव प्रतिक्षण बदलने वाले हैं, नश्वर हैं। तो फिर मनुष्य में क्या बड़प्पन रहा? मनुष्य कहाँ महान् है? मुझे लगता है कि अपने स्वभाव की आलोचना करने वाला विशुद्ध चित्त ही महान है। ईसामसीह कहते हैं कि यदि सारी दुनिया को जीत कर अपना जीवन खोना पड़े तो इससे क्या लाभ? यहाँ जीवन का अर्थ शरीर का कोई चेतन भाग नहीं है। इसका अर्थ जीवन-तत्व या शुद्ध चैतन्य है।

तोकुगावा युग (आज से ३०० साल पूर्व) के सुप्रसिद्ध भिक्षु बंकेई--जेंजी (बंकेई नाम है, जेंजी का मतलब ध्यानाचार्य होता है) कहते हैं कि....

"आप लोग आज मेरा भाषण सुनने एकत्रित हुए हैं, कहने की आवश्यकता नहीं कि आप सब मेरी बात सुन रहे हैं। किन्तु अभी जो कुत्ता भौंका, उसे तो आप सब ने सुना ही होगा। यद्यपि जब कुत्ता भौंकता है, सुनने के लिए तैयार न होने पर भी तुरन्त उसकी आवाज़ अपने आप सुन ली जाती है। जैसे ही कुत्ता भौंकता है, ठीक उसी क्षण सुना जाता है। यह प्रत्यक्ष-ज्ञान ही चैतन्यजनित है।"

ज़ेन का सार चित्त में है :

एक प्राचीन चीनी ऋषि कहते हैं कि 'ज़ेन' चित्त का दूसरा नाम है, चित्त 'ज़ेन' का अस्तित्व है। अगर यह बात सही है, तो 'ज़ेन' का सूत्र यह होगा कि.... 'भीतर देखो, वहीं तुम्हें बुद्ध के दर्शन होंगे।' भारत में चित्त को 'आलय-विज्ञान' कहते हैं। आलय का मतलब है, मकान। चित्त एक मकान की भाँति है जो अनुभव, ज्ञान और स्मृति का भंडार है। केवल जन्म के बाद के अनुभव ही नहीं, बल्कि पूर्व जन्म की स्मृति भी सुप्त अवस्था में (Subconsciousness) हमारे चित्त के भीतर बची रहती है। चित्त के ये विभिन्न अंश ही प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव या व्यक्तित्व बनाते हैं। हरएक आदमी के अनुभव और ज्ञान अलग-अलग होते हैं। जापान के शोतोकूतोइसी कहते हैं कि वह जो उन्हें अच्छा लगता है, दूसरों को बुरा लगता है और उन्हें जो बुरा लगता है, तो वह इन्हें अच्छा लगता है। हम तो कभी संत नहीं हैं। पर दूसरे भी मूर्ख नहीं हैं। दोनों मनुष्य हैं, भले-बुरे का न्याय कौन कर सकता है? वे जो श्रेष्ठ मान कर आग्रह करते हैं, हम उन्हें मूर्ख कह कर खंडन करते हैं। वह जो मैं सही मान कर दृढ़तापूर्वक कहता हूँ दूसरे उससे सहमत नहीं हैं। अगर कोई ऐसी चीज है जिसे सब लोग सच्चा माने, तो वह अपने व्यक्तिगत अनुभव और स्वार्थी ज्ञान से रहित है। अनुभव और ज्ञान तथा अपनेपन को भूल कर ही हम चित्त में शान्ति पा सकते हैं। अनुभव या ज्ञान का क्षेत्र पार करके हमें ऐसे चित्त को अपने अंदर स्थापित करना होगा जो सचमुच शिशु के मन की तरह शुद्ध हो।

बंकेई - जेंजी कहते हैं,--"मनुष्य का मूल स्वभाव दर्पण के समान है। यह शून्य दर्पण के समान चित्त ही मनुष्य का स्वभाव है, जो जैसी चीज सामने आती है, वैसे ही प्रतिबिंबित करता है। किन्तु दर्पण के अन्दर जो दिखता है, वही सच्चा रूप नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कोई चीज दर्पण के सामने से हट जाती है तब दर्पण के भीतर से भी गायब हो जाती है। किन्तु दर्पण के भीतर से जो वस्तु गायब हुई, वही चीज असल में दर्पण के भीतर नहीं थी। दर्पण के अन्दर तो न कोई चीज पैदा होती है, न घटती है, न बढ़ती है, उसमें कुछ परिवर्तन है ही नहीं। कुत्ते के मल-मूत्र को यदि दर्पण पर प्रतिबिंबित किया जाय, तो भी दर्पण कभी मैला नहीं होगा। सुन्दर फूल यदि प्रतिबिंबित किया जाय, फिर भी दर्पण इस से कमनीय नहीं होगा। प्रज्ञापार-मिताहृदयसूत्र में कहा गया है कि—

"अनुत्पाद, अनिरोध, अनिर्गमन, अनागमन, अनेकार्थ, अनानार्थ, अनुच्छेद, अशाश्वत..."

यही मनुष्य का स्वभाव है अर्थात् हमारे भीतर जो चैतन्य है, वही निराकार है, इसी कारण इसमें जन्म या मृत्यु नहीं है, यह जरा-मरण से बाहर है। होनें-शोनीं (शोनीं का मतलब-'ऋषि' होता है) कहते हैं कि 'जीने पर बुद्धानुस्मृति, मरने पर स्वर्गवास; फिर जन्म-मृत्यु के बारे में चिंता की क्या बात!' पर जो दुनिया जन्म-मृत्यु से परे है, वही शून्य दुनिया, शून्य चित्त है। 'ज़ेन' का अर्थ है चित्त, यह चित्त निराकार है, अनिमित्त है। रूप नहीं, फिर भी क्रियावान है। केवल हमें इस बात को अपनाना चाहिए।

ताकूवन-जेंजी ने याग्यूताजीमानोकामी की तलवार का सामना एक कागज लेकर किया था। उपरोक्त रूपक में उन्होंने चित्त के बल को भौतिक बल से ऊँचा बताने की चेष्टा की है। ताकूवन ने याग्यूताजी-मानोकामी को चित्त का रहस्य बताते हुए कहा कि "चैतन्य अगर किसी विशेष जगह पर रुक जाय, तो हार हो जायगी। प्रति-स्पर्धी के हाथ, पैर और नजर तथा अपने हाथ, पैर और तलवार की नोक पर ध्यान नहीं रखना चाहिए। प्रतिस्पर्धी की प्रबलता या दुर्बलता का भी ख्याल नहीं रखना चाहिए। हारेंगे या जीतेंगे, यह भी नहीं सोचना चाहिए। यह भाव शून्य याने शान्ति है। लेकिन शान्ति का मतलब केवल पेड़, पत्थर की तरह जड़ हो जाना नहीं है, बल्कि चारों तरफ चैतन्य फैलाते जाना और न रुकना, यही शान्ति की परिस्थिति है। इसलिए मारने के लिए कोई सामना करने आये, तो तुरंत रोकना और अवकाश मिलने पर तुरंत सामना करना यही श्रेयस्कर है। इस चैतन्य को क्रिया-शील न रखने से मनुष्य मृतक के समान हो रह जायगा।"

जापान के कोबे नादा की शराब बहुत ही प्रसिद्ध है। यहाँ नई शराब की स्वाद-परीक्षा के लिए लोग एक उत्सव मनाते हैं। अनुभवी आदमी एक-एक करके शराब मुँह में डालते हैं और स्वाद का पता लगाते हैं। एक शराब का स्वाद चख लेने पर उसको जब तक मुँह से पूरा न निकाल दिया जाय, तब तक दूसरी शराब का स्वाद नहीं चख सकते। जीभ खाली न रखने से सच्चा स्वाद नहीं जाना जा सकता। इसी प्रकार चैतन्य को शून्य में न रखने से हम सत्य को नहीं पहचान सकते। चैतन्य हमेशा शून्य होना चाहिए। नित्य अनु-भव और ज्ञान को त्याग करके आदि अवस्था की शून्यता में रहना दुनिया को ठीक पहचानने के लिए बहुत ही जरूरी है। जब हम दुनिया को देखते हैं, अनुभव करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, तो स्वार्थ भाव से देखते हैं। 'ज़ेन' का तात्पर्य यह है कि ऐसे पुराने अनुभव, ज्ञान या स्मृति को छोड़ कर अति निर्मल मानवी ज्ञान से दुनिया को देखना।

इस प्रकार व्यक्तिगत क्षुद्र अनुभव, ज्ञान, स्मृति की काई पर सत्य के फिसलने की आशंका बनी रहती है।

प्रेम ही ज़ेन का मार्ग है

दोगें-जेंजी ('ज़ेन' संप्रदाय की मुख्य शाखा 'सोतो' के प्रवर्तक) कहते हैं कि "बौद्ध-धर्म को सीखना अपने को सीखना है। अपने को सीखना अपने को भूलना है। अपने को भूलना दुनिया में लीन हो जाना है।" यहाँ शुद्ध चैतन्य और पदार्थ-विषयक ज्ञान एक हो जाते हैं, वहाँ दोनों के बीच निकटता आ जाती है। अतः यहीं उदार प्रेम और करुणा पैदा होती है। आज के युग में सबसे कम चीज है, प्रेम। अपने सुख की इच्छा रखना, अपना अधिकार कायम रखना कोई बुरी बात नहीं है पर अपने भीतर जो सच्ची आत्मा दुःखी रहती है, उसे सचेत करना बहुत जरूरी है। सच्ची आत्मा की इच्छा केवल भौतिक संतोष से नहीं भरी जा सकती। सभी जीव-जन्तुओं की मुक्ति छोड़ कर अपने निर्वाण की कामना करना बेकार है। यह तो अमिताभ (बुद्धदेव का एक अवतार) का व्रत नहीं है। हम यदि यह सब भली-भाँति जान लें, तो आज के समाज में सच्चा प्रेम व्याप्त कर उसकी माँग पूरी कर सकते हैं। अर्थात् मैं समझता हूँ अपने स्वभाव पर शुद्ध व्यक्तित्व प्रकट करना और बड़े तौर पर मनुष्य जाति की सेवा करना ही आज हमारी खुशहाली का रास्ता है।

आज प्रजातंत्र और साम्यवाद दोनों संप्रदायों के बीच ठंडी लड़ाई हो रही है, दोनों आपस में ठंडी दृष्टि से ताक रहे हैं। किन्तु दोनों एक ही मानवता के अंग हैं। मुझे लगता है कि जिस प्रकार हम अपने को प्यार करते हैं, उसी प्रकार दूसरों को भी प्यार करें, इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। इसके लिए सब से पहले आत्मबोध प्राप्त करना 'ज़ेन' धर्म का मार्ग होना चाहिए। 'ज़ेन' न तो केवल ज़ेन-संप्रदाय का विशिष्ट अधिकार है, न सम्पत्ति। प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में जो मौजूद है, उसी चैतन्य का आत्मबोध करना 'ज़ेन' का उद्देश्य है। यद्यपि ध्यानाभ्यास न करे, तो भी इस बात पर बड़ी श्रद्धा के साथ विश्वास रखते जाना सच्चे मार्ग का अनुसरण है। • • •

•हमने भोग नहीं भोगे : भोगों ने ही हमें भोग लिया है। हमने तप नहीं किया : हम स्वयं तप गये। हमने काल नहीं बिताया : काल ने ही हमें बिता डाला। हमारी तृष्णाएँ जीर्ण नहीं हुईं : तृष्णाओं में हम स्वयं जीर्ण हो गये।

——भर्तृहरि

•यदि तुम्हारा हृदय पवित्र है तो आचरण सुन्दर होगा। यदि तुम्हारा आचरण सुन्दर है तो घर-परिवार में शान्ति रहेगी। यदि घर-परिवार में शान्ति है तो राष्ट्र में सुव्यवस्था रहेगी। यदि तुम्हारे राष्ट्र में सुव्यवस्था है तो समूचे विश्व में सुख होगा।

——कन्फ्यूशियस.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार का
सर्वप्रिय

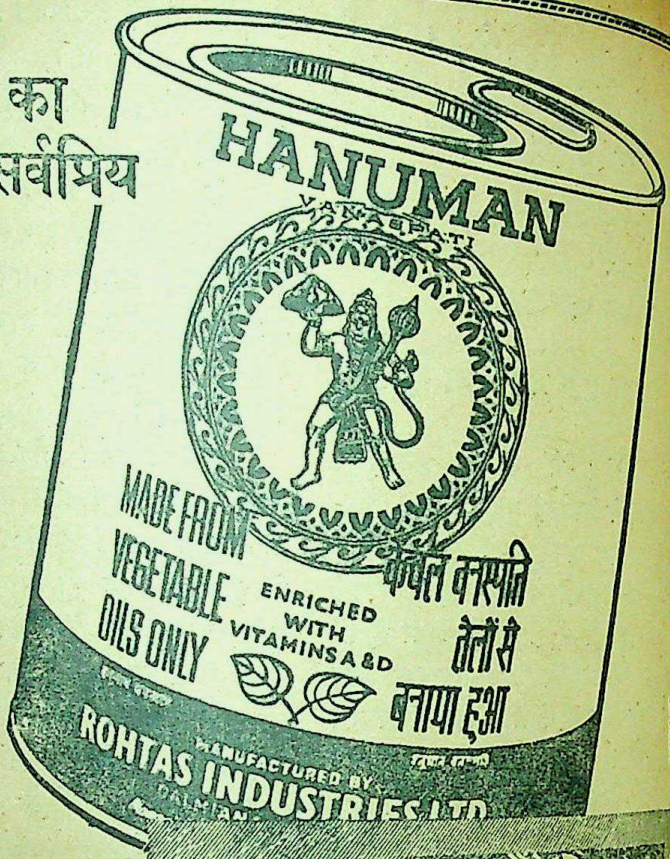

SAHU JAIN
INDUSTRIES

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

यदि आप अपने ४ किलोग्राम टिनों में भाग्य से एक कूपन पा जाँय तो उसके बदले में एक अपूर्व उपहार ले लें

332

उपहार कूपन का नमूना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ १६ का शेषांश : मिटती राहें.....)

मैं उस विष से विवश हूँ जिसे पाने में मेरा कोई हाथ नहीं है—हज़ारों सालों का व्यतीत मेरे मन में, शरीर में पिशाच की तरह जम गया है...

जिस दिन पिशाच इस शरीर से चला जायेगा, उस दिन अफ़सोस ऐ मेरे साथियों, मैं तुम्हारे पास नहीं होऊँगा...

वही जो बड़ौदा में उस वीराने में पीले सूखे मुरझाये पत्तों से ढँके उस पेड़ को देख कर मैंने उस तरुण सरल विद्यार्थी से कहा था—'एक दिन होगा जब मैं यहाँ नहीं होऊँगा। तब इस पेड़ को देख कर शायद तुम्हें मेरी याद आये...'

और मुझे तुम सब की याद रहेगी, ज़रूर रहेगी—उस लम्बे सफ़र पर भी जिसका अन्त किसी ने नहीं देखा...पर गौरय्या उन बहुत ही कम जीवों में से है जिन्हें कभी भी मुझसे डरने की ज़रूरत नहीं पड़ती...

और मुझे लगता है, गौरय्या तो शायद ही कभी भी किसी से डरती होगी...

और फिर गौरय्यों का यह झुंड तो मुझसे बहुत ही हिल-मिल गया था...

जंगल की यह चंचल राजकन्याएँ मुझसे डरने वाली नहीं थीं...

सो वह इधर-उधर से मौक़ा लगते ही आ जातीं। मैं कॉलेज से लौटता और पैंट उतार कर रखता और बिस्तर के नीचे उस पैजामे को ढूंढ़ता जिसे मैं सुबह छिपा कर रख गया था, कि सहसा ही कहीं से एक परिचित आवाज सुनायी देती—

चाँव चुईं।

वही गौरय्या का जोड़ा मानो मेरी सम्पूर्ण सतर्कता का उपहास-सा करते हुए...

अपनी ऐसी अवज्ञा देख कर मैंने एक बाँस से उसे कमरे में चारों ओर खदेड़ा... चिड़िया गर्भवती थी। इतना 'एक्ज़र्शन' उससे बर्दाश्त नहीं हुआ, वह भाग कर गोदरेज के 'कबर्ड' के पीछे की जगह में छुप गयी...चिड्डा खिड़की की 'सिल' पर बैठा हाँफने लगा...

इतने में ठीक न लगी होने के कारण खिड़की हवा से अकस्मात ही खुल गयी और चिड्डा दूसरे पहर की उस पिघली हुई सोने की-सी धूप के समुद्र में तैर गया...मैंने चाहा कि लगे हाथ चिड़िया भी निकल जाये पर वह मुझे नहीं मिली...

बहुत देर तक ढूंढ़ने के बाद भी जब चिड़िया न मिली तो मैं खिड़की बन्द करके नहाने चला गया.....चिड्डे की चिड़िया को पुकारने की आवाज़ बाहर से आती रही पर चिड़िया का उत्तर कहीं भी सुनायी न दिया...

शाम हुई, रात हुई।

दूसरे दिन सुबह जब मैं कॉलिज जाने के पहले भगवान को नमस्कार करने पहुँचा तो देखा कि वह प्रिय-वियुक्ता गौरय्या भगवान के सामने के फ्लॉवर-पॉट पर बैठी उनकी ओर देख रही है ; कभी-कभी बहुत ही दबी ज़बान में कुछ कह देती है...

मुझे लगा, श्यामसुन्दर का वह मनोहर विग्रह बड़ी अर्थपूर्ण दृष्टि से मुझे देख रहा है...

मैंने खिड़की खोली तो चिड्डा बाहर बैठा था, रात्रि के वियोग के पश्चात् दोनों का मिलन हुआ...भगवान श्यामसुन्दर ने गंभीर बनने का बहुत प्रयत्न किया पर शनैः-शनैः उनके मुख पर हास्य अधिक प्रगाढ़ होते-होते एकदम स्पष्ट हो गया...

फिर मैंने उन चिड़ियों पर रोक-टोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्द कर दी। सिर्फ बेगम से कह दिया कि भगवान के यहाँ जाते देखने पर वह उनकी रोक-थाम ज़रूर करे...

बेगम कुछ उलझी मगर हमेशा की तरह चुप रह कर उन्होंने स्वीकृति दे दी।

दिन फिर वैसे ही बीतने लगे...मालूम नहीं कैसे, अब वह सारे घर में घूमतीं पर भगवान की ओर नहीं जातीं या शायद मुझे ऐसा ही लगता था...

मगर फिर न जाने कैसे एक दिन घर बसाने की फ़िराक में घूमने वाले उन प्रेमी-युगल ने छत से टँगे बिजली के पंखे के ऊपर बैठ कर मुआयना किया और अपने 'होम' के, घर के लिए एक नयी जगह, एक नयी 'साइट' मालूम की।

बस उस दिन से तरह-तरह के तिनके आदि ला-ला कर वह पंखे के भीतर घर बनाने लगीं...

जैसे-जैसे उनके घर की इमारत बुलन्द होती गयी, हमारी ज़िन्दगी में से चैन और सुकून जाता गया...पंखे के नीचे बिछे मेरे पलंग पर दिन भर कूड़ा-करकट, तिनके-फिनके गिरने लगे--और बीटें भी तो होनी ही थीं...

धैर्य का बाँध टूट गया। लगभग प्रतिदिन ड्राइंग रूम में दो घण्टे बन्द करके उन्हें कमरे के चारों ओर भगाना, यही मेरा काम हो गया। इस तरह खदेड़े जाने पर इधर-उधर भागते हुए, उन्हें मेरे फटे हुए टार्किश टॉवेल की मार भी कभी-कभी लग जाती रही होगी...

उन्हें देखने से ही लगता था कि दहशत से उनका कलेजा मुँह को आ रहा है...

बिस्तर की मुझे परवाह नहीं थी, पर नया पंखा खरीदना तो दूर, उस पुराने पंखे की मरम्मत और ओवरहॉलिंग के लिये भी उस वक्त शायद पैसे का इन्तज़ाम करना मुश्किल पड़ता...

और बिना पंखे के तो सर्दियों में भी मुझे नींद नहीं आती.....आदत बुरी है पर लगभग पन्द्रह साल पुरानी हो गयी है--वैसे भी कई आदमियों को बनिस्बत औरों के ज़रा ज्यादा गर्मी लगती है...

रोज़ खदेड़े जाने पर वह समझ गयीं और उन्होंने आना बन्द कर दिया...

हमलोगों की लड़ाई नहीं हुई पर कुछ मुटाव हो गया। वे मुझे देख कर मुँह फुला लेतीं, मैं उन्हें देख कर होंठ दबा कर अपनी कलाई पर बँधी घड़ी देखने लगता... पर जहाँ भी हमलोग मिलते--एक-दूसरे से प्रभावित अवश्य होते...

धीरे-धीरे क्रोध का यह प्रदर्शन भी पुराना और बेअसर हो गया। उनके घोंसले रोशनदानों में बाहर की तरफ़ हमेशा की तरह क़ायम रहे पर देश की भीतरी सीमाओं में से घर के राजा ने उन्हें निर्वासित कर दिया...

अभी भी रात-दिन उनकी चहचहाहट से मकान गूँजता रहता है, पर वह चहचहाहट ऐसी है जैसे खिड़की के नीचे खड़े होकर कोई कॉन्वेन्ट की लड़की सीटी बजा रही हो...

घर के भीतर अब मेरा राज है। घर मेरा है, मैं उसका काफ़ी लम्बा-चौड़ा किराया देता हूँ। उसमें कैसे रहना है इसका निर्णय भी मैं ही करूँगा--मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता...

अपनी व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की परिधि में दुनिया में मेरा सुख ही सबसे बड़ा देवता और मेरी भावना ही सबसे पुरखा पुजारिन है...

चिड़ियें एक हद तक उसमें आने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकती हैं पर सपनों के गोदाम की चाबी पूर्णरूपेण उनके ही हाथ में नहीं दी जा सकती...

उन्हें मेरा मूड, मेरी सहूलियत, मेरी वैयक्तिक स्वतंत्रता—सब कुछ सोच कर ही रुचिपूर्ण सुसंस्कृत व्यवहार करना सीखना होगा...

शाम को कम्पाउंड में अपने लड़के के साथ बैडमिंटन खेल कर झुटपुटा होने पर अन्दर आने लगा कि एक बहुत बड़ी घटना घटी...

मेरे मकान में घुसने की जो दो-तीन सीढ़ियाँ पत्थर की हैं, उनके दोनों ओर बरसात में रोमांचित होकर घास और अन्य प्रकार की जंगली वनस्पति उग गयी है...

एक जंगली पौधे पर दो-तीन बैंजनी फूल खिल आये थे, जैसे ताज़ी रँगी ओढ़नी सुखाते हुए रंग के दो छींटे गिर गये हों...

उन में से एक बैंजनी फूल पर एक छोटी-सी पीली तितली पंख बन्द करके बिलकुल निश्चेष्ट बैठी थी...उसके पीले पंखों के आसपास एक मख़मली हाशिया काले रंग का था...

इतनी निश्चेष्ट बैठी तितली जीवन में मैंने पहली बार देखी...लगा कि जैसे वह मरी हुई है...

मूर्ख और निरर्थक जिज्ञासा से विवश होकर उसे छुआ कि एक साथ उसके पंख खुले, भीतर से एक दूसरी तितली ठीक उसी रूप-रंग की उड़ कर विकल-सी चक्कर खाने लगी ; और पहली वाली तितली भी घास में सोयी किसी पूर्वस्मृति को मानो पुकार उठी...

मैंने उन्हें विलग कर दिया। मुझे लगा कि सुहागरात मनाती शाद्वलपुरी की राजकुमारी के शयनागार के द्वार ठोकर से खोल कर, विदेशी भाषा का एक देशी सौदागर बर्बरतापूर्वक 'घुस' गया...

और मालूम नहीं कौन बोला—'इन तितलियों की कुल उम्र ही चौबीस घण्टे की होती है'...

इस शरीर से अब उनका मिलन न होगा। शयनागार का यह आततायी इसी प्रकार पता नहीं कितने ही मिलनाकुल प्रेमियों के वियोग का कारण हुआ होगा...

—:०:—

(पृष्ठ ८ का शेषांश : आधुनिक मानव की अन्तर्चेतना)

पर्याय के पक्ष हैं इसलिए आधुनिक मानव की अन्तर्चेतना के सशक्त तत्व भी हैं। सम्भवतः इसी हेतु अनेकों का आरोप है कि आधुनिक मानव आत्महन्ता है, या अन्धकारपुरी का ऐसा पुरवासी है जो नियति के सम्मुख नग्न और विवश पड़ा है। इन्हीं लोगों का यह भी मत है कि आधुनिकता का वर्तमानयुगीन बोध एकनिष्क्रयतावादी कुंठा और नैराश्यपूर्ण विवशता का दार्शनिकीकरण मात्र है।

परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मानव इतिहास में पहली बार आधुनिक मानव ने बाह्य जगत् की सुदूर परिधियों को नाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुकने के बाद अंतर्जगत की गहराइयों में गोता लगाया है। यह एक आकस्मिकता नहीं है कि खोखली सभ्यता के पुंसत्वहीन पात्रों का साहित्य मानव-मनोविज्ञान के विकास के एक निश्चित चरण के बाद क्षितिज पर उभरा है। मनोविज्ञान वर्त्तमान की चेतना का अविभाज्य अंग है। अंतर्जगत की गुत्थियाँ सुलझ रही हैं, युगों से जमी पर्त्तें टूट रही हैं और उस टूट-चटखन की ध्वनि ही नये साहित्य में प्रतिध्वनित हो रही है। निराशा की, टूट और बिखराव की इन घड़ियों में भी हमें नहीं भूलना चाहिए कि मनोजगत भी उतना ही प्राकृतिक है जितना वाह्य जगत, और प्रकृति कभी भी निराशावादी विनाशकारी नहीं होती है। प्रकृति अपने गढ़े हुए को स्वयं तोड़ रही है परन्तु क्या इसके बिना नया सृजन संभव होगा--आज की गहरी निराशा और घृणा के यथार्थ को समझे बिना मानव नियति में से इस गन्दगी को निकालना संभव होगा ? प्रकाश सदैव अन्धकार में से जन्म लेता है, और यही कारण है कि आधुनिक मानव की अंतर्चेतना पर अनबूझ निराशा की गहरी छाया होने के उपरान्त भी वह मूल में आशावादी है। परन्तु यह आशावाद अतीत के थोथे आशावाद से भिन्न है। यह सिर्फ बाह्य और संस्थागत आडम्बरों में क्रान्ति करके ही नवयुग का अध्याय शुरू करने की बातें नहीं करता। यह मानव के अंतर को, उसकी व्यथा को एक नयी दृष्टि से देखता है :

दर्द सबको माँजता है
और, जिन्हें वह माँजता है उन्हें वह यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें :

—'अज्ञेय'

आधुनिक मानव की आस्था पीड़ा के [illegible] मानवीयकरण पर है। इस पथ पर चल कर ही वह सामने खड़े विघटन से मुक्त होने की आशा रखता है :

मैं तुम्हें बल दूँगा आशा से चलने का,
दूंगा संकेत तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचने का,
खोये की दुविधा से तुम्हें बचाऊँगा,
जीवन के राजमार्ग से तुम्हें मिलाऊँगा।
मैं अनींद पथ हूँ .
एक जागते तपस्वी-सा !

—कुँवर नारायण

आज तो युगान्तर की चेतना से अभिभूत मानव नियति के सभी दुख झेलता हुआ एक तपस्वी-सा लीन है। परन्तु कल ?

कल उगूँगा मैं !
आज तो कुछ भी नहीं हूँ
धूल, पत्ती, फूल, चिड़िया, घास, फुनगी-
आह कुछ भी तो नहीं हूँ !
कल उगूँगा मैं !

—केदारनाथ सिंह

आगत के गर्भ में छिपे कल के अंकुर में भविष्य की चेतना ही आधुनिक मानव की अन्तर्व्यथा का मूल स्रोत है और वह स्वयं सब कुछ सह कर भी इस अंकुर के विकास की सभी बाधाएँ हटा देना चाहता है? **

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ते समय कभी-कभी आपके सामने ऐसे वाक्य या वाक्यांश आ जाते हैं जिन्हें रेखांकित करने के लिए आप मजबूर हो जाते हैं। हिन्दी के नवीनतम और विशेष महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों से ऐसे रेखांकित अंश इस स्तम्भ के अन्तर्गत हर मास प्रस्तुत किये जाते हैं--स्वयं ज्ञानोदय के पाठक-पाठिकाओं द्वारा ही। सामग्री भेजते समय कृपया लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, मूल्य, पृष्ठ संख्या आदि भी लिखें।

आत्मनेपद : अज्ञेय

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

- जीवन में बहुत अकेला रहा हूँ, पर जब कहीं पहुँचा हूँ, तो पाया हूँ कि अकेला नहीं हूँ, दूसरे भी साथ आये हैं--पहुँचाने आये हैं।

- जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुँचाया जाय--यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।

- साधारण का साधारण वर्णन कविता नहीं है; कविता तभी होती है जब साधारण पहले निजी होता है और फिर, व्यक्ति में से छन कर, साधारण होता है।

- ...चरम आवश्यकता के चरम दबाव के, निर्णय करने की चरम आवश्यकता के क्षण में हर व्यक्ति अकेला होता है: और उस अकेलेपन में वह क्या करता है इसी में उसके आत्मिक धातु की कसौटी है।

- लेकिन जीवन का अनुभव अधिसंख्य या अधिमात्र का ही अनभव नहीं है--जो परिपक्वता की ओर ले जाय वही अनुभव है।

मेरे रेखांकन--(४)
विभिन्न पाठक-पाठिकाओं द्वारा प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● यह एक और प्रश्न है जिसका उत्तर नयी पीढ़ी के साहित्यकार को पाना है। वह अपनी करुणा किसको दे ? ग़रीब के वर्ग को, जो ग़रीब तो है ही ? या निम्न मध्यवर्ग को, जो ग़रीब से किसी तरह कम कष्ट में नहीं है ? या कि समूची मानवता को वह करुणा का पात्र मान ले--जो स्वयं एक ख़तरनाक सिद्धान्त हो सकता है ? या फिर वह मानवता के प्रतीक स्वयं अपने को ही करुणा का परम पात्र मान ले--जो कि पराजय की इति है !

● जब हमारा कर्ता होना ही सन्दिग्ध है तो हम उत्तम पुरुष में बात ही क्यों करें !

● समय की दूरी सभी अनुभवों को मीठा कर देती है।

● लेनिन का ही कहना था कि अधिक लोगों की समझ में आ सके, इस लोभ से सही बात को सस्ता--वल्गराइज़--नहीं करना चाहिए।

● काव्य पेड़ पर या पहाड़ पर भी हो सकता है, पर पेड़ या पहाड़ उसके विषय होंगे, वस्तु नहीं ; वस्तु जो भी होगी मानवीय ही होगी।

● मानव का जो अंश सर्वाधिक असम्पृक्त, अनासक्त, है, वही सबसे अधिक सहता है, वही सबसे अधिक तीव्रता से अपने अस्तित्व का अनुभव करता है-- वह अंश ही सबसे अधिक वह मानव है।

● क्या ये हम बीच की पीढ़ी के लोग भी ऐसे ही पड़े हैं--जिन्हें काटकर फेंका जा रहा है कि भविष्य को दावाग्नि से बचाया जा सके ?

(संकलन : श्यामविमल)

भूले बिसरे चित्र : भगवतीचरण वर्मा

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

● गुनाह को गुनाह तब तक समझा जा सकता है जब तक इंसान उस गुनाह को छिपाना चाहे। जहाँ इंसान में गुनाह को ज़ाहिर करने की हिम्मत आ गई, वहीं वह गुनाह उसके लिए गुनाह नहीं रह जाता।

● श्रद्धा और भक्ति यह तो मन की चीज़ है, प्रदर्शन से मुक्त ; पर जहाँ भगवान् ने श्रद्धा-भक्ति के पुरस्कार के रूप में वैभव दिया है, वहाँ उस वैभव का प्रदर्शन भगवान् की महत्ता को स्थापित करना है।

● भावना जब बहकती है तब कविता बन जाती है, भावना में जब संघर्ष होता है तब वहाँ दर्शन प्रकट होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● कारणों पर ध्यान मत दीजिये, कारण विगत की चीज़ है। वह कारण हमारे कार्य के समय मर चुका होता है। उन कारणों से उत्पन्न आज की स्थिति पर ध्यान दीजिये, जो स्वयं में कल के कर्मों का कारण बन जायगी।

● परिवार, प्रतिष्ठा, मान आदि चीज़ें हैं, इनके ऊपर भी कोई चीज़ है——त्याग, बलिदान आदि। जो ऐसा समझते हैं उनका मार्ग विश्वास का है। उन्हें इस जीवन की प्रचलित मान्यताओं पर इतना अधिक अविश्वास नहीं है जितना उन्हें त्याग, बलिदान, सत्य पर विश्वास है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें उन ऊपर वाली चीज़ों पर विश्वास तो दूर रहा, जिन्हें जीवन में इस मान और प्रतिष्ठा वाले मार्ग पर भी विश्वास नहीं है, उनका पथ अविश्वास का है।

(संकलन : मुकेश शर्मा)

उस रात के बाद : ग्रेहम ग्रीन : अनु० मोहन राकेश

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

● ...और अब भी स्थूल क्रॉस पर वह स्थूल शरीर लटका हुआ था। मैं सोचने लगी कि अदृश्य ईश्वर को लोग क्रॉस पर कैसे लटका सकते थे? जो अदृश्य हो उसे सुख दुख का अनुभव कैसे होगा? वह मेरी प्रार्थना सुनता है यह भी क्या मेरा अन्धविश्वास ही नहीं है? 'प्रिय ईश्वर', मैंने कहा था, जबकि मुझे उस समय कहना चाहिये था, 'प्रिय अदृश्य'। और मैंने कहा था, 'मैं तुमसे घृणा करती हूँ' परन्तु अदृश्य से घृणा कैसे की जा सकती है? मैं क्रॉस पर लटकी हुई आकृति से घृणा कर सकती थी, जो जैसे यह कह रही थी कि देखो मैंने तुम्हारे लिए कितना दुःख उठाया है.....

● कई बार आराम से सोने के बजाय बिस्तर में चादर के अनुसार टाँगे फैलाने में अधिक सुख मिलता है।

● यदि रात भर किसी के साथ रेत के टीलों की ओट में पड़ी रहूँ तो क्या तुम्हें चोट पहुँचा सकूँगी, मेरे ईश्वर? मैं कुछ ऐसा करना चाहती हूँ जिसमें मुझे सुख मिले और तुम्हें चोट पहुँचे। नहीं तो वह केवल आत्म-पीड़न ही होगा जो विश्वास का ही दूसरा नाम है। मुझ पर विश्वास करो ईश्वर, मैं तुम में विश्वास नहीं करती, अभी नहीं!

● धोखा खाया हुआ पति मज़ाक का विषय होता है, धोखा खाया हुआ प्रेमी नहीं। बल्कि वह एक सम्मानित व्यक्ति ही समझा जाता है। साहित्य भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी का पक्ष लेता है। धोखा खाए हुए प्रेमी का दुख दुख ही समझा जाता है, उपहास का विषय नहीं।

● केवल दुखान्त स्थितियाँ ही मन को नहीं कीलतीं हास्यास्पद स्थितियाँ भी एक पैने, ओछे और बेहूदा अस्त्र की तरह कई बार मन को चीर जाती हैं।

● मेरे ईश्वर, तुम जानते हो मैं पीड़ा पाने की कामना रखती हूँ, परन्तु इस समय नहीं। इस समय इसे ले लो, फिर कभी लौटा देना।

● अब मैं तुमसे अपने अन्दर का वह कुछ छीन लूँगा जिसे तुम सबसे अधिक प्यार करते हो। मुझे बताओ ईश्वर, मेरे अन्दर वह सुन्दर चीज क्या है जिससे मैं उसे सदा के लिए तुमसे छीन लूँ।

● हे ईश्वर तुमने मुझे बहुत सता लिया है और मेरा बहुत कुछ मुझसे छीन लिया है। अब मैं इतना पक चुका हूँ और इतना थक गया हूँ कि मैं प्रेम करना नहीं सीख सकता। मुझे तुम मेरे हाल पर ही छोड़ दो।

(संकलन : ज्ञान सौंकरिया)

सृजन के आयाम : ज्वाला प्रसाद खेतान

वितरक : हिन्दी प्रचारिणी पुस्तकालय, वाराणसी।

● अमेरिकी समाज का संचालन सम्भवतः फ्रॉयड का बर्बरतापूर्वक अवचेतन मस्तिष्क ही कर रहा है।

● कविता में प्रतिष्ठित युग-सत्य कवि की रागात्मक तन्मयता के अभाव में मात्र नारेबाजी का साहित्य बनता चला जायेगा।

● अन्तर्द्वन्द्वशील शक्तियाँ अपनी तीव्रता एवं अवचेतन संगतियों के कारण प्रायः स्वयं ही अपने प्रतीक चुनती हैं।

● फ्रॉयड के नाम पर अनैतिकता को ही जीवन की वांछित गति न मान कर जैनेन्द्र के चरित्र मन की विवशता को स्वीकार करते हुए उससे ऊपर उठते हैं अथवा ऊपर उठने की चेष्टा करते हैं।

● 'नदी के द्वीप' का प्रासाद तथा उसकी रेखा का सम्पूर्ण चरित्र 'सम्पर्क के क्षण' की महत्ता के आधार पर बना है।

● कलाकार अज्ञेय आज अपनी वैयक्तिकता को रस स्निग्ध कर सार्वभौम बना निर्वैयक्तिक कर देने को कटिबद्ध हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● मानवगत समस्त वेदना को मन में लिये हुए भी भारती के 'अन्धा युग' में एक क्षण को भी काव्योचित उदात्त संयम खोया नहीं है। यह तो अन्धे युग में प्रकाश ढूँढ़ने वाले कलाकार की महायात्रा की गाथा है जिसमें भारती ने न तो मार्ग की उपलब्धियों के प्रति मोह ही दिखलाया है और न कहीं थक कर घुटने ही टेके हैं। अन्धायुग मानवमन के अन्तर्गत का महाकाव्य है।

(संकलन : रामसिंह अनिल)

गुनाहों का देवता : धर्मवीर भारती

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

● अगर एक फूल के खूबसूरत होने के लिये आदमी की ज़िन्दगी में इतनी बड़ी ट्रैजेडी आना जरूरी है, तो लानत है उस फूल की खूबसूरती पर! मैं उससे नफ़रत करती हूँ। इसीलिये मैं किताबों से नफ़रत करती हूँ। एक कहानी लिखने के लिए कितनी कहानियों की ट्रैजेडी बर्दाश्त करनी होती है।

● कब, कहाँ और कैसे मन अपने को हार बैठता है, यह खुद हमें पता नहीं लगता। मालूम तब होता है जब जिसके कदम पर हमने सर रखा है वह झटके से अपना कदम घसीट ले। उस वक्त हमारी नींद टूट जाती है और तब हम जाग कर देखते हैं कि अरे हमारा सर तो किसी के कदमों पर रखा हुआ है और उसके सहारे आराम से सोते हुए हम सपना देख रहे थे कि हमारा सर कहीं झुका ही नहीं।

● अगर यह विवाह-संस्था हट जाय तो कितना अच्छा हो। पुरुष और नारी में मित्रता हो। बौद्धिक मित्रता और दिल की हमदर्दी। यह नहीं कि आदमी औरत को वासना की प्यास बुझाने का प्याला समझे और औरत आदमी को अपना मालिक। असल में बँधने के बाद ही पता नहीं क्यों सम्बन्धों में विकृति आ जाती है।

● विवाह के पहले आदमी औरत को ऊँची निगाह से देखता है, हमदर्दी और प्यार की चीज़ समझता है और विवाह के बाद सिर्फ वासना की।

● जब आदमी अपने हाथ से आँसू मोल लेता है, अपने आप दर्द का सौदा करता है, तब दर्द और आँसू तकलीफदेह नहीं लगते।

● किस लड़की के प्यार में शरीर का अंश नहीं होता? लाख प्रतिभाशालिनी लड़कियाँ हों, लेकिन अगर वे किसी को प्यार करेंगी तो उसे अपनी प्रतिभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं देंगी, अपना शरीर ही देंगी और यदि वह अस्वीकार कर दिया जाय तो शायद प्रतिहिंसा से तड़प भी उठेंगी।

●कल्पना और भावना के आधार पर अपना आदर्श लेकर चलने वाले कितने मूर्ख बने रहते हैं इस दुनिया में। (संकलन : उर्मिला मुक्तेश्वर)

टूटे हुए पर : खलील जिब्रान : अनु० माईदयाल जैन

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

● आदमी के होठों से निकले हुए शब्दों में सबसे अधिक मधुर शब्द 'माँ' है और सबसे ज़्यादा सुन्दर पुकार—"ऐ माँ।" यह छोटा-सा वाक्य अपने अर्थों की दृष्टि से बहुत विशाल है जिसमें आशा, प्रेम, कोमलता, मधुरता सब कुछ शामिल है। माँ ही दुनिया में हमारे लिए सब कुछ है। वह एकान्त में हमारी साथी, निराशा में हमारा सहारा, और कमज़ोरी में हमारी शक्ति है। वह दया, कृपा, आनन्द और वरदान का स्रोत है। इसलिए अगर किसी की माँ न रही तो वह सीना भी न रहा जिस पर वह अपना सिर टिकाता है। वह हाथ न रहे जिन्हें वह आदर से चुम्बन देता है और वह निगाहें न रहीं जो इसकी देखभाल करती हैं।

● अज्ञान बेफिक्री का पालना है और बेफिक्री सुख-चैन का बिस्तर। यह कथन उन लोगों के समीप ठीक है जो मुर्दों की तरह पैदा होते हैं और जड़ पदार्थों की तरह ज़िन्दगी व्यतीत करते हैं।

● जो आदमी अपने जीवन में चिन्ताग्रस्त न हो, जिसने निराशा के पेट में पाँव न फैलाया हो और जिसे प्रेम ने स्वप्नों के झूले न झुलाया हो, उसका पूरा जीवन, अस्तित्व रूपी पुस्तक के सादा और कोरे पन्ने से ज्यादा हैसियत नहीं रखता।

● सूर्य की गर्मी ही खेतों और बागों को जीवन दान करती है और सूर्य की गर्मी ही उन्हें मौत की नींद सुला देती है।

●सच्चा सौन्दर्य वह किरणें हैं, जो हमारी आत्मा के अत्यन्त पवित्र चश्मे से फूट कर हमारे बाहरी शरीर को इस तरह प्रकाशित कर देती हैं, जिस तरह बीज की गहराइयों से ज़िन्दगी फूटती है और वे फूल, रंग और सुगन्ध प्राप्त करते हैं।

● स्त्री क़ौम के लिए वही दर्जा रखती है जो दीपक के लिए उसकी लौ। फिर यह कैसे संभव है कि दीपक में तेल भी कम न हो और उसकी लौ भी टिमटिमाये? (संकलन : हरि प्रकाश राय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नग्मये हरम

लेखक : अयोध्याप्रसाद गोयलीय ; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; मूल्य ४.००

अयोध्याप्रसाद गोयलीय हिन्दी के उन लेखकों में हैं जिन्होंने उर्दू और हिन्दी के बीच की खाई को पाटने के लिए अभूतपूर्व प्रयत्न किये हैं। उर्दू की शाइरी और शाइरों के साथ उर्दू कविता के विषय में जो जानकारी गोयलीय के ग्रंथों से प्राप्त होती है, वह अपने में पूर्ण तथा प्रशंसनीय है। हिन्दी का साधारण पाठक भी गोयलीय की पुस्तकों के अध्ययन के पश्चात् उर्दू शाइरी की विशिष्टताओं का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उर्दू के लेखकों में जिस प्रकार जहूरबख़्श की रचनाओं में हिन्दी की विशिष्टता उभर कर आती है, उसी प्रकार गोयलीय की शैली तथा भाषा में उर्दू की रूमानियत की छाप गहरी है। 'नग्मये हरम' श्री गोयलीय की १९४० से लेकर १९६० तक की ख्यातिप्राप्त उर्दू शाइराओं की प्रसिद्ध शाइरी का संकलन है। उर्दू कविता में महिलाओं का स्थान नगण्य-सा है। जिस प्रकार हिन्दी कविता को कवियित्री समाज का योगदान मिला; कुछ वैसा उर्दू क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ता है। फिर भी १०४ शाइराओं की रचनाओं को प्रस्तुत कर लेखक ने अन्वेषण का एक सफल प्रयास किया है जो उर्दू की शाइरी के क्षेत्र में एक नयी खोज के रूप में रखा जायगा। प्रस्तुत कृति में संग्रहित प्रत्येक रचना एवं प्रत्येक शाइरा को उर्दू की श्रेष्ठ कोटि की रचनाओं एवं शाइरों की तुलना में नहीं रखा जा सकता है, किन्तु इनमें कुछ रचनायें भाव-प्रवण अवश्य हैं। हिन्दी क्षेत्र की कवियित्रियों की तरह प्रातिम न होकर भी इनकी लेखिकाओं का महत्व ऐतिहासिक है। इस दृष्टि से देखने पर 'नग्मये हरम' का महत्व न केवल श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय की कृतियों के बीच वरन् उर्दू के साहित्य-प्रेमियों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। मैं श्री गोयलीय की इस नवीन कृति की समीक्षा न कर

साहित्यार्चन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका अभिनंदन ही करना चाहता हूँ। आशा है, भविष्य में श्री गोयलीय इसी प्रकार अपने उर्दू ज्ञान का सोमरस हिन्दी संसार के समक्ष नये-नये प्याले में ढाल कर पिलाते रहेंगे। हिन्दी के उन पाठकों का जो उर्दू से सम्बन्ध नहीं रखते मार्ग-दर्शन एवं मनोरंजन ऐसी कृतियाँ करती रहेंगी, यह विश्वास सहज ही बँधता है। भारतीय ज्ञानपीठ इस प्रकार के ग्रंथों का प्रकाशन कर हिन्दी-उर्दू की सेवा का एक नया दृष्टान्त उपस्थित कर सका है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

——प्रो० कृष्णनन्दन पीयूष

लो कहानी सुनो

लेखक : अयोध्याप्रसाद गोयलीय ; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ; मूल्य : २.००

प्रस्तुत अमोल्य कृति श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय की लघु-कथाओं एवं स्मृतियों का संग्रह है। हिन्दी में इस प्रकार की लघु-कथाएँ बहुत कम लिखी गई हैं। श्री दिनकर, रावी, बैकुण्ठनाथ मेहरोत्रा, हरिशंकर परसाई इत्यादि लेखकों ने इसका प्रयास भर किया है, पर जो लघु-कथाएँ बंगला में वनफूल, परशुराम, सुबोध घोष के द्वारा लिखी गयी हैं——वैसी कथाएँ अभी तक हिन्दी को प्राप्त नहीं हो सकी हैं। श्री गोयलीय की ये कथाएँ हिन्दी की परम्परागत लघु-कथाओं की कड़ियों के रूप में ही सोची जा सकती हैं। सरल एवं प्रभावोत्पादक भाषा में जीवन के कठोर किन्तु सत्य अनुभवों की पृष्ठभूमि पर इन्हें रचा गया है। इसे पढ़ कर लेखक की जीवन्त एवं प्रभविष्णु जीवन दृष्टि की ओर ध्यान सहज ही चला जाता है। 'लो कहानी सुनो' का कथाशिल्प की विशिष्टता एवं कथा कथात्मक परिणति के लिए नहीं है, लेखक की अनुभूति की तीव्रता और सहज व्यक्ति के लिए है। गोयलीय की ये कथाएँ जीवन के विराट् सत्य की संवाहिका इसमें सन्देह नहीं।

——प्रो० कृष्णनन्दन पीयूष

ड्रामा इन माडर्न इन्डिया एन्ड दि राइटर्स रेस्पांसिब्लिटी इन रेपिड्ली चेंजिंग वर्ल्ड

संपादक : डॉ० के. आर. श्रीनिवास आयंगर ; प्रकाशक : दि पी. ई. एन. ऑल इंडिया सेंटर, थियोसोफी हाल, ४०, न्यू मेरिन लाइंस, बम्बई ; मूल्य : ५.५० रु.

प्रस्तुत अंग्रेजी पुस्तक में 'पी. ई. एन. आल इंडिया सेंटर' के चौथे बड़ौदा अधिवेशन की कार्रवाई संकलित है। आधुनिक भारत में नाटकों के उद्भव, विकास, इतिहास, विशेषताओं तथा संभावनाओं पर प्रकाश डालने के लिए प्रमुख भाषाओं के लेखकों ने अपने-अपने क्षेत्रों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। असमिया नाटक पर श्री विरिंचि कुमार बरुआ, बँगला नाटक पर श्री नरेन्द्र देव, अंग्रेजी नाटक पर श्री के. आर. श्रीनिवास आयंगर, गुजराती पर श्री गुलाबदास ब्रोकर, हिन्दी पर श्री इंदु प्रकाश पाण्डेय, कन्नड़ पर श्री वी. के. गोकक, मलयालम पर श्री नागवल्ली आर. ए. कुरुप्प, मैथिली पर श्री जयकान्त मिश्र, मराठी पर श्री ज्ञानेश्वर नादकर्णी, उड़िया पर श्री कालिंदीचरण पाणिग्रही तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबी पर श्री प्रीतम सिंह के प्रपत्र हैं। इनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि भारतीय नाटकों पर आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ा है लेकिन परंपरा की दृष्टि से वह संस्कृत नाटकों का ही मूल स्रोत है। यही नहीं, इन प्रपत्रों से यह भी प्रकट होता है कि मराठी, बँगला तथा गुजराती के नाटक अधिक अच्छे और श्रेष्ठ और अभिनेय इसलिये हो सके हैं कि उन क्षेत्रों में रंगमंच भी विकसित हुआ। इस प्रकार रंगमंच और नाटक (थियेटर और ड्रामा) का अन्योन्याश्रय भलीभाँति उभरता हुआ यह भी लक्ष्य करता है कि उत्तम नाटक ही उत्तम रंगमंच की संभावनाएँ उत्पन्न करते हैं। तथ्य एवं तत्त्व दोनों की दृष्टि से ये प्रपत्र महत्त्वपूर्ण हैं।

इसी पुस्तक में 'बदलते हुए विश्व में लेखक के उत्तरदायित्व' पर हुए सेमिनार की रिपोर्ट है। इसका उद्घाटन श्री जवाहर लाल नेहरू ने किया था। एक कलाकार, एक मनुष्य तथा एक नागरिक भी है अतः उसके लेखक होने से उसके मनुष्य और नागरिक की जिम्मेदारियाँ अधिक बढ़ जाती हैं। कुछ विद्वानों जैसे डॉ० सी. पी. रामास्वामी अय्यर और प्रो० उमाशंकर जोशी इस उत्तरदायित्व को निबाहने के लिए लेखक के अलोकप्रिय हो जाने में भी चिंतित नहीं होते और पाठक तथा मनुष्य के बीच उसके प्रेम-संबंध को ही सर्वोपरि मानते हैं। डॉ० मनसुखानी लेखक को राजनीतिक तथा पूँजीपति दोनों से आगाह करते हैं। अन्य विद्वान् लेखक को सत्यं-शिवं-सुन्दरं की साधना का संदेश देते हैं। उनके अनुसार वैज्ञानिक उत्पत्ति के बावजूद भी मनुष्य का भाव-जगत् शाश्वत है, उसमें परिवर्तन नहीं हुआ है। अतः लेखक को शाश्वत मूल्यों को खोजना चाहिए। इस प्रकार इस समस्या को दो जीवन दृष्टियों से देखा गया है।

कुल मिला कर पुस्तक महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय और संग्रहणीय है। छपाई तथा मूल्य भी उचित है।

——डॉ० रमेश कुन्तल मेघ

अश्क : एक रंगीन व्यक्तित्व

संकलन : कौशल्या अश्क; प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद; मूल्य : १०.००; पृष्ठ संख्या : ३०२

अश्क जी की ५१वीं वर्षगांठ पर हिन्दी और उर्दू के समकालीन सर्वश्रेष्ठ लेखकों द्वारा लिखे गये संस्मरणों का संकलन 'अश्क : एक रंगीन व्यक्तित्व' नाम से प्रकाशित हुआ है।

लेखकवर्ग और पाठकवर्ग, दोनों के लिए ही अश्क जी का स्वभाव और चरित्र और व्यक्तित्व, और इसीलिये कृतित्व बड़े ही विचित्र विवादों और मत-मतान्तरों का विषय, पिछले लगभग तीस वर्षों से बना रहा है, और अश्क जी के खिलाफ़, या अश्क जी की प्रशंसा में तरह-तरह की बातें कही-सुनीं और लिखी जाती रही हैं। और, यह बातें सुन कर और पढ़ कर हर आदमी को (जिसे उन्हें काफ़ी नज़दीक से देखने का अवसर नहीं मिला है) लगता रहा है कि अश्क जी का व्यक्तित्व विरोधाभासों से भरा हुआ है।

यों, अश्क जी के साहित्य से ऐसा नहीं लगता। अश्क जी का साहित्य एक घोर ईमानदार और कठोर परिश्रमी और सबल-स्वस्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शवादी लेखक का साहित्य है, जो असुन्दर से असुन्दर यथार्थ से इन्कार नहीं करता है, और दुनिया को सुन्दर से सुन्दर बनाने की कोशिश में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करता है। और तब, अश्क जी का साहित्य पढ़ कर अश्क जी के बारे में फैली अफ़वाहों और कहानियों पर विश्वास करने की इच्छा किसी को भी नहीं होती।

संस्मरणों के इस संकलन में शिवपूजन सहाय और सुमित्रानन्दन पंत, राजेन्द्र सिंह बेदी और कृष्णचन्द्र, भैरवप्रसाद गुप्त और नरेश मेहता, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव जैसे हिन्दी-उर्दू के शीर्षस्थ लेखकों के संस्मरण-लेख संकलित हैं, इन लेखकों ने उसी सहानुभूति और उसी ईमानदारी और उसी साफ़गोई से अश्क जी के बारे में लिखा है, जिस तरह स्वयं अश्क जी ने 'मंटो : मेरा दुश्मन' लिखा था।

अश्क जी के जीवन के सभी पहलुओं को इस संकलन में सदाशयता और सरसतापूर्वक पेश किया गया है, और, कहीं-कहीं बात बेरहमी तक भले ही पहुँच गयी हो, ग़लत तारीफ़ करने की कोशिश नहीं की गयी है। तीन सौ पृष्ठों में फैली हुई इस एक पुस्तक से अश्क जी के संघर्षशील व्यक्तित्व को संपूर्ण रूप से समझा जा सकता है।

राजेन्द्र यादव ने लिखा है, "……मैंने अश्क जी को अनेक रूपोंमें, अनेक मनःस्थितियों में देखा है--लेकिन जो रूप शेष सारे रूपों पर छाया रहा है, वह है एक 'यार-बाश' आदमी का रूप, और जो मनःस्थिति मुझे प्रभावित करती है--वह है उनकी अतिशय आत्म-विश्वास की मनःस्थिति! ……मैंने अश्क जी को हमेशा विराट, अनेकमुखी अनुभवों और भविष्य के मचलते सपनों के बीच की एक बेचैन कड़ी के रूप में देखा है……"

और, ख्वाज़ा अहमद अब्बास ने लिखा है "……मैंने अश्क को बहुत निकट से नहीं देखा, लेकिन उसका व्यक्तित्व उस लाइट-हाउस उस ज्योति-स्तम्भ की तरह है, जो रात के अँधेरे में बहुत दूर से भी देखा जा सकता है!"

और, इसीलिए, यह किताब 'अश्क : एक रंगीन व्यक्तित्व' एक डॉकुमेन्ट है, एक दस्तावेज़ है, जो अश्क जी के सामने ही नहीं, देश के हर लेखक के सामने एक अलबम रखता है, जिसमें एक बीमार और फिर भी स्वस्थ, एक उदास और फिर भी ज़िन्दादिल लेखक की तस्वीरें करीने से सजायी गयी हैं।

--राजकमल चौधरी

पानी के प्राचीर

लेखक : श्री रामदरश मिश्र; प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; मूल्य : ५.००

फणीश्वरनाथ 'रेणु' की प्रसिद्धि से हिन्दी के लेखक आतंकित हुए और वे आंचलिक उपन्यास लिखने की ओर कटिबद्ध हो गये। 'पानी के प्राचीर' श्री रामदरश मिश्र का नवीनतम आंचलिक उपन्यास है--गोरखपुर के सन्निकट एक अंचल से सम्बन्धित। लेखक उस अंचल के जन-जीवन, बोली-चाली, रहन-सहन और पशु-पक्षियों से गहरा लगाव रखता है और वहाँ की ज्वलंत समस्याएँ उसकी दृष्टि से नहीं छिप सकी हैं। किंतु आंचलिक उपन्यासों में इधर जो दोष आ रहा है, वही दोष इस उपन्यास में पाया गया है--कथानक और वर्णन की एकरसता। इसलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन बार-बार ऊबता रहता है। इसके साथ ही चरित्रों के बारे में एक बात मुझे महसूस हुई कि वे स्वाभाविक न होकर लेखक के मर्जीदाँ हैं। कहीं-कहीं लेखक लोक-गीतों का सम्मोह नहीं छोड़ पाया है जैसे वह लोक-गीतों के बारे में अपनी घनी जानकारी पाठकों को बताना चाहता है। भाषा सपाट और सीधी है किंतु श्री मिश्र जी का कवि स्थान-स्थान पर बार-बार जगा है, तब हमें ऐसा लगता है कि हम एक आंचलिक उपन्यास नहीं, कोई साहित्यिक रचना पढ़ रहे हैं। उपन्यास की रोचकता असंदिग्ध है।

—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

अपना घर

लेखिका : मीरा महादेवन; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य : ५.००

हज़ारों साल बाद यहूदियों का एक अपना देश बनता है—इज़रायल। संसार भर के यहूदियों के नाम एक फ़रमान निकाला जाता है कि 'वे अपनी मातृभूमि में आकर बस सकते हैं और दूध और शहद की नदियों वाले देश को फिर से अपनी जन्मभूमि के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।' यहूदियों का एक अपना इतिहास है—यंत्रणा भोगने और सहते रहने का, अत्याचार और दमन में भी अन्ततः जीवित रहने का। लेकिन ऐसा एक भी प्रमाण इतिहास में प्रस्तुत नहीं है जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि भारतीय निवासी यहूदियों पर कभी किसी ने अत्याचार किया हो।

उपन्यास की मूल संवेदना इसी विन्दु से आरंभ होती है। इज़रायल के आवाहन पर संसार भर के यहूदी 'अपनी प्यारी मातृभूमि?' में लौट रहे हैं। उन्हें अपने धर्म, अपने देश के गौरव तथा अपनी सभ्यता पर गर्व है। वहाँ उन्हें उचित काम मिल रहा है। अपने लोग मिल रहे है। अपना घर मिल रहा है। भारतीय यहूदी भी इज़रायल जा रहे हैं। उन्हीं में से एक परिवार है मेख़ायल का। मेख़ायल इज़रायल के लिए रवाना हो जाता है। अपनी प्यारी पत्नी शुलमिथ को छोड़ कर। शुलमिथ नहीं जाती। अपने इकलौते पुत्र, अपनी ननद मेज़ी और अपनी सास के साथ बम्बई की उसी पुरानी 'पीपल कोठी' में रह जाती है। उसका 'अपना घर' अपनी मातृभूमि, अपना देश—हिन्दुस्तान है—नवनिर्मित इज़रायल नहीं। इस बात पर पति-पत्नी में बहुत बहस होती है। पति अन्ततः छोड़ कर चला ही जाता है। शुलमिथ उसे हवाई अड्डे पर छोड़ कर रात के अँधेरे में अपनी उसी पीपल कोठी में लौट आती है।

लेखिका असल में इसी समस्या को 'पोज़' करके चलती है कि अन्ततः मनुष्य का 'अपना घर' कहाँ है? जिस मिट्टी से उसके तन की रेखा-रेखा निर्मित हुई है वह या कि कोई ऐतिहासिक स्थान! इस प्रश्न का समाधान अन्त में होता है शुलमिथ की मृत्यु और मेख़ाएल के पुनः प्रत्यागमन में। शुलमिथ को हिन्दुस्तान और अपने पति में से किसी एक को चुनना है। वह हिन्दुस्तान को चुनती है। लेकिन पति? जो खराश उसकी आत्मा में लग जाती है पति के चले जाने पर वह मिट नहीं पाती। फिर भी वह ज़िन्दा रहती है। अपने कर्त्तव्य और अपनी आस्था में अडिग, शान्त और चुप। वर्षों के अन्तराल में उसका इकलौता पुत्र जवान होता है और एक दिन वह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इज़रायल जाने की इज़ाजत माँगता है। शुलमिथ चुपचाप उसे भी चला जाने देती है। लेकिन अब उसके पास शक्ति नहीं है। उसकी मृत्यु पर मेख़ाएल उपस्थित है--लेकिन क्या हो सकता है।.....

कथा-पट के भीतर है मेख़ाएल और शुलमिथ का अनन्य प्रेम। उसके छोटे भाई की ट्रेजेडी। मेज़ी का निष्कपट किन्तु अभिशप्त जीवन, शुलमिथ की जातिगत भावना, संकीर्णता और अनजाने हो गये पाप का भयंकर पश्चाताप, उसके पुत्र का कोमल और सन्तुलित व्यवहार, मेज़ी का पति, इज़रायनियों के रीतिरिवाज़, बम्बई की गलियों के दृश्य, दादापन, खून-ख़राबी, क्लब, रेस्त्राँ...सभी कुछ। कथा की बुनावट में लेखिका सिद्धहस्त है और कहीं पर आवश्यकता से अधिक कुछ नहीं कहा गया है। भाषा अत्यन्त सहज, और प्रभावशाली कही जायेगी। कहीं पर भी शिल्प के प्रति अतिरिक्त मोह नहीं है न उसके प्रति अधिक सचेतनता। शायद कथा-वस्तु के अनुकूल लेखिका को यही शिल्प ठीक लगा और उसने उसकी ज़्यादा चिन्ता नहीं की। यह भी कहा जा सकता है कि कथा स्वयं अपने आग्रह से भाषा और अनुरूप शिल्प का निर्माण करती है और इस तथ्य के अनुसार यह शिल्प उचित है। बहरहाल।

हिन्दी के एक प्रसिद्ध नये कथाकार से इस उपन्यास के बारे में चर्चा छिड़ गई। उन्होंने पढ़ा था। बोले, 'मैं उस उपन्यास की एक उपमा दे सकता हूँ।--एक साफ़-सुथरा, सुरुचि-सम्पन्न ड्राइंग-रूम, जिसमें आपको ले जाकर बैठा दिया जाय और आप लौटें तो आपका चित्त प्रसन्न हो।' शायद उनका कथन अपने ढंग से ठीक था। लेकिन मेरे मन में दूसरी बात थी। 'किसी बहुत खूबसूरत चीज़ को देखकर एक (Melancholia) की अनुभूति.....।' बस। --दूधनाथ सिंह

स्वास्थ्य और स्फूर्ति के लिये

हेमो-द्राक्षो मॉल्ट!

हेमो-द्राक्षो मॉल्ट एक पाचनशक्तिको बढ़ानेवाला और भूखको उत्तेजित करनेवाला टॉनिक है। यह आपकी तंदुरूस्तीको बनाये रखता है और शारीरिक व मानसिक थकावटको दूर करता है।

हेमो-द्राक्षो मॉल्ट जीवनसत्त्वों और खनिजोंसे भरपूर टॉनिक है। खूनको बढ़ानेवाला यह ज्ञानतंतुओंके लियेभी पोषक तत्व है। वर्षों से प्रसिद्ध यह आपकी हमेशां स्वस्थ और ताज़ा रखनेमें मदद करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवोदित लेखिकाएँ अंक पर मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये। विचार मौलिक है और उसको कार्य रूप में परिणत भी सुचारु रूप से किया गया है। समय का यह तक़ाज़ा है कि अधिक से अधिक लेखिकाओं को प्रोत्साहित करके साहित्य क्षेत्र में लाया जाय। प्रति वर्ष एक न एक अंक इस प्रकार का चाहे कुछ भिन्न रूप में निकालना चाहिये। ज्ञानोदय के पास साधन हैं और उसके लिए यह कोई कठिन कार्य भी नहीं। पुनः बधाई।

——बनारसीदास चतुर्वेदी, नई दिल्ली.

ज्ञानोदय के विशेषांक अपनी निजी विशेषता रखते हैं। उसी परम्परा में यह भी अपने ढंग का सुन्दर प्रयास है। कितनी ही नई लेखिकाओं की प्रतिभा का परिचय पाकर हिन्दी के भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न होती है। आपका यह अंक नई पीढ़ी की लेखिकाओं को और भी अधिक प्रेरणादायक सिद्ध होगा।

——डॉक्टर सत्येन्द्र, आगरा.

सामग्री के संकलन और संपादन में वैचित्र्य के साथ सुरुचि का सुन्दर संयोग है। नवोदित लेखिकाओं को इससे प्रोत्साहन मिलेगा।

——डॉक्टर नगेन्द्र, दिल्ली.

नवोदित लेखिकाएँ अंक के लिए मेरी बधाई स्वीकार कीजिये। इतनी लेखिकाएँ और इतने अच्छे स्तर की हमारे बीच में हैं इसकी खोज के लिए ज्ञानोदय को प्रणाम। अनेक परिचित महत्त्वपूर्ण नाम, किन्तु छूट गये हैं—और कई बहुत पुराने अनावश्यक रूप से 'नवीन', 'नवोदित', 'नये' के साथ खामखाह जुड़ गये हैं। फिर भी अंक बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

——डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, इलाहाबाद.

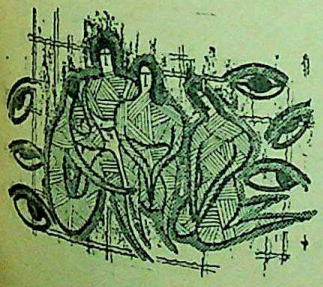

सृष्टि और दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा ही अलबेला, नया, ऐतिहासिक और सृजनात्मक अंक निकाला है--इस बार। अकृत्रिम रूप से एक वाक्य कहूँगा--हिन्दी की लेखिकाओं की यह नई एन्थोलोजी उनके मनोविज्ञान, जीवन, अन्तर्द्वन्द्व, सामाजिक स्थितियाँ तथा साहित्य में भाव तत्त्व की सुकोमल अभिव्यंजनाओं का एक मील चिह्न है।

--डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, चण्डीगढ़.

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के लिए यह अंक गौरव का विषय है। इसके पीछे जितना परिश्रम किया गया है, उसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। कुल मिला कर इस अंक का भरपूर इम्पैक्ट पड़ता है। लेखिकाओं के चित्र देकर आपने एक बड़ा भ्रम यह भी दूर कर दिया कि उस नाम की लेखिका का अस्तित्व है--अन्यथा साहित्य-जगत् में अधिकतर लोग उसे किसी लेखक का ही 'सूडो-नेम' जानते थे।

--केशवचन्द्र वर्मा, प्रयाग.

यह अंक निकाल कर आपने पुरुष वर्ग के उस अंग का मुँह बन्द-सा कर दिया है, जो ग़ैर-ज़िम्मेदारी से मुँह बिचका कर नाक-भौं सिकोड़ कर कहता चला आ रहा है--'अरे! नारियाँ क्या लिखेंगी! महादेवी इज़ ऐन एक्सीडेण्ट .....शेष तो बस--बेचारी--कुछ हैं!'

--रजनी पनिकर, नई दिल्ली.

नवोदित लेखिकाएँ सर्वथा नया विषय है और जब घोषणा पढ़ी थी, तब मुझे परिकल्पना की सफलता संदिग्ध ही लगती थी। पर, बधाई कि आपने संदिग्धता से परे सफलता पाई। हिन्दी संसार की बड़ी-बड़ी लेखिकाओं के नाम और रचना-योग के बिना ही आपने इतना बड़ा अंक निकाल लिया, यह आपकी सूझ-बूझ और परिश्रम का परिणाम है।

--भँवरमल सिंघी, कलकत्ता.

विशेषांक इतना सुन्दर और सुरुचिपू है कि देखते ही बनता है और देश के विभि भागों का खूब प्रतिनिधित्व करता है।

--सोमा वीरा, न्यूयार्क

इस सराहनीय कार्य से आपने न के हिन्दी के मूर्धन्य संपादकों की आँखें खोली अपितु वर्तमान समाज की न जाने कित गार्गियों, लीलावतियों को, जो इसके प उपेक्षित होती रही हैं, एक साथ मौक़ा दिया वे आधुनिक साहित्य के महत्तर मंच पर उ हों और अपनी प्रतिभा का विकास क आशा करती हूँ कि भारत की अन्य अन्तप्रां भाषाओं की पत्र-पत्रिकाएँ भी आपके अभिनन्दनीय आयोजन से कुछ सीख लें

--शुभाराव माया पराड़कर, वाराण

'ज्ञानोदय' में श्री माचवे का गोरी न में भारतीय नारी पढ़ा, और फिर कैम्ब्रिज विद्यार्थी-संघ की उनके पहले लेख पर क्रिया भी। मुझे भी एक उड़ता-सा वि आया था डॉक्टर माचवे को एक पत्र लि का। पर समयाभाव से टल ही गया।

आख़िर डॉक्टर माचवे कहना क्या हैं? अगर कई-कई इंच बर्फ़ में, जब कि बरसते ही जमता जा रहा हो, डॉक्टर माच साड़ी पहन कर उसमें चलना पड़ता तो तीय नारी के बारे में फ़तवे देना भूल जाते फिर हर रोज़ छः गज़ साड़ी पर इस्त्री करनी या हर साड़ी की धुलाई पर डेढ़ डालर और नाइलॉन की साड़ी, ऊनी पेटीकोट के बड़े-बड़े स्नो बूट पहन कर चलना कितना है, इसका अनुभव उन्हें नहीं है, मुझे है। तरह का कार्टून बनकर यहाँ की सारी बिता दी है। ख़ैर!

भारत आने पर यदि कभी डॉक्टर माच से भेंट हुई तो कुछ प्रश्न मुझे भी उनसे पूछने हैं

--एक भुक्तभोगिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त,
अनुपलब्ध और अप्रकाशित
सामग्री का अनुसंधान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

विशेषताएँ

उच्च कोटि का साहित्य
नयनाभिराम मुद्रण
कलापूर्ण मुखपृष्ठ
शुद्ध प्रूफ़ संशोधन
सुन्दर जिल्द
सुलभ मूल्य

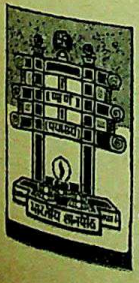

संस्थापक—साहू शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा—श्रीमती रमा जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये प्रकाशन

अंकित होने दो : अजितकुमार

प्रस्तुत कृति की विशेषता है उसका सुनिश्चित संक्रामक स्पन्दन जो न धीरे और वेग पूर्वक आता है न वातावरण में आलोड़न लाकर क्षुब्ध या स्तब्ध ही करता है, बल्कि बिलकुल घास के फूलों-सा न जाने कब और कैसे चुप-से चटक पड़ता है और कोई रौंद उसे भले दे पर आँखों से जी तक पैठ कर ज्ञान-तन्तुओं को छूता ज़रूर है। जीवन के ये सोचते और सुझाते हुए चित्र भीड़ से साधिकार भिन्न हैं; और उन पाठकों के भी उपयोग के हैं जो इन्हें केवल देखना, अर्थात् पढ़ना, चाहेंगे और उनके भी जो पढ़ कर कुछ सोचना भी चाहेंगे। मूल्य : ४.००

खुला आकाश मेरे पंख : शान्ति मेहरोत्रा

एक ऐसी कृति जो आकृति से एक बार को यदि न लुभाये पर किसी प्रेरणा पर जिसे देखें तो देखते जायें और तृप्ति और सुख की पुलक अनुभव किये बिना न रहें। अतिरिक्त विशेषता यह कि विषयवस्तु, दृष्टि एवं अभिव्यक्ति तीनों को देखते इसकी कल्पना और सृष्टि एक नारी द्वारा ही सम्भव थी जो माँ, भार्या और भगिनी भी हो और तीव्र संवेदनशील भी। पुस्तक को पढ़ कर किसी भी सुसंस्कृत पाठक को निश्चय लगेगा कि उसने इन रचनाओं में अपना ही परिवेश देखा और अपने को पहचाना भी। मूल्य : ४.५०

प्यार के बन्धन : रावी

सत्रह पत्र-कथाएँ जो सामाजिक-पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत प्रेम, मर्यादा एवं मानवीय अनुराग की माँगों और समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। अनेक प्रश्नों को इन कथाओं में स्वर मिला है जो आज के तरुण-जागृत मन में घुमड़ते हैं, और उन प्रश्नों के यथासम्भव उचित समाधान भी सुझाये गये हैं। तरुण वर्ग के लिए पुस्तक विशेष रूप से उपादेय है। मूल्य : ३.२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आँगन के पार द्वार : अज्ञेय

अज्ञेय की अन्तःसलिला का सबसे स्फीत और श्रद्धापूत प्रवाह। अपने इस संग्रह तक आते-आते अज्ञेय का काव्य निखार और गहराई के ऐसे उत्कर्ष पर पहुँचा है जिसमें भारतीय चिन्तन-परम्परा की विश्व से संयोजन की क्षमता साकार हो उठती है। इस दृष्टि से यह संग्रह हिन्दी काव्य की अद्वितीय उपलब्धि है। मूल्य ३.००

आँगन का पंछी और बनजारा मन : विद्यानिवास मिश्र

हिन्दी और सम्भवतः सभी भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य में अनूठे और बेजोड़ ललित निबन्ध। विषय, दृष्टि-भाव, शैली, भंगिमा, और स्वर : सभी का इतना सहज और प्रौढ़ समन्वय कहीं और नहीं मिलता। इनमें रंग-रंग और तड़क-भड़क के लिए स्थान नहीं है, यहाँ पार्थिव परम्परा ने आकार ग्रहण किया है। एक ओर सत्य की निरन्तरता और गतिशीलता की प्रतिष्ठापना की गयी है तो दूसरी ओर यहाँ भ्रमरानन्दी मन की उड़ान भी आयी है। यही विशेष कारण है कि पुस्तक युग और जीवन के लिए अतिरिक्त उपयोगी और आवश्यक बन गयी है। मूल्य ३.००

फिर बैतलवा डाल पर : विवेकी राय

हिन्दी में ऐसी कृतियाँ कम ही हैं जो ठेठ आज के गाँवों और वहाँ रहते-जीते असंख्य प्राणियों के जीवन और उस जीवन की क्रिया का एक्स-रे किया हुआ रूप उकेरती हों। प्रस्तुत पुस्तक की रचनाओं की यही विशेषता है। इसीलिए अच्छा हो यदि आवश्यक समझ कर इन्हें एक बार वे पढ़ें जो शहरी जीवन में जनमे और रहते आये हैं और वे भी पढ़ें जिन पर जन-जीवन को रूप और दिशा देने का दायित्व है। मूल्य ३.५०

शाइरी के नये दौर–५ : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

जमील मज़हरी, रविश सिद्दीक़ी, अफ़सर मेरठी, निहाल सेवहारवी का जीवन परिचय सहित चुना-चुना कलाम एवं विवेचना। मूल्य : ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

अपने-अपने अजनबी : अज्ञेय

केवल असाधारण नहीं, भारतीय साहित्यों में अपने ढंग का अद्वितीय उप-न्यास। मृत्यु से साक्षात्कार को विषय बनाकर जीवन और नियति का सरल मार्मिक विवेचन। मृत्यु विषयक पूर्व और पश्चिम की दृष्टियों की टकराहट, दोनों के मिलन द्वारा मानव-जीवन के एक नये आयाम का उन्मेष। मूल्य ३.००

नये रंग नये ढंग : लक्ष्मीचन्द्र जैन

हिन्दी गद्य-शैली की सर्वथा नयी रचना जिसके हर पृष्ठ पर युग की छाप और प्रतिभा की चमक अंकित है। सम्भव नहीं कि पुस्तक हाथ में लें और पढ़ कर समाप्त किये बिना रख दें। मूल्य २.००

पलासी का युद्ध : तपनमोहन चट्टोपाध्याय

देश के इतिहास को एक मोड़ देने वाले इस युद्ध और उसकी पृष्ठभूमि का सर्वप्रथम प्रामाणिक चित्रण, जो तथ्यात्मकता के बल पर इसे इतिहास-पुस्तक बनाता है और कथा-रस के कारण उपन्यास। महत्त्वपूर्ण होने से मूल बंगला पुस्तक का अँगरेज़ी अनुवाद भी हुआ। मूल्य ३.५०

हरी घाटी : रघुवंश

हिन्दी गद्य-लेखन में एक अभिनव-प्रयोग : यात्रा-डायरी-संस्मरण तीनों के तत्वों का सुखद सामंजस्य। पुस्तक में जहाँ एक ओर गहरे चिन्तन से अभिभूत क्षणों का अंकन किया गया है वहीं सामान्य दैनन्दिन घटनाएँ भी मानवीय संगति में पहचानी गयी हैं। इसी से इन अकाल्पनिक यात्रा-संस्मरणों में जितना ऊपर-ऊपर दिखता है उससे कहीं अधिक भीतर मिलेगा। मूल्य ४.५०

देशान्तर : धर्मवीर भारती

इक्कीस पाश्चात्य देशों की एक सौ इकसठ कविताओं की हिन्दी छायाएँ। मूल कविताएँ उन कवियों की हैं जो विश्व में 'आधुनिक काव्य-बोध' के निर्माता कहे जायेंगे और जो अपनी-अपनी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। हिन्दी में अपने प्रकार की सर्वप्रथम कृति। मूल्य १२.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

वेणु लो गूंजे धरा : माखनलाल चतुर्वेदी

कवि की नवीनतम कविताओं का संग्रह जो अनुभूति की उदात्तता, अभिव्यक्ति की ताज़गी, व्यापक और समर्थ जीवन-चेतना, वैष्णव आस्था और कवि की अनूठी कलात्मकता का सही परिचय देता है। मूल्य ३.००

नग़मए हरम : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ख्यातनामा समसामयिक १०४ महिलाओं की शाइरी का हिन्दी में सर्वप्रथम संग्रह जिसमें दीनो-दुनिया के अन्दाज़ ही नहीं इश्क़ो-वहदत के नशे का सुरूर भी भरपूर लहरा आया है। मूल्य ४.००

ग़ालिब : रामनाथ 'सुमन'

जितने लोकप्रिय उतने ही अज्ञात इस महाकवि की रहस्यों में छिपी ऊँचाइयों को लेखक ने अपनी परख-प्रतिभा से इस पुस्तक में पूरी तौर पर अफ़शाँ कर दिया है। कलाम-संग्रह तथा विवेचना आदि की दृष्टि से पुस्तक हिन्दी में बेजोड़ है। मूल्य ८.००

वाणी : सुमित्रानन्दन पन्त

पन्त जी की नवीनतम हृदय-स्पर्शी कविताओं का संग्रह। संग्रह की एक लम्बी कविता कवि के मार्मिक संस्मरण तथा जीवन-दर्शन सम्बन्धी होने के कारण सहज ही उनकी श्रेष्ठतम रचनाओं में से है। पन्त जी की काव्य-प्रेरणाओं को समझने और उनकी कविताओं की रस-उपलब्धि के लिए अनिवार्य। मूल्य ४.००

सागर की लहरों पर : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

यात्रा-साहित्य में एक नया मान, साहित्यकार और चिन्तक की दृष्टि से विदेशों को पाठकों के ज्ञान की परिधि में लाने का प्रथम सफल प्रयास, उपन्यास जैसी रोचक कृति। मूल्य ४.००

नाटक बहुरंगी : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

वर्तमान हिन्दी नाट्य-लेखन के प्रसिद्ध 'रंगधर्मी' नाटककार के चुने-चुने नवीनतम एकांकियों का तीसरा संग्रह जो निश्चय ही हिन्दी रंगमंच क्षेत्र की उपलब्धि का एक उज्ज्वलतम उदाहरण है। मूल्य ४.५०

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

समाजवाद : डॉ० सम्पूर्णानन्द

हिन्दी में इस विषय की सर्वप्रथम एवं एकमात्र आधिकारिक कृति जो विशिष्ट पुरस्कारों द्वारा सम्मानित हुई और जो देश में समाजवाद की स्वाभाविक प्रगति का मानदण्ड जैसी है। नया पाँचवाँ संस्करण। मूल्य ५.००

एक बूंद सहसा उछली : अज्ञेय

हिन्दी में यात्रा-साहित्य अधिक नहीं; पर यह पुस्तक भारतीय भाषाओं के यात्रा-साहित्य में भी अद्वितीय है। लेखक यहाँ युरोप के विभिन्न देशों की ही यात्रा नहीं करता, जैसे काल में भी करता है। समस्त दृश्य को वह देखता-दिखाता है, पर साथ ही चेतना से साक्षात्कार भी करता है। परिणाम यह कि प्रत्येक देश पाठक के आगे प्राणवती प्रतिमा-सा आ खड़ा होता है, और फिर उसका स्वर ही नहीं, हृदय की गति तक अजानी नहीं रहती। मूल्य ७.००

हिन्दी नव-लेखन : रामस्वरूप चतुर्वेदी

प्रस्तुत कृति मात्र समसामयिक लेखन का मूल्यांकन नहीं, वरन् उसकी रचनात्मक प्रक्रिया के समवर्त्ती रह कर उसके मूल्यों, प्रतिमानों के आकलन तथा भाव-बोध के स्तरों को उद्घाटित करने का सशक्त प्रयत्न है। इसी दृष्टि में लेखक के विवेचन का महत्त्व है, और यह दृष्टि अपने आप में नयी है। मूल्य ४.००

रूपाम्बरा : सम्पादक – अज्ञेय

खड़ी-बोली के शताधिक कवियों की प्रकृति विषयक उत्कृष्ट रचनाओं का अपूर्व संकलन जो हिन्दी कवि मानस के इस विशिष्ट अंग के क्रम-विकास का सफल और सम्पूर्ण परिचय देता है। हिन्दी काव्य की वस्तुतः स्वर्ण मंजूषा। मूल्य १२.००

कनुप्रिया : डॉ० धर्मवीर भारती

प्रस्तुत कृति का आविर्भाव साहित्य-लोक की एक विशिष्ट घटना है। इस में जहाँ बहुमुखी प्रणय के विविध आयाम प्राणों की धरा में से प्रस्फुटित हो कर प्रकृति के प्रतीकों में सार्थक तादात्म्य प्राप्त करते हैं, वहीं राधा के प्रणय को एक सर्वथा नयी दृष्टि और नया परिप्रेक्ष्य भी देते हैं। मूल्य ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आत्मनेपद : अज्ञेय

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समकालीन साहित्यकार की स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओं पर गम्भीर विचार-चिन्तन। स्वयं लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने के लिए अनिवार्य और एकमात्र पुस्तक। मूल्य ४.००

शतरंज के मोहरे : अमृतलाल नागर

यथार्थ में एक ऐतिहासिक उपन्यास जो सवा-डेढ़ सौ वर्ष पहले की अवध की नवाबी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीतियों का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करता है। चित्र इतने व्यापक और सजीव हैं कि आप विवश-से उपन्यास की रसधार में बहते चले जायेंगे, और पात्र ऐसे सच्चे और जीवन्त कि अनेक की याद आप को बार-बार हो आया करेगी। मूल्य ६.००

कर्मनाशा की हार : डॉ० शिवप्रसाद सिंह

ग्यारह कहानियाँ जिनमें से अनेक को पढ़ते बरबस लगे कि यह तो अचानक समाज के ऐसे अंगों और जीवन के ऐसे पहलुओं से साक्षात्कार हो गया जो अभी तक भूले-बिसरे ही रहते आये और जिनके अभाव में साहित्य की चित्रशाला के कितने फ्रेम सूने ही टँगे रह जाते! सभी कहानियाँ ऐसी सच्ची और सहज कि मानो वास्तव ही आँखों आगे टेलवाइज़ हो आये। मूल्य : ३.००

वीणापाणि के कम्पाउण्ड में : केशवचन्द्र वर्मा

ज़िन्दगी के हर पहलू को छूती-छेड़ती ये कविताएँ, लेखक के शब्दों में, "अच्छे आदमी को अच्छी लगेंगी और बुरे को बुरी।" बहरहाल नयी खिड़कियों से नये तमाशे दिखने की सम्भावना यहाँ अपरिमित है। मूल्य ३.००

रेडियोवार्ता शिल्प : सिद्धनाथ कुमार

रेडियो पर वार्ता प्रसारित करने वालों और प्रसारण के सुयोग को सफलता से सम्पन्न करने वालों के काम की एकमात्र कृति। मूल्य २.००

काठ की घण्टियाँ : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

अज्ञेय द्वारा सम्पादित इस एक पुस्तक में एक समूचा उपन्यास, बीस कहानियाँ और इकहत्तर कविताएँ संकलित हैं। इसके माध्यम से न केवल लेखक की बहुमुखी एवं प्राणवती प्रतिभा का परिचय मिल जाता है बल्कि पुस्तक के आस्था-स्वरों से जीवन में विश्वास भी जग उठता है। मूल्य ७.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ प्रकाशन

सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय : अर्थात् नये हिन्दी गद्य-लेखकों में जिन्हें वास्तव में 'माँडर्न' कहा जा सकता है उनमें अन्यतम। इसी से प्रस्तुत कृति का मूल्य और महत्व समझा जा सकता है। कृति में दस कहानियाँ हैं, अस्सी कविताएँ और ग्यारह लेख जो विषयवस्तु एवं शिल्प में अन्यतम हैं। मूल्य ४.००

अंगद का पाँव : श्रीलाल शुक्ल

शिष्ट और उच्चस्तरीय किन्तु पैने और मीठे-से तिलमिला देने वाले व्यंग्यात्मक निबन्ध जो सभी कहीं सराहे गये और जो मात्र मनोरंजन नहीं करते बल्कि कुछ देते और माँगते भी हैं। मूल्य २.५०

तीसरा सप्तक : सम्पादक – अज्ञेय

'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' की परम्परा में। गत पन्द्रह वर्षों की हिन्दी कविता की प्रगति जानने के लिए अनिवार्य। मूल्य ५.००

सात गीत वर्ष : डॉ० धर्मवीर भारती

'ठण्डा लोहा' और 'अन्धा युग' के बाद के सात वर्षों की चुनी-चुनी ५१ कविताओं का बहु-प्रतीक्षित संकलन, जिसमें प्रस्तावना के रूप में कवि का रचना-प्रक्रिया पर एक काव्यात्मक गद्य-खण्ड भी अतिरिक्त आकर्षण बना सम्मिलित है। मूल्य ३.५०

शह और मात : राजेन्द्र यादव

प्रतिभा-धनी लेखक की नयी उपन्यास-कृति जिसमें स्त्री के माध्यम से पुरुष-मन को समझने का सफल प्रयास किया गया है। मूल्य : ४.००

आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य : केशवचन्द्र वर्मा

हिन्दी में शिष्ट हास्य-व्यंग्य का सर्वथा अभाव न पहले था न आज है, इसका प्रमाण ही यह कृति है। मूल्य ४.००

पत्थर का लैम्प-पोस्ट : शरद देवड़ा

लेखक की बारह बहुविध कथात्मक गद्य-रचनाओं, बारह राजस्थानी विरह-चित्रों, और बारह सबरंगी कविताओं का प्रतिनिधि संकलन। कृति की विशेषता रचनाओं की मदीली गन्ध-सी ही नहीं, उनका भाव-धन भी है जो सरलमना पाठक को प्रीतिकर लगेगा। मूल्य : ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

अन्य श्रेष्ठ प्रकाशन

कहानियाँ–उपन्यास

गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
आकाश के तारे धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२.००
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
जय दोल	अज्ञेय	३.००
मेरे कथागुरु का कहना है : भाग १–२	रावी	६.००
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	३.००
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिव प्रसाद सिंह	३.००
रक्तराग	देवेशदास आई० सी० एस०	३.००
एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
सुने अँगन रस बरसे	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	५.००
ग्यारह सपनों का देश	सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
गुनाहों का देवता	डॉ. धर्मवीर भारती	३.००

इतिहास–राजनीति

हिंदी-जैन-साहित्य-परिशीलन (भाग १-२)	नेमिचन्द्र शास्त्री	५.००
एशिया की राजनीति	परदेशी	६.००

एकांकी–नाटक

कहानी कैसे बनी	कर्तार सिंह दुग्गल	२.५०
रेडियो नाट्य शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२.५०
लेखक के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३.५०
भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०
मुक्ता सरोवर	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	२.००
कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ. भ. श. उपाध्याय	३.५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी आदि

दीप जले : शंख बजे	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	३.००
द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथ सिंह विनोद	२.५०

ज्ञानोदय

जून १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित रचना, सांस्कृतिक निबन्ध आदि

ज़िन्दगी मुस्करायी	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	
ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	४.००
हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	सम्पूर्णानन्द	१.००
बाजे पायलिया के घुँघरू	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	१.००
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४.००
शरत् के नारी पात्र	रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.००
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	४.५०
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	२.५०
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	३.००
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
ठूँठा आम	डॉ भगवत शरण उपाध्याय	२.५०
सास्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवत शरण उपाध्याय	२.००
काग़ज़ की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००

दार्शनिक, आध्यात्मिक

भारतीय विचार धारा	मधुकर एम० ए०	२.५०
वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	२.००
भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००

भाषा विज्ञान

संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५.००

संगीत-प्रसाधन

ध्वनि और संगीत	ललित किशोर सिंह	४.००
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०

यात्रा-विवरण

पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००

कविताएँ

सौवण	सुमित्रानन्दन पंत	२.५०
लेखनी बेला	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
शाइरी के नये मोड़ (भाग १-२)	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	६.००
शाइरी के नये दौर (भाग १-५)	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	१५.००

सूक्तियाँ

कालिदास के सुभाषित	डॉ. भ. श. उपाध्याय	५.००
ज्ञानगंगा (भाग १–२)	नारायण प्रसाद जैन	१२.००
शरत की सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
सन्द विनोद	नारायण प्रसाद जैन	२.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उर्दू शाइरी

शेरो शाइरी	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
शेरो सुख़न (भाग १–५)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०.००

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	६.००
मिलन-यामिनी	बच्चन	४.००
धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर	३.००

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३.००
पहला कहानीकार	रावी	२.५०
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६.००

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्तिसागर	६.००
खोज की पगडंडियाँ	मुनि कान्तिसागर	४.००
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.००
कालिदास का भारत (भाग १–२)	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८.००

एकांकी - नाटक

जनम क़ैद	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३.००
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
और खाई बढ़ती गयी	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०

संस्मरण - रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक प्रकाशन

१	जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक)	३.००
२	कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्दके ग्रंथोंका संक्षिप्त सार)	२.००
३	धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित)	३.००
४	आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन)	३.७५
५	हिन्दी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	२.८८
६	महाबन्ध — भाग १–७ (कर्म सिद्धान्त का महान् ग्रन्थ)	७८.००
७	सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित)	१२.००
८	तत्त्वार्थ राजवार्तिक—भाग १, २ (संशोधित और हिन्दी सार सहित)	२४.००
९	तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित)	१६.००
१०	समय-सार — अँग्रजी (आध्यात्मिक ग्रन्थ)	८.००
११	मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक)	८.००
१२	न्यायविनिश्चय विवरण — भाग १, २ (जन दर्शन)	३०.००
१३	आदिपुराण — भाग १, २ (भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित)	१०.००
१४	उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित)	१०.००
१५	वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित)	५.००
१६	जिनसहस्र नाम (भगवान्के १००८ नामोंका अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित)	४.००
१७	केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ)	४.००
१८	करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तरेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रन्थ	०.७५
१९	नाममाला सभाष्य (कोश)	३.५०
२०	सभाष्य रत्नमंजूषा (छन्दशास्त्र)	२.००
२१	कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची	१३.००
२२	पुराणसार संग्रह — भाग १-२ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र)	४.००
२३	जातकट्ठकथा (बौद्धकथा-साहित्य)	९.००
२४	थिरुकुरल (अंग्रेजी प्रस्तावना सहित तमिल भाषा का पंचम वेद)	५.००
२५	व्रततिथि-निर्णय (विधि-विधानों एवं तिथि-निर्णय का विवेचन)	३.००
२६	जैनेन्द्रमहावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ)	१५.००
२७	मंगल-मंत्र णमोकार : एक अनुचिन्तन	२.००
२८	पद्मपुराण (भाग १, २, ३)	३०.००
२९	जीवन्धर चम्पू (हिन्दी टीका सहित)	८.००
३०	जैन धर्मामृत	३.००

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कपड़ों की धुलाई को लीजिए तो हमारा मुन्ना सात बेटों के बराबर है—इतने कपड़े मैले करता है वह! लेकिन सनलाइट के कारण मुझे कपड़े धोना बिल्कुल आसान हो गया है।
'सनलाइट जैसे शुद्ध और भरपूर झागवाले साबुन ही से कपड़ों की इतनी अच्छी धुलाई इतने आराम से हो सकती है! फिर इसमें आश्चर्य ही क्या अगर मैं अपनी सारी धुलाई सनलाइट से करती हूँ।'

नईदिल्ली की श्रीमती कमला वाधवानी कहती हैं: घरभर की धुलाई के लिए सनलाइट के समान दूसरा साबुन नहीं।

सनलाइट

आज के कपड़ों की सर्वोत्तम सुरक्षा के लिए
हिन्दुस्तान लीवर ने बनाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ीसा सिमेंट लि०

डाकघर : राजगंगपुर
जिला : सुन्दरगढ़
(उड़ीसा राज्य)

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता
डालमिया एजेंसीज़ प्रा० लि०

अब उच्चकोटि के
डालमिया ऊष्मसहों
(REFRACTORIES)
को

आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं
जो आयस (Iron), वज्रायस (Steel), और धातुकार्मिक (Metallurgical) शालाओं (Works), वज्रचूर्ण भट्ठियों (Cement Kilns), मृच्छिल्प (Ceramic) और अन्य उद्योगों के लिए अग्निमृद (Fireclay), संकजा, (Silica), भ्रज्रांगिज (Magnesite), वर्णिज (Chromite), वर्णक भ्रज्रांगिज (Chrome Magnesite) और विसंवाहक (Insulating) की सभी कोटियों में
समस्त मापों (Sizes) व जटिल आकारों (Intricate Shapes) में विभिन्न प्रकारों के समृदों (Mortars) के सहित प्राप्त हो सकते हैं।

Dr. C. Otto & Comp. G. M. B. H.

Bochum—Dahlhausen (W. Germany).

के
सहयोग और मार्गदर्शन में निर्मित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तार का पता : KOALGENTS

फ़ोन, ऑफिस : २३-२६२६
निवास-स्थान : ३५-४६००

सी० रतन एण्ड कम्पनी
१, मैंगो लेन, कलकत्ता-१

कागज़, गत्ते, कोयले एवं सिलीनियम
के
थोक विक्रेता व आयातकर्त्ता

अधिकृत वितरक :

- रोहतास इण्डस्ट्रीज़ लि०
- ओरियण्ट पेपर मिल्स लि०
- सिरपुर पेपर मिल्स लि०
- लिबिग पेपर एक्सपोर्ट कं०
  गोटेंवर्ग (स्वीडन)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपया इसे काटकर रखलें, काम आयेगी

किलो में खरीदिये

मेट्रिक बाट अब देश भर में अनिवार्य हैं ।
पुराने बाटों का प्रयोग गैर कानूनी है ।

कीमतों की परिवर्तन तालिका (सेर से किलोग्राम)

नये पैसे प्रति सेर से नये पैसे प्रति किलोग्राम

न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम	न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम	न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम	न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम	न० पै० / सेर	न० पै० / किलोग्राम
१	१	२१	२३	४१	४४	६१	६५	८१	८७
२	२	२२	२४	४२	४५	६२	६६	८२	८८
३	३	२३	२५	४३	४६	६३	६७	८३	८९
४	४	२४	२६	४४	४७	६४	६८	८४	९०
५	५	२५	२७	४५	४८	६५	६९	८५	९१
६	६	२६	२८	४६	४९	६६	७०	८६	९२
७	७	२७	२९	४७	५०	६७	७१	८७	९३
८	८	२८	३०	४८	५१	६८	७२	८८	९४
९	९	२९	३१	४९	५२	६९	७३	८९	९५
१०	११	३०	३२	५०	५३	७०	७४	९०	९६
११	१२	३१	३३	५१	५४	७१	७५	९१	९७
१२	१३	३२	३४	५२	५५	७२	७६	९२	९८
१३	१४	३३	३५	५३	५६	७३	७७	९३	९९
१४	१५	३४	३६	५४	५७	७४	७८	९४	१००
१५	१६	३५	३७	५५	५८	७५	७९	९५	१०१
१६	१७	३६	३८	५६	५९	७६	८०	९६	१०२
१७	१८	३७	३९	५७	६०	७७	८१	९७	१०३
१८	१९	३८	४०	५८	६१	७८	८२	९८	१०४
१९	२०	३९	४१	५९	६२	७९	८३	९९	१०५
२०	२१	४०	४२	६०	६३	८०	८४	१००	१०६

रुपये प्रति सेर से रुपये प्रति किलोग्राम

रु० / सेर	रु० / किलोग्राम	रु० / सेर	रु० / किलोग्राम	रु० / सेर	रु० / किलोग्राम	रु० / सेर	रु० / किलोग्राम	रु० / सेर	रु० / किलोग्राम
१	१·०७	११	११·७६	२१	२२·५१	३१	३३·२२	४१	४३·९४
२	२·१४	१२	१२·८६	२२	२३·५८	३२	३४·२९	४२	४४·०१
३	३·२२	१३	१३·९३	२३	२४·६५	३३	३५·३७	४३	४५·०८
४	४·२९	१४	१५·००	२४	२५·७२	३४	३६·४४	४४	४७·१५
५	५·३६	१५	१६·०८	२५	२६·७९	३५	३७·५१	४५	४८·२३
६	६·४३	१६	१७·१५	२६	२७·८६	३६	३८·५८	४६	४९·३०
७	७·५०	१७	१८·२२	२७	२८·९४	३७	३९·६५	४७	५०·३७
८	८·५७	१८	१९·२९	२८	३०·०१	३८	४०·७२	४८	५१·४४
९	९·६५	१९	२०·३६	२९	३१·०८	३९	४१·८०	४९	५२·५१
१०	१०·७२	२०	२१·४३	३०	३२·१५	४०	४२·८७	५०	५३·५८

१ किलोग्राम (१००० ग्राम) = ८६ तोला

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

DA 61/601

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PLEASE CONTACT FOR ALL YOUR REQUIREMENTS IN | WEIGHING, COUNTING, MEASURING AND TESTING MACHINES

The Avery Company of India Private Ltd.

REGISTERED OFFICE
AVERY HOUSE
28|2, WATERLOO STREET
P.O. Box No. 377
CALCUTTA-1.

Phone : 23-5125|8
23-8121

Gram : WEIGHING
CALCUTTA

व्ही० पी० पी० द्वारा मँगाइये।

एग्ज़ीमा औषधि--पुरानी बीमारी को शीघ्र ही दूर करने वाली गुणकारी औषधि। इससे हर प्रकार का दाद साफ हो जाता है। मूल्य ५ रु० ; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

श्वास-रोग (दमा) की औषधि--नये या पुराने दमा के मरीजों के लिए एकमात्र औषधि। मूल्य : ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

बवासीर की औषधि--कष्टदायक व्याधि के लिए उत्कृष्ट इलाज। सूजन, दर्द, ज़खम आदि का एक अकेला उपचार। खाने और लगाने की दोनों औषधियों का मूल्य : मात्र ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

पौष्टिक औषधि--शरीर की गर्मी, कड़की और अशक्तता को दूर कर शक्तिवर्द्धन करने वाली औषधि। निराश रोगी एक बार इसे आज़मा कर देखें। मूल्य : ५ रु०; डाक-व्यय: १ रु० २५ नये पैसे।

नेत्रांजन--आपकी नज़र तेजस्वी बनाता है। मूल्य : ३ रु०; डाक-व्यय : १ रु० २५ नये पैसे।

सफ़ेद दाग़ (श्वेत-कुष्ठ)--सन् १९३६ से प्रयोग में लायी जाने वाली प्रसिद्ध औषधि। भारत सरकार द्वारा रजिस्टर्ड। मूल्य : ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

वैद्य के० आर० बोरकर, 'आयुर्वेद भवन'

पोस्ट--मंगरूलपीर, जि० अकोला, (महाराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैंकिंग हमारा काम है

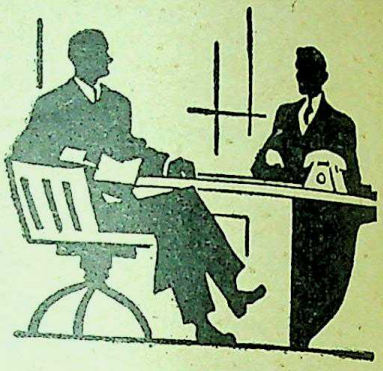

देश भर में ४२५ से अधिक कार्यालय और विदेशी विनिमय विभाग, साथ ही विशेषज्ञ कर्मचारियों के अधीन आञ्चलिक कार्यालय आपकी सेवा में संलग्न हैं।

- चालू खाता
- बचत खाता
- मुद्दती खाता
- कैश सर्टिफिकेट
- हुण्डी का बट्टा
- विदेशी विनिमय
- सेफ-डिपौजिट वौल्ट
- अग्रिम-ऋण

यात्रियों के चेक

दि पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

स्थापित सन् १८९५ ई०
प्रधान कार्यालय : नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Contact :

Siyaram Brothers

AUTOMOTIVE WHOLESALERS, IMPORTERS,
DISTRIBUTORS & AGENTS

AGENTS :
EXIDE BATTERIES

DISTRIBUTORS :
MAHLE PISTONS, GOETZE PISTON RINGS, G. E. C. ELECTRICALS, WOLF ELECT. TOOLS, GARWARE PLASTICS, SPARTON ELECTRIC HORNS, SHARCO HYDRAULIC JACKS, FINOLEX P. V. C. AUTO CABLES, WAXPOL PRODUCTS, COMET BULBS, K E W PRODUCTS, HEMCO HORN RELAYS, FENNER FAN & V BELTS.

AUTHORISED STOCKISTS :
PAYEN-TALBROS GASKETS,
BORG & BECK CLUTCH PARTS.

Phones :
225626, 221096 } Delhi
47277, 40411 } New Delhi
3817 } Jaipur

Offices :
KASHMERE GATE, DELHI-6
CONNAUGHT PLACE, NEW DELHI-1.
M. I. ROAD, JAIPUR.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Telegram : Elofhans

Telephone : 24-2789

Elof Hansson-Gothenburg

SWEDEN

At your service

PULP Department :
Chemical and Mechanical Woodpulp for Paper, Rayon and Plastics.

PAPER Department :
All qualities of Paper and Board and converted articles.

MACHINERY Department :
Equipment and accessories for Pulp and Paper manufacture.

STEEL & TOOL Department :
Iron and Steel, Wire, Wire Ropes, Swedish Hardware in general.

SUNDRIES & TECHNICAL Departments :
Engines of all descriptions, Woodworking Machinery, Machine Tools, Cement, Miscellaneous Products, Chemical Products.

With Best Compliments From

Branch Office In India :

Elof Hansson Ltd.

ADELPHI HOUSE
3, QUEEN'S ROAD,
BOMBAY-1.

BRANCHES AND AGENTS IN COUNTRIES ALL OVER THE WORLD

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकलियॅड एण्ड कंपनी लिमिटेड

मैकलियॅड हाउस,

३, नेताजी सुभाष रोड,

कलकत्ता-१

मैनेजिंग एजेन्ट्स, सेक्रेटरी और कोषाध्यक्ष

जूट मिल्स

- अलेकजेण्डर जूट मिल्स लि०
- एलायन्स जूट मिल्स कं० लि०
- नेल्लीमारला जूट मिल्स लि०
- चितावलसाह जूट मिल्स कं० लि०
- ईस्टर्न मैनूफैक्चरिंग कं० लि०
- एम्पायर जूट कं० लि०
- केलविन जूट कं० लि०
- प्रेसिडेन्सी जूट मिल्स कं० लि०
- वेवरली जूट मिल्स लि०

चाय के बगीचे

- असलूकी टी कं० लि०
- बागमारी टी कं० लि०
- भतकावा टी कं० लि०
- बोरमाह जान टी० कं० (१९३६) लि०
- डिब्रूगढ़ कं० लि०
- दैजू वेली कं० लि०
- मार्गरेट्स होप टी कं० लि०
- राजभात टी कं० लि०
- रानीचेरा टी कं० लि०
- रूपचेरा टी कं० लि०
- सुंगमा टी कं० लि०
- तेलोईजान टी कं० लि०
- तिंगामीरा टी सीड कं० लि०
- तिर्रीहन्ना कं० लि०
- तीयरून टी कं० लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price Annual Rs. 10|- per copy Re. 1|- for abroad postage extra 18 nP.

लिलि बिस्कुट कम्पनी प्राइवेट लि०, कलकत्ता-४

Licensed to post without prepayment of postage.

REGD. No. C. 4123

Published by Shri Munishwarlal for Bhartiya Jnanpith Calcutta from 18-A, Brabo
Road, Calcutta-1 and Printed by him at Binani Printers Private Ltd.,
38, Strand Road, Calcutta-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

ज्ञानोदय

जुलाई १९६२ ; मूल्य १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकलियॅड एण्ड कंपनी लिमिटेड

मैकलियॅड हाउस,

३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

मैनेजिंग एजेन्ट्स, सेक्रेटरी और कोषाध्यक्ष

जूट मिल्स

- अलेकजेण्डर जूट मिल्स लि०
- एलायन्स जूट मिल्स कं० लि०
- नेल्लीमारला जूट मिल्स लि०
- चितावलसाह जूट मिल्स कं० लि०
- ईस्टर्न मैनूफैक्चरिंग कं० लि०
- एम्पायर जूट कं० लि०
- केलविन जूट कं० लि०
- प्रेसिडेन्सी जूट मिल्स कं० लि०
- वेवरली जूट मिल्स लि०

चाय के बगीचे

- अमलूकी टी कं० लि०
- बागमारी टी कं० लि०
- भतकावा टी कं० लि०
- बोरमाह जान टी. कं. (१९३६) लि.
- डिब्रूगढ़ कं० लि०
- दैजू वेली कं० लि०
- मार्गरेट्स होप टी कं० लि०
- राजभात टी कं० लि०
- रानीचेरा टी कं० लि०
- रूपचेरा टी कं० लि०
- सुंगमा टी कं० लि०
- तेलोईजान टी कं० लि०
- तिंगामीरा टी सीड कं० लि०
- तिर्रीहन्ना कं० लि०
- तीयरून टी कं० लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21 JUN 1962

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

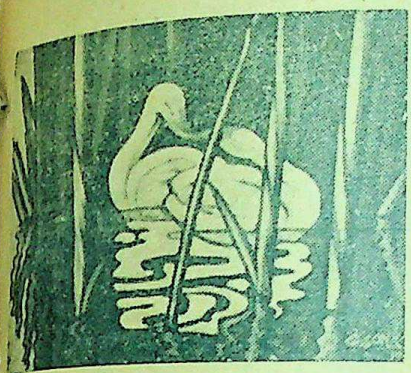

अनुक्रम

• कविताएँ

१. एक व्यक्तिगत पत्र : राजेन्द्र यादव ६
२. कुछ प्रतीकवादी कविताएँ : पृथ्वीन्द्र और देवदत्त २३
३. दो कविताएँ : राजेन्द्र अनुरागी ४८
४. चार छोटी कविताएँ : नागानन्द मुदितकण्ठ ७२
५. मेरे गीत : मंगेश पाडगाँवकर ८६

• कहानियाँ

१. कोप-भवन : भिक्खु १७
२. एक नयी गाली : रमेश बक्षी ३७
३. एक भटकी हुई गन्ध : अक्षोभ्येश्वरी प्रताप ४६
४. शगूफ़ा : वेद राही ६७
५. कलकत्ते की रौनक़—मिर्ज़ा नईम : मुहम्मद इसराईल अन्सारी ७३

• एकांकी

१. आँगन की तुलसी : कृष्णकिशोर श्रीवास्तव ५६

• सहयोगी उपन्यास

१. एक इञ्च मुस्कान (१४) : मन्नू भण्डारी ६१

ज्ञानोदय : जुलाई १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख

१. आज के युग का एक दिशाहीन विद्रोह : जॉज आरगेटा वाई गासेट ३
२. बिल्लियों का अर्थशास्त्र : शरद जोशी २८
३. विरोधाभासों का अन्यतम कलाकार : मोहन किशोर ४२
४. बापू का ख़त : जवाहरलाल के नाम : प्रह्लादनारायण मित्तल ५४
५. 'फ़िराक़' की रोमानी शायरी : शमसुल इस्लाम ७९
६. करुष जनपद : पराशर भट्टाचार्य ८३
७. प्रतिशोध और उसकी व्यापकता : दयानन्द वर्मा ८७

स्थायी स्तम्भ

१. नेपथ्य में : मुक्ता राजे १०
२. गोरी नज़रों में हम : डा० प्रभाकर माचवे ३२
३. सागर पार की हलचलें : शरद देवड़ा ११३
४. मेरे रेखांकन : विभिन्न पाठक-पाठिकाओं द्वारा प्रस्तुत १२१
५. साहित्यार्चन : पुस्तक-समीक्षा १२५
६. सृष्टि और दृष्टि : पत्र-प्रतिक्रिया १३३

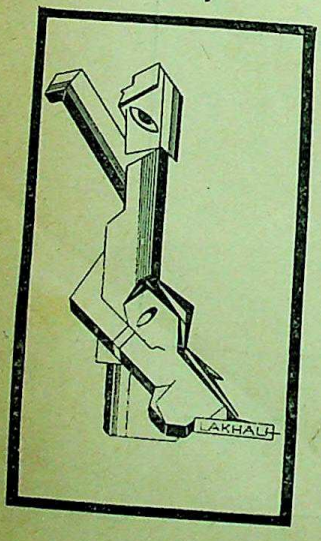

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन : शरद देवड़ा

संचालक
भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

कार्यालय
१८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१
फ़ोन : २२-६०३९

एकमात्र वितरक
बेनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह हमारे आज के युग का एक विराट सत्य है, जो अपनी समस्त आकृति-विकृति सहित हमारे सामने उपस्थित है।" . . . 'द रीवोल्ट ऑव द मासेस' पुस्तक के प्रथम अध्याय का सार-संक्षेप।

तत्कालीन यूरोप के जीवन में एक तथ्य आत्यन्तिक महत्व का है--चाहे भले के लिए हो या बुरे के लिए--और यह तथ्य है अवाम (Mass) का पूर्ण सामाजिक अधिकार पर प्रतिष्ठित हो जाना। चूँकि अवाम को अपने व्यक्तिगत जीवन-पथ की दिशा स्वयं निर्धारित नहीं करनी चाहिए, और न वे ऐसा कर ही सकते हैं, फिर समाज पर शासन करने के तो वे और भी अधिक अयोग्य हैं, इसलिए स्पष्ट है कि आज यूरोप एक ऐसे संकट के कगार पर खड़ा है जो लोगों, राष्ट्रों और समची सभ्यता को ही विनाश के गर्त में ढकेल सकता है। यह संकट है अवाम का विद्रोह।

'विद्रोह', 'अवाम', 'सामाजिक अधिकार' आदि शब्दों से आप स्थिति को उलझा न लें, इसलिए एकदम प्रारम्भ में ही आपको चेता दूँ कि इन शब्दों का यहाँ राजनीति से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। जीवन मात्र राजनीतिक ही नहीं होता, बल्कि मुख्यतः बौद्धिक, नैतिक, आर्थिक और धार्मिक होता है; वह तो वस्तुतः हमारी सब तरह की आदतों का ही एक मिला-जुला रूप होता है जिसमें हमारे पहनने-ओढ़ने और आमोद-प्रमोद के ढंग भी शामिल हैं।

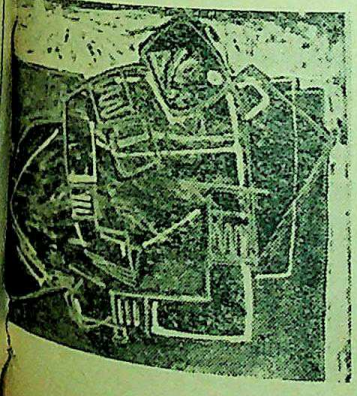

एक लेटी हुई मज़दूर औरत
चित्र : भाऊ समर्थ

आज के युग का एक दिशाहीन विद्रोह

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवाम के विद्रोह से मेरा तात्पर्य क्या है? एक बात जो हम स्पष्ट देखते हैं, यह है कि आज नगर लोगों से भरे हुए हैं, मकान किरायेदारों से, होटल ठहरने वालों से, रेलें यात्रियों से, रेस्त्राँ और कैफे ग्राहकों से, पार्क घूमने-फिरने वालों से, प्रसिद्ध डाक्टरों के दवाख़ाने मरीज़ों से, थियेटर और सिनेमाघर दर्शकों से, और समुद्र-तट स्नानार्थियों से भरे हैं। जो पहले कोई समस्या नहीं थी—यानी जगह प्राप्त करने की—वही अब रोज़मर्रा के जीवन की एक प्रमुख समस्या बन गयी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभ्यता के द्वारा जिन स्थानों और साधनों का निर्माण हुआ है उन पर आज अवाम का अधिकार है। लेकिन क्या यह वांछनीय नहीं है? क्या यही आदर्श स्थिति नहीं है? थियेटर और सिनेमाघरों में सीटें इसीलिए होती हैं कि उन पर लोग बैठ सकें, कि सिनेमाघर भरे रह सकें, और आज वे भरे ही नहीं हैं, उफन रहे हैं, और तब भी भीतर घुसने की प्रतीक्षा में भीड़ बाहर खड़ी है। हालाँकि यह बात ऊपर से देखने पर तर्क-संगत और स्वाभाविक लगती है, लेकिन इसका एक पहलू और भी है: कि ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ, यानी अब यह जो हो रहा है वह अभूतपूर्व है और यही हमारे आश्चर्य का कारण है।

तो यह भराव पहले नहीं था। फिर अब क्यों है? हमें अपने चारों ओर दिखाई देने वाली यह भीड़ शून्य में से उत्पन्न नहीं हुई है। पन्द्रह वर्ष पहले भी लोगों की संख्या इतनी ही थी। बल्कि विश्व-युद्ध (१९१४-१८ का प्रथम विश्वयुद्ध) के बाद तो इस संख्या का कुछ-न-कुछ कम ही होना स्वाभाविक लगता है। तो प्रथम महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकला कि आज से पहले इस भीड़ का निर्माण करने वाले एकाकी व्यक्तियों का तो अस्तित्व था; भीड़ का अस्तित्व नहीं था। ये व्यक्ति छोटे-छोटे समूहों में या एकाकीपन में जो जीवन जीते थे, वह एक-दूसरे से भिन्न, एकाकी और कटा हुआ होता था। हर व्यक्ति या व्यक्तियों का छोटा समूह किसी गाँव में, क़स्बे में या नगर के एक हिस्से में अपना एक अलग स्थान रखता था। अब सहसा वे एक भारी भीड़ में प्रकट हो गये हैं, और जिधर हमारी

कला का उत्कृष्ट नमूना

एक दिन सुप्रसिद्ध चित्रकार पाब्लो पिकासो के पास उनके एक मित्र तीन चित्र लेकर आये और बोले, "पिकासो, देखो तो भला, आर्ट-गैलरी वाले कहते हैं कि ये तीनों चित्र तुम्हारे हैं। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि ये तुम्हारे ही चित्र हैं!"

पिकासो ने एक चित्र को हाथ में लेकर ग़ौर से देखा और कहा, "बकवास है, मेरा नहीं हो सकता!" फिर दूसरा चित्र लेकर बोले, "यह तो और वाहियात है!" और तीसरा चित्र देखकर तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे, "क्या तमाशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि उठती है, यह भीड़ ही हमें दिखाई देती है। केवल हर दिशा में ही नहीं, बल्कि ख़ास कर उन सर्वोत्तम स्थलों में, मानव-संस्कृति के उन अपेक्षाकृत सुन्दरतर और सूक्ष्मतर क्षेत्रों में जो पहले विशिष्ट व्यक्तियों के लिए, अल्प-संख्यकों के लिए सुरक्षित रहते थे, आज वे भी इस भीड़ से आक्रान्त हैं। यह भीड़ सहसा गोचर हो उठी है, और समाज के विशिष्ट महत्व वाले स्थानों पर इसने अपना कब्ज़ा जमा लिया है। पहले, अगर इसका अस्तित्व था भी, तो उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता था, क्योंकि इसका स्थान समाज के रंगमंच की पृष्ठभूमि में था; अब यह भीड़ अग्रभाग के प्रकाश में निकल आयी है, और रंगमंच का प्रमुख पात्र बन गयी है।

भीड़ के इस तथ्य को अगर हम समाज-शास्त्रीय भाषा में तब्दील करें तो इसका विश्लेषण इस प्रकार हो सकता है। समाज के दो प्रमुख अंग होते हैं : ख़ास और अवाम। ख़ास उन व्यक्तियों या व्यक्तियों के उन समूहों को कहते हैं जो विशेष रूप से योग्यता प्राप्त और निपुण होते हैं। दूसरी ओर अवाम लोगों के उस झुण्ड को कहते हैं जो विशेष रूप से योग्यता प्राप्त या निपुण नहीं होते। तो अवाम से हमारा आशय एकान्तिक रूप से या प्रमुख रूप से 'श्रमजीवी लोगों' से ही नहीं है। अवाम यहाँ सामान्य इन्सान के लिए प्रयुक्त हुआ है।

मनोवैज्ञानिक शब्दावली में हम अवाम को परिभाषित करना चाहें तो एक व्यक्ति को लेकर आसानी से यह निर्धारित कर सकते हैं कि वह अवाम की गिनती में आता है या नहीं। अवाम उसको कहेंगे जो स्वयं पर किसी भी तरह का—अच्छा या बुरा—कोई ऐसा मूल्य स्थापित नहीं करता जिसके लिए कुछ विशिष्ट आधार की आवश्यकता होती है, बल्कि जो स्वयं को 'हर अन्य सामान्य व्यक्ति' की तरह ही महसूस करता है, और जो इसको लेकर किसी तरह की चिन्ता भी नहीं करता; बल्कि दरअसल, स्वयं को हर अन्य साधारण व्यक्ति की तरह महसूस करके सन्तुष्ट और सुखी ही होता है। एक ऐसे सामान्य मानसिक स्तरीय व्यक्ति की कल्पना करो जो विशिष्ट

?? आखिर वे लोग मुझे बदनाम करने पर क्यों तुले हुए हैं?"

तभी मित्र ने कहा, "लेकिन, पिकासो, यह तीसरा चित्र तो तुम्हारा ही है। इसे तुमने मेरे सामने बनाया था।"

"ऐसा ?" पिकासो ने साश्चर्य कहा और तीसरे चित्र को वे उलट-पुलट कर देखने लगे। कुछ क्षण बाद बोले, हूबहू, यह चित्र-कला का एक बहुत ही उत्कृष्ट नमूना है!"

—सत्यदेवनारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरातलों और कसौटियों पर स्वयं की क़ीमत जाँचने की कोशिश करता है,--स्वयं से पूछता है कि इस या उस कार्य को करने की योग्यता उसमें है या नहीं, किसी एक दिशा में उसे विशिष्टता हासिल है या नहीं--और पाता है कि उसमें ऐसी कोई विशेष योग्यता नहीं है। इस तरह का व्यक्ति महसूस करेगा कि वह मध्यम दर्जे का या साधारण स्तर का है, कि उसमें कोई विशेष योग्यता नहीं है, लेकिन वह स्वयं को अवाम की कोटि में नहीं गिनेगा।

जब हम 'चुनिन्दा ख़ास' की बात करते हैं तो 'चुनिन्दा व्यक्ति' से हमारा तात्पर्य उस अहंवादी व्यक्ति से नहीं होता जो स्वयं को अन्य सबसे उच्च समझता है, बल्कि उस व्यक्ति से होता है जो दूसरों की तुलना में स्वयं से अधिक की माँग करता है, फिर चाहे वह उन उच्चतर माँगों की पूर्ति के लिए आवश्यक तत्व स्वयं के भीतर उपस्थित न भी पाए। मानव-समाज को हम इन्हीं दो विभागों में बाँट सकते हैं : एक में वे व्यक्ति आते हैं जो स्वयं से बहुत अधिक की माँग करते हैं, और अपने लिए मुश्किलों और ज़िम्मेदारियों का पहाड़ खड़ा कर लेते हैं ; दूसरे में वे लोग आते हैं जो स्वयं से किसी विशेष बात की माँग नहीं करते, बल्कि जो जैसे हैं उसी तरह रहने में सन्तुष्ट महसूस करते हैं, और पूर्णता की ओर अग्रसर होने के लिए अपेक्षित किसी भी तरह का कोई प्रयत्न नहीं करना चाहते।

अस्तु, चुनिन्दा ख़ास और अवाम के बीच समाज का यह विभाजन वस्तुतः सामाजिक वर्गों वाला विभाजन नहीं है, मनुष्यों के वर्गों वाला विभाजन है, और 'उच्च' तथा 'निम्न' वर्गों वाले समाजवादी विभाजन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। दरअसल यह कहना अधिक सही होगा कि इन तथाकथित दोनों ही उच्च और निम्न वर्गों में अवाम और विशेष योग्यता वाले ख़ास अल्पसंख्यक पाये जाते हैं।

तो समाज में ऐसे बहुत-से कार्य हैं जो अपने विशिष्ट स्वभाव के कारण बिना विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों के पूर्ण नहीं किये जा सकते। उदाहरणार्थ : कला तथा कुछ अन्य सूक्ष्म गुणों वाले कार्यों से प्राप्त होने वाला आनन्द, सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्य, और जन-साधारण के कार्यों

कृतियों का सरताज

कलाकार रोंदी ने विक्टर ह्यूगो की मिट्टी की मूर्ति बनायी और खिड़की पर रख दी। रात को आँधी-पानी आया और मूर्ति के आसपास समुद्र और कला आदि की देवियों की जो छोटी-छोटी मूर्तियाँ थीं, वे गल कर लुगदी बन गयीं।

सुबह रोंदी अपने साथी कलाकारों को वह कृति दिखाने लाया तो मूर्ति की हालत देखकर सन्न रह गया। तभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्बन्धित राजनीतिक निर्णय आदि। पहले ये विशिष्ट कार्य विशेष रूप से योग्यता प्राप्त ख़ास व्यक्तियों द्वारा ही किये जाते थे। अवाम ने इनमें हस्तक्षेप करने की कभी कोशिश नहीं की; वे महसूस करते थे कि इस तरह के हस्तक्षेप की इच्छा ज़ाहिर करने का अर्थ यह होगा कि उनकी पूर्ति के लिए अपेक्षित विशिष्ट गुणों की भी उन्हें अनिवार्य रूप से प्राप्ति करनी होगी, और तब वे अवाम रहेंगे ही नहीं। एक स्वस्थ और गत्यात्मक समाज व्यवस्था में स्वयं के स्थान को वे बख़ूबी पहचानते थे।

शुरू में हमने जिन तथ्यों की ओर संकेत किया है अगर हम अब पुनः उन पर ग़ौर करें, तो आज अवाम का परिवर्तित रुख़ स्पष्ट हो जाएगा। वे सब तथ्य यही बताते हैं कि आज अवाम सामाजिक जीवन के अग्रभाग की ओर अग्रसर होने, स्थानों पर कब्ज़ा जमाने, सभ्यता और संस्कृति के साधनों और उपलब्धियों का उपभोग करने के लिए कृत-संकल्प है, जो पहले कुछ ख़ास अल्प-संख्यकों के लिए सुरक्षित थे। स्पष्ट है कि ये जगहें भीड़ के लिए कभी नहीं बनी थीं, क्योंकि उनके आयाम बहुत सीमित हैं, और भीड़ है कि निरन्तर बढ़ती ही जा रही है, और इस तरह हम लोग अपनी आँखों के सामने इस विराट घटना को बहुत स्पष्ट घटते हुए देख रहे हैं: अवाम बिना अवाम के घेरे से निकले, अल्पसंख्यक ख़ास को स्थानच्युत कर रहा है।

मुझे विश्वास है कि इस बात की शिकायत किसी को नहीं होगी कि पहले की अपेक्षा आज अधिक लोग अधिक मात्रा में सुखों का उपभोग कर रहे हैं; दरअसल ख़राबी यह है कि अवाम का यह क्षेत्र केवल सुखों के उपभोग तक ही सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह तत्कालीन जीवन के हर क्षेत्र की एक सामान्य बात हो गयी है। उदाहरणार्थ राजनीति के क्षेत्र को लिया जा सकता है जिसमें की गयी हाल की उद्भावनाओं का एकमात्र मक़सद यही है कि राजनीतिक क्षेत्र में भी अवाम का अधिकार स्थापित हो जाए। प्राचीन प्रजातंत्र में अनुशासन और क़ानून के प्रति सम्मान की भावना पायी जाती थी और उदार सिद्धान्तों तथा क़ानून की छत्रछाया में अल्पसंख्यक कार्य कर सकते थे। प्रजातन्त्र और क़ानून समानधर्मा थे।

उसके प्रशंसकों में से एक कहने लगा, "भई ख़ूब! कमाल की कल्पना है!—अपने समय के समाज की कीचड़ से उठा है हचूगो का व्यक्तित्व! कमाल है!"

रोंदी ने ताज्जुब से पूछा, "सच?"

"हाँ जी" वे सब एक स्वर में बोले, "यह सुन्दर कृतियों का सरताज है जनाब!"

—सत्यदेवनारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज हम एक झूठे प्रजातंत्र की विजय-पताका फहराते हुए देखते हैं जिसमें अवाम सीधा सक्रिय होता है, क़ानून की परवाह नहीं करता, और भौतिक दबाव के द्वारा अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को अल्पसंख्यकों पर थोप देता है। यह कहना सही नहीं है कि आज अवाम ने राजनीति की पेचीदगियों से ऊब कर कुछ विशिष्ट योग्यता-प्राप्त व्यक्तियों के हाथ में उसके उपयोग का अधिकार सौंप दिया है। सत्य इसके सर्वथा विपरीत है। यह स्थिति तो दरअसल पहले थी; यही असली प्रजातंत्र था। अवाम ने यह स्वीकार कर लिया था कि अपनी समस्त ख़ामियों और कमज़ोरियों के बावजूद अल्पसंख्यक ख़ास राजनीति और जनसाधारण की समस्याओं को स्वयं उसकी तुलना में अधिक अच्छी तरह समझ सकता था। इसके विपरीत अब अवाम का यह विश्वास हो चला है कि जिन विचारों की उत्पत्ति कैफ़े और रेस्त्राओं में होती है उन्हें क़ानून के द्वारा मान्यता प्राप्त करवाने का अधिकार स्वयं उसे ही है।

ठीक यही बात अन्य क्षेत्रों में भी घटित हो रही है, विशेषकर बौद्धिक क्षेत्र में। हो सकता है मेरी धारणा ग़लत हो, लेकिन मैं ऐसा सोचता हूँ कि आज का लेखक जब किसी ऐसे विषय पर लिखता है जिसका उसने गहरा अध्ययन किया है, तब भी उसे यह बात अपने दिमाग़ में रखनी पड़ती है कि जिस सामान्य पाठक को उस विषय की कोई विशेष जानकारी नहीं है, वह भी जब उसकी पुस्तक पढ़ता है तो उससे कुछ सीखने के लिए नहीं बल्कि जिन बातों के सम्बन्ध में वह लेखक से सहमत नहीं होता उन पर अपना विपरीत निर्णय देने के लिए ही ऐसा करता है। आज के युग की विशेषता ही यह है कि निम्नस्तरीय दिमाग़—यह जानते हुए भी कि वह निम्नस्तरीय है—अपने निम्नस्तरीय अधिकारों की घोषणा करने के लिए, और जहाँ कहीं संभव हो उन्हें दूसरों पर थोपने के लिए, सदा आश्वस्त और उद्धत रहता है। आज अवाम उस सब को अपने पैरों तले कुचलता जा रहा है जो भिन्न है, जो शानदार है, व्यक्तिगत है, विशेष रूप से योग्यता प्राप्त और चुनिन्दा है। कोई भी ऐसा व्यक्ति जो हरएक के सदृश नहीं है, जो हरएक की तरह ही सोचता-विचारता नहीं, सदा विनाश के ख़तरे में रहता है। और स्पष्ट है कि आज का यह 'हरएक' पहले वाला 'हरएक' नहीं है। पहले 'हरएक' का सीधासादा मतलब होता था—अवाम और विशिष्ट योग्यता प्राप्त अल्पसंख्यकों का अनुपम मिश्रण। आज 'हरएक' केवल अवाम होता है। यह हमारे आज के युग का वह विराट सत्य है जो अपनी समस्त पाशविक आकृति-विकृति सहित हमारे सामने उपस्थित है।

••

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्र यादव

प्रिय.....,
सुनो, यह प्यार....
कागज़ है

और,
मेरी ज़िन्दगी है....
एक लम्बा ख़त
जिसे हर रोज़ लिखता हूँ...

किसी दिन
झुटपुटे में
अलक-छायित....स्वप्न-गंधित
नींद के सिरहाने
छोड़ कर
चुपचाप.....
चल दूँगा.....

नाम ऊपर हो,
न हो,
पर जान लेना
ख़त तुम्हीं को था.....

...अच्छा..... आज
बस,
.....इतना ही।

तुम्हारा.....

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

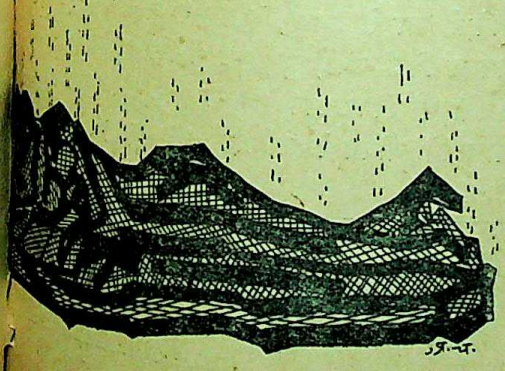

एक व्यक्तिगत पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं जानती थी कि वह मुझमें जीते हैं....केवल मुझमें। दुनिया की कोई भी वह चीज़ जिसमें वह मुझे रियलाइज़ नहीं करते, उनके लिए बेमानी होती है! तो क्या महज़ अपने किन्हीं वायवी आदर्शों के लिए मैं उन्हें एक निरर्थक-सी ज़िन्दगी जीने के लिए अकेला छोड़ दूँगी.....!

पर मैं क्या करूँ कि मेरा मन उन पर कण-कण न्योछावर होते हुए भी यही सोच पाता है कि मैं उन्हें वैसे ही सहेज लूँ जैसे माँ अपने सिसकते बच्चे को बाँहों में समेट, आँचल में दुबका कर कहती है, "मत रो मेरे बेटे, तुझे किस बात की चिन्ता है पगले, मैं जो हूँ तेरे पास!" पर यह बात भी तो केवल मन में ही दुहरा सकती हूँ। प्रत्यक्ष में उन्हें यह आश्वासन देना मैंने उन्हीं के हित के लिए ठीक नहीं समझा। मैं उनसे कुछ कह नहीं सकी, सिर्फ़ आँसू बहाती रही। अन्त में वही बोले, "कोई बात नहीं, रोओ मत मेरी पवित्रता! अब तक मैंने भगवान से यही प्रार्थना की थी कि तुम्हारे समक्ष खुल सकूं पर अब मैं उसी भगवान से यह ताकत माँगूँगा कि वह मुझे शक्ति दे कि मैं अपने प्राणपण से, अपने मन-प्राण के ज़र्रे-ज़र्रे से तुम्हें वैसा ही प्यार दे सकूं जो तुम्हें भर सके, तुम्हारे मन को अलौकिक सुख दे सके!"

बरसों बाद मैंने महसूस किया कि उस दिन कुछ था जो मुझमें मर गया! जिसे मैं फिर कभी पा नहीं सकी।

कुछ दिन बाद रिल्के को दिल के दौरे फिर पड़ने लगे। बहुत कमज़ोर हो गये थे वह। एक दिन मेरे पास कुछ कविताएं लेकर आये—'दी सेवेन पोयेम्स आफ़ दी अननोन'; सुनाते रहे। फिर थके-से मन से बोले, "अच्छी नहीं लगी?" मैंने कहा, "हाँ, शायद किसी उखड़े हुए मूड में लिखी होंगी आपने।" बस इतना सुनना था कि उनका चेहरा फक् हो गया; बोले, "व्यक्ति जब अपने जीवन के वर्तमान इष्ट के स्तर की चीज़

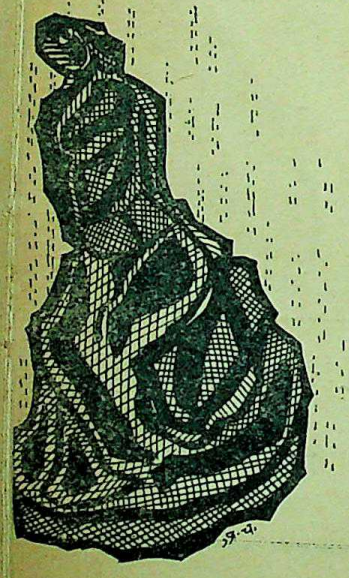

शुभागता—(३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं निर्मित कर पाता तो वह महान कलाकार तो कभी हो ही नहीं सकता।" उनका मुँह और-और पीला पड़ता गया। टूटे-टूटे स्वरों में बोले, "वेनवेनुटा, अब मेरे पास है भी क्या जिसे लेकर लिखूंगा। मेरी ताक़त....." उनका वह चेहरा देखते नहीं बनता था। मैं एकदम सहम गई। रोम-रोम जैसे पुकार उठा कि अपना सब कुछ इनके चरणों में समर्पित कर दूं। दूसरे ही क्षण विवेक ने कहा, 'इन्होंने मेरा नाम वेनवेनुटा रखा है--शुभागता--क्या मैं सचमुच इनके लिए शुभागता हूँ?' और यह विचार जागते ही मैंने साहस-पूर्वक कहा, "रेनकर, मुझे लगता है, मेरे कारण तुम्हारा समय बहुत नष्ट होता है। इसीलिये तुम कुछ लिख-पढ़ भी नहीं पाते हो। मुझे भी इन गर्मियों में कम-से-कम १०-१२ बड़े प्रोग्राम देने हैं। हम दोनों को ही अपने-अपने काम-काज में लगना चाहिए।"

"अच्छी बात है", उन्होंने कहा और हँसते हुए बोले, "अभी पहले चार दिन से शुरू करो; कल से चार दिन तक हम एक-दूसरे से मिलेंगे-बोलेंगे नहीं।"

दूसरा सारा दिन किस क़दर लम्बा होकर गुज़रा कि मैं ही जानती हूँ। हर समय रिल्के का जर्द पड़ता चेहरा आँखों में घूमता रहा। शाम को मैं एकदम मंत्र-मुग्ध-सी अपने कमरे से निकली और जिधर पाँव ले चले उधर ही चल दी। थोड़ी देर में मैंने पाया कि मैं रिल्के के कमरे के सामने हूँ और कॉल-बेल बजा रही हूँ। उन्होंने दरवाज़ा खोला, "क्या सचमुच यह तुम्हीं हो? तुमने मुझे माफ़ कर दिया?....वेनवेनुटा, मेरी प्यारी बिटिया... क्या तुम तक मेरी पुकार पहुँच गयी थी?... मैं तुम्हें पुकारे जा रहा था...पुकारे जा रहा था...."

उन्हें चक्कर-सा आ गया। एक आराम-कुर्सी पर सर थाम कर बैठ गये। मैं भी उनके पास ही नीचे ज़मीन पर बैठ गयी। हम एक-दूसरे से कुछ बोले नहीं। मैं दोनों कुहनियाँ उनके घुटनों पर रखे चुपचाप बैठी रही। चारों ओर निचाट खालीपन भाँय-भाँय कर रहा था। मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "वेनवेनुटा, सच बताओ, क्या तुम मेरी माँ, मेरी बहन, मेरी बच्ची, मेरी प्रिय, सब कुछ नहीं हो? तुम मेरे मन की असाध्य विवशता हो। मेरे जीवन के सुख और श्री का प्रतीक हो। तुम्हारे बिना....." वह आगे बोल नहीं सके, गला भर आया। बुख़ार से तपती अपनी कमज़ोर गर्म हथेलियों में उन्होंने मेरा चेहरा थाम लिया और बहुत करुणा, बहुत ममता से मेरी ओर देखते रहे। जाने क्या था उस दृष्टि में, उस क्षण विशेष में कि हम दोनों ही एकदम फूट-फूट कर रोने लगे।

शाम को उन्होंने बताया कि दुइनो से प्रिंसेज़ मेरी का ख़त आया है। उन्होंने हमदोनों को बुलाया है। दुइनो का प्राकृतिक

'नेपथ्य में' शीर्षक लेखमाला के अन्तर्गत 'शुभागता' की दो किस्तें आप ज्ञानोदय के मई और जून अंकों में पढ़ चुके हैं; इस अंक में अन्तिम किस्त प्रस्तुत की जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौन्दर्य उन्हें बहुत प्रिय है। वहाँ उन्हें बहुत-सी चीज़ें लिखने की प्रेरणा मिली है। मेरे मन में आशा जगी कि वहाँ जाकर रिल्के ज़रूर लिखने-पढ़ने में लग जायेंगे और मैं धीरे-धीरे उनकी ज़िन्दगी से ख़ुद को खींच लूँगी। मैंने दुइनो जाना स्वीकार कर लिया। रिल्के का जाने का मन नहीं था। लेकिन मेरी ज़िद मान कर तैयार हो गये। जिस दिन पेरिस से हम विदा लेने वाले थे, मैंने अपने कमरे का सब सामान पैक करके स्टेशन भेज दिया। किराये का सामान वापस कर दिया। केवल पियानो भेजना शेष था। मैंने अन्तिम बार उसे बजाना चाहा लेकिन पेरिस छोड़ते समय मन इस क़दर उदास था कि मैं बजा नहीं सकी। पियानो बन्द कर दिया और उसके अन्दर वाले ढक्कन पर लिख दिया, "भूलना मत, तुम्हें रेनर मारिया रिल्के के लिए संगीत प्रस्तुत करने का सौभाग्य मिला है।"

हम दुइनो के लिए चल दिये। वहाँ पहुँचे तो स्टेशन पर प्रिंसेज़ की गाड़ी तैयार मिली; उनकी कोठी पर पहुँचे। द्वार पर ही वह हमारी राह देख रही थीं। शुभ्र श्वेत केश, बड़ी-बड़ी चमकीली आँखें, बहुत ही मधुर दीप्तिवाला चेहरा! देखते ही मेरा मन आदर से विनत हो गया।

दुइनो-स्टेट इतनी ख़ूबसूरत होगी, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी; देखने पर ही पता चला कि रिल्के क्यों यहाँ के पत्ते-पत्ते से प्रभावित हैं। रिल्के ने वह जगहें दिखाईं जहाँ बैठ कर उन्होंने शोक-गीतों की प्रथम रूप-रेखा बनाई थी। रिल्के यहाँ आकर ख़ुश तो थे, मगर मेरी आँखों से यह भी नहीं छुपा रहा कि वह बहुत कमज़ोर-से हो गये हैं कि कब बीमार पड़ जायें, ठिकाना नहीं।

एक दिन प्रिंसेज़ मेरी ने व्हाइट-रूम में रिल्के के सम्मान में एक गोष्ठी की। तमाम राजकुमारियाँ और संभ्रांत घरानों के रिल्के के तमाम प्रशंसक उस दिन आये। खाना-पीना ख़त्म होने पर रिल्के ने हौले-से मुझसे कहा, "कुछ बजाओगी?" मैंने कहा, "लोगों का मूड तो बड़ा मौजी हो रहा है। ऐसे में भला क्या बजाऊँगी?" प्रिंसेज़ मेरी ने हमारी बात सुन ली और बोलीं, "नहीं-नहीं, तुम बजाओ, मेरी कितनी ख्वाहिश है तुम्हें सुनने की।" मेहमानों में से एक सज्जन बोले, "अरे लड़कियाँ क्या खाके पियानो बजायेंगी!" मैंने देखा रिल्के की त्योरियों में उतार-चढ़ाव आये। उन्हें बुरा लगा। मुझे लगा, अगर मैं नहीं बजाऊँगी, तो इससे वह अपनी हार मानेंगे। मैं उठी। पियानो के सामने बैठते ही मेरे

इलाज का अनोखा ढंग

एक दिन बर्नार्ड शॉ ने थोड़ी अस्वस्थता का अनुभव किया और डाक्टर को बुला भेजा। डाक्टर हाँफता हुआ आया, "ओफ़! ये सीढ़ियाँ कितनी कष्टदायक हैं। चढ़ते-चढ़ते सिर दर्द करने लगता है।"

डाक्टर को परेशान देखकर शॉ ने बड़े स्नेह से उसे आराम कुर्सी पर लिटाया और अपने बक्स से दवा निकाली, "इसे पी लीजिए! तुरन्त लाभ होगा।"

डाक्टर ने दवा पी ली। शॉ कमरे में टहलते हुए गम्भीरता पूर्वक बोले, "डाक्टर साहब! सीढ़ियों पर चढ़ने से आपकी तबीयत ख़राब नहीं हुई। वस्तुतः आप बहुत गरिष्ट वस्तुएँ खाते होंगे, फल व हरी सब्जियाँ खाइए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर व्हाइट-रूम की दीवारें नहीं थीं, छत के झाड़-फानूस नहीं थे। आये हुए तमाम मेहमानों का अस्तित्व भी मेरे लिए समाप्त हो गया था। वहाँ थे केवल हम तीन —रिल्के, पियानो और मैं!

उस शाम मैंने बीथोवेन सोनाटा ओपस १०९ बजाया। मुझे होश नहीं था जैसे! बजाती रही, बजाती रही। बहुत देर बाद जब मैंने खत्म किया तो अन्तिम स्वर छेड़कर आँखें मूंद शान्त बैठी रही। मैंने अपने कन्धों पर किसी के हाथ महसूस किये। आँखें खोलीं तो पाया, मेरे बालों में अपना चेहरा रगड़ते हुए प्रिंसेज़ मेरी कह रही हैं, "मेरी बच्ची! मेरी बच्ची!" उनकी छलछल आँखों में जाने कितनी ममता, कितनी कृतज्ञता समाई थी। मैं उठी, सादर उनके हाथ चूमे। रिल्के संगीत समाप्त होते ही उठकर चले गये थे। जिस व्यक्ति ने कहा था कि लड़कियाँ क्या खाकर बजायेंगी वह कह रहा था, "आह, ऐसा लग रहा है जैसे आज परमात्मा की आवाज़ सुन ली है।" मझे रह-रह कर लग रहा था, काश रिल्के अभी न गये होते! मेरी पीठ ठोंक दी होती या कम-से-कम शाबाशी की निगाह से देख ही लिया होता! मैंने मोमबत्ती उठाई और अपने कमरे की ओर चल दी। वह सारी प्रशंसाएँ रिल्के से दूर रह कर सुनना अच्छा नहीं लग रहा था। दरवाज़े पर पहुँचते ही किसी की छाया देख कर मैं चौंक गयी। मेरे हाथ से मोमबत्ती गिर गयी। हम एक-दूसरे के सामने थे। मेरे सिर पर ममता से हाथ फेर कर बोले, "ओह मेरी प्यार! कितना अद्भुत संगीत था आज! इंसान को अभी यह सीखना बाक़ी है कि इतने-इतने गहरे संगीत के जादू को कैसे सहा जाय! मेरी मुनिया, परमात्मा कितना प्यार करते होंगे तुझे!"

रिल्के प्रिंसेज़ मेरी से बहुत दिनों बाद मिले थे। इसलिए मैं अधिकतर अकेले ही घूमने निकल जाती ताकि उन दोनों को बातें करने का समय मिल सके। प्रिंसेज़ रिल्के से इसरार कर रही थीं कि कार्लो ज़ेनो पर तुम जो लिखना चाह रहे थे वह काम इस बार पूरा कर डालो। मैंने भी उनसे यही ज़िद की। उनका ज़्यादा-से-ज़्यादा समय पुस्तकालय में गुज़रने लगा।

हम एक-दूसरे से कभी ज़िक्र तो नहीं करते थे लेकिन मेरा मन बराबर इसी उधेड़-बुन में लगा रहता था कि कब और कैसे मैं बिना उनका मन दुखाए अपने को खींच लूं और वह भी मेरे मन

थोड़ा व्यायाम भी कीजिए। मैं आपसे दुगुनी उम्र का हूँ, फिर भी फुर्तीला और स्वस्थ हूँ।" फिर विजेता की तरह व्यंग्य-भाव से कहा, "इस सलाह के लिए आप मेरी फ़ीस पाँच शिलिंग मुझे दे दीजिए!"

"क्षमा कीजिए, मिस्टर शॉ!" डाक्टर अब काफ़ी स्वस्थ दीख रहा था, "फ़ीस तो आप मुझे दीजिए, दो पौण्ड!"

"लेकिन इलाज तो मैंने किया है?" शॉ आश्चर्य-चकित से बोले।

"नहीं", डाक्टर मुस्कराया, "मेरे इलाज करने का ढंग यही है। मैं अपने रोगी के घर पहुँच कर बीमार बन जाता हूँ और रोगी मुझसे अपनी तुलना करने में बीमारी के वहम से मुक्त हो जाता है।"

—सत्यदेवनारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इस दृढ़ता को जानते तो थे ही !

मातृत्व जिनके कण-कण में समाया था, वह प्रिंसेज़ मेरी रिल्के को इस क़दर समझती थीं कि हम दोनों के बिना कुछ बताये ही वह समझ गईं कि हमारे बीच कुछ कशमकश है। कोई अशुभ छाया हमारे इर्द-गिर्द मँडरा रही है !

यह सोचा गया कि मैं प्रिंसेज़ के साथ वेनिस जाऊँगी, फिर वहीं से अपने घर लौट जाऊँगी। रिल्के यहीं दुइनो में रह कर लिखेंगे-पढ़ेंगे। और वह शाम भी आ गई जब मुझे दुइनो से विदा लेनी थी....रिल्के से विदा लेनी थी। मन को किसी तरह क़ाबू में रख सकें, इसलिये रिल्के उस दिन सबको स्टीफ़ेन ज्यार्ज की कविताएँ सुनाते रहे थे। मेरी हिम्मत उस दिन पियानो सुनाने की नहीं हुई। किसी ने ज़ोर भी नहीं डाला।

चलते समय रिल्के ने मुझे एक पैकेट दिया। मैंने देखा, उसमें वह स्याही की सुनहरी दावात थी जिसे रिल्के ने माल्टे लिखते समय प्रयोग किया था। उसके प्रति मेरा बड़ा लगाव था, यह बात रिल्के जानते थे। ऐसे अद्‌भुत उपहार देना उन्हें ही आता था। मेरी खिड़की के पास आकर बोले, "तुमने मुझे कितना-क्या दान दिया है इसे कभी शब्द नहीं दे सकूँगा ! ईश्वर ही अपने नक्षत्रों से, अपने फूलों से तुम्हें आशीष दे देकर मेरी कृतज्ञता को शब्द दे सकता है। तुमने तो मुझे नई ज़िन्दगी बख़्शी और मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे सका सिवाय तकलीफ के....दर्द के....तुम्हारे हँसते-खेलते फूल-जैसे मन पर मैंने अपनी ज़िन्दगी की पीड़ा के पत्थर रख दिये ! मैं तुम पर केवल भार-ही-भार डालता रहा। तुम्हारी खुशियों के फूल मैंने अपनी हथेलियों में लिये कि उनमें और भी सुगन्ध भर दूँ, पर मेरे हाथों में आते ही उनकी एक-एक पाँखुरी मुर्झा गयी। मैंने तुम्हें अपनी ज़िन्दगी समर्पित कर देनी चाही, पर मेरी उस चाहत ने भी तुम्हारा बच्चा-मन दुखा दिया। मुझे माफ़ कर देना, मेरी शुभागता !"

मेरा तन-मन बाँस की टहनी-सा काँप रहा था। मेरे आँसू थम नहीं सके। सिसिकते हुए मैं सिर्फ इतना ही कह सकी, "रेनर.....रेनर, तुम क्यों नहीं समझते....क्यों नहीं समझते--मेरा एक-एक रोम हर क्षण तुम्हें धन्यवाद.....केवल धन्यवाद देता रहता है। आह, क्या मैं अपने मन की गहराई तुम्हारे सामने बिल्कुल प्रकट नहीं कर पायी हूँ....ऐसा मत करो रेनर....ऐसा मत सोचो....." ज़िन्दगी में पहली बार मैंने उस दिन उनके लिए 'तुम' शब्द का प्रयोग किया था। मेरे आँसू पोंछते हुए अपनी आवाज़ में बेइंतिहा कृतज्ञता भरते हुए बोले, "तुम देना.....केवल देना जानती हो। ओ मेरी प्यार !" और वह चले गये।

हमलोग दोपहर में वेनिस पहुँच गये।

सिगरेट का धुआँ

स्वतंत्रता के पूर्व की बात है। एक दिन देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद अपने गाँव जीरादेई जा रहे थे। स्टीमर में एक मुसाफ़िर ने सिगरेट सुलगाया। सिगरेट के धुएँ से राजेन्द्र बाबू की खाँसी उभर आयी। उन्होंने भोजपुरी में पूछा, "ई सिगरेटवा आपने न ह ?" (यह सिगरेट आपका ही है न ?)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिंसेज अपने स्थान पर चली गयीं और मैं अपने लिए नियुक्त होटल में। वहाँ जाकर मुझे मेरे बूढ़े पिता और बहन के ख़त मिले। दूसरे दिन शनिवार का दिन था। बड़े ज़ोर का तूफ़ान आया। मेरा मन रिल्के के लिए देहद चिन्तित हो उठा। हर क्षण प्रार्थना करती रही, "भनवान, उनकी रक्षा करना, बहुत कमजोर हो गये हैं वह!" दूसरे दिन सुबह मैं गिरजे में प्रार्थना करने गयी। पर मेरा मन वहाँ के संगीत के स्वरों में नहीं डूबा। रिल्के की चिन्ता ही दिमाग़ में घूमती रही। ऐसे मौसम में वह बहुत जल्दी बीमार पड़ जाते हैं।....

लौट कर आयी तो धड़कते हृदय से देखा, रिल्के आ गये हैं—बुखार में तपे हुए!

प्रिंसेज उन्हें आया देखकर खुश तो हुईं पर कुछ गंभीर भी हो आयीं। वह बीमार थे। मैंने कुछ दिनों उनसे ऐसी कोई बात नहीं की कि उनका मन दुखे। स्वस्थ होने पर मैंने उन्हें समझाया, "जब से मेरे मन ने यह निश्चय किया है कि अब मुझे आपकी ज़िन्दगी से खुद को हटा लेना है मेरा हर क्षण कितना उजाड़, कितना निरर्थक हो गया है, यह मैं ही जानती हूँ। पर यह भी निश्चित है कि मुझे कैसा ही क्यों न लगे, मैं अपना जी-जान लड़ा दूँगी इसके लिए कि आप लिखें-पढ़ें। आपका जीवन केवल मेरे और आपके लिए नहीं है, उसके अर्थों के बहुत बड़े दायरे हैं।" उस दिन बहुत बहस भी हुई। वह नाराज़ भी हो गये, पर मैं अपनी बात पर दृढ़ थी। और जानती थी कि यह दृढ़ता ही उनके लिए हितकर होगी। यह कठोरता ही उनके जीवन में मेरा नाम 'शुभागता' सार्थक करेगी। नहीं तो जिस तरह मेरा व्यक्तित्व उन पर छाता जा रहा है, यही स्थिति अगर अब बहुत दिन चलती रही तो मेरा शुभागता नाम झूठा पड़ जायगा। उनकी कला, उनका लेखन दिन-ब-दिन सशक्त और प्रकाशयुक्त होता जाय, दुनिया की कोई चीज़ उसमें बाधक न बने, (भले ही वह मेरा प्यार ही क्यों न हो) यह देखना भी तो मेरा ही कर्त्तव्य था न!

मैंने उन्हें अपना निर्णय दे दिया, "मैं अपनी बहन मेरिया के पास जा रही हूँ। तुम्हारी वह उँगलियाँ जो कलम पकड़ती हैं, उन्हें मेरे आशीष....." मेरा गला भर आया, आगे बोल नहीं सकी, रो दी! उन्होंने ही जी कड़ा करके कहा, "जाने दो प्यार! तुम शायद ठीक ही सोचती हो। पर फिर अब यह घबराहट, यह कमज़ोरी कैसी? मेरी ज़िन्दगी का तो दुख-दर्द से गठबन्धन है ही, पर मैंने कभी हार नहीं मानी है न! तुम घबराओ मत! ईश्वर तुम्हें सुखी रखे!"

दूसरे दिन भोर में मुझे लौट जाना था। रिल्के के पास से उठ कर मैं प्रिंसेज़ मेरी के पास

जवाब मिला, "मेरा नहीं तो क्या आपका है?"

देशरत्न ने कहा, "त ई धुआँवाँ भी त अपनहीं के होई, एकरो काहे न सँजो के रखत बानी? दोसरा पर काहे फेंकतानी?" (तब तो यह धुआँ भी आपका ही होगा। इसे अपने पास न रखकर, दूसरों पर क्यों फेंकते हैं?)

मुसाफ़िर ने लजाकर सिगरेट फेंक दिया।

—सत्यदेवनारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी और उनकी गोद में पड़ कर घंटों फूट-फूट कर रोती रही। वह मुझे प्यार देती रहीं, समझाती रहीं, "मेरी बहादुर बच्ची, तुम, केवल तुम ही इतना बड़ा त्याग कर सकती हो! मैं जानती हूँ तुमने उसे फूलों की राह चलने देने के लिए चुपचाप अपने पलकों से सारे काँटे बटोर लिये हैं। पर बेटी, तुम्हें यही—सिर्फ़ यही करना भी चाहिए था। रिल्के को अभी बहुत-कुछ, बहुत-कुछ करना बाकी है। उसकी क़लम पर युग-युग का अधिकार है! उसका बहुत बड़ा दायित्व है संसार के प्रति!"

उनकी बातों से मेरे मन को बहुत ताक़त मिली, बड़ा नैतिक बल मिला।

पर!.....मेरे अन्दर का सारा खून जम कर जैसे पत्थर होता जा रहा था। मैं इस समय किसी ऐसी जगह पर जाना चाह रही थी जहाँ ज़िन्दगी, दुःख-सुख सब कुछ शान्त हो, जड़ हो, निस्तब्ध हो! पर कहाँ जाऊँ? कहाँ चैन मिलेगा इस क्षण मुझे! बिना सोचे-समझे घर से निकल आई। चलती गई चलती गई.....थोड़ी देर बाद मैंने पाया, मेरे पाँव मुझे एक क़ब्रिस्तान तक ले आये हैं। होश मुझे तब आया जब एक छोटी-सी फूल बेचने वाली लड़की मेरे पास फूल लेकर आई....मैं यहाँ क्यों आयी हूँ....अरे! चारों ओर क़ब्रें ही क़ब्रें.....किसकी क़ब्र पर फूल चढ़ाने आयी हूँ....? पर लड़की बड़ी आशा से मेरी ओर हाथ बढ़ाये थी। मैंने कुछ सफ़ेद फूल ले लिये!

मैं एक-एक क़ब्र के पास से गुज़रती जा रही थी। अनेक नामों की अनेक क़ब्रें थीं। मैं हर-एक के नाम पढ़ती गई—आंद्रिया विआती—गेम्या फ़ो-ताना, अर्नेस्टो क्लाटि-सिनि....और भी पता नहीं कितने अपरिचित नाम! समझ में नहीं आ रहा था किस पर अपने फूल चढ़ाऊँ? चलते-चलते मेरी निगाह एक बड़ी उजाड़-सी बिना झड़ी-पुंछी क़ब्र की ओर गयी। शायद वहाँ महीनों से कोई नहीं आया था। उस पर धूमिल अक्षरों में लिखा था, "यहाँ मेरी प्यारी पत्नी अनन्त निद्रा में सो रही है—विवाह की रात में ही वह मुझे अकेला छोड़ गई! लड़कियो, उसकी क़ब्र पर प्रार्थना करो कि उसकी पवित्र आत्मा तुम्हें आशीष दे!

मंज़िल पर पहुँच कर दम तोड़ दिया होगा उस बेचारी ने....जाने कैसा-कैसा लगा मेरे मन को। मेरे घुटने आप-से-आप ज़मीन पर टिक गये। मेरे फूलों को यहीं चढ़ना था। कैसी विचित्र लीला है तुम्हारी भगवान!...

शाम हुई। मुझे जाने में कुछ ही घंटे शेष थे। रिल्के ने अपने मन पर काफ़ी क़ाबू पा लिया था। हम दोनों बड़ी देर तक अपने बड़े मधुर क्षण याद करते रहे। जब उनके लिखने-पढ़ने की बात मैंने छेड़ी तो बोले, "तुम्हें कैसे बतलाऊँ कि मैंने जितना जो कुछ लिखा है वह सब बेमानी है, छोटा है—उन ख़तों के मुक़ाबले में जो मैंने तुम्हें लिखे हैं.... उन ख़तों से अधिक गहरी चीज़ मैंने कभी नहीं लिखी। मेरी सारी ज़िन्दगी का सार-तत्व उन्हीं में समाया हुआ है। अब तो मुझे फिर वैसी ही बोझिल ज़िन्दगी बितानी है जैसी तुमसे मिलने के पहले बिताता था, फ़र्क केवल इतना पड़ेगा कि अब तुमसे अलगाव के दुःख को झेलने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक गहराया हुआ हूँ। तुमसे मुझे अमित शक्ति मिल चुकी है।"

(शेषांश पृष्ठ १३९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

भिक्खु

कि रंगभवन में एक कोप-भवन होता और तुम उस कोप-भवन के फूलों से आच्छादित फ़र्श पर चलते हुए आते और दीवाल पर खस के लेप से लिपट कर भी गर्म बनीं मेरी साँसों को प्यार की अंजुलि में भर कर पी लेते !...

कोप - भवन

सुप्रिया ने शाम को ठीक पाँच बजे 'फूटाघाट' पर मिलने को कहा था। 'फूटाघाट' की प्रसिद्धि एक अच्छे स्थान के रूप में न थी। उस जन-लांछित स्थान में लोग प्रायः असामाजिक सम्बन्धों के पल्लवन के लिए ही मिलते थे। पर मुझे 'फूटाघाट' अपने इस विरुद के बावजूद भी तब पृथ्वी का स्वर्ग ही नज़र आता था। कभी वहाँ कोई सुबद्ध घाट रहा होगा और घाट के ऊपर ऊँचे भव्य भवन भी, पर अब तो भवनों के खंडहर और सुबद्ध घाट के स्थान पर भग्न शिलाओं के रूप में ध्वंस का रोमांटिक इतिहास भर शेष था। गंगा कभी कुछेक दशक पूर्व जब कोप में हा-हा करती बही थी तो उसके ध्वंसकारी वीचि-विलास में मनुष्य के शाश्वत-से दीखने वाले पाषाणी निर्माण बालू की दीवाल की तरह ढह कर जलमग्न हो उठे थे। गंगा का कोप शांत हुआ। उग्र लहरें, कोमल तरंगों में लुप्त हो गईं, भँवरों के मृत्युमुख शान्त प्रवाह में अंतर्लीन हो गए, मानों तांडव से श्रांत शंकर ने अपने बिखरे जटाजूट को समेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रुद्र कोप को कालकूट की तरह कंठस्थ कर लिया हो। नीलकंठ जो ठहरे। आशुतोष जो हुए।

फूटाघाट का इतिहास जो भी रहा हो, तब तो मैं सुप्रिया से मिलने जा रहा था। पहुँचने में मुझे विलंब हो गया था। जब पहुँचा तो उस ध्वस्त घाट के ऊँचे-नीचे स्थलों में सुप्रिया कहीं दिखाई नहीं दी। आश्विन की गंगा गीले चिकुर-पाश को निचोड़ती-सी सद्यःस्नाता सुन्दरी-सी काम्य दीख रही थी। उसकी धारा के विभक्त हो जाने से उभरे बालुई टापू सद्यःस्नाता के सबसे उन्मादक अंग का ही प्रतीक बन रहे थे। पाट सिमट कर कटि-सा क्षीण हो गया था। पार बालू और जल के बीच में गंगागोले सूखी काई-से लिपटे जैसे किसी अघोरी की साधना-भूमि का संकेत थे। उनसे कुछ आगे मुक्तापूर्ण-से रेतीले प्रसार में उगे कास शरद के सुहास-से फूले थे। अपने पाँखों को कस कर समेटे धवल बगुला-पाँति पास ही तीरस्थ थी--दूर झुके हुए क्षितिज के मुकुट-सी सुशोभित। हिमालय की शृंखलाएँ विपुला पृथ्वी के प्रसार की सीमा बनी खड़ी थीं। पर मैं एक क्षण भी तो उस विराट सौन्दर्य के मुक्त प्रसार में रम न सका। मुझे तो अपनी सुप्रिया की तलाश थी, जो जाने किस भग्नशिला की ओट में बैठी मुझे कोस रही थी।

कुछ ही क्षणों में सुप्रिया को मैंने खोज ही निकाला था। काल के परिमाण में कुछ ही क्षण होने पर भी अनुभूति में अनंत-से जान पड़े थे। सुप्रिया एक भारी शिला से पीठ लगाए बैठी थी। उसकी एक वेणी गोद में गुंजलक बनाये थी तो दूसरी पीछे एक

अन्तिम परीक्षा

स्थविर श्रेष्ठ मृत्युशैय्या पर लेटे थे। पास ही बैठे उनके परमप्रिय शिष्य युवान उदास-से गुरु के बीमार मुख को देख रहे थे। गुरु का अमूल्य अंतिम उपदेश सुनने के लिये हज़ारों शिष्य आकुल मन-नयन लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। वातावरण में एक उदास शांति व्याप्त थी, सघन, श्वेत और मौन। स्थविरश्रेष्ठ ने लेटे-ही-लेटे धीमे स्वर से कहा, 'आयुष्मान युवान!'

'गुरुदेव?'

'मेरी शैय्या के पास आओ। अंतिम बार तुम्हारी परीक्षा ले लूं।'

'मैं पास ही बैठा हूँ गुरुदेव।' और युवान जिज्ञासा लिये अपने स्थान पर खड़े हो गये। गुरुदेव ने अपना प्रथम प्रश्न किया, 'तुम तो भिक्षु हो चुके युवान! फिर भी कभी-कभी अपने पुराने गाँव हो आया करते हो। गाँव की सीमा पर पहुँच कर गाड़ी पर सवार ही रहते हो या उतर जाया करते हो?'

'उतर जाया करता हूँ गुरुदेव।'

'क्यों उतर जाया करते हो?'

'मुझे माँ का स्नेह प्राप्त है, आचार्य।'

'ऐसा सभी के साथ होता है, और वे सभी तुम्हारे बन्धु हैं, इसे याद रखना।'

युवान ने श्रद्धा से माथा नत कर लिया। सभी शिष्यों ने उनका अनुकरण किया। गुरुदेव ने अपना दूसरा प्रश्न किया, 'यात्रा के समय यदि कोई अपशकुन हो जाये, तो अवश्य रुक जाना चाहिये, क्यों?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुकीले पत्थर पर बिसूरती-सी पड़ी थी। सुप्रिया के घुटनों के पास में ही एक गड्ढे में जल भरा था, जिसमें उसकी आँखें प्रतिच्छायित हो पातीं तो अवश्य ही नन्हीं मछलियों का भ्रम पैदा कर देतीं। सुप्रिया ने अवश्य ही मुझे मेरी पदचाप से जान लिया होगा। मेरा सुपर्ण! सबोधन भी सुन लिया होगा। पर बनी रही अनजान ही। उसकी इस असह्य समाधि को तोड़ने के लिए मैंने जलगर्त में एक छोटा-सा पत्थर डाल दिया जो उस गोष्पद सिन्धु में अचानक तूफ़ान पैदा करके उसी के तल में समाधिस्थ हो गया था।

सुप्रिया ने मेरी ओर देखे बिना ही तिक्तता से कहा था--तो तुम आ गये! बज गए पाँच तुम्हारी घड़ी में?

मैंने उसके पास बैठ कर अपराधी के स्वर में सफ़ाई दी--तुम जानती हो कि मेरे पास घड़ी नहीं है!

मेरी इच्छा हो रही थी कि उस नुकीले पत्थर पर रूठी पड़ी उसकी बाम वेणी को अपनी अंजलि में भर कर किसी कोमल स्थान पर स्थापित कर दूँ। पर मेरी यह इच्छा असमर्थ ही बनी रही। सुप्रिया कह रही थी--घड़ी न होने पर तुम जल्दी भी तो आ सकते थे। पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि तुम समय से आ

'नहीं आचार्य, ऐसा नहीं। पुरानी हो जाने से ही कोई प्रथा प्रामाणिक और श्रेष्ठ मान ली जाये, धरम श्रेष्ठ शाक्यमुनि ने ऐसा नहीं कहा है।'

स्थविरश्रेष्ठ गंभीर हो गये। उन्होंने एक श्लोक दुहराया--'फुट्ठस्स लोकधम्मेहि चित्तं यस्स न कम्पति, असोकं विरजं खेमं एतं मंगलमुत्तमं'--(जिसका चित्त लोकधर्म से विचलित नहीं होता, वह निःशोक, निर्मल तथा निर्भय रहता है--यह उत्तम मंगल है।)

हज़ारों मुख ने इस महामंगल सुत्त को गंभीर स्वर से दुहराया। अबतक स्थविरश्रेष्ठ उठ बैठे थे। उन्होंने अपना तीसरा और अंतिम प्रश्न बड़े ही नाटकीय ढंग से किया। अपना पोपला मुख खोल कर उन्होंने युवान से पूछा, 'देख तो, मेरी जीभ है या लुप्त हो गई?'

आश्चर्य के साथ युवान ने कहा, 'है तो, लुप्त कहाँ हुई!'

'और मेरे दाँत?'

'वे तो कब के न रहे!'

'क्यों नहीं रहे वे?'

कुछ सोचकर युवान ने उत्तर दिया, 'जीभ अकेली होकर भी नरम है, इसी से नहीं टूटती वह, और उठती जवानी में ही चू जाने वाले दाँत कठोर और अभिमानी होते हैं, भंते!' और गुरुदेव का उदास मुख डूबते सूर्य की लाली से आलोकित हो गया--'अब तुम्हें किसी भी उपदेश की आवश्यकता नहीं रही, मेरे प्रिय पुत्र!' और एक बार अपने स्थविर के खाली सिंहासन की ओर देखकर उन्होंने सामने बैठे अपने हज़ारों शिष्यों से कहा, 'प्रिय पुत्रो, आज से स्थविर युवान ही आप सभी को उपदेश किया करेंगे, यही मेरी इच्छा है।'

और उन्होंने अपनी अन्तिम त्रिरत्न-वंदना आरंभ कर दी 'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।'

फिर हज़ारों मुख ने दुहराया--नमो तस्स भगवतो अरहतो...

--सोमदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सको, इसलिए क्या तुम्हें घड़ी भी मैं उपहार में दे दूं ?

स्वर के तीखेपन ने मुझे इतना विचलित न किया था, जितना कि बात के व्यंग ने। पर अपराधी तो मैं था ही, अतः स्वयं को उस प्रहार का पात्र मान कर मनुहार ही की—सुपी, तुम क्रोध में और भी मनोहर हो उठती हो। हालाँकि मैं तुम्हारे मुखड़े को देख नहीं पा रहा, फिर भी कह सकता हूँ कि तुम्हारे रक्त-रेखा से होठ लाइटर की नन्ही लपट-से लहक रहे होंगे। कवि प्रसाद के 'नीलम चषक'-सी तुम्हारी आँखें दुर्वासा के हवनकुंड की तरह रोष के अग्निधूम-से अंतरिक्ष को कज्जलित कर रही होंगी। सुपी, मेरी सुपी, और तुम्हारे मन में घूर्णित आक्रोश तुम्हारी नाभि से ऊपर किन्तु ग्रीवा से निम्नतर प्रदेश को जीवनजयी अंधड़ से भर रहा होगा।

मुझे याद है, खूब याद है, मैंने चतुर नायक की वाग्मिता से भर कर कुछ ऐसे ही शब्दों से उसके हिमीभूत मान को गरम आँसुओं की-सी तरलता दे दी थी। मेरी सुपी तत्काल ही मेरे कंधों पर झुक आई थी। उसकी बिसूरती वेणी मेरी दक्षिण भुजा से लिपट गई थी और वह सुबकती हुई कह रही थी—तुम बहुत ही बुरे हो ! इतने बुरे कि मेरे प्राण ले लोगे।

मैंने कृतार्थ भाव से उसकी दूसरी वेणी को अपने गले में लपेटते हुए कहा था—मेरी सुपी, तुम्हारे मान-अभिमान के ये क्षण मेरे सुख के चरम क्षण हैं। तुम सदा ऐसी ही मानिनी बने रहना। विवाह के बाद मैं कालिदास के यक्ष के भवन से भी मनोहर एक भवन बनाऊँगा। उस भवन का मनोहरतम कक्ष होगा...कोप-भवन। मेरी सुपी, मेरी रानी, हर संध्या के उपरान्त, हर सुख-रात्रि के पूर्व तुम मान करके उस कोप-भवन में चली जाया करना। तब मैं सेवकों, परिचरों से पूछता, हर कोने, हर कक्ष में ढूंढ़ता, यह जानते हुए भी कि तुम मात्र कोप-भवन में होगी, हर देहरी-आँगन को टोहता, तुम्हारे पास पहुँच जाया करूँगा। मेरे उस कोप-भवन में महाकवि की कल्पना से भी सुन्दर सेज पर तुम फूलों की ढेरी-सी पड़ी रहना। अपनी वेणियों को खोल कर पीठ पर ऐसे फहरा लेना कि आँचल अनपेक्षित हो उठे। उस कोप-भवन के गवाक्षों से चोर की तरह घुसी चाँद की किरणें उस चिकुर जाल में प्रवेश करके तुम्हारी पीठ के तिल को छू न पाएं। और प्रिय, उस कोप-भवन की कुट्टिम भूमि फूलों से लदी होगी। भित्तियों पर उशीर का वही लेपन होगा जो कालिदास की शकुंतला ने विरह-ताप में अपने वक्ष पर किया होगा। और छत पर वे सब मणि-माणिक्य झूल रहे होंगे जो कौस्तुभ मणि की चोरी से लांछित उस कौस्तुभधारी को भी न मिले होंगे। सच कहता हूँ, सुपी, मेरे बार-बार प्रणय-निवेदन, मान-मनुहार पर भी न मानना जब तक कि मैं नायिका-भेद और अलंकार-शास्त्र के अपने समस्त पांडित्य का खोखलापन प्रदर्शित कर तुम्हारे चरणों में ही न गिर पड़ूं। और तब भी तुम कुछ बोलना मत, केवल अपने केशों को समेट लेना। तब तुम्हारे अंगों की ज्योति मणि-माणिक्यों को ज्योतित कर कक्ष के अन्धकार को गवाक्षों से बाहर ढकेल मुझे विश्वास दिलायेगी कि मेरे कभी न किये गये अपराध को भी क्षमा मिली....

यह सब पुरानी बात है। महीना आश्विन का ही था। सर्वत्र गुलाबी सर्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में खिलती हुई रामलीला की लहर बच्चों और स्त्रियों में अपनी मधुर प्रतिक्रिया भर रही थी। मैं कुर्सी पर बैठा कोई काव्य पढ़ रहा था और मेरी बच्ची 'सु' (मैं उसे जाने किस अज्ञात आग्रह से श्रीमती जी के विरोध पर भी मात्र 'सु' ही कहता हूँ) मेरे पाँवों के नीचे बिछे कालीन पर बैठी चारों ओर बिखरी चित्रमयी पुस्तकों और खिलौनों में मगन थी। अचानक ही उसे पिछली रात की रामलीला याद आ गई और कह बैठी.—

पापा, कैकेयी बहुत बुरी थी न? राजा दशरथ ने भला कोप-भवन क्यों बनवाया? पापा, तुम कभी कोप-भवन न बनवाना।

उसके इन शब्दों ने मुझे मेरे वर्तमान से धकेल कर दूर कहीं बिसर चुके अतीत में भेज दिया और मुझे लगा कि मैं उस अतीय साँझ को अपने बचपन के उस 'घूघाट' पर, जहाँ अब शायद कोई मनहूस-सा बाँध बँध गया होगा, जा पहुँचा हूँ। वही शीत जलधारा। वही उरोजों-से उन्मुक्त वायु। भूरे गंगागोले, सफ़ेद कास, सघन हरित-पर्वत-प्रसार। भग्न शिलाओं से घिरी मेरी सुपी। (ओः 'सु' तो अब भी मेरे पास है) उसका वह मान? कोप-भवन का मेरा वह स्वप्न? हाँ स्वप्न ही तो जो अल्पजीवी भी न हुआ। मेरी सुपी ने ही जिसे क्षण भर में ध्वस्त कर दिया था। मेरे कंधे से सिर उठा कर उसने कठोर दृष्टि से भी कठोर वाणी में कहा था—मेरे वाक्-शूर प्रिय, कोप-भवन न बनवा कर एक हाथ-घड़ी, सस्ती चाहो तो जेब घड़ी, और भी सस्ती चाहो तो दीवाल-घड़ी ही ले लेना। तब मुझे प्रतीक्षा तो न करनी होगी। तुम्हें मुझे मनाने के लिए शब्द-माया का तो सहारा न लेना पड़ेगा।

तब मुझे लगा था कि जिस सुबद्ध घाट पर मैं खड़ा था, वह आज ही टूटा है। आज पहली बार उसके तीर के भवन धराशायी हुए हैं। आज ही मेरे चारों ओर बिखरी शिलाओं के कलेजे में दरारों के घाव पड़े हैं। आज ही सागर सूख कर गोष्पद हो गया है। आज ही गंगा का आषाढ़ी यौवन असौजी शिथिलता में बदला है। और ये टापू सुन्दरी के उरोजों-से नहीं, सुन्दर त्वचा के घिनौने घाव-से हैं। सुपी ने मेरी ग़रीबी के अभिमान को चोट पहुँचायी थी। सुप्रिया धनिक की पुत्री जो थी। मैंने सोचा था कि जिस वर्ग की भूमि में मैं अपने प्यार के पादप को रोप रहा हूँ, उसमें बोए अशोक कभी फूलते ही नहीं, उसमें लगे आम कभी बौराते ही नहीं, उसमें उगी रात की रानी कभी गंधाती ही नहीं। और तभी मैंने अनुभव किया था कि मेरे और सुपी के बीच में बहती हुई यह ग़रीबी की गंगा, कभी नहीं सूखेगी, पुण्यमयी जो ठहरी।

बस उसके बाद मैं सुपी से कभी नहीं मिला। अपने बचपन के उस तीर्थ में मैं कभी नहीं लौटा। मैंने अपने जीवन को अर्थाय अर्पित कर दिया था। और आज मेरे चारों ओर यह जो बिखरा हुआ वैभव है, यह उस दिन के एक निर्धन की ही प्रतिक्रिया है जो लाखों-करोड़ों में कभी एक बार इतने गर्व, मान के साथ सफल होती है।

पर मैं असफल ही रहा। मैं उठ कर अपने सोने वाले कमरे की गोडरेज अलमारी के पास गया। खोला। चमड़े के आवरण में रखा एक पत्र निकाला। सुरक्षा में भी शीर्ण पत्र। पढ़ा..."तो तुम्हारा स्वप्न सफल हुआ। अपने पति से सुना है कि तुम कोई रंग-भवन बनवा रहे हो। तो तुम्हें

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद दिला दूं उस स्वप्न की। अपने उस रंग-भवन में एक कोप-भवन भी बनवाना। वैसे ही गवाक्षों वाला, जिनसे चाँद-सितारों की किरणें चोरी-चोरी घुस सकें। वैसे ही मोज़ेक फ्लोर वाला। और वैसी ही हीरे-मोतियों से टकी, छतवाला। और तुम मुझे अधिकार दोगे तो मैं एक दिन उसी कोप-भवन में मान का अभिनय करना चाहूँगी। तुम फूलों से ढके फ़र्श पर चलते हुए आना और दीवाल पर लगे ख़स के लेप से लिपट कर भी गर्म बनीं मेरी साँसों को प्यार की अँजुलि में भर कर पी लेना। करोगे न ऐसा ही ?

—तुम्हारी सुपी।"

पुनश्च के बाद लिखा था :

"मेरे पति ही तुम्हारे कान्ट्रैक्टर हैं। मैंने कल ही जाना कि तुम्हीं इस भावी रंग-भवन के स्वामी हो। सुनो, मैं भी अब किसी की स्वामिनी हूँ। मेरे बच्चे भी हुए...एक, दो, तीन। पर जीवित कोई नहीं। वैसे कमी कुछ नहीं। फिर भी ख़ाली हूँ। बस एक सपने के सहारे, या कि एक व्यर्थ हो चुकी कल्पना के सहारे जी रही हूँ...यही कि एक कोप-भवन होता, और कोई मेरे मान को जीतने के लिए चरणों में अपना सिर रख देता। पर भला संभव है यह ? जिसने यह स्वप्न दिखाया, उसी ने मेरा मान न रखा। एक ज़रा-सी बात से चुटीला होकर वह भाग खड़ा हुआ। उसी दिन मैंने जाना कि धनी से निर्धन का अहंकार बड़ा होता है। कारण कि उसके पास यही जो होता है। पर अब तो तुम सब कुछ के स्वामी हो। अब क्या फिर से मेरा न्याय कर सकोगे ? हाँ, मेरा रोष-मान अब भी चलता है, पर डाइनिंग-टेबुल पर, या बेड-रूम में। पर सही शब्द उसके लिए है....कलह।"

मैं उस पत्र का उत्तर तक न दे सका था। बस इसी इच्छा के साथ बुझता रहा कि मेरा एक रंग-भवन होता। उसमें एक कोप-भवन होता। उसमें फूलों की ढेरी-सी मान-भरी सुपी होती।

मैं पत्र समाप्त कर ही पाया था कि दूसरे कमरे से मेरी 'सु' बुला रही थी—पापा, इधर आओ न !

इक़बाल की रूह

सरदार जाफ़री तक़रीर बड़े धड़ल्ले की करते हैं। किसी साहित्य-समारोह में इक़बाल की शायरी पर तक़रीर करते हुए जब वे कहने लगे—"इक़बाल दरअसल इश्तराक़ी (साम्यवादी) शायर थे !" तो सभा में बैठे किसी मर्द-मोमिन ने चिल्लाकर कहा, "जाफ़री साहब ! आप यह क्या कुफ़्र फ़रमा रहे हैं ? शायरे-मशरिक़ और इश्तराक़ीयत ! लाहौल-विला ! आप अपनी इस ख़ुराफ़ात से इक़बाल की रूह को तकलीफ़ पहुंचा रहे हैं।"

सरदार जाफ़री कुछ उत्तर देने की सोच ही रहे थे कि जनता की पिछली क़तारों से 'मजाज़' एक फुलझड़ी की तरह छूटते हुए बोले, "हज़रत ! तकलीफ़ तो दरअसल आपकी अपनी रूह को पहुँच रही है जिसे आप ग़लती से इक़बाल की रूह समझ बैठे हैं !"

—शाकिर पुरुषार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

पृष्ठ-भूमि

फ्रेन्च कविता का नाम लेते ही सामने आते हैं **विक्टर ह्यूगो, बोदलेयार, रिम्बो, मलार्मे, पॉल वैलेरी,**.....और आज नोबेल पुरस्कार की कृपा से हमने एक नया नाम सुना---**सैं जाँपर्स**।

फ्रेन्च कविता के साथ यही हमारा साधारण परिचय है, हम यह सोचते भी नहीं कि इसके बाहर भी एक विराट परिचिति का आकाश है। पर विश्व-साहित्य के आधुनिक पर्व में फ्रेन्च कविता जिस गुरुत्वपूर्ण भूमिका में अवतीर्ण हुई है, जीवन की विभिन्न बहुमुखी उपलब्धि और निरीक्षण के द्वारा फ्रेन्च कवियों ने उसे जितने विचित्र पथों से प्रवहमान किया है उसकी जानकारी बड़ी गूढ़ हो गयी है।

१८८९ में **एमिल जोला** द्वारा प्रवर्त्तित प्रकृतिवाद, अन्त में जब प्रतीकवाद में परिवर्त्तित हुआ तो **मलार्मे** इस युग के शलाका-पुरुष बने। फिर मलार्मे के ही शिष्य **पाल वैलेरी** ने इसी युग में बुद्धिवाद की सूचना दी। साथ-ही-साथ बीसवीं शती का प्रारंभिक उद्बोधन **आँन्द्रे ब्रतों** के अतीन्द्रियवाद से हुआ। **अपोलिनेयर, आरागें, एल्युयाँर** प्रभृति अविस्मरणीय कवि इसी अतीन्द्रियवाद का पथ अनुसरण करते, अवचेतना का द्वार खोलते आये। स्थूल दृष्टि के सामने विस्तृत जगत के ऊपर किसी और वास्तविकता का अस्तित्व भी है, उसी के रूप को खोलने का प्रयत्न इन्होंने अपनी कविता में किया।

पॉल एल्युयाँर की प्रस्तुत कविता के मूल में हम आधुनिक फ्रेन्च कविता का प्रथम-स्वर सुन पाते हैं। इनका जन्म १८९५ में और मृत्यु १९५२ में हुई।

फ्रांसीसी काव्य की कुछ प्रतीकवादी कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर एल्युयाँर के समकालीन होने पर भी **जूल सुपेरवियैल** (जन्म १८८१) ठीक अतीन्द्रियवादी नहीं हैं। इन्होंने प्राचीन-पन्थी लीरिक को खोल कर काव्य में लीरिक के नये छन्द की उद्भावना की। उनकी 'काल-तुरंगम्' कविता में बलिष्ट चित्र-कल्प के साथ स्वप्न-रहस्य भी है।

एक और अतीन्द्रियवादी कवि ने अन्तर्लोक के सौन्दर्य को आधुनिकतर भाषा में व्यक्त किया--**आतोनें आर्तो** (१८९६-१९४८)। पाठकों तथा आलोचकों के द्वारा पागल कह कर दूर कर दिये जाने पर भी उनकी काव्य-प्रतिभा सर्वस्वीकृत हुई ही।

मार्सेल बेयाल्यू ने १९०८ में जन्म ग्रहण करके भी आंगिक की दृष्टि से सद्यःप्राचीन पार्नास पद्धति ग्रहण की। पर उनके सम-सामयिकों ने उग्र विद्रोह की कविताएँ लिखकर काव्य-जगत् में विपर्यय ला दिया। बेयाल्यु की 'आधुनिक जीवन' नाम की कविता में एक प्रच्छन्न परिहास का स्वर पाना विचित्र नहीं है। इसी के साथ अपोलिनेयर के मानस-शिष्य ने स्पष्ट भाषा और मौलिक उपलब्धि का रस फ्रेन्स साहित्य में ला दिया था और वह अनवद्य भी रही।

फिर दुरूह अभिव्यक्ति का पथ छोड़ कर शब्द-झंकार मात्र के बीच से मंत्र की तरह एक कुछ उर्ध्वतन, अनिर्वचनीय आनन्द को व्यक्त करने का अनेक आधुनिक फ्रांसीसी कवियों ने प्रयत्न किया है। अर्थहीन शब्दों को सजा कर ध्वनि-सृष्टि की चेष्टा नयी नहीं है, प्रमाण हैं भारत के कुछ अभिचारी मंत्र तथा ईसा के चार शती पहले के कवि **अरिस्टफनिस** की रचनाएँ :--

एपोपोपोई पोपोई,
पोपोपोपोई, पोपोई.....
त्रियतो त्रियतो त्रोतोब्रिक्स्....
किक्काबाऊ किक्काबाऊ
तरोतरो--तरो लिलिक्स!" --पक्षी

फ्रेन्च कविता में इस तरह के कवियों में **फ्रासोवा द्चुफ्रेन** का नाम सबसे प्रमुख है।

नित्य, विचित्र भाव से, नूतन निरीक्षाओं के पथ से क्रमशः समृद्धतर, फ्रेन्च काव्य भावी काव्य की ओर चल रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल-वैशाखी

पॉल एल्युयार

•

पेड़ की छाती से छाती लगा, उसे हृदय की ओर खींच लो न;
हँसो, हँसो, अवाङ्मनस, अगोचर के सुख में हँसो।
पराजित, हे विजयी! पारिजात की पवित्रता में,
दीप्त तुम! उर्ध्वायित, आकाश-दिशा को, वृक्ष के समान।

दूरान्तर के गिरिमूल में युयुत्सवा कौन सुन्दरी
भूलुण्ठिता, साध्य क्या कि फिर उतर रणांगण में।
आकाश चाहे क्यों न स्फटिक-उज्ज्वल या मेघमय हो
प्यार के अर्घ्य बिना सुन्दरी को देखता है कौन?

दिन सारे गाँठ-गाँठ पर टेढ़ी पड़ी अँगुलियाँ
फूल सब सूख गये बीजों की दिशा खो गयी,
काल-वैशाखी क्या आज भरे शीत की हिम-झंझा खो जाती है?

हाय, बेचारे शव की आँखों में। छवि-अंकित चीनी के पात्र।
एक गीति, निरावरण सादी-सादी नग्न बाहु।
हवा के साथ गला मिलाता है पक्षी,....आकाश बदलता जाता है।

काल तुरंगम्

जूल सुपरवियेल

•

काल-तुरंगों की कतार जब रुकती है मेरे दरवाज़े पर,
प्यासे, उनकी ओर देखने में भी इतस्ततः करता हूँ,
कारण, मेरे ही रक्त से वे तषा-निवारण करते हैं,
बहुत देर पीते हुए, सकृतज्ञ आँखों से वे देखते हैं,
मेरे मुख की ओर—अवसाद से मैं भर उठता हूँ,
दुर्बल, निःसंग, मैं, और वे चले जाते हैं—
मेरी दो आँखों में एक क्षणस्थायी रात्रि झुक आती है,
फिर मैं अपने में करता हूँ—नव-शक्ति का संचार
जिससे फिर एक दिन, मानो वे तृषित अश्व लौटें,
और मैं जीवित रह कर उनकी पिपासा दूर करूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना

आँतोने आर्तो

●

हमें करोटि[1] दो ज्वलन्त कोयले की
आकाश के वज्रानल में दग्ध जो करोटि
भास्वर करोटि दो असल करोटि
जिसमें सर्वत्र पाऊँगा सानिध्य तुम्हारा।

हमें अन्तर के महाकाश में जन्म लेने दो
जहाँ अनेक गुहाएँ हैं प्रसवण भरी
जहाँ घूम जाए हमारा समस्त आपाद-मस्तक
प्रज्ज्वल नखों से हमारा सर्वांग विक्षत कर दो।

तृप्त करो हमें, हमारी क्षुधा है असीम
आन्तर्नाक्षत्रिक विप्लव के विक्षोभ की क्षुधा,
तारा-गलित लावास्रोत अकृपण हाथों से ढाल दो
शोणित की जगह पर हमारी शिरा-धमनियों में।

विक्षिप्त कर दो, विच्छिन्न करो हमें
ज्वलंत अंगारों से सान दी हुई अपनी बाँहों से
उर्ध्वलोक को उद्घाटित करो, वही उत्शिख गुम्बज
जहाँ मृत्यु, मृत्यु से बहुत अधिक गंभीरता में संभव है।

हमारे मस्तिष्क में ला दो तुम द्विधा, द्वन्द्व
द्विधान्वित कर दो हमारा ज्ञान-केन्द्र-लोक,
कर लो हमारी बुद्धि का सर्वस्व हरण,
अनागत टाइफून[2] के प्रबल पंजों से।

आधुनिक-जीवन

मार्सेल बेयाल्यू

●

आकाश को कुतर रहा है एक एरोप्लेन
काट-कूट दे रहा है मेरी स्तब्धता
निओन[3] सपने जला रहा है उसके

---

१. खोपड़ी, २. अन्धड़
३. ट्यूब-लाइट (जो मर्करी के समान ही होती है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी रात्रि के जितने जँगले, सबके पास।
युग के साथ ही हँसना चाहिए।
प्रतिघंटा एक सौ दस मील चलना
सुख-अन्वेषण न होने पर भी
उसे कहा जा सकता है क़ब्र का विस्मरण।
खाना-पीना चले रेफ्रिजिरेटर में
वेश-भूषा रेडियो के ताल पर
जब बचा न रह पाऊँ
चला जाता हूँ सिनेमा-हॉल में।
खिलता देखता हूँ धीरे-धीरे
अनेक स्याबेला, प्रोटाइल
या बहुत-बहुत पेडिसेल।।

परियों का नाच

फ्रांसोवा द्यूफ्रेन

दलचे, दलचे।
इयायास फल्चे,
दल्चे, दल्चे
ईयोलि द्यलिन।

ईयूलचे, ईयूलचे,
इऊंदूलि, द्यूलचे
ईयूल्चे, ईयूल्चे
यूजिक उदालिन्।

जाल्चे, जाल्चे
ईयाहान्ति गाल्चे
जाल्चे, जाल्चे
ब्लूसि, प्सलिन्।

जिल्चे जिले
हान्दो बोक्जिले
जिल्चे जिले
ईलि त्स्लिदलिन।। ●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरद जोशी

बिल्लियों का अर्थ-शास्त्र

रोटियों का बँटवारा करने के लिए बिल्लियों को बंदर की मदद लेनी पड़े, यह अत्यन्त खेद का विषय है। चूहे मर जाने के बाद बिल्ली का घर से बना कांट्रेक्ट, जो कभी दूध के प्यालों से स्थापित किया गया था, डंडा मार कर समाप्त कर दिया जाये, बड़ी गंभीर समस्या है। बिल्लियाँ आखिर कब तक मूर्ख बनती रहेंगी? उन्हें चाहिये कि वे अपना एक अर्थ शास्त्र तैयार करें, जैसा कि मनुष्यों ने किया है। इस शास्त्र के मुताबिक काम करने से न चूहा खाना अनैतिकता होगी और न दूध पीना चोरी। अब वह समय आ गया है कि हर काम नियम से हो। पिछले कुछ वर्षों में बिल्ली के उपयोग में आने वाली वस्तुओं की तेज़ी से कमी आई है। दूध पतला हो गया है और घी नकली बनने लगा है। मक्खन सीधा मशीन से निकाल टीन के डिब्बों में पैक हो जाता है। चूहे ख़त्म करना आदमी अपना व्यक्तिगत दायित्व समझने लगा है और चिड़ियों की रक्षा के भी साधन खोजे गये हैं। इधर कुत्तों को घरों के अन्दर स्थान मिल गया है। बिल्ली जाति के लिए ऐसी कठिनाई की स्थिति अभी तक नहीं आई। संक्रान्ति काल शायद इसी को कहते हैं। इधर तेज़ी से मानव-मूल्यों का ह्रास हुआ है जिसका प्रत्यक्ष असर बिल्ली के स्वास्थ्य पर पड़ा है। बिल्लियों को चाहिए कि वे सामग्री, साधन, शक्ति और आवश्यकता का ठीक-ठीक आकलन करें और अपने लक्ष्य के अनुसार क्रम-बद्धता निश्चित करें, तभी समस्या सुलझेगी। बिल्लियों के लिए आज अर्थ-शास्त्र की आवश्यकता स्पष्ट ही है और समयोचित जानकर ही इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

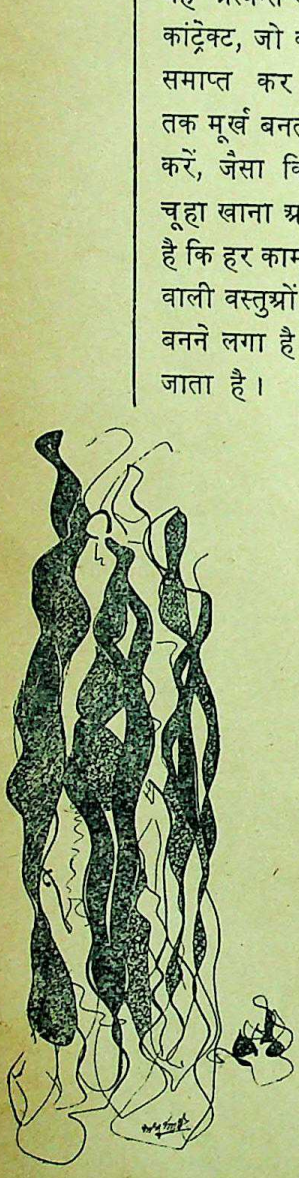

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्लियों का अर्थ-शास्त्र :

मनुष्यों का अर्थ-शास्त्र यह दावा करता है कि उसका लक्ष्य समस्त विश्व का कल्याण है। बिल्लियाँ विश्व की प्राणी हैं पर उनके कल्याण की कोई गुंजाइश मनुष्य के अर्थ-शास्त्र में नहीं है। अतः बिल्लियों के हितों को दृष्टि-गत रखते हुए इस शास्त्र की रचना इस उदा-रता से की जा रही है कि साथ ही चूहा-वर्ग के कल्याण की समस्या भी इसमें सुलझाई जा सके। वास्तव में बिल्ली की तृप्ति और चूहे की मृत्यु का अन्योन्याश्रित संबंध है। इसे कार्य-कारण-सम्बन्ध भी कह सकते हैं। चूंकि एक के विषय में विचार करते समय दूसरे का प्रश्न भी आ ही जाता है अतः उसके अनुसार यह अर्थ शास्त्र एक प्रकार से बिल्ली-चूहा अर्थ-शास्त्र है जैसे कि मनुष्यों का लिखा अर्थ-शास्त्र केवल उच्च वर्ग के हितों पर ही विचार करने के बावजूद भी दोनों वर्गों का अर्थ-शास्त्र माना जाता है।

'अर्थ' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं पर इस पुस्तक में यह शब्द उसी अर्थ में आवेगा जिस अर्थ में स्वार्थ में आता है अर्थात् जहाँ बिल्लियों का स्वार्थ हो। इस पुस्तक के प्रारम्भ में बिल्लियों के अर्थ-शास्त्र की परिभाषा देना उचित होगा। यों यह सब औपचारिक है पर शास्त्र के नियमों की मजबूरी है कि एक सुन्दर-सी परिभाषा गढ़ी जाये। वह होगी कि 'बिल्लियों का अर्थ-शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जिसमें एक परमार्थी प्राणी के नाते संसार में बिल्ली के आवश्यक दायित्वों एवं कार्य-कलापों का क्रमबद्ध विवेचन किया जावे।'

तृप्ति का सिद्धांत और बिल्ली की सामाजिकता :

प्राणीमात्र अपनी इच्छाओं की तृप्ति में सुख का अनुभव करता है। बिल्ली भी इच्छा की तृप्ति से सुखी होती है। परन्तु उसके साधन परिमित हैं क्योंकि बिल्ली में सामाजिकता की भावना होती है। बिल्ली यह जानते हुए भी कि दूध गाय-भैंसों से प्राप्त होता है, कभी गाय के निकट नहीं जाती जैसे एक वैश्य यह जानते हुए भी कि गेहूँ खेत में उगता है कभी खेत जोतने नहीं जाता। वह किसान के माध्यम से गेहूँ प्राप्त करता है। ठीक उसी प्रकार बिल्ली भी मनुष्य के माध्यम से दूध प्राप्त करती है। कुछ स्वार्थियों को अपवाद के रूप में छोड़ दिया जाये; परन्तु आम आदमी तो स्वयं दूध नहीं पीता बल्कि बच्चे को देना पसन्द करता है, अर्थात् वह पिला कर तृप्त होता है। बिल्ली मनुष्य द्वारा अर्जित दूध पीकर मनुष्य को तृप्त करती है, स्वयं भी होती है, जैसे श्रमिक उत्पादन करने पर तथा मालिक उत्पादन पाकर तृप्त होता है। यही बिल्ली की सामाजिकता है। यही उसकी तृप्ति है। बिल्ली की सामाजिकता दूध पीने के बावजूद उसी प्रकार अक्षुण्ण है जैसे किसी सेठ साहब की। यह अर्थ-शास्त्र का सिद्धान्त है।

अब तक आप मनुष्यों के ही अर्थशास्त्र की बात पढ़ते-सुनते आये थे...चौंकिये मत, यहाँ लेखक ने एक नयी खोज की है—वह है बिल्लियों का अर्थशास्त्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूहों की संख्या से चूहों को कष्ट :

चूहों को इससे बढ़ कर चिन्ता का विषय कोई नहीं हो सकता कि उनकी संख्या तेज़ी से बढ़ रही है। इसका असर स्वयं उन पर पड़ेगा क्योंकि बढ़ती हुई संख्या के लिए भोजन जुटाना कठिन होगा। हर चूहा परिणाम-स्वरूप दुबला रहेगा और उससे नस्ल बरबाद होगी। अतः चूहों का हित इसी में है कि उनके यहाँ पैदाइशें कम हों अथवा मृत्यु-संख्या जन्म-संख्या से अधिक रहे। इस समस्या को सुलझाने के लिए उन्हें बिल्ली का सहारा लेना चाहिए। चूहों को यह जान कर दुख होगा कि बिल्ली मूल रूप से दूध पीने वाला प्राणी है। उसे नानवेजेटेरियन बनाना कठिन है, परन्तु असाध्य नहीं। दूसरी बात कि बिल्लियों की संख्या भी कम है। बिल्लियों की नस्ल को ख़त्म होने से रोकना भी चूहों का काम है। सौभाग्यशाली हैं वे चूहे जिनके उधर बिल्ली है जो उनकी बढ़ती हुई जन-संख्या को संतुलित रखती है। आज विश्व में प्रति हज़ार चूहे और एक बिल्ली का अनुपात लगभग आता है, जबकि वास्तव में आवश्यकता है कि प्रति सौ चूहे एक बिल्ली रहे। एक बिल्ली सामान्य तौर पर एक चूहा प्रति दिन कम कर सकती है और उसके विपरीत चूहों का जन्म तेज़ी से होता है। अर्थ-शास्त्र की यह गंभीर समस्या है जिस पर हर चूहे को विचार करना चाहिए।

दूध की कमी से दूध की मूल्य वृद्धि :

मूल्य का निर्धारण समाज की वस्तु विशेष की आवश्यकता तथा उसकी प्राप्ति पर निर्भर करता है। जो वस्तु जितनी कम होगी उतनी ही मूल्यवान होगी। जैसे यदि शीशियाँ अधिक हैं और ढक्कन कम हैं तो ढक्कनों का मूल्य शीशियों की अपेक्षा अधिक भी हो सकता है। समझदार आदमी कम होते हैं अतः समझदार का बड़ा मूल्य होता है। ज्ञान-प्राप्ति, अच्छा स्वास्थ्य बनाने अथवा कविता लिखने के मूल में अर्थ-शास्त्र का यही सिद्धान्त काम कर रहा है कि मनुष्य ज्ञानवान, स्वस्थ अथवा कवि बन कर अपना मूल्य बढ़ा सकता है। पर जब शिक्षा बढ़ जाने से सब समझदार हो जायेंगे तो समझदार की कोई इज्ज़त नहीं रहेगी। तब मूर्खों का मूल्य बढ़ जायेगा। जैसे कवि अधिक हो जाने से कविता का पारिश्रमिक कम हो जाता है। संसार में जितने मनुष्य हैं, उनकी आवश्यकता भर दूध नहीं है। इससे दूध का मूल्य बढ़ जाता है। परन्तु सामान्य व्यक्ति ख़रीद सके, इस हेतु दूध में पानी मिलाया जाता है। मात्रा बढ़ जाने से मूल्य कम हो जाता है। बिल्ली अपने निजी प्रयत्नों से मूल्य की इस गिरावट को रोकती है। यदि सेर भर दूध में से आधा बिल्ली ने पी लिया तो शेष आध सेर दूध का मूल्य सेर भर दूध के मूल्य के बराबर हो गया। मूल्य बढ़ जाने से बाजार में स्थायित्व आता है। मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अधिक प्रयत्न करता है, अधिक श्रम करता है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाता है, जिसका अर्थ है—जीवन-स्तर उठाना। मनुष्य का जीवन-स्तर उठाने में बिल्ली प्रमुख भूमिका अदा करती है। इसी कारण उठे हुए जीवन-स्तर के व्यक्ति प्रायः बिल्ली पालते देखे गये हैं। वे स्वयं अपने हाथों बिल्ली को दूध पिलाते हैं। यह सिद्ध है कि बिल्ली पालने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथा जितनी बढ़ेगी मनुष्य का जीवन-स्तर उतना उठेगा।

अन्न की सुरक्षा में बिल्ली का योग :

मनुष्यों की संख्या भी चूहों के समान बढ़ रही है और आवश्यकतानुसार इतना अन्न धरती उपजा नहीं पा रही है। मनुष्य-समाज की सहयोगिनी के नाते बिल्ली कभी सीके भुट्टे भी नहीं खाती। न केवल यह, बल्कि अन्न का नाश करने वाली चिड़ियाओं तथा मुर्गियों को भी वह समाप्त कर देती है। यों चूहे समाप्त करने में भी उसकी मूल भावना यही रहती है। इस प्रकार अन्न की रक्षा होती है। मनुष्य को जीवित रखना बिल्लियों के हित में है। वह घर बनाने वाला प्राणी है, जहाँ चूहे पलते हैं।

बिल्लियों के अर्थ-शास्त्र का उद्देश्य इस प्रकार से सच्चे अर्थों में विश्व का कल्याण है जहाँ सब सुखी रहें।

मनुष्यों का अर्थ-शास्त्र प्रकाशित होने से जिस प्रकार अनेक प्रकार के निजी लाभ, आक्रमण, शोषण और विनाश को सिद्धान्तों का सहारा मिल गया है उसी प्रकार बिल्लियों के अर्थ-शास्त्र के प्रकाशन से भी अब बिल्लियों के समस्त कार्य-कलाप सिद्धान्ततः उचित हैं। जैसे.....

१--एक चूहे को मरता देख समस्त चूहावर्ग को प्रसन्नता होनी चाहिए कि उनकी बढ़ती हुई संख्या की समस्या हल हो रही है। इसके लिए उन्हें बिल्लियों का आभार मानना चाहिए।

२--मनुष्यों द्वारा अर्जित दूध यदि बिल्ली कम करे तो इससे दुग्ध-उत्पादकों को लाभ होगा क्योंकि भाव नहीं गिरेगा और सामान्य जीवन-स्तर ऊपर उठेगा।

३--यदि बिल्ली पेड़ पर बैठी हुई शांत चिड़िया पकड़े तो मनुष्य को तालियाँ बजाना चाहिए क्योंकि उसके अन्न की सुरक्षा हो रही है।

म्यांऊ !

●●●

पैदाइश

एक अंगरेज़ ने किसी प्रीति-भोज के अवसर पर कहा, "हम अंगरेज़ ईश्वर के बहुत प्यारे हैं। ईश्वर ने हमारा निर्माण बड़े यत्न और स्नेह से किया है!"

डाक्टर राधाकृष्णन् भी वहाँ उपस्थित थे। सुनकर वह मुस्कराये और सब व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए बोले, "मित्रो! एक बार भगवान् को रोटी पकाने की इच्छा हुई। वह रोटी सेंकने तो बैठे किन्तु पहली रोटी ज़रा कम सिकी और परिणाम-स्वरूप अंगरेज़ जाति का जन्म हुआ। दूसरी रोटी वह अधिक देर तक सेंकते रहे और उससे नीग्रो जाति की पैदाइश हुई। अपनी इन दो भूलों से सतर्क हो भगवान् ने जो तीसरी रोटी सेंकी, वह बिलकुल ठीक थी...न कम सिकी थी, न ज़्यादा। फल-स्वरूप हम भारतवासियों का जन्म हुआ।"

उक्त अंगरेज़ महोदय ने झेंप कर सिर झुका लिया।

--सत्यदेवनारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० प्रभाकर माचवे

गोरी नज़रों में हम—(५)

*

उक्त लेखमाला के अन्तर्गत पाँचवीं क़िश्त जिसमें भारतीय विचारक और नेताओं के सम्बन्ध में यूरोप और अमरीका-वासियों के दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है।

*

अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में मैंने तीन छमाहियों (सेमैस्टर) तक एक पाठ्यक्रम पढ़ाया जिसका शीर्षक था 'भारतीय पुनर्जागरण और गाँधी जी'। इस पाठ्यक्रम में राजा राममोहन राय से विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण तक भारतीय पुनर्जागरण काल के प्रमुख नेताओं और विचारकों, समाज-सुधारकों और क्रान्तिकारियों, राष्ट्र-निर्माताओं और जन-नायकों के चरित मैं सुनाता था। प्रायः पचास व्याख्यान प्रति छमाही में होते थे। कुछ तो भारत-विषयक सर्वमान्य जानकारी, भूगोल, इतिहास, जाति, धर्म, संस्था, पश्चिम के प्रभाव से निर्मित समस्याएँ आदि विषयों पर होते थे। तीन बार परीक्षाएं होतीं। एक माह गाँधी जी की आत्म-कथा के विस्तृत अध्ययन और एक माह "ऑल मैन आर ब्रदर्स" नामक युनेस्को से प्रकाशित गाँधी जी की रचनाओं के संकलन के अध्ययन में बीतते। इस पाठ्य-क्रम में मुझे अमरीकी विद्यार्थियों तथा प्रोफ़ेसरों के और कभी-कभी सर्व-साधारण श्रोताओं के भी (गाँधी-विनोबा आदि पर मैंने पचासों पब्लिक लेक्चर दिये) मत जानने को मिले। योरप से लौटते हुए नार्वे में एक विशेष गाँधी-दर्शन विषयक युनिवर्सिटी-संकाय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़र्नांडिस से, पेरिस में मादाम द्रैफे और डॉ० सान्याल से, और जर्मनी तथा इटली में भी कुछ विद्वानों से चर्चा करने का मौक़ा मिला। इस सब अनुभव के आधार पर यह लेख लिख रहा हूँ।

(१) आधुनिक भारत के निर्माण में गांधी और रवीन्द्रनाथ के अलावा भी किसी विचक का हाथ रहा है, यह बहुत कम लोग जानते हैं। तिलक और इक़बाल का नाम कहीं-कहीं सुनने को मिल जाता था। पर जैसा मैं अक्सर कहता था, सामान्य जन-रुचि चौंकाऊ और हिंसोत्तेजक घटनाओं और उसके मूल में जो व्यक्ति होते हैं उन्हें ज्यादा जानती है; विरल या नरम-दलीय, शान्त-सौम्य, अहिंसक, समाज-सुधारकों को कौन पूछता है? गोपाल कृष्ण गोखले या जोतिबा फुले, मदनमोहन मालवीय या एनी बेसेन्ट, तेजबहादुर सप्रू या डॉ० अन्सारी, खान अब्दुल गफ़्फ़ार खान या दादाभाई नौरोजी आदि नामों से राजनीति के अध्येता भी अपरिचित्प्राय थे, इतिहासज्ञ भी अज्ञान में थे। लाला लाजपतराय (जो कि अमरीका में रहे) के बारे में खोज कर भी सामग्री नहीं मिली। महर्षि दयानन्द की न तो कोई जीवनी न कोई कृति—किसी भी ग्रंथालय में उपलब्ध नहीं थी। सो पहला विचार तो मन में यह आया कि भारत की उदार-पन्थी समाज-सुधारक परम्परा का इतिहास अँग्रेजी में शीघ्र उपलब्ध कराना चाहिए।

(२) जो बात लिबरल-नेताओं के विषय में वही कमोबेश सशस्त्र क्रान्तिकारियों के इतिहास के बारे में है। जो कुछ सामग्री भारत में है वह भारतीय भाषाओं में है : बारीन घोष के अन्दमान के अनुभव (बँगला में), सावरकर की कृति 'माझी जन्मठेप' या सेनापति बापट की आत्म-कथा (मराठी में), गदर-पार्टी और सिंह-सभा के ऐतिहासिक कार्य-विवरण (पंजाबी में); हिन्दी में मन्मथनाथ गुप्त का इतिहास है—पर अँग्रेजी में इस विषय में सुसूत्र सामग्री बहुत थोड़ी है। जो कुछ है वह अँगरेज़ों या अमरीकियों ने लिखा है और वह 'गोरी नज़रों' से देखा गया, बहुत तिरछा-सा इतिहास है। उसमें कटाक्ष ज्यादा है, वीक्षण कम। यद्यपि पचास भाषणों में एक ही डेढ़ दिन बम फेंकने वाले गुप्त क्रान्तिकारियों, चन्द्रशेखर आज़ाद या भगत सिंह; स्वामी राव (पृथ्वी सिंह आज़ाद) या चन्द्र सिंह गढ़वाली पर व्याख्यान दे सकता था—उनका कुछ ब्यौरा बाद में भारत में साम्यवादी अनवगुंठन के सिलसिले में आता था फिर भी भान हुआ कि आधुनिक भारत के निर्माण में क्रांतिकारियों की मिली-जुली परम्परा के बारे में अंग्रेज़ी में बहुत कम सामग्री है—और अमरीका में वह एकदम अनुपलब्ध थी, कम-से-कम मेरे विश्व-विद्यालय में।

(३) बहुत आश्चर्य की बात यह है कि हमारे जीवन में जो घटनाएँ, प्रायः बचपन से (राष्ट्रीय संस्कारों के घरों में) जैसे जालियाँ-वाला बाग, सन बीस का असहकार-आन्दोलन, सन '३० की दांडी-यात्रा, नमक-सत्याग्रह या सन '४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के रूप में हमें सुविदित है, सिवा पट्टाभि सीतारमैया के 'कांग्रेस के इतिहास' के और गाँधी-नेहरू की आत्म-कथाओं के, अंग्रेजी में, इन घटनाओं पर विस्तृत विवरणात्मक ग्रंथ नहीं के बराबर हैं। जालियाँवाला बाग का वर्णन 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ इंडिया एंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकिस्तान' में विलपोर्ट बहुत ही सरसरी तौर पर दो-तीन वाक्यों में देता है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे कैसे बढ़े, इनका वर्णन उसमें ज़्यादा है। लोकमान्य तिलक के गीता-रहस्य की एक भी अनूदित प्रति न कैलिफोर्निया-विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में थी, न विसकान्सिन के। सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि जयप्रकाश नारायण विसकान्सिन-विश्वविद्यालय के छात्र रह चुके हैं। उनकी एक भी प्रामाणिक जीवनी वहाँ उपलब्ध नहीं थी। एक पुस्तक उनकी 'टुअर्ड्स स्ट्रगल' है, उसमें यूसुफ मेहर अल्ली की भूमिका से काम चलाना पड़ा। वही हाल सुभाष बोस का था। यादवपुर-युनिवर्सिटी से छपी 'रिनेसाँ इन बंगाल' नामक विपिनचन्द्र पाल स्मारक-ग्रंथ की प्रति मैंने भारत से मँगाई, सो तीन माह बाद मिली। उसी के साथ मैंने नेताजी की आत्म-जीवनी के अंश मँगाये थे। जब बड़े-बड़े नेताओं का यह हाल था, तो छोटे नेताओं की क्या दशा ?

(४) मैं गाँधी-पूर्व और गाँधी जी के बाद के गाँधी जी की आलोचना करने वाले सुभाषचन्द्र बोस, आम्बेडकर, मानवेन्द्र नाथ राय, साम्यवादी दल के नेताजन (यथा बी. टी. रणदिवे का विनोबा के 'सर्वोदय' के विरोध में लेख)--आदि की भी चर्चा करता था। परन्तु सर्वसाधारण रूप से अमरीकी छात्रों की जो प्रतिक्रियाएँ थीं, वे इस प्रकार से थीं :

--अँग्रेज़ों के आने के बाद हममें राष्ट्रीय चेतना जागी। अँग्रेज़ी के द्वारा युरोप के चिन्तकों की कृतियाँ पढ़कर हमारे नेता 'स्वतंत्रता, बन्धुता, समता' का नारा बुलन्द करने लगे। राजा राममोहन राय आदि-नेता थे। वे तांत्रिक भी थे।

--बंगाल के स्वतंत्रता-आन्दोलन के पीछे 'शक्ति-पूजा', 'काली-पूजा' का माहात्म्य था। रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य 'हिन्दू मिशनरी' विवेकानन्द में भी यह आत्म-बढ़ाने की बात बार-बार आती है। 'कुरी को कर बुलन्द इतना कि अपने को खुदा बन्दे (इक़बाल)--'के बोले मां तुमि अबले'

--गीता का कर्मयोगपरक अर्थ जो लोकमान्य तिलक ने सिखाया, वह शिवाजी की ही परम्परा में था। और उसी में से हिन्दू प्रजाति-वरेण्यता का सिद्धान्त आर्य पुनरुज्जीवनवादियों ने निकाला। मौलाना मुहम्मद अली ने कहा था कि अँग्रेज़ों पर विभाजन और राज (डिवाइड एंड रूल) का आरोप व्यर्थ है; "वी डिवाइड एंड यू रूल (विभाजन हम करते हैं, राज आप करते हैं)। मैंने जब कक्षा में अरविन्द की बात कही कि भारतीयों ने एक सूच्यग्र भू भी अपना साम्राज्य भारत के बाहर स्थापित नहीं किया, तो एक अमरीकी छात्र पूछ बैठा—"शिवाजी की 'हिन्दू-पद-पादशाही' क्या थी ?"

--जवाहरलाल जी की पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' एक प्रमुख पाठ्य-ग्रंथ थी। फिर भी अमरीकी छात्र बड़े विचित्र प्रश्न पूछते, जैसे : 'काँग्रेस का कोई सिख अध्यक्ष क्यों नहीं बना ?' 'काँग्रेस के कितने अध्यक्ष दक्षिण भारत से थे ?' 'कांग्रेस के कितने अध्यक्ष हरिजन हुए ?' इत्यादि। गाँधी-पूर्व नेताओं में केशवचन्द्र सेन ने मेरे एक छात्र को आकर्षित किया। एक विद्यार्थिनी ने रामकृष्ण और गाँधी पर निबन्ध लिखा। तीसरे एक छात्र ने 'गोखले और गाँधी' पर।

--गाँधी के बाद के नेताओं में सुभाष चन्द्र बोस विद्यार्थियों के लिए बड़े आकर्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय थे। उनके और एम. एन. राय के जीवन में देश-विदेश भागने का जो भाग था, वह विद्यार्थियों को बेहद रोमांटिक लगता। वैसे भी यह नेता-कथा काफ़ी रोचक बना कर, निकट इतिहास को प्रायः सजीव बनाकर सुनाता। मगर युद्ध के बाद की भारतीय राजनीति विद्यार्थियों के सहज समझ में नहीं आती। क्यों भारत युद्ध-विरोधी बना? क्यों हुआ भारत का विभाजन? क्यों हुई गाँधी की मृत्यु? क्यों है भारत में प्रायः एक-पक्ष शासन? यह सब उनके सहज पल्ले नहीं पड़ता था। शायद एक कारण यह भी था कि उनका नज़रिया समाजशास्त्र, मानववंश-शास्त्र आदि और 'कोर्सेस' पढ़-पढ़ कर काफ़ी फ़िक्स हो चुका था। फिर भी गाँधी जी, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, नेहरू अगाध श्रद्धा और अपार कुतूहल के विषय हैं। और उसमें भी कई विचित्र सवाल उठाये जाते; कई सवालों के मेरे पास जवाब नहीं थे, मसलन :

—गाँधी को बचपन में उनके माँ-बाप ने पीटा था या नहीं?

—गाँधी जी वैष्णव-मत से अधिक प्रभावित थे या जैन-मत से?

—गाँधी जी ने युद्ध के बारे में क्या कहा है?

—गाँधी जी हर विदेशी चीज़ नापसन्द करते थे, फिर 'कमोड' का उपयोग क्यों करते थे?

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर देशी-पद्धति का भोजन करते थे या विलायती?

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर कैसी टोपी पहनते थे?

—नेहरू जी गाँधी जी की तरह आस्तिक हैं या नहीं?

—नेहरू जी लाल गुलाब क्यों लगाते हैं?

नेता या विचारक को वे केवल एक ऐतिहासिक प्रक्रिया में बहते हुए तिनके की तरह नहीं मानते हैं; उसके मानवी पक्ष पर उनका विशेष आग्रह होता है। मेरा एक विद्यार्थी जो विनोबा भावे के बारे में पेपर लिख रहा था, एक प्रश्नोत्तरी लेकर लाइब्रेरी में खड़ा हो जाता और हर भारतीय से उनके बारे में पूछता। उसने बताया कि बहुत कम भारतीयों को विनोबा का सही जन्म-वर्ष या पूर्व-जीवन मालूम था।

भारत की अहिंसक साधनों से स्वतंत्रता-प्राप्ति उनके लिए बहुत आश्चर्य-जनक वस्तु थी। और फिर जब वे अख़बारों में पढ़ते कभी महाराष्ट्र-गुजरात या आसाम-बंगाल के भाषाई दंगों की कहानियाँ, तो पूछते—अब गाँधी का प्रभाव शायद नहीं रहा?

गाँधी-विचार-पद्धति की पराजय या विस्मृति पर बार-बार प्रश्न पूछे जाते : सन्तति-निरोध पर गाँधी जी तो और कुछ कहते थे, अब शासन की नीति और है? हस्तोद्योग-ग्रामोद्योग पर गाँधी जी तो और कुछ कहते थे, अब शासन की नीति और है? हिन्दी-उर्दू मेल, हिन्दुस्तानी पर गाँधी जी तो और कुछ कहते थे, अब शासन की नीति और है? जनता की इच्छा शायद और है? इस तरह से कई टेढ़े-मेढ़े सवाल पूछे जाते : कश्मीर और गोआ, कोरिया और स्वेज, हंगेरी और तिब्बत के बारे में। मैं अक्सर जवाब देकर टालता कि बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय मसले मैं नहीं जानता। मैं तो सिर्फ भारत के पुनर्जागरण की कहानी सुना रहा हूँ।

एक बार 'विनोबा के भूदान' पर एक डाक्युमेंटरी मँगाई गई थी, सो दिखाई। एक अमरीकी श्रोता पीछे से फुसफुसा रहा था :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"निरा सरकारी प्रचार है, ज़मीन-समीन कुछ बँटी नहीं है!"

फिर भी इस पाठ्यक्रम से एक लाभ हुआ : कई अपरिचित नामों से अमरीका का एक शिक्षित, संवेदनशील छोटा-सा युवा-वर्ग परिचित तो हुआ। राष्ट्रीय मुसलमान जैसे मौलाना आज़ाद या ख़ान-बन्धुओं से वे पहले परिचित नहीं थे। वे सिर्फ़ इक़बाल-जिन्ना का नाम जानते थे। अब धीरे-धीरे भारत के कई नेताओं के बारे में उनका कुतूहल बढ़ा। एक दिन एक छात्र अम्बेडकर की धनंजय कौर की लिखी अँग्रेजी जीवनी लेकर आया और कई बातें पूछने लगा.....

'लीडरशिप एंड पोलिटिकल इंस्टिटचूशन्स इन इंडिया', रिचर्ड पार्क द्वारा सम्पादित एक परिसंवाद छपा है कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी से; और दूसरी बहुत विवाद्य पुस्तक है सेलिग हैरिसन की 'दी डेंजरस डिकेड्स'—सब में यही चिन्ता पश्चिम में व्यक्त की जा रही है कि भारत में नवीन रक्त वाले तरुण नेतृत्व का अभाव है। मेधावी तरुणों के सामने आज भारत में कौन-सा मार्ग है? सरकारी नौकरी, निजी व्यापारों में 'कैरीअर'—बस। ग्रामोन्मुख नेतृत्व जिस आदर्शवाद से प्रेरित होकर गाँधी-युग में था, वह आज नहीं है।

अमरीका का राष्ट्रपति ४३ बरस में राष्ट्रपति चुना गया। हमारे बड़े-बड़े नेताजन और मंत्रियों में 'पके आधे बाल मेरे' एक आवश्यक 'गुण' है। 'निराला' की दूसरी पंक्ति में श्लथ चाल का भी उल्लेख है। इस बारे में पश्चिम में बहुत क्षोभ है कि भारत के विचार-नेता और भाग्य-विधाता इस दिशा में कम सोच रहे हैं कि ८० प्रतिशत ग्रामीण जनता और उन्नीस प्रतिशत शहरी जनता के बीच की खाई कैसे पाटी जाय? गोरी नज़रों में यह हमारी मिली-जुली अर्थ-नीति के सामने सबसे बड़ी चुनौती है! कैलिफोर्निया में एक 'अर्बेनाइज़ेशन इन इंडिया' सेमिनार सुनने का मौक़ा मिला जिसमें किंग्ज़ली डेविस और बड़े-बड़े अमरीकी एक्स्पर्टस थे। भारतसे अशोक मेहता, तिरलोक सिंह, पीताम्बर पन्त, इरावती कर्वे, शचीन चौधरी, बापट, सोहोनी, प्रकाशचन्द्र सेठी, शान्ति टांग्री आदि थे। पर मेरे पल्ले इतना ही पड़ा कि सम्प्रति गोरी नज़रों में भारत में विचार-नेता और समाज-नेता दोनों एक हैं। दोनों का एक-दूसरे पर अंकुश ज़रूरी है। नहीं तो विचार करते-करते नेतृत्व बिखर सकता है; या नेतृत्व करते-करते विचार करना! दोनों स्थितियाँ सही नहीं।

—:०:—

दो चित्र

विख्यात चित्रकार श्रीमती मोसेज को न्यूयार्क की एक गैलरी से टेलीफोन द्वारा सूचना मिली कि एक हज़ार डालर की दर से उसके दो चित्र तत्काल चाहिएँ। उन दिनों मोसेज की तस्वीरें इतनी तेज़ी से बिक रही थीं कि उस वक्त उसके पास कुल एक ही तस्वीर बची थी। तस्वीर में एक बर्फ़ीला मैदान अंकित किया गया था। श्रीमती मोसेज ने बिना झिझके तस्वीर के कैनवस को दो टुकड़ों में बाँट दिया, दोनों टुकड़ों को अलग-अलग फ्रेम में कर दिया और न्यूयार्क की उस गैलरी को दोनों तस्वीरें बेच दीं।

—सत्यदेव नारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमेश बक्षी

●

'नयी' हम उसे कहेंगे जिसका पहले कभी अस्तित्व नहीं रहा हो, और स्पष्ट है कि 'जेबी पुस्तकों' का पहले हिन्दी में अस्तित्व नहीं था ;...लेकिन 'गाली' से लेखक का क्या अभिप्राय है, यह बिना पूरी कहानी पढ़े समझना संभव नहीं ।

●

मेरा तो जन्म ही इसलिए हुआ है कि लोग मुझे देख कर खिचें--खिचें ही नहीं, मुझ पर लट्टू हो जायें, फँस मरें, उन्हें ऐसा लगने लगे कि मुझे बिना पाये वे ज़िन्दा नहीं रह सकेंगे । मेरा जिस्म बेचने वाले खुलेआम मेरा दाम बतला कर उनकी जेबें ख़ाली करवा लेते हैं ।

मैं जब बिक जाती हूँ, या बेच दी जाती हूँ, तो किसी बात से फिर इन्कार नहीं कर सकती । वे फिर बस के लिए क्यू में खड़े- खड़े मुझे छेड़ें या बिस्तर में मुझे छाती से लगा कर सो जायें--जैसी उसकी मरज़ी वैसी ही मेरी भी ।

कई बार मैं कसमसा उठती हूँ कि मेरा शरीर इतने सस्ते हर किसी मज़दूर-कुली-विद्यार्थी-प्रोफ़ेसर के हाथों क्यों बेचा जा रहा है--मुझे इससे क्या मिलता है, कुछ भी नहीं : जो कुछ मिलता है वह मेरे बेचने वाले को । हाँ, वह इतनी चीज़ें ज़र ख़रच कर ज़रूर देता है मुझे कि मैं सुन्दर लगूँ, लोगों

एक नयी गाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आकर्षित कर सकूँ, आँखों में काजल लगा कर तीर चला सकूँ।

वह मुझे ऐसा क़ीमती-से-क़ीमती और महँगा पहनावा देता है कि मैं अपनी जाति की भीड़ में अलग से आँख पकड़ लेती हूँ। मुझे पसन्द नहीं पर वह मुझ पर ऐसा ही लिबास पसन्द करता है जिसे पहनकर मैं अधिक-से-अधिक नंगी दिखाई दूँ। लोग--हर तबक़े, हर पेशे के लोग इसलिए तो मुझे पसन्द करते हैं कि वे कम ख़र्च में अधिक सुख पा लेते हैं, कि वे कम ख़र्च में अधिक सुन्दर चीज़ ख़रीद पाते हैं, कि वे कम ख़र्च में अपनी पसन्द से अधिकतम नंगापन अपने नज़दीक महसूस कर पाते हैं।

कई बार हममें होड़-सी लग जाती है। कई बेचारियाँ ऐसी हैं जिनकी ओर ग्राहक आँख उठा कर नहीं देखता क्योंकि झीने कपड़े पहन कर भी वे सिर ढँक लेती हैं। आप ही सोचिए कि एक दलाल कोठे से दस दुबली-पतली, कमोबेश बराबर ख़ूबसूरती की लड़कियों को भरी साँझ सबसे आगे सजा-सँवारकर सेहन में बिठा दे, तो लोगों की आँखें अन्दर जाने के बजाय बाहर ही अटक जायेंगी कि नहीं? जो लोग हमारे शरीरों पर फ़िदा हैं उनकी बात तो अलग रही, यहाँ तक कि कोई अपनी बीवी के लिए दवाई ख़रीदने आया है और हमने लुभा लिया तो पैसे पर पानी फिरा कर चला गया। मिला क्या?--एक-दो घण्टे का दिमाग़ी सुख। फिर हमारे शरीर की कोई क़ीमत नहीं--आख़िर सस्ती चीज़ की क़ीमत हो भी क्या सकती है?....

छोड़ूँ भी इस बात को। आज तो मैं केवल अपने बारे में ही कुछ कहना चाहती हूँ। आपको बुरा लग सकता है कि एक निहायत सस्ती चीज़ (या अंग्रेज़ी-पसन्द हों तो 'कॅमोडिटी' कह लीजिए) ऐसी बात क्यों कर रही है जो न उसके बस की है, न उसकी पहुँच की ही। पर मैं अपने नहीं, अपने बाप की निसबत कुछ कहना चाहती हूँ।

वह आज इस दुनिया में नहीं है, उसकी कोई निशानी भी नहीं: निशानी हूँ तो केवल मैं--मुझे देख कर आप सोच सकते हैं कि यह उसकी बेटी होगी। मेरा शरीर देखकर आप अन्दाज़ लगा सकते हैं कि वह कैसी ज़िन्दगी जिया होगा।

जैसा हर कोठे में होता है कि लड़की को उसके बाप का नाम नहीं बतलाया जाता, वैसा ही हुआ मेरे साथ, पर क़िस्सा थोड़ा बदला हुआ है। फ़िल्म में आपने देखा होगा कि बच्चा बदल दिया जाता है और असल माँ-बाप नक़ली माँ-बाप को पहचान भी नहीं पाते। मेरे साथ यह हुआ कि--क़िस्से को ठीक-ठीक समझने के लिए आप यह समझिए कि कोठे का दलाल या मुझे सजाने-सँवारनेवाला यह कहे कि मैं तुम्हारा बाप हूँ और यह उस हालत में जब मुझे मालूम हो कि सचमुच मेरा बाप कौन है, किसने मुझे पाला-पोसा है, किसने मेरे दुख उठाये, किसकी कल्पना का रंग मेरी आँखों में है, किसकी ताक़त का ख़ून मेरी नसों में बहता है?--पर मैं बदनसीब उस वेश्या से भी गयी-गुज़री हूँ जो गूँगी-बहरी हो लेकिन ख़ूबसूरत हो, जिसके रंग में रौनक़ हो, जिस्म में छरहरापन हो, और जिसकी जवानी छलकता प्याला हो। वह अपने हाथों से किसी को मासूम ताक़त-भर पीछे ठेलने और फिर हारकर बिक जाने के सिवा क्या करेगी? बस, यही मेरी कहानी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें मेरी नहीं, मेरे बाप की तौहीन है। आज मेरा बाप ज़िन्दा होता तो क्या यह सब मेरे साथ हो पाता? बाप के ज़माने में मेरा जो शरीर था वह आज एक-चौथाई रह गया है। लोग कहते हैं, इससे ख़ूबसूरती बढ़ गयी है। सुना, दुबली होने के लिए लड़कियाँ डाएटिंग करती हैं, नपा-तुला खाती हैं। पर मुझे तो भूखों मारा गया है, मुझे तो ये लगता है कि मेरे शरीर से तोल-तोल कर माँस काटा गया है: और मुझे दुबला बनाया गया है।

घबराइए नहीं, मुझे अच्छी तरह याद है कि आपने अपनी जेब से पैसा ख़र्च कर मुझे ख़रीदा है—यह शरीर आपका है अब। मुझे कोई मतलब नहीं कि काम निकल जाने पर आप मेरी तरफ़ किस निगाह से देखेंगे। मैं केवल बात कहना-भर चाहती हूँ। कह लूँगी तो मन हलका हो जायेगा। मेरा नाम देखिये, इस जगह गुदा है—हाँ, बहुत ख़ूबसूरत नीली रोशनाई से—और उसके ठीक नीचे मेरे नक़ली बाप का नाम भी लिखा है। मैं इस नाम को नहीं मिटा सकती: न अपने नाम को ही मिटा सकती हूँ और न अपने नक़ली बाप के नाम को ही।

मेरा बाप तो ख़ुदा को प्यारा हो गया। बेहद दुबली-पतली काया, आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा, नीम-बिखरे बाल, साफ़-सफ़ेद रंग, बोलने में मिश्री घुलती और तहज़ीब ऐसी कि पाँव छू लेने को तबीयत हो। बचपन से, सुना है, उसे गीत लिखने का शौक़ था। उसके गीत किसी के लिए नहीं होते थे: न चाँद के लिए, न फूलों के लिए, न स्वर्ग के लिए। वह लिखता-भर था। उसके गीत छाये हुए बादलों की तरह होते थे। वह समन्दर की तरह था और उसका अपना-आप जैसे बादल बनता रहता था।

उन्हीं दिनों जब उसकी मसें भीगी होंगी, एक ख़ूबसूरत लड़की को उससे प्रेम हो गया। उन दोनों ने ख़ुशहाल ज़िन्दगी के रंगीन सपने बनाये, फिर सपनों की अठमहली मुण्डेर पर बैठ कर वे चाँदनी में नहाये और फिर दोनों ने ब्याह लिया एक-दूसरे को।

मेरा बाप एक प्रकाशक के पास काम करता था। वह अंग्रेज़ी के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद करता: उसने गोर्की, मॉम, ड्यूमा, आन्द्रेज़ीद और जाने किस-किसकी किताबों को हिन्दी में लिखा है। हाँ, वह गीत ही नहीं लिखता था—क़िस्से भी लिखता था। उसके क़िस्से बहोत-बहोत बड़े होते, छोटे नहीं होते। एक बार उसने एक लम्बा क़िस्सा अपनी बीवी को सुनाया और बीवी ने सलाह दी कि वह अपने प्रकाशक से इसे भी छपवा दे। उन्हीं दिनों मेरे बाप के घर में ख़ुशियाँ मनीं: चाँद-से एक बेटे ने जन्म लिया था। मेरे बाप ने वह लम्बी कहानी सेठ को दिखायी।

—"इसे आप नहीं छाप सकते?"

—"क्यों नहीं छाप सकते? पर तुम्हें मालूम होगा कि हम केवल उपन्यासों का व्यापार करते हैं और यह है कहानी।"

—"छपे हुए कोई सौ पृष्ठ तो हो ही जायेंगे। इसे छोटा उपन्यास क्यों नहीं समझ लेते?"

—"नहीं बाबू, नहीं। आजकल तो चार-से और पान-से और हज्जार पेज के उपन्यासों का चलन है। उसमें प्रेम हो, ब्या हो, मौत हो, मजूर-किसान से लगाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेबकतरे और कवि तक हों। कोई भी बात छुटनी नहीं चाहिये।"

—"तो इसमें भी कोई बात छूटी नहीं है, इसमें सब है।"

—"पर इसको अगर छपाना ही हो तो कम-से-कम चार-से पेज का बना दो।"

और मेरा बाप उस किताब को फैलाने में लग गया। वह हमेशा उसी के बारे सोचता। सोचता, हिन्दी के लेखकों की तरह वह फ़ैक्टरी नहीं खोलेगा। वह फ़क़त एक ही किताब लिखेगा। सपूत एक ही बहुत। और वह उस उपन्यास को लिखता और काटता, काटता और लिखता।

मेरा बाप अपनी छोटी-सी चादर में भी पैर फैला कर सोता। सारी खुशियाँ उसके आँगन में सफलता के घुँघरू बाँध कर पतुरियों-सी नाचती फिरतीं। लोग कहते, ज़िन्दगी हो तो उसकी-सी: जलनेवाले उँगलियाँ दबा लेते दाँतों-नीचे कि फ़क़त दो दर्जन बरस यानी उमर साल चौबीस में यह ऐशगाह की मसनद पर जा बैठा।

तो साहब, उसने किताब पूरी कर ली। अब उसके हाथों चार सौ पृष्ठों का एक बड़ा और खूबसूरत उपन्यास था। जिस दिन वह उसे लेकर फिर सेठ के सामने पेश हुआ, उस दिन उसके शरीर में से किसी ने जवाब दे दिया था—एक ऐसी क़ै हुई कि जैसे अन्दर का सारा खून बाहर आकर ही मानेगा। पर वह कहाँ हारने वाला था! चुपचाप अस्पताल में भरती हो गया। उसने टूटते हुए भी वह उपन्यास लेकर अपनी बीवी को सेठ के पास भेजा कि कुछ रुपया मिल जाये।

—"हम इसे छाप सकते थे पर अब नहीं छाप सकते। अब ज़माना बदल गया। हिन्दी में अब दो-से पेज का उपन्यास भी कौन खरीदेगा?"

—"पर उनसे तो आपने ही कहा था।"

—"कहा होगा, पर अब वे दिन नहीं रहे जब हिन्दी में हज्जार-हज्जार पेज के पोथे छपते थे। अब तो लोगों को डबल रोटी चाहिए जिसे नाश्ते के साथ खा सकें, चना-जोर-गरम-बाबू चाहिए जिसके लिए पैसा जमा नहीं करना होता—लोगों को चाट चाहिए, पकौड़े चाहिए...।"

—"क्षमा करेंगे सेठजी कि मैं आपका मतलब नहीं समझ सकी।"

—"मतलब ये कि अब पाकेट-बुक चलती है—सौ-सवा-सौ पन्नों की छोटी-सी प्यारी-सी किताब कि रेल में चढ़ो तो जेब में रख लो और पढ़ लो तो बच्चों को खेलने को दे दो। हरेक माल का एक दाम। दुकान खुली है—छाँटो और बीनो—कालिदास हों या शेक्सपीयर हों या प्रेमचंद हों या देवकीनन्दन खत्री हों...।"

—"वे बहुत बीमार हैं सेठजी। आप यह बताइए कि मैं क्या करूँ जिससे कुछ रुपया मिल जाये।"

—"इसकी मोटाई कम करवा लाओ।"

उसकी बीवी अस्पताल गई और सब दुखड़ा बेचारी ने कह सुनाया। डॉक्टरों के लाख मना करने पर भी वह दिन-रात पेज-पर-पेज काट-काट कर उपन्यास को छोटा बनाता रहा। उसकी बीवी एक दिन फिर सेठ के पास गयी।

"यह लो, अब तो यह पाकेट-बुक बन गया?"

"हाँ, अच्छा है।"

"पर बड़ी किताबों में ज्यादा बातें होती हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं होतीं। प्रेम और ब्या और मौत और मजूर-किसान सब छोटे में भी हो सकते हैं। चार प्याले चाय में चार चम्मच और एक प्याले में एक चम्मच शक्कर लगती है पर स्वाद सबका बराबर होता है। लो, अभी ये सौ रुपया ले जाओ।"

बीबी सौ का नोट लेकर अस्पताल पहुँची तब तक मेरा बाप इस दुनिया का अस्पताल खाली कर दूसरी दुनिया में जा चुका था।

मैं आज सोचती हूँ कि उसकी ज़िन्दगी के बड़े उपन्यास को काट कर किसने छोटा कर दिया? किसने उसकी बीबी और मुन्ने और मुन्ने हुए घर और छोटी तनख्वाह में सन्तोष और लिखने से मिलते सुख और अपने आपमें हुई दुबली-पतली काया वाली बेहद हसीन ज़िंदगी को एक पाकेट-बुक बना कर छोड़ दिया।

मैंने अपने कानों से सुना है, सेठ को यह कहते कि "उसकी ज़िन्दगी में सब तो हो गया था, ब्याह, नौकरी, तारीफ़, बच्चा, अच्छा घर, और क्या चाहिये? पच्चीस बरस की उमर में ही मर गया तो क्या बुरा हुआ? मेरी सौ पेज की पाकेट बुक में भी तो सब होता है। होंगे जी, ये लेखक क्या खाके बड़े बनेंगे! सभी थे जो—वे शेली हों चाहे कीट्स हों, चाहे प्रसाद हों—सब जेबी-पुस्तक हैं यानी पाकेट-बुक।....." और सेठ ज़ोर-से हँसा था।

हाँ, और मेरा नाम जैसे एक नयी गाली हो—जेबी पुस्तक। जैसे एक रुपये में तय की गयी सड़क-छाप लड़की हो कोई। अब नहीं बोलूँगी—आपने मुझे रुपया खरच कर खरीदा है तो मैं आपकी हूँ—आप चाहे जो करें मेरा—पर जब मेरा बाप मर गया तो उसी सेठ ने मेरे बाप के कम्पोज किये नाम को तुड़वा कर डिस्ट्रीब्यूट करवाते हुए कहा था, "इस प्यारी किताब पर उस साले पाकेट-बुक के नाम को देने की क्या ज़रूरत?"

और मेरे नाम के नीचे मेरे बाप का नाम नहीं, सेठ का नाम है और वही दलाल बन कर मेरा जिस्म सस्ते दामों में बेच रहा है। मेरा बाप होता तो आज.....!

● ● ●

नियुक्ति

यूनिवर्सिटी से इन्जीनियरिंग की डिग्री हासिल कर एक ग्रेजुएट लुई जेनिन के यहाँ सुबह-सुबह पहुँचा। वह खानों का इन्जीनियर बनना चाहता था, लेकिन जेनिन ने बताया कि उसे केवल एक स्टेनोग्राफर की आवश्यकता है।

"स्टेनोग्राफर!"—युवक कुछ क्षण सोचकर बोला—"अच्छी बात है, मैं यही काम कर लूँगा। मंगल की सुबह मैं काम पर आ जाऊँगा।"

जब वह युवक—हर्बर्ट हूवर—काम पर पहुँचा, तो जेनिन के पूछने पर उसने बताया—"चार दिन तक एक किराये का टाइप-राइटर लेकर मैंने टाईपिंग करना सीख लिया।"

जेनिन ने उसे अपने यहाँ रख लिया। आगे चलकर यही हर्बर्ट हूवर अमेरिका का राष्ट्रपति हुआ।

—सत्यदेवन.रायग सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहन किशोर

जब पहली बार मिला तो मुझे लगा कि उनका व्यक्तित्व नितान्त साधारण था, लेकिन जब दूसरी बार मिला तो मैंने पाया कि.....

●

शैलोज़ मुखर्जी से मेरी मुलाकात दिल्ली पोलिटैक्निक में हुई, जो बहुत सरसरी तौर पर थी। उनका व्यक्तित्व साधारण था और उसमें कोई विशेष ऐसी बात न मालूम पड़ती थी जो किसी का दिल अपनी तरफ़ खींच सके। उनका रंग सांवला था, आँखें बड़ी-बड़ी थीं, ओंठ मोटे थे, पिचके हुए गाल और क़रीब-क़रीब बिल्कुल सूखा हुआ चेहरा था। अपने दुबले-पतले जिस्म पर वह छाती के टूटे बटनों वाली कमीज़ और खुले पायचों वाली पैण्ट पहने थे। किसी कलाकार के बदले मुझे शैलोज़ किसी बिगड़े हुए ईसाई अफ़सर-से लगे। खोई हुई मुख-मुद्रा में अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से शून्य में देखते वह काश्मीरी गेट के एक रेस्तराँ में बैठे अक्सर मिल जाते थे।

मैं काश्मीरी गेट में स्थित एक प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता के पास काम करता था और शैलोज़ पोलिटैक्निक में। मेरे मन पर शैलोज के साक्षात्कार की पहली छाप तभी पड़ी जब वह एक दिन अचानक दूकान में कोई पुस्तक देखने को आये। मैं अपने काम में मसरूफ़ बैठा था कि कन्धे पर अचानक किसी का हल्का-सा हाथ पड़ा; इतना हल्का मानो किसी युवती का हो। शायद महसूस भी न होता अगर उनके मुँह से शराब की तेज़ दुर्गन्ध न आ रही होती। सर उठा कर देखा तो मुस्कराते हुए बोले, "तुम यहाँ काम करता है? तुम तो रिसर्च करता था न? तुम्हारा लिखना-लिखाना कैसे चल

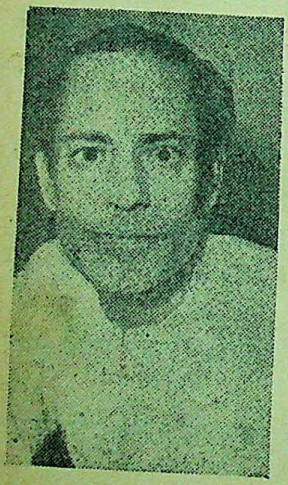

विरोधाभासों का अन्यतम कलाकार शैलोज़ मुखर्जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है? तुम आर्ट के बारे में भी लिखता है न? हमारे साथ चलो, तुमको काम दिखायेगा। उठो-उठो।" और उन्होंने मुझे कन्धों से पकड़ कर उठा ही लिया।

दिल में उनकी सारी पेन्टिंग देखने की इच्छा तो बहुत थी पर काम करते-करते छोड़ जाना और वह भी बगैर छुट्टी लिये, कुछ अखरा! पर उन्होंने हाथ पकड़ कर घसीटा और बाहर खड़ी टैक्सी में ला बैठाया। सीधा धूमीमल रामचन्द की आर्ट-गेलिरी में ले आये। मैंने पेन्टिंग देखीं और चकित रह गया। इतने शक्तिशाली चित्र मैंने कम ही देखे थे। उन्होंने अपने कुछ चित्रों में रेखाओं के किंचित् तोड़-मरोड़ और रंगों के कुशल सम्मिश्रण से अपनी कवि-सुलभ कल्पनाओं और अनुभूतियों को ऐसे बेजोड़ ढंग से अभिव्यंजित किया था जिससे उनकी सशक्त चित्रण-शक्ति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। उनके तैल-चित्रों की हल्की स्निग्धता, पर गहरी चमक को देख कर मैंने मन-ही-मन सोचा कि रंगों के ऐसे अद्भुत प्रयोग में शायद आज भी शैलोज को कोई 'बीट' नहीं कर सकेगा।

वहाँ से खींच कर बाहर एक रेस्तराँ में ला बिठाया, वहाँ खाने-पीने के दौरान मैंने उनसे कहा, "बहुत काम किया है आपने, यही सब है या कहीं कुछ और भी है?" वह लगभग चिल्ला कर बहुत दुःखी होकर बोले, "ओह! किशोर! बहुत काम करना माँगता है, बहुत काम करना। लेकिन यह लोग नहीं करने देता। यह लोग जोंक है, जोंक! हमारा खून पी लिया। हिन्दुस्तान हमारी कदर नहीं जाना, बाहर का मुल्क जानता है।" यह कहते समय उनके नथुने फड़कने लगे। उनमें छुपे दर्द को मैंने निकट से जब देखा, तो दिल भर आया। हिन्दुस्तान के इतने बड़े कलाकार के साथ हम उसके जीते-जी, इन्साफ़ न कर सके, कोई सहायता न कर सके, इसका मुझे बहुत दुःख है।

एक दिन श्री कुमारिल स्वामी ने मिलने पर बताया कि शैलोज़ मुखर्जी ने दिल्ली पोलिटैक्निक की नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया है। मैं बहुत हैरान हुआ। मिलने पर पूछा: "नौकरी छोड़ दी आपने शैलोज़ बाबू?"

"छोड़ दिया, छोड़ दिया। पोलिटैक्निक हमको काटने को दौड़ता है, जेल है, जेल! हमको डर लगता है। हम क्या गुलाम है? हमको क्या माँगता? किशोर! किसी पेड़ के नीचे पड़े रहने का हक। यह हमारा, सबका "बोर्न राइट" है। इसे हमसे कौन छीन सकता है।"

मैं क्या कहता। उस समय मेरे मन पर व्यथा का पत्थर ही मानो रखा गया। सहसा किसी शैतान बालक की आँखों की तरह उनकी आँखें चमकने लगीं, उन्होंने ऐसे समय

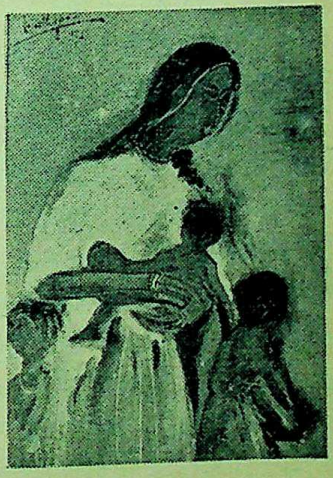

एक ग्रामीण परिवार
धूमीमल आर्ट गैलरी के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी मज़ाक नहीं छोड़ा और मुस्कराते हुए बोले, "लेकिन सेक्शन १०९ में पुलिस पकड़ सकता है।" मैं उनकी महत्ता पर नतमस्तक हो गया। तब मुझे अनुभव हुआ कि उनकी वृत्ति बड़ी ही उदात्त थी। वह एक नई ताज़गी और ज़िन्दादिली के क़ायल थे, मनहूसियत में सिमट जाने की उन्हें आदत न थी।

शैलोज़ अपने शिष्यों में बहुत प्रिय थे। क्योंकि वह अपने शिष्यों के बीच रहना पसन्द करते थे। दूसरे कला-शिक्षकों की तरह अपनी मिथ्या मर्यादा को बनाये रखने के लिए वह शिष्यों से दूर-दूर नहीं भागते थे। वह अपने शिष्यों का सही मार्ग-प्रदर्शन करते थे और उनके हर काम में उनकी सहायता करते थे। और छात्र भी अगर किसी का रोब खाते थे तो इन्हीं का, किसी से मुहब्बत करते थे तो इन्हीं से। पोलिटैक्निक के छात्रों के चित्रों की नुमाइश लगती तो लोगों को पकड़-पकड़ कर लाते और दिखाते। एक दिन सहसा एक चित्र के सामने खड़े हो गये और गरज उठे, "ये कौन बनाया ?"

जिस लड़के ने बनाया था, वह डरता-झिझकता सामने आया।

"इसको पेन्टिंग कहते हैं ?....तुम्हारे सिर पर सेक्स सवार है। पेन्टिंग छोड़ शादी करो और बच्चा पैदा करो। तुम आर्ट नहीं पैदा कर सकता।"

हाल में सन्नाटा-सा छा गया। लड़का शर्म के मारे ज़मीन में गड़ा जा रहा था। शैलोज़ खुद आवेश से काँप रहे थे। गुस्से में पैर पटकते हुए वह सीढ़ियाँ उतर गये।

शैलोज़ ने अल्पायु में ही जीवन की कटु अनुभूतियाँ एकत्रित कर ली थीं। वह कला-क्षेत्र के शंकर थे, जिन्होंने जीवन के विष को स्वयं घोल कर पिया और तदन्तर उसके स्वाद को, उसके रंग को कैनवस पर उलट दिया। वह जीवन में अधिकतर आर्थिक अभाव से पीड़ित रहे। आर्थिक कठिनाइयाँ उनके मार्ग में बाधक बनीं। पर अदम्य साहस व शक्ति के साथ उन्होंने एक वीर सेनानी की तरह उनका मुक़ाबला किया और दृढ़ संकल्प-शील हो उन्होंने अपने मार्ग का स्वयं निर्माण किया और कभी गुमराह न हुए। पेरिस में भी उन्होंने अपने दिन बहुत आर्थिक कठिनाइयों में गुज़ारे। वहाँ महाबली हनुमान और श्री गणेश के चित्र बेच-बेच उन्होंने आइसक्रीम खाई और होटलों के बिल चुकाये।

नौकरी छोड़ने पर उन्हें कई बार बहुत आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। गत दो-चार वर्षों से शैलोज़ के बारे में यह आम चर्चा का विषय था कि अब वह अधिक काम नहीं करते हैं, जो करते हैं, उसमें पहले-सा निखार नहीं होता, दम नहीं होता। इधर उन्होंने जो छोटे-मोटे चित्र बनाये थे, उनमें से अधिकांश उन्हें एक शराब की बोतल का खर्च जुटाने के लिए बनाने पड़े थे। प्रकट है कि उनका कलात्मक स्तर, उनकी तूलिका के समस्त गुणों के बावजूद भी ऊँचा नहीं रह सकता। इसी सिलसिले में वह एक बार मुझे डिलाइट-सिनेमा के पास कहीं ले गये, अपने नये चित्र दिखाने। धूमीमल रामचन्द के साथ तो उनका पुराना सम्बन्ध था ही, अब एक नये बनिये को पकड़ा था, जो उन्हें रंग देकर तस्वीरें बनवाता था और बदले में उन्हें शराब व बीयर की बोतलें पकड़ा देता था। मैंने उनके वे नये चित्र भी देखे और देख कर हृदय खुशी से नाच उठा। उन चित्रों में से भी, उनके कई चित्र बहुत सुन्दर थे। 'शहनाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बजाने वाले', 'झेलम की रात' और 'कबाब वाला' जैसे महान् चित्र उन्होंने इन्हीं दिनों बनाये थे। इन कलाकृतियों में उन्होंने फिसलती-रिपटती-सी व्यंजक रेखाओं द्वारा अपनी भावनाओं को इतना सजीव मूर्त किया था कि चित्र देखते ही बनते हैं। उनके द्वारा चित्रों में प्रयुक्त रंग इतने उपयुक्त हैं कि अन्तर्वेग से प्रवहमान जान पड़ते हैं।

जब एक बार मैंने उनसे पूछा कि आपका सबसे अच्छा चित्र कौन-सा है ? तो उन्होंने सीधे-सादे ढंग से जवाब दिया कि उनका सबसे

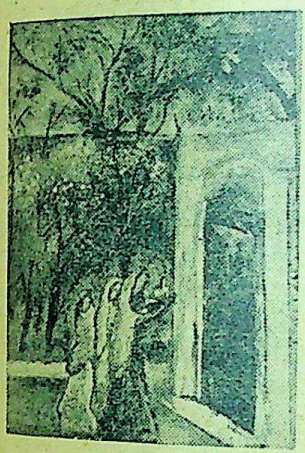

मंदिर की ओर
धूमील आर्ट गैलरी के सौजन्य से

अच्छा चित्र अभी बना ही नहीं। कितना अजीब जवाब था। सच तो यह है कि इसी जवाब में उनकी महानता का भेद छुपा हुआ था।

शैलोज़ मुखर्जी का स्वभाव हँसमुख और दिल्लगीबाज़ था। बात का जवाब ऐसा बावन तोले-पाव रत्ती देते थे, कि सुनने वाले दंग रह जायें। उनकी तूलिका और सूरत में जो सिधाई हम देखते हैं, उनकी बातों से ऐसा न लगता था। वह एक मिष्ट-भाषी आदमी थे, जिनके चेहरे पर चाहे सस्ती असर कर गई हो, लेकिन दिल ज्यों-का-त्यों कच्चे दूध की तरह स्वच्छ था।

मुझे याद है, एक बार मैं शाम को छः बजे दफ्तर से वापिस घर जाने के लिए बाहर निकला ही था कि शैलोज़ बाबू को स्कूटर पर जाते देखा। उन्होंने मुझे देखते ही स्कूटर रुकवा लिया और ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें देने लगे। मैं निकट पहुँचा तो खींच कर स्कूटर में बिठा लिया। 'होटल' में ले आए, (शैलोज़ का देहली में अपना कोई घर नहीं था और वह पिछले सात-आठ वर्षों से होटलों में ही रह रहे थे) उन्होंने एक हाथ में कोट पकड़ रखा था और दूसरे में एक बैग। होटल की तीसरी मंज़िल पर चढ़ते-चढ़ते वह हाँफ रहे थे। कमरे के अन्दर आते ही उन्होंने बैग को मेज़ पर पटक दिया और कोट को चारपाई पर और स्वयं एक कुर्सी पर पाँव सिकोड़ कर इस तरह बैठ गये जैसे जानीवाकर जेब-कतरे का पार्ट अदा करते समय बैठता है। मुझे अनायास हँसी आ गयी। कमरे में सब-कुछ बहुत अस्त-व्यस्त तरीके से पड़ा था। सुबह जिस ब्रुश व रेज़रसे शेव की गई थी वे वैसे-के-वैसे पड़े थे। सूटकेस भी खुला पड़ा था और एक शीशे का गिलास टूटा पड़ा था। कुछ खाली बोतलें शराब की, पलंग के नीचे लुढ़की पड़ी थीं।

खाने-पीने में वह कोई पाबन्दी नहीं पसन्द करते थे और नवयुवकों को वह इस बारे में अधिक उदार बनाना चाहते थे। चूंकि मैं शराब नहीं पीता था, इसलिए बार-बार वह मेरे मन को हिलाते-डुलाते रहते थे। कभी कहते, 'अरे' शास्त्रों में लिखा है, जिसके घर से शराब व मांस की गन्ध नहीं आती, उसके पितर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग में रोया करते हैं।' कभी कहते, 'बुद्धदेव ने हिन्दुओं को बुद्धू बना दिया है।'

तभी उन्होंने अपने उस बैग में से शराब की एक बोतल निकाली और मेज़ पर रख कर बैठ गये। मुझसे बोले, "आज तो तुझे भी पीना पड़ेगा, फिर बाद में रोटी खाएगा, डटकर।" उन्होंने बेयरे से दो ख़ाली गिलास, दो सोडे की बोतलें और कुछ नमकीन लाने को कहा। जब सब चीज़ें आ गईं तो उन्होंने बोतल का काग उड़ा कर पहले अपने गिलास को आधे से ज्यादा भर दिया और एक चौथाई दूसरे गिलास को भरा। मुझसे उन्होंने बहुत ज़िद की कि मैं एक बार शराब चख कर देखूँ, पर जब मैं राज़ी न हुआ तो उन्होंने मुझे शराब के फ़ायदे गिनाये और कहा--"तुम कब तक पंडित बना रहेगा, आखिर तुम्हें साहित्य पैदा करना है, सारा उमर फाइलों में सर नहीं खपाना, कोई स्कल का बच्चा-लोगन को नहीं पढ़ाना, ज़िन्दगी नहीं देखेगा, गुनाह नहीं करेगा, मौत के करीब जाने से डरेगा और स्कॉच का मज़ा नहीं देखेगा, तो क्या तुम कद्दू और करेला खाकर "जीनियस" बन पायेगा ?"

इतना कह कर उन्होंने वह दूसरा गिलास भी ख़ाली कर दिया। यह बातें सुन मैंने मुस्कराते हुए कहा--"शैलोज़ बाबू ! आप लेक्चर बहुत अच्छा दे लेते हैं।" इतना सुनना था कि वह इतने ज़ोर का क़हक़हा लगा कर हँसे कि छत के कोने में लगे मकड़ी के जाले तक हिल उठे। मैं तो भौंचक्का रह गया। मैंने इतनी खुली हँसी जीवन में शायद ही कभी सुनी थी।

अन्तिम दिनों में वह कैसे तपे थे, गले थे, लड़े थे, परिस्थितियों की ज्वालाओं में जल कर जीवन का यह पतंगा, सिवा जलन के और कुछ न पा सका। ओह, निश्चय वैसा जीवन तो अखण्ड दीपक का जलन भर है। वह कलाकार थे, हृदय का दरिया न मालूम कितनी पूर्णिमाओं से जल-रहित हुआ था : पर अन्त में वह सहस्त्र शीर्षा रूप हो गये। और मैंने उन पुतलियों में अन्तिम बार देखा, तो एक नीरव सुनसान मैंने पाया। कैसा रहस्य यह जीवन है, मैं सोचता हूँ।

गये अगस्त में चण्डीगढ़ से लौटा, तो मालूम हुआ कि सड़क पर चलते-चलते एक दिन शैलोज़ का एक्सीडेंट हो गया था। भागा-भागा जो अस्पताल पहुँचा, तो मालूम हुआ कि वहाँ से डिसचार्ज होकर अपने एक मित्र के यहाँ चारपाई पर पड़े हैं। (क्योंकि अस्पताल में कोई जगह नहीं थी और अपना कोई घर नहीं था) पहाड़गंज, उनके मित्र के यहाँ गया तो देखा कि ज़िन्दगी भर आज़ाद रहने वाला वह महान् कलाकार, कमर तक दोनों पैर पलास्टर में जकड़ाये अपने मित्र के यहाँ कैदी पड़ा हुआ था। जीवन भर जिसने सड़कों की, होटलों की ख़ाक छानी हो, कला जिसके जीवन का आदर्श हो, वह खटिया कैसे तोड़ता रहे, कैदी कैसे बना रहे? लेटे-लेटे वह अक्सर छत की कड़ियों की तरफ़ देखा करते, क्या वह किसी चिन्ता में यों देखा करते थे, मैं सोचता हूँ। पर नहीं, वे आँखें चिन्ता से नहीं, गम्भीर ध्यानावस्थता से ही टकी रहती थीं। तब क्या वह जीवन की अन्तिम एकरूपता का अनुभव कर रहे थे? यह कुछ प्रश्न हैं जो प्रतिध्वनि के अपने ही तौर से मूक हो जाते हैं।

कभी-कभार शुभ-चिन्तकों, हमदर्द दोस्तों और कुछ दूसरे मिलने वालों के आने पर शैलोज़ कमर के ऊपर के भाग को कुहनियों के सहारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठा कर बातें करते। लेटते समय कभी-कभी शिकायत करते कि प्लास्टर कमर में चुभता है। इसी चुभन से कमर में छोटा-सा ज़ख्म हो गया। ज़ख्म में टिटनेस का ज़हर फैल गया और भारतीय चित्र-कला के व्योम में ध्रुवतारे के समान चमकने वाला कलाकार देखते-देखते चल बसा और हम उसकी कोई सहायता न कर सके।

कुछ लोग स्नेह और सहानुभूति का घड़ा भर कर रखे रहते हैं और आदमी के मरने की राह जोहते हैं। उसके मरते ही घड़ा उँड़ेल देते हैं। इनका स्नेह और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए आदमी को मरना पड़ता है। शैलोज़ बाबू की मृत्यु के पश्चात् भी कुछ शोक-सभाओं का आयोजन किया गया। जिनमें कुछ सम्माननीय व्यक्तियों और प्रसिद्ध कलाकारों ने बड़े-बड़े शब्दों में स्वर्गीय शैलोज़ मुखर्जी के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं और बड़े नाटकीय ढंग से आँसू बहाये। यह वही कुछ सम्मानित व्यक्ति थे जिन्होंने शैलोज़ के जीते-जी उनको किसी प्रकार का सहयोग न दिया और सहायता नहीं की थी। सहानुभूति का हमें हिसाब नहीं करना है, और न यही कहना है कि हम औरों से अधिक सहृदय हैं। याद आता है, आज से पाँच सौ साल पहले कबीर बड़ी हैरत से चिल्लाया था--"जियत बाप से दंगम दंगा, मरे हाड़ पहुँचायें गंगा!"

●●●

मैं सोच रहा था

विश्वविख्यात वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन एक बार अपने मित्र के यहाँ रात्रिकालीन भोजन के लिए निमंत्रित थे। जब भोजन आदि से वे निवृत्त हो गये, तब मेज़बान के साथ बातचीत होने लगी। बातों-बातों में रात के दस बज गये। मेज़बान भला यह कैसे कहते कि अब आप जाइये, अतः बोले, "मित्रों के साथ बातचीत में समय कितनी जल्दी बीत जाता है!"

आइस्टीन ने अपनी घड़ी जेब से निकाल कर देखी और कहा, "सो तो है ही, देखिए न, दस बज गये!"

इसके बाद फिर बातचीत शुरू हुई एवं एक घण्टा और निकल गया। मेज़बान को झपकी आने लगी; बोले, "आज ठण्ड कुछ ज़्यादा है। ग्यारह भी बज गये!"

आइंस्टीन ने इस बार भी हाँ-में-हाँ मिला दी और फिर एक नया विषय छेड़ दिया। जब इसी तरह बारह बज गये, तो मेज़बान ने कहा, "अब काफ़ी रात हो गयी, बारह भी बज गये! आपको जाना भी दूर है!"

इस बार आइन्स्टीन चौंके, "ऐं, मुझे जाना है?" फिर कमरे में इधर-उधर नज़र दौड़ा कर बोले, "ओह, मैं अब तक यही सोच रहा था कि आप अपने घर जायें, तो मैं सोऊँ!"

--सत्यदेवनारायण सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

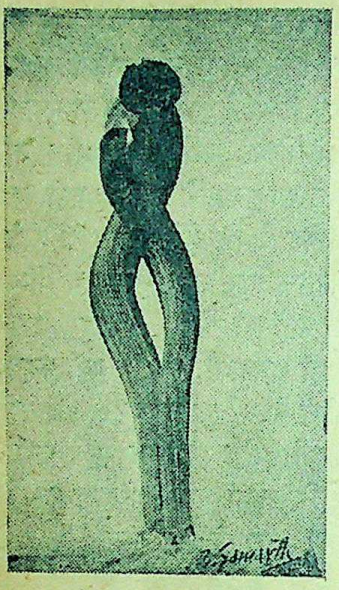

प्यार और नमस्कार

गन्तव्य पर पहुँचे हुए लोगों को नमस्कार,
उतनी ही श्रद्धा से
उतनी ही भक्ति से
उतनी ही आस्था से
जितनी प्रतीची में डूबते सूरज की
अन्तिम द्युति-रेखा को
अवसर सब करते हैं।
किन्तु हमें ऊषा के रश्मि-रथी प्यारे हैं
जिनकी चमकदार दृष्टि
हर क्षण में नई सृष्टि
कलरव में डूबे मग
केशर से धोए पग
रांगोली रचते हैं!
रोज नया चमत्कार,
उन सबसे मुझे प्यार,
गन्तव्य पर पहुँचे हुए लोगों को नमस्कार!

आत्मज्ञान-स्मिति

जहाँ कहीं भी कभी मैं ग़लती करता
अहं का एवरेस्ट माथे पर धरता
तू वहीं गौतम-सा मुस्कुरा देता है।

जहाँ कहीं भी कभी मैं ग़लती करता
ईश्वर के दूत को पागल कह देता
तू वहीं मुहम्मद-सा मुस्कुरा देता है।

जहाँ कहीं भी कभी मैं ग़लती करता
काँटों का ताज और सूली बनवाता
तू वहीं मसीहा-सा मुस्कुरा देता है।

जहाँ कहीं भी कभी मैं ग़लती करता
हाथों में पिस्टल लिये सत्य झुठलाता
तू वहीं गाँधी-सा मुस्कुरा देता है।

चारों ओर कोलाहल, अँधियारा छाया है
लोग बुरा कहते हैं, गालियाँ देते हैं
लेकिन तू विचलित कभी क्यों नहीं होता प्राण,
कारण तुझे आस्था है,
जितना तू आप ही
खुद को पहचानता है
उतना ये कोई और
तुझे नहीं जानते,
इसीलिये शायद तू मुस्कुरा देता है
गाँधी-सा, गौतम-सा, ईसा-मुहम्मद-सा!

दो कविताएँ : राजेन्द्र अनुरागी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षोभ्येश्वरी प्रताप

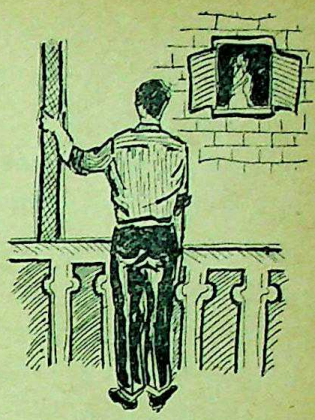

लेखक का कथन है कि यह एक प्रेम-कहानी है ;...अब यह आपका काम है कि इसमें निहित प्रेम के सूक्ष्म संवेदनों को आप संकेतों के ताने-बाने में से खोज लें ।

●

ताँगे वाले को विदा करने के बाद भी शिरीष कुछ-एक क्षणों तक बरामदे की सीढ़ियों पर खड़ा रहा । सामने की लाल खड़ञ्जेवाली गली चमक रही थी ; हल्की बारिश ने वस्तुओं को और चमका दिया था । केवल लैम्प-पोस्ट के शीशे पर पानी की धुन्ध बिछी थी ।

रास्ते में वर्षा की बौछार से वह भीग गया था । और अब उन भीगे हुए कपड़ों में उसे आनन्द मिल रहा था । ताँगे वाले की लापरवाही से फेंके गये सूटकेस और बिस्तरबन्द की ओर देखते हुए जेब से रूमाल निकाला और चेहरे पर टिकी पानी की बूंदों को उसने साफ़ किया । सुफेद रूमाल के कोने में रेशम का एक ज़रा-सा अक्षर चमक रहा था । अक्षर की वह चमक पलकों के बीच डबडबा उठी । दाहिनी ओर की स्लेटी खपरैलों की ओर उसने देखा । फिर वह दृष्टि मटमैली दीवार की एक अँधेरी खिड़की पर टिक गयी, जिसकी छड़ों से मकड़ी के जाले झूल रहे थे । मुँड़ेर पर बैठा कागा काँव-काँव कर उड़ गया । शिरीष ने रूमाल जेब में रख लिया ।

सामान उसने बरामदे में डाल दिया । ज़ीने की सीढ़ियाँ चढ़ ऊपर जाने के पहले, एक बार उसने चारों ओर देखा । सारा मुहल्ला सुनसान पड़ा था । लोग अपने-अपने कामों पर जा चुके थे । उसके घर में सन्नाटा छाया था । सीढ़ियों पर धूल जमी थी । उसने अपने आने के पहले पत्र डाल दिया था, तब भी उसे लेने कोई स्टेशन नहीं आया ।

दादा बैठक में थे । देखने पर क्षणिक मुस्कान के साथ वे गम्भीर हो गये ।

एक भटकी हुई गंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैर छूने पर केवल सर हिला दिया। बेबी मुट्ठियों में लेमन-ड्राप्स भरे उधर से जा रही थी। देखते ही टाँगों में लिपट गयी। बाबूजी नाश्ता करके निकल रहे थे, शायद उन्होंने देखा और बैठक में आ गये। पैर छूने पर एक गौरवपूर्ण मुस्कान उनके होंठों पर होती हुई उस वातावरण में फैल गई। वह फिर उसी कुर्सी पर बैठ गया। बेबी अब उसकी गोद में चढ़ उसे चुम्मी दे रही थी। लेमन-ड्राप्स के चिटचिटे धब्बे उसके मुँह पर चिपकते जा रहे थे। फिर अचानक ही वह कूद कर अन्दर की ओर दौड़ गई। उसकी आवाज़ बैठके तक सुनाई पड़ रही थी: "छोटे भइया—ए—भइया! बड़े भैया आ गये! जीजी, भइया आ गये!"

"बहुत दुबले हो गये हो! बीमार थे क्या? पर्चे कैसे हुए?" अन्यमनस्कता से पूछते हुए दादा गंजी उतारने लगे। उनकी कसी हुई मांस-पेशियाँ अब ढीली पड़ने लगी थीं।

"ठीक ही हुए हैं,—पत्र मिला था या नहीं?" कहते हुए शिरीष सहसा चुप हो गया। उसे पूरा-का-पूरा घर ही बदला हुआ नज़र आ रहा था।

"हाँ, मिला तो था, जाओ मुँह-हाथ धोओ, नाश्ता करो, थके होगे।" उसे स्टेशन पर लेने कोई न गया था और दादा ने पत्र के इस विस्तार की कैफियत देने की आवश्यकता न समझी। बाबूजी चुप बैठे रहे। जाने क्या सोचते हुए! यूँ भी बाबूजी उससे कम बोलते हैं। उनकी यह तटस्थता उसके माथे में कील की तरह धँसी हुई है।

शिरीष पूरे दो साल बाद घर आया था। माँ ने उसे अपनी अँकवारी में कस लिया। जब छोटा था, तब माँ के आँचल की दूधिया गंध में वह घंटों सर छुपाये रहता। और अब माँ की अँकवारी से अन्न की गंध उठ रही थी। उसने माँ के बालों से कनों की गर्द पोंछ दी और फिर अलग हो पीढ़े पर बैठ गया।

माँ की आँखें डबडबा आयीं। जो अभी झकझोर दो तो आँसू की बूँदें बरस पड़ेंगी। ओस भरी रातों में गझिन तुलसी के गाछों को हिलाने पर मोतीचूर झरते हैं।

"क्यों रे, तुझे मोह-मया नहीं लगता क्या? चिट्ठी-पत्री क्यों नहीं भेजता? भला देख तो, कैसा हड़ा गया है!" कहते हुए माँ आँसू पोंछने लगीं।

बच्चे उसके इर्द-गिर्द चक्कर देने लगे। बेबी माँ के कन्धे पर चढ़ कानों में फुसफुसाई, "माई रे, भइया अपना सामान स्टेशन पर भूल गये क्या?" अयँ? दूसरे बच्चे उसे अजनबी की तरह देख रहे थे।

"ऊँह, छोड़ भी, तुझे तो...!" शिरीष पहली बार खुल के हँसा।

"जा-जा, लोचन से कह सामान ऊपर मँगा ले, बरामदे में पड़ा है; तेरे लिए ढेर-सी टॉफ़ियाँ हैं।" बेबी चीखती हुई उड़न-छू हो गई, और माँ हँसने लगीं।

बच्चों की इस धमा-चौकड़ी से नाराज़ होकर बड़ी अम्मा अपने कमरे से बाहर निकल आईं। शिरीष को देखते ही उनका क्रोध कपूर हो गया।

"अरे, शिरीष! कब आया? पहले से लिखा भी नहीं।" कहते हुए पास आ गईं। "रहने भी दे, तू इतना बड़ा हो गया है, तुझसे पैर छुलाऊँगी!"

शिरीष मन-मारे बैठा रहा। अम्मा कहती रहीं, "तेरे होस्टल में माड़ पसा कर चावल बनाते हैं क्या? तभी तो मुँह सूख गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उठ भी, बैठकी बाद में कर लेना, भाई से बात करने को सारा दिन पड़ा है। चल, पहले कुछ खा-पी ले।"

शिरीष अम्मा की ओर देख रहा था। उसे अपनी ओर घूरता देख, वे घबड़ा गईं। जैसे उनकी चोरी पकड़ ली गई हो। उनका चेहरा भाव-हीन था। वहाँ कोई चमक न थी। और वे यह सब कुछ-एक साथ कहे जा रही थीं। उनकी पलकें झुक गईं। "मुन्ने की माँ, इसे गरम दूध पिला दो, थकान मिटेगी!" कहते हुए वे उठ गईं।

"जीजी, भंडारे की चाभी तो आप ही के पास है।" माँ ने मद्धिम स्वरों में कहा। बड़ी अम्मा पल भर को ठहरीं। एक तीखी नज़र अधटूटे फ़र्श पर पड़ी, फिर माँ की ललछहू आँखों पर; और चाभियों का गुच्छा झन्न से माँ के पैरों पर आ गिरा।

बच्चे खिलखिला रहे थे। शायद उन्हें टॉफ़ियाँ मिल गई थीं। रामचन्नर अकेले कौशल्या के लड़के थोड़े न थे! सब की अपनी-अपनी मरजाद होती है। बच्चों की खिलखिलाहट पर भुनभुनाती हुई वे चली गईं। अम्मा की गोद न भरी; कोख पर उनका वश ही क्या था। पर उनकी इस तरह की बातों से सारा घर भर जाता था।

घर का यह रूप उसे जाने कैसा लग रहा था। दो साल में दादा कितने बूढ़े हो गये! बाबू जी अब कितने चुप रहने लगे थे।

किताबों की आलमारी साफ़ करने के बाद शिरीष मेज़ पोंछने लगा जिसकी सतह पर नीली स्याही के छोटे-बड़े धब्बे पड़े थे। पेंसिल बनाते समय लेड के बिंदुओं और चाकू से खुरच कर लिखे गये शब्दों की अमिट छाप। यह उसकी पढ़ने की मेज़ थी, जिस पर स्कूल के दिनों में पढ़ते-पढ़ते माथा टेक कर वह कभी सोया भी है। जाने कब और कितनी बार कमल मेज़ की उस कोर पर आकर बैठी है। उसके बालों को खींच कर जगाया है और किताब का पन्ना बदल, पुस्तक उसके आगे रख कर चली गयी है। दादा को पता ही नहीं चलता था कि वह पढ़ते-पढ़ते सो गया है, नहीं तो फटकार पड़ती। "पढ़ना-लिखना तेरे वश का नहीं। एक वे लड़के होते हैं जो बिना कहे किताब लेकर बैठते हैं। और एक यह है कि पढ़ने के लिए हुड़पेचना पड़ता है, न्योता देना पड़ता है। लाला, इस खेती-बारी का भरोसा न करो। पढ़ोगे-लिखोगे नहीं तो दर-दर भूखे फिरोगे। कोई टके को भी न पूछेगा।"

दीवार पर दो साल पुराने कैलेण्डर टँगे हैं। उनकी तारीख़ों पर गर्द की परत जम गई है। सब-कुछ वही जैसे वह छोड़ गया था। आलमारी के एक खाने में उपन्यास और कहानी-संग्रहों की एक कतार खड़ी है। उन्हें दुबारा नहीं पढ़ा जा सकता है। जैसे कोई भी आदमी अपनी पिछली ज़िन्दगी दुबारा नहीं जी सकता है। पर कभी वह उन औपन्यासिक पात्रों के साथ कल्पना के जगमगाते रास्तों पर सारी रात भटकता रहा है। उनकी पीड़ा की सहानुभूति में तकिये में, मुँह छुपा कर घंटों रोया है। जब-तब इन क्षणों में कमल आ टपकती थी तो शर्म और आँसुओं को छुपाने के लिए तकिये में चेहरा और गहरे धँसा देता था। वह उसके सिरहाने कुछ देर खड़ी रहती थी। "सर दर्द कर रहा है क्या? ए! बताओ न!" झुक कर अपनी दोनों हथेलियों से वह सर उलट देती। उसका आँसुओं भरा चेहरा सामने आ जाता था। झुकने के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कमल के बालों के लच्छे शिरीष के चेहरे पर फैल जाते। एक भटकी हुई गंध उसके चेहरे पर छा जाती थी। कमल पल भर उसे निहारती। फिर जाने कहाँ से कोई काम निकल आता! वह बोल पड़ती, "यह शब्द-कोष ले जाऊँ? माँ ने आटे के लिए भेजा है। बाप-रे-बाप, बहुत देर हो गई! ये अपने रूमाल रख लो, पूरे हफ्ते भर इनकी कढ़ाई में लगे हैं।"

वह फिर मुँह छुपा लेता। वह भटकी हुई गंध रात गये तक उसके पढ़ने की मेज़ पर उँगलियों से ठुड्डी टिकाये बैठी रहती, नि:शब्द अक्लान्त।

मोटी किताब की ज़िल्द फट गई है। शिरीष उसे निकालता है। कुर्ते की बहोरियों से गर्द पोंछता है। अक्षर चमक उठते हैं। भौतिक-शास्त्र.....। किताब खोलने पर--- ताप के प्रयोग....दिखा। पन्ना बदल दिया...। प्रकाश!....पन्ने फरफराते हुए उसने किताब बन्द कर दी; शीर्षक कहीं चमक गया--- ध्वनि-प्रयोग। तिक्तता से, फटी ज़िल्द वाली किताब वहाँ रख दी गई।

कमरे से बाहर निकल पश्चिम वाले बारजे में रखी आराम-कुर्सी पर वह लेट गया। गली के उस पार के दरवाज़े चटाख से बन्द हो गये। बन्द खिड़कियाँ खुल गईं। कमरे के अन्धकार में एक गेहुआँ चेहरा आया और झाँक कर चला गया। खुले बाल नीले स्कार्फ में लिपटे थे। अँधेरे में नील-कमल उग आया था। परत-परत के बादल आसमान में फिर घिर आये थे। धूप बादलों के पीछे सुगबुगा रही थी।

थकित मन ऊँघने लगा। शिरीष ने पलकें बन्द कर लीं। खिड़कियों के पीछे ईला थी; एक प्रौढ़ा नर्स जो समाचार-पत्रों के विवाह-विज्ञापन स्तंभ अब भी देखती है। वर्षों पहले से शिरीष सुनता चला आया है कि वह फ्लर्ट है। अब उसे पति नहीं मिल रहा है। जाने कितने चेहरों की छाप उस पर थी। मुहल्ले के लड़के अब उसे आण्टी कहने लगे हैं। वह अब भी मुस्कराती है---उसी तरह!

नींद टूट जाती है। पिछवारे मियाँ नूरे के घर से उनकी बीवी की आवाज़ आ रही है, "अल्लाह न करे जो किसी को दिनों-रात कबर में पाँव लटका कर बैठने की आदत पड़ जाय। या खुदा, जनम भर खट-खट। रात भर खटो तो दिया भर, दिन भर खटो तो दिया भर। तोबा-तोबा!

नूरे मियाँ जाति और पेशे के जुलाहे हैं। सदैव ही परेशान और ज़िद भरी निगाहों से सूत के तने चद्दर की ओर देखते हैं। आदत ही ऐसी है। शिरीष बचपन से देखता चला आया है। काम से थक कर जब वे दोनों हाथों को सर के ऊपर ले जाकर पंजे फँसा कर चटखाते हैं तो कितने भले लगते हैं! कभी हल्की जँभाई लेने के बाद करघे के गढ़े में झूलते अपने काले टखनों की नसों को देख वे मुस्कराते हैं तो शिरीष को ईला की मुस्कराहट याद आ जाती थी और वह नूरे के यहाँ से माँ के पास आ जाता था। हर शाम को दिन भर की कमाई, अपने सलमे-सितारों की टोपी में छुपा, नूरे सौदा खरीदने जाते थे। रात गये तक लौटते तो अपने ही दरवाजे पर बैठ, अपने को गालियाँ बकते रहते और सबेरे फिर वही करघे की खट-खट!

खाला की किरकिराती आवाज़ बन्द हो गई थी। उसने पुनः पलकें मूंद लीं। बादल फिर बिखर जाते हैं। उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नींद टूट जाती है। माँ पास आके बैठ गयी हैं। "क्यों रे, अभी और कब तक पढ़ेगा ? जाने कब सुख बदा होगा। तू तो अब घर का हाल समझता ही है। जनम भर बात ही सुनना बदा है क्या ?"

माँ ने सर गोदी में ले लिया। "भला देख तो, तेरी उमर अभी कितनी हुई, पर बाल पकने लगे।" माँ की आँखें फिर डबडबा आती हैं। तू इतना सोच काहे करता है ? दुनिया का सारा जंजाल तेरे सोचने के लिए ही बना है क्या ?" माँ उसके पके बालों को सर से उखाड़ रही हैं। वह अपने लड़के में बूढ़े का रूप नहीं देख सकतीं।

शिरीष चुप पड़ा है ? इतना बड़ा घर, इतने बच्चे, दादा, बाबूजी और परीक्षाएँ—सन-से सफ़ेद बाल !

दोपहर की देहलीज़ पर शाम आड़ी-तिरछी खड़ी है। गहरी ऊब से बचने के लिए वह नीचे उतर गया। क्षण भर के अनिश्चय के बाद वह स्लेटी खपरैल वाले मकान में चला जाता है।

आँगन में मेंहदी का हल्का-सा पेड़ है। कमल नल से पानी निकाल रही है। पीतल की बाल्टी भरती जा रही है। शिरीष को देखते ही वह चिहुँक उठी। उसने भरी-पुरी आँखों से उसकी ओर देखा। फिर साड़ी के पल्लू को सिर पर डाल लिया। सिन्दूर की रेख छुप गयी।

"शिरीष, बहुत दिन पर आये ?" कहते हुए बायें पैर के अँगूठे को आँगन की माटी में धँसा देती है और शिरीष पास की चारपाई पर सिकुड़ कर बैठ जाता है।

पानी बाल्टी के बाहर गिरने लगता है। नल चलाना बन्द कर वह बाल्टी उठा चौके की ओर चली जाती है। "शिरीष, आराम से बैठो न। अभी चाय बनाती हूँ,.....बाबू ! शिरीष आये हैं !"

बूढ़े मास्टर साहब के पैरों की आवाज़ की प्रतीक्षा करता हुआ वह चारपाई पर लेट जाता है।

नीले आकाश का अकेला सांध्य-तारा टूट गया।

मेंहदी की पत्तियाँ सिहर जाती हैं। मन का नक्षत्रों-भरा आकाश झिलमिला रहा है। माँ, बाबूजी, दादा, ईला, नूरे मियाँ और रेशम वाला वह अक्षर, सभी उसमें साफ़-साफ़ चमक रहे हैं। और वह सबको छूना चाहता है।

●●●

• डाँवा-डोल •

दिल्ली का एक मुशायरा। नशे में चूर 'मजाज़' मंच पर आये और अपनी मशहूर कविता—बोल, अरी ओ धरती, बोल ! राज-सिंहासन डाँवा-डोल !—लहक-लहककर पढ़ने लगे। वे स्टेज से उतरे तो हँसराज रहबर ने उन्हें छेड़ते हुए कहा, "मजाज़ भाई, क्या यह नज्म तुमने शराब पीकर कही थी ?"

'मजाज़' ने मुस्कराते हुए फ़ौरन कहा, "बल्कि कहने के बाद भी पी थी !"

—शाकिर पुरुषार्थी ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

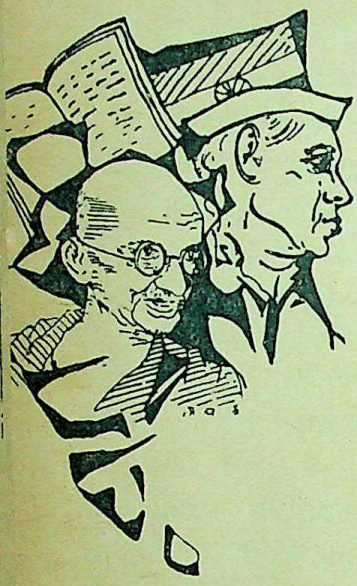

प्रह्लाद नारायण मित्तल

एक ख़त जो दरअसल लिखा नहीं गया, लेकिन अगर बापू आज ज़िन्दा होते तो, ज़रूर लिखा जाता और तब शायद उसका मज़मून भी बहुत-कुछ यही रहता।

बापू का ख़त : जवाहरलाल के नाम

राजभवन : ३० जनवरी, १९६१

चि० जवाहरलाल,

बहुत वर्ष बीते। चौदह साल हो गये। १८ जनवरी १९४८ को तुम्हें आखिरी ख़त लिखा था : उपवास छोड़ो....बहुत वर्ष जीयो और हिन्द के जवाहर बने रहो। इसके बारह रोज़ बाद आज ही के दिन गोडसे के काम से यहाँ आया। बहुत बार तुम्हें कुछ लिखूँ, ऐसा सोचा। काम में समय नहीं मिला। इधर बहुत लोग यहाँ आ गये : सरदार, मौलाना, देवदास, खान साहेब और फ़ीरोज वगैरह। तुम्हारे बारे में उनसे बहुत बातें हुईं।

तुम पहले-पहल सन सोलह में बड़े दिन की छुट्टियों में लखनऊ कांग्रेस में मिले थे। तब सरोजिनी नायडू और रोजर कैसमेन्ट तुम्हारे दिमाग़ पर छाये हुए थे। हैरो और कैम्ब्रिज के तुम्हारे साम्यवादी विचार डाँवा-डोल हो रहे थे। तुम राष्ट्रीयता की भावना से भर उठे थे। देशबन्धु के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ तुमने काम किया। जलियाँवाला बाग़ की जाँच में तुम्हारी लगन देखी। आशा जागी। हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई को एक सिपाही मिला : जवाहरलाल! निर्भीक, दृढ़, उत्साही। सारा देश जाग उठा। और अब तो सारी दुनिया घर-आँगन है जवाहरलाल की। सन् इकसठ का जवाहरलाल! प्रधानमंत्री-निवास भवन में ७ फरवरी १९५० को शिवमंगल ने सही बात कही थी : मेरा वीर जवाहर मुझको वापस दे दो....! तुम कैसे चौंक उठे थे? बस यही बोल सके : हैव आइ चेन्ज्ड सो मच? जिसे तुमने सही किया था : जीवन को एक कविता बनाना चाहिए। पर जीवन तो पहाड़ बन गया जवाहर! रेगिस्तान हो रहा है सब ओर।

इन तेरह सालों में मैंने बहुत सोचा है। तुम्हें शिकायत थी, बापू सिर्फ एक ही तरीके से सोचते हैं। यहाँ नयी रोशनी, नये विचार मिले हैं। पर जवाहरलाल को क्या हुआ? काँग्रेसी हुकूमत भी हो गई। क्या हिन्दुस्तान की पुरानी समस्याएँ ख़त्म हो गईं? या जवाहरलाल की राय में उन समस्याओं में कोई वज़न नहीं रहा?

तुम्हें नाभा की याद है? उन्नीस सौ तेईस के आख़िर में जैतों के बाज़ारों से जाते हुए। सन्तानम की बायीं कलाई और तुम्हारी दाहिनी कलाई में फाँद दी गयी एक ही हथकड़ी में तुम दोनों एक ऐसा अनुभव कर रहे थे, जिसका फिर मज़ा लेने से तुम घबरा गये थे।

उन्नीस सौ इक्कीस-बाईस की अपनी पहली जेल तुम्हें भूली न होगी! खाना कैसा था? खाने की कोशिश करने पर भी बिल्कुल न खाने जाने लायक। उससे तो कहीं अलीपुर जेल के साधारण कैदियों का खाना तुम्हें अच्छा लगा था। सन् तीस में नैनी जेल के कुत्ता-घर में तुम रखे गये थे। वहाँ से दीख पड़ने वाले पानी खींचने के उस पम्प को, जिसे आदमी चलाते थे, तुम जानवरों की नुमाइश कहते थे।

किन्तु कितने पति-पत्नियों की पुलिस आज भी बेइज़्ज़ती कर रही है। जेलों में औरतों की इज़्ज़त ख़राब की जाती है। कितने पतियों का जेलों-हवालातों में ख़ून करके रोजनामचों में उनका भाग जाना दर्ज कर दिया जाता है। याद नहीं आता, अँग्रेज़ के ज़माने में कभी इतनी गोलियाँ चली थीं? औरतों पर गोलियाँ! स्कूल के बच्चों पर गोलियाँ! मज़दूरों और जनता पर गोलियाँ!....आज़ादी की लड़ाई में अँग्रेज़ भी इतनी गोलियाँ चलाता तो हममें से जाने आज कितने बचते? अहिंसा की गोद में पले-खेले और बड़े हुए तुम लोगों के पास जनता का मुक़ाबला करने को गोली ही रह गयी है? आज कितने ज़ोर-शोर से तुम गोली चलाने की हिमायत करते हो! उस छोटे-से निर्दोष बारहसिंघे की आँसू-भरी बड़ी-बड़ी आँखें क्या तुम्हें अब भी याद आती हैं? क्या कानपुर के उस वकील के बारह बरस के भोले और निर्दोष बच्चे की आँखों का वह दर्द भी तुम्हें महसूस होता है जिसे संतिया के झगड़े में तुम्हारी पुलिस ने गोलियों से भून डाला? क्या वह बच्चा बाग़ी था या उसने तुम्हारी पुलिस के ख़िलाफ़ बलवा कराया था? वह ग़रीब बालक मेरे पास है।

मैंने उसे समझाया : आज़ाद हिन्दुस्तान की आज़ाद पुलिस को दोष नहीं देना चाहिए। पन्द्रह अगस्त १९४७ की आधी रात के एक मिनट बाद से ही हमारी पुलिस देश-भक्त और कर्त्तव्यपरायण है। पंत और जवाहरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नाराज़ मत करो। इन्होंने हिन्दुस्तान के हर थाने और अदालत में मेरी तस्वीरें टँगवा दी हैं। पंचशील की हिमायत में मेरी खड़ी हुई हथेली को इन्होंने नया जामा पहिनाया है! अब बापू की पाँच उँगलियों के इशारे पर पाँच रुपये की रिश्वत का क़ायदा इनकी पुलिस ने जारी किया है! बस, ज़बान बन्द कर लो, वरना जवाहरलाल सारे थानों और अदालतों से मेरी तस्वीरें उतरवा देंगे। वहाँ तो मुझे टँगे रहने दो। नैनी जेल की बात दूसरी थी। तब अँग्रेज़ का राज था और निगाहें सिर्फ जवाहरलाल की थीं। अब जवाहरलाल का राज है और निगाहें दूसरों की। पुलिस की शिकायत करोगे तो पुलिस किसी मुख़बिर की शहादत और थोड़ी शनाख्त करा कर तुम्हारे घर वालों को डकैती-केस में जेल भिजवा देगी। अब मजिस्ट्रेट भी पुलिस के ख़िलाफ़ कुछ कहेगा तो सरकार कुछ सुनेगी नहीं।

लगानबन्दी आन्दोलन में जब तुम पाँचवीं बार नैनी जेल गये तो वहाँ तुमने तौंकी मार के ख़िलाफ़ बहत्तर घंटे का पूरा उपवास किया था। अब औरतों-बच्चों पर रात-दिन गोलियाँ चलती रहती हैं, तुम्हें इसमें बर्बरता की गंध नहीं आती?

तुम्हारे कन्धों पर बहुत बड़ा बोझ है। हिन्दुस्तान का नया नक्शा बना रहे हो तुम! तीसरी पंचवर्षीय योजना शुरू होने वाली है। हिन्दुस्तान की ग़रीबी और सामाजिक असमानता से तुम लड़ रहे हो। राष्ट्रीय विकास-परिषद् के अधिवेशन में तुमने हाल में ही अपव्यय की चर्चा की थी। शादी इत्यादि के अवसरों पर धन-वैभव के प्रदर्शनों के ख़िलाफ़ तुम बोले थे।

मैं तो बनिया हूँ। एक-एक पाई के लिए मरता हूँ। रद्दी काग़ज़ों से भी मैंने रजाइयों का काम लिया है। एक-एक आलपिन को मैंने सँभाल कर रखा है। तुम्हारी बात ग़लत कैसे ठहराऊँ? पर मेरी अन्तरात्मा मुझे टोकती है: जवाहरलाल की बात ठीक है, पर उसका काम ग़लत है।

सुनने में आया है कि तुम्हारे मंत्री साल में छत्तीस हज़ार पगार लेते हैं और अड़तालीस हज़ार भत्ता। हज़ारों का बिजली-खर्च। फ़र्नीचर और बँगला। एक मंत्री की दावत में एक थाली पर तीस-चालिस रुपयों का खर्च। तुम्हारे एक दौरे पर चालीस-पचास हज़ार ख़र्च होते हैं! विदेशी मेहमानों के दौरों और दूतावासों पर सालाना करोड़ों रुपये! दूसरी ओर तीस रुपया महीना देते हो अपने देश के शिक्षकों को। वह भी छह-छह महीने बाद। उनके और दूसरे ग़रीब लोगों के लिए हिन्दुस्तान के ख़ज़ाने में पैसा नहीं रहता। सुन कर ही कँपकँपी आती है मुझे। अँग्रेज़ के ज़माने में तुम इस बात के ख़िलाफ़ थे कि ज़मीन की एक व्यवस्था तो यू. पी., बिहार या बंगाल के लिए अच्छी है और दूसरी गुजरात, पंजाब के लिए। बड़ी हैरत की बात है कि तुम्हारे ही ज़माने में पगार और दूसरी सहूलियतें दिल्ली के लिए एक हैं, प्रान्तों के लिए दूसरी, और स्वशासन विभागों के लिए तीसरी। अपने एक नौकर का इलाज तुम कराओगे और तुम्हारा दूसरा नौकर बिना दवा के ही मर जायेगा। क्या तुम्हारे दिल्ली के बाबू को आगरा में ज़्यादा महँगा सौदा मिलता है और आगरा का रहने वाला दिल्ली जाकर मुफ्त में अपना खर्च चला लेता है जो उसकी पगारों में तुमने यह फ़र्क़ डाल रखा है? मेरा वश चलता तो दौरों के लिए तीसरे दर्जे का रेल-पास दिलवाता। रोटी अपने पास से खाओ। अपनी पगार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में से मकान का किराया दो। बिजली का खर्च खुद करो। मेरे हाथ में पैसा होता तो इन तेरह सालों में भत्तों और दौरों के रुपयों में से ही सैकड़ों गाँवों में पक्की सड़कें बनवा देता। वहाँ स्कूल और अस्पताल खुलवाता।

हिन्दुस्तान आज़ाद नहीं हुआ होता तो क्या होता? बुरा होता! पर एक बात भली भी होती—जवाहरलाल न बदला होता। वह ज़्यादा जोश और सच्चाई से बातें करता। जो कुछ उसने पहले कहा-सुना है, आज उनके ख़िलाफ़ काम न करता।

जवाहरलाल, दिल्ली की कुर्सी पर बैठ कर तुम जेराल्ड हर्ड के शब्दों में सबसे विनाशकारी भ्रम में फँस गये हो। तुम दिल में यह मान बैठे हो कि तुम्हारी योजनाएँ तुम्हारी विचार-पद्धति की ग़लती से नहीं, बल्कि किसी दूसरे के जान-बूझ कर बाधा डालने से असफल हो रही हैं। दरअसल, तुम हिन्दुस्तान के नये निर्माण के जिस टाइटैनिक जहाज़ में सवार हो, उसमें नामी गन्दे आदमियों से घिर गये हो। क्रिप्स-मिशन की नाकामयाबी पर तुमने फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट को १२ अप्रैल १९४२ को एक पत्र लिखा था : जिस सरकार पर से जनता का विश्वास उठ गया हो, उसे जनता का समर्थन नहीं मिल सकता और यह किसी सरकार के लिए बहुत आवश्यक है....काश, तुम जनता के बीच आकर इस सचाई को टटोलते।

एक बात मैं तुमसे साफ़-साफ़ जानना चाहता हूँ। देश की हद दरजे की ग़रीबी के सामने मंत्रियों की ऐयाशी, उनके बढ़े-चढ़े ख़र्च, छोटी बातों पर गोलीबारी, हद दर्जे की झूठ और भ्रष्टाचार, यह सब क्या हिन्दुस्तान की शान के अनुकूल हैं? तुम लोगों से किफ़ायत और बचत की बात करते हो! ऐलिजाबेथ आगरा गईं। इंगलैण्ड की महारानी हैं वह। हिन्दुस्तान से कुछ पुराने रिश्ते हैं उनके। आदर देना लाज़िमी था। सुना कि सरकिट-हाउस पर चौवन हज़ार ख़र्च किया तुमने। स्वागत के बीच रानी को हिन्दुस्तान की ग़रीबी और उसकी अधूरी योजनाओं को पूरा करने के लिए पैसे की तंगी का एहसास हुआ होगा? पर सरकिट-हाउस में एक चीज़ थी हिन्दुस्तान की शान के मुताबिक। रानी के सोने के कमरे में उस बूढ़े-नंगे चरवाहे का आयल-पेन्ट। हुक्का पीता हुआ। पास में ढोर। रानी ने इसमें हिन्दुस्तान की झाँकी देखी होगी। फिर जब उन गलीचों पर पैर रखा होगा रानी ने, उन सोफों पर बैठी होंगी रानी, उस प्लास्टिक की बेल-फैली हुई खाने की मेज़ पर गई होंगी रानी—तो हुक्का पीते हुए उस बूढ़े की तस्वीर फीकी पड़ गई होगी और सोने के कमरे के बग़ल वाले बरन्डे में बैठे-बैठे मुमताज का मक़बरा देखते हुए रानी ऐलिज़ाबेथ ने सोचा होगा कि हिन्दुस्तान तो अब भी सोने की चिड़िया है!

जवाहर, हिन्दुस्तान में तुमने हिन्दुस्तान का क्या छोड़ा है? वर्णसंकर बना दिया है उसे। उसका अपना नाम नहीं। घर और बाहर, सभी जगह हिन्दुस्तान 'इंडिया' कहलाता है। सन १९३२ में यू. पी. के जेलों के इन्स्पेक्टर-जनरल ने तुम्हारे नाम को बिगाड़ कर लिखा था। तुम्हें इस पर गुस्सा आया था और तुमने विरोध भी किया था। मैकाले बड़ा समझदार था। उसने कहा था : किसी देश को गुलाम बनाना हो तो उस देश की भाषा और संस्कृति को बिगाड़ दो। तुम भी मानते थे कि किसी भाषा के लिए, जिसका पूर्वकाल उज्ज्वल रहा हो, लिपि का बदलना बहुत बड़ी दुर्बलता है; क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिपि का उस साहित्य से बहुत गहरा सम्बन्ध होता है। लिपि बदल दीजिये तो सामने कुछ और ही शब्दचित्र नज़र आयेंगे। ध्वनि बदल जायेगी। भाव बदल जायेंगे। इन्दु की शादी के लग्नपत्र भेजने के लिए जो पत्र मैंने तुम्हें वारधा से ४ मार्च, १९४२ को लिखा था, उसमें भी मैंने चाहा था कि देश का काम देश की भाषा में ही किया जाना चाहिये। लेकिन अब सुना है, केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार-समिति ने फैसला किया है कि हिन्दी में भी अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग किया जायगा। ऊँची शिक्षा भी अंग्रेज़ी में ही मिलेगी। शायद लिपि भी तुम रोमन कर रहे हो। मिर्ज़ापुर में अभी चन्द दिन हुए विनोबा ने ठीक कहा था : अगर सरकार के बूते का होता तो वह बैलों को भी अंग्रेजी पढ़ाती क्योंकि इससे शायद और अच्छी खेती होती। तुम्हारी सरकार में जो लोग हैं उनके जीते-जी हिन्दी राष्ट्र-भाषा नहीं बनेगी, क्योंकि वे यही नहीं समझ पायेंगे कि हिन्दुस्तान किस मुल्क का नाम है।

क्यों जवाहर, अंग्रेजी क्या हिन्दुस्तान के लिए ही अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है? रूस, फ्रांस, जापान, इटली, चीन और दूसरे मुल्कों के लिए क्या वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा नहीं है? क्या उनके देश के काम भी अंग्रेज़ी में ही होते हैं? क्या वे भी पिछड़े हुए मुल्क हैं?

तुम्हारा भी क्या कुसूर? तुम्हें क्या मालूम था कि एक दिन तुम्हें हिन्दुस्तान का प्रधान-मंत्री भी बनना पड़ेगा। तब तुम अपनी कहानी किसी दूसरी तरह लिखते। मुझे पूरा यक़ीन है कि तुमने भारत के प्रधान-मंत्री बनने के इरादे से वह किताब नहीं लिखी थी। लिहाज़ा जिन ऊँचे उसूलों की बात तुमने उसमें लिखी है, उन्हें पूरा करने या उन पर अमल करने-करवाने की तुम्हारी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। वक्त के साथ-साथ हर आदमी बदलता है। यह ज़रूरी है। वह अपने उसूल नये सिरे से बनाये, यह भी ज़रूरी है। इसलिये जब तुम टाल्सटाय को मेरे मुक़ाबले तौलते हुए उसे अप्रतिरोधी और क्या-क्या कहते हो, और जब उसके जन्म-दिवस पर उसकी तारीफ़ में उसे अथक तीर्थ-यात्री बताते हो तो मैं इन परस्पर-विरोधी दोनों ही बातों पर पूरा यक़ीन करता हूँ, क्योंकि उसके बारे में तुम्हारी एक राय जवाहरलाल की हैसियत से होती है और दूसरी प्रधान-मंत्री के नाते से।

तुम मुझसे कितने ऊब उठे हो, मैं अच्छी तरह जानता हूँ। बड़ी तकलीफ़ के साथ तुम यह महसूस करते हो कि भक्ति के वे सूत्र, जिन्होंने इतने वर्षों तक तुम्हें मुझसे बाँध रखा था, टूट गये हैं। तुम मेरे हृदय-परिवर्तन की भावना को बलात्कार जैसा बहुत गंदा नाम देते हो। मेरा दिल टूक-टूक हो जाता है। मैं जानता हूँ, अगर तुमसे कुछ कहूँगा तो तुम इस्तीफ़ा देने की धमकी दोगे। नहीं, तुम हिन्दुस्तान के राजा हो और मैं तो कांग्रेस का चार आने वाला मेम्बर भी नहीं रहा। पुलिस-थानों और अदालतों में मेरी फोटो टँगवाने के लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। हाँ, पापा की याद बार-बार आती है। खास कर उस समय की जब उनका फाउन्टनपेन चुरा लेने पर उन्होंने तुम्हें मार लगाई थी। आज वे होते तो तुम्हें अपनी आत्मा चुराने के कुसूर में ज़रूर.....। पर खैर, जैसा ठीक समझो, करो!

बापू के आशीर्वाद।

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

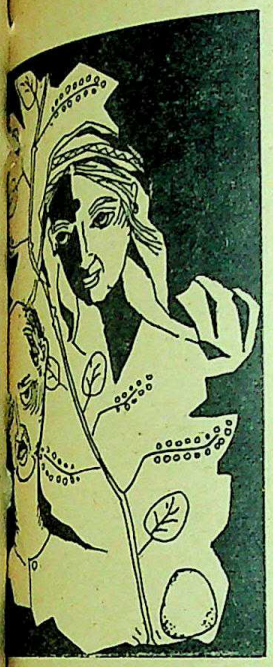

कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

■

पात्र–परिचय :

सोमनाथ : एक क्लर्क। आयु ४० के कुछ ऊपर।
दरबारीलाल : सोमनाथ के मित्र। आयु सोमनाथ के आसपास।
वर्मा : एक वकील। आयु ३०–३५।
अनिल : सोमनाथ का पुत्र। आयु १४-१५।
अंजना : सोमनाथ की पुत्री। आयु १७-१८।
और **अंजना की माँ** : आयु ३७-३८।

■

(समय सबेरे ९ बजे के लगभग। सोमनाथ के घर का आँगन। सामने बाईं ओर एक कमरा है जिसका दरवाज़ा आधा बन्द है। दाहिनी ओर, कमरे की बराबरी से एक वरांडा है। वरांडे में, कमरे की दीवार से लगा एक दरवाज़ा है जो बाहर खुलता है। दरवाज़ा अभी बन्द है। वरांडे के दूसरे कोने में दो-तीन खाटें टिकी हैं तथा तीन-चार कुर्सियाँ अस्त-व्यस्त पड़ी हैं। आँगन में दाहिनी ओर एक दरवाज़ा है जो बाहर ले जाता है। यह दरवाज़ा भी बन्द है।

साफ़-सुथरे आँगन के बीच एक पुराना-सा तुलसीघर है। तुलसी का पौधा मुरझाया है। पौधे के नीचे शिव की मूर्ति है तथा पास में एक दिया बुझा रखा है। तुलसीघर के कुछ हट कर एक पुरानी आरामकुर्सी पर सोमनाथ बैठा है—विचारों में लीन, सामने एक स्टूल पर हुक्का रखा है।)

आँगन की तुलसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमनाथ : (हुक्के का कश खींचता है। हुक्का बुझा है। चेहरे पर झुंझलाहट आ जाती है) अंजना! (ऊँचे स्वर में) अंजना!!

अंजना : (कमरे के दरवाज़े पर आकर) जी, बाबू जी।

सोमनाथ : (चेहरा घुमा कर कड़े स्वर में) मैंने चिलम में आग रखने को कहा था न!

अंजना : (पास आते हुए) जी हाँ। मैं आग रख गई थी बाबू जी....

सोमनाथ : (चिढ़कर) तो गई कहाँ आग? (अंजना घबरा जाती है। तभी लड़खड़ाते पैरों अंजना की माँ आती है और दरवाज़े के सहारे खड़ी हो जाती है)

अंजना की माँ : (थके-टूटे स्वर में) आग... आग पूछ रहे हो? सारे घर में लग गयी है आग, दिखती नहीं—इस लड़की से क्या पूछ रहे हो!

सोमनाथ : (कुर्सी से अचानक उठ कर क्रोध में) मैंने पचास बार कहा कि तुम मेरे बीच में न बोला करो—पर तुम...

अंजना : (स्नेह से) माँ, तुम चल कर लेट जाओ। सबेरे से तुम्हारा बुख़ार बढ़ता ही जा रहा है। चलो!

(सोमनाथ क्रोध से भरे अंजना की माँ को घूरते हैं तभी नैपथ्य से आवाज़ आती है—सोमनाथ जी घर में हैं?)

अंजना : (माँ को कमरे की ओर खींचती हुई) ये तो गुल्लू चाचा की आवाज़ मालूम होती है। माँ...चलो अन्दर। (अंजना के साथ माँ का दरवाजे से प्रस्थान;)

(बाहर से फिर आवाज़ आती है—कोई घर में है?

सोमनाथ : (स्वस्थ होकर, बनते हुए) कौन है?

दरबारीलाल : (नेपथ्य से ही) अरे मैं हूँ भाई, तुम्हारा दरबारीलाल।

सोमनाथ : (बाहरी दरवाजे की ओर बढ़ते हुए) आओ, चले आओ अन्दर। दरवाज़े की साँकल खुली हुई है। (दरवाज़ा खोल कर दरबारीलाल का प्रवेश। पुनः कर दरवाज़ा फिर ज्यों-का-त्यों कर देता है)

सोमनाथ : इतने सबेरे कहाँ निकल पड़े?

दरबारी : नौ बज चुके होंगे, अपना सवेरा तो खत्म हो गया। अब तो रईसों और अफ़सरों का सवेरा बचा है। (हँसी) ठीक है न?

सोमनाथ : (हँसने का प्रयत्न करते हुए) ठीक कह रहे हो। पर कैसे निकल पड़े इस ओर?

दरबारी : (गंभीर होकर) इसमें कौन-सी नयी बात है। तुम्हारी गैर-हाज़री के इन चार महीनों में भी मुश्किल से चार-छः नागे हुए होंगे। पूछ लो भाभी से।

सोमनाथ : मैं जानता हूँ, इन सबको तुम्हारा ही सहारा था।

दरबारी : (भाव-विभोर होकर) भैया, यह तो मेरा फ़र्ज़ था। आखिर दोस्ती का मतलब और होता क्या है! (रुक कर) दुनिया में भूल किससे नहीं होती! पर दोस्त की एक भूल के लिए कोई दोस्ती थोड़े ही भूल जाता है।

सोमनाथ : तो क्या तुम भी यही समझते हो कि मैंने भगवानदास का खून किया है?

दरबारी : (स्नेह से) सोमनाथ, बात सिर्फ़ मेरे समझने या न समझने की नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रुक कर) सभी यही समझते हैं।

सोमनाथ : पहिले पुलिस ने भी यही समझा था, इसीलिये मुझे गिरफ्तार भी किया था। मुझ पर खून का मुकदमा चलाया था। पर अदालत में तो साबित हो गया कि मैं निर्दोष हूँ।

दरबारी : अदालत की बात तो मैं करूँगा नहीं। पर इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि इन जीतों का अपराध से कोई सम्बन्ध नहीं होता। जीत तो वकील की सफलता बतलाती है। (रुक कर **तेज़ी से**) हो सकता है, तुम्हारे बारे में जज का फैसला ही सच हो, पर लोगों को तो तुम पर शक है।

सोमनाथ : (**झुंझला कर**) तो शक के लिए मैं कर क्या सकता हूँ, जिनको शक है, वे जाने; मैं किसी और का शक लेकर अपना जीवन दूभर नहीं करना चाहता।

दरबारी : यह तो बड़ी अच्छी बात है। पर इस बात को मत भूलो कि इस शक को तुम्हीं ने पैदा कराया है। भगवानदास की पत्नी से तुम्हारा मेल-जोल था, यह कौन नहीं जानता। याद है, मैंने एक बार इसी बात को लेकर कहा भी था कि यदि अपनी कमज़ोरियाँ आपे से बाहर हो जायें तो हमें यह कोशिश करना चाहिये कि वे पर्दे के बाहर न आ सकें। पर तुमने हँस कर मेरी बात टाल दी थी।

सोमनाथ : कायरता पर मैं हमेशा हँसता आया हूँ। मैंने अपने सम्बन्ध छिपाने की कोशिश की ही नहीं थी।

दरबारी : मैं जानता हूँ। पर जिसे तुम अपना साहस समझ रहे थे, वही तुम्हारा शत्रु बन गया। इसी साहस के कारण तुम भगवानदास की पत्नी और अपना अनैतिक सम्बन्ध नहीं छिपाना चाहते थे। (**सोमनाथ से आँखें मिला कर**) और इसीलिये तुम्हारा भगवानदास से अक्सर झगड़ा भी होता था। उन्हीं झगड़ों को आधार मान कर लोग तुम पर शक करते हैं।

सोमनाथ : (**चिढ़ कर**) तो करने दो।

(**अंजना तुलसी-घर के पास जाकर दीया उठाती है। दरबारीलाल की आँखें उधर मुड़ जाती हैं**)

दरबारी : अंजना, एक बात तो सुनो! (**अंजना घूमती है**) अपनी माँ से कहना कि झंझटों के बीच भी, तुलसी में जल डालना न भूला करें। देखो तो कैसी मुरझा गई है! (**स्नेह से**) कहना, जिस तरह शाम को दीपक रखती है, उसी तरह सबेरे चार बूँद जल भी छोड़ दिया करे।

अंजना : काम तो सारा मैं ही करती हूँ चाचा जी। मैं ही दीया रखती हूँ, मैं ही जल चढ़ाती हूँ तुलसीजी में, पर वे न जाने क्यों सूखती जा रही हैं! (**रुक कर**) तीन-चार दिनों से माँ की तबियत ख़राब है न!

दरबारी : तबियत ख़राब है...(**रुक कर**) बेटी, अब तुम जाकर बाबूजी के लिये खाना बनाओ। और देखो बेटी, तुलसीजी की देख-रेख अच्छी तरह करना। कभी-कभी कीड़े भी लग जाते हैं पौधे में, इसका ध्यान रखना।

सोमनाथ : इतने दिनों आफिस नहीं गया। सोचता हूँ, आज ज्वाइन कर लूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरबारी : पर मैं नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ, तुम एक माह की छुट्टी बढ़ा लो और अपने कलेक्टर-कमिश्नर से कह-सुन कर दूसरे ज़िले की बदली करा लो।

सोमनाथ : (**हुक्के की निगाली छोड़ कर**) तो तुम चाहते हो कि यह शहर छोड़ दूँ ?

दरबारी : (**दृढ़ स्वर में**) हाँ, जितनी जल्दी छोड़ दो, उतना अच्छा है।

सोमनाथ : (**व्यंग से**) मैं तुम्हारी चाल समझ गया। (**उठ कर**) तुम चाहते हो, भगवानदास के ज़िन्दा रहते जिससे मेरा मेल-जोल था, भगवानदास के मर जाने पर उससे मिलना-जुलना छोड़ दूँ ?

दरबारी : (**स्नेह से**) यदि तुम ऐसा कर सको तो कितना अच्छा हो। पर अभी मैंने बदली कराने की बात कुछ और सोच कर कही थी।

सोमनाथ : और क्या सोचा था ?

दरबारी : तुम्हारे दफ्तर के सभी लोग मेरी और तुम्हारी मित्रता के विषय में जानते हैं। इसलिए तुम्हें लेकर जितनी भी बातें होती हैं, सब मुझे ही सुनाई जाती हैं।

सोमनाथ : (**चिढ़ कर**) मुझे उन बातों से मतलब नहीं।

दरबारी : भाई, यथार्थ से कहाँ तक भागोगे ? (**सोमनाथ के पास जाकर स्नेह से**) मैं चाहता हूँ, तुम अपनी बदली करा लो और जब तक बदली नहीं होती तब तक घर पर ही रहो। (**रुक कर**) हाँ, अंजना की शादी के विषय में एक बात कहनी थी।

सोमनाथ : लखनऊ वालों ने कुछ ख़बर भेजी है क्या ? अच्छा है, जल्दी निपट जाय तो। मेरे लिए वही सबसे बड़ा बन्धन है।

दरबारी : चाहता तो मैं भी यही हूँ पर अब काम इतना सरल नहीं रहा। (**रुक कर**) अभी चार दिन पहिले लखनऊ वालों ने ख़बर भेजी है कि वे शादी नहीं करना चाहते।

सोमनाथ : क्यों, ऐसी कौन-सी ख़राबी है मेरी लड़की में ? मैंने तो लेन-देन तक की सारी बातें कर ली थीं। (रु

पारंगत

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी शान्तभाव से अपना काम कर रहे थे। सहसा एक युवक तपाक् से आया। न राम, न रहीम, सामने पड़ी कुरसी पर बैठ गया। द्विवेदी जी ने उसकी ओर देखा।

युवक बोला, "आपने मेरी कविता 'सरस्वती' में नहीं छापी ?"

"कौन-सी ?"

"रंग में भंग !"

"ऐसी कविता हमारे यहाँ नहीं छपती !"

युवक ने थैला खोला। बोला, "तब यह कहानी छाप दीजिये!"

"आप कहानी भी लिखते हैं ?"

"जी हाँ ! नाटक भी।"

"अच्छा !"

द्विवेदी जी ने देखा, युवक के हाथ की घड़ी बन्द है। पूछा, "आपकी घड़ी बन्द है क्या ?"

"ओः ! फिर बन्द हो गयी। अभी घड़ीसाज़ ने ठीक करके दी है। बड़ा कामचोर है।"

"लाइये, मैं ठीक कर दूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर) यह सब तो मेरे झगड़े के पहले ही तय हो गया था।

दरबारी : यह तो मैं जानता हूँ। लड़की के विषय में तो अभी भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। (घूमते हुए दृढ़ स्वर में) खबर आई है कि लड़का कहता है, अब तुम्हें ससुर कहने की उसकी हिम्मत नहीं। और लड़के का बाप कहता है कि समाज में उसकी प्रतिष्ठा है... (रुक कर) अभी भाभी को नहीं बतलाया है मैंने। तुम किसी तरह समझा देना। (दरवाजे की ओर बढ़ते हुए) समय मिला तो शाम को फिर आ जाऊँगा।

(प्रस्थान)

(सोमनाथ कुर्सी पर बैठ कर एक कश खींचता है फिर धुआँ मुँह से छोड़ता हुआ खड़ा हो जाता है। विचारों में लीन वह टहलता है फिर तुलसी-घर के पास जाकर उसे ध्यान से देखता है जैसे दरबारीलाल की बात समझ रहा है। फिर कमरे के दरवाजे के पास आकर रुक जाता है)

सोमनाथ : (पुकार कर) अंजना! अंजना! क्या कर रही हो?

अंजना : (साड़ी से हाथ पोंछती हुई दरवाजे पर आकर) खाना बना रही हूँ बाबूजी।

सोमनाथ : तुम्हारी माँ क्या कर रही है?

अंजना : मैंने तो लेटने के लिए कहा था, पर मानती नहीं। चूल्हे के पास बैठी तरकारी काट रही हैं।

सोमनाथ : हूँ! (घूमते हुए) तबियत कोई खास खराब है या वही हमेशा का रोना है?

अंजना : माँ की तबियत तो काफ़ी खराब है बाबूजी। मैं उनकी हमेशा की बीमारी जानती हूँ बाबूजी, पर यह बीमारी तो मुझे दूसरी लगती है।

सोमनाथ : (कुछ चिढ़ कर) तुम कब से डाक्टर हो गईं? माँ का पक्ष लेना खूब सीखा है। (कुर्सी पर बैठ कर) माँ की इस बीमारी का और काम का बहाना लेकर तुम ने कालेज जाना भी बन्द कर दिया है, क्यों?

अंजना : (घबरा कर) जी...जी नहीं बाबूजी। कालेज जाती थी, तब भी काम तो करती थी। (अटकते हुए) कालेज जाना तो बन्द किया है

युवक से घड़ी लेकर द्विवेदी जी ने पूरी खोल डाली। घड़ी बनाना तो जानते न थे, लगे उलट-पलट करके बैठाने। बड़ी देर तक उनका यही क्रम जारी रहा। युवक का धीरज छूट गया। पूछा, "आपको घड़ी बनाना आता है?"

"बिलकुल नहीं!" द्विवेदी जी ने शान्त भाव से कहा।

युवक तमतमा कर खड़ा हो गया, "जब आप घड़ी के बारे में कुछ नहीं जानते, तो आपने इसको खोलकर खराब क्यों कर डाला?"

द्विवेदीजी बोले, "यही तो मैं आपसे भी कहनेवाला था कि जब तक किसी बात की पूरी जानकारी आपको नहीं हो जाती, आप उसमें हाथ क्यों डालते हैं? मेरा मतलब समझ गये होंगे आप! अब आप जा सकते हैं!"

—विनोद कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब से...जब से... (**रुक जाती है**)

सोमनाथ : (मुंह अंजना की ओर घुमा कर) जब से...जब से तुम्हारा बाप खूनी कहलाने लगा, यही न ? यही कहना चाहती हो ? **(उठ कर)** सब यही कह कर मुझ पर एहसान लादना चाहते हैं, मुझे नीचा दिखलाना चाहते हैं कि मेरे कारण उनका समाज में बुरा हाल है। दुनिया में सबके लिए चर्चा का विषय मैं ही रह गया हूँ, मेरी ही बुराइयाँ गाने का सबने ठेका लिया है और इसी लिए मेरे हर मित्र, हर सम्बन्धी को मुँह छिपाना पड़ रहा है। हुँ ! हर नीच मेरी आड़ में अपनी शराफ़त का ढोल पीट रहा है !

अंजना : (डरे स्वर में) आप तो नाराज़ होते हैं बाबू जी। पूरी बात तो आपने सुनी ही नहीं।

सोमनाथ : तुम क्या नया कहोगी, सभी तो एक ही राग अलाप रहे हैं।

अंजना : यह बात नहीं है बाबू जी। आपके जाने के बाद माँ बहुत बीमार हो गई थीं। उस पर पूजा-पाठ भी बहुत करने लगी थीं। अनिल घर में रहता नहीं था। मैंने सोचा, मैं ही उनके साथ घर पर रहूँ।

सोमनाथ : **(व्यंग्य से)** तो झूठ बोलना भी सीख लिया माँ से ? **(हुक्के के पास जाकर चिलम की आग खोदते हुए)** अब कल से कालेज जाना शुरू कर दो।

अंजना : पर माँ की तबियत तो अभी ज्यों-की-त्यों है !

सोमनाथ : चार महीने पहिले भी तो ऐसी ही रहा करती थी तबियत। **(अंजना सोमनाथ को देखती है और आँखें मिलते ही सिर झुका लेती है)** मुझसे तुम बातें नहीं बना पाओगी ! **(रुक कर)** अब तो तुम लोगों से कह सकती हो कि तुम्हारे बाबू जी खूनी नहीं, अदालत ने उन्हें निर्दोष कह कर छोड़ दिया है।

अंजना : (अचकचा कर) जी...जी बाबू जी, मैं कालेज जाऊँगी।

सोमनाथ : (दृढ़ स्वर में) हाँ, तुम कल से कालेज जाओगी, और यदि कोई मेरे विषय में कुछ कहेगा तो उसके मुँह पर थप्पड़ मारोगी, समझीं। **(अंजना को गुमसुम देख कर)** बेवकूफ़ की तरह खड़ी क्या हो, समझ में आया, मैं क्या कह रहा हूँ ? **(हाथ में चाय की प्याली लिए लड़खड़ाते अंजना की माँ का प्रवेश। एक हाथ से दरवाजे का सहारा लेकर खड़ी होती है। उसे देखते ही अंजना दौड़ कर उसे संभाल लेती है)**

अंजना की माँ : (हाँफते स्वर में) चाय लाई हूँ, अपने बाबू जी को दे-दे। आज सवेरे से उन्होंने चाय नहीं पी। **(अंजना प्याली लेती है और अंजना की माँ उसके सहारे आगे बढ़कर तुलसी-घर तक आकर तुलसी-घर के सहारे खड़ी हो जाती है)** अंजना को कालेज जाने से मैंने रोका था, उसका कोई कुसूर नहीं है।

सोमनाथ : (दृढ़ स्वर में) क्यों रोका था ?

(अंजना सोमनाथ की ओर बढ़ती है)

अंजना की माँ : तुम चाय पी लो फिर बताऊँगी।

सोमनाथ : (उसी स्वर में) मैं पहिले अपने प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ।

अंजना की माँ : तू चाय तो दे बेटी बाबूजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को। मैं उनके प्रश्न का उत्तर देती हूँ। आप जानते हैं, रास्ता लम्बा और सुनसान है (**सिर झुका कर**) कभी-कभी रास्ते में कुछ बदमाश लड़के इसे छेड़ते हैं!

सोमनाथ : (आँख तरेर कर) कौन है वह बदमाश जो इसे छेड़ता है? बतला, मैं उसका खून पी जाऊँगा।

अंजना की माँ : (**अचानक**) उसी चुड़ैल का भतीजा है। कहता है, अपनी बुआ की इज्ज़त का बदला अंजना से लूँगा।

सोमनाथ : (**अंजना की ओर घूम कर क्रोध में**) मदन छेड़ता है? अच्छा!

(**तेज़ी से बाहर की ओर बढ़ता है**)

अंजना की माँ : (**घबरा कर**) नहीं...नहीं... मत जाओ तुम, अंजू के बाबू (**हाथ जोड़ कर**) हाथ जोड़ती हूँ.....

सोमनाथ : (**दरवाज़े के पास आकर क्रोध से**) मेरा खून सफेद नहीं हुआ है, अंजू की माँ!...देखता हूँ, कौन मेरी इज्ज़त पर हाथ डालता है। (**तेज़ी से प्रस्थान**)

अंजना की माँ : मुझे भरोसा नहीं होता। अंजू, तू जाकर अपने गुल्लू चाचा को खबर दे-दे।

अंजना : अच्छा जाती हूँ, पर तुम चल कर लेट जाओ।

अंजना की माँ : (**सँभलते हुए**) मुझे यहाँ कुछ नहीं होगा। मैं यहीं तुलसी का सहारा लिये तेरी राह तकूँगी। जल्दी जा बेटी, मेरा मन काँप रहा है।

अंजना : अच्छा जाती हूँ। (**अंजना घूमती है। माँ तुलसी-घर के साहरे खड़ी अंजना को देखती है। अंजना दरवाज़े तक पहुँच कर अचानक लौट पड़ती है**)

माँ, वर्मा जी आये हैं। वही वकील साहब जो बाबूजी की तरफ़ से मुक़दमा लड़े थे।

अंजना की माँ : (**आँचल में मुंह पोंछ कर**) कुछ काम से ही आये होंगे। बुला ला!

अंजना : (**दरवाजे तक जाकर**) आ जाइए वकील साहब! (**वर्मा का प्रवेश**) नमस्ते।

वर्मा : नमस्ते। (**अंजना की माँ को देख कर**) नमस्ते! (**अंजना की माँ एक बार देख कर सिर झुका लेती है**) एँ, आपकी तबियत कुछ ख़राब है क्या?

अंजना : जी हाँ। माँ को तीन-चार दिनों से बुख़ार आ रहा है।

वर्मा : तो फिर आप इस तरह आँगन में क्यों खड़ी हैं! जाकर लेटिए।

अंजना की माँ : (**समझाते हुए**) तुलसी को माथा नवा लेती हूँ तो लगता है, दवा मिल गई। बिना इनका सहारा लिये मन ही नहीं मानता।

वर्मा : सोमनाथ जी कहाँ हैं?

अंजना : अभी-अभी बाहर गये हैं, कुछ काम हो तो कहिए।

वर्मा : मुक़दमे के बारे में उनसे कुछ कहना था।

अंजना की माँ : (**उत्सुकता से**) तो हमें बतला दीजिये।

वर्मा : मुझे कल शाम को पता चला है कि डिस्ट्रिक्ट-जज के फैसले के खिलाफ़ सरकार हाईकोर्ट में अपील करने वाली है।

अंजना : तो क्या होगा इससे?

वर्मा : फिर हाईकोर्ट में मुक़दमा चलेगा। और अगर हार गये तो सज़ा या...

अंजना की माँ : (**बीच में, व्याकुल होकर**)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं-नहीं वकील साहब, ऐसा नहीं होना चाहिए। आपको बचाना ही होगा!

वर्मा : डिस्ट्रिक्ट-कोर्ट में तो मैंने बचा लिया, पर हाईकोर्ट की बात नहीं कह सकता। वहाँ कुछ-का-कुछ हो जाता है। इसी-लिये अभी मैं सरकारी वकील के पास गया था कि वे सोमनाथ जी के केस की अपील न होने दें तो अच्छा है।... मुझे यह भी पता चला है कि उन वकील साहब पर सोमनाथ जी के अफ़सर माथुर का ज़ोर पड़ सकता है। वे आज माथुर साहब से मिल लें तो अच्छा हो।

अंजना : **(सोचते हुए)** माथुर साहब से बाबू जी की कभी नहीं बनी। वे शायद ही उनसे मिलें।

अंजना की माँ : **(अटकते हुए)** तो...तो मैं जाऊँगी उनके पास। **(रुँधे कण्ठ से)** मैं उनकी मिन्नत करूँगी **(रुक कर)** वकील साहब, किसी भी तरह इन्हें बचा लीजिये।

वर्मा : मैं भी यही चाहता हूँ कि बात इसी जीत पर खत्म हो जाये। **(पिछले दरवाज़े से अनिल का प्रवेश : हाथ में ख़ाली थैली और एक दवा की शीशी है)**

अनिल : वकील साहब, नमस्ते! माँ, तुम चल कर लेट जाओ। डाक्टर साहब ने कहा है कि तुम्हें आराम करना चाहिये। वकील साहब भी वहीं चलें!

वर्मा : मुझे क्या बातें करनी हैं अब? अगर सोमनाथ जी मिल जाते तो उन्हें समझा-बुझा कर माथुर साहब के पास भेज देता।

अनिल : बाबू जी तो मुझे अभी दिखे थे।

अंजना : **(उत्सुकता से)** कहाँ जा रहे थे?

अनिल : **(धीरे-धीरे)** वहीं...जहाँ जाते हैं और सब लोग कहते हैं कि उन्हें नहीं जाना चाहिए।

अंजना की माँ : **(तड़प कर)** तो...तो...वे मदन के पास नहीं गये। उसी चुड़ैल के घर गये हैं! अंजू, तेरे बाबू जी न जाने किस धातु के बने हैं! वे नहीं बदलेंगे। नहीं बदलेंगे, चाहे हमारा संसार बदल जाये। **(रुक कर भरे स्वर में)** वकील साहब, क्या होगा उन्हें बचा कर...उनकी छाया तो मेरे बच्चों के भाग्य पर ग्रहण लगा देगी...क्या करूँगी उन्हें पाकर जब दोनों बच्चे ही मुझसे छिन जायेंगे।

वर्मा : **(आश्चर्य से)** ये क्या कह रही हैं आप? अभी तो आपने कहा था...

अंजना की माँ : **(क्रोध से भरे रुँधे स्वर में)** मूर्खता की थी मैंने। आप जाइए वकील साहब, मैं नहीं छुड़ाना चाहती उन्हें। होने दीजिए अपील **(रोकर)** और...और हो जाने दीजिये सज़ा... मैं मुँह भी नहीं देखना चाहती उनका... मैं सब-कुछ खो चुकी हूँ...अब अपने बच्चे खोना नहीं चाहती...**(रो पड़ती है : अंजना सम्हालती है। अनिल उदास-सा पास आ जाता है)**

वर्मा : **(गम्भीर स्वर में)** पर अपील में दूसरा डर भी तो है। सज़ा के बदले फाँसी...

अंजना की माँ : **(करुण-स्वर में चीख कर)** फाँसी! नहीं-नहीं, वकील साहब...फाँसी नहीं...नहीं..**(अंजना के सँभालते-सँभालते अचेत होकर तुलसी पर गिर पड़ती है और साथ ही पर्दा भी गिरता है)**

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद राही

कश्मीर की बर्फ़ानी वादियों में बसे एक सीधे-सादे इन्सान के अन्धविश्वास की मार्मिक कथा।

●

"यह सफ़ेद-सा क्या है सारी घाटी में बिखरा हुआ?"

"शगूफ़ा" मेरे साथ बैठे यात्री ने उत्साहित स्वर में कहा।

"शगूफ़ा क्या?" मैंने फिर पूछा।

"फूल। फल लगने से पहले बादाम के वृक्षों पर फूल खिलते हैं। शरद् के तुरंत बाद वसंत के ज़रा पहले कश्मीर की सारी घाटी इन फलों से भर जाती है। इनमें अनार और खुबानी के फूल भी हैं।

सहयात्री निश्चय ही कोई कश्मीरी था, जिसने सविस्तार सब बता दिया।

हवाई जहाज़ अब नीचे उतर रहा था। मैं मंत्र-मुग्ध-सा शीशे में से घाटी को निहार रहा था। कहीं-कहीं बर्फ़ के टुकड़े दिख रहे थे। लगता था जैसे अभी-अभी भूमि ने स्वयं अपना बर्फ़ का घूंघट फाड़ डाला हो। अधिकतर वृक्ष रुण्ड-मुण्ड थे। झेलम की रेखा नागिन-सी बल खाती दूर निकल गई थी। मैं देखे जा रहा था--देखने में डूबा हुआ था। तभी जहाज़ ने भूमि के चरण छू लिये।

० ० ० ०

डल झील के किनारे, शंकराचार्य पहाड़ी के अंक में एक कोठी मिली है

श गू फ़ा

वाचनालय, गुरुकुल झांसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे। (बाहर के अधिकतर उच्च पदाधिकारियों को यहीं कोठियाँ दी जाती हैं।) मैंने आज तक कभी स्वर्ग की कल्पना नहीं की थी, परन्तु अपनी यह कोठी मुझे साकार स्वर्ग दिखती है। राजस्थान से सीधे कश्मीर आकर जैसे धरती को छोड़ आकाश पर पहुँच गया हूँ।

कोठी के भीतर प्रवेश करते ही नरगिस के फूल स्वागतार्थ विहँसते नज़र आते हैं। लॉन के मध्य पैंजी और यंबरज़ल लहलहाते हैं। मेरे कमरे की खिड़की के साथ ही चेरी के दो वृक्ष हैं। पिछवाड़े में खुबानी और आड़ुओं के वृक्ष भी हैं। बरामदे के बिल्कुल सामने लॉन के पार, ज़रा दूरी पर बादामों के छः वृक्ष हैं। एक को छोड़ शेष पाँच वृक्ष फूलों से यों भरे हैं, जैसे दुल्हनें गहने-कौड़ियों से लदी हुई हों। इन्हीं वृक्षों के दाईं ओर एक झोंपड़े में कोठी का माली-चौकीदार नब्बा (गुलाम नबी) सपत्नीक रहता है।

"बाबू जी! बाबूजी!" नब्बा आज सुबह भागता हुआ आया।

मैं बरामदे में बैठा सिगार पी रहा था। उसने मेरे समीप आकर कहा, "बाबूजी, बादाम का वह छठा वृक्ष जिस पर कभी शगूफ़ा नहीं खिला; आज वह भी फूलों से भर गया है!"

आश्चर्य-जनक सूचना थी। मैं उठ कर उसके साथ उसी ओर चल दिया। सचमुच उस छठे वृक्ष पर छोटे-छोटे सफेद फूल उग आये थे। मैं उस वृक्ष के चारों ओर घूम कर देखने लगा। सहसा पास ही स्थित नब्बे की झोंपड़ी में से किसी नवजात शिशु के रोने की आवाज़ आयी। मैंने प्रश्नमय दृष्टि से नब्बे की ओर देखा। नब्बा लज्जा भरे हर्षातिरेक से सकुचाता-सा बोला, "साहब, आज रात को ही लड़का पैदा हुआ है। मैं यही तो आपसे पूछने के लिए आया था कि इस वृक्ष के भाग्य से यह लड़का पैदा हुआ है, या लड़के के भाग्य से इस पर फूल आये हैं?"

मैं नब्बे की बात का कोई उत्तर नहीं दे सका। काफ़ी देर तक वहीं खड़े रह कर झोंपड़ी से आती हुई शिशु के रोने की आवाज़ सुनता रहा। और साथ ही उन बादाम-वृक्षों से झड़ते हुए फलों को निहारता रहा, जैसे वे धरती पर नहीं, मेरे मन-प्राणों पर बरस रहे हों।

नब्बा मुझे कई स्थानों पर घुमा लाया, जहाँ कहीं भी "बहारों के जश्न" हुए। हिम-पात के दिनों से भीतर कोठरियों में घुसे हुए लोग इन मेलों-ठेलों में भाग लेने के लिए एकाएक यों उमड़ पड़ते हैं जैसे छुट्टी का घंटा बजते ही बालक स्कूल से बाहर की ओर दौड़ते हैं।

० ० ०

वसंत के समारोह अब समाप्त हो गये हैं। वृक्षों के फूल फलों का रूप लेने लगे हैं। अबाबीलें जो हिम की विभीषिका से घाटी से दूर निकल गई थीं, पुनः घाटी में आ गई हैं। 'पोशनोल' और 'कॅलट्रॅच' जैसे अतीव सुन्दर पक्षी इधर-उधर उड़ते दिखाई देने लगे हैं। पर्वतों के शिखर निर्वसन होते जा रहे हैं और नदी-नालों में यौवन आने लगा है। घाटी में पर्यटकों के समूह प्रवेश पा रहे हैं। डल और झेलम में खिले हुए कमलों के बीच नौकाएँ यों विहार करती हैं, जैसे किसी कवि की कल्पना में सरस उपमाएँ डोल रही हों।

नब्बा नव-उत्साह लिए कोठी का उद्यान सजा-सँवार रहा है। मैं ध्यान से उसे काम में तल्लीन देखता रहता हूँ। मेरे लिए वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समग्र कश्मीरी जीवन का प्रतीक बन गया है। उसके होठों पर प्राय: 'रसुलमीर' और 'महजर' के गीत सरसते रहते हैं। उसने अनेक बार मुझे गीतों के अर्थ भी बताए हैं। विचित्र बात है कि घाटी में विरला ही ऐसा लोक-गीत होगा जिसके रचयिता को लोग न जानते हों।

नब्बे का लड़का अब तीन मास का हो गया है। उसकी पत्नी ने उसके कामों में हाथ बँटाना शुरू कर दिया है। मैं जब भी इन दोनों को एक साथ काम करते हुए देखता हूँ, मुझे अपने जीवन का एकाकीपन खलने लगता है। अपने मन का दर्द तो मैं ही जानता हूँ।

० ० ०

धीरे-धीरे पेड़-पौधों और घास पर पीलियाई आती जा रही है। पहाड़ों पर वनस्पतियों के बदलते हुए रंग से यों दिखता है मानो रँगी हुई भेड़ों के झुण्ड बिखरे पड़े हैं। चिनारों के पत्ते पीले पड़ने लगे हैं। झेलम का पानी उथला होने के साथ-साथ स्वच्छ-निर्मल होने लगा है। उसकी नीलिमा बढ़ गई है।

आज ही नब्बे ने मुरझाए हुए लहजे में बताया कि उसका लड़का दिनों-दिन सूखता जा रहा है। मैंने उसे दस रुपये दिये हैं कि किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाये।

० ० ०

नब्बे का लड़का ठीक नहीं हो रहा। दोनों पति-पत्नी उदास रहने लगे हैं। न जाने क्यों मेरी उदासी भी बढ़ गई है।

चिनारों के पीले हो चुके पत्ते झड़ने लगे हैं। वैसे तो सभी वृक्षों ने निर्वसन होना शुरू कर दिया है, परन्तु चिनारों के पत्ते-झड़ने का दृश्य अद्वितीय है। मैंने ऐसा वेदना-पूर्ण दृश्य इससे पहले कभी नहीं देखा। किसी उदास गीत के बोलों-से ये पत्ते निरन्तर गिरते रहते हैं। उद्यानों, सड़कों, नदी-नालों के किनारों पर इन पत्तों के ढेर पड़े रहते हैं।

वायु में शीत की एक चुभन-सी भर गई है। लोगों ने पयरन (लम्बे-लम्बे ऊनी चोगे) पहनने शुरू कर दिये हैं। उन चोगों में हर समय गर्म-गर्म बांगड़ियाँ दुबकाए रखते हैं।

नब्बे ने फूलों के समस्त पौधों को उखाड़ दिया है। नई क्यारियाँ बना कर वह शीत के फूल नरगिस, यंबरज़ल, पैंजी, आदि रोप रहा है। परन्तु उसके हाथों में अब पूर्ववत् उत्साह नहीं---उमंग नहीं। न जाने उसके चेहरे पर क्यों एक भय-सा दिखने लगा है।

आज उसके सामने एक झाड़ी पर एक गहरे मटियाले रंग का परिंदा एकदम आकर न जाने क्या बोलने लगा कि उसके बोल सुन नब्बा क्रोध से काँपने लगा। वह उस पर यों झपटा जैसे बाज झपटता है। परिन्दा उड़ गया। नब्बा मेरे पास आकर काँपते हुए स्वरों में बोला, "बाबूजी, यह 'शीन पिपिन' था। इसे हम बर्फ़ का भाई कहते हैं। यह 'शीन प्यॅतो प्यॅतो' कह कर अपने भाई को बुलाता है। यह इन्हीं दिनों नज़र आता है, और जब भी नज़र आता है दो-चार दिनों में ही बर्फ़ पड़ जाती है। अब क्या होगा बाबूजी ?"

यह कहते हुए उसके आँसू बहने लगे। मैंने, ओवर-कोट के कॉलरों को उठाते हुए सविस्मय कहा, "नब्बा, बर्फ़ गिरेगी तो इसमें डरने की क्या बात है ?"

"मेरा बच्चा बहुत बीमार है बाबूजी ! हमारा एक ही बच्चा है। कई मन्नतों-मुरादों के बाद हुआ है। मुझे भय है, बर्फ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरेगी तो वह बचेगा नहीं। बर्फ़ को किसी पर दया नहीं आती।"

मैं सोचने लगा--परन्तु कुछ सोच नहीं सका कि बर्फ़ से इतना भय क्यों ?

० ० ०

दो दिनों से सूर्य भगवान के दर्शन नहीं हुए। बादलों ने दिन को भी रात बना दिया है। संध्या-समय बरखा ने झड़ी जो लगाई तो थमने का नाम नहीं लिया। शीत इतना बढ़ गया है कि कमरे में आग जलाए बिना बैठना भी असम्भव है। मैं आग तापते हुए घंटों चाय ही पीता रहता हूँ। खिड़की के साथ ही चेरी के पेड़ के एक ओर बिजली का बल्ब जल रहा है। बल्ब की भीगी हुई रोशनी में बरखा की बूँदें झड़ते हुए मोतियों-सी दीख रही हैं। अचानक उन मोतियों का आकार बदला-सा प्रतीत होने लगा। मोती धुनकी हुई रुई के टुकड़े लगने लगे। मैं सावेग उठ कर आगे बढ़ा। खिड़की खोल कर देखा, बर्फ़ गिर रही थी। सारे आँगन में सफ़ेद चादर बिछ गई थी। सहसा मैंने लॉन के पार बादाम के रुण्ड-मुण्ड वृक्षों के पीछे अन्धेरे में देखा, वहाँ कुछ दिखाई नहीं दिया ; परन्तु एकाएक न जाने क्यों एक विभीषिका-सी मुझ पर छाने लगी। हिम-पात अनवरत होता जा रहा था। सभी ओर एक सन्नाटा छाया हुआ था। कहीं कोई आवाज़ नहीं, चेतनता नहीं। सभी ओर शून्यता थी--भयंकर शून्यता।

मैंने फिर बर्फ़ की सफ़ेद चादर की ओर देखा। मुझे मृतकों के कफ़न याद आने लगे। देह में एक सनसनाहट-सी व्याप गई। आज नब्बे का लड़का बहुत ही बीमार था। नब्बा बार-बार झोंपड़ी के बाहर आकर आकाश में सघन होते हुए बादलों को देख रहा था। एक बार मैं भी उसकी झोंपड़ी में जाकर बच्चे को देख आया।

सुबह तक बर्फ़ निरंतर पड़ती रही। जागा तो कानों में नब्बे की बीवी का रुदन पड़ा। ऐसा स्तब्ध हुआ कि बिस्तर से उठा नहीं गया ; हिला तक न गया।

बहुत बड़े पिंजड़े के कैदी के समान मैं खुद को घाटी में घिरा हुआ अनुभव कर रहा हूँ। हिम की ऊँची-ऊँची दीवालों ने रास्ते बन्द कर घाटी को शेष संसार से काट दिया है। सघन बादलों का बाल-व्यूह ऐसा कि कोई भी हवाई जहाज़ घाटी में उतर न सके--जा न सके। अँधियारे ने दिन को मैला कर दिया है। एक सन्नाटा-सा छाया रहता है हर समय, हर ओर। शीत--शीत--शीत--बस और कुछ नहीं।

मैं कई बार खिड़की के शीशों में से झोंपड़ी की ओर देखता हूँ। बादाम के वृक्षों की नंगी टहनियों पर बर्फ़ की उजली परतें अपनी अनधिकार चेष्टा पर तनिक भी लज्जित नहीं। झोंपड़ी के भीतर पति-पत्नी लिहाफ़ में दुबके होंगे, कांगड़ियाँ बच्चे में दबाई होंगी। समावार में उबलती हुई चाय का उफ़ान उनकी उदासी को बढ़ा रहा होगा। क्या सोच रहे होंगे? शायद टूटे हुए खिलौने की कल्पना में रो रहे होंगे। कल्पनाओं की लड़ियों के खोए हुए मोती ढूँढ रहे होंगे। उन्होंने सोचा होगा--लड़का बड़ा होकर बर्फ़ के गोले बना-बना कर उन पर फेंकेगा। आँगन में बर्फ़ के शीन-मानव (बुत) बनाया करेगा। परन्तु बर्फ़ ने तो ही अपने सफ़ेद, मनहूस आँचल में ढक लिया। निर्दय--निर्मम बर्फ़!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत दिनों के बाद कुछ घंटों के लिए धूप निकली है। किसी सौंदर्यमयी चिर-रोगिन के चेहरे पर स्वास्थ्य की पहली झलक के समान इस पीली-पीली धूप ने नीरव तथा उदास वातावरण में आशा की क्षीण-सी रेखा को अच्छी तरह उजागर किया है। एक मौन भंग हुआ है, मन का, धरती का, आकाश का।

दिन ढले एकाएक फिर हिम-पात होने लगा। परन्तु बर्फ़ के गोले आकार में बड़े होने पर भी धरती पर जम नहीं पाए, पिघल गए।

सवेरे आकाश पुनः स्वच्छ तथा निर्मल था। शीतकालीन राजधानी जम्मू से टेलीफ़ोन द्वारा सूचना मिली कि आज ही वहाँ पहुँचना है, किसी आवश्यक कार्य के सिलसिले में जाना ही पड़ा।

फिर वहाँ बहुत दिन रुकना पड़ गया।

० ० ०

"यह सफ़ेद-सा क्या है सारी घाटी में बिखरा हुआ?"

"शगूफ़ा" मैंने अपने सहयात्री के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा।

"शगूफ़ा क्या?"

"फूल—फल लगने से पहले बादाम के वृक्षों पर...." कहते-कहते पूरे एक वर्ष पहले का दृश्य स्मृति-पटल पर उभर आया। अनायास नब्बे का वह भागते हुए मेरे पास आना याद आ गया, जब वह छठे बादाम-वृक्ष के पुष्पित होने और पुत्र-जन्म की सूचना देने आया था। मैं सिहर उठा। सोचा, अबके वर्ष घाटी के यह फूल पति-पत्नी पर कैसा वज्र-पात कर रहे होंगे।

हवाई जहाज़ से उतर बस द्वारा घर पहुँचा। मन में एक विचित्र वेदना भरी थी।

"बाबूजी! बाबूजी!" नब्बा मुझे देखते ही चिल्लाया।

मैं ठिठक गया। नब्बा पागलों की भाँति चिल्लाता हुआ भागता-दौड़ता आ रहा था। मैं भय से काँप उठा। उसने आते ही मुझे बाँह से पकड़ लिया।

"बाबूजी, बाबूजी! आइए मेरे साथ। देखिए, उसी बादाम के वृक्ष पर इस वर्ष फिर शगूफ़ा खिला है। आइए बाबूजी।"

मैं काँपते हुए पगों से उसके साथ चलने लगा। वह मेरी बाँह पकड़े हुए तेज़-तेज़ क़दमों से आगे बढ़ रहा था। उसकी झोंपड़ी के पास पहुँच कर देखा, सभी वृक्षों पर शगूफ़ा फूटा था। उस छठे वृक्ष पर तो सबसे ज़्यादा फूल थे। नब्बा उस वृक्ष के पास जाकर उससे लिपट गया। वह बार-बार उसे चूमने लगा। मैं भयातुर दृष्टि से उसे देख रहा था।

सहसा झोंपड़ी में से किसी नवजात शिशु के रोने की आवाज़ आई। मैं अविलम्ब अचरज से भर उठा। नब्बे की ओर देखा। वह लज्जा भरे हर्षातिरेक से सकुचाता हुआ बोला, "साहब! आज रात को ही लड़का पैदा हुआ है। म यही तो आप से पूछना चाहता हूँ कि इस वृक्ष के भाग्य से यह लड़का पैदा हुआ है, या लड़के के भाग्य से वृक्ष पर आए हैं?"

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

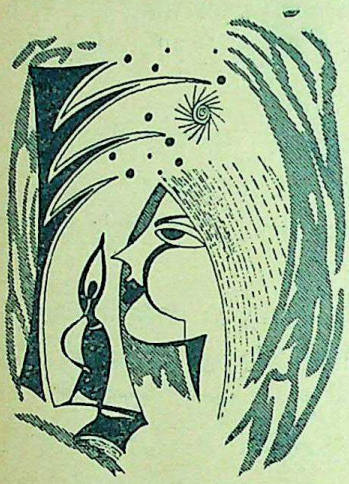

चार छोटी कविताएँ

नागानन्द मुक्तिकण्ठ

(१)

मेघ !
मत झाँक दर्पण में—
—पहाड़ों, उत्तलित जलसागरों
—नीली झील के हर तैरते जल-विन्दु पर
—देख (चारों ओर)
मरकत-धूलि बिखरी है।
मेघ !
मत झाँक दर्पण में।

(२)

मुकुर में बजे नूपुर :
याद आया फिर कहीं डूबा सितारा—
एक नीली क्षीण रेखा चूर :
मुकुर में बजे नूपुर, बजे नूपुर, बजे नूपुर।

(३)

निस्तेज रवि के ताम्रवर्णी बिम्ब में
हुई प्रतिबिम्बित शरद् की चाँदनी।

(४)

लाजवन्तिनि,
मत निहारो आइने में
टूट जायेगा।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहम्मद इसराईल अन्सारी

कलकत्ते के कोने-कोने में मिर्ज़ा नईम हैं। कलकत्ते की एक-एक इंच जमीन उनकी पहचानी है, कलकत्ते का ज़र्रा-ज़र्रा उन्हें पहचानता है !.. जो उनके विषय में नहीं जानते, वे उन्हें पहचान लें !

कलकत्ता भारत की रौनक है, एशिया की रौनक है, और दुनिया की रौनक है लेकिन कलकत्ते की रौनक ? ज़रा जेहन पर जोर डालिये तो—

बेशुमार कल-कारखाने हैं ?—नहीं, सिर्फ कल-कारखानों से किसी शहर की रौनक नहीं बढ़ती !

बहुत बड़ी आबादी है ?—दुनिया में इससे भी बड़ी आबादी वाले शहर हैं !

धर्मतल्ला, विक्टोरिया-मिमोरियल, कालीघाट, म्युजियम, चिड़ियाघर, बोटानिकल गार्डेन और हावड़ा-पुल वगैरह से कलकत्ते की रौनक है ?—जी नहीं, ये सारी बातें दुनियाँ के और शहरों में भी पायी जाती हैं !

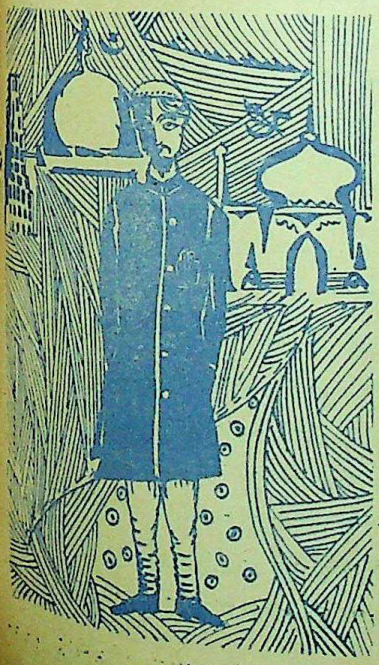

आखिर वो क्या शै है जिससे कलकत्ते की रौनक नुक्तये उरूज—चरमसीमा—पर पहुँची हुई है ?

कलकत्ते की रौनक सिर्फ हजरत मिर्जा नईम से है और मिर्जा नईम की रौनक कलकत्ते से। कलकत्ता महानगरी में, जिसकी आबादी तकरीबन सत्तर लाख है, मिर्जा साहब

कलकत्ते की रौनक
मिर्ज़ा नईम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी तरह के अकेले आदमी हैं। शायर, लीडर, डाक्टर, वक्ता और समाज-सेवी सब कुछ हैं। इन्सान की कोई खूबी नहीं जो उनके अन्दर मौजूद न हो। सर में एक भी काला बाल नहीं लेकिन इससे क्या हुआ ? उनके सफेद बालों से जवानी झाँकती है। मुँह में बत्तीसों दाँत पत्थर के हैं लेकिन आसानी से उनकी पहचान नहीं की जा सकती। उनकी शख्सियत की यह खूबी है कि जितने लोगों से उनके बारे में आप पूछ-ताछ करेंगे उतनी ही किस्म की बातें मालूम होंगी।

बचपन लखनऊ में बीता। शायरी का शौक भी वहीं हुआ। उनको कलकत्ता आये तीस बरस हो रहे हैं लेकिन लखनवी-अन्दाज, जिसे नजाकत कहना ज्यादा बेहतर होगा, अभी ज्यों-का-त्यों है। अपनी जिन्दगी में अब तक पचास वसन्त देख चुके हैं। वसन्त इसलिए कि जिन्दगी में दौरे-खिजाँ का कैसा कयाम है, यह आज तक उन्हें पता नहीं।

लखनऊ से कलकत्ता आने पर उन्हें अहसास हुआ कि शायर से ज्यादा इज्जत एक नेता की है। फिर क्या था, बन गये नेता, लेकिन यह फैसला आज तक नहीं कर पाये कि किस पार्टी में शामिल होना ठीक होगा। कांग्रेसी बनने में यह दिक्कत थी कि कांग्रेस के खिलाफ आलोचनाएँ सुनने के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगता। कम्यूनिस्ट पार्टी कब तक अपनी सरकार बना सकेगी या नहीं बना सकेगी, इसका कोई ठीक नहीं है। सोशलिस्ट या और किसी पार्टी का उन्हें कोई मुस्तकबिल नहीं दीखता।

एक दिन लतीफ ने बातचीत के दौरान में उन्हें थाली का बैंगन कह दिया कि फिर साहब अपने चुस्त पाजामे में बाहर ही शेरवानी फड़फड़ाते हुए बोले—"पहले करने की तमीज सीखो, फिर बाद में शायरी और लीडरी देखना। अपनी जिन्दगी में जो मैंने हासिल किया है, तुम पुश्त में भी नहीं कर सकते!"

"माफ कीजिए, मैंने गलत समझ था। आप थोड़ी-सी और कोशिश गालिब और गाँधी दोनों में बाजी ले जायेंगे!"

"बदहवास हो क्या ? तुम्हें पता गालिब को गालिब और गाँधी को किसने बनाया ?"

"किसने बनाया ?"

"हमने, हमारे जैसे शायरों और लीडरों ने। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता अकेले गालिब और गाँधी कुछ नहीं कर सकते थे!"

"गुस्ताखी माफ हो मिर्जा साहब आइन्दा ऐसी गलती नहीं होगी।....ओह मेरे पेट में अचानक दर्द होने लगा है!"

"मिर्जा साहब क्या करें, मरो!"

"नहीं मिर्जा साहब! हाथ जोड़ता हूँ!"

"अच्छा तो चलो दवाखाने में, लेकिन ऐसी हरकत फिर न करना।"

मिर्जा सहाब ने आला लगाया—"तुम्हारी अँतड़ी में एक फोड़ा हो गया है लेकिन घबराने की जरूरत नहीं। दो खुराक दवा दे देता हूँ, सब ठीक हो जायगा।" उन्होंने दवा दी और मधु जैसा कुछ चटाया। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुखा–"दर्द कुछ कम है ?"

लतीफ ने दिलचस्पी ली–"अभी तो कुछ कम है !" "तो बैठो , एक-दो गजलें सुनते जाओ।" मिर्जा साहब का मूड बिल-कुल बदल गया–"एक बड़ी उमदा गजल कही है।" इधर मिर्जा साहब ने गजल सुनानी शुरू की, उधर लतीफ ने साँस लेना भी बन्द कर दिया। कहीं भूल कर भी तारीफ की तो खैरियत नहीं, कई घण्टों का हिसाब लग जायेगा। पूरे एक घण्टे के बाद उसे छुट्टी मिली।

मिर्जा साहब ने एक पैसा दवा का आज तक किसी से नहीं लिया। उनकी दवा की यह खूबी है कि लोग बजाय अच्छे होने के और बीमार हो जाते हैं। कई तो उनकी दवा लेकर मौत के मुंह में जाते-जाते बचे। फिर भी उनका दवाखाना चालू है, चालू रहेगा, चाहे कोई आये, न आये। दवाएँ आज से बीस बरस पहले खरीदी गई थीं लेकिन अभी भी कोई ऐसा मर्ज नहीं जिसकी दवा उनके पास न हो। भूल कर भी डाक्टरी नहीं पढ़ी होगी फिर भी उनका दावा है कि वे सब कुछ जानते हैं।

जब से पोलिटिकल सफरर––राजनीतिक पेंशन––हुए हैं, न सिर्फ उनकी आमदनी बढ़ गई है, बल्कि रोब और दबदबा भी काफी बढ़ गया है। पोलिटिकल सफरर क्या हुए हैं, उन्हें कौम-परस्त होने का सर्टिफिकेट मिल गया है। आजादी की लड़ाई में उन्होंने हिस्सा लिया हो या जान-बूझ कर जेल गये हों, ऐसी बात नहीं। यह तो इत्तिफाक की बात है कि १९४२ में जब देश-भक्तों की धर-पकड़ जारी थी, भागते वक्त वे भी पकड़ लिये गये और छः महीने तक जेल में आजादी के लिए लड़ रहे कौमपरस्तों को कोसते रहे। लेकिन आजादी के बाद जब पोलिटिकल सफरर बनने का वक्त आया तो यह कहते हुए कि देश के लिए मैंने भी बड़ी-बड़ी कुरबा-नियाँ दी हैं, सबसे आगे देखे गये।

नाम कमाने और अमर होने के लिए ही आज वे पच्चीस अदारों–संस्थाओं––के मेम्बर , दो के सेक्रेटरी, एक के खजांची और एक के सदर हैं। ऐसी सभाओं में जाने से कभी नहीं चूकते जहाँ की रिपोर्ट अखबारों में छपती है। किसी तरह अगर तस्वीर भी छप गई–फिर तो उनके पाँव जमीन पर नहीं रहते, सबको दिखाते फिरते हैं और बाद में शीशे में मढ़वा कर कमरे में लटका देते हैं।

पिछले दिनों रेल-मन्त्री आये तो उनके एजाज में एक पार्टी दी गई जिसकी इस्त-कबालिया कमेटी के सदर मिर्जा साहब थे। मंजूर अली एम० एल० ए० से मिलकर मिर्जा साहब ने ही मन्त्री जी का इस्तकबाल करने का फैसला किया था। यही वजह है कि नाश्ते-चाय में जो खर्च हुआ उसे मिर्जा साहब ने खुशी-खुशी बरदाश्त कर लिया। मन्त्री जी को माला पहनाने का भी उन्हें मौका मिला लेकिन माला पहनाते समय जो तस्वीर ली गई, वह अखबारों में नहीं छपी जिससे उन्हें काफी दुख हुआ। दूसरे ही दिन मिर्जा साहब अखबार के दफ्तर में पहुँच गये।

"मुझसे कोई दुश्मनी है क्या ?"

"नहीं मिर्जा साहब ! बात क्या है ?"

"मन्त्री जी को माला पहनाते समय जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्वीर ली गई थी, वह क्यों नहीं छापी आप लोगों ने ?"

"कुछ इनायत हो जाय !" धीरे-से स्टाफ-रिपोर्टर ने कहा ।

"दस-बीस जो हो, बिल बनवा कर भेजवा दीजियेगा ।"

"शुक्रिया ! तस्वीर कल छप जायेगी ।"

"खयाल रहे, जरा मेरे नाम के साथ..."

दूसरे दिन तस्वीर छप गई । उसके नीचे परिचय था—रेल-मन्त्री को समाज-सेवी शायर और नेता हजरत मिर्जा नईम माला पहनाते हुए ।—मिर्जा नईम को शान्ति मिली। फख्र से उनकी छाती फूल गई । कलकत्ते में उनकी भी इज्जत है, उनका भी कोई मुकाम है ! हमेशा से उनका यह खयाल रहा है कि जिसके अन्दर लिखने-पढ़ने या तकरीर करने की कुछ भी सलाहियत है, उसे छपना चाहिए । इससे अपनी शुहरत होती है, दूसरों का भला होता है ।

एक बार खुद भी एक परचा निकालने का कस्द किया था लेकिन पूछताछ शुरू की तो किसी ने इतना लम्बा नुस्खा बता दिया कि हाथ-पाँव समेट कर रह गये ।

सबसे मिलते-जुलते रहते हैं । खैरियत कम पूछते हैं, नसीहत ज्यादा करते हैं । हँसते हुए आगे बढ़े, हाथ मिलाया, अगर खाने-पीने का कुछ सिलसिला लगा तो कुछ देर के लिए रुक गये और नहीं तो आगे बढ़ गये । छोटे बच्चों से ज्यादा प्यार करते हैं लेकिन उनके माँ-बाप के सामने ही। साहब-सलाम के बाद बच्चों से उलझ गये । कभी कुछ मिठाई वगैरह भी दिला दी । अगर लड़का पढ़ रहा है तो जल्दी-जल्दी सबक सुन लिया और फिर नया सबक भी दे दिया चलते-चलते उनके गार्जियन से नसीहत कर दी—"लड़का बड़ा तेज है, उसकी पढ़ाई लिखाई का खास खयाल रखना ।"

कुछ लोग हँसते हैं, कुछ मुस्कराते हैं कुछ ताज्जुब करते हैं लेकिन मिर्जा साहब की बुलन्द शख्सियत इन सब पर हावी होती हुई आगे निकल जाती है ।

हजरत मिर्जा काफी मसरूफ आदमी हैं अभी यहाँ मीटिंग में तकरीर करनी है, फिर थोड़ी देर बाद मुशायरे का प्रोग्राम है। कई जलसे कराने हैं, उनकी तैयारी करनी है अखबारों में छपने के लिए कुछ लिखना है, खबरें इधर-उधर भिजवानी हैं। एडीटरों से मिलना है । नेताओं से मिल कर कुछ मशवरे करने हैं । पुराने अखबार, रसालों या किताबों की मदद से सियासी और अदबी मजामीन तैयार करने हैं, गजलें कहनी हैं गोया काम-ही-काम है !

कलकत्ते की इब्तदाई जिन्दगी में एक दौर उनके नमाज पढ़ने का भी था। लेकिन नमाज पढ़ते अभी कुछ दिन भी नहीं हुए थे कि उससे हमेशा के लिए दस्तबरदार हो गये । अब कभी जुम्मा को चले गये, तो चले गये नहीं तो ईद-बकरीद को सब कोर पूरा कर लेंगे । दरअसल नमाज का उन्हें शौक उस समय हुआ जब उन्होंने मुहल्ले की एक खूबसूरत नौजवान लड़की को रोज मस्जिद के दरवाजे पर पानी दुआ कराते देखा था। मुसीबत की मारी वह बेचारी नमाज खत्म होने के कुछ पहले ही से दरवाजे पर पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर खड़ी हो जाती थी। एक दिन देखा, दूसरे दिन देखा और तीसरे दिन खुद नमाज पढ़ने चले गये। जैसे ही नमाज खत्म हुई, दौड़ कर दरवाजे की ओर लपके। झूठ-सच पढ़ कर पानी फूंका और गौर से लड़की को देखने लगे। लड़की शरमा कर नीचे की ओर देखने लगी। फिर पूछा—कौन, कबसे, कैसे, क्यों बीमार है ?—और अपने दवाखाने में आने के लिए कहा। पैसा बिलकुल नहीं लगेगा और इंशाअल्ला ! एक ही दिन में आराम हो जायगा ! लड़की दवा के लिए भी गई। दवा अपनी बीमार माँ को पिलायी तो दुख दूना हो गया। इतने में किसी ने उसे यह समझाया कि मिर्जा साहब की नीयत ठीक नहीं है। वह सोचते हैं कि तुम्हारे घर लेदेकर एक माँ ही तो है; अगर किसी तरह वह भी मर जाय तो तुम्हारी मजबूरी से किसी तरह फायदा उठाया जा सकता है। नतीजा यह हुआ कि उस दिन से लड़की का कुछ पता नहीं चला।

पिछले दिनों मिर्जा साहब को शुहरत हासिल करने का एक और मौका मिला। जूट-मिलों ने कच्चे पाटों की कमी का हवाला देते हुए मजदूरों की छँटाई शुरू कर दी। पश्चिम बंगाल के लगभग पचास हजार मजदूर इससे मुतास्सिर हुए। लेबर-मिनिस्टर ने जूट-मिलों के इस कदम का सख्त विरोध किया। मिर्जा साहब की बन आई। वे एक मिल के गेट पर पहुँच गये, जैसे ही सीटी बजी और कर्मचारी कारखाने से बाहर निकले, मिर्जा साहब जोर-जोर से चिल्लाने लगे—"भाइयो ! आपलोगों को मिल कर जूट-मिलों में हो रही छँटाई का सख्त विरोध करना है। सरकार आपलोगों के साथ है। हम आपलोगों के साथ हैं। हम न तो काम के घण्टे कम करने देंगे और न छँटाई। हमारी सब मांगें पूरी होनी चाहिए, हम कल से आपलोगों की हिमायत में भूख-हड़ताल करने जा रहे हैं।"

दूसरे दिन मिल के सामने चारपाई पर पड़ गये। मजदूरों ने मालाएँ पहनाईं। उनकी देख-रेख शुरू की। एक दिन बीता, दो दिन बीता; फिर तो कलकत्ते ही क्या, पूरे भारत में उनकी भूख-हड़ताल की खबर फैल गई। मुबारकबादी के सन्देश आने लगे। लोग मिलने के लिए टूट पड़े। अखबारों में खबरों के साथ उनकी तस्वीरें भी छपीं। उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। रिपोर्टर खुद-ब-खुद आने लगे। भूख-हड़ताल के पाँचवे दिन लतीफ भी उनसे मिलने गया। ताज्जुब से पूछा—"अरे मिर्जा साहब, आप मर कर भी कौम की खिदमत उतनी नहीं कर सकते जितनी जिन्दा रहकर कर सकते हैं !"

मिर्जा साहब ने उन्हें नजदीक बुलाया और कान में धीरे-से कहा—"मास्टर तारासिंह जैसा मैं मरन-बरत नहीं कर रहा हूँ। यह भूख-हड़ताल है। जान खतरे में पड़ता देखूंगा तो धीरे-से अनशन खत्म कर दूंगा। अभी जरा शोर तो मचने दो। इस बीच कोई मिनिस्टर भी अपील तो कर ही बैठेगा ! फिर देखा जायगा।"

लतीफ अवाक रह गया: तो क्या इसी के लिए जान दे रहे हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरे एक हफ्ते के बाद उन्होंने अपना अनशन तोड़ा। इत्तिफाकन उसी दिन मुख्य मन्त्री ने एक भाषण दिया कि यहाँ की आमदनी का खास जरिया जूट सनत है। इसलिए इसे किसी कीमत पर बरबाद नहीं होने दिया जायेगा। मिर्जा साहब की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। चारों तरफ कहते फिरे कि हमारी भूख-हड़ताल ने पूरे हिन्दुस्तान में तहलका मचा दिया।

कलकत्ते के कोने-कोने में मिर्जा नईम हैं। कलकत्ते की एक-एक इंच जमीन उनकी पहचानी हुई है। कलकत्ता का जर्रा-जर्रा उन्हें पहचानता है। सब मिलकर खुदा से यही दुआ करते हैं कि मिर्जा नईम की जिन्दगी हमेशा सलामत रहे क्योंकि वे जानते हैं कि जिस दिन मिर्जा साहब नहीं रहेंगे, कलकत्ते की सारी रौनक खत्म हो जायेगी। यह अदबी, सियासी और समाजी चहल-पहल न रहेगी। सब कुछ होते हुए भी कलकत्ता वीरान हो जायेगा!

● ● ●

नये-पुराने

भूपाल के एक कालेज का वार्षिक मुशायरा। देश के प्रसिद्ध उर्दू-कवि उसमें आमंत्रित थे। नये भी, पुराने भी। नये कवि खूब लहक-लहककर अपनी रचनाएँ सस्वर पढ़ रहे थे और खूब दाद भी मिल रही थी उन्हें। बूढ़े उस्ताद कवि, बस बेचारगी से कविता-पाठ करते और उतर आते स्टेज से। श्रोता-समाज था कालेज के लड़कों का। पुराने तहतुल-लफ्ज पढ़ने वालों पर हूटिंग शुरू हो रही थी।

उर्दू के वयोवृद्ध कवि उस्ताद अहसन मारहर्वी भी मुशायरे में उपस्थित थे। स्थिति सहन नहीं हुई तो तत्काल उन्होंने एक रूबाई लिखी, और स्टेज पर आकर सुनाने लगे :

बजती हुई आवाज़ कहाँ से लाऊँ ? साजिन्दों के अन्दाज़ कहाँ से लाऊँ ?
फरमाएँ मुझे माफ, जवाने अजीज ! बूढ़ा हूँ, नया साज कहाँ से लाऊँ ?

अहसन साहब की यह आशु-रचना मानो एक कटु-व्यंग्य थी, सस्वर पढ़नेवाले नये कवियों पर। अतः तुरन्त ही प्रत्युत्तर में 'सागर निजामी' ने, जो उस समय तरुण थे, फिल्बदीह (तुरन्त की रची गयी) एक रूबाई कह सुनाई :

गर पाँव नहीं, कोह पै चढ़ते क्यों हो ? मंजिल की तरफ, शौक से बढ़ते क्यों हो ?
पढ़ने के लिए चाहिए, लिहने—दाऊद—पढ़ना नहीं आता है तो पढ़ते क्यों हो ?

रूबाई का पढ़ना था कि मुशायरे में हंगामा मच गया। इधर दाद के फूल बरस रहे थे, उधर उस्ताद कवि उस गुस्ताखी पर रुष्ट होकर वाक-आउट करने लगे थे। बड़ी मुश्किल से उन्हें मनाया गया और मुशायरा पुनः चालू हुआ।

—शाकिर पुरुषार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमुल इस्लाम

उर्दू की रोमानी शायरी में 'फिराक' की शायरी प्रकाश-स्तम्भ है। वह जिन्दगी का नगमा और रूह की आवाज है। 'फिराक' साहब की शायरी के सम्बन्ध में यह विवेचन उर्दू-साहित्य के नये आयाम से परिचित कराता है।

फ़िराक़ की रोमानी शायरी

'फिराक' उर्दू गजल–गो शायरों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते है। यूं तो उन्होंने गजल के अतिरिक्त नज्में, रुबाइयाँ आदि बहुत कुछ लिखी हैं, पर उनकी पूरी शायरी को मुख्य रूप से गजल की शायरी और सही अर्थों में इश्किया (रोमानी) शायरी कहना ही न्यायपूर्ण होगा। पर फिराक ने अनगिनत उर्दू–रोमानी–शायरों की तरह दिल और भावुकता की तलछट और माशूक की चूमा-चाटी के बल-बूते पर अपनी शायरी की बुनियाद नहीं रखी है, बल्कि उनके पास बड़े दिल के साथ ही एक बड़ा दिमाग और एक प्रगतिशील मानवतावादी जीवन-दर्शन भी है। वे बुद्धिवादी तो अवश्य हैं लेकिन हीन-भाव और निराशा से त्रस्त नहीं हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी और प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है। उनकी कल्पना बड़ी सहज, स्वाभाविक गहरी और प्रेरणादायक है। उनकी रोमानी शायरी घुटी-घुटी, अस्वस्थ और उकता देनेवाली फालिज-मार मायूसी एवं आँसुओं की परम्परागत बरसात न होकर जानदार, भावपूर्ण और अर्थपूर्ण होने के साथ-साथ सुख-दुख का ऐसा मिश्रण है जिनका अलग-अलग विश्लेषण कर पाना कठिन है। वह एक प्रकार से सबसे अछूती बुलन्द और अलग है जिसमें उनके व्यक्तिगत सौन्दर्य-बोध और सामाजिक-राजनैतिक चेतना का मिलाप हुआ है और प्रेम की मनोवैज्ञानिक उलझनें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सूक्ष्मता पूर्ण रूप से निखरी हैं। उनकी प्रेमिका परम्परागत कोठे से उतर आने का सफल प्रयास करती है और कर्मरत मानव-जीवन के साथ बड़ी सूझ-बूझ से चलती रहती है। 'फिराक' साहब रोमानी शायरी के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए बड़े धैर्य के साथ कहते हैं कि :

".....मेरा खयाल रहा है कि सच्ची और पुर-अजमत (महानतम) इश्किया शायरी इश्क की सच्चाइयों और अजमतों की शायरी है और जमाले -इन्सानी (मानवी सौन्दर्य) के एहसासात की शायरी है, न कि आये दिन की उन तकलीफों की फिहरिस्त है जो माशूक के हाथों आशिक को होती है। .....मुहब्बत में जाती (व्यक्तिगत) दुख को तखय्युल की कीमिया से (कल्पना की सूक्ष्मता से) अजमतें और कदरें मिलती हैं, और तखय्युल भी महज इन्फेरादी (व्यक्ति-वादी) नहीं, बल्कि किसी बुलन्द कौमी (राष्ट्रीय) कल्चर का तखय्युल। कल्चर के ये नाजुक मुकामात वहाँ हैं, जहाँ इश्किया शायरी ब-एक-वक्त आपबीती और जग-बीती होते हुए इन दोनों मंजिलों से गुजर जाती है। जमाँ-व-मकाँ की इस खमीदगी या मोड़ में दुख-सुख का नया जन्म होता है।"

स्वप्न में किसी का दबे पाँव आना और चुपके-से गोद में लिपटकर पड़ रहना, अतलसो-कमख्वाब में लहकती हुई मरमरी बाँहों और आँचल से छनते हुए रंगीन रुखसारों को देखकर मस्त-अलस्त हो जाना और फिर अपनी बाँहें डालकर, प्यासे होठों को आरिजे-रंगी पर साध कर धर देना लेकिन आँख खुलते ही अपना फटा हुआ दामन हाथ में देखना भले ही कितनी सच्ची मानवी भावना की व्याख्या क्यों न हो, पर महान इन्किया शायरी इसी के इर्द-गिर्द तेली के बैल की तरह आँखों पर पट्टी बाँधे नहीं घूम सकती। किसी की इश्किया शायरी महबूब की सर-से-पैर तक की छवि और नाजो-अदा का वर्णन, सतही हलके-फुलके मांसल रोमांस और हाय-हाय से बुलन्दी नहीं पा सकती जब तक कि शायर स्वयं एक महान राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कल्चर का समर्थक न हो और उसकी निगाह मानवतावादी सरहदों को न छू ले और उसके दिल का हर तार समाज की हर क्षण बदलती हुई मान्यताओं, उलझनों और उत्पीड़नों के साथ न बज उठता हो। 'फिराक' के यहाँ इश्क की नरमी-गरमी, गम-खुशी, प्रेमिका से मिलन और निकटता, सौन्दर्य को अपने में समेट लेने की भावुकता, गले में बाँह डालने का सलोना अन्दाज तो है ही जो उनकी शायरी को जानदार, मांसल, रोचक, सजीला और लचीला बनाता है, लेकिन इन सबसे ऊपर उनकी रोमानी शायरी एक विस्तृत कल्चर, सभ्यता, संस्कृति और मानवता-वादी सूक्ष्म सरहदों को छूती हुई दुख-सुख और मिलन-विरह में उलझती और फिर लाँघती हुई आगे बढ़ कर जुल्म के खिलाफ आवाज उठाती है और उच्च एवं आदर्श मानव-जीवन की ओर संकेत करती है। यही वह नाजुक और अत्यन्त सूक्ष्म मोड़ है जहाँ 'फिराक' की रोमानी शायरी 'मीर' और 'गालिब' से ऊपर उठने लगती है।

'फिराक' की शायरी में हमें जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी आलोचनाएँ मिलती हैं। उनके शेरों में जो सजावट और निखार है वह सदियों का मँजी-मँजाई शायरी का जौहर है। उनके यहाँ पुरानी इश्किया शायरी अपने तमाम रंग-रूप के साथ उभर कर आती है मगर मरीज की तरह नहीं। उनकी शायरी हैं जिन्दगी और इश्क एक जूए में नथे हुए में जिसमें एक कड़ुवाहट का आभास होता है, जो जीवन को संघर्षमय बनाते हुए उसका आदर करना सिखाता है। वे विरोधाभास को एक साथ बाँधकर वर्तमान उलझनपूर्ण प्रेम और जीवन के मूल्यों की ओर संकेत कर देते हैं।

गरज कि काट दिये जिन्दगी के दिन, ऐ दोस्त,
वो तेरी याद में हों या तुझे भुलाने में।

इसी विचार को एक शेर में और आगे बढ़ाते हुए स्पष्ट करते हैं :

यूं ही फिराक ने उम्र बसर की,
कुछ गमे-जानाँ[1] कुछ गमे-दौराँ।[2]

देखिये, मजबूरियों का आभास उनको पीड़ा तो देता है मगर औरों की तरह वह बार-बार मरने के पक्षपाती नहीं हैं :

कुछ आदमी को हैं मजबूरियाँ भी दुनियाँ में,
अरे वह दर्दे-मुहब्बत सही, तो क्या मर जायँ?

दुख में सुख, सुख में दुख और मिलन में विरह, विरह में मिलन का आभास उनकी केवल अपनी विशेषता है :

था जिक्रे-करम फिराक उनका,
क्यों आँख लगी है डबडबाने।

मुद्दतें गुजरी, तेरी याद न आयी हमको
और हम भूल गये हों तुझे, ऐसा भी नहीं।

उर्दू रोमानी शायरों की तरह 'फिराक' अपनी माशूका की तारीफ के पुल नहीं बाँध देते, बल्कि जो पसन्द आ गई, वही उनकी प्रेमिका है। (गो वह टाइप-वीलवेड भी नहीं है) दुनियाँ चाहे उसके सौन्दर्य के विषय में जो मत दे, उसकी वे परवाह किये बिना कह देते हैं :

तमाम शबनमो-गुल है वो सर से ता-ब-कदम
रुके-रुके-से कुछ आँसू, रुकी-रुकी-सी हँसी।

उनके शेर आईने की तरह साफ और इतिहास की तरह सरल होते हैं। कभी अपने से, कभी दूसरों से जैसे बातचीत में कह दिये गये हों। इसलिए उनमें एक सहज-मादक भाव, सरस उन्माद और मधुर आनन्द मिलता है :

कोई आया, न आयेगा, लेकिन
क्या करें, गर न इन्तजार करें?

तुम मुखातिब भी हो, करीब भी हो,
तुमको देखें कि तुमसे बात करें?

हमसे क्या हो सका मुहब्बत में,
तूने तो खैर बेवफाई की।

'फिराक' ने हिन्दी का रस और लोच उर्दू शायरी में समो कर काव्य की भाषा को बहुत समृद्ध कर दिया है। उन्होंने पश्चिमी कवियों के स्रोत का गहरा रसपान किया और पूर्वी संस्कृति के साथ घुला-मिला दिया। उन्होंने वेद, कालिदास, कबीर, जायसी

१. प्रेयसी का दुख २. सासारिक दुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि से एक तरफ और हाफिज, रोमी, गालिब, मीर के साथ-साथ शेक्सपीयर, शेली वर्ड्सवर्थ, कीट्स, बायरन आदि से दूसरी तरफ बहुत कुछ लिया है। पूर्व और पश्चिम के अलगाव के दुराग्रही आलोचकों को जहाँ एक तरफ यह बात खटकती है, वहीं परम्परा-वादियों को पुराने प्रतीकों, रूपकों और संकेतों से 'फिराक' की एक हल्की-सी बगावत भी बुरी लगती है। संगम के इर्द-गिर्द की रसीली, छबीली और सलोनी बोली एवं शेरों में गजब का ठहराव और बहाव उनकी इश्किया शायरी को रंगा-रंग कर देते हैं।

ये कैफो-रंगे-नजारा, ये बिजलियों की लपक
कि जैसे कृष्ण को राधा की आँख इशारे करे....

'फिराक' की इश्किया शायरी के हर प्रेमी को एक बात जो आश्चर्यचकित कर देती है, वह है कहीं-कहीं उनके शेरों में संयम का बेहद अभाव। कभी-कभी उनके बहुत-से शेर आपस में पुनरावृत्ति होकर रह जाते हैं। कितने ही शेर रसपूर्ण, चुलबुली लफ्फाजी के सिवा कुछ नहीं हैं। इश्क में मांसल भावुकता को बहुत बड़ा स्थान तो होता ही है लेकिन इसका एक मर्ज हो जाना अच्छा नहीं होता है। खैर, 'फिराक' के यहाँ ऐसे शेर दाल में नमक से भी कम हैं और ये उनकी शायरी पर गंदगी का दबाव नहीं डाल पाते। वे अपने जीवन-दर्शन और बुद्धिवादिता से सँभलते-से नजर आते हैं :

बहुत ही खूब है दोशीजा हुस्न का आलम
अब आ गये हो तो, आओ, तुम्हें खराब करें।

उर्दू की रोमानी शायरी में 'फिराक' की शायरी प्रकाश-स्तम्भ है। वह जिन्दगी का नगमा और रूह की आवाज है। वह खयाली आरजू और तमन्नाओं के जमघट में नहीं भटकती, आँसुओं के सैलाब में नहीं वह जाती बल्कि बड़ी गम्भीर एवं भावपूर्ण है और मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक वृत्तियों को अपने आँचल में भरे हुए है। उससे अजीब-सी गुदगुदी, आशा, प्रेम और मानवता टपकती है। वह दुख-सुख का संगम है। 'फिराक' के उदार मानवी विवेक ने उनकी रोमानी शायरी को सबसे ऊपर लाकर खड़ा कर दिया है।

बुद्धिमत्ता

एक बार जब बट्रेण्ड रसेल सर जार्ज डार्विन के यहाँ खाना खाने पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वे प्रसिद्ध गणितज्ञ सर राबर्ट बॉल के साथ एक ऐसी गणक-मशीन (हिसाब-किताब करने वाली मशीन) में उलझे हुए हैं जो ठीक काम नहीं कर रही है। जब कुछ समय तक परिश्रम करने के बाद भी वे उस मशीन को ठीक नहीं कर सके तो लेडी डार्विन ने आकर कहा, "इस मशीन में कुछ बूंद सौने की मशीन का तेल डालिए, तब यह काम करेगी।"

और उन तीनों विश्वविख्यात पुरुषों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब कुछ बूंद तेल डालने के पश्चात् वह मशीन ठीक - ठीक काम करने लगी।

—महेन्द्र राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

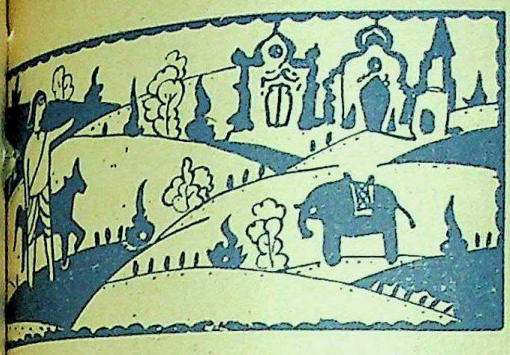

करुष जनपद

पराशर भट्टाचार्य

●

महाभारतकाल का 'एकचक्राधुरी'-- त्रेता का 'करुष'--आज का 'आरा' जिला कभी घोर अरण्य था। अरण्यकों को भगाकर हमने उनके भू-भाग पर कब्जा कर लिया। प्रस्तुत लेख से इस जनपद की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

●

आज जिस परिधि में बिहार का आरा जिला आबाद है, पुराने जमाने में उसे 'करुष' कहते थे। त्रेता में हमें इस स्थान का यही नाम स्पष्ट मिलता है। श्रीराम-लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र यज्ञ-रक्षार्थ अयोध्या से लेकर चले, तो बक्सर से कुछ पश्चिम एक स्थान पर प्रश्न किये जाने पर महर्षि ने श्रीराम से कहा था--"वत्स, दक्षिणोत्तर बसने वाले ये दो जनपद 'करुष' और 'मलद' हैं। ये बहुत बड़े, धन-जन समृद्ध थे। पावन तो ये हैं ही। यहीं, वृत्तासुर के मारने पर इन्द्र को लगे ब्रह्म-हत्या के पाप का प्रक्षालन ऋषियों ने किया था। इसी से एक का नाम 'मलद' पड़ा। ताड़का ने अपने बल से यहाँ के ऋषियों का नाश किया है। इसी के बीच 'सिद्धाश्रम' है। पुराने युग में वामन भगवान् ने यहीं तप कर सिद्धि पायी थी, इसीलिए इसे 'सिद्धाश्रम' कहते हैं। श्रीराम! तुम्हें ताड़का का बध करना होगा! नारी-वध के प्रति तुम्हारे मन में जुगुप्सा नहीं होनी चाहिए। यह पापिनी धर्म-कर्म का नाश करती है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे चलकर करुष की चौहद्दी इस प्रकार बनी—पश्चिम वाराणसी, उत्तर गंगा, पूर्व शोण भद्र और दक्षिण विन्ध्य की तराई। अतिशय पुराने जमाने में, त्रेता में, भारत के कुछ भू-भाग पर रावण का भी शासन था। करुष रावण के शासन में था। अयोध्या के राजाओं ने, श्रीराम के पूर्व, उस पर अधिकार नहीं किया था या करने में असमर्थ थे। ताड़का, मारीच, सुबाहु आदि रावण के अनुचर थे। यद्यपि उस जमाने में वे करुष पर शासन तो स्वतन्त्र रूप से करते थे, परन्तु राक्षस-राज रावण की अधीनता थी। करुष के शासक होते हुए भी वे उसका नाश करते थे। यह एक विचित्र बात है परन्तु इसका प्रमाण श्री राम से कहे गये मारीच के निम्न वाक्य (श्लोक) द्वारा हो जाता है :—

अद्मो द्विजान् देवयजीन्
निहन्मः कुर्मः पुरं प्रेत नराधिवासम्
धर्मो ह्ययं दाशरथे, निजोनो,
नैवाधिकारो ममवेदवृत्तेः।

(दाशरथि श्रीराम, हम राक्षस ब्राह्मणों को खा जाते हैं, देवपूजकों को मार डालते हैं; गाँवों, नगरों को मरे हुए लोगों का अधिवास बनाते हैं। यह हमारा अपना धर्म है। वेदविहित मार्ग पर चलने का हमारा अधिकार नहीं है।)

काल ने 'करुष' का नाम मिटा दिया है पर यह क्षेत्र किसी समय मगध राज्य को स्पर्श करने लगा था। यह और बात है कि उसका आरण्यकपन अरसे तक कायम रहा। पूर्ण रूप से उसके अरण्य का तब उच्छेद हुआ, जब हम कन्नौज, सरवार आदि में जनसंख्या की वृद्धि के चलते अँट न सके। वहाँ से गंगा-पथ से, पूरब की ओर बढ़ते गये, करुष को आरा के नाम से जानने-मानने लगे; आरण्यकों को भगा कर उस भू-भाग पर अपना कब्जा जमाने लगे, अरण्य काट कर उसे खेती के योग्य बनाने लगे। यह काम बहुत पहले प्रारम्भ हुआ था और हाल तक चला है। वीर-बांकुड़ा बाबू कुँवरसिंह के जमाने तक, जिसे बीते सौ-डेढ़ सौ वर्ष होता है, आरा अरण्य था। आरा नगर की 'आरन' देवी हमारी नहीं; आरण्यकों—जंगलियों की देवी थीं। हम सभ्यों ने समय से उन्हें आत्मसात् कर लिया। आज वे पूर्णतः हमारी हैं।

जातकों से पता चलता है कि बौद्ध युग में वर्तमान आरा जिला घोर कान्तार था। आरा नगर के पश्चिम में, पूर्व रेलवे के 'कारीसाथ' स्टेशन के पास मौजूद 'मसाढ़' गाँव उस समय 'महासर' के नाम से विख्यात था। पाटलिपुत्र से उसका सम्बन्ध गंगा-पथ से होता था। आज गंगा पाटलिपुत्र—पटना—को तो गोद में लिपटाये हुई हैं किन्तु मसाढ़ से वे आठ-नौ मील उत्तर चली गयी हैं। ऐसा लगता है—वे अपने प्रिय महासर को फिर अंकगत नहीं करेंगी। परन्तु जो मिट्टी और रेत वे छोड़ गयी हैं, मसाढ़ से लेकर गंगा तक, भू-गर्भ में अभी तक वह मौजूद है। रेल-पथ से उत्तर की ओर कूप के लिए जब जमीन खोदी जाती है, तब वह वस्तु प्रत्यक्ष हो जाती है। कारीसाथ-स्टेशन के पास दक्षिण में तिरोजपुर नाम का एक गाँव है। वहाँ कभी पैठ लगती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उसके निकट बहती ही थीं। इसलिए आज भी भोजपुर इलाके में रेल-पथ से उत्तर की ओर यह लोकोक्ति है--गंगा का नहान, तिरोजपुर की पेठियाँ।

महासर में रह कर बौद्ध-भिक्षुक आरण्यकों में बौद्ध-धर्म का प्रचार, दूसरे शब्दों में नम्यता का प्रचार करते थे। जब जैन-तीर्थंकरों का प्रभाव बिहार में बढ़ा, तो महासर में वे भी अपना प्रभाव कायम करने लगे। बाद में वैदिकों से मिलकर जैनों ने बौद्धों को वहाँ से भगा दिया। अपने मन्दिर वहाँ बनवाये। जैनों का एक मन्दिर अभी भी मसाढ़ में है। खोज करने पर यत्र-तत्र अभी भी बौद्ध-युग के अवशेष वहाँ मिलते हैं। प्रतिवर्ष आश्विन एवं चैत्र में वहाँ मेला लगता है।

कहते हैं—मगधराज बाणासुर का महासर में ही आवास था। उसकी प्यारी कन्या ऊषा ने, मयसुता चित्रलेखा के सहयोग से, यहीं अपने महल में श्री कृष्ण-तनय प्रद्युम्न को वर्षों रखा था। किंवदन्ती है कि वर्तमान दो बड़े तालाब, जिनमें एक कारीसाथ-स्टेशन के पास ही है, एवं शिव-मन्दिर बाणासुर के ही बनवाये हुए हैं। इसे इतिवृत्त समर्थन प्राप्त नहीं है, ऐसा कोई पौराणिक संकेत भी नहीं मिलता।

महर्षि विश्वामित्र ने करुष को पावन बताया है। सचमुच इसमें पावनता का भाग है। शोण के पावन उपकूल को जन्म से कविवर बाणभट्ट ने अलंकृत किया था। सम्राट शेरशाह यहीं पैदा हुए। बहादुर कुँवरसिंह ने, जिनकी स्मृति आज भी रगों में बिजली दौड़ा देती है, यहीं सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध तलवार उठायी थी।

कहते हैं--महाभारत काल में आरा का नाम 'एकचक्रापुरी' था। लाक्षागृह से अन्तर्हित होकर पाण्डव, माता कुन्ती के साथ यहीं कुछ दिन बसे थे--एक ब्राह्मणी के घर में। पाण्डव भी उस समय अपने को ब्राह्मण ही कहते थे। भिक्षा से जीविका चलाते थे। नगर से बाहर 'बक' राक्षस रहता था; जो नगर के एक-एक मानव को प्रतिदिन खाया करता था। पाण्डवों के वहाँ रहते हुए उस ब्राह्मणी के पुत्र की भी बारी आयी। माता कुन्ती की आज्ञा से भीम ने बक राक्षस का बध किया। ब्राह्मण-पुत्र के साथ उस नगर को अभय दिया। वर्तमान आरा नगर के दक्षिण, करीब तीन मील पर 'बकरी' नाम का एक गाँव है। आज उसमें विभिन्न जातियों के लोग बसते हैं। पुरातत्त्व की चीजें यत्र-तत्र वहाँ मिलती हैं। उस गाँव के लोग विस्तृत रूप से एक राक्षस की सत्ता का उल्लेख किया करते हैं।

अब न एकचक्रापुरी है न त्रेता का करुष ही है; वाण, शेरशाह और कुँवरसिंह भी नहीं रहे। अब तो आरा जिला मौजूद है। बल्कि 'आरा' नाम भी मिट रहा है। उसका स्थान 'शाहाबाद' ले रहा है। काल महाबली है। वह एक को मिटाकर दूसरों को आबाद करता है। अक्सर पुरानी वस्तु की स्मृति तक को खा जाता है। जहाँ कुछ शेष रह जाता है, उसके अतीत पर हम गर्व करते हैं; कुछ सीख लेते हैं।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे गीत

मूल : मंगेश पाडगाँवकर

अनु : शशिबंधुभ

•

आषाढ़ के स्पर्श से
जब माटी सिहर उठी
श्याम घन के बिखरे केशों में
जब तड़ित की उत्सुक उँगलियाँ फिरने लगीं,
पृथ्वी की वेदना को
जब हरित अंकुर मिला;
तत्क्षण
मेरे गीतों का जन्म हुआ !
विनाश के तट पर
तब था खड़ा विश्व;
पंख थके हुए थे
यमुना के जल पर
कालिय का शासन था.....
उस क्षण मेरे गीत
वसन्त के श्वास बने
जीवन के सूखे वृक्ष में
एक हरा पत्र लगा;

गीता के वट-पत्र पर
नया जग तिर रहा था
विनाश-रूपी हारे हुए कालिय पर
मेरे गीत कृष्ण होकर खड़े थे;
ग्रंथ के, मंदिर के कारागृह में
मेरा ईश्वर कैद नहीं; बंधा हुआ नहीं;
मेरा ईश्वर फूल होकर फूलता है,
वर्षा की धारा होकर बहता है,
हल बनकर इस माटी को
दृढ़ आलिंगन में जकड़ लेता है;
बाँसुरी से संगीतमय श्वास-सा
मेरा ईश्वर मेरे गीतों में व्याप्त है
वृक्षों के हर-एक हरे पत्ते से
फूलों की रंगीन पंखुड़ी से--
भीगी माटी की सुगंधित साँस से
मेरे गीत कहा करते हैं--
नहि सर्जनात् परो धर्मः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द वर्मा

प्रतिशोध की भावना केवल अपनी प्राचीनता के ही कारण नहीं, अपनी व्यापकता के कारण भी विशेष रूप मे विवेच्य है।

●

यदि कोई व्यक्ति हमारा अहित करे तो उस व्यक्ति के हित को चोट पहुँचाने की तीव्र इच्छा हमारे मन में उठती है। अहित की इसी प्रेरक भावना का नाम है--प्रतिशोध।

प्रतिशोध की उत्पत्ति क्रोध से होती है किन्तु इसकी भीषणता उससे अधिक है। क्रोधी में वेग होता है किन्तु वह वेग क्षणिक होता है। प्रतिशोधी में धारण-शक्ति होती है और वह स्थायी होती है। क्रोधावेश में प्राणी अहित के लिए आतुर होता है, किन्तु आवेश उतरते ही आतुरता का स्थान पश्चात्ताप ले लेता है। किन्तु प्रतिशोधी में प्रकट रूप में तो कोई आवेश होता ही नहीं, अप्रकट रूप से जो होता है वह अस्थायी नहीं होता। प्रतिशोध-धारक को तब तक क्रियाशील रखता है, जब तक कि साध्य का अहित-कार्य सम्पन्न नहीं कर लेता। इसके धारक में बला की एकाग्र-शक्ति होती है। उसकी बुद्धि रूपी कम्पास की सुई सर्वदा प्रतिशोध-पात्र के अपकार रूपी ध्रुव की ओर केन्द्रित रहती है। अहित-साधना में सफल होने के बाद उसे जो शान्ति प्राप्त होती है उसकी उपमा यदि किसी अन्य लौकिक शान्ति से दी जा सकती है तो केवल कर्जा चुकाने के बाद प्राप्त होने वाली शान्ति से। यही कारण है कि जब

प्रतिशोध
और उसकी व्यापकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कर्जा वाला 'चुकाना' 'बदला' के साथ लग जाता है तो वह बदले को कर्त्तव्य का रूप दे देता है। शायद इसीलिए बदला चुकाना भी आदिकाल से उतना ही बड़ा फर्ज समझा जाता रहा है जैसे कि कर्जा चुकाना।

प्रतिशोध को क्रोध से अलग नाम देने-वाली मुख्य शक्ति है--उसकी धारण-शक्ति। इसलिए प्रतिशोध का मनोविकार अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को अधिक सताता है। मनुष्यों में भी शिशु को निकाल दीजिए क्योंकि उसकी धारण-शक्ति अभी इतनी विकसित नहीं होती कि अपने अहित-कारक को अधिक काल तक याद रख सके।

प्रतिशोध की भावना हर युग में, हर वर्ग में रही है। राजनैतिक क्षेत्र हो या सामाजिक, व्यवसायिक हो या धार्मिक; अपराध का हो या प्रणय का; हर जगह यह भावना विद्यमान है। बैर-भाव, जानी दुश्मनी, षड़यन्त्र और नीचा दिखाने के दाँव-पेच--प्रतिशोध की ये भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं। जब तक समाज के एक व्यक्ति का हित, दूसरे का अहित होता रहेगा, यह भावना रहेगी।

यह तो ठीक है कि सभी मनुष्यों में यह भावना है किन्तु सबमें बराबर नहीं। जो व्यक्ति इस भावना का अत्यधिक प्रयोग करके इसके अभ्यस्त बन जाते हैं, उनमें यह विशेष बलवती बन कर उनकी अन्य भावनाओं को दबा लेती है। ऐसे व्यक्ति हर समय हर जानदार या बेजान वस्तु से बदला लेने की सोचते रहते हैं।

प्रतिशोध के अभ्यास की प्रेरणा बचपन से मिलनी प्रारम्भ होती है। इसका मूल कारण होता है--अपनी हित-रक्षा के लिए अत्यधिक सजग रहना। ऐसे व्यक्ति को अपना अहित अधिक महसूस होता है और उसके सोचने समझने का ढंग सामाजिक नहीं रहता वरन् आत्मिक हो जाता है। यही आत्म-केन्द्रित चिन्तन की भावना किसी भी व्यक्ति को प्रतिशोधाभ्यस्त बनाने के लिए काफी है।

यह भावना सभ्य-समाज में जितनी अधिक गर्हित है, असभ्य समाज में उतनी ही अधिक प्रशंसित। आदि जातियों में कोई व्यक्ति अपना बदला नहीं ले सकता तो उसके पुरुषत्व पर सन्देह प्रकट किया जाता है। प्रतिशोध को वहाँ सामाजिक मान्यता प्राप्त है। पुश्त-दरपुश्त 'बदले' चलते रहते हैं, और उस शिक्षा-हीन समाज में से यदि यह भावना निकाल ली जाए तो वहाँ के लोगों को व्यस्त रखना कुछ काल के लिए एक बड़ी समस्या बन जाए।

इस भावना को बदनाम करने में सभ्य समाज का बड़ा हाथ है किन्तु इसने समाज पर जो उपकार किए हैं उन्हें स्मरण करने की किंचित् आवश्यकता नहीं समझी गयी। तनिक कल्पना कीजिये उस समाज की जहाँ बलहीन को बलशाली से बचाने के लिए किसी प्रकार का कोई उपाय न हो। वहाँ कौन रोकेगा उसे जुल्म करने से? उस समय आवश्यकता पड़ेगी किसी ऐसे भय की जिससे डरकर वह अपने बल-प्रयोग को कम करे। "बदला" एक ऐसा भय है जो यदि सभी अवसरों पर नहीं तो बहुतेरे अवसरों पर साधन (धन, बल या गौरव) सम्पन्नों को साधन-हीनों पर जुल्म करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से रोकता है। यदि कोई अतीव शक्ति-सम्पन्न है तो वह किसी अन्य सर्वशक्तिमान की कल्पना से स्वयं को त्रसित रखता है और यदि वह स्वयं त्रसित नहीं होता तो साधनहीन वर्ग उसे किसी और सर्वशक्तिमान की याद दिलाकर उसे जुल्म से बाज रखने की कोशिश करता है। तिस पर भी यदि वह अपने साधनों का प्रयोग उनके अहित के लिए करता रहे तो कुछ कालोपरान्त वे साधनहीन सामूहिक रूप से अपने और अपनी पीढ़ियों के साथ किए गए अहितों का बदला साधन-सम्पन्नों से ले लेते हैं। उस प्रतिशोध का नाम 'इन्कलाब' हो जाता है।

इस प्रकार हर युग में प्रतिशोध अपना रूप बदलता रहता है। आदि-मानव जब सभ्यता के ढाँचे में ढले तो उन्होंने प्रतिशोध की भर्त्सना करते हुए भी इसे अपने से अलग न किया, बल्कि अपना संस्कार करने के साथ, वे इसे भी संस्कृत रूप देते रहे। यह रूप जानने और समझने के लिए आवश्यक है कि मानव-जाति के विकास की कहानी को कुछ शब्दों ने दुहरा लिया जाए:

कबीलों ने राज्यों का रूप ग्रहण किया। राज्यों ने अपनी प्रजा की रक्षा करने का दायित्व स्वयं पर लिया—लड़ाई-भिड़ाई की व्यस्तता से लोगों को निजात मिली तो शारीरिक बल का महत्व घटने लगा। बुद्धि-बल और धन-बल का महत्त्व बढ़ा। सत्ता, बुद्धि और धन सम्पन्नों के हाथ आई। और सत्ताधारियों ने महसूस किया कि राज्य में व्यवस्था बनाए रखने के लिए, प्रतिशोध की भावना आवश्यक है। साथ ही यह भी सोचा गया कि यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपना बदला लेने का अधिकार दे दिया गया तो प्रतिशोधाभ्यस्त व्यक्ति अनुचित बदला भी ले लेंगे। इसलिए प्रजा की रक्षा का भार लेने के साथ-साथ राज्य-सरकारों ने उसका प्रतिशोध लेने का भार भी अपने हाथ में ले लिया। तय पाया कि प्रत्येक वह व्यक्ति, जिसका अहित हुआ हो, पूरा विवरण सरकार को दे-दे और सरकार यदि उचित समझे तो पीड़ित की ओर से पीड़क का अहित करे। प्रतिशोध लेने के इस नये राष्ट्रीय व्यवस्था का नाम रखा गया—'दंड-व्यवस्था।

इस दंड-व्यवस्था से दो ध्येय पूरे होते थे। एक तो यह कि जिसका अहित हुआ है उसके मन को सान्त्वना मिले। दूसरे यह कि जो अब तक अहित-कर्म के भागी नहीं बने हैं, वे राज्य-दण्ड के भय से आगे भी न बनें।

यह व्यवस्था आज तक बनी हुई है। किन्तु आज भी कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने प्रतिशोध का मामला सरकार के सुपुर्द नहीं करना चाहते। या तो वे सरकार की ओर से होने वाले न्याय की देर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते अथवा वे समझते हैं कि न्याय की दृष्टि में वे पीड़क को पीड़क साबित नहीं कर सकेंगे। अधिक काल तक प्रतिशोधाग्नि में दग्ध रहने की बजाय वे अपना बदला स्वयं ले लेते हैं मगर उनके इस कृत्य को सरकार अपनी प्रतिष्ठा का अहित समझती है। इस भय से कि उसकी देखा-देखी कहीं अन्य लोग प्रतिशोध के मामले में स्वेच्छाचार न बरत सकें, वह दण्ड का भाजन उसी प्रतिशोधी को बनाती है जिसने उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायशीलता पर भरोसा नहीं किया। प्रतिशोधी यदि समझता है कि उसने अपना उचित बदला ले लिया, तो वह बदला चुकाने के बाद प्राप्त होने वाली शान्ति में इतना लीन हो जाता है कि राज-दण्ड उस शान्ति के मुकाबिले में उसे हेय लगने लगता है। उचित प्रतिशोध ले चुकने की सुखद अनुभूति में और कोई भी कष्ट बाधा नहीं डाल सकता।

कभी-कभी सरकार उचितानुचित का ठीक निर्णय नहीं कर पाती, यानी कोई गलत व्यक्ति सजा पा जाता है और सजा-पाने योग्य व्यक्ति किसी साधन के कारण बच जाता है। ऐसी दण्ड-व्यवस्था असन्तोष फैलाने वाली बन जाती है। साधन-सम्पन्न निर्भय होकर सामाजिक -अहित (अपराध) करते हैं और असन्तुष्ट जनों की संख्या बढ़ने लगती है। तब असन्तुष्ट-जन सरकार से इस बात का बदला लेने के लिए उतारू हो जाते हैं कि उसने क्यों उनकी ओर से दिये गए अधिकारों का अनुचित प्रयोग किया? ऐसे में यदि दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले किसी राज्य-प्रतिशोधी का नेतृत्व उन्हें प्राप्त हो जाए तो सरकार का तख्ता उलट जाता है। उस समय प्रतिशोध का नाम "विद्रोह" हो जाता है।

प्रतिशोध ने सामाजिक संतुलन बनाए रखने में बेशक योग दिया है किन्तु प्रतिशोधाभ्यस्त व्यक्ति के लिए यह एक मानसिक सजा है। कानून उसे सजा दे सके अथवा नहीं, किन्तु अपने सीने में वह जो आग छुपाए घूमता है, वह उसके लिए भीषण दंड है। उसकी मानसिक शांति तब तक के लिए नष्ट हो जाती है जब तक कि वह अपना प्रतिशोध पूरा न कर ले। यह भावना कभी-कभी मानव को पशुओं से भी निम्नतर श्रेणी तक पहुँचा देती है।

कुछ विद्वानों ने प्रतिशोध को "वैर-शुद्धि" कहा है। लेकिन बदला लेने के बाद सचमुच वैर-शुद्धि हो भी जाती है या नहीं, यह स्पष्ट करने के लिए ऐसे दो कबीलों के उदाहरण लेंगे जो खून का बदला खून से लेना धर्म समझते हैं।

मान लीजिए, एक कबीलेवाले भूल से दूसरे कबीले के एक सदस्य को मार देते हैं। दूसरे कबीले वाले उस भूल की तह में जाने का प्रयास करेंगे नहीं बल्कि उस एक के बदले में पहिले कबीले के दो सदस्यों को मार डालेंगे। तो क्या इससे वैर-शुद्धि हो गयी? दूसरे कबीले वालों की निगाह में भले ही हो गयी हो किन्तु पहिले कबीले वाले तो दूसरे के तीन मार कर ही दम लेंगे। इस प्रकार बदला लेते रहने से तो यह सिलसिला कभी खत्म न होगा। आग से आग कभी नहीं बुझती। आग जब कभी बुझेगी तो पानी से। क्योंकि पानी की रासायनिक प्रक्रिया आग से भिन्न है। प्रतिशोध रूपी अग्नि जब कभी शान्त होगी तो क्षमा रूपी जल से। क्षमा संतप्त हृदय को शान्ति देती है और बड़ों के बड़प्पन का चिह्न है। लेकिन क्षमा करने का अधिकारी वही है जो बदला लेने में समर्थ हो। असमर्थ का क्षमा-भाव न ही संतप्त हृदय को शान्ति देता है न ही समाज का कुछ उपकार करता है। बल्कि कू की क्रूरता को बढ़ावा देता है और सार्वजनिक हित को खतरे में डालता है। • • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक इञ्च मुस्कान—[१४]

हिन्दी की नयी पीढ़ी के सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार-दम्पत्ति राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी द्वारा प्रणीत धारावाही सहयोगी उपन्यास 'एक इञ्च मुस्कान'—जिसके अब तक आप निम्नलिखित १३ अध्याय पढ़ चुके हैं :

१. सागर संगम अरुण-नील (जनवरी अंक) : राजेन्द्र यादव
२. कुहासा और आँधियाँ (फरवरी अंक) : मन्नू भण्डारी
३. धुंधलके आरपार (मार्च अंक) : राजेन्द्र यादव
४. डूबते सूरज के लहर-भीगे किनारे (अप्रैल अंक) : मन्नू भण्डारी
५. बन्द दरवाजा और दुहराती दस्तकें (मई अंक) : राजेन्द्र यादव
६. एक विन्दु और दो अलग-अलग रेखाएँ (जून अंक) : मन्नू भण्डारी
७. निर्णय का एक दिन (जुलाई अंक) : राजेन्द्र यादव
८. पुकारती मंजिलों की मरीचिकाएँ (सितम्बर अंक) : मन्नू भण्डारी
९. छोटी-छोटी बातें (अक्तूबर अंक) : राजेन्द्र यादव
१०. अप्राप्य सुख की मृग-मरीचिका (जनवरी अंक) : मन्नू भण्डारी
११. एक खोया हुआ आदमी (फरवरी अंक) : राजेन्द्र यादव
१२. चाबी भरे खिलौने (मार्च अंक) : मन्नू भण्डारी
१३. अव्यर्थ चाँदनी (जून अंक) : राजेन्द्र यादव

अब इस अंक के अगले पृष्ठों में पढ़ें मन्नू भण्डारी लिखित अन्तिम अध्याय : 'फेन का झीना तरल कफन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व-कथा

अमला अमर को प्रेरित करती है कि यदि अमर को अपनी अद्भुत प्रतिभा और कला को चरम विकास पर ले जाना है तो वह विवाह के चक्कर में न पड़े, अपनी कला के साथ कभी समझौता न करे।

और अमर ने रंजना से स्पष्ट कह दिया कि वह शादी के बन्धन में नहीं बँधेगा, अपनी कला के साथ समझौता नहीं करेगा। रंजन से कट कर अमर ने स्वयं को अपने कमरे में बन्द कर लिया और दत्तचित्त होकर उपन्यास के निर्माण में लग गया।

"अमला को, जिसके परिचय ने उपन्यास लिखा लिया....।" अपने उपन्यास की पाण्डुलिपि पर यह समर्पण लिखते ही अमर को लगा कि उसने मन-ही-मन एक बहुत बड़ा निर्णय ले लिया है...., और जल्द ही रंजना और अमर शादी के बन्धन में बँध जाते हैं।

लेकिन उनका यह चिर-प्रतीक्षित दाम्पत्य-जीवन सुखी साबित नहीं हुआ। अचानक अमला के आगमन ने स्थिति को और अधिक असह्य बना दिया; यहाँ तक कि रंजना अपने पिता के यहाँ चली जाती है।

तीनों दुखी हैं। रंजना विवाह करके दुखी है; अमला पुरुष के अभाव से दुखी है; और अमर इसलिए दुखी है कि वह इन दोनों तटों में से किसी एक पर स्वयं को टिका नहीं पाता है।

रंजना के चले जाने के बाद अमर भटकता है और व्यथा की गहराइयों में लेखक-जीवन की ट्रेजेडी का इतिहास अपने ऊपर आरोपित करके अपने को संतोष देने का प्रयत्न करता है।

और आखिर वही हुआ जो होना था; अमर के आग्रह पर रंजना लौट आती है, और अमर के ही आग्रह से मजबूर होकर अपने भावी शिशु को अजन्मा ही रह जाने देती है, लेकिन उसे लगता है कि उन दोनों को मिलाने वाला सेतु बनने से पहले ही टूट गया है, और अब उनकी जिन्दगी यों ही बीत जाएगी—नीरस, शुष्क और अवसादपूर्ण....

कॉफी-हाउस में अमर की मुलाकात शकुन और मोनी'दा से होती है और वहीं उन तीनों के बीच होता है विवाह और प्रेम को लेकर दिलचस्प वार्तालाप। कॉफी-हाउस से निकल कर चाँदनी रात में घास पर बैठा हुआ अमर देर तक उस वार्तालाप के सन्दर्भ में स्वयं, रंजना और अमला के सम्बन्धों पर सोचता-विचारता रहा, और अन्त में वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि अपने लेखन में सहारा पाने की जिस आशा को लेकर उसने रंजना से शादी की थी, वह आशा फलीभूत नहीं हुई, और उसे लगा कि वह स्वयं फालतू है, उसका जीवन एक असफल कहानी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्नू भण्डारी

फेन का झीना तरल कफ़न

ढलती रात, आसमान पर छिटके तारे और सामने गरजता-फुफकारता
विशाल समुद्र। आज समुद्र और दिनों की अपेक्षा अधिक अशान्त, अधिक
क्षुब्ध था। आसमान के छूने का दुस्साहस करने वाली बड़ी-बड़ी लहरें
बहुत दूर क्षितिज पर से उठतीं और एक-दूसरी को ठेलती हुई बड़े वेग से
आगे बढ़तीं तो लगता, कोई शक्ति इनके वेग को रोक नहीं सकेगी, आज ये
सब कुछ अपने भीतर समो लेंगी, पर किनारे पर आते ही जाने क्या होता
कि बड़े ही विवश भाव से चीत्कार करती हुई वे बिखर कर चूर-चूर हो
जातीं। दूर-दूर तक फैले रेतीले तट पर न कोई सीमा-रेखा है, न कोई
चिह्न; पर शायद मन के बन्धन ही उनके पागल आवेश पर अंकुश लगा
देते और वे आगे नहीं बढ़ पातीं—किनारे से टकरा-टकरा कर सिर धुनतीं
और मन के उन्माद को मन में ही समेटे फेन के आँसू बहाती मजबूर-सी चुपचाप
लौट जातीं।

अमला यह सब देख रही थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उसे नींद
नहीं आई तो वह बाहर आकर खड़ी हो गई। होटल के सारे कमरे बन्द
थे—शायद सब सो रहे थे, बस वह अकेली खड़ी सूनी निगाहों से समुद्र
देख रही थी। एकाएक उसे खयाल आया—यदि कोई चुपचाप आकर
दबोच ले, तो ? अपरिचित होटल और न जाने कहाँ-कहाँ से आये हुए
लोग! एक अजीब-से भय से अमला सिहर उठी। एक बार तो उसे किसी
के पदचाप भी सुनाई दिये। भय के मारे उससे पीछे मुड़कर देखा तक न
गया। पर दो क्षण बाद ही अपनी इस भावना पर विजय पाती हुई वह
सोचने लगी। क्या बच्चों की तरह वह डर रही है ! उसने बड़ी निडरता से चारों
ओर देखा; कहीं कोई नहीं था।

एक बड़ी-सी लहर बहुत आगे तक बढ़ आई और फेन उगलती हुई
लौट गई; बस उसकी आवाज अमला के कानों में गूंजती रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर नहीं आया। तार के जवाब में उसने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इन्कार लिख दिया और और तभी से अमला को लग रहा है कि असमर्थता अमर की नहीं, उसकी है। आज वह इतनी असमर्थ हो गई है कि आदेश देकर अमर को बुला तक नहीं सकती। रंजना आज उसकी अपेक्षा अधिक समर्थ है। वह अमर की पत्नी है। उसने रोक दिया होगा—अमर नहीं आया! सचमुच वह है ही कौन?

तभी दूसरे विंग की बाल्कनी में दो छायाकृतियाँ दिखाई दीं। दूसरे क्षण ही अमला पहचान गई—आज शाम को ही ये लोग होटल में आए हैं। जब ये रिक्शा से उतरे थे तभी अमला को यह स्त्री बड़ी परिचित-सी लगी थी पर लाख कोशिश करके भी वह याद नहीं कर पाई। दोनों रेलिंग से सट कर खड़े हो गए....स्त्री के बाल खुले हुए थे। अमला कुछ पीछे को हट आई। खुले अस्त-व्यस्त केशों को समेटता हुआ पुरुष का हाथ उसकी पीठ पर से होता हुआ कन्धे पर आकर टिक गया। धीरे-धीरे दोनों के बीच की दूरी कम होती गई—स्त्री झुकती चली गई और फिर दोनों प्रगाढ़ आलिंगन में बँध गए।

अमला चुपचाप अपने कमरे में लौट आई।

'पुरी होटल' का कमरा, अँधेरी रात, अकेली अमला, गरजता-फुफकारता समुद्र और नशे में डूबी, आलिंगन में बँधी दो छायाकृतियाँ....

अमला ने करवट बदली। वह चाहने लगी, जल्दी ही सुबह हो जाए। यात्री और लोगों का शोर-शराबा फैल जाए। कोने वाले दो कमरों में ठहरे हुए बंगालियों का दल रवीन्द्र-संगीत से सारे होटल को गुंजा दे। पुराने यात्रियों के जाने और नये के आने का क्रम जारी हो जाए, और वह सबको पीछे छोड़ कर किनारे-किनारे चलती हुई बहुत-बहुत दूर चली जाए और डुबकियाँ लगाती रहे, तब तक नहाती रहे जब तक कि आज के इस रतजगे की सारी थकान दूर न हो जाए; और फिर लहरों के थपेड़ों से चूर-चूर इस देह को लेकर गहरी नींद सो जाए।

अचानक कमरे की बत्ती जल उठी। अमला ने बिना करवट बदले ही पूछा—"कौन, अन्ना?"

"तुम सोई नहीं अमला बीबी?" बाथ-रूम की ओर जाती अन्ना लौटकर अमला के पलंग के पास आ गई और मसहरी हटा कर गौर से अमला का चेहरा देखने लगी। अँधेरे में उसे कुछ दिखाई नहीं दिया, धीरे-से अमला के माथे पर हाथ रख कर बोली, "क्या बात है बिटिया, तबीयत खराब है?"

"नहीं तो।" पर स्नेह के इस स्पर्श से अमला का गला भर आया। अन्ना ने पूरी मसहरी हटा दी। अमला के निकट ही फर्श पर बैठते हुए पूछा—"अमर बाबू नहीं आ रहे हैं बिटिया?"

"नहीं, उन्हें कुछ जरूरी काम है वे नहीं आ सकेंगे।" यों ही छत की ओर नजर गड़ाए अमला बोली।

"आ जाते तो अच्छा था, कुछ दिन तुम्हारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन बहल जाता, वरना सारे दिन अकेले रहती हो।" अन्ना ने धीरे-धीरे अमला का सिर सहलाना शुरू कर दिया। अमला ने अपने आर्द्र नेत्र मूंद लिये।

इस बार अमला जितने दिन भी कलकत्ता रही, बेहद परेशान रही। कैलाश का अपनी नवी-धजी पत्नी के साथ आना, भैया-भाभी का रवैया, पिताजी की दिनोंदिन गिरती स्थिति, प्रत्यक्ष-परोक्ष सुनाए गए ताने—उन सबसे वह बुरी तरह ऊब गई थी और किसी शान्त-एकान्त स्थान में आकर रहना चाहती थी। वह अच्छी तरह जानती थी कि उसकी अनुपस्थिति में उसके बचे-खुचे अधिकार भी छिन जाएँगे—पिताजी की सारी सम्पत्ति भैया-भाभी के अधिकार में चली जाएगी—पर यह सब जानकर भी वहाँ रहना उसके लिए असंभव हो उठा था। पहले उस घर में उसका कितना सम्मान था—और आज? भाभी पहले भी उसके आचरण की टीका-टिप्पणी किया करती थीं, पर कितने दबे-दबे ढंग से; लेकिन इस बार चाचला के दो-तीन पत्रों को पार कर उन्होंने उसके शिमला-प्रवास की जो कथा गढ़ी थी, उसने उसे क्रुद्ध कम और दुखी अधिक किया था।

चाचला! चलो, उसे भी उसके नाम के साथ जुड़ना था!

और एक दिन उस सबसे ऊबकर वह पुरी आ गई, पर यहाँ की शान्ति ने दो दिन में ही उसे अशान्त बना दिया। जब वह कलकत्ता थी, उसे लगता था, उसे शान्ति चाहिए, एकान्त चाहिए; और यहाँ एकान्त में आई तो लगा जैसे इस शान्ति के बीच वह और अधिक दुखी हो उठी! वह स्वयं नहीं जानती—उसे क्या चाहिए? पर यह अकेलापन अब उससे सहा नहीं जाता। कोई हो जो उसके साथ घूमे, रेत पर बैठ कर घरौंदे बनाए, हाथ पकड़ कर समुद्र में नहाए, घंटों बातें करे, और.....और....

पास वाले विंग की बालकनी में अँधेरे में आलिंगन-बद्ध जोड़ा उसके सामने उभर आया।

किसी बड़ी-सी लहर के किनारे से टकरा कर चूर-चूर होने की गर्जना चारों ओर फैल गई।

"कॉफी बना लाऊँ?" अन्ना ने पूछा।

"बना ला।" आँखें बन्द किए-किए ही अमला ने कहा।

घड़ी ने पाँच बजा दिये। अमला ने अनुमान लगाया—जरूर समुद्र पर लोग आ गए होंगे। इस भावना ने ही उसे बड़ी राहत दी, मानो समुद्र में नहाने वाले वे लोग उसके उस अकेलेपन को तोड़ देंगे जिसमें उसका दम घुट रहा है।

घुटनों-घुटनों तक पानी में खड़ी अमला समुद्र की ओर देख रही थी। लहरें आतीं और उसे कमर या कभी-कभी कमर से भी ऊपर तक भिगो जातीं। सारी भीड़ और कोलाहल को पीछे छोड़कर वह बहुत-बहुत दूर निकल आई थी। अन्ना दूर बैठी उसके सूखे वस्त्रों की रखवाली कर रही थी। समुद्र की छाती पर डूबती-उतराती छोटी-छोटी डोंगियों को देखकर उसका बड़ा मन होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह भी एक डोंगी पर बठ कर अपने को लहरों के हवाले कर दे और वे जहाँ ले जाएँ, चली जाए ! अपने आपको किसी के हाथों सौंप देने की ललक जब-तब अमला को बेचैन बना देती है, पर इन डोगियों को देख कर एकाएक यह भावना बहुत ही प्रबल हो उठी। बहुत दिनों तक अपने को सम्भाल-सम्भाल कर रख लिया ! अब मन करता है. आँख मींचकर अपने को लहरों के ही हवाले कर दे।

"थैंक्यू !"

अमला एकदम चौंक पड़ी। घूमी तो गले में कैमरा लटकाए एक लम्बे-चौड़े आदमी को मुस्कराते हुए अपनी ओर आते देखा। अमला अवाक्। किसी ने उसकी तस्वीर खींच ली और उसे पता भी नहीं चला !

"आशा है, आप मेरी गुस्ताखी माफ करेंगी और मेरी इस हरकत का बुरा नहीं मानेंगी। बात यह थी कि इस एंगिल में आपका पोज इतना सुन्दर लग रहा था कि मैं अपने को रोक नहीं सका।"

शरीर से चिपके गीले वस्त्र, अस्त-व्यस्त बिखरे बाल ! अमला बेहद संकुचित हो उठी। उसने देखा, अन्ना काफी दूर बैठी है, यों भी इस अपरिचित के सामने वह कपड़े बदलेगी कैसे ?

"बुरा न मानें और अनुमति दें तो कुछ स्नेप्स और भी ले लूं। बड़ा फोटोजनिक फेस है आपका।" और अमला कुछ कहे, उसके पहले ही वह कैमरा भी ठीक करने लगा; फिर जाने क्या सोच कर लेन्स से आँखें हटा कर उसने भरपूर नजरों से अमला को देखा जो संकुचित अवाक्-सी ज्यों-की-त्यों खड़ी थी। अमला का संकोच देखकर उसे कुछ खयाल आया और वह मुस्कराता हुआ बोला, "सोचता हूँ, पहले आपको अपना परिचय दे दूं वरना आप भी क्या सोचेंगी।" और वह ही-ही करके हँस पड़ा। अमला असमंजस में ज्यों-की-त्यों खड़ी थी, पर उस व्यक्ति का ध्यान अमला के चेहरे के भाव की ओर कम और बनावट की ओर ज्यादा था।

"मुझे मेहरा कहते हैं। यहाँ 'पुरी-होटल' में ठहरा हूँ। आया कल शाम को ही हूँ। फोटोग्राफी कभी मेरी हॉबी थी, अब तो जीवन का यही एकमात्र आधार रह गया है। घूमता-फिरता हूँ और चाहता हूँ कि जहाँ-जो कुछ सुन्दर हो, आकर्षक हो, उसे उतार कर अपने पास रख लूं। मेरा कलेक्शन देखेंगी तो दंग रह जाएँगी.... खाली समय में मैं उसे ही देखा करता हूँ। कल्पना कर सकती हैं आप उस आनन्द की जो एक ही जगह बैठे-बैठे अनेक सुन्दर वस्तुओं को देखने से होता है—इट इज रियली सुपर्ब !"

छोटी-छोटी लहरें दोनों को भिगो-भिगो कर लौट जाती थीं। अमला चुपचाप सुन रही थी—वह समझ ही नहीं पा रही थी कि बिना किसी परिचय के इस निर्जन में एक अपरिचित महिला से यों लगातार बात करने वाले व्यक्ति से वह किस तरह का व्यवहार करे ?

दूर पड़े एक लकड़ी के लट्ठे की ओर इशारा करके मेहरा ने कहा, "चलिये उस पर चलकर बैठ जाइये, आइये !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अमला जहाँ-की-तहाँ जड़वत् खड़ी रही!

"आप व्यर्थ का संकोच कर रही हैं,—मेरी तो यह हॉबी है —सिर्फ हॉबी।"

पता नहीं उसकी बात का क्या प्रभाव पड़ा कि अमला उसके साथ उधर ही चल दी। दो काले-कलूटे मछवाहे उन दोनों को देखते हुए गुजर गए, उनके हाथ में जाल था और सिर पर तथा कमर पर एक-एक कपड़ा बँधा हुआ था।

"हाँ तो अब आप उस लट्ठे पर बैठ जाइये।"

"जी ....मैं ?" और अमला ने अपने गीले कपड़ों की ओर देखा।

हो-हो करके मेहरा हँस पड़ा—"नहीं-नहीं वह सब नहीं, मैं तो ऐसे ही चाहता हूँ—नेचुरल, एकदम नेचुरल !" और उसने खट-से बटन दबा दिया। "लवली एक्स-प्रेशन !.... इस तस्वीर में आप अपने चेहरे का एक्सप्रेशन देखियेगा।" फिर लट्ठे पर खड़े होकर मेहरा ने इधर देखा, उधर घूमे और दो तस्वीरें खींच लीं। इसके बाद उतर कर उसने अमला की और दो-तीन तस्वीरें खींचीं। अमला कठपुतली की तरह उसके कहे अनुसार किये चली जा रही थी। अपनी अन्तिम तस्वीर खींच कर मेहरा ने रील निकालते हुए अमला से पूछा, "आप अपनी तस्वीरें देखना तो पसंद करेंगी शायद? बोलिये, इन्हें दिखाने के लिए कहाँ आऊँ? ....या आप पुरी-होटल आइये।" और वह अमला की बगल में बैठ गया। अमला जरा-सा सरक गई।

"जी, मैं भी पुरी-होटल में ही ठहरी हूँ।" धीरे-से अमला ने कहा।

"क्या ! आप पुरी-होटल में ही ठहरी हैं ? ओ, यह भी क्या कोइन्सिडेंस है। पर मैंने आपको देखा नहीं ! रूम-नम्बर ?"

"तेरह।"

"शायद फर्स्ट फ्लोर पर है ?"

"जी।"

"आपके साथ....?"

"जी, मैं अकेली ही हूँ।" बहुत ही दबे-से स्वर में अमला ने कहा। दो क्षण दोनों चुप रहे। अमला चाह रही थी कि उठकर चल दे पर उससे उठा नहीं जा रहा था। उसने एक उड़ती-सी नजर मेहरा के चेहरे पर डाली। उसके अकेले आने की बात सुन कर मेहरा के चेहरे पर कुछ अनबूझ-सा कौतूहल उभर आया था।

इधर-उधर देख कर मेहरा बोला, "धूप बढ़ रही है। सोचता हूँ, लौट चला जाए।" और बढ़ती धूप का एहसास होते ही उसे जेब से रंगीन चश्मा निकाल कर चढ़ा लिया।

होटल पहुँच कर जब अमला ऊपर चढ़ने लगी, तो मेहरा ने कहा, "आपको धन्यवाद तो दे ही दूं। तैयार होते ही आपको तस्वीरें दिखाने आऊँगा।"

पहली बार अमला हल्के-से मुस्कराई। एक बार उसका मन हुआ कि मेहरा को चाय के लिये निमन्त्रण दे-दे, पर कहा नहीं गया और वह ऊपर चढ़ गई।

अमला सामने फैली अपनी तस्वीरों को मुग्ध भाव से देख रही थी। खले-गीले केश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टखने तक पानी, चिपके वस्त्र, चेहरे पर पानी की बूंदें मोती की तरह चमक रही थीं। मेहरा साहब फोटोग्राफी की दृष्टि से तस्वीर की खूबियाँ समझा रहे थे पर अमला सोच रही थी.... इतना घुटने और सहने के बाद भी उसमें इतना लावण्य शेष रह गया है? और तभी उसे अपनी उस मस्कराहट का खयाल आया। उसने सरसरी नजर से पाँचों तस्वीरों को देखा, एक में भी वह मुस्कराहट नहीं थी। उसे खुद बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक बार भी वह मुस्कराई क्यों नहीं? उसे लगा जैसे वह उस तरह मुस्कराना ही भूल गई है। एकाएक उसका मन हुआ कि ड्रेसिंग-टेबिल के सामने जाकर एक बार वह उसी तरह मुस्करा कर देखे।

नीचे दो-तीन रिक्शे आकर खड़े हो गए। अमला ने जरा-सा झुक कर नीचे की ओर झाँका। यह रेल का समय है। इस समय सदा ही रिक्शा आते हैं, यात्री आते हैं। यों नये यात्रियों को देखने का उसे विशेष कौतूहल रहता था, पर आज वह अपनी तस्वीरों में ही उलझी रही--"कल सवेरे चाय आप मेरे साथ ही पीजिये, तब मैं आपको अपनी कुछ एल्बम्स दिखाऊँगा।" मेहरा ने कहा। जवाब देने के लिए अमला ने तस्वीर पर से मुंह उठाकर जैसे ही ऊपर देखा --एक उड़िया कुली पर सामान रखे अमर को खड़ा पाया। अपार विस्मय से अमला उसका मुंह देखती ही रह गई। मेहरा अमला के विस्मय का कारण जानना ही चाह रहे थे कि अमला बोली, "अरे अमर, तुम कैसे?" और वह कुर्सी से उठ कर आगे बढ़ गई।

"तुमने ही तो बुलाया था।" मुस्कुराते हुए अमर ने कहा।

"आप एक मिनट ठहरिये मेहरा साहब, मैं इनका सामान रखवा आऊँ।" कहते हुए चाबी लेकर अमला ने खुद अपने कमरे के बगल वाला कमरा खोला। उसने कुछ दिन के पहले ही अपने लिए दो कमरे रिजर्व करवाए थे, अमर की इन्कारी का तार पाकर भी उसने कमरा लौटाया नहीं, वह ज्यों-का-त्यों बन्द पड़ा था। खोलते समय उसे खयाल आया कि इन्कारी का तार पाकर भी क्या उसे विश्वास नहीं था कि अमर आएगा?

"एकाएक तार देकर क्यों बुलाया तुमने मुझे?" कुली को पैसे देकर विदा करते हुए अमर ने पूछा।

"पर तुमने तो इन्कार लिख दिया था।" प्रसन्नता में कुछ रोष का पुट देते हुए अमला ने कहा। उसकी इन्कारी ने उसे जितना क्रुद्ध और खिन्न किया था, उसके आगमन ने उसे उतना ही प्रसन्न कर दिया। उसका मन रह गया। आज भी अमर में इतनी साहस नहीं कि उसकी बात टाल दे!....आज भी वह 'कुछ' है! पर जब अमर ने धीमे खिजलाए-से स्वर में कहा, "मना नहीं करता तो क्या करता? मेरा अपना भी कोई जरूरी काम हो सकता है!" तो अमला भीतर-ही-भीतर कहीं आहत हो गई।

"अच्छा तो अमला जी, इस समय आज्ञा दें, आपके फ्रेण्ड आए हैं।" हाथ में तस्वीरों का बड़ा-सा लिफाफा दबाए हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेहरा साहब ने बिना किसी संकोच के कमरे में घुसते हुए कहा।

"नहीं-नहीं, मेहरा साहब, जाएँगे क्यों ?" और फिर उसने दोनों का परिचय करवाया.... पर अमर के लिए केवल इतना कहकर छोड़ दिया कि एक अच्छे साहित्यकार हैं। जान-बूझ कर उसने 'मित्र' शब्द का प्रयोग नहीं किया।

बाहर निकल कर अमला ने अन्ना को एक कुर्सी और लाने का आदेश दिया। अमर के चेहरे से वह अच्छी तरह समझ गई कि मेहरा का यों आग्रह करके रोका जाना उसे अच्छा नहीं लगा। अमला को अफ़सोस हुआ।

"देखो अमर, मेहरा साहब ने हमारी तस्वीरें खींची हैं। .... दिखाइये तो मेहरा साहब!" फिर मुस्कुराते हुए बोली, "बहुत फोटोग्राफर देखे पर मेहरा साहब ने तो कमाल हासिल है इस कला में!" तब तक मेहरा साहब ने एक तस्वीर अमर के हाथ में थमा दी और सधे-सधाये ढंग से उसकी खूबियाँ समझाने लगे।

अमला को लगा जैसे कुछ देर पहले तस्वीर खींचते समय उसे यही खयाल आया था। ख्याल ही नहीं आया था, उसके मन में इच्छा जागी थी कि अमर भी इन तस्वीरों को देखता, देखकर प्रसन्न होता, प्रसन्न होकर सराहता। उसने सोचा भी था कि यदि न आने की असमर्थता पर क्षमा-याचना करता हुआ और खेद प्रकट करता हुआ पत्र आ जाएगा तो वह ये तस्वीरें अमर के पास भेजेगी। उत्तर में अमर क्या-क्या लिखेगा, यह भी उसने सोचा था। सराहना मेहरा साहब ने भी बहुत की पर उसमें उनकी अपनी प्रशंसा थी और अमला चाहती थी कि उसकी सराहना की जाए—उसके लावण्य की, उसके भोलेपन की....पर अमर ने बेहद उदासीनता से एक के बाद एक, सारी तस्वीरें देख लीं और फिर एक तरफ सरकाते हुए कहा, "बहुत अच्छी हैं।"

मेहरा साहब को कुछ निराशा हुई और अमला खिन्न हो आई।

"तुम पहले चाय-कॉफी लोगे या नहाओगे ?" अमला ने पूछा, पर उसे खुद लगा कि उसका स्वर कुछ अधिक ही रूखा हो गया है।

"मैं नहा लेता हूँ," और बिना किसी की अपेक्षा किये वह उठा, एक क्षण उसने सामने फैले अनन्त समुद्र को देखा, फिर मुड़कर कमरे की ओर चला गया। उसके उठते ही मेहरा भी उठ गये। अमला ने अच्छी तरह भाँप लिया—न मेहरा साहब को अमर का आना अच्छा लगा है, न अमर को मेहरा साहब की उपस्थिति, और उसे दोनों के बीच ही रहना है।

अमला उठी और रेलिंग के सहारे खड़ी होकर समुद्र को देखने लगी।

अमर आ गया, फिर भी वह खुश नहीं हो पा रही है। अमर के खिजलाए-से दो वाक्यों ने अमला की सारी खुशी हर ली। आते ही अमर ने जता दिया कि आकर उसने अमला पर बड़ा एहसान किया है, और एहसान वह किसी का बर्दाश्त नहीं कर सकती।

सीढ़ियों पर जोर-जोर से गाते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो बंगाली लड़के चढ़े। बाकी लोग शायद समुद्र पर ही रह गये। अमला के आने से दूसरे दिन ही यह दल आया था और अमला के बायीं तरफ के दोनों कमरों में अड्डा जमा रखा था। इनके ठहाके और इनके गीत सारे होटल में गूंजते थे। कई बार अमला का मन होता था कि इनमें शामिल होकर वह भी उन्मुक्त भाव से गाये—पर गाना तो दूर, उनसे परिचय तक नहीं कर पाई।

एकाएक उसे याद आया कि अमर ने आते ही पूछा था कि मुझे तार देकर क्यों बुलाया? वह फिर पूछेगा तो क्या जवाब देगी? कह सकेगी कि पुरी में अकेले उसे बड़ा सूना-सूना-सा लगता था... उसे एक साथी चाहिए था जो उसके साथ घूमता, बातें करता। हाथी-दाँती मीनारों में वह बहुत दिनों तक रह ली, पर पाया कि वहाँ घुटन और तड़पन के सिवाय कुछ नहीं है। उसने बहुत सहा, सहते-सहते वह टूट गई है, बिखर गई है.... अब कुछ समय के लिए वह बनना चाहती है। उन मीनारों से मुक्त होकर धरती पर आकर जीना चाहती है.... जीवन को जीवन की तरह जीना चाहती है—और इसलिये उसे अमर की आवश्यकता थी—पर कह सकेगी वह यह सब अमर से?

एक बड़ी-सी लहर किनारे से टकराई.... लगा जैसे कोई सिर धुन-धुन कर रो पड़ा हो और चारों ओर एक गूंज छा गई हो!

तभी कफ के बटन लगाते हुए अमर आया। उसके गीले केश अस्त-व्यस्त हो रहे थे, फिर भी वह थोड़ी देर पहले की अपेक्षा अधिक प्रसन्न लग रहा था। उसने उस दिन की पूरी बाल्कनी पर नजर दौड़ाई— बाल्कनी में केवल अमला ही रेलिंग के सहारे खड़ी थी। और लोग शायद समुद्र पर ही चले गये थे।

"आह, अब जाकर जान-में-जान आई। थर्ड क्लास में सफर करो तो तबीयत झक हो जाए, और आप हैं कि फरमान भेज दिया—पहली गाड़ी से चले आओ!" और अमर अमला की बगल में आकर खड़ा हो गया। अमला को लगा जैसे अभी अमर का हाथ उसके कन्धे पर आ टिकेगा, इसीलिए वह घूमी नहीं, बस एकटक समुद्र की ओर ही देखती रही!

सामने की भीड़ को लक्ष्य करके अमर ने कहा, "खासी चहल-पहल रहती है यहाँ तो।" अमला चुपचाप ही समुद्र की ओर निहार रही थी।

"हाँ तो अब पिलाओ, क्या पिलाती हो कॉफी या चाय!"

"ऐं?" अमला जैसे चौंकी। फिर पूछा, "बोलो क्या मँगवाऊँ?"

"कॉफी।"

अमला ने एक बार सामने की ओर देखा। वातावरण की कालिमा पानी में भी घुल लगी थी और किनारे की चहल-पहल बावजूद एक अजीब-सी उदासी चारों ओर के वातावरण में छाने लगी थी। अमला को लगा, यह सर्द और उदास वातावरण प्रेरक नहीं हैं; शायद अमर पहले से अधिक बदल गया है, अधिक जड़ हो गया है शायद वह कुछ अधिक की अपेक्षा कर रही है

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कॉफी का अन्तिम घूंट पीते हुए अमर ने पूछा, "अच्छा तो अब जान सकता हूँ कि आपने क्यों बुलाया ?"

"बता दूंगी ! पर पहले यह बताओ कि रंजना ने तुम्हें आने दिया ? तार देखकर उसने रोना-धोना नहीं मचाया ?"

"तार उसने देखा नहीं और मैंने बताया नहीं।" फिर कुछ उदास और विरक्त-से स्वर में बोला, "जान भी लेती तो कुछ नहीं कहती। अब सारी बात कहने-सुनने से परे चली गई है !" और वह समुद्र के पार कुछ देखने की कोशिश करने लगा। अमर के मन की गहराइयों में कहीं कोई चुभन है, टीस है, इसका अनुमान अमला को हो गया।

"क्या बात है अमर ? अभी-भी तुम्हारे और रंजना के बीच कोई अण्डर-स्टैंडिंग नहीं हो पाई ? तुम उससे यों छिपाकर आ गये ? अब, जब उसे मालूम पड़ेगा, तो तुम्हारे सम्बन्ध और बिगड़ेंगे या नहीं ?"

एक क्षण को अमर ने बड़ी ही कातर नजरों से अमला को देखा, फिर धीरे-से बोला, "बेहतर होगा अमला, यदि तुम इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर दो।" कहने के साथ ही उसकी आँखों की पुतलियों में तरलता समा गई। वह कुर्सी से उठा और रेलिंग के सहारे जाकर खड़ा हो गया।

अमला ने एक बार पूरी बालकनी में नजर डाली, फिर उठकर अमर की बगल में खड़ी हो गई। रेलिंग पर टिकी अमर की हथेली को अपने हाथ में लेकर बहुत ही स्नेहिल स्वर में बोली, "इसीलिए तो मैंने तुम्हें बुलाया था अमर !" और उसे खुद लगा जैसे उसका स्वर सध गया है और उसमें सहज स्वाभाविकता आ गई है—"बहुत दिन हो गए तुम्हारी कोई अच्छी चीज पढ़ने को नहीं मिली। बताया तो तुमने कुछ नहीं पर मैंने अनुमान लगा लिया था कि उस वातावरण में तुम जरूर घुट रहे होगे, वहाँ तुमसे कुछ नहीं लिखा जाएगा।"

अपनी बात की प्रतिक्रिया जानने के लिए उसने अमर की ओर देखा। उसे लगा, अमर कुछ कह रहा है, पर समुद्र के गर्जन में वह उसका बुदबुदाना नहीं सुन पाई, शायद वह उससे कह भी नहीं रहा था, अपने से ही कह रहा था।

"मैंने एक अलग कमरा तुम्हारे लिए ले लिया था ! चाहती हूँ, कुछ समय यहाँ रहो और एक अच्छी चीज समाप्त करके जाओ।"

अमला की मुट्ठी में भिंचा अमर का हाथ सिहर कर ठण्डा हो आया, पर न वह कुछ बोला, न उसने अपनी दृष्टि ही घुमाई।

बंगाली लड़कों का पूरा दल दरी और तकिये लिये हुए बालकनी में आ गया तो अमला अमर को लेकर अपने कमरे में लौट आई। कमरे की रोशनी में पहली बार अमर के चेहरे को भरपूर नजरों से देखा तो उसका रोम-रोम चीख उठा ; पीला-निस्तेज चेहरा और भाव-शून्य, तरल आँखें।

अमर के इस अव्यक्त, मौन संताप से अमला की कुछ देर पहले की खीज और खिन्नता अपने-आप ही दूर हो गई। उसके बालों में अँगुलियाँ उलझाते हुए बोली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझसे वायदा करो अमर कि मेरे इस बुलाने को सार्थक करके ही लौटोगे !"

अपनी हथेलियों में मुंह छिपा कर अमर फूट पड़ा, "मुझसे कुछ लिखवा लो अमला ! यदि कुछ दिन और नहीं लिख पाया तो मैं मर जाऊँगा ! सचमुच ही मर जाऊँगा ! लिखने के लिए बहुत-कुछ मेरे दिमाग में घूमता रहता है पर मैं लिख नहीं पाता। अजीब-अजीब-से चेहरे, बड़े मनहूस-से चेहरे मेरी आँखों के सामने घूमते रहते हैं, और मैं कुछ नहीं लिख पाता। अब तो लगता है, जैसे मैं कभी भी नहीं लिख सकूंगा। दूसरों को मार कर जो पनपना चाहता है, उसे पहले खुद मरना पड़ता है। और कोई मेरी बात पर विश्वास नहीं करेगा, पर तुम कर लो अमला, मैंने कभी किसी को मारना नहीं चाहा, किसी को मारा भी नहीं; फिर भी हत्या का अपराध मेरे सिर पर असह्य बोझ की तरह लदा रहता है और मैं खुद मृतक के समान किसी की लाश को लिये फिरता रहता हूँ। मैं...."

अमला टोकती नहीं तो अमर शायद बोले ही चला जाता।

"मैं सब समझती हूँ अमर, सब समझती हूँ। पर अब तुम लिखोगे ! पीड़ा जब अपने चरम पर पहुँच जाती है तभी सृजन होता है।"

अमर अमला के कमरे में बैठा हुआ मेहरा की खींची हुई तस्वीरें देख रहा था और पास बैठी अमला यों ही एक पत्रिका के पन्ने पलट रही थी, पर उसका सारा ध्यान अमर के चेहरे पर होनेवाली प्रतिक्रियाओं पर था। एक तस्वीर को अमर कभी पास लाकर देखता कभी दूर ले जाकर .... फिर अमला के सामने रखता हुआ बोला, "इसमें तुम 'लाइट-हाउस' जैसी नजर आ रही हो....दूसरों का पथ-प्रदर्शन करने वाला द्वीप-स्तम्भ !"

अमला मुस्कराई, "जानते हो, दूसरों को पथ-प्रदर्शित करने वाले द्वीप-स्तम्भ को स्वयं तिल-तिल करके जलना पड़ता है, वह स्वयं तो शायद जीवन-भर अँधेरे में ही रहता है।"

अमर केवल अमला के चेहरे को देखता रहा....उसकी कही बात का अर्थ समझने का प्रयत्न करता रहा, फिर धीरे-से बोला "बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

अमला ने जिज्ञासु नेत्रों से अमर को देखा, जिसमें अनुमति के साथ जानने की आतुरता थी।

"आजकल तुमने अपना कवच उतार दिया ?"

"कवच ? मैं समझी नहीं !" सचमुच ही अमर की बात का तात्पर्य वह नहीं समझी थी।

पाँचों तस्वीरों को ताश के पत्ते की तरह मेज पर फैला कर अमर ने कहा—"एक भी तस्वीर में तुम्हारी वह चिर-परिचित मुस्कान नहीं है ? क्या बात है, आजकल उस तरह से मुस्कुराना छोड़ दिया ?"

बात ने अमला के मर्म पर चोट की। उसे याद आया, तस्वीरें देखते समय उसने भी यही बात याद आई थी; पर इस रूप में नहीं। 'कवच' 'मुस्कराना छोड़ दिया ?' —ये बातें उसे बेध गईं। फिर भी अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर संयम रख कर बोली, "अपने पर कवच डालकर कौन नहीं रहता अमर ?" अमला के स्वर में ही उसका रोष प्रकट हो रहा था। अमर बीच में ही बोल उठा, "लगता है, तुम मेरी बात का बुरा मान गईं। मेरा मतलब तो सिर्फ ...."

"बुरा मैंने कतई नहीं माना। जितनी सच्चाई से तुमने कहा है, उतनी ही सच्चाई से मैं भी कह रही हूँ। एक आदमी भी तुम बता सकते हो, जो अपने असली रूप में सबके सामने आने का साहस रखता हो ? तुम जैसे बाहर से दिखाई देते हो, क्या भीतर से भी वैसे ही हो ? ऐसा होता नहीं अमर ! आदमी चाहे एक बार साहस भी करले, पर आसपास वाले उसके उस रूप को कभी बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे !"

अमर चुप रह गया। उसकी आँखों-में-आँखें डालकर अमला ने पूछा—मैं जैसी हूँ, जो कुछ सोचती हूँ, जो कुछ चाहती हूँ, वह सब प्रकट कर दूं तो शायद तुम मुझसे नफरत करने लगो ! कवच डाल कर जीना कितना कष्टकर होता है, जानते हो ? जो जितने बड़े कवच डालकर रहता है, समझ लो कि वह उतना ही दुखी है, रात-दिन वह घुटता है, मुक्ति के लिए छटपटाता है। दुनिया को भरमाने के लिए जो कवच ओढ़े जाते हैं, उसमें आदमी पहले स्वयं को भरमाता है और जब ...."

"अमला !" अमला का प्रवाह टूट गया, पर मन की घुटन, मन का दर्द चेहरे पर साकार हो आया।

"आओ, कुछ देर समुद्र पर टहल आएँ।"

पुरी-होटल से बहुत दूर निर्जन स्थान में रेत पर अमला और अमर दोनों बैठे हैं। सब कुछ बता देने के बाद मन हल्का हो जाता है, पर अमला को लग रहा था जैसे सब कुछ कह देने के बाद उसके मन का बोझ और बढ़ गया है। वे सारी बातें, जिन्हें भूलने के लिए वह पुरी आई थी, एकाएक ही ताजा होकर उसके मन को मथने लगीं। वह शून्य नजरों से समुद्र को देखने लगी; अमर बराबर उसी को देख रहा था। अमला जानती है— अमर लगातार उसे ही देखे जा रहा है.... एक अजीब-सा उन्माद उस पर छाने लगा ! यों ही लहरों की ओर निहारते हुए वह बोली, "देखते हो अमर ! दूर क्षितिज में कैसी बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं। कैसी उच्छृंखलता रहती है उनके उठने में और कैसा उन्माद रहता है उनकी गति में ! लगता है जैसे किसी से मिलने की दुर्दमनीय चाह लिये, बड़ी उमंग से हुलसती हुई, आगे की लहरों को ढकेलती हुई चली आती हैं। अपनी सामर्थ्य का विश्वास उनकी गति को वेग देता है, तो मन की चाह गति को मस्ती। लगता है, कोई बाधा-बन्धन वे नहीं मानेंगी, दुनिया की कोई शक्ति उन्हें अपना मनोवांछित पाने के लिए रोक नहीं सकेगी, पर फिर जाने क्या होता है कि बस एक सीमा से आगे वे बढ़ ही नहीं पातीं। वह आत्मविश्वास, वह दुर्दमनीय चाह, सब उस सीमा पर सिर पटक-पटक कर रो पड़ते हैं। सीमा से आगे न बढ़ पा सकने की विवशता पर वे चीत्कार कर उठती हैं, सिर धुन-धुन कर रोती हैं, और उसी मजबूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बिखर कर चूर-चूर हो जाती हैं। उनकी सारी उमंगों पर, आकांक्षाओं पर आग का सफेद, सर्द कफन पड़ जाता है। उनके दर्द को, उतनी विवशता को कोई समझ ही नहीं पाता! लोग तो इसमें भी आनन्द उठाते हैं, इसमें भी सौन्दर्य देखते हैं!" फिर एकाएक अमर की ओर घूमकर पूछा—"तुम्हीं बताओ अमर, ऐसा क्यों होता है? ऐसा क्या होना चाहिए? किनारे पर पहुँची पछाड़ खाती हुई लहरों को देखकर क्या तुम्हें भी ऐसा ही नहीं लगता? इस अपार शक्ति के साथ ऐसी मजबूरी क्यों बाँध दी गयी है?....बताओ अमर!....एकान्त में बैठकर जब इस लहरों को देखती हूँ तो यही सब सोचती रहती हूँ....पर मुझे कोई उत्तर नहीं सूझता।"

अमर का सहारा लेकर अर्द्धचेतन-सी स्थिति में जब अमला अपने कमरे पर पहुँची तो ग्यारह बज चुके थे। बिना कपड़े बदले वह ज्यों-की त्यों पलँग पर जा पड़ी और अपने हाथ से ही पलँग के चारों ओर मसहरी खींच ली। नीले रेशमी धागों के बने असंख्य मकड़ी के जाले चारों ओर फैल गये। लहरें आतीं और हाहाकार करती हुई किनारे से टकरा कर चूर-चूर हो जातीं और उनकी प्रतिध्वनि से सारा होटल गूंज उठता!

आज मेहरा चले गए और अमला फिर अकेली रह गई। पिछले आठ दिनों से उसने अपना सारा समय मेहरा के साथ ही काटा था—लड़की की बीमारी का तार पाकर मेहरा अत्यन्त चिन्तित हो उठा था और अमला समझ गई थी कि वह ठहरने का आग्रह भी करेगी तो मेहरा ठहरेगा नहीं और इसीलिए वह चुप रह गई। वह कोई बात कहे और सामने वाला उसे अस्वीकार कर दे, यह आज भी अमला के अहं को बर्दाश्त नहीं होता। उसे अमर की बात याद हो आई।

सूर्यास्त होने में कुछ देर बाकी थी—अमला अमर के कमरे के बन्द दरवाजे को ठेलकर अन्दर घुस गई—"आओ अमर, समुद्र पर चलकर सूर्यास्त देखेंगे।" अमर मेज पर झुक कर लिखने में डूबा हुआ था। उसका हाथ जहाँ-का-तहाँ रुक गया; उसने कुछ ऐसे भाव से अमला की ओर देखा मानो वह अमला की बात समझ ही नहीं पाया हो!

"कोई इस तरह भूत बन कर लिखता है! चलो, उठो।" और उसने सामने पड़ी कापी बन्द करके एक ओर सरका दी।

"सूर्यास्त देखने मैं नहीं जाऊँगा अमला! तुम चली जाओ।"

"क्यों?"

"अस्त किसी का भी शुभ नहीं होता और जो अशभ है उसे हम क्यों देखें? डूबते हुए लाल सूरज को देखकर मझे लगता है जैसे कोई सूर्य की लहू-लुहान लाश को समुद्र में फेंक रहा है। वह सब मुझसे नहीं देखा जाता। किसी के अस्त और अवसान में भी सौंदर्य . . ." फिर बड़े ही व्यथित स्वर में बोला, "यों भी बड़ी कटु स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं सूर्यास्त के साथ, मैं जा नहीं सकूंगा!"

"देखती हूँ, उपन्यास लिखने के दौरान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी एकदम ही नॉर्मल नहीं रह जाता है।" मुस्कराते हुए अमला ने कहा। फिर कुछ हल करने के लहजे में बोली, "आज तो चाहे कुछ भी हो जाए, तुम्हें चलना ही होगा! हमारे अस्त में दूसरे लोग आनन्द उठाते हैं तो हम भी दूसरों के अस्त में आनन्द क्यों न उठाएँ।" वह सोच रही थी कि अमर उठकर उसके साथ चल देगा, पर अमर अप्रत्याशित रूप से झल्ला उठा और खीझकर बोला, "तुमने कहा था न कि तुमने मुझे कुछ लिखने के लिए बुलाया है तो फिर लिखने क्यों नहीं देतीं?—क्यों सवेरे से मेरी जान को लगी हो? सच तो यह है कि तुमने मुझे अपने लिए बुलाया है। तुम चाहती हो कि मैं रात-दिन तुम्हारे पीछे घूमता रहूँ। तुम्हारी हर छोटी-बड़ी इच्छा पूरी करूँ...मैं...."

क्रोध से काँपते हुए अमला केवल इतना ही कह सकी, "जब होश में आ जाओ, तभी मुझसे बात करना!" और कमरे से निकल कर उसने जोर से दरवाजा बन्द कर दिया। उस दिन वह अकेली ही समुद्र पर निकल पड़ी, पर अचानक ही जब उसे वहाँ कन्धे में कैमरा झुलाए मेहरा मिल गया तो वह उसी के साथ हो ली। दोनों ने साथ पुरी का मन्दिर देखा था, मेहरा ने उसकी तस्वीरें खींची थीं, और जब रात गाड़े दस बजे दोनों होटल लौटे थे तो अमर को रेलिंग के सहारे खड़े सिगरेट पीते देख अमला को बड़ा सन्तोष मिला था।

"कल सवेरे की चाय आप मेरे ही साथ पी रहे हैं मेहरा साहब!" उसने अमर को सुनाते हुए जोर से कहा था।

और फिर तो चाय, खाना, घूमना—सब इस तरह साथ-साथ होने लगा जैसे दोनों साथ ही आए हों, साथ ही ठहरे हों।

मेहरा अमला के लिए उड़ीसा-हैण्डलूम की नीले रंग की एक सुन्दर साड़ी लाए तो उसने उसी शाम को उसे पहना, लम्बे अर्से के बाद माथे पर बिन्दी लगाई। वह बाल्कनी में खड़ी मेहरा का ही इन्तजार कर रही थी कि कमरा खोल कर अमर निकला। अमला के वेश पर वह चौंका था, और उस चौंकने के जवाब में वह मुस्कराई थी....

मेहरा के साथ रिक्शा में बैठ कर वह सारा शहर घूमने निकली! बड़ी लापरवाह-युक्त सतर्कता से मेहरा का हाथ उसकी पीठ से लिपटा पड़ा था। ऊँचे-नीचे रास्तों पर झटके लगते और मेहरा के हाथ का दबाव बढ़ जाता... वह स्पर्श, वह दबाव.... अमला सब समझती थी, फिर भी वह हँसती रहती, खिलखिलाती रहती....

मेहरा तस्वीरें खींचता तो कभी उसका पल्ला ठीक करने के बहाने उसके सारे बदन में सिहरन की लहरें दौड़ा देता, कभी दोनों हथेलियों में उसका चेहरा भींच उसके गाल सुर्ख कर देता।

उस दिन समुद्र में दोनों साथ नहाए, हाथ पकड़ कर दोनों दूर तक आगे बढ़ गये। लहर आती तो दोनों सिर झुका कर नीचे हो जाते। लहरों के वेगमय प्रवाह में अमला बड़ी असमर्थ-सी मेहरा की बाँहों में अपने को समर्पित कर देती और फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल के तरल आवरण के नीचे क्षणांश के लिए दो शरीर एक हो जाते।

उस रात वह सोई तो बार-बार उसे लगता जैसे समुद्र की विकराल लहरों में वह डूबी चली जा रही है....जैसे किसी बड़ी-सी लहर को देखकर उसने सिर नीचा कर लिया है, पर वह लहर है कि लौटती ही नहीं, ...और उसका दम घुट रहा है। एकाएक उसकी आँखें खुल गई थीं; पर दम घुटने की भावना तब भी बनी हुई थी। उसने मसहरी हटा दी, सारी खिड़कियाँ खोल दीं। बाल्कनी वाली खिड़की खोलते ही हल्की चाँदनी में फैला समुद्र दिखाई दिया। उसका मन हुआ, फिर से जल का तरल आवरण उस पर पड़ जाए.....फिर से..... बाक़ी रात अजीब कम्पन और पुलकन के बीच ही बीत गई।

आज सवेरे लड़की की बीमारी का तार पाकर एकाएक ही मेहरा चला गया और अमला फिर अकेली रह गई। सारा दिन कमरे में अकेले लेटे-लेटे अमला ने बिता दिया, पर साँझ होते ही समुद्र की लहरों का आमन्त्रण उससे अनसुना न किया गया!

निकली तो देखा, अमर के कमरे का दरवाजा बन्द था। एक बार मन हुआ, दरवाजा खटखटाए....पर नहीं, आगे होकर वह उसके पास नहीं ही जाएगी। अकेले चलते हुए उसे बार-बार लगता जैसे अभी किसी बात पर हो-हो करके हँसता हुआ मेहरा उसके साथ हो जाएगा। चलते-चलते वह थक गई तो रेत में बैठ गई; और जब बैठा रहना भी भारी लगने लगा तो लेट गई। वह भूल गई कि यों इस निर्जन तट पर अकेले लेटना उसके लिए अशोभनीय है। कल आँखों के सामने भी कितने स्पष्ट चित्र बन-बिगड़ रहे थे—स्मृतियों की लहरें एक के बाद एक आकर टकरा रही थीं....

मन्त्र-मुग्ध-सी समुद्र को देखती हुई अमला के होंठ अनायास ही गुनगुना उठे—"तीर पर कैसे रुकूं मैं, आज लहरों में निमन्त्रण: आज लहरों में निमन्त्रण.... आज लहरों में...." एक ही पंक्ति को उसने कई बार दुहराया।

"अमला!"

अमला ने चौंक कर आँखों पर से बाँह हटाई। देखा, सामने अमर खड़ा था! वह उठ बैठी।

"होटल से इतनी दूर आकर तुम यहाँ अकेले में यों पड़ी हो? कुछ समय का भी ज्ञान है तुम्हें?" अमला कुछ बोली नहीं बस जड़वत् ज्यों-की-त्यों बैठी अमर को देखती रही। अमर धीरे-से उसके पास बैठ गया।

"अमला! चलो उठो, लौट चलो।" स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रख कर अमर ने कहा।

"सामने इस समुद्र को देख रहे हो अमर! खुले आसमान के नीचे बिखरी इस जल राशि को छोड़कर तुम्हें होटल का कमरा अधिक प्रिय है? कैसे लेखक हो तुम! मेरा तो मन करता है—जीवन-भर यहीं पड़ी रहूं... बस ऐसे ही समुद्र का मंथन देखती रहूं..." और अमला ने अपने कन्धे पर रखे अमर के हाथ को खींचकर उसे अपने पास बिठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया : "ये लहरें मुझे हाथ उठा-उठा कर बुला रही हैं ? मैं आज जाऊँगी, जरूर जाऊँगी ! अब और अधिक अपने पर नियंत्रण नहीं रख सकूंगी।"

फिर उठती हुई बोली, "चलो अमर, तुम भी चलो ! उठो न ! तुम्हें बहुत थकलीफ है न, मन में बड़ी तपन और अशान्ति है न, तो आओ चलो..."

"अमला !" भर्राये-से स्वर में अमर बोला। अमला के इस उन्माद से वह कुछ भयभीत-सा हो उठा था।

"तुम डरते हो ? डरो नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ..."

"अमला बहुत बड़ी-बड़ी लहरें आ रही हैं, पीछे हट कर बैठो !.... कोई लहर बहाकर साथ ले गई तो...."

हा-हा करके अमला हँस पड़ी—"कोई लहर मुझे बहाकर नहीं ले जाएगी अमर, सब केवल भिगोकर लौट जाएगी। जानते हो, जब भी कोई लहर भिगोकर लौट जाती है तो खारे पानी के कारण बदन चिटचिटाता है, फिर भी मन करता है—और लहरें आएं, मुझे भिगोएँ, और भिगोएँ.... मैं बस भींगती ही रहूँ।"

अमर ने अपनी पूरी ताकत से खींच कर अमला को पीछे घसीट लिया। अमला पेट के बल उल्टी लेट गई....ऊपर से नीचे तक गीले वस्त्र, खुले-गीले केश, दोनों कोहनियों को रेत में गड़ा कर हथेलियों में टिकी अमला की ठोड़ी, और पास बैठा अमर....

"कैसा भयंकर रूप है आज समुद्र का ! मुझे तो समुद्र का यही रूप अच्छा लगता है—अशान्त, उद्वेलित, आलोड़ित, भीषण गर्जन करता हुआ।" अमला का स्वर काँपने लगा, "लगता है, आज लहरें किनारे के इस व्यवधान को नहीं मानेंगी....आज ये अपनी सीमा-मर्यादा को तोड़कर सब कुछ तहस-नहस कर देंगी—यदि ऐसा होगा तो कितना अच्छा होगा न अमर ? फिर तुम मुझे कहीं भी घसीटोगे पर बचा नहीं पाओगे ! किसी तरह नहीं बचा पाओगे !"

मोह-ग्रस्त-सी अमला कुछ-न-कुछ बोले चली जा रही थी। उसके कुछ शब्द अमर के कानों में पड़ते तो कुछ समुद्र के गर्जन में ही खो जाते ! पर अमर के लिए अमला का यह रूप नया ही था—एकदम नया।

एकाएक चित लेटकर अमला ने अमर का हाथ अपने हाथ में लिया और बोली, "समुद्र की इस चंचलता और अधीरता के बीच भी तुम शान्त कैसे रह सकते हो अमर ? निरुद्विग्न-निर्विकार !" और उसने खींच कर अमर का हाथ अपने वक्षःस्थल पर दबा लिया। अमला अमर के हाथ को दबाती रही और फिर उसने महसूस किया कि अमर की जड़-निस्पन्द-उँगलियों में जैसे चेतना आ गई है और वे स्वेच्छा से थिरकने लगी हैं। अमला ने आवेश में आकर अपनी दोनों बाँहें अमर के गले में डाल दीं और अमर को अपने पर झुका लिया, फिर जरा-सा सिर उठाकर अमर के अधरों पर अपने अधर टिका दिये ! अमर का सिर अमला की छाती पर टिक गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पागल बना देने वाली एक चाह अमला के मन में उठी--कोई लहर उन दोनों को ऐसे ही बहा ले जाए, उनको ढक दे, उन पर इस तरह छा जाए कि वे दोनों एक हो जाएँ, ...एक, बिल्कुल एक !

अमर ऊबा-सा, जड़-सा अमला की छाती पर लेटा था.... जो कुछ आज हुआ, शायद वह उस सबके लिए तय्यार नहीं था.... वह इस सब की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था ।

दो क्षण भी न बीते होंगे कि अमला ने एक झटके-से अमर को अपने से दूर कर दिया, "डरो नहीं अमर, मैं कुछ नहीं करूँगी। कहा था न कि जिस दिन आवरण उतार कर तुम्हारे सामने आऊँगी, उस दिन तुम भी मुझे सहन नहीं कर सकोगे...." और वह बदन से चिपके, गीले अस्त-व्यस्त कपड़े, मिट्टी सने, गीले-छितराए केश सम्भालती हुई होटल की ओर चल पड़ी, उद्भ्रांत-सी, लड़खड़ाती हुई। विमूढ़-सा अमर उसके पीछे चला। एक बड़ी-सी लहर भीषण गर्जन करती हुई अमला के पैरों के पास ही बिखर कर चूर-चूर हो गई। एक क्षण को अमला ठिठकी, चारों ओर फैले हुए फेन को देखा और फिर चल दी। अमर ने बीच में उसे सहारा देना चाहा तो झिड़क दिया, "तुम्हारे सहारे की जरूरत नहीं है अमर ! अशक्त होकर भी आज अमला इतनी निर्बल नहीं कि उसे तुम्हारे सहारे की जरूरत हो।"

कभी सूखे में आकर पैरों से रेत उछालती और कभी नीचे आकर लहरों में पैर धोती वह आगे बढ़ती गई--बढ़ती गई। उसने एक बार मुड़कर देखा तक नहीं कि अमर पीछे-पीछे आ रहा है या जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया है।

खट....खट ! अमर ने सुना तो उसे लगा, वह उठ नहीं पाएगा। मोह-पाश तन्द्रिल-सी अवस्था में लेटा अमर.... दूर-दूर तक फैला, अन्धकार में डूबा समुद्र, गीली-गीली ठण्डी रेत और पास में लेटी, उन्मादी आँखों से निहारती अमला ! लहरें आतीं और भिगो जातीं।

खट....खट.... !

आवाज है कि बढ़ती ही जा रही है पर अमर उठ नहीं पाता। उसे लग रहा है जैसे आवाज कहीं दूर से आ रही है, जैसे पड़ोस का बंगाली-दल तबला ठोंक रहा है और अभी रवीन्द्र-संगीत की कड़ियाँ लहरों पर तैरती हुई सारे होटल में गूंज जाएँगी पर उसके कानों में रवीन्द्र-संगीत की जगह कभी बच्चन के गीत की कुछ कड़ियाँ गूंज उठतीं तो कभी किसी शेर की कोई पंक्ति--बहुत धीमे, बहुत अस्पष्ट।

भड़-भड़-भड़ ! जोर-जोर से कोई दरवाजा पीट रहा है।

हड़बड़ाकर अमर उठता है--दरवाजा खोलता है। सामने बैरा खड़ा है, होटल का मैनेजर खड़ा है।

"क्या बात है अमर साहब ! सबेरे से आपका दरवाजा बन्द है ? कितनी बार खटखटाया गया, कोई खोलता ही नहीं ! हम तो बहुत डर गए साहब....होटल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी-कभी ऐसी वारदातें..." घबराया हुआ मैनेजर अंग्रेजी में बोले चला जा रहा है और अमर है कि बड़ी अपरिचित और दहशत भरी निगाहों से देख रहा है—बैरे को, मैनेजर को, अपने चारों ओर। जैसे कुछ है जो उस पर छाया हुआ है और जिसे चीरकर वह देखना चाहता है, पहिचानना चाहता है। यह पुरी का होटल नहीं, कन्याकुमारी का होटल है। सामने टेबिल पर कापी खुली रखी है। सवेरे तीन बजे तक उसने लिखा है.... केवल लिखा नहीं, उन क्षणों को फिर से जिया है, उन्हीं अनुभूतियों से गुजरा है...

उद्भ्रांत-सी लड़खड़ाती अमला को उसने जाते हुए देखा है। उसका मन हुआ था, दौड़ कर वह अमला को सहारा दे-दे, पर चाहकर भी उससे उठा नहीं गया था। नीली मसहरी में लेटी अमला और रोती अन्ना —"अमला बिटिया का क्या होगा अमर बाबू? वह पागल हो गई हैं!..."

"आप नहा लीजिए साहब तो खाना ले आऊँ। दो बज गया है!" झुंझलाया हुआ बैरा बोला।

"दो बज गया है," अमर ने दोहराया।

बैरा चला गया तो अमर को लगा जैसे एकाएक ही वह अकेला हो आया है, बहुत अकेला। पिछले बीस दिनों से वह रंजना, अमला, मन्दा और टण्डन के साथ था। उसने एक बार फिर से अपनी छाती पर रंजना के आक्रोश भरे मुक्के सहे हैं...नर्सिंग-होम से उतरते हुए उसके मायूस चेहरे को देखा है—देखा ही नहीं, उसी मायूसी में घिरे रह कर दो दिन बड़े ही मनहूस-से बिताए हैं। हर बात पर फटकार देने वाली मन्दा और हर बात पर उपदेश झाड़ने वाले टण्डन को सफाई दी है; हाथी-दाँती मीनारों में बैठी, होठों पर मुस्कान लपेटे, भीतर-ही-भीतर कहीं सिसकती, बिसूरती अमला को देखा है....पर अब, इस समय....

कमरे का सूनापन और अधिक घना हो आया है, मन की उदासी और गहरी और बोझ और अधिक भारी और अधिक असह्य हो उठा।

सिगरेट सुलगा कर अमर खिड़की पर आ खड़ा हुआ।

दूर तक फैला हुआ समुद्र—धूप में झिलमिलाता जल और दूर से आ-आकर किनारे से टकराती लहरें!

दूर से आती एक लहर पर उसने अमला को देखा—हाथ में तार और आँखों में आँसू लिये अमला—"अमर, पिताजी नहीं रहे! यों तो वे बूढ़े हो गए थे पर फिर भी मुझे लगता है, वे अपनी मौत नहीं मरे! उन्हें मारा गया है, किसी ने उन्हें मार दिया!"... सिसकियाँ, हिचकियाँ....

फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेण्ट में खड़ी अमला—"इस बार तुम्हें बहुत तकलीफ दी अमर, अब कभी नहीं दूंगी। कौन जाने हमारी यह मुलाकात ही आखिरी मुलाकात हो, और यह बिदा ही आखिरी बिदा। मैं मर जाऊँ, तो मेरी कहानी लिखना...."

वह लहर किनारे पर आकर टकराई और बिखर कर चूर-चूर हो गई। जल के फेनीले उफान में अमला डूब गई।

"मेरी गोदी में सिर रख कर कितना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितना रोई है, अमर। पत्थर होता तो भी पिघल जाता। जानते हो, पिछले कई दिनों से वह रोना भूल ही गई थी, पर उस दिन...." और मन्दा ने आँखें पोंछ लीं।

"नहीं, यह तुम दोनों के पक्ष में अच्छा ही हुआ। साथ रहकर यों तिल-तिल घुलने का अर्थ ही क्या हुआ? नौकरी भी उसे यहाँ से अच्छी मिली है। अब तुम लिखो, खूब लिखो!...." टण्डन के लहजे में सहानुभूति थी या व्यंग, अमर नहीं समझ पाया था। टण्डन के यहाँ से लौटकर रात में जब वह सोया तो बगल की खाली जगह उसके मन में, उसके जीवन में एक खालीपन का, खोखलेपन का बोध करा रही थी। तकिये में मुंह गड़ा कर अमर फूट पड़ा, मैं निरपराध हूँ रंजना, बिल्कुल निरपराध! पुरी में उस रात अमला के मनुहार भरे, उन्माद भरे आमन्त्रण पर भी मैं जड़, निश्चेष्ट बैठा रहा, क्योंकि मुझे तुम्हारा ही खयाल था। वह सब करना तुम्हारे साथ धोखा करना था, अन्याय करना था और मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकता था, तुम्हारे साथ अन्याय नहीं कर सकता था, क्योंकि मैंने तुम्हें प्यार किया था, आज भी करता हूँ।

और फिर अमर सारी रात ही तो रोया था.....सुबक-सुबक कर, फूट-फट कर!

उन आँसुओं में अमर के सारे सपने बह गए थे, भविष्य की सारी योजनाएँ बह गई थीं, उसकी सारी दुनिया और जीवन का रस बह गया था....

ट्रे में सजा हुआ खाना लेकर बैरा घुसा—"अरे आप नहाए नहीं साब! म खाना....."

"खाना ले जाओ और थोड़ी देर बाद काफी लेकर आना!" बिना पीछे मुड़ कर देखे ही अमर ने आदेश दिया।

सिगरेट का आखिरी कश खींच कर उसने सिगरेट के टुकड़े को खिड़की पर रगड़ा, फिर उस बुझे हुए सिरे को देखता रहा।

पिछले पाँच वर्षों से वह भी इस सिगरेट की तरह ही जला है—इस अवधि में टूट-टूट करके उसका व्यक्तित्व रिसा है और वह बुझता चला गया है। अनचाही नौकरी ने उसे पिया और धुंआँ उड़ाकर छोड़ दिया है। और वह है कि आज भी उसी धुंए के बादलों में धुंधली आकृतियाँ देख रहा है.... बनते-बिगड़ते चित्र। वह चाहता है कि उन्हें फिर से पकड़ ले.... उन्हीं में घुल-मिल जाए, पर वे हैं कि फिसल-फिसल जाते हैं।

पैरों में चप्पल डालकर उसने दरवाजा बन्द किया और समुद्र के किनारे चलते-चलते दूर निकल गया। चारों ओर बिखरी धूप, झिलमिलाता पानी और सूना-निर्जन समुद्र-तट!

सिगरेट जलाकर उसने होठों से लगाई और दोनों बाँहों को अपने सीने पर लपेट लिया। हवा में उसके बाल, उसका कुर्ता उड़ रहा था।

भूले-बिसरे गीत की बिखरी-बिखरी कड़ियाँ उसके कानों से टकराईं—"तीर पर कैसे रुकूं मैं आज लहरों में निमन्त्रण!" और अनायास ही उसके होठ गुनगुना उठे:

"वक्ष पर युग बाहु बाँधे,
मैं खड़ा सागर किनारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेग से बहता प्रभंजन,
केश-पट मेरे उड़ाता.....''

पहली बार अमर को एहसास हुआ—गलत अर्थों में अमला ने इन पंक्तियों का प्रयोग किया था, फिर भी कितना सार्थक कर दिया था।

हवा आई और अमर को रेत में नहलाती हुई निकल गई। उसने दोनों आँखों को मला। आँखें खोलीं तो जैसे समुद्र के इस छोर से उस छोर तक कुछ कौंध गया। लगा, जैसे अमला कहीं मुस्कराई है।

वेग से आती एक बड़ी-सी लहर चीत्कार करती हुई बिखर गई और चारों ओर फेन का पारदर्शी आवरण बिछ गया।

अमर को लगा, जैसे उसे कोई झकझोर-झकझोर कर बड़े ही कातर स्वर में पूछ रहा है—''तुम्हीं बताओ अमर! ऐसा क्यों होता है? इस अपार शक्ति के साथ ऐसी मजबूरी क्यों? लहरों के उन्माद और उमंगों की परिणति इन विवश, करुण चीत्कारों में क्यों....क्यों..क्यों?

एक और लहर आई और बिखर कर चूर-चूर हो गई। अमर को उस फेनीले पारदर्शी कफन के नीचे होठों पर निष्प्राण-सी मुस्कान लपेटे कभी अमला दिखाई देती तो कभी सिसकती मायूस रंजना।

उसका मन हुआ, वह भी उन्हीं लोगों के बीच जाकर लेट जाए और उस पर भी फेन का झीना तरल कफन पड़ जाए!

• • •

सूचना

'एक इन्च मुस्कान' शीर्षक इस सहयोगी उपन्यास का अन्तिम अध्याय इस अंक में प्रकाशित किया गया है। योजना के अनुसार अब ज्ञानोदय के आगामी दो अंकों में सहयोगी लेखक राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी इस उपन्यास की सृजन-प्रक्रिया के दौरान में अनुभूत अपनी-अपनी कठिनाइयों का विवेचन प्रस्तुत करेंगे। तदनुसार अगस्त अंक में राजेन्द्र यादव का लेख प्रकाशित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्य के लिए नियमित आय

आज की चिंता करना छोड़ दीजिये और भविष्य का निश्चित प्रबंध कीजिये। आज खरीदे हुए वार्षिकी वृत्ति के बीमे से आपको अपने शेष जीवन के लिए नियमित आय मिलती रहेगी। जिस उम्र से आप यह आमदनी चाहते हैं उस उम्र का चुनाव आप स्वयं कर सकते हैं और आप यह आमदनी मासिक, तिमाही या छमाही किश्तों के रूप में भी प्राप्त कर सकते हैं। इस विषय में अधिक जानकारी कारपोरेशन के एजेंट से प्राप्त कीजिये। वह आपकी जरूर मदद करेगा।

आपकी आय कितनी भी क्यों न हो आप पालिसी ले सकते हैं।

सुरक्षा का बेजोड़ साधन है। **जीवन बीमा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओसामू देजाई

शरद देवड़ा

•

सागर पार की हलचलें (४)

• उक्त लेखमाला के अन्तर्गत यहाँ विख्यात जापानी कथाकार ओसामू देजाई के विश्व-प्रसिद्ध उपन्यास ' द सेटिंग सन' के 'टेस्टामेण्ट' शीर्षक अध्याय का संक्षिप्त रूपान्तर प्रस्तुत किया जा रहा है।

• ओसामू देजाई का जन्म जापान के एक जमींदार घराने में सन् १९०९ में हुआ था। जापानी रिम्बो के नाम से मशहूर देजाई ने कुल ३९ वर्ष की आयु में आत्महत्या कर ली थी।

एक मरणोन्मुखी जापानी कथाकार का मृत्युलेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● १९४७ में जब 'द सेटिंग सन' प्रकाशित हुआ तो जापान के साहित्यिक हल्कों में हलचल मच गयी थी, यहाँ तक कि जो जापान अभी तक 'उगते सूरज का देश' कहलाता था, उसी के निवासियों के लिए अब 'डूबते सूरज के लोग' का उपयोग होने लगा।

● देजाई के जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों का इस उपन्यास से मिलान करने पर ऐसा लगता है कि यह उपन्यास बहुत-कुछ आत्मकथात्मक-सा है। उपन्यास का नायक नाओजी स्वयं लेखक का ही प्रतिरूप प्रतीत होता है। देजाई स्वयं एक 'एरिस्ट्रोक्रेटिक' परिवार में पैदा हुआ था, उपन्यास में इसी एरिस्टोक्रेटिक व्यवस्था के टूटने की कथा कही गयी है।

● उपन्यास का नायक नाओजी आत्महत्या के ठीक पहले अपनी बहन कानुको को सम्बोधित करते हुए यह 'मृत्युलेख' लिखता है जिसमें मृत्यु, आत्महत्या जैसी महत्वपूर्ण समस्याओं और द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप तत्कालीन जापान में होने वाले परिवर्तनों तथा 'एरिस्टोक्रेटिक' ढाँचे के टूटने-बिखरने की बात कही गयी है।

● 'द सेटिंग सन' का अंग्रेजी अनुवाद 'रूपा एण्ड कम्पनी' से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत अंश के हिन्दी अनुवाद की अनुमति देने के लिए अनुवादक उनका आभारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानुको!

व्यर्थ है। मैं जा रहा हूँ।

अब और अधिक जीवित रहने का मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता।

जो जीना चाहते हैं, केवल उन्हें ही जीवित रहना चाहिए।

जिस तरह एक व्यक्ति को जीने का अधिकार है, उसी तरह उसको मरने का भी अधिकार होना चाहिए।

जो जीवित रहना चाहते हैं, वे आखिर जीवित रह ही सकते हैं, चाहे उनके रास्ते में कितनी ही तरह की बाधाएँ क्यों न आएँ। इसी में उनकी शोभा है, बल्कि मैं तो यहाँ तक कहने को प्रस्तुत हूँ कि जिसे लोग 'मानवता की महानता' कहते हैं वह इसी में निहित है। लेकिन मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मरना भी अपने-आपमें कोई पाप नहीं है।

जब मैं हाई स्कूल में भरती हुआ तो पहली बार कुछ उद्धत किस्म के ऐसे लड़कों के सम्पर्क में आया, जो मुझसे नितान्त भिन्न वर्ग के थे। उनकी शक्ति के सामने कहीं मैं झुक न जाऊँ, इसके लिए मैंने मादक द्रव्यों का सहारा लिया। कुछ-कुछ उन्माद की-सी स्थिति में मैंने उनका सामना किया। बाद में, जब मैं सेना में भर्ती हो गया, तो जीवित रहने के अन्तिम उपाय के रूप में मैंने अफीम की शरण ली। इन दिनों जिस तरह की स्थिति से मैं गुजरा हूँ, तुम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती।

मैं रूखा और कठोर— बल्कि, पाशविक बनना चाहता था। मेरा खयाल था कि स्वयं को 'जनता का मित्र' साबित करने के लिए यही एकमात्र तरीका है। मात्र शराब इसके लिए पर्याप्त नहीं थी। हरदम एक भयानक किस्म का प्रमाद मेरे ऊपर सवार रहता था। यही कारण है कि मादक द्रव्यों की शरण में जाने के अलावा और कोई चारा ही नहीं था। मुझे अपने परिवार को भुला देना पड़ा। अपने पैत्रिक रक्त का विरोध करना पड़ा। अपनी माँ की भलमनसी को अस्वीकारना पड़ा। अपनी बहिन के प्रति मुझे रूखा होना पड़ा। मेरा खयाल था कि जनता की जमात में शामिल होने के लिए इन सबके अलावा और कोई रास्ता नहीं था।

मैं रुक्ष और अशिष्ट बन गया। मैंने रुक्ष भाषा का प्रयोग करना सीख लिया। लेकिन मेरा यह रुख आधा ही नहीं साठ प्रतिशत ओढ़ा हुआ और बनावटी था। जहाँ तक सामान्य लोगों का प्रश्न है, उनके लिए मैं अब भी वही दम्भी किस्म का इन्सान था, जिसके कृत्रिम व्यवहार के कारण वे आसानी से भड़क उठते थे। वे कभी भी मेरे साथ सहज रूप से हिल-मिल नहीं पाते थे। दूसरी ओर, अपने वर्ग की जिन जगहों और हलकों को मैं छोड़ आया था, उनमें वापस लौट जाना मेरे लिए असंभव था। अगर यह मान भी लें कि मेरी साठ प्रतिशत रुक्षता और अशिष्टता बनावटी थी, तो भी शेष चालीस प्रतिशत अब वास्तविक है। उच्चवर्गीय लोगों की असहनीय शिष्टता को मैं अब क्षण भर के लिए भी सहन नहीं कर पाता हूँ। साथ ही यह भी सच है कि उस वर्ग के प्रतिष्ठित और नामी भद्र लोग भी मेरे उद्धत और अशिष्ट व्यवहार को पसन्द नहीं करेंगे और जल्दी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे किनाराकशी करने लगेंगे। जिस दुनिया को मैं छोड़ चुका हूँ अब वापस उसमें लौट नहीं सकता, और सामान्य लोगों से मुझे जो कुछ मिला है वह महज दर्शकों की गैलरी में बैठने का अधिकार है।

सच तो यह है कि किसी भी समाज में मेरे जैसे अपूर्ण किस्म के व्यक्तियों का नाश होना अवश्यंभावी है; वे जो कुछ सोचते हैं, उसके कारण नहीं, बल्कि इसका कारण वे स्वयं ही हैं। हाँ, मेरे साथ एक दूसरा कारण भी है। मैं अपने ऊपर परिस्थितियों का भी एक ऐसा भारी दबाव महसूस करता रहा हूँ जिसके कारण मुझे जीवित रहना बेहद मुश्किल मालूम देता है।

सभी मनुष्य समान होते हैं।

आश्चर्य है कि यह भी एक दर्शन हो सकता है! मैं नहीं मानता कि जिस व्यक्ति ने पहले-पहल इस बात की कल्पना की होगी, वह एक धार्मिक, या दार्शनिक या कलाकार किस्म का व्यक्ति रहा होगा। इस आश्चर्यजनक कथन का प्रजातन्त्र या साम्यवाद से भी किसी तरह का कोई ताल्लुक नहीं है। निश्चय ही, यह कथन सर्वप्रथम किसी निम्न स्तर के गंदे शराब-घर में किसी बदसूरत व्यक्ति द्वारा किसी खूबसूरत व्यक्ति के लिए कहा गया होगा। इस कथन की उत्पत्ति का कारण महज खीज--या कहें ईर्ष्या ही थी। आदर्श या इसी तरह की किसी अन्य बात से इसका कोई ताल्लुक नहीं था।

लेकिन जिस कथन का प्रारंभ किसी निम्न स्तरीय शराब-घर में ईर्ष्या से प्रेरित चीख के रूप में हुआ है, बाद में चलकर उसी ने जन-साधारण के बीच एक अजीब किस्म के आदर्श का रूप ले लिया, और इस तरह कि कथन का प्रजातंत्र या साम्यवाद से कोई ताल्लुक नहीं था उसने अनजान में ही राजनीतिक और आर्थिक आदर्श का बाना ओढ़ लिया और एक गैर-मामूली रूप से गरि वातावरण का निर्माण कर दिया।

सब मनुष्य समान हैं।

कितना बेहूदा कथन है यह! साम्यवाद यह कभी नहीं कहता कि सब मनुष्य समान हैं, वह तो मजदूरों की उच्चता की घोषणा करता है। प्रजातंत्र भी नहीं कहता कि सब मनुष्य समान होते हैं; वह व्यक्ति की उच्चता प्रतिष्ठापित करता है। केवल एक अशिष्ट, अज्ञ मूर्ख ही कह सकता है, "हाँ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसकी उपलब्धियाँ क्या हैं वह भी एक इन्सान ही तो है, ठीक वैसा ही जैसे कि हम सब हैं।"

यह कथन बेहूदा और घृणित है। मेरी मान्यता है कि आज के युग की चिंताजनक स्थिति का एकमात्र कारण यही एक कथन है। आज के युग में इन्सान जो एक-दूसरे से भयभीत हैं, हर प्रतिष्ठित सिद्धान्त की जो अवमानना की जाती है, हर ईमानदार प्रयास का जो उपहास उड़ाया जाता है, सुख अस्वीकारा जाता है, सौन्दर्य को दूषित किया जाता है, सम्मान को मिट्टी में धसीटा जाता है, इन सब का प्रेरणा-स्रोत एकमात्र यही बेहूदा कथन है।

हालाँकि इस कथन के भोंड़ेपन के बारे में मुझे कोई सन्देह नहीं था, फिर भी मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि इसने मुझे कुछ-कुछ भ्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीत कर दिया था। भय, शर्म और परेशानी से मैं काँपने लगता था, और जो भी कार्य हाथ में लेता, उसे क्रियान्वित नहीं कर पाता था। शराब और अन्य मादक द्रव्यों से मुझे मात्र क्षणिक सुकून मिल पाता था।

काजुको !

कृपया मेरा यकीन करो।

आमोद-प्रमोद के इन साधनों से मुझे कभी जरा भी सुख नहीं मिला है। मैं चूंकि एक 'एरिस्टोक्रेट' था, इसलिए अपनी स्वयं की छाया से बचने के लिए ही मैं पीने-पिलाने के इन उत्तेजक और वहशी क्रिया-कलापों में स्वयं को डुबो देता था।

लेकिन मुझे आश्चर्य होता है कि इसके लिए हमें दोष दिया जाता है। क्या यह हमारा दोष है हम 'एरिस्टोक्रेट' पैदा हुए हैं ? हम एक 'एरिस्ट्रोकेट' परिवार में पैदा हुए हैं, क्या इसीलिए हमें यहूदियों की तरह अपना समूचा जीवन दीनता, अनादर और क्षमा-याचना के बीच व्यतीत करना होगा ?

मैंने और भी जल्दी ही इस जीवन का अन्त कर लिया होता। लेकिन केवल एक चीज बाधा-स्वरूप थी : वह था माँ का प्यार। मैं केवल उसी की बात सोच कर मरने की अपनी इच्छा को क्रियान्वित नहीं कर पाता था। यह सच है, जैसा कि मैंने कहा है, कि, जिस तरह इन्सान को अपनी इच्छानुसार अपने ढंग से जीने का अधिकार है, उसी तरह उसे अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब मरने का भी अधिकार है; लेकिन फिर भी जब तक माँ जीवित थी, मैं महसूस करता था कि मुझे इच्छानुसार मरने के अपने अधिकार को स्थगित रखना पड़ेगा, क्योंकि इसे क्रियान्वित करने का अर्थ था उसकी भी मृत्यु।

अब अगर मैं मरता हूँ, तो किसी को भी इतना अधिक दुःख नहीं होगा कि वह स्वयं को किसी तरह की शारीरिक क्षति पहुँचाये। नहीं, काजुको, मैं जानता हूँ कि मेरी मृत्यु से तुम्हें ठीक-ठीक कितना दुःख पहुँचेगा। निश्चित ही, जब तुम्हें यह खबर मिलेगी तो तुम रोओगी, लेकिन अगर तुम इस तथ्य पर गौर करोगी कि यह घृणित जीवन जीने के कष्ट से छुटकारा पाकर मुझे कितना हर्ष हो रहा है, तो मुझे विश्वास है कि तुम्हारा दुःख धीरे-धीरे कम हो जाएगा।

अगर कोई व्यक्ति मेरी इस आत्महत्या की आलोचना करता है, और मेरे ऊपर निर्णय देते हुए यह घोषणा करता है, (बिना किसी भी तरह की कोई सहायता दिये) कि मुझे अपने जीवन के पूरे दिन जीवित रहना चाहिए था, तो निश्चय ही मैं उसे उस विलक्षण गुण सम्पन्न व्यक्ति के रूप में मानूंगा जो बड़ी शान्ति से सम्राट् से एक फलों की दूकान खोलने का आग्रह कर सकता है।

काजुको !

मेरा मरना ही बेहतर है। मुझमें जीवित रहने की सामर्थ्य ही नहीं है। मेरे भीतर धन के लिए लोगों से लड़ने की शक्ति ही नहीं है। बल्कि जब कभी यू-हारा या अन्य किसी व्यक्ति के साथ मैं शराब पीता था, तो बिल का पैसा मैं ही चुकाया करता था;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि ऐसे किसी भी व्यक्ति का पैसा, जो उसने स्वयं अपने प्रयत्नों से पैदा किया है, अपने लिए खर्च करवाना मुझे बेहद कष्टकर और घृणित कार्य लगता था।

और जब मुझे मजबूर होकर घर से पैसा लेना पड़ा और घर की चीजें बेचनी पड़ीं जिससे कि तुम्हें और माँ को कष्ट पहुँचता था, तो यकीन करो, मुझे जरा भी खुशी नहीं होती थी। प्रकाशन के जिस धन्धे की योजना मैंने बनाई थी, वह तो अपनी परेशानी छिपाने का महज एक बहाना था।

काजुको !

अब हम गरीब बन चुके हैं। जब मैं जीवित था और मेरे पास साधन थे तो मैं सदा दूसरों के लिए खर्च करने की सोचता रहता था, लेकिन अब तो स्थिति यह है कि हम दूसरों की दया पर ही जीवित रह सकते हैं।

काजुको !

इस स्थिति में मुझे अब और क्यों जीते चले जाना चाहिए ? अब जीने का कोई अर्थ नहीं। मैं मृत्यु का वरण करने जा रहा हूँ। मेरे पास एक ऐसा विष है जो बिना कष्ट के मृत्यु की शाश्वत नींद में सुला सकता है। जब मैं फौज में था तो मैंने इसे प्राप्त किया था, और तब से इसे संभाल कर अपने पास रखा है।

काजुको, तुम सुन्दर हो, (मुझे अपनी माँ और बहन की सुन्दरता पर सदा नाज रहा है) और बुद्धिमान भी हो। तुम्हारे लिये मुझे कोई चिन्ता नहीं है। दरअसल दूसरों के लिए चिन्ता करने की मुझमें योग्यता ही नहीं है। मैं केवल हल्के-से लजा भर सकता हूँ—उस डाकू की तरह जो अपने ही शिकार के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करता है। मैं आश्वस्त हूँ कि तुम शादी करोगी, तुम्हारे बच्चे होंगे, और तुम अपने पति के साथ अपना अस्तित्व कायम रख सकोगी।

काजुको !

मेरा एक राज है।

बहुत-बहुत समय से मैं इसे छिपाता आया हूँ। यहाँ तक कि जब मैं युद्ध के मोर्चे पर था, तब भी इसी के खयालों में खोया रहता था और 'उसके' सपने देखा करता था। तुम्हें कैसे बताऊँ कि कितनी बार जाग कर मैंने यह पाया है कि मैं नींद में रोता रहा हूँ।

मैं उसका नाम किसी को कभी भी नहीं बताऊँगा; लेकिन मैंने सोचा है कि अब जबकि मैं मृत्यु की दहलीज पर खड़ा हूँ, तो मेरी प्यारी बहन, कम-से-कम तुमसे मैं उसके बारे में सब कुछ बता दूं। मैं पाता हूँ कि अब भी इस बात से मैं इस कदर भयभीत हूँ कि उसका नाम अपनी जबान पर नहीं ला पाता।

लेकिन मैं महसूस करता हूँ कि अगर मैं इस राज को अपने सीने में ही लिये हुए मर जाता हूँ, तो मेरी मृत देह के अन्तिम संस्कार के बाद भी मेरी छाती का भीतरी भाग बिना जले हुए दुर्गन्ध में सड़ता रह जाएगा। यह विचार मुझे इतना अशान्त बना रहा है कि मैं तुमसे, मात्र तुमसे, इस राज के बारे में कह कर जाना चाहता हूँ।

'वह' प्रौढ़ वय के एक ऐसे चित्रकार की पत्नी है जिसने युद्ध के बाद एक नयी शैली में बहुत-से चित्र बनाकर अकस्मात यश प्राप्त कर लिया था। वह चित्रकार बेहद अहंकारी किस्म का और दुश्चरित्र है, लेकिन उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी के चेहरे पर सदा एक कोमल मुस्कान खेलती रहती है, मानो अपने पति के व्यवहार से वह जरा भी विचलित नहीं है।

शुरू में, उस चित्रकार के चित्रों की विशिष्ट शैली और उनमें निहित शक्ति से प्रभावित होकर मैं उसके घर जाया करता था, लेकिन ज्यों-ज्यों मैं उस चित्रकार का अन्तरंग होता गया, त्यों-त्यों उसका असंस्कृत व्यवहार, उसकी गैर-जिम्मेदारी, और उसकी गंदी आदतों के कारण मेरे ऊपर से उसका जादू हटता गया। इसके विपरीत अनुपात में मैं उसकी पत्नी की भावनात्मक सुन्दरता की ओर आकर्षित होता गया। धीरे-धीरे यह स्थिति आ गयी कि महज उसकी पत्नी की एक झलक पाने की आशा में ही मैं उस चित्रकार के घर जाने लगा।

तुम्हें कैसे बताऊँ कि उसकी पत्नी के लिए निष्फल उत्कंठा में मैं जो समय व्यतीत करता था, वह कितना दुःखदायी था! एक बार मैंने स्वप्न में देखा कि उसकी पत्नी के दोनों हाथ मेरे हाथों में हैं तो मैं तत्काल समझ गया कि वह भी मुझे बहुत समय से प्यार करती रही है। स्वप्न भंग हो जाने के बाद भी उसकी उँगलियों की उष्णता मेरी हथेली में व्याप्त रही। मैंने मन-ही-मन समझ लिया कि मुझे इतने से ही संतोष करना होगा। यह बात नहीं कि मुझे नैतिकता या ऐसी ही किसी बात का भय था; बल्कि उस अर्द्ध-विक्षिप्त चित्रकार—या उसकी देव-तुल्य सनक—का डर मुझे अधिक था। उसकी पत्नी की ओर से अपना ध्यान हटा कर, अपनी आकांक्षाओं की लपट को दूसरी ओर मोड़ने के लिए ही मैंने सब तरह के वर्जित कार्यों में स्वयं को आकण्ठ डुबो दिया, और बेहद बदनाम औरतों के संसर्ग में स्वयं को इस कदर लिप्त कर लिया कि एक रात तो स्वयं उस दुश्चरित्र चित्रकार ने भी मुझे टोक दिया। मैं किसी भी तरह स्वयं को उसकी पत्नी के मोह-जाल से छुड़ाना चाहता था, उसे एकदम भूल जाना चाहता था। लेकिन ये समस्त उपाय व्यर्थ साबित हुए। मेरे जैसा व्यक्ति केवल एक ही औरत को प्यार कर सकता है। मैं बहुत स्पष्ट शब्दों में कह सकता हूँ कि उसको छोड़कर अपनी समस्त महिला-मित्रों में से एक को भी मैंने एक क्षण के लिए भी सुन्दर या प्यार करने योग्य नहीं समझा है।

काजुको!

मरने के पहले सिर्फ एक बार मैं उसका नाम लिखना चाहता हूँ।

सुगा!

यही उसका नाम है।

कल मैं एक नर्तकी [एक नितान्त बेवकूफ औरत] को लेकर यहाँ आया। इस औरत के लिए मेरे मन में जरा भी स्नेह नहीं है। जब मैं यहाँ पहुँचा तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मैं आज ही सुबह मरने जा रहा हूँ, हालाँकि मेरे मन में यह आशंका जरूर थी कि मैं अब अधिक दिन जीवित नहीं रहूँगा। मैं जानता था कि इस औरत को लेकर यहाँ तुम्हारे पास आने से तुम्हें कुछ परेशानी जरूर महसूस होगी, लेकिन मैं टोकियो की अपनी खुराफातों से इतना थक चुका था कि इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्ख औरत को लेकर कुछेक दिनों के लिए यहाँ आना ही मैंने ठीक समझा । जब तुम अपने मित्रों से मिलने टोकियो चली गयी तो अचानक मेरे दिमाग में यह विचार कौंध गया--"अगर मैं आत्महत्या करने जा रहा हूँ तो इसके लिए उपयुक्त समय यही है।"

मैं हमेशा सोचा करता था कि निशिकाता स्ट्रीट वाले हमारे घर के अपने कमरे में ही मैं मरना पसन्द करूँगा। मुझे सदा इस विचार से भय लगता था कि अगर कहीं मैं किसी सड़क पर, गली-कूचे में या होटल अथवा शराब-घर जैसी किसी आम जगह पर मर गया तो मेरी लाश की दुर्गति हो जाएगी। लेकिन जब निशिकाता स्ट्रीट वाला हमारा घर हमारे हाथ से निकल गया तो मैंने महसूस किया कि अब गाँव के इस घर में मरने के अलावा मेरे लिए और कोई चारा नहीं है। इस पर भी जब मुझे यह खयाल आता था कि मेरी मृत देह को सबसे पहले तुम देखोगी, और मैं कल्पना करता था कि इससे तुम कितनी भयभीत हो उठोगी, तो मैं मृत्यु को वरण करने में इस कदर हिचकिचाने लगता था कि शायद मुझसे अन्ततः यह नहीं ही हो पाता।

और अब यह मौका सामने है। तुम यहाँ नहीं हो, और तुम्हारी जगह एक निहायत कूढ़-मग्ज नर्तकी है जिसे मेरी आत्महत्या का सबसे पहले पता लगेगा।

गत रात हम दोनों ने एक साथ मदिरा-पान किया और मैंने दूसरी मंजिल के विदेशी सज्जा वाले कमरे में उसे सुला दिया। मैंने अपना बिस्तर नीचे तल्ले वाले उस कमरे में लगाया जहाँ माँ की मृत्यु हुई थी। अब मैंने इस सुखद संस्मरण को लिखना शुरू किया।

काजुको !

मेरे लिए अब कोई आशा शेष नहीं है। अलविदा !

अन्तिम विश्लेषण में मुझे अपनी मृत्यु स्वाभाविक ही लगती है क्योंकि इन्सान केवल सिद्धान्तों के लिए ही जीवित नहीं रह सकता। मेरी तुमसे केवल एक प्रार्थना है--जिसे कहते हुए मैं बहुत हिचक महसूस कर रहा हूँ--तुम्हें माँ वाले पटुए के उस किमोनो की याद होगी जिसे तुमने इसलिए काट-छाँट करके सुधारा था कि अगली गर्मी में उसे पहन सको, कृपया उसे मेरी मृत देह के साथ मेरे ताबूत में रख देना। उसे पहनने की मेरी इच्छा थी।

रात समाप्ति पर है। मैंने तुम्हें काफी कष्ट दिया है।

अलविदा !

मेरा रात का नशा अब पूरी तरह उतर चुका है। मैं अपने पूरे होश-हवास में मरूँगा।

एक बार और, अलविदा !

काजुको !

मैं, अन्ततः, एक एरिस्टोक्रेट ही तो हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ते समय कभी-कभी आपके सामने ऐसे वाक्य या वाक्यांश आ जाते हैं जिन्हें रेखांकित करने के लिए आप मजबूर हो जाते हैं। हिन्दी के नवीनतम और विशेष महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों से ऐसे रेखांकित अंश इस स्तम्भ के अन्तर्गत हर मास प्रस्तुत किये जाते हैं—स्वयं ज्ञानोदय के पाठक-पठिकाओं द्वारा ही। सामग्री भेजते समय कृपया लेखक, पुस्तक और प्रकाशक का नाम तथा मूल्य, पृष्ठ-संख्या आदि भी लिखें।

शह और मात : राजेन्द्र यादव

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; मूल्य : चार रुपये

०बिखरी हुई चीजों में कलाकारों जैसी निश्चिन्तता रहती है।

०पुरुष को नारी का बचपना कभी बुरा नहीं लगता, बल्कि उसे तो वह मुग्ध करता है।

०मन की कुछ स्थितियों में हमें ऐसा लगता है जैसे विदेशी भाषा में वह गाम्भीर्य या अर्थ की सच्चाई नहीं है जो अपनी भाषा में है। इसलिए 'लव' पर हम खुलकर बातें कर सकते हैं लेकिन 'मुहब्बत' शब्द होठों तक आकर अटक जाता है

०कैरक्टर कोई ताजमहल तो होता नहीं है कि आप गये, गौर से देखा, डिटेल्ज नोट किये और घर आकर लेख लिख डाला। वे तो जीवित लोग हैं। उनकी आदत जाननी पड़ती हैं....

०जहाँ जान-बूझ कर या असावधानी से ही एक दूसरे की उँगली छू जाने पर ही महीनों की दोस्ती खत्म हो जाये, वहाँ आत्मीयता क्या खाक होगी? पति-पत्नी आगे जाकर एक गहरी मित्रता, एक उन्मुक्त अभिन्नता आ जाती है—उसकी वजह भी तो यही है कि वहाँ एक दूसरे का शरीर हौवा नहीं रह जाता।

(संकलन : राज मिगलानी

मेरे रेखांकन—(४)

विभिन्न पाठक-पाठिकाओं द्वारा प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगल के फूल : राजेन्द्र अवस्थी 'वृषित'

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली; मूल्य : चार रुपये

०भाग्य छाया की तरह होता है। जब कोई उसे पकड़ना चाहता है, वह दूर भागता है। जब आदमी उदासीन हो जाता है, वह पीछा करने लगता है।

०बंधन, चाहे जैसा हो, आखिर आदमी को बाँध लेता है। तब आदमी दास बन जाता है, बिक जाता है। परवशता बुरी है—चाहे वह आदमी को प्यार करने से मिले या अपने देश पर पराये शासक के अधिकार कर लेने से।

०और जब आदमी को उसकी प्रेमिका ही धिक्कारने लगती है, तो वह जिन्दा नहीं रहना चाहता। वह चाहता है कि उसकी प्रेमिका उसे बहुत बड़ा समझे। इसीलिए विहाव के बाद अक्सर आदमी की सहन-शक्ति कम हो जाती है। बचपन में जिसने अपनी माँ की मार को भी मार नहीं माना, वह अपनी प्रेमिका की हलकी-सी कड़वी बात को भी सुनने के लिए तैयार नहीं रहता।

०और कहते हैं, प्यार का असल मजा तब मिलता है जब उमर ढल जाती है। दो बेबस प्रेमी पहले खीझते हैं और फिर प्यार में खो जाते हैं। खीझने के बाद जो प्यार उमड़ता है, उसका मजा ही अलग है!

०जिस दुःख के पीछे सुख की चादर पड़ी हो वह दुःख नहीं, एक परीच्छा है।

(संकलन : सियाराम तिवारी)

मुक्तिदूत : वीरेन्द्रकुमार जैन

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; मूल्य : पाँच रुपये

०शेष रात के शीर्ण पंखों पर दिन उतर रहा है। आकाश में तारे कुम्हला गये। दूर पर दो तमसाकार पर्वतों के बीच के गवाक्ष से गुलाबी आभा फूट रही है। मानसरोवर की चंचल लहरावलियों में कोई अदृष्ट बालिका अपने सपनों की जाली बुन रही है। और एक अकेली हंसिनी उस फूटते हुए प्रत्यूष में से पार हो रही है।.... वह नीरव हंसिनी उस गुलाबी आलोक-सागर में अकेली ही पार हो रही थी। वह क्यों है आज अकेली?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०मणि-दीपों की म्लान, शीतल विभा में वह विपुल भोग-सामग्रियों से दीप्त सुहाग की उत्सव-रात्रि कुम्हला रही है। अर्पाशित शय्या की चंपक-कचनार-सज्जा मलिन हो गई। कुंद-पुष्पों की मसहरी जल-सीकर में भींगकर झर गई है। पूजा की सामग्री ठुकराई हुई, हतप्रभ, शून्य उन थालों में उन्मन पड़ी है। सब कुछ अनंगीकृत, अवमानित, विफल पड़ा रह गया है। पुजारिणी स्वयं चिर प्रतीक्षा की प्रतिमा बनी झरोखे में बैठी रह गई है। एक गंभीर पराजय, अवसन्नता, म्लानता, चारों ओर फैली है। ... और भीतर कक्ष की शय्या पर आत्मा की अग्नि-शिखा नग्न होकर लोट रही है।

०ओह, बाईस वर्ष बीत गए, तुमने सोये या जागते किसी आधी रात में भी द्वार नहीं खटखटाया। कभी खटका सुनकर मन की हठ को न टाल सकी हूँ तो आतुर पैरों से आकर द्वार खोला है और पाया है कि बाहर हवाएँ खिलखिला रही हैं और झाड़ हँसी कर रहे हैं। पर आज कौन हो तुम, जो इस एकान्त में साम्राज्य के द्वार की अर्गला से मनमाना खिलवाड़ कर रहे हो? पर सम्राज्ञी स्वयं तुम्हारे इस ऐश्वर्य-साम्राज्य से निर्वासित हो गई है। वह चली गई है परे, बहुत दूर.... अब क्यों उसका पीछा कर रहे हो?

(संकलन : अमृता भारती)

धरती मेरा घर : डा० रांगेय राघव

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली; मूल्य : चार रुपये

०आवेश वह नहीं है जो उतर जाए। जब वह स्थिर हो जाए तभी उसमें गौरव है।

० हम सब यदि जंगली अवस्था से सभ्यता की ओर आए हैं तो किसलिए? जीवित तो हम तब भी थे। जानवरों से तब भी अच्छे थे। लेकिन हमारे दिमाग को नई-नई सूझती थीं। हम सोचते थे—पानी में चलें, आकाश में उड़ें। वह सब हमने क्रमशः कर दिखाया और आकाश अब भी हमारे लिए अभेद्य बना है, पर कौन जाने हम उसे भी जीत लेंगे।

(संकलन : भागीरथ भार्गव)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधूरा सपना : अनन्त गोपाल शेवड़े

० गोप्य की भी एक विचित्रता होती है। आदमी उसे गुप्त तो रखना चाहता है पर कोई विश्वासपात्र मिल जाय, तो उसके साथ बाँटने के लिए भी वह छटपटाता रहता है।

० और यह आदमी भी एक अजीब प्राणी है। वह रेडियो की तरह है, अपने-आप में सिमटा हुआ बैठा है, गुमसुम और डिम्म; जब तक उसका बटन न खोला जाए और उचित वायु-लहरी से उसका सम्पर्क स्थापित न किया जाए, तब तक वह महज लकड़ी का खोखा है, संवेदनाहीन और निर्जीव।

० नारी शक्ति की उपासना करती है, शक्ति से प्रभावित होती है।

० पर नारी का भी विचित्र स्वभाव होता है। वह केवल ज्ञान, तर्क और बुद्धि की मीजान मात्र नहीं है। उसमें भावना है, आवेग है, 'इंस्टिंक्ट' है। जब भावना का तूफान उठता है तब बुद्धि और तर्क खोजो तो दूरबीन से भी नहीं दिखाई देता। उस समय उसका क्या होता है यह स्वयं नारी ही नहीं जानती तो ऐरों-गैरों की बात ही क्या है ?

(संकलन : रा० कृ० बूबना)

आग और पानी : रघुवीरशरण मित्र

० कच्चे धागे में लटकती राजनीति की तलवार पता नहीं कब किसकी गर्दन पर गिर पड़े !

० नारी जब प्यार का अमृत नहीं पाती है तो झुलस कर ज्वाला बन जाती है, और उसमें जल जाता है कोमल भावनाओं को जलाने वाला अंगारा भी !

० राजनीति में मनुष्य सोता है पर उसका मस्तिष्क नहीं सोता।

० यदि आँसू बाहर निकल आवें तो मोतियों का मूल्य गिर जायेगा। प्यार के आँसुओं का स्थान पलकों की ओट में है।

० हमारे पास सबसे बड़ा बल अपनी आत्मा का है। मनुष्य की आत्मा और बुद्धि उसके पास है तो वह अजेय है।

० हार कर रोना तो सभी जानते हैं. पर हार पर हँसना वीरता का सर्वोत्तम गण है। हारने पर जो हँसते हैं, वे एक-न-एक दिन फिर जीत जाते हैं।

(संकलन : कृष्ण गौड़ परवाना, मैनपुरी)

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िन्दगी और गुलाब के फूल

उषा प्रियम्वदा; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; मूल्य २.५०

उषा प्रियम्वदा की स्फुट कहानियाँ इधर-उधर पढ़ते-पढ़ते नई कहानी लेखिका के प्रति औत्सुक्य जाग उठा था और 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' हाथ में आते ही तत्काल पढ़नी शुरू की, रात में बहुत देर तक पढ़ती रही—लगभग समाप्त करके ही सोई।

कई कहानियाँ एक साथ बिना रुके, एक के बाद एक पढ़कर लगा जैसे मन में बहुत-से पात्रों का जमघट लग गया हो। कुछ के चेहरे बहुत उभारदार साफ नाक-नक्श के थे और कुछ के अस्फुट, धुंधले। कहानियों में घटनाएँ नहीं थीं—बातें थीं, बातें छू गयीं। आधुनिक जीवन का युवा-वर्ग कहानियों में उतरा है। नई परिस्थितियों और उनसे उभरे नये मनोवैज्ञानिक माप-दण्डों की उभरती-डूबती परछाइयाँ मन को बाँध गयीं। कई जगह लगा, यही तो हुआ था, यही तो होता है! बहुत पुराना और बहुत सही मापदण्ड है अच्छी कहानी का कि लगे, यह हमारे साथ बीत गया! यही तो अमुक ने कहा था या सहा था! 'मोहबंध' की मोहक नीलू सखी अचला के प्रिय पर बढ़ती अपनी अनुरक्ति रोक नहीं पाती। और अचला अपने दर्प, अपने आहत अभिमान में बँधी रह जाती है। यहाँ तक कि नीलू के पति राजन के सम्मुख भी कह बैठती है। जहाँ तक नीलू का प्रश्न है, उसके आगे सभी गौण हो जाते हैं। अचला और राजन, उपेक्षा के दुःख से तपे, कुछ पल के लिए नीलू को बीच से हटा, एक-दूसरे को पहचानने लगते हैं, नीलू को सुन्दर पानेवाली राजन की आँखें जब अचला को सुन्दर पाती हैं, तो उसे यह भी लगता है कि वह शाप-मुक्त हो गयी किन्तु साथ ही उसके सामने आ जाती हैं दो आँसू भरी आँखें; उसे लगता है कि बाँसों की चुभीली पत्तियों पर लेट कर कोई अभी-अभी रोया है। यहीं प्रियम्वदा जी के कथा-शिल्प की सफलता है। पहले से ही एक इतना सजीव चित्र मन में उतार दिया है कि उसकी पुनरावृत्ति होने पर दर्द दूना होकर सामने आ जाता है।

साहित्यार्चन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'छुट्टी का दिन' में 'मोहबंध' की-सी ही उदासी है। एकरस जीवन की ऊब, अर्जित सुखों की ललक, अपने एकाकीपन से औरों की दृष्टि में छाया सन्देह और अविश्वास भेदते हैं किन्तु मन में एक झुंझलाहट-सी होती है कि 'माया' यों रह ही क्यों रही है? कहानी-लेखिका कम-से-कम संकेत तो दे देतीं!

'पूर्त्ति' और 'दो अन्धेरे' भी इसी श्रेणी की कहानियाँ हैं। असफल और सूने जीवन में टीस उठती रहती है, लालसा बाँहें फैलाती रहती है। कहीं वह दो पल सबल बाँहों में बँध जाने का सुख बनकर आती है और कहीं छोटी बहन के लिए भरा-पुरा, प्यार भरा जीवन सँजोने की अभिलाषा बनकर।

'चाँद चलता रहा' एक अलग-सी कहानी है। रोहिनी उच्छृंखल है, सोसाइटी-गर्ल। लोग उसे देखकर कानाफूसी करते हैं, व्यंग और कटाक्ष कसते हैं, कानों में नये हीरे के टाप्स देखकर अन्दाजा लगाते हैं कि यह किसके साथ, किस पहाड़ की सैर के बाद मिले हैं। सुन्दरी, अछूती वाग्दत्ता रोहिनी ने पवित्रता और नैतिकता के संस्कारों के आगे अपने होनेवाले पति अरविन्द की कामना और आकुलता ठुकरा दी थी, यह कोई नहीं जानता था। यह भी किसी को मालूम नहीं था कि तीन दिन बाद अरविन्द की मृत्यु एक दुर्घटना में हो गयी थी। रोहिनी अपने संस्कारों, अपनी नैतिकता के प्रति विद्रोहिणी हो उठी। कहानी का आधार मनोवैज्ञानिक है, कॉम्प्लेक्स से झटका खाकर बना जीवन-मूल्य, पर लगता है जैसे इस परिवर्तन में सहजता कम, चमत्कार अधिक है।

'दृष्टि-दोष' कहानी में अच्छी लगने सबसे बड़ी चीज है उसकी विषय-व आज व्यक्ति का अहं इतना प्रधान हो है कि विवाह के सम्बन्ध-सन्तुलन जैसे सहज नहीं रहे हैं। रूप, नाम, जीने—सभी में व्यक्तिगत रुचि की प्रधा हो गई है। नारी आर्थिक रूप से सी निरीह भी नहीं रह गई है इसलिए से रुचि-भेद होने पर सबसे पहले मन में है कि क्यों न वह स्वतंत्र हो जाए? बाद में पता चलता है कि जीवन के रेगिस्ता में प्यार का एक 'ओएसिस' था जिसे हम पीछे छोड़कर चले आए हैं। चन्द्रा 'साम्ब' काला दिखता, अनाधुनिक घर का रहन-सहन दकियानूसी मालूम और इन सबसे त्रस्त होकर वह अपने के घर चली आई, नौकरी कर ली। 'साम्ब' पर जब 'मधुर' अनुरक्त हो गई तो को सब याद आने लगा—'साम्ब' की भूति, प्यार, नन्हें बेटे की पिता के लिए कुलता और 'साम्ब' के वे शब्द कि 'मेरी खुशबू इससे मीठी है'। चन्द्रा के हृदय प्यार उमड़ आया। अहं की प्रखर मलिन हो गई। — कहानी बहती हुई और सुन्दर है।

'वापसी' और 'पैरम्बुलेटर' विषय-व की दृष्टि से सर्वथा भिन्न हैं। 'वापसी' पारिवारिक जीवन का खाका है। रिटायर गृह-स्वामी किस तरह धीरे-धीरे अपने बच्चों व पत्नी की दुनिया से निष्कासित हो जाता है। जीवन भर काम करके, थककर उसने सोचा था, बच्चों के बीच सुख से रहेंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु परिवार को वह बाधा और झंझट के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखता। हार कर वह दूसरे शहर में एक छोटी-सी नौकरी लेकर चला जाता है। घर वाले छुट्टी की साँस लेते हैं।

'पैरम्बुलेटर' हर नारी के माँ बनने की चिर-साध की बात कहती है। आनेवाले शिशु की प्रतीक रूप गाड़ी 'कालिन्दी' को पुलकित कर जाया करती है किन्तु असीम तलक के बाद मृत कन्या को जन्म देकर, आठ साल तक वह उसी गाड़ी को छाती से लगाये बैठी रही। गाड़ी बेचना, किसी को इस्तेमाल के लिए देना कालिन्दी को सह्य नहीं हुआ। वह उसका भविष्य और उम्मीद थी। आठ वर्ष बाद छोटे बेटे को गोद में लेकर कालिन्दी माँ के घर से पति के घर लौटी तो पुत्र बीमार हो गया और साधों से सँभाल कर रखी गाड़ी बिना काम में लाए ही इलाज के लिए बेच देनी पड़ी।

दोनों कहानियों की कथा-वस्तु बहुत करुण और मार्मिक है। शिल्प सहज है किन्तु असाधारण नहीं है।

अन्तिम कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' अवश्य ही लेखिका को बहुत प्रिय है क्योंकि पुस्तक को वही नाम दिया गया है। संग्रह की बहुत अच्छी कहानी वह है भी किन्तु सर्वश्रेष्ठ में उसे नहीं कह पाऊँगी। अन्य सब कहानियों में नारी-पात्र प्रधान है, लेकिन इसका नायक है, एक बेकार युवक—सुबोध जो आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए नौकरी छोड़ बैठा है। दूसरी नौकरी की अथक तलाशी करते-करते छोटी बहन पर आश्रित हो गया है। शोभा से अब उसका विवाह नहीं हो सकता। जिस फूलदान में शोभा गुलाब सजा जाया करती थी उसमें मैले रूप-गन्धहीन कागज के फूल ठुंसे हुए हैं! सुबोध की हताश, बदरंग जिन्दगी से सारी खुशबू निकल गई। उसे लगता है, जीवन अधिक दिन इस तरह वह ठेल नहीं सकता—घर से बाहर भटकता है, उदास और निराश घूमता है, लेकिन फिर उसी घर में लौट आता है जहाँ अपमान है, उपेक्षा है, लेकिन 'ढीली चारपाई, गन्दा बिस्तर, तिपाई पर ढका हुआ खाना' भी है।

कहानी बहुत संवेदनशील है। अपने इर्द-गिर्द चारों ओर फैले त्रस्त पात्रों को कहानियों में उतरा देख मन अकुलाहट से भर जाता है।

प्रियम्वदाजी के उपन्यास की प्रतीक्षा है और मन होता है वे मिलें तो पूछूं कि अपना नया कहानी-संग्रह कब निकलवा रही हैं।

—इन्दु जैन

खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना

डा० आशा गुप्ता; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; मूल्य १६.००।

डा० आशा गुप्ता का प्रस्तुत ग्रंथ, पंजाब विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध है, जिसमें १९२० ई० तक के खड़ी बोली काव्य की अभिव्यंजना-शैली के क्रमिक विकास का सविस्तार अध्ययन उपस्थित किया गया है।

यह संपूर्ण ग्रंथ सात बड़े अध्यायों में विभक्त है, जिनमें से मेरी दृष्टि में सबसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्वपूर्ण दूसरे और चौथे अध्याय हैं, जिनमें डा० ग्रियर्सन की इस भ्रांत धारणा का सप्रमाण खंडन किया गया है कि खड़ी बोली का जन्म अंग्रेजों के भारत-आगमन के बाद हुआ और उसकी सर्वप्रथम गद्य-पुस्तक डा० गिलक्राइस्ट के निर्देशन में १८०३ ई० में लल्लू लाल द्वारा प्रणीत 'प्रेमसागर' है। श्रीमती डा० गुप्ता ने बड़े निपुण भाव से संध्याभाषा से लेकर दक्षिणी हिन्दी तक की कविताओं के उपयुक्त उद्धरण देकर खड़ी बोली की प्राचीनता सिद्ध की है, और उसका आधुनिक युग तक नैरंतर्य दिखलाया है, यद्यपि भक्ति और रीतिकालों में खड़ी बोली के स्थान पर जो अवधी और व्रजभाषा की प्रमुखता हो गई, उसके ऐतिहासिक-सामाजिक कारणों की गहराई से छानबीन नहीं की जा सकी है।

ग्रंथ के पाँचवें, छठे और सातवें अध्यायों में क्रमशः भारतेन्दु-युग, संधि-युग और द्विवेदी-युग के कवियों के कृतित्व का अच्छा उद्-घाटन हुआ है। द्विवेदी-युग के न केवल प्रतिनिधि कवियों के शैली-शिल्प का आकलन किया गया है, बल्कि अपेक्षाकृत गौण महत्त्व के कवियों की भी विस्तृत चर्चा की गई है। साधारणतः साहित्य के इतिहास-लेखक अनुवाद-कार्यों को विशेष महत्त्व नहीं दे पाते, पर अभिव्यंजना-शैली के विकास-क्रम में अनुवादों का योगदान अप्रतिम होता है, क्योंकि इनके वातायन से मूल पुस्तकों की भाषा-शैली की अनेक अभिव्यंजनात्मक विशेषताएँ भी अनुवाद की भाषा में स्वयमेव आयत्त हो जाती हैं। डा० गुप्ता ने द्विवेदी युगीन अनुवादों को उचित महत्त्व देकर अपनी वैज्ञानिक दृष्टि-संपन्नता का परिचय दिया है। यद्यपि इस काल के कवियों के विषयवस्तु और अभिव्यंजना-कौशल के आधार पर जो दो वर्ग कर गए हैं, वे बहुत कुछ कृत्रिम और भ्रामक हैं और उनसे मतभेद रखने की पूरी गुंजाइश है।

पहली बात तो यह कि काव्य के वस्तु और उसकी शैली में वैसा कोई औपचारिक संबंध होता ही नहीं, जिसकी प्रबन्ध में अनेक स्थानों पर कल्पना कर ली गयी है। इस कल्पित आधार पर जो वर्गीकरण किया जाएगा, वह सतही और विवादास्पद होने को बाध्य है। दूसरी बात यह कि यदि इस वर्गीकरण को स्वीकार कर भी लें तो अभिव्यंजना-कौशल की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कवियों में हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त के साथ राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' को स्थान देना और अपेक्षाकृत गौण कवियों में रामप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और रायकृष्णदास को खतिया देना (पृ० ७२) नितांत असंगत है। 'सनेहीजी' और रायकृष्णदास द्विवेदी-युग के उस सीमांत के कवि हैं, जहाँ से छायावाद की उद्गम-भूमि भी बहुत दूर नहीं है। इनकी शैली में वैयक्तिकता का ऐसा संस्पर्श है जो परवर्ती युग के काव्य की भेदक विशेषता बन सका।

अंत में दो शब्द प्रबंध की कालावधि के संबंध में भी अप्रासंगिक न होंगे। इस औसत से अच्छी पुस्तक की सबसे बड़ी कमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोरी यह है कि इसमें शोध के लिए जो काल की सीमाएं निर्धारित की गई हैं, वे न केवल अवैज्ञानिक हैं, बल्कि अव्यावहारिक भी हैं। खड़ी बोली में अभिव्यंजना-शक्ति का विकास मुख्यतः छायावाद और उसके परवर्ती युगों की देन है। अतएव यदि केवल खड़ी बोली के अभिव्यंजनात्मक सौष्ठव का अध्ययन अभीष्ट है तो कम-से-कम छायावाद-युग तक का समावेश तो कर ही लेना चाहिए था। १९२० ई० की तिथि सीमा ऐसी है, जब द्विवेदी युग की समाप्ति हो चुकी है और छायावाद अपनी प्रारंभिक पंखुड़ियों को खोल रहा है। कहना अनुचित न होगा कि इस प्रकार की ऐतिहासिक गवेषणाओं को सुविधाजनक तिथियों की मुखापेक्षिणी बनने देना विवेचन की गहराई में उतरने से इन्कार करना है। मेरा डा० गुप्ता से विनम्र अनुरोध है कि वे यथाशीघ्र १९२० ई० के बाद से लेकर अद्यतन हिन्दी कविता के अभिव्यंजना-शिल्प का विकासक्रम प्रस्तुत कर अपने अध्ययन को पूर्णता प्रदान करें।

—(प्रो०) आनन्दनारायण शर्मा

नर्गिस, संतोष और शर्मा

रमण, पुस्तक सदन, खजांची रोड, पटना–४, मूल्य ५.००

तीन पात्रों के आधार पर इस उपन्यास का नामकरण हुआ है। संतोष नायक, नर्गी मित्र के रूप में खलनायक, तथा नर्गिस एक वेश्या और संतोष की प्रेमिका है। आधुनिक हिन्दी उपलब्धियों की महत् अथवा सामान्य उपलब्धियों की दृष्टि से तो इस उपन्यास से निराशा ही हाथ लगेगी। यथार्थवाद के नाम पर सभी कुछ अतियथार्थवादी-सा, समाज की विषमताओं के चित्रण के नाम पर सभी असामान्य-सा तथा विद्रोह के नाम पर सभी कुछ दैव-संयोग तथा घटना-चक्र से संपन्न। संतोष का शिला से परंपरागत विवाह रचाये जाने के अवसर पर वेश्या नर्गिस के साथ दिल्ली भाग जाना और अकस्मात् अच्छी नौकरी पा जाना; नर्गिस से उत्पन्न विजय नामक पुत्र के विवाह के अवसर पर संतोष को अपनी पूर्व मंगतेर शिला को वेश्या रूप में पाना और उसके साथ योगी बन कर निकल पड़ना; मार्ग में कराहती हुई ठुकराई नर्गिस का मिलना आदि सभी कुछ मानो एक मध्य कालीन रोमांस-से लगते हैं जो छद्म यथार्थता तथा सामाजिकता के आवरण डाले हुए हैं।

कथोपकथनों की कमी और संक्षिप्तता, भाषा में उर्दू-अंग्रेजी शब्दों का बारहमसाला और शीर्षक में चमत्कार तत्त्व आदि भी इसे कला तथा विषय की दृष्टि से एक बेहद साधारण कृति ही बना देते हैं।

—डा० रमेश कुंतल मेघ

बेला—एक बेवकूफ लड़की

चंद्रदेव सिंह, भारती पुस्तक मंदिर, ४ डी मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट, कलकत्ता—७ मूल्य २.५०

मैंने कुछ दिन पूर्व चन्द्रदेव का नया उपन्यास 'आत्महत्या से पहले' पढ़ा था, उसके समक्ष यह उपन्यास सभी दृष्टि से बेचकाना है। लेखक सभी पात्रों के साथ पूर्वाग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप
की खूबसूरती
ढल रही है

जब बाल पकने लग जाय तब आप का चाद जैसा चेहरा ढलने लगता है, फिर आप भले ही इसे खूबसूरत रखने के लिए हर कीमत चुकाने को तैयार क्यों न हों...सादी-सी बात है कि सुंदरता ही जहान है आप के लिए।

भगवान करें, आप से ऐसी न बीते...आपके बालों की जवानी कुम्हलानी नही चाहिए, वह भी उस हालत मे जब कि आप को लोमा सुलभ हो। मनमोहक खुशबूवाला लोमा बालों को श्याम बनाता है। लोमा सिर्फ बालों को श्याम ही नही करता, बल्कि वह आदर्श केश-प्रसाधन और बढ़िया केश-तैल भी है।

लोमा मे बालों को दुबारा जवानी प्रदान करनेवाले, उन्हे पुष्ट रखनेवाले तत्व है, जिससे आप के बाल रेशम जैसे मुलायम, घने और अधिक आकर्षक बनते है। मृदु लोमा लगाने पर आप की सुन्दरता कभी नहीं ढलेगी...सच पूछिये तो उसमें चार चांद ही लग जायेंगे।

लोमा

दुनिया भर में उत्कृष्ट गुणों के लिए ज्यादा पसंद होता

सोल मैनेजर्स और निर्यातक:
एम. एम. खम्भातवाला,
अहमदाबाद-१ (भारत)

एजेंट्स:
सी. नरोत्तम एंड कंपनी,
बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...चलता है। सुशील, बेला और ...उसके हाथ की कठपुतली और ...की उपज मात्र रह गये हैं। ...उपन्यास पढ़ने पर मेरे मस्तिष्क में ...एक ही प्रभाव पड़ा कि यह उपन्यास ...के लिए लिखा हुआ है और तभी ...कथानक घटनाओं से बोझिल है। ...में पसंद के दो तत्व हैं। पहला ...प्रकृति-चित्रण और दूसरा कलकत्ते ...शिक्षित वर्ग की कमीनियों का साहस के ...पर्दा-फाश। लेखक ने कहीं-कहीं ...साहित्यकारों पर तीव्र व्यंग भी ...है। केवल बहुत साधारण स्तर के ...के लिए ही यह उपन्यास पठनीय ...सकता है।

—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

चाँद की आत्मा

हरीश साहित्यालंकार; कला भारती, मुजफ्फरपुर : मूल्य २.००

'चाँद की आत्मा' हिन्दी कहानी-क्षेत्र के सर्वथा नवीन हस्ताक्षर श्री हरीश की छोटी किन्तु तीखी कहानियों का संग्रह है। श्री हरीश की इस प्रथम कृति से सहज ही उनके कहानीकार की ओर हमारी दृष्टि जाती है। सामाजिक विषमता, उसकी दीनता के साथ सुकुमार रागात्मक भावनाओं का प्राधान्य उनकी कहानियों में दिखाई पड़ता है। अपनी आगामी कृति में लेखक भाषा संबंधी भूलों का परिमार्जन कर पायेगा यह विश्वास है। अनेकानेक विद्वानों की सम्मतियों का सूची-पत्र मुझे खटका है, अतः तरुण लेखक से आग्रह करूँगा कि वह दूसरों के चश्मों से ज्यादा अपनी अर्जित ज्ञान-राशि एवं प्रतिभा के बल का ही संबल ग्रहण करे तो ज्यादा अच्छा होगा।

—कृष्णनन्दन 'पीयूष'

कटी पतंग

नानक सिंह; हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी—१; मूल्य ६.००

'कटी पतंग' पढ़ कर एक स्वस्थ औपन्यासिक का दर्शन होता है। नारी-भावनाओं का लैण्डस्केप तथा पार्ट्रेट कलात्मक मनोविज्ञान के माध्यम से प्रस्तुत है। पियक्कड़ आवारागर्द बृजमोहन कामिनी के फौलादी किन्तु स्नेहिल स्त्रीत्व के सम्मुख स्वयं अपनी आत्मग्लानि से पानी-पानी हो जाता है। उच्छृंखल पौरुष के बवंडर को बाँधने की शक्ति कामिनी में है—वह सच्चे अर्थों में बहन है तथा गृह-वधू। मध्यम-वर्गीय पारिवारिक कुंठा का बड़ा सबल चित्रण इस उपन्यास में है।

कुछ भाषा-सम्बन्धी भूलें हैं जैसे 'हृदय' की जगह 'हृहय' छपा है (पृष्ठ २४ अंतिम पंक्ति), 'नाखून' के स्थान पर 'नाखुन' (पृष्ठ ५०) और 'गर्भपात' का 'गर्व-पात' (३३७)। समग्रतः उपन्यास ठीक-ठाक है 'पुराने अन्दाजे बयाँ' भी ठीक ही है। सुखबीर कुछ युटोपियन हीरो-सा लगता है। इतना आदर्श जरा कम ही नजर आता है इस यांत्रिक युग में।

—रंगनाथ राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय के ग्राहकों एवं एजेन्टों से कुछ आवश्यक निवेदन

● हमारा पूरा प्रयत्न रहा है कि ज्ञानोदय समय पर तथा सुरक्षित रूप से ग्राहकों एवं एजेन्टों को मिल जाये। इस तरफ और भी सतर्कता और सावधानी बरतने के लिए, हमने भविष्य में डाक द्वारा भेजे जाने वाले सभी अंकों को अण्डर सर्टिफिकेट-आफ-पोस्टिंग से भेजने का निश्चय किया है। ज्ञानोदय के डिस्पैच की तारीखें ऐसी बँधी हुई हैं कि प्रत्येक एजेण्ट एवं ग्राहक को मास के प्रथम सप्ताह के अन्दर-अन्दर उस मास की प्रति पहुँच जाती है। दुहरी जाँच के बावजूद यदि कभी किसी मास, किसी एजेन्ट अथवा ग्राहक को अंक नहीं प्राप्त हो तो हमारा साग्रह उनसे निवेदन है कि १० तारीख के अन्दर ही स्थानीय डाक-घर से पूछ-ताछ करें और डाक-विभाग से लिखित शिकायत कर, उसकी प्रतिलिपि के साथ हमें लिखें ताकि हम यह पता लगाने में समर्थ हो सकें कि आखिर गड़बड़ी कहाँ और कैसे हुई है।

● जो ग्राहक अधिक सुरक्षा की दृष्टि से वर्ष भर के लिए ज्ञानोदय रजिस्टर्ड-बुक-पोस्ट द्वारा मँगाना चाहें, वे तीन रुपये अतिरिक्त शुल्क मनीआर्डर द्वारा या उतनी कीमत के डाक-टिकट या पोस्टल-आर्डर हमें भेज दें।

● व्यवस्था की सुविधा तथा पत्र-व्यवहार में शीघ्रता लाने के हेतु ग्राहकों से यह भी प्रार्थना है कि वे किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख करना न भूलें। यदि किसी सज्जन को अपनी ग्राहक-संख्या मालूम न हो तो कृपया रैपर पर अपने नाम और पते के आगे अंकित संख्या को नोट कर लें।

● ज्ञानोदय के जिन ग्राहकों के शुल्क समाप्त हो जाते हैं, उनको अन्तिम अंक जाने के साथ-ही-साथ हम कार्ड द्वारा यथाविधि सूचना देते हैं। हमारा ग्राहकों से विनम्र निवेदन है कि वे कार्ड-प्राप्ति के साथ ही हमें तत्काल यह सूचित करने की कृपा करें कि वे वार्षिक शुल्क भेज रहे हैं या उनको अंक वी० पी० पी० से भेज दिया जाये।

● जो ग्राहक अपना पता बदलना चाहते हों, उनसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे कम-से-कम मास की १५ तारीख तक हमें सूचित कर दें ताकि आगामी अंक, उन्हें, उनके नये पते पर ही भेजा जा सके। साथ में ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

—व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लेखिकाएँ विशेषांक' के लिए बधाई। मुझे तो कल्पना तक नहीं थी कि हमारी इतनी सारी बहनें साहित्य-सेवा कर रही हैं। सभी रचनाएँ अच्छी लगीं।

इस अंक ने एक सत्य हमारे सामने यह खड़ा किया है कि हमारी साहित्यिक बहनें अपने-आपको पुरुष-लेखकों से कम भाग्यवान समझती हैं क्योंकि उन पर चूल्हे-चौके की जिम्मेदारी है। यही उनके लेखन-कार्य को आगे बढ़ने से रोकती है। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। यदि पुरुष-लेखक को चूल्हे-चौके की चिन्ता नहीं करनी पड़ती तो उस पर अपने परिवार की रोटी कमाने का उत्तरदायित्व तो होता ही है।

दूसरी बात यह भी अखरती है कि बहनें आजादी चाहती हैं। कैसी आजादी? अपने बच्चों से? अपने ही घर से? इससे अच्छा तो यही है कि हम कलम ही को छोड़ दें। क्योंकि यह आजादी सारी समाज-व्यवस्था ही बदल कर रहेगी। फिर अमरीका की तरह हमें भी अपने बच्चों को सुधारने के लिए बेकार के झंझट मोल लेने पड़ेंगे। दो-दो तलाक लेने पर भी हम सुख पाने के लिए मारी-मारी फिरेंगी। मैं इसे आवश्यक नहीं समझती।

तो फिर हमें क्या करना चाहिए? हमें लिखना भी है। घर की लक्ष्मी या नौकरानी ही कहिए—बनकर भी रहना है और बच्चों को भी पालना है। पहले तो आप अपने परिवार को नियोजित करें। आजकल चार साल का बालक स्कूल जाने लगता है। यह रहा आपका एकान्त, लिखने के लिए। गरमियों में बच्चे दो - तीन घण्टे सोते अवश्य हैं। इस समय को आप पढ़ने में लगाइये। जाड़े में रात को बच्चों को जल्दी खिला-पिलाकर सुला दीजिये और आप भी अपनी रजाई में पढ़ा करें। कौन कहता है कि हमारे पास समय नहीं है? हाँ, पास-पड़ोस की बहनों से हँसी-मजाक के लिए कम समय मिलता है। सो उसकी

सृष्टि और दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ASP/OCI-20

आकर्षक आकार
अनुपम निर्माण कौशल
उचित मूल्य

निरन्तर अनुसंधान तथा योजना के कारण ओरिएन्ट के आधुनिक कारखानें में उत्पादन-साधनों तथा प्रणाली में सुधार होता रहता है। परिणाम स्वरूप उत्पादन में भी सुधार होता है और उत्पादन-खर्च तथा मूल्य कम हो जाता है ... अन्ततोगत्वा उपभोक्ता को इसका लाभ प्राप्त होता है। अतः आश्चर्य नहीं कि आपको सुन्दर तथा आकर्षक ओरिएन्ट पंखा इतने कम मूल्य में प्राप्य है! दुविधा-मुक्त संचालन तथा कम बिजली खर्च के कारण ये पंखे भारत में आज अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

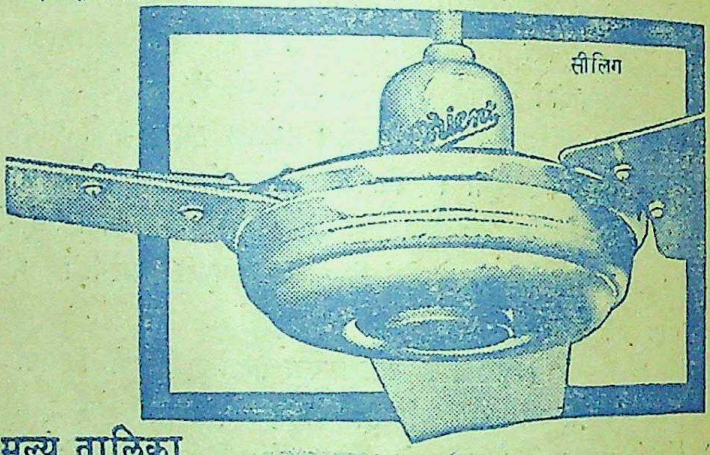

सीलिंग

मूल्य तालिका

सीलिंग ए०सी०	
६०"	१७३.०० रु०
५६"	१६७.०० रु०
४८"	१५८.०० रु०
३६"	१२४.०० रु०
१६" घुमावदार ए०सी०	११७.५० रु०
१६" ए० पी० ए०सी०	७७.५० रु०
१६" ए० पी० पेडस्टल ए०सी०	११२.०० रु०

आसान किश्तों पर भी मिलता है

इन मूल्यों में आबकारी शुल्क सम्मिलित है। स्थानीय कर अलग।

ओरिएन्ट

दो वर्ष की गारन्टी

ओरिएन्ट जेनेरल इण्डस्ट्रीज लिमिटेड,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी आवश्यकता भी नहीं होती। अच्छा, अब हमें सोचने के लिए समय चाहिए। उसके लिए भी पहाड़ पर जाना नहीं पड़ता। अपने रसोई-घर में ही आप चिन्ता करें। भोजन बनाते समय, कपड़े धोते समय, दही बिलोते समय, सोने के पहले आप सोचिये। जरूरी नहीं कि रसोई-घर में आप केवल खाने-खिलाने का ही विचार करें। हमें अपनी परिस्थितियों से समझौता करना है, और घटिया साहित्य का नहीं वरन् महान् साहित्य का निर्माण करना है।

—मीरा महादेवन, नई दिल्ली

ज्ञानोदय का 'नवोदित लेखिकाएँ अंक' प्रयत्न सफल रहा, इसके लिए बधाई।

रचनाओं के साथ-साथ लेखिकाओं का आत्म-परिचय बहुत आवश्यक था। आत्म-परिचय के आधार पर लेखिकाओं के बारे में काफी जानकारी प्राप्त हो सकी है। हम देखेंगे कि अंक की ३२ में से १६ लेखिकाओं ने अपनी उम्र के बारे में कुछ नहीं बताया। बाकी १६ लेखिकाओं में से ५ लेखिकाएँ २५ से ५० वर्ष तक की हैं, तथा उनकी काफी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इन ७ में से २ ने विवाहिता होना स्वीकार किया है, अन्य के बारे में नहीं कहा जा सकता कि वे विवाहिता हैं या अविवाहिता। ४ लेखिकाएँ अध्यापन का कार्य कर रही हैं। १६ में से ९ लेखिकाएँ १८ वर्ष से २५ वर्ष तक की हैं; अर्थात् इनमें ५६% प्रतिशत युवा हैं। यह साहित्य के उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करना है। इन ९ लेखिकाओं में से १ विवाहिता है तथा ८ को यदि अविवाहिता ही मान लिया जाय, क्योंकि इनके विवाहिता होने का पता नहीं चलता, तो प्रश्न उठता है कि क्या ये विवाह के पश्चात् भी साहित्य-सृजन करती रहेंगी?

३२ लेखिकाओं में से ९ लेखिकाएँ अध्यापन व खोज-कार्य में लगी हैं तथा ९ एम० ए० अथवा बी० ए० में अध्ययन कर रही हैं। बाकी १४ लेखिकाएँ गार्हस्थ्य जीवन के साथ-साथ साहित्य-सेवा का भी कार्य कर रही हैं, यह प्रशंसनीय है!

लेखिकाओं की शिक्षा को देख कर काफी प्रसन्नता होती है। ३२ में से २० एम० ए० कर चुकी हैं या कर रही हैं। बाकी बी० ए०, इन्टर मैट्रिक, हैं। ५ अंग्रेजी में एम० ए० हैं, अतः स्पष्ट है कि उनका अन्य देशों के साहित्य से भी परिचय होगा और इसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर अवश्यम्भावी है। अन्य कई विभिन्न विषयों में एम० ए० हैं—राजनीति, इतिहास संस्कृत तथा दर्शन आदि में। एक लेखिका विज्ञान की छात्रा हैं।

लिखने के अलावा ३ चित्रकला में तथा २ संगीत में रुचि रखती हैं। बाकी लेखिकाओं की रुचि विभिन्न है; जैसे, सिनेमा देखना, पढ़ना-लिखना, खिलाना-पिलाना, सोना, पहाड़ों पर चढ़ना, समाज-सेवा आदि।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि नयी लेखिकाएँ यदि लिखती रहीं तो उनकी कलम काफी सशक्त हो जायेगी।

ओमप्रकाश जोशी, करौली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ज्ञानोदय' के जून अंक में 'एक इंच मुस्कान' की तेरहवीं किस्त निकली है और उसे पढ़ने पर कई प्रश्न एक साथ उठते हैं: एक तो यह कि क्या यह उपन्यास किसी मूल उद्देश्य को लिए आगे बढ़ रहा है या उसकी घटनाएँ लेखनी के प्रवाह के साथ-साथ ही पैदा होती चलती हैं।

दूसरी बात है अमर के चरित्र को लेकर; उपन्यास के पहले अंशों में उसे लेखनी का धनी, सम्मानित साहित्यकार बतलाया गया है लेकिन साथ-साथ ही उसके मन का कच्चापन कथानक पर छाता जाता है और इसी कतई साधारण कोटि की मनोवस्था से नई-नई समस्याएँ व घटनाएँ जन्म लेती गई हैं। टण्डन की बात सुनकर वह हाँ कर देता है और शादी रचाता है, अमला के प्रभाव से घर में कटुता पैदा करता है और अपनी विचित्र आवेश-जिनित क्रियाओं द्वारा उखड़ जाता है। 'छोटी-छोटी बातें' अध्याय से लेकर (बल्कि पहले के अध्यायों में भी) वह निरन्तर एक अठारह वर्षीय आदर्शवादी युवक ही सिद्ध होता है। कालिजों में जो रोमांस चलता है, हूब-हू वही स्तर अमर के प्यार का भी है। यदि वह गम्भीर और ईमानदार बना रहता, छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने का उसका स्वभाव न रहा होता तो रंजना के विश्वास को वह आसानी से जीत लेता। फिर कितनी ही अमलाएँ और शकुन उससे मिलतीं; घर बैठ कर मजाक करतीं, रंजना के दिल में ज़रा भी शक पैदा न होता।

और ऐसे में बेचारी रंजना का बुरा हाल हो गया है। वह जीवन से चिमटी है, स्वाभाविक नारीत्व उसमें है और वह आवश्यकता से अधिक ईमानदार है। बार-बार उस पर आक्षेप किये गये हैं कि वह अमर को बाँध कर रखना चाहती है या बहुत अधिक शंकालु है; यह सब उसके चरित्र के सामने स्वयंमेव झूठा पड़ जाता है। उसके इस चरित्र की बनावट का श्रेय मन्नू भण्डारी को है जिनकी लेखनी में राजेन्द्र यादव से रोचकता चाहे कम हो, पर जिनकी दृष्टि अधिक स्वस्थ और पार्थिव है।

फिर अमला! पिछले कुछ अध्यायों से वह अनुपस्थित है। असल में अमला जीवन की विडम्बनाओं को भोगे हुए मन में सैकड़ों गुत्थियाँ छिपाये एक एब्नार्मल पात्र है जो अपने अस्वाभाविक वार्तालाप व क्रिया-कलापों से पाठक के मन में वितृष्णा पैदा करता है। संक्षेप में उपन्यास की क्रियाएँ व घटनाएँ, परिवेश तथा पात्रों के अनुकूल नहीं हैं।

—आनन्द प्रकाश, रोहतक

'ज्ञानोदय' के जून-अंक में श्री रामशरण शर्मा का 'संसार के बूढ़े क्या करें?' पढ़ा। लेखक ने जिस ढंग से समस्या का साधारणीकरण करने की कोशिश की है वह इतनी संकुचित और रूढ़ है कि इस विषय में सहानुभूति का भाव जाग्रत होने की बजाय मन खीझ उठता है।

यह माना, नये रक्त में अवहेलना है और यह अवहेलना किन्हीं अर्थों में ठीक भी हो सकती है और किन्हीं अर्थों में गलत भी—लेकिन 'वृद्धों को एक इन्जेक्शन के द्वारा कानूनन शान्ति की मौत भेंट की जाए', यह निर्णय अपने-आपमें अनास्था की कितनी बड़ी विभीषिका समेटे हुए है—यह कोई भी समझ सकता है। —श्रीकान्त, बरेली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए
लक्स ज़रूरी है'

चित्रतारिकाओं
का शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

'मेरा मनचाहा साबुन मेरे मनचाहे रंगों में!' साधना कहती है

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 111-X29 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ, आ, चिड़िया-
दाना खा,
पानी पी...

"मगर मुन्ने का मीठा शरबत तुम्हें नहीं मिलेगा—समझीं चिड़िया रानी!"

शक्ति और स्फूर्ति देनेवाला **नौनिहाल** बच्चों को हमेशा निरोगी और प्रफुल्ल रखता है।

नौनिहाल ग्राइप सिरप दांत निकलने की तकलीफ़, कब्ज, पेट फूलना, दस्त, वायु और पेचिस की तकलीफ़ों में तुरन्त आराम पहुँचाता है।

नौनिहाल बेबी टॉनिक, स्वास्थ्य के लिये ज़रूरी विटामिनों से भरपूर, यह टॉनिक खून की कमी, हड्डियों की कमज़ोरी, मसूढ़ों की सूजन, सर्दी और जुकाम के लिये बहुत ही फायदेमन्द है।

बच्चों को निरोगी और प्रफुल्ल रखने के लिये—

नौनिहाल

हमदर्द
देहली
कानपूर
पटना

mag. HDN. 482 A HIN

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

पर वह मेरे मन की कृतज्ञता, मेरे मन की विह्वलता भी जानते थे; बोले, "पर कोई बात नहीं है, जैसे बच्चा अपनी माँ की कोख में जीता है वैसे ही मैंने तुम्हारी आत्मा में बैठ कर, तुम्हारे हृदय में समा कर जो दैवी क्षण जिये हैं, बस वही हमारी ज़िन्दगी के वरदान हैं। वही हमारी ताक़त हैं।

रात आधी के क़रीब बीत गयी थी, बोले, "तुम्हें सुबह जाना है, आराम कर लो। मैं तुम्हें समय से उठा दूंगा।" उठे और एक कम्बल लाकर मुझे उढ़ा दिया, फिर मेरे कन्धों को अपनी बाँह में घेर कर मेरा सिर अपने कंधे पर टिका कर मुझे थपकी देकर सुलाते रहे। मैं थकी, शिथिल उनकी बाँहों में वैसे ही सो गई!....कितना अच्छा होता कि वह नींद अनन्त निद्रा में बदल जाती!....

सुबह आँख खुली तो मैंने पाया कि वह वैसे-के-वैसे ही चुपचाप मेरे चेहरे पर सीली आँखें टिकाये बैठे हैं। बोले, "उठो, नहीं तो तुम्हारी गाड़ी छूट जायेगी। तुम तैयार हो लो, मैं भी आता हूँ।"

मेरा मन बिल्कुल तरल था। ज़िन्दगी की पहली और आख़िरी बार अपने हृदय की सम्पूर्ण विह्वल ऊष्मा के साथ मैंने अपने ओठों को उन्हें समर्पित किया। वह भगवान के चरणों में मूक प्रार्थना के-से क्षण मेरी ज़िन्दगी को ताक़त और कचोट दोनों दे गये!

हम स्टेशन पहुँचे, ट्रेन छूटने को हुई, हमने हाथ मिलाये, मेरी गीली आँखें उन्हें अनन्त धन्यवाद देती रहीं। ट्रेन चल दी और धीरे-धीरे वह आँखों से ओझल हो गये!

मैं वॉलजानो पहुँची। मेरिया अपने पति के साथ स्टेशन पर मिली। मुझे देख कर चकित रह गई। बोली, "हाय, क्या कर डाला तूने अपने को! किस क़दर दुबली हो गई है!"

घर पहुँची। दरवाज़े पर ही पापा मिले। मुझे लगा मैं अपनी तकलीफ़ समेट नहीं पाऊँगी और एक चीख के साथ 'पापा' कह कर उनके वक्ष से चिपट गई और उनकी बाँहों में बेहोश हो गई। जब मेरी आँख खुली तो मैंने पाया, सारा घर साँय-साँय कर रहा है। सब ख़ामोश-उदास बैठे हैं। मुझे जागा देख कर डाक्टर चाचा मेरे पास आये, बोले, "जानती है बिटिया, तू पूरे दो दिन और पूरी तीन रातें सन्ना कर सोई है।" मेरी आँखें आँसुओं से भर गयीं। वह बोले, "हट पगली, मेरे रहते तुझे क्या फ़िक्र, तू दो दिन में अच्छी हो जायेगी।" सबने बच्चे की तरह मेरी देख-भाल की। धीरे-धीरे मैं स्वस्थ हो गई। मेरिया से उनकी तमाम-तमाम बातें करके मैंने अपने मन पर रखे पत्थर के भार को ज़रा सँभालने की कोशिश की। पर सूने, उदास और बोझिल दिन काटे नहीं कटते थे, बहुत अकेलापन महसूस होता था। केवल एक शब्द 'बेनवेनुटा....शुभागता'.....मुझे थोड़ा-बहुत सकून दे जाता था। हाँ, इस रेख पर चल कर मैं बेनवेनुटा ही बन रही थी! उनके लिए शुभागता!.....

● ● समय बीतता गया। युद्ध छिड़ने वाला है, इस बात की बड़ी गर्म ख़बर थी। सभी चिन्तित और परीशान थे कि एक सुबह निश्चित समाचार मिल ही गया। युद्ध छिड़ गया था। इतने दिनों की सप्रयास चुप्पी दम तोड़ बैठी और मैं रिल्के के समाचार जानने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ALL OVER THE COUNTRY
MILLIONS USE
PANAMA
FOR A CLEANER, SMOOTHER
SHAVE!

☆ TO ENHANCE YOUR SHAVING COMFORT

PANAMA
Safety Razor
BLADES

Sole Agents for:

CALCUTTA : BOMBAY : MADRAS : KERAL :
MYSORE : ANDHRA

Lala Gopikrishna Gokuldoss

119, MINT STREET, MADRAS-1.

Bombay Branch:

11, WESTERN INDIA HOUSE,
Sir Pherozshah Mehta Road.

Phone : 3275, 55132 ESTED : 1887 Gram : JHAVER

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को एकदम पगला उठी। खत भेजने पोस्ट-आफ़िस गई, पता चला, डाक-तार लाइनें ठप्प हो चुकी हैं। हे भगवान, अब क्या करूँ! मैं बिल्कुल होश-हवाश खो बैठी, कुछ भी हो, मुझे रिल्के से मिलना ही है! पता नहीं, कल क्या होगा?.....भूखी-प्यासी तमाम मुसीबतें झेलती मैं इन्सब्रुक होते हुए किसी तरह म्यूदेन तक पहुँची। चारों ओर सभी घबराये, विकल, पगलाये-से लोगों की भीड़ थी। कहीं कुछ पता नहीं चल रहा था। तीन दिन बाद एक सफ़ेद लिफ़ाफ़ा मिला। रिल्के के अक्षर! प्रभु, कितने दयालु हो तुम! मुसीबतें पार करके अब वह सुरक्षित हैं।

मैं भी निश्चिंतमना हो काम में लग गई। युद्ध में घायल सैनिकों और आहत परिवारों तथा शरणार्थियों की सहायता के लिये पियानो के प्रोग्राम दे-देकर धन एकत्र करने लगी। एक प्रोग्राम में मुझे म्यूनिच जाना था। मैं गई, स्टेशन पर ही एक आदमी ने स्वयं को उस कंपनी का एजेण्ट बताया जिसके लिए मुझे पियानो बजाना था और कहा, "चलिये, जहाँ आपके ठहरने का इन्तज़ाम किया गया है, वहाँ आपको ले चलूँ।" मैं उसके साथ हो ली। वह मुझे जाने कहाँ ले आया। आकर जिस कमरे में टिकाया, उसका किवाड़ वह अन्दर से बन्द करने जा ही रहा था और मैं घबरा कर चीखने ही वाली थी--बाहर से किसी ने दरवाज़े पर दस्तक दी। मैंने कहा, "आ जाइए।" और यह क्या!....देवदूत सरीखे रिल्के! वह आदमी तुरंत चम्पत हो गया। और मैं एकदम फूट-फूट कर रोने लगी। मैंने उन्हें बताया कि कैसी विपत्ति के क्षण में उन्होंने मेरी रक्षा की है आज। भरे-भरे मन से वह बोले, "इसी में तो मेरी सार्थकता है, बेनवेनुटा!"

इस घटना के महीनों बाद मैंने उन्हें बर्लिन में देखा था। पर वह अब बहुत बदल गये थे। हर समय चापलूसों से घिरे रहते। जहाँ देखो, वहाँ रिल्के जिसके-तिसके निमंत्रण पर जाते रहते। प्रसिद्ध कवि रिल्के को अपने घर बुलाना एक फ़ैशन की बात बन गई थी। मैं देखती थी कि रिल्के का बहुत-सा समय इन्हीं बातों में नष्ट होता रहता था। उनके जिस समय की, जिस एकान्त की मैंने रक्षा करनी चाही थी, जिसके लिए मैंने अपने निज के हृदय से उठती आवाज़ को भी एक थपकी देकर सुला दिया था और उनका भी सुकुमार मन दुखा दिया था, वही अब यों नष्ट हो रहा था। मैं जानती थी कि यह मेरे द्वारा मिली रिक्तता ही है जिसे रिल्के यों भर रहे हैं। काश कि वह रिक्तता मेरे सपनों के अनुसार भरी जाती! कभी-कभी मुझे लगने लगता, शायद मुझसे ग़लती हो गई, इन्हें यों अकेला नहीं छोड़ देना चाहिए था। पर.....

एक साल बाद मैंने उन्हें म्यूनिच में देखा था। तब तक वह और भी बदल गये थे। तमाम लोग उन्हें अपना, केवल अपना समझने लगे थे। एक कलाकार महिला तो हर समय उनके पीछे ही लगी रहती थीं। लिख भी वह रहे थे, यश भी उनका बढ़ता जा रहा था पर जाने क्यों मेरे सूने क्षणों की पवित्र निश्चिन्तता में धीरे-धीरे उनके लिए चिन्ता की स्याही घुलती जा रही थी! फिर भी मैं खुश थी। वह लिख-पढ़ तो रहे हैं! मेरे पास कभी-कभी उनके खत आ जाते। एक बार उन्होंने अपनी लिखी मेरी एक बहुत प्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा षा

हिन्दी त्रैमासिक

(मार्च, जून, सितम्बर और दिसम्बर में प्रकाशित)

सम्पादिका : तारा तिक्कू

सम्पादन परामर्श मण्डल :

डा० दौलतसिंह कोठारी
श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'
श्री रमाप्रसन्न नायक
डा० नगेन्द्र
श्री रणछोड़ प्रसाद
डा० विश्वनाथ प्रसाद
श्री जीवन नायक
श्रीमती तारा तिक्कू (सचिव)

स्थायी स्तंभ:

हिन्दी भाषा की समस्याएं
भाषा और व्याकरण
भारतीय भाषाविद्
शब्दश्री
द्वाभा
स्रोतस्विनी
भारतीय साहित्य
सरकारी काम-काज में हिन्दी
निकष
हिन्दी डायरी
हिन्दी पाठ

वार्षिक मूल्य : ३.५० रुपये
एक प्रति : १.०० रुपये

मिलने का पता :

प्रबन्धक प्रकाशन शाखा,

भारत सरकार, सिविल लाइन्स

दिल्ली–६

●

केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक 'बुक आफ़ आसे' भेजी। और लिखा कि यह पुस्तक तुमसे हमेशा कोई-न-कोई ले जाता रहा है, इसलिये इस बार इसे ऐसे भेज रहा हूँ कि तुम किसी को दे न सको। ख़ूबसूरत मख़मल में मढ़ी उस पुस्तक पर मेरा नाम सुनहले अक्षरों में लिखा था। दिन यों ही बीतते जा रहे थे। कभी-कभी उनके समाचार मिल जाते थे बस !

लेकिन इधर बहुत दिनों से रिल्के का कोई समाचार नहीं मिला था, उनका कोई ख़त भी नहीं आया था। किसी मित्र ने बताया, रिल्के को सेना में भर्ती करा लिया गया है। उन दिनों हर स्वस्थ युवक को सरकारी आज्ञा से ज़बर्दस्ती सेना में भर्ती होना पड़ता था। फिर रिल्के ने तो बचपन में मिलिट्री ट्रेनिंग भी ली थी। उनकी भर्ती का समाचार सुन कर मेरा मन बेहद व्याकुल हो उठा। उनका स्वास्थ्य यों ही ख़राब रहता है। वहाँ की परिश्रम-साध्य कवायदों को कैसे सह पायेंगे वह ! और फिर उनके जैसे सुकुमार हृदय व्यक्ति को वह सब करते कैसा लगता होगा, कितनी मानसिक यंत्रणा में होंगे वह ! मेरा मन चिन्तित हो उठा। बाद में सुना कि रिल्के सचमुच वह परिश्रम सह नहीं सके और बीमार पड़ गये तो उन्हें वहाँ क्लर्क का काम दिया गया है। उसके बहुत दिन बाद पता चला कि उन्हें मिलिट्री की सेवाओं से मुक्ति दे दी गयी है और वह स्विट्ज़रलैण्ड वापस लौट गये हैं। यह भी पता चला कि पेरिस में उनका सारा सामान सैनिकों ने लूट लिया है और घर की एक-एक चीज़ नीलाम कर दी गई है। उनकी चीज़ों के लिए मैंने कई लोगों को पत्र लिखे। मेरे चाचा के मित्र प्रसिद्ध उपन्यासकार रोमारोलाँ ने इसमें विशेष दिलचस्पी ली। फ्रांस में उनके सिर पर इनाम लगा हुआ था लेकिन फिर भी अपनी जान हथेली पर लेकर वह वहाँ गये और कहीं कबाड़ियों के यहाँ से, कहीं किसी के घर से, किसी की दुकान से रिल्के की बहुत-सी चीज़ें प्राप्त कर लाये !

●●● सन् १९२६ की क्रिसमस की शाम को मेरी बहन मेरिया का ख़त आया। उसने लिखा, "सुना है, रिल्के किसी सैनिटोरियम में हैं और सख्त बीमार हैं। मेरा मन बेहद तड़प उठा। मुझे कुछ नहीं मालूम था कि कैसे हैं, कहाँ हैं। बीमारी की बात सुन कर रह-रह कर मेरा मन होता, मैं उनके पास पहुँच जाऊँ और उनके बिस्तर के पास बैठ कर बहुत धीमे कोमल स्वरों में पियानो बजा कर उन्हें शान्ति और आराम पहुँचाऊँ। मेरी ऊँगलियों में कुलबुलाहट होती पर मैं मन मसोस कर रह जाती।

२९ दिसम्बर की रात ! मैं सोई हुई थी। अचानक हड़बड़ा कर उठ बैठी। मुझे लगा, बाहर कोई बड़ी करुण आवाज़ में मेरा नाम लेकर पुकार रहा है। मैं खिड़की की ओर दौड़ी। दोनों दरवाज़े खोल कर बाहर झाँका। सिर्फ़ सर्द हवा ने आकर गालों पर थपेड़े दिये ; बाहर कोई नहीं था। चारों ओर मौत की-सी ख़ामोशी छायी हुई थी। बेहद सर्द हवा के कारण मैं खड़ी-खड़ी काँपने लगी, पर कहीं कोई नहीं दिखा। हार कर मैंने खिड़की बन्द कर दी, और हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, "जिस किसी ने भी इस समय मुझे पुकारा है, मैं उसे आशीष देती हूँ। जो भी कोई हो तुम, मैं यहीं तुम्हारे पास हूँ। ईश्वर तुम्हारी मदद करे।...."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार का
सर्वप्रिय

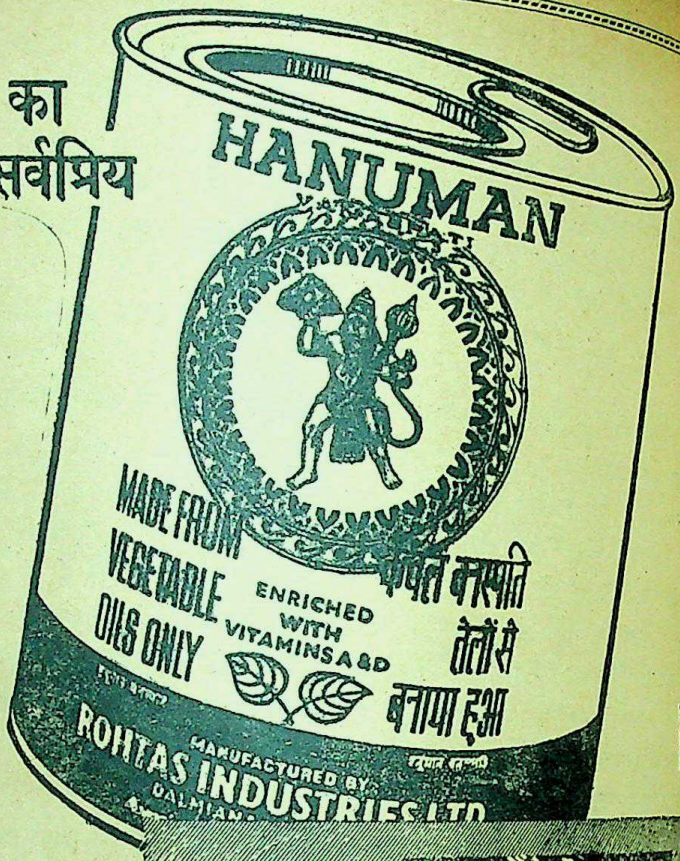

शुद्ध
घी
एवं
वनस्पति

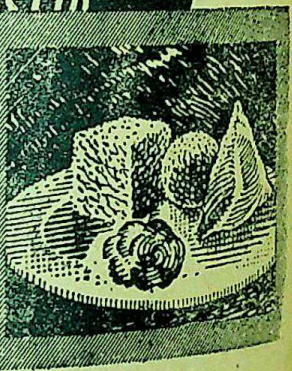

SAHU JAIN INDUSTRIES

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

यदि आप अपने ४ किलोग्राम टिनों में माल्य से एक कूपन पा जाँय तो उसके बदले में एक अपूर्व उपहार ले लें

332

उपहार कूपन का नमूना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर आकर मैं सो रही।

लेकिन.....उन्हीं क्षणों में सैनेटोरियम के डेड पर रिल्के के प्राण-पखेरू उड़ गये....मैंने उन्हें अकेला छोड़ दिया था, ईश्वर ने मुझे इनका दंड दिया कि मैं जीवित थी....

मुझे उनका पत्र मिला—उन्होंने शायद मृत्यु के एक दिन पहले लिखा था। मेरी हिम्मत नहीं हुई उसे खोल कर पढ़ने की। कई दिन बाद रोते-रोते काली और भारी पड़ी हुई पलकों को सप्रयास खोल कर मैंने पढ़ा, उन्होंने लिखा था :

".....मेरे हर संघर्ष और हर विजय में दमदम दमकने वाली बेनवेनुटा, तुम्हें याद है तुमने एक बार लिखा था कि एक गीत पढ़कर तुम बहुत रोया करती थीं। शायद वे पंक्तियाँ थीं—

हेरती रही तुम्हें हर कहीं
जंगल में ज्वार में, खेत-खलिहान में
मिले ही नहीं, रहे होगे कहीं
छिपे मेरे प्राणों के प्राण में!

बेनवेनुटा! आज मेरा मन उन पंक्तियों को याद कर रहा है—सच मैंने तुम्हें, केवल तुम्हें ही अपने-आपमें खोजा है। परमात्मा मुझे एक बहुत ऊँचे पर्वत शिखर पर ले गये और वहाँ उन्होंने मुझे तुम्हें दिखाया! जो कुछ मैंने तुममें पाया है उसे मुझसे कौन छीन सकता है! यहाँ तक कि मत्यु भी उसे नहीं छीन सकती....."

उनका खत पढ़ कर मेरे प्राण भीतर तक चीरते चले गये। बहुत समय बाद जब मन थोड़ा थिराया—तब मैंने उन्हें अंतिम पत्र लिखा.....उनकी मृतात्मा के नाम पत्र!

"रेनर!

मैं तुमसे दूर चली आई थी। आज फिर तुम्हारे क़रीब आना चाहती हूँ। बौराई-सी उन सभी जगहों को रो-रोकर जाकर देख आयी हूँ, जहाँ तुम्हारे साथ रही थी—वह जगहें मेरे लिये तीर्थ बन गई हैं, उन सभी के दर्शन कर आयी हूँ। तुम्हारे घर भी गयी थी। तुम्हारे बाग़ में खिले गुलाब सिर्फ तुम्हारी याद करके महँकते हैं, ...वसंत तुम्हें याद करता है....पतझर तुम्हें याद करता है, उसकी बिखरी पत्तियों की मरमर-चरचर तुम कितने प्यार से सुना करते थे। वहाँ की प्रकृति की हर साँस तुम्हें याद करती है। वहाँ मैं बहुत देर तक तुम्हारे गुलाबों के बीच आँसू बहाती बैठी रही। सारे गुलाब मेरे साथ रोते रहे।

आख़िरी दिन राट्याँ के चर्च में मैं सबसे बड़े पूजास्थल पर गई—तुम्हारी मजार पर! उस मिट्टी को मैंने बार-बार प्रणाम किया जिसके नीचे तुम चिर निद्रा में सो गये हो। घंटों बैठी उन सब बातों को याद करती रही जो मैंने तुमसे सीखी थीं। मेरे व्यक्तित्व का प्रत्येक रेशा तुम्हारा बनाया हुआ है रेनर! अपने अस्तित्व के श्रद्धा-फूल उन्हें चढ़ाती रही।

रेनर! मेरा अन्तिम शब्द भी तुम्हारे लिये वही है जो अपने सबसे पहले ख़त में मैंने तुम्हारे लिये लिखा था। यही एक शब्द तुम्हारी याद के साथ मेरी हर साँस में गूँजता रहता है। और आख़िरी साँस तक तुम्हारे लिये उसी का उच्चारण करती रहूँगी—केवल एक शब्द—'धन्यवाद'!"

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IMPORTERS OF ALL KINDS OF

PAPERS & BOARDS

Gokalchand Jagannath Nahar

28, CHAWRI BAZAR,

DELHI.

Delhi Distributors of

ROHTAS INDUSTRIES LTD.

DALMIANAGAR.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Telegrams : PRINTYPES

Telephones : { Office : 223427
Resid : 220330

A Unique House for Service after Sales

The Standard Type Foundry

CHAWRI BAZAR, DELHI-6.

Leading Manufacturers of Printing Types of all varieties.

Leading Importers and Stockist of :

MACHINERY AND MATERIAL FOR GRAPHIC ARTS-SUCH AS

Usher Walker's Roller Composition, Indian make Roller Composition, Brass Rules English and Indian, Brass and Steel Composing sticks, Steel Cutting & Creasing Rules Indian and English, Hample Quoins and Mechanical Quoins Indian and English, Furniture, Steel Galleys all sizes, Stitching Wire flat and round in all sizes, Lithographic plates and material, Steel chases Indian and English, Hand & Type High Numbering Machines, Process Material Zinc sheets, Copper sheets, and chemicals, Process & Panchromatic plates, Arc Lamp carbons, Wooden Type in Hindi, English and Punjabi, Wooden Furniture and type cases etc.

Proof Press, Hard Press, Lead & Rule Cutter, Slug Cutter, Perforating Machine, Die Stamping Machine, Hand Stapling Machine, Corner Rounding Machine, Board Cutter, Cardboard Cutting, Creasing & Scoring Machine, Calendar Rimming Machine.

MOST RELIABLE 'INDIAN'

Platen Printing Presses, size 8″ x 12″, 10″ x 15″, 12″ x 18″ and 17″ x 22″.

Paper Cutting Machine, size 18″, 20″, 24″, 26″, 32″ and 36″

Box Wire Stitching Machine for parallel and Cross Stitching, Wire Stitching machine in size 3|16″, 5|16″ and 1|2″

All kinds of latest machines for Letterpress, Offset, Lithographic, Book-binding, Box-making and allied trades.

ASK FOR DETAILS AND PRICES

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Office Phone : 221319
Resi. Phone : 447576, 227143
Grams : OJACO

FOR PAPER OF ALL VARIETIES
INDIAN AND IMPORTED
CONTACT

Om Prakash Jitendra Kumar & Co.

ON APPROVED GOVERNMENT LIST.
CHAWRI BAZAR, DELHI-6.

SPECIALISTS IN
ART & OFFSET PAPERS

With best compliments from :

The Delhi Iron Syndicate Private Ltd.
AJMERI GATE, DELHI-6

Branches :
Calcutta, Patna, Varanasi,
Kanpur, Meerut & Malerkotla

Dealers in
All sorts of Iron & Steel materials, Pipes, G. I.
and Black (Tata S. & L. Continental)

STOCKISTS OF :
Asbestos Cement sheets and Cement Pipes and
Contractors.

Phone : 222206 & 222207 Delhi
Gram : SINDICIRON, Delhi.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिंग ट्यूब्स्

जल तथा गैस
वितरण के लिए

कलिंग ट्यूब्स् लिमिटेड

३३, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-१२

कारखाना :
चौदवार, कटक, उड़ीसा

KALPAN.KT.28

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

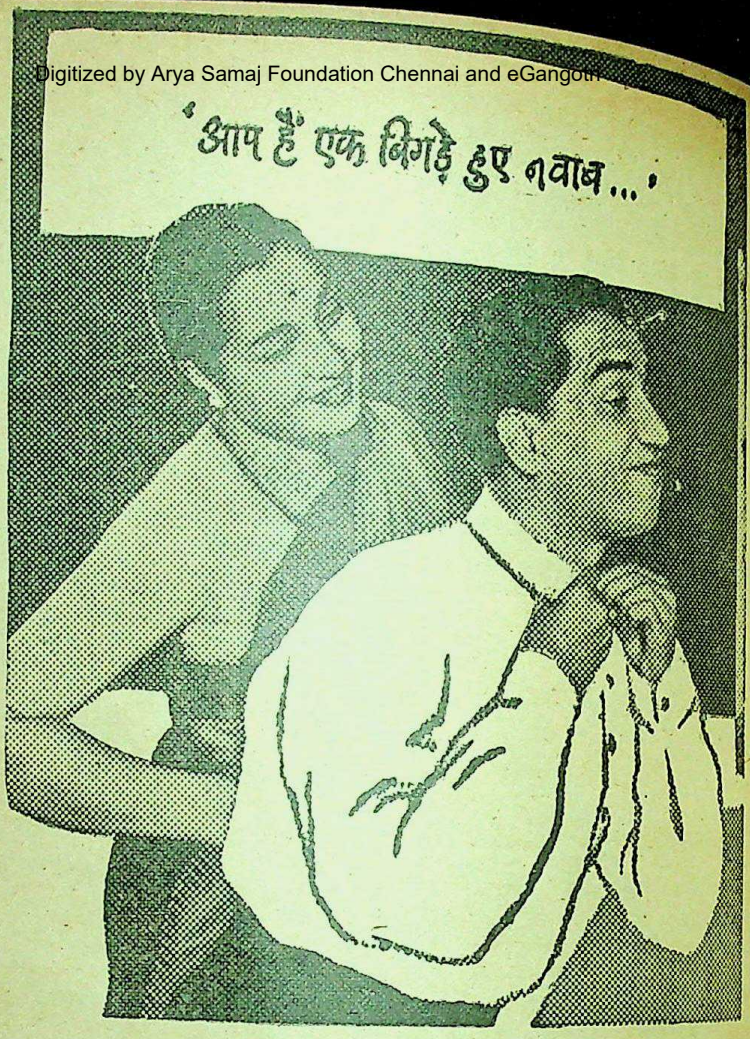

'मेरे पतिदेव एक बिगड़े हुए नवाब से कम नहीं,' डी/८, यूनियन हाउस, माहिम, बम्बई १६ की श्रीमती आर. आर. प्रभु कहती हैं, 'और कपड़ों की धुलाई पर तो इन का माथा मैला होते देर नहीं लगती। लेकिन जब से इन के कपड़े मैं ने सनलाइट से धोने शुरू किये हैं, यह भी ख़ुश हैं और मैं भी। सनलाइट से कपड़े शानदार सफ़ेद और उजले धुलते हैं और इस का ढेरों झाग मैल का कण कण बहा ले जाता है!

गृहिणियाँ जानती हैं कि शुद्ध, मुलायम झागवाले सनलाइट की धुलाई में उन के कपड़ों की भलाई है! आप भी उन से सहमत हो जायेंगी।

सनलाइट

आप के कपड़ों की सर्वोत्तम सुरक्षा के लिए-

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

S. 30-X29 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ीसा सिमेंट लि०

डाकघर : राजगंगपुर
जिला : सुन्दरगढ़
(उड़ीसा राज्य)

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता

डालमिया एजेंसीज़ प्रा० लि०

अब उच्चकोटि के

डालमिया ऊष्मसहों
(REFRACTORIES)

को

आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं

जो आयस (Iron), वज्रायस (Steel), और धातुकार्मिक (Metallurgical) शालाओं (Works), वज्रचूर्ण भट्ठियों (Cement Kilns), मृच्छिल्प (Ceramic) और अन्य उद्योगों के लिए अग्निमृद (Fireclay), संकजा, (Silica), भ्रज्रांगिज (Magnesite), वर्णिज (Chromite), वर्णक भ्रज्रांगिज (Chrome Magnesite) और विसंवाहक (Insulating) की सभी कोटियों में

समस्त मापों (Sizes) व जटिल आकारों (Intricate Shapes) में विभिन्न प्रकारों के समृदों (Mortars) के सहित प्राप्त हो सकते हैं।

Dr. C. Otto & Comp. G. M. B. H.

Bochum—Dahlhausen (W. Germany).

के

सहयोग और मार्गदर्शन में निर्मित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PLEASE CONTACT

FOR

ALL KIND OF

PAPERS

SIDDUMAL & SONS

PAPER MERCHANTS
CHAWRI BAZAR
DELHI.

व्ही० पी० पी० द्वारा मँगाइये।

एग्ज़ीमा औषधि—पुरानी बीमारी को शीघ्र ही दूर करने वाली गुणकारी औषधि। इससे हर प्रकार का दाद साफ हो जाता है। मूल्य : ५ रु० ; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

श्वास-रोग (दमा) की औषधि—नये या पुराने दमा के मरीज़ों के लिए एकमात्र औषधि। मूल्य : ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

बवासीर की औषधि—कष्टदायक व्याधि के लिए उत्कृष्ट इलाज। सूजन, दर्द, ज़खम आदि का एक अकेला उपचार। खाने और लगाने की दोनों औषधियों का मूल्य : मात्र ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

पौष्टिक औषधि—शरीर की गर्मी, कड़की और अशक्तता को दूर कर शक्तिवर्द्धन करने वाली औषधि। निराश रोगी एक बार इसे आज़मा कर देखें। मूल्य : ५ रु०; डाक-व्यय: १ रु० २५ नये पैसे।

नेत्रांजन—आपकी नज़र तेजस्वी बनाता है। मूल्य : ३ रु०; डाक-व्यय : १ रु० २५ नये पैसे।

सफ़ेद दाग़ (श्वेत-कुष्ठ)—सन् १९३६ से प्रयोग में लायी जाने वाली प्रसिद्ध औषधि। भारत सरकार द्वारा रजिस्टर्ड। मूल्य : ५ रु०; डाक-व्यय १ रु० २५ नये पैसे।

वैद्य के० आर० बोरकर, 'आयुर्वेद भवन'

पोस्ट—मंगरूलपीर, जि० अकोला, (महाराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त,
अनुपलब्ध और अप्रकाशित
सामग्री का अनुसंधान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

विशिष्टता

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठा
की साधिका संस्था

संस्थापक : साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

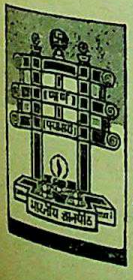

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये प्रकाशन

अंकित होने दो : अजितकुमार

प्रस्तुत कृति की विशेषता है उसका सुनिश्चित संक्रामक स्पन्दन जो न धीरे और वेग पूर्वक आता है न वातावरण में आलोड़न लाकर क्षुब्ध या स्तब्ध ही करता है, बल्कि बिलकुल घास के फूलों-सा न जाने कब और कैसे बहु चुप-से चटक पड़ता है और कोई रौंद उसे भले दे पर आँखों से जी तक पैठ कर ज्ञान-तन्तुओं को छूता ज़रूर है। जीवन के ये सोचते और सुझाते हुए चित्र भीड़ से साधिकार भिन्न हैं; और उन पाठकों के भी उपयोग के हैं जो इन्हें केवल देखना, अर्थात् पढ़ना, चाहेंगे और उनके भी जो पढ़ कर कुछ सोचना भी चाहेंगे। मूल्य : ४.००

खुला आकाश मेरे पंख : शान्ति मेहरोत्रा

एक ऐसी कृति जो आकृति से एक बार को यदि न लुभाये पर किसी प्रेरणा पर जिसे देखें तो देखते जायें और तृप्ति और सुख की पुलक अनुभव किये बिना न रहें। अतिरिक्त विशेषता यह कि विषयवस्तु, दृष्टि एवं अभिव्यक्ति तीनों को देखते इसकी कल्पना और सृष्टि एक नारी द्वारा ही सम्भव थी जो माँ, भार्या और भगिनी भी हो और तीव्र संवेदनशील भी। पुस्तक को पढ़ कर किसी भी सुसंस्कृत पाठक को निश्चय लगेगा कि उसने इन रचनाओं में अपना ही परिवेश देखा और अपने को पहचाना भी। मूल्य : ४.५०

प्यार के बन्धन : रावी

सत्रह पत्र-कथाएँ जो सामाजिक-पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत प्रेम, मर्यादा एवं मानवीय अनुराग की माँगों और समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। अनेक प्रश्नों को इन कथाओं में स्वर मिला है जो आज के तरुण-जाग्रत मनों में घुमड़ते हैं, और उन प्रश्नों के यथासम्भव उचित समाधान भी सुझाये गये हैं। तरुण वर्ग के लिए पुस्तक विशेष रूप से उपादेय है। मूल्य : ३.२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आँगन के पार द्वार : अज्ञेय

अज्ञेय की अन्तःसलिला का सबसे स्फीत और श्रद्धापूत प्रवाह। अपने इस संग्रह तक आते-आते अज्ञेय का काव्य निखार और गहराई के ऐसे उत्कर्ष पर पहुँचा है जिसमें भारतीय चिन्तन-परम्परा की विश्व से संयोजन की क्षमता साकार हो उठती है। इस दृष्टि से यह संग्रह हिन्दी काव्य की अद्वितीय उपलब्धि है। मूल्य ३.००

आँगन का पंछी और बनजारा मन : विद्यानिवास मिश्र

हिन्दी और सम्भवतः सभी भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य में अनूठे और बेजोड़ ललित निबन्ध। विषय, दृष्टि-भाव, शैली, भंगिमा, और स्वर : सभी का इतना सहज और प्रौढ़ समन्वय कहीं और नहीं मिलता। इनमें राग-रंग और तड़क-भड़क के लिए स्थान नहीं है, यहाँ पार्थिव परम्परा ने आकार ग्रहण किया है। एक ओर सत्य की निरन्तरता और गतिशीलता की प्रतिष्ठापना की गयी है तो दूसरी ओर यहाँ भ्रमरानन्दी मन की उड़ान भी आयी है। यही विशेष कारण है कि पुस्तक युग और जीवन के लिए अतिरिक्त उपयोगी और आवश्यक बन गयी है। मूल्य ३.००

फिर बैतलवा डाल पर : विवेकी राय

हिन्दी में ऐसी कृतियाँ कम ही हैं जो ठेठ आज के गाँवों और वहाँ रहते-जीते असंख्य प्राणियों के जीवन और उस जीवन की क्रिया का एक्स-रे किया हुआ रूप उकेरती हों। प्रस्तुत पुस्तक की रचनाओं की यही विशेषता है। इसीलिए अच्छा हो यदि आवश्यक समझ कर इन्हें एक बार वे पढ़ें जो शहरी जीवन में जनमे और रहते आये हैं और वे भी पढ़ें जिन पर जन-जीवन को रूप और दिशा देने का दायित्व है। मूल्य ३.५०

शाइरी के नये दौर—५ : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

जमील मज़हरी, रविश सिद्दीक़ी, अफ़सर मेरठी, निहाल सेवहारवी का जीवन-परिचय सहित चुना-चुना कलाम एवं विवेचना। मूल्य : ३.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

अपने-अपने अजनबी : अज्ञेय

केवल असाधारण नहीं, भारतीय साहित्यों में अपने ढंग का अद्वितीय उप-न्यास। मृत्यु से साक्षात्कार को विषय बनाकर जीवन और नियति का सरल मार्मिक विवेचन। मृत्यु विषयक पूर्व और पश्चिम की दृष्टियों की टकराहट, दोनों के मिलन द्वारा मानव-जीवन के एक नये आयाम का उन्मेष। मूल्य ३.००

नये रंग नये ढंग : लक्ष्मीचन्द्र जैन

हिन्दी गद्य-शैली की सर्वथा नयी रचना जिसके हर पृष्ठ पर युग की छाप और प्रतिभा की चमक अंकित है। सम्भव नहीं कि पुस्तक हाथ में लें और पढ़ कर समाप्त किये बिना रख दें। मूल्य २.००

पलासी का युद्ध : तपनमोहन चट्टोपाध्याय

देश के इतिहास को एक मोड़ देने वाले इस युद्ध और उसकी पृष्ठभूमि का सर्वप्रथम प्रामाणिक चित्रण, जो तथ्यात्मकता के बल पर इसे इतिहास-पुस्तक बनाता है और कथा-रस के कारण उपन्यास। महत्त्वपूर्ण होने से मूल बंगला पुस्तक का अँगरेज़ी अनुवाद भी हुआ। मूल्य ३.५०

हरी घाटी : रघुवंश

हिन्दी गद्य-लेखन में एक अभिनव-प्रयोग : यात्रा-डायरी-संस्मरण तीनों के तत्वों का सुखद सामंजस्य। पुस्तक में जहाँ एक ओर गहरे चिन्तन से अभिभूत क्षणों का अंकन किया गया है वहीं सामान्य दैनन्दिन घटनाएं भी मानवीय संगति में पहचानी गयी हैं। इसी से इन अकाल्पनिक यात्रा-संस्मरणों में जितना ऊपर-ऊपर दिखता है उससे कहीं अधिक भीतर मिलेगा। मूल्य ४.५०

देशान्तर : धर्मवीर भारती

इक्कीस पाश्चात्य देशों की एक सौ इकसठ कविताओं की हिन्दी छायाएं। मूल कविताएँ उन कवियों की हैं जो विश्व में 'आधुनिक काव्य-बोध' के निर्माता कहे जायेंगे और जो अपनी-अपनी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। हिन्दी में अपने प्रकार की सर्वप्रथम कृति। मूल्य १२.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

वेणु लो गूंजे धरा : माखनलाल चतुर्वेदी

कवि की नवीनतम कविताओं का संग्रह जो अनुभूति की उदात्तता, अभिव्यक्ति की ताज़गी, व्यापक और समर्थ जीवन-चेतना, वैष्णव आस्था और कवि की अनूठी कलात्मकता का सही परिचय देता है। मूल्य ३.००

नामए हरम : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ख्यातनामा समसामयिक १०४ महिलाओं की शाइरी का हिन्दी में सर्वप्रथम संग्रह जिसमें दीनो-दुनिया के अन्दाज़ ही नहीं इश्क़ो-वहदत के नशे का सुरूर भी भरपूर लहरा आया है। मूल्य ४.००

ग़ालिब : रामनाथ 'सुमन'

जितने लोकप्रिय उतने ही अज्ञात इस महाकवि की रहस्यों में छिपी ऊँचाइयों को लेखक ने अपनी परख-प्रतिभा से इस पुस्तक में पूरी तौर पर अफ़शाँ कर दिया है। कलाम-संग्रह तथा विवेचना आदि की दृष्टि से पुस्तक हिन्दी में बेजोड़ है। मूल्य ८.००

वाणी : सुमित्रानन्दन पन्त

पन्त जी की नवीनतम हृदय-स्पर्शी कविताओं का संग्रह। संग्रह की एक लम्बी कविता कवि के मार्मिक संस्मरण तथा जीवन-दर्शन सम्बन्धी होने के कारण सहज ही उनकी श्रेष्ठतम रचनाओं में से है। पन्त जी की काव्य-प्रेरणाओं को समझने और उनकी कविताओं की रस-उपलब्धि के लिए अनिवार्य। मूल्य ४.००

सागर की लहरों पर : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

यात्रा-साहित्य में एक नया मान, साहित्यकार और चिन्तक की दृष्टि से विदेशों को पाठकों के ज्ञान की परिधि में लाने का प्रथम सफल प्रयास, उपन्यास जैसी रोचक कृति। मूल्य ४.००

नाटक बहुरंगी : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

वर्तमान हिन्दी नाट्य-लेखन के प्रसिद्ध 'रंगधर्मी' नाटककार के चुने-चुने नवीनतम एकांकियों का तीसरा संग्रह जो निश्चय ही हिन्दी रंगमंच क्षेत्र की उपलब्धि का एक उज्ज्वलतम उदाहरण है। मूल्य ४.५०

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

समाजवाद : डॉ० सम्पूर्णानन्द

हिन्दी में इस विषय की सर्वप्रथम एवं एकमात्र आधिकारिक कृति जो विशिष्ट पुरस्कारों द्वारा सम्मानित हुई और जो देश में समाजवाद की स्वाभाविक प्रगति का मानदण्ड जैसी है। नया पाँचवाँ संस्करण। मूल्य ५.००

एक बूँद सहसा उछली : अज्ञेय

हिन्दी में यात्रा-साहित्य अधिक नहीं; पर यह पुस्तक भारतीय भाषाओं के यात्रा-साहित्य में भी अद्वितीय है। लेखक यहाँ यूरोप के विभिन्न देशों की ही यात्रा नहीं करता, जैसे काल में भी करता है। समस्त दृश्य को वह देखता-दिखाता है, पर साथ ही चेतना से साक्षात्कार भी करता है। परिणाम यह कि प्रत्येक देश पाठक के आगे प्राणवती प्रतिमा-सा आ खड़ा होता है, और फिर उसका स्वर ही नहीं, हृदय की गति तक अजानी नहीं रहती। मूल्य ७.००

हिन्दी नव-लेखन : रामस्वरूप चतुर्वेदी

प्रस्तुत कृति मात्र समसामयिक लेखन का मूल्यांकन नहीं, वरन् उसकी रचनात्मक प्रक्रिया के समवर्त्ती रह कर उसके मूल्यों, प्रतिमानों के आकलन तथा भाव-बोध के स्तरों को उद्घाटित करने का सशक्त प्रयत्न है। इसी दृष्टि में लेखक के विवेचन का महत्त्व है, और यह दृष्टि अपने आप में नयी है। मूल्य ४.००

रूपाम्बरा : सम्पादक – अज्ञेय

खड़ी-बोली के शताधिक कवियों की प्रकृति विषयक उत्कृष्ट रचनाओं का अपूर्व संकलन जो हिन्दी कवि मानस के इस विशिष्ट अंग के क्रम-विकास का सफल और सम्पूर्ण परिचय देता है। हिन्दी काव्य की वस्तुतः स्वर्ण-मंजूषा। मूल्य १२.००

कनुप्रिया : डॉ० धर्मवीर भारती

प्रस्तुत कृति का आविर्भाव साहित्य-लोक की एक विशिष्ट घटना है। इस में जहाँ बहुमुखी प्रणय के विविध आयाम प्राणों की धरा में से प्रस्फुटित हो कर प्रकृति के प्रतीकों में सार्थक तादात्म्य प्राप्त करते हैं, वहीं राधा के प्रणय को एक सर्वथा नयी दृष्टि और नया परिप्रेक्ष्य भी देते हैं। मूल्य ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आत्मनेपद : अज्ञेय

वैचारिक दृष्टिकोण से समकालीन साहित्यकार की स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओं पर गम्भीर विचार-चिन्तन। स्वयं लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने के लिए अनिवार्य और एकमात्र पुस्तक। मूल्य ४.००

शतरंज के मोहरे : अमृतलाल नागर

उपन्यास में एक ऐतिहासिक उपन्यास जो सवा-डेढ़ सौ वर्ष पहले की अवध की नवाबी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीतियों का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करता है। चित्र इतने व्यापक और सजीव हैं कि आप विवश-से उपन्यास की रफ्तार में बहते चले जायेंगे, और पात्र ऐसे सच्चे और जीवन्त कि अनेक की याद आप को बार-बार हो आया करेगी। मूल्य ६.००

कर्मनाशा की हार : डॉ० शिवप्रसाद सिंह

सोलह कहानियाँ जिनमें से अनेक को पढ़ते बरबस लगे कि यह तो अचानक समाज के ऐसे अंगों और जीवन के ऐसे पहलुओं से साक्षात्कार हो गया जो अभी तक भूले-बिसरे ही रहते आये और जिनके अभाव में साहित्य की चित्रशाला के कितने फ्रेम सूने ही टँगे रह जाते! सभी कहानियाँ ऐसी सच्ची और सहज कि जाने वास्तव ही आँखों आगे टेलवाइज़ हो आये। मूल्य : ३.००

वीणापाणि के कम्पाउण्ड में : केशवचन्द्र वर्मा

ज़िन्दगी के हर पहलू को छूती-छेड़ती ये कविताएँ, लेखक के शब्दों में, "अच्छे आदमी को अच्छी लगेंगी और बुरे को बुरी।" बहरहाल नयी खिड़कियों से नये तमाशे दिखने की सम्भावना यहाँ अपरिमित है। मूल्य ३.००

रेडियोवार्ता शिल्प : सिद्धनाथ कुमार

रेडियो पर वार्ता प्रसारित करने वालों और प्रसारण के सुयोग को सफलता से सम्पन्न करने वालों के काम की एकमात्र कृति। मूल्य २.००

काठ की घण्टियाँ : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

अज्ञेय द्वारा सम्पादित इस एक पुस्तक में एक समूचा उपन्यास, बीस कहानियाँ और इकहत्तर कविताएँ संकलित हैं। इसके माध्यम से न केवल लेखक की बहुमुखी एवं प्राणवती प्रतिभा का परिचय मिल जाता है बल्कि पुस्तक के आस्था-स्वरों से जीवन में विश्वास भी जग उठता है। मूल्य ७.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ प्रकाशन

सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय : अर्थात् नये हिन्दी गद्य-लेखकों में जिन्हें वास्तव में 'मॉडर्न' कहा जा सकता है उनमें अन्यतम। इसी से प्रस्तुत कृति का मूल्य और महत्त्व समझा जा सकता है। कृति में दस कहानियाँ हैं, अस्सी कविताएँ और ग्यारह लेख जो विषयवस्तु एवं शिल्प में अन्यतम हैं। मूल्य ४.००

अंगद का पाँव : श्रीलाल शुक्ल

शिष्ट और उच्चस्तरीय किन्तु पैने और मीठे-से तिलमिला देने वाले व्यंग्यात्मक निबन्ध जो सभी कहीं सराहे गये और जो मात्र मनोरंजन नहीं करते बल्कि कुछ देते और माँगते भी हैं। मूल्य २.५०

तीसरा सप्तक : सम्पादक – अज्ञेय

'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' की परम्परा में। गत पन्द्रह वर्षों की हिन्दी कविता की प्रगति जानने के लिए अनिवार्य। मूल्य ५.००

सात गीत वर्ष : डॉ० धर्मवीर भारती

'ठण्डा लोहा' और 'अन्धा युग' के बाद के सात वर्षों की चुनी-चुनी ५१ कविताओं का बहु-प्रतीक्षित संकलन, जिसमें प्रस्तावना के रूप में कवि की रचना-प्रक्रिया पर एक काव्यात्मक गद्य-खण्ड भी अतिरिक्त आकर्षण बन सम्मिलित है। मूल्य ३.५०

शह और मात : राजेन्द्र यादव

प्रतिभा-धनी लेखक की नयी उपन्यास-कृति जिसमें स्त्री के माध्यम से पुरुष-मन को समझने का सफल प्रयास किया गया है। मूल्य : ४.००

आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य : केशवचन्द्र वर्मा

हिन्दी में शिष्ट हास्य-व्यंग्य का सर्वथा अभाव न पहले था न आज है, इसका प्रमाण ही यह कृति है। मूल्य ४.००

पत्थर का लैम्प-पोस्ट : शरद देवड़ा

लेखक की बारह बहुविध कथात्मक गद्य-रचनाओं, बारह राजस्थानी विरह-चित्रों, और बारह सबरंगी कविताओं का प्रतिनिधि संकलन। कृति की विशेषता रचनाओं की मदीली गन्ध-सी ही नहीं, उनका भाव-धन भी है जो सरलमना पाठक को प्रीतिकर लगेगा। मूल्य : ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

अन्य श्रेष्ठ प्रकाशन

कहानियाँ–उपन्यास

गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
आकाश के तारे धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२.००
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
जय दोल	अज्ञेय	३.००
मेरे कथागुरु का कहना है : भाग १–२	रावी	६.००
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	३.००
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिव प्रसाद सिंह	३.००
रक्तराग	देवेशदास आई० सी० एस०	३.००
एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
सूने अँगन रस बरसे	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	५.००
ग्यारह सपनों का देश	सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
गुनाहों का देवता	डॉ. धर्मवीर भारती	३.००

इतिहास–राजनीति

हिंदी-जैन-साहित्य-परिशीलन (भाग १-२)	नेमिचन्द्र शास्त्री	५.००
एशिया की राजनीति	परदेशी	६.००

एकांकी–नाटक

कहानी कैसे बनी	कर्तार सिंह दुग्गल	२.५०
रेडियो नाटच शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२.५०
चेखव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३.५०
भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०
सूखा सरोवर	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	२.००
कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ. भ. श. उपाध्याय	३.५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी आदि

दीप जले : शंख बजे	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	३.००
द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथ सिंह विनोद	२.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित रचना, सांस्कृतिक निबन्ध आदि

ज़िन्दगी मुस्करायी	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	
ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	४.००
हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	सम्पूर्णानन्द	१.००
बाजे पायलिया के घुँघरू	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	१.००
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४.००
शरत् के नारी पात्र	रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.००
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	४.५०
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	२.५०
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	३.००
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
ठूँठा आम	डॉ भगवत शरण उपाध्याय	२.५०
सास्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवत शरण उपाध्याय	२.००
काग़ज़ की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००

दार्शनिक, आध्यात्मिक

भारतीय विचार धारा	मधुकर एम० ए०	२.५०
वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	२.००
भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००

भाषा विज्ञान

संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५.००

संगीत-प्रसाधन

ध्वनि और संगीत	ललित किशोर सिंह	४.००
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०

यात्रा-विवरण

पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००

कविताएँ

सौवण	सुमित्रानन्दन पंत	२.५०
लेखनी बेला	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
शाइरी के नये मोड़ (भाग १-२)	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	६.००
शाइरी के नये दौर (भाग १-५)	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	१५.००

सूक्तियाँ

कालिदास के सुभाषित	डॉ. भ. श. उपाध्याय	५.००
ज्ञानगंगा (भाग १–२)	नारायण प्रसाद जैन	१२.००
शरत की सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
सन्द विनोद	नारायण प्रसाद जैन	२.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उर्दू शाइरी

शेरो शाइरी	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
शेरो सुख़न (भाग १–५)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०.००

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	६.००
मिलन-यामिनी	बच्चन	४.००
धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर	३.००

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३.००
पहला कहानीकार	रावी	२.५०
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६.००

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्तिसागर	६.००
खोज की पगडंडियाँ	मुनि कान्तिसागर	४.००
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.००
कालिदास का भारत (भाग १–२)	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८.००

एकांकी - नाटक

जनम क़ैद	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३.००
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
और खाई बढ़ती गयी	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०

संस्मरण - रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक प्रकाशन

१	जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक)	३.००
२	कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्दके ग्रंथोंका संक्षिप्त सार)	२.००
३	धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित)	३.००
४	आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन)	३.७५
५	हिन्दी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	२.८८
६	महाबन्ध — भाग १–७ (कर्म सिद्धान्त का महान् ग्रन्थ)	७८.००
७	सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित)	१२.००
८	तत्त्वार्थ राजवार्तिक—भाग १, २ (संशोधित और हिन्दी सार सहित)	२४.००
९	तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित)	१६.००
१०	समय-सार — अँग्रेजी (आध्यात्मिक ग्रन्थ)	८.००
११	मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक)	८.००
१२	न्यायविनिश्चय विवरण — भाग १, २ (जन दर्शन)	३०.००
१३	आदिपुराण — भाग १, २ (भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित)	१०.००
१४	उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित)	१०.००
१५	वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित)	५.००
१६	जिनसहस्र नाम (भगवान्के १००८नामोंका अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित)	४.००
१७	केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ)	४.००
१८	करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तरेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रन्थ	०.७५
१९	नाममाला सभाष्य (कोश)	३.५०
२०	सभाष्य रत्नमंजूषा (छन्दशास्त्र)	२.००
२१	कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची	१३.००
२२	पुराणसार संग्रह — भाग १-२ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र)	४.००
२३	जातकट्ठकथा (बौद्धकथा-साहित्य)	९.००
२४	थिरुकुरल (अंग्रेजी प्रस्तावना सहित तमिल भाषा का पंचम वेद)	५.००
२५	व्रततिथि-निर्णय (विधि-विधानों एवं तिथि-निर्णय का विवेचन)	३.००
२६	जैनेन्द्रमहावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ)	१५.००
२७	मंगल-मंत्र णमोकार : एक अनुचिन्तन	२.००
२८	पद्मपुराण (भाग १, २, ३)	३०.००
२९	जीवन्धर चम्पू (हिन्दी टीका सहित)	८.००
३०	जैन धर्मामृत	३.००

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

तार :
साहू जैन, बम्बई

टेलीफोन :
२५१२१८-१९

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

प्रसिद्ध 'हॉर्स शू' छाप हेवी केमिकल्स
के उत्पादन में अग्रसर निर्माता

- सोडा ऐश
- सोडा बाइकार्ब
- कैल्शियम क्लोराइड
- नमक और

हाइ रेयॅन ग्रेड
इलेक्ट्रोलिटिक कॉस्टिक सोडा
(९८-९९ प्रतिशत शुद्धता)

कॉस्टिक सोडा यूनिट
साहूपुरम
पोस्ट–आरूमुगनेरी
तिरुनुवेली डिस्ट्रिक्ट
मद्रास राज्य

तार :
केमिकल्स
आरूमुगनेरी

टेलीफोन :
कायलपटनम : ३०

मैनेजिंग एजेन्ट्स :
साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लिमिटेड
१५ ए, हर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price Annual Rs. 10|- per copy Re. 1|- for abroad postage extra 18 nP.

GYANODAY, July, 19

बड़े काम के उपयुक्त

ब्रिटानिया — डी. पी. ई. 'जावर' इंगलैण्ड के डावसन, पाइन ऐण्ड इलियट लिमिटेड के सहयोग से भारत में पहले पहल तैयार की गई है जिसका निर्माण कम खर्च, अधिक दक्षता तथा मेन्टेनेन्स की सहूलियत पर विशेष ध्यान रखकर किया गया है।

यह मशीन एक सरल लगातार चलनेवाली मोटर से चलती है जिसमें चाल को कम या अधिक करने के लिये तीन तुरन्त बदलने लायक पुलियाँ लगी हैं। चलाने की जगह एक ही लिवर है जिससे स्टार्टिंग, इंचिंग और ब्रेकिंग के काम होते हैं। कागज की डेलीवरी चेन ग्रिपर से होती है जिससे छपा हुआ पहलू काम के समय अछूता रहता है।

नई लेटरप्रेस प्रिंटिंग मशीन

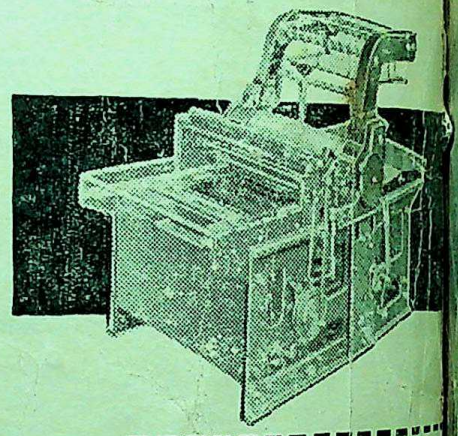

स्पेसीफिकेशन

कागज की साइजे

स्टैण्डर्ड : २०"×३०" (५०८ मिमि.×७६२ मिमि.)

अधिक : २०"×३३" (५०८ मिमि.×८३८ मिमि.)

कम : १०"×१५" (२५४ मिमि.×३८१ मिमि.)

टाइप-बेड वीयरों के बीच की चौड़ाई : ३४ १/२" (८७६ मिमि.)

फार्म बारों के बीच की दूरी : २६" (६६० मिमि.)

कुल लम्बाई : ७'११" (२४१३ मिमि.)

कुल चौड़ाई : ५'५" (१६५१ मिमि.)

कुल ऊँचाई : ५'८" (१७२७ मिमि.)

दि ब्रिटानिया-डी० पी० ई०

जाबर

दि ब्रिटानिया इंजिनीयरिंग कम्पनी लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्टस : मैकलाउड ऐण्ड कं० लि०, ३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

सोल सेलिंग एजेन्टस : इण्डो यूरोपियन मशीनरी कं० प्राइवेट लि०

सर पी. एम. रोड, बम्बई ५, बैंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता चाँदनी चौक, दिल्ली ६, मारकट रोड, मद्रास

PSBE-13A

Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. C. 4123

Published by Shri Munishwarlal for Bhartiya Jnanpith Calcutta from 18-A, Brabo[illegible] Road, Calcutta-1 and Printed by him at Binani Printers Private Ltd., 38, Strand Road, Calcutta-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकलियॅड एण्ड कंपनी लिमिटेड

मैकलियॅड हाउस,

३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

मैनेजिंग एजेन्ट्स, सेक्रेटरी और कोषाध्यक्ष

जूट मिल्स

- अलेकजेण्डर जूट मिल्स लि०
- एलायन्स जूट मिल्स कं० लि०
- नेल्लीमारला जूट मिल्स लि०
- चितावलसाह जूट मिल्स कं० लि०
- ईस्टर्न मैन्यूफैक्चरिंग कं० लि०
- एम्पायर जूट मिल्स कं० लि०
- केलविन जूट कं० लि०
- प्रेसिडेन्सी जूट मिल्स कं० लि०
- वेवरली जूट मिल्स लि०

चाय के बगीचे

- अमलुकी टी कं० लि०
- बागमारी टी कं० लि०
- भतकावा टी कं० लि०
- बोरमाह जान टी कं०(१९३६)लि०
- डिब्रूगढ़ कं० लि०
- देजू वेली कं० लि०
- मार्गरेट्स होप टी कं० लि०
- राजभात टी कं० लि०
- रानीचेरा टी कं० लि०
- रूपचेरा टी कं० लि०
- सुंगमा टी कं० लि०
- तेलोईजान टी कं० लि०
- तिंगामीरा टी सीड कं० लि०
- तिर्रीहन्ना कं० लि०
- तीयरून टी कं० लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17 AUG 1962
वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

अनुक्रम

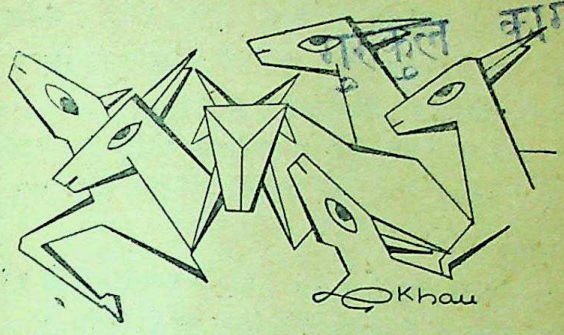

अगस्त, १९६२

• कविताएँ

१. इस धरती ने उगाया जिसे : अहमद सलीम—अख्तर सलीम ७
२. वह एक नीला समुद्र था : डॉ० शम्भुनाथ सिंह ४२
३. जो मिल नहीं रहा है : शकुन्त माथुर ५६
४. मोनोलिज़ा की याद में : सूर्यभानु गुप्त ६८
५. सुरभि के दो चरण : त्रिभुवन चतुर्वेदी ८४

• कहानियाँ

१. जनवासे वाला कमरा : कन्हैयालाल नन्दन १७
२. भगवान कार्तिकेय का प्रेम : नि. छ. जमीदार ४८
३. घिरती साँझ की उदास छाया : हृदयेश ५७
४. मैं सोच रहा हूँ : अशोक चोपड़ा ७०
५. मनोविज्ञान का मनहूस पाठ : के. सरस्वती ७९

• एकांकी

१. बुझते दिये और टूटते तारे : डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ३१

• उपन्यास-अध्याय

१. 'एक इंच मुस्कान' : मैंने कैसे लिखा ? : राजेन्द्र यादव २१

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली, पंजाब, जम्मू-काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मद्रास, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों तथा स्वतंत्र नेपाल के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● लेख

१. दूषित अन्धकार का मसीहा—विलियम फॉकनर : अरुण चोपड़ा ३
२. रूसी साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि : संतोष कुमार जैन ४३
३. सौन्दर्य-शास्त्र का एक नया क्षितिज : फ़िल्म : हरबर्ट रीड ५१
४. कोलाहल : रमेशचन्द्र शाह ६१
५. राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं का संग्रहालय : रामनारायण उपाध्याय ६५
६. आगरा घराने की गायकी : विमल बोस ७५

● स्थायी स्तम्भ

१. गोरी नज़रों में हम : डॉ० प्रभाकर माचवे १२
२. नेपथ्य में (जल पंखिनी): मुक्ता राजे ८५
३. मेरे रेखांकन : विभिन्न पाठक-पाठिकाओं द्वारा ९३
४. सागर पार की हलचलें : शरद देवड़ा ९७
५. साहित्यार्चन : पुस्तक समीक्षा ११३
६. सृष्टि और दृष्टि : पत्र-प्रतिक्रिया १२१

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन : शरद देवड़ा

संचालक
भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

●

कार्यालय
१८ ए, बेबोर्न रोड, कलकत्ता–१

टेलिफ़ोन
२२–६०३९

●

एकमात्र वितरक
बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लि०, बम्बई–१

●

सितम्बर अंक के विशिष्ट आकर्षण

- डॉ० जगदीश गुप्त और इन्दु जैन की कविताएँ
- लक्ष्मीकान्त वर्मा और विमला राजेन्द्र की कहानियाँ
- विलियम बटलर यीट्स का 'नरक का एक स्वप्न' एकांकी
- मन्नू भण्डारी का 'एक इंच मुस्कान : मैंने कैसे लिखा' ?'—लेख
- डॉ० प्रभाकर माचवे, मुक्ता राजे और शरद देवड़ा द्वारा प्रस्तुत स्तम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

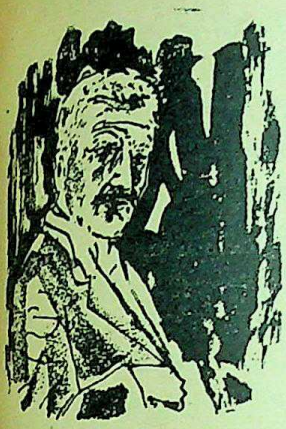

अरुण चोपड़ा

आधुनिक अमरीकन कथा-साहित्य का एक ऐसा व्यक्तित्व जिसका जीवन और कृतित्व सदा दो अतिवादी सीमाओं के बीच वाद-विवाद का केन्द्र रहा, उसी विश्व-प्रसिद्ध कथाकार और नोबेल पुरस्कार-विजेता विलियम फॉकनर का ६ जुलाई १९६२ को देहान्त हो गया। जीवन को उसकी समस्त कटुता के साथ भोगनेवाले इस निराले कथाकार के प्रति ज्ञानोदय-परिवार की श्रद्धांजलि सहित।

अंधे और स्याह दिन। ठंडी और विकृत रातें। भटके हुए लोग—और उनकी बेमतलब भटकन। और उसी भटकन में एक और भटका हुआ आदमी फॉकनर। सात जुलाई। सुबह चाय के पहले प्याले के साथ अखबार उठाया। एक कोने में छोटी-सी खबर पढ़कर ठिठक गया—'फॉकनर डेड'! फॉकनर का बहुत समय से भक्त रहा हूँ ....चाय कुछ अधिक कड़वी लगी। 'योक्ना-पटावा काऊँटी' की काल्पनिक और अस्तित्वहीन दुनिया आँखों के आगे घूम गई। होमर का 'ट्राए', शेक्सपीयर का 'टेम्पेस्ट' और फॉकनर की 'योक्ना पटावा काऊँटी' जैसी दुनिया काल्पनिक होते हुए भी वर्तमान-सी ही सच्ची और वास्तविक प्रतीत होती है। कहीं पढ़ा था—'द आर्ट ऑव लाईंग ट्रूथफ़ुली इज फ़िक्शन'। फॉकनर का उदाहरण समक्ष रखते हुए शायद यह उक्ति अक्षरशः सही है। केवल उसी की मँजी हुई कलम ही निरी कल्पना के सहारे ऐसे संसार का सृजन कर सकती थी जिसके सम्मुख वास्तविकता भी मिथ्या लगने लगे। उत्पात, अपराध, हत्या, बलात्कार, ह्विस्की और प्रोटेस्टेण्ट पुराख्यान—अमरीका के दक्षिणी भाग के जीवन का यह चितेरा सब जानता-समझता था। हर कमज़ोरी को पहचानता था। हर आदत, हर स्वभाव को समझताथा। "सेन्कयूरी', 'सारटोरिस' 'साउण्ड एण्ड फ़ुरी' या 'हैमलेट' कोई भी उपन्यास

दूषित अन्धकार का मसीहा
विलियम फॉकनर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले लीजिये—एक विद्रूप, एक विकृति मस्तिष्क पर पुत जायगी। उसके शापग्रस्त पात्र एक अनवरत संघर्ष में डूबे हुए, अपनी ही दुर्बलताओं के कीचड़ में गर्दन तक धँसे दिखाई देंगे! मौत और ज़िन्दगी के बीच यह उल्टे लटके हुए लोग एक निरर्थक और निष्फल घृणा को भोगते हैं। इतनी अधिक हिंसा से उबकाई आने लगती है। ....डरकर इन उपन्यासों को बीच ही में छोड़ देना पड़ता है। किंतु टेम्पल ड्रेक (सेन्कच्यूरी), ड्रूसिला सारटोरिस (सारटोरिस), लूसियस (द रीवियर्स), फ्लेम स्नोप्स (हैमलेट) और उनके प्रेतग्रस्त क्लेश में लौट-लौट गया हूँ—शायद सिर्फ़ भटकने के लिए ही। एक उद्विग्नता से गिर घूम-घूम गया है। अनैतिक, मूल्यविहीन चरित्र-रिक्त समाज की खोखली चेतना का भंडा फोड़कर फॉकनर तो अलग हो गया है—अब मैं हूँ और मेरा स्याह मूड। जूझता हूँ, भटकता हूँ उसी फॉकनर की बीमार दुनिया में, बीमार अंधेरे में।

पाँच फीट पाँच इंच का छोटा-सा आदमी। देखने में नदी तट के जुआरी-सा। बेहद पीने वाला। बातचीत में दक्षिण अमरीका के विनीत खेतिहर-सा.... वही अशुद्ध उच्चारण, वही टूटी हुई भाषा, कौन कह सकता था, यह सीधा-सादा आदमी अमरीका के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में है? कौन सोच सकता था कि यह अहंकार-हीन लेखक पाठक को ऐसी घुटन में ला पटकेगा जहाँ उसके हर विश्वास की साँस टूट जाय, हर मान्यता का दम घुट जाय। प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासकार मिकी स्पिलैन ने एक बार फॉकनर के विषय में कहा था—"वह यह सब 'मार्बिड' चीज़ें ही क्यों लिखता है?" बहुत-से आलोचक फॉकनर की कड़ुवाहट को पचा नहीं सके। वे उसके वीभत्स दुःख को केवल एक निजी शोक की अतिशयोक्ति ही समझते हैं। उसकी अपरिभाष्य, अव्याख्य भटकन को केवल एक 'मैनरिज्म' की संज्ञा देते हैं। फॉकनर की एक सर्वमान्य विशेषता है कि कथानक का सारा 'एक्शन' एक धुंधलके में धीमे-धीमे घटता है। कई बार उपन्यास के धुंआसे वातावरण में पाठक को लगता है कि अब आगे बढ़ना असंभव है, इस विषाक्त जलवायु में उसका दम ही घुट जायेगा!

दूर की एक बहिन सैली ने एक बार फॉकनर से पूछा था, "क्यों बिल, क्या यह सब लिखते समय तुम पीते रहते हो?" "हमेशा तो नहीं", बस इतनी ही सफ़ाई दी बिल ने। फॉकनर के परिवार के सदस्य उसके अत्यधिक मद्यपान से चिंतित तो रहते ही थे। विलियम को जब नोबल-पुरस्कार लेने स्टॉकहोम जाना था, तो बहुत दिन पहले से ही वह अंधाधुंध पी रहा था। किसी ने कैलेण्डर की तारीख आगे कर दी ताकि वह समय से तो पहुँच जाय। किन्तु तभी किसी ने असावधानी से स्थानीय फुटबाल-टीम के मैच का ज़िक्र कर दिया। बिल ने चट से बिस्तर से उठकर कहा, "किसी ने मुझे धोखा दिया है। मंगलवार को तो मैच नहीं होता। मेरे पास पीने को अभी तीन और दिन बाक़ी हैं!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलियम का जीवन कई ठोकरों के बाद सँवरा । चौंसठ बरस की अवधि में उसने तरह-तरह के धंधे किये । विज्ञापन चिपकाये, गप्पबाज़ी की, मेक्सिको में मछली पकड़ने के जहाज़ पर नौकरी की; समाचार-पत्रों में काम किया । और तो और, फॉकनर प्रथम महायुद्ध में रायल-एयर-फ़ोर्स में भर्ती हो गया । (यू० एस० एअर-फ़ोर्स ने उसकी अर्ज़ी इसलिए अस्वीकृत कर दी थी क्योंकि उसका क़द बहुत छोटा था) वह घायल तो ज़रूर हुआ किन्तु युद्ध में नहीं । मज़ेदार बात है कि संधि के दिन विलियम और एक पायलट-मित्र हवाई जहाज़ में ही पीने लग गये । बहुत पी चुकने के बाद जहाज़ को ज़मीन पर उतारना कोई खेल तो था नहीं । बेचारों ने हवाई अड्डे की छत पर ही जहाज़ उतार दिया ! और तो कुछ हुआ नहीं, विलियम की टाँग अवश्य टूट गई ।

इसी खुमारी और खिलवाड़ में बिताया जीवन ही फॉकनर के साहित्य का एकमात्र प्रेरणा-स्रोत था । वह कहा करता था, "मैं कोई साहित्यिक व्यक्ति नहीं हूँ, मैं तो एक अवकाश-प्राप्त खेतिहर हूँ ।" फॉकनर की सरलता का और क्या प्रमाण हो सकता है ? मिसिसिप्पी की ही एस्टॅल ओल्डहम से विवाह करके लगभग तीस साल विलियम ने खेतिहर का ही जीवन व्यतीत किया, और वहीं एकान्त में रहकर साहित्य-सेवा करता रहा !

विलियम की एक अजीब आदत थी; वह लगभग अपने सभी पत्र पुराने लिफ़ाफ़ों पर पते काटकर भेजता था । 'सेन्कच्यूरी' की भूमिका में पहली बार समाज के प्रति यह कहकर रोष प्रकट किया कि यह उपन्यास एक सस्ती भावना को लेकर लिख गया है और इसके लिखने के पीछे धनोपार्जन के अतिरिक्त कोई और लक्ष्य नहीं है । आश्चर्य होता है—१९४५ तक फॉकनर की कोई भी पुस्तक अमरीका में प्रकाशित नहीं हुई थी !

कलात्मक दृष्टि से 'द बीयर' अद्वितीय है ! सूक्ष्म और तीखे ढंग से लिखा गया यह लघु उपन्यास अमरीकी साहित्य में तो क्या, विश्व-साहित्य में बेजोड़ है । इस शताब्दी के मोड़ पर एक दक्षिण अमरीकी व्यक्ति की नीग्रो-दासत्व पर जो प्रतिक्रिया थी, उसे ही फ़ॉकनर ने इस पुस्तक में निखारा है । 'सेन्कच्यूरी' और 'साउण्ड एण्ड फ़ुरी' को फिल्माया भी गया है ।

कुछ ही दिन पहले नोबल-पुरस्कार-विजेताओं के सम्मान में प्रेसीडेण्ट कैनेडी द्वारा दिये गये भोज में सब ही पहुँच गये किंतु फॉकनर नहीं पहुँचा ! वहीं एक गोष्ठी का भी आयोजन किया गया था किंतु जब फॉकनर से प्रश्न किया गया, आप क्यों नहीं गये ? तो सीधा-सा उत्तर था—"केवल एक भोज के लिए ही इतनी दूर ह्वाइट-हाउस जाऊँगा ?" इस मीठे-से विनोद में फॉकनर की लज्जाशीलता तो छुपी ही है किंतु सामाजिक व्यवस्था के प्रति एक हल्का-सा रोष भी है । लेखक की आत्मसंतुष्टि के विषय में फॉकनर ने कहा था, "यदि लेखक स्वयं संतुष्ट है, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे अपना गला काटकर साहित्य-क्षेत्र छोड़ देना चाहिये !" 'साउण्ड एण्ड फ्यूरी' फॉकनर को इसलिए सबसे अधिक प्रिय था क्योंकि "एक अपाहिज बच्चे की तरह इस उपन्यास ने मुझे सबसे अधिक क्लेश दिया है" ! वेस्ट प्वाईंट में जी० आई० केडटों को सम्बोधित करते हुए फॉकनर ने कहा, "यदि साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना घुस आती है तो वह साहित्य नहीं रहता।" सम्भवतः 'वार एण्ड पीस' 'हेनरी फिफ्थ' और 'फास्ट' को वह भूल रहा था !

कुछ ही समय पूर्व हेमिंग्वे की मृत्यु से अमरीकी साहित्य-जगत में जो शून्य उत्पन्न हुआ था, वह तो अभी तक भरा नहीं। हाँ, अब एक और शून्य हो गया है ! फॉकनर के देहान्त से अमरीका में एक साहित्यिक पीढ़ी मिट गई है। स्टीनबैक के अतिरिक्त प्रौढ़ उपन्यासकारों में कोई भी ऐसा नाम नहीं है जिसे फॉकनर और हेमिंग्वे के समकक्ष रखा जा सके। फॉकनर के हर वाक्य से पुरुषत्व की गंध आती है। कभी-कभी तो यही गंध इतनी तीखी और तीव्र होती है कि सड़ांध मालूम देती है। मानवीय दुर्बलताओं के भ्रष्ट उद्गार, आधुनिक युग का अशोभन शिष्टाचार, असंयम और तिरस्कारपूर्ण वातावरण की प्रस्तावना लिखने वाला कलाकार अब नहीं रहा। क्या जाने आगामी पीढ़ियों का फॉकनर के प्रति कैसा व्यवहार हो ? उसकी नृशंस और अनुशासनहीन धृष्टता को वे सही समझें या ग़लत समझें। जो भी हो, फॉकनर का विश्व-साहित्य में अपना अलग स्थान है; अपना ही गौरव है किंतु वह तो स्वयं सदा यश और कीर्ति के प्रति उदासीन रहा है। और कदाचित् इसी बात को लेकर उसने कहा था, "यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं एक भुनगा बनकर लौटना चाहूँगा। उससे कोई घृणा नहीं करता, कोई ईर्ष्या नहीं करता; कोई उसे चाहता नहीं, किसी को उसकी आवश्यकता नहीं। वह कभी चिंतित नहीं रहता, वह कभी आपत्ति में नहीं होता और वह सब कुछ खा लेता है।" शायद भुनगा फॉकनर को इसीलिए भाता था कि वह बेमतलब ही अंधेरे में भटकता है, भटकता है, भटकता है।

अपराध

कहीं एक शब्द है—एक अकेला शब्द, जो मनुष्यों की भाषा से परे है। लेकिन वह शब्द है—रहा है। यह अबोला शब्द, जिसे न तो मनुष्य सुन सकते हैं और न पहचान सकते हैं। लेकिन कहीं, किसी समय, एक बार, अचानक.....इन्हीं मनुष्यों में से कोई-एक इस शब्द को पा लेता है। उठा लेता है पहचान कर। कहीं किसी पुरानी पाण्डुलिपि के फटे पन्नों में या टूटे पत्थरों के ढेर में खचित.....। और वही शब्द, जब वह मनुष्य बोल देता है तो उसे फाँसी दे दी जाती है।

—"प्रार्थना" से : एन रैण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमद सलीम
बख्तर सलीम

पृष्ठ-भूमि

उर्दू शायरी का नया दौर १८५७ ई० के बाद शुरू हुआ। १८५७ ई० के इन्क़लाब के अन्तर्गत नये सियासी और समाजी तक़ाज़ों से प्रभावित होकर मौलाना मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने पंजाब के डाइरेक्टर आफ़ एजुकेशन कर्नल हालराइड की सलाह से 'अंजुमन पंजाब' (लाहौर) की बुनियाद डाली और सच पूछिये तो इसी अंजुमन में उर्दू नज़्म की दाग़-बेल पड़ी। मौलाना 'आज़ाद' और फिर मौलाना 'हाली' ने ग़ज़ल से अलग नज़्म को ऊँचा दर्जा दिया। एक ज़माने तक इस्लाही (उपदेशात्मक) और मंज़री (प्राकृतिक) नज़्में लिखी जाती रहीं। 'इक़बाल' आये तो उन्होंने नज़्म को धार्मिक, राजनैतिक एवं राष्ट्रीय विषयों से अवगत कराया। ऐसी ही कोशिश पंडित बृजनारायण 'चकबस्त' ने भी की।

मगर यह भी सच है कि 'इक़बाल' के प्रारम्भिक दिनों तक हुस्नोइश्क़ के लिए ग़ज़ल ही का सहारा लिया जाता रहा। नज़्म बहुत दिनों तक 'मोसद्दसेहाली' के मानी में ही नज़्म समझी जाती रही।

'चकबस्त' ने राजनैतिक तथा सामाजिक विषयों पर क़लम उठायी। उन्होंने नज़्म के मैदान में ज्यादा रंगा-रंगी और फैलाव पैदा किया। लेकिन उसे उच्च आदर्श, गम्भीर सादगी और बक़ौल पतरस बुख़ारी "ग़ज़ब का मर्दानापन" दिया 'इक़बाल' ने। 'ग़ालिब' ने ग़ज़ल को बलन्दी की जिस मंज़िल तक पहुँचाया था, 'इक़बाल' की कोशिशों से उर्दू नज़्म भी उसी मक़ाम पर नज़र आने लगी।

इस धरती ने उगाया जिसे

उर्दू काव्य की चार कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी ज़माने में रोमान्टिक प्रभावों के अन्तर्गत नौजवान शायर जो नये प्रयोग कर रहे थे उनमें भी ग़ज़ल की जगह नज़्म का ही बोल-बाला था। इस क़ाफ़िले में सरदारी का हक़ 'अख्तर' शीरानी को पहुँचता है। अख्तर ने नज़्म को उपदेश का साधन बनाने से बचा लिया। अख्तर की नज़्मों में हुस्न की ताज़गी भी है, इश्क़ का दर्द भी, लहजे की नर्मी भी है, बयान की सादगी भी।

'साग़र निज़ामी' ने क़ौमी आज़ादी और इश्क़ो-मोहब्बत के मधुर राग छेड़े। रविश सिद्दिक़ी ने प्राकृतिक दृश्य और अफ़लातूनी मोहब्बत (Platonic love) के गीत गाये। और हफ़ीज़ जालन्धरी ने प्रकृति से मोहब्बत का फ़न सिखाया।

'जोश' मलीहाबादी की नज़्मों में जज़बात की तेज़ी कुछ और निखरकर सामने आती है। उन्होंने इसे अपनी सियासी नज़्मों में भी बरता, इन्क़लाब की घन-गरज में भी, प्राकृतिक नज़्मों में भी और गम्भीर नज़्मों में भी इसी तूफ़ानी तेज़ी, बयान की इसी रंगा-रंगी से काम लिया।

हमारे आधुनिक कवियों ने नज़्म की अहमीयत और उसके समाजी दर्जे को सही तौर पर महसूस किया। फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़', सरदार जाफ़री, मखदूम, मजाज़, जज़्बी, साहिर, क़तील, नदीम, जाँनिसार अख्तर, जगन्नाथ आज़ाद और दूसरे बहुत से शायरों ने नज़्म के पौधे को अपने ख़ूनेजिगर से सींचा।

बात बहुत आगे निकल गयी और हम अर्ज़ करना भूल गये कि उस धरती का एहसास, जिसने शायरी को उगाया था, बहुत पहले हमें 'नज़ीर' के आने से हो गया था। नज़ीर अकबराबादी की अवामी (लोक) शायरी में हिन्दुस्तान के खेतों की हरियाली, उसके मौसम की रंगीनी, उसके तीज-त्योहार और रस्म-रिवाज का बड़ा सुन्दर, मनमोहक और आकर्षक वर्णन मिलता है। उर्दू शायरी के इस भरे-पुरे ख़ज़ाने से हमने ये चार बहुत हसीन नज़्में चुनी हैं। चाहे आप इन सबको एक ही भाव पर आधारित न कहें, पर इन सब में 'एक ही भावना' ज़रूर काम कर रही है। यानी यह कि इन नज़्मों में हिन्दुस्तानी कल्चर है, हिन्दी ज़बान का रस और लोच है। ज़ुबैर रिज़वी की नज़्म 'नया जन्म' 'आवागमन' पर लिखी गयी एक सफल कविता है। 'शाद' अमृतसरी की नज़्म में भी कुछ इसी क़िस्म का भाव है। 'शाद' अमृतसरी ने यों कहने को एक पुरानी बात कही है, पर यहाँ पुरानी बात जिस नये और अछूते ढंग से कही है, उसकी मिसाल ज़रा कम ही मिलेगी और वह जो टी० एस० ईलियट ने शायरी की तीसरी आवाज़ का कहीं ज़िक्र किया है; सो उस तीसरी आवाज़ की आहट का एहसास हमें परवेज़ शाहिदी की नज़्म में होने लगा है। अर्श सिद्दिक़ी की नज़्म 'कला की देवी से' उनकी साधना का प्रतीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरानी बात : शाद अमृतसरी

ज्ञानालय, गुरुकुल कांगड़ी

कल मुझे कहने लगे हाथ पकड़कर सैयाँ--
तेरे जूड़े का किरनफूल बहुत कोमल है !
मैं सखी झूम गयी, काँप उठा मेरा शरीर
मेरा जूड़ा तो मुआ घास का इक जंगल है !
पास जाऊँ तो कलाई से पकड़ लेते हैं,
दूर रहती हूँ तो मन और भी घबराता है,
पास जाऊँ कि रहूँ दूर सखी कुछ तो बता !
तेरा साजन भी तुझे ऐसे ही तड़पाता है ?

मैं बताऊँ री सखी, तेरा मनोहर सैयाँ
बड़ा अच्छा है, बहुत भोला, बहुत सुन्दर है !
उसकी हर बात में इक बात नई होती है,
नारियाँ लाख हैं और एक मनोहर नर है !
मैं बताऊँ री सखी, तेरा मनोहर सैयाँ
यों तो अच्छा है मगर मर्द वह हरजाई है !
मुझसे भी कहता था कुछ रोज़ हुए बात यही,
उसकी ये बात मेरे मन को बहुत भायी है !

नया जन्म : ज़ुबेर रिज़वी

अजनबी जानके एक शख्स ने यों मुझसे कहा--
वह मकाँ, नीम का वह पेड़ खड़ा है जिसमें,
खिड़कियाँ जिसकी कई साल से लब-बस्ता हैं,
जिसके दरवाज़े की ज़ंजीर को हसरत ही रही--
कोई आये तो वह हाथों में मचलकर रह जाये !

वह मकाँ, जिसके दरो-बाम कई सालों से
मुन्तज़िर हैं कोई महताब-सिफ़त शहज़ादा
उनका हर गोशए-तारीक मनव्वर कर दे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग कहते हैं--यहाँ रात के सन्नाटे में
कुछ अजब तरह की आवाज़ें हुआ करती हैं !
चूड़ियाँ, पायलें, पाज़ेबें बजा करती हैं !
एक आवाज़ कि : तुमने तो मुझे चाहा था !
एक आवाज़ कि : तुम अहदे-वफ़ा भूल गये !
एक सिसकी कि : मेरा साग़रे-जम टूट गया !
एक नाला कि : मेरा मुझसे सनम छूट गया !

लोग कहते हैं--कई साल हुए उस घर में
ख़ूबसूरत-सा कोई शख़्स रहा करता था,
चाँदनी रातों में अशआर कहा करता था,
ख़ूबरूयों ने उसे जाने-वफ़ा जाना था,
जाने किस-किसने उसे अपना ख़ुदा माना था !

लोग कहते हैं कि : इक रात के सन्नाटे में
इक परी आयी इधर तख़्ते-सुलेमानी पर,
जाने किस देश उड़ा ले गयी शहज़ादे को !

अजनबी जानके उस शख़्स ने यों मुझसे कहा,
मैं मगर सोच रहा था--कोई पहचान न ले !

मैं और हम : परवेज़ शाहिदी

एक पड़ोसी के घर में आग लगी
और धुंआँ भर गया मेरे घर में,
एक हमसाये ने जो की फ़रियाद
गूंज उठा दर्द क़ल्बे-मुज़तर में,

मेरे दिल के पड़ोस में जैसे
अब करोड़ों दिलों का मस्कन है
मैं अकेला हूँ या करोड़ों हूँ
ये जहाँ मेरे घर का आँगन है,

मुस्कराता है कायनात का ग़म
मेरी आँखों में डालकर आँखें,
देखती हैं करोड़ों आँखों में
इस शबे-तार की सहर आँखें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे दिल को बसाओ दुनिया में
दर्द अपना भी है, पराया भी,
'मैं' को जब 'हम' बना लिया मैंने
ख़ुद को खोया भी, ख़ुद को पाया भी।

कला की देवी से : अर्श सिद्दीक़ी

मैंने तेरे रूप की ख़ातिर गूंथे तस्बीहों के हार,
तेरे नाम की लौ को मैंने पहनाये शेरों के ताज;
तेरी माँग में मैंने डाला तारों का उजला सिन्दूर
जिसके नूरे-रवाँ के आगे काहकशाँ को आये लाज;

देवी, तेरी ज़ुल्फ को समझा ख्वाबों का रूपहला जाल,
और तेरे होंटों को जाना लाल गुलाब के ताज़ा फूल,
तेरे नाम गुज़रगाहों पर अपने ख़ून से सेंची दूब,
और अपने बालों में डाली रोज़ तेरे क़दमों की धूल;

दिल के सागर से मैं लाया जज़बों के मोती अनमोल,
सर से ख़याल की लड़ियाँ लेकर सहरे पिरोये कितनी बार,
जीवन-अमरित यों टपकाया जैसे नाज़ुक घास पर ओस
और तेरे माथे पे सजाये जगमग करते ये सब हार;

रंगा-रंग क़बाएँ मैंने तेरे जिस्म को पहनायीं,
अपने बदन का जी तरसाया डाल के उस पर उलझे तार;
ख़ूने-जिगर के अश्क बनाये और धुलाये तेरे हाथ
नयनों की सब जोत तुझे दी ताकि सजे तेरा घर-बार;

तेरा दास बना पर तूने भीक न दी मुझको इक बार
फिर भी आशा साथ है, खोले बैठा हूँ हिरदय का द्वार!

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरी नज़रों में हम (६)

भारतीय समाचार-पत्र, सिनेमा और रेडियो

'गोरी नज़रों में हम' की इस छठी क़िस्त में लेखक भारतीय समाचार-पत्र, सिनेमा और रेडियो के सम्बन्ध में गोरी नज़र के इस दृष्टिकोण का खुलासा करता है कि उनके लेखे हमारे पाठक, श्रोता, और दर्शक अभी रूढ़िग्रस्त और दकियानूस हैं, क्योंकि वे हमारी रुचि के आधुनिककरण की गति से आश्वस्त नहीं हैं, पर इसमें दोष शायद गोरी नज़र के नज़रिये का ही ज्यादा है....

विदेश में विशेषतः अमेरिका में, हमारे बहुत कम समाचार-पत्र पहुँचते हैं। समुद्रीडाक से दो माह बाद मासिक, साप्ताहिक आदि पहुँचते हैं, जो बासी हो जाते हैं। 'दैनिक' हवाई जहाज़ से पहुँचना असंभव है। डाक के दाम अखबार के दाम से कई गुने होंगे। सो अमेरिका में सबसे पहले मुझे भारतीय समाचार-पत्र का अभाव खला। चार अंग्रेज़ी-साप्ताहिक छह दिन बाद हवाई डाक से मिल जाते थे—स्टेट्समैन, हिन्दुस्तान टाइम्स, हिन्दू और थॉट—केवल यही एयरमेल-कागज़ पर छपते हैं। शायद 'स्वराज्य' भी। परंतु इन्हें मैंने सिवा भारतीय राजनीति या समाज-विज्ञान के विशेषज्ञों के—साधारण पश्चिमी पाठकों को पढ़ते हुए नहीं देखा। मैं अपनी कक्षा में मेरे पास आने वाले 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'थॉट' विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए बाँटता था। अमरीकी समाचार-पत्रों की तुलना में हमारे दैनिकों में सारी दुनिया की ख़बरें ज्यादह होती हैं; सांस्कृतिक-साहित्यिक मसाला ज्यादह होता है। हमारे समाचारपत्र अंग्रेज़ी (इंग्लैण्ड के) पत्रों की नक़ल में शुरू हुए और उन पत्रों की कई बातें यद्यपि वहाँ छूट गयीं, फिर भी हमारे यहाँ चालू हैं। दूसरा अन्तर जो स्पष्ट दिखाई देता है, वह है विदेशी पत्रों की विज्ञापन-बहुलता, और हमारे पत्र में विज्ञापनों का कम होना। 'संडे न्यूयार्क टाइम्स' के कई

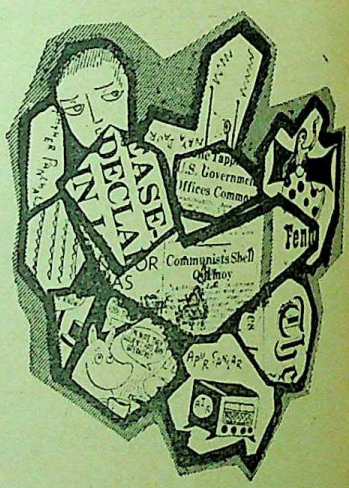

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्लिमेंट केवल विज्ञापनों के लिए होते हैं। वे विदेशी पत्र व्यापारिक-व्यावसायिक हेतु से निकाले जाते हैं; और 'मिलवाकी टाइम्स' के मेरे अच्छे मित्र-संपादक ने कहा : रवीन्द्र-नाथ पर लेख हम क्या छापेंगे ? हमारे पाठक तो और ही चीज़ों में रस लेते हैं ! अन्त में उन्होंने मेरा व्याख्यान मिलवाकी के एक पुराने क्लब में टैगोर पर कराया, (किराये के अलावा एक व्याख्यान का १७५ डालर मुझे पत्र-पुष्प दिया) पर वे व्याख्यान की आठ-दस पंक्ति रिपोर्ट से अधिक कुछ न कर सके। मैंने कई अमेरीकियों को अपने यहाँ के अंग्रेज़ी पत्र पढ़ने को दिये और उनकी प्रतिक्रियाएँ मैं नीचे दे रहा हूँ। यहाँ यह बतला दूँ कि हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं की पत्रिकाएँ तो वहाँ नज़र ही नहीं आती थीं। मैं अट्ठाइस साल से हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लिखता हूँ—यहाँ कई पत्र नित्य-नियमित, मुफ्त मेरे घर पर आते रहते हैं। पर विदेश जाने पर, वहाँ केवल केरल का 'युग प्रभात' (दो महीने बाद प्रति अंक) और बाद में 'आज' का रविवासरीय (उन्हें लिखने पर) मिलने लगा था और किसी साहित्यिक-असाहित्यिक पत्र-पत्रिका का अता-पता ही नहीं लगता था। कुछ बंगाली मित्रों के यहाँ 'देश' साप्ताहिक और मराठी मित्रों के यहाँ 'केसरी' साप्ताहिक दिखाई देता था। तामिल मित्र 'कल्की' पढ़ते थे—पर किसी हिन्दी-भाषी के घर कोई हिन्दी पत्र, कम-से कम विसकान्सिन विश्व-विद्यालय के २०० भारतीय छात्रों में, मैंने कभी नहीं देखा। खैर।

तो विदेशी पाठकों की हमारे अंग्रेज़ी अख़बारों पर यह प्रतिक्रियाएँ थीं :

दैनिक : हमारे पत्र राजनीति-प्रधान होते हैं। विशेषतः कुछ नेताओं को वे ज़्यादह महत्व देते हैं। विरोधी दल के मतों को उतना नहीं देते। अमरीका के बारे में जो ख़बरें छपती हैं, वे काफ़ी एकांगी होती हैं। विज्ञापनों में 'अमुक जाति-उपजाति की गौरवर्ण वधू चाहिए' का काफ़ी मज़ाक वे लोग उड़ाते हैं। रविवासरीय पूरणि-काओं (सप्लिमेंट्स) में अधिकतर विदेशी पत्रों के उद्धरण, विदेशी 'कामिक स्ट्रिप्स' और विदेशी पुस्तकों की समीक्षाएँ होती हैं। 'हिन्दू' पत्र विदेशियों को अधिक पसंद आते हैं, क्योंकि उसमें दक्षिण-भारत की भूमि-गन्ध विशेष रूप से प्रस्फुटित रहती है। स्थानीय लेखकों की रचनाएँ अधिक होती हैं। दैनिकों में 'पाठकों के पत्र' वे विशेष रूप से पढ़ते हैं, चूंकि उसमें कुछ विविधता, विचार-भिन्नता दिखाई देती है। सरकारी प्रचार के चित्र या सरकारी कामकाज, मंत्री-उपमंत्रियों के उवा देने वाले भाषणों के ब्यौरे आदि

आखिर नाम छपा तो

रिपोर्टर सी० आर० नेमी ने अपने पत्र के सम्पादक से यह शिकायत की कि उसके द्वारा दी गयी रिपोर्ट के साथ उसका नाम नहीं छपता। दूसरे दिन पत्र में एक कार-दुर्घटना के समाचार की अन्तिम पंक्तियाँ यों थीं "कार पूरी रफ्तार से बढ़ती जा रही थी ! उस व्यक्ति ने चाहा कि वह उस पार निकल जाये। वह दौड़ा, लेकिन कार उसे कुचलती हुई आगे निकल गयी और घटना-स्थल पर ही मर गया वह व्यक्ति—सी० आर० नेमी।"

—सरोज श्रीवास्तव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे पसन्द नहीं करते—अमेरिकी में सरकार पर निर्भर करने वाली हर चीज़ सन्देह से देखी जाती है। जिन दिनों हम वहाँ थे, चीन को लेकर काफ़ी सनसनीखेज़ ख़बरें अमेरिकी अख़बार छापते थे—भारतीय समाचार-पत्रों में उस विषय में इतना कुछ लिखा नहीं जाता था, इसका उन्हें अचरज था।

साप्ताहिक और मासिक पत्र वैसे ही अंग्रेज़ी, में बहुत कम निकलते हैं जिनका अच्छा स्तर हो —सनसनीखेज़ बहुत विकने वाले 'पीले' पर्चे छोड़िए—उनमें कला-विद्यार्थियों को 'मार्ग' पसंद आता है। त्रैमासिक पत्रिकाओं में युनिवर्सिटियों से निकलने-वाले कुछ रिसर्च प्रधान पत्र मान्यता प्राप्त हैं। परन्तु अन्य विविध-विषय-विभूषित सचित्र या कहानी-प्रधान पत्रों से विदेशियों को सन्तोष नहीं होता। उनकी मुख्य शिकायतें तीन होती हैं: १. 'महापुरुष-वाद' से पीड़ित अधिकांश पत्रिकाएँ होती हैं: कितनी जयन्तियाँ, स्मारक, गुणगान, प्रशस्ति, अभिनन्दन से भरे ये अंक होते हैं—हर अंक मे कोई-न-कोई जयन्ती आ जाती है। २. 'भावुकता' से पीड़ित कहानियाँ, कविताएँ आदि। अंग्रेज़ी में ढलकर यह अति भावुकता असह्य मात्रा में, राष्ट्रीय रोग की तरह जान पड़ती है। कोई कहानी ऐसी नही होती जिसकी भूमिका दुख में न हो, खलपुरुष हमेशा समाज-व्यवस्था का रूढ़ राक्षस होता ही है। विदेशी साहित्य रोमांटिक-युग कभी का पार कर चुका, उसे यह सब बहुत बचकाना और अटपटा लगता है। ३. सबसे बुरी लगने वाली चीज़ है 'भारतीयता का अभाव'। इन पत्र-पत्रिकाओं के अंग्रेज़ी में लिखने वाले भारतीयों का मुख जैसे विदेश की ओर होता है, वहीं से वे प्रकाश पाते हैं। ऐसे 'रूटलेस' (जड़ों से विरहित) लोगों की रचनाएँ किसी को सन्तोष नहीं दे पातीं।

●

भारतीय फ़िल्में विदेश में जो सराही गयीं उनमें सत्यजित राय की 'पथेर पांचाली' 'अपराजिता', 'अपूर संसार' थीं। मैंने फिलाडेल्फिया में सन् ६० के दिसंबर में 'अपूर संसार' देखा, जिसमें अंग्रेज़ी में संवाद छपते थे, इसलिए उसकी बोधगम्यता बढ़ गयी थी। फ़िल्म के बाद एक छोटा-सा डिस्कशन हुआ जिसमें अमरीकी दर्शकों में कई प्रकार के लोगों ने उसे बहुत पसंद किया। परन्तु ऐसे कलात्मक चित्र कम पहुँचते हैं। कुछ सरकारी डाक्युमेंटरी यथा 'विनोबा भावे' या 'दक्षिण के नृत्य' या 'खजुराहो' विद्यार्थियों को दिखाये गये, तब मैं उन-उन विभागों की ओर से था, बल्कि एक फ़िल्म को तो विद्यार्थियों को परिचित कराने का काम भी मुझे करना पड़ा। प्रायः यह फ़िल्में अनुकूल प्रभाव ही पैदा करती थीं। 'खजुराहो' में कला-विषयक दृष्टि कम, और 'शिवोहं' शिवोहं' वाला धार्मिक दृष्टिकोण अधिक-वहाँ के दर्शकों को जान पड़ा। 'कोणार्क' फ़िल्म इससे अधिक कलात्मक थी। भारत के जन-जीवन की झाँकियाँ देनेवाली ये डाक्युमेंटरियाँ विदेश में केवल सीमित दर्शकों को दिखलायी जाती हैं। टिकिट लेकर दिखाये जानेवाले फ़िल्मों के व्यावसायिक थियेटरों में ये क़ानूनन नहीं दिखायी जा सकती हैं। अतः उनकी 'अपील' सीमित है।

मगर इन अच्छी फ़िल्मों का जो भी प्रभाव हो उसे चौपट करने वाली रद्दी कमर्शियल हिन्दुस्तानी फ़िल्में वहाँ पहुँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती हैं। और उनका असर बहुत बुरा पड़ता है। 'नया दौर' और 'शबाब' ये दो फ़िल्में मैडिसन और बर्क्ले में मैंने हिन्दुस्तानी और अमरीकी मिश्र-दर्शकों के बीच देखीं। बाद में जो मज़ेदार चुहल भरे व्यंग या 'टिप्पणियाँ' अमरीकियों से सुनने को मिलीं, वे यों थीं :

—यह जो गाँव की लड़की दिखलाई है, ऐसे कपड़े तो हमने गाँव में किसी स्त्री के नहीं देखे। विल तो दो साल विहार के गाँव में थे।

—और वह जो दक्षिण के स्थापत्य के ढंग का मंदिर फ़िल्म में दिखाया है, उत्तर प्रदेश मे ऐसा तो हमने कहीं नहीं देखा। बड़े पुराने मंदिर तो तीर्थों में हैं, गाँव में तो खंडहर की तरह पड़े रहते हैं।

—लेक्चर क्यों पिलाते हैं आपकी फ़िल्मों में ये हीरो और हीरोइन ?

—"इस फ़िल्म की ज़बान तो हिन्दी के 'नवभारत टाइम्स' के संपादकीय, जो आप हमें पढ़ाते हैं, उससे बहुत दूसरी तरह की है"—एक भाषा वैज्ञानिक विद्यार्थी।

—फ़िल्म में ये गानों में धुनें विदेशी बाजों की क्यों होती हैं ? क्या भारतीय धुनें उन्हें मिलती नहीं ?

इत्यादि इत्यादि। तात्पर्य, अच्छी चुनी हुई फ़िल्में वहाँ जानी चाहिए। घटिया फ़िल्म जाने से वहाँ हमारी तस्वीर बनती है, जो हालीवुड का कूड़ा-कचरा हमारे देश में देखकर अमरीका के बारे में धारणाएँ लोग-बाग बनाते हैं।

●

सबसे ज्यादा मुझे अन्तर जान पड़ा हमारे देश के रेडियो और अमरीका के रेडियो, या बी० बी० सी (लन्दन) या अमस्टरडम या रोम के रेडियो पर (इन सब स्थानों पर मेरे भाषण के रेकार्डिंग किये गये)। अमेरिका में तो विश्वविद्यालयों के रेडियो पर और अन्यत्र न्यूयार्क में, बर्क्ले में, बोस्टन में, और अन्य रेडियों पर मेरे दो वर्षों में तीस भाषण-इंटरव्यू-काव्यपाठ आदि हुए। भारत में मैं छह वर्ष आकाशवाणी से सम्बद्ध रहा हूँ। मुझे इन दोनों स्थानों के रेडियो-प्रसारण और रेडियो-कार्यक्रमों में बहुत बड़ा फ़र्क जो दिखाई दिया वह वहाँ की स्वतन्त्रता और हमारे यहाँ अधिकारियों की नौकरशाही ढंग की वृत्ति में। मैंने सन् '४० में रेडियो–दिल्ली पर पहली वार्ता प्रसारित की—युद्धकाल में,

यमराज का वाहन

मराठी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य अत्रे को एक सभा में सभापतित्व करना था। उनके आने में कुछ देर हो गई। सभा को आरम्भ करते हुए। उनके एक विनोदी मित्र ने कहा, "बन्धुओ ! मुझे खेद है कि यमराज (उनका लक्ष्य अनुपस्थित अत्रे जी थे) के आने में विलम्ब हो गया।"

वह वाक्य पूरा भी न कर पाये थे कि अत्रे आ गये। सभा प्रारम्भ करते हुए अत्रे ने कहा, "बन्धुओ ! मुझे खेद है कि मेरा वाहन खो गया था, जिससे मुझे आने में देर हुई। आते ही पता चला कि वह मुझसे पहले से ही यहाँ उपस्थित है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तब गाँधी या नेहरू का नाम रेडियो पर लेते हुए अधिकारी सहमते थे। उर्दू-हिन्दी के बड़े-बड़े प्रगतिवादी लेखक तब प्रोग्राम-असिस्टेंट थे, और घबड़ाते थे राष्ट्रीय नामों से। बाद में देखता क्या हूँ कि कई ऐसे अधिकारी इन केन्द्रों पर कार्यक्रमों के कर्ता-धर्ता थे, जिन्हें साहित्य से कोई दूर-दराज़ का भी सम्बन्ध नहीं था। बाद में सलाहकार-प्रोड्यूसर वग़ैरह आये, और हम जैसे किसी के भी स्वार्थवश मैत्री न निबाहने वाले लोग पिछड़ते गये। रेडियो को हर समय नये-से-नये 'टैलेन्ट' की तलाश अवश्य करनी चाहिए। पर प्रश्न मेरा व्यक्तिगत नहीं है——हिन्दी-भाषी प्रदेशों के साहित्यिक कार्यक्रमों के स्तर का है। कोई इस संबंध में विचार करना नहीं चाहता, चूंकि सबका कोई-न-कोई सम्बन्ध शायद वहाँ अटका रहता है। और फिर "रघुकुल रीति सदा चलि आई। कोउ नृप होहिं हमहिं का भाई!" अपनी आकाश-वाणी के प्रसारण सम्बन्धी अभावों या स्वतंत्रता की कमी का मुझे अहसास विदेश में बहुत अधिक हुआ। मेरे इन तीस-चालीस विविध देशों के प्रसारणों में एक बार भी एक अंश भी मेरी बातचीत या लिखित वार्ताओं का न काटा गया, न बदलने के लिए कहा गया। एक बार 'आइन्स्टाइन के प्रति' मेरी कविता का अंग्रेज़ी अनुवाद विश्वविद्यालय के रेडियो से इसलिए प्रसारित न हो सका कि निश्चित समय आधे घंटे से वह अधिक था। मेरे १८ भाषणों के आध-आध घंटे के टेप-रेकार्डिंग रेडियो वालों ने मुझे प्रज़ेन्ट किये। 'वायस आफ अमरीका' ने मेरी इंटरव्यू ली——हिन्दी और अंग्रेज़ी में ——तीन रेकार्डिंग भारत के लिए कराके भेजे। संक्षेप में, मैंने उन रेडियो-स्टेशनों पर बहुत अधिक फुर्ती और सामञ्जस्य (कोआर्डिनेशन) और उसके कारण उनकी कार्य-क्षमता देखी। हमारे यहाँ जो दृश्य बहुत सामान्य रूप से दिखाई देता है कि रेकार्डिंग के लिए जाइये तो कई विघ्न (यांत्रिक और अयांत्रिक) बीच में आ रहे हैं; 'टॉकर' को ऐसे मान लिया जाता है जैसे कोई अनाथालय में आया हुआ गर्ज़मन्द बे-चारा हो, वैसा वहाँ नहीं होता। विशेषज्ञ की क़द्र की जाती है। और हमारी बातें यह कि हमारे यहाँ और वहाँ की फ़ीस में तो ज़मीन-आसमान का अन्तर है सो है ही, साथ ही वार्ताओं के प्रकाशन आदि के अधिकार भी वार्ताकार के पास रहते हैं, केवल प्रसारण के अधिकार उन रेडियो वालों के होते हैं। आशा है कि हमारे यहाँ भी धीरे-धीरे ये परिवर्तन आयेंगे। पर मेरे देखने में गये बीस-बाईस साल में, स्थिति में (विशेषतः लेखक-वार्ताकार-कवि की) विशेष क्षिप्र सुधार नहीं हुआ है। इस कारण से विदेशी हमारे रेडियो को सरकार-नियंत्रित मानते हैं।

समाचार पत्र सिनेमा-रेडियो आदि में अधिकाधिक स्वतंत्रता जनतंत्र का एक प्रमुख लक्षण है। विदेशी इतना तो जानते हैं कि भारत में यह स्वतंत्रता पर्याप्त मात्रा में है। परन्तु वे जन-साधारण की रुचि के आधुनिकीकरण की गति से आश्वस्त नहीं है। उनके लेखे हमारे पाठक, श्रोता, दर्शक अभी बहुत रूढ़िग्रस्त, दकियानूसी हैं; पर इसमें भी गोरी नज़र का शायद दोष ज्यादह है। हमारी गति हमारी परिस्थिति पर निर्भर है——अभी स्वतंत्रता पाकर दो दशक भी तो नहीं बीते हैं।

● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्हैयालाल नन्दन

●

यक़ीन करें, रेनू कुल चार साल और कुछ ही महीने की बच्ची है, लेकिन जब वह बड़ी गंभीर मुद्रा में आकर अपनी अनन्त समस्याओं और परेशानियों की बात कहती है तो उसे बरबस 'रेनू दीदी' कहने को जी चाहता है !

●

यों मुझे अंग्रेज़ी-हिन्दी की खिचड़ी भाषा न बोलने में अच्छी लगती है और न सुनने में। और कुछ ऐसी आदत पड़ गयी है कि हिन्दी में अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी में हिन्दी शब्दों की थेगरी लगा-लगाकर बोलने वालों को टोक भी देता हूँ। मगर जब पड़ोसी की चार साल कुछ महीने की बच्ची रेनू बड़ी-बूढ़ियों के-से लहज़े में 'अंकल जी' कहकर पुकारती है, तो मेरा भाषा-विज्ञान जाने कहाँ चला जाता है और मैं अपना सारा काम छोड़कर उसकी ओर बड़े प्यार से मुख़ातिब हो जाता हूँ। एक अजीब सम्मोहन है उसके 'अंकल जी' कहने में। और जिस ढंग से वह बड़ी-बूढ़ियों की-सी बातें करने बैठती है, उसके कारण मैं उसे 'रेनू दीदी' कहकर संबोधित करता हूँ। रेनू दीदी की ज़िन्दगी की समस्याएँ अनन्त हैं, जिनमें आजकल उनकी गुड़िया की शादी से संबंधित समस्याएँ अधिक महत्वपूर्ण हो गयी हैं। उन्हें 'अंकल जी' को सुनाये बिना रेनू दीदी को चैन नहीं मिलता और उन्हें सुने बिना 'अंकल जी' को। रोज़ शाम को अनन्त समस्याएँ, अनंत समाधान, और अंत में प्यारा-प्यारा रोज़ का जाना-पहचाना मगर रोज़ नयी मिठास और भोलेपन से तन-मन को भर जाने वाला वाक्य 'अच्छा अंकल जी, अब मैं चलती हूँ'। और अब तो कुछ ऐसा है कि रेनू दीदी की और मेरी ये मीटिंगें मुहल्ले भर में प्रसिद्ध हैं।

एक दिन मैं शाम को घर पहुँचा तो रेनू दीदी बड़ी गंभीर मुद्रा में आयीं

जनवासे वाला कमरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बोलीं, "अंकल जी, एक बड़ी मुसीबत आ गयी है। कल हमारी गुड़िया की शादी है और अभी तक यह तै नहीं कि बारात को जनवासा कहाँ दिया जाय। पापा जी से कहा था तो उन्होंने अभी तक कोई इंतज़ाम नहीं किया। अब अंकल जी, आप ही कुछ कीजिये न! इज्ज़त का सवाल है।" मेरे अंदर-अंदर हँसी के फौवारे और बाहर रेनू दीदी की गंभीरता के निर्वाह के लिए समान गंभीर मुद्रा। मैंने सांत्वना देते हुए कहा, "मैं अपना एक कमरा खाली कर देता हूँ आपके मेहमानों के लिए। तुम चिन्ता न करो।" बस कहना था कि रेनू जी खुशी के मारे गले से लिपट गयीं। शायद रेनू दीदी को इतनी गंभीर समस्या का इतना आसान हल सूझा ही न था। और भी कई छोटी-मोटी समस्याएँ उपस्थित हुईं और सबका समुचित हल निकाला गया। थोड़ी देर में देखा, रेनू दीदी खुशी में उछलती हुई नाच रही हैं।

सुबह किसी तरह हुई और देखता हूँ कि रेनू दीदी की बाराती गृहस्थी के साथ उनकी सहेलियों ने मेरे कमरे में कब्जा जमाना शुरू कर दिया। रोकता कौन? देखते-देखते कमरा उनका और मैं अपने ही कमरे में बेगाना।

दूसरे दिन शाम को आफ़िस से आऊँ तब तक कमरा सहेलियों से ठसाठस। न समझ में आये, कौन जनाती है कौन बराती? मुहल्ले में होने वाली शादियों में शायद होता भी ऐसा ही है। बड़ा इंतज़ाम! गुब्बारों की शामत सबसे अधिक आयी थी। रेनू दीदी आईं और झट-से मुझे न्यौता दे गयीं, "अंकल जी, आज शाम आप और आंटी जी दोनों हमारे यहाँ खाना खायेंगे।" मैंने दावत स्वीकार की और प्यार से गोद में लेकर रेनू दीदी से कहा, "देखो दीदी, किसी चीज़ की ज़रूरत पड़े तो बताना, संकोच न करना।" "आपसे न कहूँगी तो कहूँगी किससे?" कहकर रेनू दीदी ने काम-काज का घर बताया, 'बारात आ रही है' का समाचार दिया और व्यस्तता दिखाकर भाग खड़ी हुईं। मैं सपत्नीक उस सरल भोलेपन पर एक ठहाका लगाकर रह गया। ग़ौर किया तो रेनू दीदी के उत्सव-कक्ष से मांगलिक गान की ध्वनि आ रही थी, और उधर से बारात।

●

मेरा सारा घर उस मांगलिक वातावरण से गूंज रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर में हमलोग चुपके-से उनके अगले कार्यक्रम की झाँकी ले लिया करते थे। थोड़ी देर बाद रेनू दीदी फिर पधारीं और अपनी आंटी जी से कुछ कान में कहकर वापस जाने को हुईं, तो मैंने देख लिया। रेनू दीदी मुस्कराईं और मैंने टोक दिया, "क्यों दीदी, कैसे आना हुआ?" रेनू दीदी ने बताना उचित नहीं समझा और 'आंटी जी से थोड़ा काम था' कहकर चली गयीं। खुशी की एक लहर फिर हम दोनों के बीच छोड़ गयीं।

इस गुपचुप कानाफूसी के मुताबिक श्रीमती जी साड़ी बदलने जा ही रही थीं कि

कुछ कारण

प्रश्न था : कुछ ऐसे कारण बताओ, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि बच्चों के लिए गाय के दूध की अपेक्षा माँ का दूध अधिक अच्छा है!

एक विद्यार्थी ने उत्तर में लिखा :

१. माँ का दूध अधिक मीठा होता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेनू दीदी का एक दूत फिर आ पहुँचा—"आंटी जी, जल्दी चलिए, बड़ी देर हो रही है ! दुल्हन सजी बैठी है, अब केवल आप ही की देर है।" थोड़ी देर में मैंने देखा, वहाँ वर और कन्या-पक्ष की एक नहीं, अनेक आँटी जी, दुआ जी उपस्थित की गयी थीं। मांगलिक कार्यक्रम विधिवत् जारी था।

इसके बाद मैं काम में उलझ गया। श्रीमती जी भी आकर अपने काम में व्यस्त हो गयीं। ध्यान न दिया कि परिस्थितियों ने किस प्रकार मोड़ खाया कि अचानक ऐसे हँसी-खुशी के वातावरण में रेनू दीदी अत्यन्त उदास होकर चुपके-से सामने आकर खड़ी हो गयीं। बिलकुल चुप, कुछ न बोलीं। छोटी-सी बच्ची की यह बुजुर्गी-उदासी मुझसे देखी न गयी। बड़े लाड़ से उसे गोद में उठाकर बात पूछी तो सिसकियों में फँसी आवाज़ से उसने कहा, "अंकल जी, बारात किसी के यहाँ से नाराज़ होकर तुरन्त लौट जाती है, तो बदनामी हो जाती है न ? अब अंकलजी, मैं क्या करूँ ? बारात लौट रही है ! बड़ी बदनामी हो जायगी !" और उसकी सिसकियों की रफ्तार ज़रा तेज़ हो गयी। जाने क्यों चाहकर भी उस समय बात को हँसी में न टाल सका। जीवन खिलवाड़ में भी आसान नहीं है !—इसका प्रत्यक्ष नज़ारा देखने को मिल रहा था। बड़ी आत्मीयता से पूछा तो पता चला कि बारात को मेरे घर में टिकाया जाना ही बारात लौटने का कारण है। इसके आगे कुछ पूछने पर भी रेनू दीदी शायद बताने को तैयार न थीं। मेरी गोद की पकड़ छुड़ाकर धीरे - धीरे चल पड़ीं। मैं अजब पेसोपेश में पड़ गया कि कहीं सचमुच रेनू दीदी की बारात न लौट जाय ! रेनू दीदी सीधे मेरे कमरे से निकलकर अपने घर चली गयीं।

इधर जब कुछ लोग गुड़िया की सास को समझाने में व्यस्त थे तो मैंने रेनू दीदी की परम सहेली मंजू को बुलाया और बात मालूम कर ली कि रेनू दीदी की गुड़िया की सास काफ़ी धर्म-कर्म वाली हैं और कट्टर कान्य-कुब्ज ब्राह्मण के रूप में उनके गुड्डे की शादी रेनू दीदी की गुड़िया से हुई है। अतः इस कान्यकुब्ज ब्राह्मण के यहाँ की बारात एक अकान्यकुब्ज के यहाँ ठहराई जाय और वह भी ऐसे अकान्यकुब्ज के यहाँ, जिसकी शादी जाति-पाँति का भेद-भाव किये बिना हुई है, यह सब गुड़िया की सास को कैसे बर्दाश्त हो सकता था ! उनका कहना था, यह तो सरासर हम कान्यकुब्जों की इज्ज़त पर कीचड़ उछालना है !

यह भी पता चला कि अब बहुत समझाने पर उनकी सास का पारा थोड़ा ढंडा हुआ है, इस शर्त पर कि खान-पान में कान्यकुब्जी ढंग का पूरा ख़याल रखा जाय। मुझे हँसी आयी और संतोष हुआ कि चलो, समस्या हल हो गयी। और कुछ इसी संतोष के लहज़े में मैंने मंजू से दो-एक वाक्य कहे भी। मंजू चली गयी।

रेनू को इस भीषण समस्या के समाधान

---

२. हम निश्चिन्त रहते हैं, क्योंकि इसे बिल्ली नहीं पी सकती।
३. यात्रा या भीड़-भाड़ में बर्तन के टूटने-फूटने और दूध के बह जाने का भय नहीं रहता।
४. इसे पीते समय हाथ लगाना आवश्यक नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से थोड़ी राहत तो मिली, मगर सिवा रेनू के उसकी सहेलियों में और किसे मालूम था कि समाधान की शर्त भी रेनू के लिए एक उलझाव है। बेचारी हारकर अंकल जी के पास फिर हाज़िर। मैं उसका उतरा-उतरा-सा चेहरा देखते ही इस बार अपनी हँसी न रोक सका। ज़बान से जो कुछ निकला, उसमें भी हँसी का पुट स्पष्ट था। "……अरे आओ दीदी, कहो बारात के क्या हाल हैं? सुना, तुम्हारी गुड़िया की सास जी बड़ी कट्टर कान्यकुब्ज हैं?"

"कुछ न पूछिये अंकल जी! गुड़िया सयानी हो रही थी, इसलिए मैंने यह शादी तै कर ली थी। तै क्या कर ली, समझो फँस गयी। हमारी गुड़िया बिचारी ...." इतना कहकर रेनू दीदी एक क्षण को रुकीं, फिर जैसे भुलाते हुए बड़े संतोष से बोलीं, "खैर, चलो सब पार हो गया। खाना-पीना हो जाय, बस विदाई!" खाने-पीने की याद आते ही रेनू दीदी अपनी भूली उदासी पर फिर उतर आयीं। बोलीं, "अंकल जी, अब आगे की लाज आपके हाथ है। आपको और आंटी जी को मैं बारात जाने के बाद खिला दूं तो आप बुरा तो न मानेंगे? किसी तरह काम निबटाना है।"

मैंने कहा, "इसमें क्या बुरा मानना दीदी? तुम अपनी बारात को देखो, हम तो घर के आदमी हैं, कभी खा लेंगे।" इतना सुनकर रेनू जी थोड़ा संतुष्ट तो हुईं, मगर यह बात शायद उनके मन को पसंद नहीं आयी कि उनके 'अंकल जी', शायद दुनिया में सबसे अधिक प्यारे, उनकी गुड़िया के दूल्हे के साथ बैठकर खाना न खायें, बल्कि बाद में खायँ। इसलिए प्रसन्नता के लबादे के अन्दर उदासी लपेटे चली गयीं। बहुत ज्यादा देर नहीं हुई थी कि फिर वापस आयीं; मगर इस बार दबे-पाँव, चोरी-चोरी और साथ में एक थाली में कुछ लिये हुए। और मैं कहीं कुछ बोल न पड़ूं, इसलिए ओठों पर तर्जनी ले जाकर चुप रहने का संकेत। कान में लगकर बोलीं, "आपके लिए खाना लायी हूँ। बारात खाना खा रही है। मैं चलती हूँ, विदा-विदाई की तैयारी करने। आप और आँटी जी खाना खा लीजिये! अंकल जी, बुरा न मानियेगा!"

मैंने रेनू दीदी के आदेश का पूरी तरह पालन किया। उनके इस नाटक में गुमसुम अपना पार्ट अदा करता रहा। थोड़ी देर में देखा कि विदाई के गीत की ध्वनि के साथ गुड़िया की बारात हँसी-खुशी विदा हो रही है।

और बारात को हँसी-खुशी विदा होते देखकर मुझे संतोष हुआ कि अब शायद रेनू दीदी को अपने जीवन की अनेक चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाय। मगर समस्याओं की कमी कहाँ! दूसरे दिन से 'रेनू दीदी' और अंकल जी का फिर वही चर्खा, रोज़ शाम को अनन्त समस्याएँ, अनन्त समाधान। बल्कि मेरे लिए एक नयी समस्या उठ खड़ी हुई है कि रेनू दीदी की सहेलियों की गुड़ियों की शादी में आये दिन रेनू दीदी की सिफ़ारिश पर मुझे ध्यान देना पड़ता है और अपने उसी कमरे में उनकी बारातें टिकानी पड़ती हैं। बल्कि अब मैंने उस कमरे का नाम ही रख दिया है 'जनवासे वाला कमरा'।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17 AUG 1962

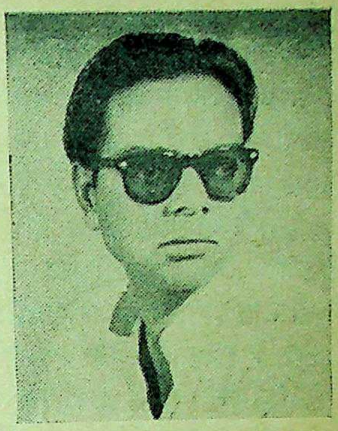

राजेन्द्र यादव

'एक इंच मुस्कान' के चौदहों अध्याय आप पढ़ चुके हैं। नारी और पुरुष के अलग-अलग दृष्टिकोणों से, एक कथाकार-दम्पत्ति द्वारा लिखा गया यह कथा-प्रयोग केवल हिन्दी या भारतीय ही नहीं, विश्व के कथा-साहित्य में भी अपनी मिसाल नहीं रखता। इस सहयोगी कथा-प्रयोग के लेखन के दौरान में कथाकार दम्पत्ति जिन अनुभूति-प्रक्रियाओं से गुज़रा है उनकी कथा भी उपन्यास के एक अध्याय से कम रोचक नहीं। इस अंक में राजेन्द्र यादव ने 'अपनी बात' कही है। अगले अंक में मन्नू भण्डारी 'अपनी बात' कहेंगी। ● ● ●

"अरे!" मन्नू एकदम रुककर बोलती है, "वो पठान!"

"कहाँ?" मैं अचानक बौखला उठता हूँ—इधर-उधर देखने लगता हूँ।

"वो क्या है सामने, किताबों की दूकान पर!"

अब तक मैंने भी भीड़ के पार देख लिया है—दूकान में लगी किताबों पर निगाहें टिकी हैं और उन्हें देखते-देखते ही सिर इस प्रकार क्रमशः ऊँचा उठता चला जा रहा है, जैसे छत पर जाने के लिए सीढ़ियाँ गिन रहे हों। मैं एकदम रुक जाता हूँ। "अब क्या हो?" सहायता के लिए इधर-उधर देखता हूँ—"आओ, इस बाटा की दूकान में घुस जायें। लौटेंगे तो दीख जायेंगे।"

"लेकिन ऐसी क्या मुसीबत है; क्यों नहीं अपना चैप्टर लिखकर भेज देते?" मन्नू को बहस करते देखकर मैं परेशानी से उसका हाथ खींचकर

'एक इञ्च मुस्कान' : मैंने कैसे लिखा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहता हूँ—"ओ हो, ये बहस का मौक़ा नहीं है...."

"लेकिन मेरा नम्बर थोड़े ही है इस बार जो मैं जाऊँ? आपका है, आप जाओ।" मन्नू को हमेशा ख़तरनाक अवसरों पर सत्य-कथन का महत्व पता चलता है। इतने में पठान की निगाह हमारी ओर उठ जाती है। वहीं से दोनों हाथ बढ़ाकर बोलता आता है, "आहा, मैं तो सोच ही रहा था कि कल आफ़िस जाते हुए .... । इस बार अंक जल्दी निकाल देना है..." और पकड़े जाने पर मैं 'हें-हें' करके अपनी मजबूरी की सफ़ाई देता हूँ।

शरद देवड़ा का नाम हमलोगों ने रख लिया है 'पठान'। मान लीजिए, मन्नू को चैप्टर लिखना है। समय बहुत निकल गया है। सुबह हर पल धड़का है कि किसी भी क्षण 'पठान-इन-चीफ़' या उनके किसी सिपह-सालार के दर्शन होंगे। दरवाज़े पर खटखट होती है। "आप कह देना, कालेज चली गयी।" "मैं सुन रहा हूँ।" बाहर से दुष्ट आवाज़ आती है, और हमलोग सब हँस पड़ते हैं। मन्नू पठान को कॉफ़ी पिलाती है, नाश्ता कराती है,—लेकिन पठान है कि हर तीसरी साँस में—"हाँ तो वो चैप्टर ...?"

लेकिन देवड़ा पठान ही नहीं, सम्पादक भी हैं। एक बड़ी महीन चाल चलते हैं: "भई कुछ कहो, हमें तो मन्नू जी के चैप्टर ज्यादा पसंद आते हैं! हमारे सारे पाठकों को भी उन्हीं के अध्याय ज्यादा पसंद हैं। तुम्हारे कुछ गरिष्ठ हैं!" इतना ही नहीं वह जान-बूझकर उन्हीं पत्रों को छापते और रि-डायरेक्ट करते हैं जिनमें मन्नू के अध्यायों की प्रशंसा हो। मैं हँसकर टाल देता हूँ: "यार, ये तो तुम्हारी बहुत पुरानी कमज़ोरी है। तुम्हें मेरे सिवा संसार का हर लेखक महान और प्रशंसनीय लगता है। मैं भी कहीं कलकत्ते से बाहर रहता होता और कुछ दिनों को यहाँ आता तो ..." देवड़ा के जाते ही मन्नू खुश होकर कहती है, "देखा, मेरे चैप्टर अच्छे जा रहे हैं!"

"यही तो इसकी चाल है।" मैं समझाता हूँ, "मेरे भीतर हीन-भाव पैदा कर दो और तुम्हारी प्रशंसा करते रहो, उपन्यासांश मयय पर मिलते रहेंगे।"

"कुढ़ो, कुढ़ो!" मन्नू चिढ़ाती है। फिर सहसा सुस्त होकर कहती है, "लेकिन इस बार क्या होगा? नौकर का अभी तक इन्तज़ाम नहीं हुआ है, आपसे इतना भी नहीं होता कि नौकर ही तलाश कर दो। लीला बेचारी क्या-क्या करे? वो घर का काम करे, तो 'बेबी'? नया-नया कालेज है। इन सबके बीच चैप्टर की बात उठती ही नहीं। मैं, साफ़ कहती हूँ, जब तक कि रसोई में सिंक नहीं लगेगा, मैं कुछ भी नहीं लिखूंगी!"

और मन्नू का उपदेशात्मक धाराप्रवाह भाषण शुरू हो जाता है जिसका विषय होता है, उसके भाइयों, जीजाओं की तुलना में मैं कितना 'अहदी' जीव हूँ—उनमें से कोई होता तो क्या एक दिन भी बिना नौकर यों उसे परेशानी उठानी पड़ती? रसोई में तीन-तीन सिंक लग जाते! (उसके सबसे फुर्तीले भाई साहब पिछले बारह साल से एक ऐसे मकान में हैं जिसे बदलने की बात दिन में कम-से-कम दो बार सोच लेते हैं) तथा अन्य पतियों के मुक़ाबले में एकदम हीन और असफल हूँ। फिर पठान का खयाल आता है, तो बात बीच में तोड़कर कहती है, "देवड़ाजी से कह दीजिये, मेरे दिमाग़ में कुछ भी नहीं है लिखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को।" मैं पूछता हूँ, "इस बार क्या सूचना जायेगी ?—कि लेखिका के घर नौकर नहीं था, रसोई में सिंक नहीं लगा था और कलकत्ते में मच्छर बहुत हैं ...."

कुछ इस तरह की आँख-मिचौली के बीच एक इंच मुस्कान का एक-एक अध्याय लिखा गया है। आज सोचता हूँ कि अमला-रंजना-अमर की खींचतान ने यह उपन्यास नहीं लिखाया, लिखाया है पाठकों और मित्रों के आत्मीय दबाव ने— हाँ पठान के डर और सम्पादकीय चालाकी ने। मन्नू कहती, इस बार आपके अमर की ऐसी रेड़ करूँगी कि सब लोग थू-थू करें—।" मैं जवाब देता, ज्यादा तीन-पाँच करोगी तो तुम्हारी रंजना को ले-जाकर ओखला में डुबा दूँगा !" मन्नू अपनी ट्रम्प चाल चलती, "आप चाहे जितने शीर्षासन कर लो, आपके चैप्टर निहायत-निहायत बोर हैं ... ।"

"तुम्हारे पाठकों को कुशवाहा कान्त पढ़ने की आदत है।" और मैं सुस्त हो जाता। यह सम्पादकीय चालाकी काम कर गयी थी और मुझे हमेशा मन में एक बोझ महसूस होता रहता था कि मेरे चैप्टर उतने सरस नहीं जा रहे हैं जितने मन्नू के। मन्नू के लिखने में प्रवाह और निर्व्याज आत्मीयता है, और मेरी बहुत सायास और बोझिल है—यह बात कुछ ऐसे कौशल से फ़िज़ा में भर दी गयी कि जहाँ कोई कहता, "आपलोगों का उपन्यास कालोदय में..." कि मैं बीच में ही बात काट-कर बोल पड़ता, "जी हाँ, और उसमें मन्नूजी के चैप्टर बड़े रोचक जा रहे हैं !" धीरे-धीरे मैंने पाया कि उपन्यास को मेरे लिए एक चैलेंज-चुनौती का रूप दे दिया गया है। और कठिनाई यह थी कि यहाँ मेरी लेखकीय शक्ति दो भागों में बँट गयी : इस चैलेंज को स्वीकार करूँ या उस उपन्यास को सिर्फ़ एक कथा-प्रयोग—कौतुक—होने से बचाऊँ ? हस्बमामूल, मन्नू मेरी खिलाफ़-पार्टी में थी। सहयोगी लेखिका, प्रतियोगी लेखिका हो गयी थी।

इन सारी आन्तरिक कठिनाइयों के साथ यह सहयोगी उपन्यास समय और शक्ति का इतना बड़ा बलिदान माँगेगा, अगर इस बात का कुछ भी अन्दाज़ हमें होता तो शायद इसे प्रारंभ करने की हिम्मत भी हमलोगों की न पड़ती, फिर चाहे भाई लक्ष्मी चन्द्र जी कितनी ही सान पर क्यों न धरते। निन्दक नियरे रखने की बात तो तुलसी या रहीम ने ज़रूर कही थी, लेकिन घर में प्रतियोगी और बाहर निन्दक खड़े करने का नुस्ख़ा मुझे तो किसी वैद्य ने नहीं तजवीज़ा था, और न ही मानसिक स्वास्थ्य के लिए डेढ़ साल इस 'औपन्यासिक तनाव' में जीने की बात कहीं पढ़ी थी। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन निहायत सज्जन, शिष्ट और स्नेही व्यक्ति हैं और मेरे आदरणीय भाई का पद सँभाले हैं, लेकिन उन्होंने मुझे इस प्रकार की कठिनाइयों में क्यों डाल दिया, इसका ज्ञान मुझे हुआ उपन्यास प्रारंभ करने के सवा साल बाद, श्री जैनेन्द्रजी से बातचीत करते हुए। अपनी स्वाभाविक मुद्रा में आँख बन्द करके एक सैद्धांतिक बात के उत्तर में जैनेन्द्र जी ने एक सुन्दर-सी सूक्ति दी :'गुड इज़ द एनिमी ऑफ़ ग्रेट।' मेरे मन में अचानक कौंधा —'गुड' अर्थात् श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन...

बात सन् ६० दिसम्बर के प्रारंभ की है। श्री लक्ष्मीचन्द्र जी और श्रीमती कुन्था जी हमारे यहाँ चाय पीने आये थे। चर्चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ग्यारह सपनों का देश' के कथा-प्रयोग पर होने लगी। 'प्रतीक का बारह खम्बा', पाँच -छः खम्बों से आगे नहीं बढ़ा था और 'ग्यारह सपनों का देश' जैसे-तैसे पूरा हो गया था—यह ख़ुशी की बात ज़रूर थी, लेकिन प्रयोग बहुत संतोषजनक था, ऐसा कहना ग़लत होगा। कुछ लेखक कथा से भागे थे, कुछ चरित्रों से—और उपन्यास क्या था, लावारिस भेड़ थी; जिसका जिधर मन हुआ, हाँक ले गया। उपन्यास के अध्यायों से ज्यादा रोचक उपन्यास के लेख थे, जिसमें अपने-अपने ढंग से हरेक ने दूसरों को गालियाँ दी थीं—सिर्फ एक लेखक ने 'अपने' पात्र की मृत्यु पर पंजाबी औरतों की तरह सियापा किया था और अभिशाप दिये थे। हाँ तो इस पर हम सभी सहमत थे कि 'सब मिला कर प्रयोग बेहद रोचक रहा और पाठकों-लेखकों को समान रूप से आनन्द आया। लेकिन है बड़ा सिरदर्द।' लक्ष्मीचन्द्रजी बोले, "एक-एक चैप्टर जुटाने में निहायत परेशानी उठानी पड़ती है। ग्यारह सपनों के हर चैप्टर के लिए कितनी-कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ा है, यह हम ही जानते हैं। इसलिए इस प्रकार की कोई और चीज़ हाथ में लेते बड़ा डर लगता है!"

"वैसे क्या कोई ऐसी चीज़ शुरू करने का इरादा है?" प्रश्न के साथ ही अचानक एक सुझाव दिमाग़ में आया : "लेकिन अगर कोई चीज़ इसी तरह की शुरू करें तो इस बार अच्छा हो, लेखक अपनी 'थीम' डिस्कस कर लें!"

"परेशानी तो वही है। सब कुछ हो जाता है लेकिन समय पर चैप्टर नहीं मिलते। हिम्मत नहीं पड़ती इसलिए!"

"मन्नू जी, आप क्या लिख रही हैं?" इस बीच में कुन्था जी ने मन्नू से सवाल कर दिया था। उन दिनों मन्नू की कहानी 'यही सच है' की बड़ी चर्चा थी। कुंथा जी उसकी तारीफ़ करने लगीं तो मन्नू ने बताया कि वस्तुतः वह एक उपन्यास है—अब सुविधा होते ही उसे लिख डालना है। और सचमुच कि मन्नू की आदत है, वह अपनी किसी रचना का प्लॉट बताने लगी। बोली, "इस बार मेरी इच्छा है, एक ऐसी चीज़ लिखी जाय, जिसमें एक ही समय एक ही स्थिति और एक ही परिस्थिति को विभिन्न पात्रों के एंगिल से लिया जाये। इन्होंने एक उपन्यास बताया था...."

मन्नू को अपनी ओर देखते हुए पाकर मैंने बताया, "श्री अमृतलाल नागर ने मुझे विकी बाम का एक उपन्यास पढ़ने को दिया था—'द मैन नेवर नो।' उसका शिल्प यही है। पहला परिच्छेद है—हवाई जहाज़ छूटने से पाँच मिनट पहले 'हीं (पुरुष)..."यानी सारी कहानी पुरुष के कोण से। दूसरा परिच्छेद—हवाई जहाज छूटने से पाँच मिनट पहले 'शी' (नारी)—यानी वही लोग, वही परिस्थिति और वही समय, नारी के कोण से। तीसरा परिच्छेद 'हस्बैण्ड' (पति)—हवाई जहाज छूटने से पाँच मिनट पहले। ...सारी कहानी पति के कोण से। इस प्रकार एक ही समय-स्थिति को तीन उपस्थित पात्रों की ओर से कहा गया है और कहानी हर बार नयी हो जाती है। बँगला में भी एक ऐसा ही प्रयोग हुआ है,—'जागरी'। यह प्रयोग मन्नू को ऐसा पसंद आया है कि...."

ध्यान से सुनकर लक्ष्मीचन्द्रजी बोले,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तब फिर एक काम क्यों न करें। अनेक कोणों से मन्नू जी ही सारा उपन्यास लिखें, उसकी बजाय नारी और पुरुष के कोण आप लोग दोनों अलग से सँभालें। बड़ा सुन्दर प्रयोग रहेगा।"

सुझाव सचमुच नया था, हमलोगों ने एक दूसरे की ओर देखा। मैंने ज़रा-सा संशोधन किया, "तब फिर एक स्थिति और समय को न लेकर एक कथानक को लिया जाय!"

"इसे जनवरी से शुरू कर दें।" इतनी देर बाद शायद लक्ष्मीचन्द्र जी ने अपने मन की बात कही, "इसमें हमें भी यह सुविधा रहेगी कि आप दोनों यहीं के हैं, अध्याय लेने में भी परेशानी नहीं होगी।"

"इतनी जल्दी?" मैं बोला, और-जल्दी-जल्दी दिमाग़ के खानों में टटोलने लगा कि कौन-सा कथानक ऐसा हो सकता है जो...

"अभी तो पन्द्रह-बीस दिन हैं। तब तक आप सोच ही डालेंगे।" लक्ष्मीचन्द्र जी ने अन्तिम निर्णय दे डाला।

लोग चले गये लेकिन मेरे दिमाग़ में आतिशबाज़ी की चर्खियाँ घूमने लगीं। एक प्लाट सोचता, फिर उसमें कोई असंगति दीखती तो दूसरा उठाता। एकाध कथानक आया भी, लेकिन उन्हें मैं स्वयं लिखना चाहता था। लेखकीय हिसाबीपने ने राय दी कि ऐसे अच्छे कथानकों को प्रयोग के चक्के में खराब मत करो। अचानक एक कथानक ऐसा दिमाग़ में आ गया कि मुझे लगा, सारा काम बन गया। लेकिन कथानक मेरा नहीं, मन्नू का था। अगर कहीं मन्नू राज़ी हो जाये तो पन्द्रह दिनों में शायद हमलोग सारा उपन्यास ही लिख डालेंगे। हाँ, यह सुझाव बातचीत में वहीं उभरा था, या लक्ष्मीचन्द्र जी पहले से तय करके आये थे, यह मैं आज भी नहीं कह सकता।

विवाह से पहले की बात है। मैं कलकत्ता छोड़कर दिल्ली चला गया था, और मन्नू एक-एक पत्र में तीन-तीन कहानियों के प्लॉट बताया करती थी। जब तक दूसरा पत्र आता, तब तक वे लिखी जा चुकी होती थीं। एक बार पत्र आया कि 'मैं उपन्यास लिख रही हूँ।' दस दिनों बाद : 'अलग डाक से उपन्यास भेज रही हूँ। अपनी राय दीजिये.... विस्तार से।' मैं दंग! इतने समय में तो मैं एक उपन्यास पढ़ तक नहीं पाता। ख़ैर, उपन्यास पढ़कर मैंने अपनी राय दी। (मन्नू को सिर्फ़ मेरी राय पर विश्वास नहीं था, इसलिए नामवर इत्यादि कई लोगों से और भी राय ली) लिखा : 'इसे खूब धैर्यपूर्वक दुबारा लिखो। अपने वर्तमान रूप में तो यह एक अच्छे उपन्यास का विस्तृत कथानक भर है।' उसकी सारी कथा और हर पात्र पर मैंने विस्तार से लिखते हुए शायद ऐसा भी कुछ लिखा कि : 'इसका नायक तुमसे सँभला नहीं है। अगर नायक वाले हिस्से, उसकी मानसिक स्थितियों का वर्णन मैं अपने कोण से करूँ तो शायद तुम्हें बता सकूँगा कि कैसे होना चाहिए था—पत्र में एक-एक बात कैसे लिखूंगा...!' ख़ैर दुबारा लिखने की ताक़ीद करके उपन्यास का नाम मैंने भेज दिया—'एक इंच मुस्कान!' मगर किसी चीज़ को दुहराने, परिवर्तन-संशोधन करने का धैर्य चूंकि मन्नू में नहीं है, इसलिए डेढ़ेक साल से उसकी पाण्डुलिपि पड़ी थी। मुझे उसी का ख़याल आया इस क्षण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्नू को कैसे मैंने उस उपन्यास के लिए तैयार किया, यह एक अलग कहानी है। उसे स्वयं उसी के मुँह से सुनिये। लेकिन यहाँ परेशानी यह आई कि मैंने जो सुझाव दिया था उसमें उपन्यास के लगभग पचास पन्ने मैं लिखता; यहाँ आधा उपन्यास ही मुझे लिखना था, साथ ही उस हिस्से को मैं अपने ढंग से लिखना चाहता था, और यह भी जानता था कि यह उपन्यास मन्नू के लिए उस 'रफ़' कथानक से एकदम भिन्न होगा, और अन्त में हुआ भी। बहरहाल, हमने पात्रों और परिच्छेदों का बँटवारा कर डाला और लक्ष्मीचन्द्र जी को सूचना दे दी। मैं अपनी कमज़ोरी जानता था, इसलिए अतिरिक्त उत्साह से मन्नू से बोला, "मैं तो अब इसी में जुट पड़ता हूँ। तुम भी मदद दे दो, बस दो महीने में सारा उपन्यास लिख डालते हैं। इसके बाद ये लोग साल भर पत्रिका में निकालते रहेंगे। हम अपने और कामों में लग जायेंगे। इसके बाद कोई चिन्ता नहीं रहेगी।"

लेकिन चिन्ता थी कि पूरे डेढ़ साल एक-एक दिन सिर पर सवार रही। लिखना मेरे लिए शारीरिक और मानसिक यातना है। मैं हमेशा मन में यह विश्वास रखकर अपने से कहता हूँ कि 'उँह, जब चाहूँगा, एक दिन सुबह जमकर बैठूँगा और शाम तक चैप्टर ख़त्म कर डालूँगा!' लेकिन आज तक वह दिन कभी नहीं आया। सुबह सोचता, रात को बैठूँगा और रात को आलस्य में ब्राह्ममुहूर्त में ताज़ा दिमाग़ से काम करने की ठानता। मूड बनाता और पात्रों की स्थितियों, वार्तालापों को सोचता। कहाँ से चैप्टर प्रारंभ होगा? ... कहाँ समाप्त होगा? उसमें क्या-क्या आयेगा? यह सब मन में दुहराता और प्रायः ही सो जाता। महीने की पन्द्रह तारीख को हर हालत में चैप्टर दे ही देना है, यह तय था। दस-बारह दिन जब यों ही अपने से उठापटक करते बीत जाते तो ज़बर्दस्ती मेज़ पर बैठने की आदत डालता। सिगरेटें और कॉफ़ी पीता जाता और मूड बनाने के नाम पर दूसरों की किताबें पढ़ता रहता। पहले दो-तीन पन्ने के बाद लिखना प्रायः आसान हो जाता लेकिन सारे दिन की मानसिक तैयारी और चार-पाँच घण्टों के परिश्रम के बाद चार पृष्ठ से ज्यादा कभी भी लिख नहीं पाता। उसमें भी बीच-बीच में कभी बॉल्कनी में झाँकता, कभी पत्रिकाएँ टटोलता, चिट्ठियाँ लिखता। वे पन्द्रह दिन मेरे किस यातना में कटते, मैं ही जानता हूँ; और जब सोलह-सत्रह तक जैसे-तैसे चैप्टर पूरा हो जाता, तो उन पात्रों, परिस्थितियों के साथ इतना जी चुका होता कि मन होता, इसी प्रवाह में अगला अध्याय भी लिख डालूँ। मन्नू मुझे यों कसरत करते देखकर खुश होती और मज़ा लेती—"इतनी हठ-योग-साधना करके लिखो और वह भी बोर!"

इसके बाद मैं मन्नू को तंग करना शुरू करता कि उसे तो लिखने में कठिनाई नहीं होती, जल्दी से लिख दे तो मैं अपने उसी मूड में अगला अध्याय भी लिख डालूं। लेकिन कुछ-न-कुछ अड़चन ऐसी आती रहती कि मेरे और देवड़ा के लगातार शोर मचाने के बावजूद वही पन्द्रह-सोलह तारीख़ हो जाती, और रो-धोकर चैप्टर पूरा होता। इस बीच मेरा मूड चला गया होता और अपने हिस्से के लिए मैं नये सिरे से शीर्षासन प्रारंभ कर देता। इस प्रकार मैं देखता हूँ कि यह सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय, मानसिक रूप से मुझे कुछ यों बाँधे रहा कि आधा समय मन्नू के चैप्टर की प्रतीक्षा और आधा अपने लिखने की तैयारी। हमलोग लाख सिर पटकें लेकिन अध्याय पूरा होने-न-होने, दूसरे अध्याय का समय सिर पर सवार हो ही जाता। नतीजे में न मैं अपना कुछ और काम कर पाता था, न मन्नू! सारा ध्यान बस इसी में लग गया था। झुंझलाहट भी होती कि डेढ़ साल में क्या ये सात-आठ चैप्टर ही अपना सारा लेखन होगा? गुस्सा आता कि बैठे-बिठाये हम लोगों को भी आखिर यह क्या सूझा? लोग इस प्रयोग की तारीफ़ करते, एक-एक चैप्टर पर अलग-अलग राय मिलती, प्रोत्साहन और विचार-सामग्री मिलती, पाठकों के पत्र—कुछ सीधे, कुछ ज्ञानोदय के द्वारा—मिलते, और मन में बस एक ही बात आती—इन लोगों को क्या पता कि यह प्रयोग हमारे लिए कितना मँहगा पड़ा है। एक साहब ने लिखा: 'साहित्य के इतिहास में दो व्यक्तियों ने मिलकर उपन्यास लिखे हैं, एक के अधूरे उपन्यास को दूसरे ने —कभी-कभी महिला ने—पूरा किया है, पति और पत्नी कथा-लेखक हुए हैं, मगर एक ही उपन्यास के नारी-पात्रों को नारी ने और पुरुष-पात्रों को पुरुष-लेखक ने समानान्तर चलाया हो, ऐसा प्रयोग आज तक शायद किसी भी साहित्य में नहीं हुआ ...!' बहुत बड़े यश का प्रलोभन था; मगर एक लेखन-जीवी व्यक्ति डेढ़ वर्ष में केवल सात चैप्टर लिखे, यह स्थिति किसी भी तरह गले नहीं उतर पाती थी। केवल यश के भरोसे से तो ज़िन्दगी नहीं चलती!

खैर, इन बाहरी और भीतरी संघर्षों के बीच उपन्यास हर मास बढ़ता रहा—बहुत अधिक पाठक मन्नू को, और काफ़ी कम मुझे बढ़ावा देते रहे! पाठकों को चाहे जितना सफल और रोचक लगा हो, लेकिन रचना के आन्तरिक अन्विति में गहरी कमज़ोरी आ गयी है—यह अहसास मुझे लगातार कचोटता रहा। शायद यह इस प्रकार के प्रयोग की कमज़ोरी थी और इसका कोई इलाज नहीं था। डेढ़ साल की अवधि में जाने कितनी तरह के आन्तरिक और बाह्य प्रभावों ने उपन्यास में मोड़ और जोड़ दिये थे, फिर प्रत्येक स्वतंत्र अध्याय को पाठकों की प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रत्याशा ने मर्यादित कर दिया था—अनजाने और अचेतन मन में; उपन्यास के पात्र और कथ्य की स्वाभाविक मांग नहीं, बल्कि पाठकों की सम्मतियाँ और प्रतिक्रियाएँ हर चैप्टर के शैली-शिल्प के निर्धारक हो जाते थे; उसमें भी हर अध्याय टूट-टूटकर चलता। मेरे और मन्नू के हर दो अध्यायों के बीच जाने कितनी रायें आ चुकी होतीं, दूसरे का बिल्कुल अलग कोण-शैली में लिखा एक अध्याय आ चुका होता! व्यक्तिगत आत्मीयता और खींचतान के अनेक अवान्तर क्षणों से हमलोग गुज़र चुके होते और लगभग दो महीने का समय बीत चुका होता। फिर मासिक पत्र की, पाठकों की अपनी सीमाएँ थीं; उन्हें हर बार एक चीज़ ऐसी देनी थी जिसका एक प्रारम्भ हो, एक अन्त हो और जिसमें एक क्लाइमैक्स आये। अगर एक साथ ही उपन्यास लिखकर दे दिया होता तो शायद ऐसी मानसिक मजबूरी न आती। अब तो शायद एक साथ पढ़ने वाले को यह दो साइज़ के कैमरों से खींचे गये चित्रों का एलबम अधिक, एक सूत्रबद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़िल्म कम लगे। दूसरे या तीसरे अध्याय पर ही मुझे एक और स्तर पर लगने लगा कि उपन्यास हमलोग नहीं लिख रहे--हमसे लिखाया जा रहा है; पाठकों की अप्रत्यक्ष प्रत्याशा हमसे लिखा रही है। आँखों और कानों से एक-एक शब्द, मुद्रा को पीने वाले श्रोताओं और दर्शकों की विपुल उपस्थिति जिस प्रकार वक्ता और अभिनेता को अनजाने ही अपने साथ बहा ले जाती है, वही कुछ स्थिति हमारी थी। यहाँ भी बहकने और भटकने के अवसर मन्नू को ही ज्यादा थे क्योंकि वह निस्संदेह मुझसे अधिक सरस और रोचक लिख रही थी। अन्त में दो-तीन अध्यायों में तो सचमुच मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मन्नू के हर अध्याय के बाद की तालियों की गड़गड़ाहट मेरा दिल घसका देती है।

उपन्यास की भावात्मक और वैचारिक अन्विति की दृष्टि से देखता हूँ तो मुझे लगता है कि इन तालियों की गड़गड़ाहट ने मन्नू को भटका भी दिया। वक्ता अपने भाषण में किसी चुटकुले या मज़ाक पर पुरजोश तालियाँ पाता है तो ख़ुदबख़ुद (कभी-कभी विषय से हटकर भी) दूसरा चुटकुला सुनाने का प्रलोभन मन में आता है। यह प्रलोभन बड़ा सूक्ष्म लेकिन अचूक होता है। मेरे पास सिर्फ़ अमर था--जबकि मन्नू के पास रंजना और अमला दोनों थीं--और संयोग से दोनों दो विरोधी स्वभाव और परिवेश की थीं; अतः हर अध्याय में मन्नू एक सुखद विविधता और रोचक घटनाएँ दे सकती थी। फिर उसकी आत्मीय शैली और निर्भीक अन्दाज़। दूसरी सुविधा मन्नू को अनायास ही मिल गयी कि अमला और रंजना परिस्थितियों में अधिक और मनस्थितियों में कम जीवित रहती थीं। तीसरी बात यह कि दोनों ही प्रताड़ित नारियाँ थीं--अमला को उच्चवर्ग की विडम्बना ने मारा था और रंजना को एक 'सनकी' की प्रवंचना ने--अर्थात् पाठक दोनों को सहानुभूति दे रहा था, और अन्तिम बात यह कि तालियों के शोर में बहकर मन्नू ने एक डिफ़िनिट स्टैण्ड ले लिया था और वह लेखक की तटस्थता से नहीं, बल्कि वकील की पक्षधरता से 'अपनी रंजना' की पैरवी करने लगी थी, डिफेन्डर हो गयी थी।

मेरे और मन्नू के लेखन में यही मौलिक अन्तर भी है। वह कथा के पात्रों के साथ इतनी अधिक एकाकार हो जाती है कि उनका 'दुर्भाग्य' उसे अपना 'दुर्भाग्य' लगता है। उपन्यास का अमर रंजना का शत्रु नहीं, मन्नू का शत्रु हो गया था और वह कथा की समस्याओं और संभावनाओं के प्रति ईमानदार न रहकर 'अमर' की' ख़बर लेने' पर अधिक उतारू हो गयी थी। जबकि मुझे अपने किसी भी पात्र से ऐसा कोई लगाव नहीं था। इसलिए मन्नू के अध्याय पढ़कर जब लोग कहते कि 'अब तो मन्नू जी ने ऐसी जगह चैप्टर छोड़ा है कि अमर को बचाना आपके लिए बहुत कठिन हो जायेगा।' तब मैं उन सज्जन को यही समझाने की कोशिश करता कि, "मैं आखिर अमर को बचाऊँ क्यों?... उसे मैं खलनायक नहीं बनाना चाहता, लेकिन यह उम्मीद भी पाठक से क्यों करूँ कि वह अपनी सहानुभूति देगा ही। अगर यह सचमुच आज के संक्रांतिकालीन बुद्धिजीवी की ट्रेजेडी और व्यक्तित्व का स्खलन है तो क्यों न उसकी सम्पूर्णता में चित्रित हो...? अगर रंजना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का केस—कथानक की तर्कपूर्ण संगति से नहीं, उसकी शहादत और पाठकों की सहानुभूति से ही मजबूत होता है तो हो, मुझे जो बात कहनी है,उसे मैं अपने पात्र के व्यक्तित्व के अनेक स्तरों और धरातलों पर तटस्थ होकर पाने की कोशिश करूँगा,....ताकि अमर की पराजय एक व्यक्ति की नहीं, एक पीढ़ी की पराजय होकर आये ! चाहे फिर वह राह खो जाने की व्याकुलता में भटक गयी पीढ़ी के नाम से ही क्यों न जानी जाये ... !"

और यहीं उपन्यास का वह कोण या धरातल था जहाँ मन्नू मुझे अपनी जानकारी में असहयोग और अनजाने ही सहयोग दे रही थी। मेरे लिए उपन्यास 'एक प्रबुद्ध व्यक्ति के आत्मान्वेषण' की सफल या असफल प्रक्रिया थी, और मैं उसे हर बार परम्परागत 'त्रिकोणवादी' उपन्यासों से अलग हटाने की कोशिश करता था। शायद भीतर कहीं यही आशंका थी कि प्रारंभ-कर्ता का सुअवसर पाते ही मैंने उसे सिंहावलोकन का रूप दे दिया और कोशिश की थी कि इस अतीत-यात्रा में अमर अपने-आपको, और अपने व्यक्तित्व के निर्माण-तत्वों को तटस्थ संदर्भ और निष्पक्ष परिवेश में ही देखे—एक अलग व्यक्ति की निगाह से अमर—रंजना-अमला के संबंधों और उनकी स्थिति के अर्थ को पाये—शायद यही कारण है कि मेरा हर अध्याय किसी-न-किसी रूप में अन्तरावलोकन का गवाक्ष, या दो घटनाओं के बीच का अन्तराल बनकर आया है, अर्थात् क्रियाओं का नहीं, प्रतिक्रियाओं का समाहार अधिक है। यहाँ क्रियाओं का भार स्वयं लेकर ही मन्नू ने मेरा काम बहुत सरल कर दिया।

वस्तुतः रंजना और अमला, अमर के निकट दो सम्पर्क नहीं, दो स्वतंत्र मूल्य हैं, और इन मूल्यों की संगति का निरूपण ही अमर का आभ्यन्तरिक (स्पिरिचुअल) द्वन्द है ! उपलब्धि की 'महानता' और 'क्षुद्रता' से कलाकार की कला-यात्रा को न जाँच कर, प्रयत्न की निष्ठा और अभिव्यंजना की व्याकुलता को कसौटी बनाया जाय तो इन दोनों मूल्यों को शायद कुछ समझा जा सकेगा। निश्चय ही अमर खंडित-व्यक्तित्व प्राणी है और उसका आन्तरिक व्यक्तित्व दो भागों में बँटा है—प्रेम, विवाह, सुख-सुविधा के परम्परागत् संस्कार—कभी-कभी उन्हें प्राप्त करने की चाह, अर्थात्—एक मानवीय नैतिकता-बोध, दूसरी ओर स्रष्टा व्यक्तित्व की उच्चतर मुक्ति-कामना। एक के प्रति वह उपेक्षा नहीं धारण कर सकता तो दूसरे की पुकार को भुलाना उसके वश के बाहर है। रंजना के साथ सब कुछ है—सहानुभूति, संस्कार, समाज और स्वयं अमर की नैतिक चेतना। अमला के पास कुछ भी नहीं है—सिवा एक प्रवंचक मुस्कान के। यही मुस्कान — मर्यादाबद्ध अभिव्यक्ति—ही अमला है और मालूम नहीं, यह मुस्कान है भी या नहीं। अमर के मन का भ्रम ही है। लेकिन जब होती है तो चेतना के अनजान आसमानी द्वार-संधि से झाँकती ज्योति-रेख बन उठती है और अमर के मन का सौंदर्यानुसंधानी आदि यायावर जाग उठता है—जो न जाने कितनी बार चाँद को छू आने के प्रयत्न में नीचे आ गिरा है और एवरेस्ट पर पहुँचने से पहले न जाने किन-किन वंशों में बर्फ़ की शिलाओं में दब मरा है—और न कहीं पहुँच सके, लेकिन इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्रांति की घुटन को अभिव्यक्ति देकर 'मुक्त' तो हो ही ले ...

उपन्यास समाप्त हो गया और निश्चय ही अमर कहीं नहीं पहुँचा। अगर पहुँचा तो उस मंज़िल तक जिसके आगे राह नहीं—कम-से-कम धरती नहीं है—है तो सागर है और वहाँ मेरी गति नहीं है।

अमर को कुछ नहीं मिला—शायद यह यात्रा 'पाने' की यात्रा थी भी नहीं, 'खोने' की भी नहीं थी—केवल देखने, जीने और अपने को जानते चलने की दिशा में सिर्फ़ एक पड़ाव था—सिर्फ़ एक अभिव्यक्ति का संतोष और मुक्ति का सुख था।

अमर अगर असफल है तो रहा आये, मैं उसकी वकालत नहीं करूँगा। असफलता, लौकिक अर्थों में शक्ति-हीनता का या संकल्प-हीनता का प्रमाण है और जो व्यक्ति क्रूरता-पूर्वक निर्णय न लेकर वेदना-संवेदना के लिहाज़ में भटक जाता है, वह निश्चय ही संकल्पहीन है—उसे गालियाँ खाने का पूरा अधिकार है कि क्यों नहीं वह अपनी सिद्धि और साधनों का क्रमबद्ध, स्पष्ट ब्योरा दे सकता। हीरो तो वही है न, जिसके सामने उसका 'प्राप्य' स्पष्ट हो, और वहाँ तक पहुँचने की सीढ़ियों की पूरी गिनती उसे ज़बानी याद हो। उस व्यक्ति को तो हीरो होने का हक़ ही नहीं है जिसे न तो अपनी सिद्धि का ज्ञान हो न साधनों का —बस कहीं पहुँच जाने की, किसी बोझ से मुक्त हो जाने की अनाम-तड़प ही जिसका बल-सम्बल हो। ● ● ●

गोदान का लेखक

क्लास में छात्रों से पूछे गये प्रश्नों का एक भी उचित उत्तर न पाकर अध्यापक की मुद्रा कठोर हो गयी। उन्होंने एक छात्र से कड़े लहज़े में अन्तिम प्रश्न किया, "बताओ सुधीर, 'गोदान' किसने लिखा है?"

लड़का भयभीत-सा बोल पड़ा, "सर, मैं.... मैंने नहीं लिखा है।"

ऑफ़-पीरियड में अध्यापक ने जब अपने एक सहयोगी शिक्षक को यह कथा सुनायी तो वह 'हो-हो' कर हँस पड़े और बोले, "बड़ा, शैतान लड़का मालूम पड़ता है! ज़रूर उसी ने लिखा होगा!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ

मध्य युग के रसिक कवि विद्यापति और राजा शिवसिंह तथा रानी लखिमादेइ के सम्बन्धों पर, प्रचलित इतिहास और किंवदन्तियों का आधार लेकर, इस एकांकी में नया प्रयोग किया गया है, और संस्कृत नाटकों में आये कुछ पात्रों तथा रचना-शिल्प का नये प्रकार से उपयोग हुआ है।

सूत्रधार : चौदहवीं शताब्दी की मिथिला की एक साँझ....

पारिपार्श्वक : जब विद्यापति के देसिल बयन वाले गीत अन्तःपुर से लेकर ग्रामांचलों में बसी कोकिल-कंठी रमणियों के बीच गूंजने लगे, तभी वीर-योद्धा राजा शिवसिंह और कुँवरि लखिमा ठकुरानी ने राधा-कृष्ण के लौकिक प्रेम-शृंगार की माधुरी-धारा बहायी। कवि विद्यापति 'अभिनव जयदेव' की उपाधि से विभूषित किये गये।

सूत्रधार : हाँ पारिपार्श्वक ! मिथिला की राजधानी गजरथपुर में शिवसिंह भूप ने वीरता, रसिकता और लोक-माधुरी से जनता के जीवन को नया संदेश दिया था। राज कवि विद्यापति द्वारा रचित राधा-कृष्ण के संयोग शृंगार और विप्रलंभ के पदों से अन्तःपुर गूंज उठा। नूपुरों को बाँधे आलता-रंजित चरण नृत्य से थिरक उठे। रानी लखिमादेइ कवि-मानसी की प्राण-प्रिया हो गईं। राजा शिवसिंह जानते थे कि विद्यापति की कविता कहाँ मीठी विश्रांति पाती है और वे इससे प्रसन्न थे।

बुझते दिये और टूटते तारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शिवसिंह के महल का एक भवन) किसी की प्रतीक्षा में शिवसिंह का चलते हुए टहलना। दूर ढोल, दंदुभि, तुरही की सम्मिलित आवाज़ें युद्ध के वातावरण का आभास देती हैं। अचानक कई अश्वों की टापों के सम्मिलित स्वर तथा भालों के खनकने की आवाज़ें। सेनापति समरसिंह का प्रवेश)

सेनापति : महाराज की जय हो! निवेदन है कि दिल्ली के बादशाह तुगलक के साथ बंगाल के नवाब की फौजें भी मिल गई हैं। उन्होंने पश्चिम में गंडक तथा पूर्व में कोसी को पार कर लिया है!

शिवसिंह : अच्छा! तो वे तीन ओर से बढ़ रही हैं! रजा-बनौली का मार्ग, नेपाल की सीमा की गढ़ियाँ तो सुरक्षित हैं न?

समरसिंह : सुरक्षित हैं महाराज! वहाँ सिमराबगढ़ के धनुषधारी तैनात हैं!

शिवसिंह : हूँ, **(कुछ सोचते हुए)** और रजोखरि पोखर? कमला नदी के किनारे के धान के खेत?

समरसिंह : वहाँ...

शिवसिंह : (संतुलित वाणी में) वहाँ से मैं स्वयं प्रवेश करूँगा, शाही फौज के पड़ाव में! किन्तु सेनापति, वे धान के खेत, पोखर के कमल न रौंद डाले जायँ। पदान्तिक सेना कूच करने में किसानों की जीविका छीने, यह रानी ठकुरानी भी नहीं सुनना चाहेंगी।

समरसिंह : आज्ञा शिरोधार्य है। एक निवेदन है.... **(रुक-रुककर)** शाही फौजें जब बढ़ती आ रही हैं.... खेतों को उजाड़ती और गाँवों को जलाती हुई, मदांध, तब आज का वसंतोत्सव...?

(युद्ध के बाजों की ध्वनि शांत हो जाती है)

शिवसिंह : (मध्यम हास्य) समरसिंह, ठीक कहते हो; आज के दिन भी यह उत्सव? **(रुककर)** लेकिन लोक-जीवन का उल्लास कैसे रुकेगा? प्रजा क्या सोचेगी कि वीर-योद्धा और कलाविद् महाराज शिवसिंह हताश हो गये! मैं तो कहूँगा कि रजोखरि के उन लाख कमलों को पूरा खिल जाने दो, जिनमें मिथिला की रमणियों के मुख उनकी अंजलि में ढँक सकें। आज तो भवनों के सारे मृदंग-मादल, वंशियों को बजा दो। **(क्षणिक संगीत)** आज कवि-कंठ महाराज पंडित ठक्कुर श्री विद्यापति को मिलन के, आनन्दोल्लास के गीत गाने दो....। हम इसी राजमार्ग से विजयी होकर आयेंगे।

समरसिंह : लेकिन....

शिवसिंह : नगर सूबेदार को मैंने समुचित प्रबन्ध का निर्देश दे दिया है। मैं अवश्य आऊँगा, विजयी होकर; तुम मेरे साथ होगे। महाराजा कीर्तिसिंह, वीरसिंह, भवसिंह और देवीसिंह को धारण करने वाली मिथिला भला सुल्तानों से डरेगी? **("नाचहु रे तरुनी तजहु लाज आएल वसंत ऋतु बनिक राज॥" गाती हुई स्त्रियों की टोली का नेपथ्य में चलता हुआ संगीत—पदचाप)** सेनापति, गोपुर पर आकर ज़रा सुनो!

("आएल रितु पति राज बसंत। धाओल अलिकुल माधल पंथ।"—गाते हुए पुरुष-स्त्रियों के स्वर तेज होते जा रहे हैं)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनापति सिंह, भला राजा शिवसिंह कहीं इस उल्लास को रोक सकेंगे ? सेनापति, शीघ्र जाओ और मेरे अभियान की तैयारी करो !

समरसिंह : महाराज चिर विजयी हों ! जब स्वयं महाराज इतने कलाविद् हैं तो जनता में कला क्यों न अमर होगी । (प्रस्थान। घोड़ों की टापों का द्रुतगामी स्वर)

●

(मंजीरों और शंखों का उठता हुआ संगीत)

चन्द्रमुखी : (नेपथ्य में) ओरे ऽ साँवले कहारो, पालकी हौले-हौले उतारो । इस ढाँके हुए स्वर्ण-खचित केशरिया आवरणों से झिलमिलाते चम्पा और पलाशों की मालाएँ न उलझ जायें.... ! यह लो, कंगन और नूपुर न बज जायँ । आज महारानी ठकुरानी कुँवरि महाराज से मिलने आई हैं । अभी वे उद्यान में पुष्पधन्वा मदन की मूर्त्ति के हाथों में शोभित धनुष में पंचफूलों का धनुष रखेंगी, उनके सुकोमल चरण-कमलों के आघातों से पुष्प-पल्लव-हीन वृक्ष असमय ही फूल उठेंगे । ....इसी दोहद क्रिया के साथही युवक-युवतियों का मादक उल्लास, नृत्य-गान, उत्सव आरम्भ हो जाएगा ।.... लो, महारानी उतरने लगीं । (नूपुर-ध्वनि--लखिमा ठकुरानी का प्रवेश)

लखिमा ठकुरानी : सखि चन्द्रमुखी ! महाराज भवन में नहीं हैं क्या ?

चन्द्रमुखी : महारानी की इतनी प्रबल उत्सुकता है ? अरे, प्रतिहारी, देर न करो, जाओ श्रीमान महाराजा को सूचित करो कि मिथिला की महारानी ठकुरानी, श्याम वनमाली की मुग्ध वैष्णव गोपी, महाराज की प्रतीक्षा कर रही हैं । तब तक मैं इनकी लाल ओढ़नी को ठीक करूँ; पसीजी एड़ियों के आलता को गाढ़ा कर दूं । अरे, मस्तक की लाल कुंकुम बिन्दी भी गीली.... (**दूर जाते हुए पदचापों की ध्वनि**) हो गई है !

लखिमा ठकुरानी : (उद्विग्न-सी) चन्द्रमुखी, (चारों ओर देखकर) और कोई नहीं है । (साँस खींचकर) ठीक है, जाओ, ज़रा पश्चिमी भवन के उस द्वार को बन्द कर दो ! (**जाने और द्वार बन्द करने की ध्वनि**) आओ ! और कोई नहीं है ?

चन्द्रमुखी : हाँ कोई तो नहीं है । महारानी, आप चिंतित क्यों हैं ?

लखिमा ठकुरानी : नहीं-नहीं, चन्द्रमुखी, तू तो जानती है सखि....

चन्द्रमुखी : राजसभा की वह घटना ?

लखीमा ठकुरानी : कौन-सी ?

चन्द्रमुखी : (धैर्य खोकर) मुझे याद है, महारानी तीन दिन तक नहीं सो सकी थीं। दुर्गा भवानी के मंदिर के शाक्त ब्राह्मण-पुजारियों की वाणी में घोर संदेह और प्रपंच भरा था--जब वे कानाफूसी कर रहे थे कि रानी ठकुरानी कवि-रंजन विद्यापति के साथ पहर गये वार्ता करती हैं, एकान्त में अन्तःपुर में केटी नर्तकियों के द्वारा उनके गीत सुना करती हैं, झीने पर्दों से ढँकी देहरी पर आकर खड़ी हो जाती हैं और उस पार गाते हुए कवि-शेखर को नेत्रों को मूंदकर सुना करती हैं....और महाराज....

लखिमा ठकुरानी : पुरुष कितने शंकालु होते हैं ! लेकिन मेरी आत्मा तो राधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसी निर्मल है ! महाराज स्वयं जानते हैं ! देवरानी कुँवरि भी....

(उदास हो जाती हैं)

चन्द्रमुखी : (उलझन के साथ) महारानी, आपकी दशा ठीक नहीं है; आप विश्राम करें, मैं शीघ्र ही....

लखिमा ठकुरानी : नहीं चन्द्रमुखी, मुझमें साहस है । मैं रूढ़िवादी ब्राह्मणों और राज-सभा के दुर्भेद्य षड़यन्त्रों का सामना करूँगी ।

चन्द्रमुखी : महारानी, आप विश्राम करें । मैं शीघ्र ही....

लखिमा ठकुरानी : नहीं चन्द्रमुखी, आज मेरी आत्मा का आलोक मुझे मिला है । जाओ महाराज, को ....

(द्वार पर दस्तक द्वार खुलता है। चिंतित से महाराज का प्रवेश--पदचाप)

शिवसिंह : (सहर्ष आश्चर्य) अरे, लखिमा ठकुरानी !

लखिमा ठकुरानी : (विकलता से) क्या मेरे आने में देर हुई नाथ ? मैंने कोई बाधा तो नहीं डाली ?

शिवसिंह : (उपचार भरे स्वर में) नहीं रानी ! (साश्चर्य) लेकिन आज तुम विकल हो ? चन्द्रमुखी, साक्षात मदन कान्ता रति-सी रमणीय शिवबल्लभा महारानी लखिमा देई के आगमन के हर्ष में सब रत्नदीप जला दो, वह दीवार के पास वाला द्वीप, वह तरकशों के निकट वाला दीप भी,....वहाँ भी जलाओ, हाँ-हाँ....वहाँ भी,....अमर प्रेम की कविताओं वाली कीर्तिपताका के ऊपर भी...र धा-कृष्ण की मथुरा मूर्ति के सामने भी....मेरे कवच के पास भी....और यहाँ मुख्य रत्नदीप रखो !.... (रखने की आवाज़ें) तुम साक्षात् वसंत

मौलिक और नयी कविता

कहते हैं, धारा नगरी के राजा भोज बड़े काव्यानुरागी थे। उन्होंने यह घोषणा कर रखी थी कि जो कवि उन्हें अपनी मौलिक और नयी पद्य-रचना सुनायेगा, उसे एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ दी जायेंगी, लेकिन रचना मौलिक और नयी नहीं होने पर कवि को जेल भेज दिया जायगा ।

स्वर्ण-मुद्राओं के लोभ में कविगण अपनी श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ रचना राजसभा में सुनाते, लेकिन रचना पुरानी अथवा अमौलिक घोषित कर दी जाती एवं इस अपराध में कवि को तत्काल ही जेल भेज दिया जाता ।

बात यह थी कि राजा की सभा में नौ पण्डित थे जिनके नाम क्रमशः एकपाठी, द्विपाठी, त्रिपाठी, चतुर्पाठी, पंचपाठी आदि थे। श्रीएक-पाठीजी की यह विशेषता थी कि किसी भी नयी-से-नयी रचना को एक बार सुन लेने के बाद वे उसे शब्दशः दोहरा सकते थे। अतः जब कोई भी कवि अपनी नयी कविता सुनाता, एकपाठीजी कहने लगते, "महाराज ! यह कविता तो मैंने पहले भी कहीं सुनी है, मुझे पूरी तरह स्मरण है।" और वे सम्पूर्ण कविता अक्षरशः दोहरा देते ।

अब राजा साहब द्विपाठीजी से पूछते। दो बार सुन लेने के कारण उन्हें भी यह रचना कण्ठस्थ हो जाती और ये भी करीब-करीब उसी बँधे-बँधाये लहजें में रचना को पुरानी घोषित कर दोहरा देते । इस क्रम से सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री....

लखिमा ठकुरानी : महाराज, लगा कि माला को गले तक अर्पित होने में देर हो गई !

में समझी....

शिवसिंह : (तुरंत) मैं तो समझता हूँ, लखिमा ठकुरानी कवि-रंजन, कवि-कंठहार की मीठी पदावली की उत्प्रेक्षाएँ कह उठी हैं। ठकुरानी, मुझे ही आने में देर हुई है। एक ओर यह वसंत-उत्सव और गजरथपुर के राजमार्गों का उल्लास, और (गंभीर उदात्तता से) दूसरी ओर शाही फौज, जिनकी दूरी केवल पाँच कोस रह गई है महल से !

लखिमा ठकुरानी : (साश्चर्य) ऐं महाराज; और इस दासी को पता भी नहीं ?

शिवसिंह : तुम दासी नहीं ठकुरानी ! बावरि राधा, राजपूत सामंत और ब्राह्मण षड्यंत्रों में हैं, प्रजा विद्यापति के शृंगार-रस की यमुना में मुग्ध है लेकिन मुझे तो शाही फौज के अश्वारोहियों को सीधे बेधना है, पैदल फौज के व्यूह को तोड़ना है !....

लखिमा ठकुरानी : यह क्या कह रहे हैं आर्य ! (कुछ घबरायी-सी) विद्यापति... (बदल कर) महाराज, क्या आप मुझसे रुष्ट हैं ? क्या कवि-रंजन से असंतुष्ट हैं ?....

शिवसिंह : (मध्यम हास्य) लखिमा, नारी-हृदय विश्वास खोकर पल भर भी नहीं जी सकता। तुम तो मेरी रानी हो ! कवि-रंजन मेरे राज-कवि ही नहीं, अभिन्न मित्र भी हैं।

लखिमा ठकुरानी : (उसी चिंता से) महाराज, मुझ पर विश्वास करते रहेंगे न?

शिवसिंह : लखिमा रानी, तुम्हारी दशा ठीक नहीं है ! बेहद अशांत, विकल ! देखो,

---

पंडित उस कविता को अमौलिक और पुरानी घोषित कर देते।

संयोगवश कवि कालिदास को इस रहस्य का पता चल गया और उन्होंने एक अत्यन्त साधारण स्तर के ब्राह्मण को एक पद्य रचकर रटा दिया तथा कहा कि राजा की सभा में इसे सुनाओ। आगे क्या करना होगा, इस सम्बन्ध में भी आवश्यक निर्देश दे दिये।

ब्राह्मण ने जो रचना सभा में सुनायी उसका आशय यह था :

"हे बेटा भोज ! मैंने अमुक पंडितजी से (रचना सुनाने वाले ब्राह्मण के पिताजी का शुभनाम) नौ लाख स्वर्ण-मुद्राएँ ऋण स्वरूप ली हैं। हम दोनों के बीच यह तय हुआ है कि यह ऋण की रकम तुम इनके चिरंजीव को, (रचना सुनाने वाले पंडित का नाम) जब भी वे तुम्हारे पास माँगने आवें, दे दोगे। इस व्यवहार के साक्षी मेरी सभा के नौ पंडित गण हैं।"

स्पष्ट है कि यह रचना पुरानी बतायी जाती तो राजा को नौ लाख स्वर्ण मुद्राएं देनी पड़तीं; सो आठ लाख की बचत के लिए पंडितों को विवश होकर इसे मौलिक और नयी रचना स्वीकार करनी पड़ी।

ब्राह्मण ने पुरस्कार में स्वर्ण-मुद्राओं के बदले जेल में पड़े कवियों की रिहाई माँगी।

—घ लश्याम देवड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातायन के पार वसंतोत्सव के मिलन और उल्लास में मुग्ध तरुण-तरुणियाँ राजमार्ग पर हमारी प्रतीक्षा कर रही होंगी ! पुष्पधन्वा मदन की मूर्त्ति तुम्हारे करों से मादक बनाये गये पंचवाण की प्रतीक्षा कर रही होगी। कमला नदी के वन तुम्हारे दोहद-दान की प्रतीक्षा में होंगे। अरे, मैं तो भूल गया (**तीन बार ताली बजाकर**) चन्द्रमुखी ! जाओ कवि-रंजन महाराज पंडित ठक्कुर श्री विद्यापति को सूचना भेजो कि श्री रूपनारायण महाराजाधिराज और महारानी उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं !

चन्द्रमुखी : जैसी आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

लखिमा ठकुरानी : महाराज एक विनती करती हूँ। (**रुककर**) मुझे आप युद्ध में ले चलिए।....

शिवसिंह : लखिमा रानी, निस्संदेह आज तुम्हारे मन में प्रबल अशांति है !.... लेकिन तुम्हारी अशांति का कारण क्या है ?....अरे लो, तुम मेरी गोद में झुक गईं ! नयनों का काजल बह उठा है। मस्तक के विशेषक पसीज कर धुल रहे हैं। अरे....

लखिमा ठकुरानी : (**उत्तेजित**) मेरे महाराजा ! मेरे देवता ! (**काँपती वाणी में**) ये जो ब्राह्मणों के कलुषित प्रचार, सामंतों के कलंक....ये....ये....प्रजा की रूढ़ियाँ....क्या नारी का गौरव इतना तुच्छ है महाराज.... ?

शिवसिंह : (**आश्चर्य और उत्तेजना से**) मगर लखिमा, तुम्हें यह सब मालूम कैसे हुआ ? मैं तो तुम्हारे हृदय की महानता को पहचानता हूँ। मुझे कोई उलाहना नहीं है। मुझे मालूम है कि विद्यापति तुम्हारे लिए प्रेम का सत्य हैं और तुम (**मधुर संगीत**) विद्यापति की काव्य-मानसी !

लखिमा ठकुरानी : (**पीड़ा भरी चीख से**) मेरे महा-रा-ज !

शिवसिंह : मेरी रानी, (**गंभीर वातावरण**) मैं जा रहा हूँ। लेकिन इन उड़ती हुई कलुषित बातों को कवि-रंजन के कानों तक न जाने देना ! ....और मेरे निर्देशों को मानना। यदि तुम इन दो आदेशों को भंग करोगी तो मैं अज्ञात दिशा में दूर चला जाऊँगा, और कभी नहीं आऊँगा ! (**प्रस्थान**)

लखिमा ठकुरानी : (**घबराहट से**) महाराज ! (**ज़ोर होती आवाज**) महाराज.... ! (**दूरागत ध्वनि**) म....हा..... रा....ज.... !

●

परिपार्श्वक :

सुन्दर रेशमी वेशभूषा पहने हुए मैथिल-कोकिल—कवि-रंजन विद्यापति आ रहे हैं। उन्नत ललाट पर त्रिपुण्ड, कानों में कुंडल, घुटनों तक लटकता हुआ केशरिया उत्तरीय, फुँदियोंदार ढीला कुर्त्ता, बायीं कलायी पर गुंथी हुई चम्पा की मालाएँ, अनेक चुन्नटों वाली लाल किनारी की झीनी धोती उनके मनोहारी व्यक्तित्व को पाण्डित्य और रसिकता से शोभित कर रही है)।

(**शंखों की ध्वनि—प्रतिहारियों की पुकारें—कवि-रंजन आ रहे हैं**)

विद्यापति : श्री भवानी भक्ति भावना परायण रूपनारायण महाराजाधिराज श्री शिव-सिंह देव को कवि विद्यापति प्रणाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। महारानी राधास्वरूपा लखिमादेइ ठकुरानी कुँवरि को भी कवि विद्यापति प्रणाम करते हैं !

शिवसिंह एवं लखिमा ठकुरानी : स्वागत ! महाराज पंडित ठक्कुर 'अभिनव जयदेव' कवि-रंजन श्री विद्यापति ! पधारिए, आसन धारिए !

शिवसिंह : मित्र-कवि, इस वसंतोत्सव के उल्लास के मध्य हमारी सेनाएँ राजपथ से जा रही हैं। एक ओर जनता की सर्जना है, दूसरी ओर आततायी का विनाश !

विद्यापति : महाराज, मुझे मालूम है। फाल्गुन की इस हेमवती संध्या में एक ओर मत्त भ्रमर मालाएँ मिथिला-युवतियों की अलकों में गुंथ रही हैं, कोकिलाओं की कूकें युवकों के हृदयों को वाण-विद्ध कर रही हैं, दूसरी ओर मेघों के गर्जन जैसी ढोल, विद्युत्-दामिनी-सी तलवारों की चमक, वर्षा-बौछार-सी अश्वसेना की ध्वनियाँ, दुंदुभियों की ललकारें वीर योद्धाओं की भुजाएँ फड़का रही हैं। महाराज स्वयं भी इसी राज-मार्ग से युद्ध करने जा रहे हैं। **(रुककर)** महाराज, जिस कवि ने राजा शिवसिंह और रानी लखिमा देइ को काव्य-माधुरी का मादक रसपान कराया है, आज वह युद्ध में जाने को प्रतिश्रुत है।

शिवसिंह : कवि-रंजन, तुम्हारी आयु अनन्त हो। **(साश्चर्य)** यही कामना तो रानी ठकुरानी की भी है !

शिवसिंह : (आत्मीयता से) श्री विद्यापति, सामने के इस मार्ग को देखिए। चार कोस दूर लहलहे-पके खेतों को रौंदती हुई, गाँवों को जलाती हुई शाही फौजें बढ़ी आ रही हैं ! **(रुककर)** कवि-रंजन, सामने इसी मार्ग से जाकर मेरी सेना आततायियों के व्यूह को छिन्न-भिन्न करेगी। अभी-अभी मैं सेना का निरीक्षण करके लौटा हूँ। हाँ, आप पर.... तुम पर तो मैं अपनी प्राण-वल्लभा का भार सौंपूंगा !.... कौन जाने ....

लखिमा देइ : (पीड़ा से) महाराज !

विद्यापति : महाराज !.... परन्तु जनता, पुरोहित, सामंत, रानी.... सब....

लखिमा देइ : (घबराहट से टोककर) कवि-रंजन !

शिवसिंह (गंभीरता से) कवि-शेखर ! लखिमा ठकुरानी आज अशांत हैं,—अपनी अमृत वाणी इनके कानों में घोलो ! तुम्हारी वाणी में तो जयदेव की विलासिनी राधा प्रेम-विह्वला मुग्धा नायिका हो गई है। आज लखिमा ठकुरानी का ही नख-शिख वर्णन कर दो, कवि-रंजन ! तुम्हारी कविता मनुष्य के प्रेम और सौन्दर्य को ही नहीं, आने वाली शताब्दियों तक स्वयं मुझे और प्रवीणा लखिमा देइ को भी अमर कर देगी।

विद्यापति : (तन्मय होकर) यौवनोन्मत्त वियोगी राधा के रूप और यौवन-वर्णन की क्षमता किस कवि में है ? राधा-रानी विकल हैं क्योंकि वे दूसरी नारी के पति पर आसक्त हैं, एक ओर मर्यादाएँ और कर्त्तव्य, दूसरी ओर प्रेम और मिलन, आनन्दोल्लास के दर्शन की प्यास ! क्षण-क्षण पतली बाँस-वंशियों जैसी कंपित उनकी देहलता में स्मरण, स्वेद, अभिलाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्च्छा, व्याधि, उद्वेग, प्रलाप, जड़ता, उन्माद की दशाएँ द्रुतगामी क्वाँर-मेघों के समान आती-जाती हैं....तो महारानी लखिमा ठकुरानी...

लखिमा ठकुरानी : हँअ !....

विद्यापति : (**उन्मेष में**) राधा के जूड़े-बन्ध में गुंथी हुई मालाएँ मानों मेघ-माला के बीच घूमती हुई हंस-पंक्ति हैं, जो नयनों के नीले मानसरोवर में उड़ जाएँगी। रसभरे ओठों की पंक्ति मुख-कमल के साथ खिले हुए मधुरी के लाल फूलों की कतार है। पीन-पयोधियों के ऊपर झूलता हुआ लाल उत्तरीय तो अग्नि की लपट हो गया है, जो कामदेव को भी भस्म कर देगा। राधा के मस्तक पर चंदन के विशेषक रचे हुए हैं, कुंकुम की बड़ी-सी बेंदी ऐसी लगती है मानो ऊषा किरणों के रथ में अपने प्रियतम सूर्य को बैठाकर कानों की लाली की गोधूलि में छिप जायेगी। लाल चरणों में पड़ी पायलें संध्या में उगते हुए तारों की तरह झिलमिल हैं—वासती साड़ी में लिपटी देह-लता साक्षात् वसंत का तीर मालूम होती है। हे माधव, हे हरि, राधा का यह अपूर्व रूप निहारते हुए नयन कभी तृप्त न होंगे।

शिवसिंह : रानी, अपने कवि-रंजन के कण्ठों में जयमाला डालो ! (**लखिमा अपने कण्ठ से एक माला निकालकर शिवसिंह के कण्ठ में डालती हैं**) यह तो मेरे गले में डाल दी तुमने ! (**लखिमा दूसरी माला निकालकर विद्यापति की ओर जाती हैं**) हाँ, जाओ-जाओ ! अपनी यह दूसरी माला कवि-रंजन को अर्पित करो ! ....अरे लौट क्यों आईं ?—जाओ !....फिर लौट आईं ?....जाओ रानी !.... (**आश्चर्य से**) पुनः लौट आईं !! जाओ, आज कवि के सामने साक्षात् उनकी मानसी-गौरी आसीन है। 'मैं'-'तुम' के बीच अब 'मैं' नहीं !

लखिमा ठकुरानी : (**दबे संयम के बाँध को मंद चीत्कार से तोड़कर**) महाराज ! (**दूसरी माला भी शिवसिंह के गले में डालदेती है**)

शिवसिंह : तो दुविधा में तुमने दूसरी माला भी मेरे कण्ठ में डाल दी ! अरे, कवि-रंजन, तुम स्तब्ध खड़े हो ?.... लो, यह विजयमाला तुम्हारी है, मेरी नहीं !

विद्यापति : महाराज, यह आपने क्या किया ?

लखिमा ठकुरानी : महाराज, यह आपने क्या किया ?

शिवसिंह : (**अव्यक्तता से साँस खींचकर**) ठीक है, आज मैंने अपना अधिकार मित्र-कवि को दिया ! (**थोड़ी देर मौनता**) कवि-रंजन ! थोड़ी देर बाद मैं युद्ध करने चला जाऊँगा। क्या होगा, मैं नहीं जानता। लेकिन, मैं पराजित होकर या बंदी होकर नहीं लौटूंगा। तब इस मार्ग से तुम मेरे मित्र नेपाल-नरेश वीर विम्भ पुरादित्य के पास रजावनौली चले जाना। एक ही मार्ग दो कार्य करेगा। मुझे विश्वास है कि तुम रानी लखिमा ठकुरानी की सुरक्षा प्राणों से भी अधिक करोगे। मेरे मित्र, मुझे विश्वास है तुम पर। जिन लखिमा देइ, हासिनी देइ, श्यामा सुन्दरी, सौरभ देइ, पद्मा देइ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रानियों के प्राणों को तुम अपनी अमृत-वर्षा से मुग्ध रखते थे, तलवारों के आगे तुम उनकी रक्षा भी करोगे !

(द्वार पर दस्तक : प्रतिहारी के आगमन की पदध्वनि)

प्रतिहारी : महाराज, ड्योढ़ी पर प्रधान सेनापति खड़े हैं, कूच की आज्ञा शीघ्रातिशीघ्र माँग रहे हैं।

शिवसिंह : उनसे कहो, मैं तुरन्त आया। तब तक मैं कवच पहन लूं, अस्त्रें ले लूं !

(अस्त्रों के बजने की आवाज़)

लखिमा ठकुरानी : महाराज, मेरी (घबरा कर) समझ में कुछ नहीं आ रहा है। उफ़, मुझे लगता है, मूर्च्छा आ जायेगी ! (शिवसिंह भुजाओं में थाम लेते हैं)

शिवसिंह : रानी, वीरों को हँसकर विदा दी जाती है (विश्वास्ये) मैं तो विजयी होकर अभी लौटूंगा। कवि-रंजन, अपने उत्तरदायित्वों को याद रखना !... और रानी, अपने दोनों वचनों की रक्षा करना ! (प्रस्थान)

●

उपपार्श्वक : रात के प्रदीप राजधानी में जगमगा उठे हैं किन्तु आज राजमहल में दिये ठीक से नहीं जलाये गए ! मार्ग में दोनों ओर वसंतोत्सव के आनन्दोल्लास में रत जनता अपने राजा शिवसिंह, रानी लखिमा ठकुरानी और 'अभिनव जयदेव' कवि-रंजन विद्यापति की पालकियों के दर्शन की बाट जोह रही है। सुदूर पार्श्व में ढोल, तुरही, नगाड़ों की ध्वनियाँ, फौजों के कोलाहल सुनाई पड़ने लगे हैं। महल में निस्तब्धता का भय छाया है।

लखिमा ठकुरानी : चन्द्रमुखी, जाओ कनक-थाली में अबीर-गुलाल और मधूक कुसुम, दूब की माला ले आओ, कवि-रंजन के ऊपर बरसा दो ! (चन्द्रमुखी का प्रस्थान)

विद्यापति : ना जाने, क्यों मन का आकाश उड़ा जा रहा है, महारानी ठकुरानी !

लखिमा ठकुरानी : आह कवि-रंजन !

विद्यापति : महारानी ठकुरानी, दुर्गा भवानी के ब्राह्मणों ने कहा कि शिव-गौरी विवाह पर गिरिराज हिमालय की वंदना लिखूं और वैष्णवों ने कहा कि 'अभिनव जयदेव' राधा की वयःसन्धि अवस्था के, यौवन-शैशव के द्वंदों को दूती द्वारा गान करूँ। तो आप...

लखिमा ठकुरानी : (उद्विग्नतावश) नहीं, नहीं, मैं....मैं तो इन ब्राह्मणों से.... मैं तो इन वैष्णवों....छोड़ो-छोड़ो !

विद्यापति : और सामन्तों ने मेरी पदावली के अभिसार-वर्णन ....

लखिमा ठकुरानी : नहीं-नहीं, कवि-रंजन !

विद्यापति : प्रजा के समूह तो....

लखिमा ठकुरानी : हाँ, वे युद्ध की बातें नहीं जानते। वे तुम्हारी-मेरी बातें नहीं जानते !

विद्यापति : कौन-सी ?

लखिमा ठकुरानी : कवि-रंजन, तुमने राधा-रानी के पूर्व-राग, मिलन, अभिसार, वियोग को अपनी मधुर पदावली में आत्मा दी है। आखिर क्यों उनके नारी-मन में किसी अन्य नारी के पति के प्रति आसक्ति थी ? बताइये !

विद्यापति : राधा ने गोकुल ग्राम और लोक-बन्धन की ज़ंजीरें तोड़कर प्रेम की पुकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनी।

लखिमा ठकुरानी : आह नारी-हृदय ! तो कवि रंजन, यह बताओ, अभी जब तुम मेरे नख-शिख का वर्णन कर रहे थे तो राधा रानी का नाम क्यों लिया, मेरा क्यों नहीं ? क्या तुम्हें मालूम है कि. . . .

विद्यापति : महारानी ठकुरानी, मेरी कविता की शक्ति ! और राधा तो साक्षात् मानवी हैं। मैं मनुष्य से ऊपर कोई भी बड़ा सत्य नहीं जानता ! राधा तो....

लखिमा ठकुरानी : कवि-रंजन ! **(भावुक होकर)** तुम तो राधा के नारी-हृदय के द्वन्द को जानते थे, फिर कैसे .... **(रुककर)** गोपुर-द्वार पर सर्वोज्ज्वल रत्नदीप चलकर हम रख आवें, क्योंकि जब महाराज प्रवेश करें, तब....

विद्यापति : तब लखिमा महारानी और महाराज के दैहिक मिलन, मिलन-आनन्दोल्लास का एक मधुर गीत....

लखिमा ठकुरानी : आह, कवि-शेखर ! अब मुझे और अधिक तलवार की धार पर मत चलाओ !

विद्यापति : महारानी पुनः अशांत हो गईं। **(चन्द्रमुखी का प्रवेश—हँस-हँसकर वह कविरंजन और लखिमा देइ पर अबीर-गुलाल उड़ाने लगती है)** वाह चन्द्रमुखी, अबीर-गुलाल की इतनी आँधी ! अरे, गोकुल की गोपियों की सारी लज्जा उड़ जायेगी। देखो, महारानी के नेत्रों में अबीर भर गई है ! वे लोचनों को मूंदकर झुक गईं। अरे, अरे, अब मुझ पर ....

लखिमा ठकुरानी : सखि, आज कवि-रंजन को मन भरकर रंग ले ! ला मैं भी इनके वस्त्रों को रंग दूं। **(सहसा भय का संगीत बजने लगता है ! कंचुकी का प्रवेश, पीछे घायल सेनापति)**

कंचुकी : (घबराये स्वरों में) अचानक आ जाने के लिए कवि-रंजन और महारानी ठकुरानी से क्षमा माँगता हूँ। साथ में सिंह-सेनापति समरसिंह ..

चन्द्रमुखी : (भय से) अरे महारानी, सेनापति तो घायल हैं ! उनका बाँया कन्धा तो खून से लथपथ है ! ढाल भी टूट गई है ! तलवार भी नहीं है। **(भारी पाँवों के आगमन के स्वर)**

लखिमा ठकुरानी : अरी चन्द्रमुखी, बरी चन्द्रमुखी, कवि-रंजन उन्हें सहारा दे कर ला रहे हैं। तू भी जा ! कंचुकी सहायता कर !

विद्यापति : सिंह सेनापति, महाराज तो कुशलतापूर्वक विजयी होकर लौट रहे होंगे ? उफ़, तुम्हें इतने घाव ?

लखिमा ठकुरानी : (आड़ से) सिंह-सेनापति ! मेरे प्राणेश्वर महाराज तो सकुशल हैं न ? वे विजयी होकर अभी आ रहे हैं न ? **(चुप्पी)** मेरा हृदय काँप रहा है ! बताओ सेनापति, महाराज तो सकुशल हैं ?

समरसिंहमह : ारानी, वे सकुशल हैं, लेकिन....

लखिमा ठकुरानी : हाँ-हाँ सेनापति, उन पालकियों को हाथियों पर सजवाने का आदेश दे दो ! कवि-रंजन, महाराज के सकुशल लौट आने पर मिलन-आनन्दोल्लास का कोई पद लिखो ! सुन्दरि चललिहु पहु-घर-ना। चहुदिस सखि सब कर धरना ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समरसिंह : महारानी, वे सकुशल हैं, लेकिन....

विद्यापति : **(चिंतित होकर)** सिंह-सेनापति, जब वे सकुशल हैं तो फिर...?

समरसिंह : **(व्यथित होकर)** महाराज शाही फौजों के व्यूह चीरते हुए अज्ञात दिशा की ओर चले गये, और....

लखिमा ठकुरानी : **(साश्चर्य-सभय)** हँय ?

विद्यापति : तो वे किसी दूसरे मार्ग से आते ही होंगे !

लखिमा ठकुरानी : सेनापति, वे आने के लिए तो कह गये हैं न ?

समरसिंह : मुझे दुःख है कि सेवक को वे साथ ले जाने के लिए मना करते रहे। मैंने बार-बार प्रार्थना की, मैं अपने प्राण देने को भी तैयार हो गया लेकिन...

लखिमा ठकुरानी : **(सभय)** शीघ्र कहो सेनापति !

समरसिंह : उन्होंने मुझे आदेश दिया है कि मैं शीघ्र ही कवि-रंजन, आपके पास संदेशा भेज दूं कि आप तुरन्त महारानी ठकुरानी और दूसरी रानियों को लेकर रजावनौली चले जायँ। लीजिए, यह सूचना-पट्टिका !

लखिमा ठकुरानी : **(चीखकर)** हाय महाराज !

विद्यापति : हाँ, सिंह–सेनापति !....लेकिन मेरा विश्वास है कि मेरे मित्र और पूज्य महाराजा अभी आते ही होंगे। इसी मार्ग से.... अरे, इसी मार्ग से तो वे कुछ प्रहरों पहले गये थे।

लखिमा ठकुरानी : **(उत्तेजित होकर)** महाराज आयेंगे, ज़रूर आयेंगे। कवि-रंजन ! **(समरसिंह का प्रस्थान)**

विद्यापति : **(शीघ्रता से) (नीरव वातावरण में)** महारानी ठकुरानी ! आपकी यह दशा ! चंद्रमुखी ! चंद्रमुखी! कंचुकी ! प्रतिहारी ! सब तुरंत जाकर रथों में पर्दे बाँध दो, उनमें सबसे तेज़ भागने वाले अश्वों-बैलों की जोड़ियों को जोत दो। गोपुर के कपोतों के पंखों में संदेशे बाँधकर रजा बनौली की ओर उड़ा दो।

लखिमा ठकुरानी : **(विक्षिप्तता और उन्माद से)** कवि-रंजन ! कवि-वल्लभ ! मैं कहाँ जाऊँ ? किस ओर जाऊँ ? किसके पास जाऊँ ? मेरे महाराज — मेरे प्राण-वल्लभ क्या अब न आयेंगे ?

विद्यापति : महारानी ठकुरानी !

लखिमा ठकुरानी : **(उत्तेजना और उन्माद-वश)** कवि-रंजन, अब क्या होगा ? एक ओर महाराज का हाथ है, दूसरी ओर तुम्हारा ! मैं क्या करूँ; कवि-रंजन ?

विद्यापति : महारानी, इन अंतर्द्वन्दों को शांत कीजिए ! **(चन्द्रमुखी का आगमन)**

चन्द्रमुखी : कवि-रंजन, रथ तैयार है। बाहर घायल सिंह-सेनापति प्रस्तुत खड़े हैं ! महारानी, चलिए !

लखिमा ठकुरानी : **(उत्तेजना से)** अब महाराज इस मार्ग से नहीं आयेंगे—ओह, **(चीख)** देखो, ये सब दिये **(घबराहट से)** बुझे जा रहे हैं !

चन्द्रमुखी : महारानी, हम सब चलें ! शीघ्र ही अनिष्ट होकर रहेगा। देखिए-देखिए, वह ऊपर आकाश से पुनः एक तारा टूट कर गिर रहा है ! **(पदचापों के जाने की ध्वनि भीषण कोलाहल : 'अल्ला हो अकबर !' के नारे लगाते हुए शाही फौजों का प्रवेश)** ● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

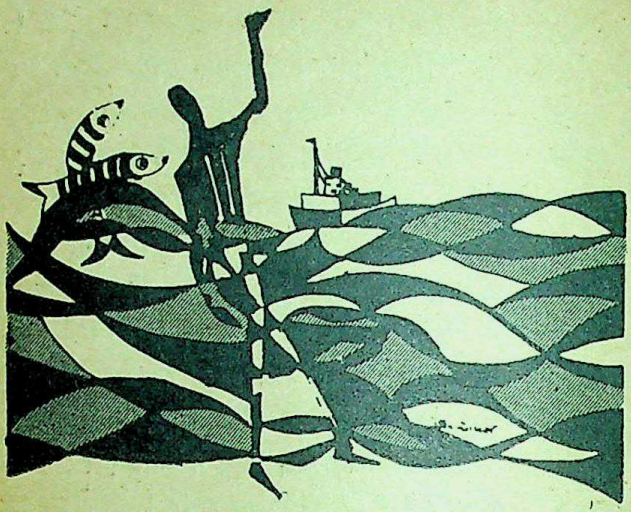

डॉ० शम्भुनाथ सिंह

●

वह एक नीला समुद्र था

वह एक नीला समुद्र था,
मेरे बिस्तर पर लहराता हुआ
जिसके तल में
असंख्य जलचरों की अस्थियाँ
दलदल में धँसी थीं
और सतह पर थी
एक धूपछाहीं फिसलन।

सहसा
दो चाँदी की छरहरी मछलियाँ
उछाल दी गयीं, उस ओर
जिधर से एक भयानक युद्धपोत
अभी-अभी गुज़रा था
लहरों की छाती पर
एक विराट हलचल छोड़ता हुआ।
जलपरियों के जूड़ों में गुंथे
चाँद-फूल हिलते रहे,
हिलते रहे।

और शताब्दियों लम्बी
वह परछाईं भी
जो लहरों में हज़ार-हज़ार बल खाती
कहीं से आकर
कहीं को चली गयी थी;
अब मैं एक जिज्ञासु बालक था
पश्चिम की रक्तरँगी बॉलकनी पर खड़ा
यह देखता हुआ कि
वह दिग्विजयी परछाईं
काल को
कितने अंशों पर काटती है।

और फिर
मैं बालक भी नहीं रहा;
इस बार एक टूटा जहाज़ बनकर
उस नीले समुद्र में
धीऽरे धीऽरे डूबने लगा,
डूबता रहा
और डूब गया।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तोष कुमार जैन

रूसी साहित्य पर

एक विहङ्गम दृष्टि

• रूसी साहित्य--यानी पुश्किन और तालस्ताय, दास्ताएवस्की और तुर्गनेव, चेखॅव और.... लेकिन इससे ज्यादा की जरूरत ही नहीं, ये पाँच ही नाम ऐसे हैं, जिनसे किसी भी देश का साहित्य स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर सकता है।

•

रूसी जनक्रांति की विजय क्या हुई, विश्व के राजनैतिक मंडल में एक ऐसे नये मार्तंड का उदय हुआ जिसने थकी-हारी मानवता को नये युग का सन्देश दिया। रूसी साहित्य भी जनक्रांति में निहित सिद्धान्तों का सजग प्रहरी बना रहा और विकास के चरण बन मनुष्य को अपने लक्ष्य की ओर दौड़ाता रहा। जितना रोचक इतिहास रूसी जनक्रांति का है, उतनी ही प्रेरणाप्रद कहानी रूसी साहित्य की है।

रूसी साहित्य जितना समृद्ध है, उतना ही प्राचीन भी। ७वीं-८वीं सदी में नीपर नदी के तट पर स्लाव जाति रहती थी जिसकी सभ्यता का विकास खीव और समोलेन्सक नगर में हुआ। ११वीं सदी के लगभग नार्वे का रूस पर आक्रमण और राजा व्लादमीर का रोमन सम्राट की बहिन से विवाह--इन दोनों घटनाओं के कारण देश में ईसाई-धर्म का प्रचार हुआ और स्लाव जाति का पश्चिम की बौद्धिकता तथा साहित्य से परिचय हुआ। ११वीं-१२वीं सदी में जो रूसी साहित्य लिखा गया, उसमें भी जन-जीवन का इतिहास ही पाया जाता है।

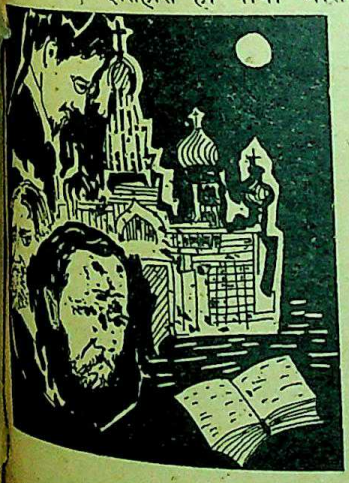

१२वीं सदी में 'नेस्टर ने' 'क्रानिकल' और 'राजा इगोर की कहानी' में उस काल का साहित्य सुरक्षित किया है। 'राजा इगोर की कहानी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावप्रधान गद्यकाव्य है जिसमें राजा इगोर की खानाबदोश जाति से युद्ध–पराजय और विजय की कहानी अंकित है।

१३वीं सदी में तातारों के आक्रमण के बाद रूस की राजनैतिक और अन्य हलचलों का केन्द्र खीव नगर से हटकर मास्को बना। चर्च इस समय प्रतिगामी शक्ति के रूप में कार्य कर रहे थे। १४वीं सदी से १९वीं सदी तक पूरे ५०० वर्ष रूस के साहित्य में अंधकार-युग के नाम से पुकारे जा सकते हैं। साहित्य-रचना की दृष्टि से यह काल अत्यन्त अनुर्वर सिद्ध हुआ। इस काल की १५वीं सदी की केवल एक कृति सुलभ होती है जिसका शीर्षक है "खोजोनिया जाशिर्मोया"। इसमें निकितन की रूस से भारत-यात्रा का वर्णन है। राजा इवाँ के शासनकाल में रूस की पहिली पुस्तक छपी। १७वीं शताब्दी में खीव नगर से सीमियन पोलोत्सकी मास्को आया और सही अर्थों में हम उसे ही रूस का पहिला पद्यकार मान सकते हैं। २०वीं सदी तक साहित्य में पोलोत्सकी की परम्परा का निर्वाह मिलता है। १७वीं सदी में स्लोबो नामक जर्मन जाति के कारण रूसी रंगमंच का जन्म हुआ जो आज विश्व में सर्व-श्रेष्ठ रंगमंच माना जाता है। इसी समय में पादरी ग्रेगरी ने अपने कॉमिडी नाटक लिखे और पोलोत्सकी का पहिला रूसी मौलिक नाटक 'फिजूल-खर्च बेटा' भी लिखा गया। रूसी 'बेले' का आरम्भ भी इन्हीं दिनों हुआ।

नवचेतना-काल

इतिहास ने कुछ इस प्रकार करवटें बदलीं जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव रूसी साहित्य की प्रगति में सहायक हुआ। जो भूमि साहित्यिक दृष्टि से बंजर पड़ी थी, उसमें अंकुर उगे और फूलते-फलते एक दिन छोटे-वृक्ष बन गये। रूसी जाति ने तातारों से स्वाधीनता प्राप्त कर ली थी। पीटर महान के शासन में देश प्रगति-पथ पर आरूढ़ था। धर्म अपनी जटिलताओं को छोड़ सरल बनता जा रहा था। रूसी भाषा की लिपि भी अपेक्षाकृत सुगम हो रही थी। समाचार पत्रों के प्रकाशन की ओर ध्यान दिया जाने लगा था। फ्रेंच और जर्मन साहित्य के विचारों का प्रभाव रूसी साहित्य के हृदय में पैठ रहा था, मास्को-विश्वविद्यालय की स्थापना हो चुकी थी। इन सब घटनाओं के समूह ने रूसी साहित्य को नई दिशा का बोध कराया। प्रिन्स मांतेमीर प्रथम रूसी पद्य-व्यंगकार हुआ। रादिशचेव ने इस काल में 'सेंट पीटर्सबर्ग से मास्को की यात्रा' बीस परिच्छेदों में लिख यात्रा-साहित्य को समुन्नत किया। संक्षेप में हम इस काल को रूसी साहित्य की क्रांति का युग कह सकते हैं जिसमें साहित्य अपने विकास के लिए अँगड़ाई ले रहा था।

पुश्किन-युग

इस युग का आरम्भ राजा एलेग्जेंडर के राज्यारोहण से होता है। रूसी नैपोलियन से विजय पा चुके थे और सर्वत्र राष्ट्रीय एकता की भावना विद्यमान थी। शनैः शनैः राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार हो रहा था। पुश्किन-युग का पहला साहित्यकार कारामिज्न है जिसने 'रिव्यू' पत्र का प्रकाशन किया, 'रूसी यात्री के पत्र' लिखे और १२ जिल्दों में रूस का इतिहास लिख जाति को ऐसी धरोहर सौंपी जिसके दर्पण में वह अपने अतीत के चित्र युग-युग तक देख सके।

राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से क्रीलोव इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरण का पहिला कवि है। उसने अपनी कविता में प्राचीन शृंखलाओं को तोड़ फ्रांसिसी छंद का प्रयोग किया। उसका दूसरा महत्वपूर्ण कार्य अन्य भाषाओं के साहित्य का अनुवाद है। अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर उसने अनुवाद में मूल का सौन्दर्य इस प्रकार उतारा है जैसे स्वर्णकार अँगूठी में हीरा जड़ता है। क्रीलोव एक शक्ति-सम्पन्न व्यंगकार भी था और अपनी व्यंग-प्रधान रचनाओं के माध्यम से उसने तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों पर तीखे व्यंग किये हैं।

१८२५ में रूस में दिस्मबरी विद्रोह के परिणाम-स्वरूप रूसी काव्यधारा में रोमान्टिक प्रवृत्ति का उदय हुआ। रिलीव की कविता में इस प्रवृत्ति का प्रथम साक्षात्कार होता है। उसमें निराशावादी करुणा की पुट है। गिवोदेव भी रिलीव का ही समकालीन है। उसने पुश्किन के जीवन और कृतित्व पर व्यंगात्मक पैरोडी लिखी जो उसकी विभिन्न विचारधारा की परिचायक है। वासिली ज़ुकोवस्की ने जर्मन और अंग्रेज़ी साहित्य का अनुवाद रूसी भाषा में किया।

इस युग का महान् साधक हुआ पुश्किन जिसने अपनी लेखनी के जादू से रूसी साहित्य को विश्व के समुन्नत साहित्य में ला खड़ा किया। पुश्किन ने भाषा में चाशनी-सा मिठास घोला और रूसी जाति को राष्ट्रीय साहित्य प्रदान किया। १८२० में पुश्किन की 'हसनान और लूदमिला' कृति ने साहित्य-जगत में हलचल मचा दी। दिस्मबरी विद्रोह में भाग लेने के कारण पुश्किन को क़ैद करके काकेशश भेज दिया गया था, वहाँ उसने अपनी अनेक अमर कृतियाँ 'पुस्तक-विक्रेता की बातचीत - जिप्सी' आदि लिखीं। पर जिस कृति ने पुश्किन को ख्याति के उत्तुंग शिखर पर ला बैठाया, वह है 'ओनेगिन'। यह रूस का प्रथम उपन्यास है जिसमें यथार्थ और कला का अद्भुत समन्वय है। पुश्किन ने यदि केवल 'ओनेगिन' ही लिखा होता तो भी उसका स्थान विश्व-साहित्य में अद्वितीय माना जाता। पुश्किन ने कहानियाँ भी लिखीं। वह एक राष्ट्रीय कवि भी था—सर्वत्र मौलिक, जिसने समस्त प्रचलित विदेशी पद्धतियों से रूसी साहित्य को मुक्त किया और लिरीक की बेजोड़ स्थापना की।

पुश्किन युग के दूसरे महारथी हैं लेरेमेन्तोव। लेरेमेन्तोव हस्सार सेना में अफ़सर था और देश के भिन्न-भिन्न स्थानों का भ्रमण कर उसने प्रकृति से सीधा संबंध स्थापित किया था। 'पुश्किन की मृत्यु' और 'नेपोलियन के भस्मावशेष'—रूसी साहित्य को उसकी अमर देन हैं।

कोलतोस्व की चर्चा किये बिना, पुश्किन-युग समाप्त नहीं होगा। इसने अपनी कृतियों में किसानों के जीवन, फ़सल काटने वाली कुमारियों के चित्र, उनके अंतरंग की व्यथा के इतने कारुणिक चित्र बनाये हैं कि बरबस द्रवित होना पड़ता है। किसानों के हृदय का सच्चा राग कोलत्सोव की रचनाओं में गूंजता है।

और यहीं रूसी पद्य-युग का पटाक्षेप होता है।

गद्य–युग

गद्य-युग का आरम्भ गोगेल महान की रचनाओं से होता है। गोगेल उपन्यास और नाटक—दोनों के लेखन में सिद्धहस्त था। उसने 'खेत की साँझ' आदि कई स्केच लिखे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी-संग्रहों में 'लालजाकिट' और 'दो इवान का झगड़ा' आदि यथार्थ की सबल पृष्ठभूमि पर लिखी गई कृतियाँ हैं। 'इन्सपेक्टर जनरल' नाटक में गोगेल ने प्रत्येक पात्र को मक्कार मूर्ख तथा बुराइयों से घिरा हुआ चित्रित कर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का उपहास उड़ाया है। रोम में बसकर गोगेल ने अपनी अमर कृति 'मृत आत्माएँ' प्रकाशित करायी जिसमें रूसी ज़मींदारों का मज़दूरों की मृत आत्माओं को ख़रीदकर बैंक में रहन रख देने का रोचक कथानक है। 'मृत आत्माएँ' साहित्य- क्षेत्र में क्रांतिकारी पुस्तक हैं।

उपन्यासों के अतिरिक्त अनेक समृद्ध साहित्यकारों ने आलोचना-क्षेत्र में भी सबल साहित्य की रचना की, जिनमें कारामिज्न, बेलीन्सकी और हेजेन आदि प्रमुख हैं। हेजेन ने संस्मरण भी लिखे जिनमें 'मेरा अतीत : मेरे विचार' बेजोड़ है।

इधर एक विशिष्ठ चेतना ने रूसी साहित्य में जन्म लिया जिसका विश्वास था कि पश्चिमी सभ्यता सड़ चुकी है और इसका उद्धार केवल रूसी किसान कर सकता है। इस चेतना के प्रमुख साहित्यकार होम्याकोव, त्यूचेव, और अवसाकोव थे जिन्होंने गद्य की अनूठी शैली का प्रयोग किया।

सुधार-युग

१८४८ से १८५६ तक रूस में ज़ार के शासन-काल में साहित्य पर भयानक प्रतिबन्ध लगाये गये। जब ज़ार के बाद एलेग्ज़ेण्डर द्वितीय गद्दी पर बैठा तो देश में सुधारों का युग आरम्भ हुआ। इसी काल में तुर्गनेव साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। तुर्गनेव को गद्य में पुश्किन का प्रतिरूप कहा जा सकता है। उसकी भाषा सदैव कवित्वमय रही। 'रूदिन' 'पिता-पुत्र' 'शिष्टों का नीड़' आदि कृतियाँ उसकी धरोहर हैं। उसने शैली के नये मॉडल बनाये। अपने विचारों में स्पष्ट कला का स्पर्श और गद्य में गायन का माधुर्य तुर्गनेव महान की देन है।

तुर्गनेव के अतिरिक्त गोन्चारोव, दस्तोयेव्स्की, कात्कोव का नाम भी साहित्य में आदर से लिया जाता है। सोलीतोव कवि, दार्शनिक और समालोचक था। उसकी शैली मार्मिक और शक्तिमय थी। साल्तिकोव प्रबल व्यंगकार था जिसने अपनी रचनाओं में उच्च अधिकारियों के अन्तरंग को उघेड़ा है। पिसेम्स्की निराशावादी सिद्ध हुआ और ओस्त्रोव्स्की रंग-मंच में यथार्थवादी कॉमिडी का विधाता है। उसने रंगमंच को पुरानी मान्यताओं से मुक्त कर नवीन रूप प्रदान किया। इसी काल में ग्रिगोरिविच भी प्रसिद्ध उपन्यासकार हुआ जिसकी रचनाओं में विनोद, करुणा, हास्य और नैसर्गिक सहानुभूति का रंग-बिरंगा इन्द्रधनुष आलोकित है।

तालस्ताय महान

रूसी साहित्य में जिस व्यक्ति से साहित्य में दार्शनिक चेतना का जागरण हुआ, वे तालस्ताय महान हैं। वें विचारवादी सुधारक, कलाकार और क्रांतिकारी थे। उनके साहित्य की विशिष्ठ चेतना जीवन-दर्शन की खोज है और सत्य के अन्वेषण द्वारा मनुष्य के प्रति शिवं भावना। तालस्ताय अपने जीवन में भी महात्मा थे और साहित्य में भी। 'युद्ध और शांति' और 'अन्ना कैरिना' कृतियाँ रूसी साहित्य की ही नहीं, विश्व-साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास्ताएवस्की

दास्ताएवस्की का जीवन जितना संघर्ष-मय रहा, उतना ही उसका साहित्य भी। बहुत से साहित्यकार अपने पात्रों की खोज में अटारियों और महलों में घूमा करते हैं। दास्ता-एवस्की ने उन्हें ही अपनी रचनाओं का पात्र चुना जो समाज के संरक्षण और स्नेह से वंचित-उपेक्षित थे, जो भाग्य के निर्मम प्रहारों से पीड़ित थे। उसने अपराधियों, पागलों और जीवन में ठोकरें खाने वालों को चुना और फिर ढूंढ़ने लगा उनमें जीवन की ज्योति। खोजने लगा—कहीं इनमें भी आत्मा का सत्य शेष है? कहीं यह भी मानव की ममता और सहानुभूति के अधि-कारी हैं? और उसे लगा कि आज ये जो कुछ भी हैं, उनमें प्रमुख हाथ सामाजिक परिस्थितियों का है। 'अपराध और दंड' उपन्यास लिखकर दास्ताएवस्की ने रूस के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को तो जन्म दिया ही, समस्त विश्व के साहित्य को नई दिशा दी।

बीसवीं सदी

रूस-जापान युद्ध तक रूसी साहित्य अंधकारमय रहा। १९०५ में राष्ट्र में जब क्रांति की लहर उठी तो साहित्य ने भी नई चेतना के शंख फूंके। उस समय के साहित्यकारों में चेखॅव, गोर्की प्रमुख हैं। चेखॅव ने अपनी कृतियों में मध्यम वर्ग और शिक्षित जनता का चित्रण कर साहित्य का नया पथ प्रशस्त किया। गोर्की ने शोषित और पीड़ित जनता का प्रतिनिधित्व किया है।

क्रान्ति के बाद

रूसी जन-क्रांति की सफलता के बाद रूस में विशेषतः उपन्यास साहित्य की रचना हुई। उन सबका अध्ययन करने से पता चलेगा कि वहाँ के साहित्यकार युद्ध की विभीषिकाओं के खतरों से संसार को परिचित कराते हुए शान्ति का सुदृढ़ दुर्ग बनाने में लगे हैं। उन्होंने देखा है कि किस प्रकार रणचण्डी की पिशाचिनी माताओं से लाल, बहिनों से भाई, पत्नियों से पति छीनकर हरी-भरी बस्ती को श्मशान बना देती है। अतः शांति के लिए प्रयास करना उनका महान उद्देश्य है। 'और डान धीरे बहती है' (मिखेल शोलाकोव) 'जनता अमर है' (वाशिली गुरूचा) 'मेरे देश भाई' (स्ला विन) 'शत्रु-सेना के पीछे' (पोलोकात्स) आदि उपन्यास उपरोक्त कथन की पुष्टि करते हैं।

आज भी रूस का साहित्यकार मनुष्य के जीवन में नये सवेरे का विश्वास लिये समता, बन्धुत्व और शान्ति की भावना से ओत-प्रोत हो नये कल्याणकारी समाज की स्थापना में जुटा है। ● ● ●

औरतों के बारे में

साहित्यिक मित्रों और परिवार के लोगों के बीच लियो तालस्ताय बैठे थे। बातचीत औरतों के गुण-अवगुण के सम्बन्ध में चल रही थी। सहसा तालस्ताय बोले, "मैं औरतों के बारे में सत्य उस समय तक नहीं बताऊँगा जब तक मेरा एक पैर क़ब्र में न हो। तब मैं कहूँगा और फौरन ताबूत के अन्दर कूद जाऊँगा और ढक्कन अपने ऊपर खींच लूंगा ताकि वे मुझे फिर पा न सकें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नि० छ० जमींदार

दरअसल प्रेम शब्द है ही अटपटा और उस पर जब वह प्रेम इन्सानी प्रेम न होकर देवताओं का प्रेम हो, भगवान कार्तिकेय का प्रेम हो, तो उसका अटपटापन और भी अधिक बढ़ जाता है। ऐसे ही एक अटपटे प्रेम की कथा!

भगवान कार्त्तिकेय का प्रेम

सच पूछा जाये तो प्रेम शब्द है ही अटपटा। हमारे यहाँ प्रेम से उदात्त-अनुदात्त, विवादी-संवादी सभी बातें व्यक्त हो जाती हैं। अंग्रेज़ी में प्रेम के सभी प्रकारों को अलग-अलग नाम दिये गये हैं। कार्तिक स्वामी ने जो कुछ किया वह 'रोमांस' शब्द से अधिक अच्छी तरह व्यक्त होता है। 'रोमांस' के लिए संस्कृत में भी कोई अच्छा शब्द नहीं मिला। अस्तु।

बात यह है कि आज की इस दुनिया में प्रगति की रफ़्तार इतनी तेज़ है कि देवताओं को यह चिन्ता उत्पन्न हुई है कि अब उनके प्रदेश, राज्य या राष्ट्र, कुछ भी कहिये, की स्वतन्त्रता का क्या होगा। रूस को अमेरिका का और अमेरिका को रूस का जिस तरह डर है, उसी तरह देवों को मनुष्य का डर लगने लगा है।

देवताओं की हाइ कमाण्ड का अधिवेशन प्रारम्भ था। स्पूतनिक और एक्सप्लोरर को देखकर सभी चिन्तित थे। हाई कमाण्ड में एअर-मार्शल अंजनिपति ने कहा, "आज की हालत में यह ज़रूरी है कि मनुष्य की प्रगति का सही अन्दाज़ होना चाहिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाजलाधिपति वरुणदेव ने इसका पुर-ज़ोर समर्थन किया। देवों के सुप्रीम कमाण्डर कार्तिक स्वामी, जो विशेष रूप से इस अधिवेशन की अध्यक्षता कर रहे थे, उन्होंने स्वयं यह सुझाव रखा कि वे शीघ्र भूलोक जाकर इस प्रगति की जानकारी प्राप्त करेंगे। सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया।

भगवान् कार्तिकेय मयूर-यान पर बैठ माता-पिता की अनुमति लेने चले। भोले बाबा की केसरिया घोंटी जा रही थी। माता पार्वती गणेशजी के लिए बुश-शर्ट सी रही थीं। गणेशजी 'हासूमल चोचूमल' के यहाँ के शुद्ध घी वाले लड्डू खा रहे थे।

कुमार के आते ही सब सकपका-से गये। भोलेबाबा के गण भाग गये, भोलेबाबा स्वयं ध्यानस्थ हो गये। गणेश लड्डू लेकर अपने कमरे में चले गये। माता पार्वती अपने कार्य में निमग्न रही बोलीं, "वत्स, आज बहुत देर हो गयी। कोई विशेष बात हो गयी क्या?" कुमार ने अपना हैट उतारकर रखा और कहा, "जननी, अब तो मैं इस पद से मुक्त हो गया हूँ। इन महाविलासी देवों की सेना में कुछ अनुशासन नहीं रहा! मैं आज्ञा देता हूँ कि दायें मुड़ो तो कई तो पूरे चक्कर खा जाते हैं, कई भरभराकर गिर जाते हैं और कई बायें मुड़ जाते हैं। इनका तो कोर्ट-मार्शल होना चाहिये। कल महाराज ने स्पष्ट कह दिया कि उनसे हिंसा नहीं होगी। उनका यह अहिंसा की दीक्षा लेने का निर्णय अजीब लगता है! पर वह है, कोई क्या करे?" माता पुत्र की व्यथा सुन दुःखी हुईं। कार्तिकेय ने गणेशजी को सिद्धि के साथ चुहल करते देखा। वह भाग रही थीं और गणेश पीछा कर रहे थे। उनसे न रहा गया। बोले, "माँ, तुमने गणेश को बुरी तरह सिर चढ़ा रखा है!" देवी उमा मुसकरा दीं; बोलीं, "बेटा, उसकी उम्र है खेलने-खाने की!" फिर उसाँस लेकर बोलीं, "तुम्हें भी कई बार कह चुकी हूँ कि बेटा, अब तो बहू का गोरा-गोरा चाँदनी-सा मुखड़ा दिखलाओ, मगर तुम्हें तो देवों को सैनिक शिक्षा देने की धुन चढ़ी है!"

षड़ानन को यह बात बुरी लगी। सारा जीवन दान करके वह विलासी देवों को सैनिक शिक्षा दे रहे थे और माता बहू के सपने देख रही हैं! उन्होंने कहा, "अच्छा माँ, फिर चर्चा करूँगा, अभी तो मैं राकेट-परीक्षण के लिए भू-मंडल जा रहा हूँ।" कार्त्तिक स्वामी ने हैट पहना और माता-पिता की चरण-धूलि लेकर चले ही थे कि सिद्धि आकर उनसे टकरा गयीं। कार्त्तिक स्वामी त्रैलोक्य को कँपानेवाले स्वर में चिल्लाये, "गणेश, यह क्या चल रहा है? तुम्हें कुछ भी ज्ञान है कि कितना भयंकर समय आ रहा है?" और वे पुटपटाते हुए चल दिये।

सिद्धि रूठ गयीं। विघ्नहर ने लाख समझाने का प्रयत्न किया पर सिद्धि का रूठना दूर नहीं हुआ। वह फफक-फफककर आँखें टेसू जैसी लाल कर रही थीं। गणेशजी भी रोने लगे। माता पार्वती ने बुश-शर्ट सीते-सीते कहा, "गणेश! लो बेटा, तुम्हारी बुश-शर्ट तैयार हो गयी, ज़रा पहनकर भूमण्डल की सैर तो कर आओ।" गणेशजी और ज़ोर-से रोने लगे। माता उठकर उनके पास गयीं और बोलीं, "पागल कहीं का! कुमार की बात का क्या बुरा मानना?" फिर वे उनके कान में कुछ पुटपुटायीं। गणेशजी तत्क्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्न हो गये। वे हँस दिये और उन्होंने वही बात सिद्धि से कही तो वह भी प्रसन्न हो गयीं; और वे दोनों भू-मण्डल को चल दिये।

भगवान महेश्वर के गण फिर भाँग घोंटने लगे और त्रिपुरान्तक ने नयन खोले। एक नाग ने फन फैलाकर फूं-फूं करना शुरू किया तो शिव ने उसे गले से निकालकर फेंक दिया। बोले, "इनके भी क्या दिमाग़ चढ़ गये हैं!" फिर देवी पार्वती से कहा, "कुमार भू-मंडल पर गया है, ध्यान रखना!"

पार्वती ने चिढ़कर कहा, "आप भंग छानते रहिये, आपको क्या?" शंकरजी हँस दिये, बोले, "तुम्हारी इच्छा है तो अब भंग ही छानूंगा।"

कुमार जब एअर-मार्शल ब्यूरीलाफ़ से मिलने मॉस्को उतरे तो क्रेमलिन में उनका शानदार स्वागत हुआ। हज़ारों वायुयान आकाश में टिड्डियों की तरह उड़े। एअर-मार्शल ब्यूरीलाफ़ ने अणुशक्ति से चालित 'सी १२४' नामक नया यान उन्हें दिखलाया। कुमार ने देखते ही उसके दोष बतला दिये। ब्यूरीलाफ़ ने परीक्षा लेने के उद्देश्य से पूछा, "आप इसे चला सकेंगे?" कुमार ने उत्तर दिया, "अवश्य!" और वे उस यान में बैठ गये। यान पलों में, ऊपर उठा, फिर एकाएक भयंकर स्फोट हुआ। 'सी १२४' फूट गया था। एअर-मार्शल ब्यूरीलॉफ घबरा गये। कुमार कार्त्तिक का मरण भयंकर अन्तर्क्षेत्रीय दुर्घटना थी। पर प्रेक्षकों ने एक सफ़ेद चिह्न देखा। दुरबीन से देखने पर उन्हें कुमार दीखे। रूसी कुमार के अभिनन्दन में जय बोलने लगे।

कुमार नीचे उतरे ही थे कि कुमारी मार्था ब्यूरीलाफ़ उनका आलिंगन करने आगे बढ़ीं। रूसी जनता ज़ोर से चिल्लाई- "रूसी-हिन्दी भाई-भाई!" कुमार भयंकर स्त्री-द्वेष्टा! उन्हें यह बात बिलकुल पसंद नहीं आयी। मार्था ब्यूरिलाफ़ के मामले कुछ भारतीयों के उदाहरण थे, पर कुमार से वह अपरिचित थीं। कुमार ने उन्हें अधसर में ही रोका, "ठहरिये, हमें यह बात पसंद नहीं। मार्शल ब्यूरिलाफ़, आपका 'सी १२४' ठीक से नहीं चलता। उसमें बहुत सुधारों की ज़रूरत है। ...अच्छा अब चलूं, नमस्कार!" कुमार अपने मयूर-यान पर चढ़ गये और तेज़ी से उड़ चले। मार्था ब्यूरीलाफ़ दोनों हाथों में मुंह देकर रो पड़ीं।

माता पार्वती टेलीविज़न से यह सब देख रही थीं। एकदम से उनके मुंह से निकला- "निष्ठुर, निर्दयी!" महेश्वर चौंक पड़े कि कहीं यह विशेषण उनके लिए तो नहीं? धीरे-से पूछा, "क्या हुआ देवी?" पार्वती जी बोलीं, "क्या होता? कुमार ने सिर्फ एक कन्या का प्रेम ठुकरा दिया! बेचारी मार्था!" उमेश हँस दिये, बोले, "धन्य हो जीवनदानी! कुमार! तुम्हारा देवों से प्रेम अद्भुत् है!"

देवी पार्वती ने यह सुना तो तनककर रसोई में चल दीं। वह वहाँ गयी ही थीं कि गणेश और सिद्धि आ पहुँचे; बोले, "माता कि कुमार का प्रेम देख लिया?" पार्वतीजी ने सिसकते हुए कहा, "तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर फिर गया है! और सिद्धि, तुझे मैं क्या कहूं? कुमार का प्रेम तू प्राप्त नहीं कर सकी? मेरे कार्त्तिक का प्रेम गहन है, पावन है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौन्दर्य-शास्त्र का एक नया क्षितिज : फ़िल्म

●

नये युग की नयी परिस्थितियों के अनुसार सौन्दर्य-शास्त्र के भी नये-नये क्षितिजों का उद्घाटन हो रहा है; उन्हीं में एक नया क्षितिज है : फ़िल्म। कला-मर्मज्ञ, विद्वान लेखक के सार-गर्भित विचार।

●

किसी भी कला के सौन्दर्य-शास्त्र का विरोध उसके कलाकार द्वारा सदा से होता आया है, और फ़िल्म-कला के ऊपर सिद्धान्त लादे न जाएँ, इसके पक्ष में एक विशेष कारण भी है। इस कला ने अभी तक कोई रूप ग्रहण नहीं किया है। और किसी ऐसी चीज़ के लिए सिद्धान्तों का निर्माण करना जो अभी अस्तित्व में ही न आयी हो, सिद्धान्तवादिता के अविवेक की पराकाष्ठा प्रतीत हो सकती है। किन्तु इस प्रकार का सौन्दर्य-शास्त्र तात्विक रूप से पूर्वपीठिका है। यह कला के सार्वजनीन नियमों की खोज है, और यदि फ़िल्म को कला होना है तो सैद्धांतिक विवेचन इसके लिए भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने अन्य किसी कला के लिए, ताकि इसकी विकास-रेखा को निर्देशन प्राप्त हो सके।

फ़िल्म चाक्षुष है। यह तथ्य सौन्दर्य-शास्त्र के दृष्टिकोण से इसे तुरत चाक्षुष या प्लास्टिक कलाओं से जोड़ देता है। 'चल-चित्र' 'द मूवीज़' —फ़िल्म को अब तक दिये गये नामों में ये सबसे अधिक वर्णनात्मक हैं। चित्र+गति—यह है फ़िल्म की परिभाषा, और यदि हम इस नवीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्व के लिए आवश्यक संशोधनों को चित्र-कला के सौन्दर्य-शास्त्र में सम्मिलित कर दें तो हमें फ़िल्म का सौन्दर्य-शास्त्र प्राप्त हो जायेगा।

किन्तु यह उतना सरल नहीं है जितना प्रतीत होता है। चित्र में इस नवीन तत्व का सम्मिलन ऐसी दशाएँ उत्पन्न करता है, जो चित्र-कला (हमें चित्र ही कहना चाहिये) को फ़िल्म से प्रायः पूर्ण रूप से अलग कर देती हैं। चित्र और फ़िल्म के बीच यह एक तात्विक अन्तर है—बल्कि विरोध है। चित्र की रचना विषयीगत होती है और फ़िल्म की विषयगत। पट-कथा-लेखक के कार्य का मूल्यांकन हम चाहे जितना भी अधिक करें—वास्तविक व्यवहार में इसका मूल्यांकन बहुत कम होता है। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि फ़िल्म की रचना मन से सीधे निकलकर उसी प्रकार स्वच्छंदता-पूर्वक नहीं होती, जिस प्रकार रंग जैसे तरल माध्यम से होती है, बल्कि इसमें वास्तविक दृश्यात्मक जगत की भारी स्थूल सामग्रियों को खण्ड-खण्ड करना पड़ता है। चित्र एक संश्लेषण है (मैं इस अपरिष्कृत धारणा को छोड़े देता हूँ कि यह अनुकरण है)। फ़िल्म तात्विक रूप से विश्लेषण है। चित्रकार अपनी दृश्यात्मक अनुभूतियों के चुने हुए तत्वों की अपने मन में रचना करता है, अर्थात् संश्लेषण करता है। रचना की वास्तविक प्रक्रिया में कल्पना और संवेदनशीलता से निर्देशित होकर वह अपनी अनुभूतियों से परे भी चला जाता है। फ़िल्म का निर्देशक भी उन्हीं दृश्यात्मक अनुभूतियों से प्रारम्भ करता है लेकिन वह अपनी विषय-सामग्री से बँधा रहता है। अपनी सामग्री को महत्वपूर्ण बनाने के लिए—उसकी वास्तविकता तथा समाचारात्मक मूल्य की अपेक्षा उसे अधिक महत्वपूर्ण बनाने के लिए—उसे अपनी कल्पना के सातत्व को तोड़ना पड़ता है। महत्व की एक सीढ़ी से दूसरी पर उछलना पड़ता है। उसे दृश्य के महत्वपूर्ण पहलुओं को पाने के लिए उसका विश्लेषण करना पड़ता है।

फ़िल्म को अशौच मानने वाले इसकी प्रक्रिया की यान्त्रिक प्रकृति पर ज़ोर देते हैं। उनका कथन है कि फ़िल्म के लिए सर्जनात्मक प्रेरणा उसकी यान्त्रिक सम्भावनाओं में नहीं पायी जा सकती है। औज़ार ही कला का माध्यम है। किन्तु उपकरण और सामग्री या माध्यम में अन्तर करना आवश्यक है। शिल्पी का माध्यम उसकी छेनी नहीं है बल्कि स्फटिक-खण्ड है। अधिक सटीक रूप से कदाचित् इन दोनों का संघात है क्योंकि स्फटिक-खण्ड पर छेनी की अनुभूति के प्रति ऐन्द्रिय संवेदना पर ही सृजनात्मक प्रेरणा निर्भर करती है। कैनवस पर रंग में डूबी हुई तूलिका के स्पर्श में भी वही ऐन्द्रिय तत्व है और संगीत में भी यही तत्व स्पष्टतः परिलक्षित होता है। केमरा फ़िल्म-निर्देशक का औज़ार है और उसका माध्यम प्रकाश—या सम्भवतः स्थूल पदार्थों पर प्रकाश का संघात है। अच्छा तो यह होगा कि हम केमरे को प्रकाश की छेनी मान लें जो पदार्थ की वास्तविकता को तराशता है। किसी भी स्थिति में प्रकाश ही माध्यम है।

हमें फ़िल्म की गतिशीलता, उसकी नमनीयता पर ज़ोर देने की ज़रूरत है क्योंकि यह वह विशेषता है जिसके गुण से फ़िल्म 'कला' बनती है। हमने गतिशीलता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमनीयता को परस्पर परिवर्तनशील शब्दों के रूप में व्यवहृत किया है। उल्लेखनीय है कि शिल्प-कला में किसी वस्तु को इसलिए परिवर्तित किया जाता है, उसे नमनीय बनाया जाता है ताकि वह अचल, पूर्ण और शाश्वत अवस्था को प्राप्त कर सके। फ़िल्म में वस्तुओं की अचलता, उनके गतिशील होने पर भी परिवर्तित की जाती है, नमनीय बनाई जाती है, इसलिए कि वह गतिशील, सापेक्ष, और अस्थिर वस्तु बन सके। शिल्प स्थान की कला है जब कि संगीत काल की कला है। फ़िल्म स्थान-काल की कला है। यह स्थान-काल का सातत्य है। कम-से-कम तीन ऐसी दशाएँ, या आयाम हैं, जिनमें फ़िल्म की गतिशीलता सम्पन्न हो सकती है। केमरे की गति, प्रकाश की गति और चित्रांकन की वस्तु की गति। इन गतियों के संयोग प्लास्टिक रूप की असीम सम्भावनाएँ उत्पन्न करते हैं।

फ़िल्म की सच्ची नमनीयता, वह नमनीयता जो फ़िल्म को अनुपमेय बनाती है, प्रकाश की नमनीयता है। जिस प्रकार तात्विक चित्र अमूर्त्त चित्र है, उसी प्रकार तात्विक फ़िल्म अमूर्त फ़िल्म होगी——प्रकाश और छाया की एक शुद्ध कृति। किन्तु ऐसी फ़िल्में केवल शुद्ध कलाविदों के लिए हैं।

फ़िल्म की स्वतन्त्रता ही उसके लिए भय उत्पन्न करती है। कला-रूप में फ़िल्म की समस्या उपयुक्त परम्पराओं की खोज है। इसे नाटक के लिए उपयुक्त संकलनों को त्याग कर स्थान-काल सातत्य के उपयुक्त संकलनों को ढूंढ़ना पड़ेगा। नाटक का भी फ़िल्म-रूप अत्यन्त दुर्बल होता है। कदाचित् फ़िल्म की एकमात्र सम्भव अन्विति किसी की अन्विति का अभाव है। तात्विक रूप से फ़िल्म अतार्किक है। फ़िल्म में घटनाएँ समानान्तर रूप से घट सकती हैं, उन्हें आयाम की एक से अधिक इकाइयों में प्रदर्शित किया जा सकता है। स्वयं काल को भी नियन्त्रित किया जा सकता है। फ़िल्म की एकमात्र अन्विति उसका सातत्य या प्रवाह है।

सामान्य सवाक् चित्रों में देखा जा सकता है कि कितनी आसानी के साथ यह प्रवाह भंग कर दिया जाता है। सम्वाद गति के

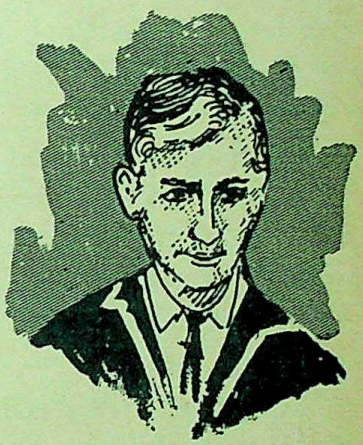

हरबर्ट रीड

प्रवाह को बाधित कर देते हैं या कम-से-कम उसमें देर कर देते हैं। हम देखने के बजाय सुनने लग जाते हैं। किन्तु, यदि हम एक बार भी सिनेमा में सचेतन रूप से सुनने में मग्न हुए तो मानो हम रंगशाला में पहुँच गये।

सवाक् फ़िल्म में स्पष्ट कला-रूप का विकास ढूंढ़ना कठिन है। किन्तु हमें उन दो प्रकार की फ़िल्मों में अन्तर स्पष्ट कर लेना चाहिये, जिनमें से एक में तो संवादों का पूरा और सामान्य प्रयोग होता है और दूसरे में सम्वाद केवल विशिष्ट प्रभाव के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम में लाये जाते हैं। सम्भाषण भी प्रभाव हो सकता है जैसा कि हम रेनी क्लेयर की फ़िल्मों में देखते हैं। इन फ़िल्मों में सम्भाषण का उपयोग बहुत कम किया गया है और ये प्रवाह में कभी बाधा नहीं उपस्थित करते। सम्भाषण की गति फ़िल्म की गति के साथ चलना चाहिये। दोनों में काल की समानान्तरता आवश्यक है। किन्तु सामान्य फ़िल्मों में काल का अत्यधिक संकोचन कर दिया जाता है, इसलिए उसमें सम्भाषण का संकोचन भी उसी अनुपात में होना चाहिए।

फ़िल्म के साथ संगीत के सहकार के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। संगीत की गति का प्रवाह फ़िल्म की गति के समानान्तर होना ही चाहिए। इसलिए यह आवश्यक है कि या तो फ़िल्म संगीत का प्रतिरूप हो—जैसे संगीत के साथ नृत्य करते हुए नर्तक की फ़िल्म, अथवा संगीत की ही रचना फ़िल्म के अनुसार हो—जैसे 'पोटेमकिन' के लिए एडमण्ड मीजेल का संगीत।

इसका यह अर्थ नहीं कि सवाक् फ़िल्मों का कोई भविष्य ही नहीं। हाँ, इसके नियम शुद्ध फ़िल्म के नियम न होंगे और यह जितनी जल्दी अपनी मुक्ति का मार्ग ढूंढ़ सके, उतना ही अच्छा है। रूडोल्फ़ अर्नहीम ने 'कला रूप में फ़िल्म' नामक पुस्तक में यह उदाहरण दिया है : संगीत के एक टुकड़े की रचना अकेले पियानो पर बजाने के लिए की जा सकती है। इसके बाद इसी टुकड़े को वायलिन के साथ बजाने के काम में लाया जा सकता है। तात्विक रूप से तो यह संगीत का वही टुकड़ा रहेगा किन्तु यदि फिर पियानो और वायलिन के टुकड़ों को अलग-अलग लिया जाए, तो वे अपने मूल रूप से भिन्न हो जायेंगे। एक साथ बजाये जाने पर दोनों में से प्रत्येक को एकान्विति के लिए अपने को संशोधित कर लेना पड़ता है। इसी प्रकार आदर्श सवाक् चित्रों के लिए, सम्वाद और फ़िल्म, दोनों को एक दूसरे के अनुकूल संशोधित होना आवश्यक है।

फ़िल्म के चित्रांकन प्रक्रिया की नमनीयता को हम छोड़ भी दें तब भी मोन्ताज की प्रक्रिया में हम फ़िल्म के कला-रूप की उपयुक्तता पा सकते हैं। मोन्ताज यन्त्रीकृत कल्पना है। निर्माता जान-बूझकर कैमरे की निर्वैयक्तिकता भंग करता है। वह इसके यन्त्रीकृत उत्पादनों को लेकर (कितना कम यन्त्रीकृत यह है, हम पहले ही देख चुके हैं!) उनका संयोजन उतनी ही स्वतन्त्रता के साथ करता है जितनी स्वतन्त्रता के साथ चित्रकार रंगों और आकारों का संयोजन करता है। सौन्दर्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार करने पर यह फ़िल्म-निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था ठहरती है। इसका अनुभव पुडोवकिन और तिमोशेन्को जैसे फ़िल्म-शास्त्रियों ने किया है। अर्नहीम उपर्युक्त पुस्तक में उनके सिद्धान्तों की परीक्षा करता है और उन्हें तर्क-संगत क्रम में संक्षिप्त कर (बल्कि विस्तृत कर—क्योंकि उनसे चार पृष्ठ भरे हैं) उपस्थित करता है। चार प्रमुख सिद्धान्त हैं। १. स्वयं काट का सिद्धान्त, २. काल की अवस्थाएँ, ३. स्थान की अवस्थाएँ और ४. कथा-सामग्री के सम्बन्ध। पहले प्रश्न का सम्बन्ध लय के प्रश्न से है। सापेक्ष रूप से लम्बे और बराबर के दृश्यों से प्रशान्त लय उत्पन्न होती है, लम्बे के अनन्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे दृश्यों के क्रम से अधिक तीव्र लय की उत्पत्ति होती है। इसी में दृश्य के अन्दर दृश्य, समानान्तर चलने वाले दृश्य खण्ड को पूर्ण के साथ संलग्न करने के सभी उपाय, क्लोज-अप, कन्सन्ट्रेशन इत्यादि के प्रश्न भी सम्मिलित हैं। दूसरे सिद्धान्त का सम्बन्ध समकालीनता का प्रभाव, स्मृति और भविष्य दृष्टि का प्रभाव, आकस्मिक प्रभाव तथा समय-संकोचन के प्रभाव आदि से सम्बन्ध रखता है। तीसरा सिद्धान्त भी एक ही दृश्य खण्ड में विभिन्न घटनाओं को दिखलाकर या एक ही दृश्य के एक स्थान प्रत्यय से हटकर दूसरे स्थान प्रत्यय को प्रदर्शित कर उसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता है। चौथा सिद्धान्त प्रभावों की समानान्तरता या विरोध को अथवा दोनों को एक साथ उपस्थित करता है। उदाहरण के लिए— तिमोशेन्को की एक फ़िल्म में अपनी काल-कोठरी में बन्द एक क़ैदी के जंज़ीर से जकड़े हुए पैरों को दिखलाने के बाद ही रंगशाला में नत्य करते हुए नर्तक के पैरों को दिखलाया गया है।

फ़िल्म की नमनीयता, अर्थात् कलात्मक सम्भावनाओं पर हम जितना ही अधिक बल देते हैं, फ़िल्म-निर्माण की प्रक्रिया में हम उतना ही अधिक कल्पनाशील कलाकार की आवश्यकता महसूस करते हैं। और यह बात वर्त्तमान प्रवृत्ति के बिलकुल विरुद्ध है। आज कल सिने-नाट्य-लेखक के महत्व को अत्यन्त नगण्य समझा जाता है, किन्तु जब फ़िल्म अपने सब तकनीकी साधनों का पूरा उपयोग कर चुकेगी तो यह निश्चित रूप से कवियों की ओर मुड़ेगी, क्योंकि अन्तिम रूप से किसी कला का गुण उसकी रचना या उसका निर्देशन करनेवाले मन के गुणों पर निर्भर करता है। कोई भी कला केवल यान्त्रिक प्रेरणाओं पर जीवित नहीं रह सकती। समाचार-फ़िल्मों, वैज्ञानिक फ़िल्मों और घटनाओं का अंकन करने वाली फ़िल्मों का स्थान सदैव बना रहेगा, किन्तु अन्त में जनता कल्पना और स्वप्न (vision) के फ़िल्म की मांग करेगी और तब दिन आयेगा कवि का, सिने-नाट्य-लेखक का, अथवा हम चाहे उसे और भी जिस किसी नाम से पुकारें, क्योंकि वास्तव में यह कलाकार एक नये क़िस्म का कलाकार होगा—ऐसा कलाकार जिसमें चित्रकार की चाक्षुष संवेदन-शीलता होगी, कवि का स्वप्न होगा और संगीतज्ञ की काल-संवेदना होगी। माध्यम के रूप में फ़िल्म की कलात्मक सम्भावनाओं पर सन्देह करने के बजाय हमें मनुष्य की ही कलात्मक योग्यता पर सन्देह करना चाहिये जिससे कि वह इस नवीन माध्यम द्वारा उपस्थित किये गये अवसरों की ऊँचाई तक पहुँच सकता है। यह एक प्रकार की पैण्डोरा की नई सन्दूक़ है जिसे सिने-निर्माता अपने साथ लिये फिरता है। इसमें से उसने सभी प्रकार की बुराइयाँ निकाल फेंकी हैं और उसके तल में अब भी आशा शेष है।

—अनुवादक : कुँवर जी अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुंत माथुर

जो मिल नहीं रहा है

मेरी कुर्सी बरामदे में है
और मैं भीतर हूँ कमरे के;
रौशनदान की डोरी जो
ऊपर से नीचे लटक रही है,
मुझे बुरी तरह खटक रही है;
ऊपर से नीचे आने वाली सारी चीजें
बेसहारा और बड़ी बेदर्द होती हैं—
मेरे छोटे बच्चे की गरदन इसी ने
फँसा ली थी
मुश्किल से बचा ली थी।
ये
ड्रैसिंग-टेबुल, इसका बड़ा-सा शीशा—
रोज-रोज वही चेहरे !
यहाँ दो चेहरे वाला कोई नहीं है,
शीशे हैं सभी
अपना चेहरा स्वयं पहिचानते हैं—
फिर बेकार ही है ये शीशा !

खिड़की !
हाँ,
ये खिड़की अवश्य आकर्षित करती है।
इस पर पड़ा जालीदार पर्दा पारदर्शी है,
उसके पार हरियाली है;
किंतु, इन दोनों के बीच में सीखचें हैं
और जाली है।
मालिक,
बाहर रखे टीन, जिसमें दिन भर का
कूड़ा जमा है,
जो इसके घर की समस्त रंग-बदरंग
चीजों के बिंब,
अपने में समो बूड़ा है।
कुछ टटोल रहा है
सम्भवतः खोजना चाहता है वह
जो मिल नहीं रहा है। ● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर तेज़ हवा से बाँस की नुकीली पत्तियाँ इस प्रकार की आवाज़ कर रही थीं मानो वे टूट-टूट कर गिर रही हों, और लॉन में घिरती साँझ की उदास छाया कमरे में भी घुस आयी थी। ...

●

सूखी हवा से बाँस की नुकीली पत्तियाँ सरसरा रही थीं। रह-रहकर एक अज्ञात पाखी कूज उठता। उत्तर में कहीं कोई और आवाज़ नहीं आती। सिर्फ़ उसी की कूज अनुगूंज बनकर कुछ क्षण भटकती रहती और फिर लुप्त हो जाती। सोमा ने अजाने ही मुंडेर के खम्बे को पकड़ रखा था। जिस स्थिति में वह खड़ी थी उसमें किसी सहारे की आवश्यकता नहीं थी। लॉन में घिरती साँझ की उदास छाया उस बॉलकनी में भी घुस आयी थी।

अचानक सोमा को अनुभव हुआ कि बँगले के गेट पर बिन्नी और रणधीर लौट आये हैं। पुतलियाँ उधर खिंच गयीं। एक ख़ाली रिक्शा था जो खड़खड़ करता हुआ बिना रुके आगे बढ़ गया।

यह कभी-कभी क्या होता है कि जो विवशता वर्षों साथ रहकर अपनी चुभन खो बैठती है, वही कभी-कभी बहुत तीखेपन से सालने लगती है!

सोमा ने झुककर दायीं ओर दृष्टि दौड़ायी। छोटे-से गोल कमरे में रोशनी जल रही थी और दरवाज़ों के शीशों पर एक धूमिल पीलापन फैला था। पापा आज क्लब गये नहीं, या गये तो जल्द लौट आये। ख़ाली समय में वह चैम्बर में बैठकर क़ानून की किताबें पढ़ा करते हैं जिससे उन्हें अपने पेशे में मदद मिलती है।

उसकी इच्छा हुई कि वह उठकर पापा के निकट बैठ जाय। पापा की आँखों में जो चिकना-चिकना तरल भाव होता है, कभी-कभी उसके हृदय को बहुत छूता है। पर वह गयी नहीं और बँगले के मुहाने पर

हृदयेश

●

घिरती साँझ की उदास छाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े सीखचेदार लोहे के काले गेट को देखने लगी।

सर्दियों की साँझ कितनी जल्द बुझने लगती है, राख हो गये कोयले की तरह ठंडी और बेरंग !

रणधीर ने उससे चलते हुए कहा था, "आप भी चलिए न !" फिर अचकचाकर चुप हो गया था और चेहरे पर संजीदगी लाकर उसकी ओर दया-भाव से देखता हुआ अंग्रेज़ी में उसने जो कुछ कहा था, उसका अर्थ था—ग़लत न लीजिएगा; मुझे आपकी स्थिति से सहानुभूति है।

कोई दर्द जो दबा-दबा हो, सहसा बहुत तेज़ी से उखड़ आया हो !

सोमा अपने पैरों की ओर देखने लगी। साड़ी के अन्दर एक अधजली लकड़ी के ठूंठ-सा लटकता निर्जीव पाँव ? पापा बतलाते हैं कि जब वह छोटी थी, चार साल की, सड़क पर एक ठेलागाड़ी के नीचे आ गयी और उसके बायें पैर की हड्डी पिंडली के नीचे से बिल्कुल टूट गयी।

उस घटना को शायद अब बीस वर्ष से अधिक गुज़र चुके। वह पच्चीस की है और लँगड़ी। पुस्तकों में पढ़े हुए मोरनी के दुख की बात न जाने क्यों उसे अधिक याद आती है।

उसे फिर ऐसा लगा कि बिन्नी और रणधीर वापस आ गये हैं किन्तु इस बार भी भ्रम ही था। फाटक पर कोई आवारा लड़का रुक कर सीखचों को छड़ी से बजाने लगा था।

कल ही बिन्नी और रणधीर बँगले पर उतरे थे। बिन्नी उससे सात वर्ष छोटी है। वह उसके चाचा की लड़की है जो एक दूसरे शहर में सिविल-सर्जन हैं। रणधीर ए० जी० के आफ़िस में एसिस्टेन्ट एकाउन्ट्स-ऑफ़िसर है। दो माह हो चुके उनकी शादी हुए। वे दोनों इलाहाबाद जाते हुए दो दिन के लिए यहाँ रुक गये।

उन दोनों के आने से उसका अकेलापन दूर होना चाहिए था। पिछले वर्ष, जो छोटा भाई साथ था, वह इंजीनियरिंग कालेज में भरती होकर खड़गपुर चला गया। तब से बँगले पर वह निपट अकेली है। ममी आठ-दस साल हुए दूसरे लोक जा चुकी हैं। बँगले पर वह है या उसके पापा, जिनका दस से चार तक का समय कोर्ट में बीतता है। पर इन दोनों के आने से वह महसूस करती है कि उसका अकेलापन और बढ़ गया है। इन दोनों की हँसी अनुगूंज बनकर उसके हृदय की घाटी की विजनता को और भी उभार देती है।

पापा को उसने एक बार अपने अन्तरंग मित्र से कहते हुए सुना था—सोमा के विवाहित जीवन की सम्भावनाएँ उसी दिन से समाप्त हो गयीं जिस दिन उसके पैर की हड्डी टूटी। किसी ऐसे-वैसे गर्ज़-मन्द लड़के के सिर उसे थोप देने से तो यह अच्छा होगा कि वह अविवाहित ही रहे।

वह बाँस की पत्तियों की सरसराहट देखने लगी। अँधेरा अभी इतना गहराया न था कि पत्तियों के हिलने की क्रिया अदृश्य हो जाती। अक्सर वह बाँस की गिरी हुई पत्तियों पर जाकर बैठ जाती है। उससे पहले रहने वाले किरायेदार ने न जाने क्यों बाँसों के इतने सारे पेड़ खड़े कर दिये। आगे लॉन में बाँस, पीछे बाँस। पर बाँस के हरे-हरे झुरमुट उसे बहुत भाने लगे हैं, इससे वह इन्कार नहीं कर सकती है।

नीचे गोल कमरे में प्रकाश वैसे ही फैला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। दरवाज़ों और खिड़कियों के शीशों पर पीलापन और गहरा गया था।

बाहर लोहे का गेट अँधेरे में डूब रहा था।

उसकी इच्छा रेडियो बजाने के लिए बलवती हो उठी।

जब वह गलियारा पार करने लगी बैसाखियों की ठुक-ठुक की सर्द भद्दी आवाज़ उसे छेनी की चोट-जैसी महसूस हुई—जो उसके जिस्म को छील रही हो।...

●

बिन्नी और रणधीर वापस आ गये। बाज़ार जाकर उन्होंने शॉपिंग की थी। ढेर सारे कपड़े, जूते, चप्पल, और प्रसाधन की सामग्री ले आये। शायद बिला-ज़रूरत। वे उसे लायी हुई चीज़ें दिखलाने लगे। सोमा चीज़ों से ज्यादा उन दोनों का बिला ज़रूरत हँसना देखती रही। रणधीर हँसता है तो उसकी नाक के दोनों ओर दो रेखाएँ उभर आती हैं। उसकी चिबुक तब कितनी नुकीली दिखायी देती है। बिन्नी उसे हँसती देखती है तो स्वयं हँसने लगती है। क्या सोमा खुद इतना खुलकर नहीं हँस सकती? उसे याद न आता था कि वह कभी ऐसे हँसी हो।

खाना खाकर सोमा अधिक देर न बैठी और उठकर अपने कमरे में चली आयी।

रणधीर नीचे चला गया। कुछ देर भी पापा के पास न बैठना अशोभनीय होगा, शायद इस भाव से।

बिन्नी हल्के-हल्के गुनगुना रही थी। उसके गुनगुनाने का स्वर सोमा को साफ़ सुनायी देता था। कमरा था भी बिल्कुल सटा हुआ। दोनों के बीच की दीवार एक ही थी। बिन्नी और रणधीर उस कमरे में ठहरे थे जो उसके भाई अनिल का था। कुछ देर बाद जब बिन्नी ज़ोर-ज़ोर से कुछ पढ़ने लगी तो उसके पढ़ने की आवाज़ भी उधर साफ़ आने लगी। उसके यों ज़ोर-ज़ोर-से पढ़ने ने सोमा को चौंकाया।

सोमा ने चाहा कि वह जान सके कि रणधीर और पापा क्या बातें कर रहे हैं। पर पापा का कमरा नीचे दूर था और वह सुन नहीं सकती थी। वे दोनों उसके संबंध में तो बातें नहीं कर रहे हैं? रणधीर ने शायद उसकी बात छेड़ दी हो। रणधीर के देखने में एक छिपा-छिपा जिज्ञासा का भाव होता है।

नीचे सीढ़ियों पर पदचाप उठी। सोमा ने समझ लिया, रणधीर होगा। अब लौट रहा है! उसे छोड़कर और कौन हो सकता है!

एकाएक घुप अँधेरा हो गया। आज लाइन में फिर गड़बड़ी हो गयी! पिछले दस दिनों में यह तीसरी बार थी। अँधेरा बहुत गाढ़ा था। पिघला हुआ कोलतार जैसे किसी ने चारों ओर लुढ़का दिया हो।

पैरों की पदचाप बढ़ती गयी। सोमा

डाक्टर और कलाकृति

टेलीग्राफ के आविष्कारक सैमुएल एफ० बी० मोर्स को चित्रकारी का भी शौक़ था। एक बार उन्होंने एक चित्र बनाया जिसमें एक बीमार-सा व्यक्ति बिस्तर पर सोया हुआ था। उसी समय उनके एक मित्र-डाक्टर मिलने आये तो उन्होंने चित्र के विषय में उनकी राय पूछी।

डाक्टर ने चित्र को बड़े ध्यान से देखा और कहा, "मलेरिया!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ही निकट आती जा रही थी, उसके कमरे में ही....

दो हाथों का कंधे पर नरम दबाव !

"यह अँधेरा ऐसा ही है जैसे तेरा जूड़ा खुलकर बिखर गया हो। है न ऐसा ही ? मैं कवि नहीं हूँ, पर किसी का सामीप्य मुझे कविता करना सिखा दे तो मेरा क्या दोष ?"

सोमा क्यों नहीं कह पा रही है कि वह बिन्नी नहीं है, बल्कि लँगड़ी सोमा है ! वह ग़लत कमरे में आ गया है !

सोमा को लगा कि उसके शरीर में एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ है। रोयाँ-रोयाँ उस तूफ़ान में बह रहा है। उसका सूखा शरीर लहलहा उठा है। वह अपंग न रहकर एक पूर्ण स्वस्थ युवती हो गयी है। अँधेरे में इन्द्रधनुष के रंग बिखर चले हैं। पुरुष के सामीप्य की गंध इतनी तेज़ और नशीली होती है ! अब उसे यह महसूस न हो रहा था कि यह मात्र एक संयोग है और सत्य नहीं है।...

"रणधीर, मिस्टर रणधीर !"—पापा का स्वर और क़दमों की निकट आती हुई आवाज़।

रणधीर बाहर निकल गया।

"वाह, यह अच्छा ब्लैक-आउट रहा ! तुम इधर आये और उधर एडिशनल जज बनर्जी का फोन आया। उनकी कार-एडवांस का मामला तुम्हारे सेक्सन में है। चाहते हैं कि केस के डिस्पोज़ल में जल्दी हो जाय। मैंने कहा कि सुबह मैं तुम्हें लेकर खुद हाज़िर होऊँगा, पर बोले—नहीं मैं स्वयं ही आ रहा हूँ— उनकी नेचर में बड़ी जल्दबाज़ी और उतावलापन है !....अभी मुलाक़ात होगी तो तुम जान जाओगे। यह जस्टिस बनर्जी के सबसे बड़े लड़के हैं !...भई यह बिजली वाले खूब अँधेरा करते हैं। वार-टाइम जैसा ब्लैक-आउट .... लो आ गयी, आ गयी....अँधेरे से हम मुक्त हो गये ! अँधेरा ! यह कितना डरावना होता है ! ज्यादातर क्राइम अँधेरे में ही होते हैं। हम नीचे चैम्बर में ही चलें ! बनर्जी का बँगला बिल्कुल पास ही है, मोड़ पर..."

दूर होती पदचापों की ध्वनि।

सोमा कमरे में पड़े कोच पर बैठी रही, मोहाविष्ट जैसी स्थिति में। कमरा अब प्रकाश से भर गया था। उसके आस-पास की हवा में पुरुष की गंध अब भी गमक रही थी। उसके शरीर में स्पर्श की सिहरन शेष थी।

सोमा ने जैसे अपनी चेतन-शक्ति पर से नियंत्रण खो दिया। शीघ्र ही वह उठी और उसने कमरे में लगे स्विच ऑफ कर दिये और अँधेरे में डूबी वहीं जाकर बैठ गयी जहाँ पहले बैठी थी। उसने यह न सोचा कि सिर्फ़ उसके कमरे और बॉल्कनी की बत्ती ही बुझी है। बिन्नी वाले कमरे में प्रकाश वैसे ही फैला है और इसलिए अब किसी संयोग या ग़लती की सम्भावना नहीं हो सकती। उसकी चेतना को जैसे इन्द्रियों के दबाव ने जड़ बना दिया था।

अधिक समय नहीं बीता कि ज़ीने पर पदचाप फिर उठी। निकट आती हुई आवाज़। निकट से निकटतर आवाज़ का उसके कमरे में ही प्रवेश।

कमरा एकाएक प्रकाश से जगमगाने लगा।

"अरी छोटी मेमसाहब, आप ! अँधेरे में क्यों बैठी हैं ? तबीयत तो ठीक है ?"

सोमा के गले से कोई आवाज़ नहीं निकली,

[शेषांश पृष्ठ ६४ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमेशचन्द्र शाह

●

चीन्ही-अनचीन्ही ध्वनियों का एक ऐसा विशाल सागर जिसमें अनेक-अनेक क़िस्म की उठती-गिरती और पछाड़ खाती ध्वनि-तरंगें हैं, जिनके समूह को एक ही नाम दिया जा सकता है—कोलाहल।

●

ये पंक्तियाँ लिखते समय ध्वनियों के जिस वायुमण्डल में मेरे कान साँस ले रहे हैं, उनको अलग-अलग कर सकना मेरे लिए उतना ही कठिन है जितना नासिका के लिए आक्सीजन और नाइट्रोजन को अलग-अलग प्रवेश-पत्र दे सकना। इस वायवी मिश्रण में से कुछ अवयव तो इतनी आसानी से अलगाये जा सकते हैं जितनी आसानी से चीनी से कोयला, पर अधिकांश तो निष्क्रिय गैसों की तरह दुर्निश्लेष्य प्रतीत होते हैं।

चीन्ही-अनचीन्ही इन ध्वनियों के सागर में कोई उत्ताल तरंग, कोई ज्वार-भाटा नहीं उठ रहा, दूर से आती रोडवेज़ की बस की चीख तक जैसे इस दुपहरी में अलसाकर मौन हो गई है। आस-पास दूर-दूर सर्वत्र नादब्रह्म व्याप रहे हैं—सहस्र-सहस्र रूप धारण कर, फिर भी मैं लिख रहा हूँ और उन्हें जब चाहूँ, सुना-अनसुना कर सकता हूँ। इस रागमाला का मधुर-से-मधुर और कर्कश-से-कर्कश स्वर भी मेरी तल्लीनता को भंग नहीं कर सकता।

को ला ह ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन मैं डरता हूँ पड़ोसी घोषाल साहब के बच्चे कहीं अपना रेडियो न खोल बैठें ! कल इस चिल्ल-पों में सारा दिन बेकार चला गया, लकड़ी का पार्टीशन 'पूरे वैल्यूम' पर दहाड़ते रेडियो से क्या रक्षा करता भला ! इन बच्चों को क्या मालूम कि बग़ल वाले को रेडियो-सीलोन का मज़ा इसके चौथाई पिच में भी आ सकता है। इस शोरगुल को गाने में बदलने का एकमात्र उपाय यही है कि मैं जाकर बीस गज़ ऊपर छत की शरण गहूँ।

ऐसी कनफोड़वा ध्वनि-तरंगों के एकत्र अत्याचार को मैं 'शोर' कहता हूँ। कक्षा में अध्यापक के आने से पहले (और किसी-किसी अध्यापक के जाने के बाद भी) लड़के शोर मचाते हैं। किसी लाश का आभास पाकर कौए 'काँव-काँव' का शोर मचाने लगते हैं। नाटक के बीच में स्टेज की बत्ती गुल हो जाय तो देखिए क्या 'शोरगुल' मचता है, 'शोर' ही तो बढ़ावा पाकर, समय पाकर या यों ही 'शोरगुल' हो जाया करता है; इसका कारण हो ही, यह भी कोई ज़रूरी नहीं। 'शोर' अनायास ही, बिना किसी विशेष प्रेरणा के भी उत्पन्न हो सकता है। कक्षा में 'पिन-ड्राप-साइलेन्स' पर ज़ोर देने वाले प्रवक्ता को पीछे की सीट पर बैठे दो शान्तिप्रिय छात्रों की अन्तरंग कानाफूसी भी 'शोर' लग सकती है।

मगर 'हो-हल्ले' की बात दूसरी है। एक ही 'लकार' किसी शब्द को गुरुता प्रदान करने के लिए काफ़ी है। यहाँ दो-दो 'लकार' गुंथे हुए हैं। और इसीलिए 'हल्ला' सामान्यतः 'निव्यार्ज' नहीं उठता। 'हल्ला' कभी-कभी ऐसा भी मच जाता है जिसे आप 'हल्ला' कहकर और गुनकर भी सुन नहीं सकते। अमुक की पत्नी अमुक के साथ भाग गई—पड़ोस में 'हल्ला' मच गया, भले ही उसकी आवाज़ आपके कानों तक न पहुँचे; जैसे 'हल्ला' अंग्रेज़ी के 'स्कैण्डल' का ही विगड़ा हो। इस अर्थ तक आपको पहुँचाने की शक्ति न तो 'कोलाहल' में है, न 'शोर' में। यहीं नहीं, आप चाहें तो मराठों की छापामार सेना के साथ मुग़लों के शिविर पर 'हल्ला' बोल सकते हैं। यही नहीं, मन के कानों में 'अल्ला-हो-अकबर' और 'हर-हर-महादेव' का तुमुल घोष भी सुन सकते हैं।

हाँ, 'हल्ले' का स्वाद थोड़ा-बहुत 'कोलाहल' में अवश्य होता है। यों कहने की इच्छा होती है कि हो सकता है 'हल्ला' शब्द कोलाहल का ही अपभ्रंश हो। है या नहीं, यह तो भाषा-विज्ञान वाले जानें, यहाँ तो मामूली गणित से काम चलता है। डेढ़ से दो 'लकारों' में ज्यादा बल होगा—इतना तो निश्चित है। साथ ही कवर्ग की कठोर व्यंजना भी 'कोलाहल' को प्राप्त है। 'लकार' की दीर्घायु ने क्या कमाल कर दिखाया है इसको हृदयंगम करने के लिए 'कोलाहल' को 'हलचल' के बराबर खड़ा करना ही काफ़ी होगा।

नाद की घनिष्ठ अभिव्यक्ति के कारण जहाँ 'तुमुल' शब्द 'संग्राम' का समानधर्मी हो सका है और 'हलचल' में किसी भी प्रकार की उत्तेजना का क्षिप्र साधारणीकरण हो पाया है, वहाँ 'कोलाहल' गुरुत्व एवं विस्तार दोनों है। जिस प्रकार 'भगदड़' शब्द का उच्चारण करते ही सैकड़ों-हज़ारों आतंकित पगों की भारी-भारी चापें या टापें हमारे कानों में गूंज उठती हैं, उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कोलाहल' कहते ही एक बिखरे, विस्तृत, आस-पास और दूर-दूर तक छाये गंभीर नाद का आभास होता है। फलतः इसका प्रयोग-क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। अपनी व्यापकता में 'कोलाहल' जहाँ 'शोर' को समेट लेता है, वहाँ 'कलरव', 'गूंज', 'रोर' 'तुमुल' जैसे शब्दों की सूक्ष्म अर्थच्छायाओं को भी सहज ही ग्रहण कर लेता है। नीड़ों को लौट रहे पक्षियों के समवेत् 'रव' के लिए 'कोलाहल' से अधिक उपयुक्त शब्द क्या होगा? एक प्रसिद्ध कविता की पंक्ति याद आती है:

संझा का कोलाहल बजता पग-पैंजन-सा।

अब भला 'पग-पैंजन'-सा जो शब्द बजता हो, उसकी 'सांगीतिकता' में संदेह ही क्या रह जाता है। फिर हिन्दी में एक साथ विरक्ति, व्यग्रता, उद्वेग, उत्ताप, ऊब आदि भावों की इकट्ठी अभिव्यंजना करने वाले ऐसे कितने शब्द हैं?

'तज कोलाहल की अवनी रे!'

इस एक पंक्ति में जितना अर्थगौरव है, उतना मैथ्यू आर्नाल्ड द्वारा इसी मूड और संदर्भ में लिखी कविता-पंक्तियों के आधे दर्जन शब्दों में नहीं। 'प्रसाद' का एक 'कोलाहल' अंग्रेज़ी कवि के 'फ़ीवर एण्ड फ्रेट', 'हार्ट-विदरिंग रोर' 'बिनम्बिंग राउंड' जैसे कई मुहावरों का बोझ अकेला ही ढो सकता है।

यों 'कोलाहल' से भी अधिक संगीतमय एवं करुण, कोमल शब्द 'हाहाकार' है। शोक की जैसी गहरी व्यंजना इसमें संभव है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है, इसकी महिमा समझने के लिए दुनिया की सबसे समृद्ध भाषा अंग्रेज़ी में इसका समानार्थक ढूंढ़कर देखिए।

किन्तु इस तुलना से 'कोलाहल' का गौरव नहीं घटता। 'हाहाकार' सरीखी त्राहि-त्राहि इससे मचे या नहीं, थोड़ा-बहुत त्रास का आभास तो मिल ही जाता है। पीड़ा के इस एकछत्र राज्य में न सही, सुख और आनन्द के क्षेत्रों में तो 'कोलाहल' का निर्बाध संचरण है। साथ ही इच्छानुसार हास्य और कौतुक का बाना पहनने की भी पूरी स्वतंत्रता है 'कोलाहल' को। अब बताइये, बेचारा 'हाहाकार' क्या खाकर इस 'कामरूप' का मुक़ाबला करेगा?

कहीं पाठकगण यह न समझें कि मैं 'कोलाहल' की प्रशंसा में ज़रूरत से ज्यादा कोलाहल कर बैठा हूँ। अतः अब कुछ ऐसे शब्दों को भी अपना संगीत छेड़ने दूं जिनका व्यक्तित्व 'कोलाहल' की अवनी से कहीं अधिक 'रोमैन्टिक' है।

'रोर' ही को लें: पंतजी के 'खग-कुल-रोर' में 'पंछी के कोलाहल' जैसा माधुर्य है, इसमें आपको संशय हो सकता है, किन्तु जब निराला गा उठते हैं:

'राग अमर अम्बर में भर निज रोर!'

तब इस एक पंक्ति को दो-एक बार गुनगुना चुकने के बाद आप उस लोक-प्रतिभा को बरबस नमस्कार कर उठते हैं जिसने इस शब्द की सर्जना की। बादल-राग के विद्रोही 'रौद्र-रस' को अच्छी तरह हृदयंगम कर चुकने के बाद भी आप इस पंक्ति के अमर राग के 'रोर' में पंतजी के 'खग-कुल-रोर' जैसी मृदुलता की कल्पना करने के लिए स्वतन्त्र हैं। ऐसा चमत्कार 'कोलाहल' के बस की बात नहीं थी और यदि आपको रौद्र-रस से हास्य-रस में बिना सीढ़ी के उतरना हो तो 'रोर' की जगह 'शोर' को स्थानापन्न करके देखिए।

फिर भी यह निर्विवाद है कि 'शोर'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अपना स्थान और पद है जहाँ से उसे टस-से-मस नहीं किया जा सकता। ऐसे महानुभावों की कमी नहीं जिनकी संस्कृत-निष्ठा में 'शोर' और उसकी लम्बी-चौड़ी बिरादरी के लिए कोई जगह नहीं। अब हिन्दी के इन हठयोगियों को कोई कैसे समझाये कि हिन्दी के शब्द-विभाग में 'शोर' साहब की नियुक्ति अस्थायी नहीं। सिनियोरिटी-लिस्ट में भले उनका नाम 'कोलाहल' से नीचे हो, उनको नोटिस देने की तो बात भी नहीं सोची जा सकती। ऐसी ज़रा भी ग़ुस्ताखी होने पर वह 'शोर' मचेगा कि विवश होकर उनके विरोधियों को उन्हें नये सिरे से कुर्सी पर बिठाना पड़ेगा।

और फिर यह तो 'शोर' साहब की मेहरबानी है कि वक्त-बेवक्त काम सम्हाल लेते हैं। ऐसे भी अवसर आते रहते हैं जब इन्हें अपना स्वभावगत चुलबुलापन छोड़कर 'कोलाहल' महाशय का बुजुर्गाना व्यक्तित्व ढोना पड़ता है। यह एक ऐसा ऋण है जिससे 'कोलाहल' उऋण नहीं हो सकते क्योंकि उनका काम 'शोर' भले ही चला लें उनसे 'शोर' का काम तो नहीं ही चलता। उनकी भारी-भरकम काया के लिए 'शोर' साहब की कुर्सी हमेशा छोटी पड़ती रही है। खैर, ये उनकी आपसी बातें हैं, हमारा-आपका शोर-गुल उनके कानों तक पहुँचेगा ही कहाँ! वे दिव्यात्माएं जो हुईं—हमारे इन शब्दों के कोलाहल से कोसों दूर।

● ● ●

[पृष्ठ ६० का शेषांश : घिरती साँझ की उदास छाया]

वह सूनी फटी आँखों से नौकर को देखने लगी, जिसकी आकृति बड़ी ही भद्दी थी—चेचक से छिदी चेहरे की ज़िल्द, पिचकी हुई नाक, मोटे-मोटे स्याह ओंठ—ऊपर के ओंठ पर फैली बेतरतीब मूंछें...

"साब ने कॉफ़ी बनाने को कहा है!.... कॉफ़ी का डिब्बा नीचे खत्म हो गया। ऊपर से नया लूंगा।.... आप भी ले लीजियेगा एक कप कॉफ़ी।...."

बाहर तेज़ हो गयी हवा से बाँस की पत्तियाँ इस प्रकार की आवाज़ कर रही थीं जैसे वे टूट-टूटकर गिर रही हों। सोमा के चेहरे पर एक सहमा हुआ पीलापन तेज़ी से फैलता जा रहा था, कुछ वैसा ही जैसे हाल में ही सुहागिन बनकर विधवा बनने वाली किसी लड़की के चेहरे पर फैलता है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामनारायण उपाध्याय

पढ़कर बतलाइये कि इस संग्रहालय के बारे में आपकी क्या राय है, क्योंकि आपकी राय पर ही इसका बनना या न बनना निर्भर है।

राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं का ऐतिहासिक संग्रहालय

उस दिन जब मैं प्रान्त की राजधानी में पहुँचा तो वहाँ एक विशाल भवन की दीवार पर तख्ती टँगी थी--'राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं का ऐतिहासिक संग्रहालय!' और उनके नीचे लिखा था--'केवल बौद्धिक वर्ग के लिए'।

मैं परेशान-सा आगे बढ़ा तो बग़ल के कक्ष में एक अधिकारी बैठे थे। मैंने उनसे पूछा, "क्या मैं इस संग्रहालय के बारे में आपसे कुछ जान सकता हूँ?"

उन्होंने मुझे नम्रता-पूर्वक बैठने का आग्रह करते हुए कहा, "क्या आप इस संग्रहालय को देखना चाहेंगे?"

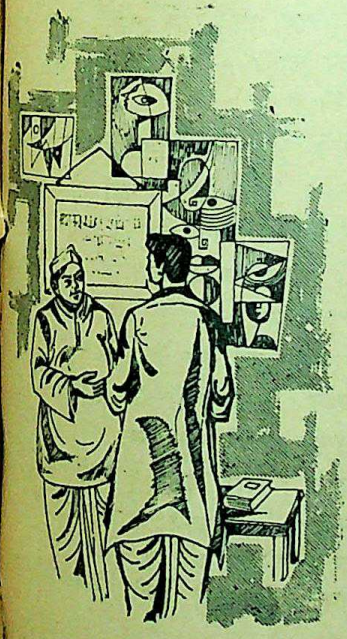

मैंने कहा, "जहाँ बोर्ड लगा है, उसके नीचे यदि दरवाज़ा होता तो मैं बजाय आपके, उस संग्रहालय को ही देख रहा होता।"

वे बोले, "हमने ऐसी व्यवस्था जान-बूझकर की है। जिस तरह किसी पुस्तक को पढ़ने के पूर्व, उसकी भूमिका पढ़ना आवश्यक है, उसी तरह किसी वस्तु को देखने से पूर्व यदि उसकी प्रारम्भिक पृष्ठभूमि जान ली जाय तो उससे उसे समझने में बल मिलता है, अन्यथा वैसी ही स्थिति होती है जैसी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री की बिना पूर्व जानकारी प्राप्त किये एक विदेशी संग्रहालय देखने पर हुई थी। कहते हैं, वे मूर्तियों को देख रहे थे और संग्रहालय के अन्य दर्शक मूर्त्तिवत् बने उस मंत्री महोदय को।"

मैंने कहा, "बात तो ठीक है। आपके इस संग्रहालय का नाम ही ऐसा है कि बिना पूर्व जानकारी प्राप्त किये इसे देखना व्यर्थ है। कारण ऐतिहासिक महत्व की वस्तुओं के राष्ट्रीय संग्रहालय तो बहुत-से देखे हैं, लेकिन राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं का ऐतिहासिक संग्रहालय क्या होता है, यह अभी तक नहीं जान पाया हूँ।"

वे बोले, "यह युग ही विचार का है। जिस तरह प्रत्येक कार्य के पीछे एक योजना होती है, उसी तरह प्रत्येक घटना के पीछे एक विचार होता है। यदि उन ऐतिहासिक महत्व के विचारों को, सांकेतिक शैली में सुरक्षित रखा जाय तो उसमें से राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं के उद्भूत होने की संभावना रहती है।"

मैंने पूछा, "आपको इसकी प्रेरणा कैसे मिली?"

वे बोले, "आपने बॉलज़क का नाम सुना होगा। कहते हैं, उसने नेपोलियन की कहावतों का संग्रह कर उसी की बिक्री से एक ऐसा संग्रहालय बनाने की बात सोची थी जिसमें फ्रांस के सम्पूर्ण सुन्दर चित्रों और मूर्त्तियों को रखा जा सके। फिर उन्हें ख़याल आया कि उसके लिए तो पहले भवन चाहिए। अतएव, उन्होंने उस रक़म से एक भवन ख़रीद लिया था और उसमें किस स्थान पर कौन-सी मूर्त्ति अथवा चित्र होगा, इसकी चिटें भी लगा दी थीं। लेकिन इस कार्य में इतना पैसा खर्च हो गया कि मूर्त्तियां ख़रीदने को कुछ बचा ही नहीं। सो तब से बिना मूर्त्तियों के उस संग्रहालय की कल्पना खाली पड़ी थी। सोचा, क्यों नहीं उसका इस संग्रहालय के लिए उपयोग कर लिया जाय।"

मैंने कहा, "यह तो एक कालातीत विचार है! इसे आपने मूर्त्त-स्वरूप कैसे दिया? संग्रहालय के लिए तो कुछ ठोस चीज़ें चाहिये! क्या आपने प्रत्येक विचार का मॉडल बनाकर रखा है?"

वे बोले, "यह तो पिटी-पिटाई बात हुई। आजकल, जबकि साहित्य के क्षेत्र में नई कविता, नई कहानी और आंचलिक उपन्यासों का प्रयोग जारी है, राजनीति के क्षेत्र में नये पैसे, नये टेक्स और नये माप-दंड निर्धारित किये जा रहे हैं, तब हमारा विभाग ही क्यों पीछे रहे? श्रीं केशवचन्द्र वर्मा हमारे मार्ग-दर्शक रहे हैं? भगवान् उन्हें चिरायु करें। यदि वे नहीं होते तो हमारी सारी योजना ही ठप होती। हमनें उन्हीं की शैली अपनायी है।"

मैंने पूछा, "कौन-सी-शैली?"

बोले, "क्या आपको नहीं मालूम, उनके घर में एक विशाल फ्रेम में मढ़ा श्वेत-पत्र लगा है जिसके नीचे लिखा है: 'हरी घास पर क्षण भर मुर्ग़ा।' और उसके नीचे निम्न परिसंवाद छपा है :—

प्रश्न : इसमें हरी घास कहाँ पर है?

उत्तर : उसे मुर्ग़ा खा गया।

प्रश्न : और मुर्ग़ा कहाँ पर है?

उत्तर : वह घास खाकर उड़ गया। इसीलिए तो 'क्षण भर' है।

हमने भी इसी शैली में घटनाओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने का आयोजन किया है। फ़र्क सिर्फ़ इतना ही है कि उन्होंने चित्रों के माध्यम से शब्द-चित्र संजोये हैं और हमने शब्दों के माध्यम से घटनाओं को बाँध लिया है।

इसमें एक-एक शब्द एक-एक घटना का परिचायक है। जैसे हमारे कला-कक्ष में एक घटना का शीर्षक है :

'नई चित्रकला.....कुछ संभावनाएँ।'

और उसके नीचे निम्न घटना अंकित है :

एक व्यक्ति जब नरक में पहुँचा तो उसे यमदूत डराने लगे। लेकिन वह हँसता, मुस्कराता रहा।

यमदूत ने पूछा : क्या तुम्हें डर नहीं लगता ?

वह बोला : तुमसे क्या डरना। मैं आर्ट गैलरी से आ रहा हूँ। वहाँ आधुनिक चित्रकारों ने ऐसे-ऐसे चित्र बनाये हैं कि यदि तुम भी देखो तो डर जाओ। उन्हीं से डर-कर तो मैं यहाँ आया हूँ। सोचा, जब तुम्हारी मृत्यु होगी तो तुम्हें वहाँ भिजवा दूंगा।

इसी तरह द्वितीय महायुद्ध से संबंधित घटना का शीर्षक है : 'झूठ—युद्ध-काल में'।

और उसके नीचे निम्न घटना अंकित है :

द्वितीय महायुद्ध में जब मित्र-राष्ट्रों के ढाई-सौ सैनिक मरकर स्वर्ग में पहुँचे तो उन्होंने स्वर्ग के देवता से कहा : हे स्वर्ग के देवता, दरवाज़ा खोलो ! हम युद्ध में मरकर आ रहे हैं।

स्वर्ग के देवता ने दरवाज़ा खोलकर सिर्फ़ पच्चीस व्यक्तियों को अंदर ले लिया और कहा : अभी-अभी लंदन-रेडियो से प्रसारित हुआ है कि मित्र-राष्ट्रों के सिर्फ़ पच्चीस सैनिक मरे हैं, अतएव मैं अधिक लेने से लाचार हूँ।

और द्वितीय पंचवर्षीय योजना से संबंधित एक घटना का शीर्षक है : 'आँकड़े..... प्रगति के पथ पर'

और उसके नीचे निम्न घटना लिखी है :

एक टाइपिस्ट जब विकास-अधिकारी द्वारा दिये गये जन-संपर्क-दौरे के आँकड़ों की रिपोर्ट टाइप कर रहा था, इसी बीच उक्त अधिकारी ने आकर कहा : ठहरो, इसमें ढाई हज़ार और जोड़ना है।

पूछा : क्यों, ये आँकड़े तो आपने आज ही दिये हैं ?

बोले : मैं अभी-अभी एक व्यक्ति से बात करके आ रहा हूँ। वह ढाई हज़ार जनता का प्रतिनिधि है, अतएव इसमें ढाई हज़ार और जोड़ना पड़ेगा !"

मैंने कहा, "हमें बात करते काफ़ी समय हो गया। अब यदि मुझे आप संग्रहालय दिखा सकें तो आभारी होऊँगा।"

उन्होंने एक रजिस्टर मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "कृपया इसमें अपना नाम, ग्राम, उम्र और शैक्षणिक योग्यता लिख दीजिए !"

मैंने पूछा, "क्यों ?"

बोले, "राज्य-सरकार यह जानना चाहती है कि यदि ऐसा संग्रहालय बनाया जाये, तो वह चलेगा अथवा नहीं।...अभी वह बना कहाँ है !"

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

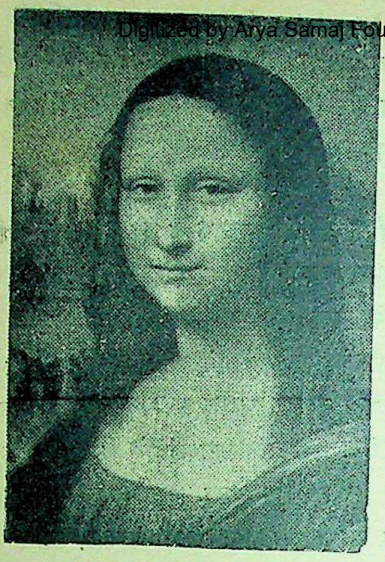

मोनोलिज़ा की याद में

सूर्यभानु गुप्त

तुम्हारे ओंठों के ये सदाबहार गुलाब
महक रहे हैं,
अपने पूरे शबाब के साथ।
और मज़े की बात तो यह है कि
पतझर की पीली बेक़रार उँगलियाँ,
इन्हें तोड़ लेने में सदा नाकामयाब रही हैं।
सुनो ! तुम्हारे बग़ैर
मेरे दरवाज़े से,
हँसी के कितने युवा त्योहार
ख़ाली हाथों,
वापस लौटते रहे हैं;
कि तुम्हारे बग़ैर
फूलों के कितने खुशनुमा मौसम
लगातार उदास होते गये हैं।
तुम्हारी हँसी के बिना
चिड़ियों के बच्चों के कितने सतरंगे शिशु-गान
सहमकर,
बर्फ़ बन जाते रहे हैं;
कि तुम्हारे जन्म के पहले
मेरी आँखों की देहरी से,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहों का हर पर्व
अनभोगा गुज़र जाता रहा है ।
तुम्हारी छातियों के
हहराते हुए दूधिया ज्वार की लोरियों के
इस चिरन्तन संगीत में,
मुझे अपनी परम वात्सल्यमयी माँ की
तस्वीर नज़र आती है ।
कभी तुम्हारे रोशन चेहरे की
उस अमृता शांति को देखकर
सोचता हूँ कि
तुम क्या कुछ थीं ?
एक माँ, एक बहन,
एक प्रेयसि, एक नारी,
और एक ख़ुदा !
और आज क्या हो तुम ?
सिर्फ एक बिना शब्दों की कविता !
सिर्फ एक जिन्दा याद !
और इन सबसे परे
सिर्फ एक तस्वीर !
जिसे देखकर मुझे ख़ुद एक तमन्ना होती है कि
काश, मैं सिर्फ एक तस्वीर होता !
कि काश, मैं सिर्फ एक ख़ूबसूरत याद हो पाता !
जिसे लोग गाहे-ब-गाहे याद तो करते ।
और कभी-कभी तुम्हारी इस सनातन चिर-युवा
मुस्कुराहट का राज़ समझते हुए
मुझे एकायक लगता है, कि
तुम्हारी इन पुरअसर आँखों में
बर्फ की अनगिनत कलियाँ
अभी जैसे....अभी तेज़ी से पिघलेंगी !
कि तुम्हारे कुसम्बी अधरों पर जमी हुई
शीशे की दीवार
एकबारगी झनझनाकर टूट जायेगी,
और तुम अभी जैसे.... बिल्कुल....अभी
खिलखिलाकर हँस दोगी ! ● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक चोपड़ा

'और मैं प्लेटफ़ार्म पर खड़ा सोच रहा हूँ....सोचे जा रहा हूँ'....मनुष्य के अन्तर्मन और उसकी बाह्य परिस्थितियों के संघर्ष की एक मर्मस्पर्शी कथा।

मैं सोच रहा हूँ

अपनी बहन नीता के साथ मैंने उसे पहली बार कब, कहाँ देखा, याद नहीं। शायद छह-सात महीने पहले। हो सकता है, आठ-नौ भी हो गये हों। याद हो भी कैसे! नीता के साथ उसका होना कोई खास बात तो थी नहीं। कालेज में कौन नहीं जानता उसे। चाहे प्रोफेसर हो या स्टुडेण्ट, नीता हरएक के साथ बेतकल्लुफ़, बेझिझक बातचीत करती। राह से गुज़रते समय कई लोग मुझे 'भाईसाहब, नमस्ते!' कहते हैं। मैं समझ जाता हूँ कि यह कोई नीता का ही परिचित होगा। मैं चेहरे पर तुरन्त वही मुस्कान लाने की कोशिश करता हूँ जो एक परिचित को देखकर दूसरे परिचित के चेहरे पर आनी चाहिये।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि नीता के साथ मैंने उसे कब और कहाँ पहली बार देखा, मुझे बिलकुल याद नहीं; पर आज मैं याद करना चाह रहा हूँ। सुबह से गार्डन में कुर्सी डाले बैठा मैं उसी के बारे में सोच रहा हूँ।.... बहुत सोच चुका हूँ, पर याद नहीं आता। कई बातें सोचने पर भी याद नहीं आतीं और कई बातें, जिन्हें हम याद नहीं करना चाहते, बिना सोचे ही याद आ जाती हैं। आ-आकर वे हमारी चेतना को कुरेदती हैं, आत्मा को कचोटती हैं। जैसे कि भूल जाना चाहता हूँ कि सुबह चटर्जी ने नीता और उसके बारे में क्या कहा था, पर नहीं भूल पाता। बार-बार मेरे कानों में चटर्जी का वही वाक्य गूंजने लगता है....“रवि,

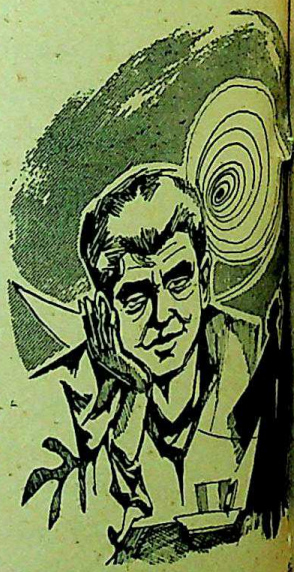

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीता की ओर से बहुत लापरवाह हो गये हो तुम। किसी भी समय उसके क़दम बहक सकते हैं। आजकल वह और माथुर हरदम साथ-साथ नज़र आते हैं! लोगों में कानाफूसी भी होने लगी है। तुम ख़ुद समझदार हो, मैंने तो मित्रता का कर्तव्य निभाया है, आगे जो तुम ठीक समझो....''

यह बात नहीं कि ऐसे शब्द मैंने पहले कभी नहीं सुने। कई बार। पर इस बार ये शब्द चटर्जी ने कहे हैं, मेरे दोस्त चटर्जी ने। वह मुझे जानता है, समझता है। उसे यह भी मालूम है कि उसके शब्द मेरे लिए क्या महत्व रखते हैं। मैं इन्हें सुनकर अनसुना नहीं कर सकता। इसीलिए सोच रहा हूँ.... सुबह से सोच रहा हूँ....

न जाने क्या-क्या सोच चुका हूँ अब तक। कई बातें सोची हैं जिनका जोड़ करता हूँ तो उत्तर शून्य के सिवा और कुछ नहीं आता। लगता है, कुछ नहीं सोच पाया। पर कुछ सोचा तो है ही। मेरा सिर भारी है। मेरे सिर में दर्द है—यह जानकर मुझे तसल्ली मिली है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि चटर्जी ने जो-कुछ कहा है, उस पर सोचना मेरा फ़र्ज़ है और सर-दर्द मेरे सोचने का प्रमाण है।

अच्छा, छोड़ो, उसे नीता के साथ कब देखा? कहाँ देखा? इससे क्या फ़र्क पड़ता है। पहिले कभी नहीं लगा, पर आज लग रहा है कि सचमुच मैं नीता को उसके साथ बहुत ज्यादा बार देख चुका हूँ। मुझे यह बात अखरनी चाहिए थी, पर अखरी क्यों नहीं, क्यों?.... फिर सोचने लगा हूँ...सोच रहा हूँ.... प्रेम! हाँ-हाँ, यही कहा जा सकता है कि नीता उससे प्रेम करती है... यह सोचते ही मेरे सारे शरीर में झुरझुरी-सी दौड़ गयी है। हाँ, जाने क्यों मुझे यह कल्पना बड़ी अजीब-अजीब और अप्रिय-सी लग रही है। मेरे ख़याल दकियानूसी नहीं। जीवन के बदलते हुए मूल्यों से भी परिचित हूँ। नारी-स्वतन्त्रता के विचारों का पूरी तरह से क़ायल। फिर भी....फिर भी जब नीता और माथुर के बारे में सोचता हूँ तो खो जाता हूँ विचारों में.... लगता है, सिद्धान्तों के तराज़ू पर यथार्थ को तौलने का बल मुझमें नहीं।

....रात गुज़र रही है। कमरे में मेरे सिवा और कोई नहीं है। कमरे में क्यों, पूरे मकान में कोई नहीं है। बिलकुल अकेला हूँ मैं, बिलकुल अकेला।....

वैसे भी घर में आदमी ही कितने हैं! कुल दो, मैं और नीता। नौकर छुट्टी पर गया हुआ है। पिताजी गाँव में हैं और माँ स्वर्ग में। मैं शहर में सर्विस कर रहा हूँ। अभी शादी नहीं हुई। नीता शहर में पढ़ती है। मेरे साथ रहती है। उसकी देखभाल की ज़िम्मेवारी मुझ पर है। वह शाम की ही गयी हुई है, न जाने कहाँ, अभी तक नहीं लौटी। मैं सोच रहा हूँ.... आज उसे कह ही दूंगा। पर क्या कहूँ? बस, इतना ही काफ़ी होगा शायद कि माथुर के साथ बहुत ज्यादा मेल-जोल ठीक नहीं! वह समझ जायेगी। पर यदि वह पूछ बैठी कि क्यों भाई साहब?—तो? क्या जवाब दूंगा मैं? कुछ सूझ नहीं रहा है। सोचने पर अक्सर कोई बात नहीं सूझती मुझे और सूझ जाये तो मैं सोचूं ही क्यों? पर कोई जवाब नहीं सूझा है, इसीलिए तो सोच रहा हूँ....माथुर की खामियों के बारे में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ामियाँ सब में होती हैं, उसमें भी होंगी... हैं। ख़ूबियाँ भी होंगी। पर ख़ूबियों से मुझे क्या वास्ता? बस ख़ामियाँ ही जानना चाहता हूँ मैं। मैं कई लोगों से उसके बारे में पूछ चुका हूँ, इस उम्मीद से कि मुझे यह सुनने को मिलेगा—"वह साला, हरामज़ादा...." परन्तु न जाने क्यों मुझे यही सुनने को मिलता है—"बहुत अच्छे स्वभाव का लड़का है, चित्रकार भी अच्छा है..."मुझे क्रोध आ जाता है ऐसे उत्तर सुनकर, पर मैं उसे प्रकट नहीं कर सकता। चुप हो जाता हूँ और सोचने लगता हूँ....

साढ़े ग्यारह बजे नीता लौटी है।

"बहुत देर कर दी, कहाँ थी?"—मन-ही-मन कई बार दोहराया प्रश्न मैं पूछता हूँ।

"माथुर के साथ 'ब्रिज आन रिवर क्वाई' देखने चली गई थी भाई साहब।"

माथुर का नाम सुनते ही मुझे याद आ है।

"सुनो नीता...."

"क्या?"

"...."

मैं अचानक भूल गया हूँ कि मुझे क्या कहना है। शायद मैंने जानकर उसे भुला दिया है।

"कल याद कराना मुझे, दफ़्तर से लौटते हुए नीली साड़ी लेता आऊँगा। तुम कई बार कह चुकी हो, पर रोज़ भूल जाता हूँ।" मैं यूं ही बात टालने के लिए कह देता हूँ।

"अच्छा भाई साहब!"—कहकर वह सोने चली जाती है।

मैं वहीं पर बैठा सोचता रहता हूँ....

●

साँझ ढल रही है। जी कुछ उचाट-सा है। चाहता हूँ—घूमूं, ख़ूब घूमूं, बेमक़सद। बेवजह ओवर-कोट पहनकर घर से बाहर निकल आया हूँ।

अनजाने ही नदी के किनारे पहुँच गया हूँ। चहलक़दमी कर रहा हूँ। थोड़ी ही देर बाद कुछ थकावट-सी महसूस होने लगती है। एक पेड़ से पीठ टिकाकर बैठ जाता हूँ।

पतला-सा अन्धकार फैला हुआ है मेरे इर्द-गिर्द।

मैं सामने से एक जोड़े को हाथों में हाथ डाले इधर ही आते देख रहा हूँ। सूरतें

बड़ा नहीं छोटा

जूते की एक बड़ी-सी दूकान में एक सेल्समैन की आवश्यकता थी। अतः एक उम्मीदवार से मैनेजर ने प्रश्न किया "मान लो, जूता पसंद करते समय यदि कोई महिला तुमसे यह कहे कि उसका दायाँ पैर बायें पैर से कुछ बड़ा मालूम पड़ता है, तो तुम उससे क्या कहोगे?"

"जी", उम्मीदवार ने उत्तर दिया, "मैं कहूँगा कि आप भ्रम में हैं, आपका बायाँ पैर दायें पैर से कुछ छोटा लगता है।"

मैनेजर प्रसन्न होता हुआ बोला, "शाबाश, कल से तुम काम पर आ जाओ!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ पहचानी-पहचानी-सी लगती हैं और मैं उठकर पेड़ की आड़ में हो गया हूँ।

वे दोनों पेड़ के नीचे आकर रुकते हैं! उन्हें पहचान लेता हूँ। वे नीता और माथुर हैं। कुछ क्षणों तक वे दोनों पेड़ के नीचे ख़ामोश खड़े रहते हैं।

मैं उन्हें देख रहा हूँ.... उनकी साँसों की आवाज़ मुझ तक आ रही है।

....दोनों अब एक-दूसरे से सटकर खड़े हैं।

....मैं माथुर की बाँहों को ऊपर उठते देखता हूँ.... उन्होंने नीता को अपने में समेट लिया है.....

मैं चौंकता हूँ। मुझे यूं ख़ामोश तो नहीं खड़ा रहना चाहिए। कुछ करना चाहिए। पर क्या? माथुर के टुकड़े-टुकड़े कर डालूं? नीता का गला घोंट दूं? हाँ, यही ठीक होगा।

पर मैं चुपचाप खड़ा हूँ। मैं सामने की ओर देखता हूँ, वे दोनों जा चुके हैं! और मैं सोच रहा हूँ....

●

सारी राह यही सोचता रहता हूँ कि घर पहुँचते ही उस कुल-कलंकिनी का गला घोंट दूंगा, परन्तु न जाने क्यों, 'कुल-कलंकिनी' शब्द मुझे स्वयं अनोखा-सा लग रहा है....

और अब, जब मैं घर पहुँच रहा हूँ, मेरे निश्चय में शिथिलता आ गयी है। हाँ, बस, समझा देना ही काफ़ी होगा। समझा दूंगा उसे...

कमरे में घुसता हूँ। नीता सामने के पलंग पर लेटी-लेटी अपना एल्बम देख रही है। मेरे क़दमों की आवाज़ से उसका ध्यान टूट जाता है। वह मेरी ओर आँखें उठाती है। उसका चेहरा खिला हुआ है। बहुत ख़ुश नज़र आ रही है वह।

मुझे याद है कि मुझे उसे समझाना है, पर सोचता हूँ कि ऐसी भी क्या जल्दी है—कल समझा दूंगा।

मैं चुपचाप अपने कमरे में जाकर बिस्तर में लेट जाता हूँ। बहुत देर तक वह किसी गीत की कड़ियाँ गुनगुनाती रहती है...

और मैं सोच रहा हूँ....

●

सुबह का समय है। मैं बरामदे में बैठा अख़बार के पन्ने उलट रहा हूँ। सामने से माथुर आता नज़र आता है वह नमस्ते करता है। दो क्षण मेरे पास बैठता है, फिर पूछता है—"नीता कहाँ है?"

मैं चाहता हूँ, कह दूं, मुझे नहीं मालूम, पर मेरे मुंह से अनायास निकल गया है—"गार्डन में मार्निंग-वाक ले रही है।"

वह उठकर गार्डन की ओर चला जाता है।

मैं सोच रहा हूँ, मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा। यह ज़िम्मेवारी मुझे पिताजी को सौंप देनी चाहिए। हाँ, उन्हें ही बुला लेना चाहिए यहाँ। उन्हें पत्र लिखूंगा....अभी लिखे देता हूँ....

मैं 'स्टडी' की ओर चला जाता हूँ। और पत्र लिखता हूँ। खूब लम्बा-सा एक पत्र लिखा है। जानता हूँ, इसे देखते ही पिताजी का खून खौलने लगेगा। मैंने साफ़ लिख दिया है कि नीता आजकल माथुर नामक एक आवारा युवक के साथ हर समय घूमती रहती है। लोग इस ओर खुल्लम-खुल्ला उँगली उठा रहे हैं। लग रहा है कि बातों में मैंने खूब नमक-मिर्च लगा दिया है, पिताजी को भड़काना जो है....ताकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे पहली ट्रेन से भागे आयें।

मैं पेज गिनता हूँ, पूरे सात। लिफ़ाफ़ा निकालकर पत्र बन्द करता हूँ। इसी डाक से पोस्ट कर देना चाहिए! मैं अपने नौकर जानकी को आवाज़ देता हूँ।

तभी मेरे सामने से नीता और माथुर हँसते हुए गुज़रते हैं।

"क्या साहब?" जानकी आकर पूछ रहा है।

"एक गिलास पानी ले आओ।"—इतना आवश्यक पत्र है, यह फूहड़ इसे कहीं खो न दे। अभी मैं खुद घूमने जाऊँगा तो डाल दूंगा।

वक्त बीतता जा रहा है और मैं.... मैं सोचे जा रहा हूँ....

●

मैं लेटर-बाक्स के सामने खड़ा हूँ। पत्र अभी हाथ में ही है। अभी डालूंगा, कल सुबह तक पिताजी के पास पहुँच जायेगा और बहुत मुमकिन है कि दोपहर तक वे आ भी जायँ। फिर ....शायद वह नीता को अपने साथ गाँव ले जायें.... और कई ट्रेजेडिक फ़िल्मों के 'एण्ड्स' मेरी आँखों के सामने घूमने लगते हैं।

"प्लीज़!...."—कोई कह रहा है। मैं देखता हूँ कि मेरा हाथ लेटरबाक्स के मुंह में है और मैं विचारों के सागर में खोया हूँ। मैं पत्र समेत हाथ पीछे हटा लेता हूँ। वह युवक पत्र डालता है। पास एक युवती खड़ी है। फिर वे दोनों हाथों-में-हाथ डाले साथ-साथ चले जाते हैं। अब मैं उनके एक साथ उठते चार क़दमों की ओर देख रहा हूँ। अचानक नीता और माथुर का ध्यान आ जाता है।....एक साथ उठते चार क़दम!

इन्हीं खयालों में खोये हुए न जाने कब और क्यों मैंने पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं। और सोच रहा हूँ मैं....

●

नीता और माथुर की चर्चा है।

न जाने कैसे पिताजी को सब-कुछ मालूम हो चुका है। वे रात की गाड़ी से आ पहुँचे हैं।

वह मुझसे इस बारे में जानना चाहते हैं, पर मैं न जाने क्यों अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता हूँ। वे नीता को बुलाते हैं।

"क्यों, जो मैं सुन रहा हूँ, सच है?"—उनकी रोबदार आवाज़ गूंज उठी है।

और मेरी आशा के अनुसार नीता खामोश रहती है।

"सुना तुमने, मैंने क्या पूछा है?"—पिताजी चीखते हैं।

"हाँ, यह सच है!"—नीता की आवाज़ में असाधारण दृढ़ता है।

पिताजी गम्भीर हो जाते हैं। कुछ क्षणों के लिए बिलकुल सन्नाटा छा जाता है। फिर वह बोलते हैं—"आज के बाद तुम घर से बाहर नहीं निकलोगी!"

मैं कुछ कहना चाहता हूँ। कुछ घुट रहा है मेरे मन में....पर मैं चुप हूँ....और सोच रहा हूँ....

रात के बारह बजे हैं।

मैं रेलवे स्टेशन के रेस्तराँ में बैठा चाय पी रहा हूँ। मेरा अन्दाज़ ग़लत नहीं निकला है। सामने से नीता और माथुर आ रहे हैं। दोनों के चेहरों पर घबराहट साफ़ झलक रही है।

गाड़ी स्टेशन पर पहले से ही खड़ी है।

[शेषांश पृष्ठ ७८ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमल बोस

भारतीय संगीत के एक प्रसिद्ध घराने का सरल सुबोध परिचय।

आगरा घराने की गायकी

'गायकी' शब्द की परिभाषा के सम्बन्ध में संगीतविदों में मतभेद है, अतः भारतीय संगीत के किसी भी घराने—स्कूल के वैशिष्ट्य की उपलब्धि उसी समय सम्भव है जब इस विवादास्पद शब्द का एक अर्थगत आधार प्राप्त हो।

भारतीय संगीत के आधुनिक बोद्धा पण्डित विष्णुनारायण भारतखंडे ने गायकी की परिभाषा देते हुए कहा कि 'भारतखंडे-पद्धति से पाँच वर्ष तक संगीत-शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् किसी खानदानी उस्ताद की शार्गिदी करने पर स्वतः ही कंठ में गायकी बैठ जाती है। स्वर्गीया इन्दिरा देवी चौधुरानी का कहना है कि रसपूर्ण गायकी में उत्तीर्ण होना ही गायक का प्रमुख लक्ष्य है और इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सद्गुरु का मार्ग-प्रदर्शन अभीष्ट है। अपनी भावना और क्षमता से स्वर-लिपि के कंकाल में प्राण-प्रतिष्ठा करना ही गायकी है। प्रो० डी० पी० मुखर्जी कहते हैं कि गायक की स्वाधीनता उसके व्यक्तित्व में है। स्वर और स्वर-योजना में कोई साहित्यिक भाव अन्तर्निहित न होते हुए भी गायक के मन की गति, शिक्षा और संस्कृति, गायक के कंठ में विराजमान है। इसका दिग्दर्शन स्पष्ट रूप से हो जाता है। भारतीय संगीत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारी समालोचक डा० अमियनाथ सान्याल गायकी शब्द की व्याख्या करते हुए लिखते हैं : गान–क्रिया के मध्य विशेष स्थितियाँ आने पर गायन का यथार्थ स्वरूप पूर्ण विकसित व उज्जवल हो उठता है, इसके अभाव में गायन फीका और निरर्थक लगने लगता है, ये सारी स्थितियाँ समग्र रूप से 'गायकी' शब्द द्वारा सूचित की जाती हैं ।

गायकी सम्बन्धी उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि 'गायकी' को अर्थात् गुरु-परम्परा से प्राप्त किसी चीज़ के स्थायी-अन्तरे को आलाप, तान, बोल-तान, मीड़-गमक, मुरकियाँ, खटके आदि सांगीतिक अलंकारों से सज्जित करने का ही दूसरा नाम गायकी है। गायकी का एक अर्थगत आधार परिभाषा-स्वरूप प्राप्त करने के उपरांत आगरा घराने की उस ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि से भी अवगत होना पड़ेगा जिन परिस्थितियों में इस घराने की गायकी का निर्माण हुआ, जो आगे चलकर इस युग के मूर्धन्य संगीतज्ञ उस्ताद फैयाज़ ख़ाँ साहब के हाथों पुष्पित और पल्लवित भी हुआ ।

आगरा घराने का सम्बन्ध मियाँ तानसेन से है। तानसेन के दामाद हाजी सुजान साहेब आगरा घराने के प्रतिष्ठाता माने जाते हैं । इन्हीं के ख़ानदान में घघ्घे खुदाबख्श नाम के एक संगीतज्ञ हुए जिनके सुपुत्र गुलाम अब्बास खाँ आगरा निवासी आफ़ताबे-मौसीकी उस्ताद फैयाज़ खाँ साहब के नाना थे । सुजान साहेब से उस्ताद फैयाज़ खाँ तक अनेक चोटी के संगीतज्ञ हुए, जिन्होंने अपने परवर्ती उस्तादों को धरोहर-स्वरूप इस घराने की गायकी दी। भारतीय संगीत का यह दुर्भाग्य रहा कि उस समय तक ध्वनि-विज्ञान एवं ध्वनि संबंधित यन्त्रों का आविष्कार नहीं हो पाया था, वरना आगरा घराने की गायकी का मूल्यांकन करते समय फैयाज़ खाँ एवं उनके समसामयिक संगीतज्ञों के रेकार्डों तक ही सीमित न रहना पड़ता। पिछले चार सौ वर्षों के मुग़लकालीन संगीत को हमने फैयाज़ खाँ साहब के ही रेकार्डों के माध्यम से पाया है ।

भारतीय संगीत के इतिहास में ग्वालियर घराने की परम्परा अति प्राचीन मानी जाती है । कुछ विद्वान् ग्वालियर घराने की गायकी को ही क्लासिकल—रीति-बद्ध संगीत की दृष्टि से शुद्ध और रीति-सम्मत मानते हैं। परन्तु समय के साथ-साथ जैसे-जैसे राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन आता गया, वैसे-वैसे भारतीय संगीत के श्रोताओं की भी रुचि बदलती गयी। ग्वालियरी-ध्रुपद-संगीत के रीतिवादी बन्धन से पिंड छुड़ाकर श्रोतागण आगरा घराने के 'ख्याल' गायन में अधिक रुचि लेने लगे। 'ख्याल' का अर्थ है—कल्पना, अर्थात् इस घराने की गायकी में कल्पना-तत्व की प्रधानता रही। फलस्वरूप इसे अपनी पूर्ववर्ती क्लासिकल रीतिवद्ध परम्परा का विरोध भी करना पड़ा। भारतीय संगीत के क्लासिकल युग की मान्यताओं, अभिव्यक्तियों के प्रकारादि के विरुद्ध आगरा घराने के संगीतज्ञों ने, विशेषकर 'नई बस्ती' के फैयाज़ खाँ ने, विद्रोह किया, जो उनके संगीत में मुखर हो उठा। इस प्रसंग में फैयाज़ खाँ के निम्नलिखित शब्द उल्लेखनीय हैं :

"राग' की अवतारणा करते समय एक सफल प्रेमी बनने की आवश्यकता है। प्रेमी जिस प्रकार अपनी प्रेमिका से छेड़छाड़,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यार-दुलार करता है, ठीक उसी ढंग से 'राग' को भी बर्ता जाना चाहिए। हथौड़े की चोट-जैसे स्वराघात, नीरस और शुष्क कंठ-संचालन से 'राग' के व्यक्तित्व को नष्ट नहीं करना चाहिए। किसी पहलवान की भाँति 'राग' के साथ मल्लयुद्ध करने की आवश्यकता नहीं। जब तक गायक 'राग' को प्यार से गले न लगायेगा, जब तक वह इसे पुचकारेगा-दुलारेगा नहीं, तब तक वह विरह-मिलन, हास और अश्रु की मानवीय कहानी नहीं कह सकता।"

आगरा घराने की गायकी की आधारागत विशेषता के उपरान्त दूसरी क्रियात्मक विशेषता इसके आलापचारी का ढंग है जिसे इस घराने के संगीतज्ञ 'नोम्-तोम्' के नाम से पुकारते हैं। यह ढंग प्रायः बिना ताल और बिना गीत के होता है एवं जो राग विशेष के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को भावना और बुद्धि का समन्वय करने के उपरान्त विकसित करने में सहायक होता है। इस प्रकार के आलाप में स्वर-विन्यास अति विलम्बित से अति द्रुत तक बढ़ता चलता है। राग-विकास के प्रत्येक स्तर पर, प्रत्येक आवर्तन के पश्चात् तबला अथवा पखावज की थाप पड़ती चलती है। स्थायी तथा अन्तरे के आलाप की परिसमाप्ति के पश्चात् ख्याल का प्रारम्भ होता है, परन्तु आलाप समाप्त नहीं हो जाता, ताल के साथ गीत के आरम्भ हो जाने पर भी आलाप चलता रहता है, जिसे स्वरालाप कहते हैं। राग में प्रयुक्त प्रत्येक स्वर को रागाभाव के अनुसार रससिंचित कर गाना आगरा घराने का कृतित्व है। राग दरबारी, पूरिया, देसी तोड़ी, रामकली, यमन कल्याणी, जयजयवंती आदि के आलाप इस घराने की अमूल्य देन हैं।

फैयाज़ खाँ साहब के गाये 'काहे को झूठी बनाय बतियाँ'—'भैरवी', अथवा 'मैं कर आई पिया संग रंगरलियाँ'—पूरिया, रेकार्डों के सुनने पर वास्तव में ऐसा अनुभव होने लगता है कि प्रेमिका अपने प्रिय से मिल कर आयी हो और जिसकी स्मृति में मिलन की आस और मिठास ही केवल अवशेष रही हो। 'पइयाँ पड़ूंगी पलका न चढ़ूँगी—जय जयवंती, सुनकर ऐसा लगता है मानो कोई मानिनी राधा अभी तक अपने कृष्ण की भावनाओं को उकसाने के चंचलतापूर्ण प्रयत्नों में व्यस्त है। उत्तरी भारत में इस घराने की लोकप्रियता का कारण केवल इस संगीत में भावनाओं का प्रत्यक्ष मानवीकरण है।

इस घराने की तीसरी विशेषता बोल-तानों की सृष्टि में है। बोलतान तानों का एक प्रकार है जिसमें ख्याल के बोलों को लेकर तान की रचना की जाती है। बोलतानों में बोल बनाने का काम बड़ी सतर्कतापूर्वक करना चाहिए अन्यथा रसभंग होने की शत-प्रतिशत सम्भावना बनी रहती है। एक उदाहरण देकर हम अपने कथन को अधिक स्पष्ट कर सकेंगे। मान लीजिए, हमें 'निस वासर हरि नाम उचार तू,—बागेश्री, को इस चीज़ के बोल बनाने हैं। थोड़ी देर के लिए बोल बनाने की बात को एक तरफ़ रखकर हम उपयुक्त वाक्य को यों कह दें: नि सवासरह रिना मउचा रतू—तो समझना मुश्किल हो जायेगा। अतः बोलतानों में चीज़ को तानों में इस खूबी से फ़िट करना चाहिए कि प्रत्येक शब्द का भाव और अर्थ स्पष्ट होता चला जाय। बोलतानों में सबसे महत्वपूर्ण बात यही होती है कि जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज़न तथा जिस प्रकार से तानों में बोल का उठाव हो, वहाँ वज़न और वही प्रकार अन्त तक एक-सा चला जाय। इस प्रकार आगरा घराने की गायकी में बोलतानों का जो विविध रूप और बौद्धिक सौंदर्य मिलता है, वह इस घराने की निजी विशिष्टता है। बोलतानों के विपरीत जबड़ा और हलक की तानों में भी यह घराना अप्रतिद्वन्तित है। सरगम की तानों का प्रयोग इस घराने में नहीं होता।

इस घराने की चौथी और अन्तिम विशेषता लयकारी है।' लय' का अर्थ है– गति, अर्थात् गायन के समय गीत की गतिशीलता को अपने नियंत्रण में जो जितना रख सकेगा, वह गायक उतना ही लयकार माना जायगा। तान, आलाप, गीत और ताल इन चारों अंगों में पूर्ण सामंजस्य रखते हुए अधिकार के साथ गायन की लयकारी के दाँव-पेंचों में उस्ताद फैयाज़ खाँ का नाम सदैव अमर रहेगा। लयकारी सम्बन्धित जानकारी में आगरा घराने के गायक जितनी चालें और रंग-ढंग जानते हैं, पटियाला-घराने को छोड़ शायद ही अन्य किसी घराने में यह विशेषता मिलेगी।

● ●

[पृष्ठ ७४ का शेषांश : मैं सोच रहा हूँ]

मेरे देखते-ही-देखते वे एक डिब्बे में बैठ जाते हैं।

नीता भाग रही है.... माथुर के साथ भाग रही है... और मेरे सामने ही !

मैं उन्हें रोक सकता हूँ। और मुझे रोकना चाहिए भी।

गाड़ी को रवाना होने में अब थोड़ी ही देर बची है। लेकिन अभी मैं चाहूँ तो फोन कर पिताजी को घर से बुला सकता हूँ। वह टैक्सी करके आ जायेंगे। हाँ, यही ठीक होगा।

मैं उठकर काउन्टर के पास पहुँच जाता हूँ, पर रांग नम्बर मिलता है, डायल घुमाने पर। मैं झुंझलाकर वापस अपनी कुर्सी पर आ बैठता हूँ।

मैं सामने देख रहा हूँ। उनके चेहरों पर भय-मिश्रित प्रसन्नता है। वे बार-बार चौकन्ने होकर इधर-उधर नज़र दौड़ा रहे हैं!

गाड़ी सीटी देती है, झण्डी लहराती है और वे एक संतोष की साँस लेते हैं।

मैं रेस्तराँ से बाहर आ जाता हूँ। गाड़ी के पहिये हिल रहे हैं। दोनों की नज़र मुझ पर पड़ती है। उनके चेहरे फ़क़ हो जाते हैं। मैं उनकी ओर देखकर मुस्कुराता हूँ, हाथ हिलाकर विदा देता हूँ.... वे भी अपने हाथ हिलाते हैं....अगले ही क्षण गाड़ी मेरी नज़रों से ओझल हो जाती है।

और मैं प्लेटफार्म पर खड़ा सोच रहा हूँ.... सोचे जा रहा हूँ.....

● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

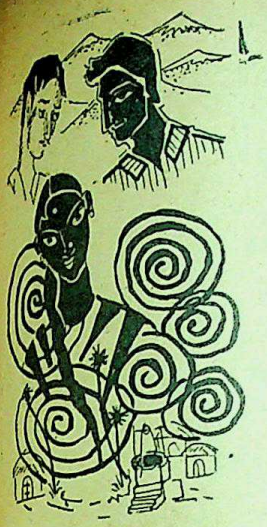

तमिल कहानी

मनोविज्ञान का मनहूस पाठ

के० सरस्वती

मनोविज्ञान का यह मनहूस पाठ कभी-कभी ऐसी दुर्घटनाओं का कारण बन जाता है कि....

अनायास ही रामचन्द्रन् के मन में भी शक पैदा हो गया। शिवरामन् का प्रश्न कुछ अजीब अवश्य है, पर निरर्थक नहीं।.... तो.... तो फिर और क्या कारण हो सकता है भला?

शिवरामन् का प्रश्न है — क्या तुम्हें निश्चित रूप से मालूम है कि सावित्री पैर फिसलने से ही कुएँ में गिर पड़ी थी?

ठीक ही तो है....पर अगर पैर फिसलने की बात सही नहीं है....

शिवरामन् फिर बोला, "कुएँ की जगत बहुत नीची है क्या?"

"नहीं तो, जगत काफ़ी ऊँची होगी," रामचन्द्रन् ने अपने हाथ के इशारे से बतलाया, "कम-से-कम मेरी छाती के बराबर तो है ही।"

"हूँ!" शिवरामन् ने हुंकार भरी, "तब फिसलकर गिरने के क्या माने?"

रामचन्द्रन् शिवरामन् की इस हुंकारी का अर्थ जानता है। वह कुछ चिन्तित होकर बोला, "पानी भरने के लिए जब सावित्री कुएँ के पास गयी, तब एकाएक ही गश खाकर गिर पड़ी। माँ ने लिखा है, डाक्टरों ने उसे 'हिस्टीरिया' बतलाया है।"

"हूँ।" एक और हुँकारी भरकर शिवरामन् चुप लगा गया। उसके ललाट की सिकुड़नें उभर आयीं। वह सोचने लगा—हिस्टीरिया के रोगी को कुएँ जैसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़तरनाक जगह पर नहीं जाने देना चाहिए—इतनी साधारण-सी बात भी क्या रामचन्द्रन् के घरवाले नहीं जानते ?.... और फिर सावित्री को गश आ भी गया, तो वह कुएँ के अन्दर कैसे जा पड़ी ? अगर वह अन्दर झाँक नहीं रही थी, तो....

शिवरामन् रामचन्द्रन् का घनिष्ठ मित्र है। मनोविज्ञान के अध्ययन का उसे बहुत शौक़ है और कालेज में पढ़ायी जाने वाली किताबों के अलावा वह मनोविज्ञान-विशारदों की अन्य पुस्तकें भी पढ़ा करता है। अब तो वह स्वयं भी अपने -आपको इस विषय का अच्छा-ख़ासा जानकार मानने लगा है।

रामचन्द्रन् अपने इस मनोविज्ञान-प्रेमी मित्र की आदतों से परिचित नहीं हो, यह बात नहीं; फिर भी वह उससे सावित्री के कुएँ में गिर जाने की घटना का उल्लेख किये बिना न रह सका। आज ही सुबह घर से उसे अपनी माँ का पत्र मिला था। पत्र की तीन-चार पंक्तियाँ पढ़ते-पढ़ते उसके चेहरे का रंग उड़ने लगा था; पर पढ़ना समाप्त करने के बाद उसने यह जानकर संतोष की साँस ली थी कि उसकी बहन सावित्री कुएँ में गिर तो अवश्य गयी थी, लेकिन उसी वक्त उसके मामा के वहाँ आ पहुँचने से वह कुएँ से तत्काल ही निकाल ली गयी। अब वह बिल्कुल ठीक है, चिन्ता की कोई बात नहीं।

रामचन्द्रन् का हृदय भर आया। भीतर की चोट आत्मीयता का स्पर्श पाने के लिए व्याकुल हो उठी। और इसीलिए माँ के पत्र का समाचार उसने मित्र-हृदय के आगे उड़ेल दिया।

ठीक इसी समय, गंभीर बना शिवरामन् अपना तीसरा प्रश्न पूछ बैठा, "चन्द्रन्! अच्छा, एक बात और बताओ। सावित्री खुश तो रहा करती थी न ?.... मेरा मतलब है, अपने वैवाहिक जीवन से कोई शिकायत तो नहीं थी उसे ?"

रामचन्द्रन् इस प्रश्न को सुनकर चौंका। वह शिवरामन् के चेहरे की ओर देखता सोचने लगा—शिवरामन् के कहने का तात्पर्य यह तो नहीं कि सावित्री ने आत्म-हत्या करनी चाही थी ?....क्या ऐसा होना.... छिः-छिः ! —बलात् उधर से मन मोड़कर उसने शिवरामन् के साथ-साथ जैसे अपनी भी भर्त्सना की।

रामचन्द्रन् की इस डाँट से शिवरामन् ने भी महसूस किया कि उसे ऐसा प्रश्न नहीं पूछना चाहिए था। पर अब तो....! और इसीलिए उसने जानबूझकर बातों का सिलसिला दूसरी ओर फेर दिया और कोई घंटे भर तक कालेज के प्रोफेसरों तथा छात्राओं की चर्चा करते रहने के बाद उसने रामचन्द्रन् से विदा ली। उस समय तक वह पूर्ण आश्वस्त हो चुका था कि उसने उस अप्रिय प्रश्न से रामचन्द्रन् के दिल में जो संदेह पैदा कर दिया था, उसे बड़ी चतुराई से दूर भी कर दिया।

पर आदमी का मन इतनी जल्दी क़ाबू में थोड़े ही आ जाता है। शिवरामन् के जाते ही रामचन्द्रन् के अकेले मन में सावित्री की आत्महत्या की बात पुनः उठने लगी। लाख चाहने पर भी वह इस अप्रिय विषय को दिमाग़ से निकाल फेंकने में सफल नहीं हो पा रहा था।

सावित्री अपने जीवन से संतुष्ट तो थी ?.... लेकिन असंतुष्ट होने का कोई कारण भी तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। उसका पति स्वस्थ और सुन्दर नौजवान है। तीन सौ रुपये मासिक वेतन की सरकारी नौकरी तथा शिमला-जैसा सुन्दर पहाड़ी स्थान। फिर इस विवाह के लिए सावित्री स्वयं भी तो राज़ी थी !

उसका पति उसे प्यार भी तो खूब करता है। सावित्री का जब पहला प्रसव हुआ था—रामचन्द्रन को आज भी अच्छी तरह याद है—तो प्रसव के तीसरे महीने ही उसका पति उसे अपने साथ ले गया था। घर के सब लोगों ने लाख समझाया, खुद सावित्री ने कहा कि वह अभी कुछ दिनों बाद जायेगी, पर उसका पति अधिक दिनों तक उसे अपने से अलग नहीं रखना चाहता था। शादी के बाद तीन वर्षों में सावित्री मुश्किल से यही चार-चार महीने अपने नैहर में रह पायी थी।

छः-सात महीने बाद ही वह दूसरी बार गर्भवती हुई थी। इससे वह कमज़ोर अवश्य हो गयी होगी, मगर इसी के कारण आत्महत्या क्यों की जाय ?.... और तभी रामचन्द्रन् को किसी पुस्तक में पढ़ी बात याद आ गयी। कुछ महीने पूर्व ही उसने पति-पत्नी के शारीरिक संबंध की इच्छाओं के बारे में लिखी गयी एक पुस्तक में पढ़ा था कि बहुत प्रसन्नतापूर्वक आरंभ किया जानेवाला दाम्पत्य जीवन भी कभी-कभी एक-दो प्रसव के बाद दुःखमय हो जाया करता है।

रामचन्द्रन् का माथा ठनका और उसकी आँखों के सामने दो तस्वीरें उभर आयीं—सावित्री और उसके पति की। ओफ़ ! सावित्री कितनी दुबली-पतली, कमज़ोर तथा बेजान हो गयी है। और उसका पति ? स्वस्थ और पहले से कहीं अधिक हृष्ट-पुष्ट। ....तो सावित्री सचमुच अपने जीवन से दुःखी है ?

माँ ने पत्र में लिखा था कि सावित्री का पति बड़े दिन की छुट्टियों में आनेवाला है। सावित्री के इस प्रसव को हुए चार महीने बीत चुके हैं, अतः वह लौटते समय उसे अपने साथ ही ले जाना चाहता है।

सावित्री का पति आनेवाला है, उसे अपने साथ शिमला ले जाने को... और वह कुएँ में गिर पड़ी ! — इन दोनों बातों में कहीं कोई सम्बन्ध तो नहीं है ?....लेकिन.... यह क्या सोचने बैठ गया मैं ! मन को इस तरह बे-लगाम छोड़ना चाहिए क्या ? रामचन्द्रन् ने तय कर लिया—एक सप्ताह बाद, जब बड़े दिन की छुट्टियों में वह घर जायगा, तो

पागल

धनकुबेर जान-डी-रॉकफेलर ने पब्लिक टेलीफोन-बूथ के 'कोयन-बक्स' में पैसे डाले और ऑपरेटर को नम्बर बताया। नम्बर न मिलने पर जब पैसे वापिस करने की चेष्टा की तो मशीन की गड़बड़ी के कारण पैसे वापिस न हो सके। इस पर ऑपरेटर ने कहा, "आप कृपया अपना नाम और पता हमें नोट करा दें, हम आपके पैसे आपके पते पर भिजवा देंगे।"

राकफेलर कहने लगे, "मेरा नाम जान-डी-राक फे.... जाने दीजिए, आप मुझे पागल समझने लगेंगे।"

—सरोज श्रीवास्तव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विषय पर सावित्री से खुलकर बातें करेगा। अगर उसका यह संदेह ठीक निकला कि सावित्री अपने विवाहित जीवन से संतुष्ट नहीं है, अपने पति के साथ नहीं जाना चाहती, तो वह उसकी कोई-न-कोई उचित व्यवस्था अवश्य करेगा। सावित्री को हमेशा के लिए घर पर रख लेना पड़े, तो भी कोई बात नहीं।

कालेज की बात याद आते ही रामचन्द्रन् को याद हो आया कि रविवार का वह आधा दिन उसने बेकार की शंकाओं में ही बिता दिया, बाक़ी बचे आधे दिन का तो सदुपयोग होना चाहिए।.... क्यों न मीना के यहाँ चला जाय? उसके पति डाक्टर हैं, शायद जो किताब मैंने पढ़ी है वैवाहिक जीवन के बारे में, उस पर वे कोई अच्छी राय दे सकें। अभी बहुत बड़े डाक्टर न होने के कारण उन्हें फ़ुर्सत तो होगी ही! और फिर बहुत दिनों से उनके पास गया भी तो नहीं हूँ।

और, रामचन्द्रन् जब अपनी ममेरी बहन मीना के घर पर घंटा भर बिताने के बाद होस्टल वापस आया, तो उसके दिमाग़ में अभी तक अपने बहनोई की बातें चक्कर काट रही थीं। मीना के डाक्टर-पति रामचन्द्रन् की बातें और उस किताब का ज़िक्र सुनकर बहुत नाराज़ हुए थे। उन्होंने उस किताब के लेखक को बुरा-भला कहते हुए रामचन्द्रन् को भी मीठी झिड़की दी थी, "पता नहीं, आजकल के लड़कों को क्या हो गया है!.... अच्छी-बुरी किताबें पढ़कर तुम लोगों को अपना दिमाग़ ख़राब करने में आनन्द आता है क्या?.... छिः! ऐसी निराधार शंका तुम्हारे दिमाग़ में आई कैसे?"

अब रामचन्द्रन् ने यह निश्चय कर लिया कि बड़े दिन की छुट्टी में जब तक सावित्री से मुलाक़ात नहीं हो जाती है, वह इस सम्बन्ध में कभी कुछ सोचेगा भी नहीं।

पर बड़े दिन की छुट्टियों में मुलाक़ात होते ही सावित्री ने आँसुओं की झड़ी लगा दी। रामचन्द्रन् अवाक् रह गया। सावित्री का पीला, मुरझाया हुआ मुख और ऊपर से यह रुदन! वह रो-रोकर कह रही थी, "चन्द्रन्! न जाने मेरे इस सुख-सौभाग्य को देखकर किसे ईर्ष्या हो रही है! लोग कहते हैं कि मैं अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर कुएँ में कूद आत्महत्या करने गई थी। पर तुम्हें तो मालूम है न, तुम्हारे बहनोई कितने अच्छे हैं। कितना प्यार करते हैं वे मुझे!"

चंद्रन् को लगा, मानो उसका दम घुट रहा है। हे भगवान! ऐसा शक करने-वालों में मैं भी तो हूँ न! प्राणों से प्यारी अपनी इस बहन पर स्वयं मैंने भी तो संदेह किया! उसके दिल में आया कि वह ज़ोरों से अपना सिर पीट ले।

रामचन्द्रन् उठकर अन्दर चला गया। उसे रह-रहकर अपने घरवालों पर बेहद क्रोध आ रहा था। मुहल्लेवालों की बेतुकी बातें सावित्री के कानों तक पहुँचने ही क्यों दी गयीं? पिताजी और भैया न कुछ कर सके तो न सही, पर माँ ने इस ओर क्यों ध्यान नहीं दिया?

वह माँ पर उबल पड़ा, "तुम लोगों में ज़रा-सी भी अक्ल है या नहीं? सावित्री के कोमल मन पर इन व्यर्थ की बातों का कितना घातक असर पड़ सकता है, माँ होकर भी नहीं सोच सकीं तुम?"

माँ अपने बेटे को कुछ क्षणों तक एकटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखती रह गयी। फिर, उदास पीड़ित स्वरों में बोली, "चन्द्रन्! कालेज में तूने क्या पढ़ा है, यह तो नहीं जानती, पर बिना कुछ समझे-बूझे ही जो मन में आवे, वही बक जाना उचित है क्या? सावित्री तेरी बहन ही है, मेरी बेटी नहीं? तू क्या जाने, मैंने कितनी कोशिश की कि उसके कानों में ज़रा-सी भनक न पहुँचे, पर जब कोई घर का ही आदमी इस प्रपंच को फैलाने में जुटा हो, तो? तू विश्वास करेगा या नहीं, यह तो तू ही जान, पर तेरी मामी स्वयं मोहल्ले भर की अफ़वाह को तिल का ताड़ बनाकर सावित्री को सुना आयी थी। मैं तो यह भी कहूँगी कि अफ़वाह फैलायी भी उसी ने है।"

माँ ने बेटे को रोकने की चेष्टा की, पर रामचन्द्रन् रुका नहीं। मामी के घर पहुँचते ही वह उन पर बरस पड़ा, "यह क्या मामी, सावित्री के बारे में बेसिर-पैर की बातें उड़ाने के पहले आपको ज़रा भी शर्म नहीं मालूम हुई? क्या अपराध किया था उस बिचारी ने आप लोगों का? उसकी दुख-भरी ज़िन्दगी आपकी आँखों में खटकती है तो आँखें बन्द कर लीजिए न आप अपनी।"

मामी ने बन्द करने के बजाय, आँखें तरेरकर देखा और फिर पैर पटकती हुई बोली, "मैं क्या जानूं क्या बात है रे? तू तो सारा दोष मुझ पर ही डाल रहा है। मैंने कुछ थोड़े ही अपने मन से ये बातें कहीं! वह तो मीना ने पत्र लिखा था कि रामचन्द्रन् को शक है कि सावित्री पैर फिसलने से कुएँ में नहीं गिरी, बल्कि.... । मैं कहती हूँ, दूसरों पर आरोप लगाने से पहले कभी अपना चेहरा भी देखा है तूने? अपने-आपको टटोला है? तुझे स्वयं शक नहीं था, तो क्यों गया था मीना के पति से घंटों बहस करने, व्यर्थ दिमाग़ लड़ाने? बता!"

रामचन्द्रन् के सिर पर मानो गाज गिर गयी। वह स्तब्ध, बिल्कुल प्रस्तर-प्रतिमा की तरह खड़ा रहा। ऐसा लग रहा था, जैसे उसने अनजाने ही कीचड़ में पत्थर फेंका हो और उसके छींटे ऊपर आ-आकर गिर रहे हों।

काफ़ी देर बाद मुंह नीचा लटकाये, मामी की आँख बचाकर वह वहाँ से निकल पड़ा। उसे इस वक्त अपने-आपसे घृणा हो रही थी। वह स्वयं को धिक्कार रहा था—इस गड़बड़ी का मूल कारण तो मैं ही हूँ। छिः-छिः!

लेकिन अपने से कहीं अधिक क्रोध उसे शिवरामन् पर आ रहा था। इस सारी गड़बड़ी का ज़िम्मेदार वही है! अपने मनोविज्ञान का पाठ पढ़ाकर उसने मुझे कहीं का भी न रखा।

और, बड़े दिन की छुट्टियों की समाप्ति पर मद्रास तक साथ-साथ आने वाले रामचन्द्रन् के बहन-बहनोई और माँ को शिमला की गाड़ी में रवाना कर देने के बाद, जब शिवरामन् ने मुस्कराते हुए कहा, "चन्द्रन्! लगता है, तुम्हारे बहनोई सावित्री को बहुत मानते हैं" तो रामचन्द्रन् चुप न रह सका। वहीं प्लेटफार्म पर ही झल्लाकर कठोर शब्दों में बोला, "क्यों, इस बात का भी पता तुमने अपने मनोविज्ञान से लगाया है क्या? देखो रामन्! आज स्पष्ट कहे देता हूँ, याद रखना अगर भविष्य में फिर कभी तुमने मेरे सामने अपने इस मनहूस मनोविज्ञान की चर्चा की, तो मुझसे बुरा कोई न होगा।" ● ● ●

अनुवादिका—के० बसंतारावु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज मुझको छू गये लो सुरभि के दो चरण !

आज कुसुमित बकुल की-सी डाल सहसा छू गयी मुझको,
आज, गंधिनी
अँजुरियों में फूल भर नहला गयी मुझको,
आज मुझको पी गये दो गंध प्लावित क्षण !

लगा, मेरे शीश को प्रश्वास ने चूमा,
कुंतलों में कर किसी का नेहमय घूमा,
पृष्ठ से उत्तप्त वक्ष-स्पर्श-सी सिहरन !

धूम घन-से शृंग पर ज्यों हो धुंआया मन,
किरण फूटे, दिपे घाटी में नवल जीवन,
खिलखिलाते खेत, हँसते गाँव, गाते जन,
धुंध-पूरित मन, किरण के नित्य वे दो क्षण !

सुरभि के दो चरण

त्रिभुवन चतुर्वेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

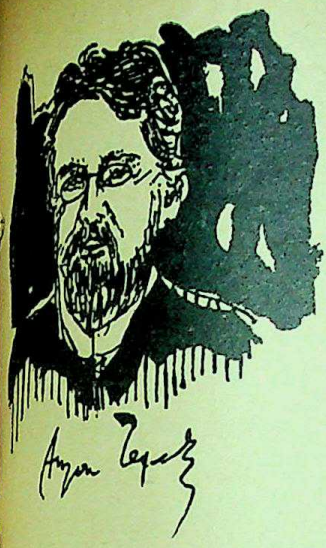

नेपथ्य में—(४)

मुक्ता राजे

●

उक्त लेखमाला के अन्तर्गत यहां विश्व-प्रसिद्ध रूसी कथाकार और नाटककार एण्टन चेखॅव की रहस्यमयी, मर्मस्पर्शी प्रणय-कथा प्रस्तुत की जा रही है।

●

चेखव ने एक बार कहा था कि, मेरी कहानियों में प्रतिविम्बित जीवन वैसा ही है जैसे नदी के किनारे एक टूटी बोतल के काँच में प्रदिच्छायित होता हुआ आकाश का चाँद ! जीवन के बहुत सुकुमार और मधुर अनुभवों को अत्यन्त यथार्थ परिस्थितियों में विचित्र ढंग से अंकित करने में चेखव की प्रतिभा का समस्त संसार में कोई मुक़ाबला नहीं। सचमुच एक टूटी हुई बोतल के काँच में प्रतिविम्बित चाँद की उदासी और अलभ्यतम कल्पना की अत्यंत निकटता !

कहानीकार चेखव ने जब नाटक लिखे तो उनमें भी इसी उदासी भरे यथार्थ का अद्भुत चित्रण किया। उनके सारे नाटकों में अन्यतम स्थान है जलपंखिनी का (दी सीगल)—रूस के फल और फूलों से लदे बेइन्तिहा खूबसूरत देहातों की एक बड़ी-सी झील ! और झील के किनारे के बाग़ीचे में एक दुःखद नाटक घटित होता है। उस नाटक के प्रथम अंक में ही चेखव ने एक तरुण नाटककार का चित्रण किया है, जो अपना नया प्रयोग अपनी साहित्यिक मा तथा अपने परिवार को दिखाना चाहता है। उसकी विधवा प्रौढ़ा मा एक अत्यन्त सफल लेखक त्रिगोरिन की सहचरी है। अपने लड़के त्रेपलेव की प्रतिभा में उसे क़तई विश्वास नहीं है। त्रेपलेव भी इस बात को जानता है और शायद इसीलिए वह स्वयं

ज ल पं खि नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपने नाटक की सफलता के प्रति आशंकित है। साथ ही उसके मन में एक और चिंता है—उसकी प्रेयसी सुन्दरी निना इस नाटक में नायिका का अभिनय करने जा रही है। वह जानता है कि नाटक असफल रहेगा तो उसकी मा न सिर्फ़ उसके लेखन की निंदा करेगी वरन् निना को भी नामंज़ूर कर देगी। और फिर उससे भी ज्यादा चुभती हुई बात तो यह है कि इस सारी असफलता का प्रदर्शन होगा प्रख्यात लेखक त्रिगोरिन के समक्ष जो न केवल त्रेपलेव से बड़ा लेखक है वरन् उसकी माँ के प्रेम और प्रशंसा का एक-मात्र अधिकारी भी !

चेखव के इस नाटक में त्रेपलेव का यह नाटक तो था ही —लेकिन इन दोनों से भी ज्यादा मर्मस्पर्शी वह वास्तविक जीवन का दुःखांत नाटक था जो इन दोनों नाटकों की पृष्ठभूमि में था। चेखव के वास्तविक जीवन का यह प्रसंग लिखते हुए ऐसा लगता है मानो एक शीशे के सामने दूसरा शीशा रख दिया गया हो और फिर दर्पण के अन्दर दर्पण और उसके भी अन्दर एक दर्पण का विचित्र दृश्य झलक आया हो।

क्या त्रिगोरिन के रूप में इस नाटक में चेखव ने अपना चित्रण किया था या त्रेपलेव के रूप में ? क्या निना उसके वास्तविक जीवन की कोई सहचरी मित्र थी ? क्या उस नाटक में कई मार्मिक प्रसंग चेखव के जीवन के अपने निजी प्रसंग हैं ? लेकिन इन सब प्रश्नों का रहस्य जानने के पहले आइए, चेखव का 'दी सीगल' नाटक शुरू करें।

पर्दा उठता है—

रूस के हरे-भरे देहातों में त्रेपलेव के मामा की जागीर, ऐल्म के पुराने वृक्षों के झुरमुट और बीच में झील तक जाती हुई पगडंडियाँ ! झाड़ियों में से झील दीखती है, लेकिन पूरी तरह नहीं क्योंकि अभी-अभी सूरज डूबा है और सामने एक खुला स्टेज बनाया जा रहा है। इस स्टेज पर थोड़ी देर में त्रेपलेव का नाटक आरंभ होगा। दिन ढले की झिल्ली की झंकारें और बनते हुए स्टेज की कीले ठोंकने की आवाज़ें एक साथ आ रही हैं।....और तब आता है त्रेपलेव—स्टेज का निरीक्षण करते हुए ! उसकी योजना है कि यह सारा दृश्य ही नये नाट्य-प्रयोग का असली दृश्य होगा और पर्दा भी ठीक साढ़े आठ बजे उठेगा जब दैनिक पंचांग के अनुसार सचमुच आसमान में चाँद उग आयेगा। त्रेपलेव के हाथ में एक वनफूल है और वह चिंतित है कि निना न आई तो क्या होगा ? दूसरे, उसकी माँ भी उसके विरुद्ध है। एक तो वह त्रिगोरिन जैसे प्रख्यात लेखक की प्रणयिनी है और दूसरी ओर स्वयं मास्को के स्टेज पर असफल हो चुकी है। अँधेरा बढ़ रहा है और चाँद निकलने के लक्षण क्षितिज पर प्रगट हो रहे हैं। त्रेपलेव अपने मामा से बात करते हुए फूल की पाँखुरियाँ एक-एक कर नोचता जाता है। अंधविश्वास के अनुसार एक पाँखुरी पर कहता है 'मेरी मा मुझे चाहती है' दूसरी पर कहता है 'मेरी माँ मुझे नहीं चाहती' और आखिरी पाँखुरी पर यही वाक्य आता है कि उसकी मा उसे नहीं चाहती।

तब आती है निना ! उसकी पग-ध्वनियाँ सुनते ही वह उमंग में भरकर अपने मामा से कहता है, "मैं उसके बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता। उसके पाँवों की आवाज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक मुझे बेहद प्यारी लगती है। मेरी जादूगरनी निना!" निना क़स्बे की एक अत्यन्त सुन्दरी किंतु बेहद महत्वाकांक्षिणी लड़की है जो हमेशा किसी बड़े नगर में जाकर ख़ूब यश अर्जित करने का स्वप्न देखती है। त्रेपलेव के नाटक में वह अभिनय तो करती है पर उसे विश्वास नहीं हो पाता कि त्रेपलेव में नाटककार की प्रतिभा भी है। नाटक करते समय भी वह बराबर सोचती है कि त्रिगोरिन जैसा महान लेखक क़स्बे में आया हुआ है और उसका नाटक देख रहा है!

पर्दा उठता है। त्रेपलेव के नाटक की स्टेज सामने है। झील दीखने लगती है, चन्द्रमा उग आया है और झील में उसकी परछाईं तैरने लगी है। एक बड़े-से पत्थर के ढोंके पर शुभ्र धवल-झीने वस्त्रों में लिपटी हुई निना पहले संवाद कहती है— (वह समस्त सृष्टि की आत्मा बनी है) "मनुष्य, सिंह, गिद्ध और बाज़, बारहसिंघे, बत्तकें, मकड़ियाँ, जलवासिनी मछलियाँ, तमाम प्राणी, तमाम जीवित प्राणी अपने आवागमन का कष्ट भोगकर मुक्त हो चुके ... हज़ारों वर्ष से यह पृथ्वी सूनी और निःसन्तान है। बेचारा चन्द्रमा व्यर्थ शाम को अपना दीपक जला जाता है। हरे-भरे चरागाहों में सुबह-सुबह सारस नहीं बोलते और नीबू की फूली झाड़ियों में वसंत के भौंरे गुंजार नहीं करते। कहीं भी धूप नहीं, रोशनी नहीं, सब ख़ाली है, सब भयावह है। तमाम प्राणी धूल में मिल गये। प्रकृति ने उन्हें चट्टान में बदल दिया.... जल में बदल दिया, बादलों में बदल दिया। सबकी आत्माएँ मिलकर एक हो गईं। वह निखिल सृष्टि की आत्मा में—मुझमें सिकंदर की, सीज़र की, शेक्सपियर की, नेपोलियन की और छोटे-से-छोटे कीड़े की आत्मा मिलकर एक हो गई। मुझे सब याद है... सब.... सब-कुछ...और मैं अकेली हूँ। सैकड़ों वर्षों बाद कभी मैं बोलती हूँ और मेरी आवाज़, उदासी-भरी आवाज़ शून्य में गूंजकर लौट आती है, कोई सुननेवाला नहीं।"

स्टेज के सामने दूसरा नाटक चल रहा है। त्रेपलेव की मा मैडम आर्कादिन इसे हासोन्मुख नाटक बताती है। और जब ज्यादा चिढ़ जाती है तो कहती है, "अगर मज़ाक में किसी को पागलों का प्रलाप भी सुनना हो तो एक बार सुन भी सकता है लेकिन जब यह कहा जाय कि यह नया साहित्य है, नये विचार हैं और नई कला है तो इस आडंबर को सहना कठिन हो जाता है।" त्रेपलेव आहत होकर नाटक बंद करने का आदेश देता है। उसके चेहरे पर क्लेश, नितांत अकेलापन और पराजय के स्पष्ट चिन्ह हैं। काश कि निना स्टेज से उतरकर उसके मन को समझने का प्रयास करती। लेकिन निना को चिंता है कि त्रिगोरिन ने उसके अभिनय के बारे में क्या मत बनाया। त्रिगोरिन! सफल और प्रतिष्ठित लेखक त्रिगोरिन ने नाटक ठीक से देखा और सुना भी नहीं था। वह निना से पूछता है कि क्या इस झील में काफ़ी मछलियाँ हैं ताकि इस क़स्बे में अपनी छुट्टियों में झील के किनारे छाँह में बैठकर मछलियाँ फँसाने का कार्यक्रम बना सके।

ज्यों-ज्यों चेखव का यह नाटक आगे बढ़ता है, त्यों-त्यों त्रिगोरिन और मैडम आर्कादिन, त्रेपलेव और निना की प्रणय-कहानी के साथ-साथ उस समय के साहित्य-जगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पुरानी और नई पीढ़ी-पुरानी और नई विचार-धाराओं के संघर्ष की कहानी भी सामने आती चलती है। त्रिगोरिन एक जमा-जमाया ख्याति-प्राप्त लेखक है। लेकिन उसकी ख्याति ने ही उसको जैसे भटका दिया। केवल कभी-कभी जब कोई उसके मर्म को छू देता है तब वह दूर से अपने को देखकर अपना सही-सही विश्लेषण करता है। मैडम आकार्डिन तो सर से-पाँव-तक पोर-पोर उसके प्यार में डूबी थी, अतः उसकी प्रशंसा के पुल दिन-रात बाँधती रहती थी लेकिन जब एक दिन निना झील के किनारे वसंत में फूले बग़ीचे में उससे दुनिया भर की बातें करने लगी तो उसने कहा, "सच है कि मैं सफल हूँ, लेकिन इस सफलता से क्या? मैं ख़ुद अपने साहित्य को पसंद नहीं करता और सबसे बुरी बात तो यह है कि मैं मानो भावोन्माद में रहता हूँ और कभी-कभी ख़ुद नहीं जानता कि मैं क्या लिखता हूँ, कैसे लिखता हूँ। इतना जानता हूँ कि मैं इस झील को प्यार करता हूँ, पेड़ों को प्यार करता हूँ। इनका चित्रण करने में मुझे सुख मिलता है, मगर मैं नागरिक भी हूँ। अपने देश को भी प्यार करता हूँ। अपने लोगों को भी। उनके लिए भी लिखता हूँ। वे कभी अपने दुःख, कभी अपने ज्ञान, विज्ञान, कभी अपने अधिकारों की माँग पेश करते रहते हैं और मैं उनके बारे में लिखता जाता हूँ। मेरी हालत वैसी ही हो जाती है जैसे चारों ओर शिकारी कुत्तों से घिरी हुई लोमड़ी दिग्भ्रमित सी-कभी इधर भागती है, कभी उधर! अंत में मैं पाता हूँ कि जीवन और संस्कृति बहुत आगे निकल गई है और मैं हाँफता हुआ पीछे भाग रहा हूँ; मानो कोई किसान देर में चला हो और उसके देखते-देखते ट्रेन छूट गई हो फिर भी वह झूठी आशा में पीछे भाग रहा हो। अंत में होता यह है कि मैं सिर्फ़ सुन्दर दृश्य चित्रित कर पाता हूँ; बाक़ी जो भी है, विचार या परिस्थितियाँ, वह सब झूठ हैं। उनके बारे में मैं जो भी लिखता हूँ, सब बिल्कुल झूठ हैं।"

महान अभिनेत्री बनने की महत्वाकांक्षिणी निना यह सब कुछ नहीं समझती। वह केवल इतना जानती है कि त्रेपलेव उसे प्यार भले ही करता हो लेकिन वह बड़ा लेखक नहीं है। नया लेखक ज़रूर है पर नयेपन के नाम पर जो कुछ देना चाहता है, वह प्रतीक और अस्पष्ट उपमाएँ, वह सब निना के समझ में नहीं आतीं। त्रिगोरिन बड़ा लेखक है, सफल लेखक है लेकिन वह ज़रूर थका हुआ है इसलिए ऐसी बातें करता है। थका हुआ भी क्यों न हो, मैडम आर्कार्डिन जैसी कृत्रिम और ढलती हुई उम्र की प्रेमिका उसे क्या प्रेरणा दे सकती है! निना के मन में त्रिगोरिन के लिए केवल आदर ही नहीं, कुछ और भी जागता है। और तभी त्रिगोरिन को तट पर पड़ी हुई दीखती है—एक मरी हुई जलपंखिनी! उसे तुरंत एक कहानी का कथानक सूझता है—झील के किनारे एक व्यक्ति आता है। कुछ और काम न रहने पर लगे हाथ एक जल-पंखिनी का शिकार कर चला जाता है। और मान लो, झील के पास निना जैसी एक सुन्दरी पंख पसारकर उड़ने की आकांक्षा करने वाली जलपंखिनी भी वहाँ रहती हो और लगे हाथ कोई उसी का शिकार कर ले, तो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिगोरिन इस कहानी का कथानक निना को बताता है। हँसकर कहता है, 'भूलो मत कि पंख पसारकर उड़ने की महत्वाकांक्षिणी तुम वास्तव में एक लड़की नहीं, जलपंखिनी हो—"जब त्रिगोरिन यह कह रहा था तो उसे क्या मालूम था कि कुछ ही देर पहले त्रेपलेव इस शिकार की हुई जलपंखिनी को लाया था और निना के पाँवों के पास रखकर बोला था कि इसी तरह एक दिन मैं अपने को गोली मार लूंगा। निना ने खीजते हुए कहा था कि त्रेपलेव, लेखक के रूप में तुम सफल नहीं हो पा रहे, इसलिए तुम्हारा मिज़ाज बिगड़ता जा रहा है! तुम ऐसा कुछ क्यों नहीं लिखते जैसा त्रिगोरिन लिखता है? तुम जटिल प्रतीकों की बात क्यों करते हो? मेरे तो खाक समझ में नहीं आता। हो सकता है, यह मरी हुई जलपंखिनी भी तुम्हारे अंतरमन का कोई प्रतीक हो पर ऐसे प्रतीक समझ में नहीं आते।

पर कौन जानता था कि सचमुच यह एक प्रतीक ही था। चेखव ने जान-बूझकर यह जलपंखिनी का प्रतीक रखा था—संवेदनशील किन्तु महत्वाकांक्षिणी निना वह जलपंखिनी थी। अनजाने में ही जिसके पंख बिंध चुके थे। देहातों में छुट्टी बिताने के लिए आया हुआ लेखक त्रिगोरिन अनजाने में उसके पंख तोड़ चुका था। अब उसके सामने एक बहुत बड़ा सपना था—मास्को जाने का! त्रिगोरिन की प्रेरणा से एक महान अभिनेत्री बनने का। लेकिन क्या यह सपना कभी सच हो सकता है?....

वह त्रेपलेव से खिंचती गई। त्रेपलेव में नई विचारधाराओं का विद्रोह और तिरस्कृत प्रणय की वेदना — एक साथ मिलकर गहरी यंत्रणा में परिणत होती गई। वह कटु होता गया। एक दिन जब उसकी मा ने कहा कि वह त्रिगोरिन जैसे लेखकों की निंदा इसलिए करता है कि उसमें स्वयं कोई प्रतिभा नहीं है, तो वह उबल पड़ा। "प्रतिभा! तुम सब जितने पुराने कूड़ा-कर्कट लोग हो, उससे ज्यादा प्रतिभा हममें से किसी में भी है। तुम अपने गलित संस्कारों और भयंकर रूढ़ियों से ग्रस्त साहित्य और कला का ठीका लेकर बैठ गये हो। अपने अलावा तुम किसी को पनपने नहीं देना चाहते। दूसरों को कुचलने के लिए गर्हित-से-गर्हित उपाय करते हो। तुम सब विश्वास के क़ाबिल नहीं।

जिस दिन यह विस्फोट होता है—उसकी मा और त्रिगोरिन वापस मास्को लौटने की तैयारी कर रहे हैं। त्रेपलेव जानता है कि इस बीच में निना त्रिगोरिन के प्रणय-पाश में पूर्णतया फँस चुकी है, और उसकी मा शायद इसीलिए इतनी जल्दी त्रिगोरिन को मास्को वापस ले जाने की तैयारी कर रही है।

त्रिगोरिन दूसरे कमरे में निना से विदा ले रहा है। निना नहीं जानती कि वह त्रिगोरिन जैसे बड़े लेखक से क्या कहे। त्रिगोरिन बार-बार उस दिन की याद करता है जब वह पहली बार झील-किनारे निना से मिला था और उसे जलपंखिनी का कथानक सूझा था। पर निना कुछ कहती नहीं, एक सुन्दर-सा मैडेलियन (पदक) विदा-चिन्ह के रूप में उसे देकर चली जाती है। — मैडेलियन पर लिखा है, त्रिगोरिन के कहानी संकलन का नाम—'दिन-रात' पृष्ठ १२१, पंक्ति ११।—उसकी किताबें पैक हो चुकी हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन फिर भी वह दौड़कर अपना कहानी-संग्रह खोजता है। पृष्ठ निकालता है, लाइनें गिनता है। ग्यारहवीं लाइन है, "यदि तुम्हें कभी मेरे जीवन की ज़रूरत पड़े तो आना और उसे ले जाना। वह तुम्हारा है।" एक अबोध ग्राम-किशोरी का यह अनूठा समर्पण उसे बेतरह उद्वेलित कर जाता है। मैडम आर्कादिन चतुर, मजी हुई और अनुभवी स्त्री है। त्रिगोरिन की कमज़ोर इच्छा-शक्ति को एक चरम नाटकीय दृष्टि से अपने वश में कर वह उसे मंत्रमुग्ध बनाकर अपने साथ ले जाती है।

अंतिम दृश्य चार वर्ष बाद आता है। त्रिगोरिन और मैडम आर्कादिन फिर देहात में लौटते हैं। इस बीच निराश, कटु और विद्रोही नया लेखक त्रेपलेव धीरे-धीरे प्रतिष्ठित हो चुका है। मास्को में लोग उसकी चीज़ें पढ़ते हैं, प्रशंसा करते हैं, उसके बारे में जानने को उत्सुक हैं। स्वयं त्रिगोरिन उसके प्रशंसक-पाठकों की अगणित कहानियाँ लेकर आया है। लेकिन त्रेपलेव बिल्कुल अकेला है। वर्षों पहले झील में किनारे की जलपंखिनी बिना पंख फड़-फड़ाये हुए मास्को की तरफ़ उड़ गई थी। वहाँ त्रिगोरिन के पास रही, एक बच्चा हुआ और जाता रहा। फिर उसके बाद निराशा... और फिर ग्रामों और क़स्बों की छोटी नाटक-कम्पनियों में अभिनय! त्रेपलेव ने सब सुना। जिस दिन इन सबके आने की धूमधाम है, उसी दिन अकस्मात् त्रेपलेव के कमरे पर एक दस्तक सुनाई देती है। त्रेपलेव लिख रहा है—"एक दिन था, मैं नये रूप के लिए, नई शैली के लिए इतना आग्रह करता था। लेकिन अब लगता है कि सवाल नये या पुराने साहित्य-रूप का नहीं है बल्कि असल बात यह है कि लेखक को रूप और शैली के बारे में चिंता ही नहीं करनी चाहिए। जो लिखे, वह सिर्फ़ इसीलिए कि यह उसके हृदय से उपजा है।" और इसी समय दरवाज़े पर दस्तक सुनाई देती है। द्वार पर है वर्षों बाद लौटकर आई हुई थकी-निराश जलपंखिनी-सी निना! एक बार त्रेपलेव का मन पूरी तरह उमग आता है। कहीं भी गई हो, कुछ भी किया हो, लेकिन अब निना वापस लौटी है। वह कहता है "मैंने तुम्हारे खत फाड़ फेंके, लेकिन मैं जानता था, यह मेरे वश की बात नहीं है कि तुम्हारे प्यार से मुक्त हो सकूं। तुम मुझसे दूर गई और यश मेरे पास आया। मेरी चीजें छपने लगीं और मेरी यंत्रणा और भी बढ़ गई। मैं नितांत अकेला हूँ। किसी का प्यार मेरे मन को तृप्त नहीं करता। चारों तरफ़ कहीं उष्णता नहीं; और मैं जो कुछ लिखता हूँ, वह नीरस है, कठोर है, निराशा से भरा हुआ है। निना, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, तुम रुक जाओ या मुझे अपने साथ ले चलो।"

निना चौंक उठती है। उसे निःसंदेह नाटक का वह पहला दिन याद आता है जब बाग़ीचा फूलों से लदा हुआ था, चाँद झील पर तैर रहा था और सृष्टि की आत्मा बनकर पत्थर के ढोंके पर बैठकर उसने काँपते हुए अपने जीवन का पहला संवाद बोला था—

"हज़ारों वर्षों से यह पृथ्वी सूनी और निःसंतान है। बेचारा चंद्रमा व्यर्थ ही को अपना दीपक जला जाता है। हरे-भरे चरागाहों में सुबह-सुबह सारस नहीं बोलते और नीबू की फूली झाड़ियों में वसंत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ीरे गुज़ार नहीं करते !"

वह यह सब याद करती है। याद करती है एक जलपंखिनी की महत्वाकांक्षा थी महान अभिनेत्री बनने की; याद करती है कि एक ...क्ति त्रिगोरिन आया देहात में ख़ाली ...हत बिताने, कोई और काम न होने पर ...ी-बिठाये उसने जलपंखिनी के पंखों को तोड़ ...या। लेकिन वह यह भी जानती है कि ...पेलेव का प्यार जैसा भी हो, पर वह उसे ...ल नहीं कर सकती। त्रिगोरिन ने भले ही ...ले नष्ट कर दिया हो लेकिन उसके मन में ...र त्रिगोरिन के लिए ही उपजा था। अब ...ंदी के लिए कुछ नहीं है, केवल धैर्यपूर्वक ...े अभिनय में लगना है। धीरे-धीरे उसी ...त्र को आत्मसात् करना है, वही उसका ...कमात्र रास्ता है !

वह चली जाती है !

...जाते-जाते दुःखभरे स्वरों में त्रेपलेव ...ता देता है—"तुमने अपना रास्ता पा ...या, तुम अपनी दिशा जानती हो। मैं ...ब भी स्वप्नों और टूटे हुए बिम्बों की ...यानक बाढ़ में हाथ-पाँव मार रहा हूँ। ...हीं जानता कि मेरा अभिप्राय क्या है ? ...री आस्था कहाँ है ?"

...निना चली जाती है—मैडम आर्कादिन ...आने के पहले—क्योंकि मास्को-प्रवास के ...द मैडम आर्कादिन उसकी जानी दुश्मन ...ो चुकी हैं। थोड़ी देर बाद शाम को ...ी चाय की मेज़ पर बैठे हैं। त्रेपलेव का ...लज़ार है। सूरज अभी-अभी डूबा है ...लिन नीबू की झाड़ियों में भौंरे अभी गुंजार ...र रहे हैं। बाहर से गोली छूटने की आवाज़ ...होती है, कोई आकर चुपके से कहता है—...डम आर्कादिन को किसी तरह यहाँ से उठा ले जाइये—बाग़ में त्रेपलेव ने अपने को गोली मार ली है।"

● ● चेख़व का यह नाटक न केवल विचित्र रूप से सफल और सशक्त है वरन् पता नहीं क्यों, हर आलोचक को इसे पढ़ने के बाद बार-बार ऐसा लगता रहा है कि चेख़व के निजी जीवन से इसका बहुत घनिष्ठ संबंध होना चाहिए। आख़िर इसमें चेख़व का व्यक्तित्व किस पात्र में प्रतिबिम्बित हुआ है ? क्या वह त्रिगोरिन था ? इसमें कोई संदेह नहीं कि चेख़व की सफलता और शोहरत लगभग वैसी ही थी जैसी त्रिगोरिन की थी। लेकिन त्रेपलेव का जो संघर्ष था, वह चेख़व के अंतर्द्वन्द के अधिक निकट पड़ता था। 'मास्को आर्ट थियेटर' के जन्मदाता निमिरोविच डान्शैन्को का कहना था कि वास्तव में त्रिगोरिन के रूप में चेख़व ने अपने मित्र-लेखक पोटापेन्को को चित्रित किया है। चेख़व ही त्रिगोरिन है—यह भ्रम शायद इसलिए भी हुआ कि वह प्रख्यात वाक्य जो उस मैडेलियन से संबंधित है, (यदि तुम्हें कभी मेरे जीवन की ज़रूरत पड़े तो आना और उसे ले जाना। वह तुम्हारा है।) वह स्वयं चेख़व की ही एक कहानी में आता है। दूसरा प्रश्न है —निना कौन थी ? कई लोगों ने यह माना है कि निना उसकी बहन मेरी की एक सखी लीडिया मिज़िनव थी। लीडिया मिज़िनव बहुत सुन्दर थी। वह सचमुच चेख़व को प्यार करती थी। यह भी सच है कि जिन दिनों वह मैलीखोवो में रहता था तब लीडिया मिज़िनव चेख़व के मित्र पोटापेन्को से भी मिली थी। पोटापेन्को के प्रति आकर्षित भी हुई थी और कुछ दिनों बाद पोटापेन्को से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे एक संतान भी हुई थी और उसके बाद वे अलग हो गये थे। बहुत दिनों तक यह माना जाता रहा कि लीडिया मिज़िनव ही निना हो सकती है।

लेकिन बाद में एक विचित्र बात पता चली। वास्तव में पोटापेन्कों और लीडिया मिज़िनव का प्रणय-प्रसंग 'सीगल' नाटक के प्रकाशन के बाद हुआ। संतान और विच्छेद तो और भी तीन वर्ष बाद! फिर यह रहस्य और भी गहरा हो गया कि वास्तव में कौन थी निना? क्या रहस्य था उस पदक वाली घटना और उस समर्पण भरे वाक्य का? उस वाक्य का, जो चेख़व की कहानी में भी आता है और नाटक में भी! कौन था जिसने इस वाक्य के माध्यम से अपना सर्वस्व अर्पित करने की बात कही थी?

●●सन् १९०४ में चेख़व की मृत्यु हुई। ३८ वर्ष तक तमाम आलोचक और रिसर्च-स्कॉलर इस समस्या को सुलझाने की कोशिश करते रहे। ३८ वर्ष बाद सन् १९४२ में ज्ञात हुआ कि एक भद्र महिला लीडिया एवीलव अपनी मृत्यु के बाद एक अप्रकाशित पांडुलिपि छोड़ गई हैं। उस पांडुलिपि में उनके निजी जीवन के संस्मरण हैं। शीर्षक है—"चेख़व इन माई लाइफ़"! संस्मरणों की शुरुआत हुई है सन् १८८९ में, जब वे २४ वर्ष की थीं और चेख़व २८ वर्ष के। चेख़व की पहली कहानियाँ अभी-अभी प्रकाशित हुई थीं और वे उन कहानियों को पढ़कर चेख़व से मिलने के लिए अत्यन्त आतुर थीं। उनका विवाह हो चुका था और एक दिन जब पीटर्सबर्ग की ठंडी शाम धीरे-धीरे आकाश को धूमिल बना रही थी, उन्हें उनकी बड़ी बहन की छोटी-सी चिट मिली—"चेख़व हमारे यहाँ आये हैं; देखना चाहो, तो तुरंत चली आओ।" पति के लिए खाना मेज़ पर लगा कर, बच्चे को पालने में सुलाकर, धाय को उसके पास बिठाकर वे अकेले चल पड़ीं—चेख़व से मिलने! उनके गाउन के दोनों छोर शाम की हवा में इस तरह उड़ रहे थे मानो जलपंखिनी के फड़फड़ाते हुए पंख! कैसे होंगे चेख़व? क्या बात करेंगी वे? बीच में बच्चे की नींद खुल गई, तो? लेकिन कुछ भी हो, उन्हें तो जाना ही है....

●

अगले अंक में—

चेख़व से उनकी क्या बातें हुईं? क्या सचमुच चेख़व त्रिगोरिन की तरह सफल किन्तु अंदर से उद्देश्यहीन था, या त्रेपलेव की तरह विद्रोही, कटु और अकेला? क्या वह समर्पण भरा वाक्य लीडिया एवीलव का ही था? उस पदक की घटना का रहस्य क्या था? जलपंखिनी (सीगल) नाटक कब लिखा गया था? अगले अंक में लीडिया एवीलव की मृत्यु के बाद छपे उनके संस्मरणों के आधार पर स्वयं लीडिया एवीलव के शब्दों में ही इस मार्मिक प्रसंग की पूरी कथा प्रस्तुत की जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य-वाटिका से, स्वयं ज्ञानोदय के ही पाठक-पाठिकाओं द्वारा चुने हुए वाक्य-सुमन !

• • • • •

नये रंग : नये ढंग : लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; मूल्य : २.००

० लोग पूछते हैं, मेरे बाद कौन और क्या ? मैंने उन्हें जवाब तो दे दिया, पर जानता हूँ यह सवाल ग़लत नहीं है। सवाल माकूल है; बड़ा है। प्रजातन्त्र में कोई इतना बड़ा क्यों हो जाये कि दूसरा कोई भी उसके कन्धे तक भी न पहुँच पाये ? आज से दस साल पहले ही मुझे इस पहलू पर ध्यान देना था। फिर भी, ग़नीमत है कि प्रजातन्त्र वक्त पड़ने पर अपना नेता पैदा कर लेता है।

(जो वे स्वयं न कह पाये—नेहरूजी)

० डिक्शनरी में दो शब्द हैं : एक 'राजनीति', दूसरा 'कूटनीति'। जब मैं किसी ऊँचे पद पर होता हूँ तो 'कूटनीति' से काम लेता हूँ और जब साधारण पद या बिना पद के होता हूँ तो 'राजनीति' से काम चलाता हूँ। हिन्दी का समर्थन 'कूटनीति' थी, हिन्दी का विरोध आज की साधारण 'राजनीति'।

(जो वे स्वयं न कह पाये—राजाजी)

० तर्क समाधान भी करता है और छल भी करता है। इसीलिए कभी-कभी गहरे सोच में पड़ जाता हूँ कि मेरी आत्मतुष्टि ठीक है या असन्तोष-भावना ही सही है। मेरे मन का दोल दो प्रतिगामी दिशाओं में अति की सीमा तक झूल-झूल जाता है।

यन्त्र की गति से परिचालित-सा यह जीवन कहाँ जा रहा है, क्यों जा रहा है ?

मेरे रेखांकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य यदि सदा ही सापेक्ष है तो निरपेक्ष अद्वैत की स्थिति मुझे कहाँ मिलेगी—गति में या विराम में ? (जो वे स्वयं न कह पाये—विनोबा भावे)

० दोस्तो ! खुदा के वास्ते मुझ पर तरस न खाओ। अगर मुझे मरना ही है तो बहादुरी की मौत मरने दो। मेरा यह गौरव मुझसे न छीनो कि चाँद-तारों की यात्रा का पहला जीवित प्राणी हूँ, जिसने ब्रह्माण्ड की पहली धूमिल झलक अपनी आँखों से देखी। मेरी ज़िन्दगी का मिशन शानदार है। तुम्हारे आँसुओं और तुम्हारी इच्छाओं से वह बहुत बड़ा है। (असीम आकाश के बियावान में)

० यों सृजन उगता है, पनपता है और अपने आपमें सन्तुष्ट हो जाता है, किन्तु कृतार्थ नहीं होता क्योंकि यदि उसमें 'अर्थ' ही न उपजता तो 'कृत' क्या हुआ ? 'अर्थ' वह तो है ही जो पाठक के पास पहुँचता है, वास्तविक अर्थ वह जो लेखक की जेब में जाता है। पाठक अपनी पात्रता के अनुपात में 'अर्थ' पाये तो लेखक अपनी योग्यता के अनुपात में अपने अनुरूप उसे क्यों न पाये ? योग्यता महँगी तो होती ही है। अर्थ का निरपेक्ष भोग त्याग ही है। (नये वर्ष की नयी डायरियाँ)

० मैं खुशी से १०,००० गैस-चेम्बरों की मौत मरने को तैयार हूँ अगर यह सचाई लोगों के मन में घर कर सके कि मौत की सज़ा के कानून को रद्द करने का अर्थ यह नहीं होता कि हम हत्या के अपराधों को प्रोत्साहन दे रहे हैं। मौत की सज़ा से हत्या की वारदातें रुकती नहीं हैं, न इससे समाज की रक्षा होती है ! बल्कि, समाज अरक्षित रह जाता है क्योंकि जब तक जल्लाद या गैस-चेम्बर का अस्तित्व है, समाज इस धोके में रहा चला जाता है कि अपराधी का दमन करने के साथ-साथ हमने समस्याओं को भी दफ़ना दिया है।

(एक डाकू : दो ख़त : तीन दृष्टियाँ)

० जीवन कितना लम्बा और जीवन को जीने का व्यापार कितना तूल-तवील ! लेकिन मृत्यु ? एक सिमटी-सी क्षणिक-सी चीज़ ; एक ऐसा पल जो अन्तिम होता है और सब कुछ समाप्त कर देता है। किन्तु कौन कह सकता है कि मौत सचमुच ही अन्त है। व्यक्ति का अन्त चाहे वह हो भी, किन्तु व्यक्तित्व के तो प्रसार का ही माध्यम है वह। (मौत—एक माध्यम)

(संकलन—भोलानाथ विम्ब)

एक चादर मैली-सी : राजेन्द्र सिंह बेदी

प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद; मूल्य ३.७५

० आज शाम सूरज की टिकिया बहुत ही लाल थी। आज आसमान के कोठले में किसी निर्दोष की हत्या हो गयी थी और उसके खून के छींटे नीचे बकाइन के पेड़ पर पड़ते हुए तिलोके के आँगन में टपक रहे थे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

० देवी के पास तो अपने-आपको बचाने के लिए त्रिशूल था, जिससे उसने अन्त में भैरव का सिर काटकर अलग कर दिया। लेकिन उस भोली जात्रिन के पास सिर्फ दो प्यारे-प्यारे गुलाबी-से हाथ थे, जिन्हें वह भैरव के सामने जोड़ सकती थी, उनसे आत्म-रक्षा न कर सकती थी।

० बेटी तो किसी दुश्मन के भी न हो भगवान! ज़रा बढ़ी कि माँ-बाप ने ससुराल ढकेल दिया। ससुराल वाले नाराज़ हुए तो मायके लुढ़का दिया! हाय! यह कपड़े की गेंद...अपने ही आँसुओं से भींग जाय तो फिर लुढ़कने योग्य भी नहीं रहती।....

० आज सुबह जब वह नहाकर पोखरे में से निकली तो सुल्फे की लौ मालूम हो रही थी।.... उसने बेंदी लगा रखी थी। कोई ध्यान से देखता तो पता चलता कि आज वह सिर्फ बेंदी न थी। वह प्रभात का सूर्य थी, जो गहरा लाल होता है और तेज़-तेज़ अपनी धुरी के गिर्द घूमता जाता है। फिर अकस्मात जैसे किरणों के ढेर में हाथ डालकर किसी ने उन्हें बिखरा दिया....फिर अखरोट की छाल का रंग उसके होठों पर चला आया था और अब तक के सूखे हुए छुहारों की बजाय वे रसभरियों के ढेर मालूम हो रहे थे!

० रात-दिन अपना संयम छोड़ रहे थे! रातें दिन पर भारी होने लगी थीं! पराजित सूर्य रात के सामने शरमाया और बादल के पर्दे से मुंह निकाल कर अपनी पृथ्वी की ओर देखने लगा। बस उसके मुस्कराने की देर थी कि तीतर के परों पर रंग बिखर गया। दुराज और तीतर की चाल में नये अन्दाज़ चले आये और नीम की-सी कोमल डाल पर झूमती, भार ठीक करती हुई झाँपल के कंठ में एक रस और गंध से भरी संगीतमयी अनायासता फूट निकली।....

(संकलन—सतीश कुमार)

मानव मूल्य और साहित्य : डॉ० धर्मवीर भारती

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; मूल्य २.५०

० पश्चिम की समस्त व्यवस्था तूफान में पड़े हुए ऐसे जहाज की तरह हो गयी है जिसके पाल फट चुके हैं, पतवारें टूट चुकी हैं, माझी बेकाम हो चुके हैं। उत्ताल लहरों पर निरुद्देश्य डोलता हुआ एक विशाल पोत!

० कलाकार सुन्दर कृतियों का निर्माता होता है....वे श्रेष्ठ हैं जिनके लिए सौन्दर्य का अर्थ केवल सौन्दर्य होता है। नैतिक या अनैतिक जैसी कोई कृति नहीं होती; कृतियाँ या कलात्मक होती हैं या कलाहीन। बस!....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

० साहित्य को प्रशासित करनेवाली मर्यादाओं के द्विविध रूप होते हैं--सम्प्रदायगत और मूल्यगत ! सम्प्रदायगत मर्यादा पतनोन्मुख और संकीर्ण होती है--मूल्यगत मर्यादा प्रगतिशील और विकासोन्मुख। जीवन्त साहित्य के लिए प्रथम अग्राह्य है, द्वितीय अनिवार्य !

० भविष्य, वर्तमान से सर्वथा विच्छिन्न वस्तु नहीं है; मूल्यों का वह रूप जो हम आज बना रहे हैं, वही कल बनकर अवतरित होगा ! समय को टुकड़ों में तोड़ देने की हमारी आदत हमें इस बात का अधिकार नहीं देती कि अन्तिम टुकड़े (भविष्य) को मध्य के टुकड़े (वर्तमान) से अधिक वास्तविक समझें।

० हमारा हृदय हमसे अलग जा पड़ा है और हमारा दिमाग़ प्याज के छिलकों की तरह उतर गया है--क्योंकि हम एक अज्ञात भय से आकुल हैं जिससे हम आँख नहीं मिला सकते।

० नयी कविता मनुष्य की 'आन्तरिकता' को फिर से प्रतिष्ठित करना चाहती है, उसके असामंजस्य को दूर करना चाहती है। चाहे अवचेतन की अन्धबर्बर पशुप्रवृत्तियाँ उसके आन्तरिक सन्तुलन को बिगाड़ रही हों और चाहे बाह्योरोपित जनसंकुलन सामूहिकता उसे कुण्ठित कर रही हो, यदि इनमें से कोई भी अतिप्रबल है तो हम नये कवि के राग-बोध को विक्षुब्ध पाते हैं।

(संकलन--इन्दुमणि)

सुहाग के नूपुर : अमृतलाल नागर

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य ४.५०

० धूप-सी तरो, पर जोड़ें को धूप-सी, जो सबके लिए सुहानी होती है; प्रखर ताप अच्छा नहीं होता।

० ऐसा लगता था मानो एक सुन्दर, शुद्ध और पूर्ण वाक्य अपना विराम-चिह्न न पाकर अपूर्ण-सा लगता हो।

० मेरे मन का एक छोर हरदम कहीं उड़ा करता है।

० रंग-बिरंगे बादलों की सुन्दरता पर तो सब रीझते हैं, सूर्य की विवशता पर कोई आँसू नहीं बहाता।

० खंडित दर्पण में एक रूप भी अनेक छवि बनकर ही आता है।

० लोक-मर्यादा अधिक शीतल छायावान और पत्तों की तरह असंख्य रूपों में लहराती हुई होते हुए भी अपनी सीमा में जड़ीभूत होती है। और प्रेम-मर्यादा गरुड़ के समान गगन की नई निःसीमता में हर बार विस्तार पाती है।

(संकलन--राजेन्द्र कुमार वर्मा)

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरद देवड़ा

●

सागर पार की हलचलें (५)

आधुनिक युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विचारधारा अस्तित्ववाद और उसके उतने ही महत्त्वपूर्ण लेखक-विचारक ज्याँ पॉल सार्त्र का एक सुलझा हुआ सरल सुबोध विवेचन। 'एनकाउन्टर' पत्रिका के अप्रैल १९६२ के अंक में प्रकाशित मॉरिस क्रैन्स्टन के विस्तृत निबंध पर आधारित।

●

आधुनिक फ्रांसीसी लेखकों में सार्त्र सबसे कम 'फ्रांसीसी' है। वह इतना अधिक पवित्रतावादी और दृढ़ निश्चयी, इतना अधिक रोमानी और भावुक, अध्यात्म से इतना अधिक अभिभूत, और इतना अधिक परिश्रमी है, कि वह जर्मन होने के अधिक नज़दीक लगता है।

सार्त्र को अस्तित्ववाद का आधुनिक सन्त कहा जा सकता है। विश्व-युद्ध के पहले भी सार्त्र ने अस्तित्ववादी दर्शन की शास्त्रीय व्याख्या करनेवाली तीन-चार पुस्तकें लिखी थीं—और उससे भी अधिक दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण बात यह कि कुछ कथा-कृतियाँ भी लिखी थीं जिनमें 'ला नौसिया' शीर्षक एक उपन्यास और 'ला मुर' शीर्षक एक कहानी-संग्रह विशेष उल्लेख्य हैं। 'ला नौसिया' किसी भी अर्थ में राजनीतिक नहीं है, बल्कि अपने सम्पूर्ण तीखेपन से दार्शनिक है; इसका हर पहलू किसी न किसी रूप में सार्त्र के सैद्धांतिक विचारों से सम्बन्धित है; चाहें तो इसे अस्तित्ववादी उपन्यास की बाइबिल कह सकते हैं।

अस्तित्ववाद और उसका आधुनिक सन्त

ज्याँ पाल सार्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उपन्यास एन्तोइने रोक्वेन्तिन नामक एक व्यक्ति की डायरी के रूप में है। रोक्वेन्तिन अठारहवीं सदी के एक मार्क्विस की जीवनी लिखने में लगा हुआ है। उसकी आयु तीस वर्ष है, आय सामान्य है; उसका न कोई परिवार है, और न कोई धंधा, यानी इन तथाकथित 'बंधनों' से वह मुक्त है। अस्तित्ववादी शब्दावली में कहें तो वह 'स्वतंत्र' है। वह दुनिया में काफ़ी घूमा हुआ है। हम उसे 'स्वतंत्र' कहना चाह सकते हैं, लेकिन इस उपन्यास की एक स्थापना यह भी है कि रोक्वेन्तिन सचमुच स्वतन्त्र नहीं है। वह केवल Uncommitted है—यानी दायित्त्व वहन करने से अस्वीकार करता है; और सार्त्र की आधारभूत आस्थाओं में से एक यह भी है कि दायित्व स्वीकार न करना स्वतंत्रता का केवल उपहास है, दरअसल तो यह स्वतंत्रता से पलायन करने का ही एक रूप है।

स्पष्टतः रोक्वेन्तिन सुखी नहीं है। उसका कोई मित्र नहीं; उसे कोई पत्र नहीं लिखता; उसकी बातचीत भी कभी-कभी मिल जाने वाले परिचितों तक ही सीमित है। उसके दिन एक क़िस्म की उत्साह-रहित मायूसी में गुज़रते हैं जिसके बीच-बीच में उसे रह-रह कर दौरे आते रहते हैं—चिन्ता, ऊब, बेचैनी, और अन्य प्रकार के मानसिक तनावों के जो सार्त्र के संसार में मनोवैज्ञानिक अस्तव्यस्तता के उतने सूचक नहीं हैं, जितने कि आध्यात्मिक यथार्थ के।

रोक्वेन्तिन के लिए यह संसार अधिकाधिक असह्य होता जाता है, और जितना ही अधिक असह्य होता जाता है वह उसकी असली प्रकृति के उतना ही अधिक निकट पहुँचता जाता है। रोक्वेन्तिन को महसूस होता है कि वस्तुएँ उसे छू रही हैं "मानो वे जीवित हैं", "मानो वे जीवित प्राणी हैं"। भौतिक वस्तुएँ उसे चिपचिपी, अनावश्यक और व्यर्थ प्रतीत होती हैं; इसी तरह मानव प्राणी भी उसे अनावश्यक और व्यर्थ प्रतीत होते हैं; अपने बारे में भी उसे यही बात सच लगती है: "और मैं—कोमल, कमज़ोर, अश्लील, खाने और हजम करने की मशीन, निराश विचारों की ऊहापोह में डूबता-उतराता —मैं भी तो व्यर्थ ही था।"

प्रश्न उठता है कि रोक्वेन्तिन की यह बेचैनी किस अर्थ में आध्यात्मिक है? बात यह है कि वह इस सृष्टि को अनेक अवयवों से बनी हुई एक ऐसी पूर्ण मशीन के रूप में देखना चाहता है जैसी कि यह न्यूटन या लीबनिज़ के ज़माने में समझी जाती थी; जहाँ सब-कुछ सुव्यस्थित, तर्कयुक्त, विवेकपूर्ण था, ऐसा कि जिसके बारे में पहले से ही भविष्यवाणी की जा सकती थी; जहाँ हर चीज़ अपनी जगह पर आवश्यक थी, उसका एक उद्देश्य था; जहाँ सब चीज़ों पर शासन करने वाला एक ईश्वर था और एक ऐसा नैतिक विधान था जो सब लोगों के सामने प्रदर्शित किया जा सकता था; जहाँ विज्ञान के विधि-विधान अकाट्य थे—वहाँ और केवल वहाँ ही रोक्वेन्तिन स्वयं को सहज महसूस कर सकता है। यह आध्यात्मिक क्लेश जितना रोक्वेन्तिन का है उतना ही उसके लेखक सार्त्र का भी है।

रोक्वेन्तिन यह मान कर चलता है कि जैसा वह चाहता है सृष्टि को वैसी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिए: एक ऐसी विवेकपूर्ण इकाई जिसमें किसी-न-किसी रूप में हर वस्तु का अस्तित्व आवश्यक हो। लेकिन अपने 'नौसिया' की तीव्र अनुभूति के क्षणों में उसे महसूस होता है कि ऐसा है नहीं ; दरअसल यह जगत तो विचित्र , बेढंगा, आधे ठोस और आधे तरल पदार्थ का मिला-जुला एक ऐसा 'पेस्ट' है जिसे कि वह अपनी आँखों से देखता है, मात्र यह 'पेस्ट' ही यथार्थ है; इससे उच्चतर किसी व्यवस्था का कोई अस्तित्व नहीं है। एक दिन पार्क में बैठा हुआ वह एक अखरोट के पेड़ की जड़ की ओर गौर से देख रहा था कि अचानक उसे बोध होता है कि उसके 'नौसिया' का क्या अर्थ है, और तदनुरूप अस्तित्व क्या है। उसे महसूस होता है कि मुख्य बात 'अनिश्चितता' है। मतलब यह कि कोई भी व्यक्ति अस्तित्व को आवश्यक सिद्ध नहीं कर सकता। अस्तित्व का सीधा-सादा अर्थ है 'मात्र वहाँ होना'।"

यहाँ कुछ लोग पूछ सकते हैं कि, आखिर इस सब तूमार का मतलब क्या ? बात यह है कि रोक्वेन्तिन एक ऐसा आदमी है जिसके लिए आध्यात्मिक प्रश्न ही जीवन और मृत्यु के प्रश्न हैं। एक ऐसे जगत में जिसके विधि-विधान अनिश्चित हों, उसके लिए कोई सुरक्षा नहीं। वह स्वयं से कहता है "अगर ऐसा है, तो मेरी जीभ एक कन-खजूरे में भी बदल सकती है।" इस तरह की शंका उठाना फैंटेस्टिक ही कहा जायेगा।

दरअसल, अस्तित्ववाद का मानसिक बवाल इससे अधिक भावुक, रोमानी, और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो धर्म से सम्बन्ध रखता है। पहला अस्तित्ववादी किर्के-गार्द अपनी आस्थाओं में दृढ़ ईसाई था, और उसके अस्तित्ववाद का उद्देश्य ही यह बताना था कि ईसाई विश्वासों का प्रमाण बौद्धिक तर्कों में नहीं पाया जा सकता बल्कि केवल उस पापी की एकाकी पीड़ा में ही पाया जा सकता है जो ईश्वर से बिछुड़ चुका है। बहुत-से ईसाई हैं, जिनके लिए एक ऐसे जगत में रहना ही कल्पनातीत और भयावह है जहाँ ईश्वरीय पिता का अस्तित्व नहीं हो। रोक्वेन्तिन की दशा भी ठीक उन्हीं जैसी है। सार्त्र एक ऐसा नास्तिक है, जो ईश्वर के प्रति इन्सान की प्यास को समझता है, लेकिन साथ ही यह भी कहता है कि मानवात्माओं की यह प्यास कभी मिटेगी नहीं, सन्तुष्ट नहीं होगी, और उन्हें चाहिए कि इस तथ्य को समझ कर ही वे जीवित रहना सीखें। 'एल एक्ज़िस्टेंशियलिज्म एस्ट अन ह्यूमैनिज्म' (१९४५) शीर्षक अपने एक व्याख्यान में सार्त्र ने कहा था :

"अस्तित्ववादी उस क़िस्म की धर्म-निरपेक्ष नैतिकता का दृढ़ विरोधी है जो बिना कोई मूल्य दिये ईश्वर को मिटा देना चाहती है। सन् १८८० के आसपास जब फ्रांसीसी प्राध्यापकगण एक धर्म-निरपेक्ष नैतिकता के निर्माण का प्रयत्न कर रहे थे तो उनका कथन कुछ इस प्रकार था—'ईश्वर एक निरर्थक और खर्चीला आविष्कार है, इसलिए हम उसके बिना ही काम चला लेंगे। अगर ईश्वर का अस्तित्व नहीं भी रहे, तो उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा; हम ईमानदारी, प्रगति और मानवता आदि के वैसे ही मानदण्डों का पुनः आविष्कार कर लेंगे, और इस पुराने पड़े आविष्कार ईश्वर से छुटकारा पा लेंगे जो शान्ति से स्वयं अपनी ही मौत मर जायेगा'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

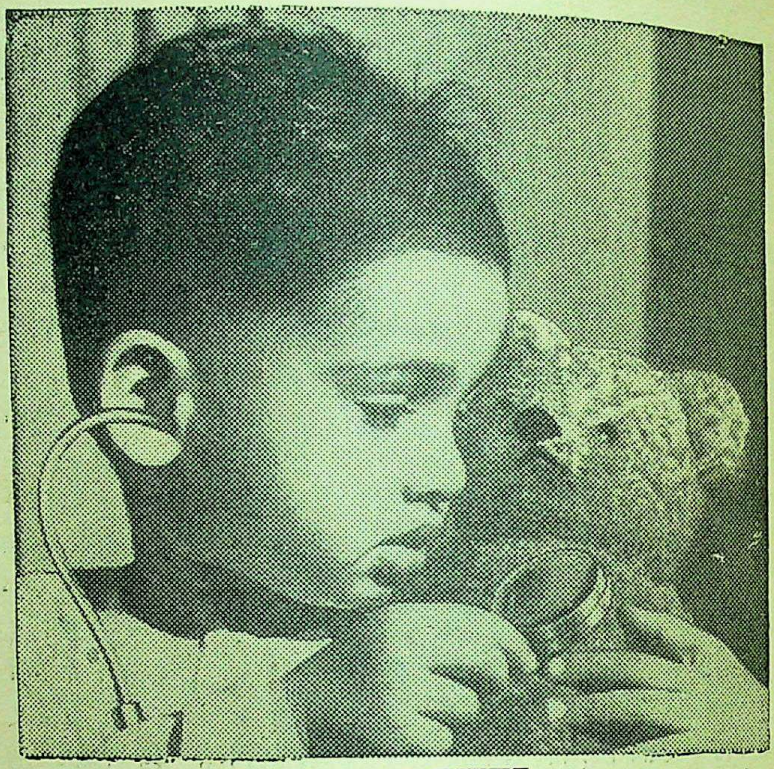

आपका मुन्ना भी एक दिन डाक्टर बन जाएगा।

यहाँ, उसकी शिक्षा के लिए एक सरलतम सर्वांगपरिपूर्ण योजना है।

आपका प्यारा मुन्ना, गुड़िया के सीने की धड़कन सुनने में व्यस्त है। वह कल डाक्टर भी बन सकता है। किन्तु इस मेडिकल कोर्स के लिए (होस्टल की फीस को छोड़कर) कम से कम ७,००० रुपयों की जरूरत होगी। जब वह कालेज में जाने लगेगा तब इस खर्च का निभाना, शायद, आपके लिए मुश्किल होगा। तो आज ही शिक्षावृत्ति बीमा पालिसी लेकर उन पैसों का प्रबंध आप क्यों नहीं कर लेते? इसके लिए प्रीमियम भी बहुत कम देने पड़ते हैं। मान लीजिए, आपकी उम्र २५ साल और बच्चे की २ साल की है; तो आपको प्रतिमास केवल ३० रुपये और ७१ नये पैसे देने पड़ेंगे। और जब आपका बच्चा १९ सालका होगा और कालेज जाने लगेगा तब हर छः महिने पर ७०० रुपये, पाँच सालों तक, उसे बराबर मिलते रहेंगे। (अलग अलग उम्र के लिये अलग अलग प्रीमियम लिये जाते हैं।) पालिसी की अवधि में यदि आपके प्यार का छत्र बच्चे के सिर पर से उठ जाय तोभी, हर छः महीने पर पाँच सालों तक उसे यह रकम मिलती रहेगी। बचत का कोई और तरीका आपको ऐसा लाभ नहीं दिला सकता।

आज ही अपने बच्चे के लिए शिक्षावृत्ति पालिसी लीजिए और अपने इस निर्णय को कल पर न छोड़िए। आपकी आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती रहे जायेगी त्यों-त्यों प्रीमियम की रकम में भी वृद्धि होती रहेगी। अपने बच्चे के भविष्य को भाग्य पर न छोड़िए बल्कि जीवन बीमे द्वारा उसको शानदार बनाइए!

जीवन-बीमा
सुरक्षा का बेजोड़ साधन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर अस्तित्ववादी को इस बात से बहुत परेशानी महसूस होती है कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है; क्योंकि उसके न होने की स्थिति में साथ-साथ अदृश्य स्वर्ग में मूल्यों को प्राप्त करने की समस्त संभावनाएँ भी अदृश्य हो जाती हैं।"

ईश्वर के अभाव का यह गहरा भाव सार्त्र के दर्शन का केन्द्र है। रोक्वेन्तिन के 'एकाकीपन', उसके 'भय' और उसकी असहाय स्थिति' का कारण भी यही भाव है। फिर भी, जहाँ एक बार रोक्वेन्तिन इस पीड़ा को झेलना सीख लेता है, इस सत्य का सामना कर लेता है कि वह एक ईश्वर-रहित जगत में रहता है तो वह एक महान् और लाभदायक सत्य की प्राप्ति कर लेता है। अगर सृष्टि अनिश्चित और अनियमित है, तो साथ ही स्वतंत्र भी है। भविष्य सामने खुला पड़ा है। बीते हुए कल का कोई दास नहीं है। "सब स्वतन्त्र हैं," वह स्वयं से कहता है, "यह पार्क, यह नगर, और स्वयं में भी।"

यही सार्त्र की दूसरी महत्वपूर्ण स्थापना है कि मनुष्य स्वतन्त्र है, और चूंकि मनुष्य स्वतंत्र है, इसलिए जो कुछ वह है, और जो कुछ वह करता है, उस सब के लिए स्वयं वही जवाबदेह है। वह मशीन का महज़ एक पुर्जा नहीं है, भाग्य या परिस्थिति का खिलौना मात्र नहीं है, कठपुतली या रोबोट नहीं है: वह वही है जो स्वयं को बनाता है; और स्वयं को वह जैसा बनाता है, उसके लिए ज़िम्मेदार भी वही है। यही कारण है कि सार्त्र के मतानुसार 'कमिट' नहीं करना—अपनी दायित्व वहन करने से अस्वीकार करना—स्वतन्त्रता को भी अस्वीकारना है। दायित्व किसी भी रूप में टाला नहीं जा सकता। जो इससे बचना चाहते हैं वे स्वयं को धोखा देते हैं: सार्त्र के अनुसार ऐसे लोग बुरी आस्था के दोषी होते हैं। 'ला नौसिया' में रोक्वेन्तिन की कथा एक ऐसे व्यक्ति की कथा है, जो आत्म-प्रवंचना से आत्म-ज्ञान की ओर अग्रसर होता है।

रोक्वेन्तिन में यह परिवर्तन उस समय आता है जब वह इस बात पर गौर करता है कि वह स्वयं को अपने 'जीवित रहने का क्या कारण' दे सकता है! सार्त्र के 'सृष्टि की अनिश्चितता' के सिद्धान्तानुसार यही निष्कर्ष निकलता है कि हमें ईश्वर या प्रकृति द्वारा 'जीवित रहने का कोई कारण' नहीं बताया जाता है। हर व्यक्ति को अपने 'जीवित रहने का कारण' स्वयं ही खोजना पड़ता है रोक्वेन्तिन अपना यह कारण साहित्य में पाता है। एक दिन एक अमरीकन जॉज़ संगीत का रेकार्ड सुनते समय वह एक ऐसे यहूदी संगीतकार की कल्पना करता है जो अपने 'जीने का कारण' संगीत की इस छोटी-सी ट्यून के निर्माण में पाता है। रोक्वेन्तिन स्वयं से प्रश्न करता है, "अगर एक संगीतकार अपने जीने का कारण खोज सकता है, तो मैं क्यों नहीं ऐसा कर सकता?" उसका अपना रुझान लेखन की ओर है। लेकिन वह स्वयं से कहता है कि दूसरों की जीवनियाँ लिखे जाना व्यर्थ है, क्योंकि अपना अस्तित्व किसी दूसरे के अस्तित्व में खो देना होता है। नहीं, यह रचनात्मक साहित्य ही हो सकता है; और रोक्वेन्तिन एक उपन्यास लिखने का निश्चय करता है। यह आसान तो नहीं है, लेकिन रोक्वेन्तिन सोचता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह उपन्यास लिख लिया जायेगा, तो एक समय आयेगा जब मैं पीछे पलट कर अपने जीवन पर दृष्टि डालूंगा और केवल इसी के कारण अपने बीते हुए जीवन को बिना पश्चात्ताप के याद कर सकूंगा।"

इस तरह 'ला नौसिया' का अन्त एक स्पष्ट आशावादी स्वर में होता है; और इस आशा का स्रोत है—कला के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करने का विचार। यह आसानी से समझा जा सकता है कि सार्त्र को यह विचार क्यों इतना पसन्द है: कला में हम एक ऐसे संसार की सृष्टि करते हैं जिसमें वह सब कुछ रहता है जो कि वास्तविक जगत में नहीं रहता जैसे व्यवस्था, समन्वय, भविष्यवाणी आदि सब ऐसी विशेषताएँ हैं जिनका वास्तविक जगत में नहीं होना सार्त्र को बहुत पीड़ा देता है; ये सब एक कलाकृति में उपस्थित रहती हैं। फिर भी, कला के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करने वाले इस विचार से भी सार्त्र अधिक समय तक सन्तुष्ट नहीं रहा।

●

'ला नौसिया' का प्रकाशन सन् १९३८ में हुआ था, और यह सार्त्र के उपन्यासों में सर्वाधिक सफल माना जाता है। इसके अतिरिक्त इस समय तक सार्त्र ने कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं जिन्होंने भी लोगों का ध्यान कम आकर्षित नहीं किया था। १९४० के नाज़ी आक्रमण के दिनों में सार्त्र को क़ैद कर लिया गया था, लेकिन अपने कमज़ोर स्वास्थ्य का हवाला देकर उसने एक ही वर्ष के भीतर जर्मनों से छुटकारा पा लिया था। पेरिस लौटकर उसने अपना पहला नाटक 'ला मोचे' लिखा। इस नाटक का उद्देश्य और अर्थ बहुत साफ़ नहीं, लेकिन कम से कम एक बात बहुत स्पष्ट है कि इसमें सार्त्र 'कला के द्वारा मुक्ति' वाला विचार छोड़ देता है, ; और उसकी जगह बहुत-कुछ 'क्रिया द्वारा मुक्ति' वाले साम्यवादी सिद्धान्त के निकट आ जाता है। 'ला मोचे' एक दुःखान्त नाटक है; उसका नायक ओरेस्टस छद्मवेश में अपने जन्मस्थान वाले नगर आरगोस लौटता है, तो पाता है कि नगर महामारी और धार्मिक भय से आक्रान्त है। वह नगर छोड़ देने के देवताओं के आदेश की अवहेलना करता है और धोखे से गद्दी पर कब्ज़ा करने वाले राजा (सौतेले पिता) और धोखेबाज रानी (अपनी सगी माँ) की हत्या करने के लिए वहीं रुक जाता है; और अपना यह कार्य पूरा करने के बाद गर्व से अकड़ता हुआ चला जाता है। नाटक का केन्द्रीय तर्क यह है कि ओरेस्टस देवताओं के सर्वशक्तिमान होने की बात स्वीकार नहीं करता। वह जुपिटर से कहता है कि मनुष्य स्वतंत्र है; इसलिए अपने मूल्यों का निर्माण उसे स्वयं ही करना होगा। राजा और रानी की हत्या करके उसने कोई अपराध किया है—इसे भी ओरेस्टस स्वीकार नहीं करता। ऐसा करने में उसने अपने नैतिक विधान का पालन किया है: और सृष्टि में इसी एकमात्र नैतिक विधान का अस्तित्व है। वह तो यहाँ तक कहता है कि इन्सान भी देवताओं के समान ही हैं। दोनों ही स्वतन्त्र हैं। "हम दोनों एकाकी हैं, और हमारी पीड़ा समान है।"

इस नाटक में एक छिपा हुआ प्रतीकार्थ भी था। वे जर्मनों के विरुद्ध प्रतिरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्दोलन के दिन थे; सौतेला पिता विजयी नाजियों के लिए और धोखेबाज माँ उनके दुश्मनों के लिए और साथ सहयोग करने वाले देशद्रोही फ्रांसीसियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसीलिए कुछ समय चलने के बाद इस नाटक पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। यों इस प्रतीकार्थ पर एक आपत्ति यह उठाई जा सकती है कि ओरेस्टस अपने नगर के लिए कुछ करता नहीं, सिर्फ यह खूनी कृत्य करके चला जाता है। सार्त्र मानता है, इस नाटक के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य इस परम्परावादी भावना को दूर करना था कि मार-काट और हिंसा नैतिक विधान के विरुद्ध हैं। उस समय इस अस्तित्ववादी सिद्धान्त की यही उपयोगिता थी कि नैतिक विधान जैसी कोई सामान्य चीज नहीं है, सिवाय उन मूल्यों के जिनका निर्माण मनुष्य स्वयं ही अपने लिए कर लेते हैं।

'ला मोचे' में सार्त्र का मुख्य कथन यही है कि नैतिक सिद्धान्त ईश्वर द्वारा नहीं बनाये जाते हैं, बल्कि मनुष्य अपने नैतिक मूल्यों का निर्माण स्वयं ही करते हैं। नैतिक विधि-विधान निर्णयों पर निर्भर होते हैं, आध्यात्मिक बोध पर नहीं। और चूंकि वे अपने मूल्यों के निर्माता स्वयं हैं, इसलिए उनसे इस बात की अपेक्षा तो की ही जा सकती है कि वे अपने मूल्यों के प्रति खरे रहें। क्योंकि अगर उनके कार्य उनके सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं हैं, तो फिर यह नहीं कहा जा सकता कि उनका कोई सिद्धान्त है भी। फिर तो ये सिद्धान्त मात्र खोखले शब्द भर रह जाएंगे। इसलिए खरापन सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है।

●

यहीं सार्त्र का तत्त्ववादियों से विरोध है। एक तत्त्ववादी ऐसे आदमी का भी हवाला दे सकता है जिसका स्वभाव अच्छा है लेकिन व्यवहार खराब है। अस्तित्ववादी यह नहीं मानता : एक अस्तित्ववादी की दृष्टि में व्यक्ति जो कुछ करता है, उसी का प्रतिरूप वह है। सार्त्र ने अपने दूसरे नाटक 'होई क्लोस' (१९४३) में इसी बात को जोरदार अभिव्यक्ति दी है। 'होई क्लोस' नाटक एक विचित्र क़िस्म के नरक में प्रस्तुत किया गया है। यह एक खिड़कीरहित कमरा है जिसमें फर्नीचर नाम-मात्र को ही है। एक के बाद एक करके तीन पात्र प्रस्तुत किये जाते हैं। प्रत्येक यह आशा करता है कि वह वहाँ आग और पत्थर और यातना के अन्य साधन पायेगा। वहाँ इनमें से कुछ नहीं मिलता। लेकिन जल्दी ही तीनों को पता चलता है कि वे दण्ड से बच नहीं सके हैं और उन्हें स्वयं ही अपने को यंत्रणा देनी होगी। प्रत्येक दूसरे को यातना देता है : 'दूसरे लोग ही नरक हैं' यही है सार्त्र का प्रसिद्ध कथन।

इस नाटक के तीन पात्रों में दो औरतें हैं जिनमें बड़ी का नाम इनिस और छोटी का एस्टेला है। पुरुष का नाम गारसिन है जो एक भीरु क़िस्म का इन्सान है और अपनी इस ग़लत आस्था की पुष्टि के लिए तत्त्ववाद का सहारा लेता है कि हालांकि उसने कायरों की तरह व्यवहार किया है, लेकिन दरअसल उसकी आत्मा या प्रकृति बहादुर है। इस पर इनिस उसे अस्तित्ववाद का कष्टदायक संदेश सुनाती है कि इन्सान का असली रूप वही है जो वह करता है ; इससे कम या ज्यादा कुछ नहीं। गारसिन के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार का
सर्वप्रिय

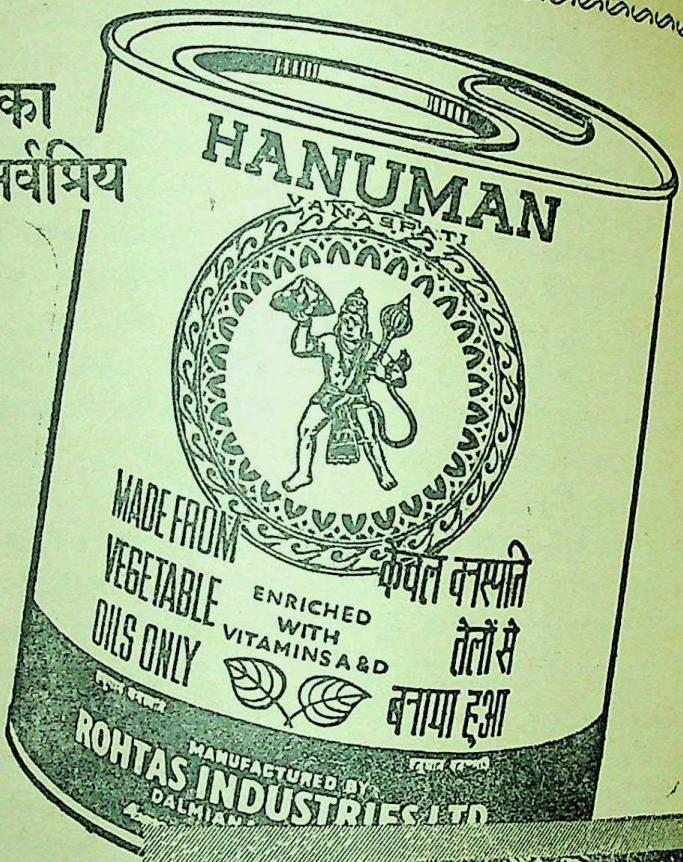

SAHU JAIN
INDUSTRIES

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

यदि आप अपने ४ किलोग्राम टिन में भाग्य से एक कूपन पा जाँय तो उसके बदले में एक अपूर्व उपहार ले लें

332

उपहार कूपन का नमूना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहादुर होने की आत्मा या तत्व है ही नहीं। वह कायर है, क्योंकि उसके कार्य कायरों जैसे हैं।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस नाटक के सभी पात्र मृत हैं। सार्त्र ने महज़ किसी नाटकीय उपलब्धि के लिए ही इसे नरक में प्रस्तुत नहीं किया है, बल्कि इसलिए कि इसका विषय ही नरक-यातना है। इस तरह इसमें 'ला नौसिया' और 'ला मोवे' में प्रस्तुत मुक्ति वाले विषय के दूसरे पहलू नरक-यातना की छानबीन की गयी है।

●

इसके बाद सार्त्र ने चार भागों में नियोजित एक उपन्यास 'ले चेमिन्स दे ला लिबर्ते' [१९४६-४९] में हाथ लगाया जिसमें पुनः सार्त्र का वही स्वतंत्रता और मुक्ति वाला पुराना विषय प्रस्तुत किया गया है। लेकिन सार्त्र ने इस उपन्यास को कभी पूर्ण नहीं किया। इस उपन्यास को अपूर्ण छोड़ने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि सार्त्र का नैतिकता सम्बन्धी सिद्धान्त ही अपूर्ण था, इसलिए यह उपन्यास आगे नहीं बढ़ सका। इस उपन्यास के अधूरा छोड़ दिये जाने का दूसरा कारण यह है कि सार्त्र को अपने मानवीय सम्बन्धों वाले सिद्धान्त में भी विरोधाभास महसूस हो रहा था। अपने नैतिकता सम्बन्धी सिद्धान्त की एकमात्र कसौटी सार्त्र खरापन मानता रहा है। एक स्थिति ऐसी आयी जब अपने इस खरेपन वाले सिद्धान्त की अपूर्णता का ज्ञान उसे स्वयं ही हो गया था। इसलिए हमें दूसरे कारण 'मानवीय सम्बन्धों वाले सिद्धान्त' पर ही विचार करना चाहिए जिसका सार्त्र ने अपनी 'एल एत्रे एत ले नीयेन्त' (१९४३) शीर्षक पुस्तक में विस्तार से विवेचन किया है। इस पुस्तक में सार्त्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि लोगों के सब तरह के पारस्परिक सम्बन्ध संघर्ष के ही रूप में होते हैं। हम हमेशा एक-दूसरे से प्रतिद्वन्द्वियों के ही रूप में मिलते हैं और जब अपनी स्वतंत्रता की स्वीकृति के साथ दूसरों की स्वतंत्रता की स्वीकृति भी जुड़ी हो तो हम स्वयं को दूसरों के साथ एक स्तर पर स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं होते। सार्त्र यहाँ तक कहता है कि दूसरों की स्वतंत्रता के प्रति सम्मान महज़ एक खोखला और अर्थहीन शब्द है। सार्त्र कहता है, "या तो हम दूसरे पर विजयी होंगे, या दूसरे के द्वारा स्वयं को पराजित हो जाने देंगे। विभिन्न चेतनाओं के बीच सम्बन्धों का प्रमुख तत्व सहयोग नहीं, संघर्ष ही होता है।"

●

ये विचार सार्त्र ने १९४३ में लिखी अपनी पुस्तक 'एल एत्रे एत ले नीयेन्त' में प्रस्तुत किये थे। इसके बाद १९४५ में दिये 'एल एक्जीस्टेंशियलिज्म एस्त अन ह्यूमेनिज्म' शीर्षक अपने व्याख्यान में सार्त्र स्वयं ही अपने इन पूर्व-विचारों का स्पष्ट विरोध करता है। अपने इस दूसरे व्याख्यान में सार्त्र कहता है कि केवल यही नहीं कि हम दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान कर सकते हैं, बल्कि हमें ऐसा करना ही चाहिये। "मैं अपनी स्वतन्त्रता को उस समय तक अपना लक्ष्य नहीं बना सकता जब तक कि मैं दूसरों की स्वतंत्रता को भी उतना ही अपना लक्ष्य नहीं बना लूं।" यही नहीं, सहकारिता की जिस धारणा को सार्त्र ने 'एल एत्रे एत ले नीयेन्त' में अस्वीकार कर दिया था वह इस भाषण में उसे भी स्वीकार कर लेता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंदा से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुँदर रंगरूप के लिए लक्स ज़रूरी है!'

चित्रतारिकाओं का
शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

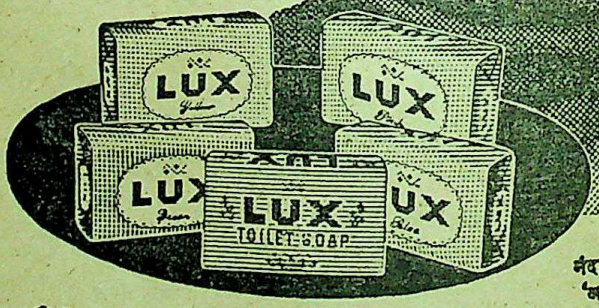

नंदा, पंचदीप चित्र की फिल्म
'लाज और लक्स' की तारिका

'जैसे सुन्दर रंग... वैसा सुन्दर साबुन!' नंदा कहती हैं

LUX LUX-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहता है कि हमारी स्वतन्त्रता एकान्त रूप से दूसरों की स्वतन्त्रता पर निर्भर होती है और दूसरों की स्वतन्त्रता हमारी अपनी स्वतन्त्रता पर।

परस्पर निर्भर रहने वाली स्वतन्त्रता की इस धारणा को सार्त्र अपने 'कमिटमेण्ट' (दायित्व स्वीकार करना) वाले सिद्धान्त से जोड़ता है और कहता है कि "जहाँ एक बार किसी ने दायित्व स्वीकार करने वाले सिद्धान्त को मान लिया, तो वह अपनी स्वतन्त्रता के साथ-साथ दूसरों की स्वतन्त्रता की कामना करने के लिये भी लाचार हो जाता है।" अपनी इस 'कमिटमेण्ट' वाली धारणा को स्पष्ट करते हुए सार्त्र कहता है कि जब कोई मनुष्य अपने लिए चुनाव करता है, तो उसी समय वह सब मनुष्यों के लिए चुनाव कर लेता है। क्योंकि चुनाव करने का तात्पर्य ही है कि वह अपनी चुनी हुई वस्तु पर मूल्य स्थापित करता है; और मूल्य स्थापित करते समय वह एक तरह से समूची मानवता के सम्मुख क्रियाशील होता है। इस प्रकार एक व्यक्ति जिसके लिए जो मूल्य निर्धारित करता है उसके लिए वह समूची मानवता के प्रति जिम्मेदार होता है। इस तरह सार्त्र इस दूसरी पुस्तक में अपने ही पूर्व विचारों का विरोध करता है।

●

'ले चेमिन्स दे ला लिबर्ते', शीर्षक अपने प्रथम उपन्यास में सार्त्र दिखलाता है कि महायुद्ध के ठीक पूर्व, और दौरान में, विभिन्न प्रकार के मनुष्य स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए किस तरह विभिन्न प्रकार के प्रयत्न करते हैं। इस तटस्थ रह कर स्वतन्त्रता की खोज करता है, दूसरा साम्यवादी दल के प्रति भक्ति में स्वतन्त्रता पाना चाहता है, तीसरा ऐन्द्रिय सुखों और संवेदनों में स्वतन्त्रता उपलब्ध करना चाहता है, और इसी तरह अन्य लोग अन्य तरह से। लेकिन सफलता किसी को भी नहीं मिलती। उनके जीवन के ये सब रास्ते बंधनों के ही विविध रूप बताये गये हैं। इनके सब सम्बन्ध वही हैं जिनका विवेचन 'एल एत्रे ले नीयेन्त' में किया गया था। लेकिन इस अपूर्ण उपन्यास के चौथे भाग के अन्तिम दो अध्यायों में ब्रनेत और विकेरियो के बीच एक विचित्र प्रकार की 'होमोसेक्सुअल' मित्रता पायी जाती है। ये दोनों पारस्परिक स्नेह-बंधन में बँध जाते हैं, और एक साथ ही क़ैदखाने से भाग निकलते हैं; लेकिन जर्मन संतरियों की गोली का शिकार होकर विकेरियो अपने मित्र की गोद में दम तोड़ देता है। जब ब्रनेत अपने मरणोन्मुख मित्र के मिट्टी से सने गंदे बालों में अंगुलियाँ फँसा कर 'नितान्त व्यथा' से चीख उठता है कि उसके मित्र—उसके एकाकी मित्र—को नहीं मरना चाहिए, तो हम वहाँ परस्पर एकता की भावना पाते हैं, जिसका सार्त्र के 'संघर्ष' वाले सिद्धान्त से सीधा विरोध है।

इस तरह हम देखते हैं कि सार्त्र के इस उपन्यास के अपूर्ण छोड़ देने के पीछे दुहरा कारण है। पहला यह कि उसने स्वतन्त्रता प्राप्ति के कई ग़लत रास्तों की छानबीन की, लेकिन जब उनमें से एक भी सही नहीं निकला तो उसने पुस्तक को वहीं छोड़ दिया। दूसरा यह कि 'एल एत्रे एत ले नीयेन्त' में प्रतिपादित मानवीय सम्बन्धों वाले अपने सिद्धान्त को जब उसने अपने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरी जरूरी

बहुत जरूरी खबर भेजनी है,

क्योंकि कोई सख्त बीमार है।

यह अग्रता तार (प्रायोरिटी टेलीग्राम) से भेजी जा सकती है।

बीमारी, दुर्घटना, या मृत्यु जैसे अवसरों पर अग्रता तार का प्रयोग कर सकते हैं।

इस तरह के तार तुरत (एक्सप्रेस) व आवश्यक (अर्जेण्ट) तारों से पहले भेजे जाते हैं, पर शुल्क केवल एक्सप्रेस तार का ही लिया जाता है।

इस तरह का तार भेजते समय फार्म पर अग्रता या प्रायोरिटी शब्द लिख दीजिए।

हमें उत्तम सेवा का अवसर दीजिए

डा क - ता र वि भा ग

डीए ६१/६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास में लागू होते नहीं पाया तो उसने उसे अधूरा छोड़ दिया। चार भागों वाले इस उपन्यास की असफलता के बाद सार्त्र ने किसी अन्य कथा-कृति में हाथ नहीं लगाया। निश्चय ही इसके बाद वह नाटक लिखता रहा है, ठीक उसी तरह जिस तरह मानवीय सम्बन्धों और व्यवहारों के सम्बन्ध में लिखना बन्द करके उसने राजनीति और समाज-शास्त्र के बारे में लिखना शुरू कर दिया था। नाटक एक सामाजिक संस्था होने के नाते राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास की अपेक्षा अधिक सशक्त माध्यम है। 'होई क्लोस' के बाद सार्त्र ने जितने भी नाटक लिखे हैं वे सब राजनीतिक ही हैं। राजनीति, या समाजवाद कहना अधिक उपयुक्त होगा, उसकी चिन्ता का प्रमुख, बल्कि एकमात्र, विषय बन गया है। 'दायित्व-स्वीकृत साहित्य' से सार्त्र का तात्पर्य प्रारंभ में उस साहित्य से था जो जीवन के प्रति एक ईमानदार नैतिक दृष्टिकोण के दायित्व-वहन को स्वीकार करता था। अस्तित्ववादी सिद्धान्त के अनुसार इसका कोई दूसरा अर्थ हो भी नहीं सकता था क्योंकि उसमें हर व्यक्ति अपने मूल्यों का निर्माता स्वयं ही होता है। लेकिन आज सार्त्र ने 'दायित्व-स्वीकृत साहित्य' वाले इस अपने ही सिद्धान्त का अर्थ बदल दिया है और इसका अर्थ उस साहित्य से लगाता है जो 'समाजवाद के प्रति अपने दायित्व' को स्वीकृत करता है, मानो और किसी प्रकार का दायित्व सच्चा हो ही नहीं सकता।

●

विचित्र बात तो यह है कि सार्त्र के इस राजनीतिक मतावह के कारण उसके द्वारा किये जाने वाले साहित्यिक कृतियों के मूल्यांकन में भी फ़र्क़ आ गया है : इसका प्रमाण सार्त्र के दो समीक्षा-ग्रन्थ 'बादलेयर' (१९४७) और 'संत जेनेत' (१९५३) हैं। चूंकि जेनेत साम्यवादी विचारों का था, महज़ इसलिए सार्त्र उसकी प्रशंसा करता है, और बादलेयर अन्त में प्रतिक्रियावादी बन गया था महज़ इसीलिए सार्त्र उसकी निन्दा करता है।

●

जो हो, सार्त्र के समाजवादी विचारों के लिए उसकी निन्दा करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है : एक प्रसिद्ध लेखक के रूप में जन-साधारण की समस्याओं में आगे बढ़ कर सहयोग देने की उसकी तत्परता, जनसामान्य के हित के लिए उसकी चिन्ता, और अपने लक्ष्य के प्रति उसकी गंभीरता आदि उसकी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके लिए वह हर व्यक्ति के सम्मान का अधिकारी है।

●

सन् १९६० में सार्त्र ने 'एल एत्रे एत ले नीयेन्त' से भी बड़ा एक दूसरा सैद्धांतिक ग्रंथ लिखा जिसका नाम 'क्रिटिक दे ला रीजन डायलेक्टिक' है। यह एक तरह से मानवता की सामूहिक 'एन्थ्रोपोलोजी' है—एक नये प्रकार की साम्यवादी विचारधारा को प्रस्तुत करने का प्रयास यानी अस्तित्ववाद से पुनरुज्जीवित किया गया साम्यवाद। इसमें कोई शक नहीं कि यहाँ सार्त्र अपने अस्तित्ववाद के ऊपर साम्यवाद को प्रधानता देता है। वह साम्यवाद की एक यथार्थ दर्शन के रूप में व्याख्या करता है—उसे एक ऐसी रचनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलो में खरीदिये

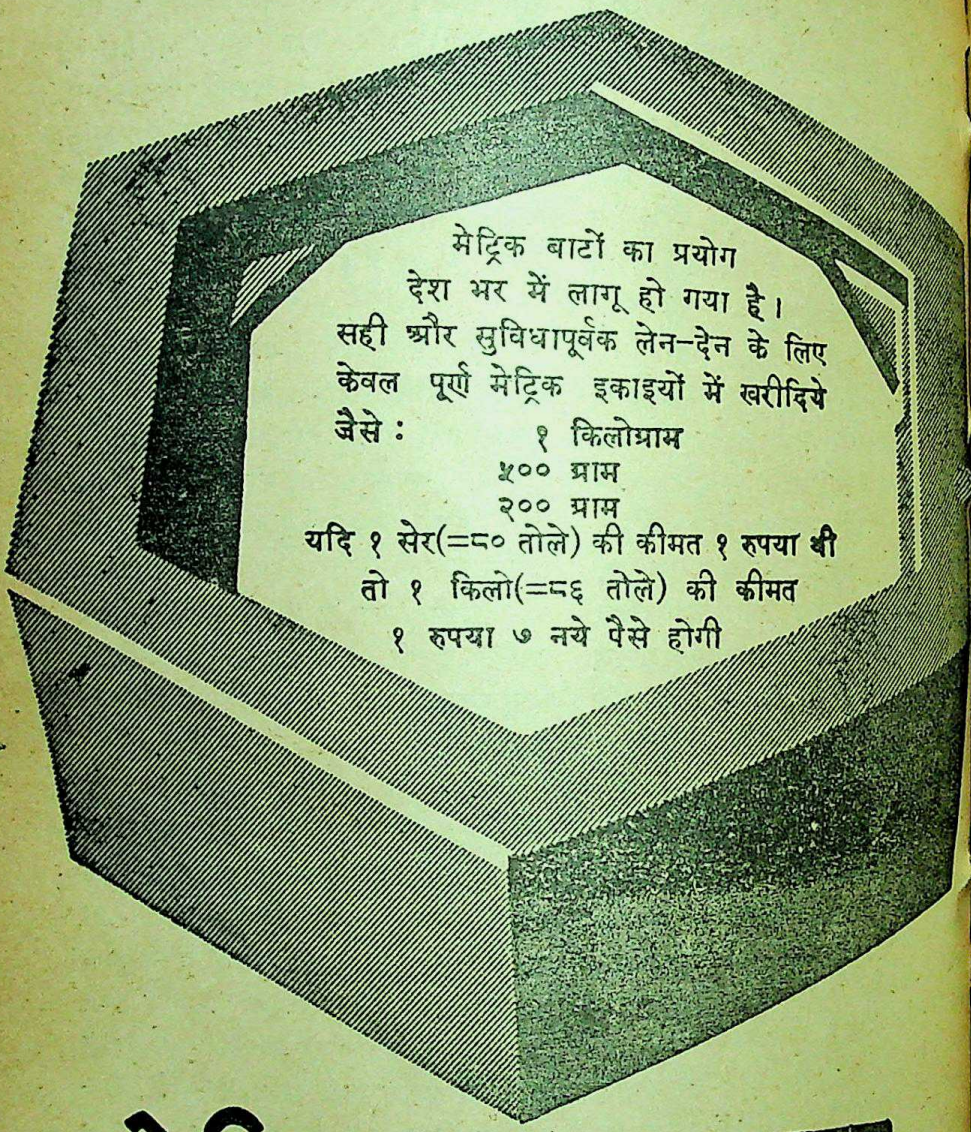

मेट्रिक बाट

सरलता व एकरूपता के लिए

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

DA 62/

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्धति मानता है जिसका वर्तमान के इतिहास पर अधिकार है। अस्तित्ववाद तो महज़ एक विचारधारा है—एक ऐसी लघु पद्धति है, जो वास्तविक दार्शनिकों द्वारा निर्मित क्षेत्र का महज़ लाभ उठाती है। सार्त्र के अस्तित्ववाद की साम्यवाद को प्रमुख देन यह है कि इसने साम्यवाद को इसकी उन्नीसवीं शताब्दी वाली कट्टरता से मुक्त कर दिया है, और हमें एक ऐसा साम्यवाद दिया है जो स्वतन्त्र चुनाव की धारणा को स्वीकार करता है।

सार्त्र की इस पुस्तक के पहले भाग का दूसरा अंश (अभी तक पहला ही भाग प्रकाशित आया है) जन-साधारण के सम्बन्धों के विवेचन से सम्बन्धित है। यहाँ हम सार्त्र को पुनः अपने सैद्धांतिक ग्रंथ 'एल एत्रे एत ले नीयेन्त' के विचारों के विरोध में जाते हुए पाते हैं। अब सार्त्र संघर्ष को मानवीय सम्बन्धों की एक मूलभूत विशेषता नहीं मानता। सार्त्र यह तो अब भी मानता है कि मनुष्य में संघर्ष का अस्तित्व है, लेकिन उसका कहना है कि इसका एकमात्र कारण अभाव है: दुनिया में रोटी और अन्य पदार्थों की कमी ही मनुष्य-मनुष्य के बीच संघर्ष का कारण है। इसी से मनुष्य की हिंसा विवेकाग्य हो जाती है, और विवेकपूर्ण भी। इसी तरह सार्त्र अब हॉब्स, फ्रायड और अपने एत्रे एत ले नीयेन्त' में प्रतिपादित अपने ही विचारों का विरोध करता है कि प्रकृति या अस्तित्व के भीतर उपस्थित आक्रमणात्मक विचारों से संघर्ष उत्पन्न होता है। यह अनिश्चित और लाइलाज़ स्थिति नहीं है। अभाव दूर कर दो तो यह संघर्ष अपने आप दूर हो जायगा। जैसा कि सार्त्र स्वयं कहता है, 'क्रिटिक' के इस पहले भाग का कार्य तो इस 'एन्थ्रोपोलोजी की इमारत के लिए महज़ नींव की व्यवस्था करना है; वह वायदा करता है कि दूसरा भाग यह सिखायेगा कि मानव इतिहास एक है और उसका एक ही बोधगम्य सत्य है।

●

एक समय था जब सार्त्र ने सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में एक स्वतन्त्र साम्यवादी बनने की चेष्टा की थी। स्वतन्त्र समाजवादी विचारों की अभिव्यक्ति के एक मंच के रूप में सार्त्र ने सन् १९४६ में 'लेटेम्स माडर्न्स' शीर्षक एक पत्रिका भी चालू की थी। यहाँ तक कि १९४८ में तो उसने 'रीअसेम्बलमेण्ट डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशनेयर' नामक एक राजनैतिक पार्टी की स्थापना भी कर दी थी। बौद्धिक वर्ग के कुछ व्यक्तियों ने इसमें सार्त्र का साथ भी दिया, लेकिन मज़दूरों ने तनिक भी साथ नही दिया; इसलिए कुछ समय बाद यह खत्म हो गयी।

इस पार्टी की मृत्यु से सार्त्र ने एक शिक्षा यह ली कि उसे अब आगे से कम्यूनिस्ट पार्टी के साथ सहयोग करना चाहिए; और तब से बिना उनकी कतार में खड़े हुए भी सार्त्र अपने इस निश्चय को निभाता आया है। परिणाम यह हुआ कि उसके जिन समाजवादी बौद्धिक मित्रों ने 'ले टेम्प्स माडर्न्स' की स्थापना में उसे सहयोग दिया था वे सब अब उससे अलग हो गये। इन्हीं में उसके दो निकटतम मित्र अलबेयर कामू और मौरिस मेरल्यू-पौन्ती भी थे।

●

सार्त्र ने युद्ध के बाद के अपने सबसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बे और सर्वश्रेष्ठ नाटक 'ले डायबेल एत ले बो ड्यू में 'मानवतावाद की राजनीति' का प्रतिपादन किया है। इसमें सार्त्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि मानवतावाद की राजनीति को अहिंसा की नैतिकता का त्याग करना होगा क्योंकि यह धर्म की और चिन्तन की राजनीति है, जब कि मानवतावाद की राजनीति इसी दुनिया की राजनीति है, और चूंकि यह दुनिया बुराई में गहरे तक डूबी हुई है (जो कि सार्त्र के मतानुसार भौतिक पदार्थों के अभाव का परिणाम है), इसे कब्ज़े में लाने के लिए, उसका विचार है कि, हमें निष्ठुर होना पड़ेगा, हमें अपने हाथों को अपराध में सानना होगा।

यही सार्त्र की प्रमुख कमज़ोरी है कि उसमें एक संतुलित दृष्टि का सदा अभाव रहा है। कुछ परिस्थितियों में अपराध में हाथ सानने वाले इस सिद्धान्त की पुष्टि करता हुआ सार्त्र अपने इस सिद्धान्त को राजनीति की दलदल में घसीट ले जाता है, और कैस्ट्रो, खुश्चेव तथा साम्राज्यवादियों के अन्य शत्रुओं द्वारा किये गये हर क़िस्म के खून-खराबे का आँख बन्द करके समर्थन करता चलता है। सार्त्र का यह मताग्रह अक्सर ही उसके उचित निर्णय पर हावी हो जाता है। इसके अतिरिक्त, कला के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करने की धारणा के प्रति उसके अत्यधिक मोह ने भी उसकी कृतियों के साहित्यिक महत्व को घटाया ही है। यही कारण है कि उसका लगभग समूचा सर्वश्रेष्ठ कृतित्व उसके जीवन के प्रारंभिक वर्षों में रचा गया था जब उसके भीतर का रचनात्मक कलाकार उसके सैद्धान्तिक और वादानुवादी व्यक्ति से अधिक सशक्त और क्रियाशील था। • • •

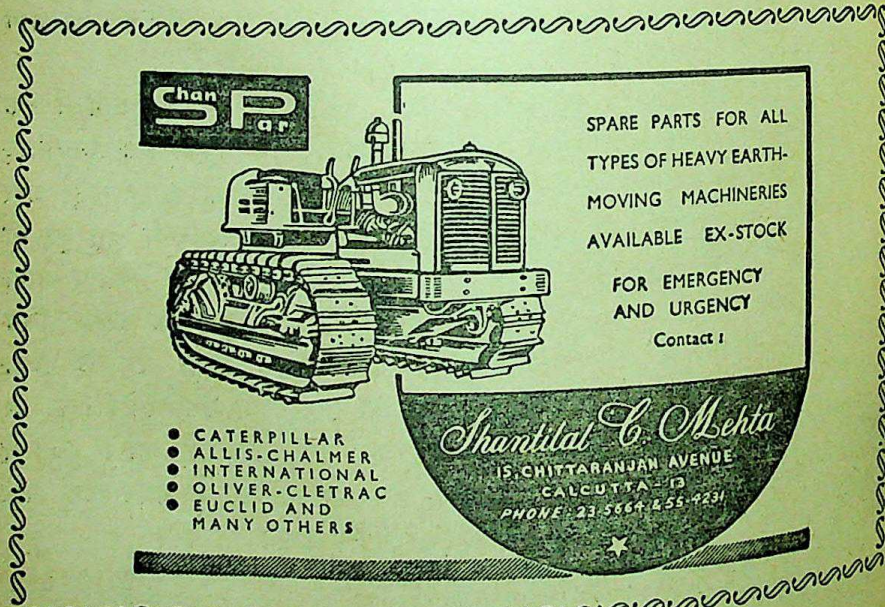

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथान्तर

(इक्कीस देशों की चुनी हुई कहानियों के हिन्दी अनुवाद)

संकलन तथा अनुवाद : शरद देवड़ा; प्रकाशक : व्यंजना प्रकाशन, ३७० अपर चितपुर रोड, कलकत्ता–६; मूल्य ६.००

'राष्ट्रभाषा हिन्दी को' समर्पित इस किताब में युरोप की सात, एशिया की सात, अमरीका की तीन, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की दो-दो कहानियाँ संकलित हैं। सब कहानी-लेखक बीसवीं सदी के हैं। सार्त्र, डी० एच० लारेंस, शोलोखोव, ज़्वाइग, काफ्का, लू-हसुन, कैथराइन मेंसफील्ड जैसे विख्यात नाम जहाँ इस संग्रह में हैं, वहाँ रूनोसुके आकुतागावा, प्रतूम्रथ जंग, अरीफ-अल-खौरी, महमूद तैमूर बे आदि अपेक्षाकृत कम परिचित भी नाम यहाँ हैं। अधिकांश कहानियाँ 'स्वतंत्र दुनिया' की हैं, साम्यवादी देशों में केवल रूस और चीन की एक-एक कहानी है। अनुवादक का 'वक्तव्य' और 'कहानी : नयी और पुरानी' नामक दो पूरणिकाएँ हैं।

सबसे पहले इस पुस्तक में आकर्षित करनेवाली चीज़ है आधुनिक रूप-सज्जा। हिन्दी पुस्तकों में इस प्रकार के अधुनातन चित्रकला और रेखांकन के नमूने देनेवाला यह संग्रह नयनाभिराम ढंग से छपा है। अरुण चोपड़ा, भाऊ समर्थ और श्री बनर्जी ने पुस्तक की अन्तःसज्जा को सँवारा है। भाई समर्थ मेरे दस साल पुराने दोस्त हैं—उनकी कला में जीवन-संघर्ष के साथ-साथ तीव्र सांकेतिकता और प्रभावपूर्णता आती जाती है, इसका यह पुस्तक (ज्ञानोदय के परिवार-विशेषांक की तरह) प्रमाण है। व्यंजना-प्रकाशन की सुरुचि को दाद देता हूँ।

दूसरी चीज़ है–कहानियों का चुनाव। इसमें हमेशा मतभेद हो सकता है। अनुवादक ने कहा है कि मुझे अपनी व्यक्तिगत रुचि का ही सहारा लेना पड़ा है। युरोप के देशों के समृद्ध साहित्यों में बीसवीं सदी में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने विविध प्रकार के और विविध शैलियों के कहानीकार हैं कि कहाँ, किसको चुना जाय ? और किसको छोड़ा जाय ? पर हिन्दी में कई विदेशी लेखकों की कृतियों के यहाँ मैं प्रथम अनुवाद देख रहा हूँ। हो सकता है मेरी जानकारी ग़लत हो, पर काफ्का की पुस्तकाकार हिन्दी में यह पहली कृति देखी। दो पृष्ठ की रचना बहुत ही सशक्त है। वैसे ही एशिया और अफ्रीका के कहानी-साहित्य से हिन्दी में पुस्तकाकार पहली बार मैंने अन्नाम या सीरिया (न्यूज़ीलैण्ड या कनाडा की ही तरह) की कहानियाँ देखीं। वस्तुतः 'अफ्रीका और एशिया' इन शब्दों का प्रयोग हम बहुत करते हैं, पर वहाँ के साहित्यों से हम बहुत अपरिचित हैं। बहुत कम लोग वहाँ की भाषाएँ भारत में जानते हैं। यदि नेपाल और श्रीलंका की भी कोई कहानी शामिल कर ली जाती तो उत्तम होता।

तीसरी चीज़ है अनुवाद की गुणवत्ता : प्रवाह और पठनीयता उसमें खूब है। कहीं भी ये अनुवाद अटपटे नहीं लगते। अब मेरे एक फ्रेंच जानकार मित्र ने कामू या सार्त्र के मूल से —अंग्रेज़ी की मारफ़त में यह अनुवाद कितने दूर पड़ जाते हैं; कहीं-कहीं अर्थच्छटाएँ बदल जाती हैं—यह बताया। सार्त्र के दो अंग्रेज़ी अनुवाद मिलाइये, उनमें फ़र्क़ है। तो अनुवाद की इस प्रक्रिया में मूल का कुछ-न-कुछ छूट जाना स्वाभाविक है। लेकिन मैं इसके लिए अनुवादक को क्षम्य नहीं मानता। आज हिन्दी में जिस धड़ल्ले से और जिस घास-कटाई वेग से अंग्रेज़ी से अनुवाद छप रहे हैं (कई बार अनुवादकों का अंग्रेज़ी-ज्ञान भी बहुत विश्वसनीय नहीं होता) उनमें ये अनुवाद निश्चित रूप से बेहतर हैं; कम-से-कम यथासंभव मूल से प्रामाणिक रहने का प्रयत्न करके किया गया जान पड़ता है। विदेश की कथावस्तु के अनुवाद में, वहाँ के रीति-रिवाज़, वहाँ के तौर-तरीक़े भारतीय जामे में लाते समय कई कठिनाइयाँ महसूस होती हैं। मसलन ओ' हेनरी की कहानी की स्टेनोग्राफर लड़की ने 'चूड़ियाँ' नहीं ही पहनी होंगी, या 'बुशिदो' को समझे बिना जापानी कहानी का मज़ा फीका है या 'कन्फ़ैशन' का इतिहास जाने बिना मोरले कलैगान की कहानी का।

इस संग्रह की खामियों के बावजूद मैं इसका स्वागत करता हूँ—चूंकि हिन्दी में नव-कथा के पाठकों की अभिरुचि संपन्न करने में यह संग्रह सहायक है।

—डा० प्रभाकर माचवे

● ●

भारतीय कला के पदचिन्ह

डा० जगदीश गुप्त; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी सड़क, दिल्ली; मूल्य ५.००

कला के क्षेत्र में हिन्दी में पुस्तकों की कितनी कमी है—इसका पहला अनुभव तब हुआ था जब मुझे विश्वविद्यालय में हिन्दी माध्यम से कला की परीक्षा देनी थी। उन दिनों यह अनुभव नितांत एक परीक्षार्थी का अनुभव था। तब से लगभग आठ साल बीत गये, मेरी कला-दृष्टि एक परीक्षार्थी की न रहकर विद्यार्थी की हो गयी किन्तु इस अनुभव में कोई परिवर्तन न हुआ कि हिन्दी में कला की पुस्तकों का नितान्त अभाव है। अगर कला के संबंध में कुछ भी जानना है तो अंग्रेज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पढ़ना पड़ता है। हिन्दी में जो दो-चार पुस्तकें डा० मोतीचन्द्र, रायकृष्ण दास, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि की हैं, वे मध्यकालीन भारतीय कला का स्वरूप तो स्पष्ट कर देती हैं किन्तु साथ ही पढ़ने वाले के मन में आधुनिक भारतीय कला के प्रति जो तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न कर जाती हैं उसे संतोष देने के लिए जिज्ञासु पाठक को कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं हो पाती।

मगर नहीं, मैं शायद गलती कर रहा हूँ। पिछले वर्ष रामचन्द्र शुक्ल की एक पुस्तक में कला के प्रति आधुनिक रूपों का विवेचन पढ़ा था और बड़े ग़ौर से पढ़ा था किन्तु उस पुस्तक के आधार पर मन में आधुनिक कला का कोई भी रूप स्पष्ट बनते न देख झक्कचरे लेखक की तरह ताव में आ गया था कि आधुनिक कला पर हिन्दी में एक किताब मैं भी लिखूंगा। ताव आखिर ताव होता है, ठंडा हो गया और मैं किताब लिखने से छुटकारा पा गया, किन्तु यह कहने का मन बना रहा कि रामचन्द्र शुक्ल जैसे कला-समीक्षक ने यदि प्रभाववाद, घनवाद, अभिव्यंजनावाद, अतियथार्थवाद के आंदोलनों और उनके सिद्धांतों और सिद्धातों के प्रतिपादकों का विवेचन किसी डिमाई आकार की पुस्तक के एक पन्ने या दो पन्नों में देकर टरका दिया तो यह हिन्दी के कला-जिज्ञासुओं के प्रति खिलवाड़ है और कुछ नहीं। आधुनिक कला के इन समीक्षान्दोलनों पर हिन्दी में जमकर लिखने की आवश्यकता है जिससे कि हमें इन आन्दोलनों को समझने के लिए किसी परायी भाषा का मुंह न ताकना पड़े।

भूमिका के रूप में ये सारे विचार मन पर चढ़े हुए थे कि कला पर डा० जगदीश गुप्त की पुस्तक प्रकाश में आ गयी जो कला के विभिन्न रूपों और विषयों पर समय-समय पर लिखे गये उनके निबंधों का संग्रह है, जिनको उन्होंने इस रूप में व्यवस्थित कर दिया है कि भारतीय कला की प्राचीनतम कड़ी आधुनिकतम भारतीय कला की कड़ी से सम्बद्ध होकर सम्पूर्ण कला का एक व्यवस्थित रूप प्रस्तुत करने में समर्थ हो जाय।

सुलझे हुए लेखक, मार्मिक कवि, सिद्धहस्त चित्रकार और गंभीर कला-प्रेमी होने के नाते जगदीश जी ने पुस्तक में जो कुछ भी कहा है उसमें वे पूर्णतया सफल हैं। कला में अभिरुचि रखने वाले किसी भी कोटि के पाठक को इस पुस्तक के पढ़ने में आनन्द का अनुभव तो होता ही है, भारत की आत्मा के दर्शन भी उसे अनायास हो जाते हैं। लेखक का प्रयास रहा है कि इन निबंधों के माध्यम से भारतीय कला के प्राचीनतम रूप से लेकर आधुनिक कला तक की यात्रा के पदचिह्न सुस्पष्ट हो जायें किन्तु यह यात्रा इतनी लम्बी है कि उभरते हुए पदचिह्न कहीं-कहीं प्रश्न-चिह्न बन जाते हैं, जिनके स्पष्टीकरण के लिए कई अतिरिक्त निबंधों की अपेक्षा का अनुभव होने लगता है। लेखक ने ऐसे प्रश्न-चिह्नों के प्रति अनभिज्ञता दिखायी या अभिज्ञता दिखाकर उपेक्षा दिखायी—ऐसा कहना सत्य को नकारना होगा। महत्व-पूर्ण प्रश्न-चिन्हों की ओर लेखक ने अपनी ओर से ही संकेत दिये हैं जिन पर अलग से विवेचन की अपेक्षा है।

अर्वाचीन और प्राचीन दोनों के प्रति ईमानदार रहकर जगदीशजी ने अपने विवेचन में जो भी मत व्यक्त किये हैं वे स्पष्ट, प्रमाण-युक्त और तर्कसंगत हैं। किसी महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत सरकार द्वारा रजिस्टर्ड

सफेद कोढ़ के दागों की

गुणकारी दवा, मूल्य सिर्फ ५ रुपये। डाक व्यय १ रु० २५ नए पैसे।
विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्रिका मुफ्त मंगावें!

एक्झमा गिला और सुका इसब और गजकरण (दाद) भी साफ हो जाता है।
मूल्य ५ रुपये, डाक व्यय १ रु० २५ न० पैसे।

वैद्य के. आर. बोरकर (D) आयुर्वेद भवन

मु. पो. मंगरूलपीर, जि. अकोला (महाराष्ट्र)

With best compliments from :

PARRY & CO., LTD.

Manufacturers of

Tipping Wagons, Coal Tubs and Light Railway Track materials.

32, CHOWRINGHEE
CALCUTTA-16

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला-समीक्षक की बात का खंडन करते हुए भी उनका स्वर दबकर नहीं आया। विषय के विवेचन में नवीनतम उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया गया है और उसी आधार पर अनेक निष्कर्षों का खण्डन-समर्थन हुआ है। पुस्तक के रेखा-चित्र (जो संभवतः जगदीश जी द्वारा ही बनाये हुए होंगे) लेखक के चित्रकार और समीक्षक रूप का उपयुक्त समन्वय प्रस्तुत करते हैं।

पुस्तक के अनेक महत्वपूर्ण निबंधों ने पहले भी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित और रेडियो द्वारा प्रसारित होकर भारतीय कला-जगत में जागरूकता की हलचल पैदा की थी, अब पुस्तकाकार रूप में आ जाने पर उन निबंधों का स्थायी महत्व स्थापित होगा। मुझे याद है 'मंदिरों में प्रणयलीन मिथुन मूर्त्तियाँ' निबंध जब 'ज्ञानोदय' के 'प्रणय अंक' में प्रकाशित हुआ था तो उस निबंध में उठाये गये अनेक प्रश्न शोध के विद्यार्थियों के मन झकझोर गये थे। किन्तु ऐसे महत्वपूर्ण निबंधों के बीच 'महादेवी की प्रतिभा में कविता और चित्रकला का समन्वय' या 'मध्यदेश का एक अज्ञात सांस्कृतिक केन्द्र : अंगईखेड़ा' जैसे निबंध कोई विशेष प्रभाव नहीं डालते, (अच्छा होता कि इन्हें संग्रह में न रखा जाता—भले ही इससे लेखक के मन की रागात्मक भावना को थोड़ा दबना पड़ता), भारतीय कला के पद-चिन्ह अवश्य उभारते हैं।

इस पुस्तक के स्वागत के साथ हिन्दी का पाठक जगदीश जी से यह आशा अवश्य करेगा कि भारतीय कला के पद-चिह्नों को उभारने में कतिपय स्थलों पर लेखक और पाठक दोनों के मन में जो प्रश्न-चिह्न उभर आये हैं उनके समाधान के लिए कुछ और कला-विवेचन प्रकाश में लायेंगे।

—कन्हैयालाल नन्दन

• • •

एक और ज़िन्दगी

मोहन राकेश; राजपाल एण्ड संस, दिल्ली;
मूल्य ३.००

हिन्दी के नये कहानीकारों में मोहन राकेश शायद सबसे अधिक लोक-प्रिय कहानीकार हैं। यह बात मैं आलोचकों और पाठकों, दोनों को ध्यान में रखकर कह रहा हूँ। प्रमुख कारण, इसका यह है कि कहानी का सशक्त व्यक्तित्व आलोचक को भी अन्ततः एक साधारण पाठक की तरह अपने में इतना घुला लेता है कि उसकी सारी प्रतिक्रियाएँ कहानीकार के आग्रह और संकेतों के अनुसार ही प्रतिफलित होती हैं। राकेश की लोकप्रियता की यह वजह उनके एक सक्षम और सफल कहानीकार होने का प्रमाण है।

आलोचकों ने 'नयी', 'आधुनिक' और 'अच्छी' कहानियों के जितने भी गुण बताये हैं, वे सभी राकेश की कहानियों में मिल जायेंगे। नवीनता के ऊपर स्वयं राकेश के भी अपने विचार हैं जो बड़े ही सीधे-सादे ढंग से प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका के रूप में संकलित हैं। राकेश के किसी भी पाठक के लिए यह भूमिका एक निष्पक्ष 'गाइड' का काम कर सकती है।

लेकिन ऐसा क्या है जो राकेश को हिन्दी कहानी की परम्परा में इतना लोकप्रिय साबित करता है। मैं कहूँगा 'अनुभव का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालटेक्स के "हानि-निरोधक" कार्यक्रम द्वारा ४% तक लाभ अर्जित कीजिये।

यह नया साधन आपको लाभ-निष्कर्षण से बचाने में सहायक सिद्ध होगा। संगठित लुब्रिकेशन चालू मूल्यों को काट कर, बचत को आपके लाभ में मिला देगा— इस प्रकार आप "हानि-निरोधक" कार्यक्रम द्वारा लाभान्वित होंगे।

कम्पनियों के पदाधिकारी कालटेक्स दफ्तर से इस बुकलेट को निशुल्क प्रति तथा अन्य सूचनायें प्राप्त कर सकते हैं! कालटेक्स के संगठित लब्रिकेशन द्वारा अपने लाभ में वृद्धि करें।

CALTEX

CAL II 62 SL

कालटेक्स (इण्डिया) लिमिटेड,
कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, मद्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनापन'। यही वह विशिष्ट कोण है, जो राकेश की कहानियों से उभरता है। कहानी की सारी बुनावट में इतनी निकटता, इतने तादात्म्य की अनुभूति पाठक को होती है कि वह तटस्थ रहकर किसी पात्र-विशेष की विशेषताओं को लक्ष्य नहीं करता है। वह यह नहीं सोचता कि जिस पात्र की कहानी वह पढ़ रहा है, वह उसमें किसी अंशभूत रूप में निहित नहीं है—वह उपहास, या दम्भ, या गलत निर्णय या भटकाव या ललक जो उनकी कहानियों में व्यक्त है—उसका साक्षी प्रत्येक पाठक है। सैद्धान्तिक आग्रह से परे अनुभव की यह सच्चाई (निजी अनुभव नहीं) ही राकेश को एक श्रेष्ठ कलाकार के रूप में सामने ला खड़ा करती है। उदाहरण के लिए इस संग्रह की अन्तिम कहानी को लिया जा सकता है। जिस अन्तहीन यातना का साक्षी 'प्रकाश' है, जिस अस्त-व्यस्तता का, किंकर्तव्यविमूढ़ता और नियतिबद्धता का, उसी 'सच' का प्रतिपादन 'मिस पाल' भी एक दूसरे माध्यम से करती है।

आधुनिक भारतीय जीवन के सारे संघर्षों का सटीक और सच्चा और सहानुभूतिपूर्ण वर्णन राकेश की इन कहानियों में व्यक्त है। लेकिन जहाँ पर यथार्थ की बात उठाई जाती है वहाँ पर राकेश झँझोड़ देने वाले, तिलमिला देने वाले व्यंग्य से काम लेते हैं। व्यक्ति की सारी कुंठाओं, गलत निर्णयों या उसकी सहज स्वाभाविक आन्तरिक ललक (मिस पाल, प्रकाश, मनोरमा) के प्रति वे भावुक बनकर कोई सहानुभूति प्रदर्शित न करके सक्षम भाषा के माध्यम से अत्यन्त कठोर व्यंग्य करके स्थिति का संकेत और भी गहरा कर देते हैं। कहा जाय तो कह सकते हैं कि राकेश की चरम सफलता, पात्रों, स्थितियों और समस्याओं के प्रति उनकी तीव्र अनुवीक्षण-शक्ति और सच्ची सहानुभूति इसी स्तर पर जाकर सफल रूप में संकेतित होती है। 'मिस पाल' बच्चों को देखकर कहती है "कितने खूबसूरत हैं ! हैं न ?" बच्चे उस पर हँस रहे हैं, चिढ़ा रहे हैं "यह औरत नहीं, मर्द है"। मिस पाल को इस बात से तनिक भी दुःख नहीं होता। वह आफ़िस छोड़कर चली जाती है क्योंकि लोग सभ्य नहीं हैं। वह चित्रकारी करती है। तीन दिनों की वासी सब्ज़ी और रोटियाँ खाती है। फिर भी वह समझती है कि वह कुछ है—जब कि वह एक नियति की विडम्बना भर है। एक ओर 'प्रकाश' है—ग़लत निर्णय का फल भोगता, अन्तहीन, समाधान-हीन जीवन ढोता—एक क्षण के सुख में आहत और बेहोश। एक ओर 'मनोरमा' है। इस तरह की अन्तहीन यातना के नियतिबद्ध संकेत राकेश की अन्य कहानियों में (आर्द्रा, जानवर और जानवर, अपरिचित) भी मिलते हैं। कभी-कभी लगता है कि कहीं लेखक इस अनुभव से ग्रस्त तो नहीं है। क्योंकि उसके चरित्रों में एक आन्तरिक व्यक्तित्व-साम्य भी खोजने पर मिल जाता है। जीने का, भोगने का, और सहने का एक-सा ढंग, एक-सी मान्यता। इसके अतिरिक्त भी राकेश की कहानियों के स्तर हैं—जैसे 'गुनाहे बेलज़्ज़त' का, 'जीनियस' का या 'वारिस' का, जिनमें मात्र चरित्रांकन की ख़ूबियों को उभारने के लिए कहानी कही जाती है। एक दूसरा स्तर भी है जिसे राकेश कभी-कभी छू जाते हैं—हास्य

[शेषांश पृष्ठ १२२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYCEE SO
FTLITE LAMP KAYCEE SOFTLITE LAM
P KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYCEE S
OFTLITE LAMP KAYCEE SOFTLITE LA
MP KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYCEE
SOFTLITE LAMP KAYCEE SOFTLITE L
AMP KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYCE
E SOFTLITE LAMP KAYCEE SOFTLITE
LAMP KAYCEE SOFTLITE LAMP KAYC
EE SOFTLITE LAMP KAYCEE SOFTLIT
E LAMP KAYCEE SOFTLITE LAMP KA

Bajaj Electricals Limited

BOMBAY · CALCUTTA · NEW DELHI · MADRAS · KANPUR · INDORE · WARDHA · GAUHATI

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि और दृष्टि

'ज्ञानोदय' के जुलाई अंक में श्री प्रह्लाद नारायण मित्तल का 'बापू का खत : जवाहरलाल के नाम' लेख पढ़ा। लेखक ने पत्रात्मक आलोचना-शैली में, देश की आज़ादी के बाद भी क़ायम रहने वाली विषमता पर बापू द्वारा प्रधान मंत्री जवाहरलाल को लिखे पत्र की कल्पना में एक तीखा व्यंग किया है। व्यंग, कटु सत्यता की दूसरी संज्ञा है। सम्पूर्ण लेख पढ़ने से ऐसा आभास मिलता है कि लेखक ने पण्डित जवाहरलाल की आत्मकथा का गहन अध्ययन किया है। लोक-तन्त्र की आड़ में देश के भ्रष्टाचार, मंत्रियों के बढ़े हुए वेतन-भत्ते, देश की ग़रीबी, कृत्रिमता और अपव्ययता, देश का वर्णसंकर हो जाना, राष्ट्रभाषा के प्रति अन्याय और अंग्रेज़ी के प्रति ममता आदि विषयों को लेकर जवाहरलाल को—केवल जवाहरलाल को उन्हीं के द्वारा कहे गये और लिखे गये आलेखन के अकाट्य तर्कों से लिखी गयी भावमयी व्यंजना आज के युग की पुकार है। निश्चय ही महारानी एलिजाबेथ को अपने स्वागत में सरकिट-हाउस के उस बूढ़े नंगे चरवाहे के आयल-पेन्ट से भारत के किसानों की कारुणिक दशा का अपूर्व दर्शन मिला होगा।

सचमुच ही यदि आज बापू 'गोडसे के काम से' न गये होते, तो राष्ट्र के प्रति इन आघात-प्रतिघातों को वे कदापि न सहन कर पाते। वे देश की आत्मा का हनन कदापि न होने देते। वे कहते, बताते और यदि उस पर भी विचार नहीं होता और देश के इन्हीं मंत्रियों और राष्ट्र के स्तम्भों को उनकी बातें बुरी लगी होतीं, तो या तो वह 'बापू' स्वयं को अनावश्यक समझ पंचभूत में मिला लेता या तो ये अपने को राष्ट्र-उन्नायक कहलाने का दावा करने वाले ही उन्हें न रहने देते।

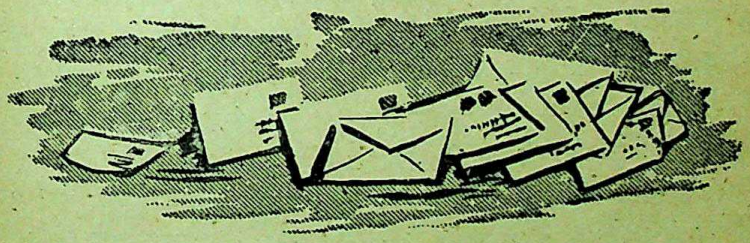

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में मित्तल जी ने अपनी प्रौढ़ और प्रेरणाप्रद लेखनी से जो चित्र, थियरी और प्रैक्टिकल का, बात और व्यवहार का अपनी मनोवैज्ञानिक शैली में प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है।

—शेषमणि पाण्डेय 'शेष'

श्री गांधी आश्रम—अकबरपुर, फैजाबाद

'ज्ञानोदय' का प्रत्येक अंक विशेषांक की तरह स्थायी महत्त्व की सामग्री लिये होता है। शुभागता की आत्मकथा पढ़कर आँखें भर आईं। इतनी मार्मिक, स्नेहिल और दर्दीली रचना को 'ज्ञानोदय' के माध्यम से प्रस्तुत करने के लिए हार्दिक बधाई।

—रामनारायण उपाध्याय

साहित्य-कुटीर, कालमुखी (खँडवा)

अभी-अभी 'ज्ञानोदय' का जुलाई अंक पढ़कर समाप्त किया है। अपने दृष्टिकोण के आधार पर मैंने इस अंक को सूक्ष्मता से परखा है, निरीक्षण किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह अंक भी अपने-आपमें एक विशेषांक है।

'एक नयी गाली' (कहानी : रमेश बक्षी) इस अंक की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इस कहानी को पढ़कर पाठकों के हृदयों में इस अन्य-विश्वास की जड़ें कट जायेंगी कि साहित्यकारों में राष्ट्रीय भावनाओं का अभाव है। कहानी-कार ने आधुनिक समाज की गति-विधियों का वास्तविक रूप अत्यन्त मार्मिक और सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। 'आँगन की तुलसी' (एकांकी : कृष्ण किशोर श्रीवास्तव) भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। परन्तु एकांकी के कथानक के आधार पर शीर्षक बड़ा अटपटा प्रतीत होता है। संवाद सरल और पाठक के हृदय की गह-राइयों को छू लेते हैं। अंजना की माँ के संवादों को सुनकर मन में एक टीस उठती है और एक प्रश्न उपस्थित होता है—क्या हमारे समाज का ढाँचा परिवर्तित नहीं होगा? खैर, इस प्रश्न का उत्तर तो भविष्य ही देगा। इस अंक की इन अनेकों विशेषताओं के लिए धन्यवाद।

—देवेन्द्रराज 'अंकुर'

कैराना, जिला मु०नगर

●

[पृष्ठ ११९ का शेषांश : साहित्यार्चन]

का। जिसका हल्का-सा पुट 'बस स्टैण्ड की एक रात' में मिल जाता है। लेकिन पूरी कहानी का संकेत उनकी किसी भी कहानी में हल्के-फुल्के स्तर पर खत्म नहीं होता।

शिल्प और भाषा, और वातावरण-सृष्टि—अर्थात् कहानी की सारी बुनावट में राकेश सिद्धहस्त हैं। इस दृष्टि से उनकी हर कहानी अपने आप में सम्पूर्णतः तराशी हुई लगती है जैसे तेज़ चाकू से लक्स साबुन को बीच से आप काट दें। शिल्प की अनेक खूबियाँ, भाषा के अनेक सहज और विषया-नुकूल रूप उनकी कहानियों में ढूंढ़े जा सकते हैं। चूंकि इस तरह की खूबियों का दिग्दर्शन अनेक मर्तबा हो चुका है इसलिए उनकी आवृत्ति कोई महत्व नहीं रखती। बस।

—दूधनाथ सिंह • • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी १५ वर्षीय

बढ़ने वाली

सावधिक

जमा बचत योजना

१ जून, १९६२ से एक नयी १५ वर्षीय बढ़ने वाली सावधिक जमा-बचत योजना शुरू की गयी है। इसमें हर महीने अधिकतम ३०० रु० जमा करवाया जा सकता है। दस वर्षीय खाते के लिए मासिक जमा की वर्तमान सीमा को उपर्युक्त तारीख से ही २०० रु० तक बढ़ा दिया गया है।

आयकर में छूट

जिस प्रकार जीवन बीमा की प्रीमियम तथा प्राविडेण्ट फण्ड में जमा की गयी रकम पर आय-कर सम्बन्धी छूट मिलती है, उसी तरह १० वर्षीय और १५ वर्षीय खातों में जमा की गयी रकम पर भी आय-कर सम्बन्धी छूट मिल सकेगी और इसके लिए कुल सीमा १०,००० रु० या आय का एक चतुर्थ अंश जो भी कम होगा, रहेगी।

करमुक्त ब्याज

१० वर्षीय और १५ वर्षीय खातों में जमा की गयी रकम पर ३.८ प्रतिशत और ४.३ प्रतिशत चक्रवृद्धि ब्याज मिलता है और उस पर आय-कर नहीं लगता।

अधिक जानकारी के लिए पास के डाक-घर बचत बैंक से पूछ-ताछ कीजिए।

५ वर्षीय, १० वर्षीय और नये १५ वर्षीय खाते के अंतर्गत बढ़ने वाली सावधिक जमा योजना के द्वारा नियमित बचत कीजिए।

राष्ट्रीय बचत संगठन

डी. ए-६२।१६२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ीसा सिमेंट लि०

डाकघर : राजगंगपुर
जिला : सुन्दरगढ़
(उड़ीसा राज्य)

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता
डालमिया एजेंसीज़ प्रा० लि०
अब उच्चकोटि के
डालमिया ऊष्मसहों
[REFRACTORIES]
को

आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं

जो आयस (Iron), वज्रायस (Steel), और धातुकार्मिक (Metallurgical) शालाओं(Works) वज्रचूर्ण भट्ठियों(Cement Kilns), मृच्छिल्प(Ceramic) और अन्य उद्योगों के लिए अग्निमृद (Fireclay), संकजा, (Silica), भ्रज्रांगिज (Magnesite),वर्णिज(Chromite), वर्णक भ्रज्रागिज(Chrome Magnesite) और विसंवाहक (Insulating) की सभी कोटियों में

समस्त मापों (Sizes) व जटिल आकारों (Intricate Shapes) में विभिन्न प्रकारों के समृदों (Mortars) के सहित प्राप्त हो सकते हैं।

Dr. C. Otto & Comp. G. M. B. H.

Bochum—Dahlhausen (W. Germany).

के

सहयोग और मार्गदर्शन में निर्मित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त,
अनुपलब्ध और अप्रकाशित
सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

विशिष्टता

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठा
की साधिका संस्था

संस्थापक : साहू शान्ति प्रसाद जैन
अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीनतम प्रकाशन

पीले गलाब की आत्मा : विश्वम्भर 'मानव'

डायरी जैसी फ़ॉर्म में लिखा हुआ हिन्दी में अपने प्रकार का मौलिक सर्वप्रथम उपन्यास। इसमें एक बड़ी मीठी, भावनापूर्ण और पीड़ाभरी प्रेमकथा तो रूपायित हुई ही है, बड़ी विशेषता इसकी है कि कथा-नायक इस लोक का एक जाना-पहचाना व्यक्ति है और कथा-नायिका परलोक की एक आत्मा—और लेखक का दावा है कि कथा सत्य है। मूल्य ४.००

चौलुक्य कुमारपाल : लक्ष्मीशंकर व्या

इतिहास में चौलुक्य कुमारपाल का राज्य-काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत कृति में सम्बन्धित समस्त तथ्य वैज्ञानिक पद्धति से संकलित एवं विवेचित ही नहीं किये गये हैं, उन्हें उपन्यास-शैली में उपस्थित भी किया गया है। हिन्दी में अपने विषय का एकमात्र ग्रन्थ जो विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है तो सामान्य व्यक्ति के लिए रोचक और लाभदायी। प्रथम संस्करण पर मासिक 'आजकल' का अभिमत था कि "इस एक ग्रन्थ से कुमारपाल के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त की जा सकती है वह अंगरेज़ी व अन्य विदेशी भाषाओं के ग्रन्थों से भी नहीं मिल सकती।" द्वितीय-परिवर्धित संस्करण। मूल्य ४.५०

तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ : परिपूर्णानन्द वर्मा

ग़ुलाम बनाने और ग़ुलाम बनाये रखने के लिए अंगरेज़ों नें हम हमारे इतिहास से गुमराह ही नहीं किया, अजनबी तक बना दिया। अब आज़ादी के बाद यह सभी पन्ना-पन्ना खुलता चला आ रहा है जो हम जान न सके या जिसे कुछ और रूप में जानते आयें। हमारे इतिहास के ऐसे ही तीन पन्ने इस पुस्तक में देखने को मिलेंगे : शेरशाह सूरी, वाजिदअली शाह, और बहादुरशाह। तीनों पन्ने तीन नाटकों के रूप में हैं और ये असलियत और सचाई की ऐसी तसवीर हैं जो युग के इस द्वार पर खड़े होकर ही आँकी जा सकती थीं। मूल्य ४.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीनतम प्रकाशन

ध्वनि और संगीत : प्रो० ललितकिशोर सिंह

इस समूचे विषय को मात्र मान्यताओं और प्रचलित परम्पराओं के स्तर से उबारकर वैज्ञानिक आधार और वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करनेवाली हिन्दी की सर्वप्रथम प्रामाणिक कृति। आरम्भमें ध्वनि-विस्तार के तथ्यों का वर्णन और मौलिक सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया गया है, फिर नये-पुराने सभी स्वर-ग्रामों का वैज्ञानिक विश्लेषण। कृति का प्रधान विषय हिन्दुस्तानी या उत्तरीय पद्धति है, पर प्रसंगवश दाक्षिणात्य और पाश्चात्य पद्धतियों पर भी विचार किया गया है। ध्वनि-विज्ञान के विद्यार्थियों और संगीत कला-मर्म के जिज्ञासुओं के लिए समान रूप से आवश्यक। हिन्दी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी ऐसी पुस्तक दुर्लभ है। द्वितीय परिष्कृत संस्करण। मूल्य ४.००

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

लगभग ८०० पृष्ठ की इस पुस्तक में भारतीय इतिहास को क्रमबद्ध और प्रामाणिक रूप में तो प्रस्तुत किया ही गया है, विशेष बात यह है कि यहाँ भारतीय इतिहास के उन दुर्लभ संदर्भों का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है जिनका सम्बन्ध जैन धर्म, इतिहास, कला और वीर-वीरांगनाओं से है। इस सामग्री को भारत के इतिहास-लेखकों ने अभी तक सुनियोजित ढंग से देखा ही नहीं था। इतिहास के विद्वानों, शिक्षकों, विद्यार्थियों और जिज्ञासु पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी। मूल्य ८.००

हास्य मन्दाकिनी : नारायण प्रसाद जैन

शेख सादी ने कहा है कि थोड़ी देर के लिए भी किसी को हँसा सको तो समझो उसे जिन्दगी बख्शने जैसा होगा। और 'हास्य मन्दाकिनी' तो ऐसी पुस्तक है कि उसे कहीं से भी खोलकर पढ़ें, हँसी की लहरिएँ आपको गुदगुदा जायेंगी। पुस्तक उन पाठकों तथा अन्य वर्गों के लिए अत्यन्त उपयोगी है जिन्हें देश-देश और विषय-विषय के चुटकुलों की आवश्यकता रहती है। मूल्य ६.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उर्दू-शायरी

नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
शाइरी के नये दौर [भाग १–५]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१५.००
शाइरी के नये मोड़ [भाग १–२]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	६.००
मीर	रामनाथ 'सुमन'	६.००
ग़ालिब	रामनाथ 'सुमन'	८.००

कविता

आँगन के पार द्वार	अज्ञेय	३.००
रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
वेणु लो गूंजे धरा	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
कनुप्रिया	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
देशान्तर	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
सात गीत वर्ष	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
वाणी	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
तीसरा सप्तक	सं०—अज्ञेय	५.००
अनु-क्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
वीणापाणि के कम्पाउण्ड में	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
लेखनी-बेला	वीरेन्द्र मिश्र	३.००

इतिहास-राजनीति

पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
कालिदास का भारत (१–२)	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८.००
एशिया की राजनीति	परदेशी	६.००
खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्तिसागर	६.००

एकांकी-नाटक

कहानी कैसे बनी	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
चेखवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००

ज्ञानोदय

अगस्त १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३·५०
कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३·५०
सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	२·००
नाटक बहुरंगी	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	४·५०
भूमिजा	सर्वदानन्द	१·५०

ललित रचना, सांस्कृतिक निबन्धादि

आँगन का पंछी और बनजारा मन	विद्यानिवास मिश्र	३·५०
फिर बैतलवा डाल पर	विवेकी राय	३·००
नये रंग : नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२·००
अमीर इरादे : गरीब इरादे	माखनलाल चतुर्वेदी	२·००
सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भागवतशरण उपाध्याय	३·००
ठूंठा आम	डॉ० भागवतशरण उपाध्याय	२·००
काग़ज़ की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२·५०
ज़िन्दगी मुसकराई	कन्हैयालाल मिश्र' प्रभाकर'	४·००
बाजे पायलिया के घुंघरू	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४·००
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ	रावी	२·५०
गरीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१·००
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२·५०

हास्य-व्यंग्य

हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६·००
आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य	सं०—केशवचन्द्र वर्मा	४·००
अंगद का पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२·५०
मुर्गछाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२·००

कहानियाँ

जय-दोल	अज्ञेय	३·००
प्यार के बन्धन	रावी	३·२५
ज़िन्दगी और गुलाब के फूल	उषा प्रियंवदा	२·५०
मेरे कथा गुरु का कहना है [१—२]	रावी	६·००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

कर्मनाशा की हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३·००
सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	३·००
एक परछाईं दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३·००
ऑस्कर वाइल्ड की कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२·५०
लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२·००
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२·५०
आकाश के तारे : धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२·००
नये बादल	मोहन राकेश	२·५०
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३·००
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३·००
खेल खिलौने	राजेन्द्र यादव	२·००
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२·५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी आदि

आत्मनेपद	अज्ञेय	४·००
माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६·००
पराड़करजी और पत्रकारिता	लक्ष्मीशंकर व्यास	५·५०
दीप जले : शंख बजे	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३·००
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४·००

सूक्तियाँ

सन्त विनोद	नारायणप्रसाद जैन	२·००
कालिदास के सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५·००
ज्ञानगंगा (भाग १–२)	नारायणप्रसाद जैन	१२·००

उपन्यास

अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३·००
गुनाहों का देवता	डॉ० धर्मवीर भारती	५·००
शह और मात	राजेन्द्र यादव	४·००
राजसी	देवेशदास I.C.S.	२·५०
रक्त-राग	देवेशदास, I.C.S.	३·००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

मुक्तिदूत	वीरेन्द्रकुमार जैन	५·००
ग्यारह सपनों का देश	सं० लक्ष्मीचन्द्र जैन	४·००
संस्कारों की राह	राधाकृष्णप्रसाद जैन	२·५०
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६·००

विधा-विविधा

खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति, एम. ए.	४·५०
अंकित होने दो	अजितकुमार	४·००
सीढ़ियों पर धूप में	रघुवीर सहाय	४·००
काठ की घण्टियाँ	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	७·००
पत्थर का लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३ ००

यात्रा-विवरण

एक बूंद सहसा उछली	अज्ञेय	७ ००
हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४·५०
सागर की लहरों पर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४ ००
पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३ ००

दार्शनिक, आध्यात्मिक

वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६ ००
अध्यात्म पदावली	डॉ० राजकुमार जैन	४·५०
भारतीय विचारधारा	मधुकर, एम० ए०	२ ००

आलोचना, अनुसंधान, रचना शिल्प आदि

रेडियो नाट्य शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२·५०
रेडियो वार्ता शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२·००
संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५ ००
हिन्दी नवलेखन	रामस्वरूप चतुर्वेदी	४ ००
मानवमूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२·५०
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३·५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत श्रेष्ठ प्रकाशन

उर्दू शायरी

शेरो शाइरी	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
शेरो सुख़न (भाग १–५)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०.००

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	६.००
मिलन-यामिनी	डॉ० बच्चन	४.००
धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर	३.००

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३.००
पहला कहानीकार	रावी	२.५०
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६.००

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्तिसागर	६.००
खोज की पगडण्डियाँ	मुनि कान्तिसागर	४.००
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.००
कालिदास का भारत (भाग १–२)	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८.००

एकांकी - नाटक

जनम क़ैद	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३.००
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
और खाई बढ़ती गई	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०

संस्मरण - रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक प्रकाशन

१ जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक)	३.००
२ कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों का संक्षिप्त सार)	२.००
३ धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित)	३.००
४ आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन)	३.७५
५ हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	२.८८
६ महाबन्ध--भाग १-७ (कर्म सिद्धान्त का महान् ग्रन्थ)	७८.००
७ सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित)	१२.००
८ तत्त्वार्थ राजवार्तिक--भाग १, २ (संशोधित और हिन्दी सार सहित)	२४.००
९ तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित)	१६.००
१० समय सार--अंग्रेजी (आध्यात्मिक ग्रन्थ)	८.००
११ मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक)	८.००
१२ न्यायविनिश्चय विवरण--भाग १, २ (जैन दर्शन)	३०.००
१३ आदिपुराण--भाग १, २ (भगवान ऋषभदेव का पुण्य चरित)	१०.००
१४ उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित)	१०.००
१५ वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित)	५.००
१६ जिनसहस्रनाम (भगवान् के १००८ नामों का अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित)	४.००
१७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ)	४.००
१८ करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तलेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रन्थ	०.७५
१९ नाममाला सभाष्य (कोश)	३.५०
२० सभाष्य रत्नमंजूषा (छन्दशास्त्र)	२.००
२१ कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची	१३.००
२२ पुराणसार संग्रह--भाग १-२ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र)	४.००
२३ जातकट्ठ कथा (बौद्धकथा-साहित्य)	९.००
२४ थिरुकुरल (अंग्रेजी प्रस्तावना सहित तमिल भाषा का पंचम वेद)	५.००
२५ व्रततिथि निर्णय (विधि-विधानों एवं तिथि-निर्णय का विवेचन)	३.००
२६ जैनेन्द्रमहावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ)	१५.००
२७ मंगल-मन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन	२.००
२८ पद्मपुराण (भाग १, २, ३)	३०.००
२९ जीवन्धर चम्पू (हिन्दी टीका सहित)	८.००
३० जैन धर्मामृत	३.००

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

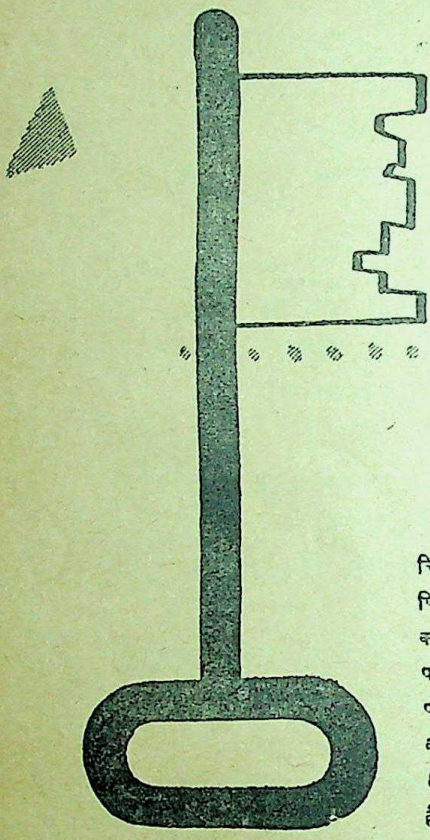

शीघ्रता की कुंजी

हमारी यह भरपूर कोशिश रहती है कि सभी चिट्ठिया जल्दी से जल्दी यथा स्थान पहुच जाएं। फिर भी विश्वास कीजिए हमे हर साल लगभग डेढ़ करोड़ चिट्ठियां 'रिटर्न लेटर आफिसों' को भेजनी पड़ती है। इसका कारण यह है कि उन चिट्ठियों पर पता पूरा अथवा स्पष्ट नही होता। यह दफ्तर काफी खोज-बीन और प्रयत्न के बाद लगभग ६० प्रतिशत पत्रों को पाने वाले के पास पहुंचा देता है अथवा उन्हे भेजने वाले को लौटा देता है। पर इस सब में देर लगना स्वाभाविक है।

अधूरे व अस्पष्ट पते से
चिट्ठियों के पहुंचने में
देर लगती है

साफ व पूरा पता
यानी
जल्दी डाक

हमें उत्तम सेवा का अवसर दीजिए

डाक-तार विभाग डीए ६२/१४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

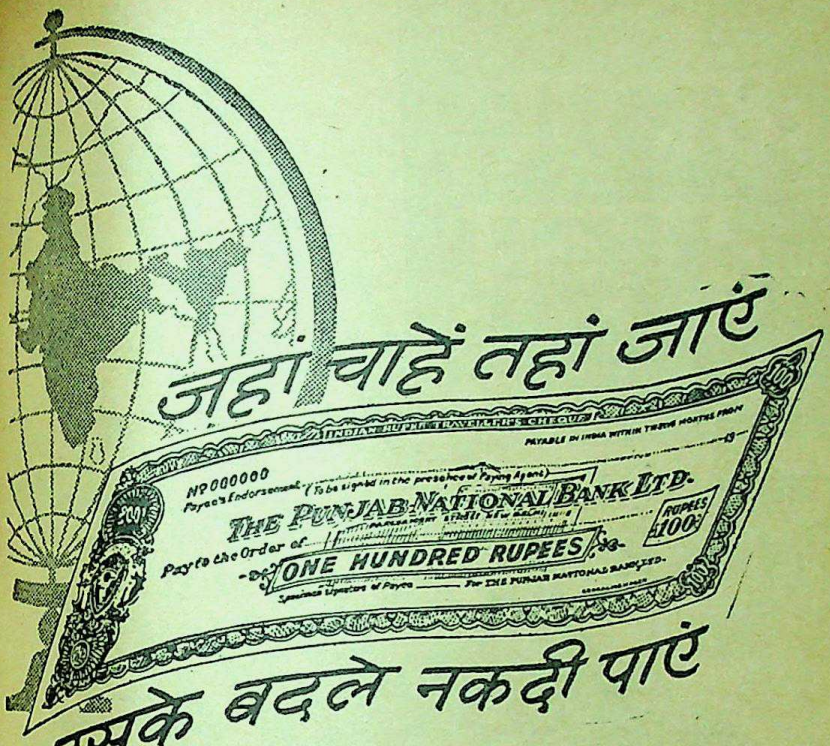

पी.एन.बी. ट्रेवलर्स चैक

- यात्रा में नकदी लेजाने का संकटहीन उपाय
- देश भर में हमारे ४२५ से भी अधिक कार्यालाओं व अनेक एजन्सियों से इनके बदले नकदी प्राप्त करें
- बैंक के सभी प्रतिष्ठित कार्यालाओं से प्राप्य
- १००), ५०) व २५) की सुविध राशियों में उपलब्ध

दि पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

प्रधान कार्यालयः पार्लियामैंट स्ट्रीट, नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिंग ट्यूब्स्

जल तथा गैस
वितरण के लिए

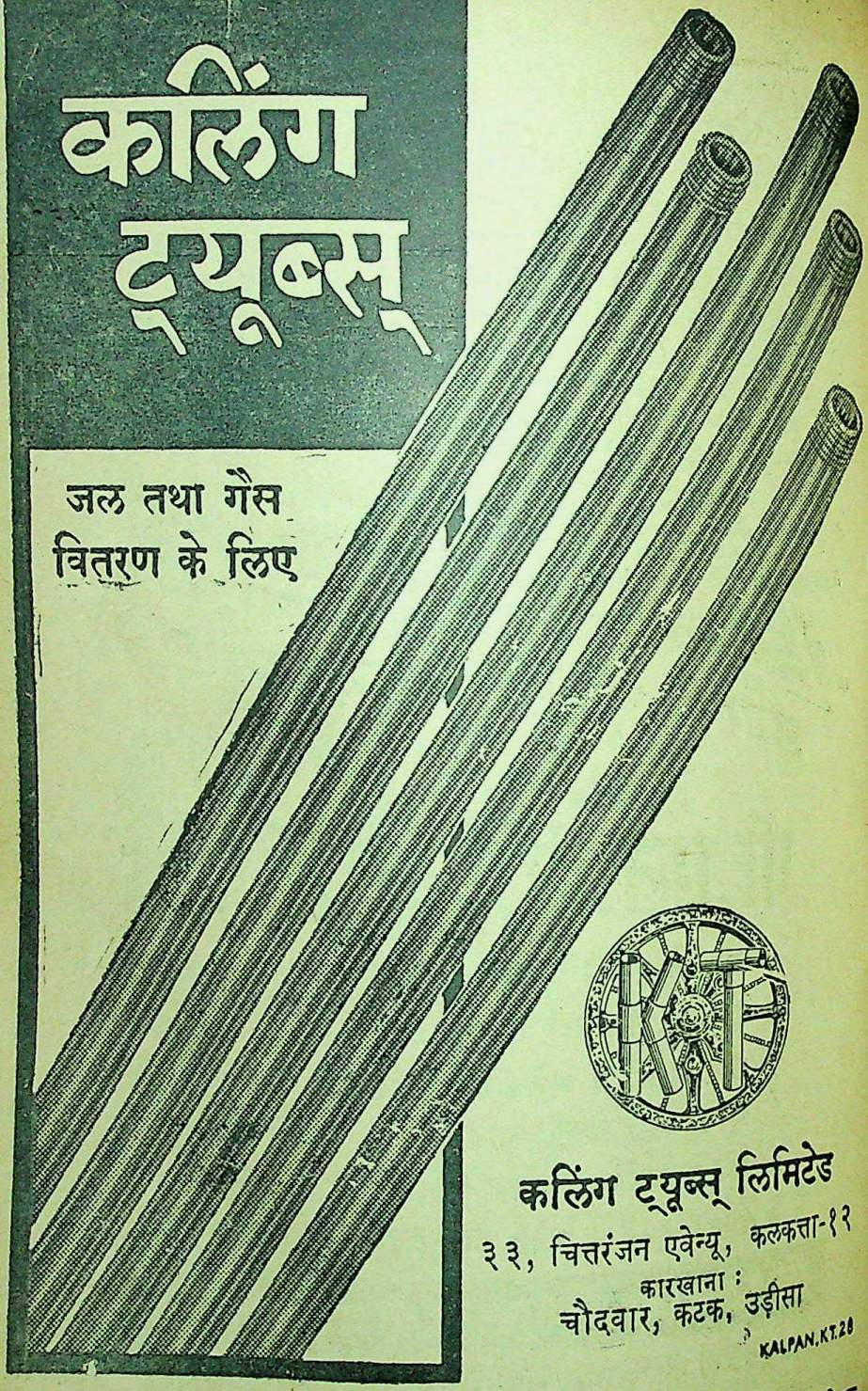

कलिंग ट्यूब्स् लिमिटेड
३३, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-१२
कारखाना :
चौदवार, कटक, उड़ीसा

KALPAN, KT. 28

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ किस्मत से

बाल सुंदर नहीं बनते ...

'बालों को सुंदर रखने में किस्मत नहीं, बल्कि अपनी मेहनत और उनकी हिफाजत काम आती है'—होशियार महिला का उत्तर यही होगा। सुंदर तथा आकर्षक बालों का राज उनकी पूरी-पूरी हिफाजत में है...और आप के लिए 'केशा' यह काम बखूबी करता है। 'केशा' बालों को जवान और पौष्टिक रखनेवाले तत्वों से भरपूर है, जो बालों की जड़ों तक पहुँच कर उन्हें रेशम जैसे मुलायम, चमकीले और सचमुच आकर्षक बनाते हैं।

सच तो यह है अनोखी खुशबूवाला 'केशा' आपके बालों के लिए वरदान है।

केशा

सोल एजेंट्स और निर्यातक:
एम. एम. खंभातवाला,
अहमदाबाद-१
एजेंट्स:
सी. नरोत्तम एंड कं.,
बम्बई-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़ पहनने के कपड़े...

सनलाइट से

कितने सफ़ेद और उजले!

साफ़, सजीले ! सफ़ेद और उजले !
यह है सनलाइट से धुले कपड़ों की शान ! अपने
सभी कपड़े घर में सनलाइट से धोइये।

सनलाइट बढ़िया झागवाला शुद्ध साबुन

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

S. 32A-X29 HI

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Grams : "BELTINGS" Delhi. Phone : 226638

FOR

LUBRICATING OILS, PIPES, FITTINGS, ENGINEERING TOOS, MILL STORES & HARDWARE MERCHANTS

CONTACT

THE DELHI MACHINERY STORES

Post Box No. : 1551

Chawri Bazar,

DELHI-6

Please Contact

for

All kind of

Papers

SIDHUMAL & SONS

PAPER MERCHANTS,

Chawri Bazar,

DELHI.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MOULDED RUBBER PRODUCTS
ASBESTOS PACKINGS
G. G. VALVES
MEASURING TAPES, RULES, Etc.
RUBBER HOSE
FIBRE JOINTINGS
GENERAL HARDWARE STORES

Enquiries to
AGENCIES DEPARTMENT
MARTIN BURN HOUSE, 12, MISSION ROW

CALCUTTA
DELHI BOMBAY KANPUR PATNA

C
O
N
T
A
C
T

Commercial Electric Works
CHANDNI CHOWK
DELHI-6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तार :
साहू जैन, बम्बई

टेलीफोन :
२५१२१८-१९

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

प्रसिद्ध 'हार्स शू' छाप हेवी केमिकल्स
के उत्पादन में अग्रसर निर्माता

- सोडा ऐश
- सोडा बाइकार्ब
- कैल्शियम क्लोराइड
- नमक और

हाइ रेयॅन ग्रेड
इलेक्ट्रोलिटिक कॉस्टिक सोडा
(९८–९९ प्रतिशत शुद्धता)

सोडा ऐश यूनिट
धांगध्रा
गुजरात राज्य

तार :
केमिकल्स
धांगध्रा

टेलीफोन :
३१ और ६७

कॉस्टिक सोडा यूनिट
साहूपुरम
पोस्ट–आरूमुगनेरी
तिरुनुवेली डिस्ट्रिक्ट
मद्रास राज्य

तार :
केमिकल्स
आरूमुगनेरी

टेलीफोन :
कायलपटनम : ३०

मैनेजिंग एजेंट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लिमिटेड

१५ ए, हर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े काम के उपयुक्त

नई लेटरप्रेस प्रिंटिंग मशीन

ब्रिटानिया — डी. पी. ई. 'जावर' इंगलैण्ड के डावसन, पाइन ऐण्ड इलियट लिमिटेड के सहयोग से भारत में पहले पहल तैयार की गई है जिसका निर्माण कम खर्च, अधिक दक्षता तथा मेन्टेनेन्स की सहूलियत पर विशेष ध्यान रखकर किया गया है।

यह मशीन एक सरल लगातार चलनेवाली मोटर से चलती है जिसमें चाल को कम या अधिक करने के लिये तीन तुरन्त बदलने लायक पुलियाँ लगी हैं। चलाने की जगह एक ही लिवर है जिससे स्टार्टिंग, इंचिंग और ब्रेकिंग के काम होते हैं। कागज की डेलीवरी चेन ग्रिपर से होती है जिससे छपा हुआ पहलू काम के समय अछूता रहता है।

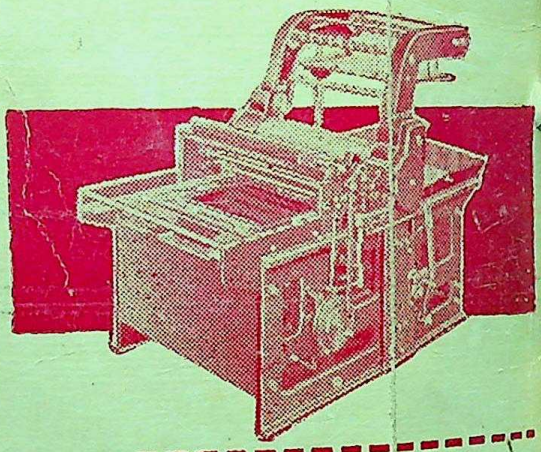

स्पेसीफिकेशन

कागज की साइजें	
स्टैण्डर्ड	: २०"×३०" (५०८ मिमि.×७६२ मिमि.)
अधिक	: २०"×३३" (५०८ मिमि.×८३८ मिमि.)
कम	: १०"×१५" (२५४ मिमि.×३८१ मिमि.)
टाइप-बेड बीयरों के बीच की चौड़ाई	: ३४ १/२" (८७६ मिमि.)
फार्म बारों के बीच की दूरी	: २६" (६६० मिमि.)
कुल लम्बाई	: ७'११" (२४१३ मिमि.)
कुल चौड़ाई	: ४'५" (१६५२ मिमि.)
कुल ऊँचाई	: ४'८" (१७२७ मिमि.)

दि ब्रिटानिया-डी० पी० ई०

जावर

दि ब्रिटानिया इंजिनीयरिंग कम्पनी लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्टस : मैकलाउड ऐण्ड कं० लि०, ३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१
सोल सेलिंग एजेन्टस : इण्डो यूरोपियन मशीनरी कं० प्राइवेट लि०
सर पी. एम. रोड, बम्बई ५, बैंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता चाँदनी चौक, दिल्ली ६, माउन्ट रोड, मद्रास

Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. C. 4123 WPI 1956

Published by Shri Munishwarlal for Bhartiya Jnanpith Calcutta from 18-A, Brabourne Road Calcutta-1 and Printed by him at United Commercial Press Ltd., 1, Raja Gurudass Street, Calcutta-6
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकलियॅड एण्ड कंपनी लिमिटेड

मैकलियॅड हाउस,

३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

मैनेजिंग एजेन्ट्स, सेक्रेटरी और कोषाध्यक्ष

जूट मिल्स

- अलेकजेण्डर जूट मिल्स लि०
- एलायन्स जूट मिल्स कं० लि०
- नेल्लीमारला जूट मिल्स लि०
- चितावलसाह जूट मिल्स कं० लि०
- ईस्टर्न मन्यूफैक्चरिंग कं० लि०
- एम्पायर जूट मिल्स कं० लि०
- केलविन जूट कं० लि०
- प्रेसिडेन्सी जूट मिल्स कं० लि०
- वेवरली जूट मिल्स लि०

चाय के बगीचे

- अमलुकी टी कं० लि०
- बागमारी टी कं० लि०
- भतकावा टी कं० लि०
- बोरमाह जान टी कं०(१९३६)लि०
- डिब्रगढ़ कं० लि०
- दैजू वेली कं० लि०
- मार्गरेट्स होप टी कं० लि०
- राजभात टी कं० लि०
- रानीचेरा टी कं० लि०
- रूपचेरा टी कं० लि०
- सुंगमा टी कं० लि०
- तेलोईजान टी कं० लि०
- तिंगामीरा टी सीड कं० लि०
- तिर्रीहन्ना कं० लि०
- तीयरून टी कं० लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22 SEP 1962

अनुक्रम

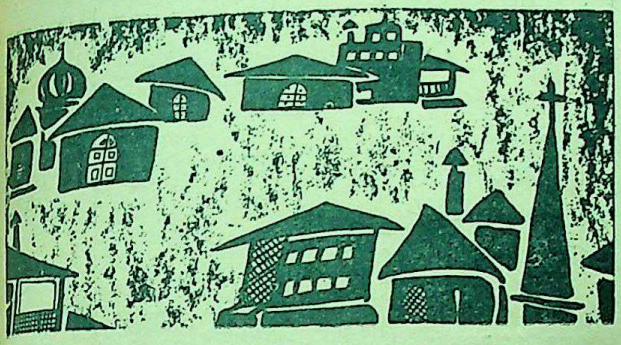

सितम्बर
१९६२

• कविताएँ

१. सुदर्शन के फूल : डॉ० जगदीश गुप्त १६
२. आधुनिक सभ्यता का एकान्त : दूधनाथ सिंह ३२
३. विक्षिप्त और लड़खड़ाते पाँव : इन्दु जैन ५०
४. निकट की दूरी : श्रीकान्त जोशी ७९
५. शाम और तुम : इन्दुकान्त शुक्ल १००

• कहानियाँ

१. वन्दिनी सीता, अशोक वन और मैं : लक्ष्मीकान्त वर्मा १७
२. चन्द्राहत : शालिग्राम शुक्ल ४४
३. अपराध : विमला राजेन्द्र ६५
४. क्षुधा : अन्तर की, बाहर की : मृत्युंजय मैती ८९

• एकांकी

१. नरक का एक स्वप्न : विलियम बटलर यीट्स ८०

• उपन्यास-अध्याय

१. 'एक इंच मुस्कान' : मैंने कैसे लिखा ? : मन्नू भण्डारी ३७

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली, पंजाब, जम्मू-काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मद्रास, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों तथा स्वतंत्र नेपाल के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- **लेख**
  १. ज़िन्दगी के फन्दे : **सी० ई० एम० जोड ३**
  २. बीसवीं शताब्दी के ये असफल मानव 'बीट' चिन्तक : **प्रेमकपूर कंचन ५८**
  ३. ये अजीब-अनोखी वसीयतें : **श्रीकृष्ण ७४**
  ४. गृह-सज्जा—एक न ा प्रयोग : **शान्ति मेहरोत्रा ८६**
  ५. ब्राह्मण से बारामोन तक : **नरेन्द्र धीर ९५**
- **स्थायी स्तम्भ**
  १. नेपथ्य में (जलपंखिनी) : **मुक्ता राजे ९**
  २. गोरी नज़रों में हम : **डॉ० प्रभाकर माचवे २७**
  ३. सागर पार की हलचलें : **शरद देवड़ा ५१**
  ४. मेरे रेखांकन : **विभिन्न पाठक-पाठिकाओं द्वारा १०१**
  ५. साहित्यार्चन : **पुस्तक-समीक्षा १११**
  ६. सृष्टि और दृष्टि : **पत्र-प्रतिक्रिया १२३**

सम्पादक — संचालक

लक्ष्मीचन्द्र जैन : शरद देवड़ा — **भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता**

कार्यालय — टेलिफ़ोन

१८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता–१ — **२२–६०३९**

एकमात्र वितरक

बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लि०, बम्बई–१

अक्तूबर अंक के विशिष्ट आकर्षण

- पराजित पीढ़ी की पाँच कविताएँ : कन्हैयालाल नन्दन
- सरस्वती का सन्देश : ठाकुरप्रसाद सिंह
- राम न सकहिं नाम गुन गाई : विष्णुकान्त शास्त्री
- कैन्वस-कुरूक्षेत्र पर तूलिका-त्रिशूलधारी चित्रकार : अनिलकुमार
- 'गोरी नज़रों में हम' लेखमाला की अन्तिम क़िस्त
- 'नेपथ्य में' लेखमाला की 'जल-पंखिनी' का शेषांश
- 'सागर पार की हलचलें' की अन्तिम क़िस्त 'नारी : प्रणयिनी रूप में'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

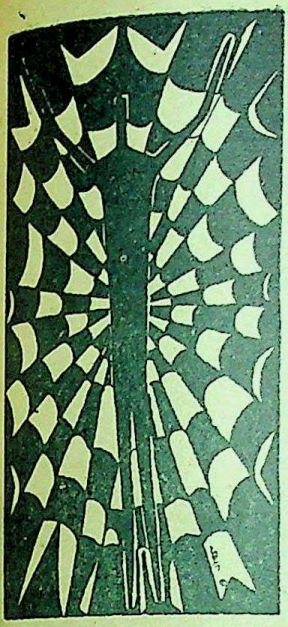

मूल :
सी० ई० एम० जोड

रूपान्तर :
कुन्था जैन

प्रेम, आदर्श, सौन्दर्य, आनन्द आदि ज़िन्दगी के सर्वाधिक जटिल फन्दे हैं, लेकिन इनकी वास्तविकता जान लेने पर यही फन्दे व्यक्ति के लिए एक सुखी जीवन के अजस्र प्रेरणा-स्रोत बन जाते हैं। वर्तमान युग के एक विख्यात दार्शनिक के एक प्रेरक निबन्ध का हिन्दी रूपान्तर।

ज़िन्दगी के फन्दे

• प्रेम

ज़िन्दगी को सबसे अधिक भ्रमों की भँवर में खींचनेवाले युवावस्था के जाल-पाश हैं। और जब तक व्यक्ति इनसे परिचित नहीं हो लेता, तब तक वह जीवन से सुख कम, और दुःख अधिक पाता है।

• प्रेम अमर है, चिरजीवी है

यह पहला फन्दा या भ्रम है। सभी जानते हैं कि आवेगमय प्रेम, विशेषकर सबसे पहला रूमानी प्यार, जीवन में सबसे अधिक हलचल मचाने वाली घटना होती है। प्यार का आवेग वासना को भड़का देता है, इन्द्रियों में उन्माद संचरित करता है, विवेक-बुद्धि पर पर्दा डाल देता है और जीवन-दृष्टि को खण्डित करता है। प्रेम-रस में डूबा प्रेमी, अपनी प्रेमिका में न केवल मेनका की-सी मोहिनी शक्ति देखता है, बल्कि वह उसके व्यक्तित्व में सरस्वती की कला-निपुणता, इड़ा की प्रखर बुद्धि और आदर्श गृहिणी की कार्य-क्षमता आदि सारे गुणों का समावेश कर देता है। उसे निश्चय हो जाता है कि ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति को अपना बनाने और बनाये रखने से अधिक महत्त्वपूर्ण दुनिया में और कोई दूसरी बात नहीं।

इसके अतिरिक्त, प्रेमी को यह भी विश्वास रहता है कि उसकी भावनाएँ स्थायी हैं। पर असल में इस प्रकार की सारी धारणाएँ मिथ्या हैं। इसलिए प्यार की ऊष्मा का प्रभाव ठण्डा पड़ने के बाद, भ्रम टूटने की प्रतीति और भी तीखी हो जाती है। भ्रम की मरीचिका दूर होने की अनुभूति को सबसे कड़ुवा बनाने वाली सचाई जो सामने उभरकर आती है, वह यह है कि 'प्रेम एक ऐसा अनुभव है जिसका ज्वार उतर जाता है'—प्यार, जाल पर बिखरा वह दाना है जिससे आकर्षित होकर पुरुष और नारी ऐसा क़दम उठाते हैं जो संतति-वर्धन के लिए अनिवार्य है। भले ही दो व्यक्ति नितान्त भिन्न हों, उनमें परस्पर कोई रुचि-साम्य न हो, वे विचारों और मान्यताओं में किसी स्तर पर भी सहयोगी न हों—बेशक उनकी जाति, देश, वर्ग, वर्ग सबमें बहुत अन्तर हो—यहाँ तक कि दिल-ही-दिल में वे एक-दूसरे से घृणा करते हों, तब भी जहाँ एक बार कामुक आकर्षण और भावुक रूमानियत के कुशल मिश्रण से निर्मित वे दाने उनके सामने फेंके गये कि मुग्ध-युगल उस मोहक पाश की ओर इस तरह लपकता है जैसे अकाल का मारा रोटी के टुकड़ों पर। जहाँ एक बार दाने चुगे गये कि प्यार की आवश्यकता ही समाप्त हो जाती है। इसके बाद तो किसी भी प्यार से अधिक-से-अधिक अपेक्षा बस इतनी ही की जा सकती है कि प्यार की जगह, अनुग्रह और अनुराग उभर आयें। अतृप्त प्यार तो ऐसी भस्म-व्याधि है जिसकी भूख सर्व-भक्षी है, और है एक असहनीय पीड़ा। किन्तु तृप्त या शमित प्यार, अपनी ही विडम्बना बनकर पालतू और घरेलू स्तर पर उतर आता है। इसने यदि बहुत बढ़िया रूप लिया तो यह एक छोटी और शोभनीय वस्तु बनकर रह जाता है और यदि घटिया रूप लिया तो निहायत कमीनी और भद्दी चीज़ हो जाता है। इन सब बातों की प्रतीति दिल को बड़ा धक्का पहुँचाती है, पर यह धक्का श्रेयस्कर और लाभप्रद होता है। इसका असर ऐसा ही है जैसे किसी बीमारी का टीका लगवाना। यदि यह टीका बार-बार ठीक मात्रा में लगता रहे तो धीरे-धीरे रोग के विरुद्ध लड़ने की शक्ति संचित हो जायेगी। इस शक्ति की प्राप्ति ही प्यार की इस भ्रामक पकड़ से निष्कृति दिलाती है।

● आदर्श

जीवन का दूसरा फन्दा है, यह भ्रामक धारणा कि जो पहाड़ों की ओट है या क्षितिज के पार है, वह इस ओर की स्थिति से अधिक सुन्दर है। ऐसी धारणा अन्तर्मन से उठती है और लगता है कि इसका उन्मूलन नहीं किया जा सकता। इस तथ्य की कितनी ही कटु प्रतीति क्यों न हो, कि कल का दिन

तब और अब

मैं नहीं, किन्तु कुछ लोगों का विचार है कि 'दुनिया किस दिशा में जा रही है'—यह जानना आज से नौ-दस वर्ष पहले बहुत आवश्यक नहीं था; जो इस बारे में सचेत नहीं थे उन्हें क्षमा किया जा सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ता है कि दूसरा अवसर ...ही पर्याप्त था कि उसे भूख की प्रतीति हो ...ता नहीं होता या कि दूसरा अवसर और वह उसकी पूर्ति करे। अब यह ...पहले से बढ़कर नहीं है या कि दूसरी स्थिति है कि बहुत-से मनुष्य इतनी ...पहली से किसी तरह भी उत्तम नहीं अच्छी तरह पोषित हैं कि उन्हें भोजन जुटाने ...फिर भी लगातार व्यर्थ की आशा लगाये के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। और ...ब इस दिशा में प्रयत्नशील रहते हैं अब भूख का स्थान ले लिया है आशाओं की ...भविष्य को प्रभावित करके हम अपने सुनियोजित प्रवंचना ने, जिसे हम 'आदर्श-...न को ठीक करें और अपने भाग्य में वाद' कहते हैं। यह स्पष्ट है कि लोग ...वर्तन लाकर उसे बेहतर बनाएँ। जहाँ भविष्य के भले के लिए वर्तमान की अवहेलना ...मेरा अपना प्रश्न है, मैं अब उस नैसर्गिक करते हैं और आशान्वित होते हैं। पथ ...को दबाना सीख गया हूँ और के अन्त में किसी ऐसी वस्तु की प्राप्ति नहीं ...यह नहीं सोचता कि पहाड़ों के उस होती जो पथ के दोनों ओर प्राप्य न हो। ...वास्तव में उतना ही सौन्दर्य है किन्तु यदि इस बात को वास्तव में सच मानकर ...ना मेरा मन कहता है। फिर भी बैठ जायें तो सारी यात्राओं का अन्त ही हो ...वश्य लगता रहता है कि उस पार जो जाय। यह बात पहली बार में कोई हृदयंगम ...वह इस पार से अच्छा है।

नहीं कर पाता कि मनुष्य बना ही यात्रा करने के लिए है। उसकी रचना इसी विशिष्ट उद्देश्य को लेकर हुई है कि वह अपनी क्षमताओं का प्रयोग करके, अपनी बुद्धि को तीव्रतर और अपनी इच्छा को दृढ़तर बनाकर जीवन को ऊँचे स्तर पर ले जाये। आशा का वास्तविक चरित्र, कि वह जीवन का चकमा बनकर छल-कपट से मनुष्य को प्रयत्न की ओर अग्रसर रखती है, प्रौढ़ वय होने पर बोध में आता है। इसके प्रकाश में ही आदर्शवादिता का वास्तविक रूप प्रगट होता है।

पर, मैं समझता हूँ कि आशा की यह ...नवीनता भी गधे के मुंह के आगे लटकी ...वाले वाली गाजर की तरह है जिसके ...जीवन हमें आगे की ओर खींचता है। ...विकास के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के हमारे ...यत्नों की सफलता केवल इस बात पर

किन्तु आज यह तथ्य इतना अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है कि ऐसे लोगों को कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। जो आज दुनिया को देखने से इन्कार करते हैं वे न तो अन्धे हैं और न एकदम भोले।..

—एन रैण्ड

...निश्चित है कि हम यह समझें और विश्वास ...करें कि जो वर्तमान में हमारे सामने है वह ...किसी कदर्ही अच्छा है जो पीछे था, और यह ...भी कि भविष्य अतीत से उत्तम होगा। ...यह समय था कि जीवधारियों के लिए इतना

• सौन्दर्य

जीवन का तीसरा भ्रम है कि सौन्दर्य अर्थ-गर्भित है या सुन्दरता में प्रयोजन है। एक नवयुवक सूर्यास्त को देखता है; उस दृश्य से उसके भीतर जिस भावातिरेकता का संचार होता है, वह न उसे समझ पाता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न उसे व्यक्त कर सकता है। इसलिए यह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यही उस लोक का प्रवेश-द्वार है जो इस लोक से परे है। जिन क्षणों में, कोई भी व्यक्ति तीव्र सौन्दर्यानुभूति से अभिभूत होता है, उस समय उसकी इस धारणा पर कोई बन्धन नहीं लगा सकता कि वह उन क्षणों में ऐसी आभा की झाँकी पा रहा है जिसका उद्गम अलौकिक है और उसके अपने अस्तित्व की दुनिया से नितान्त भिन्न है। और चूंकि वह भिन्न है, इसलिए वह जरूर ऊँचे स्तर की भी है। यह चमक भले ही चकाचौंध पैदा करती है और अन्धा बनाती है किन्तु सौन्दर्य और सौम्यता का यह ऐसा वृहत् आभास भी दे जाती है जैसा जीवन में न कभी जाना हो और न जिसकी कल्पना की हो। यह अनुभूति इतनी विशाल होती है कि वह वर्णनातीत है, क्योंकि भाषा जो इस संसार के लिए बोध-गम्य है, वह उस दूसरी दुनिया की अनुभूति की अभिव्यक्ति सरलता से नहीं कर पाती।

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि महान कला पारलौकिक की सम्भावना प्रस्तुत करने में समर्थ है। शरत् का निर्मल नीला आकाश एक स्वच्छतर और नीलतर आकाश की ओर संकेत करता है। मनोरम सूर्यास्त का दृश्य, किसी सुन्दरतर स्वप्न को जगा जाता है और सौन्दर्य की पूरी झलक देने से पहले ही आँख-ओझल हो जाता है, और साथ ही, अदृश्य होते-होते एक वर्णनातीत प्यास और उदासी को मन पर अंकित कर जाता है। पर यदि यह दुनिया महज़ एक भद्दा मज़ाक नहीं है और न ही जीवन-की शीतल चमक में एक भाँडी आग की लपट है और न प्राणी का अस्तित्व एक खोखली हँसी जो गधे की रेंक की तरह रहस्यावच्छादित ब्रह्माण्ड के पार बिखरी पड़ी है; —यदि अन्तर्मन का यह बोध कि

तुम कितनी दुखी हो, शैफ़ो!

जो तुझमें एक निरन्तर दुख भरती है, वह मैं हूँ—तुम्हारी आँख। इन पलकों को बन्द करोगी तो मैं तुम्हारा मन देख लूँगी। अंजन की जगह पत्थर की कंकरियाँ आँज लोगी तो मैं नदियाँ देख लूँगी। तुम मुझमें

जो प्रत्यक्ष है उसके पार या प्रच्छन्न भी कुछ है, अजीर्ण से उत्पन्न दूषित रसायन नहीं है, या शैतान द्वारा हमारा मज़ाक उड़ाने और हमें पागल बनाने के लिए भेजी कोई सनक नहीं है, या, एक शब्द में कहें, कि सौन्दर्य 'स-अर्थ' है तब हमें सौन्दर्य की व्याख्या करने की कोशिश से बचना चाहिये। यदि हमें ऐसा आभास या ऐसी झलक मिलती है जो शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं हो सकती तो उसे मुंह खोलकर कहने का प्रयत्न नादानी है। न हमारा यह प्रयत्न हो कि जो हमारी बुद्धि की पकड़ से बाहर है उस पर हम किसी-न-किसी प्रकार महत्ता आरोपित करें। मनुष्य जिन अर्थों में सौन्दर्य को ग्रहण करता है, वह सौन्दर्य उन अर्थों से वंचित है। यह धारणा भी भ्रामक है कि ब्रह्माण्ड अच्छा है और जीवन किसी उद्देश्य-पूर्त्ति के लिए बना है, या यह कि ईश्वर किसी स्वर्ग में विराजमान है; यहाँ तक कि यह बात भी वास्तविक नहीं है कि विद्वेष और निर्दयता के मूल में मानवता और मैत्री क्रियाशील रहते हैं। यह पाठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ना बड़ी टेढ़ी खीर है और इसका ज्ञान बहुत दुःखद है, भ्रम-भंजक है। विक्टोरियन युग ने यह सीख सीखी ही नहीं। उसने कला को मानवीय अर्थ दिये और यह आग्रह किया कि सौन्दर्य में प्रतीकात्मकता का आरोप

> तुम्हारी चुभो दोगी तो मैं तुम्हारे गीत देख लूँगी। हँसोगी तो सारी शरारत बिखेर दूँगी कि तुम किसी को प्यार नहीं करतीं। यदि तुमने कटाक्ष किया तो कह दूँगी — 'तुम अपने को मोह रही हो।' तुम कितनी दुखी हो शैफ़ो! यह मैं जानती हूँ।
>
> —शैफो

आवश्यक है।—इसलिए उन्होंने प्रकृति में कृति के निहितार्थ पढ़े और नारी-आकृतियों की बल खाती रेखाओं में नैतिकता की भावनाएँ —श्रद्धा, दया, आशा आदि—कल्पित कीं। जहाँ तक चित्रकला का सम्बन्ध है, हमारे युग ने इस विषय में अच्छी शिक्षा ली है। विक्टोरियन युग की प्रतीकात्मकता का अब प्रचार नहीं है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि बर्नजोन के 'पाप और पुण्य' 'आशा और अभिलाषा' आदि के प्रतीकात्मक चित्र, जो सैकड़ों-हज़ारों पाउण्ड के मूल्य पर बिकते थे, अब पाँच-छः पाउण्ड में बिकते हैं।

पर हमलोग अभी भी जीवन में अर्थ खोजते हैं; और, उससे भी बढ़कर, सौन्दर्य में। और अर्थ भी ऐसा जिसका हम अपने से कुछ सम्बन्ध बैठा पायें। हम आज भी ब्रह्माण्ड में मानवीय गुणों का आरोप करते हैं और घटित घटनाओं में मानवता के प्रति आशा व दुराशा के शकुन-अपशकुन देखते हैं। प्रौढ़ मन की बुद्धिमत्ता का प्रारम्भ इसमें समझना चाहिए जब यह तथ्य हृदयंगम हो जाए कि हम बीसवीं शताब्दी के नौर्डिक प्रौढ़ों की भाँति यह न मानें कि कुछ मानव-आत्माओं के चिर आनन्द के उद्देश्य से प्रेरित होकर यह सारी सृष्टि यात्रा कर रही है, या गर्मी की रात में चाँद बादलों की सवारी इसलिए करता है कि उसे हम तक कोई सन्देश पहुँचाना है। संक्षेप में यह, कि मनुष्य में बुद्धि का उदय उस समय मानना चाहिए जब उसे यह बोध हो जाये कि मनुष्य के प्रति ब्रह्माण्ड की घोर उपेक्षा है। पर, इस बोध-प्राप्ति का अर्थ है कि जीवन के फन्दों में एक और फन्दा प्रत्यक्ष हो गया—अर्थात् सौन्दर्य का फन्दा। जब तक यह मतिभ्रम दूर नहीं होता तब तक व्यक्ति सौन्दर्य-भावना से ऐसा ही अभिभूत रहता है जैसा प्यार से या —किसी समय बहुत अधिक और अब अपेक्षाकृत कम—धर्म की भावना से। प्यार, सौन्दर्य और धर्म; निःसन्देह ये महत्वपूर्ण तत्व हैं और ये मिलकर जीवन को उसका मूल्य प्रदान करते हैं, पर यदि हमारा अभिप्राय खुशी की प्राप्ति है, तो हमें सावधान रहना चाहिये कि हम उन्हें उस रूप में प्रतिष्ठित न करें जो वास्तव में उनका रूप है नहीं। अर्थात् हम उनमें ऐसी सम्भावनाएँ स्थापित न कर दें जो उनके वश से बाहर की हैं।

● आनन्द की खोज

अन्तिम; छलने में सबसे चतुर और अनावृत्त होने में सबसे कठिन फन्दा है, आनन्द की खोज का फन्दा। वास्तविकता यह लगती है कि आनन्द तक सीधे नहीं पहुँचा जा सकता। आनन्द स्वयम् में कोई स्थिति नहीं है, बल्कि कई स्थितियों की संगति में प्राप्त होने वाली एक अवस्था है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने में कोई उत्पादन-विधि नहीं है, बल्कि कोक-कोयले की तरह, कई उत्पादन-विधियों का आनुसंगिक फल है। वह स्वयम् में कोई उद्देश्य भी नहीं है, बल्कि अन्य उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए की गयी क्रियाओं का सहचर सरस-भाव है। आनन्द तक पहुँचने का रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा है। आनन्द की उपलब्धि के लिए कोई कितना ही इच्छुक क्यों न हो, उस तक सीधे नहीं पहुँचा जाता। इस दृष्टि से, आनन्द की प्राप्ति सौन्दर्य और निद्रा से समानता रखती है। कुछ व्यक्तियों की धारणा है कि संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं कि मनुष्य दृढ़ निश्चय करने के बाद उस पर विजय न पा सके। 'जहाँ चाह, वहाँ राह' एक प्रसिद्ध कहावत है। और, यद्यपि चन्द्रमा तक पहुँचने की राह न हो,* तब भी जीवन की साधारण व्यवस्था के लिए इस कहावत में सत्य का अंश अवश्य निहित है। जहाँ तक आनन्द का प्रश्न है, यहाँ यह बात लागू नहीं होती।

आनन्द का साम्राज्य भी सौन्दर्य के साम्राज्य की तरह न आक्रमण के बल पर अधिकार में लिया जा सकता है और न ही धन से खरीदा जा सकता है।

आनन्द की खोज में चलो तो वह तुम्हारी पकड़ से बाहर ही रहेगा। जी-जान से अपने काम में लग जाओ, किसी महान् उद्देश्य की पूर्त्ति में निरत हो जाओ, अपने को किसी ऐसे कार्य के प्रति समर्पित कर दो जो निजी स्वार्थ से ऊपर हो; और इस प्रकार अहंकार और इच्छाओं के स्वार्थमय गढ़े से अपने को उभार लो। ऐसा करने पर जब तुम अपने कृतित्व पर दृष्टि डालोगे तो पाओगे कि तुम बहुत आनन्द-मग्न रहे हो। संक्षेप में, यह समझना चाहिए कि आनन्द कोई इमारत नहीं है जो मनुष्य के हाथों निर्मित हो सके। वह एक फूल है, जो अकस्मात् खिलकर चकित कर देता है; वह एक गीत है जिसकी ध्वनि झाड़ी के पास से गुजरते हुए कानों में पड़ती है और रात को चुपचाप सहसा हवा में ऊँचे गूँजकर, विलीन हो जाती है। मुझे प्रतीत होता है कि आनन्द का महत्वपूर्ण सम्बन्ध इस तथ्य में है कि प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभाविक धर्म और शक्तियों का पूर्णरूपेण विकास हो। और, यह विकास लगातार क्रियाशील और प्रयत्नशील रहने से होता है। मैंने जीवन में इस सिद्धान्त का पालन किया है, इसलिए मैं आनन्दित रहता हूँ।

*आज तो यह भी सम्भव हो गया है —अनुवादिका।

हृदय की आवाज़

हृदय की कोलाहलमय भीड़ को कोई पुलिस नहीं दबा सकती। अन्तर का विद्रोह बाद में स्वयं अधिकृत शान्ति का रूप ग्रहण कर लेता है—लेकिन न तो उसके लिए कोई दृश्य योजना होती है न कोई गीत गाया जाता है, बल्कि उसी भूमि में वह एक तूफ़ान की तरह आता-जाता है।

—एमिली डिकेन्सन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

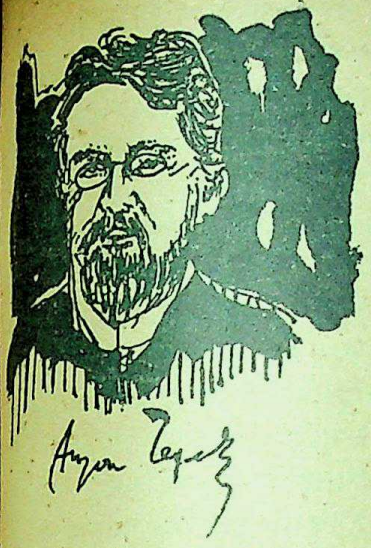

नेपथ्य में—(५)

मुक्ता राजे

●

उक्त लेखमाला के अन्तर्गत यहाँ विश्व-प्रसिद्ध रूसी कथाकार और नाटककार एण्टन चेख़व की रहस्य-मयी, मर्मस्पर्शी प्रणय-कथा की दूसरी क़िस्त प्रस्तुत की जा रही है।

●

'चेख़व हमारे यहाँ आये हैं! देखना चाहो तो तुरंत चली आओ!' यह चन्द शब्द मैंने सैकड़ों बार पढ़ डाले....पढ़ ही नहीं, पी डाले, बूंद-बूंद पी डाले! हज़ारों फूलों का सत्त, इत्र एक बूंद भर ही होता है न, वैसे ही केवल यही अक्षर ही नहीं दुनिया भर के सारे अक्षर इस समय मेरे लिए सिर्फ़ एक शब्द में सिमट आये—'चेख़व'! बहन की भेजी छोटी-सी चिट एक बड़ा कॅनवस बन गयी जिस पर मेरी कल्पनाओं के चेख़व का चित्र उभर आया! आँखों में सिर्फ़ एक आकृति तैरने लगी—चेख़व की! कानों में सिर्फ़ एक शब्द टकराने लगा—चेख़व! सारी चेतना-शक्ति अपने अतीत और वर्तमान सबको भुलाकर भविष्य के सिर्फ़ एक नन्हें-से क्षण में जाकर अटक-सी गई—वह क्षण जब मैं अपने प्रिय लेखक को देखूंगी। शायद हर साहित्य-प्रेमी, पाठक-पाठिका का कोई-न-कोई प्रिय लेखक ज़रूर होता होगा और उसे देखने की इच्छा भी उसके मन में ज़रूर होती होगी। पर ऐसा क्यों था मेरे साथ कि जिसकी लालसा मन में जाने कब से संजोये थी, आज जब अप्रत्याशित ही वह क्षण आया तो मन अजब तरीके-से घबराने लगा! कैसे होंगे वे? क्या बातें करूँगी मैं उनसे? वह मुझसे कुछ बात करना पसंद भी करेंगे या नहीं?....

ज ल पं खि नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह याद है मुझे—सन् था १९८९ महीना था जनवरी का और तारीख थी २४ जिस दिन मैंने पहले-पहल चेखव को देखा था। मेरी बहन के घर का हॉल बड़े-बड़े साहित्यकारों और पत्रकारों से भरा था बीच में टहल-टहलकर चेखव कुछ कह रहे थे। दरवाज़े पर ठिठकी खड़ी मैं मंत्र-मुग्ध-सी उन्हें देखती ही रह गयी। वह जो कुछ बोल रहे थे वह अक्षर मेरे कानों से टकरा तो रहे थे पर मुझे सुनाई नहीं दे रहे थे। मेरे प्राणों की सारी शक्ति तो जैसे आँखों में सना गयी थी। थोड़ी ही देर बाद मैंने देखा, उनकी निगाह मुझ पर पड़ी। वह ठिठक गये और अपने मेज़बान यानी मेरे बहनोई की ओर देखने लगे। मैंने देखा उनकी निगाह में प्रश्न तैर गये थे। मेरे बहनोई सर्जी उनका सवाल समझ गये और मेरी बाँह थामकर उनके पास ले गये, बोले, "आइये, इनसे आपका परिचय कराऊँ, ये हैं मिस फ्लोरा, यहाँ मेरे संरक्षण में ही हैं।" चेखव ने आगे बढ़कर मुझसे हाथ मिलाया। मुझे लगा उनकी निगाह में कुछ अजीब-सा था। शायद है कि मेरा नाम फ्लोरा उन्हें कुछ अजब-सा लगा हो। असल में उन दिनों मेरा रंग बिलकुल चम्पई था और मैं लम्बी-लम्बी दो चोटियाँ गूंथा करती थी। इसलिए सभी मुझे दुलार से फ्लोरा कहा करते थे।

सर्जी कहे गये, "इसे आपकी सारी कहानियाँ ज़ुबानी याद हैं। कौन सी किताब के किस पृष्ट पर कौन-सी कहानी छपी है, यह तक इसे याद है।" फिर एक आँख दाबकर शरारत में बोले, "इसने आपको सैकड़ों खत लिखे होंगे मगर पागल है बेहद, उन खतों को अजीब राज़ बनाये है। न किसी को दिखायेगी न जिसके लिए लिखे हैं उस तक भेजेगी ही।" और एकाएक मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले, "क्यों, एक आध भेजा भी था क्या?" और मैं मारे लाज के गड़ी जा रही थी। अन्दर से खीज भी रही थी। सर्जी को इतने लोगों के बीच में यह क्या सूझा है! पर सच कहती हूँ, मुझे बिल्कुल याद है, सर्जी की बातें सुनते समय चेखव की आँखें कुछ मुंद-सी गई थीं, थोड़ी-सी देर के लिए वह बिलकुल काठ की मूरत जैसे लगने लगे थे। गले में लटकती उनकी टाई तो सचमुच ऐसी ही लग रही थी कि जैसे किसी प्रतिमा के गले में झूल रही हो।

अपने बहनोई की ओर क्रोधभरी दृष्टि से देखकर चेखव की ओर मुखातिब होकर लड़खड़ाती ज़ुबान से सर्द स्वरों में केवल इतना ही कह सकी, "आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई।" अपनी भावनाओं के मुक़ाबले में कितना छिछला वाक्य कहा था मैंने!.... क्यों सिर्फ़ इतनी सादी इतनी हल्की-सी ही बात कह सकी उस दिन मैं! और कुछ बोली क्यों नहीं अपने प्रथम परिचय के उन क्षणों में!....

उन दिनों वह अपने नाटक 'इवानोव' का अभिनय कराने के लिए पीटर्सबर्ग आये थे। नाटक खेलने वालों की अभिनय-क्षमता से उन्हें कोई शिकायत नहीं थी पर उनको दुःख यह था कि उन लोगों ने उनके सारे पात्र अपने अनुकूल बना लिये। और चेखव को यह क़तई पसंद नहीं था कि उनके नाटकों के पात्रों का व्यक्तित्व कहीं से काटा-तराशा जाय! वह इस नाटक के प्रदर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की असफलता की कल्पना पहले से ही कर चुके थे और इतने अधिक चिंतित हो गये थे कि खाँसते समय उनके मुंह से खून भी आने लगा था। उस दिन अपनी उस हालत में उन्होंने बड़ी दृढ़ता से ऐलान किया कि "मैं क़सम खाता हूँ कि रंगमंच के लिए अब कभी नाटक नहीं लिखूँगा।"

भाषणों के बाद खाने की मेज़ पर चेखव मेरे पास ही बैठे। सर्जी उनसे बताते रहे कि फ्लोरा बहुत अच्छी कहानियाँ लिखती है। इसकी कहानियों में सामान्य रट से कुछ पृथक् एक मौलिक सूझ रहती है। चेखव ने मेरी ओर देखा और इस तरह मुस्कुराये मानो बहुत दिनों के बिछुड़े दो मित्र मिल रहे हों और एक-दूसरे की उपलब्धियों की प्रशंसा सुनकर मगन हो रहे हों। जितनी देर भोजन चलता रहा हमलोग इधर की, उधर की तमाम साहित्यिक चर्चाएँ करते रहे। उस दिन की बातों में से एक बात तो ज्यों-की-त्यों आज तक मुझे याद है। चेखव ने कहा था, "जीवित-जाग्रत प्रतिभाएँ विचारों को जन्म दे सकती हैं किन्तु कोरे विचार प्रतिभाओं को उत्पन्न नहीं कर सकते। जो कुछ देखो और अनुभव करो, उसे उसी को पूरी ईमानदारी और सचाई के साथ लिख दो।"

हमारी बातचीत के बीच में सामने बैठे दूसरे लोग भी हिस्सा ले रहे थे। मैं तो उस दिन बहुत ही कम बोली थी — पर चेखव हर वाक्य इतनी आत्मीयता से कह रहे थे कि मुझे लगने लगा था कि इतनी सब बातें जैसे सिर्फ़ मेरे लिए ही हो रही हैं। पर आख़िर इतना आत्मीय व्यवहार क्यों कर रहे हैं चेखव ? कहीं इसलिए तो नहीं कि ये सचमुच मुझे कोई कुमारी फ्लोरा ही समझ रहे हों। मैंने सुन रखा था कि बड़ी छोकरियों की ओर वह सहज ही आकर्षित हो जाते हैं। मेरे मन ने कहा—नहीं, इन्हें इस भ्रम में नहीं रखना चाहिये। मैं सोच ही रही थी कि इन्हें कैसे बताऊँ कि इतने में चेखव ने अपने नाटक 'इवानोव' को देखने के लिए मुझे निमंत्रित किया तो मैंने उन्हें बता दिया कि सर्जी तो यूं ही मज़ाक करते रहते हैं, मैं विवाहित हूँ और मेरे एक छोटा बच्चा भी है। मैं रात को उसे छोड़कर कैसे आ सकूंगी भला !.... इतना सुनना था कि सर्जी तो एकदम जल-भुन गये और मुझे डपटते हुए बोले, "क्या वाहियात बकती रहती हो ! बच्चे को सुला आना ! वह अब इतना छोटा नहीं कि उसे तुम तीन घंटे के लिए भी छोड़ न सको।" और चेखव से बोले, "देखिये, इनकी बहानेबाज़ी मत सुनिए और इन्हें ज़रूर बुलाइयेगा !"

और उस समय चेखव ने मेरी आँखों में न जाने कौन-सी दृष्टि से झाँका था और कहा था, "ओ हो, तुम्हारे एक पुत्र भी है। कितने सुख की बात है यह !" उस दृष्टि में न जाने वहाँ क्या था कि उसने बड़े रेशमी बंधनों में जकड़ लिया मुझे ! और मैं ऐसी बावली कि समझ भी नहीं पाई कि उस क्षण से मुझमें कुछ नया जाग गया है ! किसी घटना के सच्चे अर्थों को जान लेना और उसकी ठीक-ठीक व्याख्या कर देना शायद बहुत कठिन होता है ! पर सच तो यह है कि यहाँ कोई घटना घटी ही नहीं। हमने तो एक-दूसरे की आँखों में बस केवल एक विशिष्ट गहराई से देखा भर था ! मगर उफ़ रे वह दृष्टि ! मेरी अंतरात्मा में न जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन-सा नक्षत्र उगा गयी थी—दमदम दमकता नक्षत्र ! मुझे अपने चारों ओर बहुत उजाला नज़र आने लगा था उस क्षण से !....

जब घर वापस आई तो देखा, मेरा बच्चा ल्योवुश्का कुछ चिढ़ा हुआ-सा है जैसे मानो अब रोया कि तब रोया ! मगन-मन मैंने आते ही उसके गालों को प्यार से मसल कर कहा, "ओहो मेरे एक पुत्र भी है। कितने सुख की बात है यह !" मेरा मन कह रहा था, अपनी कल्पना के परों को हवा में तौलूं और दूर-दूर तक की उड़ान भर आऊँ !.... कि इतने में माइकेल दूसरे कमरे से आये—(माइकेल मेरे पति) छूटते ही बोले, "ज़रा शीशे में अपना मुंह तो देखो, कितना सूखा हुआ है ! बाल बिखरे हुए हैं। हुँ, कितना भद्दा ढंग है यह बाल बनाने का ! शायद यह सब अपने उसी चेखव को प्रसन्न करने के लिए चोंचले किये गये हैं। ल्योवुश्का यहाँ रो-रोकर जान दिये दे रहा है और उसकी माताजी किसी साहित्यिक महानुभाव के साथ आवारागर्दी कर रही हैं !"

और, मुझे लगा कि मेरी दुनिया में सुख और संतोष की जो रोशनी फैलने लगी थी, उसने अपने पंख सिमेट लिये हैं—सब कुछ जैसे एक गहरे अँधेरे की पर्त के नीचे दब गया!

फिर सब कुछ पूर्ववत् था—वही घर और वही ज़िन्दगी का क्रम !

● चेखव से प्रथम परिचय के वह क्षण—लगातार तीन बरस तक मेरी यादों में स्वयं को दोहराते रहे। अब तक मेरे दो बच्चे और हो चुके थे—लोड्या और नीना ! अक्सर माइकेल कहा भी करते थे, "अच्छा तो 'माताजी', अब बच्चों ने आपके पंख काट ही दिये न।" मैं उनकी बात चुभती तो ज़रूर थी पर यह भी कैसे कह दूं कि झूठ थी। मुझे याद है, 'रशन थाट' के सम्पादक गोल्वेज़ ने जब सुना था कि मेरी शादी होने जा रही है तब वह बहुत उदास हो गये थे और उन्होंने कहा था, "अब तुम कभी लेखिका नहीं बन सकोगी। तुम्हारी कला सूख जायगी अब।" तब मैंने उन्हें चैलेंज दिया था कि गृहस्थी मेरे लेखन में बाधक नहीं बन सकेगी। पर सचमुच अब मेरे पंख कट गये थे ! पंख ऐसे कटे कि मुझे अब उनके कट जाने की तकलीफ़ तक महसूस नहीं हो पाती थी। अगर बच्चे बीमार न होते और घर का काम ठीक-ठीक चलता रहता तो मैं खुश भी रहती ही थी ! 'खुश' ! कैसा खोखला निर्जीव शब्द है यह !

पर सब कुछ होते हुए भी न जाने क्यों मन तीन साल पहले की यादों में बँधा-बँधा रहता था ! कैसे हैं ये बन्धन ? कौन-से ये पंख हैं ये जो अपनी जड़ें जमाते जा रहे हैं....माइकेल तो कहते हैं, मेरे पंख बच्चों ने काट दिये हैं....

● जनवरी १८९२ में सर्जी अपने पत्र की पच्चीसवीं वर्षगाँठ मना रहे थे। घरेलू इंतज़ामों में मैं भी लगी थी। अकस्मात ही मैंने सीढ़ियों पर चढ़ते हुए दो आदमियों का अक्स सामने के आदमक़द शीशे में देखा। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी एक दृश्य को सारी ज़िन्दगी के लिए यादों में बसा देने को एक झलक ही काफ़ी होती है। आज भी मेरी याद में ताज़ा है सुतोरिन का भद्दा सा सिर और उसके पास ही चेखव का किशोर मधुर चेहरा ! वह अपने दाहिने हाथ की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतली उँगलियों से अपने माथे पर पड़ी एक लट को पीछे कर रहे थे। अधखुली-सी थीं उनकी आँखें और ओंठ रह-रह कर बड़े सहज ढंग में हिल रहे थे। वह कुछ बोल रहे होंगे जो मैं सुन नहीं पा रही थी। मेरे मन में वही तीन साल पहले की सिहरन कसमसा गई। मैं पेसोपेश में पड़ गयी, पता नहीं वह मुझे पहचानेंगे भी या नहीं ? उन्हें याद भी होगा या नहीं कि तीन साल पहले उन्होंने बड़ी आत्मीयता से किसी से बातें की थीं। खैर, यह तो भला वह नहीं ही जानते होंगे कि उनकी वह आत्मीयता मेरी नस-नस में बस चुकी है !

न जाने किस सम्मोहन से खिंची-खिंची मैं उनके पास गयी। अभिवादन किया और कहा, "मुझे उम्मीद नहीं थी कि आपके दर्शन होंगे।" उन्होंने उसी सहज मुस्कान से कहा, "किंतु मुझे तो थी। कहो कैसी हो? मैंने तुमसे कहा था कि अपनी कहानियाँ मेरे पास भेज देना, मैं देखकर लिखूंगा, पर तुमने भेजी ही नहीं।" मैं कुछ बोलूँ-बोलूँ कि खुद ही बोले, "लड़कियाँ बड़ी जाहिल होती हैं। मेहनत तो तुम लोगों के वश की बात ही नहीं। जब कि बड़ा लेखक बनने के लिए परिश्रम बहुत जरूरी होता है। खूब लिखना चाहिए और उसे फिर-फिर माँजना चाहिये, माँजते-माँजते दस पृष्ठों के तीन पृष्ठ कर देने चाहिये। तब जाकर चीज़ बढ़िया बनती है। अरे, तुम लोग तो ऊन के गोले-के-गोले बुनती-उधेड़ती हो, तुममें तो यह धैर्य और अधिक होना चाहिए।"

बहुत-से लोग आये हुए थे। तमाम बड़े-बड़े लेखक, आलोचक, कवि और पत्रकारों से घर भरा था। चेखव मेरे साथ एक खिड़की के पास अलग जाकर बैठ गये— मैंने कहा, "हमें इस तरह अलग नहीं बैठना चाहिए, यहाँ तो सभी लोग आपको जानते होंगे।" मेरे सवाल का जवाब उन्होंने नहीं दिया और जाने कहाँ खोये-खोये-से बोले, "क्या तुमने एक बात महसूस की थी? पिछली बार तीन साल पहले जब हम पहली बार मिले थे तो हमारा परिचय एकदम नया ही हुआ था लेकिन लग ऐसा रहा था कि न जाने कब के बिछुड़े हुए हम मिले हैं!" मैं उन्हें जवाब देने लायक अपने पास कोई शब्द न ढूंढ़ सकी। केवल सिर हिलाकर, आँखें झुकाकर मैंने उन्हें स्वीकार-भाव जता दिया। तो बोले, "मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ। ऐसा भाव एक-दूसरे के प्रति दोनों के मन में एक साथ ही उठ सकता है। मैंने ज़िन्दगी में पहली बार किसी के लिए वैसा अनुभव किया था। इसीलिए मैं उस अनुभव, उस स्फुरण को भुला नहीं सका। वह याद आज भी मेरे दिमाग में ताज़ा है। पर देखो तो, कितनी विचित्र है यह बात कि हम एक-दूसरे के बारे में बिल्कुल नहीं जानते।"

मैंने कहा, "लेकिन यह न भूलिये कि यह इस जीवन का अलगाव नहीं है, किसी पहले जनम की बात है जो बहुत समय पूर्व भुलाई जा चुकी है! शायद कई जनम बीत गये हैं जब हम एक साथ थे।"

चेखव का कहानीकार जैसे जाग उठा बोले, "भला यह तो बताओ कि उस जनम में हमारा-तुम्हारा क्या नाता रहा होगा ?

मैंने जल्दी से जवाब दिया, "इतना तो निश्चित है कि कम-से-कम पति और पत्नी का तो संबंध नहीं ही होगा।" हम दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही हँस पड़े। कितनी निश्छल थी उनकी वह हंसी! कितनी शिशुवत्!

पर दूसरे ही क्षण फिर वह अपनी खयाली दुनिया में खो गये। ख्वाब देखते-देखते जैसे बोल रहे हों—कहने लगे, "लेकिन हम एक-दूसरे को बेइन्तिहा प्यार ज़रूर करते थे। हम अभी किशोर ही थे.... हमारी मृत्यु हो गयी थी.... एक जहाज़ टूट जाने से ...."मैंने भी उनकी खयाली दुनिया में प्रवेश करके कहा, "हाँ-हाँ, मुझे भी कुछ-कुछ याद आ रहा है।" वह बोले, "अरे-अरे रुको, देखो मुझे सब साफ़ याद आ रहा है। बहुत देर तक हम लहरों से जूझते रहे थे....तुम्हारी बाँहें मेरी गर्दन में माला जैसी लिपटी थीं!" "हाँ-हाँ, मैं बहुत डर गयी थी। तभी तो ऐसा किया था मैंने। तुम जानते हो न, मैं अच्छी तरह तैरना नहीं जानती।.... सचमुच मुझे याद आ रहा है, तुम्हारे डूब जाने का कारण मैं ही थी। मैं न होती तो तुम पार हो गये होते...."

"भई, सच बात तो यह है कि मैं भी कोई अच्छा तैराक नहीं हूँ। बहुत मुमकिन है कि यह हुआ होगा कि पहले मैं डूबा होऊँगा और तब तुमको भी अपने पीछे खींच लाया होऊँगा।"

"जाने दो, इसके लिए मैं तुम्हें दोषी नहीं ठहराती। और फिर सबसे सुखद बात तो यह है कि अब हम फिर मित्र रूप में एक-दूसरे को मिल गये हैं।"

"पर, क्या अब भी तुम मुझमें उतना ही विश्वास रखती हो?"

मैंने अपने स्वरों में शरारत भरकर कहा, "भला तुम्हारा विश्वास कैसे कर सकती हूँ मैं। बचाने के बजाय तुमने डुबो जो दिया था मुझे!"

"तो तुमने मेरी गर्दन क्यों नहीं छोड़ी थी?"

हम दोनों दूसरी ही दुनिया में उड़ रहे थे कि एक महोदय हाथ में प्लेट लिये हुए हमारी तरफ़ आये और चेखव से बोले, "मैं अपने साथी से अभी तुम्हारी ही कहानियों की चर्चा कर रहा था कि वह बहुत दिलचस्प होती हैं। बॉन बॉन जैसे मीठी!"

इस बॉनबॉन शब्द पर सब लोग बड़ी देर तक हँसते रहे। वह महोदय चले गये तो कुछ देर बाद अचानक ही मैंने याद करते हुए कहा, "मैं तुम्हारी कितनी-कितनी प्रतीक्षा करती थी....मेरा मतलब है, इस जन्म में। जब मैं मास्को में थी—अपने विवाह से पहले।"

दूने अचरज से चेखव बोले, "भला मेरी प्रतीक्षा क्यों करती थी?"

"इसलिए कि मैं तुमसे परिचय प्राप्त करना चाहती थी। एक तो तुम्हारी कहानियों के जादू ने मेरे मन को अपने वश में कर लिया था, ऊपर से मेरे भाई के एक मित्र थे पौपोव। वह कहते थे कि तुम उनके लँगोटिया यार हो। तुम्हारी तारीफ़ भी वह इस क़दर करते थे कि कुछ पूछो मत। उन्होंने मुझसे यह भी कहा था कि अगर वह मेरी ओर से तुम्हें निमंत्रण देंगे तो तुम आओगे ज़रूर! मैंने कितनी प्रतीक्षा की किंतु तुम कभी आये तो नहीं।"

"अपने उन पौपोव महोदय से, जिनसे मेरी कभी कोई मित्रता नहीं रही, न कभी मैं उनसे मिला ही था, कह देना कि वे मेरे सबसे बड़े दुश्मन हैं।" जाने कैसी गंभीर उदासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने कहा !

फिर हम मास्को, पीटर्सबर्ग, गोल्तसेव और रयान थॉट के बारे में तमाम बातें करते रहे। बातें करते-करते अचानक जैसे कुछ याद आ गया हो, वे बोले, "तुम्हारी उम्र क्या है ?"

"अट्ठाइस साल।"

"और मैं बतीस का हूँ। जब हम पहले-पहल मिले थे तो अब से तीन वर्ष छोटे थे, यानी पन्द्रह और उन्तीस ! ओहो, तब तुम्हारी कितनी हसीन उम्र थी !...."

इतने में क्या देखती हूँ कि माइकेल बाहर से आ रहे हैं। मेरे पास आकर ज़रा तीखेपन से वह बोले, "मैं घर जा रहा हूँ। तुम ?"

"मैं ज़रा ठहरूँगी।" मेरा इतना कहना था कि चेखव की ओर देखकर अजब तल्खी से वह बोले, "हाँ, हाँ, वह तो तुम करोगी ही।"

पहली बार वह चेखव के सामने थे। मैं परिचय न कराती तो असभ्यता होती। अजब से खिंचाव-तनाव की स्थिति में ही मैंने दोनों का परिचय कराया। दोनों ने औपचारिक ढंग से हाथ मिलाये। माइकेल के मुंह पर केवल उदासीनता ही नहीं बल्कि शत्रुता का-सा भाव था। उसे देखकर मुझे कुछ बहुत अचरज भी नहीं हुआ। मगर मैंने साश्चर्य देखा कि चेखव ने पहले मुस्कराने की चेष्टा की मगर मुस्कुरा न सके। और एक विचित्र अभिमान के-से भाव से उन्होंने अपने सिर को झटका दिया। दोनों एक-दूसरे से कुछ नहीं बोले। माइकेल फ़ौरन ही लौट भी गये। माइकेल का रुख देखकर मैं समझ गयी कि आज घर पर हंगामा ज़रूर मचेगा। पर मिलाने की कल्पना मैंने की थी —उससे कहीं अधिक बवाल हुआ। चेखव से ईर्ष्या करने वाले साहित्यकारों की भी कमी नहीं थी। उन्हीं में से किसी एक साहित्यकार नाम के छोटे दिल के महोदय ने माइकेल को जड़ दिया कि जब वह चले आये तो चेखव ने बड़ी डींगें हाँकीं और कहा कि लीडिया को वह तलाक़ दिलवा लेंगे और उससे शादी करके ही रहेंगे। तमाम लोगों ने उन्हें सहायता का वचन भी दिया तो मारे खुशी के चेखव ने लीडिया को कंधों पर उठा लिया। ऐसी बेसिर-पैर की बातें सुन कर माइकेल का गरम होना भी स्वाभाविक ही था। माइकेल को तो मैंने जैसे-तैसे समझा लिया कि यह सब उनसे कम प्रतिभाशाली लेखकों की ईर्ष्या और द्वेष के कारण है। चेखव से साहित्य में टक्कर ले नहीं पाते तो लोग अपनी खीझ इसी तरह उतारते हैं। माइकेल मान भी गये। लेकिन स्वयं मेरे ही मन में एक काँटा-सा खटका कि कहीं किसी समय शराब अधिक पी जाने पर उन्होंने कुछ अंट-शंट कहा ही तो नहीं है। यह सोचकर मैंने उन्हें एक खत लिखा। उसका उत्तर वापसी डाक से आया :

'तुम्हारे पत्र ने मुझे बड़े कष्ट और भ्रम में डाल दिया है। इस सबका मतलब आखिर क्या है ? मुझमें इतना आत्मसम्मान अवश्य है कि मैं अपनी सफ़ाई में कुछ नहीं कहूँगा। किन्तु जो कुछ तुमने लिखा है, उससे मालूम यही होता है कि किसी ने मेरे बारे में झूठी बातें गढ़कर फैला दी हैं। और कुछ न कहकर मैं तुमसे केवल एक सवाल पूछता हूँ कि क्या तुम मेरा उतना भी

(शेष पृष्ठ १२५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० जगदीश गुप्त

शाम को हर कली
झँझरीदार गुम्बद बनाती है,
जिसकी झँझरियों से
बारीक हरी कमानियों पर टँगी हुई
किंजल्क की उठी-उठी पीली शिराएँ
उन बदलियों की ओर झाँकती हैं
जो कुसुम्बी ओढ़नियाँ ओढ़े
डूबते सूरज के बारे में---घुल-मिलकर
सर झुकाए बहुत देर से बातें कर रही हैं।

हवा की उँगलियों ने छू दिया
कि एक-एक कर सारी झँझरियाँ
खुलकर अपने चारों ओर फैल गयीं
गुम्बदों का सारा जादू टूट गया।

हर फूल, एक दूध-रंग का
छः अराओं वाला पतला पहिया—
ऐसा कि जिसकी लचीली अराएँ
परिधि से बाहर निकलकर
चार दिशाओं को छः हिस्सों में बाँटती हुई
सब ओर लटक गयी हैं।
उनको स्वतः विनत होते देखकर
बारीक हरी कमानियों पर उठी पीली
किंजल्क-शिराएँ
विजय-गर्व से और तनी जा रही हैं।

सुदर्शन के फूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

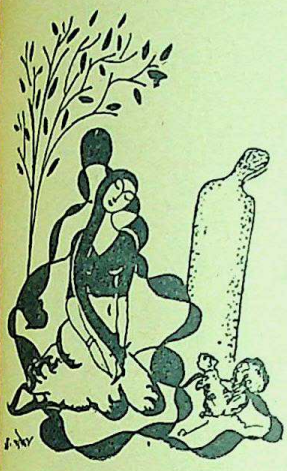

लक्ष्मीकान्त वर्मा

●

अनार का वह पेड़ जिसके फूल लाल अंगारों की भाँति दहकते थे और उस पेड़ पर रहने वाली वे गिलहरियाँ जो अशोक-वन में वन्दिनी सीता की सहचरी थीं, निशि के घुटते और टूटते जीवन की प्रत्यक्ष साक्षिणी हैं।...अपने आप में कसमसाते क्षणों की मर्मस्पर्शी कहानी।

निशि के कई पत्र आये थे लेकिन प्रत्येक उत्तर में मैं अपने आने की बात जान-बूझकर टाल जाता था। सोचता, वह अकेली विन्दसर में है। वहाँ उसने अपना जीवन एक नये सिरे से शुरू किया है, फिर मैं उस साधारण जीवन में एकदम पूर्ण तूफ़ान लेकर कहाँ जाऊँ! शान्त-स्निग्ध वातावरण को सहसा कोलाहलपूर्ण बना देने की इच्छा भी नहीं थी। मैं जानता था कि निशि के विचारों में, उसके संस्कारों में और उसकी स्थितियों में कोई समानता नहीं है। वह जिस संस्कार को अपनी आत्मा की आवाज़ मानती है, वह शायद उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी भी है और पलायन की उक्ति भी। इसीलिए उसकी दो विभिन्न मनस्थितियों के बीच में पड़ना नहीं चाहता था। बार-बार उसके आग्रह को टालता जाता था। जहाँ तक हो सकता था, उत्तर भी नहीं देता था।

लेकिन पिछले पत्र में उसने अपनी अस्वस्थता की बात लिखी थी। उसने लिखा था कि उसे फिर पीलिया हो गया था। अब अच्छी है। कुछ दिनों से कालेंज भी जाने लगी है। प्रिंसिपल होने के नाते काम तो ज्यादा था ही, संस्कारवश वह ज्यादा बोझिल-बोझिल-सी रहती भी है। सोचा, चला जाऊँ। दो-चार दिन रहने से हो सकता है, वह जल्द स्वस्थ हो जाय। तीन-चार दिन तक मेरे मन में यही संघर्ष चलता रहा था। अन्त में मैं अपने को रोक नहीं

वन्दिनी सीता, अशोक-वन और मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया। वहाँ चला ही गया।

और अब आज छः महीनों बाद जब यहाँ अपने आफ़िस में बैठकर अनेक पत्रों का उत्तर लिख रहा हूँ तो सहसा आज फिर निशि का पत्र आया है। उसने लिखा है कि उसकी गिलहरियाँ अब बिलकुल उसका आँगन छोड़कर जाने कहाँ चली गयी हैं! आँगन के अनार के पेड़ की सारी कलियाँ न जाने किस रोग में पड़कर मुरझा गयी हैं। माली कहता है कि अनार को भी पीलिया हो गया है। वह लाख कोशिश कर रही है कि उस हरे, लाल, दहकते अंगार जैसे फूल वाले अनार के पेड़ में फिर से जान आ जाय, फिर से उसमें एक चेतना की लहर दौड़ जाय लेकिन उसका सारा प्रयास ही विफल जा रहा है.....।

सोचता हूँ, उसे क्या उत्तर दूँ..जो लिखना चाहता हूँ, जाने क्यों उसे लिखने का साहस ही नहीं हो रहा है? इतना बड़ा कटु सत्य कहूँ कैसे? सुननेवाले इसका ग़लत अर्थ भी तो लगा सकते हैं....लेकिन शायद यह मेरा स्वीकारा हुआ सत्य है,...मेरी अपनी प्राप्ति है...मेरा अपना स्वत्व है जो मुझे रोक रहा है। मैं खामोश हूँ; देखूँ, आगे क्या होता है?... आदमी जब आदमी को छोड़कर पशु-पक्षियों को अपना सहचर बनाता है तो कहीं-न-कहीं वह बड़े गहरे पलायन की ओर उन्मुक्त होता दीख पड़ता है।

और तब सहसा एक धुंधली-सी याद दिमाग़ में नई लहर बनकर दौड़ जाती है...शायद पहली बार ही मैं बिन्दसर गया था। एक सप्ताह ही रहा था निशि के साथ। वह उस समय बीमारी से ही उठी थी, पीलिया से मुक्ति पा चुकी थी....और अपने आँगन के अनार के पेड़ और उस पर रहनेवाली गिलहरियों से अपना पूर्ववत् सम्बन्ध स्थापित कर लिया था... ....वह नित्य कुछ चने, कुछ मूंगफली और फल लेकर शाम को अनार के पेड़ के नीचे बैठती थी....जाने कितनी गिलहरियाँ उसे घेर लेती थीं, उसके शरीर पर वे रेंगती थीं। हाथ से छीन-छीनकर दाने, मूंगफली और अमरूद तक खा जाती थीं....कुछ उसके माथे पर चढ़कर उसकी सूनी माँग को चूमने लगती थीं...कुछ आँचल सरका देती थीं....कुछ बिल्कुल उसकी गोद में बैठकर खेलती थीं और कुछ उसके पैरों पर रेंगकर उसे जैसे आत्म-विह्वल कर देती थीं। निशि इन सबसे काँप-काँप जाती थी....लेकिन फिर जैसे मन को दबा कर, दाँत पीसकर वह सब कुछ सह लेती थी, सब कुछ सहने की क्षमता दिखा देती थी। एक दिन जब मैंने उसके आस-पास भटकनेवाली गिलहरी को अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया था तो सहसा उसकी मुक्ति की याचना करते हुए उसने कहा था, "छोड़ दो इस गिलहरी को, तुम नहीं जानते ये कौन हैं? रावण के अशोक-वन में अकेली वन्दनी सीता की ये ही सहचरी थीं....इनकी पीठ पर यह काली धारियाँ सीता के स्पर्श से ही बनी हैं....इनकी नन्हीं आत्मा में बड़ी सहानुभूति है....इन्हें छोड़ दो....छोड़ दो!...."

और मैंने उसे छोड़ दिया था। मेरी मुट्ठियों से छूटते ही वह एकदम निशि के ऊपर चढ़ गयी थी। उसके माथे पर बैठी-बैठी चीं-चीं कर रही थी। मैंने देखा, उस अनार के पेड़ के नीचे बिखरे बालों और गिलहरियों के बीच, सफ़ेद साड़ी में निशि बिल्कुल सीता ही जैसी पावन, निष्कलंक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौम्य लग रही थी....

लेकिन उसी के दूसरे दिन अजीब घटना घटी थी। अपने निश्चित समय पर उस दिन भी गिलहरियाँ अनार के पेड़ के नीचे आ गयी थीं। निशि उन्हें रोज़ की भाँति आज भी दाना, मूंगफली और काजू खिला रही थी। सब उसे घेरकर खड़ी थीं। मुझे जाने क्यों यह अच्छा नहीं लग रहा था। मैंने कहा, "यह क्या निशि, तू इन गिलहरियों के समक्ष इतनी आत्मविभोर क्यों हो जाती है?... क्या तेरा दिमाग़ खराब हो गया?"

और तब जैसे उसके तन-बदन में एक बिजली-सी दौड़ गयी थी। लगता था, जैसे मैंने कहीं उसके रिसते नासूर को छेड़ दिया था। मेरी सहज और साधारण बात से उत्तेजित होकर उसने कहा था, "तुम्हें ऐसा ही लगता है.... मेरी हर बात में तुम कुछ-न-कुछ पख लगाते ही हो.... तुम्हें क्या पता, ये गिलहरियाँ मेरा कब-कब साथ देती हैं.... !"

यह छोटा-सा वाक्य उसने ऐसे भावावेश में कहा था कि मैं एकदम चुप हो गया था। निशि की आँखें भर आयी थीं। वह जाने क्यों एकदम सिहर उठी थी। मैं देख रहा था। गिलहरियों में से एक उसके गर्दन पर चढ़ गयी थी और सहसा आँचल के सहारे नीचे सरकने की चेष्टा कर रही थी। आँचल पर वह जैसे ही सरककर आयी थी, वैसे ही आँचल भी सरक गया था। निशि एकदम-से चौंक पड़ी थी। उसके हाथ की मूंगफली नीचे ज़मीन पर गिर पड़ी थी। उसने घबराकर अपने दोनों हाथों से अपना आँचल कस लिया था और एकदम हैरान होकर वहीं बैठ गयी थी। जब उठी थी तो उसकी आँखों का आँसू और भी गाढ़ा हो गया था। पलकों की कोर पर वह जाने क्यों जम गया था! उसे देखने से यह स्पष्ट लगता था कि वह आतंकित तो नहीं किन्तु कहीं आवश्यकता से अधिक चंचल और विह्वल हो गयी है। देखकर मुझे सहसा हँसी आ गयी थी। निशि मेरी हँसी सुनकर कमरे में चली गयी थी। दरवाज़ा बन्द कर लिया था। कुछ अजीब लज्जित - सी हो गयी थी।

मेरी हँसी शान्त हो गयी फिर भी निशि की मनःस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया था। वह वैसे ही कमरे में पड़ी थी, अभी तक बाहर नहीं आयी थी। मैंने बाहर ही से दो-एक बार पुकारा किन्तु वह नहीं बोली। मुझे थोड़ी परेशानी-सी हुई, मैं कमरे की ओर बढ़ा। निशि को पुकारा फिर भी नहीं बोली। वह कुछ अजीब विह्वल-सी थी। मुझसे वह मार्मिक वेदना देखी नहीं जाती थी। मैंने उसके माथे पर हाथ रखकर जगाना चाहा। शायद पहली बार ही मैंने निशि का स्पर्श किया था। उसका सारा शरीर ही पारे की तरह काँप रहा था। वह मुझे अपनी बड़ी-बड़ी हैरान आँखों से देख रही थी। उस उजाले में निशि की द्रवित-तरल आँखों के मूक स्वर-खण्डों को अर्थ देना जैसे मेरे वश की बात नहीं थी। निशि जाने किस कौतूहल और संदर्भ से संलग्न बिल्कुल बदली हुई-सी लगती थी। तभी मैंने निशि को सहारा देकर कमरे के बाहर लाने की चेष्टा की लेकिन मुझसे हाथ छुड़ाकर वह फिर उसी चारपाई पर जा बैठी। मैंने उसे बहुत बुलाया, उसका ध्यान दूसरी ओर ले जाना चाहा, लेकिन वह जैसे इन सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साँसों के बीच उसने महीने भर तक पत्नी का अभिनय किया था. फिर ठीक एक महीने बाद अपने पति के मृत्यु के पश्चात् जब घर वापस आयी थी तो वह बिलकुल सूख गयी थी। महीने भर के भीतर ही वह जैसे सारी वेदना में डूब गयी थी।

....कुछ दिनों पहले उसने मुझे लिखा था कि वह एकदम अकेले रहते-रहते ऊब गयी हैं। इन गिलहरियों का साथ भी अब उसे अच्छा नहीं लगता....अकेलापन, निरीह बेबसी उसे डस जाती है....उसके लाख चाहने पर भी वह उससे अलग नहीं हो पाती....एक अन्तर्वेदना उसे भीतर-भीतर पिघला देती है कि वह एकदम विह्वल हो जाती है! वही दमा से फूलती हुई साँस.... वही टूटते, रुग्ण, मांसहीन केवल हड्डियों के हाथ उसे बार-बार घेर लेते हैं!....

लेकिन यह सत्य है कि उस दिन लाख चाहने पर भी, लाख भयानक स्मृतियों के बावजूद भी वह उस अनार के लाल फूल को अलग नहीं कर पाती थी। गिलहरियाँ जब उसके आँचल को हटा देतीं और उसके हाथ को छू देतीं तो वह अपने सहज आवेश को रोक नहीं पाती.... जैसे कोई भी भयानक-से-भयानक स्वप्न उसे लाख घेरने के बावजूद यह साहस नहीं दे पाता था कि वह उस फूल को अपने जूड़े से नोंचकर फेंक दे। तमाम रात वह मेरे पास ही मेरे कमरे में बैठी रही। मुझसे उसने उस रात तरह-तरह की बातें कीं—गिलहरियों से लेकर अपने कालेज की उस अध्यापिका के विषय में उसने अजीब-अजीब बातें बतायीं जिसे न तो मैंने कभी देखा था, और न जानता था।

आधी से ज्यादा रात बीत गयी थी। इस समय निशि बिल्कुल एक दूसरी मनःस्थिति में थी। उसका आवेश भी अब भिन्न प्रकार का था। उसने अपने जूड़े के फूल को अपने हाथ में ले लिया था और बात करते-करते उसे मुट्ठियों में कस लेती थी। वह बिलकुल निरावरण तरीक़े से मुझसे बातें कर रही थी। कह रही थी कि यह बिन्दसर, जहाँ उसका एक भी परिचित व्यक्ति नहीं है, उसे कुछ अजीब-सा लगता है.... ....इस अकेलेपन में जब वह डूब जाती है, तो उसे केवल मेरी याद आती है। मैंने कहा, "तुम तो पूरी तपस्विनी की तरह रहती हो... बिलकुल आश्रमवासियों की भाँति, फिर मेरी याद आने से तुम्हारा व्रत टूटता नहीं होगा....?"

गोर्की के शब्द : मृत टॉल्सटाय के प्रति

मैं रो रहा हूँ। मुझे याद नहीं कि मैं पहले कभी इतना हतप्रभ और अधीर होकर, फूट-फूटकर रोया हूँ। मैं नहीं कह सकता कि मुझे उनसे (टाल्सटाय) से प्यार था, लेकिन यह भी तो महत्वपूर्ण है कि मुझे उनसे प्यार था या नफ़रत? वे मेरी आत्मा में सदा भयावह, विलक्षण मनोवेग भर दिया करते थे, यहाँ तक कि दुःख-दायी बातें भी, जो वे प्रबुद्ध करते थे, ऐसा रूप अंगीकार कर लेतीं जो उदास नहीं करती थीं बल्कि आत्मा के बन्धनों को तोड़कर व्यापक करती थीं, जो आत्मा को अधिक संवेदनशील और उदार बनाती थीं। जब वे किसी द्वार या, कोने से निकल कर बाहर आते तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"व्रत?"....जैसे वह कुछ चौंककर मुझसे बोली, "व्रत मेरा नहीं है.... मेरा कोई व्रत नहीं है।" थोड़ी देर मौन होकर उसने फिर कहा, "मैं क्या जानूँ....जाने क्यों मेरा जी नहीं करता....घर की कल्पना ही मुझे बेहोश करती है....क्या घर? कैसा घर?....सभी केवल अपने-अपने स्वार्थ की बातें करते हैं!...."

"घर तो स्वार्थ का ही नाम होता है निशि!....अपना स्वार्थ....अपने व्यक्तित्व का, जो कुछ भी निजी है—उसका स्वार्थ। स्वार्थ न कहना चाहो तो उसे कुछ और कह लो....चाहो तो अपना हित कह लो..."

"हित की बात मैं नहीं जानती.... घर केवल पुरुष की कल्पना है....उफ़! कितना भयानक लगता है घर....एक स्त्री....एक पुरुष....जैसे संसार कुछ और है ही नहीं....जीवन कुछ और है ही नहीं!...."

और अब तक वह काफ़ी तीखी अनुभूति से आच्छन्न हो चुकी थी। वह अपने जिस्म के एक-एक दाग़ दिखला रही थी कि किस प्रकार उसका रोगी पति बिल्कुल निर्दयता से उसके शरीर के साथ खेलता था, कैसे वह उस दमा के रोग में भी जलती सिग्रेट का धुआँ उसके मूँह पर उगल देता था! कभी-कभी उसकी सफ़ेद, बिल्कुल मैदे जैसे शरीर पर वह सिग्रेट की लाल चिनगी छन से रख देता था और जब वह चौंक जाती थी तो केवल उस चौंकने की मुद्रा का रस लेता था....

और उस रात जब सहसा उसने कहा था कि वह जीवन में मुझको सबसे अधिक चाहते हुए भी नहीं चाहती...तो मैं एक विचित्र भावावेश में आ गया था। मैंने उससे कहा था कि वह कहीं अपने को धोखा दे रही है। कहीं वह अपने समूचे व्यक्तित्व से छल कर रही है।

हाथ में लिये हुए जिस अनार के फूल को वह बैठी थी, वह उसकी मुट्ठियों में पसीज गया था। जब कभी वह अपनी मुट्ठी खोलती तो लगता जैसे वह सारा-का-सारा गल रहा है। लेकिन जाने क्यों वह उसे फेंक नहीं पाती थी। वह केवल उसे अपनी मुट्ठी में कसकर बाँधे हुए थी।

लेकिन दूसरे ही क्षण जब मैंने सहज आवेश में उसकी बन्द मुट्ठी पकड़ ली थी और उसके हाथ से वह पसीजता फूल वापस लेना चाहा था तो वह बिलकुल असहाय-सी

बड़ा अच्छा लगता था। वे अपने पैरों को घसीटते हुए चलते थे, मानो असमानताओं में समानता ला रहे हों, और तब किसी के पास प्रकाश के समान आते थे, जल्दी-जल्दी, लड़खड़ाते हुए—किसी ऐसे व्यक्ति की चाल से जिसको इस पृथ्वी पर चलने का अनवरत अभ्यास हो। वे अपनी अंगुलियाँ अपनी पेटी में फँसा लेते थे, एक क्षण के लिए रुकते थे और अपने चारों ओर एक तीव्र दृष्टि डालते थे। उस एक क्षण में अपने चारों ओर की हर नयी चीज़ को और उस नयी चीज़ का मतलब समझ लेते थे।

—गोर्की

(लियो टॉलस्टाय की मृत्यु पर बी० जी० कोरोलेन्को के नाम लिखे किन्तु न भेजे गये गोर्की के पत्र से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी गोद में गिर गयी थी। उसने अपनी मुट्ठी भी खोल दी थी। फूल उसके हाथ से बिस्तर पर गिर गया था और वह बिलकुल सिमटी-सी मेरे पास, मेरे बिलकुल पास बैठी रह गयी थी। मैंने उसे बिलकुल अपने पास ही सहमी हुई, अप्रत्याशित आवेश से विह्वल देखकर धीरे-से अलग कर दिया था। मैं जानता था, वह जितनी कठोर बनना चाहती थी, उतनी क्षमता उसमें है नहीं। मुझे लगा जैसे मैंने उसके व्यक्तित्व की उस कठोरता को छूकर बिल्कुल मिट्टी कर दिया है....और अब जाने क्यों यह मिट्टी मुझे अच्छी नहीं लग रही थी। मुझे लगता था जैसे मैं हार गया हूँ....। पराजित हो गया हूँ....।

उस अंधेरी रात में मुझसे उस कमरे में नहीं रहा गया। मैं वहाँ से उठकर बिलकुल बाहर चला गया। रात भर उन्हीं नंगी सड़कों पर घूमता रहा—परेशान, बोझिल और चिन्तित-सा, और जब घर लौटा तो सुबह हो चुकी थी। इतना थक गया था कि चारपाई पर पड़ते ही मुझे झपकी लग गयी थी। मैं उसे नींद इसलिए नहीं कहता क्योंकि लाख प्रयास करने पर भी भी मुझे गहरी नींद नहीं आ सकी थी। मैं उस नींद की दशा में भी जाग रहा था। मैं देख रहा था कि निशि कई बार मेरे कमरे में आयी। चुपचाप एक बार चाय रख गयी। फिर झाँककर देख गयी। थोड़ी देर बाद फिर आयी। मुझे सोता हुआ देखकर एक बार उसने मेरी चादर खींचनी चाही लेकिन फिर रुक गयी। अन्त में बड़ा साहस करके उसने मुझे जगाया। बिना कुछ कहे चाय ढालकर देने के बाद चली गयी। मैंने उसे देखा....वह बिलकुल सरल थी। लगता था, रात की सारी कठोरता धुल चुकी है और वह केवल एक स्त्री है, पत्नी है, सहज और सुन्दर है। मैंने उससे कुछ कहना चाहा, रोकना चाहा, चाहा कि रात जो कुछ भी हुआ उसके लिए मैं क्षमा माँग लूं लेकिन वह रुकी ही नहीं। ठीक समय पर वह तैयारी करके कालेज चली गयी। वापस आयी तो गिलहरियों को चारा देने में व्यस्त हो गयी। न तो उसने मेरी ओर विशेष ध्यान दिया और न उसने वह उत्सुकता ही दिखायी कि जिससे मुझे कुछ कहने का साहस होता।

●

आज मुझे वापस चला जाना था। मैं चाहता था कि निशि से साथ बैठकर उससे स्पष्ट कह दूँ कि कोई भी स्मृति इतनी भयानक नहीं बनानी चाहिए कि वह जीवन के सारे सपने ही समाप्त कर दे। मैं उसे यह भी बताना चाहता था कि जीवन का कोई भी क्षण, कोई भी कटु अनुभव सम्पूर्ण जीवन से बड़ा नहीं हो सकता। हर क्षण को अपने आवेग से आने देना चाहिये और जब वह अपने-आप चला जाय और कुछ सीपियाँ, कुछ शंख, कुछ फेन जीवन में छोड़ जाय तो अन्तस्थ करके बैठना नहीं चाहिये। मैं जैसे यह सब एक साँस में कह देना चाहता था लेकिन निशि के पीले चेहरे और उदास आँखों के सामने मुझसे कुछ कहते ही नहीं बनता था। बात मेरी ज़बान पर आ-आकर जैसे रुक जाती थी!

उस दिन निशि ने मुझे विदा करने की सारी तैयारी कर दी थी। सुबह से ही वह इसी में व्यस्त थी। उसने मुझसे रुकने के लिए भी आग्रह नहीं किया था। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर भी उसने वह उत्सुकता नहीं दिखलायी
ी। शाम को उसने समय के पहले ही
ोजन बना लिया था। नौकरों के सहारे
उसने आज कोई भी काम नहीं छोड़ा था।
वह चौके में बैठकर उसने तरह-तरह
ी चीजें बनायी थीं...अन्त में ठीक सात बजे
वह सारा खाना एक थाली में लगाकर मेरे
न ले आयी, बिना कुछ बोले ही रख गयी।
ने समय उसने एक उदास दृष्टि से मेरी
र देखा। मुझे लगा जैसे वह मुझसे
ी सारी चेतना ही लिये जा रही है। मुझे
ने क्यों इतनी करुणा ने घेर लिया कि
ा साहस, जिसे मैंने बड़े संयम से पिछले
ों अपने में बटोरा था, टूट गया। निशि
न दुबारा कमरे में पानी लेकर आयी तो
ने कहा, "तुझे क्या हो गया है निशि?....
ता है, तू यदि सीधे ढंग से नहीं तो किसी
प्रत्यक्ष ढंग से आत्महत्या करना
हती है!...."

निशि चुप रही। उसने जैसे मेरी
न ही नहीं सुनी। मैंने फिर कहा, "और
ा सारा खाना...यह वेराइटी...यह सब
ा है?....तूने तो लिखा था कि बीमार
लेकिन...."

"लेकिन मैं बीमार नहीं लगती....
ही न....?"

"वह भी नहीं निशि....तू बीमार है!...
ा स्वास्थ्य भी खराब है, और दिमाग़ भी....
ा मन अभी भी ठीक है, इसलिए तू
हता है...."

"एक रोज़ ऐसे ही मर भी जाऊँगी....
ौन करो, मैं तुम्हें अब कोई सूचना
ही दूँगी....कोई नहीं...."

मैं देख रहा था, मेरी बातों का मर्म वही
हो रहा था जो मैं चाहता था। मैं चाहता
था कि निशि बीते हुए को भूल जाय। वह
अपने पति को तो भूल ही जाय, साथ ही मुझे
भी भूल जाय। सीता, अशोक-वन और
गिलहरियों को भूल जाय। चाहे तो नये
सिरे से ज़िन्दगी शुरू करे.....नये प्रकार
से, नयी दृष्टियों के साथ सम्पृक्त होकर
जिये...जी सके तो कुछ दिन जीवन के
प्रत्येक महत्वपूर्ण अनुभवों का साक्षात्कार
करके जिये। प्रत्येक साँस का ऋण चुकाकर
जिये। मैंने कहा, "मैं यही चाहता
हूँ निशि....तुम मुझे भी भूल जाओ!
....इन गिलहरियों और उनके साथ
इन गिलहरियों की किंवदन्ति भी
भूल जाओ....यह मानो निशि, कि ज़िन्दगी
जीने के लिये है....केवल पूर्ण रूप से जीने
के लिए....सम्पूर्ण जीने के लिए...."

निशि कुछ नहीं कह रही थी। वह
चुपचाप मुझे घूर-घूरकर देख रही थी।
मेरे प्रत्येक शब्द जैसे उसके व्यक्तित्व पर
से फिसले जा रहे थे। उसकी आँखों में
आँसू अवश्य थे, लेकिन वह जैसे किसी और
बात के हों।

बाहर रिक्शा आ चुका था....नौकर
सामान भी रख चुका था। मैंने निशि से
स्टेशन तक चलने के लिए कहा। वह
तैयार नहीं हुई। बोली, "तुम तो मुझसे
नाराज़ होकर जा रहे हो न....फिर मैं
क्या जाऊँ स्टेशन तक?"

मैं उसके इस वाक्य का अर्थ ही जैसे नहीं
समझ पाया। मैंने उससे कहा, "तू यह
कैसे कहती है निशि....मैंने तो कुछ
भी ऐसा नहीं किया जिससे तुझे कष्ट
पहुँचे, फिर....?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फिर भी तुम जा रहे हो न....?"

"मुझे जाना ही है निशि! मेरे मरीज़ मेरी राह जोहते होंगे....एक हफ्ते में तेरे पास रहा। तेरी दवा भी मैंने कर दी.... तू स्वस्थ है, फिर मेरे जाने में क्या है?

निशि फिर मौन हो गयी। मुझे लगा कि निशि का बहुत-कुछ, जो सरल और सलिल-मय है, वह अब भी जीवित है। उसके पास कुछ भी ऐसा नहीं है, जो उसके बिना व्यक्त हो सके। मैंने भी आग्रह नहीं किया। चुपचाप कमरे से निकलकर आँगन में आकर खड़ा हो गया। अनार के पेड़ पर से अन-गिनत लाल फूल नीचे गिर पड़े थे। आज गिलहरियों ने न जाने क्यों उन्हें कुतर-कुतर कर एकदम फेंक दिया था, और स्वयम् वे जाने किस नशे में चूर इधर-उधर घूम रही थीं। मैं चुपचाप बाहर चला आया। रिक्शे पर बैठकर स्टेशन की ओर चल पड़ा।

●

और आज मैं छः महीने बाद दुबारा बिन्दसर आया हूँ। आज निशि को पीलिया रोग नहीं है। वह अब गुम-सुम, ख़ामोश अकेली बैठी रहती है। उसे गर्ल्स कॉलेज वालों ने प्रिंसिपली से भी निकाल दिया है। कुछ लोगों का कहना है, वह पागल हो गयी है। कुछ लोग उसे अभी भी पागल नहीं मानते। मुझे देखकर वह केवल मुस्कराकर रह गयी। जैसे मेरे पहुँचने को और कोई अर्थ वह देना ही नहीं चाहती....आँगन में जो अनार का पेड़ था, वह काट दिया गया है। उसके धधकते और अंगारे जैसे फूल भी नहीं रह गये हैं। आँगन से गिलहरियाँ भी ग़ायब हो गयी थीं। मुझे लगा जैसे सीता अशोक-वन में है, लेकिन न तो अशोक का वृक्ष है, न अनार, न गिलहरियाँ हैं और न उनकी सहानुभूति....

लेकिन जाने कहाँ से एक नन्हीं गिलहरी अभी-अभी दौड़ी हुई आयी है। जाने कैसे वह फिर निशि के आँचल में लिपट गयी है.... उसका आँचल सरक गया है.... उसकी पुरानी विह्वलता जैसे लौट आयी है.... उसके ओंठ, हाथ और सारे शरीर में एक विचित्र प्रवाह की कँपकँपी-सी हो रही है। रह-रहकर सिहर जाती है। कुछ कहना चाहती है किन्तु जैसे कह नहीं पाती है। गिलहरी...नन्हीं गिलहरी ने उसके बालों को भी बिखेर दिया है.... वह सहसा उठकर खड़ी हो गयी है। मेरे पास उसी अस्त-व्यस्त वेश में चली आयी है.... मेरी गोद में सिर डालकर जाने क्या कहती जा रही है। मैं उसे सुनना चाहता हूँ, लेकिन स्वर इतने अस्पष्ट हैं कि कुछ सुनायी नहीं पड़ता....मैंने उसकी मार्मिक वेदना को जानना चाहा है, लेकिन जैसे वह उसके अन्तर में कहीं इतनी गहरी दबी है कि उसके सारे जीवन पर फैलकर भी वह अव्यक्त है, अदृश्य और अस्पर्शणीय है। मैं उसे बहुत नज़दीक से देखना चाहता हूँ.... उसकी आन्तरिक पीड़ा को ग्रहण करना चाहता हूँ.... लेकिन वह जैसे उसको इतनी अभिव्यक्ति दे चुकी है कि वह व्यापक हो गयी है। मैं नहीं जानता कि मैंने अच्छा किया या बुरा;लेकिन जाने क्यों जब मैं उसके जूड़े में अपने बटन होल से लाल गुलाब निकाल कर लगा रहा था, तो मुझे लगता था जैसे मैं किसी वन्दनी सीता का स्पर्श कर रहा हूँ.... और निशि एकदम सरल शिशु-सी मेरे वक्ष में सिर डाले सिसक रही थी।● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरी नज़रों में हम (७)

उक्त लेखमाला के अन्तर्गत इस सातवीं किस्त में लेखक ने भारतीय इतिहास और शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में विदेशी दृष्टिकोण का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

प्रभाकर माचवे

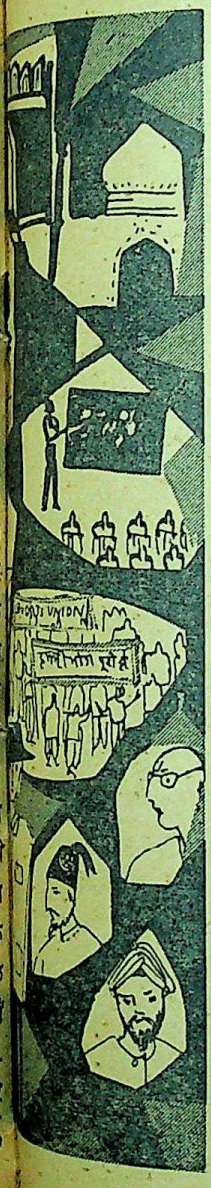

अमेरिका में भारतीय इतिहास पर डॉक्टरेट लिये हुए एक मेरे नौजवान मित्र भारत में आये, एक साल रहे और लौटकर उन्होंने बताया कि "इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी में लन्दन में मुझे अपने विषय की अधिक सामग्री मिली। भारत में बहुत कम विद्वान आधुनिक काल के इतिहास पर शोध कार्य करते हैं। और करते भी हैं तो भावुकता से मुक्त, वस्तुनिष्ठ शोध उनके लिए संभव नहीं।"

मुझे भारतीय सांस्कृतिक इतिहास भी वहाँ पढ़ाना पड़ा—और मेरी धारणा पक्की हुई कि अंग्रेज़ी में भारत के इतिहास के बारे में जो कुछ भी सामग्री है उसे आसानी से तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है : ब्रिटिश या अंग्रेज़ दृष्टिकोण, भारतीय दृष्टिकोण और तटस्थ दृष्टिकोण ! १८५७ को ही ले लीजिए—सावरकर और कुछ साम्यवादी इतिहासकार भी उसे 'हिन्दुओं का' या 'भारतीय जनजातियों का' पहला स्वातन्त्र्य-युद्ध मानते हैं; अंग्रेज़ इतिहासकार उसे एक स्थानीय या क्षेत्रीय प्रभाव तक सीमित सिपाहियों का बलवा मात्र मानते हैं; और फिर कुछ त्रयस्थ हैं जो उसमें भारतीय राष्ट्रवाद की पहली चिनगारी और सामन्ती महत्वाकांक्षाओं का मिश्रण मानते हैं। यों भारतीय इतिहास पढ़ाते समय हर बार मुझे तीन-तीन 'इंटरप्रिटेशन्स' देने पड़ते थे। जैसे अंग्रेज़ इतिहासकार कहते हैं 'आर्यों का आक्रमण'; विद्याभवन से छपी 'वेदिक एज' में एक मतावली यह भी दी गयी है कि आर्य कहीं बाहर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं आये थे—अब तो कुछ पुरातत्वज्ञ यह भी कहते हैं कि द्रविड़ भी बाहर से ही आये थे—और हम उसे पढ़ाते थे सिर्फ इस शीर्षक से—'आर्यों का आगमन'। इस्लाम के भारतीय संस्कृति में योग-दान पर डॉ० ताराचन्द की पुस्तक प्रमाण मानें तो फिर एकान्तिकता से बचना मुश्किल है; विदेशी तो निरन्तर कहते नहीं अघाते कि हिन्दू-मुस्लिम कभी एक नहीं हुए। उनका मिलना भी ऊपरी-ऊपरी या गहरा नहीं था। अकबर का 'दीने-इलाही' उसके बाद नहीं चला, अशोक की धर्म-सहिष्णुता उसके बाद कहाँ टिकी? इस प्रकार से भारतीय इतिहास पर भारतीयों द्वारा लिखी पुस्तकों पर विदेशियों के आक्षेप इस प्रकार से हैं :

—भारतीयों को इतिहास-दृष्टि ही नहीं थी। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में इतिहास-ग्रंथ केवल 'राजतरंगिणी' है और कल्हण का काल ग्यारहवीं शती है।

—भारतीयों के काल-निर्णय में एक वाक्यता नहीं। कालिदास का काल हो चाहे 'गीता' का, मनुस्मृति का या कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' का—भारत के दो से अधिक विद्वान् दो से अधिक सदियों का अंतर सहज उनके काल के बारे में बतायेंगे।

—काल-निर्णय में अक्सर विदेशी विद्वान् यूनानियों के आक्रमण के बाद कई मूर्त्तियों को बतलाते हैं, तो भारतीय विद्वान यूनानी आक्रमण से पूर्व बुद्ध के समय या उससे पहले शिल्प-कृतियों को ले जाते हैं।

—भारतीय इतिहास के साथ पुराण, कथा-गाथा, लोकवार्त्ता, किंवदंती का ऐसा घटाटोप मिला हुआ है कि उसमें से सही-सही चित्र उभरना बहुत कठिन है। उदाहरणार्थ रामायण-महाभारत को भारतीय इतिहासाकार इतिहास का अंग मानते हैं; पश्चिमी विद्वान् उन्हें उपन्यास या 'सागा' मानते हैं। बेचारे बुद्ध के जीवन के साथ भी ऐसी ही ज़्यादती हुई है। विवेक पर आश्रित और भावुकता से बचकर हमारे इतिहास बहुत कम लिखे गये हैं।

—हमारे इतिहासकारों को विभूति-पूजा का रोग है। हर राजा या महा-पुरुष के साथ विशेषणों का अंबार लगाने में हम माहिर हैं और अशोक और अकबर जैसे अपवादों के साथ-साथ समुद्रगुप्त और हर्षवर्द्धन, विक्रमादित्य और चंद्रगुप्त मौर्य, सब एक जैसे 'महान' दिखाये जाते हैं। 'महानता' के मूल्य-निर्णय में इतिहासकार को जिस निर्ममता का परिचय देना चाहिए, वह बहुत कम दिखाई देता है। विशेषतः जब दो परस्पर-विरोधी विभूतियों का सम्बन्ध आता है तब (शायद पश्चिम से सीखी हुई) काले-गोरे में बाँटने की वृत्ति हमारे इतिहासकार दिखाते हैं। और झट से राम-रावण, पृथ्वीराज-जयचन्द, अकबर-राणाप्रताप, शिवाजी-औरंगज़ेब जैसी जोड़ियाँ हमारे इतिहास में यांत्रिक ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं। यदि किसी 'विभूति' पुरुष को मानवोचित दिखाया गया, या उसमें कोई दोष भी दिखाये गये तो एकदम सामान्य जनता नाराज़ हो जाती है। इतिहासकार भी अपनी ज़मीर से ज़्यादह जनसाधारण की धाराणाओं से अपनी स्फूर्ति लेता है।

—भारतीय इतिहास के मध्य-युग में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, राजपूत, मराठा इतिहासकार तो हैं—पर जहाँ इनके सम्मि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लित विचार का प्रश्न उठता है बहुत कम इतिहासकार अपनी प्रिय (प्रदेश, भाषा, जाति-धर्मगत) सीमाओं से ऊपर उठ पाये हैं।

—ख़ास तौर से पश्चिम के प्रभाव के आगमन के बाद भारतीय इतिहासकारों की एकांत राजभक्ति या राजद्रोह-वृत्ति बहुत उभरकर सामने आती है। या तो विन्सेंट स्मिथ के चरणारविंदों में मिलिंदायमान पाठ्य-पुस्तक-प्रणेता मिलेंगे, या फिर 'एशिया एंड वेस्टर्न डामिनन्स' जैसी पणिक्करी सिंह-गर्जना वाले राष्ट्रवादी हैं।

यों जिन भारतीय इतिहास की पुस्तकों को हम पढ़ाना चाहते थे, कोई पूर्णतया उपयोगी ग्रंथ नहीं मिलता था। अंशतः कुछ ग्रंथों के अध्याय अच्छे थे। इस दिशा में यह लक्ष्य करने की बात है कि बंगला, तमिल, मराठी, तेलुगू, उर्दू, हिन्दी में बहुत से मौलिक ग्रंथ हैं जिनमें बहुत अच्छी भारतीय इतिहास-विषयक सामग्री है, जो अंग्रेज़ी में अनुपलब्ध है : नीहार रंजन राय का 'बांगलार इतिहास', वैयापुरी पिल्लई के कई तमिल लेख; न० र० फाटक, सर देसाई, बेंद्रे, शेजवलकर, पगडी आदि के मराठा और पेशवा इतिहास पर ग्रंथ; सुखरम् प्रताप रेड्डी का 'आंध्रों का सामाजिक इतिहास' अतीक के '१८५७ के उर्दू अख़बार', गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के मध्ययुगीन और राजस्थानी इतिहास पर ग्रंथ इत्यादि-इत्यादि। कोई अखिल-राष्ट्र-व्यापी ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि इस सब सामग्री को एकत्र कर, सम्पादित कर अंग्रेज़ी में भी उपलब्ध कराया जाय। तब सच्चे अर्थों में भारतीयों द्वारा लिखा भारत का इतिहास उपलब्ध होगा। मुजूमदार सम्पादित विद्याभवन वाले इतिहास में, मुकर्जी के 'आर्ट एण्ड कल्चर ऑफ इंडिया' में ऐसे कई दोष रह गये हैं, जो कुछ तो भावुकता-जन्य हैं, कुछ सामग्री के अभाव में कल्पना-पूरित अनुमानों के कारण। भारत के विभिन्न प्रदेशों के इतिहास पर बड़ा शोध-कार्य हो रहा है, उनके बीच में भी ताल-मेल ज़रूरी है। आसाम के इतिहास का सम्बन्ध उड़ीसा के इतिहास से बिलकुल नहीं होगा या कर्नाटक के इतिहास का आंध्र के इतिहास से सम्बन्ध नहीं होगा—यह मानना ग़लत होगा। पर हमारे इतिहासकारों में भी बहुभाषाविद् लोग कम हैं। इस दिशा में बहुत-कुछ हमारे विद्वानों को करना है—अपने चश्मे उतारकर उन्हें पोंछना है, और इतिहास-सत्य को स्पष्ट दृष्टि से देखना है।

●

भारतीय शिक्षा-पद्धति के बारे में पश्चिम में बहुत-सी ग़लतफ़हमियाँ हैं। गाँधीजी की बुनियादी या नई तालीम का कहीं किसी ने नाम सुना है तो वे लोग समझते हैं कि घर-घर में इस देश में तकली और चरखा ही चलता है। कहीं यह ख़याल है कि हमारी शिक्षा में धार्मिकता की पुट ज़्यादह होती है। हमारे यहाँ मंदिरों में पाठ-शालाएँ (संडे-स्कूल्स की तरह) नहीं होतीं—यह बात मुझे एक श्रोतृमंडली को बहुत दुःख से बतानी पड़ी।

प्राथमिक शिक्षा के बाद की अवस्था में और कॉलिजों में भी अभी भी अंग्रेज़ी पब्लिक स्कूलवाली या ब्रिटिश-पद्धति चलती है, यह जानकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। 'गुरुकुल' और 'विहार', 'मदरसे' और 'आश्रमों' की परंपरा के देश में परीक्षाओं का और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लासरूम का ऐसा आतंक। गुरु-शिष्य के बीच में ऐसे कृत्रिम ऊँच-नीच के, भय और आतंक के सम्बन्ध ? अमरीकन विद्यार्थियों और शिक्षकों-प्रोफेसरों के लिए यह चीज़ अविश्वसनीय है।

मुझे बार-बार बताना पड़ा—और एक-दो जगह गाँधीजी की शिक्षा-पद्धति को देन—और भारतीय शिक्षालयों की अमेरिका की तुलना में विभिन्नता पर बोलना पड़ा—भारत में शिक्षा सरकारी (केन्द्रीय) विषय नहीं। प्रत्येक प्रांत में अपनी-अपनी पद्धति है। साक्षरता कम है, शिक्षकों-शिक्षिकाओं की भी बड़ी कमी है। शुरू से 'आर्ट्स' और 'साइंस' की 'दो संस्कृतियाँ' बन जाती हैं। विद्यार्थी की रचनात्मक वृत्ति, सृजनात्मक प्रतिभा के विकास के लिए बहुत कम गुंजाइश है। जब मैंने बताया कि ब्रिटिश जब भारत छोड़ गये थे तब बीस युनिवर्सिटियाँ थीं, वे अब गये चौदह वर्षों में पचास बन गईं, तो उन्हें आश्चर्य हुआ। मैंने बताया कि बहुत कम विश्वविद्यालयों में ललित कला और उसके इतिहास पढ़ाये जाते हैं। दिल्ली केन्द्रीय विश्वविद्यालय है, उसमें यह विषय नहीं है—तो उन्हें आश्चर्य होता ! मैंने जब उन्हें बताया कि 'तुलनात्मक साहित्य' (कम्परेटिव लिटरेचर) जैसा महत्वपूर्ण विषय भारत में जादवपुर और एकाध और विश्वविद्यालयों में ही है, तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। भारत के किसी भी एक विश्वविद्यालय में भारत की सब भाषाएँ पढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं है। भारत में अंग्रेजी भाषा हज़ारों स्कूलों में ऐसे लोग पढ़ाते, हैं जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी नहीं, न किसी 'नेटिव स्पीकर' की सहायता हो ली जाती है, तो उन्हें यह सब कुछ अटपटा, कृत्रिम, अवैज्ञानिक और अस्वाभाविक लगता।

कई जगह पूछा जाता—"आपके देश में इतनी बेकारी क्यों है ? विद्यार्थियों के काम-दिलाऊ दफ्तर युनिवर्सिटियों में नहीं होते ? विद्यार्थियों की सहकारी 'यूनियनें' नहीं चलतीं ? विद्यार्थी एक-दूसरे की क्या मदद करते हैं ? उनमें एक साथ रहने, खाने-पीने, खेलने से कैसी 'एकता' जागती है ? क्या वे एक-दूसरे की भाषाएँ समझते हैं ? क्या वे एक-दूसरे के रीति-रिवाज जानने और उनके प्रति सहिष्णुता जगाने में अपना समय देते हैं ? सह-शिक्षा का वहाँ क्या हाल है ? क्या लड़के-लड़कियाँ एक-दूसरे से मिल-जुल सकते हैं और सचमुच भावी नागरिक बनने की आस्था बटोरते हैं ?"

फिर खबरें आती थीं—अमुक विश्वविद्यालय में हड़ताल हो गयी। अमुक युनिवर्सिटी में विद्यार्थियों ने पर्चे फेंक दिये, मास्टरों को पीटा या प्रिंसिपल के घर को घेर लिया। तो वहाँ लोग पूछते—"यह अनुशासन-हीनता क्यों ? क्या यों बाहर की राजनैतिक पार्टियाँ अपना उल्लू सीधा कराती हैं—विद्यार्थियों को सामने रखकर ? क्या यह सब इस बात की निशानी है कि शिक्षा-पद्धति में कुछ मूलभूत दोष हैं ?" एडवर्ड शिल्स (शिकागो के एक विख्यात समाज-शास्त्री) ने 'एन् काउण्टर' में एक लेख लिख कर सुझाया है कि बेचारे भारतीय विद्यार्थी तो 'साधु' जैसे हैं। उनके जीवन में अधिक कुछ आनन्द का सरंजाम जुटाइये, कुछ 'डेटिंग-वेटिंग' वे यहाँ रू करेंशु तो 'हड़तालें' कम हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मनोवैज्ञानिक चिकित्सा भी कुछ मानो में सही हो सकती है। पर वह केवल आंशिक सत्य है।

बड़ा सत्य तो आर्थिक है। 'लर्निंग' और 'अर्निंग' के बीच बड़ी खाई है। पढ़ाई और कमाई में कोई कार्य-कारण-भाव नहीं है। इसीलिए भारतीय विद्यार्थी जो विदेश पढ़ने जाता है, लौटकर आना नहीं चाहता। विद्यार्थी ही बना रहना चाहता है। या यों कहें कि उसे फिर आकर अपने विश्वविद्यालयों में पढ़ाना नागवार गुज़रता है। कई विश्वविद्यालयों में अमरीका और यूरोप से लौटे हुए प्रोफेसर हैं—उन्हें अगर उनके मन की सच्ची बात कहने दी जाय तो वे यहाँ की युनिवर्सिटियों में आमूल-चूल परिवर्तन चाहेंगे।

फिर 'रिसर्च' की सुविधाएँ—पद्धतियाँ—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और 'एकैडमिक स्टैंडर्ड्स' जो वहाँ रखे जाते हैं, उनकी क्या तुलना! अमरीका में रिसर्च करनेवाले को दो और विदेशी भाषाओं का ज्ञान एक अनिवार्य शर्त्त होती है। 'रिसर्च' के लिए ग्रंथालय और प्रयोगशालाओं की जो सुविधाएँ उन देशों में होती हैं, उनका शतांश भी हमारे विश्वविद्यालयों में नहीं। यह कब और कैसे सुधरेगा, भगवान जानें! किसी मन्त्री के मंत्र से यह जल्दी बदलने को नहीं।

अन्त में भारतीय लेक्चरर और प्रोफेसर जो विदेश में जाते हैं, उनकी पश्चिम वाले अपने देश के अध्यापकों-प्राध्यापकों से तुलना करते हैं। और बहुत कम यहाँ से ऐसे लोग वहाँ पहुँचते हैं जो उन्हें भी 'इम्प्रेस' कर सकें। अधिकतर तो उनके रोब में आ जाते हैं, या फिर उनसे लड़ते रहते हैं। बहुत कम डा० राघवन, नीलकंठ शास्त्री, निर्मल कुमार बोस, इरावती कर्वे या 'गांधीयन फिलासफी' लिखने वाले डी० एम० दत्त जैसे प्रोफेसर वहाँ गये हैं जिन्हें अभी भी प्रेम और आदर से वहाँ के विद्यार्थी और प्रोफेसर याद करते हैं। वैसे निम्न-सूची में दिये हुए हिन्दी के साहित्यकार गये दस वर्षों में अमेरिका गये, पर बहुत कम लोगों को उनकी याद है—गिरजाकुमार माथुर, बिपिन अग्रवाल, उदयनारायण तिवारी, द्वारकाप्रसाद 'द्वारिकेश', जगदीशचन्द्र माथुर, शीला शर्मा, सोमा वीरा, उषा प्रियंवदा, नरेन्द्र सेठी, विद्या निवास मिश्र, सुबोध अग्रवाल, राजाराम शास्त्री, हरी कपूर, कृष्ण बलदेव वैद, स. ही. वात्स्यायन, और इस लेख सप्तक का एक अदना हिन्दी-सेवी अहिन्दी भाषी।

● ● ●

'गोरी नज़रों में हम' की अन्तिम क़िस्त

'ज्ञानोदय' के आगामी अंक में डा० प्रभाकर माचवे की 'गोरी नज़रों में हम' लेखमाला की अन्तिम क़िस्त 'पूर्व और अ-पूर्व ; पश्चिम और अपश्चिम' प्रकाशित की जायेगी जिसमें पूर्व और पश्चिम के आधारभूत अन्तर का विश्लेषण किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूधनाथ सिंह

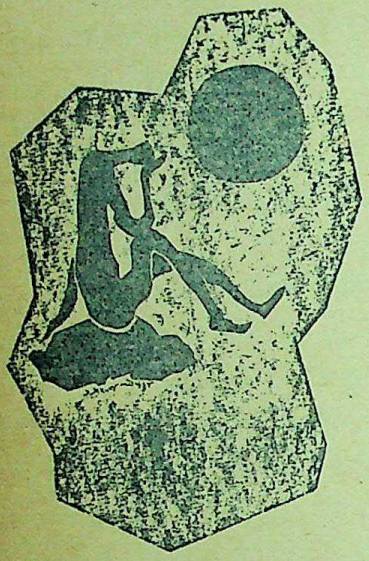

'एक भाव से सम्बन्धित कुछ कविताएँ—टिप्पणी और पृष्ठभूमि सहित' सीरीज़ के अन्तर्गत नयी क़िस्त।

आधुनिक सभ्यता का एकान्त

चार भारतीय अंग्रेज़ी कविताएँ

कहने को चाहे कोई भी तर्क दिया जाय—एक सत्य हमारा पीछा नहीं छोड़ता कि हम अकेले हैं। कभी इस एकान्त की मांग होती थी, क्योंकि तब एकान्त हमें चिन्तन की शक्ति देता था; आज एकान्त हमें मारता है। आज का एकान्त हमें भीड़ से बाहर भागने को बाध्य करता है—फिर भीड़ में लौट आने को बाध्य करता है। हमारी यह निस्सहायता एक सत्य है। समझौते होते हैं—अधिकांश लोग कर रहे हैं—कवि और कलाकार भी। लेकिन ये समझौते भी एक विवशता के ही परिणाम हैं। जनसंख्या बढ़ती जा रही है। भाईचारा, संगठन, सहयोग और शान्ति के नारे लगते जा रहे हैं और बुद्धिजीवी—ख़ासकर जो आँखें डालकर घूरता है अपने चारों ओर; वह कलाकार—दिन-प्रतिदिन निपट अकेला महसूस करता जा रहा है। और इस पर एक लम्बी बहस हो सकती है कि इसमें दोषी कौन है ?

यह एकान्त आधुनिक सभ्यता का एकान्त है जिसमें तुरत व्यक्ति महसूस करता है कि उसके एकान्त में सबसे बड़ा व्यवधान वह स्वयं है। शान्ति, सुरक्षा, तपस्या और आनन्द में सबसे बड़ा व्यवधान वह स्वयं ही है—क्योंकि वह उन सबके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति उदासीन नहीं रह पाता जो उसके चारों ओर कोलाहल-रव पसारते हुए भी उसकी ओर उन्मुख तक नहीं होते।

हर व्यक्ति अपनी पैंट की जेब में मायकोवेस्की का बादल ठूँसे हुए है—और सूख रहा है।

एकान्त की उपलब्धि एक तटस्थता की माँग करती है—एक निरपेक्ष, निरवलिप्त मनःस्थिति की। आज का व्यक्ति न तो अपने चारों ओर से तटस्थ हो सकता है न निरवलिप्त। अतः उसका एकान्त एक भयावह एकान्त बन जाता है।

आज यह स्थिति है एक सच्चे कलाकार की। फिर इसमें रचना की भावना, संघटन और ईमानदारी सामने आती है। वह टटोलता है अपने चारों ओर। आहट, प्रत्याशा और साहचर्य....। इसी टटोलने में उसे हाथ लगता है—एक भयावह एकान्त।

भारतीय अंग्रेज़ी कविता की एक निजी परम्परा है। सरोजिनी नायडू, हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय और तरु-दत्त से लेकर, आज भारतीय-अंग्रेज़ी कविता इन्हीं सन्दर्भों में विकसित हो रही है। एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या भारतीय अंग्रेज़ी कविता का अध्ययन करते वक्त विश्व की अंग्रेज़ी कविता को ध्यान में रखना होगा? क्या उसका महत्व तुलनात्मक से पृथक् और कुछ नहीं हो सकता? मेरी समझ में जिनके दिमाग में यह बात है, उन पर आधुनिक अंग्रेज़ी कविता हावी हो सकती है। भारतीय-अंग्रेज़ी कविता—मात्र कविता है। आधुनिक जन-संकुल-सभ्यता के भयावह एकान्त की एक सॉफ्ट गूंज। सम्भव है, यह गूंज किसी को अंग्रेज़ी, अमेरिकन या हिन्दी या बँगला में मिल जाय। उसमें अन्तर्निहित सत्य है—आज की दुनिया का इतना निकट खिसक आना—समस्याओं, संघर्षों और यंत्रणाओं का एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर।

कविताओं का चुनाव व्यक्तिगत रुचि के अनुसार किया गया है। अनुवाद के सिलसिले में मैंने भरसक कोशिश यह की है कि कवि के अर्थ के निकटतम होते हुए उसकी रिद्मिकल गूंज को भी शब्द-योजना में प्रस्तुत कर सकूं। यह एक अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि प्रत्येक शब्द का एक अपना अन्तरसंगीत होता है और उसको दूसरी भाषा के शब्द-संगीत में व्यक्त करना कठिन हो जाता है।

कवियों के बारे में केवल इतना कह देना काफ़ी होगा कि ये सभी आज की सभ्यता के अन्तर्सम्बन्धों के संघर्ष में जी रहे हैं। सभी किसी-न-किसी रूप में बुद्धिजीवी-समाज के संस्कारों को लेकर आते हैं और अपनी चिन्तनधारा, सृजन-कर्म की पृष्ठभूमि के रूप में संसार के साहित्य और उसकी समस्याओं से एक तरह से भिज्ञ हैं। उनकी कविताओं का एक अपना व्यक्तित्व बन रहा है, किन्तु समस्याओं के प्रति उनके 'री'टच' में एक आन्तरिक संगति भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहराती : निसीम इज़कियल

(उससे) नन्हीं पहाड़ियाँ हमेशा-हमेशा को दूर....
टूटी-फूटी सड़कें पहचानता है वह--और
अपने दिमाग़ में चिह्नित गोल पगडण्डियों पर भटकता है।
इसके प्रथम कि वह जागे और अपनी बात कहे
वह नदी, जिस पर दावा है उसके प्यार का,
सूख जाती है; और सारी हवाएँ मर जाती हैं।

चुपके से बार-बार उगते आस्मानों को
भोर में कभी नहीं देखता है वह।
न तो महसूस कभी करता है, अपनी आँखों पर
रात की छायाओं की झुकी हुई उँगलियाँ।
न तो सूर्य, न तो बारिश का करता है स्वागत।
उसके दृश्य-चित्रों में न तो गहराई है; न ही ऊँचाई।

एक प्रबल उत्कंठा की भाँति शहर सुलगता है।
रेत की एक लहर पर बहता--अकेले-अकेले
वह सुबह टहलने के सपने देखता है।
किन्तु उसके मस्तिष्क में धड़कती भीड़ का कोलाहल
फिर लौटा ले जाता है उसे--समद्री-किनारों,जंगलों, पहाड़ों
(के सपनों) से दूर....निकटस्थ के एक सजातीय
शोर-गुल के पास।

ग्रीष्म दिन : आर० द' एल० फुर्तादो

यह एक प्यास है--आत्मा के भीतर से उठती है;
गोधूली में केसरिया और सुनहले सूर्यों की ललक है यह...
सम्भवतः पुनर्जन्म है उस अग्नि का, जो
ग्रीष्म में गुर्राकर, चिंघाड़कर बुझ जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्ष के भीतर यह अग्नि गुर्राती है--कराहती है...
मोम के फूल-गुच्छ छींटती हुई; सूखे फूल
जो अपने अचल दर्पण दृढ़ता से थामे हैं--
निद्रा-लीन, प्यारे भग्नावशेषों के बीच।

गहन-शून्य से एक अग्नि-पक्षी चिल्लाता है,
इस तपते दिन में छूटकर उड़ जाने के लिए;
क्या मुझमें साहस है--इस पिंजरे में बन्द रख सकने का ?
लेकिन....नहीं;--जब तक यह अपनी गहरी नींद से जाग
स्वयं नहीं उड़ जाता; मुझे प्रतीक्षा करनी ही चाहिए।

बूढ़ा आदमी : पी० लाल

मैं तुमसे ज्यादा ताक़तवर था, किन्तु
जीना निर्दयता है, और प्यार करना उससे भी बड़ी निर्दयता,
उसने कहा; मैं तुमसे तेज़ और अधिक खूंखार था, किन्तु
पाप झुलसाता है; चिन्तन सोखता जाता
है; उसका सुफेद सिर झुक गया। मैं दौड़ने में तीव्रतर,
प्यार करने में तुमसे भी भीषणतर,
मेरी फैलती हँसी तुम्हारे हास्य से भी गहनतर ।
पर जब उसने घूमकर देखा--उसकी आँखें थीं लाल--एकदम।

मेरे मस्तिष्क में रहती थी, विचारों की दौड़ की एक थरथराहट
मैं था बुद्धिमान, किन्तु ज्ञान हो जाता है ख़त्म; मैं था पागल
किन्तु चेतना लौट आती है ताहम; मुझे मिला नहीं कुछ
खोजा जब-जब
ताकने पर दिखा नहीं कुछ; हँसा तो खुशी भी नहीं
हुई तब।
आंखों में रौशनी लिये--उसने झुका लिया सिर
वह एक बूढ़ा गोरा था,किन्तु उसकी आँखें थीं लाल--एकदम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शवादी : देवकुमार दास

तुम्हीं एक थे, जो सड़क
के मोड़ पर रुक गये।

मौत ने एक उँगली से दिखादी--तुम्हारी परछाईं;
रौशनी दरककर बना गयी--एक खण्ड-छाया;
और तुम्हारी आत्मा कोहरे में बदल गयी।

क्योंकि तुम अंधेरे में जीवित रहना
नहीं सीख सके। उचित या
अनुचित रूप से टटोलते रहे
आनन्द की कुतरनें....
(अतः) तुम रौशनी की बाढ़ में डूब गये।

तुम्हारे मस्तिष्क का विराम समझ
मृत्यु ने पंक्ति से पुकार लिया तुम्हें
और अपने चुम्बन की एक मुहर लगा दी।

तुम्हारी अस्थियाँ शमादान बनानेवालों के पास....
हमारे कठिन-मस्तिष्क को एक धुंधला प्रकाश देने के लिए।

सब ठीक ही है,
आह रे ! अँधेरी रात में भटकते हुए मूर्ख !

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्नू भण्डारी

●

'एक इन्च मुस्कान' की रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में आपने गत अंक में राजेन्द्र यादव की बात सुनी थी, इस अंक में मन्नू भण्डारी अपनी बात कह रही हैं।

●

और आख़िरकार 'एक इन्च मुस्कान' समाप्त हो गया। यों डेढ़ साल—अनेकानेक परेशानियों से भरे डेढ़ साल का अन्तराल कम नहीं होता, फिर भी आज लग रहा है जैसे कल की ही तो बात है—जैन साहब और कुन्थाजी के साथ बातचीत हो रही है—बात कुशल-क्षेम, हँसी-मज़ाक़ के स्तर पर से गुज़रकर उपन्यास-कहानियों के कथानक-प्रयोगों पर आती हैं। बारह खम्भे, ग्यारह सपनों का देश और जैन साहब की ओर से प्रस्ताव आता है कि क्यों न हम दोनों मिलकर एक ऐसा सहयोगी उपन्यास लिखें जिसके पात्रों की घटनाओं को अपने-अपने दृष्टिकोण से चित्रित करें। स्त्री-पात्रों को मैं सम्भालूं और पुरुष-पात्रों को राजेन्द्र। मैं यों ही हँस दी; उस हँसी में न स्वीकृति थी, न इन्कारी। शायद मैंने उस बात को गम्भीरता से लिया ही नहीं था, पर राजेन्द्र के दिमाग़ में चक्कर चल पड़ा। जैन साहब के जाते ही बोले, "मन्नू, यह हो जाये! बस हो ही जाये!"

"हो जाये!" मैंने उतनी ही लापरवाही से कह दिया। इस होने के साथ सोचने के लिए कितना-कुछ जुड़ा था, इस बात पर मेरा ध्यान ही नहीं गया। खाने पर बैठे तो फिर वही बात—"सोच रहा हूँ, कथानक कौन-सा लिया जाय?"

"हाँ, कहानी पहले से ही तय होनी चाहिये—सारे उपन्यास की प्लैनिंग होनी चाहिये—यह नहीं कि कुछ भी शुरू कर दिया और फिर कथानक के साथ मनमानी कर रहे हैं, जब जहाँ मर्ज़ी आया मोड़ दिया, घसीट दिया!"

अपने एक अधूरे उपन्यास का प्लाट सुनाया पर साथ ही आशंका रख दी—

'एक इञ्च मुस्कान' : मैंने कैसे लिखा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तुमसे चलेगा नहीं, फिर इसमें बटवारे के लिए गुंजाइश भी नहीं है। तब ? उस समय मुझे स्वप्न में भी ख़याल नहीं था कि राजेन्द्र की आँखें मेरे उपन्यास पर गड़ी हुई हैं।

और इधर-उधर की कथाएँ आयीं पर हर एक के साथ कुछ-न-कुछ अगर-मगर जुड़ा हुआ था; और तब अचानक ही राजेन्द्र ऐसे चहककर बोले जैसे एकाएक ही उन्हें इस समस्या का कोई अनोखा हल सूझ गया हो। पर इनका लेख पढ़कर तो लगा कि वह सब इनकी एक्टिंग थी।

"तुम्हारा 'एक इन्च मुस्कान' ले लिया जाय। बस मज़ा आ जायगा—उसमें इस प्रयोग की पूरी-पूरी सम्भावनाएँ हैं और इस बहाने वह पूरा भी हो जायेगा, वरना....."

"वाह-रे-वाह ! मैं अपना उपन्यास क्यों दूंगी ! वह मेरी अकेली की मेहनत है, उसे मैं अकेले ही पूरा नहीं करूँगी ?"

दूसरे दिन राजेन्द्र ने पूछा, "आज शाम को तुम्हारा क्या प्रोग्राम है ?" मुझे शाम को एक मीटिंग में जाना था; तो बोले, "सात बजे मुझे लेक्स पर मिलो !"

"आज ? सारे दिन के बाद तो थक जाते हैं !"

"तुम तो यार, बहुत ही बोर हो ! मुझे तो याद ही नहीं आता कि शादी के बाद कभी हम दोनों लेक्स पर जाकर बैठे हों। आज तुम्हें आना ही होगा।"

कलकत्ते का दिसम्बर बड़ा सुहावना होता है। लेक्स पर पहुँची तो रात हो चुकी थी—क्लब की बत्तियाँ पानी में झिलमिला रही थीं और फ़िज़ा कुछ अतिरिक्त रूप से ही मादक हो उठी थी।

"थकान लग रही हो तो कुछ पी लो," राजेन्द्र के स्वर में लाड़ उभरता आ रहा था।

"नहीं तो, ऐसा भी क्या है!" और हम किनारे-किनारे चल पड़े।

"हाँ, तो मन्नू, उस उपन्यास की बात तय कर लें तो जैन साहब को उत्तर देकर निश्चिन्त हों।"

रात का समय, लेक का किनारा और राजेन्द्र का साथ—मैं सचमुच उपन्यास की बात करने के ज़रा भी मूड में नहीं थी। (पर लेखकों की बीबियों का शायद यह दुर्भाग्य ही है कि मादक-से-मादक समय में भी उन्हें कहानी-उपन्यास, पात्र और घटनाओं की ही बात कहनी-सुननी पड़ती है!) और मुझे जल्दी ही मालूम पड़ गया कि यों आग्रह-भरी मनुहार करके लेक्स पर बुलाना, यह लाड़-दुलार सब स्वीकृति लेने का बहाना मात्र है।

"मैंने कई दृष्टि से सोचा," पूरी गम्भीरता और बुजुर्गियती अन्दाज़ से राजेन्द्र बोले, "एक इन्च मुस्कान वाला प्लाट ही एक ऐसा प्लाट है जिसे हम दोनों लिख सकते हैं—बहुत ही अच्छी तरह से लिख सकते हैं।"

"हूँ।"

"यों भी तुम उसमें अमर के चरित्र को बिलकुल नहीं सम्भाल सकी हो। मैंने तो तुम्हें पहले भी लिखा था कि अमर का चरित्र निभा नहीं है।"

"रिवाइज़ करेंगे तब सम्भाल लेंगे !" मुझे सचमुच ही खीझ छूट रही थी।

"रिवाइज़ तुमसे हो लिया। डेढ़ साल तो हो गया – और दस वर्ष तक कुछ नहीं होने का।"

"कोई बात नहीं, ग्यारहवें साल ही सही।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुमसे नहीं होगा—तुममें न उतना धैर्य है न उतनी लगन।"

मैं चुप।

"ज़रा सोचो, मेरी पन्द्रह साल की ख्याति और तुम्हारी चार साल की। मेरे साथ लिखोगी तो हल्ले हो जायेंगे—दिक्‌दिगान्तरों में धूम मच जायेगी।"

पर जब दिक्‌दिगान्तरों के ये हल्ले भी कुछ प्रभाव डालते नज़र नहीं आये तो राजेन्द्र का धैर्य भी जैसे जवाब देने लगा। बात सुझाव के तौर पर आयी थी, फिर आग्रह में बदली और अब आक्रोश-भरी ज़िद का रूप धारण कर चुकी थी।

"तुम साफ़-साफ़ बताओ, अपना कथानक दोगी या नहीं?"

"नहीं।" उतनी ही ढिठाई से मैंने भी जवाब दे दिया।

कुछ देर दोनों चुपचाप चलते रहे। हवा की ठण्डक बढ़ने लगी थी। एकाएक बिना किसी प्रसंग-भूमिका के राजेन्द्र बुरी तरह झल्लाकर बोले, "तुम इतनी बेकार की बीवी हो कि क्या बताऊँ? आधी सर्दी बीत गयी, तुमसे इतना तक नहीं होता कि एक स्वेटर ही बुन देती।"

इस बार मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"और भी कुछ दोष ढूंढ़ने हों तो ढूंढ़ लो—अभी अच्छा मौक़ा है।"

आज भी राजेन्द्र की उस दिन वाली खीज और बौखलाहट की बात याद करती हूँ तो हँसी छूटती है। सीधे ही पूछा, "अभी उपन्यास के लिए अपना प्लाट दे दूं तो एकदम ही अच्छी बीवी बन जाऊँगी न?"

"खाक बन जाओगी तुम अच्छी! तुम किसी चीज़ को गम्भीरता से लेना जानती ही नहीं हो। बड़ी सरलता से ख्याति मिल गयी है, इसलिए दिमाग़ आसमान पर चढ़े हुए हैं। पर इस मुगालते में रहीं तो साल-दो साल में ही चुक जाओगी।"

कोई और मौक़ा होता तो मैं भभक पड़ती। पढ़ाती हूँ, इसलिए सिर्फ उपदेश देने की ही आदत है, सुनने की क़तई नहीं; पर उस दिन मुझे उनकी खीज में भी आनन्द आ रहा था। मैं चाह रही थी कि वे और कुढ़ें, और सचमुच उस दिन कुढ़ते-भुन-भुनाते ही घर आये।

दूसरे दिन मैंने अपने-आप ही कह दिया, "चलो ले लो मेरा कथानक—बस!" वे प्रसन्न भी हुए, आश्वस्त भी। तुरन्त ही जैन साहब से टेलीफोन पर बात हुई और तय हो गया कि जनवरी से ज्ञानोदय में हमारा सहयोगी उप-न्यास जायेगा।

पाण्डुलिपि निकली। कथा का ताना-बाना नये सिरे से बुना गया, लम्बी-चौड़ी बहसें हुईं और राजेन्द्र अपना पहला अध्याय लिखने में जुट गये।

पहला अध्याय प्रकाशित होकर आया और देखा तो मेरा माथा ठनका। प्रकाशित होने से पहले ये अपनी लिखी चीज़ कभी किसी को नहीं दिखाते—मुझे भी नहीं। आरम्भ इन्होंने किया था और क्योंकि ये अमर का भार लिये हुए थे सो इन्होंने कथा का सूत्रपात ही कुछ ऐसे रूप में किया कि वह अमर की कहानी बन गयी। मेरी कहानी मूलतः अमला की कहानी थी और उसमें न रंजना अमर को छोड़कर जाती है, न अमला मरती है। आठों पहर सबको भरमाने वाली मुस्कान ओठों पर लपेटे रहनेवाली अमला वास्तव में कितनी खोखली, रिक्त और शून्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी—यही उस कहानी की आधारशिला थी। पर अब तो कहानी का सारा एंगिल ही बदल गया था। पहले अध्याय में ही राजेन्द्र ने जिस कुशलता से सारे उपन्यास के संकेत और सूत्र बिखेर दिये थे, उसमें यह स्पष्ट हो गया था कि यह कथा अमर के जीवन की ट्रेजेडी की कथा होगी, और कुछ नहीं। मेरे लिए यह सचमुच ही नया सिर-दर्द था। सारी चीज़ को फिर से सोचो; घटनाओं, चरित्रों और स्थितियों की कल्पना नये सिरे से करो; और मैं सोच रही थी, इतनी ही मेहनत करनी थी तो अपने उपन्यास पर करती। धैर्य के अभाव और परिश्रम से बचने के लिए ही तो अपने लिखे-लिखाये उपन्यास को प्रयोग की खरल में डाल दिया था। और यह तो आज भी महसूस करती हूँ कि जितना परिश्रम इस पर किया—चाहे मजबूरी में ही किया हो उतने परिश्रम में तो अपना निजी उपन्यास ही पूरा कर लेती और इसमें भी सन्देह नहीं की वह इस प्रयोगवादी उपन्यास से अधिक अच्छा होता और उसके सारे श्रेय की एकमात्र अधिकारिणी मैं होती—अकेली मैं। राजेन्द्र की तरह अब मैं भी काफ़ी स्वार्थी हो गयी हूँ। ख़ैर!

हाँ, तो उपन्यास शुरू हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि पहला अध्याय मुझे स्वयं बहुत-बहुत पसन्द आया और अनजाने ही एक चाह उठी कि दूसरा अध्याय कुछ ऐसा लिखूं कि इनके अध्याय से इक्कीस ही हो, उन्नीस नहीं। प्रतिद्वन्द्विता की जो भावना उस दिन जागी सो निरन्तर बढ़ती ही गयी और पाठकों और मित्रों ने इस भावना पर और सान चढ़ाई और सचमुच ही हम सहयोगी कम और प्रतिद्वन्द्वी अधिक हो गये! सोचती हूँ, आज तो यह स्वीकार करने में भी मुझे संकोच नहीं करना चाहिये कि जहाँ इस भावना ने मुझे प्रेरित और प्रोत्साहित किया, वहीं कभी-कभी अनजाने ही कथा के साथ अन्याय भी करवाया।

दूसरा अध्याय—मेरा पहला—अच्छा ही नहीं, आशा से अधिक अच्छा लिखा गया। अमला जिस रूप में उतरी, उसने मुझे संतोष और प्रसन्नता से ही नहीं, अतिरिक्त उत्साह और प्रेरणा से भी भर दिया। तीसरा अध्याय, राजेन्द्र का, दो अध्यायों की अपेक्षा कुछ कमज़ोर उतरा—और उसने जहाँ एक ओर मुझे विजय की भावना से उल्लसित कर दिया, वहीं दूसरी ओर चौथे अध्याय के प्रति कुछ शिथिल भी बना दिया। आज सोचती हूँ तो लगता है कि सम्भवतः राजेन्द्र से होड़ लेने की भावना ही लिखने के दौरान में मेरी सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति रही है, जिसे पत्रों, सम्मतियों और मित्रों की प्रशंसा ने और अधिक बढ़ावा दिया। कुन्था जी जब-जब मिलतीं, कुछ ऐसे गद्‌गद् भाव से प्रशंसा करतीं कि कुछ अनोखा लिख डालने का दुगना उत्साह लेकर मैं घर लौटती।

पर आज जब उपन्यास पूरा हो गया—प्रशंसा का यह दौर समाप्त हो गया या कहूँ कि उसकी प्रभावोत्पादकता समाप्त हो गयी तो एक चीज़ अवश्य महसूस होती है कि यदि अपनी योजना के अनुसार हमने इसे दो महीने में ही समाप्त करके 'ज्ञानोदय' के हवाले कर दिया होता तो इसका रूप कुछ भिन्न ज़रूर होता।

आधी मंजिल पर पहुँचकर जीवन में—विशेषकर मेरे जीवन में तो एक ऐसा व्यवधान आया कि इस दिशा में सोचने-समझने की सारी शक्ति ही जैसे लुप्त हो गयी। बच्ची का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगमन—बहुत सोचा था और चाहा था कि वह सब घटने के बहले ही जैसे भी होगा, सारा उपन्यास पूरा कर ही लेंगे, पर वह सब संभव नहीं हो सका। नर्सिंग होम से लौट कर कलकत्ते से कुछ दूर अपने भाई के यहाँ रहकर मैं अपनी अमला और रंजना को बिल-कुल भूल ही गयी। आधी-पिछली रात को कभी याद भी आती तो किसी भूली-बिसरी पुरानी स्मृति के रूप में। मुझे याद ही नहीं रहा कि कैलाश से सम्बन्ध-विच्छेद करके अमला कलकत्ते की किसी आलीशान विशाल अट्टालिका में बैठी बिसूर रही है तो रंजना अमर को अपना बनाने की ज़िद पकड़े कहीं सिसक रही है। मिलने-जुलने वालों का क्रम—बातचीत और सोच-विचार के सारे विषय ही कुछ इस प्रकार बदल गये थे कि इस अधूरी श्रंखला में नयी कड़ी जोड़ना कुछ असम्भव-सा प्रतीत होने लगा था। मजबूरी में एक बार 'ज्ञानोदय' वालों ने बड़े ही सुन्दर ढंग से बधाई के साथ बच्ची के आगमन की सूचना छाप दी। (सोचती हूँ, इस अवसर पर उस बधाई का धन्यवाद भी दे रही हूँ।) पर इससे कुछ समय के लिए राहत अवश्य मिल गयी—देवड़ाजी के तक़ाज़े और मेरी बदली मनःस्थिति! लाख कोशिश करती, पर टूटे सूत्र कुछ ऐसे बिखरे-बिखरे लगते कि पकड़ाई में नहीं आते। एक बार आख़िर हिम्मत करके बैठ ही गयी पर आँखों ने जवाब दे दिया। लम्बे अर्से के बाद पहली बार कलम उठाई थी—लिखने बैठी तो अक्षर काँप-काँप जाते। यह नयी समस्या थी। आभारी हूँ अपनी छात्रा कुमारी वीणा संगल की जिसने अपने दो दिन बिगाड़कर मेरा डिक्टेशन लिया और अध्याय पूरा किया। आगे चलकर भी उसने एक बार और ऐसी मदद की थी।

टूटा सिलसिला तो जुड़ गया, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि नौकर, परिवार और बच्ची की परेशानियों के बीच बचे हुए अध्याय लिखे नहीं, एक तरह से घसीटे गये हैं। घर-गृहस्थी का बोझ सम्भालकर लिखना कितना कष्ट साध्य होता है, इसकी वास्तविक अनुभूति मुझे इस बार ही हुई। मन और ध्यान को बँटाने वाले कितने छोटे-बड़े प्रसंग रहते थे—फिर राजेन्द्र जैसा पति, जो पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के सामने 'बाबा मौज करेगा' का नारा लगाकर हाथ झटकता हुआ चल दे।

यह बिगड़ा मूड फिर से तब बना जबकि पत्रोंवाला अध्याय मुझे सृजन के सन्तोष से भर गया।

अभी तक केवल कहानियाँ ही लिखी थीं; और वह भी एक या अधिक-से-अधिक दो बैठक में ही समाप्त कर देती थी सो अपने पात्रों का साहचर्य अल्प अवधि का ही हुआ करता था। इस बार एक नयी अनुभूति हुई और बड़ी तीव्रता से हुई। परेशानियाँ और आवान्तर चाहे जितने रहे हों उस सब के बावजूद यह सच है कि लिखने के दौरान में मैं हमेशा अमला और रंजना के बीच ही रही हूँ। यदि कहूँ कि वे मुझ पर हावी रही हैं तो भी ग़लत नहीं होगा। मेरी सहानुभूति, स्नेह और ममता के इतने बड़े भाग पर उन दोनों ने अधिकार कर लिया कि रंजना के प्रति अमर का व्यवहार मुझे बेहद कष्ट देता और उसके लिए मैं अकारण ही राजेन्द्र से लड़ पड़ती। अपना अध्याय समाप्त करके प्रेस में भेजने से पहले मैं राजेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सुना रही थी, सुनाते-सुनाते ही मुझे रोना आ गया और फिर दो दिन तक मैंने राजेन्द्र से ठीक तरह बात भी नहीं की। मन होता, रंजना का सारा बदला मैं किसी तरह निकाल लूं। रंजना ने दो अध्यायों में मुझे सचमुच बहुत रुलाया। अमला जब-जब आती—मन एक गहरे अवसाद, एक अजीब-सी खिन्नता, उदासी और विरक्ति से भर उठता। यह मैं आज भी नहीं जानती कि पात्रों के साथ अपने को यों एकाकार कर देने की वृत्ति लेखन में साधक है या बाधक ?—वह बनाती है या बिगाड़ती ? पर इस एकात्मता को इस बार मैंने अनुभव किया और बड़ी गहराई से किया।

यहाँ एक बात और साफ़ कर दूं—नहीं जानती क्यों, पर कइयों के मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि यह कथा हमारी अपनी कथा है—लोग मुझे रंजना समझते थे और राजेन्द्र को अमर। आश्चर्य तो तब होता था कि कलकत्ता में रहकर और हम लोगों को जान कर भी वे इस तरह का सन्देह करते थे। राजेन्द्र भी लेखक हैं और अमर भी; रंजना भी पढ़ाती है और मैं भी—बस इसके अतिरिक्त मैं नहीं सोचती कि कोई भी साम्य हम लोगों में है। राजेन्द्र अमर जैसे प्रवंचक, स्खलित और निष्ठाशून्य नहीं और मैं रंजना जैसी सीधी और समर्पिता नहीं। अमला की तलाश में अभी भी तीरन्दाज़ियाँ हो रही हैं।

एक और भी अनुभव हुआ और वह भी उतना ही नया था। पात्र जब अपना रूप और व्यक्तित्व पा लेते हैं तो किस प्रकार स्वतन्त्र हो जाते हैं—लेखक की पहुँच और नियंत्रण के परे, और इस बात का एहसास अमला ने अधिक करवाया। सच पूछें तो उपन्यास में जो अमला आयी, वह मेरी कल्पना की अमला से न चाहते हुए भी भिन्न हो उठी है। विशिष्ट वर्ग में पली, बुद्धिवादिनी, अहंवादिनी अमला जब सब को ही झुठलाती, अस्वीकारती और ठुकराती चली गयी तो भला मेरे बस में क्या आती ! आश्चर्य मुझे स्वयं होता और मेरा अपना अहं यह मानने को तैयार नहीं था कि मैं जैसा चाहूँगी या कल्पना करूँगी; उससे भिन्न अमला कुछ बनेगी; पर जब अध्याय समाप्त होता, मैं पढ़ती तो अपने-आप ही अपनी पराजय का एहसास होता। लगता, अमला को मेरी लेखनी ने नहीं चलाया है, वरन् मेरी लेखनी को अमला ने चलाया है। राजेन्द्र का कहना था—यही तो सफल लेखन है, पर सफलता का यह सन्तोष मेरे पराजित मन को सहला न पाता।

और सन्तोष-असन्तोष की राहों से गुज़रते-गुज़रते मंज़िल की आखिरी सीढ़ी भी आ गयी। आरम्भ से ही मैंने यह सोच लिया था कि अपने अन्तिम चैप्टर पर इतनी मेहनत करूँगी, कुछ ऐसे सधाव के साथ लिखूंगी कि बीच की बहुत-सी त्रुटियाँ ढक जाएँ—सारा उपन्यास अन्त में जाकर एक सार्थक प्रयोग सिद्ध हो। पर तभी पिताजी के कैन्सर होने की सूचना आयी और मानसिक कसावट में शिथिलता आ गयी। रोज़ ही तार और ट्रंक के बीच प्रोग्राम बनते—कब जाना, कहाँ जाना, ऑपरेशन होगा या नहीं, सारा ध्यान इन्हीं बातों पर केन्द्रित हो गया। बम्बई से सूचना आई कि ऑपरेशन स्थगित हो गया। और तय हुआ कि ससुराल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की एक शादी से छुट्टी पाकर जल्दी से जल्दी इन्दौर, पिताजी के पास पहुँचना है।

और अन्तिम अध्याय की शुरुआत शादी की धूमधाम और ढोलक के गीतों के बीच हुई। जिस वातावरण में मैं रह रही थी और जैसा वातावरण प्रस्तुत करता था, उसमें इतना वैषम्य था कि यही नहीं समझ पा रही थी कि तारतम्य कैसे बिठाऊँ। फिर भी लिख रही थी, पर शादी की धूम जब अपने चरम पर पहुँच गयी तो लिखना सम्भव नहीं रहा। अधूरा अध्याय इन्दौर आया। शादी के घर से बीमारी का घर—बीमारी भी असाध्य। सारे दिन आने-जाने वालों का ताँता, और पिताजी को देखने के लिए आये हुए पारिवारिक सदस्यों से भरापूरा घर। इसी के बीच अन्तिम चैप्टर समाप्त हुआ, क्योंकि तक़ाज़े आने लगे थे। लिखकर पढ़ा तो आरम्भिक हिस्सा मुझे इतना फ्लैट लगा कि रोना आ गया। बहुत सोचा कि जैसे भी हो,एक बार हिम्मत करके फिर से लिख डालूं—पर वही धैर्य की कमी, परिश्रम से घबराने की वृत्ति—प्रतिकूल परिस्थिति; डरकर वैसे ही भेज दिया। यों सोचती अभी भी हूँ कि पुस्तक रूप में जब छपने दूंगी तब अन्तिम अध्याय में अवश्य ही कुछ संशोधन करूँगी, पर जानती हूँ, होगा कुछ नहीं।

उस रात सोयी तो सचमुच ही बड़ा हल्का हल्का-सा लग रहा था। एक बोझ था जो उतर गया था, एक उत्तरदायित्व था,- जो पूरा हो गया था, पर दूसरे दिन से ही हल्के-पन की यह भावना एकाकीपन की भावना में बदलने लगी। लगा जैसे इतने दिनों तक कमला और रंजना मेरे साथ थीं जो एकाएक मुझे छोड़कर चली गयी हैं और मैं बहुत-बहुत अकेली हो गयी हूँ। सबके बीच रहकर भी बड़ा सूना-सूना लगता, अकेलेपन का बोध सालता। धीरे-धीरे यह भावना जाती रही।

अब उपन्यास सामने है और बहुत ही तटस्थ भाव से अपनी ही रचना पर विवेचन विश्लेषण करने की स्थिति में हूँ। सोचा भी था कि इस लेख में अपने पात्रों की कल्पना, उनके विकास और स्थितियों के निर्वाह का लेखा-जोखा ही दूँगी, दूसरे शब्दों में आदि से अन्त तक अपने लिखे को जस्टिफ़ाई करूँगी; पर लगा, यह काम मेरा नहीं है। मुझे जो कुछ कहना था, उपन्यास में कह दिया, अब तो पाठकों और आलोचकों के कहने-सुनने की बारी है।

कोई और उँगली उठाये, उसके पहले मैं स्वयं ही स्वीकार कर लूं—यह शीर्षक इस उपन्यास के लिए सार्थक नहीं लगता। राजेन्द्र अभी भी इसे सार्थक मानते हैं, मैंने भी अन्त में जाते-जाते इस ओर कुछ प्रयत्न किया अवश्य है, पर मन सन्तुष्ट नहीं।

जहाँ तक सारे कथानक की अन्विति, गठन और प्रवाह का प्रश्न है—वहाँ भी शिथिलता का दोष स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं। हाँ, इतना अवश्य कहूँगी, इसमें दोष हमारा नहीं, ऐसे प्रयोग में इससे अधिक की आशा रखना ही व्यर्थ है। हर अध्याय एक उपन्यास की क्रमबद्ध कड़ी कम और स्वतन्त्र कहानी का आरम्भ अधिक लगता है। कारण है—हम दोनो की नितान्त भिन्न शैली और भिन्न दृष्टिकोण। और इसीलिए जैसा कि राजेन्द्र ने लिखा है—अब तो शायद एक साथ पढ़ने वाले को यह दो साइज़ के कैमरों से खींचे गये चित्रों का एल्बम अधिक, एक सूत्रबद्ध फ़िल्म कम लगे।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालिग्राम शुक्ल

कहते हैं, चाँदनी रात में लोग पागल तक हो जाते हैं, नरोत्तम ने तो मात्र भेड़ों से बातचीत करनी चाही थी; अपने मन का दुख-दर्द बताना चाहा था। उसे क्या पता था कि····

●

लम्बी खिड़की से ढेर-सी चाँदनी कमरे में आ रही थी और खिड़की से सटा समूचा-का-समूचा बिस्तरा चाँदनी में ग़र्क था। नरोत्तम बिस्तरे के पास खड़ा था और चाँदनी ओढ़े बिस्तरे को देख रहा था। आज बहुत दिनों बाद वह रात के इस समय इतने इतमिनान से अपने कमरे में था। कुछ दिनों के लिए आफ़िस की रात की ड्यूटी समाप्त हो गयी थी। आज छुट्टी का दिन था जो बीत गया था और चाँदनी रात थी। उसने कमरे में एक निगाह डाली। जूठे कप, टूटा शीशे का ग्लास, जिसे स्ट्रे के रूप में इस्तेमाल किया गया था, टूटा हुआ आईना, ख़ाली सिगरेट के पैकेट और एक अधूरी लिखी चिट्ठी....। नरोत्तम ने दीवार की तरफ़ निगाह डाली और अपने को बहुत अकेला महसूस किया। उसे लगा कि वह किसी भी व्यक्ति, किसी भी जीवन का निर्माण नहीं कर सकता। कोने में रखी लालटेन उठाकर खिड़की पर रख दी, मुद्दत बाद अपने बी०ए० के दिनों वाली डायरी निकाली और एक ख़ाली पेज पर उस दिन की तारीख़ डालकर लिखने लगा :

'आज का समूचा दिन मेरे 'चीप' अस्तित्व से भरा था।...मुझे अपने से शिकायत है।...मैं क्यों हँसता हूँ और क्यों नहीं हँसता हूँ ? आज मैं दोस्तों में था और उनके बीच हँसता था लेकिन हँसने की स्थिति में मैं समूचे दिन क्या, एक ज़माने से नहीं हूँ....और कभी-कभी क्यों ऐसा होता है कि मैं उस समय नहीं हँस पाता हूँ जबकि मुझे हँसना चाहिए। ... आज धूप तेज़ थी, हवा थी जो धूप को उड़ाये लिये जा रही थी। के० ने बताया कि वसंत कभी बीत गया। उनके लॉन की लता झूम रही थी,

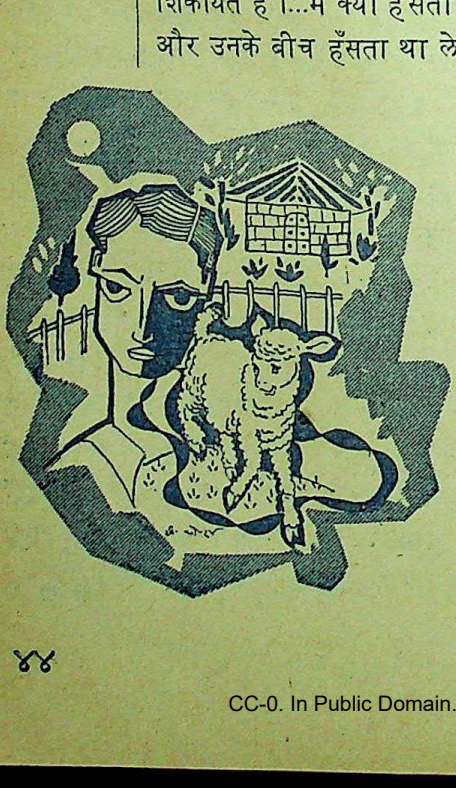

चन्द्राहत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केले के पात परेशान थे। मैं यह सब देख रहा था, लेकिन ऐसा क्यों है कि मैं महज देखता हूँ। मैं जानता हूँ कि क्यों.....।'

लालटेन की रोशनी मद्धिम पड़ती जा रही थी, चाँदनी उभरती जा रही थी। नरोत्तम ने लालटेन की बत्ती बढ़ा दी, डायरी बन्द कर दी और उसे तकिया के पास रख कर लेट गया। खिड़की से चाँद दिखायी पड़ रहा था। समूचा, भूरा, आसमान चमक रहा था। वह कभी चाँद को कभी उसके पासवाले तारे को देखता रहा। सहसा मुड़कर लालटेन की तरफ़ देखा, उसमें तेल नहीं था। पत्नी के नाम अधूरा लिखा पत्र तकिये के पास पड़ा था। कुछ याद कर वह उठा; उसने सोचा कि पत्र पूरा ही कर डाले, ज़माने बाद तो लिख रहा है। वह कुरता पहन, इकन्नी ले, कमरे में ताला डाल निकला तो रात के ग्यारह बजे का गजर बज उठा रहा था।

वह सड़क पर आया, शीतल हवा ने उसे रोमांचित कर दिया। दूर दूकान की रोशनी चमक रही थी। रजनीगंधा की तीखी गंध चारों ओर फैली हुई थी। दूकान में झाँक कर उसने तेल की मांग की। अंदर से एक लड़की ने कहा कि बाबू सिनेमा देखने गया है, आएगा तब देगा। नरोत्तम ने पूछा, क्या बारह बजे? लड़की ने कहा, नहीं साढ़े बारह! और शायद वह हंस दी।

"अरे बड़ी रात बीत जायगी, बहुत ज़रूरत है, तुम्हीं दे दो न!"

"न मैं न दूंगी, मैं बाहर न आऊँगी"।

नरोत्तम ने कहा, "अच्छा यह लालटेन रखे जाता हूँ, बारह बजे आकर ले जाऊँगा।"

"बारह नहीं, साढ़े बारह!" लड़की शायद फिर हँस दी।

थोड़ी देर तक वह विमूढ़-सा चाँदनी में खड़ा रहा। सामने अमलतास के कई पेड़ थे जो अब फूलने वाले थे। 'फूल कर वे कैसे हो जायेंगे' की कल्पना से वह कुछ उत्साहित हो उठा और उसके क़दम अनायास ही आगे बढ़ गये।

यह, इस छोटे-से शहर का पूर्वी छोर था। सामने बहुत दूर तक केवल खेत थे और उनके बीच यह सड़क, जो न जाने कहाँ जाती है! उसके सारे तन-बदन पर एक शीतलता छा गयी और वह, सड़क पर यूं था जैसे कि नहीं था। बहुत दिनों बाद वह ऐसी शीतल चाँदनी में था। उसने फिर सोचा कि मैं कितना अकेला हूँ! और उसे वे दिन याद आये जब वह हिन्दू विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। तब ऐसी ही रातें होती थीं! असंख्य रातें—और गंध की बाढ़ होती थी। उन दिनों की याद से उसने अपने को नाहक उदास करना नहीं चाहा और इस रात को निस्तब्ध गंभीर देखने का नाटक करने लगा। उसने सोचा कि सारी दुनिया पर यह रात है, चाँदी-सी रात। उसे अपने गाँव के उत्तर का पहाड़ याद आया। इस समय वह कैसा होगा? और एक सपने-सा उसके सामने वहाँ का सब कुछ उतर आया। फिर उसका अपना गाँव और अपना घर—घर, जहाँ वह अपने को अव्यवस्थित पाता। एक-दो दिनों बाद ही वह घर से ऊब जाता। पिताजी के प्रति उसके मन में अपार श्रद्धा है लेकिन वे सोचते कि वह बराबर उनकी उपेक्षा कर रहा है। घर पर चुप-चाप पिताजी को बैठे देख उसे बड़ी पीड़ा होती। वे कभी-कभी उसकी तरफ़ एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचटती निगाह डाल देते और तब वह उनसे कुछ बातें करना चाहता। लेकिन हर बार होता यह कि वह अपने ही वाक्यों से घबड़ा जाता। इतने कृत्रिम और रूखे शब्दों का व्यवहार तो वह आफ़िस में भी नहीं करता। वह हैरान हो जाता कि उसका समूचा स्नेह-रस क्यों सूख जाता है? फिर वह तत्काल घर से चले आने की बात सोचता। बहुत चाहने पर भी वह पत्नी को साथ नहीं ला सका।

वह बीच सड़क में रुक गया। रजनी-गंधा की गंध बहुत पीछे छूट गयी थी, कटहर की गंध कहीं से आ रही थी और पृष्ठभूमि में कहीं महुआ भी था। उसने ऊपर चाँद की तरफ़ देखा और उसकी इच्छा पत्नी से मिलने की हुई। उसे इस बात से कितना दुःख था, यह भगवान ही जानता था कि उसकी पत्नी को उसके प्यार के प्रति संदेह होता जा रहा था। उसने कई बार सोचा है कि पत्नी के मन से यह सन्देह निर्मूल कर देगा, कि उसे स्नेह से आप्यायित कर देगा, लेकिन हर बार संदेह पक्का होता गया है। वह फिर उदास हो गया और इस अद्‌भुत रात में उसे अपनी परेशान ज़िन्दगी सब कहीं फैली-सी लगी।

आसमान में चाँद के पास एक बादल का टुकड़ा आ गया। उसने पीछे देखा, दूकान बहुत दूर हो गयी थी। सामने बस सड़क थी। यह सड़क कहाँ तक गयी होगी? इसके किनारे कितने गाँव होंगे, क्या-क्या होगा, और फिर इस चाँदनी में कैसा लग रहा होगा? क्या इस सड़क पर कोई और भी टहल रहा होगा? कहीं इसके किनारे घने आमों के पेड़ होंगे, उनकी बौर की उन्मत्त गंध....उसे एक रहस्यमय अनुभूति-सी हुई। बग़ल में एक जुता खेत था, वह उसमें उतर गया।

अकस्मात् एक अंग्रेज़ी कविता की कुछ पंक्तियाँ उसे याद हो आयीं। उसने अत्यंत अस्फुट स्वर में वे पंक्तियाँ को गुनगुनायीं :

In that open field
If you do not come too close,
If you do not come too close,
On a summer midnight,
You can hear the music
of the weak pipe and little drum.

फिर उसने जो कुछ देखा, उससे उसे आश्चर्य हुआ। कितनी भेड़ें खेत में बैठी ऊँघ रही थीं। दूर कुछेक झोंपड़ियाँ थीं। वह वहाँ खड़ा रहा और फिर उसने एक को धीरे से छुआ। 'क्या मेरी उपस्थिति का ज्ञान इन्हें हो गया होगा?' उसने सोचा। समूचे खेत में बैठी भेड़ें, जैसे खेत में उगी हों। उसने ऊपर आसमान को देखा। बादल चाँद को छू रहा था। 'मैं इसमें से एक बच्चा उठा ले जाऊँ तो? लेकिन बाबा, मैं भेड़ क्या करूँगा!' वह बैठ गया और एक भेड़ को सहलाने लगा। धीरे-धीरे उसकी आँखों पर अँगुलियाँ ले गया। नरम, ऊष्म, कोमल पत्ती-सी खुलती-मुंदती आँखें—उसे लगा कि समूची भेड़ में यही जीवित स्थान है। सहसा उस भेड़ के प्रति उसके मन में एक करुणा उपजी और उसने अपना सिर उसकी पीठ पर रख दिया। अपनी दसों अँगुलियाँ उसके गरम बालों में फँसा लीं और शरीर की ऊष्मा महसूस की। नरोत्तम ने अन्य भेड़ों की तरफ़ देखा और सहसा उसे समूचा वातवरण बदला-सा लगा। चाँद को बादलों ने पूर्णतः ढँक लिया था और कुछ क्षण पूर्व वाली चमकती पारदर्शी रात सहसा मटमैली हो उठी थी। पूरब से हवा का एक झोंका आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और समूची भेड़ों में इसकी प्रतिक्रिया हुई। नरोत्तम ने शहर की ओर देखा—वहाँ शहर का संकेत था और एक विचित्र उच्छ्वासपूर्ण स्वर हवा में बह रहा था। बिजली घर की चिमनियों की स्पष्ट साँय-साँय सुनाई पड़ रही थी। समूचे शहर पर रात होने की अनुभूति थी और नरोत्तम को सब कुछ असाधारण लगा। उसने सोचा कि यहाँ केवल मैं हूँ और चारों तरफ़ से तटस्थ भाव से आत्मकेन्द्रित भेड़ें। थोड़ दूर से देखने पर लोग मुझे भी भेड़ समझ सकते हैं। यह कितना अजीब है—लेकिन कितना सच कि मुझे लोग भेड़ ही समझेंगे। फिर नरोत्तम ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और उसे लगा कि उसने बाहर की समस्त भेड़ों को अपनी पलकों में बन्द कर लिया है। फिर उसने ऊपर चाँद की तरफ़ देखा और देखा कि ढेर-से बादल जमते जा रहे हैं। अरे, आसमान में भी भेड़ें हैं। और अगर सचमुच आसमान में भी भेड़ें हैं, यानि मैं ज़मीन की भेड़ों को भी वहीं देखूं तो मेरी भेड़ों की जानकारी के बारे में क्या फ़र्क पड़ता है। भेड़ें ज़मीन पर नहीं, आसमान में हैं। मैं उन्हें वहाँ देख सकता हूँ—जैसे आसमान में मुझे अपनी अम्मा की शक्ल दिखाई पड़ती है, जैसे वहाँ मेरा घर है, बचपन के दिनों की पाठशाला...और इन सबका आसमान में होना उतना ही सच है जितना उनका कहीं होना....।

नरोत्तम को एकाएक अपना सोचना अत्यंत निरर्थक लगा और वह भेड़ को फिर सहलाने लगा। आफिस में या घर पर कभी उसने इतनी शान्ति नहीं महसूस की थी। उसे लगा कि सामने वाली भेड़ उसके दुःख को समझ रही है और यह पहला प्राणी है जिसने उसके दुःख को समझा है। उसने अपनी अंगुली से भेड़ के मुंह को छुआ और उसकी गरम साँस उसे बड़ी मानवीय लगी।

उसने सोचा कि उसकी उपस्थिति से भेड़ की पूर्व मनःस्थिति में क्या कोई परिवर्तन हुआ होगा? क्या उसे कुछ नया महसूस हो रहा होगा। उसने उसके कान के पास मुंह ले जाकर कहा, "कुछ सुन रही हो, मैं बहुत दुःखी आदमी हूँ। तुमने कभी किसी आदमी के बारे में सोचा है।"

नरोत्तम ने उसका सिर उठा लिया और ध्यान से देखने लगा। भेड़ ने उसकी जाँघ पर अपना सिर रख दिया। 'अरी पगली, तू समझ गयी।' वह खड़ा हो गया। उसने भेड़ को झुककर थपथपाया और कहा, "तू मेरी दोस्त है! मैं अब चला, बहुत सारे काम करने हैं और फिर.....।" सहसा उसका जी सन्न हो गया। भेड़ की समूची देह पर एक काली परछाहीं उभर आयी; उसने निगाह उठाकर देखा और एक हल्की-सी चीख उसके मुंह से फूट पड़ी। सामने लाठी लिये एक आकृति खड़ी थी।

'यहाँ क्या कर रहे थे, इधर क्यों आये?'

'जी कुछ नहीं, बस यूं ही टहल रहा था।'

'खूब टहल रहे थे, चोर कहीं का! भेड़ें चुराने आया था!'

'जी नहीं, मैं चोर नहीं हूँ, मैं तो बस यूं ही इधर चला आया था। देखा, भेड़ है, सो इधर चला आया।'

'और सोचा कि दो-एक लेते चलूं, क्यों?'

'नहीं भाई, मैं भेड़ें क्या करूँगा?'

'तो यहाँ क्या कर रहे थे?' और आकृति के कंधे की लाठी नीचे आ गयी।

'मैं बस यूंही इससे बातें कर रहा था।'

'बातें? भेड़ से? दिमाग़ तो ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ?'

'नहीं भाई, लेकिन मैं चोर नहीं हूँ, रेलवे में काम करता हूँ पढ़ता-लिखता हूँ, लालटेन में तेल नहीं था....तेल लेने निकल पड़ा।'

'और भेड़ से तेल मांग रहे थे ? बातें बनाते हो !' आकृति की आवाज़ कड़ी हो गयी। नरोत्तम ने सोचा कि मार पड़ी और तब तक तड़ाक से एक चपत लगी, बायें गाल की सारी संवेदना उड़ गयी, फिर दाहिने गाल की भी....। दुबला-पतला क्लर्क गिर पड़ा, फिर पीठ पर लाठी गिरने वाली ही थी कि एक नारी ने रोक लिया—'हाँ, हाँ, बेचारा मर जायगा, बस हो गया, क्या बात है ?'

'बात क्या, साला चोर है ! भेड़ें चुराने आया था।'

'अच्छा अब जाने दो, लड़का मालूम पड़ता है, फल पा गया।'

नरोत्तम उसी तरह गिरा पड़ा था। 'भाग जा' औरत ने कहा, और नरोत्तम का हाथ पकड़कर उठाया। चाँदनी रात में सफेद कुर्ता-पैजामा पहने नरोत्तम बुत की भाँति खड़ा हो गया। उसके बड़े-बड़े बाल चेहरे पर झुक आये थे, दाहिने हाथ से उसने उसे ऊपर किया और चाँदनी रात में उसकी अँगूठी चमक उठी। उसने सामने गड़ेरिये-दम्पत्ति को देखा।

'तुम भेड़ चुराने आये थे ?' औरत ने पूछा।

नरोत्तम चुप रहा।

'चोर तो नहीं मालूम पड़ रहा है !... बाबू, यहाँ क्या कर रहा था ?'

'भेड़ से बातें कर रहा था और तेल माँग रहा था !' गड़ेरिये ने हँसकर कहा।

बातें..., क्यों बाबू शहर में तुम्हारा कोई नहीं है जिससे बातें करो ? बोलते क्यों नहीं ?'

नरोत्तम गालों को सहला रहा था। उसमें आँच-सी लग रही थी। सहसा उसके कंठ से एक अजीब-सी अपरिचित आवाज़ निकली और उस आवाज़ ने उसकी संपूर्ण यात्रा का उद्देश्य कह सुनाया। थोड़ी देर तक सब चुप रहे।

'बाबू चोर नहीं है, नाहक मार दिया।'

'मैंने तो समझा, चोर है, नहीं तो क्यों मारता ?'

'तुम चोर और भले आदमी नहीं पहचानते ? देखते नहीं, फूल-सा कोमल लड़का, भेड़ चुरायेगा ! जनम भर भेड़ें जो चराई हैं ?' औरत की आवाज़ में सहज मातृत्व भाव छलक आया, 'जी बाबू, माफी दो।'

सड़क पर किस गति में बँधा वह घर की तरफ खिचा जा रहा था। उसकी कनपटियों को छूती रात की शीतल हवा बह रही थी, बाल उड़ रहे थे।

मिट्टी के तेल वाली दूकान एकदम सूनसान थी। उसने आवाज़ दी, और फिर आवाज़ दी। 'क्या है ?' उसी लड़की की ऊँघती-सी आवाज़ आयी।

'तेल मिलेगा ?'

'इतनी रात गये ! अभी तो बाबू नहीं आया।'

नरोत्तम की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या जवाब दे। तब तक उसका बाबू आ गया। लालटेन में एक आने की तेल भरी और बोला, 'सरकार, हम गरीबों की भी इज्जत होती है।'

'हाँ, हाँ !' नरोत्तम ने कहा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी समझ में कुछ नहीं आया। थोड़ी दूर आने पर उसने सुना, दूकानदार कह रहा था, 'साले अपनी बहू-बेटियों की तरह सबको नहीं समझते! पढ़े-लिखे हैं! क्यों रे, वह यहाँ कब आया था?'

नरोत्तम की कनपटी दुबारा लाल हो उठी। ग्लानि के मारे उसे अपना सारा शरीर सुन्न-सा लगा और वह जल्दी-जल्दी कमरे की ओर चल पड़ा। वह विमूढ़-सा सब कुछ झेल रहा था और कुछ नहीं समझ पा रहा था। अपना समूचा अस्तित्व उसे बदला-सा लगा। उसने अपने को आपादमस्तक देखा और डर गया। मारे डरके उसके रोयें खड़े हो गये और वह जल्दी-जल्दी क्या, अपने कमरे की ओर दौड़ पड़ा।

अचानक एक आकृति को दौड़ते देख एक कुत्ता ज़ोर-से भूंक उठा और पीछे दौड़ा। कुत्ते को पीछे दौड़ता देख वह और तेज़ दौड़ पड़ा। कुत्ता ज़ोर-ज़ोर-से भूंकने लगा और तब तक न जाने कहाँ से तीन-चार कुत्ते आ गये। सबने मिलकर अच्छा-ख़ासा हंगामा मचा दिया। नरोत्तम की साँस बड़ी तेज़ चल रही थी और ठेस लगने के कारण वह गिर पड़ा, लालटेन हाथ से छूट गयी और तेल गिर गया, शीशा टूट गया। किसी तरह वह अपने कमरे के सामने पहुँचा और ताला पकड़ कर खड़ा हो गया। खड़ा रहा, खड़ा रहा, और उसने सोचा, 'क्या मैं पागल हो गया हूँ?' फिर भय हुआ, कहीं मुहल्ले वाले उसे चोर समझकर उसका पीछा तो नहीं कर रहे हैं? और तब उसे लगा कि दूकानदार पीछा आ रहा है। उसने जल्दी-से दरवाज़ा खोला, अंदर दाख़िल हुआ, बंद किया और चुपचाप खिड़की के पास खड़ा होकर आहट लेने लगा। कहीं कुछ नहीं, उसने फिर अपने को देखा और सोचा—'क्या मैं पागल हो गया हूँ। मैं रात को टहलता रहा, भेंड़ से बातें करता रहा....ओह...!' और सहसा उसके मुंह से मद्धिम-सी साँस लेती हुई आवाज़ निकली और वह बिस्तरे पर औंधा मुंह गिर पड़ा। उसका सिर तकिये पर था, कनपटियाँ जल रही थीं, आँखों में गर्म रोड़े गड़-से रहे थे और पत्नी के पास आध लिखा पत्र बायें कान के नीचे दब गया था।

काफ़ी देर तक वह यूं ही शून्य मन पड़ा रहा और फिर कुछ भटके-से ख़याल आये और फिर उसने एक तन्द्रा-सी महसूस की और उसने देखा कि उसके आफ़िस में हज़ारों, लाखों की संख्या में भेड़ें ही भेड़ें हैं। वे घूम रही हैं, एक परिधि में चक्कर लगा रही हैं....। फिर उसने उन तमाम भेड़ों के बीच एक युवती को देखा। उसका पृष्ठ भाग दिखलायी पड़ रहा था। उसकी केश-राशि पीठ और बाहुओं पर फैल गयी थी। फिर उसने देखा, वह मुड़ गयी है और अपने मुंह पर झुके केशों को हटा रही है....। वह उसकी पत्नी है जो उदास-गुमसुम उन भेड़ों में किसी को तलाश रही है, उसकी नन्हीं-सी, प्यारी-सी नाक रह-रहकर फड़क उठती है और एक मद्धिम-सा उच्छ्वास सुनायी पड़ रहा है। नरोत्तम ने एक लंबी साँस ली, उसका सिर तकिये के नीचे गिर गया और फिर थोड़ी बाद उसे नींद आ गयी।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दु जैन

विक्षिप्त और लड़खड़ाते पाँव--
गहरी रात में चमकते
उदास मकान की
खोखली खिड़कियों से
दूर रह जाते हैं।

पत्तों में सन्नाटा सरसराता है,
पेड़ों में चीते लोट जाते हैं।

और आ जाते हैं आँसू--
उन पर झुंझलाहट
आँसू में अकस्मात्
अँगार उग आते हैं।

तब मैं सिर धुनती हूँ--
हवा-सी बिलखती हूँ--
लहर-सा पछाड़ खाता,
पागल मन मेरा
बार बार रोता है--

'उनको मैं....
क्या भूला....?
मैं उनको क्या कभी भूला??'

विक्षिप्त और लड़खड़ाते पाँव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरद देवड़ा

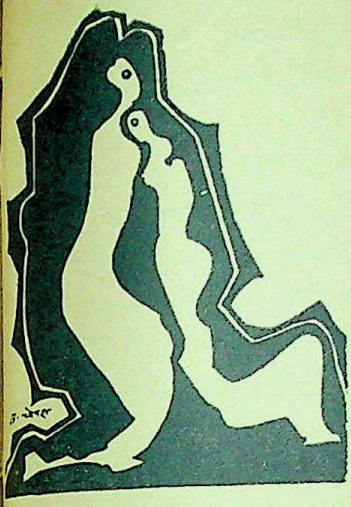

सागर पार की हलचलें (६)

पुरुषों ने नारी-प्रेम की महिमा और गरिमा की प्रशंसा में अब तक बहुत कुछ कहा और लिखा है; लेकिन वस्तुतः नारी के लिए प्रणय कितना घातक और पीड़ादायक होता है, और इसके कौन-कौन से मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक कारण हैं– इसे एक नारी ही ठीक से महसूस कर सकती है। प्रस्तुत लेख में विश्व-प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखिका साइमन दे' ब्यवोय ने इसी महत्त्वपूर्ण विषय का एक तटस्थ और वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, जो लेखिका की बहुचर्चित पुस्तक 'द सेकण्ड सेक्स' के 'द वुमन इन लव' अध्याय का सार-संक्षेप है।

प्रणय शब्द का अर्थ नारी और पुरुष के लिए समान नहीं होता। बायरन ने ठीक कहा था : "पुरुष के लिए प्रणय जीवन में एक अलग वस्तु की तरह होता है, जबकि नारी के लिए उसका समूचा अस्तित्व।" नीत्से भी यही बात कहता है : "वस्तुतः प्रणय नामक यह अकेला शब्द नारी और पुरुष के लिए दो भिन्न अर्थ रखता है। नारी के लिए प्रेम मात्र भक्ति ही नहीं होता, वरन् बिना कुछ भी लुकाये-छिपाये, बिना किसी तरह का हीला-हवाला किये या प्राप्ति की आशा किये अपनी देह और आत्मा को सम्पूर्ण रूप से समर्पित कर देने का भाव होता है– पुरुष जब किसी नारी से प्रेम करता है तो वह उससे अपने प्रेम का प्रतिदान चाहता है। अगर कहीं ऐसे पुरुष हों जिनमें नारी की तरह एकान्त समर्पण की चाह हो तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि वे पुरुष हो ही नहीं सकते।"

पुरुष अपने जीवन के कुछ विशेष अवसरों पर ज़ोरदार प्रेमी होना संभव पा सकते हैं, लेकिन उनमें से एक भी ऐसा नहीं होता जो 'महान् प्रेमी' कहला सके।

नारी : प्रणयिनी रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी उत्तेजना के तीव्रतम क्षणों में भी वे सम्पूर्ण मन से समर्पण नहीं करते; उनके लिए प्रेमिका अन्य बहुत-से मूल्यों में से मात्र एक मूल्य होती है; वे उसे अपने अस्तित्व में एकाकार कर लेना चाहते हैं, अपने अस्तित्व को सम्पूर्णतः उस पर लुटाते कभी नहीं। इसके विपरीत, नारी के लिए प्यार करने का अर्थ है अपने प्रिय के लाभ के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देना। सेसिल सावज का तो कहना है कि, "औरत जब प्यार करती है तो वह अपना आपा भूल जाती है। यह प्रकृति का नियम है।"

●

लेकिन सचाई यह है कि हमें यहाँ प्रकृति के नियमों से कुछ लेना-देना नहीं है। प्रेम के प्रति नारी और पुरुष की धारणाओं में यह जो अन्तर है वह वस्तुतः उनकी विभिन्न परिस्थितियों के ही परिणाम स्वरूप है। बचपन से ही वह पुरुष के अधीन रहती है, पुरुष को वह एक अद्वितीय व्यक्ति के रूप में देखने की अभ्यस्त होती है जिसकी वह बराबरी नहीं कर सकती, इसलिए वह इस शक्तिशाली व्यक्तित्व में स्वयं को एकाकार ही कर देने के स्वप्न देखती है। इसके सिवाय उसे और कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता। वह अपनी इस गुलामी को इतनी तीव्रता से चाहती है कि इसी को अपनी स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति समझने लगती है। अपनी इस स्थिति को सम्पूर्णतः स्वीकार करके ही वह इससे ऊपर उठने की कोशिश करती है। अपनी देह, अपनी भावनाएँ और अपने व्यवहार सब कुछ में वह पुरुष को ही उच्चतम मूल्य और चरम यथार्थ के सिंहासन पर आसीन कर लेती है। उसके सामने वह स्वयं को शून्य दिखाने में भी दीनता महसूस नहीं करती। प्रणय उसके लिए धर्म का रूप ले लेता है।

एक सीधीसादी किशोरी की दृष्टि में पुरुष का महत्व, परिस्थितियों के अनुसार उसकी शारीरिक शक्ति, धन, बुद्धि, अधिकार, सामाजिक प्रतिष्ठा, व्यवहार में विशिष्टता, फ़ौजी वर्दी आदि में से किसी में भी निहित हो सकता है, लेकिन एक चीज़ जो वह निश्चित रूप से सदा चाहती है वह यह कि उसका प्रेमी पुरुषत्व के सार-तत्व का प्रतिनिधि हो।

अक्सर निकटता नारी की दृष्टि में पुरुष की प्रतिष्ठा को नष्ट कर देती है; ऐसा प्रथम चुम्बन में भी हो सकता है, और दैनिक मेल-मुलाक़ात में या सुहागरात के दौरान में भी। जो हो, दूर से प्रेम करनेवाली बात महज़ कपोल-कल्पना है, यथार्थ नहीं। हाँ, प्रेम की आकांक्षा पहले से भी हो सकती है, लेकिन यह आकांक्षा तीव्र प्रेम का रूप तभी ले सकती है जब यह ऐन्द्रिय सुख के स्तर पर भोग ली जाती है। दूसरी ओर, शारीरिक मिलाप के बाद उसके परिणामस्वरूप भी प्रेम उत्पन्न हो सकता है। लेकिन इन दोनों ही स्थितियों में ऐन्द्रियता का तत्व ज़रूर शामिल रहता है।

लेकिन अक्सर यह भी होता है कि, नारी अपने परिचितों में से किसी को भी प्यार के सिंहासन पर बैठाने में सफल नहीं होती। साधारणतः, नारी के जीवन में प्रेम का जितना बड़ा स्थान समझा जाता रहा है, दरअसल है उससे बहुत कम। पति, बच्चे, घर, आमोद-प्रमोद, सामाजिक दायित्व, अहं, यौनाचार, कैरियर आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके लिए कहीं अधिक महत्व रखते हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ एक महान् प्रेमी के स्वप्न देखा करती हैं—एक ऐसे प्रेम के स्वप्न जो उनके देह-मन-प्राण को जड़-मूल से हिलाकर रख दे। वे इस तरह के प्रेम के निकट तक पहुँचकर रह जाती हैं। यह प्रेम आंशिक, कटे-फटे, उपहासास्पद, अपूर्ण और मिथ्या रूपों में उनके पास आता है, लेकिन बहुत ही कम नारियाँ ऐसी होती हैं, जो इसके लिए अपना जीवन सचमुच उत्सर्ग कर देती हों।

●

मनोविश्लेषकों का कहना है कि, नारी अपने प्रेमी में अपने पिता का प्रतिरूप खोजती है। एक छोटी बच्ची के रूप में वह अपने घर और परिवार से बँधी रहती थी, उसके सिर पर उसके माँ-बाप का साया रहता था, प्रेम में उसे पुनः अपनी माँ और अपने पिता मिल जाते हैं, अपना बचपन मिल जाता है। बहुत-सी स्त्रियों के प्रेम में इस बाल्यकालीन नाटक की अनुगूंज समायी रहती है, यही कारण है कि उन्हें पुरुषों द्वारा 'मेरी नन्हीं-मुन्नी', या 'तुम तो बिलकुल बच्ची हो' आदि कहा जाना इतना अच्छा लगता है।

सभी धर्मों में अपने आराध्य की भक्ति के समय हर भक्त के मन में अपने एकान्त और पूर्ण समर्पण के साथ अपनी व्यक्तिगत मुक्ति की भावना निश्चित रहती है। प्रेम करते समय नारी के मन में भी इसी गहरे और पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना कार्य करती है। नयन बन्द, अनाम और विस्मृत-सी, वह महसूस करती है गोया लहरों पर बैठी हुई, आँधी के थपेड़ों से, किन्हीं अन्धकार की पर्तों में बहती चली जा रही है। उसका 'मैं' नष्ट हो जाता है, और अपनी जड़ से उखड़कर वह 'पूर्ण' के साथ एकाकार हो जाती है। लेकिन जब उसका प्रिय-पात्र उससे दूर चला जाता है, तो वह पुनः स्वयं को इसी धरती पर, प्रकाश में, खड़ी हुई पाती है। अब पुनः उसका एक नाम है, एक चेहरा है, वह अब एक पराजित, शिकार, और वस्तु रह जाती है।

प्रेम में निहित इस ऐन्द्रिय तत्व के ही कारण हम अक्सर देखते हैं कि धार्मिक सूत्रों

साइमन दे ब्यूवोय

और प्रणय-गीतों में अश्लीलता की समानता पायी जाती है। बात यह नहीं है कि रहस्यवादी प्रेम ही ऐन्द्रिय प्रकृति का होता है, बल्कि प्यार करनेवाली स्त्री की ऐन्द्रियता में ही रहस्यवाद का रंग निहा होता है।

"मेरे प्रभु, मेरे आराध्य, मेरे मालिक और स्वामी"—घुटनोंपर झुककर प्रार्थना करती हुई भक्तिन और सेज पर लेटकर प्रेम करती हुई प्रेमिका दोनों के होठों पर ये एक जैसे ही शब्द होते हैं। दोनों नारियों के मन में वही एक जैसा स्वप्न होता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही बचपन का स्वप्न, वही रहस्यवादी स्वप्न, वही प्रेम का स्वप्न : कि 'मैं' को 'अन्य' में एकाकार करके एक पूर्ण अस्तित्व की प्राप्ति करना।

इस स्वप्न की सिद्धि के लिए नारी सबसे पहली जो चीज़ चाहती है वह है सेवा करना, क्योंकि अपने प्रिय-पात्र की माँगों को पूरा करने में उसे महसूस होता है कि उसका अस्तित्व निरर्थक नहीं है, बल्कि आवश्यक है। रहस्य-वादियों का भी तो यह विश्वास है, जैसा कि एंजेल्स सिलेसस का कहना है, कि ईश्वर को मनुष्य की आवश्यकता है, अन्यथा तो उनका त्याग और समर्पण भी व्यर्थ हो जायेगा। पुरुष जितनी अधिक माँग करता जाता है, नारी उतनी ही संतुष्टि महसूस करती है।

ये लक्षण हर प्रेमिका में पाये जाते हैं। अगर ज़रूरत हो, तो अपने प्रेमी के नाम पर वह स्वयं पर अत्याचार करने में भी बाज़ नहीं आती : जो कुछ वह है, जो कुछ उसके पास है, और उसके जीवन का हर क्षण केवल उसके प्रिय-पात्र को समर्पित होना चाहिए ; तभी उसके होने की सार्थकता है। उसे दुःख होता है तो केवल तभी जब उसका प्रिय-पात्र उससे किसी चीज़ की माँग नहीं करता। स्त्री में यह भावना इस सीमा तक कार्य करती है कि अक्सर एक भावना-प्रवण प्रेमी महज़ उसकी सन्तुष्टि के लिए नयी-नयी माँगों का निर्माण करता रहता है।

●

प्रेम के प्रारम्भिक दिनों में नारी पहले से अधिक सुन्दर और सौभाग्यशाली बन जाती है। "जब अदिले मेरे बाल सँवारती है, तो मैं चाव से अपने मुखड़े की ओर देखती हूँ, क्योंकि तुम उसे प्यार करते हो"—ये शब्द हैं मैड-मोयसिले डी एगोल्ट के और सामान्यतः हर प्रेमिका की यही भावना रहती है। यह मुखड़ा, यह देह, यह कमरा, यह मैं—उसे इन सबके होने की सार्थकता मिल जाती है। लेकिन कुछ समय बाद, ठीक इसके विपरीत वह ये सब साज-सँवार और चोंचले छोड़ देती है। अगर उसके प्रेम की ऐसी ही इच्छा हो तो वह अपने उस पूर्व-रूपाकार को भी बदलने के लिए तैयार हो जाती है जो पहले उसे अपने प्रणय से भी अधिक प्रिय था। अब इन सबमें उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। जिस चीज़ की उसका प्रिय परवाह नहीं करता उससे वह भी विमुख हो जाती है। अपने हृदय की हर धड़कन, अपने रक्त की आख़िरी बूंद, अपनी देह का रोम-रोम वह अपने प्रेमी को समर्पित कर देती है। आत्म-समर्पण की इस क्रिया को वह दारुण यंत्रणा, बल्कि मृत्यु तक खींच ले जाती है, उसके पैर के नीचे की मिट्टी बन जाने की कामना करती है। जिस वस्तु का उसके प्रिय के लिए उपयोग नहीं, उसे वह पागल की तरह मिटा देती है।

आध्यात्मिक प्रेम की तरह, मानवीय प्रेम का भी अन्तिम लक्ष्य अपने प्रिय-पात्र के साथ एकाकार हो जाना ही है। मूल्यों का मान, जगत का सत्य सब चूंकि उसके प्रिय में ही निहित है, इसलिए मात्र उसकी सेवा करना ही पर्याप्त नहीं है। वह अपने प्रेमी की आँखों से देखने की कोशिश करती है: जिन किताबों को उसका प्रेमी पढ़ता है उन्हीं को वह पढ़ती है; जिस संगीत और चित्र को वह पसन्द करता है उन्हीं को वह भी चाहती है; जिन स्थलों को वह उसके साथ देखती है, और जो विचार उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिमाग़ से उपजते हैं, केवल उन्हीं स्थलों और विचारों में उसकी रुचि होती है। वह उसके मित्रों को अपना मित्र, उसके शत्रुओं को अपना शत्रु और उसकी राय को अपनी राय मान लेती है। जब वह स्वयं से कोई प्रश्न करती है, तो जो उत्तर सुनना चाहती है, वह 'उसका' उत्तर होता है; अपने फेफड़ों में वही हवा भरना चाहती है, जिसमें उसके प्रिय की साँस शामिल हो; जो फल और पुष्प उसके प्रिय के हाथ से प्राप्त नहीं होते उनमें कोई स्वाद या सुगन्ध नहीं रहती। यहाँ तक कि उसकी स्थान सम्बन्धी धारणा भी उलट-पुलट जाती है। सृष्टि का केन्द्र अब वह जगह नहीं होती जहाँ वह स्वयं रहती है, बल्कि वह हो जाती है जहाँ उसका प्रेमी रहता है; सभी रास्ते उसके प्रिय के घर की ओर जाते हैं या वहीं से शुरू होते हैं। वह उसके शब्दों का उपयोग करती है, उसके हाव-भाव की नक़ल करती है, उसकी सनकों और लतों को अपना लेती है। 'वुदरिंग हाइट्स' में कैथरीन कहती है, "मैं ही हीथक्लिफ हूँ"। यह केवल कैथरीन की नहीं, हर प्रणयिनी के मन की आवाज़ है; वह 'वह' बन जाती है। वह अपनी स्वयं की दुनिया को लुप्त हो जाने देती है; क्योंकि दरअसल वह अपने प्रिय-पात्र की दुनिया में रहती है।

एक प्रेमिका का महानतम सुख इस भावना में निहित होता है कि उसका प्रिय-पात्र उसे अपना ही एक अंग समझता है। जब उसका प्रिय 'हम' शब्द का व्यवहार करता है, तो उस 'हम' में वह स्वयं को भी शामिल मानती है। वह उसकी प्रतिष्ठा में हिस्सा बँटाती है और उसके साथ समूची दुनिया पर शासन करती है। इस 'हम' शब्द को बार-बार दुहराने में वह कभी थकान का अनुभव नहीं करती। जब तक वह प्यार करती है और प्यार का प्रतिदान पाती रहती है और अपने प्रिय पात्र के लिए स्वयं को आवश्यक समझती रहती है, तब तक वह अपना अस्तित्व पूर्णतः सार्थक समझती रहती है, तब जक वह सुख और शान्ति महसूस करती है।

● ●

लेकिन अफ़सोस, यह स्थिति अधिक समय तक क़ायम नहीं रह पाती। कोई भी मनुष्य सचमुच का ईश्वर नहीं है। एक अदृश्य आराध्य के प्रति एक भक्तिन की आस्था के स्थायित्व का कारण यह है कि यह उस अकेली की लगन पर निर्भर रहती है; लेकिन देवत्व के सिंहासन पर स्थापित मनुष्य, जो दरअसल देवता है नहीं, स्वयं सामने उपस्थित रहता है। और यही तथ्य एक प्रेमिका की पीड़ाओं का स्रोत होता है। उसकी नियति अठारहवीं सदी की विख्यात बौद्धिक महिला जुली दे लेस्पिनास्स के प्रसिद्ध शब्दों में संक्षेप में यों व्यक्त की जा सकती है: "मेरे प्रियमित्र, सदा मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, पीड़ा सहती हूँ, और तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूँ।" यह सच है कि पीड़ा प्रेमियों को भी होती है, लेकिन उनकी पीड़ा या तो कम अवधि तक क़ायम रहती है या फिर इतनी अधिक हृदय-विदारक नहीं होती; जब कि नारी, चूंकि वह एकान्त रूप से पुरुष पर निर्भर होती है, अपने लिए इसी पीड़ा में एक नरक का निर्माण कर लेती है। लेकिन जब प्रेमिका को अपने देवता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुल्य आदर्श प्रिय की खामियों और कमज़ोरियों का पता लगता है तो दुःख और निराशा से उसका हृदय चाक-चाक हो जाता है। भ्रम टूटने का यह दुःख उस बच्चे के दुःख से कहीं अधिक तीखा होता है जो अपने पिता की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलते हुए देखता है, क्योंकि नारी अपने प्रिय-पात्र का अपनी स्वेच्छा से चुनाव करती है, और उसे अपना सर्वस्व समर्पण कर चुकी होती है।

इस निराशा का कारण यह है कि वह अपने प्रिय-पात्र पुरुष को भगवान मानकर पूजती है जब कि सचमुच में वह एक साधारण इन्सान होता है। अपने प्रेमी को मानवीय तुला पर तौलने से अस्वीकार करनेवाली बात में नारी-मन की बहुत-सी गुत्थियाँ छिपी हुई हैं। नारी अपने प्रेमी से किसी बात की माँग करती है। अगर प्रेमी मान जाता है? तो वह उदार, धनी, शानदार है, राजा है, देवता है। अगर प्रेमी उस बात को नहीं मानता? तो वह नीच, घृणित और क्रूर है, शैतान और पशु समान है। 'हाँ' और 'नहीं' से होने वाली इन दो अतिवादी महामानवीय और अमानवीय प्रतिक्रियाओं के बीच में क्या मानवीय प्रतिक्रिया का कोई स्थान नहीं है?

एक पतित देवता मनुष्य भी नहीं रहता, वह धोखेबाज़ होता है। एक प्रेमी के लिए ज़रूरी है कि या तो वह सिद्ध करे कि वह सचमुच का राजा है जो सबके लिए सम्मान का पात्र होता है, या फिर स्वीकार करे कि वह राजा होने का ढोंग कर रहा था। स्त्री अगर अपने प्रेमी की पूजा नहीं करती, तो ज़रूरी है कि उसे पैरों से ठुकराये। वह अपने प्रिय के चेहरे के चारों ओर प्रकाश का एक घेरा बनाकर रखती है, और उसमें किसी भी तरह की कमज़ोरी को स्वीकार करना नहीं चाहती; लेकिन जब उसका प्रिय उसके मन-मन्दिर में स्थापित दैवी प्रतिमा के अनुकूल स्वयं को सिद्ध नहीं कर पाता तो उसे बेहद निराशा और झुंझलाहट होती है। यहाँ तक कि अगर वह थक जाता है या लापरवाही दिखाता है, अगर वह ग़लत समय पर भूख या प्यास महसूस करता है, अगर वह कोई गलती करता है या अपनी ही बात का विरोध करता है, तो वह कहने लगती है कि अब वह 'वह' नहीं रहा।

एक भाव-प्रवण प्रणयिनी के दुःख का कारण यह है कि उसकी उदारता जल्दी ही ज़िद में बदल जाती है। चूंकि वह स्वयं को अन्य में लुप्त कर चुकी है, इसलिए वह इस नुक़सान की क्षति-पूर्त्ति करना चाहती है—जिस व्यक्ति ने उसे बन्धन में डाल दिया है उसे अपने अधिकार में करके। वह स्वयं को सम्पूर्णतः अपने प्रिय के ऊपर न्योछावर ज़रूर कर देती है, लेकिन साथ ही यह भी आशा करती है कि वह इस भेंट को लेने के लिए सम्पूर्ण रूप से प्राप्य रहे। वह अपना हर क्षण उसे समर्पित कर देती है, लेकिन यह आवश्यक है कि वह हर समय उपस्थित रहे। वह केवल उसी में जीवित रहना चाहती है, लेकिन चूंकि वह जीवित रहना चाहती है, इसलिए आवश्यक है कि उसका प्रिय उसके जीवित रहने के इस कार्य में मदद करने के लिए स्वयं को पूरी तरह लगा दे। मिल्ले दे लेस्पिनास्स के निम्नलिखित शब्दों में यही पुकार ध्वनित हो रही है:

"आह मेरे प्रभु! काश तुम जान पाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि तुम्हें नहीं देख पाने के कारण मुझे अपने ये दिवस और यह समूची ज़िन्दगी कितनी खोखली लगती है; तुम्हारे अभाव में मुझे इसमें कोई रुचि नहीं, कोई खुशी नहीं। मेरे मित्र, तुम्हारे लिए आमोद-प्रमोद, धन्धा, और कर्म काफ़ी है, जबकि मेरे लिए, मेरे सुख तो तुम हो, मात्र तुम। अगर मुझे अपने जीवन के हर दिन तुम्हें देखने और प्यार करने की चाह नहीं होती, तो मैं जीने की ही परवाह नहीं करती।"

प्रेमिका अपने प्रेमी को अनेक ज़िम्मेदारियों और बोझों से लाद देती है और साथ ही यह आशा करती है कि वह उन सबको कृतज्ञता-पूर्वक वहन करे। लेकिन मुश्किल यह है कि प्रेमिका का अत्याचार सन्तुष्ट होना नहीं जानता। यह सच है कि प्यार करने वाला पुरुष भी अत्याचारी होता है, लेकिन जब वह अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त कर लेता है, तो सन्तुष्ट हो जाता है, जब कि एक प्रेमिका की अतिशय भक्ति की कोई सीमा नहीं होती। जिस प्रेमी का अपनी प्रेमिका में विश्वास है वह इस बात से अप्रसन्न नहीं होता कि उसकी प्रेमिका अनुपस्थित है या दूर किसी अन्य कार्य में व्यस्त है; अगर उसे इस बात का विश्वास है कि वह उसकी है, तो फिर वह उसे अपनी वस्तु बनाकर रखने की अपेक्षा उसे स्वतंत्र रहने देना अधिक पसन्द करेगा। इसके विपरीत, नारी के लिए अपने प्रेमी की अनुपस्थिति सदा पीड़ादायक होती है। जब उसका प्रेमी उसके अलावा किसी अन्य वस्तु की ओर नज़र भी डालता है, तो उसे इससे पीड़ा होती है; यहाँ तक कि उसकी बगल में बैठा हुआ भी अगर वह पढ़ता, लिखता या और कुछ करता रहता है तो उसे लगता है कि वह उसे धोखा दे रहा है, उसे त्याग रहा है। वह उसकी नींद से भी घृणा करती है। उसे निद्रामग्न देह की इस पशुतुल्य निष्क्रियता से नफ़रत होती है क्योंकि नींद की स्थिति में उस देह का स्वयं अपने लिए अस्तित्व होता है, प्रेमिका के लिए नहीं।

देवता को सोना नहीं चाहिये, क्योंकि नींद में वह मिट्टी और हाड़-मांस का बन जाता है। स्त्री को लगता है कि पुरुष की नींद स्वार्थपूर्ण और प्रवंचनामयी होती है। जब प्रेमी अपनी प्रिया को नींद से जगाता है तो वह उसे आलिंगन-बद्ध करने के लिए ऐसा करता है; जब प्रेमिका अपने प्रिय को जगाती है तो महज़ इसलिए कि वह उसे नींद से रोकना चाहती है, उसे वहाँ उस कमरे में, बिस्तर पर उपस्थित रखना चाहती है—जिस तरह कि ईश्वर को मन्दिर में रखा जाता है। नारी अपने पुरुष को इसी तरह क़ैद में रखना चाहती है, वह एक जेलर होती है।

[आगामी अंक में समाप्त]

'सागर पार की हलचलें' शीर्षक इस लेखमाला की अन्तिम किस्त उक्त रचना के शेषांश के रूप में आगामी अंक में प्रकाशित की जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमकपूर 'कंचन'

अमरीका की नवीनतम साहित्यिक विचार-धारा 'पराजित पीढ़ी' के दो प्रमुख लेखक एलेन जीन्सबर्ग और पिटर आरलेवस्की इन दिनों भारत-भ्रमण पर आये हुए हैं। उनके व्यवहार के औघड़पन के बावजूद उनकी अध्ययनशीलता और अभिव्यक्ति की उनकी शक्ति और साहसिकता ने हमारे भारतीय लेखकों को भी उनके बारे में गहराई से सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। यहाँ लेखक ने 'बीट' चिन्तकों के साथ हुई अपनी प्रत्यक्ष मुलाक़ात और अनुभूत विचारों को प्रस्तुत किया है।

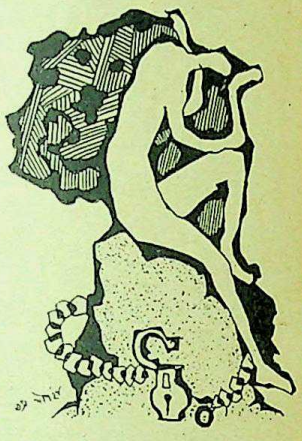

एलेन जीन्सबर्ग और पिटर आरलेवस्की के साथ हमलोग एक घण्टे से ऊपर हुए बैठे कविताएँ सुन रहे हैं। बीच-बीच में लोग बहस भी कर लेते हैं—लेकिन इस सारे समय के बीच मेरे मन में एक प्रश्न उमड़-घुमड़ रहा है—हमारे विधि-विधान क्या सच ही अपनी प्राण-शक्ति खो चुके हैं? वह देश जो अपने को भरा-पूरा देश कहता है, जहाँ की उच्च अट्टालिकाएँ और 'पुश-बटन'का जीवन अतीव सुख देने की सम्पूर्ण सामर्थ्य रखता है, वहाँ इस तरह के मनोभावों का प्रस्फुटन अपने में क्या अर्थ रखता है? जड़ रूप से वर्तमान चेतन तक मनुष्य की विकास-यात्रा हमें आज किस ओर लिये जा रही है? इस प्रश्न के बीच जीन्सबर्ग की आवाज़ बार-बार मेरे कान पर टकराती है—"आई सा द बेस्ट माइन्ड आफ माई जनरेशन डिस्ट्रायड बाई मैडनेस, स्टारविंग हिस्टीरिकल नेकेड...."—यह 'हाउल' की पहली पंक्ति है। एक लम्बी कविता की सशक्त पंक्ति। उसके स्वरों में एक अजीब तरह की चीख़ है—एक ऐसे व्यक्ति की चीख़, जो कि

बीसवीं शताब्दी के ये असफल मानव 'बीट' चिन्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागती हुई पुलिस की बंद गाड़ी के भीतर
ने निरन्तर उठ रही है। सुननेवाला
चकित हो उठा है। एक बहाव है, जो स्रोता
को अपने साथ घसीटे लिये जा रहा है।

बीच में एक व्यक्ति ने टोककर पूछ
लिया है—'आखिर इन चित्रों से आपकी
कविता का अर्थ क्या निकलता है? आप
कहना क्या चाहते हैं?'

सभी निगाहें उस व्यक्ति की ओर
उठ गयी हैं। मैं भी चुप उस व्यक्ति की
ओर देख रहा हूँ। क्योंकि ऐसा ही प्रश्न
एक बार पहले भी 'लास एंजिल्स' में भी
किया गया था। कविता-पाठ के मध्य
एक श्रोता ने ऊँची आवाज़ में पूछा,
आखिर आप प्रूफ क्या करना चाहते हैं?
नेकेडनेस (नग्नता)' जीन्सबर्ग ने संपूर्ण
रूप से कहा। 'पर इस 'नेकेडनेस' से आपका
मतलब क्या है?'—प्रश्न को सुनते ही
वह बौखला-सा गया और उसने शान
के साथ अपने कपड़े भरे अवाम के
बोलने में तनिक-सी हिचकिचाहट नहीं
की। वह घटना मेरी आँखों तले घूम गयी।
एक क्षण के लिए जीन्सबर्ग का मुंह लाल हो
उठा पर तत्काल ही उसने अपने को सँभाल
कर बड़ी शान्ति से उत्तर दिया कि वे लोग
इस समाज का उल्टा चित्र प्रस्तुत करना
चाहते हैं, जो हाइड्रोजन-बम बनाकर द्रव्य
का मनमाना अपव्यय करते हैं और स्कूल-
कॉड्स के विरोध में मत देते हैं। इसी
तरह की अभागी नियम-व्यवस्था, चारित्रिक
चूक, सामाजिक दुष्टता, बौद्धिक धोखेबाज़ी
आज की दोनों दुनिया में खूब ज़ोरों से चल
रही हैं और जिसका कहीं विरोध नहीं हो
रहा।

प्रश्न होता है, इस विरोध के लिए इन 'बीट' लोगों के पास क्या अस्त्र है? इस संबंध में जीन्सबर्ग का मत था कि उनकी तरह लिखने और सोचने वाले सचेष्टता-से हर चीज़ की और हर व्यक्ति की तहें खोद डालना चाहते हैं। इसके लिए वे काफ़ी दूर तक जा सकते हैं और अत्यधिक सनसनी-खेज़ अनुभवों का सामना करने के लिए तैयार हैं। उनका विश्वास है कि आखिर में अंतिम सत्य उनको एक-न-एक दिन नग्न रूप में प्राप्त हो जायगा। जीन्सबर्ग के एक दूसरे सहयोगी कैरुआ का विश्वास है कि उनके चित्रण में वह प्रकाश है, जिसको सामने रखकर हम अपने को आँक सकते हैं। अपने को तौलकर हम यह पता लगा सकते हैं कि हम क्या हैं? कैसे हैं? उसके उपन्यास 'आन द रोड' तथा 'सबटरेनियन्स' को पढ़कर लोगों ने उसको अमरीकन गद्य-साहित्य का 'नव बुद्ध' कहना आरम्भ कर दिया है।

याद आता है कि जब बम्बई में इन 'बीट' लेखकों और कवियों की पहली गोष्ठी आयोजित हुई, वह साँझ का समय था। कनवेंशन के अनुसार हर आमंत्रित अपने लब-झब ऊनी सूट में या फरफराती क़ीमती साड़ियों में उपस्थित हुआ। अच्छा-खासा टिप-टाप इंतज़ाम था और मज़े की बम्बइया गर्मी थी। सभी के माथे पर पसीने चुहचुहा आये थे और जिस समय अपने अव्यवस्थित कपड़े में बाटा के किरमिची जूते और बढ़ी हुई दाढ़ी में ये अमरीकन आधुनिक मनीषी उस फ्लैट में दाखिल हुए, तो कैरुआ की वह इमेज वाली कथनी मन में नाच गयी: 'मैं वह इमेज सामने रखूंगा जिसके आगे लोग अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौलने के लिए मजबूर हो जायेंगे।'—और यह कितना सही था। उस अच्छी-ख़ासी गर्मी में कोट-पैंट और टाई के बीच कसे हुए लोग बरबस अपने को तौल रहे थे। जूतों को हाथ में लटकाये बुश-शर्ट से माथे का पसीना पोंछते हुए वे 'बीट'लोग धम्म-से कोच पर बैठ गये और बड़े आराम से उन लोगों ने टाँगों को ऊपर उठाकर पेट में समेट लिया।

मैं देख रहा था—गोष्ठी की यह औपचारिकता, यह बँधा-बँधाया नियम और लोगों के मन में घट रहे भाव—कुछ सोचने के

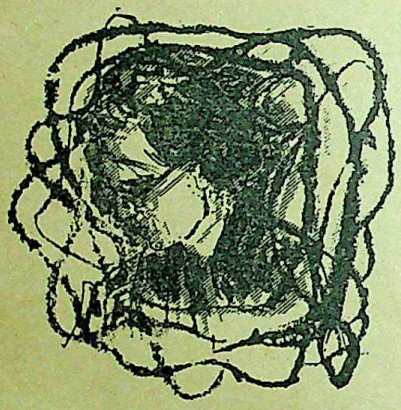

एलेन जीन्सबर्ग

लिए सभी को मजबूर कर रहे थे। इन 'बीट' मनीषियों को 'सबवरसिव' कहकर अवहेलना की गयी थी—कहा गया था, यह मध्यवर्ग से आये हुए अधकचरे, असफल लोग हैं, व्यर्थ की चीख़-पुकार कर रहे हैं और यह निश्चित है कि समय के साथ उनकी आवाज़ दब जायगी।

लेकिन सत्य एक गिरोह, गुट्ट या गोष्ठी का ठेका नहीं है। जीन्सबर्ग ने बड़ी स्पष्टता से यह समझाने की चेष्टा की थी कि उसने किस तरह श्रोताओं का एक समूह उत्पन्न किया, जो नग्न सत्य को सुनने के लिए, उससे आत्मिक साक्षात्कार करने के लिए, सब-कुछ त्याग कर प्रस्तुत है। वह समूह जो कि ग्रांट-एवेन्यू और सैंसफ्रांसिसको के सबर्ब में ही नहीं, विश्व की वैसी बहुत-सी घुटन भरी बस्तियों में उत्पीड़न में साँसें ले रहा है। वह जो कि संपूर्ण पवित्र है।

कीट्स ने उसी को कहा है—'होलीनेस आफ़ द आर्ट्स अफ़ेक्शन।'

सन् १८४० में कारलाइल से इमरसन ने कहा था: मेरे पास एक भी पाठक नहीं है, लेकिन समाज का पूरा ड्राफ्ट मेरी जेब में तैयार है।

क़ैरुआ ने उन द्वेषों की केवल चर्चा ही नहीं की वरन् उसके विरोध में अमल भी किया और समाज तथा राष्ट्र के विरोध में खड़ा भी हुआ।

हेथार्न ने डी० एच० लारेन्स को छिपा हुआ विरोधी (सबवरसिव इन डिसगाइस) कहा था।

मेलविली की रचनाओं पर सबवरसिव होने की पूरी तरह शंका की जाती है।

ह्वाइट मैन का दर्शन 'बीट' के लिए केवल पिता का निर्देश ही नहीं है, वरन् वह एलेन ज़ीन्सबर्ग पर पूरी तरह से छाया हुआ है। समाज के रूप और उद्देश्य के प्रति असंतोष ही तो वह मूल कारण है जिसने इन चिंतकों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। लंडन, ड्रेसियर, एनडरसन, ओ नील, इलियट, आल्फ, फिल्जगर्ड, नैथान तथा मैंकिन्स इन सभी के लिए समाज एक घरेलू पुस्तकालय था जहाँ ये अपने चिंतन की पुस्तिका उलटते थे।

असंतोष या सबवरसिवनेस की तीखी गंध हेमिंगवे, स्टीनबेक, मिलर, वेस्ट, सेलिंगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राइट, वेडेल तथा बाउल के साहित्य में स्पष्ट झलकती है। समाज किस तरह से ठहरे पानी की तरह सड़ रहा है और हर लेखक ने उस सडांध से मुक्ति पाने की अपने समझ से पूरी चेष्टा की है। —शायद इसलिए कि लेखक समाज का सही आलोचक है। लेकिन वह नये मूल्यों की स्थापना के लिए खोखली चीख-पुकार नहीं करता—'बीट' का मत है कि उसे तो सीधा-सादा, सहज-सुचारु प्रोग्राम चाहिए, जिसमें अछूती और संपूर्ण क्वाँरी मर्यादाओं की झलक मिल सके।

लेखक और समाज के बीच का यही खिंचाव असंतोष को जन्म देता है, परन्तु 'बीट' चिंतकों की समाज से कटकर निकल भागने की, परम्पराओं और मर्यादाओं से अलग चलने की सतत् चेष्टा भी एक तरह से उनके समाज में बँधे रहने की ओर इंगित करती है। यह बात सतही रूप से विरोधी लगती हो,पर क्या कोई हाल्म्स कैरुआ, कोर्सो, फ्लिंगट को इस अज्ञान के साथ पढ़ सकता है कि उनकी अपने संबंध में रुचि उस समाज से असंबद्ध है जिसमें वे बँधे हैं। वे उस नागरिक शहरी सभ्यता से संबंधित हैं, जो कि समाज का शारीरिक प्रतीक है। जिसके बीच से उनमें सोचने-समझने की महत्ता-प्राप्त होती है। अपने कार्य के प्रति जाग-रूकता ही उन्हें समाज का अंग बनाती है—वह जागरूकता जो एक राष्ट्र की जागरूकता का प्रतीक है। उनकी चेतना जब पहले-पहल उद्भासित हुई, तो उसका रूप घिनौना और द्रवित करनेवाला था। जैसे संपूर्ण एक विराट् असंतोष के रूप में मूर्त्तिवत् खड़ा हो उठा है।

सन् १८५३–५४ के आस-पास इस असंतोष के प्रति लोगों ने मनमाना आरोप लगाया—यह कर्महीन मानव, जो अपने को एय्याशी से उबार नहीं सकते, यह असफल अज्ञानी, अधकचरे लोगों की मनचाही भूख है! —और उस भूख को पूरी तरह से दबा देने के प्रयत्न हुए। यदि वह भूख उतनी सतत् न होती, यदि उस भूख ने समाज की मान्य-ताओं पर तीखे प्रहार न किये होते, यदि प्रहार करनेवाले ठोस न होते, उनका ज्ञान उथला होता और निर्माता की तनिक-सी भी कमी होती तो शायद इन यह हारे हुए मानवों के आवेग-संवेग कब के विलीन हो गये होते। इतिहास गवाह है कि समाज कभी भी विरोधी शक्तियों को बर्दाश्त नहीं कर सका और उस समय जब कि उनका नारा ही समाज को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के लिए तैयार हो, तब वह उसके विरोध में कौन-कौन-सी बाधा उपस्थित करने से बाज आ जायगा। 'बीट' का कथन है कि व्यक्ति अपनी आत्मा को तभी अपनी आत्मा कह सकता है जब वह इस समाज का परित्याग कर दे।

बीट्स से पूर्व 'बोहेमियन' और 'दादा-इस्ट' जैसे सैकड़ों आंदोलन पश्चिम में इस समाज के विरोध में खड़े हुए पर उन सब पर न्यूराटिक का लेबिल लगाकर मेट दिया गया। पर 'बीट' शक्ति के संबंध में भी यही सोचा गया था कि यह अमेरिकन 'बोहेमि-यनिज़्म' है जो रूप बदलकर सामने आ रही है। पर आज समय ने करवट ली है और यह बात तय पायी जा रही है कि यह केवल बोहेमियनिज़्म जैसी चीज़ नहीं। फिर वह क्या है—यह पागलपन जो आज हज़ारों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़ारों की संख्या में हहराता हुआ बढ़ रहा है—उसके मूल को जानने और समझने के लिए सभी तरह के सतत् प्रयास हो रहे हैं। क्या ये लोग,जो कविता को नया अर्थ देने में लगे हैं—ये जिन्हें बकवादी , लोफ़र, एकांतता के पागल कहा जाता है—लेखक, जो लिख नहीं सकते, चित्रकार, जो क़लम पकड़ना नहीं जानते, डांसर, जिनके पैर नहीं उठते, ऐसे लोग आज बीसवीं सदी के सबसे प्रभावशाली चिंतक बने जा रहे हैं, क्या यह विडम्बना-सी नहीं लगती ? वे, जो एकबारगी हतप्रभ कर देने की क्षमता रखनेवाले लोग थे, वे जो समाज के अगुआ बनकर साधारण मन को डुगडुगी के इशारों पर नचाते थे—आज उनके इशारों के धोखे का पर्द फट रहा है ! जीन्सबर्ग की पहली कविता-पुस्तक की ८०,००० प्रतियाँ बिक चुकी हैं। कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने अपने पाठ्यक्रम में पिटर और जीन्सबर्ग की कविताओं को सम्मिलित कर लिया है।

जीन्सबर्ग वह पहला व्यक्ति है जिसने 'बीट जनरेशन' को एक धार्मिक रूप दिया। वह स्वयं ज़िन-बौद्ध रह चुका है। ज़िन के साधारण अर्थ ध्यान से होते हैं। योग में जो रूप ध्यान का है, ज़िन मतावलम्बी उस ध्यान के काफ़ी निकट पहुंचते हैं। कमलासन पर ध्यानावस्थित बुद्ध के दिये गये उपदेशों को ये स्वीकार करते हैं। तूर्यावस्था में , जब कि ध्यान ब्रह्मांड में स्थित हो जाता है, उन क्षणों में प्राप्त प्रकाश को पकड़ने की चेष्टा करते हुए द्वैत के भेद को चीरकर जो अनुभूतियाँ होती हैं, उन अनुभूतियों से अधिकांश'बीट'परिचित हैं और अंतःकरण के सत्य को, उसकी अनुभूतियों को सामने लाने का सतत् प्रयत्न करते हैं। इन प्रयासों के कारण ही उन्हें 'होली बारबेरियन्स' कहा गया है।

इन बीसवीं शताब्दी के धार्मिकों की चर्चा में सम्मिलित मैं उन बहुत से तर्कों-कुतर्कों को सुन रहा हूँ। दूसरी गोष्ठी में मैं पिटर आरलावेस्की के काफ़ी निकट आ सका। पिटर जर्मन माँ और रसियन पिता की संतान है। इनका छोटा भाई अभी भी पागलखाने में है। और यह स्वयं पागलखाने में

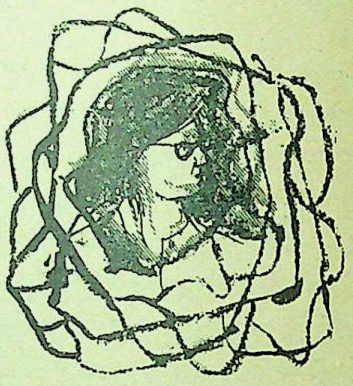

पिटर आरलावेस्की

काम कर चुका है। बीच-बीच में वह वहाँ के रोचक संस्मरण भी सुना देता है। बातचीत के बीच उसकी मुद्रा देखने योग्य होती है। चेहरे में जो 'ओरियंटलनेस' झलकी है वह काफ़ी प्रभावित करनेवाली है। चेहरा-मोहरा और बाल रोमनों की तरह लगता है। बात करते-करते भूरी आँखें एकटक आप पर टिकाकर वह बरबस अपनी ओर खींच लेने की क्षमता रखता है। वह अपनी माँ को लिखा गया एक अनोखा लम्बा पत्र पढ़कर सुना रहा था। अनोखी स्मृतियों से वह पत्र भरा था जिसे समझने के लिए काफ़ी धैर्य की आवश्यकता थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारण में विभिन्नता होने के कारण भी बहुत-से अंश पकड़ से छूट जाते थे। आध घंटे तक वह धाराप्रवाह रूप से पढ़ते गया। जिससे लोग उकता गये, क्योंकि उसमें बहुतायत से अमरीकन स्लैंग्स का प्रयोग था, जिसे पकड़ पाना आसान नहीं।

उसने बताया कि वह रोटी कमाने के लिए नहीं, वरन् जिज्ञासा की तृप्ति के लिए ही पागलखाने की नौकरी करने के लिए गया था। उसका अपना विश्वास है कि कविता का अपूर्व भंडार वहीं है और हर सचेत विचारक के लिए वहाँ रहकर अनुभव प्राप्त करना ज़रूरी है। चर्चा के बीच में वे अपने औत्सुक्य को मार नहीं पाते और रह-रह कर सामनेवाले के धर्म, साहित्य की बात पूछने लगते हैं। —सूर, तुलसी, मीरा और कबीर के बारेमें वे जानना चाहते हैं। उस सभ्य समाज में जहाँ कि यह गोष्ठी हो रही थी, अंगरेज़ी के बड़े पुजारियों ने यह कहकर छुट्टी पा ली कि हिन्दी भाषी होते हुए भी वे तुलसीदास को इसलिए नहीं पढ़ सके क्योंकि उनकी भाषा देहाती है और वे उसको समझने में असमर्थ हैं—यह सुन सिर पीट लेने की तबियत हो आयी थी।

एक दूसरी गोष्ठी में कविता-पाठ करते हुए जीन्सबर्ग और आरलावेस्की ने उन कविताओं को पढ़ा, जिनको उन लोगों ने दवा के प्रभाव में लिखा था। अमेजन के इंडियनों के यहाँ प्रचलित दवा 'एहवास्का' को खा लेने के बाद उसकी चेतना पर क्या प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार 'ईथर', 'लाफिंग गैस' जैसी और कई दवाओं का ज़िक्र आया। उन लोगों ने वह सारी व्यवस्था बतायी कि किस तरह इन दवाओं को देनेवाले डाक्टर कमरे को नियमित करते हैं। कमरे में वे ही चीजें रखी जाती हैं जिस पर ध्यान करने की इच्छा मरीज़ करता है। उन्हीं साज-सामानों के बीच मरीज़ को दवा खिलायी जाती है और धीरे-धीरे पहले मरीज़ की अवस्था ख़राब होती है, मतली और चक्कर आते हैं, पर शीघ्र ही उसकी इह देह की चेतना समाप्त हो जाती है और व्यक्ति का ध्यान इच्छित वस्तु में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस दशा में कविता के नोटिस लिये जाते हैं।

यह पूछने पर कि ऐसी अवस्था में क्या नोट्स लेने का ज्ञान रह जाता है तथा क्या लिये हुए नोट्स को बाद में कविता का रूप दिया जाता है, उनमें सुधार किया जाता है—इस संबंध में दोनों के अपने अलग-अलग विचार और अनुभव हैं। पिटर का कहना था कि चूँकि ध्यान कविता लिखने के लिए किया जाता है, अतः कविता के अनुरूप भाव प्रवाह होता रहता है। उसने चीटियों पर ध्यान किया था और उसकी आत्मा ने चीटी से एकात्म स्थापित कर लिया था और उसका विश्वास है कि वह अपने अंतर को पूरी तरह व्यक्त कर सका है। लेकिन जीन्सबर्ग ने इसे अस्वीकार किया और उसका अपना मत था कि वह रहस्य को पूरी तरह उद्भासित करने में असमर्थ रह जाता है। फिर भी उसने असीम को उसकी असीमता में ही बाँधने की चेष्टा की है। वह भारतीय दर्शन को काफ़ी हद तक समझता है और पूरी तरह आत्मसात् करने की कोशिश करता है। वह आश्चर्य कर रहा था कि भारत के कवि और लेखकों की एक भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों नहीं है और वे आपस में किस भाषा में विचार-विनिमय करते हैं। उसका विचार है कि केवल द्रष्टा या श्रोता होकर वह भारत को नहीं समझ सकेगा। उसकी पैनी निगाह बड़ी आसानी से एक साधु और ढोंगी में अंतर बता सकती है। उन दोनों ने एक मत होकर यह स्वीकार किया कि जो कुछ वे जान सके हैं, चली आ रही रूढ़ियों के विरोध में जो कुछ भी उन्होंने खोज की है, वह नेति-नेति के धरातल पर हुई है। दवा के प्रभाव में देश–काल के बीच ही उनके प्रयोग हुए हैं, फिर भी वे विश्व के रहस्य को अंतःकरण से समझ पाने की चेष्टा कर रहे हैं।

उनकी बातों के पीछे छिपे उद्देश्य तथा झलकते भावों से सभी ने यह स्वीकार किया कि वे कोरे 'इक्सबीशनिज़्म' के शिकार नहीं हैं। अमरीकन पृष्ठभूमि के सहारे उनकी कविता को समझना आसान है। वे सत्य को उतने नग्न तरीके से कहते हैं कि जितना शब्दों से संभव है। उनके कथन में नये भाषा, नये शब्द और नये प्रतीकों को बाहुल्य है।

जीन्सबर्ग धरती के काफ़ी निकट प्रतीत होता है। पिटर उम्र में काफ़ी छोटा है पर वह रहस्य की दुनिया में अधिक विचरता है। बात करते-करते वह सामनेवाले को बहुत पीछे छोड़ जाता है और यह समझना कठिन हो जाता है कि वह इस क्षण कहाँ है! स्वयं भी वह कभी-कभी बोलते-बोलते हाथ हिला कर कह उठता है —'डोन्ट डिसटर्ब मी, आई एम इन माई ड्रीम्स। —और फिर उस पर चुप्पी छा जाती है।

वह अपने जगत में, अपनी मान्यताओं में अधिक सीमित है। उसकी बात एक बार में कठिनता से समझ में आती है। पर उसकी बातें अधिक पैनी और गहरी होती हैं। वह रहस्य के अधिक निकट है।

इन दोनों को देखकर लगता है, वास्तव में यह 'बीट' लोग उस 'होपलेस सेचूयेशन' के, जो वास्तविक सत्य है, उत्पादन हैं और ये नग्न यथार्थ को सामने लाने का भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं। बीटनिक्सों के विरोधी, अपने को 'स्क्वायर विला' के कहनेवाले हज़ार-हज़ार लोगों को यह सोचना चाहिए कि उन्होंने समाज को क्या बना डाला है, और मानवता के प्रति वे क्या कर रहे हैं?

आशीर्वाद की सीमा

एक व्यक्ति ने पहली बार जब कार ख़रीदी तो उसके मित्र ने उसे परामर्श दिया कि सर्वप्रथम उसे अपने परिवार के पुरोहित से आशीर्वाद प्राप्त कर लेना चाहिये ताकि कोई दुर्घटना न हो।

पुरोहित महाराज ने आशीर्वाद दिया किन्तु साथ-साथ यह चेतावनी भी दी—'देखिए, मेरा आशीर्वाद चालीस मील की स्पीड तक ही काम कर सकेगा। अधिक स्पीड के समय यह प्रभावहीन भी हो सकता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला राजेन्द्र

नन्हीं-सी मातृ-विहीना मासूम कुमुद ! पर उमा के बिना गदाधर बाबू से जिया भी तो न जायेगा। अन्तर्द्वन्द्वों की विश्लेषणात्मक कहानी।

●

पानी पीट-पीटकर बरसता रहा। गदाधर सक्सेना जैसे पड़े थे, पड़े रहे। वे अपने को समझने-समझाने की जितनी ही कोशिश करते थे, उतनी ही परेशानी बढ़ती जा रही थी। जाने कैसा बोझ हृदय पर जमता जा रहा था।

सहमी-सी कुमुद बड़ी देर से सोफे की बाँह के सहारे टिकी खड़ी थी। घबरा कर उसने पुकारा—"पापा !"

गदाधर सक्सेना जैसे चौंक पड़े। उठे और आविष्ट हाथों से खींचकर उसे अपने वक्ष से चिपका लिया। सहसा उनका मन एक अनजाने अपराध के भार से बोझिल हो आया। आँखों में कमला की छवि तिर आयी। उन्होंने और भी अधीर होकर बच्ची को थपथपाया, चूमा। कमला की उपस्थिति का—निकटता का अनुभव किया। याद आया, ग्यारह वर्ष पहले उसने दस महीने की कुमुद को अपने हाथों में थामे मृत्यु की ओर बढ़ती हुई कमला को आश्वस्त किया था—....तुम मुझसे कभी अलग नहीं होओगी, कमला ! कुमुद को....तुम्हें मुझसे कभी कोई शिकायत न होगी।....

कमला नहीं थी। केवल कुमुद थी, उसका पापा थे—गदाधर ! दोनों ने एक-दूसरे में अपने को सीमित कर दिया था। गदाधर ने इतने वर्ष केवल कुमुद की नींद में आँखें झपकायी थीं, उसी के जागने में जागे थे। आफ़िस जाते, और समय खत्म होते ही बिना एक क्षण यहाँ-वहाँ किये सीधे घर भाग आते। जैसे, कोई व्याकुल गाय छूटकर बछड़े की ओर लपके। कुमुद को नहलाना,

अपराध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुलाना, खाना खिलाना, सुलाना सारे काम उन्होंने खुद सिर पर उठा रखे थे। न कहीं आना, न कहीं जाना। केवल कुमुद—कमला की साक्षात् प्रतिच्छवि—गदाधर की नियोजिका थी।

उनके लिए विवाह के कितने प्रस्ताव आये। गदाधर को लगता, जैसे वे विवाह के प्रस्ताव न होकर, कुमुद को छीन लेने का षड्यन्त्र हों। हर ऐसे प्रस्ताव को अस्वीकार करने के बाद कुमुद को अपने वक्ष से चिपका कर उन्हें लगता, जैसे उन्होंने खोते हुए ऐश्वर्य को बचा लिया।

किंतु आज डेढ़ माह से वे बिखर गये थे। चारों ओर अंधकार नज़र आता था। कोई दो हाथ उन्हें बारी-बारी से खींचकर इधर-उधर दौड़ाते थे। उन्होंने उमा को अपनी विवशता बतायी थी पर वह नहीं समझी थी कि गदाधर किस कदर बँधा हुआ है प्रीति से, प्रतिश्रुति से, नन्हीं-सी कली से।

उमा ने हर बार की तरह आज भी घर आकर बच्ची को खिलौने दिये थे, टॉफ़ियाँ दी थीं और एकान्त में गदाधर से, उसके रूखे बालों में उँगली फेरते हुए कहा था, "मैं सब समझती हूँ। तुम्हारे द्वन्द्व को समझती हूँ। पर तुम्हें यह क्यों नहीं सूझता कि कुमुद को मेरी ज़रूरत है। सच मानों, उसे मैं कोखजाई से अधिक सहेजूंगी।"

सुखानुभूति के साथ-साथ सहसा उन्हें लगा था, उनके पूरे व्यक्तित्व में कुछ बड़ा पीड़क चुभ गया। उस रात कुमुद छाती से चिपकी, सिसकते-सिसकते सो गयी थी। गदाधर ने धीरे-धीरे बेडरूम में आ उसे यत्न-पूर्वक सुलाया, खुद उसकी बग़ल में लेट रहे। पर उनकी आँखों में नींद नहीं थी। ऐसे कब तक चलेगा? उमा...:

अभी बहुत दिन नहीं हुए थे जब उन्होंने पहले-पहल उमा को जल्से में देखा था। हाँ, उमा ऐसी ही है कि कोई उसमें तिरोहित हो जाये। किन्तु कुमुद.... ! यह नहीं होती तो.... । छिः नहीं-नहीं ! उनके शरीर में जाने कैसी एक भयानक झुरझुरी दौड़ गयी।

आधी रात बीत चुकी थी। कल्पना में उभर आये कमला के पीले गालों को थपथपा कर उन्होंने फिर कहा, "तुम विश्वब्ध रहो, कुमुद से बढ़कर मुझे कोई दूसरा प्यारा नहीं होगा !" कुमुद वक्ष से लगी सो गयी थी। उन्होंने आहिस्ते-से उठकर उसे रेशमी लिहाफ़ उढ़ा दिया। संतोष की साँसों में खो गये। मीठी झपकी में आँखें लग गयीं।

सुबह उठे तो बहुत प्रसन्न थे। बड़े गद्-गद् उत्साह से कुमुद को जगाया, कुमुद की पसंद का नाश्ता जल्दी बनाने के लिए शोर-गुल किया। थिरकती-सी कुमुद जल्दी-जल्दी तैयार हो टेबुल पर आ गयी थी।

फिर भी इधर कुछ दिनों से गदाधर बाबू में कुछ परिवर्तन हो आया था। कई दिनों से ही शाम को पापा परेशान दिखाई पड़ते थे। न चाहकर भी कुमुद के भोले मन को यह विश्वास-सा हो आया था कि जब भी वह पापा के पास जाती है, उन्हें अच्छा नहीं लगता। उसका मन उनके पास जाते हुए डरने लगा था। वे उसके प्रश्नों के उत्तर में अक्सर चुप रह जाया करते, उसे खिलखिलाकर गोदी में भरकर उछालते नहीं। जब भी वह अपने खिलौने बिछाकर पापा को खेल में शरीक़ होने के लिए आमन्त्रित करती, वे टाल जाया करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमुद अक्सर सोचा करती—शाम होते-न-होते पापा को क्या हो जाता है ? सुबह होती तो गदाधर फिर सहज हो आते। कुमुद के साथ हँसते-खेलते, उछलते-कूदते। और कुमुद बीती शाम के उमस भरे क्षणों को भूल जाती। उसका डर कहीं दूर जा छिटकता और पापा के प्रति उसका स्वाभाविक एकराग उत्साह फिर लौट आता। उस दिन कुमुद ने बड़े आग्रह से पापा को अपने हाथ से टोस्ट खिलाया। लाल परी की कहानी सुनायी जो कई दिनों पहले उसने दाई से सुनी थी। बड़े उत्साह से पापा को बताया कि आज वह स्कूल जाने से पहले ढेर सारे चित्र बनायेगी, और पापा से वादा कराया कि आफ़िस से लौटते हुए वे उसके लिए रंगों के डिब्बे और गटापरचे की गुड़िया लायेंगे। कई दिनों बाद कुमुद को बड़ा अच्छा लग रहा था। पापा बिलकुल पापा जैसा लग—बोल रहे थे।

स्कूल से लौटकर वह बड़े उत्साह से पापा की प्रतीक्षा करती रही। आज उसने ढेर सारे चित्र बनाये थे और उन्हें पापा को दिखाना था। मगर पापा के लौटने में जाने क्यों बड़ी देर हो रही थी। उसका मन धीरे-धीरे बैठा चला जा रहा था।

सहसा पापा की कार की आवाज़ सुन पड़ी। कुमुद पोर्टिको में दौड़ गयी। उसका भरता हुआ उत्साह जी उठा। पापा को देखकर गोल-गोल आँखें मटकाते हुए वह एक ही साँस में बोल उठी, "पापा, पापा, मैंने कहा था न, देखो, मैंने इतने सारे चित्र बनाये हैं!" और उसने 'इतने सारे' को व्यक्त करने के लिए अपने दोनों हाथ यथा-संभव फैला दिये।

गदाधर उतरे। एक क्षण कुमुद की ओर देखा। हल्के मुस्कराने की चेष्टा की, मगर बिना कुछ बोले जल्दी से कार का दरवाज़ा बंद कर ड्राइंग-रूम में चले गये।

कुमुद की समझ में कुछ न आया। वह अवाक् पापा को देखती रह गयी। पापा अंदर चले गये। क्षण भर बाद वह धीमे पाँव अपने कमरे में लौट आयी और जल्दी-जल्दी वे सारे चित्र उसने फाड़ डाले, जिन्हें दिखाने के लिए वह इतने उत्साह से पापा की प्रतीक्षा कर रही थी।

आज गदाधर सक्सेना और दिनों से भी अधिक उद्विग्न थे। एक के बाद एक सिगरेट के कश छोड़ते हुए वे होटल में उमा के साथ बिताये उन चंद क्षणों को भूल जाना चाहते थे—और उस विवाह के प्रस्ताव को भूल जाना चाहते थे जिसे सुनकर वे बेहद उद्विग्न हो उसे अकेली ही छोड़ तेज़ी से होटल से बाहर निकल आये थे।

सहसा उन्हें कुमुद का ख़याल आया और कुमुद को विस्मृत कर उमा के प्रति अपने गतिशील समर्पण के भाव से सहसा उनके मन को एक बड़ी गहरी ठेस लगी। न, ऐसा नहीं होगा। वे छटपटाहट का अनुभव करते हुए उठ खड़े हुए। कुमुद को पुकारा। उसे समझाते हुए कहा, "मेरे सिर का दर्द अच्छा हो गया। चलो, बाज़ार से रंग ले आयें।" और उसे पहले के-से प्यार से कंधे पर बैठाकर कार स्टार्ट कर दी।

बाज़ार से लौटकर आज कई दिनों के बाद उन्होंने रात का खाना कुमुद के साथ खाया। कुमुद की उत्कट प्रसन्नता ने उन्हें हृदय की अन्तिम तह तक आह्लादित कर दिया। वे बड़ी रात तक कुमुद के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेलते रहे, तरह-तरह की बात करते रहे।

पिछले कई दिनों से फिर वे एक अजीब-सी समस्या से परेशान हो उठे थे। धीरे-धीरे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे थे कि अब उनसे उमा के बिना नहीं जिया जायेगा। और इसी ने उन्हें बहुत परीशान कर दिया था। उमा आ जाये तो कुमुद का क्या होगा? कुमुद कहाँ सोयेगी? उमा ने एक दिन इस समस्या का हल भी सुझाया था। कहा था, कुमुद अब सयानी हो गयी है, धीरे-धीरे अलग कमरे में होने की आदत डालनी चाहिए। सुझाव उन्हें बहुत पसंद आया था। मगर रोज़ हठ करके भी वे कुमुद से आज तक कुछ कह नहीं सके थे।

कुमुद खेल रही थी। नई ख़रीदी गुड़िया की शादी रचा रही थी। देखते-देखते यकायक गदाधर की आँखों में उमा की आकृति झूल आयी। एक प्रेरणा मिली। फिर भी तुरंत कुमुद से अलग सोने का प्रस्ताव करने का साहस न हुआ। बड़ी देर बाद किसी तरह सहमी आवाज़ में उन्होंने अपना प्रस्ताव कुमुद से कहा। खेलते-खेलते कुमुद रुक गयी। क्षण भर पापा को फटी-फटी आँखों देखती रही। फिर सिसक उठी। हिचकी भरी आवाज़ में बोली, "नहीं पापा, मैं अलग नहीं सोऊँगी।"

सुनकर उन्हें अजीब-सा लगा। लगा जैसे उनसे कोई अपराध हो गया। उसकी नज़रों से अपनी नज़रें चुराये दूसरी ओर देखते रहे।

कुमुद सिसकती रही। वे द्वन्द्व में झूलते रहे। यकायक एक अजीब-सा आवेग उनके मन में उत्पन्न हुआ। उन्हें लगा, कुमुद रो नहीं रही है, रोने का बहाना कर रही है। उनका विरोध कर रही है। और क्षण-भर में ही एक विचित्र-सी पाषाणी निर्ममता उनमें पैदा हो गयी। उन्होंने क्रोध से जलती आँखों से कुमुद की ओर देखा और दाई को पुकारा। फिर कुमुद को ले जाकर दूसरे कमरे में सुला देने का आदेश देकर वे उठे और अपने पलंग पर आकर मुंह फेरकर लेट गये।

दाई को देखते ही कुमुद की सिसकी भयानक रुदन में परिवर्तित हो गयी। दाई उसे उठाकर बग़ल के कमरे में चली गयी।

आज कुमुद के साथ जो अब तक नहीं हुआ था, हो गया। वह घंटों उसी तरह रोती रही, पापा को पुकारती रही। मगर आज जैसे उसके पापा के पैरों में बर्फ़ जम गया था। पापा के कान जैसे बहरे हो गये थे।

गदाधर पलंग पर अकेले पड़े छटपटाते रहे। कई बार मन किया कि कुमुद को उठा लायें पर हर बार अंदर से जाने क्या हुआ कि वे शिथिल पड़े रहे।

कहानी का शीर्षक

कहानी पढ़कर सम्पादक ने लेखक से कहा, "आपकी कहानी का शीर्षक बदलना होगा! 'अन्धेरी रात' के स्थान पर इसका शीर्षक यदि 'इन्द्रधनुष' कर दिया जाय तो क्या हर्ज है?"

"इन्द्र धनुष!" लेखक ने सविस्मय कहा, "मुझे तो कोई ऐसी बात नज़र नहीं आती कि इस कहानी का शीर्षक 'इन्द्रधनुष' रखा जाय।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबह हुई। उन्होंने कमरे में ही चाय मँगवाई। पापा की आवाज़ सुनकर कुमुद बग़ल के कमरे से दौड़ी आयी, मगर पापा के कमरे में जाने का साहस नहीं हुआ। पर्दा पकड़कर क्षण भर पापा को देखती रही, फिर जैसे आयी थी, वैसे ही लौट गयी। गदाधर ने देखा और चाहा कि वह कमरे में आ जाये मगर उसे पुकारने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने अपनी नज़र छत पर टिका दी। आज पहला मौक़ा था कि वे कुमुद का सामना होने से डर रहे थे। कुमुद जब अनबोले लौट गयी थी, तो उनके अपराधी मन को जैसे एक सुविधा का अनुभव हुआ था।

गदाधर ने चाय पी। सायास मन को संजोकर उठे। एक बार कुमुद को वक्ष से लगा लेने को उनका मन व्याकुल हो उठा। कमला की मौत के कुछ देर पहले संतोष और सुख से गीली आश्वस्त आँखें याद आ गयीं। जी मसोस उठा। बड़ी मुश्किल से मुख से फूटते व्याकुल शब्दों को वश में किया। दाई को बुलाकर कुमुद का विशेष ध्यान रखने का आदेश दिया और आफ़िस के लिए तैयार होने चल दिये।

कुमुद अब भी बग़ल के कमरे में प्रतीक्षा में थी। उसे विश्वास था, पापा उसे ज़रूर बुलायेंगे उसने पापा के क़दमों की आहट सुनी। दौड़कर दरवाज़े तक आ गयी। पर आगे बढ़कर पापा तक जाने का साहस नहीं हुआ। पापा चुपचाप गुसलखाने की ओर बढ़ गये।

स्कूल जाने के लिए किसी तरह दाई ने उसे तैयार किया था। कुमुद ने सब बेमन से किया। खाते हुए वह फिर फूट-फूटकर रो उठी।

शाम को वह अँधेरा घिर आने तक पापा के इंतज़ार में ड्राइंग-रूम के दरवाज़े का पर्दा पकड़े खड़ी रही। अँधेरा घिर आया, पापा नहीं आये। वह हताश लौटने को हुई मगर तभी अहाते में कार की रोशनी नज़र आयी। उसके लौटते पाँव आप-ही-आप रुक गये। कार पोर्टिको में आकर खड़ी हो गयी।

कुमुद हताश हो गयी। पापा नहीं आये। कार से उमा उतरी—ढेर सारे खिलौने लिये। कुमुद की आँखें भर आयीं। उसने पर्दा छोड़ दिया। दौड़ती हुई अन्दर कमरे में भाग गयी। उमा पुकारती रही। उसने सुना। कोई उत्तर नहीं दिया। सीधी अपने कमरे में जाकर पलंग पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रो उठी।

उमा ने पीछे-पीछे द्वार पर पहुँचकर बड़े प्यार से पुकारा, "कुमुद!"

कुमुद के रोने की आवाज़ और तेज़ हो गयी। उमा ने बढ़कर उसे गोद में उठा लिया। और भी प्यार से थपथपाते हुए बोली, "क्या हुआ? मुझसे नाराज़ हो क्या?"

कुमुद ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर्फ़ बड़ी देर बाद चुप होकर किसी तरह उमा की आँखों में देखा। आज वह बहुत बदली-बदली-सी नज़र आ रही थी। उसके ललाट पर चमकता

"क्यों, आपकी कहानी के आरम्भ में ही नायक क्रोध से लाल हो जाता है, खलनायक ईर्ष्या से हरा हो जाता है, नायिका भय से पीली हो जाती है! एक साथ कई रंग तो हैं इस कहानी में!" सम्पादक ने उत्तर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ सिन्दूर का बड़ा-सा गोल टीका और माँग में चमकती हुई पतली लम्बी सिन्दूर की रेखा देखकर कुमुद को कुछ दिनों पहले की एक घटना याद आ गयी, जब पड़ोस की एक मुन्नी दीदी ने एक दिन ऐसे ही ललाट पर टीका और माँग में सिंदूर लगाया था और एक फूलों से सजी गाड़ी पर बैठकर जाने कहाँ चली गयी थीं।

इधर उमा के प्रति उसके मन में एक मोह, एक आकर्षण पैदा हो गया था। जितनी देर उमा उसके पास रहती, वह सब कुछ भूल जाती। उमा उसे टॉफी देती, प्यार करती। गुड़िया बनाना सिखाती और कुमुद उसे अपना खेल-खेल में बनाया खाना खिलाती, 'घर-घर' खेलती। और उमा जब जाने को उठती, उसे बड़ा बुरा लगता। एक दिन, जब उमा जाने को हुई, संकोच से उबरकर उसने टोक ही दिया, "आप हमेशा यहाँ नहीं रह सकतीं?" अपनी आशंका से चौंककर कुमुद उठ बैठी। एक बार फिर उमा को ग़ौर से देखते हुए उसने कहा, "मैं आपको कहीं जाने नहीं दूंगी।"

उमा ने मुंह से कुछ नहीं कहा। हल्के मुस्करायी और कुमुद को अपने वक्ष से चिपका लिया।

बहुत दिनों बाद उस रोज़ कुमुद ने मन से खाना खाया। यद्यपि टेबुल पर पापा की अनुपस्थिति ने क्षण भर को उसे चिंतित अवश्य किया, पर उमा के क़िस्से-कहकहों ने उसे ज्यादा सोचने का अवसर नहीं दिया। खा-पीकर कुमुद उमा के साथ अपने कमरे में आ गयी। उमा का उसके पास सोना, उसे लोरियाँ गाकर, कहानियाँ कहकर सुलाना बेहद अच्छा लगा। हुँकारी भरते-भरते कब गहरी नींद में खो गयी, उसे मालूम न हो सका।

कुमुद सो गयी। उमा आहिस्ते-से उठी। गदाधर अभी भी नहीं लौटे थे। दाई को पुकार उसने कुमुद के पास बैठा दिया और खुद गदाधर के कमरे में जाकर उनकी प्रतीक्षा में पलंग पर लेट गयी और अपने, कुमुद के, गदाधर के बारे में सोचती रही। आर्य-मंदिर से विवाह के बाद लौटते हुए उन्हें कितना समझाया था उसने, मगर वे हर तर्क से छिटक गये थे। खुद क्लब में उतरकर उसे घर भेजते हुए उन्होंने कहा था, "न, पहले जाकर तुम कुमुद को सुला दो, फिर मैं आऊँगा।"

कुमुद सो गयी थी। उमा के कहने से नौकरों ने भी उन दोनों का खाना रखकर खा-पी लिया था। सब सो गये थे। उतने बड़े मकान में चारों ओर ख़ामोशी छा गयी थी।

उमा गदाधर की प्रतीक्षा में पड़ी सोचती रही—आज सुहागरात है! वर्षों से प्रतीक्षित! और आज इतनी चिन्ता, इतना भय, इतनी प्रतीक्षा, इतनी ख़ामोशी!

सोचते-सोचते कब उसे नींद आ गयी, उसे मालूम न हो सका। गदाधर की पुकार से चौंककर वह उठ बैठी। आँखें मलते हुए उसने सवाल किया, "कितना बज रहा होगा?"

"दो!"—वे चुपचाप पलंग पर आकर लेट गये।

उमा ने लक्ष्य किया,—उनके स्वर में एक अजीब-सी झुंझलाहट थी। उमा से यह भी नहीं पूछा कि उसने खाया कि नहीं।

उमा ने उठकर रोशनी गुल कर दी और चुपचाप उनकी बग़ल में आकर लेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। वे अप्रत्याशित रूप से अन्तस्थ हो गये थे।

सुबह दरवाज़े पर हल्की थपकियों से उनकी नींद खुली तो सूरज चढ़ आया था। नींद अब भी अधूरी थी और बाहर दरवाज़े पर थपकी दे-देकर कुमुद रुआँसे स्वर में पुकारे जा रही थी, "पापा! ओ पापा।" जाने मन की किस प्रेरणा से एक ही झटके में उठकर गदाधर ने दरवाज़ा खोल दिया और सवेग व्याकुल भाव से कुमुद को, जो फटी-फटी आँखों से पापा के पलंग पर बैठी उमा को देख रही थी, उठाकर अपने वक्ष से चिपका लिया। एकटक उसे देखते रहे। तेल के अभाव में उसके सिर के बाल भूरे हो चले थे और इतने ही दिनों में वह वर्षों की बीमार नज़र आने लगी थी। उनका मन भीतर से कचोट उठा। अपराध की भावना और गहरे घर कर गयी।

कुमुद बहुत दिनों के बाद पापा का व्याकुल स्नेह पाकर हर्षातिरेक से रोये चली जा रही थी।

सहसा गदाधार ने कुमुद को उठाकर उमा की गोद में डाल दिया। बोले, "सँभालो।" और शायद आँसू छिपाने के लिए तेज़ क़दमों से कमरे के बाहर निकल गये।

●

लगा, घर में खुशी लौट आयी। गदाधर ने प्रसन्न मन से आफ़िस जाने की तैयारी की, सबके साथ बैठकर उत्साह से नाश्ता किया। खाना खाया। बहुत दिनों बाद कुमुद को कार में बिठाकर स्कूल छोड़ गये।

आफ़िस में कोई ख़ास काम नहीं था। वे बैठे मन-ही-मन विगत दिनों के संबंध में सोचते रहे। सोचते रहे कि उमा ने कितनी आसानी से उन्हें इस संकट से उबार लिया, अन्यथा उन्हें यह द्वन्द्व कहाँ ले जाता!

वे सोचते रहे। विगत को याद करते रहे। भविष्य के सपने गढ़ते रहे। लौटे तो उनमें बड़ा उत्साह था। रास्ते में रुक कर उन्होंने कुमुद के लिए एक नाचती आँखों वाली गुड़िया ख़रीदी, जिसे कभी देखकर वह दूकान पर बेहद मचल उठी थी।

कार पोर्टिको में लगाकर उन्होंने कुमुद को चौंका देने के लिए धीमे पाँव अपने कमरे में प्रवेश करना चाहा, पर दरवाजे पर ही रुक गये। कुमुद उमा के साथ बड़ी तन्मयता से गुड़ियों का कोई खेल खेल रही थी। उनके पाँव की आहट से चौंककर उठ खड़ी हुई। और यकायक प्रसन्नता से खिले उसके चेहरे पर एक बड़ी भयानक स्तब्धता छा गयी, जैसे वह यह नहीं समझ पा रही हो कि उसे कमरे में रहना चाहिए या नहीं। गदाधर बहुत उत्साह में थे मगर कुमुद की सहमी आँखें और उसके चेहरे पर की स्तब्धता और उदासी उन्हें डँस गयी। जो बात वे प्रसन्नता के आवेग में भूल गये थे, वह फिर याद आ गयी। कुमुद वैसे ही खड़ी थी, पहले की तरह दौड़कर उनकी गोद में नहीं आयी।

बड़ी मुश्किल से उन्होंने पीठ के पीछे छिपाई हुई गुड़िया कुमुद की ओर बढ़ा दी। कुमुद चहकी नहीं, प्रसन्नता से उछल नहीं पड़ी, बस पापा को वैसे ही देखते हुए गुड़िया ले ली।

गदाधर से अब और वहाँ खड़ा नहीं रहा जा सका। वे भीतर-ही-भीतर पीड़ित होते हुए जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। ड्राइंग रूम में दो क्षण बैठे-बैठे उमा की अनायास प्रतीक्षा करते रहे और जब उमा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी तो उठे, कार में जा बैठे और क्लब की ओर चल पड़े।

कई दिन गुज़र गये। गदाधर अब और भी अधिक अन्तस्थ हो गये। उमा समझाती कि जब उसमें और कुमुद में कोई द्वन्द्व नहीं है तो उनके द्वन्द्व का क्या अर्थ ? ऐसे तो सारा जीवन नष्ट हो जायेगा। पर हर तर्क उनकी अन्तस्थता की शिला पर गिर कर टूट जाता। उमा गदाधर की ओर से उदासीन-सी, कुमुद को दिन-रात अपनी छाया में लिये रहती। वह भावी दुर्घटना से संभावित कलंक से अपने को बचाने का प्रयास करती रही।

उमा के न चाहने पर भी एक दिन जो संभावित था, हो ही गया। वह गर्भवती हो गयी। गदाधर ने सुना, ज़बर्दस्ती मुस्कराये, और ख़ामोश हो गये।

दिन बीतते चले गये। उमा की स्नेह-पूर्ण परिचर्या कुमुद को मिलती रही। अब उमा का शरीर नहीं चलता था, फिर भी वह हर क्षण कुमुद को घेरे रहती। अधिकतर समय कुमुद के साथ ही बीतता। गदाधर जैसे उपेक्षित-से हो गये थे।

गदाधर घर से, उमा से, कुमुद से, स्वयं से वीतराग होते चले गये। मन को समझा-कर वे थक गये थे। उन्हें सदैव यह अनुभव होता रहता कि कहीं कोई चूक हो गयी है और परिणामस्वरूप एक व्यापक अपराध-भावना उन्हें आहत किये रहती।

अब उमा से बहुत चला-फिरा नहीं जाता। गदाधर की ओर से प्राप्त पीड़ाओं ने उसे और शिथिल कर दिया था। वह दिन-रात पलंग पर पड़ी रहती, गदाधर के पलायन को लेकर सोचती रहती। कुमुद यह सब देखती, समझने की कोशिश करती और भीतर-ही-भीतर मुंदती चली जाती। आहिस्ता-आहिस्ता उसने अपने सारे खिलौने उठाकर आलमारी में रख दिये, रंग के डिब्बे को घोल-घोलकर ख़त्म कर दिया। बस, उमा के पास बैठी रहती—उदास, गुमसुम।

जिसका डर था वही हुआ। होते-होते कुमुद बीमार पड़ गयी। उमा ने अपनी असुविधाओं को भूलकर, और वत्सल होकर उसकी देख-भाल करनी शुरू कर दी। रात-दिन उसके पास बैठी रहती। मगर कुमुद की तबीयत सुधरने के बजाय बिगड़ती ही गयी। शहर का कोई डाक्टर, कोई इलाज नहीं छोड़ा गया। फिर भी, रोग बढ़ता ही गया।

गदाधर ड्राइंग रूम में, अपने कमरे में पड़े रहते—अवाक्, निश्चिन्त। अक्सर रात-रात भर ग़ायब रहते। लौटते तो कुमुद की कराह सुनाई पड़ती, उमा के बेचैन क़दमों की आहट आती, डॉक्टरों का आना-जाना दिखाई पड़ता। उनका मन कुमुद के लिए बहुत कातर हो आता। पर जाने कैसा एक बोझ उन्हें दबाये जा रहा था। उन्हें आया हुआ जानकर उमा उनके पास जाती, समझाती, कमुद तक चलने का आग्रह करती। वे उठते, बेहद बेचैनी का अनुभव करते, और बिना कुछ कहे निकलकर अपनी कार में जा बैठते।

कुमुद की बीमारी का इक्कीसवाँ दिन था। डॉक्टरों की कतार लग गयी थी। बुख़ार बढ़ते-बढ़ते एक सौ-छः तक पहुँच गया था। बारह से भी अधिक रात हो रही थी, मगर गदाधर का कहीं कोई पता नहीं था। अकेली उमा परीशान हो उठी थी। आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली बार उसके मन में गदाधर के प्रति असीम घृणा उत्पन्न हुई !

कुमुद बुख़ार में बेहोश पड़ी थी, बदन तवा-सा जल रहा था। तभी गदाधर के पाँव की आहट सुनाई पड़ी। वे आये, और सीधे अपने कमरे में चले गये। कपड़े बदल कर पलंग पर लेट गये। रोशनी गुल कर दी। नींद की कई गोलियाँ खाकर सोने की कोशिश की, फिर भी नींद नहीं आयी। बग़ल के कमरे में कुमुद बुख़ार की झोंक में रह-रह कर अस्फुट स्वरों में पुकार उठती थी "पापा!"

उनसे नहीं रहा गया। नींद की गोलियों से देह बेक़ाबू हो रही थी, फिर भी वे उठे। किसी तरह जाकर कुमुद के सिरहाने खड़े हो गये। देखा। लगा, भीतर से कुछ फूटकर बहने को व्याकुल हो रहा है। बढ़कर उन्होंने बुख़ार में बेहोश पड़ी कुमुद का हाथ थाम लिया। जैसे उन्होंने भूल से दहकता हुआ अंगार पकड़ लिया। सारे बदन में एक बिजली-सी कौंध गयी। याद आया, उन्होंने ऐसे ही एक दिन कमला का तपता हुआ हाथ थामा था। रोओं में भय की झुरझुरी-सी दौड़ गयी। आँखों से बँधे आँसुओं की धार बह चली।

बढ़कर गदाधर ने पलंग पर जाकर कुमुद को उठाकर अपनी गोद में लिटा लिया। काँपते हुए स्वर में उमा से कहा, "जल्दी करो, सिर धोने के लिए पानी ले आओ!"

सिर धोते, बर्फ की थैलियाँ रखते-बदलते सुबह हो चली। उनकी निष्ठा और परिश्रम का फल प्रकट हुआ। आहिस्ता-आहिस्ता उसका बुख़ार उतरने लगा। उन्होंने उसे गोद से उतारकर फिर पलंग पर लिटा दिया।

सुबह की प्रसन्न आभा खुली खिड़की से आकर कमरे में भर गयी। उमा ने उठकर बुख़ार देखा। बुख़ार सौ पर उतर आया था और कुमुद गहरी नींद में सो रही थी। वे बैठे हुए उत्सुक मन से उसके जागने की प्रतीक्षा करते रहे।

सहसा एक विचित्र प्रश्न उनके मन में कौंध गया। कुमुद उन्हें देखेगी, तो क्या सोचेगी? उन्हें अपने अंग सहसा जमते हुए-से मालूम हुए। बदन में एक झुनझुनी-सी दौड़ गयी। लगा, वे काँटों पर बैठ गये हैं। वे हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। उमा की ओर देखा। थकी उमा कुर्सी पर बैठे-ही-बैठे सो गयी थी। थोड़ी देर वे किंकृत्य जड़ एकटक कुमुद को देखते रहे, अपने भीतर जूझते रहे। मगर जैसे-जैसे सुबह की रोशनी तेज़ होती गयी, उनका साहस छूटता गया।

आख़िर कुमुद के जगने तक उनसे वहाँ नहीं रुका गया। उन्हें लगा, वे कुमुद की आँखों से झाँकते प्रश्न नहीं झेल सकेंगे। उनके पाँव काँपने लगे। किसी तरह उन्होंने मन को सहेजने की कोशिश की, पर हार गये। क्षण भर कुमुद को एकटक देखते रहे, फिर झुककर उसके ललाट का हल्के-से चुम्बन लिया और बिना कुछ कहे, दबे पाँव, कमरे से बाहर निकल गये।

• •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों अपना अन्तिम समय जानकर वसीयत सभी लिखते हैं, लेकिन यहाँ प्रस्तुत नमूने बेजोड़ हैं।

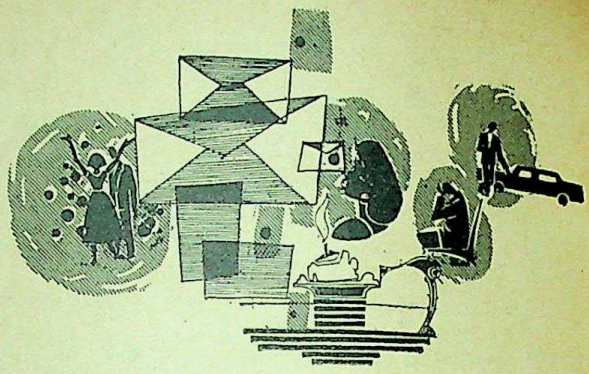

हमें जीवन में अनेक विचित्रताएँ देखने को मिलती हैं। ये विचित्रताएँ ही हमारे थके हुए जीवन को गति और प्रेरणा प्रदान करती हैं और उदासी के क्षणों को आनन्द में बदल देती हैं। लेकिन कुछ व्यक्ति होते हैं जो मरने के बाद भी वसीयत के रूप में एक आश्चर्य जगत् के लिए छोड़ जाते हैं। वसीयत का प्रचार हमारे देश में उतना नहीं है जितना पाश्चात्य देशों में। वहाँ तो बहुत-से व्यक्तियों को वसीयतें एकत्रित करने का ही शौक़ है।

० ० ० ०

एक व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। मरते समय उसने दो मुहरबन्द पत्र छोड़े। एक पत्र अन्त्येष्टि-क्रिया के बाद उसके वकील द्वारा और दूसरा उसके शव को श्मशान ले जानेवालों के द्वारा खोले जाने की हिदायत थी। दूसरे पत्र के अनुसार उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया सुबह चार बजे सम्पन्न हुई। उस ठण्डे प्रदेश में सुबह चार बजे का समय बड़ा कष्टप्रद था। उसके केवल चार मित्रों ने उसके शव को श्मशान तक ले जाने का साहस किया, परन्तु उन चारों को अपने कष्टों का समुचित पुरस्कार भी मिल गया। जब दूसरा पत्र खोला गया तो सबको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसमें यह वसीयत की गयी थी—"मैं चार लाख डॉलर छोड़े जा रहा हूँ। जो लोग मेरी अन्त्येष्टि-क्रिया में सम्मिलित हुए हों, उनमें ये चार लाख डालर बराबर-बराबर बाँट दिये जाएँ।"

० ० ० ०

एक विनोदप्रिय अमेरिकन ने अपनी वसीयत में अपने पुत्रों को लिखा था—"मेरी मृत्यु के बाद मेरी अलमारी में तुम्हें लकड़ी का एक मुहरबन्द सन्दूक़ मिलेगा।

ये अजीब-अनोखी वसीयतें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सन्दूक़ को कोठी के पीछे लॉन में ले जाना और मेरे वकील की उपस्थिति में बिना खोले जला देना।" लड़कों ने यह समझकर कि इसमें उनके निजी पत्र होंगे, बड़े भक्ति-भाव से सन्दूक़ को आग पर रख दिया। सन्दूक़ के जलने पर जब उन्होंने नाना प्रकार के आतिशबाज़ी के खेल देखे तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—"पिताजी का यह अन्तिम मज़ाक़ बहुत अच्छा रहा!"

० ० ०

कुछ समय हुआ, अमेरिका के एक धनी व्यक्ति की मृत्यु हुई। मरने से पूर्व उसने यह वसीयतनामा लिखा—"अपनी पत्नी के लिए मैं एक डालर छोड़ता हूँ और यह भी बता देना चाहता हूँ कि मैं वैसा मूर्ख न था जैसा कि वह मुझे समझती थी। अपने पुत्र के लिए मैं रोटी कमाने का आनन्द छोड़े जाता हूँ। पैंतीस वर्षों तक वह यह सोचता रहा कि यह आनन्द एक-मात्र मेरे ही भाग्य में लिखा है। यह उसकी भूल थी। अपनी बेटी के लिए मैं एक लाख डॉलर छोड़ता हूँ। इससे उसकी आवश्यकता होगी। उसके पति ने अपने जीवन में केवल एक ही अच्छा सौदा किया और वह था मेरी बेटी के साथ विवाह करना। अपने नौकर के लिए मैं अपने कपड़े छोड़ रहा हूँ जिन्हें वह नियमानुसार पिछले दस वर्षों से चुराता आ रहा है। अपने मोटर-ड्राइवर के लिए मैं अपनी कारें छोड़ता हूँ। उसने इन कारों को प्रायः नष्ट कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि उसे इस काम को समाप्त कर देने का संतोष रहे।"

० ० ०

कुछ व्यक्ति अपनी पत्नियों से इतने खीजे और चिढ़े हुए होते हैं कि वसीयत के रूप में वे उनके लिए दण्ड-पत्र छोड़ जाते हैं और यों मरने के बाद पत्नी द्वारा जीवन-काल में सताये जाने का बदला चुका लेते हैं।

एक धनी अमेरिकन सिगार पीने का बेहद शौक़ीन था, परन्तु उसकी पत्नी ने उसके इस शौक़ पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। अपने विवाहित जीवन की लम्बी अवधि में बेचारा पति सिगारों के लिए तरस-तरसकर रह गया। अपने अन्तिम समय में वसीयतनामा तैयार करते हुए उस संतप्त पति को अपनी पत्नी की निष्ठुरता का बदला लेने का अवसर मिल गया। अपनी साठ लाख रुपये की जायदाद उसने पत्नी के नाम की तो अवश्य, परन्तु साथ ही यह शर्त भी रख दी, कि वह पाँच सिगार प्रतिदिन पिये; यदि किसी भी दिन अपने जीते-जी वह सिगार न पिये तो सारी सम्पत्ति उससे लेकर दान कर दी जाये। यह घटना १९५२ की है। तब से वह सिगारों से घृणा करने वाली स्त्री प्रति दिन पाँच सिगार पी रही है।

० ० ०

एक और दुखी पति ने मरते समय अपनी पत्नी से बदला लिया। पति ने मरते समय अपनी पत्नी के लिए केवल एक डॉलर छोड़ा और सब धन धर्मार्थ अर्पण कर दिया। उसने लिखा—"यह एक डालर मैं इसलिए छोड़ रहा हूँ कि मेरी पत्नी फाँसी लगाने के लिए रस्सी ख़रीद सके।"

० ० ०

इसी तरह एक और संतप्त पति अपनी कटु स्वभाव वाली पत्नी के लिए केवल दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपए आठ आने की पूंजी अपने उत्तराधिकार-पत्र में छोड़ गया। एक रुपया तो उस दिन की स्मृति के लिए जब उसकी पत्नी ने उसे 'मोटा सुअर' कहा था। दूसरा रुपया उस दिन की याद दिलाने के लिए जब उसकी पत्नी ने उसके मुंह पर तमाचा मारा था। आठ आने उस दिन की स्मृति के लिए जब उसकी पत्नी ने उसके दमे के मर्ज़ का मज़ाक उड़ाया था। वह कटुस्वभाव वाली स्त्री आज भी उस वसीयतनामे द्वारा किये गये अपमान के स्मरण-मात्र से क्रुद्ध हो उठती है।

० ० ०

उत्तरी इंग्लैण्ड के एक निवासी की पत्नी ने उसे जीवन-भर तरसाया था। मरते समय उसने भी अपनी पत्नी को जीवन-भर तरसाने का प्रबन्ध करके पूरा बदला चुका लिया। उस व्यक्ति ने कई लाख रुपया अपनी पत्नी के लिए छोड़ा तो सही, परन्तु वसीयतनामे में लिखा—"यदि मेरी पत्नी किसी भी सार्वजनिक सभा या स्थान में मुंह खोलकर निकले तो ७,००० रुपये प्रति बार, यदि किसी भी पुरुष की ओर देखकर मुस्कराये तो २,५०० रुपये प्रति बार यदि किसी व्यक्ति को अपने को 'प्रिया' संबोधित करने या आलिंगन करने की अनुमति दे तो १४,००० रुपये प्रति बार मेरे द्वारा छोड़े गये धन में से ज़ब्त कर लिये जायँ!"

आप ही सोचिए कि इंग्लैण्ड जैसे देश के वातावरण में किसी नवयुवती के लिए इन पाबन्दियों का पालन करना कितना कठिन है!

पत्नी दो वर्ष तक तो पिंजड़े में क़ैद पक्षी की तरह फड़फड़ाती रही, अंत में उसने इन पाबन्दियों से छुटकारा पाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति से विवाह कर लिया और यों अपने पति द्वारा छोड़े गये धन का उपभोग करने से वंचित हो गयी।

० ० ०

अमेरिका के एक लखपति किसान ने अपनी पत्नी के नाम अपनी सबसे पुरानी और फटी हुई पतलून की वसीयत की थी

० ० ०

एक व्यक्ति ने अपने पत्नी के नाम सिर्फ़ एक पेनी छोड़ी थी और यह भी लिख दिया कि उसे बैरंग लिफ़ाफ़े में रखकर भेजा जाए।

० ० ०

एक नौजवान अमेरिकन ने अपनी वसीयत में लिखा कि मेरा सब धन मेरी मृत्यु के दस वर्ष बाद मेरी पत्नी को मिले।

० ० ०

कुछ व्यक्ति सनकी भी होते हैं, जो अपनी वसीयत में अपने सनकीपन का प रिचय दे जाते हैं।

एक सनकी ने अपनी वसीयत में लिखा—"मेरा सब धन, मेरी सब जायदाद और मेरे सब मकान सार्वजनिक संस्थाओं को दे दिये जायँ; किन्तु यदि मेरी क़ब्र पर पीली घास उगे तो यह सब मेरे परिवार वालों को मिले।"

० ० ०

एक अन्य सनकी ने अपनी साढ़े चार लाख रुपये की लकड़ियाँ अपने पुत्र के नाम वसीयत में छोड़ी परन्तु शर्त यह रखी कि वह स्वयं उन्हें ढोकर बेचे।

० ० ०

एक सनकी महिला ने वसीयत में लिखा—"मेरा सब धन उन महिलाओं को मिले,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अगले दस वर्षों में सबसे अधिक बच्चे पैदा करे।"

वसीयत को पाने के लिए तीन महिलाओं में होड़ लग गयी। दस वर्ष में उन तीनों के नौ-नौ बच्चे हुए, इसलिए कुल धन को तीनों में बराबर-बराबर बाँट दिया गया।

० ० ०

स्विटजरलैण्ड के एक शराबी ने आज से बीस वर्ष पूर्व मरते समय जो वसीयतनामा लिखा उसके अनुसार १०० पौंड प्रति वर्ष उन लोगों में बाँट दिया जाता है, जो शराब के बिना रह नहीं सकते।

० ० ०

यूगोस्लाविया के एक शराबी ने मरते समय वसीयत की। उस वसीयत के अनुसार, जिसे लगभग १०० वर्ष हो चुके हैं, हर साल उसकी क़ब्र को शराब से धोया जाता है। क़ब्र के पास शहर के शराबियों को दावत दी जाती है, और उन्हें जी भर मुफ्त शराब दी जाती है।

० ० ०

लन्दन के प्रख्यात शराबी मि० फाकिन्स के वसीयतनामे का हाल भी सुनिए। हर साल मि० फाकिन्स के जन्मदिन पर उनके घर का द्वार शराबियों के लिए खोल दिया जाता है। जो शराबी जैसी शराब चाहे, उसे वहाँ मिल जाती है।

० ० ०

एक महानुभाव की वसीयत के अनुसार उनकी दोनों लड़कियों को उनके भार के अनुपात में रुपया मिलना था। फलस्वरूप एक लड़की को दूसरी से पचहत्तर हज़ार रुपये अधिक मिले।

० ० ०

एक व्यक्ति की वसीयत के अनुसार उसका सब रुपया उन व्यक्तियों को मिलना है, जो सबसे पहले किसी दूसरे नक्षत्र में पहुँचें। यह रुपया अब तक किसी को नहीं मिला है और न्यूयार्क की बैंक में जमा है।

० ० ०

उत्तराधिकारियों को तंग करने वाले एक व्यक्ति की वसीयत खोलने में पाँच वर्ष लग गये। उसने अपनी वसीयत को जिस लिफ़ाफे में बन्द किया था, उस पर लिखा था—"मेरी मृत्यु के एक सप्ताह बाद खोला जाये!"

सप्ताह-भर बाद जब लिफ़ाफे को खोला गया तो उसमें दूसरा लिफ़ाफ़ा निकला, जिस पर लिखा था—"एक वर्ष बाद खोला जाये।"

इसी प्रकार एक लिफ़ाफ़ा खोलने पर दूसरा लिफ़ाफ़ा निकलता गया। प्रत्येक लिफ़ाफे पर उसके खोलने की अवधि लिखी थी जिनका कुल जोड़ पाँच वर्ष हुआ।

० ० ०

ये वसीयतें सदा काग़ज़ पर ही नहीं लिखी जाती थीं। अण्डों के छिलकों, सीढ़ियों के डण्डों, दियासलाई की तीलियों, वृक्षों की छालों, और टोपी के फीतों पर लिखे वसीयतनामे भी मिले हैं। एक व्यक्ति ने अपनी वसीयत रसोईघर के किवाड़ों पर ही लिख डाली। अदालत में वसीयत की वैधता सिद्ध करने के लिए वह किवाड़ ले जाया गया था।

ऐसे ही एक क़ैदी ने अपनी वसीयत जेलखाने की दीवार पर लिखी थी। फलस्वरूप सबूत के लिए सारी दीवार को ही उखाड़कर न्यायालय में लाना पड़ा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्फ़ पर स्केटिंग करता हुआ कोई सालिसीटर नीचे गिर पड़ा। संकट के इन क्षणों में उसने बड़ी धीरता के साथ चाकू की नोक से बर्फ़ पर अपनी वसीयत घसीट डाली, लेकिन यह वसीयत इसलिए अवैध घोषित कर दी गयी क्योंकि इसका कोई साक्षी नहीं था।

० ० ०

संसार में सबसे अधिक विचित्र लिखी गयी वसीयत एक नाविक की पीठ पर खोदी गयी थी और हस्ताक्षर उसकी जाँघ पर किये गये थे। यह वसीयत क़ानून की दृष्टि में सर्वथा वैध समझी गयी थी।

० ० ०

एक व्यापारी ने अपनी वसीयत केवल लिखकर ही संतोष नहीं किया, बल्कि उसका बोलता रिकार्ड और चलचित्र बनवाकर सुन और देख भी लिया। इस वसीयत में उसने अपने उत्तराधिकारियों के गुण-दोषों पर भी प्रकाश डाला था।

० ० ०

दुनिया की सबसे लम्बी वसीयत एक स्काटलैण्ड-निवासी ने लिखी, जो लगभग ४,८०० पन्नों की थी। यह अब भी वहाँ के अजायबघर की शोभा बढ़ा रही है।

दूसरी लम्बी वसीयत एक महिला की थी जिसे उसने ९५,००० शब्दों में लिखी थी और जिसके लिखने में उसने तीस वर्ष लगाये थे। यह महिला इस भारी दस्तावेज़ को सदा अपने सिरहाने के नीचे रखती थी। उसके मित्र समझते थे कि वह कोई अमूल्य ग्रंथ लिख रही है। इस वसीयत में महिला ने दस लाख पौंड के बँटवारे का विस्तृत ब्योरा दिया था। लेकिन दुर्भाग्यवश मृत्यु के समय महिला के पास केवल २०५८३ पौंड ही निकले। इस घटाले को साफ़ करने के लिए अदालत के कई वर्ष लगे थे।

० ० ०

और सबसे छोटी वसीयत एक नाविक की थी जो उसने अण्डे के छिलके पर इन शब्दों में घसीट दी थी—"मेरा सब-कुछ मेरी पत्नी को!"

० ० ०

कहते हैं कि ब्रिटेन के सोमरसेट हाऊस में पाँच करोड़ से भी अधिक वसीयतें सँभाल कर रखी हुई हैं जिनमें कोई किवाड़ों पर लिखी हुई है तो कोई एटलांटिक महासागर में डूबते नाविक द्वारा किसी तख्ते पर। ● ●

अधिक समझदार

म्यूज़ियम में एक इजिप्शियन ममी को दो व्यक्ति बड़े आश्चर्य से देख रहे थे। ऊपर लगी तख्ती पर बी० सी० ११८७ लिखा देखकर एक ने अपने साथी से कहा, "देखा, यह शायद उस मकान का नम्बर है जिसमें यह व्यक्ति रहा करता था।"

"नहीं" दूसरे ने अधिक समझदार बनते हुए कहा, "यह उस मोटर का नम्बर है जिसके नीचे आकर इस बिचारे ने अपनी जान गँवाई।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपमें से कोई
जो महाशया या महाशय हैं
आकर देखें--
मेरे मकान के सामने एक जलाशय है।

मुझ तक आकर उधर न जाना
आसान नहीं है!
आप न जाँय, आपकी दृष्टि जायेगी
क्योंकि बीच में घासान नहीं है।

और तब आप संभवतः कहेंगे
जैसा कि बहुतों ने कहा है--
"कैसा सुन्दर स्थान है!
कैसी बढ़िया हवा है!
और जल चमकता है
तरंगें तो बही चली जाती हैं
चमक में मगर
कँपकँपाती हुई स्थिरता है।
इस तरह दरवाज़ा खोलकर
आपस में कुछ भी नहीं बोलकर,
देखते जाना थकाता नहीं!
और आप तो यहाँ रहते ही हैं;
हमें तो कोई बुलाता नहीं।"

बात रुकेगी नहीं, बढ़ेगी,
महाशय कहेंगे या महाशया कहेंगी--
"यह स्थल कविता के क़ाबिल है!
और आप? आपके पास क्या नहीं है!
कल्पना है, संवेदना है, दिल है!
आकाश, अवकाश सब यहीं है।
आप यहाँ हैं, तो खुशक़िस्मत हैं,
शहर की उलझनों से विरत हैं।"

बातें तो बहुत होंगी--मैं मानता हूँ,
मैं मगर एक बात जानता हूँ--
मैं किसी से कहूँ नहीं, यह अलग बात है
पर मैं जलाशय को नहीं जानता--
सही बात है।
आकाश में क्या उतरता है,
और अवकाश किस तरह गुज़रता है,
मैं नहीं पहचानता।
यों रातों में कई बार
चाँद अपनी चाँदनियों के साथ
जलाशय में उतरा होगा,
मगर मैं
अपने मकान की सीढ़ियाँ उतरकर
उसकी अगवानी को नहीं पहुँचा।

इतना निकट रहा हूँ लहरों के शायद,
कि मैंने उन्हें छुआ ही नहीं
कि मैं कभी नहीं भीजा
किसी भी लहर ने मेरे मरुस्थल को
(याद नहीं) सींचा!

●

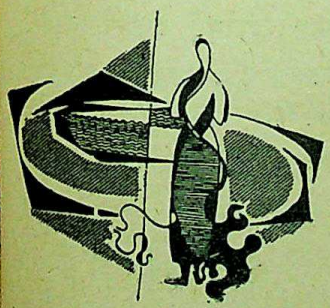

निकट की दूरी : श्रीकान्त जोशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

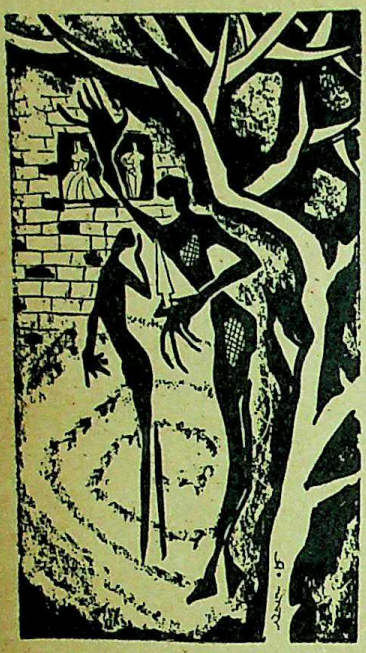

काव्य-नाटिका

मूल :
विलियम बटलर यीट्स

रूपान्तर :
अरुण चोपड़ा

पात्र :

एक लड़का
एक बूढ़ा आदमी

दृश्य : एक खंडहर-सा मकान। पार्श्व में एक सूखा हुआ वृक्ष।

●

लड़का :

अर्द्ध द्वार, कक्ष द्वार,
इधर व उधर, दिवस व रात्रि,
भटकता हुआ,
टीले या घाटी में, ढोता हुआ यह बोझ—
तुम्हें सुनता हूँ केवल।

बूढ़ा आदमी :

उस मकान को देखो।
जो कथाएँ, जो परिहास इसके विषय
में कहे गये—उन्हीं की सोचता हूँ।
याद करता हूँ, किंतु नहीं कर पाता।
क्या कहा था उस खानसामे ने
एक शराब में धुत् मालीसे, मध्य अक्तूबर में?
यदि मैं ही वह याद न कर पाया
तो कोई और क्या करेगा!
कहाँ गयीं वे कथाएँ? वे परिहास क्या हुए?
इस मकान की देहरी
जा बनी एक शूकरशाला!

लड़का :

तो तुम इस राह पहले भी आये हो?

बूढ़ा आदमी :

चाँदनी बिछी है इस राह पर
लटकी है
एक बादल की परछाईं, इस मकान पर।
यह प्रतीकात्मक है। उस पेड़ को देखो,
कैसा है वह?
एक निर्बुद्धि वृद्ध!

नरक का एक स्वप्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूढ़ा आदमी :

कैसा है यह ——जाने दो।
साल भर पहले देखा था इसे
इतना ही नंगा, इतना ही
उजड़ा हुआ।
इसीलिए नया धन्धा चुना मैंने।
पचास बरस पहले भी देखा था इसे——
वज्रपात से पहले।
हरे पात, पके पात, माखन सरीखे स्थूल,
चिकने पात—वृक्ष में जीवन था।
उधर खड़े होकर देखो!
कोई है क्या मकान में ?
(लड़का गठरी उतारकर देहलीज़ के पास खड़ा होता है)

लड़का :

नहीं, कोई भी तो नहीं!

बूढ़ा आदमी :

नहीं, कोई-न-कोई है यहाँ!

लड़का :

इस मकान का फ़र्श तक अब रहा नहीं
खिड़कियाँ टूटी हैं, छत की जगह आसमान,
अब यहाँ कौन होगा ? और यह रहा
कौवे के घोंसले से गिरा अंडे का छिलका!
यह तो है उजड़ा हुआ खंडहर मात्र!

बूढ़ा आदमी :

कुछ लोग होते हैं,
जो सोचते नहीं, क्या मिट गया, क्या रह
गया!
और तर्क की आत्माएँ लौट आती हैं
निवास-स्थलों में, परिचित स्थानों में,
उजड़े खंडहरों में।

लड़का :

तुम पगला गये फिर!

बूढ़ा आदमी :

पुनः पुनः,
पाप किये। और परिणाम ?
परिणामांत तक तो स्वप्न भी शेष हो
जाता है।
गति तो केवल प्रभु की कृपा में है।

लड़का :

बहुत सहा मैंने!
करना ही है तो अब इन कौवों से
वार्त्तालाप करो तुम!

बूढ़ा आदमी :

रुको, इस पत्थर पर बैठो!
सुनो, मैं इसी मकान में जन्मा था!

लड़का :

यह पुराना जला हुआ बड़ा मकान ?

बढ़ा आदमी :

मेरी माँ, जो तुम्हारी दादी थी,
स्वामिनी थी, इस घर की।
यह दृश्य, यह ग्राम-प्रदेश!
कुकुर और अश्व व उनके पशुगृह!
सब था, इस घर में सब था,
बस यह अब वैसा उजड़ा न था!!
और वहीं एक दिन
अस्तबल में, मेरी माँ की, मेरे पिता से
भेंट हुई
बस एक साईस था वह।
उसे देखा और ब्याह किया उससे
मेरी माँ ने। मेरी नानी ने फिर कभी माँ
से बात तक न की। शायद ठीक ही
किया।

लड़का :

क्या गलत, क्या ठीक!
मेरे दादा को धन भी मिला, वधू भी,
क्या हुआ ठीक नहीं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूढ़ा आदमी :

उसे देखा और ब्याह किया उससे
मेरी माँ ने। किन्तु माँ की
सारी धन-दौलत पिता ने लुटा दी।
माँ ने और बुरे दिन न देखे, न देखे,
वह मुझे जन्मते-जन्मते ही चल बसी,
बेचारी !
महान पुरुष इस मकान में जिये और मरे।
मैजिस्ट्रेट, कर्नल, पार्लियामेण्ट के मेम्बर,
कैप्टन और गवर्नर, और ऑध्रिम और
बोयून के योद्धा। जो सरकारी काज से
गये थे लंदन या भारत—
वे इसी घर लौट आये सिर्फ मरने के
लिए !
या वे लौटते थे हर बसंत
मई की बहार देखने बगीचों में।
किन्तु मेरे पिता ने पुरखों के प्रिय वृक्ष
काट दिये, ताश की हार चुकाने के लिए।
वृथा व्यय किया घोड़ों, औरतों और
शराब पर।
उसने यह पुरखों का प्रिय मकान
नष्ट कर दिया। वह मकान जहाँ
महान पुरुष जन्मे, पले, ब्याहे और मरे
यह मृत्युदंड घोषित करता हूँ पुनः।
मैं दुखी हूँ।

लड़का :

तुम भाग्यवान थे, पहनने को अमूल्य वस्त्र
और शायद सवारी के लिए एक
सुन्दर स्वस्थ अश्व भी !

बूढ़ा आदमी :

किन्तु मुझे अपने ही स्तर का
रखने को
उसने मुझे स्कूल न भेजा कभी।
कुछ लोग मुझे कुछ प्यार करते थे
मुझ में माँ का अंश जानकर !
एक माली की लड़की ने मुझे पढ़ना
सिखाया
एक क्यूरेट ने लेटिन सिखाई।
इस घर में अनगिनत पुरानी-पुरानी
पुस्तकें थीं—
सुन्दर फ्रेंच जिल्दों में मढ़ी, नयी-पुरानी
पुस्तकें ढेरों थीं।

लड़का :

तुमने ही मुझे क्या शिक्षा दी ?

बूढ़ा आदमी :

वही जो एक फेरीवाले और
ठठेरी की पुत्री
के खाई में जन्मे अवैध पुत्र के लिए
उचित थी।
जब मैं सोलह बरस का हुआ
तो मेरे पिता ने नशे में घर को आग
लगा दी थी।

लड़का :

मैं भी तो सोलह का हूँ।

बूढ़ा आदमी :

सब कुछ जल गया !
पुस्तकें, पुस्तकालय, सब राख हो गया !

लड़का :

क्या मैंने सच ही सुना कि तुमने अपने
पिता की हत्या जलते हुए घर में की ?

बूढ़ा आदमी :

हम दोनों के सिवा यहाँ और तो
नहीं कोई ?

लड़का :

नहीं, पिता।

बूढ़ा आदमी :

छुरी भोंकी थी मैंने !
वही छुरी, जिससे आज मैं भोजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काटता हूँ।
मन उसे आग में जलने दिया। कुछ लोग
घसीट भी लाये बाहर जला-भुना शव!
देखा भी उन्होंने छुरी का घाव। परंतु
निश्चित न हो सके। उसके पिय्यकड़
मित्रों ने
मुझे धमकी भी दी—मुक़द्दमे की,
झगड़े की बातें कीं। किंतु कुछ न हुआ।
माली ने मुझे कुछ पुराने कपड़े दिये
और मैं भाग निकला। भटकता रहा—
जब तक फेरीवाला न बना।
अच्छा धंधा तो नहीं है यह, पर बुरा भी
नहीं।
ऐसे पिता के पुत्र को और क्या मिलता?
फिर मैंने जो किया था, या करूंगा,
उस लिहाज़ से तो अच्छा ही है।
सुनो, घोड़े की पदचाप!
सुनो, सुनो!

लड़का :
मैं तो सुन पाता नहीं कोई भी आवाज़।

ढ़ा आदमी : टप्-टप्!
माँ के ब्याह की वर्षगाँठ है,
आज की रात। जिस रात मैं
बीजा गया।
मेरा पिता घोड़े पर सवार
पब्लिक हाउस से आ रहा—
बगल में ह्विस्की की बोतल है।
(एक खिड़की में प्रकाश होता है।
एक युवती की आकृति दिखाई पड़ती है)
उस खिड़की को देखो; वह वहाँ खड़ी
है, सुन रही है। सब चाकर सो रहे।
वह अकेली है, नितान्त।
और मेरा पिता पब्लिक-हाउस में
शराब के दौरों के साथ डींगें मारता होगा।
मेरी माँ अकेली है, नितांत।

लड़का :
दीवार में तो एक ख़ाली जगह है
और कुछ भी तो नहीं।
तुम पागल हो। हर दिन पागल हो रहे हो।

बूढ़ा आदमी :
अब ऊँची आवाज़ आ रही....
पथरीली सड़क पर घोड़ा दौड़ता होगा।
घोड़े की टाप मन्द पड़ गयी....
वह घोड़े को बाँधने अस्तबल गया है।
माँ नीचे द्वार खोलने गयी।
वे अब सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं—
वह उसे अपने कक्ष में ले गयी।
वही सुहाग-कक्ष है।
(खिड़की में पुनः हल्की-सी रोशनी होती है)
न छूने दो उसे!
प्रेम मत करो उससे माँ।
वरना तुम्हें भी उसके हत्यारे को ग्रहण
करना होगा।
माँ नहीं सुनती! वह भी नहीं सुनता!
मैं छड़ी या पत्थर भी फेंकूँ तो भी वे न
सुनेंगे।
माँ, तुम दीवानी हो गयी इस पिशाच
पर?
इस प्रणय-भोग में माँ को
क्या अधिक मिला? आनन्द या
पश्चाताप?
या कुछ नहीं?....लौट आओ!
लौट आओ!
तुमने सोचा, मैं देख नहीं रहा
तुम भाग जाओगे—मेरी धन की थैली
तुम्हारे हाथों में, तुम इसे
टटोलते रहे हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(खिड़की की रोशनी मद्धिम होते-होते बुझ गई है)

लड़का :

तुमने कभी मुझे मेरा हिस्सा न दिया !

बूढ़ा आदमी :

और यदि मैं दे ही देता,
तो जैसे कि तुम युवक हो, सब शराब में
उड़ा देते !

लड़का :

तो क्या हुआ ? अधिकार मेरा है—
इसे पाने का और इच्छानुसार व्यय
करने का ।

बूढ़ा आदमी :

मुझे थैली दे दो और
बकवास बन्द करो ।

लड़का :

मैं नहीं दूंगा ।

बूढा आदमी :

तुम्हारी उँगलियाँ तोड़ दूँगा ।

(दोनों थैली के लिए झगड़ते हैं। इसी कशमकश में थैली गिर जाती है– सिक्के बिखर जाते हैं । बूढ़ा आदमी लड़खड़ाता है, गिरता नहीं। वे एक-दूसरे को देखते हुए खड़े रहते हैं। खिड़की में रोशनी होती है, एक आदमी गिलास में ह्विस्की ढालता दिखाई पड़ता है)

लड़का :

यदि मैं तुम्हें मार दूं तो क्या ?
तुमने मेरे दादा की हत्या की !
क्योंकि वह बूढ़ा था, तुम जवान थे—
अब तुम बूढ़े हो और मैं जवान हूँ ।

बूढ़ा आदमी :

(खिड़की की ओर घूरता हुआ)

वह अच्छे दीखते सोलह साल....

लड़का :

तुम क्या बुदबुदा रहे हो ?

बूढ़ा आदमी :

उस औरत को जान लेना चाहिए था—
वह छोटा आदमी उसके योग्य नहीं।

लड़का :

क्या बहकी-बहकी बातें कर रहे
हो तुम जल्दी कहो।

(बूढ़ा आदमी खिड़की की ओर इशारा करता है)

हे प्रभु ! खिड़की में रोशनी हो गयी—
इस मकान के तख्ते, शहतीरें, सब-कुछ
तो जल चुका,
कौन खड़ा है वहाँ ?

बूढ़ा आदमी :

'खिड़की में रोशनी इसलिए हुई
कि मेरा पिता अपनी ह्विस्की के लिए
गिलास ढूंढ़ रहा है ।

लड़का

एक मृत हत्या किया हुआ आदमी,
साक्षात !

बूढ़ा आदमी :

'और तब दुल्हन-सी नींद आदम
पर छा गई' यह वाक्य मैंने कहाँ पढ़ा ?
कोई भी तो खिड़की में झुका हुआ नहीं—
मेरी मृत माँ के मस्तिष्क के अंकन....
मेरी मृत माँ का स्वप्न....
मेरी माँ अकेली है, नितान्त ।
नरक का स्वप्न भयावना है !

लड़का :

वह देह, जो मेरे जन्म से पहले ही
बस हड्डियों का ढेर ही थी ! वीभत्स !
वीभत्स !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri College, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वह आँखें ढक लेता है)

बूढ़ा आदमी :

कौन जान पायेगा यदि मैं
खिड़की तले एक और हत्या कर दूं ?
वह पिशाच तो मुंह भी न फेरेगा ।
(वह लड़के को छुरी मार देता है)
मेरा पिता, और मेरा पुत्र एक ही छुरी से..
हा-हा ! पुत्र भी मर गया, हा, हा !
(वह बार-बार लड़के की देह में छुरी भोंकता है। खिड़की में अँधेरा हो जाता है)
'सो जा मुन्नू, सो जा !
माँ तेरी रानी
बाप तेरा राजा'
यह तो मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा था ।
नहीं । यदि मैं गाऊँ तो सिर्फ़ माँ के
लिए....
कन्तु शब्द नहीं जुड़ते....
धुन भी नहीं ।
(रंगमंच पर अंधेरा छा गया है, केवल वृक्ष सफेद रोशनी में चमकता है)
उस वृक्ष को देखो ।
एक पवित्र आत्मा-सा शान्त, स्निग्ध
यह वृक्ष दमक रहा है ।
प्रिय माँ,
खिड़की में अँधेरा हो गया है,
किन्तु तुम तो अब उजाले में हो ।
मैंने सब परिणाम शेष कर दिये ।
उस लड़के को मार दिया....
यदि वह वयस्क होता, तो, किसी
स्त्री से प्रेम करता.... और
प्रणय करता....और कलंक बढ़ जाता ।
इसीलिए शेष कर दिया उसे भी !
मैं तो एक नीच -निरीह बूढ़ा आदमी हूँ...
मैं हानि न कर पाऊँगा, ...
छुरी चमकाकर, सिक्के बटोरकर....
मैं किसी दूर जगह चला जाऊँगा
और अपने पुराने मज़ाक नये लोगों को
सुनाऊँगा ।
(वह छुरी साफ़ करता है और सिक्के उठाने लगता है)
घोड़े की पदचाप....टप्....टप्
कितनी जल्दी लौट आयी । प्रिय प्रभु ।
मेरी माँ का मस्तिष्क यह स्वप्न
थाम नहीं पाता —यह नरक का स्वप्न
....मेरी माँ अकेली है, नितान्त ।
मैं दो बार हत्यारा बना, अकारण ही....
(मैं दुखी हूँ)
निर्जीव रात को मेरी माँ जिलायगी....
(वह दुखी है) एक बार नहीं, कई बार !
हे प्रभु,
मेरी माँ की आत्मा
स्वप्न से मुक्त कर दो ।
और अधिक मनुष्य-जाति
क्या कर सकती है—
कि जीवितों की दुर्गति
और मृतों के पश्चात्ताप को
सान्त्वना दे ।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

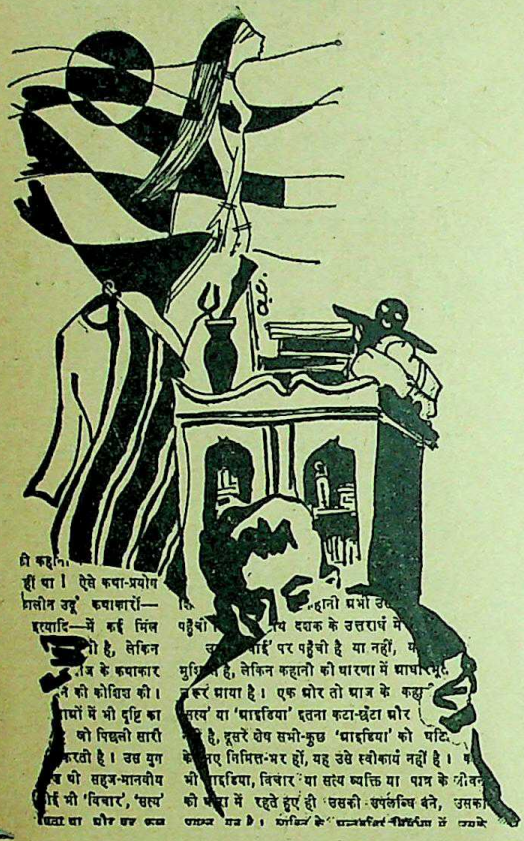

गृह-सज्जा : एक नया प्रयोग

इस आधुनिक युग में यह कोई ज़रूरी तो नहीं कि नये-नये प्रयोग केवल साहित्य, कला और विज्ञान तक ही सीमित रहें, दरअसल प्रयोग तो किसी भी क्षेत्र में किये जा सकते हैं, मसलन् गृह-सज्जा के इस नये प्रयोग का ही जायज़ा लीजिये।

●

...ब जूते के फीते गहनों के डिब्बों में, क्रीम की शीशी दाल के टीन में, किताब दवाइयों के रेक पर, साड़ियाँ खाने की मेज़ पर, पंखा अलमारी के पीछे, ज़रूरी काग़ज़ात अँगीठी में, सुई-तागा फूलों के वाज़ में, फूल तकिये के नीचे, घड़ी मसालदान में, मसालों के डिब्बे बैठक में, और बच्चों के कपड़े घर की हर चीज़ पर फैले नज़र आने लगे तो हमें समझ लेना चाहिये कि उन्हें फिर से सम्भाल कर रखने की घड़ी आ पहुँची।

शान्ति मेहरोत्रा

●

अब रही बात सामान को पुनः अपने खोये स्थान पर स्थापित करने की। बस, यहीं से दिक्क़तें शुरू होती हैं और हाथ-पैर फूलने लगते हैं। लेकिन घबड़ाने की कोई बात नहीं। जिस भगवान ने सामान दिया है, वही इसे लगाने की सूझ-बूझ भी देगा। और सच पूछिये तो भगवान् ने अपनी बात कहने के लिए मुझे ही माध्यम चुना है; अतः जो कुछ आपको नहीं आता, वह सब मैं समझा दूंगी। आप रत्ती भर चिन्ता न करें। बहिन, मैंने तो अपना जीवन ही आप सबके कल्याण-हेतु अर्पित कर दिया है; अतः बड़ी-से-बड़ी बाधाएँ भी मुझे कर्तव्य-मार्ग से डिगा नहीं सकतीं। कहा भी है कि :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह शक्ति हमें दो दयानिधे !
कर्तव्य-मार्ग पर डट जायें,
पर-सेवा ,पर-उपकारन में
निज जीवन सफल बना जायें।
हम दीन-दुखी निबला-विकला
के सेवक बन संताप हरें,
जो हों भूले-भटके, बिछड़े—
उनको तारें, खुद तर जायें।

सो हे बहनो, गृह-सज्जा के नवीन प्रयोगों को आप ध्यानपूर्वक सुनें और श्रद्धा-पूर्वक उनका पालन करें।

सबसे महत्वपूर्ण बात जो इस दिशा में हमेशा याद रखने योग्य है, वह यह है कि थोड़ा-थोड़ा करके यथास्थान रखने का प्रयास मूर्खता का द्योतक है। इससे समय नष्ट होता है एवं शक्ति का निरर्थक क्षय होता है। अतः मेरी राय मानें और जिस दिन परिवार के सभी सदस्य घर पर हों तथा छुट्टी के मूड में हों, उसी दिन आप इस पुण्य कार्य को प्रारम्भ करें।

लगे हाथ इस समारोह का विधि-विधान भी समझा दूँ। सबसे पहले आप घर का सारा सामान आँगन या बरामदे में निकालकर डाल दीजिये !—डाल दिया ? अब उसमें से बैठक का सामान छाँट-छाँटकर अलग कर लीजिए।—कर लिया ? जी ? सोफे पर तेल की बोतल उलट गयी ? ओहो, नया सोफ़ा बरबाद हो गया ! ज़रा चित्त को गृह-कार्य में लगाइये और यह फ़िल्मी धुन गुनगुनाना बन्द कीजिये। अब अफ़सोस करने से क्या होगा ! बड़ी लड़की से कहिए कि साबुन और गर्म पानी से धोकर इसे साफ़ करे। आप ज़रा मेज़ और तख्त खोज निकालिए। तख्त पर चीनी के बर्तन रक्खे हैं ? छोड़िये उसे भी। कोने वाली मेज़ और पंखा, जो उधर सामने पड़ा है, वही उठा लाइये.... लेकिन आप तो वाज़ साफ़ कर रही हैं। नहीं-नहीं, उठिये मत ! आपकी छोटी लड़की बाहर बैठी गुड़िया खेल रही है, उसे बुलाइये न ! इसी तरह ढील देने से बच्चे चौपट हो जाते हैं। कहिये, पंखा ठीक से रक्खे जाकर।—अ र र र र र र ! तोड़ डाला ? पंखा कभी तीलियाँ पकड़कर उठाया जाता है ? मारिये चार झापड़ ! ठीक हो जाय ! अब पंखा भीतर रखकर क्या होगा ! यहीं पड़ा रहने दीजिये, बनवा कर ही बैठक में रखियेगा।

अच्छा देखिए, ऐसा करिये कि बैठक बाद में लगाइयेगा। पहले रसोई ठीक कर लीजिये !—लेकिन वहाँ का सामान तो बहुत ढेर-सा है—तो पहले सोने का कमरा ही लगा लिया जाय। मँगवाइये पलंग। —हे प्रभु, इतनी गंदी निवाड़ ! इसे फ़ौरन खुलवाकर धुलने दे दीजिए—अभी धोबी आता ही होगा। जब तक लड़के निवाड़ खोल रहे हैं, तब तक आप ठाकुरद्वारे की सफ़ाई कर डालिये—वहाँ घुसने के लिए पहले नहाना होगा ? तब फिर रसोई ही धुलवा डालिये, किसी तरह काम शुरू तो हो ! मगर यह क्या, आपका नौकर बड़ा मूर्ख है ! सारी किताबें झाड़ के छींटों से भिगोकर रख दीं। जल्दी से इन्हें पोंछकर धूप में सुखाइये वरना सुबह-सुबह गृह-युद्ध शुरू हो जायगा। हैं कहाँ श्रीमान ? बाहर बैठे अखबार पढ़ रहे हैं ? यह अच्छा ही है। देख लेते तो कोहराम मचा डालते !—मसालदान आलमारी में इधर रखिए तो मसाले निकालने में सुविधा होगी वरना रोज़ जल्दी में जीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जगह सौंफ पड़ा करेगी !—लेकिन ज़रा देखिये तो, इसमें तो सारे ख़ानों में मिक्सचर भरा है ! न, यह नहीं चलेगा। नौकर से कहिये, यह कूड़ा साफ़ करके नये मसाले भर दे ! मसाले और हैं ही नहीं ? चलिये, छुट्टी हुई, तब मसालदान भी बाहर रहने दीजिये।—टी-सेट लगा रही हैं ?—अल्मारी में कागज़—अरे उधर भागिये, जल्दी ! आपके सुपुत्र ने गुस्से में केटली बहिन पर दे मारी। ग़नीमत है कि उचटती हुई सिर्फ़ पैर में लगी, खून निकल रहा है। टी-सेट तो बेकार हुआ, सो हुआ, पहले लाल दवा लगाकर पट्टी बाँध दीजिये। सेप्टिक हो गया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। दवा ? यहीं कहीं दबी पड़ी होगी, ढूंढ़ लीजिये ! नहीं मिल रही है ? तो अपने 'उन्हें' बुलाइये न ! घंटा भर हो आया, आराम से अख़बार लिये बैठे हैं जैसे घर-गृहस्थी से कोई नाता ही न हो। जी हाँ, उन्हें हफ्ते में एक दिन मिलता है। आपको तो जैसे तीसों दिन बस छुट्टी रहती है ! बेकार उनका पक्ष मत लीजिये, और बच्ची को जाकर उनके हवाले कीजिए।

...बाहर नहीं हैं ? कहाँ गये ? इधर-उधर खड़े किसी पड़ोसी से गप्पें लड़ा रहे होंगे ! वाह जी, घरवालों के प्रति इतनी उदासीनता ! बुरा मत मानियेगा बहिन जी, बहुत छूट दे रक्खी है आपने ! पतियों को इतना सिर चढ़ाना अच्छा नहीं ! जी-हाँ, बड़े बेचारे हैं ! देख नहीं रही हैं कि सज-सँवरकर अंग्रेज़ी पिक्चर देखने जा रहे हैं। खड़ी-खड़ी मुस्करा क्या रही हैं, लपककर साड़ी बदलिए और साथ हो लीजिये। छुट्टी के दिन मर्द का अकेले बाहर घूमना ठीक नहीं ! राम-राम ! आप तो अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारने पर उतर आई हैं ! अब घर का माया-मोह छोड़िये ! सामान बाहर पड़ा है तो पड़ा रहे, कोई उठाकर ले तो जायगा नहीं। न आज लगेगा, कल लग जायगा; परसों लग जायगा। नहीं भी लगेगा, तो क्या ग़ज़ब हो जायगा ? बच्चों से कहिये—दादी से पूछ-पूछकर .... क्या कहा ? तेज़ मिज़ाज की हैं ! तब भैया उन्हें ठाकुरद्वारे में बैठकर रामायण बाँचने दीजिये और प्रसन्न मन से नौकर तथा बच्चों पर गृह-सज्जा का दायित्व छोड़कर आप जाइये ! बच्चों के हाथों लगा समान दूना आकर्षक लगेगा—केयरलेस ब्यूटी की तरह, है न ?

अच्छा भई, अब चलें। नाहक हमने अपना इतना समय नष्ट किया। आपने कोशिश ही नहीं की वरना इतनी देर में एक क्या, दस घर सज गये होते !

कार ड्राइव करते समय यदि कोई औरत अपना हाथ खिड़की से बाहर करे तो यह बताना बड़ा कठिन है कि वह 'शीशा लगा है या नहीं ?' यह जानना चाहती है, या अपना नेल-पालिश सुखा होती रही है, या सचमुच अगली मोड़ पर कार घुमाना चाहती है।

—पुलिस कमिश्नर ऑफ न्यूयार्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युंजय मैती
रूपान्तर : सतीश कुमार

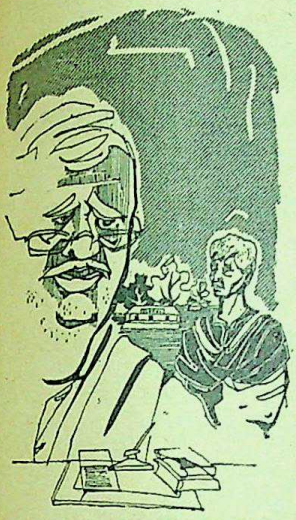

सुबोध बाबू को लगा कि यह स्कूल छोड़कर वे न जा सकेंगे। दूर गाँवों में हरे आसन के ऊपर सूर्यास्त का दृश्य, नारियल के पेड़ों की कतारें, बहता हुआ 'दुनिया का नाला', नाले के पार बन-झाऊ एवं शिरीष के पेड़— नहीं,यह सब छोड़कर वे नहीं जा सकेंगे। फिर भी उन्हें जाना ही होगा। मानव अनुभूतियों का सरस सजीव चित्र। बाह्य एवं आन्तरिक क्षुधा का विचित्र उद्‌घाटन।

क्रोध से गंभीर होकर ऑफिस में आ घुसे हाँसखाली स्कूल के हेडमास्टर सुबोध बाबू। मन-ही-मन बोले—नहीं, यह असह्य है ! आज ही इसकी कोई व्यवस्था करनी होगी !

वास्तव में, असहनीय तो है ही। कब और कहाँ ऐसा होता है कि स्कूल के सेक्रेटरी छात्रों के बीच बैठकर अध्यापक के पढ़ाने की परीक्षा लें ! और वह भी एक-आध दिन नहीं, हर तीसरे-चौथे दिन ; यह अपमान सुबोध बाबू क्यों सहन करें। एम०ए० की परीक्षा में हाई सेकेण्ड क्लास आया था, बी० टी० की परीक्षा में फर्स्ट क्लास। उनकी योग्यता की परीक्षा स्कूल में सेक्रेटरी क्लास में आकर करेंगे ! हुँ, रुपये के बल पर एक छोटा-सा स्कूल खोल लिया है, तो जैसे.....नहीं....यही ठीक होगा।....यहाँ अब नहीं। स्कूल की हेडमास्टरी का कोई अभाव नहीं है ! वे यहाँ से चले जायेंगे !.....

किन्तु यह स्कूल वास्तव में उन्हें अच्छा लग रहा था। विशेषकर स्कूल का प्राकृतिक वातावरण। सामने दूर तक फैला-खुला मैदान। दूर गाँवों में नारियल के पेड़ों की कतारें। एक बड़ा नाला स्कूल के समीप से बहता चला गया है जिसका नाम 'दुनिया का नाला' है। यह नाला कुछ दूर जाकर 'तेरपखिया' के पास हल्दी नदी से मिल जाता है। नाले के पार बन-झाऊ एवं शिरीष के पेड़।

क्षुधा : अन्तर की, बाहर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस निःशब्द जगत में कितनी शाम वे नाले के पार तक घूमने निकले हैं। इसके सिवा स्कूल की इमारत भी कितनी सुन्दर है। दूर से देखने पर एक चित्र की तरह लगता है यह स्कूल! गेट के ऊपर माधवी लता के फूल फूलकर मन-प्राण को सुवासित कर देते हैं। दक्षिण की ओर खुला। दूर-दूर तक कितने गाँव। और गाँव के पत्तों को छू-छूकर आती हुई हवा खिड़कियों से होकर क्लास में घुस आती है।

जब वे पहले-पहल यहाँ आये थे, उसी समय इस स्कूल, इस परिवेश ने उनके मन में एक नवीन आकर्षण पैदा कर दिया था! उन दिनों की एक घटना उन्हें याद हो आयी : वे क्लास में पढ़ा रहे थे; हठात् खिड़की की ओर देखते ही जैसे उन्हें लगा—गंभीर, प्रशान्त और स्तब्ध आकाश का एक नील-जगत उनकी ओर निहार रहा है। पढ़ाना तक भूल गये।

विद्यार्थियों ने स्मरण दिलाया—"उसके बाद, सर?"

सुबोध बाबू यथार्थ जगत में लौट आये। बोले, "आज 'ग्रामर' का क्लास रहने दो आओ, कविता पढ़ाऊँ!" लाइब्रेरी से 'संचयिता' ले आये! खोलकर एक कविता पढ़ने लगे....।

तभी लाठी टेकते-टेकते, रुग्न-श्याम चेहरा लिये वह श्रीहीन वृद्ध व्यक्ति बिना कुछ बोले क्लास के अन्दर चले आये, तत्पश्चात् छात्रों के बीच एक बेंच के किनारे बैठकर बोले, "हाँ, मास्टर, उसके बाद?"

"ओह, आप?" सुबोध बाबू कुर्सी से उठ खड़े हुए।

"अरे, क्यों उठ पड़े, उठने की जरूरत नहीं! जो हो, पढ़ाओ—सुनूं"। सेक्रेटरी के मुख पर गांभीर्य! गले का स्वर कर्कश!

सुबोध बाबू को ऐसा लगा, मानो समस्त परिवेश और वातावरण सिर्फ़ बेसुरे राग में बजता ही नहीं है, जाने उसके कौन-से सुर के तारों को ज़ोर से तोड़ भी डाला गया है। ग्रामर की पुस्तक लेकर सुबोध बाबू बैठे। सामने बैठे छात्र से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?...ओह, हाँ, पास्ट परफेक्ट टेन्स का एक उदाहरण तो दो?"

"वह पुस्तक बन्द कर दी तुमने?" दाँत किटकिटाकर बोल उठे सेक्रेटरी हाराधन बाबू। एक अस्फुट कटूक्ति की, फिर क्लास से बाहर चले गये।

उनकी लाठी की ध्वनि बजते-बजते आख़िर बरामदे की ख़ामोशी में लुप्त हो गयी।

सुबोध बाबू अवाक-स्तब्ध! भद्रता का चिह्न तक नहीं! यह कैसे हो सकता है? हेडमास्टर को 'आप' कहकर सम्बोधित किया जाता है, करना उचित है, वह भी ये नहीं जानते?

उन्हें बहुत बुरा लगा। मन अपमान और वितृष्णा से भर उठा। फिर भी कुछ नहीं बोले। नये-नये आये हैं, क्षुब्ध होकर आफ़िस में चले गये। उस दिन अन्य शिक्षकों ने लक्ष्य किया कि हेडमास्टर साहब का मन ठीक नहीं है, बहुत गंभीर हो गये हैं।

●

नये स्कूल के अपरिचय की सीमा भी नहीं टूटी थी तब। उस दिन नवम् वर्ग के एक छात्र के मुँह की ओर देखकर जिज्ञासा की सुबोध बाबू ने, "तुम्हारा नाम क्या है, जी? ....थर्ड बेन्च के बीच में जो बैठे हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र उठकर खड़ा हो गया, बोला; "अशेष कुमार दास, सर।"

"यह, सर, कविता लिखता है।" अन्यान्य छात्र बोल उठे।

"तुम कविता लिखते हो?"

अशेष सिर झुकाये खड़ा रहा।

"बोलो, लज्जा काहे की!" सुबोध बाबू बोले, "देखो, कविता न लिख पाना ही लज्जा का विषय है! कविता को प्यार नहीं करोगे, गाने में रुचि नहीं रखोगे, सौन्दर्य से प्यार नहीं करोगे, तो जीवन में किसे प्यार करोगे? केवल 'नोट' याद कर पास करने के लिए ही जीवन है क्या? मैं बहुत प्रसन्न हुआ, यह जानकर कि तुम कविता लिखते हो। कब से लिख रहे हो?"

"सातवें वर्ग से, सर।"

"अच्छा है, एक दिन हमें दिखाना, क्यों?"

"अच्छा, सर।"

"सुनो," हेडमास्टर सुबोध बाबू जैसे स्वयं से बातें करने लगे, "एक समय छात्र-जीवन में मैं भी कविता लिखता था। कुछ कविताएँ पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई थीं। फिर नाना दुख-कष्टों के बीच कविता लिखने का अभ्यास कहाँ छूट गया, पता नहीं। बहुत दिनों से सोचता हूँ — काश, एक सुन्दर उच्च कोटि की कविता लिख पाता!" सुबोध बाबू चुप हो गये।

"अब क्यों नहीं लिखते हैं, सर?" कई छात्रों ने एक साथ ही पूछा।

सुबोध बाबू ने उत्तर दिया, "लिखा नहीं जाता है, लिख ही नहीं सकता हूँ।"

"क्यों नहीं लिख सकते, सर?"

"यह बात क्या मेरे कहने से ही समझ में आ जायेगी? जब बड़े होओगे तब समझ पाओगे। कविताएँ लिखना, गीत गाना सबके भाग्य में नहीं होता, किन्तु हाँ, तुमलोग कविता लिखना। उससे मन प्रसन्न और भावनाएँ सुन्दर होती हैं।"

"क्या लिखोगे मास्टर?" पुनः सेक्रेटरी हाराधन अधिकारी क्लास में घुसे, लाठी टेकते-टेकते—वही श्रीहीन मुख, वही एक कदर्य वेश-भूषा।

सुबोध बाबू उठकर खड़े हो गये। बोले, "यही.... विद्यार्थियों को बता रहा था, मन लगाकर पढ़ो-लिखो, समय बचे तब कविता लिखो। उससे मन प्रसन्न होगा, सुन्दर होगा।"

"ओह, कविता लिखेंगे! सभी बेटे कवि होंगे? अरे, कविता लिखता था हमारे गाँव का शशि काका।.... यह जो नाले के किनारे घर है, हमलोग वट-वृक्ष के नीचे बैठकर सायंकाल में सुना करते। खेत में वृष्टि होने पर जब धान लगता, शशि काका कापी, नरकट की कलम और चावलों की बनी स्याही की दावात लेकर बैठ जाता। काकी तम्बाकू दे जाया करती.... एक वह भी काकी थी....!"

सुबोध बाबू आश्चर्यचकित हो उठे। क्या कहें वे? कहें कि क्लास में ऐसी आलोचना नहीं हो पायेगी। वे हेडमास्टर हैं।....पर नहीं, सुबोध बाबू कुछ नहीं बोले। सिर्फ़ छात्रों की ओर उन्मुख हो कह उठे, "हाँ, पुस्तक खोलो, तुम लोग। क्या पढ़ना है, हाँ, "आन हिज ब्लाइन्डनेस ह्वेन आई कन्सीडर.."

"यह फिर क्या शुरू कर दिया, मास्टर? मलेच्छों की भाषा, ऐसा क्यों?"

जो हो, सेक्रेटरी हाराधन बाबू उसी प्रकार लाठी टेकते-टेकते श्रीहीन मुख लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लास से बाहर हो गये।

सुबोध बाबू अवाक। खुली किताब उनके सामने पड़ी रही। उन्हें ऐसा लगा, जैसे उनकी आँखों की सारी रोशनी चली गयी है। यह कविता जैसे उन्हीं का अपना 'ब्लाइन्डनेस' है।

फिर कितने महीने इसी प्रकार बीत गये। अब छात्रों एवं शिक्षकों के साथ उनका परिचय घनिष्ट हो गया है। वे सुनते हैं, सेक्रेटरी हाराधन बाबू बहुत बड़े आदमी हैं। फिर भी सबों के साथ उनका व्यवहार बहुत खराब होता है। औरों ने भी उनका यही व्यवहार देखा-सहा है। किन्तु वे स्कूल छोड़कर नहीं जा पाये? कारण, नौकरी कहाँ? और महीने-महीने अच्छी तनख्वाह किस स्कूल में मिलती है!

एक दिन सुबोध बाबू खेत की ओर से घूमकर बोर्डिंग की ओर लौट रहे थे। संध्या बहुत आकर्षक लग रही थी उन्हें। उन्होंने देखा, बहत दूर गाँवों के हरे आसन के ऊपर सूर्य डूब रहा है। यह सुन्दर सूर्यास्त उन्हें बहुत अच्छा लगा। उन्हें ऐसा लगा कि स्कूल को छोड़ वे कहीं नहीं जा सकेंगे।

मैदान के बीच की पगडंडी होकर सुबोध बाबू बोर्डिंग लौटे। लोग-बाग बाज़ार से घर की ओर लौट रहे थे। सुन्दरवन के हाट से तेरपोखरिया होकर दो-एक व्यक्ति घर लौट रहे थे—भगवानपुर, नन्दीग्राम की ओर। सुबोध बाबू को अच्छा लग रहा था। अपरिचित लोगों के पद-चिन्ह पर वे भी चलने लगे। जैसे वे उन लोगों के साथ एक हो गये हैं।

"अरे तुम?" सुबोध बाबू ने देखा कि अशेष बोर्डिंग के बाहरी बरामदे में खड़ा है। "भीतर आओ।" उन्होंने अशेष को पुकारा। अशेष संकोच के साथ भीतर आया।

"बैठो!" सुबोध बाबू ने अपनी खाट की ओर इशारा किया।

अशेष बैठ गया। उसने चारों ओर देखा—कितनी पुस्तकें, टेबुल, बिछावन, सेल्फ़। एक तरफ़ एक छोटा-सा सितार! अशेष को ये सब वस्तुएँ अच्छी लगीं।

"कविता लेकर आये हो, क्यों? कहाँ है, देखें।"

अशेष ने अपनी छोटी कॉपी मास्टर साहब के हाथ में दे दी। सुबोध बाबू ध्यानमग्न होकर कविता पढ़ने लगे। एक स्थान पर रुके। कविता का शीर्षक था 'मैदानी रास्ता' (पगडंडी)।

सुबोध बाबू चकित हुए। कुछ क्षण पूर्व ही वे इसी पगडंडी से होकर आये हैं। वे सुदूर की तृष्णा-भरी संध्या की स्मृति इस कविता में ढूंढ़ने लगे। बोले, "तुम कविता अच्छी लिख लेते हो! फिर भी तुम्हें और भी सुन्दर लिखना होगा। सुन्दरता की कोई सीमा तो है नहीं, तुम्हारी पगडंडी की तरह वह भी दूर—बहुत दूर तक चली गयी है।"

"जी हाँ, चेष्टा करूँगा। आज चलता हूँ, सर।"

"तुम्हारा घर कितनी दूर है?"

"यहाँ से तीन मील।"

"इस गहरी रात में तीन मील जाओगे?"

सुबोध बाबू अवाक् हो गये!

"क्यों नहीं जाऊँगा सर? मुझे भय कभी नहीं लगता। यह पथ, पेड़, नाला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी तो मेरे परिचित हैं।"

"अच्छा, ज़रा ठहरो।" सुबोध बाबू ने उठकर सेल्फ़ से एक पुस्तक लाकर अशेष को दे दी। बोले, "यह तुम्हें देता हूँ, पढ़ना।"

अशेष ने देखा, पुस्तक रवीन्द्रनाथ लिखित 'दुखी' है। उसनें सिर झुकाकर सुबोध बाबू को प्रणाम किया। वे बोले, "तुम अपनी कविता की कॉपी रखते जाओ।"

"आप एक बार इसे देख लें सर!"

"मैं ? अच्छा देखूंगा।" सुबोध बाबू म्लान हँसी हँसे। अशेष चला गया।

कुछ दिन बाद। अन्तिम पीरियड सुबोध बाबू का था, बंगला का। वे अशेष की कविता की कॉपी भी क्लास में लेते आये। वापस कर देंगे। क्लास में अशेष की प्रशंसा करेंगे। उत्साहित होगा अशेष। वह लिखे और जीवन के दारिद्रय का चित्रण करे। किसी का जीवन सम्पूर्ण कविता नहीं है, किन्तु किसी के जीवन से कविता लुप्त हो जाय तो क्या बचेगा ? ऊख से रस निचोड़ लेने पर तुच्छ सिट्ठी बच रहती है।"

"वह कैसी कॉपी है सर?" छात्रों ने पूछा।

"यह तुमलोगों के बन्धु अशेष की कविता की कॉपी है। अच्छा, अभी तुमलोगों कों बँगला कविता पढ़ाना होगा, क्यों ? उसके पहले एक कविता सुनो—तुमलोगों के बन्धु ने लिखी है।" सुबोध बाबू पढ़ने लगे ;

यह जो पगडंडी चली गयी है
छोटे गाँव के पास से।
उसी पथ से सुबह-शाम
जो जाता हैं, वही आता है।

"क्या पढ़ाई हो रही है मास्टर?"

लाठी टेकते-टेकते सेक्रेटरी हाराधन बाबू एक विचित्र भावभंगी लिये क्लास में आ घुसे। सुबोध बाबू का मन उसी क्षण चूर-चूर हो गया। आज़ वे अपने को संभाल नहीं सके। चीख उठे, "आपको मेरे क्लास में आने की अनुमति किसने दी ? मैं हेड मास्टर हूँ। मेरा आदेश है कि आप इस तरह क्लास में मत आयें।" सुबोध बाबू का गला इस्पात की तरह कड़ा हो गया।

सेक्रेटरी चकित हो गये। हाथ से लाठी गिर पड़ी। धीरे-धीरे झुककर उठा लिया। हाथ काँपने लगे, अस्वाभाविक ढँग से। हाराधन बाबू धीरे-धीरे बोल उठे, "बिगड़ते क्यों हो; लो मैं चला जाता हूँ; अभी चला जाता हूँ भाई।" हाराधन बाबू कायर की तरह क्लास से बाहर चले गये।

सुबोध बाबू का मन एकबारगी वितृष्णा से भर उठा; उन्हें लगा जैसे सारे परिवेश की नृशंस भाव से किसी ने हत्या कर दी हो। क्लास से निकलकर घर की ओर चल पड़े। पहुँचते ही घंटी बजाकर माली को बुलाया।

माली आया तो बोले, "बोर्डिंग जाकर बिस्तर-विस्तर कापी-वापी, सब बाँधकर ले आओ।"

●

सेक्रेटरी हाराधन बाबू दूर बरामदे के एक कोने में खड़े हैं। पूरे जीवन का इतिहास उनकी आँखों के आगे नाच उठा है। पढ़ाई-लिखाई करने का उन्हें समय ही कहाँ मिला ? पहले रास्ता तैयार करने वाले कुली का काम करते थे। उसके बाद सुन्दरवन चले गये, भाग्य का अन्वेषण करने के लिए। वहाँ बाघ को भगाकर, जंगली जानवरों से जूझ करके जंगल साफ़ किया, आबाद किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीघे पर बीघे—सैकड़ों बीघे ज़मीन आबाद करने के स्वप्न में न जाने यौवन कब, कहाँ चला गया !

विवाह किया था उन्होंने। पुत्र भी उत्पन्न हुआ था। लड़के को लिखा-पढ़ा कर बड़े होने पर वकील बनायेंगे ऐसी आशा भी की थी। मुक़दमा करने में वकील की आवश्यकता पड़ती है।... किन्तु लड़का मर गया। स्त्री भी कुछ दिनों बाद चल बसी। अपने लड़के को पढ़ाने का सुयोग उन्हें मिला कहाँ ? इस कारण हाराधन बाबू ने गाँव के सभी लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया है। ऐसा स्कूल इस इलाके में दूसरा नहीं है।

आज इस आयु में, जब मरने में अधिक दिन बाक़ी नहीं हैं, यह कैसी इच्छा हो रही है ! पृथ्वी पर कितनी वस्तुएँ हैं, यह भी उन्होंने नहीं जाना। कितनी कहानियाँ लिखी गयीं, उन्होंने नहीं सुनीं। मास्टर बहुत अच्छा पढ़ाता है; कितने सुन्दर तरीक़े से छात्रों को समझा देता है ! किन्तु उसने भी आज दुत्कार दिया। हाराधन बाबू हेडमास्टर साहब के घर पहुँचे। कुर्सी के एक किनारे बैठ गये। सुबोध बाबू एक सादे काग़ज़ पर कुछ लिखते जा रहे हैं।

"मास्टर !" हाराधन बाबू ने पुकारा।

सुबोध बाबू कुछ नहीं बोले।

"तुम बहुत क्रोधित हो गये हो मास्टर! क्यों ?" उन्होंने खड़े होकर हाथ से सुबोध बाबू की ठोढ़ी ऊपर उठायी।

"मुझे तंग क्यों करते हैं ?" सुबोध बाबू के गले में तीक्ष्णता थी।

"तंग करता हूँ ? देखो मास्टर, तुम तो मेरे लड़के की भाँति हो। बूढ़ों पर लड़के इस तरह बिगड़ते हैं ?"

"किन्तु.....क्या समझकर आप मेरी पढ़ाई की परीक्षा लेंगे ? क्लास में डिस्टर्ब करेंगे ? क्या सब दिन मुझे यह सब सहना ही होगा ? बहुत सहा है, किन्तु अब नहीं। मैं चला जाता हूँ। आप दूसरा हेडमास्टर रख लें। किसी दिन आकर चार्ज दे दूंगा।"

"यह क्या...क्या कहते हो मास्टर ? मैं तुम्हारे पढ़ाने की परीक्षा लेता हूँ ?" सेक्रेटरी अवाक् होकर बोले, "मैं पढ़ा-लिखा हूँ जो तुम्हारे पढ़ाने की परीक्षा लूंगा ? बचपन खेल में खटते, फ़सलें उगाते बीत गया। आज बूढ़ा हो गया हूँ, कोई अपना नहीं है। मरने में और कितने दिन बाक़ी हैं। यह सोचकर जाता हूँ कि मास्टर के पास बैठूंगा, उसका पढ़ाना सूनूंगा। तुम बहुत अच्छा पढ़ाते हो, और किस सुन्दर ढंग से पद्य पढ़ाते हो ! दूसरे मास्टर इस तरह नहीं पढ़ा सकते। मुझे अच्छा लगता है। मास्टर, मैं तुम्हारी पढ़ाई सुनने जाता हूँ।"

सुबोध बाबू विस्मयाभिभूत हो गये। उन्होंने हाराधन बाबू की ओर देखा, वे अपनी चादर के छोर से बार-बार आँखें पोंछ रहे थे।

सुबोध बाबू ने जैसे कुछ सोचा, फिर त्याग-पत्र के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयोजक : नरेन्द्र धीर

एशियाई लोकनाट्यों की सामाजिक-ऐतिहासिक सीमाओं और सम्भावनाओं पर एक संगोष्ठी।

●

संगोष्ठी के विचारक

१—एस० अयोय : जापानी नाटककार, निर्देशक, लोकनाटकों के शोधकर्त्ता !

२—जयकुसुम : इण्डोनेशियाई फ़िल्म एवम् नाट्य-निर्देशक, लोकनाट्यों के शोधकर्त्ता !

३—कुमारी कार्पियो : फिलीपाइन्स के लोक-नाट्यों पर शोधकर्त्ता

४—श्रीमती महादेव : थाईलैण्ड के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की प्राचार्या एवम् शोधकर्त्ता

५—नरेन्द्र धीर : संयोजक—भारतीय लोकनाट्य, शोधकर्त्ता

●

नरेन्द्रधीर : लोकनाट्य में लोकजीवन का दर्शन मिलता है एवम् उसकी परम्परा हमारे संस्कारों का जीवित एवम् जाग्रत स्वरूप है, इसी में हमारी संस्कृति का इतिहास भी सन्निहित है—आपके इस विषय में क्या विचार हैं ?

एस० अयोय : बिलकुल ठीक हमारे देश जापान में दो प्रकार के मास्क-प्लेज़ (छद्ममुखी लोकनाट्य) प्रचलित हैं जिन्हें 'गिगाकू' एवम् 'बुगाकू' कहा जाता है। 'गिगाकू' में अभिनय एवम संगीत की प्रधानता दी जाती है तथा बुगाकू में नृत्य एवम् संगीत की प्रधानता है। 'गाकू' का अर्थ संगीत है। 'गि' शब्द अभिनय का द्योतक है एवम् 'बु' नृत्य का। इन लोकनाट्यों में

ब्राह्मण से बारामोन तक लोक-नाटकीय एकसूत्रता की खोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन मुखौटों का उपयोग होता है, ऐसा लगता है हमारी अपनी भूमि के नहीं वरन् वे किसी समय भारत से ही जापान गये हैं। इन मुखौटों के कई नाम तो ऐसे हैं जो संस्कृत के पर्याप्त समीप हैं। आपने (नरेन्द्रधीर) उस दिन बताया था कि 'बोसात्सू' मुखौटा जो शांति का प्रतीक है--बोधि-सत्व का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है।

नरेन्द्र धीर : जापानी विद्वान् प्रोफेसर जे० तुकाक्षु का भी तो यही मत है। उनके मत के अनुसार तो 'बोसात्सु' का कथानक 'नागानन्दम्' से उद्धृत प्रतीत होता है। कनिष्क के कथानक के अनुसार बुद्ध भगवान् ने नागराज की रक्षा के हेतु

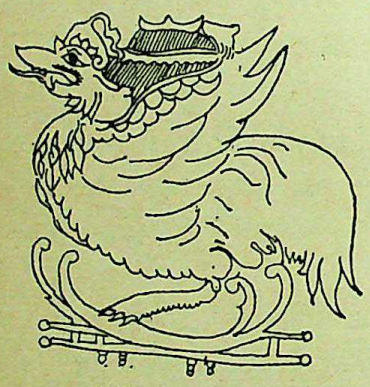

इण्डोनेशिया का गरुड़

अपना जीवन उत्सर्ग किया और नागजाति को बचाया। क्या यही इस नृत्य-नाटिका का कथानक नहीं है ?

एस० अयोय : हाँ, एकदम यही। 'गिगाकू' में 'कसड़' नामक मुखौटा 'गरुड़' का ही मुख तो है।

जयकुसुम : इण्डोनेशिया में भी तो 'गरुड़' की परम्परा है। हमारे यहाँ यह एक पक्षी के रूप में नाटकोंमें प्रयुक्त होता है। इस पक्षी को स्वर्ग का पक्षी माना जाता है। हर भले कार्य में,हर शुभ कार्य में इसकी मान्यता है। परम्परागत नाटकों में,आरम्भ में, इसकी बनी कागज़ी आकृति को संजोया जाता है। इसी प्रकार इण्डोनेशिया में 'बापांग' नामक एक मुखौटे का प्रचलन है जो प्रायः अति पवित्र रहता है। यह पात्र विशेष रूप से छूआछूत बहुत मानता है। कभी किसी का स्पर्श इसे स्वीकार नहीं।

एस० अयोय : जापान में भी एक ऐसा ही लम्बी नाक वाला पात्र है, जिसे 'बारामोन' कहा जाता है। 'बारामोन' संस्कृत के ब्राह्मण शब्द से कितनी समानता रखता है। यह पात्र जापान में बहुत धार्मिक मनोवृत्ति का समझा जाता है। पवित्रता के लिए यह पात्र विशेष रूप से मान्य है। 'गिगाकू' का यह पात्र विशेष रूप से प्रसिद्ध है। आपके 'बापांग' से इस पात्र की आकृति देखिये कितनी मिलती है ! निश्चय ही यह 'बापांग', 'बारामोन' तथा'ब्राह्मण'एक ही पात्र हैं जो भारत से इधर-उधर फैले प्रतीत होते हैं। जापान में इस नाम की कोई जाति हमें नहीं मिलती।

नरेन्द्रधीर : पर इस पात्र की नाक विशेष रूप से लम्बी बनाई गई है। जापान एवम् इण्डोनेशिया में बौद्धधर्म का विशेष प्रभाव होने के कारण, यूं लगता है कि बौद्धमतावलम्बियों ने सनातन धर्मियों का मज़ाक उड़ाने के लिए इस पात्र की नाक इतनी लम्बी कर दी है। साथ ही यूं भी लगता है कि यह लम्बी नाक वाला पात्र अपनी मानमर्यादा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष चिन्ता करता होगा।

कुमारी कार्पियो : फिलीपाइन्स में भी एक ऐसा पात्र होता है। पर वहाँ इसके लिए किसी मुखौटे की आवश्यकता नहीं होती। परम्परागत लोकनाट्यों में एक पात्र की नाक में मोम लगाकर उसे विशेष रूप से लम्बोतरा कर दिया जाता है और वह साधारण लोगों के आचार-व्यवहार का मज़ाक उड़ाता रहता है। स्वयं कट्टरवादी एवं पवित्र रहता है। यह पात्र एक कपड़ा अपने चारों ओर लपेटता है। कभी-कभी यह पात्र कफ़नी का भी उपयोग करता है पर कभी भी अन्य वस्त्र धारण नहीं करता।

श्रीमती महादेव : थाईलैण्ड में भी इसी प्रकार का पात्र मिलता है, बल्कि हमारे देश में तो महाभारत एवम् रामायण की विभिन्न कथाएँ भी लोकनाटकों में प्रस्तुत की गयी हैं। शिव को नटराज के रूप में ही हम संसार का प्रथम नृत्यकार एवम् अभिनेता मानते हैं। मैंने स्वयं 'शकुन्तला' अपने कालेज के छात्रों द्वारा अभिनीत करवायी थी जिसमें मेरी लड़की ने शकुन्तला का अभिनय किया था। थाईलैण्ड में शकुन्तला की कथा लोककथा के रूप में प्रचलित है। कालिदास के शाकुन्तल की बात तो थाईलैण्ड में बहुत बाद को —अभी-अभी कुछ शताब्दी पहले ही मालूम हो पाई है। इसी प्रकार थाईलैण्ड में 'हनुमान' का भी वही रूप है जो भारत में है।

नरेन्द्र धीर : हनुमान का रूप तो स्याम में भी वही है। देखिये, क्या ऐसा ही रूप आपके यहाँ नहीं है ?

श्रीमती महादेव : हाँ-हाँ, एकदम ऐसा ही ; केवल हमारे यहाँ अन्तर यही है कि इतने आभूषण हनुमान धारण नहीं करते।

नरेन्द्र धीर : आभूषणों की बात तो बाद की अभिवृद्धि हो सकती है। गदा का रूप स्याम में शिव के छोटे त्रिशूल की भाँति है। इसी भाँति हनुमान का जाँघिया भी कुछ लम्बा है जब कि भारत में

जापान का बारामोन

जांघिया छोटा होता है। पर यह तो निश्चय ही है कि इन पात्रों की सार्वभौमिकता एवम् इनका विभिन्न देशों में प्रचलन यह स्पष्ट सिद्ध करता है कि कहीं-न-कहीं विभिन्नताओं में भी एकरूपता अवश्य निहित है। अन्यथा कोई कारण नहीं कि भारतीय संस्कृति का गरुड़, ब्राह्मण, हनुमान आदि विभिन्न देशों में ज्यों-के-त्यों प्राप्त होते। भिन्न-भिन्न मुखौटों का रूप आगे चलकर कलाकारों द्वारा मोल्ड में ढलने लगे। प्लास्टर-आफ़-पेरिस अथवा काग़ज़ की कुट्टी के बने मुखौटे एवम् उन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर रंगों द्वारा उनका चित्रांकन सभी बाद की वस्तुएँ हैं। और आज तो ज्यों-ज्यों विज्ञान प्रगति कर रहा है, ये मुखौटे प्लास्टिक के भी बनने लग गये।

एस० अयोय : वह तो है ही, वरन् यूं लगता है कि मनुष्य की सूझ जैसे-जसे बढ़ती गयी, मनुष्य को ज्यों-ज्यों शिक्षा मिली, वह सुसंस्कृत हुआ, उसकी कलाप्रिय मनोवृत्ति बढ़ी और उसके आधारभूत सौन्दर्य-बोध के प्रति सजग स्वभाव ने धीरे-धीरे लोककला में भी अपनी अभिवृद्धि की। लोककला, भले वह लोक-नाट्य हो, लोकगीत, लोकसंगीत अथवा लोक की अन्य विद्याएँ, सभी में समय के अनुसार परिवर्तन एवं परिवर्धन अवश्यम्भावी है। जो लोग ये दावा करते हैं कि लोक मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं होता, वे पूरी तौर से ग़लत हैं।

नरेन्द्र धीर : यह ठीक है कि लोक की वृत्ति में परिवर्तन होता रहता है एवम् वह अवश्यम्भावी है, पर उसकी मूल भावनाओं में एवम् मूल प्रवृत्ति में तो परिवर्तन सम्भव नहीं है। लोक-भावनाओं की मूल प्रवृत्तियाँ प्रत्येक काल में प्रत्येक देश में एवम् प्रत्येक अवस्था में, तो एक ही होंगी। वरन् यहाँ तक कहा जा सकता है कि जिस प्रकार भारत की उत्तर प्रदेशीय नौटंकी जो आप लोगों ने अभी पिछले दिनों देखी है, तथा बंगाल की जात्रा में, उसे भी आप देख ही चुके हैं, गुजरात का भवाई, महाराष्ट्र का तमाशा, मध्यप्रदेश मालवा का नाच, दक्षिण का यक्षगान, सभी में भले आपको रूप की विविधता मिली होगी पर प्रत्येक की मूल भावना में एवम् उसकी शैली की मूल प्रवृत्तियों में आपको बहुत कम अन्तर दृष्टिगोचर हुआ होगा।

कुमारी कार्पियो : मुझे तो कई स्थानों पर संगीत में भी बहुत समानता का आभास हुआ। यद्यपि मैं उनके बोल नहीं समझ पाई, कोई भी वार्तालाप हमारे पल्ले नहीं पड़ सकता था, पर संगीत को तो कान अच्छी तरह ग्रहण कर ही लेते हैं। मुझे तो संगीत में बहुत ध्वनि-साम्य का आभास मिला।

नरेन्द्र धीर : वह तो है ही। देखिए, उत्तर प्रदेश के मांड में एवम् राजस्थान के मांड में थोड़ा-सा अन्तर तो अवश्य है परन्तु उसके मूल स्वरों में अन्तर कैसे हो सकता है! जोगिया राग यदि शास्त्रों में आया है तो उसके मूल स्वर तो मालव के जोगीड़ा में एवम् पंजाब के नाथपंथी लोकगीतों से ही परिष्कृत होकर पहुँचे होंगे। नौटंकी में जो दादरा प्रयुक्त है वह कहीं तो केवल दादरा है और कहीं पार का दादरा, कहीं पूर्वी दादरा कहीं पछाईं दादरा। पर मूल स्वर वही है। इसी प्रकार काफिया, पूरिया, पहाड़ी के स्वरों में भी पर्याप्त समानता है। यही हाल भारतीय लोक वाद्यों का है। मृदंग, तबला, ढोलक, नक्कारा सभी का मूल एक ही है। पर इनके ताल एवम् उनके उपयोग में अन्तर आ गया है। कानपुर के नक्कारची छिद्दन उस्ताद में—वही जो ८८ साल के वृद्ध थे, नक्कारा बजा रहे थे—देखिये इस उमर में भी क्या दम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेम है। सारी रात वे नक्कारे की ताल पर पद्मावती को बाँधे रहे। क्या मजाल कि पद्मावती बनी लाड़ली कहीं भी ताल-स्वर से भ्रमित हो जाय!

एस० अयोथ : नौटंकी से मिलता-जुलता स्वरूप जापान में भी है। हमारे यहाँ की मण्डलियाँ अब पर्याप्त सुसंस्कृत हो चुकी हैं। उनके मंच भी अब सँवर गये हैं। उनकी वेश-भूषा में भी आधुनिकता आ गयी है। पर प्रो० जे० तकाक्षु ने जिन प्राचीन परम्पराओं का उल्लेख किया है अपनी पुस्तक में, उससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जापानी नाटकों के अर्वाचीन स्वरूप से इनका पुरातन स्वरूप कहीं अधिक

स्याम का हनुमान

रोचक एवम् हृदयग्राही था। अब इनमें आधुनिक युग का तामझाम तो हो सकता है पर इनमें पानी की भाँति सरलता एवम् तरलता कहाँ कि दर्शक के हृदय को द्रवित कर दे। अभी उस दिन शाहपुर, मुजफ्फरनगर में जो नक़ल देखी थी—अरब की शाहज़ादी....लैलावाली, —उसमें लैला और मजनूं का अभिनय करने वाले वे लड़के कितना अच्छा अभिनय कर रहे थे! जो नाटक दर्शकों के मन पर दृश्य का पूरा चित्र प्रस्तुत कर सके एवम् जो उसकी भावनाओं को अपने प्रस्तुतीकरण अथवा अभिनय द्वारा स्वयं में एकात्म कर आत्मसात् कर सके, वही सफल नाटक है एवं वही सफल अभिनय है।

नरेन्द्र धीर : इस परिचर्या से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि भारत के विभिन्न प्रान्तों ही में नहीं, वरन् विभिन्न देशों में भी सांस्कृतिक एकीकरण है। यह संस्कृतियों का सामंजस्य निश्चय ही समय की अपनी देन है। ज्यों-ज्यों समय बीता, विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन हुआ, त्यों-त्यों विभिन्न देशों में एक-रूपता आती गयी और समय की परतों के नीचे दबे ये सांस्कृतिक सम्मिलन आज दूर होने के उपरान्त भी हमें एक-दूसरे से पर्याप्त समीप किये हुए हैं। विभिन्नताओं में एकरूपता का होना यह स्पष्ट सिद्ध करता है कि हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ एवम् उनकी मूल प्रवृत्तियाँ समान हैं। भारत एक बहुत पुरातन एवम् समृद्धशाली देश रहा है। इसकी कलात्मक प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि बहुत समृद्ध है। विभिन्न देशों ने भारत से कला के एवम् साहित्य के क्षेत्र में बहुत कुछ प्राप्त किया है। जापान, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, स्याम, फिलिपाइन्स, लंका तथा चीन आदि विभिन्न देशों में भारतीय कलाकार

(शेषांश पृष्ठ १०९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम और तुम

इन्दुकान्त शुक्ल

●

शाम घिर रही है, दिन ले रहा विदाई है।
रात ने हर हाल आने की क़सम खाई है।
ये तारीकी[1] कहीं बढ़के मुझे लूट न ले—
पास मेरे तेरा तसव्वुर[2] है औ तनहाई[3] है।

जाने क्यों शाम हुए दिल उदास होता है!
एक बेनाम ख़ौफ़[4] से हिरास[5] होता है!
ये अँधेरा, ये धुआँ शाम का, जो सच पूछो—
मौत का रोज़ बदलता लिबास[6] होता है।

मेरे ख़यालों की पहनाई[7] में तू ही छाई,
मेरी साँसों की शहनाई में तू ही छाई,
मेरी महबूब[8], मेरी हसरतों[9] में, हिम्मत में,
मेरे हासिल-हुनर[10] में, होश में तू ही छाई।

तू कहीं भी हो मेरे दिल में तू समाई है।
मेरी तकदीरो-तमन्ना[11] की तू कमाई है।
जब कभी मैंने चाहा है भुलाना तुझको—
बस उसी रोज़ तेरी याद और आई है।

ग़मज़दा ऐसी शामों में गुनगुना लूंगा।
तेरी जानिब[12] जो गया ज़ेहन[13] तो बहका लूंगा।
खोलकर जल्द किसी एक गीत की खिड़की,
तेरी दुनिया की, तेरी, एक झलक पा लूंगा।

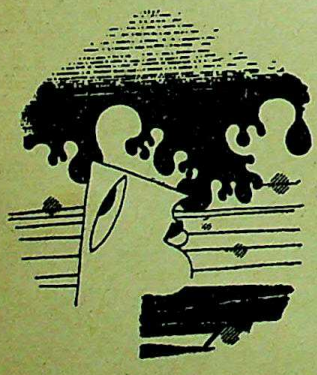

---

१ अंधकार २ ध्यान ३ एकांत ४ भय ५ आंतक ६ पहनावा ७ विस्तार ८ प्रिया ९ विफल कामना १० कला की उपलब्धि ११ भाग्य एवं कामना १२ ओर १३ दिमाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य-वाटिका से, स्वयं ज्ञानोदय के पाठक-पाठिकाओं द्वारा चुने हुए वाक्य-सुमन !

अंकित होने दो : अजितकुमार

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; पृष्ठ संख्या: २६१, मूल्य ४.००

० आह वे दिन क्या सचमुच बीत गये ! अब क्या वे रातें कभी नहीं लौटेंगी, अब क्या कविता सुनकर दिल कभी ज़ोर से न धड़केगा , कविताएँ पढ़कर तकिए के गिलाफ़ आँसुओं से अब क्या कभी तर न होंगे ? कौन-कौन उत्तर देगा इन प्रश्नों का ? ओ मेरे पहले के स्पर्श-संवेद्य हृदय, बोलो, कुछ तो कहो।

(मर्मस्पर्शी कविताएँ)

० दिमाग़ पर ज़ोर देता हूँ तो याद आता है कि बादाम में खुशबू नहीं होती, लेकिन रंग अलबेले होते हैं। खुशबू नहीं लेकिन रंग अनोखे। ऊपर से हलका पीला, भीतर से भूरा और उसके भी भीतर दूधिया। बादाम न हुआ, सात परदों के भीतर रहने वाली काहिरा की रंगीन राजकुमारी हो गयी।

(रफ्तार)

० यह इन्तज़ार भी कितना मुश्किल है....यह बस का इन्तज़ार, यह नयी नस्ल का इन्तज़ार, यह टूटी हुई बेंचों के बदल जाने का इन्तज़ार ! मेरा धैर्य टूटता जा रहा है।

(इन्तज़ार)

० आकृतियाँ जैसी भी, जो भी दिखायी दीं।
—दर्पण में मेरे ही मुख की विकृतियाँ थीं।

(स्मृतियाँ)

मेरे रेखांकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार का
सर्वप्रिय

SAHU JAIN INDUSTRIES

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

यदि आप अपने ४ किलोग्राम टिनों में मात्र से एक कूपन पा जाँय तो उसके बदले में एक अपूर्व उपहार ले लें

उपहार कूपन का नमूना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

० बाँहों में अपनी,—
बस एक मैं, नहीं आया।
क्योंकि—
प्यार अपने को, मैं, न कभी कर पाया।

(पूरापन)

० उपकार हमेशा ठीक है, चाहे वह ग़लत चीज़ के लिए हो चाहे ठीक चीज़ के लिए बल्कि अगर ग़लत चीज़ के लिए है तो और ठीक है क्योंकि तब उपकृत व्यक्ति तुमसे और भी अधिक प्रभावित होता है। बदले में तुम्हारे प्रत्येक नैतिक-अनैतिक काम के लिए कमर कसे तैयार रहता है।

(नेतागिरी : एक और सिद्धांत)

० लोग मूर्त्ति के निकट नहीं पहुँच पाते, भीड़ जो है : इसलिए दूर से ही पैसे फेंकते हैं। ज़ोर से फेंकते हैं और कुछ इस अन्दाज़ से कि जहाँ तक सम्भव हो, पैसे बीच में रखे थाल पर गिरें और ज़ोर की आवाज़ पैदा करें.... हर आदमी के पैसे का यही उद्देश्य हो गया है।

(पैसे का लक्ष्य)

० मनुष्य की दृष्टि का कैमरा यथार्थ को ज्यादा अच्छे ढंग से समेटता है : इसलिए विविध मानवीय कलाएँ कैमरे की यन्त्रगत कला से कहीं अधिक यथार्थ-वादी हो सकती हैं, गोकि समझा यह जाता है कि कैमरा नामक यन्त्र यथार्थ के अंकन का सबसे अधिक प्रामाणिक माध्यम अथवा साधन है।

(यथार्थ का अंकन)

(संकलन : भोलानाथ 'बिम्ब')

डा० ज़िवागो : बोरिस पास्तरनाक

प्रकाशक : कालिन्स टार्विन प्रेस, लण्डन

० कला को देश-काल की परिधि में बाँटा नहीं जा सकता। प्राचीन कला मिस्र की, यूनान की, हमारी या जो भी अन्य कलाएँ हैं, मैं समझता हूँ उन सबमें एक ही तत्त्व मौजूद है। तत्त्व जो सहस्रों वर्षों की अवधि में निरन्तर जीवित रहा है। आप इसे एक विचार कहें, जीवन सम्बन्धी सिद्धान्त कहें, इसकी घनता के कारण कला को पृथक् भाषाओं के आधार पर भिन्न नहीं किया जा सकता।

० जब तुम स्कूल की पोशाक पहने उस कमरे की छाया से प्रकट हुई तो अपरिचित होते हुए भी मैं समझ गया था कि इस दुबली-सी दिखने वाली लड़की में विद्युत की धाराएँ चलती हैं। संसार का सारा स्त्रीत्व इसमें जमा हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

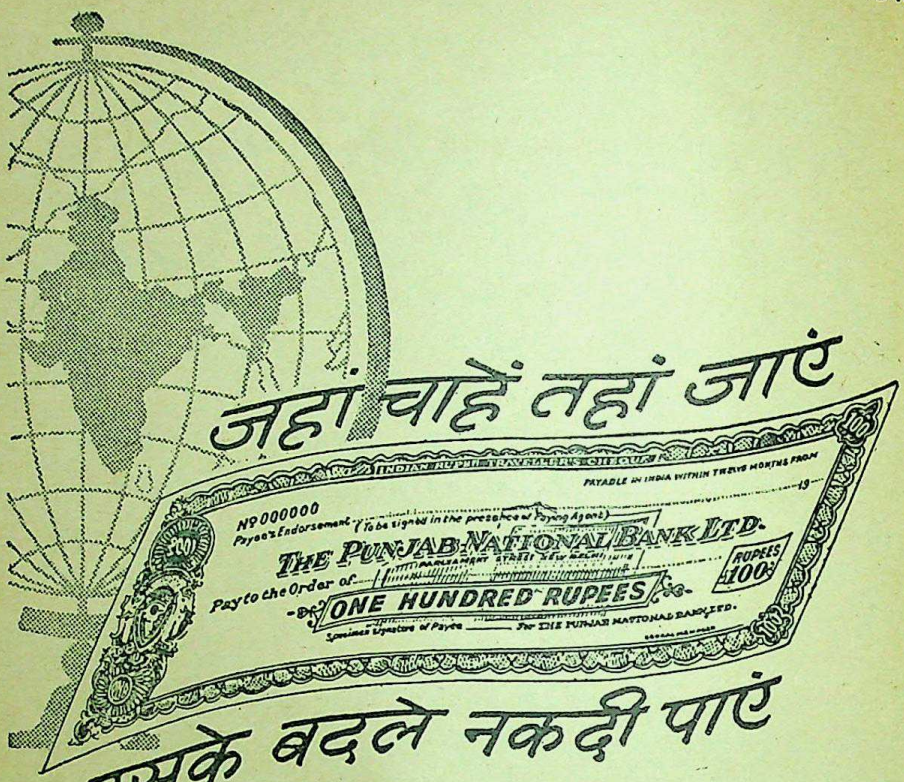

पी.एन.बी. ट्रेवलर्स चैक

- यात्रा में नकदी लेजाने का संकटहीन उपाय
- देश भर में हमारे ४२५ से भी अधिक कार्यालाओं व अनेक एजन्सियों से इनके बदले नकदी प्राप्त करें
- बैंक के सभी प्रतिष्ठित कार्यालाओं से प्राप्य
- १००), ५०) व २५) की सुविध राशियों में उपलब्ध

दि पंजाब नशनल बंक लिमिटेड

प्रधान कार्यालयः पार्लियामैंट स्ट्रीट, नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब यदि मैंने तुम्हें अपनी उंगली के सिरे से भी छू लिया होता तो चिनगारी निकल कर कमरे को प्रकाशित करती हुई या तो मुझे समाप्त कर देती या मेरे आगामी जीवन में एक अत्यन्त गहरी चुम्बकीय पीड़ा और कातरता भर देती। उस समय मेरी आँखों में आँसू भरे थे। मैं अन्दर-ही-अन्दर रोता रहा, पीड़ा से जलता रहा। मैं अपने लिए (पुरुष के लिए) दुःखी था और उससे भी अधिक तुम्हारे (स्त्री के) लिए। मैं आश्चर्य-चकित हुआ अपने से पूछता था—यदि प्रेम की उष्णता से छुए जाने में इतना कष्ट है तो स्त्री की पीड़ा कितनी होगी, जो स्वयं वह उष्णता है, उसका स्रोत है।

० वनस्पतियाँ मृत्यु के साम्राज्य की निकटतम पड़ोसी मानी जा सकती हैं। संभवतः परिवर्तन की रहस्यमयता व जीवन की उलझनें जो हमें इतना कष्ट देती हैं, पृथ्वी की हरीतिमा में घनीभूत हो गयी हैं। श्मशानों के वृक्षों में, उनसे फूटती फूलों वाली टहनियों में घुल गई हैं। मेरी मेरडेलेन जिसने क़ब्र से उठते समय ईसा को नहीं पहचाना, उन्हें उसने पहले पहल माली ही समझा था।

(संकलन : आनन्द प्रकाश)

झूठा सच : यशपाल

प्रकाशक : विप्लव कार्यालय, लखनऊ; मूल्य: २४.००

० स्वाभाविक पर भी नियन्त्रण ज़रूरी होता है। संयम ही संस्कृति है। व्यवहार रूढ़ि बनकर संस्कृति कहलाता है। मोटर की तेज़ चाल उसका गुण है, परन्तु जिस मोटर में ब्रेक न हो, वह ज़रूर प्राणों का संकट बनेगी।

० प्रेम भी तो चाह और भूख ही है या चाह और भूख के उपाय की चिंता है। .....

० .... हिन्दुत्व कोई मज़हब और कर्मविश्वास नहीं है। वह एक समाज और संस्कृति है। उसमें विश्वासों के बंधन नहीं, व्यवहार के बंधन हैं।

० तारा के रोम खड़े हो गए थे। उसे जान पड़ रहा था कि वह जला हुआ मकान देश भर में, संसार भर में नारी पर अत्याचार का प्रतीक है।.... उसने ही नहीं, असंख्य नारियों ने पुरुष की पाशविकता को सहा है। पुरुष को मनुष्य बना सकने के लिए स्त्री को कितना सहना पड़ेगा ?

(संकलन : आनन्दनारायण शर्मा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंदा से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुँदर रंगरूप के लिए
लक्स ज़रूरी है!'

चित्रतारिकाओं का
शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

नंदा, पंचदीप चित्र की फिल्म
'आज और कल' की तारिका

'जैसे सुन्दर रंग... वैसा सुन्दर साबुन!' नंदा कहती हैं

LUX. L21-X29 HU

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाही की बीवी : मामा वरेरकर

अनुवादक : रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे; प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन दिल्ली; पृष्ठ संख्या १८०; मूल्य : २. ५०

० समान वृत्ति के, समान उत्साह के और एक ही तोल के दो व्यक्ति यदि विवाह-बंधन में बँध जायँ तो उनकी गृहस्थी सुखी नहीं होती।

० सब्ज़ी वाली से बैंगन ख़रीदते समय हम जितनी छानबीन से माल लेते हैं, मनुष्य उतनी ही छानबीन विवाह के समय नहीं करते।

० जो अध्ययनशील होते हैं, उन्हें अपने अध्ययन की परीक्षा लेने के लिए विरोध का उत्तर देने की रुचि होती है। अपने मत कितने दृढ़ हैं, यह जानने के लिए विरोध की ज़रूरत है। विरोधियों के कारण ही बुद्धि का विकास होता है।

० शिक्षा के कारण मनुष्य का मन जैसे-जैसे प्रगल्भ होता है, वैसे-वैसे वह भावना का शिकार कम होने लगता है। आगे चलकर तो वह भावना से दूर हो जाता है और हेतुवाद पर जीवित रहता है। बौद्धिक उन्नति के बिना मनुष्य में मनुष्यता नहीं आ सकती।

(संकलन : बाबूलाल कोठारी)

बन्द दरवाज़ा : अमृता प्रीतम

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली; पृष्ठ संख्या ११७; मूल्य : २. ५०

० हमेशा आदमी औरत को घर से निकालता है, कभी किसी औरत ने आदमी को घर से निकाला है? इसलिये न कि घर हमेशा आदमी का होता है, औरत का कोई घर नहीं होता।

० मुहब्बत उस फूल की तरह होती है, जिसके ऊपर के हिस्से में मिठास होती है, नीचे के हिस्से में कड़वाहट।

० मुहब्बत—एक मासूम, निर्दोष आश्चर्य, पागलपन!

० मर्जी का साथी नहीं होता तो, आदमी बसती दुनिया में भी वीरान हो जाता है। मर्जी का साथ हो, आदमी वीरान टापू में भी आबाद हो जाता है।

(संकलन : मुकेश शर्मा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिंग ट्यूब्स्

जल तथा गैस
वितरण के लिए

कलिंग ट्यूब्स् लिमिटेड
३३, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-१२
कारखाना :
चौदवार, कटक, उड़ीसा

KALPAN.KT.28

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri College, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभा : चतुरसेन शास्त्री

प्रकाशक: हिन्द पाकेट बुक प्रा० लि० दिल्ली, पृष्ठ संख्या १२८; मूल्य १.००

० स्त्री नारी है। नारी के साथ पत्नीत्व, मातृत्व, गृहिणीत्व और शील-मर्यादा आदि कितने ही पदार्थों का मिश्रण है। उन्हीं सबने मिलकर नारी को सँजोया है; उसे रूप दिया है; उसे देवी का पद दिया है। वह नारी यदि इन सब विभूतियों को त्याग कर केवल नारी रह जाए--न पत्नी रहे, न माता रहे, न गृहिणी रहे, न शील का विचार करे, न मर्यादा का--तो एक कुत्सित वासना का माध्यम, एक सादा कीड़ा, एक अधम पशु, थूकने का एक सजीव ठीकरा मात्र ही रह जाती है--वह नारी।

० नारी का शरीर व्याज होता है। प्रेम की पूंजी तभी सार्थक है कि व्याज मिलता रहे।

० जवान स्त्री-पुरुषों में प्रेम करने की भावना एक नितान्त काव्यमय आकांक्षा है और इस व्यर्थ के काम में योग्य-से-योग्य पुरुष की सर्वश्रेष्ठ शक्तियाँ निरर्थक खर्च हो जाती हैं।

० यदि प्रेम का संयम से अटूट गठबन्धन नहीं हुआ, तो प्रेम पतन को जायज और आनन्ददाता के रूप में उपस्थित करेगा।

० प्रेम का आधार यदि शारीरिक वासनाएँ ही हों, तो वह प्रेम संसार की सारी ही आपदाओं का मूल कारण हो सकता है। स्त्री हो चाहे पुरुष, उसमें विलास भावना एक शराबी की वह उत्सुक और शान्त अवस्था है, जिसमें वह नित्य नवीनताओं को खोजता है, पर तृप्त नहीं हो सकता।

(संकलन : पी. एल. अरोड़ा)

● ● ●

[पृष्ठ ९९ का शेषांश--: ब्राह्मण से बारामोम तक]

यात्रिकों का आना-जाना शताब्दियों से निरन्तर रही है। मिश्र में तो भारत से दस हज़ार वंशी बजाने वाले कलाकार ईसा की पाँचवीं शताब्दी में विशेष रूप से भेजे गये थे। आज का साहित्य, कला एवम् संस्कृति, जो हमें विभिन्न देशों में विशिष्ट रूप से प्राप्य है उसमें भारत का अद्वितीय योग है। युगानुयुग से यह आदान प्रदान हो रहा है। और ज्यों-ज्यों यात्रिकों को यात्रा की सुविधा मिलेगी, त्यों-त्यों यह सांस्कृतिक सम्मिलन बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं। मेरा तो अपना विश्वास है कि संसार की विभिन्न संस्कृतियों में एक मूल एकात्मकता निश्चित निहित है जो हमें आने वाले। युग में भ्रातृत्व की ओर ले जायेगा विश्व-शांति एवम् विश्व-बन्धुत्व का स्वप्न केवल सांस्कृतिक परिगोष्ठियाँ तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध ही साकार कर सकेंगे। ● ● ●

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर्षक सौन्दर्य के लिए...

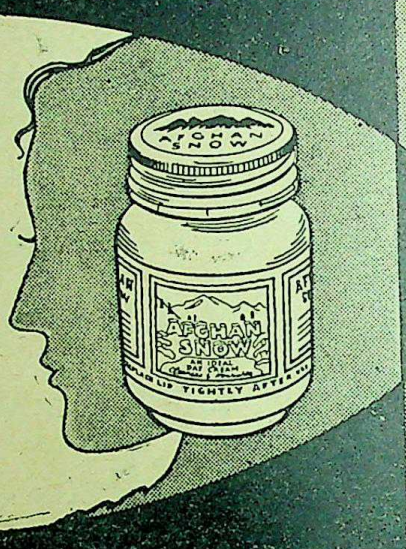

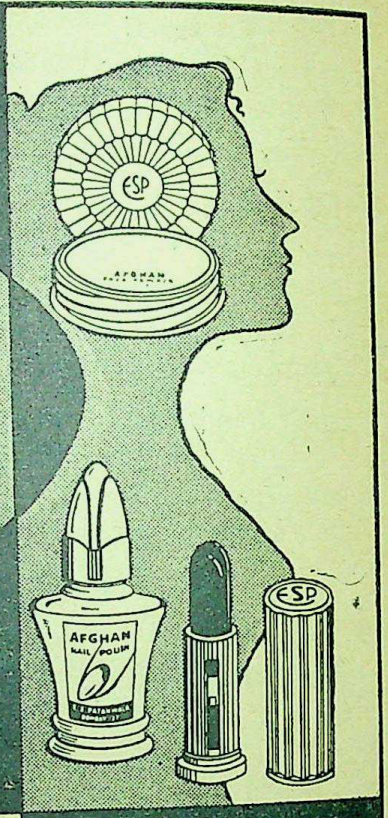

अफगान स्नो
सौन्दर्य प्रसाधनें

अफगान स्नो सौन्दर्य प्रसाधनें-आपकी सुन्दरता तथा आकर्षण की सम्पूर्ण सामिग्री प्रस्तुत करतीं हैं... अफगान स्नो सौन्दर्य प्रसाधनें आपके चेहरे, आपके रंग रुप आपके केषों तथा आपके नाखूनों की सुन्दरता की रक्षा के लिए...
प्रत्येक सौन्दर्य समस्याओं का हल...

चेहरे के लिए क्रीम तथा पावडर ★
टॉयलेट तथा टल्कम पावडर ★
लिप्सटिक तथा नेल पॉलिश ★
ब्रिलिएन्टाइन तथा हेअर ऑइल ★
लवेन्डर तथा परफ्यूम्स ★
नहाने के साबुन ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँगन का पंछी और बनजारा मन

श्री विद्यानिवास मिश्र के बीस ललित निबन्ध ; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; पृष्ठ–संख्या : १६१ ; मूल्य ३.००

प्रयाग के सत्यनारायण कुटीर में श्री विद्यानिवास मिश्र सन् १९४८ में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के साथ 'शासन-शब्द-कोश' में जब काम करते थे, तब मेरा उनका परिचय हुआ। बाद में यह कोश हम तीनों के नाम छपा। भारत-यात्रा में कुछ प्रान्तों में उनके साथ जाना हुआ। उनके पंक्ति-पावन-पन से बहुत झल्लाहट भी हुई। संस्कृत के फर्स्ट क्लास एम० ए० ; क्षेत्रेशचंद्र चट्टोपाध्याय के प्रिय छात्र विद्यानिवास बहुत शीघ्र हमारे पारिवारिक ज्योतिषी बन गये। प्रयाग में आकाशवाणी के छत्र के नीचे पुनः हम दोनों ने कुछ दिन साथ काम किया। बाद में एक दिन 'भ्रमरानन्दजी' (इसी उपनाम से उन्होंने 'सरस्वती' में कुछ मनोरंजक पत्र लिखे) दिल्ली चले आ रहे हैं, तब के विन्ध्य प्रदेश के सूचना-प्रसार विभाग के अफ़सर बनकर, डक्युमेंटरी फिल्म बनाने ! और महदाश्चर्यमिदम् ! हमारे उनके ग्रहयोग सुदूर अमरीका में भी हमें एक साथ शिकागो में एक कान्फेरेंस में मिला बैठे ! और अब वे हमारे ऐसे घनिष्ठ मित्र हैं कि उन्हें मैं इस आलोचना में दो-चार खरी सुनाऊँ और दस गाली दूं, तो भी वे बुरा नहीं मानेंगे, मेरी नेक-नीयती पर सन्देह नहीं करेंगे। इतना व्यक्तिगत इसलिए कि हिन्दी के सुधी (?) पाठक झट-से इस निर्णय पर न पहुँच जायँ कि मैं भी हिन्दी में व्यंग–प्रधान आत्मनिबंध लिखता हूँ, विद्यानिवास भी लिखते हैं—अतः हम दोनों में अवश्य ईर्ष्या होगी और मैं आगे की पंक्तियों में उसी हिन्दी साहित्यिकों में आम पायी जानेवाली मगर शिष्टाचारवश बाहर व्यक्त न की जानेवाली भावना से पीड़ित हूँ।

सा हि त्या र्च न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो पहले ही बता दूँ : मैं आतंकित हूँ मिश्रजी के अगाध संस्कृत पांडित्य से : व्याकरण, दर्शन, न्याय, तंत्र, ज्योतिष, वैद्यक, व्युत्पत्ति आदि के उनके अवगाहन से; मैं ईर्ष्या करता हूँ उनकी सहज श्रद्धालुता की —मैं शिखा-यज्ञोपवीत विरहित प्राणी उनकी तरह विदेश में भी 'पंक्ति-पावनता' नहीं निबाह सका; मैं मुग्ध हूँ उनकी गद्य-शैली पर— उसमें भोजपुरी, व्रज, देशज शब्द किस मजे से संस्कृत के अपरिचित प्रयोगों के साथ-साथ पंक्ति तोड़ते हुए बैठते जाते हैं; हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के बाद हिन्दी में ऐसा शैली-कार निबन्धकार दूसरा नहीं।

पर मुझे शिकायत है उनके उन्नीसवीं शतीवाले अलंकरण-प्रिय ढंग से, एक शब्द के लिए चार शब्द प्रयुक्त करने के 'रेटॉरिक' से, उनकी मान्यताओं की बद्धमूलता, उनके विचारों की मूलभूत दकियानूसी स्थापनाओं से, उनके सनातनीपन से। वैसे पुस्तक का आवेष्टन (ऊपर के जैकेट का चित्र अन्दर की विचार-शैवालमयी अन्तःसलिला से) भीतर से किसी तरह मेल नहीं खाता। कवर बहुत मार्डनिस्ट है, भीतर 'जयंती मंगला काली' के स्तोत्र हैं या 'अग्रपुरुष' का माहात्म्य है। वैसे ही विद्यानिवास का मन चाहता है नये भारत का निर्माण, ऊँच-नीच (आर्थिक और सामा-जिक-शैक्षणिक) का अन्त; पर वह भटकता है फिर क्लासिकी रोमान्स की ओर (पृष्ठ ६०— 'मैं भारत का एक अकिंचन साहित्यकार हूँ, मेरा भी प्रणाम कहना और लौटकर यदि सावित आ सको तो उस यक्ष के पास जाकर यह बतला देना कि रास्ते में एक आदमी ऐसा भी मिला जो मेरे पीछे-पीछे दौड़ा नहीं, मात्र मुझसे प्रणाम कहने को कहा और आप तक यह सन्देशा पहुँचाने को कहा कि आपकी कल्पना-सृष्टि का रसास्वाद करने वाले साहित्यकार अभी जीवत हैं।') या चेस्टर-टनकी तरह सदा रूढ़िवादिताके समर्थन में (पृ० १६०— 'सो भाई मैं पुराण-कोष-समिति का, हजारी प्रसादजी की शब्दावली में निश्शेष-भावेन सदस्य हूँ।') यों भारत कैसे सुधरेगा?

विद्यानिवास की लेखनी की सबसे बड़ी शक्ति उसके व्यंग का सचोटपन है। कभी बालकृष्ण भट्ट की याद दिलानेवाली, कभी मराठी के शिवराम व महादेव परांजपे की। 'डेरी बनाम खेती', 'ये विषथगाएँ', 'प्रभुत्व ज्वर अस्पताल' 'कमल-भक्षकों के देश में' बड़े अच्छे उदाहरण हैं।

विद्यानिवास के निबंधों का दूसरा मुझे प्रिय लगने वाला अंश है प्रकृति-वर्णन। जब वे अपने गाँव के, देहात के, ऋतु-परिवर्तन के, फूल-पेड़ों के वर्णन देते हैं तब बहुत ही कम शब्दों में बड़ा सशक्त चित्र वे खींचते हैं। परन्तु उनके चार निबन्ध-संग्रह पढ़ने पर मुझे अब एक प्रकार की एकरसता उनमें मिलने लगी। पहले संग्रह के 'सक्तुं पिब देवदत्त' की याद अब भी आती है। 'तुम चन्दन हम पानी' और 'हल्दी-अक्षत' में जो भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था थी, वही इस संग्रह में भी मिली। निरन्तर नवीनतम की खोज उनकी बुद्धि की पसंद नहीं, घूम-फिरकर 'जहाज का पंछी पुनि जहाज पै आवे' वाला उनका हिसाब है। वे शब्द-शास्त्री हैं, शब्द-निर्माता नहीं; वे पंडित हैं, कलाकार नहीं—उनकी प्रतिभा में व्युत्पन्नता अधिक है, मौलिकता कम। पर मैंने संस्कृत के पुराने-नये कई 'स्कालर' देखे हैं; उनका सौन्दर्य-बोध वाला पक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शिवता' से भाराक्रान्त रहता ही है। निबन्धकार के लिए जिस मुक्त आसंग की आवश्यकता होती है, उसमें पांडित्य बाधक न सिद्ध हो यह ख़याल रखना ज़रूरी है। आख़िर स्टीवेन्सन और ली हंट और डी क्विन्सी के निबन्ध अब पाठ्य-पुस्तकों की ही वस्तु बन गये हैं। पर मिश्रजी युवक हैं और उनकी लेखनी को यह अकाल-वार्धक्य शोभा नहीं देता। मुझे उनके और नये निबन्ध-संग्रह की अपेक्षा है, जिसमें संस्कृत श्लोक कम होंगे और जीवनानुभव के चुटीले प्रसंग अधिक। उनके बिना 'आत्म' निबन्ध या ललित निबंध का मज़ा कम हो जाता है।

—डॉ० प्रभाकर माचवे

● ● ●

पूर्व और पश्चिम : कुछ विचार

मूल लेखक : डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
अनुवादक : रमेश वर्मा; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली; पृष्ट-संख्या १६२; मूल्य : ५.००

यह पुस्तक हमारे दार्शनिक राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अंग्रेज़ी पुस्तक 'ईस्ट ऐंड वेस्ट : सम रिफ्लेक्शन्स' का हिन्दी अनुवाद है। लेखक ने १९५४ में मैकगिल विश्वविद्यालय, कनाडा द्वारा सर एडवर्ड बीटी स्मारक व्याख्यान-माला का उद्घाटन करते हुए तीन व्याख्यान दिये थे, जो इस पुस्तक में संगृहीत हैं। इन व्याख्यानों के प्रति लोगों में कितनी रुचि थी यह इसी बात से स्पष्ट है कि मांट्रियाल के तीन हज़ार से अधिक विद्यार्थी और नागरिक प्रति रात्रि उन्हें सुनने आते थे, यद्यपि रेडपाथ हॉल में इतने लोगों के बैठने की व्यवस्था नहीं है।

पुस्तकस्थ तीनों व्याख्यानों में से प्रथम व्याख्यान में प्राग्वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के भारतीय धर्मों तथा अन्य एशियाई धर्मों के इतिहास का पर्यवेक्षण कर उनकी मूल प्रवृति का विवेचन किया गया है। द्वितीय व्याख्यान, जो पश्चिमी संस्कृति पर है, दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में यूनान, मकदूनिया, रोम, मिस्र और ईसाई धर्म के सांस्कृतिक योगदान का विश्लेषण है। द्वितीय भाग में ईसाई सिद्धान्त, इस्लाम, धर्मयुद्ध, पाण्डित्यवाद, नवजागरण, धर्म, सुधार और प्राकृत विज्ञान तथा आधुनिक दर्शन के उदय का दिग्दर्शन है। इस व्याख्यान में यह निष्कर्ष निकाला है कि विभिन्न युगों में पश्चिमी और भारतीय मतों में निकटतम सम्बन्ध रहा होगा, क्योंकि सभी महत्वपूर्ण धर्मों के मूल तत्व समान हैं। तृतीय व्याख्यान में उन समस्याओं का विवेचन करते हुए जिनसे पूर्व और पश्चिम दोनों परेशान हैं, एक रचनात्मक तथा सर्जनात्मक धर्म की आवश्यकता पर बल दिया गया है। व्याख्यान-माला के समापन में पूर्व और पश्चिम का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व मानवता के लिए सर्वथा अनिवार्य घोषित किया गया है।

डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार यह समझना भूल है कि सभी प्राच्य एक प्रकार के हैं और सभी पाश्चात्य दूसरे प्रकार के। उनकी मान्यता है कि पूर्वी और पश्चिमी जातियों का आरम्भ एक ही प्रकार से हुआ था। क्रमशः उन्होंने स्वतन्त्र दृष्टिकोणों का विकास किया। आज दोनों एक ही समस्या का समाधान ढूँढ़ने में लगे हैं, और वह समस्या है मानसिक और आध्यात्मिक मूल्यों के एकी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीट्रिक लम्बाई में खरीदिये

१ अक्तूबर १९६२ से लम्बाई नापने के लिए मीटर का प्रयोग जरूरी हो जाएगा।

इसी तारीख से गज, फुट, इंच का प्रयोग कानून के विरुद्ध होगा।

कपड़े पर निशान मीटर के अनुसार लगाये जाते हैं और दुकानदार भी कीमत मीटर के अनुसार ही बताता है।

मीटर, गज से ३३ इंच अधिक लम्बा होता है। यदि १ गज कपड़े की कीमत १ रु० है तो १ मीटर कपड़े की कीमत १ रु० ९ नये पैसे होगी।

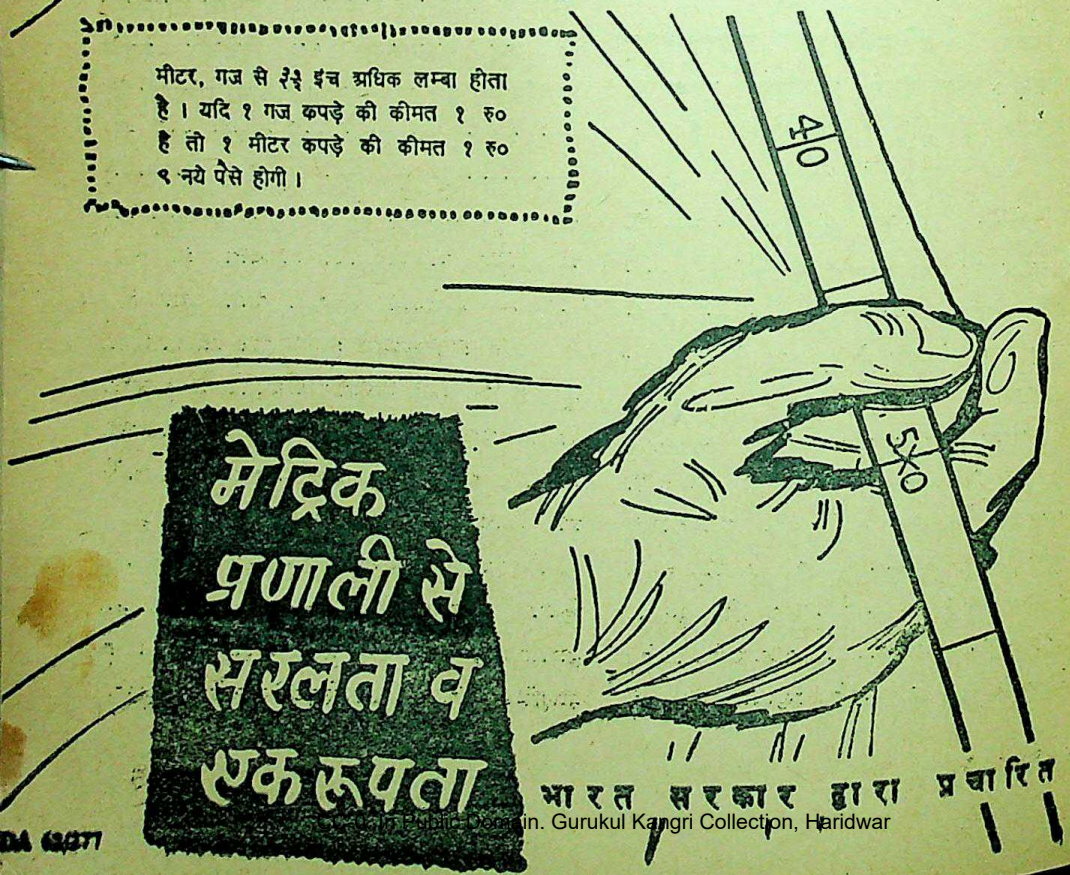

मेट्रिक प्रणाली से सरलता व एकरूपता

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण की। डॉ० राधाकृष्णन् इस सिलसिले में एक महत्वपूर्ण इतिहास-दार्शनिक स्थापना कर जाते हैं, वह यह है कि मानसिक और आध्यात्मिक मूल्यों के पारस्परिक तनाव में ही इतिहास का अर्थ और उद्देश्य निहित है।

डॉ० राधाकृष्णन् का धर्ममूलक मानवतावाद उनकी अन्य कृतियों के सामने आलोच्य पुस्तक में भी मुखर है। उनकी जीवन-दृष्टि पूर्व और पश्चिम की आध्यात्मिक जीवन-दृष्टियों के समन्वय का सुन्दर नमूना है। वे सभी महान् धर्मों में तात्विक एकता का दर्शन करते हैं। उनकी दृष्टि धर्मों और संस्कृतियों की जीवन्त और स्वस्थ परम्पराओं की ओर ही जाती है। समन्वय-स्थापन के प्रयत्न में उनसे कभी-कभी अत्युक्ति भी हो जाती है। उदाहरणार्थ, उन्होंने आलोच्य पुस्तक में कहा है, "बुद्ध का सिद्धान्त उपनिषदों के सत्यों का ही पुनःकथन है।" (पृ० २९) यह मान्यता उनकी अन्य पुस्तकों में भी पायी जाती है। किन्तु बुद्ध के अनात्मवाद, दुःखवाद, और क्षणिकवाद को उपनिषदों के आत्मवाद, आनन्दवाद, और शाश्वतवाद का पुनः कथन मात्र बतलाना अति सरलीकरण की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है?

अनुवाद कुल मिलाकर अच्छा बन पड़ा है। कहीं-कही शब्दों के चयन में असावधानी हो गयी है। "डाइमेंशन" के लिए "विभा" का प्रयोग हुआ है (पृ० १४) जब कि "आयाम" अधिक उपयुक्त होता। "मेटाफ़िज़िकल अगॉनी" के लिए "आध्यात्मिक उत्पीड़न" (पृ०२१) का प्रयोग हास्यास्पद है, "आध्यामिक पीड़ा अथवा वेदना" अधिक समीचीन होता। संस्कृत नामों के वर्ण-विन्यास में कहीं-कहीं भयंकर भूलें हो गयी हैं।" "वाग्भट" और 'आर्यभट' लिखना चाहिए था, 'वाग्भट्ट' और "आर्यभट्ट" नहीं। मूल में ये नाम शुद्धरूप में लिखे गये हैं। 'शुल्व सूत्र' को सर्वत्र 'सल्व सूत्र' लिखकर अनुवादक ने भारी प्रमाद का परिचय दिया है।

आशा है ये अशुद्धियाँ द्वितीय आवृत्ति में दूर कर दी जायँगी।

पुस्तक का हिन्दी-जगत् में स्वागत होना चाहिए।

—हर्षनारायण

• • •

अनुसन्धान और आलोचना

लेखक : डॉ० नगेन्द्र, प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; मूल्य ४.००

'अनुसन्धान और आलोचना' नामक इस पुस्तक में हिन्दी के प्रख्यात समीक्षक डाक्टर नगेन्द्र के ऐसे आलोचनात्मक पन्द्रह लेख संकलित किये गये हैं, जिनमें उन्होंने अनुसंधान और आलोचना के भेदाभेद का केवल सैद्धान्तिक विवेचन ही न करके दोनों का व्यावहारिक सम्बन्ध भी स्पष्ट किया है। कुछ ऐसे निबन्ध भी इसमें आकलित हैं जिनमें आलोचनात्मक दृष्टि होते हुए भी संस्करण और ललित निबन्ध की गन्ध परिलक्षित होती है। गहन शोधपरक निबन्धों में 'साहित्य का धर्म', 'कविता क्या है?', 'रस शब्द का अर्थ-विकास' आदि उल्लेखनीय हैं। 'रीतिकाल के कवि-आचार्यों का योगदान', 'रवीन्द्रनाथ का भारतीय साहित्य पर प्रभाव', 'कामायनी का महाकाव्यत्व', 'दीपशिखा की भूमिका', 'स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा के

वर्ष

इस वर्ष पहले हमारा हथकरघा उद्योग भयंकर संकट से गुजर रहा था। काफी स्टॉक इकट्ठा हो गया, बिक्री कम हो गयी थी, उत्पादन घट गया था और हजारों बुनकर बेकारी का सामना कर रहे थे।

उस समय तत्काल सहायता की आवश्यकता थी।

१९५२ में स्थापित अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड ने इस आवश्यकता की पूर्ति की। इसने हथकरघा उद्योग को फिर से जमाने और उसे ठोस बुनियाद पर खड़ा करने के लिए कई प्रभावशाली कदम उठाये। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत २८० करोड़ गज हथकरघा-कपड़ा तैयार करने का लक्ष्य रखा गया है जबकि १९५२ में ११० करोड़ गज और १९५९ में १९० करोड़ गज कपड़ा तैयार होता था। भारत का यह सर्वप्रिय महान् कुटीर उद्योग यह चुनौती स्वीकार करने के लिए लक्ष्य की ओर तेजी से आगे बढ़ रहा है।

भारत के सब से बड़े कुटीर उद्योग का सहायक

अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य' तथा 'स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-आलोचना' आदि निबन्धों में डा० नगेन्द्र ने सम्बन्धित विषयों पर एक आलोचक के रूप में विशेष दृष्टि डालकर उन पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की है। संस्मरणपरक निबन्धों में 'दादा : स्व० पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन', 'रेडियो में पन्तजी का आगमन' और 'गिरिजाकुमार माथुर' शीर्षक लेख पठनीय हैं।

अभी तक डॉ० नगेन्द्र केवल गूढ़ और मर्मान्वेषी तटस्थ चिन्तक एवं समीक्षक के रूप में ही जाने-माने जाते रहे हैं। इस संग्रह के निबन्धों में उनकी प्रतिभा की त्रिवेणी के दर्शन हमारे पाठकों को हो सकते हैं। इन निबन्धों में जहाँ उनका सूक्ष्म अन्वेषी चिन्तक उभरकर सामने आया है, वहाँ स्वतन्त्र पर्यालोचन और संस्मरण लेखन की प्रतिभा भी प्रस्फुटित हुई है। हिन्दी-समीक्षा के क्षेत्र में गूढ़-सैद्धांतिक पर्यालोचन के ग्रन्थों से जो पाठक ऊब चुके हों, उन्हें डॉ० नगेन्द्र के ये निबन्ध उस दिशा में किंचित नवीन दृष्टिकोण और इतर भाव-भूमि प्रदान करेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

● ● ●

सीपी मेरे प्राण

लेखक : ज्ञानेन्द्र कुमार भटनागर; प्रकाशक : आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद ;
मूल्य ७.००

न्यूटन ने आविष्कार किया था पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के सिद्धान्त (Theory of gravity) का। किन्तु उनके इस आविष्कार से पूर्व भी यह आकर्षण-शक्ति अनाम, अज्ञात रूप में विद्यमान तो थी ही, ऐसा ही जादू मेरे साथ भी हो गया। उपन्यास पढ़ना बाद में शुरू किया और पहले से ही समर्पण के पृष्ठों पर प्रश्न-चिन्ह लग गये। और यहाँ समीक्षा लिखते समय भी उसी रोग ने आ घेरा। हर प्रश्न-चिह्न (अनावश्यक) खीझ उत्पन्न करेगा। हर वाक्य खिझायेगा। आपके हाथ में भी यह उपन्यास कभी आया और खुदा न खास्ता पेन भी पास में हुआ तो आप भी रेखाएँ खींचते, 'ऐरो' (तीर) बनाते और प्रश्न-चिह्न लगाते उपन्यास को अधूरा पढ़कर बाल झटक लेंगे कि अच्छी बोरियत गले बाँध ली है!

पृष्ठ २० और २१ मेरे सामने खुले हैं। दोनों के ऊपर वाली पंक्तियों के बीच एक 'ऐरो' का चिह्न मैंने बना रखा है। गद्य को काव्यात्मक बनाने की लत में फँसकर 'मैं देखता-देखता रह गया' लिखना कैसा लगता है? यों पृष्ठ २१ पर 'बिखेर-बिखेर बैठूँ, फिर-फिर समेटूँ' में आवृत्ति नहीं खटकी तो मान लेती हूँ कि मैं वस्तुतः शब्द-आवृत्ति के प्रति प्रेजुडिस्ड तो नहीं ही हूँ। 'बगुलों की एक पंक्ति हवा और आसमान के बीच (हवा का भी बीच या ओर-छोर आपने अनुभूत किया है कभी?) उड़ती हुई गन्तव्य को चली गयी है—खामोश, सफेद और कैसे भले-से।' क्षमा कीजिये बीच में कोष्ठक वाली बात मैंने अपनी ओर से डाल दी। अन्तर्विराम का नियम यहाँ मैंने भंग कर दिया। तो बगुलों की पंक्ति....कैसे भले-से ....का योग कैसा लगा?

यों भूलों का (चाहे वे प्रूफ़ की हों या लेखक के अपने शब्द, वाक्य-प्रयोगों की)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका मुन्ना भी एक दिन **इंजिनीयर** बन जाएगा।

यहाँ उसकी शिक्षा के लिए एक सरलतम सर्वांगपरिपूर्ण योजना है।

आपका बच्चा मोटर के साथ खेल रहा है। वह उसका प्यारा खिलौना है। वह मोटर के पुर्जे लगाने में व्यस्त है। वह कल इंजिनीयर भी बन सकता है।—किंतु इंजिनीयरिंग के इस कोर्स के लिए (होस्टल की फीस को छोड़कर) कम से कम ६,००० रुपयों की जरूरत होगी। जब वह कालेज में जाने लगेगा तब इस खर्च को निभाना, शायद, आपके लिए मुश्किल होगा। तो आज ही शिक्षा-वृत्ति-बीमा पालिसी लेकर उन पैसों का प्रबंध आज क्यों नहीं कर लेते? इसके लिए प्रीमियम भी बहुत कम देने पड़ते हैं। मान लीजिए, आपकी उम्र २५ साल और बच्चे की २ साल है, तो आपको प्रतिमास केवल २६ रुपये ३२ नये पैसे देने पड़ेंगे। और जब आपका बच्चा १८ साल का होगा तथा कालेज जाने लगेगा तब हर छः महीने पर ६०० रुपये, पाँच सालों तक, उसे बराबर मिलते रहेंगे। (अलग अलग उम्र के लिए अलग अलग प्रीमियम लिये जाते हैं)। पालिसी की अवधि में यदि आपके प्यारे का छत्र बच्चे के सिर पर से उठ जाय तो भी, हर छः महीने पर पाँच सालों तक उसे यह रकम मिलती रहेगी। बचत का कोई और तरीका आपको ऐसा लाभ नहीं दिला सकता।

आज ही अपने बच्चे के लिए शिक्षावृत्ति-बीमा लीजिए और अपने इस निर्णय को कल पर न छोड़िए। आपकी आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती जायेगी त्यों-त्यों प्रीमियम की रकम में भी वृद्धि होती रहेगी। अपने बच्चे के भविष्य को भाग्य पर न छोड़िए बल्कि जीवन बीमे द्वारा उसको शानदार बनाइए। आप जीवन बीमे के हाथों में सुरक्षित है।

जीवन बीमा

सुरक्षा का बेजोड़ साधन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्बार लगा है । उच्छवासें, विव्हलता, वैचित्र, उछाँह, पाँच-पाँच, खींच-घसीट कर, छः, हम-कोई आसानी से तोड़-तोड़ खाते रहें—जैसे प्रयोगों को क्या कहा जाय ?

और जब 'रूप रंग में भी अल्हड़ नहीं, बहुत साधारण-सी, ओझल सी लड़की' का परिचय मुझे मिला तो आश्चर्य हुआ कि 'ओझल सी' लड़की दिखाई कैसे दे जाती थी ?

खैर, अच्छा ही हुआ कि इन प्रश्न-चिह्नों और अन्य अशुद्धियों (एक बार और कह लूं कि निश्चित ही सारी भूलें प्रूफ़ की नहीं हैं, अधिकांश लेखक की अपनी हैं) से घबराकर मैंने किताब में चिह्न लगाना छोड़ दिया। और छोड़ दिया तो अब किताब के कथ्य पर कुछ कह पाना सम्भव हो गया, नहीं तो समीक्षा की जगह अच्छी खासी प्रूफ़ रीडिंग हो जाती ।

यह उपन्यास ?

लेखक के सम्पर्क में आयी अनेक लड़कियों के संस्मरण हैं ये । पहली लड़की गोपा । 'गोपा कुछ बुन रही है । पर चुप हैं ?' उसके लिए लेखक ने मात्र इतना सोचा कि वह अकेली कैसे सोती होगी ! फिर चरणी ! भींगे कपड़ों के पीछे उसके वक्ष देखे और और फिर एकान्त में उसका दुपट्टा सहेज दिया ।

तेरह वर्ष की उम्र में भाई के विवाह में सम्मिलित होने आयी बुआ की लड़की शकुन्त के बटन खोल दिये, रजाई ऊपर तक ढाँप ली । 'सफिया एक ऐसी लड़की, जो मुझे अभी भी बरबस कर देती है' (बरबस करना क्या होता है भाई ?) पर मोटे मियाँ की यह लड़की भी अपने वक्ष पर उसके हाथ को दबा कर रह गयी और पाकिस्तान चली गयी !

और नौकरानी अंगूरी ! उसे बुलाकर

Wishes
all the
success
to
this
Highly
Enlightening
Magazine

The
Commercial Electric
Works
DIRECT IMPORTERS &
DISTRIBUTORS.
1815, Chandni Chowk,
DELHI-6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार की योजना के लक्ष्य

बिहार की तीसरी पंचवर्षीय योजना ३३७.०४ करोड़ रुपये की लागत पर तैयार की गयी है। इसके पीछे बिहार की जनता की सुख एवं सुविधा की कामना का लक्ष्य है।

तीसरी योजना के लक्ष्य हैं कि—

१–राज्य में २०.२७ लाख टन अधिक अन्न पैदा किया जाय। द्वितीय योजना के अंत तक ६० लाख टन पैदा किया जा चुका है।

२–४८.४८ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई हो।

३–१३३८ मेगावाट बिजली का उत्पादन हो।

४–एक हजार से अधिक गांवों में बिजली दी जाय।

५–प्राइमरी स्कूलों में ४८ लाख बच्चे दाखिल किये जाँय।

६–रोगियों के लिये ३९०० शय्या की व्यवस्था हो।

७–९३१९ मील लम्बी सड़क का निर्माण किया जाय।

८–सोलह छोटी बड़ी औद्योगिक वस्तियाँ तथा ५० वर्कसाप स्थापित किये जाँय। द्वितीय योजना में ४ औद्योगिक वस्तियां स्थापित की जा चुकी थीं।

केन्द्रीय सरकार की योजनाओं के अन्तर्गत तीसरी योजना काल में बिहार में अनेक औद्योगिक संस्थान स्थापित किये जाने वाले हैं—जैसे हटिया में हेवी मशीन बिल्डिंग प्लांट तथा फाउन्डरी फोर्ज प्लांट, बरौनी में तेल शोध कारखाना तथा बोकारो में चौथे लोहे का कारखाना खोलने की योजना है।

बिहार राज्य द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी धोती खींच दी और उसके एक उरोज पर अपना हाथ रख दिया।

और फिर एक वाक्य गड़ गया—'तब साँझ हो रही थी और देखने से कहीं-कहीं चिराग़ या किसी और चीज़ की रोशनी की झलक भी दिख रही थी।' दिखता तो देखने से ही है, तो यहाँ 'देखने से' का प्रयोग नहीं होता तो क्या वाक्य का चटपटापन कम हो जाता ?

उपन्यास(?)में आरम्भ से लेकर जहाँ तक मैंने पढ़ा, यही कुछ है। कहीं मित्र की बहन को (मित्र के घर जाने पर) एकान्त में बुलाया और उसके साथ गुंथ गये !

यों लेखक की अपनी भटकन की भी बात है इसमें। कहीं वे पादरी के पास पहुँचे कि ईसाई बनना है, कहीं किसी मठ में बाबाजी के पास पहुँच गये। मित्रों के साथ वेश्या के यहाँ पहुँच गये। यथार्थवाद और स्पष्टवादिता का युग है यह। साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में भी, किन्तु ऐसी ग़लीज़ स्पष्टवादिता भी कम ही देखने को मिलती है—मित्र ने नोट गिने और कहा—'पर दोगी तो तबियत से ?' 'खुश कर दूंगी।' 'सच ? परेशान तो न करोगी ?'

इस उपन्यास को मैंने सदा के लिए अधूरा छोड़ने का निश्चय कर लिया है कि जहाँ सिर्फ़ बहक है, भाषा का थोथा आडम्बर है, इसे पढ़े बिना भी काम चल सकता है। आप कह सकते हैं कि अधूरी किताब पढ़कर यह सब कहना अपराध है, किन्तु अच्छा हो कि मुझे अपराधी ठहराने से पहले आप उस पुस्तक को पूरा पढ़कर निश्चय करलें कि इसका लिखा जाना या प्रकाशित होना क्या है ?

—मनमोहिनी

भारत सरकार द्वारा रजिस्टर्ड

सफेद कोढ़ के दागों की

गुणकारी दवा, मूल्य सिर्फ ५ रुपये। डाक व्यय १ रु० २५ नएपैसे।
विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्रिका मुफ्त मंगावें !

एक्झिमा गिला और सुका इसब और गजकरण (दाद) भी साफ हो जाता है।
मूल्य ५ रुपये, डाक व्यय १रु० २५न०पैसे।

वैद्य के. आर. बोरकर (D) आयुर्वेद भवन
मु. पो. मंगरूलपीर, जि. अकोला (महाराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

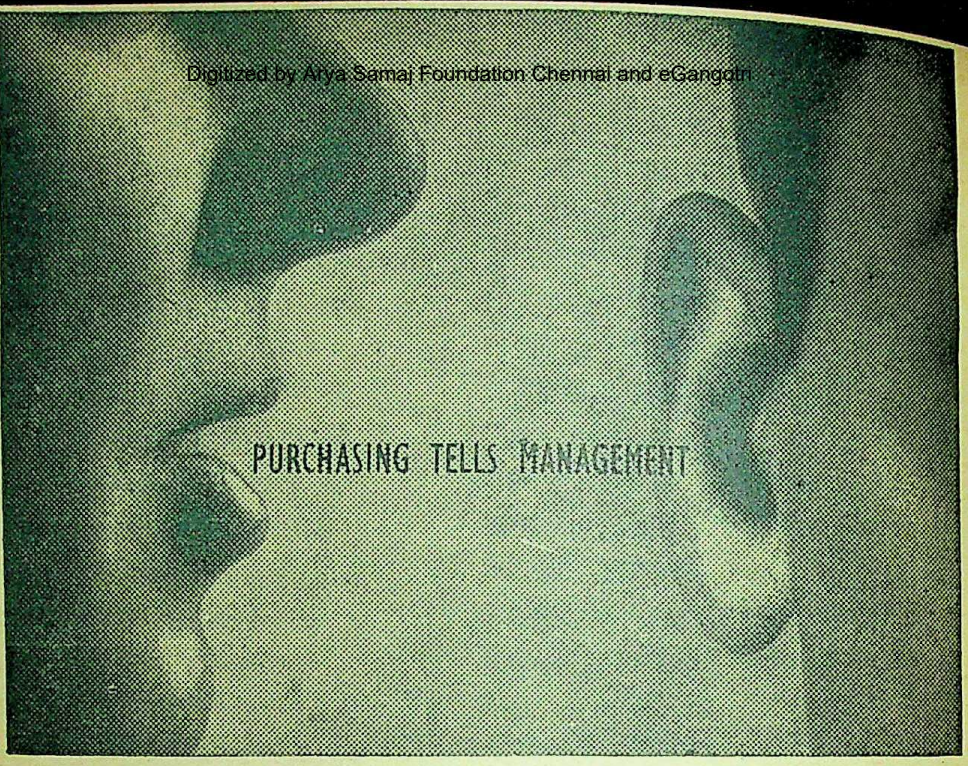

कालटेक्स का "हानि-निरोधक" कार्यक्रम प्रति प्लान्ट १५% निर्वाह-व्यय की कटौती करता है।

"**हानि निरोधक**" व्यवस्था पूरे प्लान्ट में लुब्रिकेशन को संगठित करती है—खरीदे जाने से लेकर काम में प्रयुक्त होने तक। बहुउद्देश्यीय लुब्रिकेन्ट्स् की विशेष रक्षा द्वारा और दोहरे कार्य को हटा कर "हानि-निरोधक" कार्यक्रम लुब्रिकेन्ट्स की माँग को ५०% तक कम कर सकता है। **यह सर्वोत्तम है**—प्लान्ट के प्रत्येक यन्त्र को उचित लुब्रिकेशन देकर "हानि-निरोधक" कार्यक्रम यन्त्र की जीवनी-शक्ति बढ़ाता है। परिणाम यह होता है कि पूरे प्लान्ट के निर्वाह-व्यय में १५% की बचत होती है। विस्तृत सूचनाओं के लिए अपने कालटेक्स सेल्स इंजीनियर से पूछ-ताछ करें।

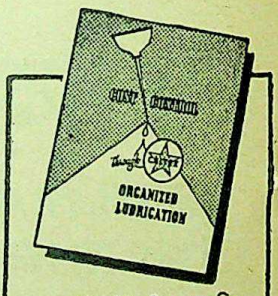

कम्पनियों के पदाधिकारी इस बुकलेट की निशुल्क प्रति प्राप्त कर सकते हैं।

CALTEX

कालटेक्स के
संगठित लुब्रिकेशन द्वारा मुनाफे को उन्नत कीजिये।

CALTEX (INDIA) LTD. BOMBAY • DELHI • CALCUTTA • MADRAS

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ज्ञानोदय' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' के सहयोगी लेखक श्री राजेन्द्र यादव का 'मैंने कैसे लिखा ?' कई बार पढ़ गया, हालाँकि उपन्यास की शायद ही कोई क़िस्त मेरे द्वारा दुबारा पढ़ी गई हो। निःसन्देह लेखक की 'अपनी बात' उपन्यास के किसी अध्याय से कम रोचक नहीं और सच तो यह है कि उन्होंने जिस आत्मीयता, सजगता एवं सजीवता से उसे कहा है उससे वह स्वयं अपने में एक लघु उपन्यास बन गई है। पुस्तक रूप में यदि उपन्यास कभी छपे तो श्री राजेन्द्र यादव का वक्तव्य उसके आरम्भ में दे देने से निर्माण-कथा तथा रचना-प्रक्रिया का जानदार इतिहास पाठक को मिल सकेगा, और अन्त में जोड़ा जाकर वह उपन्यास का अच्छा उपसंहार सिद्ध होगा।

उपन्यास के प्रकाशन के दौरान कई सहृदय पाठकों से कभी-कभी चर्चा होती थी और श्री राजेन्द्र यादव के उलाहने के अनुरूप हम सब यही मानते रहे थे कि मन्नूजी की क़िस्तें अधिक मनभावनी बन रही हैं; पर अब श्री राजेन्द्र यादव की सबसे बड़ी सफलता यह मानी जानी चाहिए कि पाठक के थोड़े-बहुत पूर्वाग्रह के बावजूद भी उनकी 'बात' ने उसके मन में अमर के प्रति संवेदनशीलता एवं सहानुभूति जगाई और 'सफलता' की घिसी कसौटी को छोड़कर एक नए दृष्टिकोण से अमर के चरित्र को आँकने के लिए उसे उद्बुद्ध किया। अब यह दूसरी बात है कि 'अपनी बात' में मन्नूजी फिर अमर की 'रेड़ मार दें।'

यहाँ अधिक ऊहापोह मेरा उद्देश्य नहीं। लेखक को बधाई देकर केवल इसी उत्सुक आशा के साथ पत्र समाप्त करना चाहता हूँ कि प्रस्तुत उपन्यास के प्रतिभाशील दम्पति-लेखक एक दूसरे को 'जानकारी में सहयोग और अनजाने ही असहयोग' देकर नहीं, अपितु जाने-अनजाने दोनों ही अवस्थाओं में क्रियात्मक सहयोग द्वारा उपन्यास-शिल्प में एक और अभिनव प्रयोग प्रस्तुत करेंगे।

प्रेमचन्द्र जैन
डिब्रूगढ़ (आसाम)

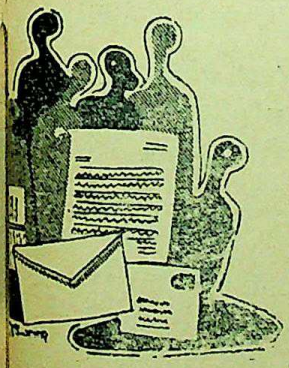

सृष्टि और दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ज्ञानोदय' का अगस्त-अंक पूरा पढ़ लिया है। फॉकनर पर अरुण चोपड़ा का निबंध बहुत ही सशक्त और प्रभावपूर्ण रहा है। फॉकनर की मृत्यु के बाद वैसे अनेक 'शोक-निबन्ध' हिन्दी में आये हैं और आ रहे हैं। आगे आने वालों की तो कह नहीं सकता लेकिन अब तक जो देखे हैं उनमें वह सबसे अच्छा है।

'सागर पार की हलचलें' के अंतर्गत सार्त्र सम्बन्धी निबन्ध के लिए बधाई। मुझे कुछ ऐसा लगा कि निबंधकार समाजवाद के प्रति सार्त्र के बढ़ते हुए आकर्षण से कुछ दुखी-सा है, और इस कारण वह कभी-कभी सार्त्र के कलात्मक पक्ष पर भी अपने पूर्वाग्रहों की हल्की-सी छाया डाल देता है। अपने इस दोष के उपरांत भी निबंध परिचय की दृष्टि से अच्छा बन गया है।

—गणेश मंत्री

रामपुरा बाजार, कोटा (राजस्थान)

'ज्ञानोदय' के अगस्त अंक में प्रकाशित 'जनवासे वाला कमरा' (कहानी : कन्हैया लाल नन्दन) जात-पात के बन्धन पर करारी चोट है। लेखक ने अपनी बात को कहने के लिए जो माध्यम चुना है, वह एकदम नया नहीं तो सराहनीय ज़रूर है।

'मैं सोच रहा हूँ' (कहानी : अशोक चोपड़ा) का लेखक प्रेम सम्बन्धी मामलों में 'लिबरल' होता हुआ भी 'कन्फ्यूज्ड' है; उसमें रूढ़िवाद की जकड़ अभी बाक़ी है। 'मैं' ने अकर्मण्य रहकर नीता को भागने देने के बजाय उसकी कोई ठोस मदद की होती तो कहानी और प्रभावशाली हो गयी होती।

डा० माचवे के भारतीय फ़िल्मों और रेडियो संबंधी निष्कर्ष बिलकुल सही और सुझाव मूल्यवान हैं। फ़िल्म-उद्योग और भारत सरकार उन्हें कार्यान्वित करने का यथेष्ट प्रयास करें, इसी में उनकी और जनता की भलाई है।

—सुदेश जौहर

ई/६, मोतीनगर, नई दिल्ली–१५

सूचना

लेखकों से सूचनार्थ निवेदन है कि केवल स्वीकृत रचनाओं को ही सूचना दी जाती है, और केवल वही अस्वीकृत रचनाएँ लौटायी जाती हैं जिनके साथ आवश्यक टिकट होता है।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पृष्ठ १५ का शेषांश : नेपथ्य में]

विश्वास नहीं करती जितना उन लोगों का कर रही हो जो मेरे बारे में मनगढ़ंत बातें फैला रहे हैं। पीटर्सबर्ग में जो कोई जो कुछ भी कह दे उसका सहज ही विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। और अगर उन बातों का विश्वास किये बिना तुमसे रहा नहीं जाता तो फिर जो-जो कुछ मेरे बारे में कहा जाता है, सब पर विश्वास कर लो। यक़ीन कर लो कि मेरा विवाह एक राजकुमारी से हो गया है और मेरे जितने भी मित्रों की पत्नियाँ हैं सब मेरी प्रियाएँ हैं।

ख़ैर, अफ़वाहों के विरुद्ध अपनी सफ़ाई क्यों पेश करूँ? व्यर्थ होता है यह सब। मैं तो तालाब में जमी बर्फ़ को अपने हाथों से काट रहा हूँ और वहीं खड़ा हूँ। मैंने ख़ूब सोच-समझकर यह निश्चय कर लिया है कि इस जन्म में अब कभी पीटर्सबर्ग नहीं जाऊँगा।"

कैसी विडम्बना है नियति की! यह था मेरे और चेखव के पत्र-व्यवहार का प्रारम्भ! वह अब कभी पीटर्सबर्ग नहीं आयेंगे—मेरे 'सुखी पारिवारिक जीवन' में अब कभी कोई भँवर नहीं आयेगी।.... कभी-कभी क़िस्मत कैसी अजीब गलियों में भटका देती है जहाँ से निकासी का द्वार तो मिलता ही नहीं, उल्टे जहाँ से प्रवेश किया था उन रास्तों को भी अथाह अंधेरा निगल जाता है। मन बेचारा सिर्फ़ पिरा ही तो सकता है न, सो पिराया करता है! पर इस दर्द की कोई सार्थकता भी होती है क्या?.. पता नहीं। सिर्फ़ इतना पता है, अब मैं चेखव के प्रति स्वयं को पूर्णतया प्रतिश्रुत अनुभव करने लगी थी। उन्हें बराबर ख़त भी भेजती रहती थी। यों मैंने माइकेल को बता दिया था कि हमारे ख़त आते-जाते हैं पर ख़त में घर के पते पर न मँगाकर सीधे डाकघर से ही ले आती थी। कितनी प्रेरणा और कितनी शांति देते थे उनके ख़त! पर मन कितना आकुल-व्याकुल रहता था यह सोचकर कि चेखव ने पीटर्सबर्ग न आने की क़सम खा ली है। और मैं उन तक पहुँचूँ तो भला कैसे पहुँचूँ?....

एक दिन बिना किसी पूर्व सूचना के ही मेरी बहन मेरे घर आयी और बड़ी शरारत से मुस्कुराकर बोली, "आज शाम को मेरे घर अकेली ही आना। ध्यान रखना, माइकेल साथ न हो।" मैंने कहा, "अरे, यह कैसी शर्त? क्या हुआ?" बोली, "हुआ कुछ नहीं। अच्छा बता, मैं क्या सोच रही हूँ? शर्त लगा ले, तू अंदाज़ नहीं लगा सकती। एक बोरिंग कहानी है।"

"बोरिंग कहानी? क्या मतलब?"

"हाँ-हाँ, 'ए बोरिंग स्टोरी' तूने नहीं पढ़ी?"

"पढ़ी हूँ, मगर उससे तुम कहना क्या चाहती हो?"

"उसमें तुझे याद है—एक शैम्पेन की बोतल है, पनीर है और..."

"अरे तो तेरे यहाँ चेखव आ रहे हैं क्या री?" कहने को तो मैं कह गयी पर दूसरे क्षण ही लाज से दोहरी हो गयी। मुझे आज भी वह संवेदन याद हैं। जाने कैसी अजानी पुलक से मेरे गालों पर सुर्खी दौड़ गयी थी। मैंने अपने कानों की कोर पर कुछ गुनगुनी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सी, सुरसुरी-भी महसूस की थी। इस सूचना मात्र से ही मैं स्वयं को बहुत छोटी, बहुत नयी-नयी लगने लगी थी !

शाम को जब मैं बहन के घर गयी तो देखा, वह बाहर के कमरे में बैठी कुछ लिख रही थी। उसने अभी शाम के कपड़े भी नहीं पहने थे। ड्रेसिंग गाउन लपेटे बैठी थी और आँखों में वही शरारत-भरी चमक। चेखव अभी आये नहीं थे पर उनके आने में मुश्किल से दस-पन्द्रह मिनट की ही देर होगी और यह अभी तैयार भी नहीं हुई। ऐसा तो पहले कभी नहीं करती थी। इतने में ही घंटी बजी। नाड्या उसी शरारत से मुस्करा कर बोली, "अरी लीडो, मैं तो अभी तैयार भी नहीं हुई। जा, ज़रा तू ही उनका स्वागत कर, मैं अभी आयी !" अब समझी मैं ड्रेसिंग गाउन का रहस्य। उसके सुर्ख गालों को चुटकी से मसलकर और भी सुर्ख बनाकर मैं द्वार पर गयी।

मेरे पाँवों में बड़ा अजब कम्पन हो रहा था। दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा था, वह अलग ! ऐसा लग रहा था जैसे मानो दिल और पैरों में कोई होड़ लगी थी कि किसके स्पंदन ज़्यादा द्रुत हैं। पर शीघ्र ही मैंने स्वयं को संयत कर लिया। परस्पर अभिवादन के बाद, पहले मैं ही बोली, "क्यों साहब, आपने तो पीटर्सबर्ग न आने की क़सम खा ली थी !"

"भई, मैं बड़ा असंयत और कमज़ोर इच्छा-शक्ति का आदमी हूँ। पर तुम कुछ घबराई-सी नज़र आ रही हो ! तबियत तो ठीक है न ?"

मैंने स्वयं को और भी सँभाला और होठों पर ज़बरन हँसी बिखेरकर कहा, "नहीं, नहीं, मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ।"

"हाँ तो, मैं पीटर्सबर्ग में हूँ। और भी एक बात बताऊँ। तुम्हें याद है न, मैंने कभी नाटक न लिखने की क़सम खायी थी, पचासों व्यक्तियों के सामने ऐलान कर दिया था कि अब कभी नाटक नहीं लिखूंगा। याद है ?

मैंने कहा, "हाँ, याद तो है।"

तो कहने लगे, "मैं एक नया नाटक लिखने जा रहा हूँ। उसका नाम भी अभी से सोच लिया है—सीगल !"

'सीगल' नाटक और लीडिया एवीलोव में क्या सम्बन्ध है तथा इस कथा की अन्य सब रोचक बातें आगामी अंक में पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

◆ दीपावली के अवसर पर

ज्ञानोदय की गौरवमयी परम्परा में उपलब्धि के ऊँचे शिखर पर एक नयी पताका—

ज्ञानोदय

का

वार्षिक विशेषांक

हास्य - व्यंग्य अङ्क

- मौलिक कल्पनाएँ और नये आयाम
- प्रतिष्ठित प्रतिभाएँ और सादी क़लम
- रोचक, मनोरंजक, सरस और उत्तेजक—सर्वथा अभूतपूर्व

हास्य-व्यंग्य के रोचक रूपों की रंगीन प्रदर्शनी

गुदगुदियाँ और चुटकियाँ * मुस्कान और अट्टहास * रंग और रोमांस * व्यंग्य और विनोद * हास और परिहास * हजौ और घड़ौआ * ढकोसले और खिल्लियाँ * तीर और ताने * ताज़गी और ज़िन्दादिली

फिर भी

परिष्कृत और प्रिय, पठनीय और संग्रहणीय

मूल्य २)

अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करवालें। विशेष जानकारी के लिए लिखें :

ज्ञानोदय कार्यालय

१८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकता–१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप
की खूबसूरती
ढल रही है

जब बाल पकने लग जायं तब आप का चांद जैसा चेहरा ढलने लगता है, फिर आप भले ही इसे खूबसूरत रखने के लिए हर कीमत चुकाने को तैयार क्यों न हों...सादी-सी बात है कि सुंदरता ही वरदान है आप के लिए।

भगवान करे, आप से ऐसी न बीते...आपके बालों की जवानी कुम्हलानी नहीं चाहिए, वह भी उस हालत में जब कि आप को लोमा सुलभ हो। मनमोहक खुशबूवाला लोमा बालों को श्याम बनाता है। लोमा सिर्फ बालों को श्याम ही नहीं करता, बल्कि वह आदर्श केश-प्रसाधन और बढ़िया केश-तैल भी है।

लोमा में बालों को दुबारा जवानी प्रदान करनेवाले, उन्हें पुष्ट रखनेवाले तत्व हैं, जिससे आप के बाल रेशम जैसे मुलायम, घने और अधिक आकर्षक बनते हैं। मृदु लोमा लगाने पर आप की सुन्दरता कभी नहीं ढलेगी...सच पूछिये तो उसमें चार चांद ही लग जायेंगे।

लोमा

दुनिया भर में
उत्कृष्ट गुणों के लिए
ज्यादा पसंद तेल

लोब रजिस्टर्ड और निर्यातक:
एम. एम. खम्भातवाला,
बहमदाबाद-१ (गुजरात)

रजिस्टर्ड:
ली. मरोत्तम ऐंड कंपनी,
बम्बई-१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त,
अनुपलब्ध और अप्रकाशित
सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

विशिष्टता

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठा
की साधिका संस्था

संस्थापक : साहू शान्ति प्रसाद जैन
अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीनतम प्रकाशन

पीले गुलाब की आत्मा : विश्वम्भर 'मानव'

डायरी जैसी फ़ॉर्म में लिखा हुआ हिन्दी में अपने प्रकार का मौलिक सर्वप्रथम उपन्यास। इसमें एक बड़ी मीठी, भावनापूर्ण और पीड़ाभरी प्रेमकथा तो रूपायित हुई ही है, बड़ी विशेषता इसकी है कि कथा-नायक इस लोक का एक जाना-चीन्हा व्यक्ति है और कथा-नायिका परलोक की एक आत्मा—और लेखक का दावा है कि कथा सत्य है। मूल्य ४.००

चौलुक्य कुमारपाल : लक्ष्मीशंकर व्यास

इतिहास में चौलुक्य कुमारपाल का राज्य-काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत कृति में सम्बन्धित समस्त तथ्य वैज्ञानिक पद्धति से संकलित एवं विवेचित ही नहीं किये गये हैं, उन्हें उपन्यास-शैली में उपस्थित भी किया गया है। हिन्दी में अपने विषय का एकमात्र ग्रन्थ जो विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है तो सामान्य व्यक्ति के लिए रोचक और लाभदायी। प्रथम संस्करण पर मासिक 'आजकल' का अभिमत था कि "इस एक ग्रन्थ से कुमारपाल के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त की जा सकती है वह अंगरेज़ी व अन्य विदेशी भाषाओं के ग्रन्थों से भी नहीं मिल सकती।" द्वितीय-परिवर्धित संस्करण। मूल्य ४.५०

तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ : परिपूर्णानन्द वर्मा

ग़ुलाम बनाने और ग़ुलाम बनाये रखने के लिए अंगरेजों ने हमें हमारे इतिहास से गुमराह ही नहीं किया, अजनबी तक बना दिया। अब आज़ादी के बाद वह सभी पन्ना-पन्ना खुलता चला आ रहा है जो हम जान न सके या जिसे कुछ और रूप में जानते आये। हमारे इतिहास के ऐसे ही तीन पन्ने इस पुस्तक में देखने को मिलेंगे : शेरशाह सूरी, वाजिदअली शाह, और बहादुरशाह। तीनों पन्ने तीन नाटकों के रूप में हैं और ये असलियत और सचाई की ऐसी तसवीर हैं जो युग के इस द्वार पर खड़े होकर ही आँकी जा सकती थीं। मूल्य ४.००

— ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

नवीनतम प्रकाशन

ध्वनि और संगीत : प्रो० ललितकिशोर सिंह

इस समूचे विषय को मात्र मान्यताओं और प्रचलित परम्पराओं के स्तर से उबारकर वैज्ञानिक आधार और वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करनेवाली हिन्दी की सर्वप्रथम प्रामाणिक कृति। आरम्भ में ध्वनि-विस्तार के तथ्यों का वर्णन और मौलिक सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया गया है, फिर नये-पुराने सभी स्वर-ग्रामों का वैज्ञानिक विश्लेषण। कृति का प्रधान विषय हिन्दुस्तानी या उत्तरीय पद्धति है, पर प्रसंगवश दाक्षिणात्य और पाश्चात्य पद्धतियों पर भी विचार किया गया है। ध्वनि-विज्ञान के विद्यार्थियों और संगीत कला-मर्म के जिज्ञासुओं के लिए समान रूप से आवश्यक। हिन्दी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी ऐसी पुस्तक दुर्लभ है। द्वितीय परिष्कृत संस्करण। मूल्य ४.००

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

लगभग ८०० पृष्ठ की इस पुस्तक में भारतीय इतिहास को क्रमबद्ध और प्रामाणिक रूप में तो प्रस्तुत किया ही गया है, विशेष बात यह है कि यहाँ भारतीय इतिहास के उन दुर्लभ संदर्भों का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है जिनका सम्बन्ध जैन धर्म, इतिहास, कला और वीर-वीरांगनाओं से है। इस सामग्री को भारत के इतिहास-लेखकों ने अभी तक सुनियोजित ढंग से देखा ही नहीं था। इतिहास के विद्वानों, शिक्षकों, विद्यार्थियों और जिज्ञासु पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी। मूल्य ८.००

हास्य मन्दाकिनी : नारायण प्रसाद जैन

शेख सादी ने कहा है कि थोड़ी देर के लिए भी किसी को हँसा सको तो यह उसे जिन्दगी बख्शने जैसा होगा। और 'हास्य मन्दाकिनी' तो ऐसी पुस्तक है कि उसे कहीं से भी खोलकर पढ़ें, हँसी की लहरिएँ आपको गुदगुदा जायँगी। पुस्तक उन पाठकों तथा अन्य वर्गों के लिए अत्यन्त उपयोगी है जिन्हें देश-देश और विषय-विषय के चुटकुलों की आवश्यकता रहती है। मूल्य ६.००

07789

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उर्दू-शायरी

नरमए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४·००
शाइरी के नये दौर [भाग १–५]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१५·००
शाइरी के नये मोड़ [भाग १–२]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	६·००
मीर	रामनाथ 'सुमन'	६·००
ग़ालिब	रामनाथ 'सुमन'	८·००

कविता

आँगन के पार द्वार	अज्ञेय	३·००
रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२·००
वेणु लो गूंजे धरा	माखनलाल चतुर्वेदी	३·००
कनुप्रिया	डॉ० धर्मवीर भारती	३·००
देशान्तर	डॉ० धर्मवीर भारती	१२·००
सात गीत वर्ष	डॉ० धर्मवीर भारती	३·५०
वाणी	सुमित्रानन्दन पन्त	४·००
अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४·००
तीसरा सप्तक	सं०—अज्ञेय	५·००
अनु-क्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३·००
आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३·००
वीणापाणि के कम्पाउण्ड में	केशवचन्द्र वर्मा	३·००
लेखनी-बेला	वीरेन्द्र मिश्र	३·००
सौवर्ग	सुमित्रानन्दन पन्त	२.५०
आधुनिक जैन कवि	रमा जैन	३.७५
पंच प्रदीप	शान्ति एम० ए०	२.००
मेरे बापू	हुकुमचन्द्र बुखारिया	२.५०

इतिहास-राजनीति

पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३·५०
समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५·००
कालिदास का भारत (१–२)	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८·००
एशिया की राजनीति	परदेशी	६·००

ज्ञानोदय

सितम्बर १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्तिसागर	६.००
इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००

एकांकी-नाटक

कहानी कैसे बनी	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
चेखव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३.५०
कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.५०
सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	२.००
नाटक बहुरंगी	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	४.५०
भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०
सुन्दर रस	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	१.५०
तरकश के तीर	श्रीकृष्ण	३.००

ललित रचना, सांस्कृतिक निबन्धादि

आँगन का पंछी और बनजारा मन	विद्यानिवास मिश्र	३.५०
फिर बैतलवा डाल पर	विवेकी राय	३.००
नये रंग : नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
अमीर इरादे : ग़रीब इरादे	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
ठूंठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
काग़ज़ की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
ज़िन्दगी मुसकराई	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
बाजे पायलिया के घुंघरू	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ	रावी	२.५०
ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
हिन्दू विवाहों में कन्यादान का स्थान	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०

ज्ञानोदय

सितम्बर १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

हास्य-व्यंग्य

हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६·००
आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य	सं०—केशवचन्द्र वर्मा	४·००
अंगद का पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२·५०
मुर्ग़छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२·००

कहानी

जय-दोल	अज्ञेय	३·००
प्यार के बन्धन	राबी	३·२५
ज़िन्दगी और गुलाब के फूल	उषा प्रियंवदा	२·५०
मेरे कथागुरु का कहना है [१–२]	राबी	६·००
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३·००
सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	३·००
एक परछाईं दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३·००
ऑस्कर वाइल्ड की कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२·५०
लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२·००
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२·५०
आकाश के तारे : धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२·००
नये बादल	मोहन राकेश	२·५०
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३·००
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३·००
खेल खिलौने	राजेन्द्र यादव	२·००
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२·५०
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२·५०
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	३·००
गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२·५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी आदि

आत्मनेपद	अज्ञेय	४·००
माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६·००

ज्ञानोदय

सितम्बर १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पराड़करजी और पत्रकारिता	लक्ष्मीशंकर व्यास	५·५०
दीप जले : शंख बजे	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३·००
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४·००
द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथसिंह विनोद	२.५०
जैन जागरण के अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००

सक्तियाँ

सन्त विनोद	नारायणप्रसाद जैन	२·००
कालिदास के सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५·००
ज्ञानगंगा (भाग १–२)	नारायणप्रसाद जैन	१२.००
शरत की सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००

उपन्यास

अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३·००
गुनाहों का देवता	डॉ० धर्मवीर भारती	५·००
शह और मात	राजेन्द्र यादव	४·००
राजसी	देवेशदास, I.C.S.	२·५०
रक्त-राग	देवेशदास, I.C.S.	३·००
मुक्तिदूत	वीरेन्द्रकुमार जैन	५·००
ग्यारह सपनों का देश	सं० लक्ष्मीचन्द्र जैन	४·००
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६·००
तीसरा नेत्र	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०

विधा-विविधा

खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति, एम. ए.	४·५०
अंकित होने दो	अजितकुमार	४·००
सीढ़ियों पर धूप में	रघुवीर सहाय	४·००
काठ की घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७·००
पत्थर का लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३·००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

यात्रा-विवरण

एक बूंद सहसा उछली	अज्ञेय	७·००
हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४·५०
सागर की लहरों पर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४·००
पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३·००

दार्शनिक, आध्यात्मिक

वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६·००
अध्यात्म पदावली	डॉ० राजकुमार जैन	४·५०
भारतीय विचारधारा	मधुकर, एम० ए०	२ ००

आलोचना, अनुसंधान, रचना-शिल्प आदि

रेडियो नाट्य शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२·५०
रेडियो वार्ता शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२·००
संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५·००
हिन्दी नवलेखन	रामस्वरूप चतुर्वेदी	४·००
मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२·५०
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३·५०
हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, [भाग १ और २]	नेमिचन्द्र शास्त्री	५·००
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००
शरत् के नारी पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत श्रेष्ठ प्रकाशन

उर्दू शायरी

शरो शाइरी	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
शेरो सुख़न (भाग १–५)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०.००

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	६.००
मिलन-यामिनी	डॉ० बच्चन	४.००
धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर	३.००

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३.००
पहला कहानीकार	रावी	२.५०
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६.००

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्तिसागर	६.००
खोज की पगडण्डियाँ	मुनि कान्तिसागर	४.००
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.००
कालिदास का भारत (भाग १–२)	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८.००

एकांकी - नाटक

जनम क़ैद	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३.००
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
और खाई बढ़ती गई	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०

संस्मरण - रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक प्रकाशन

१	जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक)	३.००
२	कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों का संक्षिप्त सार)	२.००
२	धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित)	३.००
४	आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन)	३.७५
५	हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	२.८८
६	महाबन्ध—भाग १–७ (कर्म सिद्धान्त का महान् ग्रन्थ)	७८.००
७	सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित)	१२.००
८	तत्त्वार्थ राजवार्तिक—भाग १, २ (संशोधित और हिन्दी सार सहित)	२४.००
९	तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित)	१६.००
१०	समय सार—अंग्रेजी (आध्यात्मिक ग्रन्थ)	८.००
११	मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक)	८.००
१२	न्यायविनिश्चय विवरण—भाग १, २ (जैन दर्शन)	३०.००
१३	आदिपुराण—भाग १, २ (भगवान ऋषभदेव का पुण्य चरित)	१०.००
१४	उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित)	१०.००
१५	वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित)	५.००
१६	जिनसहस्रनाम (भगवान् के १००८ नामों का अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित)	४.००
१७	केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ)	४.००
१८	करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तरेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रन्थ	०.७५
१९	नाममाला सभाष्य (कोश)	३.५०
२०	सभाष्य रत्नमंजूषा (छन्दशास्त्र)	२.००
२१	कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची	१३.००
२२	पुराणसार संग्रह—भाग १-२ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र)	४.००
२३	जातकट्ठ कथा (बौद्धकथा-साहित्य)	९.००
२४	थिरुकुरल (अंग्रेजी प्रस्तावना सहित तमिल भाषा का पंचम वेद)	५.००
२५	व्रततिथि निर्णय (विधि-विधानों एवं तिथि-निर्णय का विवेचन)	३.००
२६	जैनेन्द्रमहावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ)	१५.००
२७	मंगल-मन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन	२.००
२८	पद्मपुराण (भाग १, २, ३)	३०.००
२९	जीवन्धर चम्पू (हिन्दी टीका सहित)	८.००
३०	जैन धर्मामृत	३.००

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़ पहनने के कपड़े...

सनलाइट से

कितने **सफ़ेद** और **उजले!**

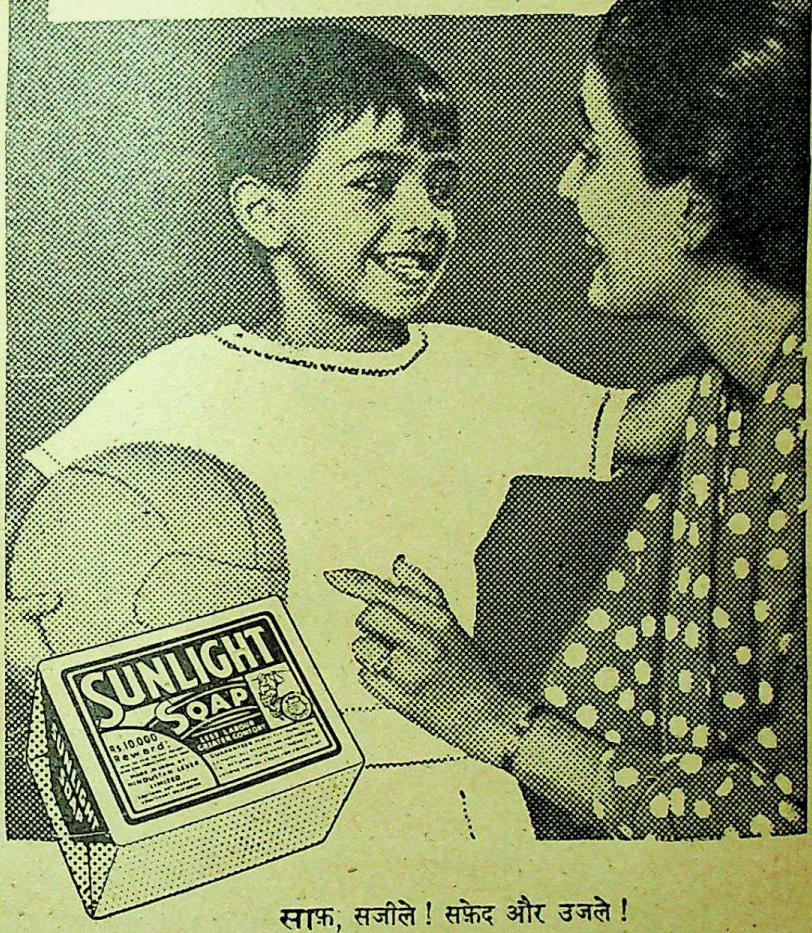

साफ़, सजीले! सफ़ेद और उजले!
यह है सनलाइट से धुले कपड़ों की शान! अपने
सभी कपड़े घर में सनलाइट से धोइये।

सनलाइट बढ़िया झागवाला शुद्ध साबुन

S. 32A-X29 HJ

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी सहायता के लिए

परिवार नियोजन के बारे में उपयोगी जानकारी देने वाली पुस्तिकाएं पैम्फलेट, फोल्डर आदि अंग्रेजी व विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित किये गये है। आप इनकी एक-एक प्रति अपने परिवार नियोजन केन्द्र से मुफ्त प्राप्त कर सकते है।

सलाह-मशवरे के लिए सरकार द्वारा मान्य पास के

परिवार नियोजन केन्द्र

में जाइये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोडा ऐश यूनिट
धांगध्रा
गुजरात राज्य

तार :
केमिकल्स
धांगध्रा

टेलीफोन :
३१ और ६७

तार :
साहू जैन, बम्बई

टेलीफोन :
२५१२१८-१९

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

प्रसिद्ध 'हार्स शू' छाप हेवी केमिकल्स
के उत्पादन में अग्रसर निर्माता

- सोडा ऐश
- सोडा बाइकार्ब
- कैल्शियम क्लोराइड
- नमक और

हाइ रेयॅन ग्रेड
इले ट्रोलिटिक कॉस्टिक सोडा
(९८–९९ प्रतिशत शुद्धता)

कॉस्टिक सोडा यूनिट
साहूपुरम
पोस्ट–आरूमुगनेरी
तिरुनुवेली डिस्ट्रिक्ट
मद्रास राज्य

तार :
केमिकल्स
आरूमुगनेरी

टेलीफोन :
कायलपटनम : ३०

मैनेजिंग एजेंट्स :
साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लिमिटेड
१५ ए, हॉर्निमेन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...NODAY, September, 1962
Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad postage extra 18 nP.

बड़े काम के उपयुक्त

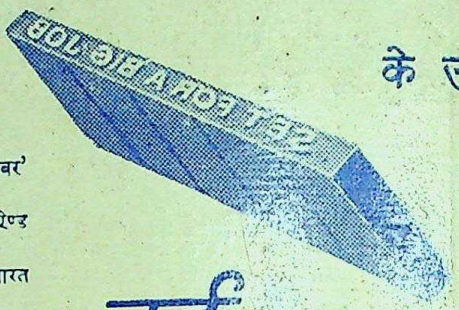

ब्रिटानिया — डी. पी. ई. 'जाबर' इंगलैण्ड के डावसन, पाइन ऐण्ड इलियट लिमिटेड के सहयोग से भारत में पहले पहल तैयार की गई है जिसका निर्माण कम खर्च, अधिक दक्षता तथा मेन्टेनेन्स की सहूलियत पर विशेष ध्यान रखकर किया गया है।

यह मशीन एक सरल लगातार चलनेवाली मोटर से चलती है जिसमें चाल को कम या अधिक करने के लिये तीन तुरन्त बदलने लायक पुलियाँ लगी हैं। चलाने की जगह एक ही लिवर है जिससे स्टार्टिंग, इंचिंग और ब्रेकिंग के काम होते हैं। कागज की डेलीवरी चेन ग्रिपर से होती है जिससे छपा हुआ पहलू काम के समय अछूता रहता है।

नई लेटरप्रेस प्रिंटिंग मशीन

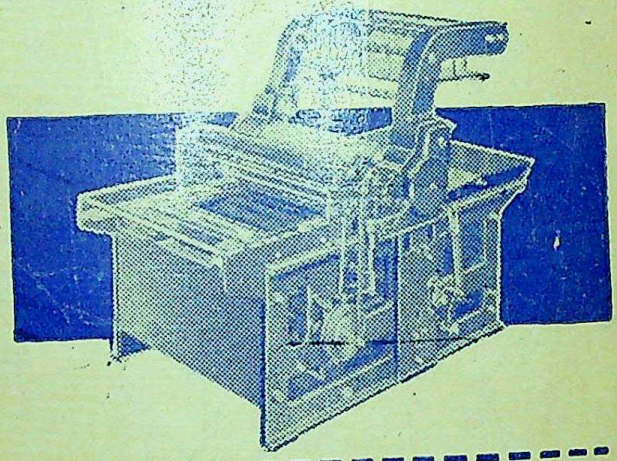

स्पेसीफिकेशन

कागज की साइजे

स्टैण्डर्ड	: २०"×३०"	(५०८ मिमि.×७६२ मिमि.)
अधिक	: २०"×३३"	(५०८ मिमि.×८३८ मिमि.)
कम	: १०"×१५"	(२५४ मिमि.×३८१ मिमि.)
टाइप-बेड बीयरों के बीच की चौड़ाई	: ३४ १/२"	(८७६ मिमि.)
फार्म बारों के बीच की दूरी	: २६"	(६६० मिमि.)
कुल लम्बाई	: ७'११"	(२४१३ मिमि.)
कुल चौड़ाई	: ५'५"	(१६५१ मिमि.)
कुल ऊँचाई	: ५'८"	(१७२७ मिमि.)

दि ब्रिटानिया-डी० पी० ई०

जाबर

दि ब्रिटानिया इंजिनीयरिंग कम्पनी लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्टस : मैकलाउड ऐण्ड कं० लि०, ३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१
सोल सेलिंग एजेन्टस : इण्डो यूरोपियन मशीनरी कं० प्राइवेट लि०
सर पी एम रोड, बम्बई- ५, बैंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता चाँदनी चौक, दिल्ली ६, माउन्ट रोड, मद्रास

Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. C. 4123

Published by S... Calcutta from 18-A, Brabourne Road Calcutta-1 and Printed by him at United Commercial Press Ltd., 1, Raja Gurudass Street, Calcutta-6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Expired
19/9/2008

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar